GAṆITĀNUYOGA

[An Authoritative classified Selection of Geographical & Astronomical datas from Jain Angas & Upangas]

Editor

Agam Ratnakar, Anuyog Pravartak

Muni Srı Kanhiya Lal 'Kamal'

Assistant Editor

Dalsukhbhai Malvaniya

Publishers

Agam Anuyoga Trust

AHMEDABAD-13

गणितानुयोग का द्वितीय संस्करण और उसका संकलन :— [विशेष ज्ञातव्य]

जैनागमों में भूगोल-खगोल एवं अन्तरिक्ष सम्बन्धी जितने पाठ हैं इसमें उन सबके संकलन का प्रयत्न किया गया है।

प्रथम संस्करण के क्रम में और इस द्वितीय सस्करण के क्रम में सामान्य-सा अन्तर किया गया है।

प्रथम संस्करण में सर्व प्रथम अलोक का वर्णन, बाद में लोक का वर्णन और अन्त में परिशिष्ट थे।

द्वितीय संस्करण में सर्व प्रथम लोक का वर्णन, बाद में अलोक का वर्णन और अन्त में लोकालोक के कतिपय सूत्र तथा कुछ परिशिष्ट हैं।

सभी परिशिष्ट श्री विनयमुनिजी ने व्यवस्थित किये हैं।

शब्द-कोश श्रीयुत श्रीचन्दजी सुराना ने सम्पन्न किया है।

प्रथम संस्करण में समस्त आगम पाठों का अनुवाद डा० श्री मोहनलाल मेहता ने किया था।

द्वितीय संस्करण में भी प्रायः डा० मेहता का ही अनुवाद रखा गया है किन्तु वर्गीकरण के अनुसार कहीं-कहीं परिवर्तन-परिवर्धन-संशोधन आदि भी किया गया है।

सम्पादन पद्धति

१. भूगोल-खगोल अन्तरिक्ष सम्बन्धी आगम पाठ जो भाव एवं भाषा में साम्य रखते हैं, उनमें से एक आगम पाठ मूल संकलन में लिया गया है। शेष आगम पाठों के स्थल निर्देश टिप्पण में अंकित किये गये हैं।

२. जैनागमों में भूगोल-खगोल एवं अन्तरिक्ष सम्बन्धी कुछ पाठ ऐसे हैं जिनमें एक सूत्र अल्प संख्या सूचक होता है और दूसरा सूत्र बहु संख्या सूचक होता है तो उनमें से बहु संख्या सूचक एक सूत्र मूल संकलन में लिया है। शेष अल्प संख्या सूचक सभी सूत्रों के स्थल निर्देश टिप्पण में दिये हैं। उदाहरण के लिए देखिए पृष्ठ १३, सूत्र २६ के टिप्पण।

पृष्ठ १४ पर सूत्र ३० बहु संख्या सूचक सूत्र से भिन्न प्रकार का है। अतः मूल संकलन में लिया गया है।

३. संकलित आगम पाठों पर जहाँ १,२ आदि अंक दिए हैं वे सब टिप्पण के अंक हैं।
जितने अंश पर अंक हैं उतने ही अंश से साम्य वाले आगम पाठों के स्थल निर्देश टिप्पण में दिये गये हैं।

४. प्रस्तुत संकलन में विषय वर्गीकरण की पद्धति प्रथम संस्करण से भिन्न प्रकार की है।
इसमें प्राकृतिक स्थिति का क्रम लिया है। यथा—
सर्व प्रथम अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक,
अधोलोक में नरक, भवन आदि
मध्यलोक में द्वीप, क्षेत्र, पर्वत, कूट, प्रपात, द्रह, नदियाँ, समुद्र आदि।
ऊपर ज्योतिष चक्र के चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि।
ऊर्ध्वलोक में कल्प, अनुत्तर विमान, ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी आदि।

५. प्रथम संस्करण में आगमपाठों का मूल ऊपर और नीचे हिन्दी अनुवाद था।
द्वितीय संस्करण में प्रत्येक पृष्ठ पर दो कालम हैं। एक में मूलपाठ और दूसरे कालम में हिन्दी अनुवाद है।
मूल पाठ के सामने हिन्दी अनुवाद है इसलिए मूलपाठ के भाव को समझने में पाठक को सुविधा रहेगी।

६. मूल हिन्दी अनुवाद शब्दानुलक्षी है अतः गणित सम्बन्धी प्रक्रिया इसमें नहीं दी गई है।
जो जिज्ञासु गणित की प्रक्रियायें जानना चाहें वे सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका तथा क्षेत्र समास, लोकप्रकाश आदि ग्रन्थ देखें।

७. जैनागमों से सम्बन्धित विषयों पर शोध निबन्ध लिखने वाले अभीष्ट विषय की जानकारी शीघ्र प्राप्त कर सकें—इसके लिए मूल पाठ पर प्राकृत के शीर्षक और हिन्दी अनुवाद पर हिन्दी में शीर्षक दिये गए हैं।

प्रकाशकीय

द्वितीय संस्करण की पृष्ठभूमि :—

जिज्ञासु-जगत् की जिज्ञासाओं का वैविध्य स्वयंसिद्ध है। इस जगत् में कुछ ऐसे भी जिज्ञासु हैं जिनका सर्वाधिक प्रिय विषय गणित रहा है। ऐसे जिज्ञासुओं की जिज्ञासाएँ ही गणितानुयोग के इस द्वितीय संस्करण के प्रकाशन की पृष्ठभूमि रही हैं।

आगम अनुयोग प्रकाशन परिषद साण्डेराव की ओर से गणितानुयोग का प्रथम संस्करण जिस समय प्रकाशित हुआ था, उस समय द्वितीय संस्करण की न कल्पना थी और न सम्भावना ही थी। अपितु यह आशंका थी कि गणितानुयोग की इतनी प्रतियों का कहाँ-कैसे उपयोग होगा? क्योंकि गणित सर्वसाधारण की रुचि का विषय कभी नहीं रहा।

सर्वप्रथम गणितानुयोग की प्रतियाँ अग्रिम ग्राहकों को भेजी गईं। उनमें से कुछ सज्जनों ने अपनी प्रतियाँ पुस्तकालयों में दे दीं और कुछ ने सन्तों को समर्पित कर दीं।

कुछ सुज्ञ श्रद्धालु युवकों ने अपनी-अपनी ओर से विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में गणितानुयोग की प्रतियाँ भेंट स्वरूप भेजीं।

उन पुस्तकालयों से कतिपय भूगोल-खगोल के प्राध्यापकों ने गणितानुयोग का अवलोकन किया और उनकी प्रेरणा से गणित सम्बन्धित शोध निबन्ध लेखकों ने अपने-अपने निबन्धों में उसका उपयोग किया।

जिन-जिन जिज्ञासुओं ने गणितानुयोग की उपयोगिता समझी उन सबने पुस्तकें मंगाईं, पढ़ीं और सुरक्षित रखीं।

प्रथम संस्करण के प्रचार-प्रसार में पूज्य अभयसागरजी महाराज का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस प्रकार प्रथम संस्करण की प्रतियां शनैः शनैः दुर्लभ होती गईं।

प्रमुख प्रेरक :—

जैन दर्शन के मूर्धन्य विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया ने द्वितीय संस्करण के लिए हमें प्रेरणा दी और समय-समय पर मार्गदर्शन करते रहे जिनसे यह ट्रस्ट इस ग्रन्थराज को जिज्ञासु जगत् के सामने इस रूप में प्रस्तुत कर सका है। हम श्री दलसुखभाई के प्रति हार्दिक कृतज्ञ है।

आत्मिक योगदान :—

प्रथम और द्वितीय संस्करण के संशोधन, सम्पादन आदि सभी कार्य श्री विनयमुनिजी 'व,गीश' के आत्मिक योगदान से ही मुनि श्री सम्पन्न कर सके हैं।

मुनि श्री का अनन्य सेवाभाव तथा प्रत्येक कार्य विवेकपूर्वक सम्पन्न करने की लगन सदा अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय है।

श्रमण संघीय महासतीजी श्री मुक्तिप्रभाजी की अन्तेवासिनी श्रमणियों का प्रतिलिपिलेखन आदि कार्यों में अत्यधिक योगदान भी प्रशंसनीय रहा।

गणित सम्बन्धी प्राचीन चित्रों की प्रतिकृति प्राप्त कराने में आचार्य श्री विजययशोदेव सूरि जी म० का सहकार प्राप्त हुआ, हम उनके प्रति हृदय से आभारी हैं।

प्रस्तुत संस्करण के संकलन, सम्पादन तथा प्रकाशन आदि के ज्ञानयज्ञ में जिन-जिन मुनिवरों, महासतियों, विद्वानों एवं श्रीमानों का उदार योगदान रहा, यह ट्रस्ट उन सब महान् आत्माओं का एवं सहयोगियों का सदैव आभारी रहेगा।

हम प्रथम संस्करण के सम्पादन सहयोगी स्व० पं० हीरालाल जी शास्त्री ब्यावर, पं० श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल तथा डा. मोहनलाल जी मेहता के प्रति भी आभार-स्मरण करते हैं।

सम्पादन सहयोग :—

श्रीयुत श्रीचन्द सुराणाजी व्यवसायी भी हैं और विद्वान् भी है। शब्दकोश आदि परिशिष्टों के सम्पादन का योगदान आपका श्लाघ्य है। ग्रन्थ का गौरव शुद्ध सुन्दर मुद्रण से आपने ही बढ़ाया है। इसके लिए ट्रस्ट आपका चिरकृतज्ञ रहेगा।

कर्मठ कार्यकर्ता :—

श्री हिम्मतभाई तन से वृद्ध और मन से युवा हैं। आपकी श्रुत सेवा, एवं व्यवस्था कौशल अनुकरणीय है। शासनदेव उन्हें आरोग्य प्रदान करें।

विनीत :

बलदेव भाई डोसाभाई पटेल

अध्यक्ष

आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद

सम्पादकीय

आगमों में अनुयोग के दो रूप मिलते हैं—

(१) अनुयोग-व्याख्या

(२) अनुयोग-वर्गीकरण

(१) अनुयोग व्याख्या—आगमों के विशिष्ट सूत्रों की व्याख्या करने की एक पद्धति है।

जिस प्रकार नगर की चारों दिशाओं में चार द्वार हों तो उसमें प्रवेश करना सबके लिए सरल होता है, इसी प्रकार १. उपक्रम, २. निक्षेप, ३. अनुगम और ४. नय - इन चार अनुयोगद्वारों से आगम रूप नगर में प्रवेश करना सबके लिए सरल होता है। अर्थात् इन चार अनुयोगद्वारों का आधार लेकर जो आगम की व्याख्या करते हैं, उन सबके लिए आगम ज्ञान प्राप्त करना अति सरल हो जाता है।

जैनागमों की यह अनुयोग-व्याख्या पद्धति अति चिरंतन काल से उपयोगी रही है। जैनागमों की उपलब्ध टीकाओं के टीकाकारों ने भी इसी अनुयोग व्याख्या पद्धति का अपनी टीकाओं में प्रयोग किया है।[1]

नन्दी-सूत्रनिर्दिष्ट श्रुतज्ञान के विवरण में अंग-प्रविष्ट, अंग-बाह्य, कालिक और उत्कालिक आदि सभी आगमों की व्याख्या करने के लिए इन चार अनुयोग-द्वारों का ही प्रयोग करने की सूचना दी गई है और इसी आधार पर अंगबाह्य, उत्कालिक, आवश्यक की विस्तृत व्याख्या अनुयोगद्वार-सूत्र में इन चार अनुयोगद्वारों द्वारा ही की गई है।

(२) अनुयोग-वर्गीकरण

चार अनुयोगों के नाम—

१. चरणानुयोग, २. धर्मकथानुयोग, ३. गणितानुयोग, ४. द्रव्यानुयोग।

उपलब्ध अंग-उपांग आदि आगमों में इन चार अनुयोगों के नाम क्रमशः कहीं नहीं मिलते हैं।

१. द्रव्यानुयोग का नाम—स्थानांग के दशम स्थान में मिलता है।[2] और प्रज्ञापना, भगवती आदि आगमों के आधार पर इसका नामकरण हुआ है।

२. चरणानुयोग का नामकरण—आचारांग, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि आगमों के आधार पर हुआ है।

---

१ अनुयोगद्वाराणि वाच्यानि,
तथाहि—प्रस्तुताध्ययनस्य महापुरस्येव चत्वारि अनुयोग-द्वाराणि भवन्ति –
१. उपक्रमो, २. निक्षेपो, ३. अनुगमो, ४. नयश्च।
तत्र अनुयोजनमनुयोगः—सूत्रस्यार्थेन सह सम्बन्धनम्।
अथवा—अनुरूपोऽनुकूलो वा योगो—व्यापारः सूत्रस्यार्थ प्रतिपादनरूपोऽनुयोगः।
आह च—
अणु जोजणमणुओगो, सुअस्स नियएण जमभिहेएण।
वावारो वा जोगो, जो अणुरूवोऽणुकूलो वा॥
यद्वा अर्थापेक्षया अणोः—लघो पश्चाज्जात तया वाऽनु-शब्द वाच्यस्य योऽभिधेयो योगो—व्यापारस्तत् सम्बन्धो वाऽणुयोगोऽनुयोगो वेति।
आह च—
अहवा जमत्थओ, थोवपच्छभावेहिं सुअमणुं तस्स।
अभिधेये वावारो, जोगो तेण व सम्बन्धो॥
तस्य द्वाराणीव द्वाराणि प्रवेशमुखानि,
अस्य अध्ययनपुरस्यार्थाधिगमोपाया इत्यर्थः
पुर—दृष्टान्तश्चात्र
यथाहि—अकृतद्वारकं पुरमपुरमेव
कृतैकद्वारमपि दुरधिगमं कार्यातिपत्तये च स्यात्
चतुर्मूलद्वारं तु प्रतिद्वारानुगतं सुखाधिगमे कार्यानतिपत्तये च। —जम्बू. वृत्ति

२ (क) करणानुयोग का नाम—द्रव्यानुयोग के दस भेदों में एक भेद के रूप में मिलता है। देखिए—स्थानांग, स्थान १०, सूत्र ७२६.
(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में करणानुयोग गणितानुयोग का पर्यायवाची माना गया है।
(ग) स्थानांग, स्था. १० सूत्र ७२६ में द्रव्यानुयोग दस प्रकार का कहा गया है।

३. धर्मकथानुयोग का नामकरण—ज्ञाताधर्मकथा आदि आगमों के आधार पर हुआ है।

४. गणितानुयोग का नामकरण—चन्द्र-सूर्य-प्रज्ञप्ति आदि की गणित के आधार पर हुआ है।

आगमोत्तर कालीन ग्रन्थों में तथा जैनागमों की उपलब्ध टीका, निर्युक्ति तथा भाष्य आदि में चारों अनुयोगों के नाम और अनुयोगों के अनुसार आगमों का विभाजन मिलता है।[1]

अनुयोग वर्गीकरण के ऐतिहासिक तथ्यों का अन्वेषण

भगवान महावीर से लेकर श्री आर्य वज्र पर्यन्त जैनागमों में वर्णित विविध विषय इन चार अनुयोगों में विभक्त नहीं हुए थे। क्योंकि प्रत्येक पद में चारों अनुयोगों का तथा सातों नयों का चिन्तन किया जाता था इसलिए विभाजन की कोई उपादेयता ही नहीं थी, किन्तु ह्रास-काल के प्रभाव से जब महान मेधावियों को भी एक पद में चारों अनुयोगों तथा सातों नयों का चिन्तन कठिन प्रतीत होने लगा तो श्री आर्यरक्षित ने आगमों में प्रतिपादित समस्त विषयों (पदों) को चार अनुयोगों में विभक्त कर दिया था।

इस अनुयोग विभाजन की क्या रूपरेखा थी ?

विषय संकलन किस क्रम से किया गया था ?

इस अनुयोग विभाजन की परंपरा कब विनष्ट हुई ?

इत्यादि ऐतिहासिक तथ्यों के अन्वेषण का उपक्रम अब तक किसी ने किया या नहीं ? यह जानने में नहीं आया है।

नन्दी-सूत्र की स्थविरावली में अनेक अनुयोगधर आचार्यों का उल्लेख है। ये आचार्य चार अनुयोग-द्वार वाली अनुयोग-व्याख्या पद्धति के धारक थे या द्रव्यानुयोग आदि चार अनुयोगों के वर्गीकरण के धारक थे ? इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्यों का अन्वेषण होना आवश्यक है।

अनुयोग वर्गीकरण का उद्देश्य

विगत दो-चार दशकों में प्राच्यविद्या प्रेमियों ने प्राकृत भाषा का महत्व समझा है और कतिपय विश्वविद्यालयों में प्राकृत अध्ययन केन्द्र स्थापित भी हुए हैं, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटियों से महत्वपूर्ण प्राचीन-ग्रन्थ आधुनिक शैली से सम्पादित होकर प्रकाशित हुए हैं। कुछ प्रकाशन-संस्थान शोधपूर्ण एवं समीक्षात्मक जैनागमों के प्रकाशन कर रहे हैं। किन्तु शोध निबन्धों के आधुनिक लेखक विषय प्रतिपादन के लिए सन्दर्भ ग्रन्थों के रूप में यदि समस्त जैनागमों को देखना चाहें, तो उन्हें आगमों के ये संस्करण देखकर निराशा ही होती है, क्योंकि आधुनिक शैली से सम्पादित सभी आगमों का मुद्रण अद्यावधि कहीं से नहीं हुआ है।

जैन पुस्तकालयों की व्यवस्था भी सर्वत्र समीचीन न होने से शोध-निबन्ध लेखकों को यथेष्ट लाभ नहीं मिल पाता। यदि साहसी शोध निबन्ध लेखक किसी प्रकार सभी जैनागमों का संग्रह कर भी लें तो उनमें से अभीष्ट विषय का परिपूर्ण शोध कर सकना उनके लिए कितना कठिन होता है इसका अनुभव तो शोध निबन्ध लेखकों को ही हो सकता है। एक विषय के पाठों को एकत्रित करने में कितने समय व श्रम की अपेक्षा होती है, यह भी एक असाधारण तथ्य है।

जैनागम सम्बन्धित शोध-निबन्ध के लेखक को प्रौढ़ आगम-अभ्यासी निर्देशक का मिलना भी उतना ही कठिन है जितना आधुनिक शैली से सम्पादित समस्त आगमों का मिलना। इन सब समस्याओं में उलझकर अनेक शोध-निबन्ध लेखक विषय परिवर्तन का संकल्प कर लेते हैं। या विषय का यथेष्ट प्रतिपादन नहीं कर पाते हैं, इसलिए शोध कार्य अधूरा रह जाता है।

इत्यादि अनेक अनुपेक्षणीय तथ्यों से प्रेरित होकर मैंने जैनागमों के समस्त विषयों का वर्गीकरण करके उसे चार अनुयोगों में विभक्त करने का संकल्प किया है। यद्यपि अनुयोग वर्गीकरण का कार्य समूह-साध्य एवं श्रम-साध्य है, साथ ही अद्यावधि उपलब्ध समस्त आगमों के प्रकाशन तथा अनेक सन्दर्भ ग्रन्थों का संग्रह भी अपेक्षित है। फिर भी उपलब्ध साधनों एवं उदार सहयोगियों के सहयोग से जितना कर सका हूँ या कर रहा हूँ उसे क्रमशः प्रस्तुत करते रहने का संकल्प है।

---

१ अनुयोगः प्रारभ्यते—स च चतुर्द्धा—

१. धर्मकथानुयोगः उत्तराध्ययनादिकः

२. गणितानुयोगः सूर्यप्रज्ञप्त्यादिकः

३. द्रव्यानुयोगः पूर्वाणि सम्मत्यादिकश्च

४. चरण-करणानुयोगश्च आचारांगादिकः

—जम्बूद्वीप. वृत्ति. पत्र १, २,

अनुयोग वर्गीकरण के लाभ

इन अनुयोग-विभागों के स्वाध्याय का सुफल यह होगा कि—

प्राचीन चिन्तन का किस प्रकार क्रमिक विकास हुआ है ?

कौन सा पाठ आगम संकलन काल के पश्चात परिवर्धित या प्रक्षिप्त किया गया है ?

आगमों के लिपिबद्ध होने के पश्चात कौन सा आगम विच्छिन्न हुआ और कौन सा नया अंग आगम स्थानापन्न हुआ है ?

किस आगम पाठ की कहाँ पूर्ति हुई है ?

कौन सा आगम पाठ परमत की मान्यता का है और कौन सा स्वमत की मान्यता का है ?

कौन सा परमत का पाठ भ्रान्ति से स्वमत का मान लिया गया है ?

इत्यादि जटिल प्रश्नों की कुछ समाधानकारी उपलब्धियाँ शोध-निबन्ध लेखकों के लिए यदि उपयोगी हुई तो यह श्रम सफल होगा।

अनुयोग वर्गीकरण का प्रारम्भ और प्रगति

गणितानुयोग वर्गीकरण का कार्य स्वर्गीय गुरुदेव के सान्निध्य में प्रारम्भ किया था। उनके सान्निध्य में ही परिपूर्ण हो गया था और प्रकाशन भी।

धर्मकथानुयोग का सम्पादन-प्रकाशन बाद में हुआ है।

चरणानुयोग का सम्पादन कार्य पूर्ण हो गया है और प्रकाशन प्रारम्भ हो रहा है।

द्रव्यानुयोग का सम्पादन हो रहा है, प्रकाशन भी शीघ्र होने की सम्भावना है।

अस्वस्थ शरीर और यथेष्ट अनुकूलताओं के अभाव में भी गणितानुयोग का यह द्वितीय संस्करण सम्पन्न किया गया है। आशा है, स्वाध्यायशील सज्जन इसके स्वाध्याय से अवश्य लाभ लेंगे।

संकलन एवं सम्पादन में स्वाध्यायशील महान आत्माओं को जहाँ कहीं संशोधन आवश्यक प्रतीत हो वो अवश्य सूचित करें।

उन सब महान् आत्माओं का मैं सदैव विनम्र भाव से आभार मानकर संशोधन करने के लिए प्रयत्नशील रहूँगा।

गणितानुयोग की सामान्य रूपरेखा

लोकाकाश—अनन्त पदार्थ सद्भावी—आकाश।

जिस आकाश में लोक है, वह लोकाकाश है। लोक का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है कि—"जो देखा जाता है वह लोक है।" लोक में जो इन्द्रियप्रत्यक्ष पदार्थ हैं, उनके दृष्टा छद्मस्थ/असर्वज्ञ हैं और जो लोक में अतीन्द्रिय पदार्थ हैं, उनके दृष्टा सर्वज्ञ हैं। इस प्रकार लोक दृश्य है अत: सर्वज्ञ और असर्वज्ञ द्वारा देखा जाता है। लोक के अनेक पर्यायवाची शब्द हैं—विश्व, संसार आदि।

लोक की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है।

(१) प्राचीन व्याख्या पद्धति "अनुयोग पद्धति" के नाम से प्रसिद्ध है। इस व्याख्या पद्धति को समझने के लिए पूरे अनुयोगद्वार की रचना की गई है। लोक की व्याख्या भी इस अनुयोग पद्धति से की गई है।

(क) १. नामलोक, २. स्थापनालोक ३. द्रव्यलोक।

(ख) १. द्रव्यलोक, २. क्षेत्रलोक, ३. काललोक। ४. भावलोक।

(ग) १. अधोलोक, २. तिर्यक्‌लोक, ३. ऊर्ध्व लोक।

(घ) १. ज्ञानलोक, २. दर्शनलोक, ३. चारित्र लोक।

(१) नाम लोक।

(२) स्थापना लोक—लोक का आकार अर्थात्—लोक का संस्थान।

अलोकाकाश के मध्य में लोकाकाश है। परन्तु सान्त ससीम है। इसका आकार त्रिसराव सम्पुटाकार है। एक सराव (शिकोरा) उल्टा, उस पर एक सराव सुल्टा (सीधा) और एक उल्टा रखने से जो आकार बनता है उसे "त्रिसराव" सम्पुटाकार कहते हैं। शास्त्रीय भाषा में यह "सुप्रतिष्ठक" आकार कहा जाता है। यह लोक नीचे से विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर से पुन: विस्तृत है।

लोक-पुरुष और विराट् पुरुष

आगमोत्तरकालीन जैन ग्रन्थों में समस्त लोक (अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक) को लोक-पुरुष के रूप

में चित्रित किया है। किन्तु जैनागमों में कहीं भी लोक-पुरुष का वर्णन नहीं है।

अतः विचारणीय प्रश्न यह है कि जैनागमों में जो "ग्रैवेयक" देवों के नाम गिनाए गये हैं, उनके नामकरण का हेतु क्या है ? उनके विमान लोक-पुरुष की ग्रीवा के स्थान पर हैं, इसलिए वे "ग्रैवेयक" देव कहे गये हैं। यदि यह व्युत्पत्तिपरक अर्थ संगत है तो आगमों में भी किसी समय लोक-पुरुष की कल्पना का अस्तित्व रहा होगा।[1] जब कुटिल काल के कुचक्र से आगमों के अनेक अंश विच्छिन्न हुए हैं तो सम्भव है उस समय लोक-पुरुष की कल्पना का अंश भी विच्छिन्न हो गया होगा।

लोक-पुरुष की कल्पना के समान विराट् पुरुष की कल्पना वैदिक ग्रन्थों में भी मिलती है—

विराट्-पुरुष

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां, भूवर्लोकाऽस्य नाभितः।
हृदा स्वर्लोक उरसा, महर्लोको महात्मनः॥
ग्रीवायां जनलोकश्च, तमोलोकः स्तनद् वयात्।
मूर्धनि सत्यलोकस्तु, ब्रह्मलोकः सनातनः॥
तत्कट्यां चातलक्लृप्तमुभ्यां वितलं विभोः।
जानुभ्यां सुतलं शुद्ध, जंघाभ्यां लु तलातलम्॥
पातालं पादतलत, इति लोकमयः पुमान्।

—भागवत् पुराण २/५/३८-४०
(गीता प्रेस) प्रथम भाग पृ० १६६।

द्रव्य-लोक

लोक में छः द्रव्य है, अतः यह द्रव्य-लोक है।

छः द्रव्यों के नाम :—

१. धर्मास्तिकाय - गति सहायक द्रव्य,
२. अधर्मास्तिकाय—स्थिति सहायक द्रव्य,
३. आकाशास्तिकाय—आश्रयदाता द्रव्य,
४. काल द्रव्य—स्थिति नियन्ता द्रव्य,
५. जीवास्तिकाय—चेतनाशील द्रव्य,
६. पुद्गलास्तिकाय—मूर्त जड़ द्रव्य,

(क) इन छः द्रव्यों में—एक जीव है, शेष पांच अजीव हैं।

(ख) इन छः द्रव्यों में—एक मूर्त है,[1] शेप पांच अमूर्त हैं।

(ग) इन छः द्रव्यों में—एक काल द्रव्य है, शेप पांच अस्तिकाय हैं।

(घ) इन छः द्रव्यों में—चार अस्तिकाय—लोक, अलोक के विभाजक हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय, और पुद्गलास्तिकाय।

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय—एक-एक द्रव्य हैं। आकाशास्तिकाय यह भी एक द्रव्य है किन्तु लोक अलोक दोनों में व्याप्त है। जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्य है।

(ङ) इन छः द्रव्यों में से एक काल द्रव्य के प्रदेश नहीं हैं। क्योंकि अतीत के समय नष्ट हो जाते हैं—और भविष्य के समय अनुत्पन्न हैं, इसलिए इनका कोई अस्तित्व नहीं है, केवल वर्तमान का एक समय[2] ऐसा

---

१. लोकाकाश के आकार को समझाने के लिए श्वेताम्बर और दिगम्बर आगमों में विविध उपमायें दी गई हैं—

श्वेताम्बर आगम	दिगम्बर आगम
अधोलोक का आकार	अधोलोक का आकार
१. उल्टे सराव का आकार (भ. श. ७, उ. १)	१. वेत्रासन का आकार (त्रिलोक प्रज्ञप्ति)
	मध्यलोक का आकार
	१. झल्लरी का आकार
२. पल्यंक का आकार (भ. श. ७, उ. १)	२. आधे उर्ध्व मृदंग का आकार (जंबुद्वीपप्रज्ञप्ति संग्रह)
	ऊर्ध्वलोक का आकार
३. तनाकार का आकार (भ. श. ११, उ. १०)	१. ऊर्ध्व मृदंग का आकार (त्रिलोकप्रज्ञप्ति)

कतिपय जैन ग्रन्थों में लोक का आकार पुरुष संस्थान के समान भी बतलाया है—दोनों हाथ कमर पर रखकर तथा दोनों पैरों को फैलाकर कोई पुरुष खड़ा हो, वैसा ही यह लोक है। (लोक प्रकाश १२-३)

वैदिक ग्रन्थों में विश्व का आकार विराट् पुरुष के रूप में लिया है।

---

१ पुद्गलास्तिकाय।

२ मुक्त आत्मा को मध्यलोक से, लोक के अग्रभाग तक पहुंचने में एक समय लगता है। मुक्त आत्मा जब मध्य लोक से एक रज्जु जितनी ऊँचाई तक पहुंचता है, तब तक उसे जितना समय लगता है उतना समय, उस एक समय का विभाज्य अंश मान लिया जाए तो क्या आपत्ति है ?

काल द्रव्य है, जो अविभाज्य है, अतः इसके प्रदेश नहीं हैं। और प्रदेशों के न होने से ही यह काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं है।[1] शेष पांच द्रव्यों के प्रदेश हैं अतः वे अस्तिकाय हैं। इन्हीं पंचास्तिकायों से यह लोक, द्रव्यलोक कहा जाता है।

क्षेत्र-लोक : लोक का विस्तार

इस अनन्त आकाश में प्रतिदिन होने वाले चन्द्र-सूर्य के उदायस्त को तथा झिलमिलाते अनगिनत तारों को देखकर जब कभी मानव ने चिन्तन किया तो उसके मन में विश्व के विस्तार की परिकल्पना जागृत हुई और वह सोचने लगा कि नीचे-ऊपर और दायें-बायें यह लोक (विश्व) कितनी दूरी तक फैला हुआ है? यह असीम-अनन्त है या ससीम-सान्त है?

जैनागमों में तथा ग्रन्थों में उक्त जिज्ञासाओं के तीन समाधान मिलते हैं :—

(१) यह लोक नीचे-ऊपर और दायें-बायें असंख्य कोटा-कोटी योजन पर्यन्त फैला हुआ है यह असत्कल्पना से लोक के विस्तार का अंकन है।

(२) जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित मेरु-पर्वत की चूलिका को छह देव घेर कर खड़े रहें और नीचे जम्बूद्वीप की परिधि पर चार दिग्कुमारियाँ चारों दिशाओं में बाहर (लवण-समुद्र) की ओर मुँह करके खड़ी रहें। वे चारों एक साथ चारों बलिपिण्डों को बाहर की ओर फेंके। पृथ्वी पर गिरने से पूर्व उन बलिपिण्डों को वे देव एक साथ ग्रहण कर सकें, ऐसी दिव्यगति वाले वे देव, लोक का अन्त पाने के लिए पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊपर और नीचे की ओर एक साथ चलें। जिस समय वे देव मेरु की चूलिका से चलें, उस समय एक हजार वर्ष की आयु वाला व्यक्ति व उसकी सात पीढ़िया भी समाप्त हो जाएँ और उसके नाम-गोत्र भी नष्ट हो जाए फिर भी वे देव-लोक के अन्त को न पा सकें। किन्तु इस समय तक देवताओं ने जितना क्षेत्र पार किया है वह अधिक है और शेष क्षेत्र अल्प है।[2]

(३) चौदह रज्जु प्रमाण लोक तथा एक रज्जु का औपमिक माप।

तीन क्रोड, इक्यासी लाख, सत्ताइस हजार, नौ सौ सत्तर मण वजन का "एक भार" होता है। ऐसे हजार भार अर्थात्—३८ अरब, १२ क्रोड, ७९ लाख, ७० हजार मण वजन का एक लोहे का गोला छः मास, छः दिन, छः प्रहर, और छः घड़ी में जितनी दूरी तय करे उतनी लम्बी दूरी एक रज्जु होता है। ऐसे चौदह रज्जु प्रमाण यह लोक नीचे से ऊपर पर्यन्त है।

उक्त तीन समाधानों की क्रमशः समीक्षा :—

(१) प्रथम समाधान, द्वितीय और तृतीय समाधान की अपेक्षा प्राचीन तथा तर्कसंगत प्रतीत होता है। आधुनिक विज्ञान भी विश्व का विस्तार असंख्य योजन का ही मानता है। यथा एक घण्टे में प्रकाश की गति ६७८७४४० मील है। इस अनन्त आकाश में अनेक ग्रह ऐसे हैं जिनका प्रकाश पृथ्वी पर अनेक वर्षों में पहुँचता है अतः लोक का विस्तार असंख्य कोटा-कोटी योजन मानना ही ठीक है।

(२) प्रस्तुत असत्कल्पना के सम्बन्ध में निम्नलिखित मुद्दे विचारणीय हैं—

(क) पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में जाने वाले देवों को केवल आधे रज्जु की दूरी ही तय करनी है। अतः समान वेग वाले देवों ने समान समय में, समान दूरी तय कर ली—यह कैसे संगत हो सकता है?

टीकाकार आचार्य ने भी इस सम्बन्ध में अपना अभिमत प्रस्तुत करते हुए कहा है कि लोक का आकार यदि समचतुरस्र मान लिया जाये तो समान वेग वाले देव समान समय में समान दूरी तय कर सकते हैं, अन्यथा आगमोक्त उदाहरण की संगति सम्भव नहीं है।

(ख) देवों द्वारा नहीं पार किया हुआ क्षेत्र, पार किये हुए क्षेत्र के असंख्यातवें भाग जितना है। अर्थात् देवों द्वारा नहीं पार किये हुए क्षेत्र से पार किया हुआ क्षेत्र असंख्यात गुणा अधिक है। इस आगम निर्णय की संगति किस प्रकार की जाए?

---

१ काय अर्थात्—शरीर के देश-प्रदेशों के समान काल-द्रव्य के देश-प्रदेश नहीं है। इसलिए काल द्रव्य होते हुए भी अस्तिकाय नहीं है।

२ भगवती, श. ११. उ. १०।

(ग) बलि-पिण्ड लेने के लिए जिस देव को मेरु की चूलिका से जम्बूद्वीप के विजय द्वार तक आना होता है, उसे लगभग १,१२,२०० योजनों की दूरी तय करनी पड़ती है। इतनी दूरी कम से कम एक चुटकी बजे जितनी देर में तय कर लेता होगा, जबकि कुछ ऐसे दिव्य गति वाले देव हैं जो एक चुटकी बजे जितनी देर में पूरे जम्बूद्वीप की परिक्रमा कर लेते हैं। अर्थात् बलि-पिण्ड पकड़ने वाले देव से एक चुटकी में तिगुनी दूरी तय कर लेते हैं। कुछ देव ऐसी दिव्य गति वाले भी हैं जो तीन चुटकी बजे उतनी देर में इक्कीस परिक्रमा कर लेते हैं। अब विचारणीय विषय यह है कि उक्त कल्पना में लोक का अन्त पाने के लिए ऐसी दिव्य गति वाले देवों की गति का उदाहरण क्यों नहीं दिया गया ?

(घ) उक्त कल्पना में लोक का अन्त पाने के लिए जाने वाले देव लगभग आठ हजार वर्ष में भी लोक का अन्त नहीं पा सकते, जबकि तीर्थंकर भगवान के जन्माभिषेक आदि महोत्सवों में अच्युतेन्द्र आदि आते हैं तो वे एक मुहूर्त (लगभग ४८ मिनट) में पोने चार रज्जु की दूरी तय कर लेते हैं। यदि (असत्कल्पना से) अच्युतेन्द्र लोक का अन्त पाने के लिए तीव्रतम गति से चलें तो लगभग चार मुहूर्त में लोक के अन्त तक पहुँच सकते हैं। अतः आठ हजार वर्ष तक लोक का अन्त न पा सकना विचारणीय अवश्य है।

(ङ) चमरेन्द्र भगवान महावीर की शरण लेकर शक्रेन्द्र को अपमानित करने के लिए सौधर्म देवलोक तक गया। और वज्र की मार से बचने के लिए वह वहाँ से लौट कर भगवान महावीर के समीप पहुँचा। शक्रेन्द्र भी वज्र को पकड़ने के लिए तीव्रगति से चला। प्रस्तुत प्रसंग में चमरेन्द्र लगभग डेढ़ रज्जु गया और आया, शक्रेन्द्र केवल डेढ़ रज्जु आया। चमरेन्द्र को आने जाने में अधिक से अधिक एक मुहूर्त लगा होगा। जबकि उक्त असत्कल्पन में देव लोकान्त तक आठ हजार वर्ष में भी नहीं पहुँच पाते। अतः यह अवधि विचारणीय है।

(३) एक रज्जु के औपमिक परिमाण के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य विचारणीय हैं—

(क) एक रज्जु का जो औपमिक परिमाण बताया है उस हिसाब से उक्त भार वाला लोहे का गोला सात वर्ष, तीन मास और आठ दिन में चौदह रज्जु की दूरी पार कर सकता है। जबकि उक्त असत्कल्पना में तीव्रतम गति वाले देव भी आठ हजार वर्ष में लोकान्त तक नहीं पहुँच सके। इसका फलितार्थ यह हुआ कि लोहे के गोले की गति से देवताओं की गति मन्द है जबकि देवताओं की गति से लोहे के गोले की गति मन्द होनी चाहिए। "शक्रेन्द्र की गति से वज्र की गति मन्द रही है।" यह तथ्य व्याख्याप्रज्ञप्ति में वर्णित है।

(ख) एक रज्जु का यह औपमिक परिमाण "जैनतत्व-प्रकाश" (स्व० पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० लिखित) में दिया गया है। किन्तु किस ग्रन्थ से उद्धृत किया गया, यह अज्ञात है। यदि किसी प्राचीन ग्रन्थ में यह है तो अवश्य विचारणीय है।

(ग) आधुनिक वैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि लोहे का गोला एक मण वजन का हो चाहे हजार मण वजन का हो, परन्तु किसी निर्धारित ऊँचाई से गिराने पर सदा समान गति से गिरता है। एक घण्टे में लोहे की गति ऊपर से नीचे की ओर केवल ७८ हजार ५५२ माइल की होती है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण में ही यह गति आधुनिक वैज्ञानिकों ने मानी है। यदि विज्ञानसम्मत लोहे के गोले की गति का आधार लेकर एक रज्जु का परिमाण निकालें तो इस प्रकार आयेगा—

यथा—छः मास, छः दिन, छः प्रहर और छः घड़ी के ४४८४ घण्टे और २४ मिनट होते हैं। इतने समय में लोहे का गोला ३५ करोड़ २२ लाख ५८ हजार और ५८६ माइल की दूरी पार कर लेगा—ये एक रज्जु के माइल हुए। इस प्रकार चौदह रज्जु के ४ अरब, ९३ करोड़, १७ लाख और २४३ माइल हुए। लोहे के गोले की गति से लोक का विस्तार इतना ही होता है, किन्तु यह लोक का विस्तार सर्वथा असंगत है।

(घ) तोल में 'मण' संज्ञा किस युग में निर्धारित की गई है ? इसका ऐतिहासिक दृष्टि से निर्णय होना आवश्यक है। क्योंकि राजाओं के शासन काल में तोल में 'मण' प्रचलित था।

(ङ) आगम काल में 'मण' तोल प्रचलित नहीं था, अतः यह मध्यकालीन तोल का नाम है। फिर भी इस सम्बन्ध में शोध कार्य होना आवश्यक है।

काल-लोक

यह लोक (विश्व) सान्त है या अनन्त ? यह एक

प्रश्न है। इसका समाधान वैदिक-परम्परा ने इस प्रकार किया है—"विश्व का आदि भी है, और अन्त भी है, अर्थात् सृष्टि का सृजन और संहार दोनों होते हैं।" जैन-दर्शन ने इसका समाधान अनेकान्त-दृष्टि से इस प्रकार किया है—

"यह लोक द्रव्य[1] और क्षेत्र[2] की अपेक्षा से सान्त है, काल[3] और भाव[4] की अपेक्षा से अनन्त है।

भाव लोक

भाव पांच प्रकार के हैं—१. औपशमिक[5], २. क्षायोपशमिक[6], ३. क्षायिक[7], ४. औदयिक[8], ५. पारिणामिक[9]। ये पांचों भाव जीव के स्वरूप हैं। इन पांचों में एक औदयिक भाव वैभाविक है– शेष चार स्वाभाविक हैं। औपशमिक आदि तीन भाव उत्तरोत्तर आत्मशुद्धि के हैं।[10]

मुक्त जीवों में दो भाव हैं—१. क्षायिक और २ पारिणामिक।

संसारी जीवों में से किसी के तीन भाव, किसी के चार भाव और किसी के पांच भाव हैं। दो या एक भाव किसी संसारी जीव में नहीं होते। यह लोक अनन्त जीवों से व्याप्त है। और वे अनन्त जीव इन पांच भावों से युक्त हैं। इसलिए यह भावलोक भी है।

उदार योगदान

गणितानुयोग के प्रस्तुत परिवर्धित/संशोधित द्वितीय संस्करण के सम्पादन काल में सभी सेवा कार्य करते हुए संशोधन आदि अनेक महत्वपूर्ण कार्य श्री विनयमुनि जी "वागीश" ने विवेक पूर्ण सम्पन्न किये हैं।

सम्पादन सम्बन्धी अनेक विषम समस्याओं के समाधान के समय न्याय-साहित्य व्याकरणाचार्य श्री महेन्द्र ऋषि जी ने विचार विमर्श का योगदान किया है।

शुद्ध सुन्दर लेखन आदि श्रमसाध्य कार्यों का उदार योगदान श्रमणी प्रवरा श्री मुक्तिप्रभा जी एवं श्री दिव्यप्रभा जी का तथा उनकी शिष्याओं का रहा है।

इन सब चारित्र आत्माओं के उदार योगदान से ही यह संस्करण सम्पन्न हुआ अतएव इनके प्रति मैं कृतज्ञता का भाव व्यक्त करता हूँ।

—मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

---

१ जहाँ तक यह लोक है वहाँ तक ही धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय है। जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय भी लोकान्त तक ही है। अतः यह लोक द्रव्यापेक्षया सान्त है।

२ यह लोक क्षेत्र से असंख्य कोटा-कोटी योजन पर्यन्त है, आगे अलोक है। अतः यह लोक क्षेत्रापेक्षया भी सान्त है।

३ काल दो प्रकार का है :—नैश्चयिक काल और व्यावहारिक काल। नैश्चयिक काल अनन्त है। अतः इसकी अपेक्षा यह लोक भी अनन्त हैं। और यह काल लोकव्यापी है। अतः यह धर्मास्तिकाय के समान लोक-अलोक का विभाजक भी है। समय, आवलिका-यावत्-कालचक्र पर्यन्त व्यावहारिक काल है। चन्द्र, सूर्य आदि ग्रहों के गमन और उदयास्त के निमित्त से मानव ही व्यावहारिक-काल के विभाग स्थिर करता है। इसलिए मनुष्य-क्षेत्र को समय क्षेत्र कहते हैं। यह मनुष्य-क्षेत्र अढाई द्वीप पर्यन्त है।

४ जीव-द्रव्य, काल की अपेक्षा से अनन्त हैं, अतः जीव समुदाय के औपशमकादि भाव भी काल की अपेक्षा से अनन्त हैं। और इन औपशमिकादि भावों की अपेक्षा यह लोक अनन्त है।

५ औपशमिक भाव दो प्रकार का है :—१. सम्यकत्व, २. चारित्र।

६ क्षायिक भाव नव प्रकार का है :—१. ज्ञान, २. दर्शन, ३. दान, ४. लाभ, ५. भोग, ६. उपभोग, ७. वीर्य, ८. सम्यक्त्व, ९. चारित्र।

७ क्षायोपशमिक भाव अठारह प्रकार का है :—
१. चार ज्ञान, २. तीन अज्ञान, ३. तीन दर्शन, ४. पांच दानादि लब्धियाँ, ५. सम्यक्त्व, ६. चारित्र-सर्वविरति, और ७. संयमासंयम-देशविरति।

८ औदयिक भाव इक्कीस हैं :—१, चार गतियां, २. चार कषाय, ३. तीन लिंग-भेद, ४. एक मिथ्यादर्शन, ५. एक अज्ञान, ६. असंयम, ७. एक असिद्ध भाव, ८. छः लेश्यायें।

९ पारिणमिक भाव अनेक प्रकार के हैं :—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन तथा अन्य भी पारिणामिक भाव हैं।

१० स्थानांग—स्था. ३, उ. २, सूत्र १५३ में ज्ञान, दर्शन, चारित्र को ही भाव-लोक कहा है। केवलज्ञान, केवलदर्शन और यथाख्यातचारित्र क्षायिक भाव हैं। शेष चार चारित्र क्षायोपशमिक भाव एवं औपशमिक भाव हैं। आत्मशुद्धि की अपेक्षा से औपशमिकादि तीन भाव लोक हैं।

आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद

सहयोगियों की नामावली

सेठ श्री चुन्नीलाल नरभेराम मेमोरियल ट्रस्ट, बम्बई
हस्ते श्री मनुभाई बेकरीवाला
गांधी परिवार हैदराबाद
श्री बलदेवभाई डोसाभाई पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, अहमदाबाद। हस्ते बलदेवभाई डोसाभाई पटेल
श्री आत्माराम माणेकलाल पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, अहमदाबाद। हस्ते बलवन्तलाल शान्तिलाल
श्री पार्श्वनाथ चेरिटेबल ट्रस्ट, अहमदाबाद
हस्ते नवनीतभाई चुन्नीलाल पटेल
श्री रमणलाल माणेकलाल शाह अहमदाबाद
हस्ते सुभद्रा बहिन
श्री हिम्मतलाल शामलभाई शाह, अहमदाबाद
श्री पंजाब जैन भ्रातृ सभा; खार, बम्बई
श्री रतनकुमार जी जैन बम्बई
"नित्यानंद स्टील रोलर मिल"
श्री तेजराजजी रूपराजजी बंब; इचलकरंजी महाराष्ट्र
हस्ते, माणकचंद रूपचंद बंब भादवावाले
श्रीमती सुगनीबाई मोतीलाल जी बंब; हैदराबाद
हस्ते श्री भीवराज बंब पीहवाला
श्री "प्रेमग्रुप" अहमदाबाद "प्रेमराज गणपतराज वोहरा"
हस्ते पूरणचंद जी वोहरा
श्री कालूपुर मरकेन्टाईल कोपरेटिव बैंक लि. अहमदाबाद
श्री मोहनलाल जी मुकनचन्दजी बालिया अहमदाबाद
श्री माणेकलाल रतनशी बगड़िया बम्बई
श्री राजमल रिखबचंद मेहता चेरिटेबल ट्रस्ट बम्बई
हस्ते, सुशीला बहिन रमणीकलाल मेहता, पालनपुर
श्री हरिलाल जेचंद दोसी; विश्व वात्सल्य ट्रस्ट बम्बई
श्री जगजीवनदास रतनशी बगड़िया; दामनगर गुजरात
श्रीमती केजीबहिन चौधरी ट्रस्ट तिरुपति (तामिलनाडु)
हस्ते, शान्तिलाल धर्मीचन्द चौधरी

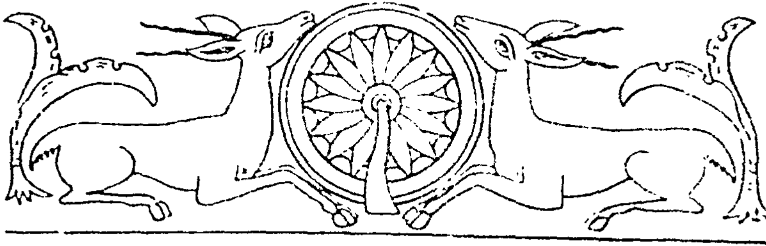
श्री विजयराजजी बालाबक्षजी वोहरा साबरमती अहमदाबाद
श्री अजयराज जी मेहता ऐलिसब्रिज, अहमदाबाद
श्री माणेकलाल सी. गाँधी अहमदाबाद
श्री जसवन्तलाल शान्तिलाल शाह बम्बई
श्री स्वस्तिक कार्पोरेशन अहमदाबाद
हस्ते, श्री हंसमुखलाल कस्तूरचन्द
श्री विजय कन्सट्रकशन कम्पनी अहमदाबाद
हस्ते रजनीकांत कस्तूरचन्द
श्री वाडीलाल छोटालाल डेलीवाला बम्बई
हस्ते, चन्द्रकांत बी० शाह
श्री करसनभाई लधुभाई निसर दादर बम्बई
श्रीमती चन्द्रादेवी गंभीरमल जी बंब टोंक, राजस्थान
श्रीमती लीलावती बेन जयंतीलाल चेरीटेबल ट्रस्ट, बम्बई
श्री सेठ चेरिटी ट्रस्ट बम्बई
श्री हरिश सी. जैन बम्बई
श्री भंवरलाल जी मोहनलाल जी भंडारी, अहमदाबाद
श्री नगीनभाई दोसी अहमदाबाद
श्री कंवरलाल जी धर्मचन्द जी बेताला गोहाटी, आसाम
श्री भंवरीलालजी जुगराजजी फुलफगर, घोड़नदी (महा.)
श्री दिनेश भाई चन्द्रकान्त बेंकर सिकन्द्राबाद
श्री प्रेमचन्दजी पोमाजी साकरिया सांडेराव
श्रीमती हंजाबाई प्रेमचन्द जी साकरिया सांडेराव
श्रीमती पारसदेवी मोहनलाल जी पारख हैदराबाद
श्री जादवजी लालजी वेलजी बम्बई
श्री गणसी देवराज जालना (महा.)
श्री नवरत्नमलजी कोटेचा (बम्सी वाले) हैदराबाद
श्री वृद्धिचन्दजी मेघराज जी साकरिया सांडेराव
श्री जुहारमलजी लुम्बाजी साकरिया सांडेराव
श्री ताराचन्द जी भगवानजी साकरिया सांडेराव
श्री कस्तूरचन्दजी प्रतापजी साकरिया सांडेराव

श्री गेहरीलालजी कोठारी, कोठारी ज्वेलर्स बम्बई
श्री मूलचन्दजी जवाहरलालजी बरड़िया मणिनगर अहमदाबाद
श्री धीगड़मलजी मुलतानमलजी कानुंगा अहमदाबाद
श्री हिम्मतमल निहालचन्द दोसी बम्बई
श्री आर० चौधरी बम्बई
श्री चंपालाल जी पारसमल जी चोरडिया मदनगंज
श्री जबरसिंह जी सुमेरसिंह जी बरडिया, रूपनगढ़
श्री कांतिलालजी रतनचन्दजी बांठिया पनवेल महाराष्ट्र
मै० कन्हैयालाल माणकचन्द एण्ड सन्स बड़गाँव पुना
श्रीमती बिदाम बहिन घीसालालजी कोठारी हैदराबाद हस्ते, मिलापचन्द घीसालाल
श्री रणजीतसिंह ओमप्रकाश जैन काला वाली मंडी (हरियाणा)
श्री माणेकचन्दजी धर्मीचन्दजी प्रेमचन्दजी लुणावत हरमाड़ा (अजमेर)
श्री कांतिलाल जीवणलाल अहमदाबाद
श्री शान्तिलाल टी० अजमेरा, अहमदाबाद
श्री चन्दुलाल शिवलाल संघवी अहमदाबाद हस्ते जयन्तीलाल संघवी
श्रीमती पार्वती बहिन शिवलाल तलक्सीभाई अजमेरा ट्रस्ट अहमदाबाद। हस्ते नवनीतलाल मणीलाल अजमेरा
श्री शांतिलाल अमृतलाल बोरा अहमदाबाद
श्री कांतिलाल मनसुखलाल शाह पालियाद वाला अहमदाबाद
श्री वाडिलाल मोहनलाल शाह सायन बम्बई
श्री गिरधरलाल पुरुषोत्तमदास ऐलिसब्रिज अहमदाबाद
श्री जयन्तीलाल भोगीलाल भावसार सरसपुर अहमदाबाद
श्री भोगीलाल एण्ड कम्पनी अहमदाबाद-२ हस्ते दीनुभाई भोगीलाल भावसार
श्री चिमनलाल डोसाभाई पटेल अहमदाबाद
श्री अहमदाबाद स्टील स्टोर अहमदाबाद हस्ते जयन्तीलाल मनसुखलाल लोखण्डवाला
श्री जादवजी मोहनलाल शाह अहमदाबाद

डा० धीरजलाल एन० गोमल्या नवरंगपुरा अहमदाबाद
श्री सज्जनसिंहजी भंवरलालजी कांकरिया पिपाड़ सिटी (वर्तमान अहमदाबाद)
श्री कांतिलाल प्रेमचंद मुंगफली वाला अहमदाबाद
प्लाजा इण्डस्ट्रीज अहमदाबाद हस्ते, धनकुमार भोगीलाल पारीख
स्व० मणीलाल नेमचन्द अजमेरा तथा स्व० कस्तुरी बहिन मणीलाल की स्मृति में। हस्ते चम्पकभाई मणीलाल अजमेरा बम्बई
श्री नगीनदास शिवलाल अहमदाबाद
श्रीमती कांताबेन भंवरलालजी के वर्षीतप के उपलक्ष में हस्ते सखीदास महासुखभाई अहमदाबाद
श्रीमती समरतबेन चतुर्भुज बम्बई हस्ते, कांतिभाई बेकरीवाला
श्री छगनलाल शामजी भाई विराणी राजकोट बम्बई
श्री रसीकलाल हीरालाल झवेरी बम्बई
श्रीमती तरूलता बेन रमेशचन्द दफ्तरी बालकेश्वर बम्बई
श्री ताराचन्द चतुरभाई वोरा बालकेश्वर बम्बई हस्ते, नंदलाल वोरा
श्री चंपकलाल एम० लाखाणी बम्बई
श्री हीरजी सोजपाल कच्छकपाया वाला बम्बई
श्री अमृतलाल सोभागचन्द की स्मृति में हस्ते, गुणवंतलाल राजेन्द्रकुमार बम्बई
श्री दलिचन्दभाई अमृतलाल देसाई अहमदाबाद
श्री एच० के० गांधी मेमोरियल ट्रस्ट घाटकोपर बम्बई हस्ते, वजुभाई गांधी
श्री भाईलाल जादवजी सेठ कोल्हापुर, महाराष्ट्र
श्री जुहारमल दीपचन्द नाहटा सर्राफ केकडी (राज.) हस्ते, धनराज लालचंद नाहटा
श्री नाहरमल जी बागरेचा राबडियाद हस्ते नौरतमल बागरेचा
श्री शीवजी माणेक भेदा तथा उमरबाई शीवजी भेदा की स्मृति में कच्छ बरेजा
अ. सौ. रतनजी केशवजी छेड़ा की स्मृति में हस्ते उमर बाई शिवजी भेदा कच्छ कुंदरोडी
श्री पी. के. गांधी बम्बई
श्री सुखलालजी कोठारी खार बम्बई
श्री नागरदास मोहनलाल, खार, बम्बई

श्री आनन्दीलालजी कटारिया वड़ाला वम्वई
श्री वसन्तलाल के. दोसी विर्लेपारला वम्वई
दी प्रीसीसन टेक्सटाइल इन्जीनियरिंग एण्ड काम्पोन्नटस वम्बई
श्री मेहता इन्द्रजी पुरुपोत्तमदास दादर वम्वई
स्व० भाई अमृतलाल की स्मृति में
श्री पारसमल जी कावडिया सादड़ी मारवाड़ (आरकाट)
श्री हिम्मतमल जी प्रेमचन्द जी साकरिया सांडेराव
श्री कोरसीभाई हीरजीभाई चेरिटेवल ट्रस्ट वम्वई
श्री जयसुखभाई रामजीभाई कांदावाडी वम्वई
श्री चिमनलाल गिरधरलाल कांदावाडी वम्वई
श्री मेघजी भाई थोभण हस्ते मणीलाल वीरचन्द कांदावाडी वम्बई
श्री प्रितमलाल मोहनलाल दफ्तरी कांदावाडी वम्वई
मैसर्स सिलमोहन एण्ड कम्पनी वम्वई (टाइपराइटर हेतु) हस्ते रमणीकलाल धानेरा
श्री नरोतमदास मोहनलाल वम्वई
श्री रत्तीलाल विट्ठलदास गोसलिया माधवनगर, (महा०)
श्री वाडीलाल जेठालाल शाह वाल्केश्वर बम्वई
श्री जैन संस्कृति कला केन्द्र मरीन लाइन वम्वई
आचार्य यशोदेव सुरीश्वरदेव महाराज की प्रेरणा से,
श्री मेघजी खिमजी तथा श्रीमति लक्ष्मी वेन मेघ जी खिमजी वम्बई
श्री हरखराजजी दौलतराजजी धारीवाल हैदरावाद
श्री लादूसिंह जी गांग एडवोकेट शाहपुरा (राजस्थान)
श्री एस० एन० भीकमचन्द जी सुखाणी लाल वाजार सिकन्द्रावाद
श्री ताराचन्द गुलावचन्द वम्वई
श्री गिरधरलाल मंछाचन्द झवेरी धानेरावाला वम्बई
श्री पुखराजजी कावडिया सादड़ी मारवाड़ (वम्बई)
श्रीमति भूरीवाई भंवरलाल जी कोठारी सेमा (मेवाड़) हस्ते सागरमल मदनलाल रमेशचन्द्र, वम्वई
श्री प्रेमराज जी चोरडिया मदनगंज (अजमेर)
श्री शान्तिलाल जी संचेती मदनगंज, (अजमेर)
श्री चुन्नीलाल जी वागरेचा वालाघाट
श्री रसीकलाल हीरालाल झवेरी, वम्वई
श्री सूरजमल कनकमल ; मदनगंज
श्री मांगीलाल जी सोलंकी, सादड़ी वाले पूना
श्री प्रवीण भाई के. मेहता वम्वई
श्री सज्जनराज जी कटारिया सिकन्द्रावाद
श्री वावूलाल जी कांकरिया, हैदरावाद
श्री भरत भाई जे. शाह अहमदावाद
श्री सोहनराज जी चौथमल जी संचेती (सोजत वाले) सुरगाणा





आगम अनुयोग ट्रस्ट :

आगम ज्ञान प्रचार का महान् उपक्रम

☐ आगम अनुयोग ट्रस्ट, (पंजीकृत) अहमदाबाद—जैन आगमों को अनुयोग शैली में वर्गीकृत करके शुद्ध मूल पाठ एवं अनुवाद के साथ प्रकाशित करने की योजना को मूर्त रूप दे रहा है।

☐ कम से कम 500 रुपया देकर इच्छुक व्यक्ति अग्रिम ग्राहक सदस्य बना सकता है।

☐ मान्य सदस्यों को सभी आगम ग्रन्थ निःशुल्क दिये जाते हैं।

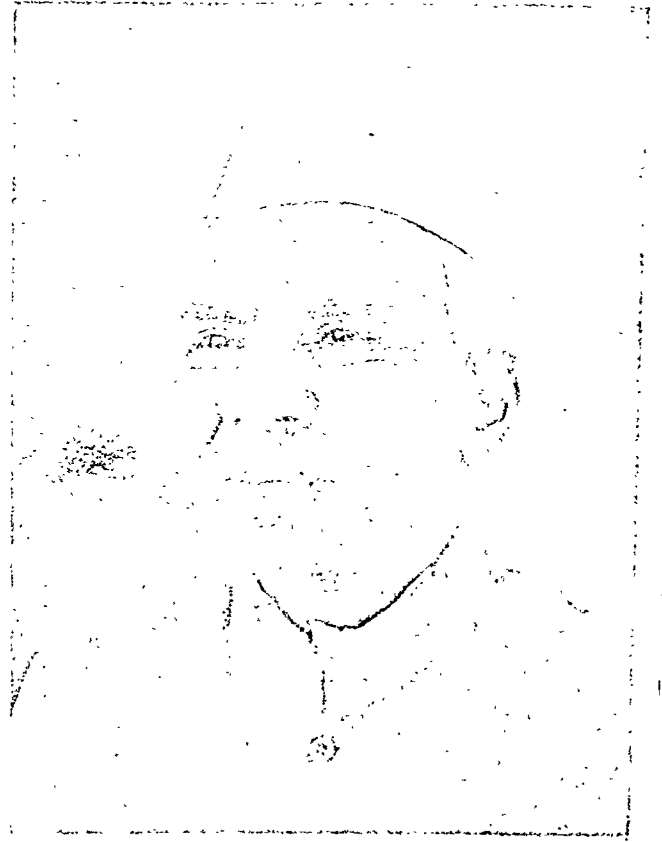
☐ योजनानुसार ये ग्रन्थ मूल पाठ के साथ-हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी—तीन भाषाओं में अलग-अलग अनुवाद के साथ प्रकाशित किये जायेंगे।

☐ अग्रिम सदस्य किसी भी एक भाषा का एक सेट अपनी रुचि के अनुसार सुरक्षित करवा सकते हैं। और जैसे-जैसे प्रकाशित होंगे, उन्हे प्राप्त होते रहेंगे।

सम्पर्क के लिये—

श्री हिम्मतलाल एस. शाह
मन्त्री—आगम अनुयोग ट्रस्ट
अमर निवास, सोहराबजी कम्पाउन्ड,
वाड्ज, अहमदाबाद—13

श्री बलदेवभाई डोसाभाई पटेल, अहमदाबाद



आप मूलतः साणंद (गुजरात) के निवासी हैं। बहुत वर्षों से अहमदाबाद में ही व्यापार व्यवसाय कर रहे हैं। व्यापारी समाज में आपकी महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा है। आपके कॉटन का बहुत बड़ा व्यापार है, आप गुजरात व्यापारी महामण्डल के प्रमुख भी रहे हुए हैं। आप अखिल भारतीय शास्त्रोद्धार समिति के प्रमुख हैं एवं अनेक सामाजिक संस्थाओं के सक्रिय कार्यकर्ता हैं। लोककल्याण के कार्यों में सदा तत्पर रहते हैं। अनेक वर्षों से आप ब्रह्मचर्य व्रत एवं रात्रि में चौविहार आदि का पालन करते हैं। प्रतिदिन सामायिक, प्रति-क्रमण तथा धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय ही आपकी दिनचर्या का प्रमुख अंग है। आप दृढ़ धर्मी, उदार हृदयी श्रावक हैं अतः स्थानीय समाज के अग्रणी माने जाते हैं। कालूपुर बैंक के आप चेयरमेन हैं।

अनुयोग प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री कन्हैयालालजी म० 'कमल' के सम्पर्क में आप सन् 1976 में आये। उनके अनुयोग लेखन कार्य से प्रभावित होकर आपने आगम अनुयोग ट्रस्ट की स्थापना की, इस समय ट्रस्ट के प्रमुख भी आप ही हैं। आपकी धर्मपत्नि श्रीमती रुक्मणी बहिन भी धार्मिक भावना वाली हैं, आपके सुपुत्र बच्चूभाई, बकुलभाई में धर्म के सुसंस्कार दृढ़ हैं।





श्री हिम्मतलाल शामलभाई शाह, अहमदाबाद

आप बहुत ही उत्साही कार्यकर्ता हैं। शामलभाई अमरशी के आप सुपुत्र हैं। आपके घर पर एक विशाल पुस्तकालय है, उसमें अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संग्रह है। शोध निबन्ध लेखकों के लिए यह संग्रह अत्यन्त उपादेय है। आप साधु-साध्वियों की ज्ञान वृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं। प्रकाशनों की प्रगति में आपका महत्वपूर्ण सक्रिय योगदान रहता है। वृद्धावस्था में भी आपका पुरुषार्थ, धर्म एवं स्वाध्याय की रुचि अनुकरणीय है।

अनुयोग प्रकाशन के प्रति आप विशेष प्रयत्नशील हैं।





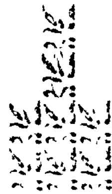
श्री रमणलाल माणेकलाल शाह, अहमदाबाद



आप नवरंगपुरा अहमदाबाद के निवासी हैं। आपके मातुश्री लहरी बहन तथा धर्मपत्नी सुभद्रा बहन बहुत ही धार्मिक भावना वाली श्राविका हैं। आपने स्था० जैन उपाश्रयों में बहुत बड़ा योगदान दिया है। पूज्य गुरुदेव के दीक्षा अर्द्ध शताब्दी के अवसर पर श्री वर्धमान महावीर बाल निकेतन के उद्घाटन पर भी आपने बहुत बड़ा योगदान दिया है। आप आगम अनुयोग ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं। अनेक बार व्यापार के कारण विदेश जाना होता है परन्तु वहाँ भी धर्म के प्रति वही दृढ़ श्रद्धा रहती है। मानव राहत कार्यों में अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग विशेष रूप से करते रहते हैं।

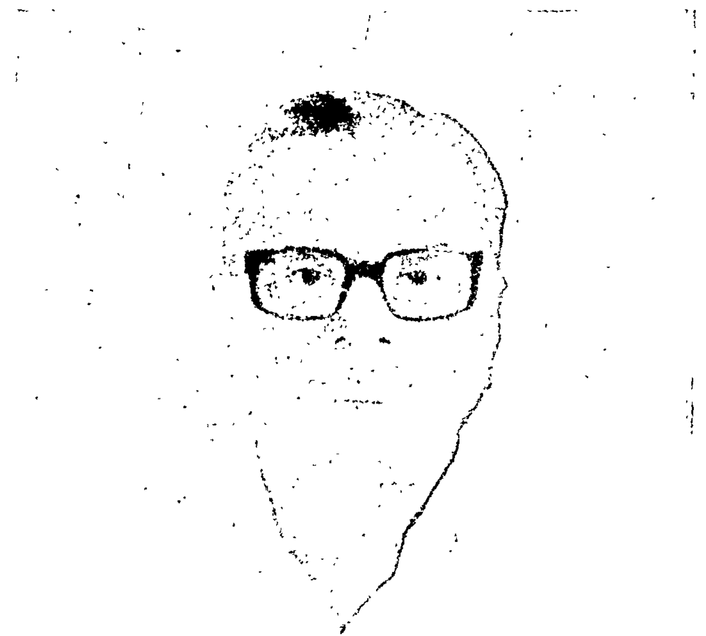


श्री बलवन्तलाल शान्तीलाल शाह; अहमदाबाद



[illegible] में रुई (कॉटन) के प्रतिष्ठित व्यापारी हैं। [illegible] माणेकलाल नाम की बहुत बड़ी फर्म है। [illegible] उदार, गुप्तदानी श्रावक हैं। दरियापुरी [illegible] एवं अनेक संस्थाओं के आप [illegible] है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं।





स्व. तेजराजजी घेवरचंदजी बंब, इचलकरंजी

*

आप मूलतः भादवा मारवाड़ निवासी थे। आप आठ भाई थे; श्री मूलचन्द जी, श्री तेजराज जी, श्री मदनलाल जी, श्री माणकचन्द जी, श्री सोहनलाल जी, श्री मोतीलाल जी, हिराचन्द जी एवं श्री श्रीचन्द जी।

श्री तेजराज जी सा० का तीन वर्ष पूर्व निधन हो गया। आप बहुत ही धर्मनिष्ठ उदार हृदयी श्रावक थे। आप पूज्य गुरुदेव श्री फतेहचन्द जी म० के सुशिष्य अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० "कमल" के अनन्य भक्त थे। आपके सुपुत्र रूपचन्द जी भी धार्मिक भावना वाले उदार हृदय युवक हैं।

आपका वर्तमान में व्यवसायिक क्षेत्र इचलकरंजी है। आप आगम अनुयोग ट्रस्ट के ट्रस्टी थे।

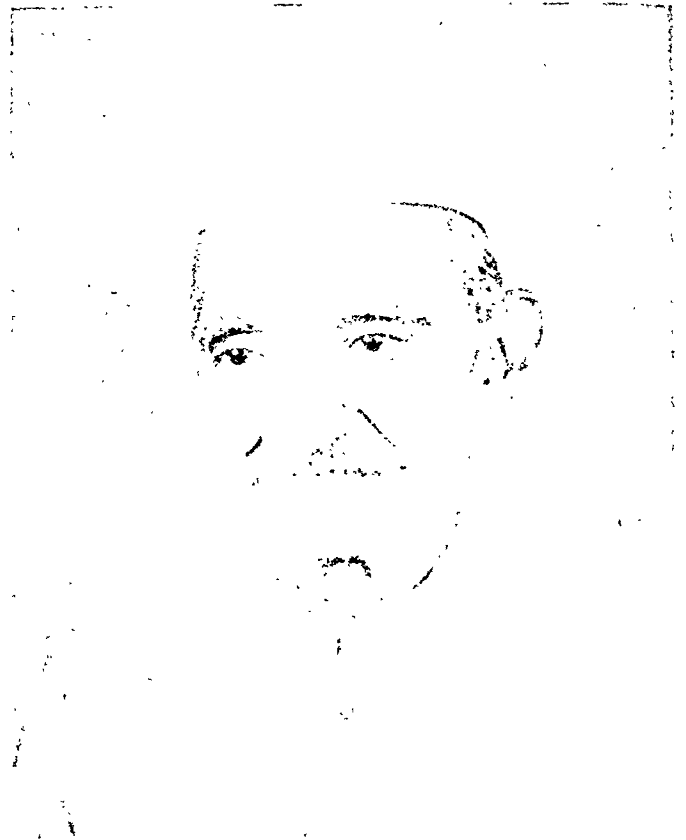


स्व० जगजीवनदास रतनसी बगड़िया

दामनगर



आप दामनगर के प्रतिष्ठित सुश्रावक थे। आगमों के बहुत बड़े अभ्यासी थे। अनेक शास्त्रों का प्रकाशन भी आपने करवाया था। बहुत ही नम्र स्वभाव के थे। साध्वीयों के प्रति आपकी असीम श्रद्धा थी। बोटाद सम्प्रदाय के श्री अमीचन्द जी म० की प्रेरणा से आपके सुपुत्र भोगी भाई के चतुर्थ व्रत के प्रत्याख्यान के उपलक्ष्य में आगम अनुयोग ट्रस्ट को बहुत बड़ा योगदान दिया है।





स्व० श्री राजमल रिखवचंद मेहता
एवं
स्व० श्रीमती मणीबेन राजमल मेहता
पालनपुर

पूज्य मातुश्री तथा पिताश्री;

आपका हमारे ऊपर बहुत उपकार है। क्योंकि संस्कार सिंचन करने वाले एवं जीवन में धर्म रूप पाया डालने वाले माता पिता ही होते हैं। हम आपके बहुत-२ ऋणी हैं।

विनीत—रमणिकलाल राजमल
सौ० सुशीला बहन रमणिकलाल

[श्रीमती सुशीला बहन मेहता—पालनपुर स्थानकवासी समाज की अग्रणी महिला है। वर्तमान में बालकेश्वर संघ की प्रमुख हैं। बहुत ही उदार दानवीर महिला हैं। उपाश्रय आदि के लिए आपका विशेष योगदान रहता है।]



श्री नवनीत भाई चुन्नीलाल पटेल, अहमदाबाद



आपने अनेक स्थानकों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। तपस्वियों का सम्मान करने में आपको विशेष रुचि रही है। पार्श्वनाथ कॉर्पोरेशन के आप मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं। बरवाला संप्रदाय के आचार्य श्री चम्पक मुनिजी म० के अनन्य भक्त हैं। हरसिद्ध कोपरेटिव बेंक के आप चेयरमेन हैं। अपनी जन्मभूमि सुणाव में होस्पिटल के लिए पाँच लाख का महत्वपूर्ण दान दिया है। नवरंगपुरा, नारायणपुरा, नवावाडज आदि अनेक संघों के एवं संस्थाओं के आप ट्रस्टी एवं प्रमुख हैं।

आपके पिता श्री चुन्नीलाल भाई, माता सूरजबेन भी बहुत ही धर्मपरायण हैं। साधु साध्वी जी की वैयावच्च हेतु अग्रणी रहते हैं।

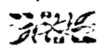
आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं।





स्व. श्री हरिभाई जयचन्द दोशी

विश्व वात्सल्य ट्रस्ट बम्बई





आप बड़े ही सादगीप्रिय तत्वज्ञानी श्रावक थे। धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे। साधु-साध्वियों के प्रति भक्ति एवं दान की भावना विशेष थी।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप भी प्रथम श्रेणी के सहयोगी रहे हैं।





धर्मशीला उदयकंवर बाई मोहनलाल जी बालीया



आप मुकनचन्द जी बालिया के सुपुत्र श्री मोहनलाल जी की धर्मपत्नी हैं। बहुत ही उदार, धर्मशीला श्राविका हैं। बालीया जी साहब मूलतः पाली मारवाड़ के प्रतिष्ठित कुल के हैं। अनेक संस्थाओं के प्राण हैं। वर्धमान महावीर केन्द्र आबू पर्वत पर प्रथम बार आपने बड़े पैमाने पर आयंबिल ओली का भव्य आयोजन करवाया। पाली में निर्मित आचार्य रघुनाथ स्मृति भवन का उद्घाटन आपके द्वारा हुआ। आगम अनुयोग ट्रस्ट के विशेष सहयोगी हैं। पूज्य प्रवर्तक स्व० मरुधरकेसरी जी महाराज एवं अनुयोग प्रवर्तक श्री जी के प्रति विशेष श्रद्धा रखते हैं।



स्व० श्री मेघराज जी बम्ब, हैदराबाद



आप मूलतः पीही मारवाड़ निवासी हैं। हैदराबाद में रह कर आपने बहुत बड़ा व्यापार किया। अनेक सुकृत कार्यों में उदार मन से जीवन पर्यन्त सहयोग करते रहे। शमशेरगंज में धर्म आराधना हेतु एक भवन का निर्माण भी कराया।

आपका स्वास्थ्य कुछ वर्षों से अच्छा नहीं था, कुछ वर्ष पूर्व आपका स्वर्गवास हो गया। आप पूज्य गुरुदेव श्री महाराज के अनन्य भक्त थे, आप अन्तिम समय तक गुरुदेव के चातुर्मास की प्रबल भावना करते रहे। वह भी सफल हुई और गुरुदेव का चातुर्मास वि० सं० २०२८ का हुआ। आपके भाई चांदमल जी भीमराज जी शिवराज जी भी बहुत ही धार्मिक उदार व गुरुभक्त हैं। आप आगम अनुयोग ट्रस्ट के प्रथम श्रेणी के सहयोगी बने।





श्री माणिकलाल एम० बगड़िया



आप मूलतः दामनगर (सौराष्ट्र) निवासी है। वहाँ का बगड़िया परिवार धर्म के प्रति उत्साह शील तथा ज्ञान के प्रति विशेष रुचि रखता है। आप बहुत ही उदारमना, सुश्रावक है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप प्रथम श्रेणी के सक्रिय सदस्य है।

बोटाद सम्प्रदाय के पूज्य श्री अमीचन्द जी म० के भक्त धर्म-अनुरागी श्रावक हैं।

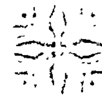


द्वितीय श्रेणी

श्री अजयराज जी मेहता अहमदाबाद,



आप मूलतः बडलू (जोधपुर) के निवासी हैं। आपकी धर्मपत्नी सरोजबेन जी बहुत धार्मिक भावना वाली है। आपका अहमदाबाद में फाइनेन्स का व्यवसाय है। आप बहुत ही सरल [illegible] एवं उदार व्यक्ति हैं। आप अनुयोग ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं।

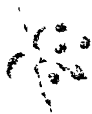


श्री विजयराज जी, वोहरा; अहमदाबाद



आप राणीवाल मारवाड़ के निवासी हैं। श्री [illegible] राम जी के आप सुपुत्र हैं। अहमदाबाद में आपका न्यू क्लॉथ मार्केट में फाइनेन्स का [illegible] व्यापार है। अनुयोग के कार्य हेतु पूज्य गुरुदेव [illegible] विशेष [illegible] है। आप पूज्य [illegible] के [illegible] भक्त हैं। अनुयोग ट्रस्ट के ट्रस्टी [illegible]।

[illegible]



श्रीमती केलीबाई देवराज जी चौधरी

जैतारण, (मारवाड़)

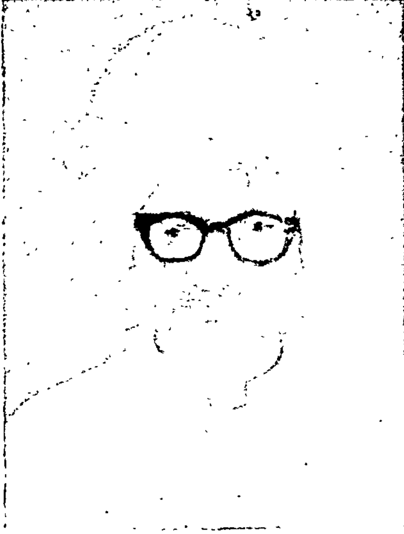
आप बहुत ही धार्मिक दानवीर महिला हैं। आपके सुपु
श्री शान्तिलाल जी एवं श्री धर्मीचन्द जी चौधरी कर्मठ कार्यक
हैं। आपका व्यवसाय तिरुपतिबालाजी में है। आपने अनेक बा
बहुत लम्बे-लम्बे मुनि दर्शनार्थ संघ निकाले हैं स्थान-स्थान पर दा
देकर सम्पत्ति का सदुपयोग कर रहे हैं। आपने आगम अनुयोग ट्र
को भी सहयोग प्रदान किया है।

[illegible] जैन, टोंक (राज०)

[illegible] में हुआ। [illegible]



श्रीमान प्रेमचन्दजी पोमाजी साकरिया (सांडेराव)





आप सांडेराव के प्रमुख श्रावक श्री पोमाजी दलीचन्दजी के सुपुत्र थे। श्री पोमाजी तपस्वी गुरुदेव श्री वख्तावरमल जी म० के अनन्य भक्त थे। आपका भी जीवन बहुत धर्ममय सादगी पूर्ण था। आप सरल हृदय के श्रद्धाशील श्रावक थे। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी थे।



श्रीमान ताराचन्दजी भगवानजी (सांडेराव)

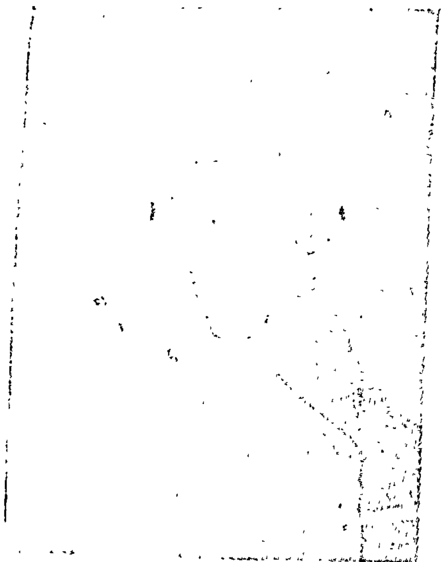


आप धार्मिक आराधना उपासना में विशेष प्रबल भावना रखते हैं। आपका व्यवसाय क्षेत्र बम्बई है : आप शरीर से अस्वस्थ होते हुए भी सदा प्रसन्न चित्त रहते हैं। सहिष्णुता सज्जनता आपके स्वभाव के सहज गुण है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी हैं।







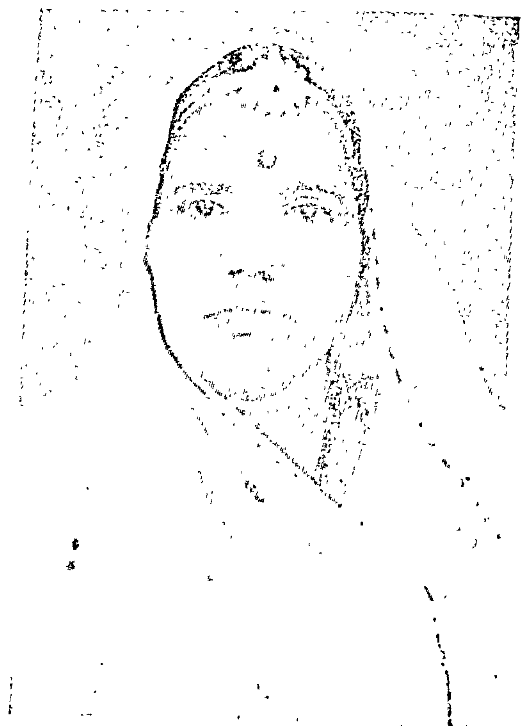


धर्मशीला श्रीमती हंजाबाई प्रेमचन्द जी साकरिया

आपका जीवन बहुत ही धर्ममय त्याग मय है। आपके सुपुत्र श्री साकलचन्दजी डा० घीमुलाल जी आदि सभी परिवार की पूज्य गुरुदेव के प्रति गहरी श्रद्धा एवं भक्ति है। साकरिया ब्रादर्स नाम से बम्बई (सायन) में आपके परिवार का मेडिकल व्यवसाय है।

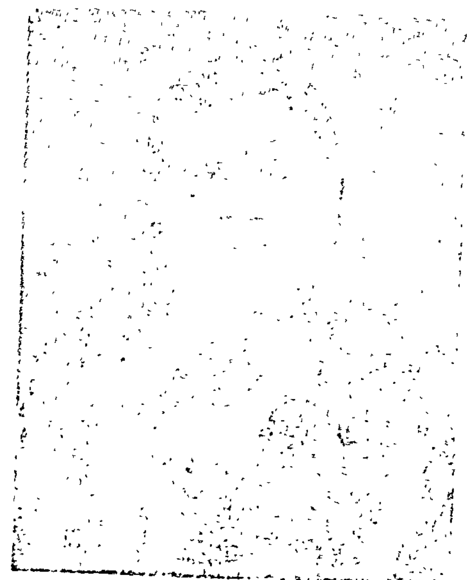
आगम अनुयोग ट्रस्ट को आपका सक्रिय सहयोग मिला है।

★



श्रीमती गैहरीलालजी कोठारी [बम्बई]

श्रीमान गैहरी लाल जी कोठारी मेवाड मंत्र शिरोमणि प्रवर्तक श्री अम्बालालजी म० के प्रति विशेष भक्ति-भाव रखने वाले धर्मप्रेमी उदार हृदय सज्जन है। आप समाज के सभी कार्यों में तन-मन-धन से आगे रहकर सेवा करते हैं। बड़े ही हँसमुख, सरल स्वभावी और दानी सज्जन है। आपकी धर्मपत्नी सुश्राविका भी आपकी भांति दान-शील-तप-आदि धर्माचरण में विशेष रुचि रखती है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के प्रकाशन कार्य में आपका सहयोग प्राप्त हुआ है। आप मूलतः सेमा (मेवाड़) निवासी है। वर्तमान में कोठारी ज्वेलर्स, नाम से सायन (बम्बई) में आपका व्यवसाय है।



श्रीमती पारस देवी मोहन लाल जी पारख, हैदराबाद

श्रीमान मोहनलाल जी मूलतः लाम्बिया (मारवाड़) निवासी है। आप बहुत ही उदार हृदय के धर्म प्रेमी सज्जन है। सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में सदा सहयोग प्रदान करते रहते हैं। हैदराबाद में आपका फाइनेन्स का व्यवसाय ही श्रीमती पारसदेवी पीही निवासी श्रीमान घीसुलाल जी कोठारी की बहन है। साधु सन्तों के प्रति विशेष भक्तिभाव है।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी है।

卐

श्री रणजीतसिंह जी जैन

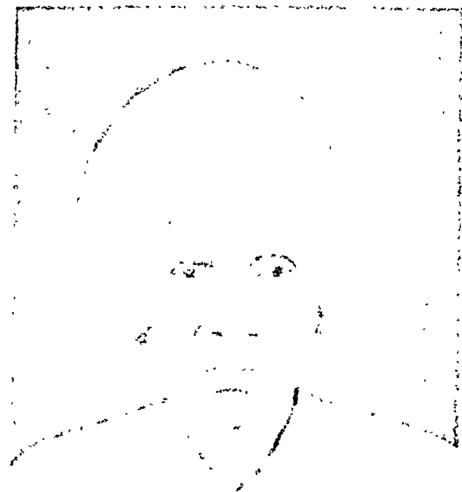


आप प्रसिद्ध श्रावक श्री लक्खूराम जी जैन मन्डी कालावाली (जि. सिरसा-हरियाणा) के सुपुत्र हैं। स्वामी श्री छगन लाल जी महाराज के आप परम भक्त हैं। तपस्वी श्री रोशन मुनि जी म० के प्रति भी आपकी विशेष भक्ति है। सामाजिक धार्मिक कार्यों में आप उदारतापूर्वक सहयोग देते हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सदस्य हैं।

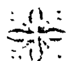




श्रीमान जुहारमलजी लुम्बाजी साकरिया (सांडेराव)



आपका परिवार बहुत ही धर्मनिष्ठ तथा उदार मना है। आपकी भांति आपकी धर्मपत्नी सौ० पानीबाई भी बहुत ही धर्मशीला, सेवापरायण सुश्राविका है। आपके सुपुत्र श्री चम्पालाल जी, फुटरमल जी हस्तीमल जी, और सागरमल जी और रमेशचन्द जी सभी भाई धर्मप्रेमी व गुरुदेव श्री के परम भक्त हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट ; श्री वर्द्धमान महावीर केन्द्र आबू पर्वत आदि संस्थाओं में आपका सक्रिय सहयोग मिलता रहता है।



श्रीमान कँवरलालजी बेताला
(गोहाटी)



आप मूलतः डेह (नागौर) निवासी हैं। आपके पिताश्री सेठ श्री पूनमचन्द जी एवं माता श्रीमती राजबाई बहुत ही धार्मिक विचारों के उदार हृदय थे। आप भी सन्तसेवा, समाज सेवा, शिक्षा, चिकित्सा, धर्मस्थान-निर्माण एवं साहित्य प्रकाशन आदि विभिन्न क्षेत्रों में उदारतापूर्वक सहयोग प्रदान करते रहते हैं। स्व० युवाचार्य श्री के आप अनन्य भक्त हैं। ज्ञानचन्द धर्मचन्द बेताला, के नाम से गौहाटी में आपका मोटर फाइनेन्स व्यवसाय है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी हैं।

श्री वर्धमान महावीर बाल निकेतन आबू पर्वत के ट्रस्टी हैं।



श्री हरीश सी. जैन (बम्बई)

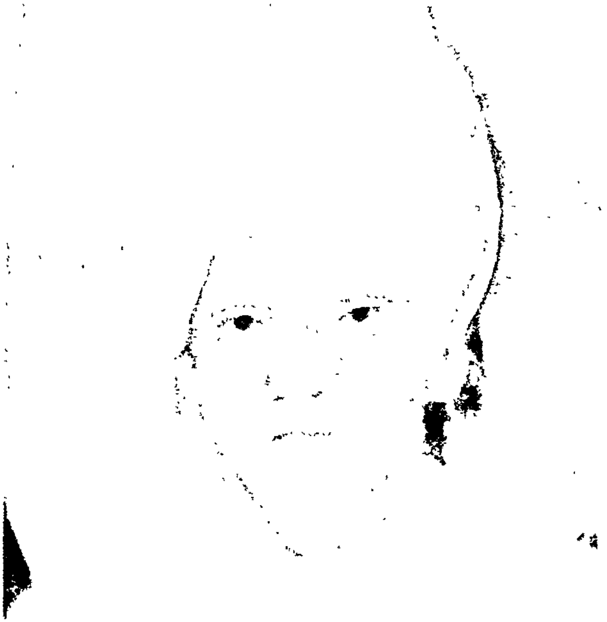
आपका जन्म पंजाब में हुआ, तथा बम्बई आकर आपने विज्ञापन व्यवसाय प्रारम्भ किया। कठिन परिश्रम तथा गहरी सूझबूझ, मृदु व्यवहार के कारण आप प्रगति के शिखर पर चढ़ते गये। आज आपका संस्थान जैसन्स (इन्डिया लि०) सम्पूर्ण विश्व के विज्ञापन व्यवसाय में प्रमुख स्थान रखता है। आप सामाजिक सेवा कार्यों में विशेष रुचि रखते हैं। साधु सन्तों के प्रति आपकी गहरी श्रद्धा भावना है। पंजाब जैन भ्रातृ सभा खार के आप अध्यक्ष हैं। तथा अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध है।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी है।



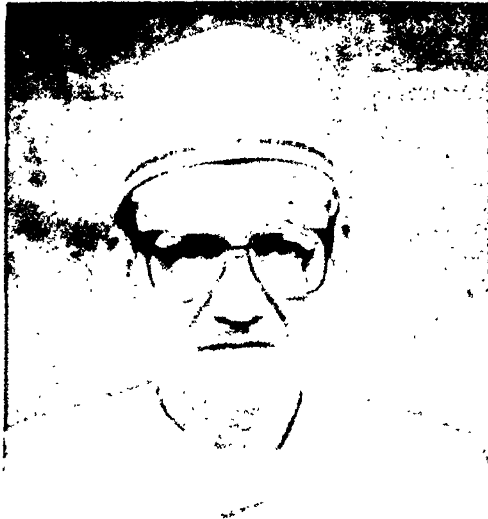






स्व० शा० कस्तूरचन्दजी प्रतापजी साकरिया (सांडेराव)

[illegible]



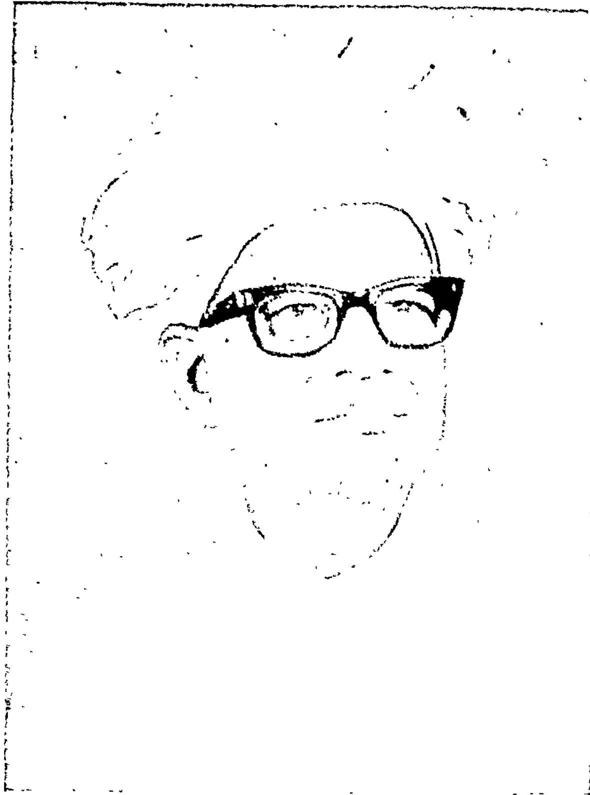
श्री वृद्धिचन्द जी मेघराज जी (सांडेराव)

श्री स्थानकवासी जैन श्रावक संघ सांडेराव एवं वर्धमान महावीर केन्द्र आबू पर्वत के आप प्रमुख कार्यकर्ता है। श्री मूलचन्द जी, शोभमलजी, उमेदमलजी एवं आप चार भाइयों में सबसे बड़े है। पूज्य गुरुदेव के अनन्य भक्त है।



श्रीमान धनराजजी नाहटा, (केकड़ी) (राज०)

आप श्री दीपचन्द जी नाहटा के सुपुत्र हैं। चित्रकला, कविता, नाटक कला, व्यायाम आदि में आपकी विशेष रुचि है। साथ ही धार्मिक ज्ञान, तत्वचर्चा तथा वाद-विवाद में भी कुशल है। स्थानकवासी जैन संघ केकड़ी के मन्त्री है। पूज्य स्वामीदास जी म० की परम्परा के प्रति अत्यन्त निष्ठा रखते हुए गुरुदेव मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० 'कमल' के अनन्य भक्त है। श्रमण संघ के प्रति आपकी गहरी निष्ठा है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के सहयोगी है।



श्रीमान धींगड़मल जी कानुगा

(गढ़ सिवाना) अहमदाबाद

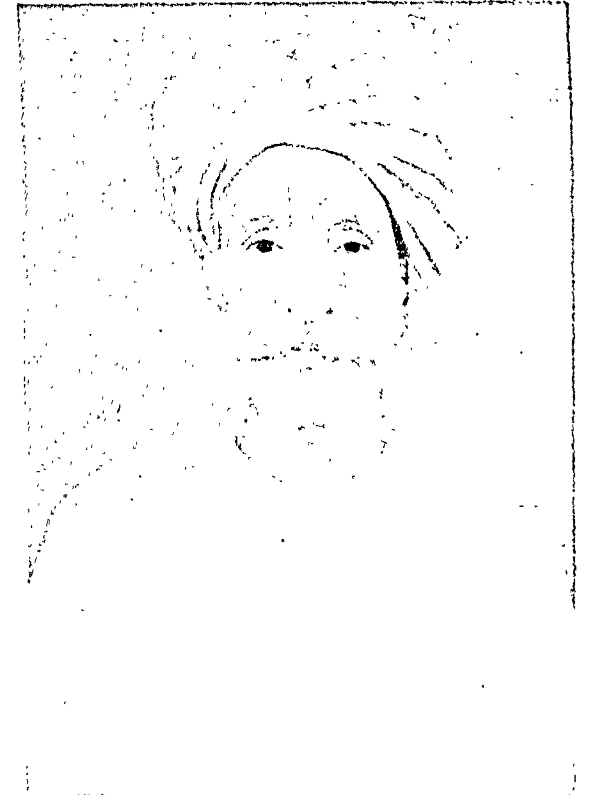
आप दानवीर धर्म निष्ठ सुश्रावक है। आपकी धर्म पत्नी पानीबाई भी धर्मशीला श्राविका है। धार्मिक कार्यों में लक्ष्मी का सदुपयोग करते रहते हैं।



श्रीमान सज्जनराज जी कांकरिया

(पीपाड़ सिटी)

आप बहुत ही उत्साही युवक हैं। आपका अहमदाबाद में फाइनेन्स का व्यवसाय है।



स्व० श्रीमान अमरचंद जी लुणावत

(हरमाड़ा) अजमेर (राज०)

आप पूज्य गुरुदेव श्री फतेहचन्द जी महाराज के अनन्य भक्त थे। श्री माणकचन्द जी, श्री धर्मीचन्द जी, श्री प्रेमचन्द जी लुणावत आपके सुपुत्र हैं।

गणितानुयोग : प्रस्तावना

१. गणितानुयोग—एक परिचय

मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' द्वारा संकलित यह संकलन ग्रन्थ है जिसमें श्वेताम्बर मान्य जैन आगमों में वर्णित भूगोल एवं खगोल सम्बन्धी ऐसे समग्र सूत्रों का संकलन किया गया है जिनमें गणित का स्वाभाविक रूप से उपयोग हुआ है। इस ग्रन्थ में उक्त संकलन का वर्गीकरण लोक संरचना के माध्यम से किया गया है जिसमें खगोल, ज्योतिष एवं भूगोल विषयक सामग्री वर्गीकृत हो जाती है। लोक संरचना में विभिन्न प्रकार के लोकों का अलग-अलग विवरण चुना गया है जिसमें लोक (सामान्य), द्रव्य-लोक, क्षेत्रलोक, अधोलोक, तिर्यक्लोक, (मध्य लोक), ऊर्ध्व लोक काल लोक, अलोक एवं लोकालोक विषय लिये गये हैं।

गणितानुयोग का शब्दार्थ गणित सम्बन्धी पृच्छा अथवा गणित सम्बन्धी सूत्रों का विस्तार से अर्थ प्रतिपादन होता है। साहित्य का द्रव्यात्मक एवं भावात्मक स्वरूप होता है।

वैदिक साहित्य के एक अंग उपनिषत् में जो उपदेश **गौतम** का नाम लेकर सुनाया गया है[1] वह **वर्द्धमान महावीर** के प्रधान शिष्य इन्द्रभूति **गौतम** का स्मरण दिलाता है जिन्हें श्वे० जैनागमों में गौतम नाम से ही सम्बोधित करके सुनाये गये हैं।

इसी शैली में अर्द्धमागधी के सूत्रों को उद्धृत कर एवं उनके ठीक सम्मुख हिन्दी अनुवाद देते हुए यह संकलन शोध छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी बन पड़ा है।

उपलब्ध अर्धमागधी जैनागम ११ अंगों, १२ उपांगों, **१० प्रकीर्णकों, २ चूलिका सूत्रों** में निहित है। आगमों पर टीका साहित्य भी उपलब्ध है, किन्तु इस संकलन में केवल [illegible] के मूल सूत्रों का संकलन इस प्रकार किया गया है कि [illegible] प्राचीनतम सामग्री का लोक [illegible] इस प्रकार

इस ग्रन्थ का नाम गणितानुयोग युक्त लोक प्रज्ञप्ति [illegible] है। साथ ही मूल सूत्र का उसी पृष्ठ पर अर्द्ध भाग में और हिन्दी अनुवाद का उसी पृष्ठ पर शेष अर्द्ध भाग में आमने-सामने दिये जाने से इस नवीन संकलन का महत्व अनेक भाव से अत्यधिक बढ़ गया है, जो न केवल देशी वरन् विदेशी छात्रों के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगा।

अब हम इस विशिष्ट रूप से संकलित सामग्री के [illegible] रूप को निखारने का निम्नलिखित रूप से प्रयास करेंगे। विवरण सूत्र की संख्यानुसार होगा।

लोक सम्बन्धी गणितीय विवरण

सूत्र १, पृ० [illegible] :

अनन्त शब्द दार्शनिक ही नहीं वरन् अनन्त [illegible] का प्रतीक है। अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख के लिए इसका उपयोग सिद्ध भगवानों के लिए हुआ है। यहाँ अनन्त ज्ञान की **अविभागी प्रतिच्छेद राशि** [illegible]

सूत्र [illegible]

[illegible]

---

१ हन्त तेऽदम् प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य, आत्मा भवति गौतम ॥ [illegible]
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते [illegible]
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति [illegible]

"असंख्य" संख्यामान से अवतरित होता है।

"कोटाकोटि" **दाशमिक पद्धति** से अवतरित है।

"योजन" खगोल विषयक माप योजना से सम्बन्धित है।

इन शब्दों के लिए जै. सि० को०, जै० ल० एवं रा० अ० को० देखिये।

सूत्र २४, पृ० ११

इस सूत्र में "वाससहस्साउए' अर्थात् १००० वर्ष की आयु वाला शब्द महत्वपूर्ण है, जो गणित विधि में दाशमिक संकेतना के रूप में विशेष प्रयुक्त हुआ है।

सूत्र २५, पृ० १२

लोक का **आयाम-मध्य** रत्नप्रभा पृथ्वी के **अवकाशान्तर** का **असंख्यातवां भाग** उल्लंघन करने पर पाया जाता है।

यहाँ आयाम-मध्य शब्द ज्यामितीय है और सान्त आयाम (लम्बाई) के मध्यभाग की कल्पना कर दो समान भागों में बाँटने का निर्देश है। अवकाशान्तर भी ज्यामिति से दूरी के अन्तर को निर्देशित करता है। इसी प्रकार **असंख्यातवें भाग** की कल्पना भी अद्वितीय है जो गणित में सीमा निकालने में प्रयुक्त होती है। देखिये जै० सि० को० भाग १, पृ० २१४ इत्यादि।

सूत्र २६, पृ. १२

लोक का **"सम भाग"** और **"संक्षिप्त भाग"** लोकस्वरूप की संकल्पनाएँ हैं। इसमें **ज्यामिति** अभिप्रेत हैं।

सूत्र २७, पृ. १२

लोक का **"वक्रभाग"** भी विग्रह कांडक अर्थात् ज्यामितीय संकल्पना है। श्वेताम्बर-परम्परा की मूल मान्यता के आधार पर इसके विचार हेतु देखिये वि० ८०, पृ० ३०२ आदि। इनका **तात्पर्य शोध** का विषय है।

सूत्र २८, पृ० १३

नीचे से विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर से ऊर्ध्व मृदंग के **ज्यामितीय आकार** का लोक निर्दिष्ट है।

सूत्र २९, पृ० १३

आठ प्रकार की लोकस्थिति खगोल विज्ञान से सम्बन्ध रखती है।

सूत्र ३०, पृ० १४

दस प्रकार की लोकस्थिति जीव और पुद्‌गल की गमनशीलता सम्बन्धी पर्यायों से सम्बन्ध रखती है। उनकी सीमाएँ निर्धारित करती है। अतः यह **गति एवं स्थिति विज्ञान** से सम्बन्धित है।

सूत्र ३१, पृ० १५

यहाँ **खगोल विज्ञान** विषयक पृच्छा है। काल के अनादि और अनन्त से सम्बन्ध रखने वाली लोक संरचना से अभिप्रेत है। यहाँ ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य शब्दों के अभिप्राय **खगोल विज्ञान** सम्बन्धी भिन्न-भिन्न हैं। यहां काल के दो बड़े युग अवसर्पिणी काल एवं उत्सर्पिणी काल शब्द **युग विज्ञान** से सम्बन्धित हैं। भारत में **युग विज्ञान** द्वारा ग्रहादि भ्रमण का ज्योतिष में उपयोग आर्यभट्ट (लगभग ई० पांचवीं शती) ने किया। इसके पूर्व भी न केवल वैदिक ग्रन्थों में अपितु जैन ग्रन्थों में भी युग विभिन्न प्रकार से संरचित किये गये। इस पर विशेष शोध फ्रांस के रोजर बिलर्ड ने कम्प्यूटर द्वारा की है।

सूत्र ३२, पृ० १६

लोक सान्त है या अनन्त है का समाधान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव प्रमाणादि के सापेक्ष उत्तर देकर किया गया है। विभिन्न प्रमाण प्रस्तुत करते हुए निर्देश है कि द्रव्य की अपेक्षा लोक सान्त, क्षेत्र की अपेक्षा लोक सान्त, काल की अपेक्षा यह लोक अनन्त और भाव की अपेक्षा से लोक अनन्त है। इस प्रकार यहाँ गणितीय सापेक्षता द्वारा समाधान निहित है।

द्रव्य लोक सम्बन्धी गणितीय विवरण

सूत्र ४१, पृ० १८

लोक में दो प्रकार के अस्तित्व रूप वस्तुएँ अथवा पदार्थ उल्लिखित हैं जो खगोल विज्ञान एवं खगोल संरचना विषयक हैं। अगले दो सूत्रों में भी इसी प्रकार खगोल विषयक विज्ञान एवं संरचना बतलाई गई है।

सूत्र ५०, पृ० २०

लोक विषयक द्रव्यों को और उनकी संख्या को बतलाकर खगोल संरचना रूप कहा है।

सूत्र ५१, पृ० २०

दश दिशाओं के भेद और स्वरूप ज्यामिति गणित में प्रयुक्त होते हैं। आगे के सूत्र में इनके नाम भी दिये गये हैं।

सूत्र ५३, पृ० २१

इसमें **इन्द्रा** एक दिशा अनेक प्रदेश वाली **सीधी** रेखा का विवरण है। लोक की अपेक्षा वह असंख्य प्रदेश वाले और अलोक की अपेक्षा अनन्त प्रदेश वाले हैं। सीधी रेखा में प्रदेश स्थापित कर (अथवा परमाणु-रूप प्रदेश स्थापित कर) गणितीय माप संरचित होता है। आदि में दो प्रदेश होने से इसकी दिशा निर्दिष्ट हो जाती

क्षेत्रलोक सम्बन्धी गणितीय विवरण

त्रसू ६६, पृ० ३४

तीन प्रकार के लोक क्रमशः अधोलोक, तिर्यक् लोक, ऊर्ध्व लोक ज्यामितीय शब्द हैं जो पूर्वानुपूर्वी एवं पश्चानुपूर्वी से कथित हैं। अन्य **गणितीय** शब्द गच्छ, अन्योन्याभ्याम, न्यून रहित हैं। अनानुपूर्वी, एकोत्तरिक शब्द भी गणितीय अभिप्राय युक्त हैं।

अधोलोक सम्बन्धी गणितीय विवरण

सूत्र ७८, पृ० ३७

इस सूत्र में दाशमिक संकेतना में पृथ्वियों की मोटाई बतलाई गयी है। यहाँ योजन का भी उल्लेख है। बाहल्य शब्द **गणितीय** है।

सूत्र ७९, पृ० ३८

यहाँ **ज्यामितीय शब्द** आयाम, विष्कम्भ तथा परिधि हैं। एक **विशेष शब्द** असंख्य सहस्र योजन है। सहस्र के साथ असंख्य का प्रयोग अलग हटकर है। असंख्य योजन सहस्र लिखा गया है।

सूत्र ८२, पृ. ३८

यहाँ **गणितीय शब्द विस्तार**, **बाहल्य**, **तुल्य**, **विशेष अधिक**, **संख्येयगुण**, **संख्येयगुणहीन** है।

सूत्र ८३, पृ. ३९

गणितीय शब्द संस्थान, झल्लरि हैं।

सूत्र ८४, पृ. ३९

यहाँ सिय (स्यात् या कथंचित्) शब्द दार्शनिक हैं।

सूत्र ८६, पृ. ४०

यहाँ घनोदधि, घनवात, तनुवात **खगोल संरचना** से संबन्धित हैं।

सूत्र ८९, पृ. ४१

इस सूत्र में अनेक शब्द **गणितीय** हैं। क्षेत्र-छेद, परिमण्डल, वृत्त, त्र्यस्र, चतुरस्र, आयत, अन्योन्य, बद्ध, अवगाढ़, प्रतिबद्ध ग्रथित छिद्यमान शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

सूत्र ८८, पृ. ४२

अवाधा अन्तर शब्द **गणितीय** है।

सूत्र १०६, पृ. ४८

यहाँ कोस शब्द का उपयोग हुआ है जो **गणितीय** है।

सूत्र १०६, पृ. ४९

वलय, वलयाकार, संपरिधि **गणितीय** शब्द हैं।

सूत्र ११६ पृ. ५२

यहाँ अस्सी उत्तर शत सहस्र, तथा असंख्य योजन शत सहस्र का उपयोग **दाशमिक संकेतना** में हुआ है। इसी प्रकार बत्तीस उत्तर योजन शत सहस्र तथा बावन उत्तर योजन शत सहस्र **दाशमिक संकेतना में** हैं। इत्यादि।

सूत्र ११७, पृ. ५४

बहुमध्य देशभाग **ज्यामितीय** शब्द है।

सूत्र १२०, पृ. ५५

यहाँ **आगमिक विशेष अर्थ सूचक शब्द** अचरम, अचरम अन्त प्रदेश हैं।

सूत्र १२१, पृ० ५६

यहाँ **अल्पबहुत्व** गणित का उपयोग है जो अचरमादि पदों से सम्बन्धित है।

सूत्र १२३, पृ. ५७

यहाँ द्रव्य और काल की अपेक्षा से निरूपण है, तथा यहाँ नवीन शब्द पर्यव है। अनन्तात्मक गणितीय प्रतिबोध से इसे विभिन्न गुण विषय की पर्यायों से संबंधित किया है। गुरु लघु तथा अगुरुलघु पर्यायों का **अनन्तत्व** बतलाया गया है।

सूत्र १२५, पृ. ५८

यहाँ **वैज्ञानिक** शब्द **गुरुलघु** एवं **अगुरुलघु** हैं। इनका उपयोग अवकाश अंतर में हुआ है जो महत्वपूर्ण है।

सूत्र १२७, पृ० ६०

यहाँ **समुद्घात** शब्द कर्मविज्ञान रूप है।

सूत्र १३७ से १४६, पृ. ६५, ६६

इनमें **दाशमिक संकेतना** का प्रयोग करते हुए संख्याएँ निदर्शित हैं।

सूत्र १४७, पृ. ६६

यहाँ भी **दाशमिक संकेतना** प्रयोग है ही, साथ ही टिप्पणी में आवलिका शब्द का उपयोग हुआ है। आवलिकाप्रविष्ट और आवलिकाबाह्य शब्द विचारणीय हैं।

सूत्र १४९, पृ. ७०

यहाँ संख्येय, असंख्येय, विस्तार, आयाम, विष्कम्भ, तथा **दाशमिक संकेतना का** उपयोग है। **नवीन** शब्द धनुप, अंगुल हैं। ऐसा ही उपयोग सूत्र १५१, पृ. ७१ पर हुआ है।

योजन से कुछ न्यून वतलाई गई है। यह अनुमानतः है। कारण, π का मान $\sqrt{१०}$ लेने पर

१०२२ × ३·१६२२७ = ३२३१·८३६९४ आता है।

अतः यह मान ३२३२ से कुछ न्यून है।

इसी प्रकार राजधानी एक लाख योजन लम्बी चौड़ी है। उसकी परिधि भी तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन, तीन कोस, एकसौ अट्ठावीस धनुष, तेरह अंगुल तथा आधे अंगुल से कुछ अधिक कही गई हैं, जो सूत्र १५१ के अनुसार ही है। यहाँ भी $\pi = \sqrt{१०}$ अनुमानतः ३·१६२२७ लेने पर उक्त मान स्पष्ट हो जाते हैं।

इसी प्रकार जिस राजधानी का आयाम विष्कम्भ चौरासी हजार योजन का है, उसकी परिधि दो लाख पैंसठ हजार छः सौ वत्तीस योजन से कुछ अधिक वतलाई गई है। यहाँ भी $\pi = \sqrt{१०}$ = ३·१६२२७ लेने पर ८४००० × ३·१६२२७

= २६५६३०·६८

यहाँ ज्ञात नहीं है कि **उपर्युक्त मान कैसे प्राप्त किया गया।** वहाँ वत्तीस के स्थान में तीस होना चाहिए था।

सूत्र १६७, पृ० ६६

यहाँ गणितीय शब्द **सागरोपम** ध्यान देने योग्य है। **उपमा** प्रमाण की यह **काल-समयों** की राशि है जो यहाँ स्थिति निर्दशित कर रही है। देखिये वि० प्र० पृ० २५२, श्वेताम्वर परम्परा तथा दिगम्वर परम्परा में इसके मान दिये गये हैं। इसका संवंध **पल्योपम काल** राशि से है।

सूत्र २२६, पृ० ११२

इसमें भी लोक के असंख्यातवें भाग का कथन है।

सूत्र २३१, पृ० ११३

उपरोक्त सूत्र की भाँति यहाँ भी लोक के असंख्यातवें भाग का कथन है। इसी प्रकार सूत्र २३४, २३५, २३८, २३९, २४१-२४५ में इसी प्रकार के कथन हैं।

तिर्यक् लोक (मध्य लोक) सम्बन्धी गणितीय विवरण

सूत्र २, पृ० १२१

तिर्यक् लोक का क्षेत्रलोक **असंख्येय प्रकार** का कहा गया है। यहाँ अभिप्राय जम्बूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक के क्षेत्रलोक का उदाहरण दिया गया है।

सूत्र ३, पृ० ११२

यहाँ ज्यामितीय रूप से तिर्यक् लोक के क्षेत्रलोक का **संस्थान** झालर कहा गया है।

सूत्र ४, पृ० १२२

तिर्यक् लोक का मध्यभाग **आठ प्रदेशों** का **रुचक** प्रदेश कहा गया है। ज्यामितीय रूप से दस दिशाएं इसी से निकलती हैं।

सूत्र ५, पृ० १२२-१२३

तिर्यक् लोक में **असंख्य** द्वीप समुद्र, **वृत्त संस्थान वाले** जम्बूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक वतलाये गये हैं। अगले-अगले वृत्त संस्थान पिछले-पिछले **वृत्त संस्थानों** से **द्विगुणित विस्तार** वाले हैं। यहाँ गुणश्रेणी वनती है जहाँ गुणकार २ होता है। जम्बूद्वीप का विस्तार इसका मुख या प्रथम पद आदि वनता है। यह **गुणश्रेणी** असंख्य पद वाली या गच्छ वाली होती है। जम्बूद्वीप के आयाम-विष्कम्भ को एक लाख योजन लेकर उसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन, तीन कोस, अट्ठावीस धनुष, तेरह अंगुल और आधे अंगुल से कुछ अधिक वतलाई गई है। यहां भी π का मान $\sqrt{१०}$ अथवा अनुमानरूपेण ३·१६२२७ का उपयोग किया गया है। इस प्रकार गणना १००००० × ३·१६२२७ को लेकर विभिन्न **दूरी** इकाइयों को यहाँ प्राप्त किया गया है। पूर्वोल्लिखित डॉ० आर० सी० गुप्ता का लेख देखिये।

यहाँ ज्यामिति रूप से जम्बूद्वीप की स्थिति द्वीप-समुद्रों के भीतर सवसे क्षुद्र रूप में, विभिन्न प्रकार की उपमा लिए **वृत्त संस्थान** रूप में है।

सूत्र ६, पृ० १२४

जम्बूद्वीप की स्थिति द्वीप-समुद्रों के सर्वअभ्यंतर वतलाई गई है। पुनः उसे सवसे छोटा, तथा पूर्वोक्त **आयाम-विष्कम्भ** एवं **परिधि वाला** वतलाया गया है।

सूत्र ७, पृ० १२५

जम्बूद्वीप की गहराई एक हजार योजन तथा ऊंचाई कुछ अधिक निन्यानवे हजार योजन है, इस प्रकार कुल परिमाण कुछ अधिक एक लाख योजन वतलाया गया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो गहराई का सम्बन्ध **भूगोल** से हो और ऊंचाई का सम्बन्ध ज्योतिष या खगोल से स्थापित किया गया हो। यदि **भूगोल** सम्बन्धी नाप के लिये १ योजन को ४ कोस लिया जाये और १ कोस को २ मील लिया जाये तो गहराई ८००० मील प्राप्त होती है जो आज की पृथ्वी का **आनुमानिक** रूप से व्यास प्रतीत होता है।

तिलोय पण्णत्ति, भाग १, महा० ४, सू० १७८१ पृ० ३७५ पर मन्दर महापर्वत को एक हजार योजन गहरा, निन्यानवे हजार योजन ऊँचा वतलाया गया है। ज्योतिष एवं खगोल से मेरु पर्वत का सम्बन्ध ग्रहगमनादि से है ही। किन्तु **ज्योतिष** एवं **खगोल**

अथवा वाण का मान यह ले लेने पर **धनुष** का प्रमाण निम्न-लिखित सूत्र से निकालते हैं—

वाण से युक्त व्यास के वर्ग में से व्यास के वर्ग को घटाकर शेष को दुगुणा करने से जो प्राप्त होता है वह धनुष का वर्ग होता है और उसका वर्गमूल **धनुष** का प्रमाण होता है। यथा

वाण $=२३८\frac{३}{१९}$ योजन, व्यास $=१००००००$ योजन

अतः धनुष $=$

$$=\sqrt{२\left(१००००००+२३८\frac{३}{१९}\right)^2-(१००००००)^2}$$

$$=९७६६\frac{३}{१९}\text{ योजन}$$

नोट—प्रकृत *गणितायुयोग* में इसका मान इससे किंचित विशेष अधिक कहा गया है।

$$\text{वाण } २३८\frac{३}{१९}=\left(५२६\frac{६}{१९}-५०\right)\div २ \text{ योजन होता है।}$$

इसी प्रकार जीवा निकालने का सूत्र है—

वाण से रहित अर्द्धविस्तार का वर्ग करके उसे विस्तार के अर्द्धभाग के वर्ग में से घटा देने पर अवशिष्ट राशि को चार से गुणा करके प्राप्त राशि का वर्गमूल निकालने पर **जीवा का प्रमाण** प्राप्त होता है—

यथा : विष्कंभ १०००००० योजन,

वाण $२३८\frac{३}{१९}=\frac{४५२५}{१९}$ योजन

∴ जीवा

$$=\sqrt{४\left\{\left(\frac{१०००००}{२}\right)^2-\left(\frac{१०००००}{२}-\frac{४५२५}{१९}\right)^2\right\}}$$

$=९७४८\frac{१२}{१९}$ योजन दक्षिणार्ध (दक्षिण विजयार्ध) की जीवा प्राप्त होती है।

इसी प्रकार यदि जीवा दी गई हो तो वाण प्राप्त करने हेतु जीवा के वर्ग के चतुर्थ भाग को अर्द्ध विस्तार के वर्ग में से घटा कर शेष का वर्गमूल निकालने पर जो प्राप्त हो उसे विस्तार के अर्द्धभाग में से कम कर देने पर शेष **वाण का प्रमाण** प्राप्त होता है।

यथा :

जीवा $=९७४८\frac{१२}{१९}$ योजन $=\frac{१८५२२४}{१९}$ योजन;

विस्तार १०००००० योजन

$$\therefore \text{ वाण}=\frac{१०००००}{२}$$

$$-\sqrt{\left(\frac{१०००००}{२}\right)^2-\left\{\left(\frac{१८५२२४}{१९}\right)^2\times\frac{१}{४}\right\}}$$

$$=२३८\frac{३}{१९}\text{ योजन}$$

देखिए ति० प० भाग १, महा० ४, गाथा १८०-१८२.

सूत्र २५९, पृ० १९८

यहाँ प्रमाण $१८९२\frac{७}{१९}+\frac{१}{२}$ योजन अर्थात् $१८९२\frac{३३}{३८}$ योजन है।

ति० प० भाग १/४ गाथा १९४ में यह प्रमाण $१८९२\frac{१५}{३८}$ दिया गया है।

सूत्र २६०, पृ० १९९

यहाँ प्रमाण $१४४७१\frac{६}{१९}$ योजन से कुछ कम वतलाया गया है।

ति० प० भाग १/४, गाथा १९१ में यह प्रमाण $१४४७१\frac{५}{१९}$ वतलाया गया है।

सूत्र २६१, पृ० १९९

यहाँ प्रमाण $१४५२८\frac{११}{१९}$ योजन वतलाया गया है।

ति० प० भाग १/४, गाथा १९२ में भी यही प्रमाण वतलाया गया है।

सूत्र २६६, पृ० २००

यहाँ प्रमाण $३३६८४\frac{४}{१९}$ योजन दिया गया है।

ति० प० भाग १/४ गाथा १७७५ में भी यही मान दिया गया है।

सूत्र २६७, पृ० २००—

—यहाँ प्रमाण ३३७६७ $\frac{३}{१९}$ योजन दिया गया है।

ति० प० भाग १/८ में इसका प्रमाण नहीं दिया गया है।

सूत्र २६६, पृ० २००—

यहाँ प्रमाण १४८११३ $\frac{१६}{१९}$ योजन से कुछ अधिक बतलाया गया है।

ति० प० भाग १/८ में यह मान १४८११३, अंश $\frac{३}{२}$ दिया गया है।

सूत्र २६३, पृ० २०६—

यहाँ प्रमाण २६०४ $\frac{५}{१९}$ योजन दिया गया है।

सूत्र २६४, पृ० २०६—

यहाँ प्रमाण ६७४४ $\frac{३}{१९}$ योजन दिया गया है।

ति० प० भाग १/८ में यह मान भी ६७४४ $\frac{३}{१९}$ योजन दिया गया है।

सूत्र २६५, २६६, पृ० २१०

यहाँ हैमवत क्षेत्र की जीवा एवं धनुपृष्ठ के मान क्रमशः ३७६७४ $\frac{१६}{१९}$ एवं ३८७४० $\frac{१०}{१९}$ योजन हैं जो ति० प० भाग १/४ गाथा १६६६ एवं १७०० में मिलते हैं। [illegible] विशेष दृष्टव्य [illegible] है।

सूत्र [illegible] पृ० २१०

[illegible]

सूत्र [illegible] पृ० [illegible]

[illegible]

सूत्र [illegible] पृ० २११—

यहाँ [illegible] १२३६ $\frac{६}{१९}$ $\frac{१}{२}$ योजन [illegible] है। [illegible] ति० प० भाग १/४ [illegible] में [illegible] दिया गया है। [illegible]

$१२३६१ + \frac{६}{१९} + \frac{१}{२ \times १९}$ [illegible] $१२३६१ + \frac{६}{१९} + \frac{१}{२ \times १९}$ [illegible] है।

[illegible]

[illegible]

सूत्र [illegible] पृ० २११

[illegible]

सूत्र [illegible] पृ० २११

[illegible]

सूत्र ३११, पृ० २१३—

उसका धनुपृष्ठ ६०४१८$\frac{१२}{१९}$ योजन दिया गया है जो उपरोक्त सूत्र द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यह **दाशमिक संकेतना** में है।

सूत्र ३१६, ३१७, ३१८, पृ० २१५—

यहाँ के प्रमाण उपरोक्त गाथाओं सूत्र ३०९, ३१०, ३११ जैसे ही हैं।

सूत्र ३१९, पृ० २१५-२१६—

यहाँ धनुष शब्द का उपयोग उत्तरकुरु के मनुष्यों की ऊँचाई में हुआ है। यहाँ पल्योपम के संख्यातवें भाग से कुछ कम **तीन पल्योपम** का आयु में उपयोग हुआ है।

सूत्र ३३२, पृ० २२३—

यहाँ **दाशमिक संकेतना** में १६५९२$\frac{२}{१९}$ योजन का कथन है।

सूत्र ३३६, पृ० २२६—

क्षुद्र हिमवान पर्वत १०० योजन ऊँचा, २५ योजन गहरा १०५२$\frac{१२}{१९}$ योजन चौड़ा, पार्श्व भुजा ५३५०$+\frac{१५}{१९}+\frac{१}{२\times१९}$ अथवा ५३५०$\frac{३१}{३८}$योजन है। इसकी उत्तर जीवा २४९३२$\frac{१}{२}$ योजन से कुछ कम कही गयी है। यही मान ति० प० भाग १/४ गाथा १६२४, १६२७ में दिये गये हैं किन्तु गाथा १६२६ में उत्तर जीवा २४९३२$\frac{४}{१९}$ दी गयी है।

नोट— ५३५०$\frac{१५}{१९}$ में $\frac{१}{२}$ जोड़ने के लिए कहा गया है, किन्तु यदि $\frac{१५}{१९}$ में १९ भागों के भाग का आधा $\frac{१}{३८}$ जोड़ा जाये तभी $\frac{३१}{३८}$ प्राप्त हाता है जो ति० प० की गाथा से मिलते हैं अन्यथा नहीं।

उसी का **धनुपृष्ठ** दक्षिण में है जो २५२३०$\frac{४}{१९}$ योजन है जो ति० प० भाग १/४ गाथा १६२६ में इसी रूप में दिया गया है।

सूत्र ३३८, पृ० २२७-२२८—

महाहिमवान् की ऊँचाई २०० योजन, विस्तार ४२१०$\frac{१०}{१९}$ अथवा $\frac{८००००}{१९}$ योजन दिया गया है जो ति० प० भाग १/४ गाथा १७१७ में दिया गया है।

इसी प्रकार बाहु ९२७६ $\frac{९}{१९}+\frac{१}{२}$ दी गई है। ति० प० भाग १/४ गाथा १७२१ में इसका मान ९२७६$\frac{१९}{३८}$दिया गया है।

पूर्वोक्त अर्थ लेना उचित होगा अर्थात् ९२७६$+\frac{९}{१९}+\frac{१}{२}$ $=$९२७६ $\frac{३७}{३८}$ होगा।

इस प्रकार यह पुनः शोध का विषय है।

यदि यहाँ $\frac{१}{२}$ के स्थान में १९ भागों के भाग करते हैं तो $\frac{१}{३८}$ योजन होता है इस प्रकार ९/१९+१/३८= १९/३८ हो जाता है।

इसकी लम्बाई (जीवा) ५३९३१$\frac{६}{१९}$ से कुछ अधिक योजन दी गयी है। ति० प० भाग १/४, गाथा १७१९ इसका मान ५३९३१$\frac{६}{१९}$ योजन दिया गया है। यह भी **शोध** का विषय है।

इसका **धनुपृष्ठ** ५७२९३ $\frac{१०}{१९}$ योजन दिया गया है जो ति० प० भाग १/४ गाथा १७२० से मिलता है।

सूत्र ३४०, पृ० २२९—

निषध पर्वत ४०० योजन ऊँचा और ४०० योजन गहरा दिया गया है।

इसकी चौड़ाई १६८४२$\frac{२}{१९}$ योजन है जो ति० प० भाग १/४ गाथा १७५० में इसी के समान दी गई है।

यहाँ सभी **मान दाशमिक संकेतना** में दिये गये हैं।

सूत्र ३९०, पृ० २४५—

इस सूत्र में दाशमिक संकेतना के अतिरिक्त **भिन्नों** का भी निपरूण संकेत दिया गया है। यथा **"बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उद्धं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं"** **भिन्नरूप** ६२½ तथा ३१¼ का निरूपण करता है।

सूत्र ३९२, पृ० २४६—

इस सूत्र में यमक की चौड़ाई १२००० योजन और परिधि ३७९४८ योजन से किंचित अधिक बतलाई गई है।

सूत्रानुसार, **परिधि** निकालने हेतु

$$१२००० \times \sqrt{१०} = १२००० \times ३\cdot१६२२७$$

$$\therefore \text{ परिधि } = ३७९४७\cdot२४ \text{ योजन}$$

होती है। अतः ग्रन्थकार ने इसे ३७९४८ योजन से कुछ अधिक बतलाया है।

यह मान **दाशमिक संकेतना में** है, तथा प्रासादों की ऊँचाई **"एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च उद्धं उच्चत्तेणं"** अर्थात् ३१¼ योजन तथा आयाम विष्कम्भ **"साइरेगाइं अद्ध सोलस जोयणाइं"** अर्थात् १५½ योजन बतलाई गई है।

इसी प्रकार अन्य माप भी भिन्न निरूपित करने की इसी शैली के साथ बतलाये गये हैं।

सूत्र ३९३, पृ० २५०—

जो पर्वत १०० योजन चौड़ा है। उसकी **परिधि** ३१६ योजन से अधिक बतलाई गई है। यहाँ १०० × ३·१६२२७ द्वारा ही यह मान $\pi = \sqrt{१०}$ या ३·१६२२७ लेकर निकाला गया है।

इसी प्रकार अन्य प्रमाण दृष्टव्य हैं।

सूत्र ३९७, पृ० २५२—

यहाँ वैताढ्य पर्वत की बाहु ४८८ $\frac{१६}{१९}$ तथा अद्धभाग दी गयी है। इसे ४८८ $\frac{३३}{३८}$ रूप में ति० प० १/४ गाथा १८६, १९० में प्राप्त किया गया है। यहाँ $४८८ + \frac{१६}{१९} + \frac{१}{३८} = ४८८\frac{३३}{३८}$ होता है। यहाँ **१** योजन के **१९** भाग और उन १९ भाग में से एक भाग का भी आधा भाग आशय प्रतीत होता है, इस प्रकार एक **योजन के उन्नीसिया** भाग का **आधा भाग** यहाँ अभिप्रेत प्रतीत होता है।

इसी प्रकार उसका आयाम १०७२० $\frac{१२}{१९}$ योजन दिया गया है, जो ति० प० भाग १/४, गाथा १८५ में विजयार्द्ध की जीवा १०७२०$\frac{११}{१९}$ योजन दी गयी है। उसका **धनुपृष्ठ** १०७४३$\frac{१५}{१९}$ दिया गया है जो इसी प्रमाण में ति० प० भाग १/४ गाथा १८६ में दिया गया है। इस प्रकार यह सूत्र **शोध** का विषय प्रस्तुत करता है।

सूत्र ४००, पृ० २५३

यहाँ **पल्योपम स्थिति** का उल्लेख है।

सूत्र ४०२, पृ० २५५—

यहाँ वृत्त वैताढ्य पर्वत, **शब्दापाती** नाम का १००० योजन आयाम विष्कम्भ वाला है जिसकी **परिधि** ३१६२ योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला बतलाया गया है। स्पष्ट है कि १००० × ३·१६२२७ = ३१६२·२७ परिधि का मान $\sqrt{१०}$ को अनुमानतः ३·१६२२७ लेकर व्यवहृत करने से उक्त मान आता है। शेष संख्याएँ **दाशमिक संकेतना में** हैं।

सूत्र ४०३, पृ० २५५—

यहाँ **पल्योपम स्थिति** का उल्लेख है।

सूत्र ४०८, पृ० २५९—

यहाँ मूल में चौड़ाई ८ योजन है, परिधि ८ × ३·१६२२७ = २५·२९८१६ योजन होगी जो यहाँ २५ योजन से कुछ अधिक बतलाई गई है। इसी प्रकार अन्य प्रमाण दृष्टव्य हैं।

सूत्र ४१३, पृ० २६३—

यहाँ **अश्व** स्कन्ध के सदृश **अर्धचन्द्र** के **संस्थान** का उल्लेख है जो ज्यामितीय है। **"बहुसमतुल्ला—जाव—परिणाहेणं"** गणितीय उल्लेख है। इसी प्रकार अगला सूत्र ४१४ पृ० २६३ दृष्टव्य है।

सूत्र ४१७, पृ० २६४—

यहाँ संख्याएँ **दाशमिक संकेतना** में दी गई हैं।

सूत्र ४२९, पृ० २६७—

यहाँ गंधमादन वक्षस्कार पर्वत का आयाम ३०२०९ $\frac{६}{१९}$ योजन दिया गया है, अन्त में इसका माप चौड़ाई में **अंगुल के असंख्यातवाँ** भाग बतलाया गया है। माप दाशमिक संकेतना में

'**सहस्स**' शब्द का उपयोग सूत्र ५५६, ५५७, ५५८, ५५९ में भी हुआ है।

सूत्र ५७१ पृ० ३१९—

इस में १६०५ ५/१९ को "**सोलस पंचुत्तरे जोअण सए पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स**" रूप में उल्लिखित किया गया है। यहाँ एक हजार छः सौ पाँच न कहकर सोलह सौ आदि कहा है। इसी प्रकार सूत्र ५८० दृष्टव्य है। किन्तु सूत्र ५८८ पृ० ३२२ में ७४२१ १/१९ योजन को "**सत्त जोयण सहस्साइं चत्तारि अ एकवीसे जोअण सए एकं च एगूण वीसइभागं जोअणस्स** रूप में उल्लिखित किया गया है। इस प्रकार **दो विधियाँ** महत्वपूर्ण हैं।

सूत्र ५९६, पृ० ३२५—

चौदह हजार को "**चोद्दस सलिला सहस्सेहिं**" वतलाया है। इसी प्रकार की **दाशमिक संकेतना** हेतु सूत्र ५९७, ५९८, ६००, ६०३, ६०४ दृष्टव्य हैं।

सूत्र ६०९ पृ० ३३१—

अनेक प्रकार के वृक्षों का वर्णन सूत्र ६१८ पृ० ३२६ तक दिया गया है।

सूत्र ६२५ पृ० ३३८ —

यहाँ चतुर्थद्वीप का **आयाम विष्कम्भ** ६०० योजन और उसकी परिधि १८९० योजन वतलाई गई है। π का मान √१० या ३·१६२२७ लेने पर परिधि ६०० × ३·१६२२७ अथवा, १८९७·३६२ प्राप्त होती है। इसी प्रकार अन्य की परिधि **दृष्टव्य** है।

सूत्र ६३०, पृ० ३४०—

यहाँ **दाशमिक संकेतना** दृष्टव्य है। इसी प्रकार सूत्र ६३२, ६३४, ६३५, दृष्टव्य है। लवण समुद्र की चौड़ाई २००००० योजन होने से वृत्त का सम्पूर्ण विष्कम्भ ५००००० योजन हो जाता है अतएव परिधि √१० मान π का लेकर १५८११३५ प्राप्त होगी। किन्तु यहाँ १५८११३९ योजन से कुछ अधिक कही गई है।

सूत्र ६३८, पृ० ३४१—

यहाँ विचारणीय तथ्य है, "**पंचानवे पंचानवे प्रदेश** जाने पर एक एक **प्रदेश की** गहराई वृद्धि कही गई है।" इसी प्रकार, "पंचानवे पंचानवे बालाग्र जाने पर एक एक **बालाग्र** गहराई की वृद्धि कही गई है। इस प्रकार अन्य अनेक दमों से सम्बन्धित इकाइयाँ, **लीक्षा**, **यव**, **यवमध्य**, **अंगुल**, **वितस्ति**, **रत्नि**, **कुक्षि**, **धनुष**, **गाउ**, **सौ योजन**, पर तत्सम्बन्धी वृद्धि कही गयी है जो विचारणीय है। इसमें '**यावत्**' शब्द का भी उपयोग किया गया है। **प्रश्न है** कि ९५ इकाइयाँ जाकर ही वृद्धि का वर्णन क्यों किया गया है।

सूत्र ६३९, पृ० ३४१-३४२—

यहाँ शिखा वृद्धि के विषय में वतलाया गया है कि लवण समुद्र के दोनों ओर पंचानवे पंचानवे प्रदेश जाने पर **सोलह प्रदेशों की शिखा वृद्धि** होती है।

सूत्र ६४०, पृ० ३४२—

यहाँ भी पंचानवे हजार योजन का उल्लेख है। **दाशमिक संकेतना** में संख्याएँ दी गयी हैं। इसी प्रकार सूत्र ६४१, ६४२, ६४४, ६४९, ६५१ में है। एक-एक प्रदेश की श्रेणी से वढ़ते-वढ़ते मध्य में **योजन शत सहस्र** विष्कम्भ कहा गया है। इसी प्रकार मुख का मूल दस हजार योजन चौड़ा वतलाया गया है।

यहाँ भी **पल्योपम स्थिति** का उल्लेख है। सूत्र ६४३ में **अर्द्ध पल्योपम** का उल्लेख है।

सूत्र ६४६ पृ० ३४४—

यहाँ '**मुहूर्त**' का उपयोग हुआ है। **तीस मुहूर्त एक अहोरात्रि** रूप है।

सूत्र ६६८, पृ० ३५१—

यहाँ संख्याएँ **दाशमिक संकेतना** में हैं। इसी प्रकार सूत्र ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४ में **दाशमिक संकेतना** का उपयोग है।

सूत्र ६७५, पृ० ३५२—

यहाँ लवण समुद्र की चौड़ाई २ लाख योजन होने से वृत्त का विषम्भ ५ लाख योजन होता है। परिधि भी √१० = ३·१६२२७ लेने पर १५८११३५ योजन प्राप्त होती है। किन्तु सूत्र ६३० से अलग यहाँ कथन है कि परिधि १५८११३९ योजन से कुछ कम है। शेष संख्याएँ भी दाशमिक संकेतना में हैं। **पल्योपम स्थिति** का कथन है। सूत्र ६८६, ६८८, ६८९, ६९१, ६९२, ६९४, ६९५ में **दाशमिक संकेतना में संख्याएं** हैं तथा सूत्र ६८७ में **पल्योपम स्थिति** का उल्लेख है।

सूत्र ७०१, पृ० ३६१—

यहाँ धातकीखंडद्वीप की चौड़ाई ४००००० योजन होने से परिधि का मान √१० = ३·१६२२७ लेने पर कुल व्यास १३००००० में गुणा करने पर ४११०९५१ योजन प्राप्त होते हैं। किन्तु ग्रन्थ में ४११०९६१ योजन से कुछ कम की परिधि वतलाई गई है।

सूत्र ६३१, पृ० ४३३—

जम्बूद्वीप में ताराओं की संख्या [१३३९५०] $(१०)^{14}$ दी गई है। यही संख्या ति० प० भाग १/७ गाथा ४६४ में उल्लिखित है। यह **दाशमिक संकेतना** में है।

सूत्र ६३२, पृ० ४३४—

लवण समुद्र में (२६७९००) $(१०)^{14}$ ताराओं की संख्या दी गयी है जो ति० प० भाग १/७ गाथा ५६६ में इसी रूप में दी गई है। यहाँ भी **दाशमिक संकेतना** है। ग्रह ३५२ दोनों में समान हैं। नक्षत्र ११२ हैं जो दोनों में समान हैं। (अनुवाद पुनः देखें)

सूत्र ६३३-६३६ पृ० ४३५-४३८—

द्वीप समुद्र	ताराओं की संख्या
धातकीखण्डद्वीप	(८०३७००) $(१०)^{14}$
कालोद समुद्र	(२८१२९५०) $(१०)^{14}$
पुष्करवरद्वीप	(६६४४४००) $(१०)^{14}$
पुष्करार्ध द्वीप (आभ्यन्तर)	(४८२२२००) $(१०)^{14}$

उपरोक्त प्रमाण ति० प० भाग १/७ गाथा ६००; ६०१, ६०२ में (पुष्करवरद्वीप छोड़ कर) इसी रूप में वर्णित हैं।

सूत्र ६३७, पृ० ४३८—

पुष्करोद समुद्र में संख्येय चंद्र, संख्येय सूर्य, संख्येय ग्रह, संख्येय नक्षत्र, संख्येय कोटाकोटि तारागण रूप में संख्याएँ वर्णित हैं। **दाशमिक संकेतना** का उपयोग तारागण की संख्या के साथ किया गया है। यह **ऐतिहासिक रूप** से महत्वपूर्ण है।

सूत्र ६३८, पृ० ४३९—

मनुष्य क्षेत्र में १३२ चन्द्र, १३२ सूर्य, ११६१६ महाग्रह, ३६९६ नक्षत्र, (८८४०७००) $(१०)^{14}$ तारागण बतलाये गये हैं। ति० प० भाग **१**/७, गाथा ६०६, ६०७ एवं **६०८** में ये ही संख्याएँ दी गयी हैं। ये सभी **दाशमिक संकेतना** में दी गयी हैं।

सूत्र ६४०, पृ० ४४०—

यहाँ रुचक द्वीप में असंख्य चन्द्र बतलाये गये हैं। असंख्य कोटाकोटि तारागण बतलाये गये हैं। यहाँ भी **दाशमिक संकेतना** में साथ-साथ असंख्य का उपयोग **इतिहास की दृष्टि** से महत्वपूर्ण है।

सूत्र ६४२, पृ० ४४१—

ज्योतिष्कों का **अल्पबहुत्व** (Comparability) इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहाँ **तुल्य, अल्प, संख्येय** गणितीय शब्द हैं। यथा चन्द्र और सूर्य तुल्य हैं। सबसे अल्प नक्षत्र हैं। ग्रह संख्येय गुण हैं और तारा संख्येयगुण हैं। ये क्रमानुसार **अल्पबहुत्व** की शैली है।

सूत्र ६४३, पृ० ४४१—

मन्दर पर्वत से ११२१ योजन के अन्तर पर **ज्योतिष्क गति** बतलायी गई है। यह महत्वपूर्ण तथ्य है। यहाँ से ज्योतिषियों का गमन प्रारम्भ होता है।

यह शोध का विषय है।

सूत्र ६४४, पृ० ४४२—

लोकान्त से **११११** योजन के अन्तर पर ज्योतिष्क कहे गये हैं। यह भी शोध का विषय है।

सूत्र ६४५, पृ० ४४२—

ज्योतिषियों का **भूभाग से ऊँचाई** का प्रमाण निम्नलिखित रूप में दिया गया है जो महत्वपूर्ण है। इस ऊँचाई का अर्थ रहस्यमय है क्योंकि योजन भिन्न योजनाओं के अनुसार विभिन्न प्रकार के अंगुलों पर आधारित, भूगोल, ज्योतिष तथा खगोल प्रमाणों के लिए योजनाबद्ध रूप में बांधे गये होंगे। अतएव यह **गहन शोध** का विषय है। फिर भी इस पर शर्मा, त्रिश्क और जैन ने शोध लेखादि लिखे हैं जो रहस्य के एक अंश को प्रकाशित करते हैं।

ज्योतिषी का नाम	**रत्नप्रभा पृथ्वी के अतिसम भूभाग से ऊँचाई**
तारा (नीचे का)	७९० योजन
चन्द्र	८८० योजन
सूर्य	८०० योजन
तारा (ऊपर का)	९०० योजन

ति० प०, भाग १/७, के अनुसार ज्योतिषी निम्नलिखित रूप में दिये गये हैं।

ज्योतिषी का नाम	**चित्रा पृथ्वी से ऊपर माप**	**गाथा**
चन्द्र	८८० योजन	३६
सूर्य	८०० योजन	६५
ग्रह	८८८ योजन (बारह योजन मात्र बाहल्य)	८२
बुध	८८८ योजन	८३
शुक्र	८९१ योजन	८९
गुरु	८९४ योजन	९३
मंगल	८९७ योजन	९६
शनि	९०० योजन	९९
अवशिष्ट ग्रह	(बुध और शनि के अन्तराल ८८८ से ९०० योजन के बीच में)	१०१
नक्षत्र	८८४ योजन	१०४
तारा	७९० योजन (११० योजन मात्र बाहल्य में)	१०८

सूत्र ९५०, पृ० ४५६—

चन्द्रमा एक मुहूर्त में मण्डल के १०९८०० भाग में से परिधि के १८३० भाग **गति** करता है।

सूर्य एक मुहूर्त में मण्डल के १०९८०० भागों में से परिधि के १८३५ भाग **गति** करता है।

ति० प० भाग १/७ में इन भागों को **गयणखंड** (गगनखंड) कहा गया है।

सूत्र ९५१, पृ० ४५६-४५७—

गति **अल्पबहुत्व** में शीघ्र, अल्प का उपयोग हुआ है।

सूत्र ९५२, पृ० ४५७—

ऋद्धि **अल्पबहुत्व** में महा और अल्प का उपयोग हुआ है।

सूत्र ९५३, पृ० ४५७—

यहाँ चन्द्र सूर्यादि के समूह अलग-अलग समूहों के लिए पिटक शब्द का भी प्रयोग हुआ है। प्राकृत में इसे **पिडय** या **पिडग** कहा है। पिटक का शब्दार्थ सन्दूक, पिटारी आदि हो सकता है। प्रत्येक पिटक में दो चन्द्र, दो सूर्य, १७६ ग्रह, ५६ नक्षत्र हैं। इस प्रकार के ६६ पिटक ग्रहों तथा नक्षत्रों के मनुष्य लोक में हैं। **पिटक** शब्द महत्वपूर्ण है।

सूत्र ९५४, पृ० ४५७—

यहाँ **पंक्तियां** शब्द महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक पंक्ति में ६६ चन्द्र-सूर्य हैं। ऐसी ४ पंक्तियां मनुष्य लोक में हैं।

प्रत्येक **पंक्ति** में ६६ ग्रह हैं। ग्रहों की १७६ **पंक्तियां** मनुष्य लोक में हैं।

प्रत्येक **पंक्ति** में ६६ नक्षत्र हैं। नक्षत्रों की ५६ पंक्तियाँ हैं।

सूत्र ९५५, पृ० ४५८—

चन्द्र, सूर्य, ग्रहों के **सभी मण्डल** (वीथियां) **अनवस्थित** हैं वे मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं। यह "**अनवस्थित**" अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

नक्षत्र और ताराओं के सभी मण्डल **अवस्थित** हैं और वे भी मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं।

सूत्र ९५६, पृ० ४५८—

यहाँ महत्वपूर्ण तथ्य है कि चन्द्र सूर्य केवल अपने-अपने मण्डलों—आभ्यन्तर, बाह्य तथा तिर्यक् क्षेत्र में मण्डल संक्रमण करते हैं, किन्तु मण्डलों में **ऊर्ध्व** और **अधो** क्षेत्र में **संक्रमण** नहीं करते हैं। अतः ये इस प्रकार Orbital planes हैं। आधुनिक संदर्भ में तुलनीय है।

सूत्र ९५७, पृ० ४५८—

यहाँ मनुष्य क्षेत्र में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे अनवस्थित तथा **मनुष्य क्षेत्र** के बाहर वे अवस्थित (गति-संचरण हीन) बताये गये हैं। यह **शोध** का विषय है तथा आधुनिक संदर्भ में उपयुक्त है।

सूत्र ९५८, पृ० ४५८-४५९—

द्वीप समुद्रों के ज्योतिष्कों की संख्या निकालने हेतु यहाँ प्रारम्भिक विधि दी गई है। ति० प० भाग १/७ पृ० ७६४ आदि में सपरिवार चन्द्रों को लाने का विधान दृष्टव्य है। वहाँ **रज्जु के अर्द्धच्छेद** एवं अन्य गणना का अवलम्बन लिया गया है।

सूत्र ९६०, पृ० ४५९—

चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रों के योग के सम्बन्ध में **नियम** बतलाये गये हैं। इस सम्बन्ध में चन्द्र सूर्य का ग्रह-नक्षत्रों से अथवा विलोमरूपेण पूर्व-पश्चिम से या दक्षिण-उत्तर से **योगयुक्ति** होती है। नक्षत्र मण्डल के कुल विभागों की संख्या १०९८०० है।

सूत्र ९६१, पृ० ४६०—

एक मुहूर्त में नक्षत्र सूर्य की अपेक्षा ५ भाग मण्डल अधिक, तथा चन्द्रमा से ६७ भाग अधिक गमन करते हैं।

नक्षत्र—१८३५ भाग मण्डल के
सूर्य—१८३० " "
चन्द्र—१७६८ " "

सूत्र ९६२, पृ० ४६०—

सूर्यप्रज्ञप्ति का दसवां पाहुड़ का दूसरा अन्तर पाहुड़ देखिये।

चन्द्र एवं नक्षत्र योग में यहाँ अभिजित नक्षत्र से **चन्द्रमा का योगकाल** निकालने हेतु ज्ञात है कि अभिजित नक्षत्र गगनमण्डल के ६३० भागों में व्याप्त है। चन्द्र से नक्षत्र गति ६७ मण्डल भाग अधिक होने से इस **सापेक्ष राशि** द्वारा ६३० को भाजित करने पर $\frac{६३०}{६७}$ अथवा ९ मुहूर्त एवं $\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त योग काल प्राप्त हो जाता है। इनको **विलोम रूपेण** भी सिद्ध किया जा सकता है।

इसी प्रकार श्रवण नक्षत्र का **गगन मण्डल** फैलाव २०१० भाग में है। अतएव चन्द्र से इस नक्षत्र का योगकाल $\frac{२०१०}{६७}$ अथवा ३० मुहूर्त पर्यन्त रहेगा।

सूत्र ६५०, पृ० ४५६—

चन्द्रमा एक मुहूर्त में मण्डल के १०९८०० भाग में से परिधि के १८३० भाग **गति** करता है।

सूर्य एक मुहूर्त में मण्डल के १०९८०० भागों में से परिधि के १८३५ भाग **गति** करता है।

ति० प० भाग १/७ में इन भागों को **गयणखंड** (गगनखंड) कहा गया है।

सूत्र ६५१, पृ० ४५६-४५७—

गति अल्पबहुत्व में शीघ्र, अल्प का उपयोग हुआ है।

सूत्र ६५२, पृ० ४५७—

ऋद्धि अल्पबहुत्व में महा और अल्प का उपयोग हुआ है।

सूत्र ६५३, पृ० ४५७—

यहाँ चन्द्र सूर्यादि के समूह अलग-अलग समूहों के लिए पिटक शब्द का भी प्रयोग हुआ है। प्राकृत में इसे **पिडय** या **पिडग** कहा है। पिटक का शब्दार्थ सन्दूक, पिटारी आदि हो सकता है। प्रत्येक पिटक में दो चन्द्र, दो सूर्य, १७६ ग्रह, ५६ नक्षत्र हैं। इस प्रकार के ६६ पिटक ग्रहों तथा नक्षत्रों के मनुष्य लोक में हैं। **पिटक** शब्द महत्वपूर्ण है।

सूत्र ६५४, पृ० ४५७—

यहाँ **पंक्तियाँ** शब्द महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक पंक्ति में ६६ चन्द्र-सूर्य हैं। ऐसी ४ पंक्तियाँ मनुष्य लोक में हैं।

प्रत्येक **पंक्ति** में ६६ ग्रह हैं। ग्रहों की १७६ **पंक्तियाँ** मनुष्य लोक में हैं।

प्रत्येक **पंक्ति** में ६६ नक्षत्र हैं। नक्षत्रों की ५६ पंक्तियाँ हैं।

सूत्र ६५५, पृ० ४५८—

चन्द्र, सूर्य, ग्रहों के **सभी मण्डल** (वीथियाँ) **अनवस्थित** हैं वे मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं। यह **"अनवस्थित"** अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

नक्षत्र और ताराओं के सभी मण्डल **अवस्थित** हैं और वे भी मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं।

सूत्र ६५६, पृ० ४५८—

यहाँ महत्वपूर्ण तथ्य है कि चन्द्र सूर्य केवल अपने-अपने मण्डलों—आभ्यन्तर, बाह्य तथा तिर्यक् क्षेत्र में मण्डल संक्रमण करते हैं, किन्तु मण्डलों से **उर्ध्व** और **अधो** क्षेत्र में **संक्रमण** नहीं करते हैं। इनके इस प्रकार Orbital planes हैं। आधुनिक सन्दर्भ में तुलनीय हैं।

सूत्र ६५७, पृ० ४५८—

यहाँ मनुष्य क्षेत्र में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे अनवस्थित तथा **मनुष्य क्षेत्र** के बाहर वे अवस्थित (गति-संचरण हीन) बताये गये हैं। यह **शोध** का विषय है तथा आधुनिक संदर्भ में उपयुक्त है।

सूत्र ६५८, पृ० ४५८-४५९—

द्वीप समुद्रों के ज्योतिष्कों की संख्या निकालने हेतु यहाँ प्रारम्भिक विधि दी गई है। ति० प० भाग १/७ पृ० ७६४ आदि में सपरिवार चन्द्रों को लाने का विधान दृष्टव्य है। वहाँ **रज्जु के अर्द्धच्छेद** एवं अन्य गणना का अवलम्बन लिया गया है।

सूत्र ६६०, पृ० ४५९—

चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रों के योग के सम्बन्ध में नियम बतलाये गये हैं। इस सम्बन्ध में चन्द्र सूर्य का ग्रह-नक्षत्रों से अथवा विलोमरूपेण पूर्व-पश्चिम से या दक्षिण-उत्तर से **योगयुक्ति** होती है। नक्षत्र मण्डल के कुल विभागों की संख्या १०९८०० है।

सूत्र ६६१, पृ० ४६०—

एक मुहूर्त में नक्षत्र सूर्य की अपेक्षा ५ भाग मण्डल अधिक, तथा चन्द्रमा से ६७ भाग अधिक गमन करते हैं।

नक्षत्र—१८३५ भाग मण्डल के

सूर्य—१८३० " "

चन्द्र—१७६८ " "

सूत्र ६६२, पृ० ४६०—

सूर्यप्रज्ञप्ति का दसवाँ पाहुड़ का दूसरा अन्तर पाहुड़ देखिये।

चन्द्र एवं नक्षत्र योग में यहाँ अभिजित नक्षत्र से **चन्द्रमा का योगकाल** निकालने हेतु ज्ञात है कि अभिजित नक्षत्र गगनमण्डल के ६३० भागों में व्याप्त है। चन्द्र से नक्षत्र गति ६७ मण्डल भाग अधिक होने से इस **सापेक्ष राशि** द्वारा ६३० को भाजित करने पर $\frac{६३०}{६७}$ अथवा ९ मुहूर्त एवं $\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त योग काल प्राप्त हो जाता है। इसको **विलोम रूपेण** भी सिद्ध किया जा सकता है।

इसी प्रकार श्रवण नक्षत्र का **गगन मण्डल** फैलाव २०१० भाग में है। अतएव चन्द्र से इस नक्षत्र का योगकाल $\frac{२०१०}{६७}$ अथवा ३० मुहूर्त पर्यन्त रहेगा।

इसी प्रकार जिन नक्षत्रों का फैलाव १००५ **गगन खंडों** में है उनका चन्द्र से योग काल $\frac{१००५}{६७}$ = १५ मुहूर्त होगा। पुनः जिन नक्षत्रों का फैलाव ३०१५ मण्डल भाग है उनका चन्द्र से योग काल $\frac{३०१५}{६७}$ = ४५ मुहूर्त होगा।

अगली गाथा में इसी प्रकार **चन्द्र ग्रह योगकाल** का संख्या रहित उल्लेख है।

सूत्र ६६४, पृ० ४६१

यहाँ सूर्य **नक्षत्र योगकाल** का विवरण है। **अभिजित नक्षत्र** का फैलाव ६३० **गगन खंड** होने से तथा **सापेक्ष गति** सूर्य की ५ गगनखण्ड कम होने से योगकाल $\frac{६३०}{५}$ = १२६ मुहूर्त अथवा ४ अहोरात्रि एवं ६ मुहूर्त है।

इसी प्रकार १००५ फैलाव वाले नक्षत्र सूर्य से योगकाल $\frac{१००५}{५}$ = २०१ मुहूर्त अथवा ६ अहोरात्र २१ मुहूर्त होता है। जिन नक्षत्रों का फैलाव २०१० गगनखण्ड होगा उनका सूर्य से योगकाल $\frac{२०१०}{५}$ = ४०२ अथवा १३ अहोरात्र १२ मुहूर्त होता है। इसी प्रकार जिन नक्षत्रों का फैलाव ३०१५ मण्डल भाग होता है वे **सूर्य से योग** $\frac{३०१५}{५}$ = ६०३ मुहूर्त अथवा २० अहोरात्र एवं ३ मुहूर्त काल तक करते हैं।

अगले सूत्र में **सूर्य-ग्रह योग काल** का संख्या रहित उल्लेख है।

सूत्र ६६६, पृ० ४६१—

एक अहोरात्र में ३० मुहूर्त होते हैं। एक मुहूर्त में चन्द्र गमन १७६८ **गगनखंड** होता है ∴ ३० मुहूर्त में ५३०४० **गगनखंड** होंगे। कुल मण्डल **गगनखंड** १०९८०० है, जिनका **अर्द्धमंडल** ५४९०० होता है। अतएव चन्द्र एक अहोरात्र में एक **अर्द्धमंडल** में १८६० भाग कम चलता है। किन्तु ग्रन्थ में एक **अर्धमंडल और अर्धमंडल के नौ सौ पन्द्रह** भागों में ३१ भाग कम पर्यंत चन्द्र गति बतलाई गई है। यह किस आधार पर बतलाई गयी है—यह **शोध** का विषय है।

दृष्टव्य है कि अनुपात $\frac{५३०४०}{५४९००}$ = १ — $\frac{३१}{९१५}$ होते हैं। अतएव अनुवाद का अर्थ उक्त होना चाहिए।

इसी प्रकार सूर्य गमन ३० मुहूर्त में १८३० × ३० = ५४९०० **गगन मंडल खंड** अथवा **अर्धमंडल** होता है।

इसी तरह नक्षत्र गमन ३० मुहूर्त में १८३५ × ३० = ५५०५० **गगनखंड** होता है। एक **अहोरात्र** में नक्षत्र १५० खण्ड अधिक एक **अर्द्धमंडल** चलते हैं। अनुपात अपेक्षा $\frac{५५०५०}{५४९००}$ = १ + $\frac{२}{७३२}$ अर्द्धमण्डल चलते हैं।

भिन्न की उपरोक्त प्रणाली **ऐतिहासिक दृष्टि** से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सूत्र ६६७, पृ० ४६२

(१) चन्द्रमा प्रत्येक मण्डल को कितने मुहूर्त में तय करता है?

यहाँ अनुपात रूप से गणना की गयी है। चन्द्रमा १७६८ मण्डल चलने पर १८३० × २ **अहोरात्र** लगाता है, वहीं उसे यदि १ मण्डल तय करना पड़े तो $\frac{१८३० \times २}{१७६८}$ मुहूर्त अर्थात् $\frac{९१५}{४४२}$ अथवा २ $\frac{३१}{४४२}$ अहोरात्र लगेंगे।

(२) इसी प्रकार सूर्य प्रत्येक मण्डल को कितने मुहूर्त में तय करता है?

यहाँ भी अनुपात उसी प्रकार होगा। १८३० मण्डल सूर्य १८३० × २ अहोरात्र में तय करता है। यदि १ मण्डल तय करना पड़े तो उसे $\frac{१८३० \times २}{१८३०}$ अहोरात्र अथवा २ अहोरात्र लगेंगे।

(३) दूसरी तरह से १७६८ भाग मण्डल के १ अन्तर्मुहूर्त में, ∴ १ अहोरात्र में १७६८ × ३० भाग चन्द्र चलता है। अतएव १०९८०० या १ मण्डल के भागों को तय करने में चन्द्र $\frac{१०९८००}{१७६८ \times ३०}$ = २ $\frac{३१}{४४२}$ अहोरात्र लगाता है।

इसी प्रकार सूर्य पर भी घटित करना चाहिए।

सूत्र ६६८, पृ० ४६२—

चन्द्र १ **युग में कितने मंडल** चलता है ?

१ युग में **समस्त मुहूर्त संख्या** ५४६०० होती है।

चन्द्र १ मुहूर्त में १७६८ भाग गमन करता है।

∴ १ युग में कुल चन्द्र द्वारा चले भाग

$$५४९०० \times १७६८ = ९७०६३२००$$

चूंकि १०९८०० भागों का एक मण्डल होता है

∴ ९७०६३२०० भागों के $\frac{९७०६३२००}{१०९८००}$ मण्डल होते हैं।

अर्थात् $\frac{९७०६३२००}{१०९८००} = ८८४$ मण्डल

इसी प्रकार सूर्य १ युग में कितने मण्डल चलता है ?

१ युग में **समस्त मुहूर्त संख्या** ५४९०० होती है।

सूर्य १ मुहूर्त में १८३० भाग चलता है।

∴ १ युग में सूर्य द्वारा चले गये कुल भाग =

$$५४९०० \times १८३०$$

पुनः १०९८०० भागों का एक मण्डल होता है

∴ ५४९०० × १८३० भागों का $\frac{५४९०० \times १८३०}{१०९८००} =$

९१५ मण्डल।

इसी प्रकार नक्षत्र १ युग में कितने मण्डल चलता है ?

यहाँ एक युग में समस्त मुहूर्त संख्या ५४९०० होती है।

नक्षत्र १ मुहूर्त में १८३५ भाग चलता है।

∴ नक्षत्र ५४९०० मुहूर्तों में ५४९०० × १८३५ भाग चलता है।

∵ १०९८०० भागों का १ मण्डल होता है

∴ ५४९००० × १८३५ भागों का $\frac{५४९०० \times १८३५}{१०९८००}$ मंडल

अथवा $\frac{१८३५}{२}$ मण्डल या १८३५ अर्द्धमण्डल तय करता है।

सूत्र ६६९ पृ० ४६२-४६३—

चन्द्र मास में चन्द्र कितने **मण्डल** तक गति करता है ? यहाँ इसके निकालने हेतु ज्ञात है कि एक पंचवर्षीय युग में १२४ पर्व होते हैं तथा ८८४ मंडल होते हैं। एक चन्द्र मास में दो पर्वणी होती हैं। इसलिए १ चन्द्र मास में $\frac{८८४ \times २}{१२४}$ मण्डल होंगे अथवा $१४\frac{३२}{१२४}$ मण्डल होंगे। ग्रन्थ में इसे पंद्रहवें मण्डल का चौथा भाग तथा मण्डल के १२४ भागों में से १ भाग तथा पूर्ण चौदह मण्डल बतलाया है। वास्तव में १२४ भाग का चौथाई भाग ३१ होता है और १ भाग सहित यह १२४ में से कुल ३२ भाग होता है। अस्तु।

पुनः चन्द्र मास में सूर्य कितने **मण्डल** गति करता है ? एक युग में सूर्य के ९१५ मण्डल होते हैं। चन्द्र मास में २ पर्व होते हैं। इस प्रकार १२४ पर्वों में ९१५ सूर्य मण्डल होते हैं इसलिए २ पर्वों में $\frac{९१५ \times २}{१२४} = \frac{१८३०}{१२४} = १४\frac{९४}{१२४}$ मण्डल प्राप्त होते हैं।

यहाँ $९४ = \left(१२३ \times \frac{३}{४} \right) + १$ होता है जो ग्रंथ में उल्लिखित है।

इसी प्रकार चन्द्र मास में नक्षत्र कितने **मण्डल** गति करता है ? यहाँ नक्षत्र के १ युग में १८३५ **अर्द्धमंडल** होते हैं और चन्द्र मास में २ पर्व होते हैं। अतएव १२४ पर्वों में $\frac{१८३५}{२}$ नक्षत्रों के मण्डल होते हैं इसलिए २ पर्व में $\frac{१८३५}{२} \times \frac{२}{१२४} = \frac{१८३५}{१२४} =$ $१४\frac{९९}{१२४}$ मण्डल प्राप्त होते हैं। यहाँ $९९ = \left(१२४ \times \frac{३}{४} \right) + ६$ होते हैं। अतएव ग्रन्थ में उल्लिखित मान प्राप्त होता है।

सूत्र ६७०, पृ० ४६३—

आदित्यमास में चन्द्र कितने **मण्डल** पर्यन्त गति करता है ? यहाँ एक युग में ६० सौर मास होते हैं और ८८४ चन्द्र मण्डल होते हैं। इसलिए १ सौर मास में $\frac{८८४}{६०} = १४\frac{११}{१५}$ मण्डल प्राप्त होते हैं।

आदित्यमास में **सूर्य** कितने **मण्डल** चलता है ? यहाँ एक युग में ६० सौर मास होते हैं और ९१५ चन्द्रमण्डल होते हैं। इसलिए १ सौर मास में $\frac{९१५}{६०} = १५\frac{१}{४}$ मण्डल प्राप्त होता है।

आदित्यमास में **नक्षत्र** कितने **मण्डल** चलता है ? यहाँ १ युग में ६० सौर मास और $\frac{१८३५}{२}$ नक्षत्र मण्डल होते हैं। इसलिए १ सौर मास में $\frac{१८३५}{२}\times\frac{१}{६०}=१५\frac{३५}{१२०}$ । यहाँ ग्रन्थ में १२० के स्थान में १२४ लिखा है जो प्रामाणिक नहीं है।

सूत्र ६७१ पृ० ४६३

नक्षत्र मास में चन्द्र कितने **मण्डल** चलता है ? यहाँ १ युग में ६७ नक्षत्र मास और ८८४ चन्द्र मण्डल होते हैं। इसलिए १ नक्षत्र मास में $\frac{८८४}{६७}=१३\frac{१३}{६७}$ मण्डल होंगे।

सूत्र ६७१ पृ० ४६४

नक्षत्र मास में सूर्य कितने मण्डल चलता है ? यहाँ **पंचवर्षात्मक १ युग** में ६७ **नक्षत्रमास** तथा ९१५ **सौर मण्डल** होते हैं। इसलिए १ नक्षत्र मास में $\frac{९१५}{६७}=१३\frac{४४}{६७}$ मण्डल होते हैं।

नक्षत्रमास में नक्षत्र कितने मण्डल चलता है ? यहाँ १ युग में ६७ नक्षत्र मास तथा $\frac{१८३५}{२}$ नक्षत्र मंडल होते हैं। इसलिए १ नक्षत्र मास में $\frac{१८३५}{२}\times\frac{१}{६७}=\frac{२७\frac{२६}{६७}}{२}$ अथवा $१३\frac{४६\frac{१}{२}}{६७}$ मण्डल होते हैं। इसे ग्रन्थ में $४६\frac{१}{२}$ के स्थान में $४७\frac{१}{२}$ दिया गया है जो प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता है।

सूत्र ६७२ पृ० ४६४—

ऋतुमास में चन्द्र कितने **मंडल** चलता है। १ युग में ६१ **ऋतु या कर्म मास** होते हैं और ८८४ चन्द्र मण्डल होते हैं। इसलिए १ **ऋतुमास** में $\frac{८८४}{६१}=१४\frac{३०}{६१}$ मण्डल होते हैं।

ऋतुमास में **सूर्य** कितने **मंडल** चलता है ? १ युग में ६१ **ऋतुमास** और ९१५ **सूर्य मंडल** होते हैं। इसलिए १ **ऋतुमास** में $\frac{९१५}{६१}=१५$ मण्डल होते हैं।

ऋतुमास में **नक्षत्र** कितने **मण्डल** चलता है ? १ युग में ६१ **ऋतुमास** और $\frac{१८३५}{२}$ नक्षत्र मण्डल होते हैं। इसलिए १ ऋतुमास में $\frac{१८३५}{२}\times\frac{१}{६१}=१५\frac{५}{१२२}$ मण्डल होते हैं।

सूत्र ६७३ पृ० ४६४

अभिवर्द्धितमास में **चन्द्र** कितने **मंडल** चलता है ? **१ अभिवर्धित** सवत्सर वाले युग में ५७ मास ७ अहोरात्र ११ $\frac{२३}{६२}$ मुहूर्त होते हैं (सू० प्र०, भाग २, पृ० ४६०)। त्रैराशिक हेतु इस संख्या में १५६ का गुणा करने पर १५६ युग में ८९२८ परिपूर्ण अभिवर्द्धित मास होते हैं। यह अनुमान से यहाँ लिया गया है। अब ८९२८ अभिवर्धित मास से १५६ युग में भावि चन्द्र मण्डल संख्या ८८४ × १५६ = १३७९०४ होती है। इसलिए १ अभिवर्धित मास में $\frac{१३७९०४}{८९२८}=$ $१५\frac{३९८४}{८९२८}=१५\frac{८३}{१८६}$ प्राप्त होती है जो ग्रन्थ में $१५\frac{८३}{८६}$ कही है। यह **शोध** का विषय है। इसे सू० प्र० भाग २, पृ० ७७६ में **"पण्णरस मण्डलाइ तेसीति छलसीय सय भागे मण्डलस्स"** उद्धृत किया गया है।

एक **अभिवर्द्धित** मास में **सूर्य** कितने **मंडल** चलता है ? १५६ युग में ८९२८ अभिवर्द्धित मास ९१५ × १५६ = १४२७४० सूर्य मण्डल होते हैं। इसलिए १ अभिवर्द्धित मास में $\frac{१४२७४०}{८९२८}=$ $१५\frac{८८२०}{८९२८}=१५\frac{२४५}{२४८}$ (ऊपर नीचे ३६ का अंश और हर को छेदने पर)

एक **अभिवर्द्धित** मास में **नक्षत्र** कितने **मंडल** चलता है ? १५६ युग में ८९२८ अभिवर्द्धित मास तथा $\frac{१८३५}{२}\times१५६=$ १४३१६० मण्डल नक्षत्र चलता है।

इसलिए १ अभिवर्द्धित मास में $\frac{१४३१३०}{८९२८} = १६\frac{२८२}{८९२८} = १६\frac{४७}{१४८८}$ **नक्षत्र मन्डल** प्राप्त होते हैं। (सू० प्र०, भाग २, पृ० ७७९)।

सूत्र ९७५, पृ० ४६५

इस गाथा में विभिन्न कालों में **चन्द्र उदय की दिशाएँ** दी गईं हैं जो **ऐतिहासिक दृष्टि** से महत्वपूर्ण हैं।

सूत्र ९७६, पृ० ४६६

यहाँ चन्द्र की **वृद्धि हानि** का कारण **राहु** के द्वारा आवृत्त होना बतलाया गया है। प्रतिदिन पन्द्रहवां भाग को बासठिया भाग भी कहा है। अर्थात ६२ में से १५ भाग करने पर $४\frac{२}{१५}$ भाग प्रतिदिन आच्छादित अथवा अनावरित होना माना जायेगा।

सूत्र ९७७, पृ० ४६७

शुक्लपक्ष में चन्द्र **राहु** द्वारा $४४२\frac{४६}{६२}$ मुहूर्त अनावृत्त होता है और कृष्णपक्ष में $४४२\frac{४६}{६२}$ मुहूर्त आच्छादित होता है।

६२ भाग अनावृत्त/आच्छादन प्रतिदिन मानने पर ९३० कल्पित भाग होते हैं। एक भाग अमावस्या की रात्रि में भी **नित्य राहु** से अनावृत्त होने से कुल ९३१ कल्पित चन्द्र भाग होते हैं। यह **ऐतिहासिक दृष्टि** से महत्वपूर्ण है।

सूत्र ९८१, पृ० ४६९

जम्बूद्वीप में १८० योजन अवगाहन से पाँच चन्द्र मंण्डल और लवण समुद्र में ३३० योजन अवगाहन से दस चन्द्र मण्डल होते हैं। इस प्रकार कुल ५१० योजन का अवगाहन से १५ चन्द्र मण्डल कहे गये है जो **इतिहास की दृष्टि से** महत्वपूर्ण हैं।

सूत्र ९८२, ९८३, पृ० ४३९, ४७४

इन गाथाओं में प्रत्येक चन्द्र मण्डल का योजनों में अन्तर, **सर्वाभ्यंतर** एवं **सर्वबाह्य** चन्द्र मण्डलों का अन्तर, सर्व आभ्यन्तर और बाह्य चन्द्र मण्डलों का आयाम-विष्कम्भ तथा परिधि दी गई है। इनमें दाशमिक संकेतना, π का मान, महत्वपूर्ण है। पुनः सर्वाभ्यंतर और बाह्य चन्द्र मन्डलों में चन्द्र की १ मुहूर्त की गति का प्रमाण भी दिया गया है। स्पष्ट है कि **योजन** और **मुहूर्त** का यहाँ गतिविधि सम्बन्ध जोड़ा गया है। मुहूर्त गति भी बढ़ती-बढ़ती, सर्वबाह्य मण्डल की ओर ली गई हैं। ये मान **माध्यमान** की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार मुहूर्त गति घटती-घटती सर्व अभ्यंतर मण्डल की ओर गति करता है। इस प्रकार यहाँ **त्वरण** (acceleration), मुहूर्त-गति की हानि वृद्धि की कल्पना की गई है।

सूत्र ९८८ पृ० ४७६

सूर्य नक्षत्रों से योगों में चन्द्र योग १० प्रकार के बतलाये गये हैं, जो १ युग में घटित होते हैं। इनमें **छत्रातिछत्र योग** कदाचित् कोईक देश में होता है, क्योंकि वह योग नियत एक रूप ही रहता है। यहाँ चित्रा नक्षत्र में उक्त योग को अवलोकन करने हेतु गणित भावना दी गयी है। **ऐतिहासिक दृष्टि** से इस योग का **शोध** होना चाहिए।

सूत्र ९८९ पृ० ४७६, ४७८

इस सूत्र में ६२ **पूर्णिमाओं** सम्बन्धी चन्द्र सूर्य के मण्डल प्रदर्शभाग का विचार किया गया है। **पंचवर्षात्मक युग** में ६२ **पूर्णिमाएँ** एवं ६२ **अमावस्याएँ** इस प्रकार कुल १२४ सूर्यचन्द्र योग होते हैं। प्रथम पूर्णिमा को चन्द्र, ६२वीं पूर्णिमा को जिस प्रदेश में समाप्त करता है, उसके **परवर्ती** मण्डल के १२४ विभाग में से ३२वें विभाग को ग्रहण करते हैं जहाँ चन्द्र प्रथम पूर्णिमा का योग होता है। इसी प्रकार **परवर्ती** मण्डल का १२४ विभाग कर पुनः ३२वें भाग में दूसरी पूर्णिमा का योग होता है।

वास्तव में पूर्णिमायोग आधुनिक मान्यतानुसार सूर्यचन्द्र आमने-सामने पृथ्वी के विरुद्ध दिशाओं में रहते हैं। किन्तु जैन ज्योतिष में १८४ मण्डलों का **गणित** दूसरे प्रकार का है। १२४ में से ३२ भाग प्रथम पूर्णिमा के होने से निकल जाने पर, पुनः ३२ भाग जाने पर, पाँच संवत्सरों वाले युग मध्य की दूसरी पूर्णिमा का प्रदेश प्राप्त होता है जब उक्त मण्डल के १२४ भाग में से अगले ३२ भाग लेते हैं। ये **पांच संवत्सर** क्रमशः **चन्द्र, चन्द्र, अभिवर्द्धित, चन्द्र** एवं **अभिवर्द्धित** नाम वाले हैं। अब **तीसरी पूर्णिमा** के मण्डल प्रदेश को जानने के लिए **दूसरी पूर्णिमा** के परिसमापक स्थान के **परवर्ती** मण्डल को ग्रहण कर उसके १२४ भाग करते हैं उसमें ६४ भाग निकल जाने पर ३२ और आगे के भाग १२४ में से लेते हैं।

यदि प्रश्न हो कि इस पंच संवत्सर वाले युग के प्रथम वर्ष के अन्त की बारहवीं आषाढ़ी पूर्णिमा को चन्द्र किस प्रदेश में रहकर समाप्त करता है। यहाँ ज्ञात है कि बारहवीं पूर्णिमा तीसरी पूर्णिमा से नवमी होती है। यहाँ **ध्रुवांक** ३२ होता है और ९वीं पूर्णिमा के लिए **तीसरी पूर्णिमा** वाले मण्डल के स्थान से ३२ × ९ = २८८ भाग आगे जाकर होती है।

चौबीसवीं पूर्णिमा ग्रहण करने हेतु, बारहवीं पूर्णिमा जहाँ होती है उससे १२ और पूर्णिमाएँ होती हैं। **बारहवीं पूर्णिमा** का ध्रुवांक २८८ होता है इसलिए २४वीं पूर्णिमा को २८८×१२= ३४५६ भाग आगे जाकर प्राप्त करते हैं। इस प्रकार २३वीं पूर्णिमा की समाप्ति स्थल से पर मण्डल को १२४ से विभक्त कर उसमें का ३४५६ भाग ग्रहण कर २४वीं पूर्णिमा को चन्द्र समाप्त करता है।

इसी प्रकार ६२वीं पूर्णिमा का मण्डल प्रदेश ज्ञात करने हेतु ६२ को ३२ से गुणित पर १९८४ प्राप्त होता है। इसे १२४ द्वारा विभक्त करने पर १६ प्राप्त होता है। यह मण्डल **पूर्णांक** है जिसमें **युग की अन्तिम पूर्णिमा** समाप्त होती है। जम्बूद्वीप में **जीवा** रूपरेखा से **पूर्णिमा परिणमनरूप मंडल** को १२४ से विभक्त करते हैं। चार दिशाओं में ३१-३१ भाग होते हैं।

इनमें २७ भागों को लेकर अलग रख देते हैं। पश्चात् २८वें भाग के २० भाग करके उनमें से १८ भागों को पृथक करते हैं, जिससे यहां २ भाग शेष रहते हैं। ३१ में से २७ भाग निकल जाने पर ४ भाग रहते हैं। जिनमें ३ भाग ३१—२८=३ शेष रहते हैं और यहां २०—१८=२ शेष रहते हैं। अतः ३ शेष भागों से चतुर्थ भाग २ कला पश्चात् स्थित अर्थात् २९वें चतुर्भाग मण्डल को बिना प्राप्त किये अर्थात् २९वें मण्डल के चतुर्थ भाग मण्डल में २ कला से अधिक प्रदेश में चन्द्र गमन नहीं करता है—अतः वहीं ६२वीं पूर्णिमा समाप्त होती है।

यह शोध का विषय है। इसे चित्र द्वारा तथा सूर्य चन्द्र की मण्डल गति द्वारा भी स्पष्ट किया जाना चाहिए। यहाँ ३२ को ध्रुवांक माना गया है। इसे Pole—Number कहना चाहिए जो Modulus के रूप में स्थिति की व्यवस्था करता है। शेष पूर्णिमाएँ ३२ के गुणनखण्ड रूप मण्डलों में प्रकट होती हैं। १२४ भाग क्यों लिए गये, क्यों ६२+६२=१२४ कुल ये घटनास्थल हैं जो मण्डल में ही प्रकट होते हैं।

सूत्र ९९०, पृ० ४७८—

इसी प्रकार चन्द्र का **अमावस्याओं** में योग की गणना हेतु ध्रुवांक पुनः ३२ है और पर मण्डल के १२४ विभाग कर उनमें ३२—३२ भागों पर ६२वीं अमावस्या समाप्ति मण्डल के आगे प्रदेश प्राप्त करना होता है। ६२वीं अमावस्या का मण्डल प्रदेश प्राप्त करने हेतु ६२वीं पूर्णिमा समाप्ति मण्डल के पर मण्डल के १६ भागों को लेकर १२४ विभक्त मण्डल में से अलग रहते हैं। अर्द्ध-अर्द्ध भागों में पूर्णिमा अमावस्या होना इसका कारण है। इस प्रकार उस मण्डल प्रदेश से पहले १२४ या सोलह भागों से न्यून मण्डल प्रदेश में ६२वीं अमावस्या समाप्त होती है। **यह भी शोध का विषय है**।

सूत्र १००२, पृ० ४८६—

दिनमान की व्यवस्था इस सूत्र में १८ मुहूर्त से लेकर १२ मुहूर्त तक की गयी है। यह किसी विवक्षित स्थान की उत्तरी अक्षांश वाले प्रदेश में जो **अफगानिस्तान** के **चित्राल** के समीपवर्ती हो वहाँ होती रहती है, जहाँ से ये अवलोकन किये गये होंगे। प्रश्न है कि क्या चित्रा पृथ्वी का जो वर्णन आया है, वह उक्त अवलोकनकर्ता का स्थल वही था? क्या **बेबिलन निवासी** से सम अक्षांशों में रहने वाले भारतीयों ने उत्तर और दक्षिण गोलार्धों में अपने ऐसे ही अवलोकन केन्द्र बनाये थे। इस सम्बन्ध में शर्मा एवं लिश्क का निम्नलिखित शोध लेख दृष्टव्य है:

"लेंग्थ ऑफ डे इन जैन एस्ट्रानामी, सेंटारस, १९७८; भाग २२, क्र० ३, पृ० १६५-१७६। इनके अनुसार हो सकता है उक्त स्थल **गान्धार** रहा हो।"

भूमध्यरेखावर्ती स्थलों पर १५—१५ मुहूर्त का दिन होता है। कुल १८३ मण्डलों में प्रतिदिन चलते हुए $\frac{६}{१८३}$ मुहूर्त अथवा $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त वृद्धि होती है। इसी प्रकार **दिन हानि** का प्रकरण है। यह **माध्य** रूप है। देखिए ति० प०, भाग २, गाथा २७९, २८०।

सूत्र १००३ पृ० ४९५-४९८—

यहाँ सूर्य का गमन **सर्वाभ्यन्तर मंडल** से **सर्वबाह्यान्तर मंडल** तक तथा इसका **विलोम रूप** वर्णन किया है। स्पष्ट है कि ६ माह तक सूर्य १८३ मण्डलों में किसी एक दिशा में चलता अवलोकित होता है और उसके पश्चात् निश्चित उससे विलोम दिशा में गमन करता दृष्टिगत होता है। इससे स्पष्ट है कि उत्तरी ध्रुव में ६ माह का दिन और ६ माह की रात्रि कही गई है। यहाँ उसे ही दूसरे रूप में प्रकाश को लेकर कथन है कि इस प्रकार ६ माह तक प्रकाश सूर्य के दक्षिणायन से लेकर उत्तरायण होने तक बढ़ता रहता है। यह उत्तरार्ध में पाया जाता है। इसी प्रकार **विलोम रूपेण** प्रक्रिया देखने में आती है। इस प्रकार गणित द्वारा जैन सिद्धान्त के मर्म को आधुनिक अन्य घटनाओं को समझाने में प्रयुक्त करना आवश्यक है। जो प्रतिरूप जैन सिद्धान्त में निर्मित किये गये उनका आशय विषय को समझाना था और उनके द्वारा हजार डेढ़हजार वर्षों तक समस्त ज्योतिष की घटनाएँ स्पष्ट की जाती रहीं।

यहाँ बतलाया गया है कि किस प्रकार उक्त **अवलोकन केन्द्र** पर प्रतिदिन सूर्य के उल्लिखित गमन के कारण वर्ष के कौन से भाग में कितना दिन प्रतिदिन घटता बढ़ता था। यहां **उत्कृष्ट** एवं **जघन्य** दिनमान मुहूर्त १८ और १२ उक्त अवलोकन केन्द्र के लिए किये गये थे।

सूत्र १०१०, पृ० ५०४—
१०११, पृ० ५०५—

सूर्य के **ताप क्षेत्र** की **संस्थिति** हेतु विभिन्न प्रकार की ज्यामिति आकारों का वर्णन है।

सूत्र १०१२, पृ० ५०६—
१०१३, पृ० ५०७—

ताप क्षेत्र **संस्थिति** की परिधि तथा **ताप क्षेत्र** एवं अन्धकार क्षेत्र के **आयामादि** का प्ररूपण इन गाथाओं में किया गया है। इनके विस्तृत वर्णन के लिए देखिये ति० प०, भाग २, अधिकार ७, गाथा २९२—४२० जहाँ ताप एवं तम क्षेत्रों का विशद वर्णन **सूत्र** देकर दिया गया है। यह **गहन शोध का विषय है**। उदाहरणार्थ : इष्ट परिधि राशि को तिगुणा करके दश का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना सूर्य के प्रथम पथ में स्थित रहने पर उस **आतप क्षेत्र की परिधि** का प्रमाण होता है।

इसे इस ग्रन्थ में **परिधिविशेष** कहा गया है।

इस **शोध से** भूगोल सम्बन्धी अनेक रहस्य खुल सकते हैं। तदनुसार इनका आशय समझकर आधुनिक सन्दर्भ में निर्वचन देना अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

सूत्र १०२०, पृ० ५१५—

इसी प्रकार सर्ववाह्य पथ में स्थित सूर्य हेतु ताप क्षेत्र निकालने हेतु परिधि में दो का गुणा कर १० का भाग देते हैं।

इस सूत्र में **पौरुषी छाया** निरूपण प्रमाण द्वारा किया गया है।

सूर्य को ५९ **पौरुषी छाया** की निष्पत्ति करने वाला कहा गया है। इनमें बतलाया गया कि दिन का कितना भाग बीतने पर कितनी **पौरुषी छाया** रहेगी? अथवा दिन का कितना भाग शेष रहने पर कितनी **पौरुषी छाया** रहेगी? इस प्रकार ५९ **पौरुषी छाया** के प्रकारों को गणित द्वारा दिनमान को निकालने में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसी सूत्र में २५ प्रकार की छाया कही गयी है तथा उनमें से गोल छाया के भी ८ प्रकार बतलाये हैं।

यह भी **गहन शोध का** विषय है। इस पर **शर्मा एवं लिश्क** ने सूत्र रचना की है जो अग्र प्रकार है :—

पौरुषी इकाई में छाया की लम्बाई	**तत्सम्बन्धी क्रमिक समय में बीता हुआ दिन का भाग**
$\frac{१}{२}$ इसका प्रतीक मान लो प है।	$\frac{१}{३}$ इसका प्रतीक मान लो द है।
१	$\frac{१}{४}$
$१\frac{१}{२}$	$\frac{१}{५}$
═══	═══
$५८\frac{१}{२}$	$\frac{१}{११९}$
५९	०

उपरोक्त से स्पष्ट है कि **पौरुषी छाया समान्तर श्रेणी** में है, जहाँ चय $\frac{१}{२}$ है। तत्सम्बन्धी बीता हुआ दिन का भाग यदि उलट दिया जाये तो ३, ५,....... भी **समान्तर श्रेणी** रूप हो जाती है जहाँ चय १ है, जहाँ उपान्तिम पद तक जाते हैं। इस प्रकार की श्रेणी को **हारमोनिक प्रोग्रेशन** कहते हैं।

उपर्युक्त में निम्नलिखित सम्बन्ध है—

$$द = \frac{१}{२(१+प)} \text{ जबकि } \frac{१}{२} \leqslant प \leqslant ५८\frac{१}{२}$$

$$= ० \qquad \text{जबकि } प \geqslant ५९$$

द और प के मान पूर्व में दिये गये हैं।

यदि प से लेकर $प+\frac{१}{२}$ के बीच समय "स" बीतता हो तो

$$स = \frac{१}{२(१+प)} - \frac{१}{२(१+प+\frac{१}{२})} \text{ दिन}$$

$$= \frac{१}{२(१+प)(३+२प)} \text{ दिन होगा।}$$

∴ गति जो **पौरुषी छाया** को बदलना बतलाती हो, उसका मान 'ग' संकेत में $ग = \frac{१}{२} प \div स = (१+प)(३+२प)$ **पुरुष प्रतिदिन** होगी।

इन सूत्रों से अनेक रहस्य ज्ञात किये जा सकते हैं।

वास्तव में **पुरुष** *का अर्थ दोपहर को शंकु का छाया आयाम प्रतीत होता है।* **पुरुष** *किसी भी मानव द्वारा अपनी ही अंगुली से मानव की ऊँचाई प्ररूपित करता है। यह अर्थ* **बेबिलन गोलिका मूल अपिन** *में भी लिया गया है। ये अवलोकन किस स्थान पर लिये गये यह ज्ञात करना महत्वपूर्ण है।*

महावीराचार्य के **गणितसार संग्रह** ग्रन्थ में छाया व्यवहार पृ० २६६ से पृ० २८१ तक दिया गया है। उसमें कुछ नियम-सूत्र निम्नलिखित हैं :

(१) **विषुवद्भा** (अर्थात् जब दिन-रात बराबर होते हैं उस समय पड़ने वाली छाया) वास्तव में उन दिनों के मध्यान्ह (दोपहर) समय प्राप्त छाया के मापों के योग की आधी होती है, जबकि सूर्य मेष राशि या तुला राशि में प्रवेश करता है।

(२) किसी वस्तु (शंकु) की ऊँचाई के पदों में व्यक्त छाया के माप में एक जोड़ा जाता है, और इस प्रकार परिणामी योग दुगुना किया जाता है। परिणामी राशि द्वारा पूर्ण दिनमान भाजित किया जाता है। यह समझना चाहिए कि सारसंग्रह नामक गणितशास्त्र के अनुसार, यह प्राप्त फल पूर्वाह्न और अपराह्न के शेष भागों (अथवा दोपहर के पहले दिन के बीते हुए भाग और दोपहर के पश्चात् दिन के शेष रहने वाले भाग) को उत्पन्न करता है। [यहाँ विषुवच्छाया नहीं होती।]

(३) दिनमान के ज्ञात माप को, दिन के बीते हुए अथवा बीतने वाले भाग का निरूपण करने वाले भिन्न के अंश द्वारा गुणित करने और हर द्वारा भाजित करने से, पूर्वाह्न के सम्बन्ध में बीती हुई घटिकाएँ और अपराह्न के सम्बन्ध में बीतने वाली घटिकाएँ उत्पन्न होती हैं।

(४) किसी स्तम्भ की छाया के माप को स्तम्भ की ऊँचाई द्वारा भाजित करने पर **पौरुषी छाया माप** प्राप्त होता है।

(५) विषुवच्छाया वाले स्थान के लिये नियम :

शंकु की ज्ञात छाया के माप में शंकु का माप जोड़ा जाता है। यह योग विषुवच्छाया के माप द्वारा ह्रासित किया जाता है। परिणामी अंतर को दुगना कर दिया जाता है। जब शंकु का माप इस परिणामी राशि द्वारा भाजित किया जाता है, तब दशानुसार पूर्वाह्न में दिन में बीते हुए अथवा अपराह्न में दिन में बीतने वाले दिनांश का माप उत्पन्न होता है।

(६) शंकु का माप दिन के दिये गये भाग के माप को दुगुनी राशि द्वारा भाजित किया जाता है। परिणामी भजनफल में से शंकु का माप घटाया जाता है, और उसमें विषुवच्छाया का माप जोड़ दिया जाता है। **यह दिन के इष्ट समय पर** छाया का माप उत्पन्न करता है।

इसी प्रकार अन्य सूत्र भी दिये गये हैं जो **ऊर्ध्वाधर दीवाल पर आरूढ़ छाया** से सम्बन्धित हैं।

डा० ए० के० **बाग** के अनुसार पुरुष का अर्थ मानव की उसकी ही अंगुलियों द्वारा नापी गई ऊँचाई है और बौद्धायन शुल्व के अनुसार १२० अंगुल से एक पुरुष होता है। पाद और अंगुल का सम्बन्ध पूर्व में ज्ञात है।

एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि चूंकि **पौरुषी पादांगुल** में प्रतिदिन बदलती रहती है, इसलिए उसके द्वारा दत्त अवलोकनों द्वारा वर्ष की ऋतु या कोई भी भाग ज्ञात किया जा सकता है। देखिये जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, ६/१७-१६।

सूत्र १०२३-१०४६, पृ० ५१६-५५६—

इस सूत्रों में सूर्य की विभिन्न प्रकार की **गतियों** का विवरण **मुहूर्त** एवं **मण्डलों** के पदों में दिया गया है जो अत्यत महत्वपूर्ण है। इनमें **योजन** भी सम्मिलित हैं। ऐसी अनेक कठिनाइयां हैं जिनसे विभिन्न प्रकार के जो रहस्य उद्घाटित किये गये हैं उन्हें पुष्ट करना आवश्यक है। ५१० योजन जो प्रथम और अंतिम सौर्य मण्डल के बीच का अंतर है, **आधुनिक महत्तम डिक्लिसेशन** का द्विगुणित है अर्थात् ४७° है, वही सूर्य पथ की आब्लिक्विटी जो २३·५° है, से सम्बन्धित प्रतीत होती है।

उपरोक्त **सूर्य गति** जो मुहूर्त और योजन को विभिन्न मण्डलों में सम्बन्धित करती है किसी भी समय की सूय की गतिशीलता को निकालने में आनुमानिक रूप से सहायक सिद्ध हो सकती है। साथ ही उसके द्वारा आनुमानिक रूप से अवलेकन कर्ता की स्थिति भी ज्ञात की जा सकती है।

सूत्र १०५० पृ० ५५७—

जिस प्रकार चन्द्र की ६२ **पूर्णमासी** सम्बन्धी उसके मंडल के तत्सम्बन्धी देश विभाग को पूर्व में ज्ञात किया उसी प्रकार यहाँ सूर्य सम्बन्धी प्रश्न प्रस्तुत है। वहाँ ३२ ध्रुवांक था किंतु यहाँ ध्रुवांक ६४ है। पूर्व प्रकार १ युग के पांच संवत्सर चन्द्र, चन्द्र, अभिवर्द्धित, चन्द्र एवं अभिवर्द्धित होते हैं। इनमें पहली पूर्णिमा को सूर्य किस मण्डल प्रदेश में रहता है? सूर्य के १८४ मण्डल हैं। सूर्य युग की अन्तिम ६२वीं पूर्णिमा परिसमाप्ति स्थान से पर के मण्डल के १२४ विभाग कर उनमें से ६४ भागों को ग्रहण कर सूर्य प्रथम युग की प्रथम मास पूर्णबोधक पूर्णिमा को योग करता है। कारण यह है कि ३० अहोरात्र समाप्ति पर वही सूर्य उसी मण्डल प्रदेश में गति करता रहता है, इससे न्यूनाधिक कोई भी भाग में नहीं दिखता है। चन्द्र मास के अंत में पूर्णिमा समाप्त होती है। जो $२९\frac{३२}{६२}$ अहोरात्र होता है। इस लिए सूर्य तीनवें अहोरात्र में $\frac{३२}{६२}$ भाग में ६२वीं पूर्णिमा परिसमाप्ति स्थान से $\frac{६४}{१२४}$ भाग गत होने पर **प्रथम पूर्णिमा** को समाप्त करता है। यह ३० भागों में उसी प्रदेश को बिना प्राप्त

किये समाप्त नहीं करता है। कारण यह है कि १ अहोरात्र का $\frac{३०}{६२}$ भाग स्थित रहने से उस प्रकार के प्रदेश में प्रवर्तमान होकर कदापि संप्राप्त नहीं होता है इसलिए नियम से २९ अहोरात्र पूर्ण होने पर उक्त पूर्णिमा समाप्त करता है, आगे की **दूसरी पूर्णिमा** पर वह $\frac{२ \times ९४}{१२४}$ भाग गत होता है। १२वीं पूर्णिमा को वह **तीसरी पूर्णिमा** से ९४ × ९ = ८४६ भागों को १२४ भाग में से ग्रहण करता हुआ समाप्त करता है। यहाँ ९४ modulus है और उस चक्र को बतलाता है जो पुनः पुनः ९४ के गुणनफलों में प्रकट होता है। इसी प्रकार २७वीं पूर्णिमा के लिए ९४ × २५ = २३५० भाग लेने के लिए कहा गया है जो वास्तव में ९४ × २४ होना चाहिए। (देखिये सू० प्र०, भाग २, पृ० २१९)।

इस प्रकार ६२वीं **पूर्णिमा स्थल** ९४ × ६२ = ५८२८ भाग पश्चात् होगा। अर्थात् यह $\frac{५८२८}{१२४}$ या ४७ सम्पूर्ण मण्डल होने पर प्राप्त होगी।

मंडल प्रदेश ज्ञात करने हेतु पूर्व मण्डल के १२४ के ४ भाग करने पर ३१ भाग पूर्व दिशा सम्बन्धी प्राप्त होते हैं। इनमें से २७ भाग अलग रखते हैं, पुनः शेष में से २८वें भाग के २० खण्ड कर उन २० खण्डों में से १८ खण्ड लेते हैं। साथ ही तीन भागों से अन्यत्र स्थापित चतुर्थ भाग के २०वें की २ कलाओं से दक्षिण में रहा हुआ **बाह्यमण्डल के चतुर्भाग मंडल** को उस चतुर्भाग मंडल से पूर्व में स्थित होकर **उसी मंडल प्रदेश में** युग की ६२वीं पूर्णिमा समाप्त करता है।

उपर्युक्त की और भी गहरी जानकारी हेतु **शोध करना आवश्यक है।**

सूत्र १०५१, पृ० ५५८-५५९—

इस सूत्र में पूर्वोक्त सूत्र के अनुसार **सूर्य के मण्डल प्रदेश** को ज्ञात करना बतलाया है जबकि प्रथम, द्वितीयादि अमावस्याएँ होती हैं। यहाँ भी **ध्रुवांक** ९४ लिये गये हैं। ६२ के आगे ३२ **ध्रुवांक** लेने पर ९४ ध्रुवांक प्राप्त होता है। पुनः ३१ के आगे ३२ **ध्रुवांक** प्राप्त होता है जहाँ ६२ का अर्द्धभाग ३१ है। इस प्रकार ३१ को चारों ओर लेने पर १२४ भाग बनते हैं। इस प्रकार जो ६२ **अमावस्या** और ६२ **पूर्णिमाओं** के घटना स्थल हो सकते हैं वे १२४ बनते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक मण्डल और उसके परवर्तियों को १२४ में विभाजित करते जाते हैं। और चन्द्र या सूर्य को क्रमशः पूर्णिमा या अमावस्या मण्डल प्रदेश निकालने पर मण्डल के ३२ तथा ९४ भाग लेते जाते हैं जो १२४ में से आगे आगे के मण्डल के लेते जाते हैं तभी जबकि ये भाग लेने पर एक मण्डल समाप्त हो जाये।

इस प्रकार विगत गणनानुसार ही ६२वीं अमावस्या को सूर्य पूर्णिमा स्थान से आगे वाले मण्डल के १२४ विभक्त कर उनमें से ४७ भाग पीछे रखकर शेष भागों में सूर्य योग करता है। यह भी पूर्व की भांति शोध का विषय है।

एक तथ्य स्पष्ट है कि **अवलोकन** किया गया मान सिद्धान्त से मिलना चाहिए। जैन ज्योतिष सिद्धान्त को और भी गहराई से अध्ययन कर इन सभी गणनाओं को **मंडल मुहूर्त, योजन गति** से सिद्ध करने हेतु **शोध** आवश्यक है।

सूत्र १०५७ पृ० ५६२, ५६३—

यहाँ चन्द्र सूर्य के मण्डलों के **ज्यामिति संस्थान** दिये गये हैं जो गणितीय दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। **छत्राकार मंडल** गोलीय त्रिकोणमिति की रचना करते हैं अतएव इस पर शोध आवश्यक है।

सूत्र १०५८, १०५९, पृ० ५६३, ५६५—

यहाँ भी ज्यामितीय दृष्टि से चन्द्र सूर्य मण्डल के **समांश** तथा पुनः किसी नय दृष्टि से **संस्थिति** कही गयी है जो महत्वपूर्ण है। इसमें शोध आवश्यक है।

सूत्र १०६१, पृ० ५६६-५६८—

यहाँ चन्द्र सूर्य के **अवभास क्षेत्र, उद्योत क्षेत्र, ताप क्षेत्र** और **प्रकाश क्षेत्रों** के सम्बन्ध में जम्बूद्वीप को जो पाँच चक्रभाग-संस्थानों में विभक्त किया है, उस पर **शोध होना** आवश्यक है। इस सम्बन्ध में पूर्वोक्त ति० प० भाग २ के सातवें अधिकार में **ताप क्षेत्र, तम क्षेत्र** का विषय भी दृष्टव्य है।

सूत्र १०६२, पृ० ५६८-५६९—

एक **नक्षत्रमास** २७ $\frac{२१}{६७}$ दिन का होता है। इसमें ८१९ $\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त होते हैं।

सिद्धान्ततः १ युग में चन्द्र के साथ नक्षत्र ६७ बार योग करते हैं और सूर्य के साथ पाँच बार योग करते हैं। अभिजित ९ $\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त तक चन्द्र से योग करता है। १ युग में **चन्द्र, चन्द्र, अभिवर्धित, चन्द्र और अभिवर्धित रूप चन्द्रपंचक** संवत्सर में ६७ नक्षत्र मास होते हैं। ऐसे युग में १८३० अहोरात्र होते हैं। अर्थात्

३६६ × ५ वर्ष = १८३० अहोरात्र होते हैं। इसलिए ६७ का भाग १८३० में देने पर नक्षत्रमास में $२७\frac{२१}{६७}$ अहोरात्र होते हैं अथवा $८१९\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त होते हैं। १ युग में सूर्यमास ६० होते हैं और १८३० अहोरात्र होते है, इसलिए १ सूर्यमास में $\frac{१८३०}{६०}$ $३०\frac{१}{२}$ अहोरात्र होते हैं। १ अहोरात्र ३० मुहूर्त का है इसलिये १ **सूर्यमास** = ९१५ मुहूर्त। १ युग में पाँच संवत्सर और इसमें अभिजित नक्षत्र सूर्य के साथ ५ बार और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र भी ५ बार सूर्य के साथ योग करता है।

इसी प्रकार १ युग में **चन्द्रमास** ६२ होते हैं जो एक मास का मान $\frac{१८३०}{६२} = २९\frac{३२}{६२}$ अहोरात्र होता है क्योंकि १ युग में १८३० अहोरात्र होते हैं। १ अहोरात्र ३० मुहूर्त का होता है इसलिए १ चन्द्रमास = $२९\frac{३२}{६२} \times ३० = ८८५\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त का होता है।

१ युग में ६१ **कर्ममास** हैं। १ **कर्ममास** $\frac{१८३०}{६१} = ३०$ अहोरात्र का होता है। १ अहोरात्र में ३० मुहूर्त होते हैं इसलिए १ कर्ममास में ३० × ३० = ९०० मुहूर्त होते हैं।

व्यवहार योग्य मास चार प्रकार के होते हैं :—

एक युग में	मास	१ मास में मुहूर्त	१ वर्ष में दिन	१ मास में अहोरात्र
नक्षत्र	६७	$८१९\frac{२७}{६७}$	$३२७\frac{५१}{६७}$	$२७\frac{२१}{६७}$
चन्द्र	६२	$८८५\frac{३०}{६२}$	$३५४\frac{१२}{६२}$	$२९\frac{३२}{६२}$
			अभि. $३८३\frac{४४}{६२}$	
सूर्य	६०	९१५	३६६	$३०\frac{१}{२}$
कर्म	६१	९००	३६०	३०

सूत्र १०६३, पृ० ५९६—

चन्द्र अर्द्धमास अर्थात् १ पक्ष में चन्द्र $१४\frac{१}{४}$ मण्डल में **भ्रमण** करता है। वह इस प्रकार है कि १ मण्डल के १२४ भाग होते हैं। पाँच वर्ष वाले युग में १२४ पर्व होते हैं तथा ६२ मास होते हैं। १ युग में १७६८ मण्डल होते हैं। इस प्रकार १ पर्व में $\frac{१७६८}{१२४}$ मण्डल अथवा $१४\frac{३२}{१२४}$ या $१४\frac{१६}{६२}$ मण्डल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार जो $१४\frac{१}{४}$ मण्डल कहा है वह यथार्थतः $१४\frac{१६}{६२}$ मण्डल है।

सूर्य अर्धमास में १६ मण्डलों में गतिशील होता है तथा जब वह १६वें मण्डल में गति कर रहा होता है उस समय अन्य दो अष्टक भागों में चन्द्र किसी असामान्य गति से स्वयं प्रवेश कर गति करता है। ये दो अष्टक भाग निम्न प्रकार हैं :

(१) **सर्वाभ्यंतर मण्डल** से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र अमावस्या के **प्रथम अष्टक** अर्थात् $\frac{८}{१२४}$वें भाग में किसी **असामान्य गति** से स्वयं प्रवेश करके गति करता है।

(२) **सर्वबाह्य मण्डल** से प्रवेश करता हुआ चन्द्र पूर्णिमा की द्वितीय अष्टक अर्थात् $\frac{८}{१२४}$वें भाग में किसी **असामान्य गति** से स्वयं प्रवेश करके गति करता है।

एक अमावस्या से पूर्णिमा तक $४४२\frac{४६}{६२}$ मुहूर्त होते हैं और अमावस्या से अमावस्या तक $८८५\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त होते हैं। १ युग में ६२ अमावस्या और ६२ पूर्णिमा होने से १२४ विभाजन करते हैं। चन्द्रमास इस प्रकार $८८५\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त का होता है और १ युग में १२४ पर्व इसी प्रकार होते हैं।

जहाँ तक १६ मण्डल सूर्य के गमन का पाठ है वह अशुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि १ युग में चन्द्र १७६८ मण्डल चलता है और १ युग में सूर्य अर्द्धमास १२० होते हैं तथा १ युग में सूर्य मण्डल १८३० है, इस प्रकार १ अर्द्धमास में $\frac{१८३०}{१२०}$ अथवा

$१५\frac{३०}{१२०}$ मण्डल आते हैं, अर्थात् सूर्य १६वें मण्डल में $\frac{३०}{१२०}$ भाग पर रहता है। साथ ही यदि १७६८ में १२० का भाग दिया जाये तो $१४\frac{८८}{१२०}$ मण्डल प्राप्त होते हैं जो यहाँ प्रयुक्त हुए प्रतीत नहीं होते हैं अतः १२० के स्थान में क्या लिया जाये यह **शोध का विषय** बनता है।

इसी प्रकार नक्षत्र के अर्धमास में चन्द्र $१३\frac{१३}{६७}$ मण्डल चलता है। कारण कि १ युग में चन्द्र १७६८ मण्डल चलता है और नक्षत्र के अर्द्धमास १ युग में १३४ होते हैं ∴ १ अर्धमास में चन्द्र $\frac{१७६८}{१३४} = १३\frac{१३}{६७}$ मण्डल चलेगा। **चन्द्र प्रथम अयन** में जाते **दक्षिण** से ७ अर्धमण्डल जाकर **दक्षिण** से प्रविष्ट कर **नैऋत्य कोण** में से निकलकर **ईशान कोण** में जाकर दूसरा, चौथा, छठवाँ, आठवाँ, दसवाँ, बारहवाँ और चौदहवाँ अर्द्धमण्डल स्पर्श करते चाल चलता है। इसी प्रकार वह **उत्तरार्द्ध भाग** से अर्थात् **ईशान कोण** से प्रथम अयन में प्रवेश करता हुआ **नैऋत्य कोण** में जाता हुआ तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ, नवमा, ग्यारहवाँ और तेरहवाँ मण्डल तथा पन्द्रहवें मण्डल का $\frac{१३}{६७}$ वाँ भाग स्पर्श करता हुआ चलता है।

दूसरे चन्द्रायण में चन्द्र सर्वाभ्यंतर मण्डल के पश्चिम भाग से निष्क्रमण करता हुआ अर्द्धमण्डल के $\frac{५४}{६७}$ भागों में जिनमें अन्य संचरित मण्डल के भागों में चन्द्र गति करता है और अर्द्धमण्डल के $\frac{१३}{६७}$ भागों में जिनमें **स्वयं संचरित** मण्डल के भागों में चन्द्र गति करता है। वे दूसरे दो प्रकार के $\frac{१३}{६७}$ भाग हैं, जिनमें क्रमशः चन्द्र सर्व अभ्यंतर मण्डल के और सर्व बाह्य मण्डल के उक्त भागों में स्वयं प्रवेश कर गति करता है।

यहाँ दृष्टव्य है कि १२४ पर्वों में चन्द्रमा के १७६८ मण्डल होते हैं इसलिए एक पर्व में $\frac{१७६८}{१२४}$ अथवा $१४\frac{८}{३१}$ मण्डल होते हैं किन्तु नक्षत्र के $१३\frac{१३}{६७}$ मण्डल होते हैं। अर्थात् यहाँ अन्तर $१४\frac{८}{३१} - १३\frac{१३}{६७}$ मण्डल होता है अथवा

$$(१४-१३)+\left(\frac{८}{३१}-\frac{१३}{६७}\right)=१+\frac{८\times६७-१३\times३१}{३१\times६७}$$

$$=१+\frac{१३३}{३१\times६७}=१+\frac{१२४}{३१\times६७}+\frac{९}{३१\times६७}$$

$$=१+\frac{४}{६७}+\frac{९}{३१\times६७}=१+\frac{४}{६७}+\frac{९}{२०७७}$$

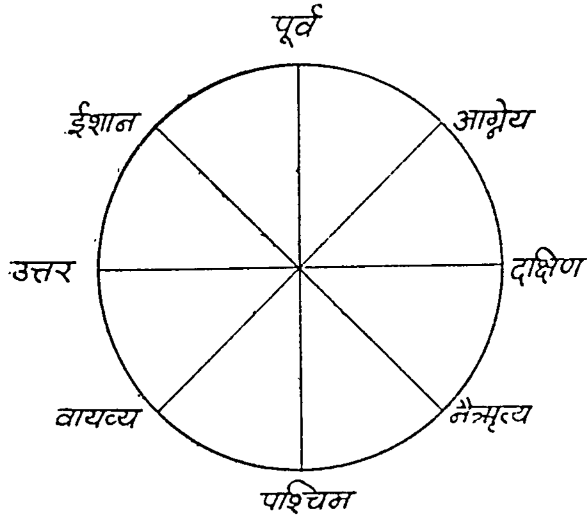
। इतना अन्तर १ अर्ध चन्द्रमास गति का प्रमाण और १ नक्षत्र अर्द्धमास गति से अधिक रूप में होता है। इस प्रकार चन्द्र, १ चन्द्र अर्द्ध मास में नक्षत्र अर्द्धमास से संपूर्ण १ अर्द्ध मण्डल, तथा दूसरे अर्द्ध मण्डल से $\frac{४}{६७}$ भाग; तथा $\frac{९}{३१\times६७}$ वां भाग अधिक संचरण करता है।

नोट—यहाँ **शोध का विषय** इस प्रकार हो सकता है कि अलग-अलग तीन प्रकार से अन्तर निकालने हेतु अलग अलग चन्द्र गमन **संचरण चीर्ण रूप से प्रस्थापित किया जा सकता** है। यहाँ प्रतीत होता है कि **अधिचक्र** (epicycle) सिद्धान्त का प्रचलन यूनान एवं भारत में ये ही अन्तर रूपों—शुद्धतर एवं शुद्धतम रूपों को निकालने के प्रयास किये गये होंगे। इसी प्रकार सूर्य गमन का अधिचक्र सिद्धान्त भी बाद में आविष्कृत हुआ होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

इस प्रकार **प्रथम चन्द्रायण** में जो दक्षिण भाग से **अभ्यन्तराभिमुख** प्रवेश करता चन्द्र ७ अर्द्धमण्डलों को और उत्तर भाग से **अभ्यन्तराभिमुख** प्रवेश करता ६ $\frac{१३}{६७}$ अर्द्ध मण्डल में संचरण करता है। **दूसरे चन्द्रायण** का मण्डल क्षेत्र परिमाण भी $१४\frac{१३}{६७}$ अर्द्ध मण्डल होता है। यहाँ $\frac{५४}{६७}$ वां भाग पन्द्रहवें मण्डल का शेष रह जाता है।

पुनः यहाँ स्मरण रहे कि मण्डल उक्त अलग-अलग दिशाओं में बनते हैं जहाँ से चन्द्र प्रवेश करता है अथवा निकलता है। इस प्रकार प्रथम अयन में ईशान कोण से निकल कर $\frac{१३}{६७}$ मंडल जाता

हुआ दूसरे अयन में $\frac{५४}{६७}$ मण्डल चलता हुआ नैऋत्यकोण के १५वें मण्डल पर जाता है। यह अन्य चन्द्र मण्डलों में चलता है। दूसरे नक्षत्र अर्द्धमास में $\frac{२६}{६७}$ भाग चन्द्र **असामान्य गति** से प्रवेश करके चलता है। १ युग में ६७ नक्षत्र मास होते हैं और १७६८



चंद्र मण्डल होते हैं। इसलिए १ नक्षत्रमास में $\frac{१७६८}{६७}=$ २६$\frac{२६}{६७}$ मण्डल चलता है। १ चन्द्र की अपेक्षा से १४वें मण्डल पर चन्द्रायण होता है। शेष १२ मण्डल अनन्तर मण्डल के $\frac{२६}{६७}$ भाग जाकर नक्षत्रमास पूर्ण हो जाता है। इस नक्षत्र मास की आदि से चन्द्र वाह्यमण्डल में प्रवेश करता १३वें मण्डल से निकलकर १४वें मण्डल के $\frac{२६}{६७}$ वें भाग में नक्षत्र मास को पूर्ण करता है। यहाँ दूसरा **चन्द्रायण** नक्षत्र मास की अपेक्षा से पूर्ण होता है।

यहां तक चन्द्र अर्द्ध मण्डल की अपेक्षा २ अर्द्ध मण्डल $+\frac{८}{६७}$ अर्द्ध मण्डल $+\frac{१८}{६७\times३१}$ अर्द्ध मण्डल अधिक चल चुकता है। यहां **तृतीय चन्द्रायण** गत चन्द्र पश्चिमी वाह्यनन्तर अर्द्ध मण्डल के **स्वसंचरित** $\frac{४१}{६७}$ भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है। चन्द्र $\frac{१३}{६७}$ पर संचरित भागों में गति करता है। उसी अर्द्ध मण्डल में **स्व-पर-संचरित** $\frac{१३}{६७}$ भाग पर भी वह गति करता है। यहाँ पश्चिमी भाग को नैऋत्य श्री अमोलक ऋषि द्वारा कहा है। एकी मण्डल से २की मण्डल तक $\frac{४१}{६७}$ अर्द्ध मण्डल पर चलकर अर्द्धमण्डल $\frac{१३}{६७}+\frac{१३}{६७}+\frac{४१}{६७}=\frac{६७}{६७}$ पूर्ण करता है। १ मण्डल के $६७\times२=१३४$ भाग होते हैं। इसके ६७ भाग में २ सूर्य व अन्य ६७ भाग में २ चन्द्र गमनशील हैं।

अर्थात् एक एक विभाग ३३$\frac{१}{२}$ का होता है। किन्तु $\frac{४१}{६७}$ चलकर **ईशान कोण** में आता है। इनमें से २४$\frac{१}{४}$ भाग वायव्य कोण में सूर्य का क्षेत्र स्पर्श करता है जो पर-क्षेत्र है। साथ ही १५$\frac{३}{४}$ क्षेत्र **ईशान कोण** में चन्द्र का स्पर्श करता है जो स्वक्षेत्र है। कारण कि शेष मण्डल स्वतः का है। इस प्रकार १३ भाग पर-क्षेत्र १५$\frac{३}{४}$ भाग स्वक्षेत्र है। जो १३ भाग स्व-पर का कहा उसमें ३$\frac{३}{४}$ भाग स्वक्षेत्र और ९$\frac{१}{४}$ भाग अग्निकोण में सूर्य का पर-क्षेत्र है। इस वर्णन को शोध का विषय बनाया जा सकता है क्योंकि पाठार्थ से यह निकालना विचार का विषय है। यहाँ **मूल पाठ में क्षेत्र शब्द आया है।** कारण यह है कि एकी मण्डल से निकलकर बेकी **मण्डल** पर $\frac{४१}{६७}$ भाग चलता है तब बेकी मण्डल का अपने नवमें अंक में कहा है। उसमें अपने मण्डल पर चलता है किन्तु यहां स्व व पर का कहने का कारण यह है कि सम्पूर्ण मण्डल १३ भाग का है। इसके ६७ भाग दो सूर्य के और ६७ भाग दो चंद्र के यो प्रत्येक भाग ३३$\frac{१}{२}$ का हुआ। किन्तु $\frac{४१}{६७}$ चलकर **नैऋत्य** कोण के मण्डल पर आता है जिसमें ४१

भाग **अग्निकोण** के क्षेत्र स्पर्श करता है वह **स्वक्षेत्र** ज्ञातव्य है। किन्तु पाठ में पर-क्षेत्र कहा और १३ भाग स्व व पर का कहा जिसमे $३\frac{३}{४}$ भाग अपना क्षेत्र स्पर्श करता है और ९ भाग **वायव्य कोण** में सूर्य का क्षेत्र स्पर्श यह होना चाहिए। देखिये सू० प्र०, टीका श्री अमोलक ऋषि)। यह **शोध** का विषय है।

चंद्र की तीसरी अयन में गया हुआ, पश्चिम भाग में प्रवेश करता हुआ बाहर के १५वें मण्डल से १४वें मण्डल पश्चिम के अर्द्धमण्डल के $\frac{३४}{६७}$ भाग और $\frac{१८}{६७ \times ३१}$ चूर्णि भाग चंद्र अपने मण्डल पर व पर के मण्डल पर चलता है। अर्थात् $\frac{१६\frac{३}{४}}{६७}$ भाग **ईशान कोण** के **स्वक्षेत्र** चल कर $\frac{१७\frac{१}{४}}{६७}$ और $\frac{१८}{६७ \times ३१}$ चूर्णि भाग **अग्निकोण** के सूर्य के पर क्षेत्र पर चलता है। इस प्रकार बाहर से १४वां **नैऋत्य कोण** के अर्द्धमण्डल पर १ चन्द्र मास सम्पूर्ण होता है। कारण यह है कि चन्द्र मास १ युग में ६२ हैं और चन्द्र अर्द्ध मण्डल १७६८ हैं।

$\therefore$ १ मास में चन्द्र अर्द्ध मण्डल $= \frac{१७६८}{६२} = २८\frac{३२}{६२}$ अर्द्धमंडल।

यदि ६७वें भाग करना हो तो ३२ में ६७ का गुणाकर पुनः ६२ × ६७ का भाग देते हैं, इससे $\frac{२१४४}{६२ \times ६७}$ या $\frac{३४}{६७}$ प्राप्त होता है और शेष ३६ रहते हैं। इनके ३१ये भाग करने हेतु $\frac{३६ \times ३१}{६२ \times ६७ \times ३१} = \frac{१११६}{६२ \times ६७ \times ३१}$ प्राप्त होता है। इसका मान $\frac{१८}{६७ \times ३१}$ होता है।

इस प्रकार १ चन्द्र मास में **अर्द्ध मण्डल** $२८ + \frac{३४}{६७} + \frac{१८}{६७ \times ३१}$ होते हैं।

नोट—स्मरण रहे कि यहां **इकाइयां** ६२, ६७ एवं ३१ के क्रमशः भाग के भागों पर आधारित स्थापित की गई हैं। ६२ एवं संख्या है या १ युग में चन्द्र मास की संख्या है। १ युग में नक्षत्र मास की संख्या ६७ है। ३१ भाग सम्भवतः १२४ भागों को ४ दिशाओं में बाँट देने पर ३१ भाग प्रत्येक दिशा को प्राप्त हुए भाग हैं। इन्हें **चूर्णिये भाग** कहते हैं। १ युग के ६२ चन्द्र मास हैं। यहाँ **मास इकाई** है जो चन्द्र मास की है।

पुनः $२८ + \frac{३४}{६७} + \frac{१८}{६७ \times ३१}$ इतने अर्द्ध मण्डल चन्द्र १ मास में चलता है, इसलिए १४वें मण्डल पर १ अयन सम्पूर्ण हो जाता है तथा २८ मण्डल पर दो चन्द्रायण सम्पूर्ण होते हैं। पुनः ३रे अयन में पन्द्रहवें मण्डल से प्रवेश करते १४वें मण्डल पर $\frac{३४}{६७} + \frac{१८}{६७ \times ३१}$ चलने पर चन्द्रमास सम्पूर्ण होता है। एक चन्द्र मास में चन्द्रमा १ नक्षत्र व २ अर्द्धमण्डल और ३रे अर्द्धमण्डल के $\frac{८}{६७} + \frac{१८}{६७ \times ३१}$ भाग चलता है। **प्रश्न है** कि यह कौन-से २ क्षेत्र में सम्पूर्ण करता है। यह नक्षत्र मास सम्पूर्ण होते वा चन्द्र निकलते १४वें अर्द्धमण्डल के $\frac{२६}{६७}$ भाग आकर नक्षत्र सम्पूर्ण करता है, क्योंकि १ युग में नक्षत्र मास ६७ हैं इसलिए १ युग में १७६८ अर्द्धमण्डल चन्द्र होने से १ नक्षत्रमास में चन्द्र अर्द्धमण्डल की संख्या $\frac{१७६८}{६७} = २६\frac{२६}{६७}$ होती है। इस प्रकार एक नक्षत्र मास में २६ अर्द्धमण्डल हैं उन्हें तथा २७वें अर्द्धमण्डल में $\frac{२६}{६७}$ भाग चन्द्र चल-कर **नक्षत्र मास** पूर्ण करता है।

इस प्रकार १ अयन के १४ अर्द्धमण्डल निकलते ही दूसरी अयन के १२ अर्द्धमण्डल $+ \frac{२६}{६७}$ भाग चलता है। किन्तु पहले १४वें अर्द्धमण्डल पर $\frac{२६}{६७}$ भाग कहा है। कारण कि दूसरी अयन का दूसरे अर्द्धमण्डल से प्रारम्भ होता है, इसलिए १३वें अर्द्ध-मण्डल में १ मिलाने पर १४ $\frac{२६}{६७}$ में एक नक्षत्र मास सम्पूर्ण होता है। इसके पश्चात् $२ + \frac{८}{६७} + \frac{१८}{६७ \times ३१}$ अर्द्ध मण्डल

चलकर चन्द्र मास पूर्ण होता है। पुनः $\frac{१०८}{६७}$ या $१\frac{४१}{६७}$ अर्द्धमंडल पर-क्षेत्र से व स्वक्षेत्र में चन्द्र चलता है क्योंकि **ईशान कोण** में से निकलता हुआ चन्द्र १४वें अर्द्धमण्डल पर $\frac{२४\frac{१}{२}}{६७}$ भाग **अग्नि कोण** में सूर्य का क्षेत्र चलता है और $\frac{१६\frac{३}{४}}{६७}$ भाग स्वक्षेत्र चलकर १४वां अर्द्धमण्डल पूर्ण करता है। इसके पश्चात् पन्द्रहवें अर्द्धमण्डल पर चलते $\frac{१६\frac{३}{४}}{६७}$ स्वक्षेत्र और $\frac{३३\frac{१}{२}}{६७}$ **वायव्य कोण** में सूर्य के क्षेत्र में चले, $\frac{१६\frac{३}{४}}{६७}$ **ईशान कोण** में चन्द्र के क्षेत्र प्रति चलता है। पन्द्रहवें अर्द्धमण्डल को इस प्रकार **ईशान कोण** में संपूर्ण करता है।

इसी प्रकार **नैऋत्य कोण** से निकलता हुआ चन्द्र १४वें अर्धमण्डल पर $\frac{२४\frac{१}{२}}{६७}$ **वायव्य कोण** सूर्यक्षेत्र चलकर व $\frac{१६\frac{३}{४}}{६७}$ ईशान कोण **में** अपना क्षेत्र चलकर **ईशान कोण** में १४वां अर्द्धमण्डल पूर्ण करता है। इसके पश्चात् १५वें अर्द्धमण्डल पर चलते $\frac{१६\frac{३}{४}}{६७}$ ईशान कोण में स्वक्षेत्र चलकर और $\frac{३३\frac{१}{२}}{६७}$ भाग अग्निकोण में पर-क्षेत्र पर चलता है तथा $\frac{१६\frac{३}{४}}{६७}$ भाग पर-क्षेत्र पर चलकर पन्द्रहवां अर्धमण्डल सम्पूर्ण करता है। चन्द्र स्व १४वें अर्द्धमण्डल में $\frac{१३}{६७}$ भाग प्रवेश कर पर-क्षेत्र में चलता है। इस प्रकार **नैऋत्य कोण** से निकल कर चन्द्र **नैऋत्य कोण** में $\frac{१३}{६७}$ भाग पर-क्षेत्र में चलता है और **ईशान कोण** में निकलकर **ईशान कोण** में $\frac{१३}{६७}$ भाग पर-क्षेत्र पर चलता है। इसके पश्चात् $\frac{४२}{६७}$ भाग का आधा $\frac{२१}{६७}$ एवं $\frac{१८}{६७\times३१}$ चलते हुए चन्द्र अपने १४वें अर्धमण्डल पर जाते हुए पर क्षेत्र-पर चलकर चन्द्र मास पूर्ण करता है। **ईशान कोण** से निकलता चन्द्र $\frac{३\frac{३}{४}}{६७}$ **ईशान कोण** के चन्द्र का पर-क्षेत्र चलकर $\frac{१७\frac{१}{२}}{६७}+\frac{१८}{६७\times३१}$ **अग्नि कोण** में सूर्य का पर-क्षेत्र चलकर चन्द्र मास पूर्ण करता है। **नैऋत्य कोण** से निकलता चन्द्र $\frac{३\frac{३}{४}}{६७}$ नैऋत्य कोण में चन्द्र का पर क्षेत्र वा $\frac{१७\frac{१}{२}}{६७}+\frac{१८}{६७\times३१}$ **वायव्य कोण** से सूर्य का पर-क्षेत्र चलकर चन्द्र मास पूर्ण करता है। दूसरे समय $\frac{२६}{६७}$ जाता हुआ चन्द्र १४वें मण्डल में **स्वयमेव प्रवेश** कर चाल चलकर नक्षत्र मास पूर्ण करता है।

यह गमन की चन्द्र मास में वृद्धि **अनवस्थित रूप** से कही गयी है।

यहाँ श्री अमोलक ऋषिजी ने $\frac{१८}{६७\times६१}$ एक दो स्थानों में **गलत** रूप से लिया है। इसे $\frac{१८}{६७\times३१}$ रूप में लेना चाहिए था।

कोण का निरूपण ऐतिहासिक दृष्टि से शोध का विषय है तथा महत्वपूर्ण है। यहाँ ओ० न्युगेबाएर का ग्रन्थ, *"The Exact Sciences in Antiquity"*. Providence 1957. दृष्टव्य है। साथ ही बेबीलोनिया के उनके **एस्ट्रानामिकल क्यूनिफार्म टेक्स्ट्स** (Astronomical Qunieform Texts) भी दृष्टव्य हैं, जिन पर उनका अनेक वर्षों तक कार्य चला है।

सूत्र १०६४, पृ० ५७३—

सर्वप्रथम **चन्द्र से नक्षत्रों** के **योग काल** को लेते हैं। यहाँ **देश, काल दोनों** की स्थिति माप लेकर चन्द्र से उसी नक्षत्र का योग अगले काल में अन्य देश में लेते हैं। जो चन्द्र मण्डल के जिस देश में जिस नक्षत्र से आज योग करता है तो २८ नक्षत्रों के योगकाल के ८१९ $+\frac{२४}{६२}+\frac{६६}{६२\times६७}$ मुहूर्त काल व्यतीत होने पर वह चन्द्र मण्डल के अन्य देश (भाग) में अन्य सदृश नक्षत्र से योग करता है। समस्त नक्षत्रों के साथ योग करने हेतु चन्द्र अलग-अलग विस्तार वाले नक्षत्रों से भिन्न-भिन्न कालों में योग करता हुआ चक्रकाल को पूर्ण करता है। उपरोक्त कुल मुहूर्त काल की उत्पत्ति का **कारण गणित द्वारा बतलाते हैं**—

अभिजित नक्षत्र का अतिक्रमण $९+\frac{२४}{६२}+\frac{६६}{६२\times६७}$ मुहूर्त में करता है।

१५ मुहूर्त योग वाले ६ नक्षत्रों का अतिक्रमण $१५\times६=९०$ मुहूर्त में करता है।

४५ मुहूर्त योग वाले ६ नक्षत्रों का अतिक्रमण $४५\times६=२७०$ मुहूर्त में करता है।

३० मुहूर्त योग वाले १५ नक्षों का अतिक्रमण $३०\times१५=४५०$ मुहूर्त में करता है।

∴ चक्रवाल के समस्त नक्षत्रों का चन्द्र से योग काल $=८१९+\frac{२४}{६२}+\frac{६६}{६२\times६७}$ मुहूर्त में करता है।

दूसरे चक्र में पुनः इतना समय लगता है, इसलिए ५६ नक्षत्रों का योग काल

$$=२\times\left(८१९+\frac{२४}{६२}+\frac{६६}{६२\times६७}\right)$$

$$=१६३८+\frac{४८}{६२}+\frac{१३२}{६२\times६७}$$

$$=१६३८+\frac{४८}{६२}+\frac{६५+६७}{६२\times६७}$$

$$=१६३८+\frac{४८}{६२}+\frac{६५}{६२\times६७}+\frac{६७}{६२\times६७}$$

$$=१६३८+\frac{४९}{६२}+\frac{६५}{६२\times६७}$$ मुहूर्त लगते हैं।

नोट—उपरोक्त भिन्नों की गणना जहाँ ६२वाँ भाग और ६२ के एक भाग का ६७वाँ भाग लिया जाता है, वहाँ योग उपरोक्त प्रकार से सम्पन्न होगा। इन्हें क्रमशः ८१९ | $\frac{२४}{६२}$ | $\frac{६६}{६७}$ | और १६३८ | $\frac{४९}{६२}$ | $\frac{६५}{६७}$ | रूप में संस्कृत टीका **मु. घासीलाल जी** ने व्यक्त किया है।

अब **१ युग** में २८ नक्षत्रों के चन्द्र योग काल को यहाँ ५४९०० मुहूर्त बतलाया है। स्पष्टीकरण इस प्रकार है—१ युग में १८३० अहोरात्र होते हैं। १ अहोरात्र में ३० मुहूर्त होते हैं। अतएव १ युग में $१८३०\times३०=५४९००$ मुहूर्त होते हैं। **१ युग पश्चात्** जैन गणना में उसी नक्षत्र और चन्द्र पुनः उसी मण्डल के भाग में इतने मुहूर्त पश्चात् मिलते हैं। यह चक्र पुनः चलता है और $२\times(५४९००)=१०९८००$ मुहूर्त व्यतीत होने पर २ **युग की** समाप्ति पर पुनः उसी नक्षत्र और चन्द्र का **उसी मण्डल प्रदेश में** योग होता है।

सूर्य नक्षत्र योग

सूर्य विवक्षित दिवस में जिस नक्षत्र के साथ जिस मण्डल प्रदेश में योग प्राप्त करता है, स्वमण्डल में भ्रमण करता वही सूर्य ३६६ अहोरात्र अतिक्रमण कर पुनः उसी मण्डल प्रदेश में उसी के समान नक्षत्र के साथ योग करता है। दृष्टव्य है कि **उसी** नक्षत्र से योग नहीं होता **अन्य उसी के समान** नक्षत्र से ही योग होता है।

स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

जहाँ तक चन्द्र का प्रश्न है, चन्द्र चक्रवाल **मण्डल** के परिभ्रमण क्रमण में, १ मास में २८ नक्षत्रों का उपभोग करता है। उन नक्षत्रों को सूर्य २८(३६६) अहोरात्र में भोगता है। **एक सूर्य संवत्सर** ३६६ अहोरात्र का होता है। पूर्वोक्त नियमानुसार अन्य ३६६ अहोरात्र दूसरे २८ नक्षत्रों का उपभोग करता है। तत्पश्चात् फिर से वही पूर्व के २८ नक्षत्रों को उतनी ही अहोरात्र संख्या से धीरे-धीरे गमन करके योग करता है। पश्चात् ३६६ अहोरात्र को व्यतीत करके सूर्य उसी मण्डल प्रदेश में उसी प्रकार के दूसरे नक्षत्र के साथ योग करता है, उसी नक्षत्र के साथ नहीं। विवक्षित दिवस में जिस नक्षत्र के साथ रहा हुआ सूर्य जिस मण्डल प्रदेश में योग करता है, तत्पश्चात् धीरे-धीरे स्वकक्षा में भ्रमण करता वही सूर्य उसी नक्षत्र के साथ उसी मण्डल प्रदेश फिर से दूसरे सूर्य संवत्सर के अन्त में योग प्राप्त करता है। द्वितीय चक्र में $२(३६६)=७३२$ अहोरात्र का प्रमाण होता है। इसी प्रकार ५ वर्ष में $५\times३६६=१८३०$ अहोरात्र होते हैं। यहाँ **वक्ष्यमाण** शब्द का प्रयोग किया गया है। उपरोक्त को **वक्ष्यमाण** कहा गया है। **वक्ष्यमाण** शब्द का अर्थ व्याख्यान मान होता है। परीक्षण दृष्टि से भी यह देखने में आया है कि उसी नक्षत्र से योग न होकर उसी के समान अन्य नक्षत्र से होता है। दूसरे युग के अन्त में वही प्रमाण दुगुना होता है। अर्थात् $२\times१८३०=३६६०$ होता है। इत्यादि। यहाँ कहा गया है कि ३६६० अहोरात्र के बाद पुनः वही सूर्य मण्डल के उसी देश में उसी नक्षत्र से योग करता है।

सूत्र १०६५, पृ० ५७४—

युग के पाँच संवत्सरों की **प्रथमा पूर्णमासी में चन्द्र** किस नक्षत्र से योग करता है? धनिष्ठा नक्षत्र के साथ $३+\frac{१९}{६२}+\frac{६५}{६२\times६७}$ मुहूर्त प्रमाण काल योग रहने पर चन्द्र **प्रथम पूर्णिमा** सम्पूर्ण करता है।

इस समय सूर्य पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के साथ योग करता है। इस नक्षत्र के $२८+\frac{३८}{६२}+\frac{३२}{६२\times६७}$ मुहूर्त शेष रहने पर सूर्य इस नक्षत्र के साथ योग करता है। इतना मुहूर्त शेष रहने पर **प्रथम पूर्णिमा** पूर्ण होती है।

गणित स्पष्टीकरण—जिस नक्षत्र के साथ योग करके चन्द्रमा पूर्णिमा पूर्ण करता है उस नक्षत्र को निकालने के लिए ध्रुवराशि बनाते हैं। पांच संवत्सरों के चन्द्रमास ६२ होते हैं। पांच संवत्सरों में नक्षत्र ६७ बार चन्द्र के साथ योग करते हैं। पांच संवत्सरों की १८३० अहोरात्रि होती है। उसे ६७ का भाग देने पर २७ दिन तथा $९+\frac{२४}{६२}+\frac{६६}{६२\times६७}$ मुहूर्त होते हैं। जैसे ६६ चूर्णिया भाग ६७या है, उसी प्रकार इस मान के चूर्णिभाग कुल प्राप्त करने हेतु पहले मुहूर्त बनाते हैं जो $२७\times३०+(९)$ $=८१९$ मुहूर्त होते हैं। इसके ६२या भाग बनाने हेतु उसमें ६२ का गुणा कर २४ जोड़ते हैं—$८१९\times६२+(२४)=$ ५०८०२० भाग प्राप्त होते हैं। इन्हें ६७या भाग बनाने हेतु उसमें ६७ का गुणा कर ६६ जोड़ते हैं—

$५०८०२०\times६७+(६६)=३४०३८००$ कुल भागापभाग प्राप्त होते हैं। इसे ही एक **नक्षत्र मास की ध्रुवराशि** कहते हैं। यह **प्रथम ध्रुवराशि** हुई।

अब **चन्द्रमास** की **ध्रुवराशि** बनाते हैं। पांच संवत्सर के १८३० दिन होते है और इसमें चन्द्रमास ६२ होते हैं। ∴ ६२ का भाग देने पर $\frac{१८३०}{६२}=२९$ दिन एवं $१५+\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त होते हैं। इसके कुल चूर्णिभाग करने हेतु पहले कुल मुहूर्त बनाते है और उसमें १५ मुहूर्त जोड़ते है—$२९\times३०+१५=८८५$ मुहूर्त।

पुनः इसके बासठिया भाग बनाने हेतु ६२ का गुणा कर उसमें ३० जोड़ते हैं—$८८५\times६२+३०=५४९००$ भाग।

पुनः इसके सड़सठिया चूर्णिभाग बनाने हेतु ६७ का गुणा करने पर $५४९००\times६७=३६७८३००$ चूर्णिये भाग प्राप्त होते है। यह **चन्द्र ध्रुवराशि** हुई। इसे **दूसरी ध्रुवराशि** कहेंगे।

प्रथम पूर्णिमा—अब ज्ञात करना है कि चन्द्र कौन से नक्षत्र के साथ कर प्रथम मास पूर्ण करे। यह जानने के लिए **दूसरी ध्रुवराशि** को १ से गुणित कर **प्रथम ध्रुवराशि** द्वारा भाजित करते हैं। यथा :

$(३६७८३००\times१)\div३४०३८००$ इससे पूर्ण संख्या तथा ६७ और फिर ६२ से भाग देने पर मुहूर्तादि प्राप्त होते हैं—यह विधि ध्रुवराशि से विपरीत चलती है।

इससे एक मास पूर्ण होने में १ नक्षत्र मास $+$ ६६ मुहूर्त $+\frac{५}{६२}$ मुहूर्त $+\frac{१}{६२\times६७}$ मुहूर्त प्राप्त होते हैं। **युग के प्रारम्भ से ही चन्द्रमा के साथ अभिजित नक्षत्र का योग होता है।** वह नक्षत्र ९ मुहूर्त $+\frac{२४}{६२}+\frac{६६}{६२\times६७}$ मुहूर्त तक रहता है। इससे आगे श्रवण नक्षत्र ३० मुहूर्त तक रहता है। इसलिए $६६+\frac{५}{६२}+\frac{१}{६२\times६७}$ मुहूर्त में से $३९+\frac{२४}{६२}+\frac{६६}{६२\times६७}$ मुहूर्त घटा देने पर $२६+\frac{४२}{६२}+\frac{२}{६२\times६७}$ मुहूर्त शेष रहते हैं। यही शेष प्रमाण चन्द्र धनिष्ठा नक्षत्र के साथ योग करता है। इसको धनिष्ठा के ३० मुहूर्त में से घटने पर $३+\frac{१९}{६२}+\frac{६५}{६२\times६७}$ मुहूर्त शेष रहते हैं। इतना काल **धनिष्ठा नक्षत्र पूर्णिमा सम्पूर्ण** होने पर शेष रहता है।

इसी प्रकार **सूर्य के साथ नक्षत्र के योग पूर्णिमा** सम्पूर्ण होती है जिसे निकालने की विधि निम्न प्रकार है—

पांच संवत्सरों में चन्द्रमास ६२ है और सूर्य के साथ १-१ नक्षत्र पांच बार परिभ्रमण करते है। पांच संवत्सर की १८३० अहोरात्र है। इसलिए $\frac{१८३०}{५}=३६६$ दिनों में सूर्य सम्पूर्ण २८ नक्षत्रों के साथ योग करता है। इसके मुहूर्त के बासठिये भाग करने हेतु $३६६\times३०\times६२=१०९८०\times६२=६८०७६०$ ये मुहूर्त के बासठिये भाग आये। यह १ नक्षत्र वर्ष होता है। इस विधि हेतु यह **प्रथम ध्रुवराशि** हुई। चन्द्रमास की **ध्रुवराशि** हेतु पांच संवत्सर के १८३० दिन होते है। इसको ६२ से भाग देने पर $\frac{१८३०}{६२}=२९$ दिन $१५+\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त होते हैं। इसके $२९\times३०+१५=८८५$ मुहूर्त हुए। इसके बासठिये भाग करने के लिए ६२ से गुणित कर ३० बासठिया भाग मिलाते हैं। अन्तु $८८५\times६२+(३०)=५४९००$ मुहूर्त के बासठिये भाग होते है। यह चन्द्र मास के भाग हुए। इसे **दूसरी ध्रुव राशि** कहते हैं।

अब यह निकालना है कि **सूर्य** कौन से **नक्षत्र** के साथ योग करता हुआ **प्रथम चन्द्र** मास समाप्त करता है। यह निकालने को दूसरी ध्रुवराशि को १ से गुणा कर **प्रथम ध्रुव राशि** से भाजित करते हैं। यह विधि बासठिये भाग निकालने की विलोम है। भाग नास्ति शून्य है, तब मुहूर्त करने को ६२ से भाग देते हैं जिससे ८८५ मुहूर्त तथा $\frac{३०}{६२}$ भाग होते हैं। अब **प्रथम युग** बैठने के समय सूर्य के साथ पुष्य नक्षत्र १३८ मुहूर्त में पूर्ण होकर १३९वें मुहूर्त से २६४ मुहूर्त पर्यंत योग करके नक्षत्र की समाप्ति होती है। इसलिए पुष्य नक्षत्र से गिनती करते हैं। प्रथम पूर्णमास सम्पूर्ण होते सूर्य ८८५ मुहूर्त एवं $\frac{३०}{६२}$ भाग मुहूर्त तक नक्षत्र के साथ योग करता है। पुनः मघा नक्षत्र ८६७ मुहूर्त में सम्पूर्ण होता है। इसलिए ८८५ मुहूर्त एवं $\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त में से ८६७ मुहूर्त घटाने पर

१८ मुहूर्त $+\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के साथ योग करते हैं। यह पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र ४०२ मुहूर्त का होता है। इसमें से १८$\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त घटाने पर ३८३ $\frac{३२}{६२}$ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के शेष रहते हैं। इस समय **सूर्य प्रथम पूर्णमास** सम्पूर्ण करता है।

सूर्य नक्षत्र ३८३ $\frac{३२}{६२}$ मुहूर्त शेष रहे तब **चन्द्र नक्षत्र** कितना शेष रहता है? इसके बासठिया भाग ३८३ × ६२ + (३२) = २३७७८ होते हैं। अब अनुपात लेते हैं—पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र ३० मुहूर्त तक चन्द्र के साथ योग करता है। इससे इसे ३० से गुणित करने पर २३७७८ × ३० = ७१३३४०। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र ४०२ मुहूर्त तक सूर्य के साथ योग करता है। इससे ७१३३४० को ४०२ द्वारा भाजित करते हैं तब १७७४ $\frac{१९२}{४०२}$ प्राप्त होते हैं। इसके सड़सठिया भाग करने को ६७ से गुणित करते हैं, जिससे १९२ × ६७ = १२८६४ होते हैं। इसे पुनः ४०२ का भाग देने पर ३२ भाग प्राप्त होते हैं। १७७४ के बासठिया भाग के मुहूर्त बनाने पर २८ मुहूर्त तथा ३८ शेष रहते हैं। इससे चन्द्र नक्षत्र सूर्य के साथ २८ $+\frac{३८}{६२}+\frac{३२}{६२\times६७}$ मुहूर्त शेष रहने पर **प्रथम पूर्णिमा** सम्पन्न होती है।

द्वितीय पूर्णिमा—पुनः प्रश्न है कि पाँच संवत्सरों में **दूसरी पूर्णिमा** होते चन्द्र कौन से नक्षत्र के साथ योग करेगा? उत्तराभाद्रपद नक्षत्र के साथ योग करके दूसरी पूर्णिमा २७ $+\frac{१४}{६२}+\frac{६४}{६२\times६७}$ मुहूर्त शेष रहे तब दूसरा मास सम्पूर्ण होता है।

नोट—दृष्टव्य है कि सू०प्र० टीका श्री घासीलाल जी म०, भाग २ पृ० २४४ आदि पर **भिन्न** द्वारा ही उपरोक्त प्रथम पूर्णिमा सम्बन्धी गणनाएँ **धूलिकर्म** द्वारा प्रस्तुत की गयी हैं। पाटी गणित और धूलि (रेत) पर गणित का उच्चरूप हल किया जाता था। किसी तख्ते अथवा भूमि पर रेत बिछाकर गणित किया जाता था। यह गणित अरब देशों तक भारत से पहुँचा था।

यहाँ इस टीका में प्रस्तुत **दूसरी पूर्णिमा** सम्बन्धी प्रश्न को हल किया गया है:—

पूर्व विधि से यहाँ भिन्न विधि ली गई है, जहाँ ध्रुव राशि तो वही लेते हैं; किन्तु गणना दूसरी विधि से करते हैं:—

यहाँ पर भी **ध्रुव राशि** ६६ $+\frac{५}{६२}+\frac{१}{६२\times६७}$ मुहूर्त प्रमाण लेते हैं।

दूसरी पूर्णिमा की गणना हेतु इस **ध्रुव राशि** में २ का गुणा करने पर १३२ $+\frac{१०}{६२}+\frac{२}{६२\times६७}$ मुहूर्त प्राप्त होते हैं। इसमें से पूर्व प्रतिपादित युक्ति से अभिजित नक्षत्र का शोधनक ९ $+\frac{२४}{६२}+\frac{६६}{६२\times६७}$ मुहूर्त घटाते हैं तो १२२ $+\frac{४७}{६२}+\frac{३}{६२\times६७}$ मुहूर्त प्राप्त होते हैं। अब ज्ञात है, कि अभिजित के पश्चात् चन्द्र के साथ श्रवण ३० मुहूर्त, धनिष्ठा ३० मुहूर्त, शतभिषा १५ मुहूर्त, पूर्वाभाद्रपद ३० मुहूर्त और उत्तराभाद्रपद ४५ मुहूर्त रहते हैं। इनका योग १५० मुहूर्त होता है जिसमें से १२२ $+\frac{४७}{६२}+\frac{३}{६२\times६७}$ घटाने पर २७ $+\frac{१४}{६२}+\frac{६४}{६२\times६७}$ मुहूर्त शेष रहने पर चन्द्र **दूसरी पूर्णिमा** को समाप्त करता है।

इसी प्रकार सूर्य-इन्द्र दूसरी पूर्णिमा को किस नक्षत्र से योग करता है। यह निकालने हेतु यहाँ भी ध्रुव राशि $६६+\frac{५}{६२}+\frac{१}{६२\times६७}$ है जिसे दो से गुणित करने पर $१३२+\frac{१०}{६२}+\frac{२}{६२\times६७}$ मुहूर्त प्राप्त होते हैं। इस गुणितांक रूप गुणनफल में से पुष्य नक्षत्र का शोधनक $१९+\frac{४३}{६२}+\frac{३३}{६२\times६७}$ को घटाया जाता है।

नोट—यह शोधनक किस प्रकार प्राप्त करते हैं? पूर्व युग की समाप्ति के अवसर पर पुष्य नक्षत्र का $\frac{२३}{६७}$ भाग समाप्त होकर $\frac{४४}{६७}$ भाग शेष रहता है। इसके मुहूर्त बनाने हेतु ३० का गुणन करने से $\frac{४४}{६७}\times ३०=१९+\frac{४३}{६२}+\frac{३३}{६२\times६७}$ मुहूर्त प्राप्त होते हैं।

अतः इसे $१३२+\frac{१०}{६२}+\frac{२}{६२\times६७}$ में से घटाने पर $११२+\frac{२८}{६२}+\frac{३६}{६२\times६७}$ मुहूर्त प्राप्त होते हैं। इसमें से अतिक्रमित ३० मुहूर्त पुष्य के, १५ मुहूर्त अश्लेषा के, ३० मुहूर्त मघा के तथा ३० मुहूर्त पूर्वाफाल्गुनी के निकाल देने पर शेष मुहूर्त उत्तराफाल्गुनी के साथ योग के रह जाते हैं जो $७+\frac{३३}{६२}+\frac{२१}{६२\times६७}$ मुहूर्त होते हैं।

इसी प्रकार अगली-अगली पूर्णिमाओं की गणना होती है।

सूत्र १०६६, पृ० ५७५, ५७६—

यहाँ पूर्वोक्त विधि के अनुसार ध्रुव राशि द्वारा अमावस्याओं में चन्द्र और सूर्य के साथ नक्षत्रों के योगों का विवरण है।

सूत्र १०६७, पृ० ५७६-५७७

यहाँ हेमंत ऋतु संबंधी पांच आवृत्ति में चन्द्र सूर्य का नक्षत्र योग प्रतिपादित हुआ है।

जब हस्त नक्षत्र का $५+\frac{५०}{६२}+\frac{६०}{६२\times६७}$ मुहूर्त शेष रहता है तब चन्द्र वर्तमान होकर हेमन्त ऋतु की प्रथम आवृत्ति को प्रवर्तित करता है।

गणितीय प्रक्रिया

पूर्व क्रम की अपेक्षा से हेमन्त ऋतु की **प्रथम आवृत्ति** वास्तव में दूसरी होती है। युगसम्बन्धी दस अयनों के प्रवर्तन अवसर में प्रथम की दोनों ओर गणना होती है। अतः उसके स्थान में दो ध्रुवांक रखते हैं। पूर्व कथित गाथानुसार क्रम से इनमें से १ घटाने पर २—१ = १ प्राप्त होता है। यहाँ पूर्वकथित ध्रुवराशि $५७३+\frac{३६}{६२}+\frac{६}{६२\times६७}$ होती है।

नोट—उपर्युक्त ध्रुवराशि को निम्न प्रकार से प्राप्त करते हैं—

१ युग में सूर्य के १० अयन होते हैं। सूर्य के १० अयन में चंद्र नक्षत्र के ६७ पर्याय उपलब्ध होते हैं। अतः १ अयन में $\frac{६७}{१०}=६\frac{७}{१०}$ पर्याय प्राप्त होंगे। यहाँ ६ पूर्णांक होने से उन्हें छोड़कर इतनी पर्याय में मुहूर्त निकालने हेतु त्रैराशिक करते हैं। यहाँ १० भागों से $२७\frac{२१}{६७}$ भाग लब्ध होते हैं, अतः ७ भागों में कितना लब्ध होगा :

$$२७\frac{२१}{६७}\times ७\div १०=\left(१८+\frac{९}{१०}\right)+\left(\frac{२१}{६७}\times\frac{७}{१०}\right)$$ दिवस प्राप्त होते हैं।

(वास्तव में संक्षेप में $२७\frac{२१}{६७}\times ७\div १०=१२८१\div ६७$ होते हैं।)

इनके मुहूर्त निकालने हेतु ३० का गुणा करने पर

$\left(१८+\frac{९}{१०}\right)\times ३०=५४०+२७=५६७$ मुहूर्त प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार $\frac{२१}{६७}\times\frac{७}{१०}\times ३०=\frac{४४१}{६७}=६\frac{३९}{६७}$

अतः $५६७+६\frac{३९}{६७}=५७३\frac{३९}{६७}$ मुहूर्त होते हैं।

अब $\frac{३९}{६७}$ भाग के मुहूर्त बनाने हेतु ३९ में ६२ का गुणा कर ६७ का भाग होते हैं।

अतः $\frac{३९}{६७} \times ६२ = \frac{२४१८}{६७} = \frac{३६}{६२} + \frac{६}{६२ \times ६७}$ मु० होते हैं।

इस प्रकार **ध्रुवराशि** $५७३ + \frac{३६}{६२} + \frac{६}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त प्राप्त होती है। इसे **सूर्य आवृत्ति में** चंद्र नक्षत्र योग जानने में प्रयुक्त करते हैं।

अब **ध्रुव राशि** को १ से गुणित करने पर यह उसी रूप रहती है। अब इस राशि में से १९ नक्षत्र (अभिजित नक्षत्र से लेकर उत्तराफाल्गुनी पर्यंत) के विस्तार के $५४९ + \frac{२४}{६२} + \frac{६६}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त को शोधित करने पर $\left(५७३ + \frac{३६}{६२} + \frac{६}{६२ \times ६७}\right) - \left(५४९ + \frac{२४}{६२} + \frac{६६}{६२ \times ६७}\right)$

$= २४ + \frac{११}{६२} + \frac{७}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त प्राप्त होते हैं। पर इस संख्या से हस्त नक्षत्र शुद्ध नहीं होता है। हस्त नक्षत्र ३० मुहूर्त का होता है। इसलिए $३० - \left(२४ + \frac{११}{६२} + \frac{७}{६२ \times ६७}\right)$

$= ५ + \frac{५०}{६२} + \frac{६०}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त हस्त नक्षत्र के शेष रहने पर चंद्र वर्तमान रहकर उत्तरायण गतिरूप पहली **हेमन्त ऋतु की आवृत्ति को** प्रवर्तित करता है।

अगला प्रश्नोत्तर

प्रथम आवृत्ति के प्रवर्तन काल में सूर्य उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के साथ रहता है।

गणितीय प्रक्रिया

यहाँ १० अयन से ५ सूर्य नक्षत्र पर्याय लभ्य होते हैं, अतः १ अयन से $\frac{५}{१०} = \frac{१}{२}$ पर्याय लब्ध होंगे। यह ज्ञात है कि अभिजित नक्षत्र समाहृत स्वरूप वाला सबसे अधोवर्ती रहता है। उसका सड़सठिया भाग २१ होता है। अतः सब का योग $= २०१ + ६०३ + १००५ + २१ = १८३०$।

अतः सड़सठिया १८३० होते हैं : $३३\frac{१}{२} \times ६ = २०१, \frac{२०१}{२} \times ६ = ६०३$, $६७ \times १५ = १००५$, अधोवर्ती $= २१$

इस प्रकार सड़सठ भागात्मक नक्षत्र पर्याय १८३० होता है, जिसका $\frac{१}{२}$ करने पर ९१५ प्राप्त होता है। इसमें पिछले अयन में पुष्य नक्षत्र का सड़सठिया $\frac{२०}{६७}$ भाग बीता है। और $\frac{४४}{६७}$ भाग शेष है। उसको भी जोड़ने पर $\frac{२०}{६७} + \frac{४४}{६७} = \frac{६४}{६७}$ प्राप्त होता है।

अब $\frac{९१५}{६७}$ को शोधित करने पर $\frac{९१५}{६७} - \frac{४४}{६७} = \frac{८७१}{६७}$ $= १३$ प्राप्त होते हैं। अतः १३ से आश्लेषादि उत्तराषाढ़ा पर्यन्त के नक्षत्र शोधित होते हैं। इससे स्पष्ट है कि अभिजित् नक्षत्र के प्रथम समय में माघ मास भाविनी **प्रथम आवृत्ति** प्रवर्तित होती है।

इसी प्रकार **ध्रुवराशि** के द्वारा अन्य आवृत्तियों की गणना की जाती है। गणित ज्योतिष इतिहास के दृष्टिकोण से **ध्रुवराशि** का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सूत्र १०६८, पृ० ५७८

इस सूत्र में वार्षिकी आवृत्तियों में चन्द्र और सूर्य के नक्षत्रों का योग काल वर्णित है।

उदाहरणार्थ चन्द्र अभिजित के प्रथम समय में अभिजित नक्षत्र से योग करता है। **सूर्य प्रथम आवृत्ति में** पुष्य के $१९ + \frac{४३}{६२} + \frac{३३}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त शेष रहने पर **नक्षत्र से योग** करता है।

प्रथम आवृत्ति विषयक चन्द्र नक्षत्र योग :

यहाँ **प्रथम आवृत्ति** इष्ट होने से प्रथम आवृत्ति के स्थान में १ का अंक रखते हैं। गाथानुसार (सू० ज्ञ० प्र०, पृ० ५७५) रूपोन करने पर $१ - १ = ०$, शून्य प्राप्त होता है। अतः आगे की क्रिया संभव नहीं है। अतः यहाँ पाश्चात्य युग भाविनी आवृत्ति में जो दशवी आवृत्ति की संख्या १० को रखकर उसमें

ध्रुवराशि मुहूर्त $५७३ + \frac{३६}{६२} + \frac{६}{६२ \times ६७}$ से गुणित करने पर $५७३५ + \frac{५०}{६२} + \frac{६०}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त होते हैं। इनमें से अभिजितादि नक्षत्र के शोधनक को शोधित करना चाहिए। वह इस प्रकार अभिजित नक्षत्र से लेकर उत्तराषाढा पर्यन्त २८ नक्षत्रों का १ पर्याय का शोधनक $८१९ + \frac{२४}{६२} + \frac{६०}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त होता है। अब ७ पर्याय का शोधनक बनाने हेतु इसमें ७ का गुणा करते हैं। स्थूल रूप से केवल ८१९ लेने पर $८१९ \times ७ = ५७३३$ होता है। ५७३५—५७३३=२ मुहूर्त अथवा १२४ बासठिया मुहूर्त भाग होते हैं। अतः $\frac{५०}{६२} + \frac{१२४}{६२} = \frac{१७४}{६२}$ होता है।

इसी प्रकार ८१९ के पश्चात् शेष रहे $\frac{२४}{६२}$ में भी ७ का गुणा करने पर $\frac{१६८}{६२}$ भाग होते हैं जिन्हें $\frac{१७४}{६२}$ में से शोधित करने पर $\frac{१७४}{६२} - \frac{१६८}{६२} = \frac{६}{६२}$ मूहूर्त बचते हैं। इसका सड़सठिया चूर्णि भाग $\frac{६}{६२} \times \frac{६७}{६७} = \frac{४०२}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त होता है। इसे शेष $\frac{६०}{६२ \times ६७}$ में जोड़ने पर कुल $\frac{४०२}{६२ \times ६७} + \frac{६०}{६२ \times ६७} = \frac{४६२}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त होता है जिसमें से अब $८१९ + \frac{२४}{६२}$ के बाद शेष रहे $\frac{६६}{६२ \times ६७}$ में ७ का गुणन करके शोधित करेंगे। इस प्रकार $\frac{६६ \times ७}{६२ \times ६७} = \frac{४६२}{६२ \times ६७}$ आता है।

अतः पूर्वोक्त $\frac{४६२}{६२ \times ६७}$ में से $\frac{४६२}{६२ \times ६७}$ प्राप्त राशि घटाने पर शून्य रहता है। अतः समग्र उत्तराषाढा नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होने पर तत्पश्चात् अभिजित नक्षत्र के प्रथम समय से युग की प्रथम आवृत्ति होती है। यह पाँच संवत्सरों में प्रथम वर्षा काल भाविनी श्रावण मास में होने वाली सूर्य की दक्षिणायन गति रूप चन्द्र अभिजित नक्षत्र के साथ संपन्न होती है।

प्रथम आवृत्ति विषयक सूर्य नक्षत्र योग :

पंच वर्षात्मक युग में १० अयन होते हैं। उनमें ५ अयन वर्षा काल में होते हैं जो दक्षिणायन गतिरूप है। शेष पाँच अयन उत्तरायण रूप हेमंत काल में होते हैं। १ संवत्सर में २ अयन होते हैं पर सूर्य नक्षत्र पर्याय एक ही होता है। अतः ५ वर्षीय युग में सूर्य नक्षत्र पर्याय ५ होते हैं। १० अयन में ५ पर्याय होते हैं अतः १ अयन में $\frac{५}{१०}$ अथवा $\frac{१}{२}$ पर्याय होता है।

यहाँ नक्षत्र पर्याय १८३० होते हैं जो सड़सठ रूप होते हैं। अब शतभिषक आदि ६ नक्षत्र अर्द्धक्षेत्र वाले होने से $\frac{६७}{२}$ अथवा $३३\frac{१}{२}$ वाले होते हैं जो $\frac{६७}{२} \times ६ =$ कुल २०१ होते हैं। इसी प्रकार उत्तराभाद्रपदादि ६ नक्षत्र द्व्यर्द्ध क्षेत्र वाले होने से प्रत्येक का मान $६७ + ३३\frac{१}{२}$ अथवा $\frac{२०१}{२}$ होता है जो $\frac{२०१}{२} \times ६ =$ कुल $\frac{१२०६}{२} = ६०३$ होते हैं। अब १५ नक्षत्र शेष रहते हैं जो समक्षेत्र वाले ३० मुहूर्त प्रमाण के ६७ भाग रहते हैं अतः ये $६७ \times १५ =$ कुल १००५ होते हैं। अभिजित नक्षत्र समाहार स्वरूप वाला सबसे अधोवर्ति होता है; इसका सड़सठिया भाग २१ होता है। इन सभी का योग $२०१ + ६०३ + १००५ + २१ = १८३०$ होता है।

इस प्रकार सड़सठिया भाग कुल १८३० आवश्यक परिपूर्ण नक्षत्र पर्याय होता है जिसका आधा ९१५ होता है। इसमें से अभिजित के २१ घटाने पर $९१५ - २१ = ८९४$ शेष रहते हैं। इनको ६७ से विभाजित करने पर $\frac{८९४}{६७} = १३ + \frac{२३}{६७}$ रहता शेष होता है। इसमें से १३ द्वारा पुनर्वसु पर्यन्त के नक्षत्र शुद्ध होते हैं। शेष जो $\frac{२३}{६७}$ रहता है उसे $\frac{२३}{६७} \times ३० = \frac{६९०}{६७}$ मुहूर्त होते हैं जो $१० + \frac{१८}{६२} + \frac{३४}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त होते हैं। [illegible]

होता है कि पुष्य नक्षत्र का उक्त मुहूर्त समाप्त होने पर, अथवा

$$३० - \left(१० + \frac{१८}{६२} + \frac{३४}{६२ \times ६७}\right) = १९ + \frac{४२}{६२} + \frac{३३}{६२ \times ६७}$$

मुहूर्त शेष रहने पर **प्रथम श्रवण मास** भाविनी **आवृत्ति** प्रवर्तित होती है।

अगली आवृत्तियों के नक्षत्र योग **ध्रुवराशि** का उपयोग करते हुए उपरोक्त विधि से प्राप्त कर लेते हैं।

गणित ज्योतिष इतिहास की दृष्टि से ये गाथाएँ **ध्रुवराशि** के उपयोग सम्बन्धी होने से महत्वपूर्ण हैं। इनमें जो पारिभाषिक शब्द आये हैं वे भी भाषा इतिहास की दृष्टि से ज्योतिष सम्बन्धी गणना-काल के सूचक हैं।

सूत्र १०९७-९८, पृ० ६१०-६१९

इस सूत्र में **कुल**, **उपकुल** और **कुलोपकुल** संज्ञक नक्षत्र के योग का बोध दिया गया है। मास समान नाम वाले नक्षत्रों की **कुल** संज्ञा होती है। ये १२ हैं। पर यहाँ १३ नक्षत्र होते हैं। मास बोधक **कुल संज्ञक** नक्षत्र के समीपवर्ती होने से ११ नक्षत्र **उपकुल** संज्ञक कहे जाते हैं। वक्ष्यमाण अधोनिर्दिष्ट चार नक्षत्र **कुलोपकुल** संज्ञक कहे गये हैं जो **कुल संज्ञक** एवं **उपकुल** संज्ञक नक्षत्रों के मध्य में कहीं-कहीं रहते हैं : अभिजित्, शतभिषा, आर्द्रा और अनुराधा। (देखिये सू० ज्ञ० प्र०, पृ० ७५१ आदि)

युग की आदि में **प्रथम श्राविष्ठी अमावस्या** कौन चन्द्र योग से युक्त नक्षत्र वाली होकर समाप्त होती है, ऐसा प्रश्न हल करने हेतु **अवधार्य** राशि $६६ + \frac{५}{६२} + \frac{१}{६२ \times ६७}$ का उपयोग करते हैं।

अवधार्य राशि निकालने की प्रक्रिया

१२४ पर्व संख्या से ५ सूर्य नक्षत्र का पर्याय लभ्य होता है, अतः २ पर्व से $\frac{२ \times ५}{१२४} = \frac{५}{६२}$ राशि प्राप्त होती है। इस अंक राशि का नक्षत्र करने हेतु अंश में १८३० का गुणा करते हैं तथा हर या छेद राशि में ६७ का गुणा करते हैं।

इस प्रकार $\frac{५ \times १८३०}{६२ \times ६७} = \frac{९१५०}{४१५४}$ राशि प्राप्त होती है। अब इसके मुहूर्त बनाने हेतु अंश में ३० का गुणा करने पर यह राशि $\frac{९१५० \times ३०}{४१५४} = \frac{२७४५००}{४१५४}$ मुहूर्त अथवा $६६ + \frac{५}{६२} + \frac{१}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त रूप में प्राप्त हो जाती है जिसे **अवधारित राशि** कहा गया है। **ध्रुवराशि** और **अवधार्य राशि** में जो भी भेद हो उसे समझना चाहिए। किन्तु यहाँ कोई भेद प्रतीत नहीं होता है।

अब प्रश्नोत्तर हेतु प्रथम अमावस्या का अंक १ लेकर इससे **अवधार्य राशि** को गुणित करते हैं। अब पुनर्वसु नक्षत्र का $२२ + \frac{४६}{६२}$ मुहूर्त शोधनक होने से उसे अवधार्य राशि में घटाने पर $४३ + \frac{२१}{६२} + \frac{१}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त शेष रहते हैं। अतः पुष्य नक्षत्र के ३० मुहूर्त से शोधित होने पर $१३ + \frac{२१}{६२} + \frac{१}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त शेष रहते हैं। अब अश्लेपा नक्षत्र द्विक्षेत्रात्मक होने से १५ मुहूर्त प्रमाण होता है जिसे उपरोक्त राशि से शोधित करने पर $१ + \frac{४४}{६२} + \frac{६६}{६२ \times ६७}$ मुहूर्त शेष रहने पर **श्राविष्ठी अमावस्या** समाप्त होती है।

दूसरी अमावस्या पर विचार करने हेतु युग की आदि से वह १३वीं संख्या होने से **अवधार्य राशि** को इससे गुणित कर पुनः विगत-प्रक्रिया द्वारा चन्द्र नक्षत्र योग निकालते हैं। तीसरी श्राविष्ठी हेतु युग की आदि से २५वीं संख्या होने से **अवधार्य राशि** को २५ से गुणित कर पुनः वही गणना करते हैं। क्या यहाँ **अवधार्य राशि** और **ध्रुवराशि** एक सी प्रतीत नहीं होती है? यह स्पष्ट नहीं हुआ है।

इस प्रकार उपरोक्त विधि से १२ अमावस्याओं में चन्द्र योग नक्षत्र विवेचन करते हैं। इसी सूत्र में इन्ही अमावस्याओं का **कुलादि नक्षत्र योग** योजना बतलाई गई है।

सूत्र १०९९, पृ० ६१९-६२१

इस सूत्र में नक्षत्रों का पूर्वादि भागों से **योग, क्षेत्र** और **काल** प्रमाण दिया गया है। यह योग चन्द्र और नक्षत्र के विस्तार तथा उनकी **सापेक्ष गति** पर निर्भर है और दिन के प्रारम्भ एवं अन्त सम्बन्धी है। इसकी गणना सरल है। यह अवलोकन, स्पष्ट है कि **विभिन्न स्थलों** के लिए भिन्न-भिन्न होगा।

सूत्र ११०६, पृ० ६२८-६३२

पूर्वाचार्यों ने आठ गाथाओं द्वारा **पौरुषी** का परिमाण प्रतिपादित किया है। इनका भावार्थ इस प्रकार है

(देखिए सू० ज्ञ० प्र०, भाग १, पृ० ९४७)

युग में जिस पर्व का जिस तिथि में पौरुषी का परिमाण जानना चाहें तो पहले युग के आदि से आरम्भ करके जितने पर्व बीत चुके हों उनको लेकर १५ से गुणा करें। गुणा करके विवक्षित तिथि से पहले जितनी तिथियाँ व्यतीत हुई हों उन तिथियों को जोड़ें। जोड़कर १८६ से उनका भाग करें तो इस प्रकार १ अयन में १८३ मण्डल परिमाण में चन्द्र निष्पादित तिथियों की संख्या १८६ होती है, उनका भाग करने पर जो भागफल आता है वह पौरुषी का प्रमाण होता है। उनमें जो लब्ध विषम हो, जैसे कि १, ३, ५, ७, ९, ... तो उसके समीपस्थ दक्षिणायन समझना चाहिए। यदि लब्ध सम हो, जैसे २, ४, ६, ८, १० आदि तो उसके पर्यन्त उत्तरायण समझना चाहिए।

यदि १८६ द्वारा भाग देने पर पूरा भाग न जावे तो शेष बचने की विधि यह है—अयन बीतने इत्यादि जो पर्व भाग करने पर या भाग के असम्भवपन की दशा में शेष रूप अयन गत तिथि का समूह होता है। उनको ४ से गुणित करते हैं। गुणा करके पर्व पाद से युग में जितनी पर्व संख्या से (ग्रन्थाग्र ४०००) पर्व १२४ होते हैं, उनके पाद से अर्थात् चतुर्थांश से अर्थात् ३१ से भाग करने पर जो भागफल आता है उतने अंगुल और अंगुल के अंश पौरुषी का क्षय वृद्धि जानना चाहिए। दक्षिणायन में पाद ध्रुवराशि के ऊपर वृद्धि रूप से तथा उत्तरायण में पाद ध्रुवराशि के क्षयरूप जानना चाहिए।

गुणकार और भागकार उत्पत्ति—यदि १८६ तिथि से २४ अंगुलों के क्षय या वृद्धि में प्राप्त हो तो १ तिथि में $\frac{२४}{१८६}$ अथवा $\frac{४}{३१}$ क्षय या वृद्धि होती है। जो लब्ध फल है उतने अंगुल क्षय-वृद्धि होती है।

दक्षिणायन में दो पाद के ऊपर अंगुलों से वृद्धि होती है तथा उत्तरायण में ४ पाद से अंगुलों की हानि या क्षय होता है।

युग के प्रथम संवत्सर में श्रावणमास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा में २ पाद प्रमाणवाली पौरुषी निष्पन्न होती है। उसकी प्रतिपदा से आरम्भ कर प्रत्येक तिथि का क्रम से यावत् प्रत्येक बढ़ाते हैं यावत् पौषमास के साढ़े तीन अहोरात्र पर्यन्त से चन्द्र मास की अपेक्षा से ३१ तिथि में ४ अंगुल की वृद्धि होती है। कारण कि १ तिथि में $\frac{४}{३१}$ भाग हानि वृद्धि होती है।

युग के प्रथम संवत्सर में माघ के कृष्णपक्ष में सप्तमी से आरम्भ कर ४ पाद से प्रत्येक तिथि $\frac{४}{३१}$ भाग घटती हुई उत्तरायण पर्यन्त दो पाद पौरुषी हो जाती है।

पर्व-तिथि में पौरुषी गणना

यदि युग के प्रारम्भ से ८४वें पर्व की ५वीं तिथि में पौरुषी पाद गणना में निकालना हो तो सर्वप्रथम एक ओर ८४ रखते हैं और उसके नीचे ५वीं तिथि के लिए में प्रश्न होने से ५ रखते हैं। तथा ८४ को १५ से गुणा करते हैं। इस प्रकार ८४×१५ =१२६० होते हैं जिनमें उस ५ जोड़ने पर १२६५ होते हैं।

इसे १८६ का भाग देने पर $\frac{१२६५}{१८६}=६+\frac{१४९}{१८६}$ प्राप्त होते हैं। यहाँ ६ लब्ध पूर्ण होते हैं छह अयन पूरा होकर सातवाँ अयन प्रवर्तता है। ध्रुव १४९ से ४ का गुणा करते हैं तब १४९×४=५९६ प्राप्त होता है। इसमें ३१ का भाग देने पर $१९+\frac{७}{३१}$ प्राप्त होते हैं। १९ अंगुल में, १२ अंगुल का १ पाद होने के कारण १ पाद लब्ध होकर ७ अंगुल शेष रहता है। इस प्रकार ६ उत्तरायण निकल चुके होते हैं और ७वां दक्षिणायन प्रवर्तता है। अब इस १ पाद को २ पाद वाली ध्रुवराशि में प्रक्षिप्त करने पर ३ पाद होते हैं तथा ७ अंगुल होते हैं। अब $\frac{७}{३१}$ भाग के यव बनाने के लिए १ अंगुल = ८ यव लेकर ७ को ८ से गुणित करते हैं तो ७×८=५६ प्राप्त होते हैं। अतः $\frac{५६}{३१}=१+\frac{२५}{३१}$ यव होते हैं। इसी प्रमाण की पौरुषी प्राप्त होती है।

इसी प्रकार उत्तरायण की ध्रुवराशि ४ पाद लेकर यथोचित प्रश्न हल करना है।

२. प्राचीन गणित का आधुनिक गणित में क्रमशः विकास

प्राचीन गणित विश्व के कुछ सभ्यता के केन्द्रों पर अपने अभिलेख सुरक्षित रहे होने के कारण प्रकाश में आया। इन केन्द्रों में विशेषकर बेबिलन, मिस्र और भारत सुप्रसिद्ध हैं।* बीज, संख्या और आकृति द्वारा गणित के रूप का विकास हजारों वर्ष तक चला किन्तु सर्वाधिक क्रान्ति वर्द्धमान महावीर के युग में तथा विगत शताब्दी में दृष्टिगत हुई है, जिसे महात्मा गांधी युग कहा जा सकता है। अहिंसा का आन्दोलन सर्वव्यापी होता है और महान् तीर्थ का प्रवर्तन करता है। तीर्थंकर महावीर की क्रान्ति आत्मिक थी और महात्मा गांधी की राजनैतिक।

प्राचीन काल में नदियों के किनारे विकसित हुई प्रायः ५००० वर्ष पूर्व में विकसित सभ्यताओं वाले उक्त देशों में ज्योतिष एवं लौकिक गणनाओं हेतु रेखागणित, अंकगणित और बीजगणित के आदिम रूप को खोजा गया होगा। कृषि सम्बन्धी काल गणना हेतु पंचांग को विकसित किया गया होगा और भवन सम्बन्धी रचना के लिए यांत्रिकी को विकसित किया गया होगा। इनमें प्रयुक्त गणित का विकास हुआ होगा।

गणित में मुख्यतः पाँच धाराएँ गतिशील रही हैं। प्राचीनतम काल में संख्या और आकृति से काम चलता रहा। बाद में संख्याओं और आकृतियों में सम्बन्ध स्थापित किये जाने लगे। इन सम्बन्धों के सहारे और पूर्णांक संख्याओं के सिवाय ऋणात्मक, भिन्नात्मक और वर्गात्मक, वर्गमूलात्मक संख्याओं को रेखाकृतियों द्वारा निरूपित किया गया। अखण्डता अथवा संलग्नता के प्रसंग को गणितीय विधियों द्वारा निरूपित करने के प्रयास किये जाने लगे।

इस प्रकार पूर्णांक संख्याओं से सम्बन्धित समस्याओं से रुचि रखने वाले गणितज्ञ संख्यासिद्धान्त, आधुनिक बीजगणित, और गणितीय तर्क की ओर बढ़ गये। अपूर्णांक संख्याओं की समस्याओं में रुचि रखने वाले गणितज्ञ ज्यामिति, विश्लेषण-गणित और प्रयुक्त गणित को लेकर विज्ञान तथा यन्त्रादि कला की ओर लग गये।

उपर्युक्त चार प्रकार की धाराओं के सिवाय एक और महत्वपूर्ण धारा गतिशील हुई। ज्योतिष एवं यांत्रिकी से लेकर जीवशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, आदि में ज्यों-ज्यों गहराई में जाने की आवश्यकता प्रतीत हुई, त्यों-त्यों गणित का अवलंबन किया जाने लगा। इस प्रकार प्रायः सत्रहवीं सदी के प्रारंभ से कुछ वर्षों बाद गणित एवं विज्ञान अगम्य और अपार रूप से विकसित होता चला गया। उद्योग और शोध कार्यों में प्रायः अठारहवीं सदी के अंत और उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में क्रांति प्रारम्भ हुई। इस क्रांति से गणितीय क्षेत्र में जो गति आई उसने गणित को अनेक नये रूप दिये। इस प्रकार शुद्ध गणित को और भी विस्तृत होने का अवसर नित्य प्रति प्राप्त होता चला गया। प्राचीनकाल में हुए प्रमुख गणितज्ञों को अंगुली पर गिना जा सकता है, किन्तु विगत दो, तीन एवं आधुनिक शताब्दी में उनकी संख्या में विशेष वृद्धि अवलोकित की जा सकती है।

आज से प्रायः तीन सौ वर्ष पूर्व के गणित को चिरप्रतिष्ठित गणित कहा जाता है। वह आज भी अपनी शक्ति एवं केन्द्रीय स्थिति प्रतिष्ठित किये है। केलकुलस अर्थात् सूक्ष्मतम परिवर्तन का संकलन और विकलन, लिमिट अर्थात् सीमा, फंक्शन अर्थात् दो वस्तुओं आदि के सम्बन्धों का फलन, विश्लेषण, चलन और अवकल कलन एवं समीकरण आज भी आधुनिक गणित पर छाये हुए हैं। ज्यामिति में फलन और संख्यात्मक संलग्नता की धारणा से स्थल विज्ञान और चलन ज्यामिति की उत्पत्ति हुई। ये दोनों ही आधुनिक गणित की सर्वाधिक क्रियाशील शाखाएँ हैं।

आज भी आधुनिक गणित का आधार संख्या ज्यामिति और बीजगणित हैं किन्तु उनके रूप व्यापक हो चुके हैं। जब विज्ञान के सिद्धांतों में गणित को प्रविष्ट किया गया तो गणितीय सिद्धान्तों को नया मोड़ लेना पड़ा। अब संख्याएँ अनन्त के क्षेत्र में प्रवेश कर अनन्तात्मक राशियों की रचना विज्ञान को समुन्नत कर चुकी हैं। ज्यामिति पूर्व में रेखा तथा ठोस और आकाश के बिन्दुओं तक ही सीमित थी, किन्तु अब वह सभी संभाव्य काल्पनिक आकाशों की वस्तु हो गई है। उच्च बीजगणित द्वारा अब कोई भी विषय अछूता नहीं रहा है।

प्रायिकता गणित की उत्पत्ति खेल-खेल में हुई थी। परन्तु आज इसके द्वारा उन होने वाली घटनाओं का ज्ञान हो जाता है जिनकी प्रागुक्ति पूर्ण रूप से नहीं की जा सकती है। घटनाओं को राशियों के और प्रायिकता को क्षेत्रफल या घनफल के रूप में लेकर समस्याओं को प्रमाण सिद्धान्त का विषय बना लिया जाता है जिसे मेज़र थ्योरी कहते हैं। विगत तीस वर्षों में गणितज्ञों ने ऐसी घटनाओं के सिद्धान्त पर खोज की है जो काल के प्रवाह में लगातार परिवर्तित होती हैं। घटनाओं के इस सिद्धान्त जो स्टाकेस्टिक प्रक्रमों का सिद्धान्त कहते हैं। प्रायिकता का विषय आज सूचना सिद्धांत, कतारों का सिद्धांत, विसरण सिद्धान्त और गणितीय सांख्यिकी जैसे नवीन विस्तृत क्षेत्रों को आलिंगित करता है।

---

* विशद वर्णन हेतु देखिये महावीराचार्य का गणितसार संग्रह, प्रस्तावना, शोलापुर, १९६३।

जब कभी कोई नवीन गणितीय कल्पना उपयोगी पाई जाती है तो उसके आधार पर एक उपरिव्यूहन उदित हो जाता है। बाद में उक्त मौलिक कल्पना यदि स्खलित सिद्ध होने लगे तो उपरिव्यूहन को बिना मिटाये उस कल्पना को सुधारने का प्रयास किया जाता है। अनन्तात्मक राशियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हुई। उनके अल्पबहुत्व के प्रकरण आधुनिक गणित में अभी भी उलझे हुए हैं। राशि सिद्धान्त और अनन्तों के जन्मदाता उन्नीसवीं सदी के अन्त में जार्ज केन्टर माने जाते हैं, परन्तु राशि सिद्धान्त को पुनर्गठित करने वाले विभिन्न विचारधाराओं वाले विश्वविख्यात गणितज्ञ रसेल, ब्रौवर, और हिल्बर्ट हैं। उनकी विचारधाराएँ क्रमशः तर्क, अन्तःप्रज्ञा और औपचारिकता पर आधारित हैं। इस प्रकार गणितीय बुनियादों पर तीव्र कार्य हुआ है।

भौतिकशास्त्र में गणित के समूह-सिद्धान्त या ग्रूप-थियोरी द्वारा मूलभूत कणों का निदर्शन होता है।। समूह-रूपान्तरणों द्वारा भौतिक जगत की वास्तविकताओं का पता लगाया जाता है कि वे कौन से द्रव्य और गुण हैं जो घटनाओं के परिवर्तन में अक्षुण्ण, अचर, अपरिवर्ती बने रहते हैं। आइंस्टाइन ने सापेक्षता सिद्धान्त को मूर्तिक कल्पनाओं के सहारे अमूर्तिक कल्पना और व्यापकीकरण द्वारा अमरत्व प्रदान किया। इसी प्रकार जॉन-वॉन न्यूमन ने हिलबर्ट आदि के स्पेक्ट्रल सिद्धान्त को व्यापक बनाकर असीम क्षेत्र प्रदान किया।

जीवविज्ञानवेत्ता भी गणित का उपयोग करते हैं किन्तु जिन जटिल प्रणालियों का वे अध्ययन करते हैं वे गणितीय विवरण में प्रतिरोध लाती हैं। जीव रसायन में ऊष्मागतिविज्ञान के गणितीय समीकरण लगते हैं और सांख्यिकी के सहयोग से आनुवंशी विज्ञान सम्बन्धी खोजें हुई हैं। गणक मशीनों में आज केन्द्रभूत धारणा "आटोमेटन" सिद्धान्त की है ताकि वह मस्तिष्क की भांति विचार कर सके। गणक मशीनें वहां अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं जहां उच्च गतिशील यानों या मशीनों में जटिल निर्णय शीघ्रातिशीघ्र लेने पड़ते हैं।

अर्थशास्त्र जैसे कुछ सामाजिक विज्ञान हैं जिनका कार्य ऐसे तथ्यों से चलता है जिन्हें बहुधा संख्याओं द्वारा निरूपित करते हैं। समस्त जनसमूहों के गणितीय विश्लेषण की सूचना देते हुए इन संख्याओं को सम्बन्धित करने वाले तकनीक सामने आये हैं। शिक्षण पद्धतियों के विश्लेषण और पूंजी निवेश का प्रोग्राम बनाने में जो कुछ समस्यायें आती हैं वे गणितीय रूप से हल की जाती हैं। समाजशास्त्र विषय की खोज के दो क्षेत्र हैं। एक तो यह कि समाज की प्रणालियाँ किस प्रकार कार्य करती हैं तथा उनके विभिन्न अंगों के बीच क्या सम्बन्ध है। दूसरा क्षेत्र उनके नियन्त्रण और नीति निर्धारण का है। इन दोनों क्षेत्रों में एक से प्रकार के गणितों का प्रयोग हुआ है। अर्थव्यवस्था गणित द्वारा एक ऐसी प्रणाली के रूप में देखी जा सकती है जो सूचना को निर्णयों में रूपान्तरित कर देती है।

टेक्नालाजी में गणित का सर्वाधिक अवसर प्रयोग ऐसी मशीनों की डिजायन में होता है जो अपने आप को स्वयं नियन्त्रित करती हैं। ऐसी ही विधियाँ जीवित आर्गेनिज्म और जनसमूहों की क्रियाविधि के नियन्त्रण से सम्बन्धित होती हैं। अन्य विस्तृत सिद्धान्तों की भांति नियन्त्रण सिद्धान्त गणितीय वैज्ञानिक अथवा तकनीकी विधियों के मिश्रण के बजाय मनोस्थिति का सिद्धान्त है। नियन्त्रण समस्याएँ जो टेक्नालाजी, अर्थशास्त्र, औषधि और राजनीति में आती हैं वे मल्टीस्टेज डिसीजन प्रोसेस कहलाती हैं। इन सभी में गणित का उपयोग हुआ है।

गणक मशीनों (कम्प्यूटरों) से उच्च गतिशील अंककलना द्वारा गणित के प्रयोगों की आवश्यकता की पूर्ति हुई है। सबसे बड़ी इलेक्ट्रानिक गणक मशीनों में स्मृति-क्षमता प्रायः एक अरब शब्दों या कई लाख व्यक्तिगत डिजिट अंक रहती है। ऐसी स्मृति-क्षमता एक माइक्रो सेकण्ड होती है। यह भविष्य में कई गुना बढ़ जायेगी। अब माइक्रो इलेक्ट्रानिक परिपथ का उपयोग होने से हजार गुनी छोटी गणक मशीनें बनने लगी हैं।

२ वैदिक, जैन एवं बौद्ध संस्कृति में गणित का महत्व

गणित विज्ञान का वैदिक संस्कृति में क्या महत्व माना जाता रहा है, इस सम्बन्ध में डा० दत्त एवं डा० सिंह ने लिखा है,[1] "कहा जाता है कि प्राचीन भारतवर्ष में किसी विज्ञान ने न तो स्वाधीन अस्तित्व ही प्राप्त किया और न उसका स्वतन्त्र रूप से विकास ही हुआ। वैदिक-कालीन भारत में जिन किसी विज्ञान का जो कुछ भी रूप मिलता है, उसकी उत्पत्ति और विकास किसी न किसी वेदांग के अन्तर्गत है, और इसलिए वैदिक क्रियाओं के सहायतार्थ माना जाता है। कभी-कभी यह भी कल्पना की जाती है कि वैदिक-कालीन हिन्दू लोग किसी विज्ञान की विशेष उन्नति को निरुत्साहित करते थे, यह समझकर कि वह उनकी चित्तवृत्ति को अन्य मार्गों की ओर ले जाकर उनकी ब्रह्म-ज्ञान की खोज में बाधक सिद्ध होगी। वस्तुतः यह धारणा सर्वथा सत्य नहीं है। कदाचित् यह सत्य है कि प्रारम्भिक वैदिक काल में विज्ञानों का विकास इसलिये हुआ कि वे धर्म में सहायक थे। परन्तु साधारणतया यह देखा गया है कि प्रत्येक काल और प्रत्येक देश में लोगों का किसी ज्ञानविशेष में अनुराग सदैव कुछ विशेष कारणों से ही हुआ है। प्राचीन हिन्दुओं का अधिकतर समय धर्म-कर्म में व्यतीत होता था। अतएव यह अस्वाभाविक नहीं है कि अन्य विषयों का ज्ञान उसी के सहायतार्थ बढ़ा और उसी के अन्तर्गत रखा गया। यह दिखाने के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं कि समय पाकर सभी विज्ञान अपने मूल उद्देश्य का अतिक्रमण कर गये और उनका स्वतन्त्र रूप से विकास हुआ। इसमें सन्देह नहीं है कि वैदिक काल के उत्तरार्ध में एक नवीन धारा बह निकली।"

छांदोग्य उपनिषद् में भी **सनत्कुमार-नारद** संवाद में नक्षत्र-विद्या और राशि विद्या का उल्लेख आया है।[2] कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** में भी लिपि और संख्यान को महत्व दिया गया है।[3]

जगद्गुरु स्वामी भारती कृष्णतीर्थ जी ने, "**Vedic Mathematics**" में वैदिक संस्कृति में गणित महत्व भावना को निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है,[4] "The modern scientist has his own theory and art (technique) for producing the result. The old seer scientist had his both also, but different from these now availing. He had his science and technique, called **Yajna**, in which **Mantra, Yantra** and other factors must cooperate with mathematical determinateness and precision. For this purpose, he had developed the six auxiliaries of the Vedas in each of which mathematical skill and adroitness, occult or otherwise, play the decisive role. The **Sutras** lay down the shortest and surest lines. The correct intonation of the **Mantra**, the correct configuration of the **Yantra** (in the making of the vedi etc., e. g., quadrature of a circle), the correct time or astral conjugation factor, the correct rhythms etc., all had to be perfected so as to produce the desired result effectively and adequately. Each of these required the calculus of mathematics."

एस. एन. सेन एवं ए. के. बाग ने, "**The Shulbasutras of Baudhayana, Apastamba, Katyayana and Manava**." में ग्रन्थ की भूमिका में वैदिक संस्कृति में गणित के महत्व को दिखलाया है।"[5] The **Vedangas**, then important group of literature often referred to as the appendages of the **Vedas**, constitute an important source in the history of science in ancient India. This is evident from such subjects as phonetics (shiksha), ritual (kalpa), grammar (Vyakarana), etymology (nirukta), metrics (chhanda) and astronomy (Jyotisha). These branches of study arose within the vedic schools themselves as a necessary condition for mastering the Vedas. उन्होंने यहीं आगे लिखा है,[6] "The Shulbasutras are of special importance because these deal specifically with rules for the measurements and construction of the various sacrificial fires and altars and consequently involve geometrical propositions and problems.

१ देखिये, डा० विभूतिभूषणदत्त एवं डा० अवधेश नारायण सिंह, हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास, भाग १, लखनऊ, १९५६, पृ० २-३। वेदांग ज्योतिष में उल्लेख है, "जिस प्रकार मयूरों की शिखाएँ एवं नागों की मणियां हैं, ठीक इसी प्रकार वेदांगशास्त्रों में गणित का स्थान सबसे ऊँचा है।" (श्लोक ४)

२ छांदोग्य उपनिषद, ७·१, २, ४।

३ अर्थशास्त्र, आर० शाम शास्त्री द्वारा संपादित, १·५, २।

४ 'Vedic Mathematics," Motilal Banarasidas, Delhi, 1982, p. 14.

५ Indian National Science Academy, New Delhi: 1983, Intro, p. 1.

६ वही, पृष्ठ १

relating to rectilinear figures, their combinations and transformations, squaring the circle and circling the square as well as arithmetical and algebraic solutions of problems arising out of such measurements and constructions."

बौद्ध साहित्य में भी अंकगणित (गणना, संख्यान) को महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ कला के रूप में मान्यता प्राप्त है।[1] इसके सिवाय तीन प्रकार के गणित का उल्लेख प्राचीन बौद्ध साहित्य में मिलता है जहाँ मुद्रा गणित, गणना गणित, तथा संख्यान गणित को दीर्घनिकाय (१, पृ. ५१), विनय पिटक (४, पृ. ७), दिव्यावदान[2] एवं मिलिन्द पन्हो[3] में वर्णित किया गया है।

जैन साहित्य की आधारशिला गणित ही है। स्थानांग सूत्र ७४७ में व्यवहृत गणित का रूप निम्न प्रकार है :

"परिकम्मं ववहारो रज्जु रासी कलासवन्ने य।
जावत्तावति वग्गो घनो त तह वग्गवग्गो विकप्पो य॥"

गणित की प्रशंसा करते हुए जगत्प्रख्यात [illegible] महावीराचार्य ने, गणितसार संग्रह के प्रारम्भ में, अध्याय १, श्लोक ९-१६ में निम्न प्रकार लिखा है :

"लौकिक, वैदिक, तथा सामयिक जो जो व्यापार हैं उन सब में गणित का उपयोग होता है। कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, गान्धर्वशास्त्र, नाट्यशास्त्र, पाकशास्त्र, आयुर्वेद, वास्तुविद्या, आदि में; छन्द, अलंकार, काव्य, तर्क, व्याकरण इत्यादि में; तथा कलाओं के समस्त गुणों में गणित अत्यन्त उपयोगी है। सूर्य और अन्य ग्रहों की गति ज्ञात करने में, ग्रहण में, ग्रहों की युति में, [illegible] चन्द्रमा के परिवर्तन में, सर्वत्र गणित अंगीकृत है। द्वीपों, समुद्रों और पर्वतों का संख्या, व्यास और परिधि; लोक, अन्तर्लोक, ज्योतिर्लोक, स्वर्ग और नरक के रहने वाले सभी के श्रेणिबद्ध भवनों, सभा भवनों एवं गुम्बदाकार मन्दिरों के प्रमाण तथा अन्य विविध प्रमाण गणित की सहायता से ही जाने जाते हैं। वहाँ पर प्राणियों के संस्थान, उनकी आयु और आठ गुण इत्यादि, यात्रा आदि तथा संहिता आदि से सम्बन्धित विषय सभी गणित पर निर्भर हैं। अधिक कहने से क्या प्रयोजन? [illegible] त्रैलोक्य में जो कुछ भी वस्तु है उसका अस्तित्व गणित के बिना सम्भव नहीं हो सकता। [illegible] और [illegible] के [illegible] तीर्थंकरों की [illegible] प्रसिद्ध गुण [illegible] से आये हुए [illegible] समुद्र से [illegible] समुद्र से रत्न की भाँति, पाषाण से [illegible] की भाँति [illegible] मुक्ताफल की भाँति [illegible] सार निकालकर [illegible] सार संग्रह ग्रन्थ को अपनी मति [illegible] के अनुसार रचता हूँ, जो लघु होते हुए भी [illegible]।"

इसी प्रकार अनुयोगद्वारसूत्र, भगवती, समवायांग [illegible] और ग्रन्थों में [illegible] और [illegible] का उल्लेख किया है।

[illegible] गणित को जैन साहित्य में [illegible] षट्खण्डागम, गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासारादि [illegible] जीवसमुद्दोविषयं एवं [illegible] सूर्य प्रज्ञप्ति [illegible] हुआ है।

४. जैन संस्कृति में लौकिक एवं लोकोत्तर गणित का विभिन्न आम्नायों में विकास

लौकिक गणित [illegible] आचार्य अकलंक की [illegible] हुआ है।

लोकोत्तर गणित को [illegible] भगवान् वर्द्धमान महावीर [illegible] दिगम्बर [illegible] विशेष [illegible]

---

१ दिव्यावदान, [illegible], काउवेल एवं नील, [illegible] (१८८६), [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

गणित-ज्योतिष संबंधी टीकाओं में **ध्रुव राशि** के उपयोग द्वारा विषय को सुलभ बनाया गया वहाँ **दिगम्बर आम्नाय** में गणित-कर्म संबंधी टीकाओं में अनेक प्रकार की राशियों की संदृष्टियों द्वारा विषय को सुलभ बनाया गया। यह तथ्य प्रमुखता को लेकर बतलाया जा रहा है। वास्तव में **माधवचंद त्रैविद्य** की त्रिलोकसार टीका में भी गणित-ज्योतिष को सुलभ बनाया गया है। इसी प्रकार उनकी अन्य टीका में गणित-कर्म को भी सुलभ बनाया गया है।

दिगम्बर आम्नाय में जगत्प्रसिद्ध **महावीराचार्य** का लौकिक गणित ग्रन्थ **गणितसार संग्रह,** ईसा की नवीं सदी की उन्नत गणित का परिचायक है जिसमें निम्नलिखित विषय प्रतिपादित हैं : **संज्ञा अधिकार** (क्षेत्र परिभाषा, काल परिभाषा, धान्य परिभाषा, सुवर्ण परिभाषा, रजत परिभाषा, लोह परिभाषा, परिकर्म नामावलि, शून्य तथा धनात्मक एवं ऋणात्मक राशि सम्बन्धी नियम, संख्या संज्ञा, स्थान नामावलि, गणक गुणनिरूपण); **परिकर्म व्यवहार** (प्रत्युत्पन्न, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, संकलित, व्युत्कलित); **कलासवर्ण व्यवहार** (भिन्न प्रत्युत्पन्न, भिन्न भागहार, भिन्न संबंधी वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्न संकलित, भिन्न व्युत्कलित, कलासवर्ण, षड्जाति, भागजाति, प्रभाग और भागाभाग जाति, भागानुबन्ध जाति, भागापवाह जाति, भाग-मातृ जाति); **प्रकीर्णक व्यवहार** (भाग और शेष जाति, मूल जाति, शेषमूल जाति, द्विरग्र शेषमूल जाति, अंशमूल जाति, भाग संवर्ग जाति, ऊनाधिक अंशवर्ग जाति, मूल मिश्र जाति, भिन्न दृश्य जाति), **त्रैराशिक व्यवहार** (अनुक्रम त्रैराशिक, व्यस्त त्रैराशिक, व्यस्त पंचराशिक, सप्त राशिक, नवराशिक, भाण्ड प्रति भाण्ड, क्रय विक्रय); **मिश्रक व्यवहार** (संक्रमण और विषम संक्रमण, पंचराशिक विधि, वृद्धि विधान, प्रक्षेपक कुट्टीकार, वल्लिका कुट्टीकार, विषम कुट्टीकार, सकल कुट्टीकार, सुवर्ण कुट्टीकार, विचित्र कुट्टीकार, श्रेढीबद्ध संकलित); **क्षेत्रगणित व्यवहार** (व्यवहारिक गणित, सूक्ष्म गणित, जन्य व्यवहार, पैशाचिक व्यवहार); **खात व्यवहार** (सूक्ष्म गणित, चिति गणित, क्रकचिका व्यवहार,); **और छाया व्यवहार।**

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण गणित ग्रन्थ है जिसका प्रचार संभवत: दक्षिण भारत में रहा। **महावीराचार्य** द्वारा संभवत: निम्नलिखित चार कृतियाँ और रचित मानी जाती हैं।[1] परन्तु यह विषय विवादास्पद है।

(१) **षट्त्रिंशिका** (संभवत: बीजगणित ग्रन्थ, या टीका माधवचंद त्रैविद्य द्वारा)
(२) **ज्योतिष पटल** (संभवत: ग्रह नक्षत्रादि गणित संबंधी)
(३) **क्षेत्रगणित**
(४) **छत्तीस पूर्वा उत्तर प्रतिसह**

अनुपम जैन ने गणितसार संग्रह से सम्बन्धित ३४ पाण्डुलिपियों का विवरण दिया है।[2] गणितसार संग्रह में विकसित गणित स्रोत के विषय में स्वयं महावीराचार्य का कथन पुन: उल्लेखनीय है : मैं तीर्थ को उत्पन्न करने वाले कृतार्थ और जगदीश्वरों से पूजित (तीर्थंकरों) **की शिष्य प्रशिष्यात्मक प्रसिद्ध गुरुपरम्परा से आये हुए संख्या ज्ञान महासागर से उसका कुछ सार एकत्रित कर,** उसी तरह, जैसे कि समुद्र से रत्न, पाषाणमय चट्टान से स्वर्ण और शुक्त से मुक्ताफल प्राप्त करते हैं; अल्प होते हुए भी अनल्प अर्थ को धारण करने वाले सार संग्रह नामक गणित ग्रन्थ को अपनी बुद्धि की शक्ति के अनुसार प्रकाशित करता हूँ।[3] स्पष्ट है कि इसमें **लोकोत्तर गणित** का कुछ सार एकत्रित किया गया है। यह भी स्पष्ट है कि इसमें **परिकर्म व्यवहार, कलासवर्ण व्यवहार,** त्रैराशिक व्यवहार, क्षेत्र गणित व्यवहार, **और छाया व्यवहार, लोकोत्तर विकसित गणित** से सार रूप लिया गया होगा।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में जैन आचार्यों द्वारा प्राय: १००० वर्षों में विकसित किये गये **लोकोत्तर गणित** का कुछ स्वरूप प्राप्त है। नवीं सदी में हुए **दिगम्बर आम्नाय** में **वीरसेनाचार्य** द्वारा किसी गणित ग्रन्थ **"सिद्ध-भू-पद्धति"** की टीका लिखी जाना प्रमाणित होता है। स्पष्ट होता है कि **धवला** टीकाकार ने **लोकोत्तर गणित** ग्रंथ **"सिद्ध-भू-पद्धति"** को सुलभ बनाने हेतु टीका की रचना की होगी। यह ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है, न ही उसकी टीका। जैन साहित्य का बृहद इतिहास, भाग ५ में निम्नलिखित अन्य जैन आचार्यों द्वारा निर्मित गणित ग्रन्थों का परिचय दिया है :[4]

विक्रम संवत् १३७२-१३८० में रचित, गणित सार कौमुदी (प्राकृत) के रचियता ठाकुर फेरू हैं। इसमें भास्कराचार्य की **"लीलावती"** एवं **महावीराचार्य** के गणित सार संग्रह का उपयोग हुआ है। तथापि नवीन लोकभाषा शब्द एवं कुछ नवीन मूलव्यवहार प्रकरण भी हैं। इसमें वर्णित यंत्रों पर शोध होना आवश्यक है।

विक्रम संवत् १२६१ के लगभग **पल्लीवाल अनन्तपाल** द्वारा पाटीगणित की रचना की गयी।

१. देखिये महावीराचार्य, द्वारा अनुपम जैन एवं सुरेशचन्द्र अग्रवाल हस्तिनापुर, १९८५, पृ० २.
२. देखिये, वही, सारिणी पृ० ८ के समक्ष।
३. महावीराचार्य, गणितसार संग्रह, सोलापुर, १९६३, पृ० ३.
४. लेखक पं० अम्बालाल प्रे० शाह, वाराणसी, १९६९, पृ० १६०-१६६.

वल्लाचार्य द्वारा गणित संग्रह ग्रन्थ रचने का उल्लेख है।

नेमिचंद्र द्वारा क्षेत्र गणित ग्रन्थ रचने का उल्लेख जिनरत्न कोश (पृ० ९८) में मिलता है।

लोकांगच्छीय मुनि तेजसिंह द्वारा "दृष्टांक पंचविंशतिका" २६ पद्य वाला रचित हुआ है।

गणित सूत्र ग्रन्थ रचना किन्हीं दिगम्बर आचार्य द्वारा हुई है।

उपकेश गच्छीय सिद्ध सूरि ने श्रीधर कृत[1] "गणित सार" ग्रन्थ पर टीका रची है।

विक्रम संवत् १३३० में श्रीपति कृत 'गणित तिलक' पर सिंह तिलक सूरि श्वेताम्बर आचार्य की गणित तिलक-वृत्ति उपलब्ध है।

लौकिक गणित ज्योतिष पर जैनाचार्यों के अनेक ग्रन्थों का उल्लेख है जो अभी तक हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित नहीं हो सके हैं। इस प्रकार उनके द्वारा हुआ विकसित गणित ज्योतिष का इतिहास अंधकार में है। लोकोत्तर गणित-ज्योतिष का विकास सूर्य प्रज्ञप्ति, चंद्र प्रज्ञप्ति, ज्योतिष करण्डक प्रभृति ग्रन्थों की टीकाओं आदि से ज्ञात होता है। उनमें ध्रुव राशि तथा पंचवर्षीय युग पद्धति का उपयोग उत्तरकालीन युग पद्धति को विकसित करने में कहाँ तक हुआ यह गहन शोध का विषय है।

तिलोय पण्णत्ति एवं त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों में भी गणित-ज्योतिष का लोकोत्तर गणित रूप में विकास इसी प्रकार हुआ दृष्टिगत होता है। गणना विकास के सम्बन्ध में नेमिचंद्र शास्त्री ने विभिन्न ग्रन्थों एवं लेखों में[2] निम्नलिखित सार रूप तथ्य प्रस्तुत किये हैं जिन पर शोध लेख आवश्यक है :—

(१) प्रति दिन सूर्य के भ्रमण मार्ग निरूपण-सम्बन्धी सिद्धान्त। इसका विकसित रूप दैनिक अहोरात्र वृत्त की कल्पना है।

(२) दिनमान के विकास की प्रणाली जो वेदांग ज्योतिष में नहीं मिलती है।

(३) अयनान्त-सम्बन्धी प्रक्रिया का विकास जिसका विकसित रूप देशान्तर, कालान्तर, भुजान्तर, चरान्तर एवं उदयान्तर सम्बन्धी सिद्धान्त है।

(४) पर्वों में विषुवान्तरण जो बाद में संक्रान्ति और क्रान्ति में विकसित हुआ।

(५) नक्षत्र सम्बन्धी प्रक्रिया जिसका विकास बाद में सौरमान, चन्द्रमान, सावनमान एवं नक्षत्रमान रूपों में हुआ।

(६) गणित द्वारा नक्षत्र गमन आनयन प्रक्रिया का विकसित रूप त्रिंशांश, नवमांश, द्वादशांश एवं होरादि है।

(७) काल गणना प्रक्रिया का विकसित रूप अंश, कला, विकला आदि क्षेत्रांश सम्बन्धी गणना एवं घटी पलादि सम्बन्धी काल गणना है।

(८) ऋतु शेष प्रक्रिया जिसका विकसित रूप अवशेष, अधिमास, अधिशेष आदि है।

(९) सूर्य, चंद्र मण्डलों के व्यास, परिधि आदि का विकसित गणित ग्रह गणित है।

(१०) छाया द्वारा समय निरूपण का विकसित रूप इष्टकाल, भयात, भभोग, एवं सर्वभोग आदि है।

(११) राहु और केतु की व्यवस्था का विकसित रूप सूर्य एवं चंद्र ग्रहण सम्बन्धी सिद्धान्त।

(१२) चन्द्र प्रज्ञप्ति में अभिजित् छाया पर से [illegible] के रूप का सिद्धान्त ज्योतिष में विकसित रूप आया है। ग्रह गणित के जिन [illegible] सूत्रों का उल्लेख इस ग्रन्थ में है वे ठीक ज्योतिष से पूर्व के हैं।

(१३) ग्रह वीथियों का विकसित रूप उदयास्त प्रकार माना जा सकता है।

(१४) पंचवर्षीय युग से [illegible] गणित प्रक्रिया की [illegible] पृ० [illegible] में [illegible] है। [illegible] ध्रुव राशि का उपयोग है।

(१५) [illegible]

(१६) कुलोपकुल का विभाजन पूर्णमासी को होने वाले नक्षत्रों के आधार पर है। यह स्वतंत्र विषय है।

(१७) जैनाचार्यों ने गणित ज्योतिष संबंधी विषय का प्रतिपादन करने के लिए पाटी गणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, गोलीय रेखागणित, चापीय एवं वक्रीय त्रिकोणमिति, प्रतिभा गणित, शृंगोन्नति गणित, पंचांग निर्माण गणित, जन्म पत्र निर्माण गणित, ग्रहयुति, उदयास्त सम्बन्धी गणित एवं यंत्रादि साधन सम्बन्धी गणित का प्रतिपादन किया है।

(१८) चंद्र स्पष्टीकरण एवं मुख्यतः विंशोत्तरी का कथन।

जैन ज्योतिष-साहित्य के अब तक प्रायः पांच सौ ग्रन्थों का पता लग चुका है जिनका विवरण वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ में दिया गया है। (देखिये शोध लेख वही)। इनमें प्रायः ५६ ग्रन्थ **गणितः ज्योतिष** सम्बन्धी हैं। इनके अतिरिक्त जैनेतर ग्रन्थों पर प्रायः २४ टीकाएँ जैनाचार्यों ने की हैं।

लोकोत्तर गणित सम्बन्धी अनेक शोध लेख निकल चुके हैं। इनमें जैनाचार्यों द्वारा विकसित विभिन्न प्रकार के गणित सूत्रों आदि का विशेष विवरण है। ये लेख शोध हेतु दृष्टव्य हैं: कुछ मुख्य लेख निम्नलिखित हैं:—

(क) लक्ष्मीचन्द्र जैन, **आगमों में गणितीय सामग्री तथा उसका मूल्यांकन**, तुलसी प्रज्ञा, खण्ड ६, अंक ६, १६८० पृ० ३५-६६.

(ख) लक्ष्मीचन्द्र जैन, **तिलोय पण्णत्ति का गणित**, शोलापुर, १६५८, पृ० १-१०५.

(ग) लक्ष्मीचन्द्र जैन, **लोकोत्तर गणित विज्ञान के शोध पथ**, भिक्षुस्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, १६६१, पृ० २२२-२३१.

(घ) लक्ष्मीचन्द्र जैन, **आन दा जैन स्कूल ऑफ मेथमेटिक्स**, छोटेलाल स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, १६६७, पृ० २६६-२६२.

(च) एल. सी. जैन, **सेट थ्योरी इन जैन स्कूल आफ मेथामेटिक्स**, आई. जे. एच. एस. कलकत्ता, भाग ८, क्र. १, १६७३, पृ० १-२७

(छ) एल. सी जैन, **काइनेमेटिक्स ऑफ दी सन एण्ड दी मून इन तिलोय पण्णत्ति**, तुलसीप्रज्ञा, लाडनूँ, फ० १६७५, पृ० ६०-६७

(ज) एल. सी. जैन, **दी काइनेमेटिक मोशन आफ एस्ट्रल रीयल एण्ड काउण्टर बाडीज इन त्रिलोकसार**, आई० जे. एच. एस., कलकत्ता, भाग ११, क्र. १, १६७५, पृ० ५८-७४

(झ) एल. सी. जैन, **आन सरटेन मेथामेटिकल टापिक्स ऑफ दा धवल टेक्ट्स**, आई. जे. एच. एस., कलकत्ता, भाग ११, क्र. २, १६७६, पृ. ८५-१११

(ट) एल. सी जैन, **डाइवर्जेण्ट सीक्वेन्सेज लोकेटिंग ट्रांस्फाइनाइट, सेट्स इन त्रिलोकसार**, आई. जे. एच. एस., कलकत्ता, भाग १२, क्र. १, १६७७, पृ. ५७-७५

(ठ) एल. सी. जैन, **सिस्टम थ्योरी इन जैन स्कूल आफ मेथामेटिक्स**, आई. जे. एच. एस., कलकत्ता, भाग १४, क्र. १, १६७६, पृ. ३१-६५

(ड) एल. सी. जैन, **आर्यभट-प्रथम एण्ड यतिवृषभ-ए स्टडी इन कल्प एण्ड मेरू**, आई. जे. एच. एस., भाग १२, क्र. २, १६७७, पृ. १३५-१४६

उपरोक्त शोधलेखों में जैनाचार्यों द्वारा विभिन्न आम्नायों में विकसित लोकोत्तर गणित के स्वरूप को दिखलाते हुए उसकी तुलना अन्यत्र विकसित गणित से की गयी है।

प्रारम्भ में विभूतिभूषण दत्त ने अनेक **श्वेताम्बर ग्रन्थों** से लोकोत्तर गणित के विकास का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया था तथा **हिन्दू गणित के इतिहास** में उनके योगदान को अंकित किया था। यह प्रयास १६२६ के लगभग प्रारम्भ हुआ था। उन्होंने लिखा है, "जैनियों द्वारा गणितीय संस्कृति को बड़ा महत्व दिया जाता है। उनके धार्मिक साहित्य को साधारणतः चार समूहों में विभाजित किया गया है। इसे **अनुयोग** कहते हैं जिसका अर्थ है '(जैन धर्म के) सिद्धान्त का प्रकाशन'। इनमें से एक **गणितानुयोग** है, अथवा 'गणित के सिद्धान्त का प्रकाशन'। इसकी जैन धर्म में आवश्यकता होती है। जैन पंडित की प्रमुख उपलब्धियों में से एक यह है कि उसे संख्यान (अर्थात् 'संख्याओं का विज्ञान अथवा अंकगणित') तथा ज्योतिष का ज्ञान हो।"[1] इस शोधलेख में मुख्यतः निम्नलिखित ग्रन्थों की ओर संकेत था:—

(१) **भगवती सूत्र** अभयदेव सूरि टीका (ल० १०५०), उत्तराध्ययन सूत्र, अनु० हरमाँ जैकोबी, आक्सफर्ड, १८६५;

(२) **जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति**, शान्तिचन्द्र गणि टीका (ई० १५६५) भूमिका

(३) **कल्पसूत्र**, भद्रबाहु (ल० ३५० ई० पू०) अनु० ह० जैकोबी;

(४) **अंतगडदसाओ** एवं **अनुत्तरोववाइयदसाओ**, अनु० वर्नेट, १६०७.

इस समय तक, कर्म सिद्धान्त वाले ग्रन्थ: **कसाय पाहुड एवं षट्खण्डागम**, जयधवला तथा धवला टीकाओं सहित प्रकाशित नहीं

१ बुले. केल. मेथ० सो०, २७.२, १६२६, पृ० ११५-१४५

हो पाये थे। जब १९३५ में दत्त और सिंह ने "हिन्दू **गणित का इतिहास**" अंग्रेजी में प्रकाशित करवाया, वे पूर्व खोजों में कोई अतिरिक्त सामग्री नहीं जोड़ पाये; *तथापि* इन लेखकों को प्रतीत हुआ कि जैन आम्नाय का गणित-क्षेत्र मुख्यतः स्थानांग सूत्र (श्लोक ७४७) में प्राप्त एक श्लोक में उल्लिखित है, जिस पर खोज की जानी चाहिये :

'परिकम्मं ववहारो रज्जु रासी कलासवण्णे य।
जावत्तावति वग्गो घणो त तह वग्गवग्गो विकप्पो त ॥'

यहाँ **परिकर्म** (मूलभूत गणित की प्रक्रियाएं), **व्यवहार**, **रज्जु** (विश्व-लोक माप की इकाई), **राशि** (सेट), **कला सवर्ण** (भिन्न सम्बन्धी कलन), **यावत् तावत्** (सरल समीकरणादि), **वर्ग** (वर्ग समीकरणादि), **घन** (घनसमीकरणादि), **वर्गवर्ग** (द्विवर्ग समीकरणादि), एवं **विकल्प** (धाराएँ, क्रम, संचय आदि) अनेक पारिभाषिक शब्दों से है जिनमें से कुछ गणितसारसंग्रह में आये हैं। दत्त ने इसी प्रकार के अन्य पारिभाषिक गणितीय शब्द एकत्रित किये थे जो मुख्यतः श्वेताम्बर आम्नाय के ग्रन्थों में से उपलब्ध किये गये।

जब सिंह ने **धवला** टीकाओं (भाग ३ और ४)[1] का अध्ययन किया तो उन्होंने प्रथम तो यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि किसी भी ग्रन्थ में जो गणितीय सामग्री पाई जाती है वह प्रायः ३०० से ४०० वर्ष पूर्व की संरचित होती होगी। उनकी ओर आगे अभ्युक्ति है, "यद्यपि अनेक जैन गणितज्ञों के नाम ज्ञात हैं उनके ग्रन्थ विलुप्त हो गये हैं। सर्वाधिक पूर्व के **भद्रबाहु** हैं जिनका देहावसान २७८ई० पू० हुआ। कहा जाता है कि उन्होंने दो ज्योतिष सम्बन्धी ग्रन्थ रचे : (i) **सूर्यप्रज्ञप्ति टीका** (ii) **भद्रबाहु संहिता**। इसका उल्लेख **सूर्यप्रज्ञप्ति** की टीका में **मलयगिरि** (लग० ११५०) द्वारा भट्टोत्पल (९६६ ई०) द्वारा हुआ है। अन्य जैन ज्योतिषी का नाम सिद्धसेन है जिसका उल्लेख **वराहमिहिर** (५०५ ई०) तथा **भट्टोत्पल** ने किया है। अनेक ग्रन्थों में गणितीय उल्लेख अर्धमागधी तथा प्राकृत में मिलते हैं। **धवला** में ऐसे अनेक उद्धरण पाये गये हैं। इन उद्धरणों पर उपयुक्त स्थान पर विचार किया जायेगा, किन्तु यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि जैन विद्वानों द्वारा लिखित ऐसे गणितीय ग्रन्थों का निस्सन्देह रूप से अस्तित्व था जो अब विलुप्त हो गये हैं। **क्षेत्र समास** तथा **करण भावना** नामक ग्रन्थ जैन विद्वानों द्वारा रचित हुए किन्तु अब वे अप्राप्य हैं। जैन गणित सम्बन्धी हमारा ज्ञान जो कि अधूरा है, कुछ ऐसे अगणितीय ग्रन्थों से प्राप्त हुआ है जिनमें **उमास्वाति** का **तत्त्वार्थाधिगमभाष्य**, **सूर्यप्रज्ञप्ति**, **अनुयोगद्वार सूत्र**, **त्रिलोकप्रज्ञप्ति**, **त्रिलोकसार** इत्यादि सम्मिलित हैं। इनमें अब **धवला** को जोड़ा जा सकता है।"[2]

वीरसेनाचार्य ने धवला में निम्नलिखित गणितीय अथवा अगणितीय ग्रन्थों से उद्धरण दिये हैं और कुछ उद्धरण ऐसे हैं जिन ग्रन्थों के कर्त्ताओं के नाम अज्ञात हैं :—

कषाय प्राभृत, काल सूत्र, तत्त्वार्थभाष्य, वर्गणा सूत्र, वेदना क्षेत्र विधान, सत्कर्म प्राभृत, सम्मति सूत्र, अप्पाबहुग सुत्त, खुद्दाबंधसुत्त, जीवट्ठाण, तत्वार्थसूत्र, तिलोयपण्णत्ति, परियम्म, पिंडिया, वियाहपण्णत्ति, वेयणा सुत्त, संतकम्म पाहुड, संतसुत्त खेत्तणिओगद्दार, गाहासुत्त (कसाय पाहुड), जीव समास, णियासु बंधसुत्त, दव्वाणि ओगद्दार, पंचत्थि पाहुड, संताणि ओगद्दार, उच्चारण, काल विहाण, कालाणि ओगद्दार, निक्षेपाचार्य प्ररूपित गाथा, प्रदेश बंध सूत्र, प्रदेश विरचित अर्थाधिकार, बंधसूत्र, महाकर्म प्रकृति प्राभृत, महाबंध, काल निर्देश सूत्र, चूर्णिसूत्र, खण्डग्रन्थ, भावविधान, मूलतंत्र, योनि प्राभृत, सिद्धि विनिश्चय, बाहिर वग्गणा, वेयणा सुत्त, पोत्थिय, कर्मप्रवाद, सूत्र विशेष, इत्यादि।

नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने **त्रिलोकसार** में **वृहद्धारा परिकर्म** का उल्लेख किया है जो अब अप्राप्य है। इसी प्रकार **तिलोय पण्णत्ति** में ग्रहों का गमन विवरण का उस समय कालवश नष्ट होना बताया गया है। हो सकता है कि **पंचवर्षीय युग पद्धति** जैसी ही वह अनेक **वर्षीय युग पद्धति** में बांधा गया हो, जो **आर्यभट** काल से प्रकट होती देखी गयी है।

सूर्य प्रज्ञप्ति भाग (१) में **मुनि घासीलाल** ने पृ० ८९ में कुछ गाथाओं के विलुप्त होने से अर्थ निकालने में कठिनाई का अनुभव किया है।[3] यहाँ क्या एपिसाइकिल का सिद्धान्त शोधन हेतु १२४ तथा १४४ संख्याओं का किस तरह उपयोग हुआ है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है।

५. वैदिक संस्कृति में भूगोल, ज्योतिष एवं खगोल आदि संबंधी गणित

भारत में मुख्यतः दो संस्कृतियों की चर्चा आती है—**वैदिक संस्कृति** और **श्रमण संस्कृति**। **वैदिक संस्कृति** का दर्पण **वेद** एवं **उपनिषद** हैं जिनमें हमें देखना है कि गणित का क्या स्वरूप था। यह साहित्य कब रचा गया, इस पर मत पूर्वीय एवं पाश्चात्य विद्वानों में अलग-अलग हैं। प्राचीनतम उपलब्ध वेद, जो सिंह के अनुसार ३००० ई० पू० *अथवा संभवतः* इससे अधिक प्राचीन[4]

---

१ **मेथमेटिक्स ऑफ धवला**, षड्० iv, १९४२, पृ० i—xxiv

२. देखिये **वही** पृ० iii

३ श्री **सूर्यप्रज्ञप्ति**, प्रथम भाग, अहमदाबाद, १९८१

४ **हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास**, भाग १, लखनऊ, १९५६, पृ० १।

है विशेषकर देवताओं के गुणगान, वंदना-मात्र हैं, उच्च सभ्यता के द्योतक हैं। **वेदों** के बाद का **ब्राह्मण साहित्य** (लगभग २०००-१००० ई० पू० ?) अंशतः धार्मिक और अंशतः दार्शनिक है। इन्हीं ग्रन्थों में ही **अंकगणित, क्षेत्रगणित** और **बीजगणित** आदि तथा **गणित ज्योतिष** का प्रारम्भ मिलता है। इसके पश्चात् **बौद्ध** एवं **जैन संस्कृतियों** का साहित्य स्पष्ट रूप से अहिंसा-क्रांति का रूप लेकर एवं नयी चेतना का स्वरूप लेकर प्रकाश में आया। इनमें जैन संस्कृति में गणित ने अत्यन्त सुन्दर एवं गहरी भूमिका अदा की तथा सृष्टि रचना, ज्योतिष एवं कर्म सिद्धान्त की जड़ों को सबल, पुष्ट एवं गहरा बनाने की श्रेयस्कर भूमिका निभाई।

डा० ए० के० बाग ने अपने ग्रन्थ[1] में गणित विकास के व्यवस्थित अध्ययन हेतु उसे प्राचीन भारत के वैदिक युग (लगभग १५०० ई० पू० से २०० ई० पू०) तथा पश्च-वैदिक युग (लगभग २०० ई० पू० से ४०० ई० प०) की अनुवर्ती अवस्थाओं में विभाजित किया है। उन्होंने वैदिक युग में गणितीय ज्ञान के उद्गम के सम्बन्ध में व्यक्त किया है—"About two thousand years before the Christian era, the Indus Valley was invaded by an Aryan race. Following this, an about 1500 B. C., a crude civilisation known as the Vedic civilisation began to emerge in India."

वैदिक सभ्यता का विकास चार प्रक्रमों में हुआ (१) **संहिता** (ऋक्, साम, यजुर् एवं अथर्वन्,) (२) **ब्राह्मण** (आध्यात्मिक एवं धार्मिक ग्रन्थ) (३) **आरण्यक** (जो ब्राह्मण ग्रन्थों के आधिभौतिकीय परिशिष्ट रूप में थे), और **उपनिषद** (दार्शनिक ग्रन्थ) तथा (४) **वेदांगों** का अंतिम प्रक्रम।

वैदिक युग के प्रथम तीन प्रक्रमों में जो साहित्य है उसमें **गणितीय विचार** संबंधी सूचना अत्यल्प है। इस प्रकार डा० बाग के अनुसार **वेदांग साहित्य** जो सम्पूर्ण सूत्र साहित्य के रूप में जाना जाता है। यहाँ सूत्र शब्द गम्भीरता से लिया गया है। यह **वेदांग साहित्य** ६ प्रकार का है : (१) **शिक्षा** (२) **कल्प** (यज्ञादि-नियम) (३) **व्याकरण** (४) **निरुक्त** (५) **छंद** (६) **ज्योतिष**।

इस सूत्र साहित्य के आलोचनात्मक गणितीय ज्ञान से यह मानना पड़ सकता है कि इससे भी पूर्व युग में गणितीय ग्रन्थ रहे होंगे जो विलुप्त हो गये। सात **शुल्बकार** : **आपस्तम्ब, कात्यायन, मानव, मैत्रायन, वाराह** एवं **हिरण्यकेशी**, विख्यात हैं, जिन्होंने वैदिक बलि वेदियों की रचना संबंधी विभिन्न प्रश्नों के हल दिये हैं।[2] यह रेखागणित का स्वरूप था। सबसे पूर्व के **बौद्धायन शुल्बकार** ने **पिथेगोरस** के **साध्य** का प्रतिज्ञापन किया है। यहाँ $\sqrt{२}$ का मान दशमलव के पाँच अंकों तक निकाला गया है। इनके पश्चात् जैन जाति का उदय ई० पू० ५००-३०० के लगभग होता है।

वेदांग ज्योतिष के गणित के संबंध में तीन बार संशोधन (recensions) जो **आर्च ज्योतिष, याजुष ज्योतिष** और **अथर्व-ज्योतिष** कहलाए और उनका गणित वैदिक गणित के उद्गम रूप में माना जा सकता है। **आधुनिक विद्वान साधारणतः वेदांग ज्योतिष को २०० ई० पू० का मानते** हैं।[3]

वैदिक भारत में संख्याओं की गिनती **दसार्हा पद्धति** के आधार पर मानी जाती है। **यजुर्वेद संहिता, तैत्तरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता** आदि में दश, शत, सहस्र, अयुत ($१०^{४}$), नियुत ($१०^{५}$) आदि संख्याएँ आई हैं। एकादश, सप्तविंशति, आदि संयुक्त शब्दों द्वारा संख्याओं को प्ररूपित किया जाता रहा।[4] इन्हें शुल्व सूत्र तथा बाद के ग्रन्थों में भी समझाया जाता रहा। **आपस्तम्ब शुल्व** में ९७२ को **अष्टविंशत्यूनम्** सहस्र अर्थात् १०००—२८ रूप में व्यक्त किया गया।

तैत्तरीय संहिता (७.२.१२-१३) में विषम, सम संख्याओं का विभाजन प्रकट हुआ। भिन्नों का उल्लेख अर्द्ध, पाद, सफ और कला के रूप में क्रमश : $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{८}$, $\frac{१}{१६}$, के रूप में वैदिक साहित्य में मिलता है।[5] शुल्बों में भी $\frac{१}{८}$, $\frac{१}{१०}$, आदि भिन्नात्मक संख्याएं मिलती हैं।[6] इस प्रकार शुल्बकारों को चार परिकर्म एवं भिन्न का प्रारंभिक रूप ज्ञात था। शतपथ ब्राह्मण, तैत्तरीय ब्राह्मण, **छांदोग्य उपनिषद, वेदांग ज्योतिष** आदि में संख्याओं को दसार्हा पद्धति पर आधारित शब्दों के द्वारा व्यक्त किया है।

वैदिक हिन्दुओं की प्रमुख धार्मिक प्रथा बलि थी जिसके लिए उपयुक्त समय निकालने हेतु ज्योतिष विकसित होना माना जाता है। वैदिक वेदियाँ मुख्यतः **आह्वनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि महावेदी, सौत्रमणि, प्राग्वंश, श्येनसित, वक्रपक्ष, व्यस्तपुच्छ, श्येन, कंक, अलज, प्रौग** आदि रूपों में विकसित की गई थीं। तदनुसार उनकी रचना आदि की पूर्ण व्यवस्था **शुल्बकार** किया करते थे।

---

१ **Mathematics in Ancient and Medieval India,** चौखम्भा ओरियण्टकिया, वाराणसी, कोर्स-१६, पृ० ३ आदि।

२ विशेष अध्ययन हेतु देखिए, Sen, S. N. and Bag, A. K., **"The Shulbasutras"** INSA, New-Delhi, 1983.

३ देखिये, बाग, ए. के., वही, पृ० ७

४ **यजुर्वेद संहिता,** (१७.२); **तैत्तरीय संहिता,** (४.४०. ११.४); आदि; **आपस्तम्ब शुल्ब,** (५.७)

५ दत्त एवं सिंह, **हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास,** भाग १, पृ० १८५, मोतीलाल बनारसीदास, लाहोर, १९३५, (अंग्रेजी)

६ दत्त, वि०, **दा साइंस ऑफ शुल्ब,** कलकत्ता वि० वि०, पृ० २१२, १९३२.

इनके लिये यंत्र, माप की इकाइयां तथा ईंटों की आवश्यकता होती थी। इनमें शंकु, वंशदंड, रज्जु इत्यादि यंत्ररूप में तथा अंगुल, पद, अरत्नी, व्यायाम आदि इकाइयां होती थीं। विभिन्न वेदियों के आकार वर्ग, वृत्त, अर्द्ध वृत्त, समलम्ब चतुर्भुज, आयत, पक्षी, (वर्गाकार शरीरादि रूपों में) त्रिभुज, विषम कोण चतुर्भुज, कछुवा आदि रूपों वाला होता था। छाया द्वारा कृत्तिका तारे की दिशा निकाली जाती थी। इस प्रकार शुल्वसूत्रों में पिथेगोरस का साध्य, सम आकृतियों के गुण, वृत्तवर्गणा, समकोण त्रिभुज की रचना और क्षेत्रफलों की गणना होती थीं।

सूचि इकाइयां उनमें निम्न प्रकार थी :[1]

१ अंगुल = २४ अणु = ३८ तिल ;

१ क्षुद्रपद = १० अगुल ; १ पद = १५ अंगुल, १ प्रक्रम = २ पद = ३० अंगुल ;

१ अरत्नी = २ प्रदेश = २४ अंगुल ; १ पुरुष = १ व्याम = ५ अरत्नी = १२० अंगुल;

१ व्यायाम = ४ अरत्नी = ९६ अंगुल ; १ प्रथा = १३ अंगुल ; १ बाहु = ३६ अंगुल,

१ जानु = ३० या ३२ अंगुल ; १ दूण = १०८ अंगुल ; १ अक्ष = १०४ अंगुल ;

१ युग = ८८ अंगुल ; १ शम्या = ३६ अंगुल ; १ अंगुल = $\frac{3}{4}$ इंच (अनुमानतः)

इनसे क्षेत्रफल और घनफल भी निकाले जाते थे। रचना के सिवाय रूपांतरण संबंधी नियम भी उन्हें ज्ञात थे। उन्होंने ज्यामितीय पारिभाषिक शब्दावली भी बनाई थी, यथा अक्ष = विकर्ण, अंत = मिथच्छेदन बिंदु, भूमि = क्षेत्रफल, कर्ण = कोण, करणी = रैखिक आकृति की भुजा या वर्गमूल, द्विकरणी = वर्ग का कर्ण तथा $\sqrt{२}$ इत्यादि। इनसे बीजगणित समीकरण बने।

शुल्व सूत्र युग के पश्चात् १९वीं सदी तक इन सूत्रों का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता और वे निरुपयुक्त रहे। उनमें वर्ग समीकरणों का रूप कुछ इस प्रकार था : महावेदी के क्षेत्र को म एकक बढ़ाने के लिए अज्ञात भुजा क्ष मानने पर य का मान निम्नलिखित होता था। यहाँ आधार ३०, भुजा २४, ऊँचाई ३६ एकक वाली महावेदी हेतु, जिसका आकार समद्विबाहु समलम्ब चतुर्भुज था।

$$३६\ य \times \frac{(२४\ य + ३०\ य)}{२}$$

$$= ३६ \times \frac{२४ + ३०}{२} + म$$

$$\text{या, } ९७२\ य^2 = ९७२ + म,$$

$$\text{या, } \quad य = \pm\sqrt{१ + \frac{म}{९७२}}$$

इसी प्रकार अनिर्धारित समीकरण भी वेदियों की रचना में प्रयुक्त होते थे यथा $क^2 + ख^2 = ग^2$ जहाँ तीनों, अथवा दो अज्ञात हैं।

$$\left.\begin{array}{l}\text{साथ ही } अक + बख + सग + दघ = प \\ \text{और } \quad क + ख + ग + घ = फ\end{array}\right\}$$

यहाँ क, ख, ग और घ अज्ञात हैं।

जहाँ तक वेदांग ज्योतिष का गणित है, उसकी प्रणाली और जैन प्रणाली में विशेष भेद हैं जिन्हें पूर्व में बतलाया जा चुका है। ऋग्वेद ज्योतिष के संग्रहकर्ता लगध नाम ऋषि माने जाते हैं जिन्होंने किसी स्वतन्त्र ज्योतिषग्रन्थ के आधार पर यज्ञ की सुविधा हेतु उसे संग्रहीत किया जो काबुल के आस पास रचित हुआ माना जाता है। इसमें ३६ कारिकाएँ हैं। यजुर्वेद ज्योतिष में ४९ कारिकाएँ हैं और अथर्व ज्योतिष में १६२ श्लोक हैं। नेमिचन्द्र शास्त्री लिखते हैं—[2]

"आलोचनात्मक दृष्टि से वेदांग ज्योतिष में प्रतिपादित ज्योतिष मान्यताओं को देखने से ज्ञात होगा कि वे इतनी अविकसित और आदि रूप में हैं जिससे उनकी समीक्षा करना दुष्कर है।"

डा० जे० बर्गेस ने 'नोट्स आन हिंदू एस्ट्रानामी' नामक पुस्तक में वेदांग ज्योतिष के अयन, नक्षत्र गणना, लग्नसाधन आदि विषयों की आलोचना करते हुए लिखा है कि 'ईस्वी सन् से कुछ शताब्दीपूर्व प्रचलित उक्त विषयों के सिद्धान्त स्थूल हैं। आकाश-निरीक्षण की प्रणाली का आविष्कार इस समय तक हुआ प्रतीत नहीं होता है; लेकिन इस कथन के साथ इतना स्मरण और रखना होगा कि वेदांग-ज्योतिष की रचना यज्ञ-यागादि के समय-विधान के लिए ही हुई थी, ज्योतिष-तत्त्वों के प्रतिपादन के लिए नहीं।" पुनः उन्होंने लिखा है—[3]

"ऋक् ज्योतिष के रचना काल तक ग्रह और राशियों का स्पष्ट व्यवहार नहीं होता था। इस ग्रन्थ में नक्षत्रोदय रूप लग्न का उल्लेख अवश्य है, पर उसका फल आजकल के समान नहीं बताया गया है। यदि गणित ज्योतिष की दृष्टि से ऋक् ज्योतिष को परखा जाय तो निराश ही होना पड़ेगा, क्योंकि उसमें गणित ज्योतिष की कोई भी महत्वपूर्ण बात नहीं है।

१. देखिये, बाग, ए. के., वही, पृ० ११४. २ भारतीय ज्योतिष, पृ० ७९-८० ३ वही, पृ० ८८।

सिर्फ यही कहा जा सकेगा कि यज्ञ-यागादि के समयज्ञान के लिए नक्षत्र, पर्व, अयन आदि का विधान बताया गया है।"

इसी प्रकार **यजुर्वेदज्योतिष** प्रायः **ऋक् ज्योतिष** से मिलता जुलता है। विषय के प्रतिपादन में कोई विशेष भेद नहीं है। **अथर्वज्योतिष** को ज्योतिष का स्वतन्त्र ग्रन्थ कहा जा सकता है जिसमें फलित ज्योतिष प्रधान है।

कल्प, सूत्र, निरुक्त और **व्याकरण** में ज्योतिष चर्चा मिलती है। **बौधायन** सूत्र में **"मीनमेषयोर्मेषवृषभयोर्वसन्तः"** लिखा है जिससे ज्ञात होता है इन सूत्र ग्रन्थों के समय में **राशियों** का प्रचार भारत में था। **निरुक्त** में दिनरात्रि, पक्ष, अयन का वर्णन है तथा युग पद्धति की मीमांसा मिलती है। **याज्ञवल्क्य स्मृति में** क्रान्तिवृत्त के १२ भागों के कथन से मेषादि १२ **राशियों** का प्रमाण सिद्ध होता है। इसी प्रकार **महाभारत** में ज्योतिष शास्त्र की अनेक चर्चाएँ मिलती हैं।

ई० १०० के लगभग जो स्वतन्त्र ज्योतिष ग्रन्थ लिखे गये उनकी चर्चा **वराहमिहिर** ने **पंच सिद्धान्तिका** में की है। ये ५ सिद्धान्त क्रमशः **पितामह, वसिष्ठ, रोमक, पौलिश** और **सूर्य** है। थीवो की **पंच सिद्धान्तिका** भूमिका के अनुसार **पितामह सिद्धान्त सूर्य प्रज्ञप्ति** के समान प्राचीन है। इसे ब्रह्मगुप्त और भास्कर ने आधार माना है। इससे **वसिष्ठ सिद्धान्त** संशोधित एवं परिवर्धित रूप में है जिसमें केवल १२ श्लोक हैं। वर्तमान **लघु वसिष्ठ सिद्धान्त** ९४ श्लोक वाला है। इसका गणित परिमार्जित और विकसित है।

लाटदेव का **रोमक सिद्धान्त** ग्रीक-सिद्धान्तों के आधार पर बनाया गया बतलाते हैं जिसमें यवनपुर के मध्याह्नकालीन सिद्ध किये गये **अहर्गण** हैं। थीबो नहीं मानते कि मूलतः इसे **श्रीषेण** ने रचा। इसका गणित स्थूल है और वह सम्भवतः ई० १००-२०० का हो सकता है। फिर भी इससे **युग पद्धति** के निर्माण की शुरुआत कही जा सकती है। **सैद्धान्तिक विवरण** इसमें निम्नलिखित रूप में है :[1] **आर्या** में **चन्द्र साधन विधि** अशुद्ध है।

महा युगान्त	४३२०००० वर्षों का;	युगान्त (२८५० वर्षों का)
नक्षत्र भ्रम	१५८२१८५६००	१०४३८०३
रविभ्रम	४३२००००	२८५०
सावन दिवस	१५७७८६५६४०	१०४०९५३
चन्द्रभगण	५७७५१५७८ १८/१९	३८१००
चन्द्रोच्चभगण	४८८२५८ १३७०८/५७५८९	३२२ २२८/३०३१
चंद्रपातभगण	२३२१६५ १०९०८५/१६३१११	१५३ २६८८९/१६३१११
सौर मास	५१८४००००	३४२००
अधिमास	१५९१५७८ १८/१९	१०५०
चन्द्रमास	५३४३१५७८ १८/१९	३५२५०
तिथि	१६०२९४७३६८ ८/१९	१०५७५००
तिथिक्षय	२५०८१७६८ ८/१९	१६५४७

थीवो के अनुसार उपरोक्त ई० ४०० के लगभग रचित हुए।

पौलिश सिद्धान्त का ग्रह गणित भी अंकों द्वारा स्थूलरीति से निकाला गया है। **अलबेरूनी** के अनुसार यूनानी सिद्धान्तों के अनुसार इसकी रचना हुई। किन्तु कर्व ने इसका खंडन किया है। **सूर्य सिद्धान्त** में युगादि से **अहर्गण** लाकर **मध्यम ग्रह** सिद्ध किये गये हैं। आगे संस्कार देकर **स्पष्टग्रह विधि** प्रतिपादित की है। ग्रहगमन परिधि के अनुसार सिद्ध किये गये हैं, जिससे ग्रहों की **योजनात्मक** और **कलात्मक** गतियाँ प्रमाणित हो जाती हैं। इस गन्थ में **मध्यम, स्पष्ट, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, परलेख, ग्रहयुति, नक्षत्रग्रहयुति, उदयअस्त, श्रृंगोन्नति, पात अधिकार** तथा **भूगोल** अध्याय दिये गये हैं।

पंच सिद्धान्तों के सिवाय **नारद संहिता, गर्ग संहिता** आदि और ग्रन्थ भी हैं। **पाराशर** द्वारा भी फलित ज्योतिष का **वृहत्पाराशर होराशास्त्र** प्रसिद्ध है।[2]

६. बौद्ध संस्कृति में भूगोल, ज्योतिष एवं खगोलादि सम्बन्धी गणित

ज्ञात हुआ है कि **वेदांग ज्योतिष** के स्तर पर गणित-ज्योतिष सम्बन्धी बौद्ध ग्रन्थ **शार्दूलकरण-अवदान** है। गणित-ज्योतिष का ऐसा विवरण चीनी बौद्ध ग्रन्थों में है जिनमें इस ग्रन्थ के दो

१ देखिए—वही, पृ० १००।

२ विशेष विवरण हेतु देखिए, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, **भारतीय ज्योतिष** (अनु० शि० झारखण्डी) लखनऊ, १९७५।

अनुबन्द भी सम्मिलित हैं। इसके पश्चात् के ग्रन्थ तिब्वती तान्त्रिक ग्रन्थ हैं जिनके नाम कालचक्रतन्त्र (ल० १०वीं सदी) और उसकी टीका विमलप्रभा हैं।

बौद्ध मतानुसार लोकवर्णन आ० वसुबन्धु के अभिधर्मकोश में मिलता है।[1] इसमें इकाइयाँ योजन और कल्प के विभाजन रूप हैं।

क्षेत्रमाप इस ग्रन्थ में निम्न प्रकार हैं।

७ परमाणु = १ अणु;	७ अणु = १ लोहरज;
७ लोहरज = १ जलरज;	७ जलरज = १ शशरज;
७ शशरज = १ मेषरज;	७ मेषरज = १ गोरज;
७ गोरज = १ छिद्ररज;	७ छिद्ररज = १ लिक्षा;
७ लिक्षा = १ यव;	७ यव = १ अंगुलीपर्व;
२४ अंगुलीपर्व = १ हस्त;	४ हस्त = १ धनुष;
५०० धनुष = १ कोश;	८ कोश = १ योजन

कालमाप निम्न प्रकार है :[2]

१२० क्षण = १ तत्क्षण; ६० तत्क्षण = १ लव; ३० लव = १ मुहूर्त; ६० मुहूर्त = १ अहोरात्रि; ३० अहोरात्रि = १ मास; १२ मास + ऊन रात्र = १ वर्ष या संवत्सर। इसके अनुसार लोक धातु अनन्त हैं (वही, पृ० ४१३)।

यहाँ कल्प का भी विचार किया गया है।[3] (१) संवर्तकल्प (२) विवर्त कल्प (३) अन्तर कल्प। अस्सी अन्तःकल्पों का एक महाकल्प होता है। इनका विवरण थोड़ा जैन उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालादि से तुलनीय है।

जहाँ तक संकेतना दाशमिक के प्रक्रमों का विवरण है इसके सम्बन्ध में वी० एल० वान्डर वाएर्डेन का मत[4] उल्लेखनीय है, "In this manner Buddha continues through 23 stages. According to an arithmetic book, koti is a hundred times one hundred thousand (sata sata sahassa), so that the largest number mentioned by Buddha is $10^7 . 10^{46} = 10^{53}$. But in most arithmetics, these same words ayuta and niyuta have other values, viz. 10^4 and 10^5.

But Buddha has not yet reached the end : This is only the first series, he says. Beyond this there are 8 other series.

It is clear that these numerals were never used for actual counting or for calculations. They are pure fantasies which, like Indian towers, were constructed in stages to dazzling heights."

इस प्रकार बौद्ध ग्रन्थों में बड़ी संख्याओं का गणनादि में उपयोग नहीं हुआ। उपरोक्त अभ्युक्ति बौद्ध ग्रन्थ ललित विस्तर (प्रथम शताब्दी ई० पू०), से गणितज्ञ अर्जुन और राजकुमार गौतम (बोधिसत्व) के संवाद में अवतरित अनेक संकेतनास्थानों तक जाने वाली संख्याओं के सम्बन्ध में है। किन्तु वाएर्डेन के अनुसार वही शब्द दूसरी संख्याओं को भी दिखलाता है। कोटि गुणोत्तर संज्ञाओं के पश्चात् विन्दु, अब्बुद, निरब्बुद, अहह, अबब, अतत, सोगंधिक, उप्पल, कुमुद, पुण्डरीक, पदुम, कथान, महाकथान, और असंख्येय बनती हैं—किन्तु उनका दर्शनादि में कहीं कोई उपयोग न होने से वे शुद्ध कल्पनाएँ रूप, वाएर्डेन की दृष्टि में हैं।

बौद्धों ने गणित ज्योतिष पर अधिक रुचि नहीं दिखलाई, जिसका कारण बोसादि ने निम्न प्रकार बतलाया है।[6] "The Buddhists did not evince much interest in astronomy due probably to the degeneration in their time of astronomy into astrology, and to the difficulty of distinguishing between the two. We find in their literature the term nakshatra-pathaka (a reader of stars) which refers both to an astronomer and an astrologer. Buddha referred to astronomy and astrology as low forms of arts (tiracchanavijja) and advised Buddhist monks to refrain from the study of astronomy. This opinion, however, was modified later on and the bhikshus dwelling in the woods were advised to learn the elements of astronomy."

उपरोक्त विवरण केवल भारत में प्राप्य बौद्ध साहित्य पर आधारित है। बौद्ध संस्कृति में भारत में जो गणित के अंशदान हुए हों ऐसा भारत में उपलब्ध साहित्य में दृष्टिगत नहीं होता। भारत से बाहर अन्य देशों में बौद्ध संस्कृति में क्या विकास हुआ यह कठिन तो है किन्तु ज्ञात किया जा सकता है। इस संबन्ध में

१ अभिधर्मकोश, लेखक आ. वसुबन्धु, अनु. आचार्य नरेन्द्रदेव, प्र. हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद; सन् १९५८।

२ वही, ३.८८-८९।

३ वही, ३,८९-१०१।

४ Science Awakening, हालैण्ड, (अं. अनु.) १९४५, पृ० ५२।

६ देखिए, Bose, D. M., Sen, S. N. and Subbarayappa, **A Concise History of Science in India**, New Delhi, 1971, p. 60.

नीधम एवं लिंग का ग्रन्थ दृष्टव्य है।[1] इसमें मुख्यतः चीन से सम्बन्धित विवरण प्राप्य है। शेष आसपास के देशों में जहाँ बौद्ध भिक्षु भारत से पहुँचे, संभव है वहाँ के देशवासियों ने बाद में उत्तरोत्तर विकास किया हो।

७. जैन संस्कृति में भूगोल, ज्योतिष एवं खगोलादि संबन्धी गणित

जैन आगम का सिंहावलोकन :

डा० हीरालाल जैन ने पारम्परिक एवं आगमिक ज्ञान का वर्द्धमान महावीर से पूर्व के अस्तित्व का अवलोकन श्रमणों की सांस्कृतिक परम्परा में किया है।[2] परम्परा को भाषा या विचारों के शब्दों द्वारा द्रव्यश्रुत एवं भावश्रुत रूप में निरन्तर प्रचलित किया जा सकता है। अनुमानतः "**कथित पूर्व**" प्राचीन श्रमण परम्परा का साहित्य रहा होगा। इस परम्परा में तीर्थंकर **ऋषभनाथ** (वैदिक ऋषभ ?), **नेमिनाथ**, (वैदिक अरिष्टनेमि), एवं **पार्श्वनाथ** विख्यात हैं। ईसा से कुछ हजार वर्ष पहले उदित बेबिलनीय, मिस्र देशीय, एवं चीनी सभ्यताओं में प्राप्त गणितीय सूत्रों का प्रयोग जैन संस्कृति में विकसित कर्म सिद्धान्त एवं विश्व संरचना में तुलनीय हैं।[3]

जैनागम के **चौदह पूर्व** आगम के बारहवें अंग के विभाजन रूप थे। जैनागम साहित्य बारह अंगों में रचित हुआ। इसमें से बारहवें अंग में पाँच परिकर्म (**चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति और व्याख्या प्रज्ञप्ति**) **सूत्र, प्रथमानुयोग, चौदहपूर्वगत** एवं **पाँच चूलिकाएँ** हैं। **जैन वर्णमाला** में ६४ अक्षर होते हैं जिनमें ३३ व्यंजन, २७ स्वर, और ४ सहायक होते हैं। इनसे $(२)^{६४}$ संचय अथवा १८४,४६७४,४०,७३,७०,९५,५१,६१५ संयोगी अक्षर बनते हैं जो सम्पूर्ण श्रुत रचना करते हैं। जब इसे मध्यम पद के अक्षरों की संख्या १६,३४८,३०७,८८८ से विभाजित किया जाता है तो जैन आगम के पदों की संख्या ११,२८३,५८,००५ प्राप्त होती है। शेष ८०,१०८,१७५ श्रुत के उस भाग के अक्षरों की संख्या होती है जो अंगों में सम्मिलित नहीं हैं। उसे अंगबाह्य कहते हैं। इसे चौदह प्रकीर्णकों में विभाजित किया गया है।

इस प्रकार श्रुत या तो **अक्षरात्मक** अथवा **अनक्षरात्मक** होता है। **अनक्षरात्मक** श्रुत के असंख्यात विभाग होते हैं जो असंख्यात लोक (प्रदेश बिन्दु राशि) रूप होते हैं।[4]

ज्ञात है कि **श्रुतकेवली भद्रबाहु** (लग० ४थी सदी ई० पू०) तक आगम का ज्ञान श्रुत रूप में पारम्परिक रूप से दिया जाता रहा, सुनकर स्मृति में संरक्षित किया जाता रहा।

उनके पश्चात् बारह वर्ष का लगातार दुर्भिक्ष पड़ने के पश्चात् जैन संस्कृति साहित्य को **श्वेताम्बर** एवं **दिगम्बर** आम्नाय में पनपने का अवसर मिला।

कतिपय गणितीय शब्द

विभूतिभूषण दत्त ने जैन आम्नाय के कुछ गणितीय शब्दों को एकत्रित कर उन्हें समझाने का प्रयत्न किया था।[5] उस समय तक जैन ग्रन्थों में गुंथी हुई गणित की यथासंभव भावना तक पहुँच न हो सकी थीं क्योंकि अनेक ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आए थे। अब इन पारिभाषिक शब्दों को पुनः अवलोकितकर उनके उपयोग पर एक नयी दृष्टि संभव हो सकेगी।

परिकर्म (प्रा० परिकम्म) :

कहा जाता है कि **कुन्दकुन्दाचार्य** (ई० ३री सदी ?) ने प्राकृत भाषा में षट्खण्डागम के प्रथम तीन भागों पर **परिकर्म** नाम की बारह हजार श्लोकों में कुन्दकुन्दपुर में रचना की थी। **वीरसेनाचार्य** द्वारा भी **परिकर्म** ग्रन्थ के उल्लेख कई प्रसंगों में **धवला** टीका में आए हैं। **परिकम्म** का अर्थ विशेष प्रकार का गणित भी होता है, अथवा किसी प्रकार की गणना (संख्यान) भी होता है। (परि = चारों ओर, कम्म = कर्म अथवा प्रक्रिया)।

महावीराचार्य ने **परिकर्म व्यवहार** शब्द का उपयोग एक गणित अध्याय के लिये किया है।[6] उस समय **परिकम्म** का अर्थ आठ प्रकार की गणितीय प्रक्रियाओं के लिए होता था—**प्रत्युत्पन्न** (गुणन), **भागहार**, **वर्ग**, **वर्गमूल**, **घन**, **घनमूल**, **सकलित**, तथा **व्युत्कलित**। इस प्रकार हिन्दू गणित की मूलभूल प्रक्रियाएँ **वर्ग** एवं **घन**, **परिकर्म** में सम्मिलित हैं। चूंकि में **परिकर्म** का अर्थ, गणित की वे मूलभूत क्रियाएँ हैं जो विज्ञान के शेष, और वास्त-

---

१. Needham, J., and Ling, W., **Science and Civilization in China,** vol. 3, Cambridge, 1953.
२. **भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान,** भोपाल, १९६२, पृ० ५१.
३. ग० सा० सं०, भूमिका।
४. **गो० सा० क०** श्लोक ३१६, इत्यादि।
५. बुले० केल० मेथ० सो० (१९२९), उल्लिखित।
६. **ग० सा० सं०,** पृ० ९, ३५

विक अध्यायों के अध्ययन हेतु विद्यार्थी को कुशल बना सकें। उसमें परिकर्म में सोलह प्रक्रियाओं का मूलभूत रूप में समावेश किया गया है। **ब्रह्मगुप्त** ने इन्हें बीस प्रक्रियाओं में दिया है, जो सभी उपर्युक्त आठ मूलभूत प्रक्रियाओं के अन्तर्गत आ जाती हैं। इस प्रकार **परिकर्म** का अर्थ का प्रयोग **करणानुयोग** एवं **द्रव्यानुयोग** में होता था। बारहवें अंग **दृष्टिवाद** के पाँच विभागों में से **परिकर्म** भी एक है। पंडित **टोडरमल** ने **परिकर्माष्टक** में गणित का पूर्ण विवरण **गोम्मटसार जीवकाण्ड** के पूर्व परिचय में दिया है।[1] इनमें शून्य से संबन्धित **परिकर्माष्टक** की प्रक्रियाएँ भी हैं।

द्रव्य के गुण विशेष का जो परिणमन किया जाता है इसे भी **परिकर्म** कहा गया है। जिस ग्रन्थ में गणित विषयक करण सूत्र उपलब्ध होते हैं उसे भी **परिकर्म** कहते हैं। चन्द्रग्रहण आदि के नियत काल से पूर्व ही जान लेने को **परिकर्म** विषयक **कालोपक्रम** कहते हैं। इसी प्रकार **परिकर्म क्षेत्रोपक्रम** आदि को भी परिभाषित किया जाता है।[2]

राशि (प्रा० रासि)

गणित इतिहास में इस शब्द पर ध्यान नहीं दिया गया। **राशि सिद्धान्त** को आज का सेट थ्योरी कह सकते हैं जो विश्व भर में गणित का आधारभूत विषय है। राशि सिद्धान्त का महत्व इसलिए और भी अधिक बढ़ा है कि उसका उपयोग आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक, यांत्रिकी एवं कला आदि में हुआ है। जार्ज कैण्टर (१८४५-१६१८ ई०) आधुनिक **राशि सिद्धान्त** के मौलिक जन्मदाता माने जाते हैं।

पट्खंडागम में राशि के पर्यायवाची शब्द समूह, **ओघ, पुञ्ज, वृन्द, सम्पात, समुदाय, पिण्ड, अवशेष, अभिन्न,** तथा **सामान्य** हैं।[3] **धवला** में इस शब्द का अत्यधिक उपयोग हुआ है। **छांदोग्य उपनिषद** में एक विज्ञान राशि विद्या भी है। **राशि** शब्द के उपयोग के बाद **त्रैराशिक** एवं **पंचराशिक** आदि रूप में गणित आया।

अभिधान राजेन्द्र कोष में राशि का प्रयोग **समूह, ओघ, पुंज, सामान्य वस्तुओं का संग्रह, वर्ग, शालि, धान्य राशि, जीवाजीव राशि ,संस्थान राशि,** आदि रूप में बतलाया गया है। **तिलोय पण्णत्ति** में भी, **दोप्पडि राशियम्, सलाय रासिदो, उपण्ण रासिम्, असंखेज्ज रासिदो, तेउक्काइय रासि, ध्रुव रासि, जोदिसिय जीवरासि, रिण रासिस्स** आदि वर्णित है। **ध्रुव राशि** के गणितीय उपयोग **सूर्य प्रज्ञप्ति** प्रभृति ग्रन्थों में तथा **धवला** टीका में भी हुए हैं। हो सकता है, **युग पद्धतिका** सिद्धान्त ज्योतिष में विकास **ध्रुवराशि** के आधार पर किया गया हो। **षट्खंडागम** में भी निम्नलिखित शब्दों से उक्त राशियाँ ध्वनित होती हैं। **मिच्छाइट्ठी, अणंत, कोडि पुधत्तं, अभव सिद्धिया, सव्व लोगे, अन्तोमुहुत्तं, वग्गणा, फड्डयम्, समयपबद्ध, सागरोवमाणि** आदि। इस प्रकार उद्गम सामग्री में विश्वसंरचना तथा दर्शन विषयक राशियों का गहरा अध्ययन आवश्यक है।

जैन आगम में **अस्तित्व वाली राशियाँ हैं—जीव राशि, पुद्गल राशि** आदि। ऐसी राशियों के प्रमाण को **रचना राशियों** द्वारा समझाया गया है जो **संख्या प्रमाण** एवं **उपमाप्रमाण** रूप होता है। **संख्याप्रमाण संख्येय, असंख्येय** और **अनन्त** रूप है। **उपमा प्रमाण पल्य, सागर समय-राशियों** रूप, तथा **सूच्यंगुल, प्रतरांगुल घनांगुल, जगश्रेणी,** जगप्रतर और **घन लोक प्रदेश-राशियों** रूप है। इन दो प्रकार की **रचना-राशियों** के बीच का सम्बन्ध यह दिया गया है।[4]

$$(\log_2 \text{पल्य})^2 = (\log_2 \text{अंगुल})$$

सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय राशियों का जघन्य और उत्कृष्ट प्रमाणों का है जिस रूप में अखिल लोक की रचना गणित द्वारा प्रदर्शित की गयी है उदाहरणार्थ—

नाम	जघन्य	उत्कृष्ट
द्रव्यप्रमाण	एक पुद्गल परमाणु राशि	समस्त द्रव्य राशि
क्षेत्रप्रमाण	एक आकाश-प्रदेश राशि	अनंतानंत आकाश प्रदेश राशि
कालप्रमाण	एक काल-समय राशि	अनन्त काल-समय राशि
भावप्रमाण	अपर्याप्त सूक्ष्म वनस्पति की ज्ञान पर्याय की अविभागी प्रतिच्छेद राशि।	केवलज्ञान अविभागी प्रतिच्छेद राशि।

इसी प्रकार **परावर्तन राशियां, रिक्त राशि,**[5] गुणस्थान मार्गणास्थानों में **जीव राशियाँ, चल, दोलनीय** आदि ,**परिमित, अपरिमित** आदि, **गुणों के अविभागी प्रतिच्छेद** रूप आदि प्रकार की राशियाँ वर्णित हैं। उपरोक्त क्षेत्र और काल राशियों के

१. जैं० सि० को० भाग २, पृ० २२२-२२४
२. जैं० ल०, भाग २, पृ० ६७४-६७५
३. षट्०, १, २, १, १, पु० ३, पृ० ६
४. ति० प०, १·१३१, तथा १·१३२
५. धवला, १ २, २ और ३। और भी देखिये, धवला (५/प्र० २८) अतीत काल समय राशि को मिथ्यादृष्टि जीव राशि द्वारा रिक्त किया बतलाते हैं।

अंतर्गत अनेक राशियाँ गर्भित हैं। इसी प्रकार द्रव्य और भाव विषयक राशियाँ उपरोक्त के बीच स्थित हैं।

राजू (प्रा० रज्जु)

रज्जु का अर्थ "रस्सी" है जिसके द्वारा लोक-माप बनता है। ७ राजु की जगश्रेणी होती है। **जगश्रेणी** प्रदेश-राशि भी होती है। इसका सम्बन्ध द्वीप समुद्रों में स्थित चन्द्र बिम्बों के समस्त परिवारों से है जो मध्य लोकान्त में फैले हुए हैं। कैण्टर के अनुसार मिस्रदेश के प्राचीन यंत्री, हरपिदोनाप्ती, **रज्जु द्वारा पिथेगोरस के साध्य** (कर्ण)^2=(भुजा)^2+(लम्ब)^2 को प्रयोग में लाते थे जिसमें ५ : ४ : ३ का अनुपात रहता था ताकि समकोण बन सके।

जैन तत्व प्रकाश में अमोलक ऋषि द्वारा राजू के उपमा मान का उल्लेख है जिसमें यह कल्पना है कि वह एक ऐसी दूरी है जिसे एक लोहे का गोला जो ३८,१२,७९,७०,००० मन का हो और ६ माह, ६ दिन, ६ प्रहर, और ६ घटी में तय करता हो।[1] किन्तु गुरुत्वाकर्षण का कौन सा नियम इसमें लगाया है यह स्पष्ट नहीं है। प्रोफेसर जी० आर० जैन ने रज्जु का मान आइंस्टाइन द्वारा दत्त न्यास से $१\cdot४५ (१०)^{21}$ मील निकाला था।[2] यह दूरी इतनी है जिसे कोई देव ६ माह में २०५७१५२ योजन प्रतिक्षण चलते हुए तय करता है। (डेर **जैनिस्मस**—ले० वाम ग्लास नेप्पिन)। यह लगभग $१\cdot३०८ (१०)^{21}$ मील प्राप्त होती है।

तिलोय पण्णत्ति में राजू का प्रमाण सिद्धान्ततः प्रदेश और समय राशियों के आधार पर सूत्र रूप दिया है—

$$\text{जगश्रेणी} = ७ \text{ राजू} = [\text{घनांगुल}]\left[\frac{(\text{पल्योपम के अर्द्धच्छेद})}{(\text{असंख्येय})}\right]$$

यहाँ **घनांगुल** का अर्थ घनांगुल में समाविष्ट प्रदेश (परमाणु) संख्या है। इसी प्रकार **पल्योपम** का अर्थ पल्योपम काल समय राशि है।[3]

वियाह पण्णत्ति (पृ० १८२, ३·१२; पृ० २१, ४·१६) में **योजनों के पदों** में लोक के आयाम दिये गये हैं। किन्तु संख्या पुनः असंख्येय के कारण उलझ जाती है। इस प्रकार जैन साहित्य में रज्जु के उपयोग का अभिप्राय शुल्व ग्रंथों से बिलकुल भिन्न हैं, रज्जु का मान जैन साहित्य में मूलभूत रूप से प्रदेश राशि-परक है।

सर्व ज्योतिष जीव राशि का मान **तिलोय पण्णत्ति** (भाग-२ पृ० ७६४-७६७) में निकाला गया है। यह गणना द्वारा प्राप्त किया मान है जो

(जगश्रेणी)^2÷[६५५३६ प्रतरांगुल] सूत्र रूप में **तिलोय-पण्णत्ती** (भाग २, श्लोक १०·११) में दिया गया है)। इसमें रज्जु के अर्द्धच्छेदों का उपयोग कर द्वीप समुद्रों के समस्त ज्योतिष देवराशि प्राप्त की गई है। इसके द्वारा भी रज्जु का मान समझा जा सकता है।

कलासवर्ण (प्रा० कला सवण्ण)

महावीराचार्य के **गणितसार संग्रह** के अनुसार इसका अर्थ भिन्न (Fraction) होता है। उसमें भिन्नों से सम्बन्धित गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्नों की श्रेढि का संकलन एवं प्रह्लासन, तथा छः प्रकार के भिन्न और उनका विस्तृत विवरण सम्मिलित है।[4] भिन्नों पर विभिन्न प्रश्न भी हल किये गये हैं।

षट्खण्डागम में अगुरुलघु गुण के लिए **संख्येय, असंख्येय,** और **अनन्त भाग** वृद्धि, हानि का वर्णन मिलता है।[5] **तिलोय-पण्णत्ती** में भिन्नों का लेखन दृष्टिगत है। यहां अंश को हर के ऊपर लिखा जाता है। उसे अवहार रूप में निरूपित करते हैं।[6]

उदाहरणार्थ—एक बटे तीन या $\frac{1}{3}$ को $\frac{1}{3}$ लिखते हैं तथा "**एक्क कला तिविहत्ता**" कहा गया है।[7] **सूर्यप्रज्ञप्ति में चूर्णिया भाग** का भी उपयोग किया गया है, अर्थात् भाग का भाग किया गया है।[8] साथ ही कला शब्द का भी उपयोग है। कला का अर्थ भाग होता है और **सवण्ण** का अर्थ समान रंग वाला होता है।

धवला टीकाओं में भिन्नों को राशि सैद्धान्तिक रूप से अभिप्रेत किया गया है।[9] किसी राशि का अन्य राशि द्वारा विभाजन स्पष्ट करने में भाजित, खण्डित, विरलित एवं अपहृत विधियों का उपयोग किया गया है। अवधेश नारायण सिंह ने इन्हीं ग्रन्थों[10]

---

१. **गणितानुयोग** पृ० ६ आदि।

२. Cosmology : Old and New, p. 105.

३. **ति० प०**, श्लो० १·१३१

४. **ग० सा० सं०**, पृ० ३६—८०

५. **षट्**०, पृ० ५५, ६३१, ६५५, ७७३ इत्यादि।

६. **ति० प०** श्लोक १, ११८.

७. **वही** श्लोक २, ११२,

८. **गणितानुयोग** पृ० २९३,२९४, अन्यत्र भी।

९. **धवला**, पृ० ३, पु० ३९ इत्यादि।

१०. वही, पु० ३, पृ० २७—४९

में कुछ ऐसे सूत्र भिन्नों के सम्बन्ध प्राप्त किये जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। इन्हें संभवतः किन्हीं पूर्व के जैन प्राकृत गणित ग्रन्थों से उद्धत किया गया होगा। इसी प्रकार **सूर्यप्रज्ञप्ति प्रभृति** ग्रन्थों की टीकाओं में प्राकृत में जो अनेक गणित सूत्र उल्लिखित किये गये हैं उन पर खोज, शोध होना आवश्यक है।

यावत् तावत् (प्रा० जावं-तावं)

इस शब्द का उपयोग उन सीमाओं को निर्देशित करता है जिन तक प्रमाणों को विस्तृत करना होता है। अथवा सरल समीकरण की रचना करनी होती है। इसका अर्थ "**जहाँ तक**···· **वहाँ तक**" भी होता है। यह शब्द प्राकृत ग्रन्थों में बहुधा प्रयुक्त हुआ है। **अभयदेव सूरि** ने इसका उपयोग गुणन तथा श्रेढि संकलन में निर्दिष्ट किया है। इसे '**व्यवहार**' भी कह सकते हैं। इस सम्बन्ध में उनके द्वारा n प्राकृत संख्याओं का योग S निम्न रूप में दिया है : $S = \frac{n(nx+x)}{2x}$ जहाँ x कोई विवक्षित (**यदृच्छा, वाञ्छा या यावत् तावत्**) राशि है। इस प्रकार विभूतिभूषण दत्त का अनुमान है कि **यावत् तावत्** शब्द कूट स्थिति **(Rule of false position)** से सम्बन्धित है जिसे प्रत्येक देश में रैखिक समीकरणों को साधने हेतु बीजगणित के विकास की प्राथमिक स्थिति में उपयोग में लाया गया होगा[1] **बख्शाली हस्तलिपि** में भी दोनों शब्दों का उपयोग कूट स्थिति नियम हेतु हुआ है।[2] यह भी सुझाव प्राप्त हुआ है कि इसका सम्बन्ध अनिर्धृत अथवा अपरिभाषित इकाइयों की राशि से भी है। **तिलोय पण्णत्ति** में "**उक्कस्सं संखेज्जं जावं तावं पवेत्तआ**" इस अभिप्राय से आया है कि संख्या को संख्यात से उत्कृष्ट संख्यात प्राप्त होने तक गणना कर प्राप्त किया जाये[3] जो जघन्य परीत असंख्येय से केवल एक कम होता है।

योजन (प्रा० जोअण)

यह शब्द एक रेखिकीय माप को प्ररूपित करता है।[4] इस माप का राशि सैद्धान्तिक आधार है क्योंकि इसका सम्बन्ध अंगुल प्रदेश राशि तथा पल्य समय राशि से भी है। यह उतना ही रहस्यपूर्ण है जितना चीनी "ली"। इसका समीपस्थ सम्बन्ध **प्रमाणांगुल** से है जिससे भौगोलिक, ज्योतिष तथा खगोलीय दूरियों का माप किया जाता है। **प्रमाणांगुल सूच्यंगुल** से ५०० गुणा होता है। परमाणुओं से स्कन्ध बनता है और एक योजन का आधारीय सम्बन्ध **सन्नासन्न, त्रुटिरेणु, त्रसरेणु,** तथा **रथरेणु-स्कन्धों** से होता है। क्रमशः इनका सम्बन्ध बाल, लीख, जूँ, जव अंगुल पाद, वितस्ति, हाथ, दण्ड और कोस से होता है। इस प्रकार १ योजन में ४ कोस अथवा ७६८०० अंगुल होते हैं। प्रमाणांगुल के आधार पर योजन का मान ४५४५.४५ मील प्राप्त होता है, और सूच्यंगुल के आधार पर उसका मान ९$\frac{1}{11}$ मील प्राप्त होता है।

जी० आर० जैन ने योजन को ४००० मील मानकर लोक की त्रिज्या निकालने का प्रयास किया है[5] श्वेताम्बर आम्नाय के अनुसार लम्बी दूरी वाला योजन ४ क्रोश वाले साधारण योजन से १००० गुणा किया जाता है। किन्तु **दिगम्बर** आम्नाय के अनुसार वह ४ क्रोश वाले साधारण योजन से ५०० गुणा किया जाता है। इस प्रकार योजन मापन योजना 'चल राशि' रूप में प्रवृत्त होती है। असंख्यात योजन का एक रज्जु होता है।

१ प्रमाण योजन = ५०० आत्मयोजन = १००० उत्सेधयोजन होते हैं।

भौगोलिक योजना में ५१० योजन को ४७° के समान मानते हैं। चाप १° गोलीय पृथ्वी पर छायामाप द्वारा ६९.९ मील स्थापित करते हैं। तदनुसार

५१० योजन = ४७ × ६९·९ मील होने पर १ योजन = ६·४ मील स्थापित होता है। यदि योजन को १६००,००० हस्त आत्मप्रणाली से लिया जाये तो वह ४५४५·४५ मील होता है। जब इसे प्रमाण प्रणाली में बदलते हैं तो वह ९$\frac{1}{11}$ मील होता है।

लिश्क[6] ने मेरु के अन्तःमण्डल को मेरु से ४९८२० योजन लेकर उसे पृथ्वी के ६६–$\frac{1^\circ}{2}$ माने हैं। इसका मान अनुमानतः चीनी ५०००० **ली** होता है। यहां भारतीय और चीनी **योजना प्रणाली** में समानता प्रतीत होती है। सूर्य की क्रांति का एक अयन से दूसरे अयन तक ४७° रूप में ५१० योजन स्वीकार करना उचित है। यह सूर्य की वीथियों सम्बन्धी अन्तःतम एवं

---

१ बुले० केल० मे० सो० (१९२९), पृ० १२२

२ दत्त (१९२९), वही, (२) [भाग xxi], पृ० १-६०। देखिये—**लोक प्रकाश** १,१६५, जहाँ व्युत्पन्न फल प्राप्त किया गया है।

३ **ति० प०**, भाग १, ४. ३०९,

४ **विश्व प्रहेलिका**, पृ० ११४

५ **Cosmology : Old and New** पृ० ११७ आदि।

६ Lishk S. S., Sharma, S. D., Tirthankar, 1.7-12., 1975, pp. 83-92.

ब्राह्यतम दूरियों का अन्तर है। पृथ्वीतल को गोलीय मानने पर १° चाप का माप ६९·९ मील भी माना जाता है, जबकि पृथ्वी की त्रिज्या ज्ञात हो, इस प्रकार योजन का माप लगभग ६·४ मील स्थापित करते हैं। इस प्रयास से जैन ग्रन्थों में ज्योतिष्कों की वर्णित ऊँचाई का रहस्य खुलने लगता है। इस प्रकार चित्रा पृथ्वी से सूर्य की ८०० योजन ऊँचाई का माप ७७°·५ प्रतीत होता है। जिसे सूर्य पथ (eclipter) की किसी समतल अथवा अवलोकनकर्ता से कोणीय दूरी माना जा सकता है। इस प्रकार चन्द्र की ऊँचाई. ८८० योजनों को इन इकाइयों में ७°.७ अधिक माना जाकर, सूर्य से चन्द्र की यह उत्तरी ध्रुवीय दूरी माना जा सकता है[1]। अन्य ग्रहों के सम्बन्ध में अभी भी शोध करना वाञ्छनीय है।

पल्य (प्रा० पल्ल)

साहित्यिक रूप से **पल्य** का अर्थ खात या गड्ढा होता है जिसे अनाज भरने के उपयोग में आते हैं। उसके द्वारा राशि का काल माप प्ररूपित करते हैं। पल्य तीन प्रकार के होते हैं[2] **व्यवहार, उद्धार** एवं **अद्धा**। इनके प्रमाण, गणना और गिनती विधि से निकाले जाते हैं।

व्यवहार पल्य$=$४.१३$\times$(१०)^{46} वर्ष। इसे अविभागी समयों में बदला जा सकता है।

उद्धार पल्य$=$४.१३$\times$(१०)$^{44}\times$जघन्य युक्त असंख्यात $\times$१०^{7} वर्ष। यहाँ जघन्य युक्त असंख्यात का मान गणना विधि से प्राप्त हो जाता है।

अद्धा पल्य$=$४·१३$\times$(१०)$^{44}\times$(जघन्य युक्त असंख्यात)^{3} वर्ष।

यहाँ अज्ञात मध्यम संख्यात की अनिर्धृतता छोड़कर इन सभी को समय राशि में बदला जा सकता है।

जब उपरोक्त को (१०)^{14} से गुणित किया जाता है तो संवादी सागर का मान प्राप्त हो जाता है। **श्वेताम्बर** तथा **दिगम्बर** आम्नायों में तत्संबन्धी अन्तर का अध्ययन विश्व प्रहेलिका में उपलब्ध हैं।[3]

यह **उपमा मान** की राशि है जिसे रचना-राशि कह सकते हैं। इस प्रकार रचित राशि के द्वारा अस्तित्व में पाई जाने वाली राशि का प्रमाण दर्शाया जाता है।

आवनिका (प्रा० आवलिका)

इसका अर्थ **पंक्ति** या **कतार** (trail) होता है। यह एक क्रमबद्ध समयों की राशि होती है। जघन्य युक्त असंख्यात समयों की एक **आवलिका** होती है। ४४४६$\frac{२४५८}{३७७३}$ आवलिकाओं का एक **प्राण** आदि माप बनते हैं। इस प्रकार **मुहूर्त, अहोरात्र** आदि तक पहुँचते हैं। इस प्रकार जैन विज्ञान में समय माप का राशि-सैद्धान्तिक आधार होता है जो पुनः क्षेत्र-माप से सम्बन्धित हो जाता है। इससे एक समय कम करने पर उत्कृष्ट संख्यात बनता है जिसे मुनि महेन्द्रकुमार द्वारा **शीर्ष प्रहेलिका** भी कहा गया है।[4] **काल, समय** और **अद्धा**, ये सब एकार्थवाची नाम हैं। एक परमाणु का दूसरे परमाणु के व्यतिक्रम करने में जितना काल लगता है, उसे **समय** कहा जाता है। चौदह राजु आकाश प्रदेशों के अतिक्रमण मात्रकाल से जो चौदह राजु अतिक्रमण करने में समर्थ परमाणु है, उसके एक परमाणु अतिक्रमण करने के काल का **समय** है। ऐसे असंख्यात समयों की एक आवलि होती है। **तत्प्रायोग्य** संख्यात आवलियों से **उश्वास-निश्वास** निष्पन्न होता है।[5]

अर्द्धच्छेद (प्रा० अद्धछेद)—

इसका शाब्दिक अर्थ **आधा भाग** होता है। **आधा भाग, आधा भाग** से निर्मित संख्या को किसी संख्या की **अर्द्धच्छेद** संख्या कहते हैं। ज्यामितिरूप से किसी रेखा में स्थित प्रदेश बिन्दुओं की भी **अर्द्धच्छेद** संख्या प्राप्त की जा सकती है, यथा रज्जु के अर्द्धच्छेद।[6] घन लोक के भी **अर्द्धच्छेदादि** राशि का विवरण मिलता है।[7] इसी प्रकार के अन्य पारिभाषिक शब्द **तिगच्छेद** (trisection), **चउक्कादिच्छेद** (quadri-etc. section) इत्यादि हैं। इस प्रकार इन सभी को लागएरिद्म टू दा बेस टू, थ्री, फोर (logarithan to base, two, three, four, etc.,) कह सकते हैं। यदि $x=2^n$ हो तो $n=\log_2 x$, अर्थात् 2^n के अर्द्धच्छेद n कहे जाते हैं अथवा 2^n को २ द्वारा n बार छेदा जा सकता है। जान नेपियर (१५५०-१६१७ A.D.) और जो जे० बर्जी (१५५२-१६३२ A. D.) द्वारा इस पद्धति को आविष्कृत माना जाता है।

---

१ लिश्क और शर्मा (१९७५), (१९७९)

२ ति० प० श्लोक १.११६—१.१२८

३ वि० प्र० पृ० २४५-२५२। लो० प्र० १.१६५ आदि; ति० प०, ४.३११ आदि।

४ वि० प्र०, पृ० ११७, श्वेताम्बर परम्परानुसार।

५ षट्० खं०, पु० ४, पृ० ३१८.

६ ति० प० भाग २, पृ० ७६४-७६७।

७ वही० पृ० ५९७-६००।

इसके समस्त नियमों के लिए धवला ग्रन्थ[1] और त्रिलोक सार[2] दृष्टव्य हैं।

किसी राशि की अर्द्धच्छेद राशि की भी अर्द्धच्छेद राशि निकाली जाये तो उसे **वर्गशलाका** राशि कहते हैं।[3]

विकल्प (प्रा० वियप्प)

इसका अर्थ **गणितीय कल्पना** (mathematical abstraction) कर सकते हैं। इसे और भी व्यापक अर्थ में **संचयक्रम संचय** गणित भी लेते हैं जिसे **भंग** भी कहते हैं। टीकाकार **शीलांक** (ल० ८६२ ई० प०) ने संचय क्रमसंचय सम्बन्धी तीन नियम बतलाये हैं।[4]

इनमें से दो संस्कृत में हैं, और एक अर्द्ध मागधी में है। प्रथम नियम द्वारा विशिष्ट संख्या की वस्तुओं के पक्षांतरण की कुल संख्या निकाली जाती है। इसे "भेद-संख्या-परिज्ञानाय" कहा है। अथवा एक से प्रारम्भ कर, दी गई पद संख्या तक (प्राकृत) संख्याओं को गुणित करने पर विकल्प गणित में परिणाम प्राप्त होता है। इसे $\underline{|m}$ अथवा $1, 2, 3....(m-2)(m-1)(m)$ कहते हैं। स्थानभंग और क्रमभंग रूप से भंग दो प्रकार के होते हैं।[5]

संचय सूत्र क्रमशः $^{m}c_1 = m$, $^{m}c_2 = \frac{m(m-1)}{1\cdot 2}$ द्वारा व्यक्त किये जा सकते हैं। शेष नियम **प्रस्तारानयनोपाय** हैं जिनसे समस्त भिन्न क्रम संचय प्राप्त हो जाते हैं।[6]

नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती (ल० ११वीं सदी) ने भी संचय विधि का विस्तृत विवेचन दिया है—*यथा* —

संखा तह पत्थारो परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठम् ।
एदे पंच पयारा पमाद समुक्कित्तणे णेय ॥३५॥[7]

प्रस्तार रत्नावली मुनि रत्नचन्द्र द्वारा सम्पादित की गयी है।[8] यह विधि द्विपद प्रमेय के विकास में निर्णायक रही है।[9]

यतिवृषभ द्वारा १९ विकल्पों द्वारा द्वीप समुद्रों के विस्तार एवं क्षेत्रफल का अल्पबहुत्व विवरण दिया है।[10]

वीरसेनाचार्य ने **अधस्तन** और **उपरिम** विकल्प द्वारा किसी भी राशि का विकल्प विधि द्वारा विश्लेषण किया है। अधस्तन विकल्प तीन प्रकार का है: **द्विरूपवर्ग धारा, द्विरूपघन धारा,** तथा **द्विरूप घनाघन धारा**। उपरिमविकल्प भी तीन प्रकार का है—**गृहीत, गृहीत-गृहीत** और **गृहीत गुणकार**। जिनमें से प्रत्येक प्रकार को पूर्व विकल्प में विभाजित किया गया है। यह अत्यन्त रहस्यमय विवरण है।[11]

संदृष्टि (प्रा० संदिट्ठि)

इस शब्द का अर्थ प्रतीक है। इसके लिये **सहनानी** शब्द का भी प्रयोग हुआ है। प्रतीकों के कुछ चिह्न **तिलोयपण्णत्ति, धवला** में दिये हैं। किन्तु इनका सम्पूर्ण और अत्यन्त वृहद रूप **गोम्मटसार लब्धिसार क्षपणासार** की टीकाओं में उपलब्ध है। इसे अर्थ संदृष्टि अधिकारों द्वारा पं० टोडरमल ने अपनी **सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका** टीका में स्पष्ट किया है। **अङ्कसंदृष्टि, अर्थसंदृष्टि** और **रूपसंदृष्टियाँ** प्रचलित रही हैं। "अर्थ" से वस्तुओं के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के प्रमाणादि का बोध होता है। प्रमाणों की संदृष्टि को ही अर्थ-संदृष्टि कहा गया है।[12] इन सभी में इकाई अवयव जैसे **समय, प्रदेश, अविभागी प्रतिच्छेद** आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। **आचारांगनिर्युक्ति** गाथा ५० में निम्नलिखित उल्लेख आया है।

"गणियं णिमित्त जुत्ती संदिट्ठी अवितहं इमं णाणं ।
इय एगंतमुवगया गुण पच्चाइय इमे अत्था ॥५०॥

घातादि के नियम (Laws of Indices)

अनुयोगद्वार सूत्र में **घातों** का उपयोग बड़ी संख्याओं को निरूपित करने में किया गया है, जिन्हें **स्थानमान पद्धति** में भी दर्शाया गया है। उदाहरणार्थ, कोटि कोटि में बीस स्थान मान

१ **धवला**, भाग ३, पृ० २० आदि।
२ त्रि० सा०, गाथा १०५-१०८।
३ देखिए **धवला**, भाग ३, पृ० २१-२४, तथा पृ० ५६।
४ देखिये **भ०** सू०, ८. १, श्लो० ३१४. और भी सू० कृ० टीका, श्लो० २८, **समयाध्ययन** अनुयोगद्वार।
५ विस्तृत वर्णन हेतु देखिये कापड़िया, एच० आर०, **गणित तिलक**, बड़ौदा, १९३७, पृ० XIII.
६ देखिये **हेमचन्द्र सूरि** (१०८९ ई०) द्वारा **अनुयोगद्वार सूत्र,** श्लोक ९७ की टीका। हिन्दू गणितज्ञों ने इसे नहीं दिया है।
७ दत्त (१९३५), **मेथामेटिक्स ऑफ नेमिचन्द**, दी जैन एंटीक्वेरी, आरा, १, २, २५-४४। देखिये गो० जी० का०, गाथा ३५ आदि।
८ *प्रस्तार रत्नावली*, बीकानेर, १९३४।
९ वाग, ए० के०, (१९६९), **वायनामियल थ्योरम इन एंसिएंट इण्डिया**।
१० ति० प०, गाथा ५·२४२ आदि।
११ **धवला**, भाग ३, पृ० ४२-६३।
१२ **अर्थ संदृष्टि अधिकार गोम्मटसार एवं लब्धिसार (क्षपणासार गर्भित)** की वृहद टीकाओं में उपलब्ध है जो गांधी हरिभाई देवकरण ग्रन्थमाला, कलकत्ता से १९१९ के लगभग प्रकाशित हुए।

हैं, इसे २ के छठवें वर्ग और पाँचवे वर्ग के गुणन द्वारा प्राप्त किया जाता है। अथवा उसे २ के द्वारा ९६ बार छेदा जा सकता है।[1] इसी संख्या को २४वें स्थान के ऊपर और ३२वें स्थान के नीचे भी बतलाया गया है।

उत्तराध्ययन सूत्र में किसी भी गणितीय राशि की घातों को दर्शाने की विधि स्पष्ट है। किसी भी राशि की दूसरी घात को वर्ग, तीसरी घात को घन, चौथी घात को वर्ग-वर्ग, छठवीं घात को **घन वर्ग** और बारहवीं घात को **घन-वर्ग-वर्ग** कहा है।[2]

षट्खंडागम में, २ का **तीसरा वर्गितसंवर्गित** $(२५६)^{256}$ प्राप्त होता है। **धवला** में घातांक के सभी नियमों का उपयोग है। कोटि कोटि-कोटि और कोटि-कोटि-कोटि-कोटि के बीच संख्या $(२)^{(२)^6}$ और $(२)^{(२)^5}$ के बीच में स्थित है। यही $[(१०)^7]^3$ और $[(१०)^7]^4$ के बीच स्थित है। **गोम्मटसार** में इसे

७९,२२,८१,६२,५१,४२,६४,३३,७५,९३,५४,३९,५०,३३६ रूप में दर्शाया है।[3] यह मनुष्यों के निवास का क्षेत्रफल बतलाती है।

हेमचन्द्र (ल० १०८९ ई० प०) ने **यमल** शब्द का उपयोग किया। (i) **आठ स्थानमानों** के समूह से १ **यमल** पद बनता है जिससे परिभाषित संख्या २४वें स्थान से ऊपर और ३२वें स्थान से नीचे बनती है। (ii) **त्रियमल** पद का अर्थ छठवां वर्ग और **चतुर्यमल** पद का अर्थ आठवां वर्ग होता है। इससे ज्ञात होता है कि राशि छठवें वर्ग और आठवें वर्ग के बीच स्थित है। धवल ग्रन्थों के समान्तर विवरण से इसे स्पष्ट किया जा सकता है।[4] साथ ही द्वितीयवर्ग का अर्थ $क(२)^2 = क^4$ होता है। इसी प्रकार द्वितीय सूत्र का अर्थ $क^{\left(\frac{1}{2}\right)^{\frac{1}{2}}} = क^{\frac{1}{4}}$ होता है।

स्थानमान पद्धति (Place-value Notation)

स्थान को प्राकृत में **ठाण** कहते हैं। इसका अत्यधिक उपयोग जैन साहित्य में हुआ है। यह आकाश में या श्रेणि में, आदि प्रकरणों में क्रमादि का सूचक है। अनेक जैन ग्रन्थों में गणना के अनेक स्थानों का विवरण है। व्यवहार सूत्र में गणना स्थान पद का उपयोग है। अंकलिपि और गणित लिपि शब्द **समवायांग सूत्र** में हैं।[5] विभिन्न प्रकार की लिपि की सूची **श्यामार्य** (ल० १५१ ई० पू०) के **प्रज्ञापना सूत्र** में है। काष्ठकर्म में प्रयुक्त वर्णमाला के रूपों तथा पुस्तक कर्म में प्रयुक्त वर्णमाला के बीच भेद पाया गया है।[6] इस प्रकार भारतीय संख्या पद्धति के मूल उद्गम तथा विकास को सुनिश्चित करने हेतु केवल पेलियोग्राफिक साक्ष्य पर निर्भर रहना उचित नहीं होगा।

जैन साहित्य में पारिभाषिक शब्दावलि में चौथे **स्थानमान** के ऊपर स्वाभाविक समूहन और पुनर्समूहन है। पदों में दसों, शतों, सहस्रों और कोटियों आदि का महत्व है। अंक स्थाने ही द्वारा ७८४ स्थानमानों में संख्या $(८४,००,०००)^{28}$ निरूपित है जहाँ ८४,००,००० को पूर्वी **अनुयोगद्वार सूत्र** में बतलाया है। इसे **शीर्ष प्रहेलिका** भी कहा है।[7]

षट्खंडागम में स्थानमान पद्धति द्वारा संख्याओं को निरूपित किया गया है। उदाहरणार्थ, **चउवण्णम्** (चौवन), **अट्ठोत्तर** सदम् (एक सौ आठ), **कोडि** (करोड़), इत्यादि।[8]

तिलोयपण्णत्ति में अचलात्म अथवा $(८४)^{31} \times (१०)^{90}$ वर्षों को ८४/३१/९० रूप में दिया है।[9]

धवला में अनेक प्रकार से **संख्याओं के निरूपण** का उल्लेख है। साथ ही उसमें शत, सहस्रकोटि शब्दों का प्रयोग है।[10] एक प्राचीनग्रन्थ से ६१,९८,०८,४३,६६,८१,६४,१६,२०,००,००,००० **धवलाकार** ने निम्न रूप में प्रस्तुत किया है—

> **गयणट्ठ-णय कसाया चउसट्ठि नियंक वसुखरा दव्वा।**
> **चायाल वसुणमाचल पयट्ठ चन्दो रिद्दू कमसो॥**[11]

जैनाचार्यों द्वारा आवश्यकतानुसार यह विधि विकसित हुई प्रतीत होती है, क्योंकि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। आश्चर्य है जिस ऋषिमण्डल ने यह आविष्कार किया उन्होंने अपना नाम नहीं दिया। धवला में जो शैलियाँ दी गई हैं वे संस्कृत साहित्य में उपलब्ध नहीं हैं।

---

१ अ० द्वा० सू०, गाथा १४२.
३ गो० सा० क० (अंग्रेजी), पृ० १०४
५ सम० सूत्र, गाथा १८
७ हेमचन्द्र द्वारा निरूपित गाथा ११६
९ ति० प०, गाथा ४, ३०८
११ धवला, भाग ३, पृ० २५५, १, २, ४५, ७१

२ उ० सू०, (३०; १०, ११).
४ दत्त (१९२९)।
६ प्र० सूत्र, गाथा ३७
८ षट्० १·२·९, १·२·११ आदि
१० धवला भाग ३, पृ० ९८, ९९, गाथा ५२, गाथा ५३, पृ० १०० देखिये दत्त (१९३५) पृ० २७ आदि।

घटाने के लिए स्थानमान संकेतना (Place-value Notation for Subtraction)

यह एक ऐसा अनुरेखण है जिससे यह ज्ञात होता है कि इसी प्रकार **स्थानमान संकेतना** की ओर जैनाचार्य बढ़े होंगे। घटाने के लिए रिण शब्द अथवा रि संकेत का उपयोग होता था। हस्तलिपियों में इसे O⁓⁓ ⏋ रूप में लिया है। इस प्रकार किसी राशि के असंख्यात में से १ घटाना हो तो इस रूप में ०-०⏋ लिखा जाता था, किन्तु बाद में इसे सरल व | रूप में 'वं छपाया जाने लगा। हम छापे की अर्थसंदृष्टि से ही घटाने के लिए **स्थानमान संकेतना** समझायेंगे। यहाँ ल लक्ष है जिसे ५, ४, ३ द्वारा गुणित किया गया है।[1]

राशि	संकेतना
ल×५×४×३	ल।५।४।३
ल×५×४×३—१ल	१— ल५।४।३
ल×५×४×३—ल×५	१— ल।५।४।३
ल×५×४×३—ल×५×४	१— ल।५।४।३
ल×५×४×३—ल×३	ल³ — ५।४।३
ल×५×४×३—ल×४×३	१— ल।५।४।३
ल×५×४×३—ल×५×३	१— ल।५।४।३
ल×५×४×३—२ल×४×३	२— ल। ५ । ४ । ३
ल×४×३—१२	१— ल ।४।३

उपर्युक्त से प्रकट है कि उपरोक्त व्यवहार **तिलोयपण्णत्ति** में भी प्रयुक्त होने के कारण पर्याप्त प्राचीन होना चाहिए।[2] इसका प्रयोग **गोम्मटसार** की **जीव तत्व प्रदीपिका** तथा **कर्णाट वृत्ति** में अत्यधिक हुआ है। रिण के लिए अनेक चिह्न प्रचलित रहे हैं, यथा :—ˋ, —, ⁓, ०, ‿, ⁀, + रि अथवा रिण। हस्तलिपियों में O⁓⁓ ⏋ चिह्न का प्रयोग विशेषाधिक मिलता है। ऐसा लगता है कि **ब्राह्मी** के चिह्न ⁚· जो इ के लिए है वह ० में बदल गया, ⁓ र के लिए प्रयुक्त हुआ ⏋ जो नीचे की ओर आया है वह ण के लिए हो सकता है। धन के लिए धण का उपयोग भी हुआ है। इसके साथ ० नहीं लगाते हैं। इसके लिए केवल — अथवा ⏋ का उपयोग करते रहे हैं।[3] काकपद + चिह्न का उपयोग ऋण के लिए बख्शाली हस्तलिपि में भी हुआ है।[4]

श्रेणि (Series or Progressions)

सूर्यप्रज्ञप्ति में **ध्रुवराशि** की सहायता से विभिन्न ज्योतिष्कों की **युति**, **संपात** आदि का काल एवं अन्य ज्योतिषी गणनाएँ करने हेतु **श्रेणियों** की रचना हुई प्रतीत होती है।[5] **चन्द्र प्रज्ञप्ति** प्रभृति ग्रन्थों तथा **तिलोयपण्णति** में भी **ध्रुवराशि** के उपयोग से **श्रेणि** रचना हुई हैं जिनमें **समान्तर** और **गुणोत्तर श्रेणियाँ** प्राप्त होती हैं।[6] **गोम्मटसार** में **ध्रुवभागहार** द्वारा भी इसी प्रकार की **गुणोत्तर श्रेणियाँ** प्राप्त की गई हैं।[7] चीन में प्रायः ७वीं सदी से इस प्रकार की **राशि** जिसे **तिंग** कहते थे, ज्योतिष गणित में उपयोग हुआ है। वहाँ **फिंग** शब्द का भी उपयोग हुआ है जिसे तैरनेवाला अन्तर कहा गया है।[8] यही सम्भवतः बाद में **परिमित अन्तर-विधि**[9] रूप में न्यूटन आदि ने विकसित किया।

उपर्युक्त के सिवाय **तिलोयपण्णत्ति** में निम्नलिखित प्रकार के सूत्र प्राप्त हुए हैं :

मानलो **श्रेणि योग** यो, **प्रचय** प्र, **आदि** आ और **गच्छ** ग है और **इष्ट संख्या** इ हो तो[10]

$$\text{यो} = [\text{ग}-\text{इ})\text{प्र} + (\text{इ}-१)\text{प्र} + (\text{आ}.\ २)]\ \frac{\text{ग}}{२}$$

इष्ट संख्या को प्रथम, द्वितीय या अन्य कोई **श्रेणि** माना जा सकता है।

समान्तर श्रेणि हेतु सूत्र[11]

$$\text{यो} = \left[\left\{\left(\frac{\text{ग}-१}{२}\right)^2 + \left(\frac{\text{ग}-१}{२}\right)\right\}\text{प्र} + ५\right]\text{ग}$$

---

१ अ० सं० **गो०** पृ० २०-२१

२ **ति० प०**, भाग २, पृ० ६०६

३ देखिये हस्तलिपि, अ०सं०गो० जो मन्दिरों में **गो०सा० जी०** आदि के साथ उपलब्ध है जिसमें **सम्यक्ज्ञान चन्द्रिका टीका, पं० टोडरमल** कृत भी है।

४ दत्त एवं सिंह (१९३५) भाग १, पृ० १४-१५

५ **सू० प्र०**, भाग २, पृ० ६६-७४

६ **ति० प०**, गाथा ७, १२२, २२२

७ **गो० सा० जी०**, भाग २, पृ० ६२८-६४८

८ नीधम एवं लिंग (१९५९), पृ० ४८, ४९, १२३, १२४

९ Method of Finite Difference.

१० **ति० प०**, भाग १, २·६४

११ **वही**, अगली गाथाएँ, २·७०

यहाँ ५ का सम्बन्ध पाँचवें नर्क से है।

जब कभी **श्रेणि** की संख्या इ हो तो **योग** का सामान्य सूत्र है—

$$\text{यो} = \frac{\text{ग}}{२}[(\text{ग}+\text{इ})\text{प्र} - (\text{इ}+१)\text{प्र}+२\text{आ}]$$

अन्य सूत्र हैं

$$\text{यो} = \left[\left(\frac{\text{ग}-१}{२}\right)\text{प्र}+\text{आ}\right]\text{ग}$$

नारकीबिलों सम्बन्धी दो सूत्र और हैं :[1]

$$\text{यो} = \frac{\text{ग}^2\text{प्र}+२\text{गआ}-\text{गप्र}}{२}$$

$$\text{यो} = \frac{(\text{ग}^2-\text{ग})\text{प्र}+\text{गआ}}{२}+\frac{\text{आ}}{२}\text{ग}$$

गुणोत्तर श्रेणि का योग निकालने हेतु[2]

$$\text{यो} = \frac{(\text{वि})^{\text{ग}}-१)\text{आ}}{\text{वि}-१}$$

जहाँ वि, **विशेष** है, जो गुणकार रूप प्रत्येक अगले पद को गुणित करता चलता है।

अनिर्धृत समीकरणों का उपयोग कर्मग्रन्थ में कहीं-कहीं हुआ है। यहाँ **आदि धन** को $\text{ध}_{\text{आ}}$, **मध्यम धन** को $\text{ध}_{\text{म}}$ तथा **उत्तर धन** को $\text{ध}_{\text{उ}}$ लिखेंगे। शेष संकेत उपरोक्त लेते हुए निम्न प्रकार के सूत्र प्राप्त होते हैं जो कर्मग्रन्थों से सम्बन्धित हैं। यहाँ ध=यो मान लेंगे।

$$\text{ध}_{\text{आ}}+\text{ध}_{\text{उ}} = \text{यो} \qquad (१)^{3}$$

$$\text{ध}_{\text{म}} \times \text{ग} = \text{यो} \qquad (२)$$

$$\left[\left\{\left(\frac{\text{ग}-१}{२}\right)\text{प्र}\right\}\times\text{आ}\right]\times\text{ग} = \text{यो} \qquad (३)^{4}$$

$$\left(\frac{\text{आ}+१}{२}\right)\text{ग} = \text{यो} \qquad (४)$$

$$\frac{\text{यो}}{\text{ग}^2}\div\text{संख्येय} = \text{प्र} \qquad (५)$$

$$\left(\text{यो}-\text{ध}_{\text{आ}}\right)\div\frac{\text{ग}^2-\text{ग}}{२}\text{प्र} \qquad (६)^{5}$$

$$\frac{\text{यो}-\text{ध}_{\text{उ}}}{\text{ग}} = \text{ग} \qquad (७)$$

$$\text{ध}_{\text{उ}}\ \frac{\text{ग}-१}{२}.\text{ग}.\text{प्र}. \qquad (८)^{6}$$

इसी प्रकार अन्यत्र स्थलों में उपरोक्त एवं शेष सूत्रों का प्रयोग है। विशद विवरण के लिए **गोम्मटसारादि** की **कर्णाटवृत्ति** एवं **जीवतत्व प्रदीपिका** टीकाएँ दृष्टव्य हैं। उपरोक्त शोध का विषय है जो **श्वेताम्बर** आम्नाय के **करणानुयोग** ग्रन्थों के गणित से तुलना रूप हो सकता है।

धाराएँ एवं अल्पबहुत्व (Sequences and Comparability)

विभिन्न **रचना-राशियों** द्वारा अस्तित्वशील राशियों की स्थिति निश्चयन **धाराएँ** एवं अल्पबहुत्व करते हैं। **व्यासों, क्षेत्रफलों** आदि से उत्पन्न **धाराओं** का अल्पबहुत्व **तिलोयपण्णत्ति** में उपलब्ध है।[7]

राशि सिद्धान्त में **रचना-राशियों** का बड़ा महत्व है क्योंकि उनके द्वारा **अस्तित्वशील राशियों** का मान बतलाने में सुविधा होती है। **धाराओं** की भी इसी प्रकार रचना की जाती है और उनमें उत्पन्न रचना-राशियों द्वारा अस्तित्वशील **राशियों** की स्थिति स्पष्ट करते हैं। त्रिलोकसार में **वृहद्धारा परिकर्म** से संकेत मात्र धाराओं का विवरण लिया गया है, किन्तु यह **वृहद्धारा परिकर्म ग्रन्थ** अब उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः दक्षिण के शास्त्र भण्डारों में प्राप्त हो सके। ये धाराएँ **सुक्रमबद्ध** हैं और निम्न रूप में संक्षेप में वर्णनीय हैं—सभी **केवलज्ञान राशि** तक पहुँचाती हैं। किन्तु इनकी रचना भिन्न-भिन्न प्रकार द्वारा की जाती है। इस प्रकार **त्रिलोकसार** में १४ धाराओं का वर्णन है।[8] इस सम्बन्ध में विशेष अध्ययन हेतु लक्ष्मीचन्द्र जैन का शोध लेख दृष्टव्य है।[9] यहाँ मानलो **गच्छ** (ग), **धारा** (धा), **केवल ज्ञान अविभाग प्रतिच्छेद राशि** (के) तथा **सदस्यता** प्रतीक ∈ हो, तो निम्न रूप में **धाराओं** का विवरण हो जाता है।

प्रतीक	**नाम**	**सामान्य पद**
धा_1	सर्वधारा	$[१+(\text{ग}-१)^1]$
धा_2	समधारा	$[२+(\text{ग}-१)^2$
धा_3	विषमधारा	$[१+(\text{ग}-१)^2$

---

१ ति० प० भाग १, २·७४, २·८१
२ वही, ३—८०, देखिये सरस्वती (१९६१-६२),
३ गो० सा० जी०, ४९, १२१-१२४
४ त्रि० सा०, गा० १६४
५ ,, ,, ,, ४९, १२३
६ वही, ४९, १२२/३
७ ति० प० ग० श्लोक, ४·२५२५—४·२७७
८ त्रि० सा०, गाथा १४-५२ तथा ५३
९ जैन, एल० सी० (१९७७) आई० जे० एच० एस०, १२·१

प्रतीक	नाम	सामान्य पद
धा_4	कृतिधारा	ग^2
धा_5	अकृतिधारा	$(\text{ग} : \text{ग} \in \text{धा}_1—\text{धा}_4)$
धा_6	घनधारा	ग^3
धा_7	अघनधारा	$(\text{ग} : \text{ग} \in \text{धा}_1—\text{धा}_6)$
धा_8	कृतिमातृकधारा	$(\text{ग}^2)^{1/2}$
धा_9	अकृतिमातृकधारा	$[(\text{के})^{1/2}+\text{ग}]$
धा_{10}	घन मातृक धारा	$(\text{ग}^3)^{1/3}$
धा_{11}	अघन मातृक धारा	$[(\text{के})^{1/3}+\text{ग}]$
धा_{12}	द्विरूप वर्गधारा	$(२)^{(२)^{\text{ग}}}$
धा_{13}	द्विरूप घनधारा	$(२)^{३(२)^{\text{ग}—१}}$
धा_{14}	द्विरूप घनाघनधारा	$(२)^{(३)^2(२)^{\text{ग}—२}}$

यहाँ धा_1 के महत्व को देखना है। इसमें सम्मिलित सभी **द्रव्य गुण पर्यायों** का सभी **काल के समयों** और **प्रदेशों** उनकी **स्थिति** आदि तथा **भावों** की राशि का **क्रमबद्ध** संख्या में निरूपण है। **संचय की स्थितियाँ** भी इनमें सम्मिलित हैं। इस प्रकार यह धारा एक **सुक्रमबद्ध राशि** है जो परिमित तथा अनन्त प्रकारों की अखण्डताओं के अथवा **पुद्गल परमाणुओं या भावों की संरचना राशियों** में से होकर गुजरती है और प्रत्येक **गैप** (gap) को भरती हुई निकलती है। इसमें अनन्त से वड़े अनन्त भी समाए हुए हैं। इसी धारा में धा_2 से लेकर धा_{14} तक की सभी **धाराएँ** समाई हैं। यहाँ अन्तिम पद **केवलज्ञान अविभाग प्रतिच्छेद राशि** है जो सबसे बड़ा, उत्कृष्ट अनन्तानन्त रूप है। जार्ज कैण्टर तथा अन्य गणितज्ञों ने ऐसी सुक्रमबद्धी राशियों की रचना की है तथा **सुक्रमबद्धी साध्य** को सिद्ध करने का प्रयास किया है।[1] इस साध्य का समतुल्य **"वरण का स्वयं सिद्ध"** है। **सुक्रमबद्धी प्रमेय** पर आधारित **व्यापक अल्पबहुत्व** का **प्रमेय** है, "कोई भी दो राशियों में से, दोनों समतुल्य होंगी अथवा उसमें से एक, दूसरे की उपराशि के समतुल्य (equivalent) होगी।" हारटग्ज ने सिद्ध किया था कि **व्यापक अल्पबहुत्व प्रमेय** स्थानीय रूप से **सुक्रमबद्धी प्रमेय** के समतुल्य है।[2]

धाराएँ धा_{12}, धा_{13} **और** धा_{14} अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनमें ऐसे पद स्पष्ट होते हैं जो **दो** की संख्यात्मक घातों पर उत्पन्न होते हैं। कैण्टर ने अनेक प्रकार के ऐसे पद **अलिफ** (alephs) रूप में **द्विरूपादि वर्गधारा** के आधार पर उत्पन्न किये थे। फिर भी उन्हें **अलिफों** की दिशाबद्ध इतनी **धाराएँ** प्राप्त न हो सकी हैं और जैन **धारा-गणित** में इस सम्बन्ध में शोध हेतु विशेष क्षेत्र उपलब्ध है।

अल्पबहुत्व तीन प्रकार का वर्णित है—**सचित्त**, **अचित्त मिश्र**। जो अल्पबहुत्व जीवों से सम्बन्धित है उसे **सचित्त**, जो शेष प्रकार के द्रव्यों से सम्बन्धित है उसे **अचित्त** प्रकार का कहते हैं। जब राशियाँ ज्ञान, दर्शन, योग, अनुभाग आदि से सम्बन्धित रहती हैं तो अल्पबहुत्व **नोआगम** प्रकार का होता है। इन सभी प्रकार के अल्पबहुत्वों को तीन मार्गों में व्यवहृत करते हैं—**स्वस्थान, परस्थान और सर्वपरस्थान**। **मिश्र** प्रकार के **अल्पबहुत्व** का एक उदाहरण सोलह राशिगत **अल्पबहुत्व** है।[3] अनन्तगुणा दर्शाने हेतु **'ख' संदृष्टि** का उपयोग होता है।[4] यदि १६ **जीवराशि** है तो १६ख **पुद्गल राशि** हैं। १६ खरव काल की **समयराशि** है और १६ख खरब समस्त **आकाश प्रदेश राशि** होती है। **अल्पबहुत्व विधि** का उपयोग वहाँ होता है जहाँ किसी राशि का स्थान निर्धारण अनेक राशियों के प्रतिवेश में तथा दूरी पर, **परिमित** अथवा **पारपरिमित** दशा में करना होता है।[5] **अतीतकाल** समय राशि (....४, ३, २, १) मानने पर उससे **अनागत काल समय राशि** (१, २, ३, ४, ...) को, जहाँ ० वर्तमान काल हो, अनन्तगुणा माना गया है।

माविकी (Mensuration)

सूत्रकृतांग[6] के अभिमत में, "गणित में रेखागणित कमल है,.......और शेष अवर है।" वास्तव में यदि बीजगणित **तर्क** पर आधारित होता है तो रेखागणित **अन्तःप्रज्ञा** पर। करणानुयोगविषयक ग्रन्थ लोक का रेखागणित पर आधारित तो हैं ही, साथ ही बीजगणितीय सम्बन्ध पर भी।

तत्त्वार्थाधिगम भाष्य (उमास्वाति)[7] में निम्नलिखित **मापिकी सूत्र** उपलब्ध हैं :—

---

१ देखिये ज्लाट (१९५७)। इसमें प्राय: सभी सम्बन्धित संदर्भ मिल सकते हैं।
२ **वही।**
३ **धवला**, भाग ३, पृ० ३०, ३१
४ **अ० सं० गो०** पृ० ५ आदि
५ **तत्त्वा०** १, ८, १०, पृ० ४२
६ **श्रुत स्कन्ध;** अ० १, श्लो० १५४
७ **तत्त्वा० भा०** (१९०३)

मान लो **वृत्त की परिधि** "प", **व्यास** "व्या", **क्षेत्रफल** "क्षे", **चाप** "चा", **चाप-कर्ण** "क", **बाण** "ब", एवं **त्रिज्या** "त्रि" हो तो

(i) $प = \sqrt{१० (व्या)^2}$

(ii) $क्षे = \frac{1}{4} प० व्या$

(iii) $क = \sqrt{४ बा (व्या — बा)}$

(iv) $बा = \frac{1}{2} (व्या — \sqrt{व्या^2 — क^2})$

(v) $चा = \sqrt{६ बा^2 + क^2}$

(vi) $व्या = \left(बा^2 + \frac{क^2}{४} \right) \div बा$

(vii) दो समान्तर चापकर्णों के बीच किसी वृत्त की परिधि के भाग संवादी चापों के बीच के अन्तर के आधे होते हैं।

(viii) $बा = \sqrt{चा^2 — क^2 \div ६}$

ये सभी सूत्र **जम्बू द्वीप समास** में भी उपलब्ध हैं।[1]

ये ही सूत्र **सूर्यप्रज्ञप्ति, करण भावना, उत्तराध्ययन सूत्र** में भी हैं जहाँ गोल के खण्ड समान ईषत् प्राग्भार का विवरण भी मिलता है।

महावीराचार्य द्वारा भी इन्हीं सूत्रों की पुनरावृत्ति हुई है[2]—

(वादर) $चा = \sqrt{५बा^2 + क^2}$

(सूक्ष्म) $चा = \sqrt{६बा^2 + क^2}$

सिकन्दरिया के हेरन (ल० २००)[3] ने **परिधि खण्ड** को **अर्द्धवृत्त** से कम लेकर निम्नलिखित सूत्र निकाला :

$\sqrt{४ वा^2 + क^2} + \frac{1}{3} बा$ अथवा

$$\sqrt{४ वा^2 + क^2} + \{\sqrt{४ वा^2 + क^2} — क\} \frac{वा}{क}$$

चीनी छेन हुओ (Chen Huo) (ल० १०७५ ई०) ने इस सूत्र को निम्न रूप में रखा :

$$चा = क + २\frac{वा^2}{व्या}$$

सूर्यप्रज्ञप्ति, आदि ग्रन्थों में π का वादर मान ३ तथा सूक्ष्म मान $\pi = \sqrt{१०}$ लिया गया है। **धवला** में शुद्ध रूप में $\pi = \frac{३५५}{११३}$ है[4], जो निम्नलिखित रूप में पढ़ा जाता है

$$\pi = ३ + \frac{१६}{११३} + \frac{१६}{११३ (व्यास)}$$ यदि व्यास में स्थित प्रदेश राशि असंख्यात हो तो π का मान $\frac{३५५}{११३}$ निकल आता है। यही सूत्र चीन में त्सु-चुंग शिह (Tsu Chung Ohih) (ल० ४७६ ई०) को ज्ञात था।[5]

तिलोयपण्णत्ति में निम्नलिखित सूत्र प्राप्त हैं। वहाँ **सांद्रों के घनफल, लम्बत्रिपार्श्वों** के रूप में विभिन्न प्रकार के आधार लेकर प्राप्त किये गये हैं। **वातवलयादि** के भी घनफल निकाले गये हैं। ये राजू और योजन के पदों में प्राप्त हैं।[6]

(i) $प = \sqrt{व्या^2 \times १०}$

(ii) $क्षे = प \times \frac{व्या}{४} = \frac{प}{व्या} \cdot \frac{व्या^2}{४} = \sqrt{१० त्रि^2}$

(iii) समवर्तुल रंभ (right circular cylinder) का घनफल = आधार का क्षेत्रफल × ऊँचाई[7]

(iv) $(चतुर्थभाग चाप का चाप कर्ण)^2 = \left(\frac{व्या}{२}\right)^2 \times २$

(v) $[(चतुर्थ भाग परिधि चापकर्ण)^2 \times \frac{5}{4}]$

$= [चतुर्थ भाग परिधि]^2 = \sqrt{१०} \frac{त्रि}{२}$ *

(vi) $क^2 = ४\left[\left(\frac{व्या}{२}\right)^2 — \left(\frac{व्या}{२} — वा\right)^2\right]$ †

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति संग्रह में उसे निम्न रूप में दिया है :

$क = \sqrt{४ वा (व्या — वा)}$

(vii) $चा^2 = २ [(व्या + वा)^2 — व्या^2]$ §

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति संग्रह में निम्न रूप में है—

$च = \sqrt{६ (वा)^2 + क^2}$

---

१ अ० ३, श्लो० ११.

२ ग० सा० सं०, ७·४३, ७३½

३ हीथ, भाग २, पृ० ३८१, (१९२१)

४ धवला, भा० ४, १, ३, ३, पृ० ४२

५ कूलिज (१९४०), पृ० ९१; नीधम और लिंग (१९५९), मिकामी (१९१३).

६ ति० प० ग०, पृ० २४-३९.

७ ति० प०, ४·९, ४·९.

* ति० प०, ४·७०

† वही, ४·१८०, ज० द्वी० प्र०, २·२३, ६·६ आदि

§ वही, ४·१८१, ज० द्वी० प्र०, २·२४, ४·२६; ६·१०

(viii) खण्ड की ऊँचाई प्राप्त करने हेतु[1]

$$\text{बा} = \frac{\text{व्या}}{२} - \left[\frac{\text{व्या}^2}{४} - \frac{\text{क}^2}{४}\right]^{\frac{1}{2}}$$

सन्निकटता की व्यवस्था हेतु $\sqrt{१०}$ का मान निकालने हेतु **तिलोयपण्णत्ति** का "**खखपदस्सं सस्सपुढं**" प्रकरण, डा० आर०सी० गुप्ता ने $\sqrt{(३)^2+१}$ रूप लेकर प्राप्त किया है।[2] यहाँ $\sqrt{N} = \sqrt{a^2+x} = a+\frac{x}{2a}$ रूप में रखने की जैन प्रणाली रही है। इसी प्रकार $\sqrt{N} = \sqrt{b^2-y} = b-\frac{y}{2b}$ रूप में भी इसे रख सकते हैं। इस प्रकार $\pi = \sqrt{१०} = \sqrt{(३)^2+१} = ३+\frac{१}{६} = \frac{१९}{६}$ रूप में जैन ग्रन्थों में प्रचलित है।[3]

श्वेताम्बर **चार प्रकार के प्रमाणों** का वृहद वर्णन कापड़िया[4] ने सिंह तिलक सूरि की **गणित तिलक टीका** में किया है, जो दिगम्बर ग्रन्थों के मानों से भिन्न हैं। **स्थानांग सूत्र** में ५ प्रकार के अनन्तों का विवरण दिया है। **भगवती सूत्रादि** में त्र्यस्रादि के आकार की अनेक **ज्यामितीय आकृतियों** का विवरण दिया है। इसी प्रकार **सूर्य प्रज्ञप्ति** में भी विवरण मिलते हैं। चार प्रकार के प्रमाणों में **द्रव्य प्रमाण** को **प्रदेश निष्पन्न** और **विभाग निष्पन्न** रूप में लिया गया है। **प्रदेशनिष्पन्न** प्रमाण अनन्त प्रकार का है और **विभाग निष्पन्न** मात्र ५ प्रकार का है :—**मान, उन्मान, अवमान, गणिमा, प्रतिमान**। गणिमा १ से लेकर १ करोड़ तक की संख्या तक जाता है। **मान** क्रमशः **धान्यमान** और **रस मान** प्रकार का है। **क्षेत्र प्रमाण** दो प्रकार का है : **प्रदेश निष्पन्न** और **विभाग निष्पन्न**। **प्रदेश निष्पन्न** असंख्य प्रकार का है। **विभाग निष्पन्न** अंगुल से लेकर योजन तक जाता है—

६ अंगुल	= १ पाद [अंगुल ३ प्रकार का है : आत्मांगुल, प्रमाणांगुल और उत्सेधांगुल][5]
२ पाद	= १ वितस्ति
२ वितस्ति	= १ रत्नी
२ रत्नी	= १ कुक्षि
२ कुक्षि	= १ धनुष्य
२००० धनुष्य	= १ गव्यूति
४ गव्यूति	= १ योजन[6]

इसी प्रकार **काल प्रमाण** भी दो प्रकार का है : **प्रदेशनिष्पन्न** एवं **विभाग निष्पन्न**। **प्रदेश निष्पन्न** असंख्य प्रकार का है और १ समय से लेकर असंख्यात समय तक है। **विभाग निष्पन्न** के अनेक प्रकार हैं :—(१) **समय** (२) **आवलिका** (३) **मुहूर्त** (४) **अहोरात्र** (५) **पक्ष** (६) **मास** (७) **ऋतु** (८) **अयन** (९) **संवत्सर** (१०) **युग** (११) **पूर्वांग** इत्यादि।[7] उपर्युक्त को समय से निम्नलिखित सम्बन्ध से जोड़ा है :—

असंख्य समय	= १ आवलिका
संख्यात आवलिका	= १ निश्वास या १ उच्छवास
१ उच्छ्वास + १ निश्वास	= १ प्राण
७ प्राण	= १ स्तोक
७ स्तोक	= १ लव
७७ लव	= १ मुहूर्त
३७७३ उच्छ्वास	= १ मुहूर्त
३० मुहूर्त	= १ अहोरात्र
१५ अहारोत्र	= १ पक्ष
२ पक्ष	= १ मास
२ मास	= १ ऋतु
३ ऋतु	= १ अयन
२ अयन	= १ संवत्सर
५ संवत्सर	= १ युग
८४ लाख वर्ष	= १ पूर्वांग[8]

भावप्रमाण को अनेक प्रकार वाला वतलाया गया है। **षट्खण्डागम** में उपरोक्त तीन प्रमाण : **द्रव्य प्रमाण, क्षेत्र प्रमाण** एवं **काल प्रमाण** को **भाव प्रमाण** कहा गया है।[9]

---

१ ति० प०, ४·१८२.

२ गुप्ता, आर० सी०, (१९७५); ति० प० ग०, ९·५५-५६, पृ० ४९; दत्त (१९२९), पृ० १३२

३ जैन, जे० एल०, (१९९८), पृ० १५४-१५५

४ कापड़िया (१९३७)।

५ आर्हत दर्शन दीपिका, देखिये पृ० ७८-८०

६ अनु० सू०, सू० १३३

७ कापड़िया (१९३७), पृ० xvii—xx, भूमिका।

८ अनु० सू०, सू० १३७; आर्हत दर्शन दीपिका (पृ० ५८७-५८८)।

९ षट्खण्डागम, पु० ३, १—२—५, "तिण्हं पि अधिगमो भाव पमाणं ॥५॥"

८. गणितानुयोग—आधुनिक सन्दर्भ में

प्रस्तुत प्रस्तावना के प्रथम शीर्षक में गणितानुयोग—एक परिचय दिया गया है जिसे आधुनिक सन्दर्भ में रखा जा सकता है। मुख्यतः विषय गणित, ज्योतिष एवं लोक संरचना संबंधी है जिसकी तुलना आधुनिक विज्ञान से की जा सकती है। वास्तव में किन्हीं भी घटनाओं को सिद्धान्त रूप से समझाने या फलित रूप में परिणाम निकालने हेतु **प्रतिरूप (मॉडल)** या **गणितीय प्रतिरूप** (मैथामेटिकल मॉडल) स्थापित किये जाते हैं। परीक्षणों द्वारा ही प्रतिरूपों की सक्षमता शुद्धता आदि परीक्षित होती है।

स्पष्ट है कि गणित ज्योतिष का जैन सिद्धान्त जो गणितानुयोग में संग्रहीत है, जैन पंचांग के रूप को प्रस्तुत करता है। इसमें समय-समय पर शोधन कार्य होते रहे, क्योंकि औसतन, माध्यमान पर आधारित यह पंचांग था जिसे समयानुसार ध्रुव राशि आदि राशियों के समीकरणों द्वारा पूरित किया जाता रहा होगा। यह आवश्यकता पर निर्भर करता है। अतएव अभी भी इन ओर अनेक जैन ज्योतिष ग्रन्थ जो उपलब्ध हैं तथा अनुपलब्ध हैं उनके अनुवाद गणितीय टिप्पण सहित शोध हेतु तैयार करना आवश्यक है। यह स्पष्ट है कि आधुनिक ज्योतिष का मॉडल कापरनिकस के सिद्धान्त के आधार पर है। फिर भी आइंस्टाइन का सापेक्षता सिद्धान्त उसमें सूक्ष्मतम तत्व दे सका है। न्यूटन से अब सापेक्षता सिद्धान्त अत्यधिक सूक्ष्म परिणामों को निकालता है।

यही हाल जैन लोक संरचना का है। एक **प्रतिरूप** प्रस्तुत किया गया है, जिसमें गणितीय वस्तुओं को भर दिया गया है, अर्थात् विभिन्न प्रकार की राशियों से लोक की संरचना को निर्मित किया गया है। जीवराशियों से लेकर अनेकानेक प्रकार की राशियों का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव प्रमाण देते हुए लोक की विविधताओं पर विहंगम दृष्टि डाली गयी है।

प्रस्तुत **प्रतिरूपों** की गिनती आज के युग में दिनों दिन बढ़ती जा रही है। उनके निष्कर्षों का परीक्षण किया जाता रहा है। किन्तु अभी भी नीहारिकाओं का अखिल लोक से बाहर की ओर [illegible] वेग से निष्कासन प्रति क्षण होते रहने का जो चमत्कारी विश्लेषण हो सका है, उसका संतोषजनक प्रतिरूप (मॉडल) प्राप्त नहीं हो सका है। यदि ब्रह्माण्ड प्रतिपल, इस प्रकार विस्तार को प्राप्त हो रहा है तो उसका [illegible] [illegible] क्या कोई शून्य से उत्पत्ति होती रही है? [illegible] प्रकार से विश्व की अवस्था विषयक [illegible] हुए हैं। आइन्स्टाइन, बोंडी, हायल, गोल्ड, [illegible] ने [illegible] की ओर

समर्पित किया है। तत्सम्बन्धी **गणितीय प्रारूपों** के अध्ययन और गणितानुयोग के विषय से उसकी तुलना करने हेतु हम संदर्भ ग्रन्थावलि में यथोचित सामग्री दे रहे हैं।

साथ ही **गणितानुयोग** का एक और आधुनिक संदर्भ है। वह है विज्ञान इतिहास संबन्धी संरचना का। प्रथम अध्याय में जो सूत्रों में पाईगये प्रकरण हैं उन्हें विज्ञान के इतिहास शोध विषयक रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है। यह विषय अपने आप में अत्यन्त गम्भीर है क्योंकि उद्‌गम सम्बन्धी समस्याएं, विश्व विज्ञान इतिहास के संदर्भ में अनेक प्रकरणों में उलझी हुई हैं। उदाहरणार्थ किस देश में किस काल में वहां की सभ्यता को किस प्रकार के गणित-विज्ञान की आवश्यकता हुई और उन्होंने अपनी आवश्यकताओं और जटिल समस्याओं की प्रस्तुति को किस रूप में हल किया तथा विदेशों को अंततः उनका क्या लाभ मिला।

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर का युग क्रान्तिकारी युग था जब हिंसा को अहिंसा के सामने घुटने टेकना पड़े थे। स्पष्ट है कि उस बुद्धिवादी युग में **वर्द्धमान महावीर** के तीर्थ में लोक संरचना के आधार पर कर्म सिद्धान्त के सूक्ष्मतम गणित द्वारा निर्मोह को प्रस्तुत करना पड़ा होगा। अहिंसा के मृदु स्पर्श में यह शुद्ध हीरे जैसी कठोरता कैसे पनपी होगी, आश्चर्य लगता है। किन्तु आत्मा को अनुभूति करना पड़ी होगी कि कर्मों का बँटवारा नहीं होता है। यह प्रत्यनुभूति जैन गणित की पराकाष्ठा पर दृष्टिगत होती है। आज का वैज्ञानिक युग अति बुद्धिवादी है। इसमें **गणितानुयोग** जैसे ग्रन्थों पर आधारित कर्मग्रन्थों का परीक्षण विधि से गणक-मशीनों द्वारा दिग्दर्शन कराना अब अपरिहार्य हो गया है। इसके लिये तीन प्रकार की गणक मशीनें आवश्यक हैं जो क्रमशः संस्कृत प्राकृत जैन ग्रन्थों के अनुवाद, उनमें निहित गणित ज्योतिष और निहित कर्म सिद्धान्त को सांकेतिक रूप में दिग्दर्शित कर सकें। आशा है विश्वविद्यालयों में अथवा जैन संस्थाओं में गणित पर आधारित जैन अध्ययन प्रारम्भ किये जायेंगे, ताकि शोध की वास्तविक भावना को संबल प्राप्त हो सके। शोध के विषय को चुनने हेतु **गणितानुयोग** जैसे संकलन ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होंगे।

—लक्ष्मी चन्द्र जैन

Prof. L. C. Jain

Hon. Director, DJICR, Hastinapur;
Addl. Hon. Director, A. Vidyasagara Research Institute-Jabalpur;
INSA Research Associate, Physics Deptt, Rani Durgavati University, Jabalpur;
L.M., Einstein Foundation International, Nagpur;
M.G.B., D.C., Ghovara, L.M.J.R.S., L.M., A.B.V.P.

प्रस्तावना में प्रयुक्त—

संदर्भ ग्रंथ एवं शोध लेख सूची

(१) गणित सार संग्रह, (सं० ग० सा० सं०) महावीराचार्य कृत, सं० अनु० एल० सी० जैन, शोलापुर, १९६३

(२) त्रिलोकसार, (सं० त्रि० सा०) नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, सं० र० च० मुख्तार, चे० प्र० पाटनी, श्री महावीर जी, १९७६

(३) अभिधान राजेन्द्र कोष, (सं० अभि० रा० को०) रतलाम १९२३

(४) भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, एच० एल० जैन, भोपाल, १९४२

(५) सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र, सं० कन्हैयालाल, भाग १ (१९८१) भाग २ (१९८२), अहमदाबाद

(६) चंद्र प्रज्ञप्ति सूत्र, सं० कन्हैयालाल, राजकोट, १९७३

(७) सूर्य प्रज्ञप्ति, सं० अमोलक ऋषि, सिकन्दराबाद, वीराब्द ल० २४४६

(८) चन्द्र प्रज्ञप्ति, सं० अमोलक ऋषि, सिकन्दराबाद, १९२०

(९) सूर्य प्रज्ञप्ति, टी० मलयगिरि, वम्बई १९१९

(१०) षट्खंडागम, (सं० षट् खं०), पुष्पदंत भूतवलिकृतः वीरसेन कृत धवला टीका सहित, भाग १-१६, अमरावती, विदिशा (१९३९-१९५९)

(११) गोम्मटसार जीव कांड, भाग १ (१९७८), भाग २ (१९७९), (सं० गो० सा० जी०) नई दिल्ली

(१२) गोम्मटसार कर्मकांड, भाग १ (१९८०), भाग २ (१९८१) (सं० गो० सा० क०), नई दिल्ली

(१३) जैन साहित्य का इतिहास, ले०कै० चं० सि० शास्त्री, वाराणसी, १९६४

(१४) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४ (१९६८), भाग ५ (१९६९), वाराणसी

(१५) तिलोयपण्णत्ति, यतिवृषभ कृत, भाग १ (१९४३), भाग २ (१९५१), (सं० ति० प०), शोलापुर

(१६) कर्मग्रन्थ, भाग १-६, मिश्रीमल, जोधपुर, १९७४-७६

(१७) भगवती सूत्र, (सं० भ० सू०), अभयदेव सूरिकृत टीकासहित, आक्सफोर्ड, १८९५

(१८) कल्पसूत्र, (सं० क० सू०), भद्रबाहु कृत, लाइप्जिग, १८९७

(१९) तत्वार्थाधिगम सूत्र विद भाष्य ऑफ उमास्वाति (सं० त० सू०), सं० के० पी० मोदी, कलकत्ता, १९०३

(२०) महावंध, भाग १-७, काशी, १९४७-१९५८

(२१) डी कास्मोग्राफी डेर इंडेर, किरफेल, डब्लू०, बान, १९२०

(२२) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति शांति चन्द्र टीका, मेहासन, १९१८

(२३) हिस्ट्री आफ ग्रीक मेथामेटिक्स, भाग १, २; हीथ, टी०, आक्सफोर्ड, १९२१

(२४) दी डेवेलपमेंट आफ मेथामेटिक्स इन चाइना एण्ड जापान, मिकामी वाई, लाइप्जिग, (१९१३)

(२५) लघुक्षेत्र समास प्रकरण, रत्नशेखर सूरि, वम्बई, १८८१

(२६) उत्तराध्ययन सूत्र (सं० उ० सू०), शरपेंटियर, उपसल १९२२

(२७) गणितानुयोग, सं० मुनि कन्हैयालाल, 'कमल', सांडेराव, १९७०

(२८) कासमालाजी, ओल्ड एण्ड निउ, जी० आर० जैन, ग्वालियर, १९४२

(२९) हिस्ट्री आफ हिन्दू मेथामेटिक्स [हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) भाग १, लखनऊ, १९५६], दत्त, वी०वी०, एवं सिंह, ए०एन०, वम्बई, १९६२ [लाहौर (१९३५)]

(३०) विश्व प्रहेलिका (सं० वि० प्र०), मुनि महेन्द्र कुमार द्वितीय, वम्बई, १९६९

(३१) जम्बूद्वीप पण्णत्ती संगहो (सं० ज० प० सं०), सं० एच० एल० जैन, ए० एन० उपाध्ये, शोलापुर, १९५८

(३२) प्रस्तार रत्नावली, मुनि रतनचन्द्र, वीकानेर, १९३४

(३३) गणित तिलक, वृत्ति सिंहतिलक सूरि, सं० एच० आर० कापड़िया, वड़ौदा १९३७

(३४) सूत्रकृतांग (सं० सू० कृ०), पी० एल० वैद्य, पूना, १९२८

(३५) **उत्तराध्ययन**, ल्यूमेन एण्ड शूब्रिंग, अहमदाबाद १९३२ ह० जैकोबी, आक्सफोर्ड, १८९५

(३६) **कसाह पाहुड**, जयधवला टीका, भाग १-१३, आदि, मथुरा, १९४९

(३७) **वृहद क्षेत्र समास**, जिनभद्र सूरि, भावनगर, १९७७.

(३८) **जैन जेम डिक्शनरी**; जैन, जे० एल०, आरा १९१८

(३९) **साइंस एण्ड सिविलिजेशन इन चाइना**, नीधम, जे०, एवं लिंग, डब्लू०, भाग ३, केब्रिम्ज, १९५९

(४०) **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष**, (सं० जै० सि० को०) जिनेन्द्र वर्णी, भाग १-४, नई दिल्ली, (१९७०-१९७३)

(४१) **तत्वार्थवार्तिक** (सं० त० वा०), अकलंक देव, भाग १-२, बनारस, १९४४

(४२) **ए हिस्ट्री आफ जामेट्रिकल मेथड्स**, कूलिज, जे०एल०, आक्सफोर्ड, १९४०

(४३) **जैन लक्षणावली**, (सं० जै० ल०) बालचन्द्र शास्त्री, भाग १-३, (१९७२-१९७९), दिल्ली

(४४) **दी शुल्ब सूत्र**, एस० एन० सेन एवं ए० के० बाग, नई दिल्ली, १९८३

(४५) **अर्थ संदृष्टि अधिकार** (सं० अ० सं०) **गोम्मटसार जीवकांड कर्मकांड, एवं लब्धिसार** पं० टोडरमल की सम्य ज्ञान चन्द्रिका टीका सहित, कलकत्ता, ल० १९१९, [हस्तलिपि दि० जैन पार्श्वनाथ बड़ा मंदिर, हनुमान ताल, जबलपुर]

(४६) **भगवती**, शतक १-२०, कलकत्ता, वि० सं० २०११

(४७) **ज्योतिष करण्डक** (सं० ज्यो० क०), सटीक, रतलाम १९२८

(४८) **अनुयोगद्वार सूत्र** (सं० अनु० सू०), हेमचन्द्र कृत टीका, बम्बई, १९१५-१६

(४९) **जम्बूद्वीप समास** (सं० ज० द्वी० स०), विजयसिंह कृत टीका, अहमदाबाद, १९२२

(५०) **मेथामेटिक्स इन एंशियेंट एण्ड मेडीवल इंडिया**, ए० के० बाग, वाराणसी, १९७९ ?

(५१) **जामेट्री इन एंशियेंट एण्ड मेडीवल इंडिया**, टी. ए. सरस्वती अम्मां, दिल्ली, १९७९.

(५२) **कांट्रिब्युशन टू दी फाउण्डिग आप दी थ्योरी ऑफ ट्रांस्फारनाइट नम्बर्स**, जार्ज कैण्टर, लासाले इलिनास, १९५२.

(५३) **इंट्रोडक्शन टू दी फाउण्डेशंस ऑफ मेथामेटिक्स**, आर. एल. वाइल्डर, न्यूयार्क, १९५२

(५४) **डी सुर्यप्रज्ञप्ति**, जे. एफ. कोल, फरसुख आइनेर टेक्सट गिशेख्टे, स्टुटगर्ट, १९२७.

(५५) **ए कोन्साइज हिस्ट्री ऑफ साइंस इन इंडिया**, डी. एम. बोस आदि, नई दिल्ली, १९७१

(५६) **भारतीय ज्योतिष**, नेमिचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, १९७०.

(५७) दत्त, बी. बी., **दी जैन स्कूल ऑफ मेथामेटिक्स**, बुले० केल० मेथ० सो०, भा० xxi, अं० २, १९२९, पृ० ११५-१४५.

(५८) सिंह, ए. एन., **मेथामेटिक्स ऑफ धवला, षट्खंडागम**, पु० ४; अमरावती, १९४२, पृ० i—xxiv

(५९) सरस्वती, टी० ए०, **दी मेथामेटिक्स इन दी फर्स्ट फोर महाधिकाराज ऑफ दी त्रिलोक प्रज्ञप्ति**, जर्नल, जी० जे० आर० आर०, अलाहाबाद, भाग १८, १९६१-६२ पृ० २७-५१

(६०) जैन, एल० सी०, **सेट थ्योरी इन जैन स्कूल ऑफ मेथामेटिक्स**, आई० जे० एच० एस०, भाग ८·१-२, १९७३, पृ० १-२७

(६१) दत्त, बी० बी०, **दी बख्शाली मेथामेटिक्स**, बुले० केल० मेथ०, सो०, भाग xxi, अंक १, १९२९, पृ० १-६०

(६२) जैन, लक्ष्मी चन्द्र, **तिलोयपण्णत्ति का गणित**, (सं० ति०प०ग०), जम्बूदीव पण्णत्ति संगहो की प्रस्तावना, शोलापुर; १९५८, पृ० १-१०९

(६३) जैन, एल० सी०, **डाइवर्जेंट सीक्वेन्सेज लोकेटिंग ट्रांस्फाइनाइट सेट्स इन त्रिलोकसार**, आई० जे० एच० एस०, १२·१, १९७७, पृ० ५७-७५

(६४) जैन, एल० सी०, **आन सरटेन मेथामेटिकल टापिक्स ऑफ दी धवला टेक्सट्स** (दी जैन स्कूल ऑफ मेथामेटिक्स), आई०जे०एच० एस०, ११.२, १९७६, पृ० ८५-१११

(६५) जैन, एल०सी०, **आन दी जैन स्कूल ऑफ मेथामेटिक्स** सी० एल० स्मृतिग्रन्थ, कलकत्ता, १९६७, पृ० २६५-२९२

(६६) जैन, एल० सी०, **मेथामेटिकल कांट्रिब्यूशन ऑफ टोडरमल ऑफ जयपुर**, दी जैन एंटीक्वेरी, ३०.१, १९७७ पृ० १०-२२

(६७) बाग, ए० के०, **बायनामियल थ्योरम इन एंशियेंट इण्डिया**, आई० जे० एच० एस०, १·१, १९६६, पृ० ६४-७४

(६८) वाग, ए० के०, **सिम्बल फार जीरो इन मेथामेटिकल नोटेशन्स इन इंडिया**, बोलेटीन दे ला अकादेमिया नेशनल दे साइंसियाज, रोम ४८, प्राइमर पार्टे, १६७०, पृ० २४७-५४.

(६९) वेल, ई० टी०, **महावीर 'स डायोफेन्टाइन सिस्टम**, वु० के० मे० सो०, २८, १६४६, पृ० १२१-२२.

(७०) दत्त, वी० वी०, **जामेट्री इन दी जैन कास्मोग्राफी**, क्वेलेन उंट स्टूडिएन जुर गिशिख्ते डेर मेथामेटिक, अब्टाइलुंक, वैंड १, १६३०, पृ० २४५-५४

(७१) दत्त, वी० वी०, **मेथामेटिक ऑफ नेमिचन्द्र**, जैन एंटीक्वेरी, भाग १, अंक २, १६३५, पृ० २५-४४

(७२) गुप्ता, आर० सी०, **सरकम्फियरेंस ऑफ दी जंबूद्वीप इन जैन कास्मोग्राफी**, आई०जे०एच०एस०, १०·१, १६७५, पृ० ३८-४६

(७३) जैन, एल० सी०, **सिस्टम थ्योरी इन जैन स्कूल ऑफ मेथामेटिक्स**, आई०जे०एच०एस०, १४·१, १६७६ पृ० ३१-६५

(७४) जैन, एल० सी०, **दी काइनेमेटिक मोशन ऑफ एस्ट्रल रीयल एण्ड काउण्टर वाडीज इन त्रिलोकसार**, आई० जे० एच० एस०, २·१, १६७५, पृ० ५८-७४

(७५) जैन, एल० सी०, **आन सरटेन फिजीकल थ्योरीज इन जैन एस्ट्रानामी**, दी जैन एंटीक्वेरी, २६·१/२, १६७६, पृ० ६-११

(७६) जैन, एल० सी०, **आर्यभट-I एण्ड यतिवृषभ, ए, स्टडी इन कल्प एण्ड मेरु**, आई० जे० एच० एस०, १२·२, १६७७, पृ० १३५-१४६

(७७) जैन, एल० सी०, **आन प्राबेविल स्पाइरो-एलिप्टिक मोशन ऑफ दी सन इम्प्लायड इन दी तिलोयपण्णत्ति**, आई० जे० एच० एस०, १३-१, १६७८ पृ० ४२-४६

(७८) जैन, एल० सी०, **एक्जेक्ट साइंसेज फ्राम जैन सोर्सेज** भाग १ (वेसिक मेथामेटिक्स), भाग २ (ऐस्ट्रानामी एण्ड कास्मालाजी), जयपुर, दिल्ली, १६८२/१६८३, पृ० १-४०/पृ० १-७२

(७९) थिवो, जी०, **आन दी सूर्य प्रज्ञप्ति**, जर्नल ऑफ एशि० सो० ऑफ वैंगाल, ४६ (१). १८८०, पृ० १०७-१२८, १८१-२०६

(८०) थिवो, जी०, **कांट्रिब्यूशन टू दी एक्सप्लेनेशन ऑफ ज्योतिष वेदांग**, जर्नल ए० सो० वैंगाल, ४६ (१), १८७७, पृ० ४११-४३७

(८१) वलोदर्स्की, ए० आई०, **एवाउट ट्रिटाइज ऑफ महावीर**, (रूसी भाषा), फिजिको मेथामेटिक्स, नउकी वा स्ट्रानख वस्तोका विपुस्क II (v), मास्को, १६६७; पृ० ६८-१३०

(८२) सिंह, ए० एन०, **हिस्ट्री ऑफ मेथामेटिक्स इन इंडिया फ्राम जैन सोर्सेज**, जैन एंटीक्वेरी, भाग १५, अंक २, १६४६, पृ० ४६-५३, भाग १६, अंक २, १६५०, पृ० ५४-६६

(८३) लिश्क, एस० एस०, शर्मा एस० डी०, **दी एवोलुशन ऑफ मेजर्स इन जैन एस्ट्रानामी**, तीर्थंकर, १·७-१२, १६७५, पृ० २८-३५.

(८४) लिश्क, एस०-एस०, शर्मा, एस० डी०, **लेटिट्यूड ऑफ मून एज डिटरमिंड इन जैन एस्ट्रानामी**, श्रमण, २७·२, १६७५ पृ० २८-३५,

(८५) लिश्क, एस० एस०, शर्मा एस० डी०, **नोशन ऑफ आब्लिक्विटी ऑफ एक्लिप्टिक इन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति**, जैन जर्नल, १६७८, पृ० ७६-६२

(८६) लिश्क, एस० एस०, शर्मा एस० डी०, **रोल ऑफ प्रि-आर्यभट जैन स्कूल ऑफ एस्ट्रानामी इन दी डेवेलपमेंट ऑफ सिद्धान्त एस्ट्रानामी**, आई०जे०एच० एस०, १२·२, १६७७ पृ० १०६-११३

(८७) शर्मा एस० डी०, लिश्क, एस० एस०, **लेंग्थ ऑफ डे इन जैन एस्ट्रानामी**, सेंटारस, २२·३, १६७८, पृ० १६५-१७६

(८८) सिकदार, जे० सी०, **एक्लिप्सेज ऑफ दी सन एण्ड दी मून एकार्डिग टू जैन एस्ट्रानामी**, आई०जे० एच० एस०, १२·२, १६७७, पृ० १०६-११३

(८९) सिकदार, जे० सी०, **जैन एटामिक थ्योरी**, आई०जे० एच० एस०, ५·२, १६७०, पृ० १६६-२१८

(९०) सिकदार, जे० सी०, **दी जैन कान्सेप्ट ऑफ टाइम**, रिसर्च जर्नल ऑफ फिलासफी, रांची, ३·१, १६७२, पृ० ७५-८८

(९१) जवेरी जे० एस०, **थ्योरी ऑफ एटम इन जैन फिलासफी**, लाडनूं, १६७५

(९२) शास्त्री, नेमिचन्द्र, **जैन ज्योतिष साहित्य**, आचार्य भिक्षु स्मृतिग्रन्थ, कलकत्ता, १६६१, पृ० २१०-२२१

(९३) शास्त्री, नेमिचन्द्र, **ग्रीक-पूर्व जैन ज्योतिष विचारधारा**, ब्र० चन्दावाई अभिनन्दन ग्रन्थ, आरा, १६५४, ४६२-४६६

(९४) शास्त्री नेमिचन्द्र, **भारतीय-ज्योतिष का पोषक जैन-ज्योतिष,** वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, सागर; १९६२, ४७८-४८४

(९५) वलोदस्की, ए० आई० वोल्कोवोया, ओ० एफ०, **"श्रीधर-पाटी का गणित"**, फिजिको मेतिमेतिश्की नऊकी, वा स्ट्रांख वस्तेका, विपुस्क I (iv), मास्को, १९६६, पृ० १९०-१८१, १८१-२४६

(९६) गुप्ता, आर० सी०, **महावीराचार्याज रूल फार सर्फेस एरिया ऑफ ए स्फेरिकल सेगमेंट;** ए न्यू इण्टरप्रिटेशन, तुलसीप्रज्ञा-२, अप्रै० जू० १९७५, पृ० ६३-६६

(९७) शुक्ला, के० एस०, **दि न्यू मेथामेटिक्स इन दी सेविंथ सेंचुरी एज फाउण्ड इन भास्कर I-कामेन्ट्री आन आर्यभटीय,** गणित, २२-१, ११५-१३०; २२·१, ६१-७८; २३·१, ५७-७९; ४१-५०

(९८) लिश्क, एस० एस०, **पोस्ट वैदिक एण्ड प्रिसिद्धान्तिक एस्ट्रानामी,** शोध प्रबन्ध, पटियाला विश्वविद्यालय

(९९) अग्रवाल, मु० वि०, **गणित एवं ज्योतिष के विकास में जैनाचार्यों का योगदान,** शोधप्रवन्ध, आगरा वि० वि०. १९७२, पृ० ३७७

(१००) ग्लाट, डब्लू एल०, **दी रोल ऑफ एक्जियम ऑफ च्वाइस इन दी डेवेलपमेंट ऑफ दी एबसेट्रेक्ट थ्योरी ऑफ सेट्स,** शोधप्रवन्ध, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी, १९५७

(१०१) जैन, वी० एस०, **आन दी गणित सार संग्रह आफ महावीराचार्य,** आई०जे०एच० एस०, १२·१ १९७७, पृ० १७-३२

(१०२) जैन, एल० सी०, **आन दी कांट्रिब्यूशन्स, ट्रांसमिशन्स एण्ड इन्फ्लुएंसेज आफ दी जैन स्कूल आफ मेथामेटिकल साइंसेज,** तुलसी प्रज्ञा, लाडनूं ३·४, १९७७, पृ० १२१-१३४

(१०३) जैन, अनुपम, एवं अग्रवाल, सुरेश, **महावीराचार्य,** हस्तिनापुर, १९८५

(१०४) जैन, अनुपम, **सर्वे आफ दी वर्क इन आन जैन मेथामेटिक्स,** तुलसी प्रज्ञा, ११·१-३, १९८३, पृ० १५-२७

(१०५) दास एस० आर०, **दी जैन केलेण्डर,** दी जैन एंटीक्वेरी, ३·२, १९३७, पृ० ३१-३६

□

प्रथम संस्करण की भूमिका

(क) जैन मान्यतानुसार लोक-वर्णन

पं० हीरालाल शास्त्री

अनन्त आकाश के ठीक बीचों-बीच यह हमारा लोक अवस्थित है, जो नीचे पल्यंक के सदृश, मध्य में वज्र के समान और ऊपर खड़े मृदंग के तुल्य है। यह लोक नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊर्ध्वमुख मृदंग के समान हैं। यह सब मिलकर लोक का आकार पुरुष के आकार का सा हो जाता है। जैसे कोई पुरुष अपने दोनों पैरों को फैलाकर और दोनों हाथों को कटि पर रख कर खड़ा हो, तो उसका जैसा आकार होगा, ठीक इसी प्रकार लोक का आकार है। अथवा आधे मृदंग के ऊपर पूरे मृदंग को रखने पर जैसा आकार होता है, वैसा आकार लोक का समझना चाहिए[1]। कटि के नीचे के भाग को अधो-लोक, ऊपर के भाग को ऊर्ध्व-लोक और कटि-स्थानीय भाग को मध्य-लोक कहते हैं। इस तीन विभाग वाले लोक को लोकाकाश कहा जाता है, क्योंकि इसके भीतर ही जीव-पुद्गलादि सभी चेतन ओर अचेतन द्रव्य पाये जाते हैं। इस लोकाकाश के सर्व ओर पाये जाने वाले अनन्त आकाश को अलोकाकाश कहते हैं, क्योंकि इस में केवल आकाश के अतिरिक्त अन्य कोई चेतन या अचेतन द्रव्य नहीं पाया जाता है।

१—सामान्य लोक-स्वरूप

लोकाकाश की ऊँचाई १४ राजु है[2]। यह अधोलोक में सबसे नीचे सात राजु विस्तृत है। पुनः क्रम से घटता हुआ कटि स्थानीय मध्य-भाग में एक राजु विस्तृत है। इससे ऊपर क्रम से बढ़ता हुआ दोनों हाथों में कोहिनी-स्थान पर पाँच राजु विस्तृत है। पुनः क्रम से घटता हुआ शिरःस्थानीय लोक के अग्र-भाग पर एक राजु विस्तृत है। यह समस्त लोक सर्व ओर घनोदधि, घनवात और तनुवात इन तीन वलयों से वेष्टित है। अर्थात् इनके आधार पर अवस्थित है। प्रथम वलय अधिक सघन है, अतः इसे घनोदधि कहते हैं। दूसरा वलय तीसरे वलय की अपेक्षा सघन है, अतः उसे घनवात कहा गया है। तीसरा वलय उक्त दोनों की अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म या पतला है, इसलिये इसे तनुवात कहते हैं[3]।

२—अधोलोक

कटि-स्थानीय झल्लरी के समान आकार वाले मध्यलोक के नीचे सात पृथिवियाँ हैं—घम्मा, वंशा, सेला, अंजना, अरिष्टा, मघा और माघवती। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा—इनके गोत्र कहे गये हैं। इनमें से पहली रत्नप्रभा के तीन भाग हैं—खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग। इनमें खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है। पंकभाग चौरासी हजार योजन और अब्बहुलभाग अस्सी हजार योजन मोटा है। इस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन है। इस तीन विभाग वाली रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे असंख्यात हजार योजन के अन्तराल के बाद दूसरी शर्करा पृथ्वी है। यह एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी है। इसके नीचे पुनः असंख्यात हजार योजन नीचे जाकर तीसरी वालुका पृथ्वी हैं। इसकी मोटाई एक लाख अट्ठाईस हजार योजन हैं। इस तीसरी पृथ्वी का तल भाग मध्यलोक से दो रज्जु प्रमाण नीचा है। तीसरी पृथ्वी से असंख्यात हजार योजन नीचे जाकर चौथी पंकप्रभा पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक लाख चौबीस हजार योजन है। इस पृथ्वी का तल भाग मध्यलोक से तीन राजु नीचा है।

---

१. देखो प्रस्तुत ग्रन्थ का सूत्र २८। तिलोयपण्णत्ती, अ०. १ गा० १३७-३८।
उब्भिय दलेक्कमुरवद्धसंचयसण्णिहो हवे लोगो। (त्रिलोकसार गा० ६)

२. चोद्दस रज्जूदयो लोगो (त्रिलोकसार गा० ६) जगसेढिसत्तभागो रज्जू। (त्रिलोकसार गा० ७)
चउदसरज्जू लोओ वुद्धिकओ होइ सत्तराजुघणो। कर्मग्रन्थ. ५–९७
सयंभुपरिमंताओ अवरंतो जाव रज्जूसाइओ। (प्रवचनसारो० १४३, ३१) राजु का प्रमाण जगच्छ्रेणी के सातवें भाग बराबर है जो कि स्वयम्भूरमण द्वीप के पूर्व-भाग से लेकर पश्चिमभाग पर्यन्त के प्रमाण है। एक राजु में असंख्यात योजन होते हैं।

३. दि० शास्त्रों में घनोदधिवात का वर्ण गोमूत्र-सम, घनवात का मूंग-समान और तनुवात का अव्यक्त वर्ण कहा है।

इससे असंख्यात हजार योजन नीचे जाने पर पाँचवीं धूमप्रभा पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक लाख बीस हजार योजन है। इसका तल भाग मध्यलोक से चार रज्जु नीचा है। पाँचवीं पृथ्वी से असंख्यात हजार योजन नीचे जाने पर छठी तमःप्रभा पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन है। इसका तल भाग मध्यलोक से पाँच रज्जु नीचा है। छठी पृथ्वी से असंख्यात हजार योजन नीचे जाने पर सातवीं महामतःप्रभा पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक लाख आठ हजार योजन है[1]। इसका तल भाग मध्यलोक से छह राजु नीचा है।

रत्नप्रभा पृथ्वी के एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण क्षेत्र में से ऊपर नीचे के एक-एक हजार योजन भाग को छोड़कर मध्यवर्ती क्षेत्र में ऊपर भवनवासियों के सात करोड़ बहत्तर लाख भवन हैं,[2] तथा नीचे नारकियों के तीस लाख नारकावास हैं[3]। किन्तु त्रिलोकप्रज्ञति, तत्त्वार्थ-वार्त्तिक आदि दि० ग्रन्थों में इससे भिन्न उल्लेख पाया जाता है[4]।

दूसरी पृथ्वी के ऊपर नीचे एक-एक हजार योजन भूमि-भाग को छोड़कर मध्यवर्ती भाग में नारकों के २५ लाख नारकावास हैं। इसी प्रकार तीसरी से लगाकर सातवीं पृथ्वी तक उनकी मोटाई के ऊपर नीचे के एक-एक हजार योजन भाग को छोड़कर मध्यवर्ती भागों के क्रमशः १५ लाख, १० लाख, ३ लाख पाँच कम १ लाख और ५ नारकावास है। ये नारकावाश पटल या पाथड़ों में विभक्त हैं। पहली आदि पृथ्वी में क्रमशः १३, ११, ९, ७, ५, ३ और १ पटल हैं। इस प्रकार सातों पृथिवियों के नारकावासों के ४९ पटल हैं। इन ४९ पटलों में विभक्त सातों पृथिवियों के नारकावासों का प्रमाण ८४ लाख है, जिनमें असंख्यात नारकी जीव सदाकाल अनेक प्रकार के क्षेत्रज परस्परोदीरित, शारीरिक, मानसिकों दुःखों को भोगा करते हैं। इन नरकों में क्रूर कर्म करने वाले पापी मनुष्य और पशु-पक्षी तिर्यंच उत्पन्न होते हैं। वे पहली पृथ्वी में कम से कम १० हजार वर्ष की आयु से लेकर सातवीं पृथ्वी में ३३ सागरोपम काल तक नाना दुःखों को उठाया करते हैं। उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती है। उनका शरीर वैक्रियिक और औपपातिक होता है। जन्म लेने के पश्चात अन्तर्मुहूर्त में ही उनके शरीर का पूरा निर्माण हो जाता है और वे उत्पन्न होते ही ऊपर की ओर पैर तथा अधोमुख होकर नीचे नरक भूमि पर गिरते हैं।

सातवीं पृथ्वी के नीचे एक राजु—प्रमाण मोटे और सात राजु—विस्तृत क्षेत्र में केवल एकेन्द्रिय जीव ही रहते हैं।

३—मध्यलोक

मध्यलोक का आकार झल्लरी या चूड़ी के समान गोल है। इसके सबसे मध्य भाग में एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप है। इसे सर्व ओर से घेरे हुए दो लाख योजन विस्तृत लवण समुद्र है। इसे सर्व ओर से घेरे हुए चार लाख योजन विस्तृत धातकीखण्ड द्वीप है। इसे सर्व ओर से घेरे हुए आठ लाख योजन विस्तृत कालोद समुद्र है। इसे सर्व ओर से घेरे हुए सोलह लाख योजन विस्तृत पुष्कर द्वीप है। इस पुष्कर द्वीप के ठीक मध्य भाग में गोल आकार वाला मानुषोत्तर पर्वत है। इससे परवर्ती पुष्करार्ध द्वीप में तथा उससे आगे के असंख्यात द्वीप समुद्रों में वैक्रिय लब्धि संपन्न या चारणमुनि के अतिरिक्त अन्य मनुष्यों का आवागमन नहीं हो सकता, ऐसी श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है। किन्तु दिगम्बर-सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार ऋद्धि-सम्पन्न मनुष्य भी नहीं आ जा सकते हैं।

पुष्कर द्वीप को घेर कर उससे दूने विस्तार वाला पुष्करोद समुद्र है। पुनः उसे घेर उत्तरोत्तर दूने-दूने विस्तार वाले वरुणवर द्वीप-वरुणवर समुद्र, क्षीरवरद्वीप-क्षीरोदसागर, घृतवरद्वीप-घृतवर समुद्र, क्षोदवरद्वीप-क्षोदवर समुद्र, नन्दीश्वरद्वीप-नन्दीश्वरवर समुद्र आदि नाम वाले असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं। सबसे अन्त में असंख्यात योजन विस्तृत स्वयम्भूरमण समुद्र है।

इस असंख्यात द्वीप-समुद्रों वाले मध्य लोक के ठीक मध्य में जो एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप है उसके भी मध्य भाग में मूल में दस हजार योजन विस्तार वाला और एक लाख योजन ऊँचा मेरु पर्वत है। इसके उत्तर दिशा में अवस्थित उत्तरकुरु में एक अनादि-निधन पार्थिव जम्बू-वृक्ष है, जिसके निमित्त से ही इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा है। इस द्वीप का विभाजन करने

---

१. दि० परम्परा में शर्करा आदि पृथिवियों की मोटाई क्रमशः ८००००, ३२०००, २८०००, २४०००, २००००, १६००० और ८००० योजन मानी गई है। तिलोयपण्णत्ति में 'पाठान्तर' देकर उपर्युक्त मोटाई का भी उल्लेख है।

२. देखो प्रस्तुत ग्रन्थ का सूत्र १५६।

३. देखो प्रस्तुत ग्रन्थ का सूत्र १२७।

४. दिगम्बर परम्परा के अनुसार रत्नप्रभा के तीन भागों में से प्रथम भाग के एक-एक हजार योजन क्षेत्र को छोड़कर मध्यवर्ती १४ हजार योजन के क्षेत्र में किन्नर आदि सात व्यन्तर के देवों के, तथा नागकुमार आदि नौ भवनवासी देवों के आवास हैं। तथा रत्नप्रभा के दूसरे भाग में असुरकुमार, भवनपति और राक्षस व्यन्तरपति के आवास हैं। रत्नप्रभा के तीसरे भाग में नारकों के आवास हैं। (देखो तिलोयपण्णत्ति अ० ३ गा० ७। तत्वार्थवार्तिक अ० ३, सू० १)

वाले पूर्व से लेकर पश्चिम तक लम्बे छह वर्षधर पर्वत हैं—हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी। इन वर्षधर पर्वतों से विभक्त होने के कारण जम्बूद्वीप के सात विभाग हो जाते हैं, इन्हें वर्ष या क्षेत्र कहते हैं। इनके नाम दक्षिण की ओर से इस प्रकार हैं—भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत वर्ष। इनमें से विदेह क्षेत्र के मध्य-भाग में मेरु पर्वत है। इसके दक्षिणी भाग में भरत आदि तीन क्षेत्र हैं और उत्तरी भाग में रम्यक आदि तीन क्षेत्र हैं।

४—कर्मभूमियाँ और अकर्मभूमियाँ

उपर्युक्त सात क्षेत्रों में से भरत, ऐरावत और विदेहक्षेत्र (देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर) को कर्मभूमि कहा जाता है, क्योंकि यहाँ के मनुष्य असि, मषि, कृषि आदि कर्मों के द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यहाँ के मनुष्य-तिर्यंच अपने-अपने पुण्य-पापों के अनुसार नरक, तिर्यंचादि चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं तथा यहाँ के ही मनुष्य अपने पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। उक्त कर्मभूमि के सिवाय शेष को अकर्मभूमि या भोगभूमि कहा जाता है, क्योंकि यहाँ असि-मषि आदि कर्मों के द्वारा जीवकोपार्जन नहीं करना पड़ता, किन्तु प्रकृति-प्रदत्त कल्पवृक्षों के द्वारा ही जीवन-निर्वाह होता है। भोगभूमि के जीवों की अकाल मृत्यु भी नहीं होती है, किन्तु वे सदा स्वस्थ रहते हुए पूर्ण आयु-पर्यन्त दिव्य भोगों को भोगते रहते हैं।

५—अन्तरद्वीप

प्रथम हिमवान् पर्वत की चारों विदिशाओं में तीन-तीन सौ योजन लवण-समुद्र के भीतर जाकर चार अन्तर द्वीप हैं। इसी प्रकार लवण-समुद्र के भीतर चार सौ, पाँच सौ, छह सौ, सात सौ, आठ सौ और नौ सौ योजन आगे जाकर चारों विदिशाओं में चार-चार अन्तर-द्वीप और हैं। इस प्रकार चुल्ल हिमवान् के (७ × ४ = २८) सर्व अन्तर-द्वीप २८ होते हैं। इसी प्रकार छठे शिखरी पर्वत के लवण समुद्रगत २८ अन्तर-द्वीप हैं। दोनों ओर के मिलाकर ५६ अन्तर द्वीप हो जाते हैं।[1] इनमें एकोरुक आदि अनेक आकृतियों वाले मनुष्य रहते हैं। वे कल्प-वृक्षों के फल-फूलों को खाकर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, स्त्री-पुरुष के रूप में युगल उत्पन्न होते हैं और साथ ही मरते हैं। इनके मरण के कुछ समय पूर्व युगल-सन्तान उत्पन्न होती है।[2]

ऊपर जिन छह वर्षधर पर्वतों के नाम कहे गये हैं, उनके ऊपर क्रमशः पद्म, महापद्म, तिगिच्छ, केशरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम का एक-एक ह्रद या सरोवर है। इन्हीं सरोवरों के मध्य में पद्मों (कमलों) का अवस्थान बतलाया गया है। (विशेष वर्णन के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ का तद्विषयक प्रसंग देखिए।

हिमवान पर्वतस्थ पद्मद्रह के पूर्व भाग से गंगा महानदी निकली है, जो पर्वत से नीचे गिरकर दक्षिण भरतक्षेत्र में बहकर पूर्वमुखी होकर पूर्व के लवण-समुद्र में जाकर मिलती है। इसी पद्म-सरोवर के पश्चिम-भाग से सिन्धु महानदी निकलकर भारतवर्ष के दक्षिण भाग में कुछ दूर वहकर पश्चिमाभिमुखी होकर पश्चिम लवण-समुद्र में जाकर मिलती है। इसी सरोवर के उत्तरी भाग से रोहितांशा नदी निकली है जो कि हैमवत-क्षेत्र में बहती है। अन्तिम शिखरी पर्वत के ऊपर स्थित पुण्डरीक सरोवर के पूर्वी भाग से रक्ता और पश्चिमी भाग से रक्तोदा नदी निकलकर ऐरावत क्षेत्र में बहती हुई क्रमशः पूर्व और पश्चिम समुद्र में जाकर मिलती है। इसी पुण्डरीक सरोवर के दक्षिणी-भाग से सुवर्णकूला नदी निकली है, जो हैरण्यवत-क्षेत्र में बहती है। शेष मध्यवर्ती वर्षधर पर्वतों के सरोवरों से दो-दो नदियाँ निकली हैं। वे अपने-अपने क्षेत्रों में बहती हुई पूर्व एवं पश्चिम के समुद्र में जाकर मिलती हैं। इन प्रधान महानदियों में सहस्रों अन्य छोटी नदियां आकर मिलती हैं।

विदेह क्षेत्र में मेरु पर्वत के ईशानादि चारों कोणों में क्रमशः गन्धमादन, माल्यवान, सौमनस और विद्युत्प्रभ नाम वाले चार पर्वत हैं। इनसे विभक्त होने के कारण मेरु के दक्षिणी भाग को देवकुरु और उत्तरी भाग को उत्तरकुरु कहते हैं। ये दोनों ही क्षेत्र भोगभूमि हैं। मेरु के पूर्ववर्ती भाग को पूर्व-विदेह और पश्चिम दिशा वाले भाग को अपर या पश्चिम-विदेह कहते हैं। इन दोनों ही स्थानों में सीता—सीतोदा नदी के बहने से दो-दो खण्ड हो जाते हैं। इन चारों ही खण्डों में कर्मभूमि है। इन्हीं में सीमन्धर आदि तीर्थंकर सदा विहार करते और धर्मोपदेश देते हुए विराजते हैं और आज भी वहाँ के पुरुषार्थी मानव कर्मों का क्षय करके मोक्ष जाते हैं।

६—ज्योतिष्क लोक

जम्बूद्वीप के समतल भाग से ७९७ योजन की ऊँचाई से लेकर ९०० योजन की ऊँचाई तक ज्योतिष्क लोक है, जहाँ पर

---

१. दिगम्बर परम्परा में अन्तरद्वीपों की संख्या ९६ बतलायी गयी है। विशेष के लिए देखो—तिलोयपण्णत्ति अ० ४, गा० २४७८-२४९०। तत्त्वार्थवार्तिक अ० ३, सूत्र ३७ की टीका आदि।

२. देखो—तिलोयपण्णत्ति अ० ४, गा० २४८९, तथा २५१२ आदि।

सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा, इन पांच जाति के ज्योतिषी देवों के विमान हैं। ये सभी विमान यतः ज्योतिर्मान या प्रकाश-स्वभावी हैं, अतः इन्हें ज्योतिष्क-लोक कहते हैं। और उनमें रहने वाले ज्योतिष्क देवों के निवास के कारण उक्त क्षेत्र ज्योतिष्क-लोक कहलाता है। तिरछे रूप में ज्योतिष्क-लोक स्वयम्भूरमण समुद्र तक फैला हुआ है। इसमें ७९० योजन की ऊँचाई पर सर्वप्रथम ताराओं के विमान हैं। उनसे १० योजन की ऊँचाई पर सूर्य का विमान है। सूर्य से ८० योजन ऊपर चन्द्र का विमान है। चन्द्र से ४ योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रों से ४ योजन ऊपर बुध का विमान है। बुध से ३ योजन ऊपर शुक्र का विमान है। शुक्र से ३ योजन ऊपर गुरु का विमान है। गुरु से ३ योजन ऊपर मंगल का विमान है। और मंगल से ३ योजन ऊपर शनैश्चर का विमान है। इस प्रकार सर्व ज्योतिष्क विमान-समुदाय एक सौ दस योजन के भीतर पाया जाता है।

मध्य-लोकवर्ती तीसरे पुष्कर-द्वीप के मध्य में जो मानुषोत्तर पर्वत है, वहाँ तक का क्षेत्र मनुष्यलोक कहलाता है। इस मनुष्यलोक के भीतर सर्व ज्योतिष्क-विमान मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए निरन्तर घूमते रहते हैं। यहाँ पर सूर्य के उदय और अस्त से ही दिन-रात्रि का व्यवहार होता है। मनुष्यलोक के बाहरी भाग से लेकर स्वयम्भूरमण समुद्र तक के असंख्यात योजन विस्तृत क्षेत्र में जो असंख्य ज्योतिष्क-विमान हैं, वे घूमते नहीं, किन्तु सदा अवस्थित रहते हैं। जम्बूद्वीप में मेरु के चारों ओर ११२१ योजन तक ज्योतिष्क-मण्डल नहीं है। लोकान्त में भी इतने ही योजन छोड़कर ज्योतिष्क-मण्डल अवस्थित है। इसके मध्यवर्ती भाग में यथासंभव अन्तराल के साथ सर्वत्र वह फैला हुआ है।

जैन मान्यता के अनुसार जम्बूद्वीप में २ सूर्य और २ चन्द्र हैं। एक सूर्य मेरु पर्वत की पूरी प्रदक्षिणा दो दिन रात में करता है। इसका परिभ्रमण-क्षेत्र जम्बूद्वीप के भीतर १८० योजन और लवण-समुद्र के भीतर ३३०$\frac{४८}{६१}$ योजन है। सूर्य के घूमने के मण्डल १८३ हैं। एक मण्डल से दूसरे मण्डल का अन्तर दो योजन का है। इस प्रकार प्रथम मण्डल से अन्तिम मण्डल तक परिभ्रमण करने में सूर्य को ३६६ दिन लगते हैं। सौर मास के अनुसार एक वर्ष में इतने ही दिन होते हैं। चन्द्र के परिभ्रमण के मण्डल केवल १५ हैं। चन्द्र को भी मेरु की एक प्रदक्षिणा करने में दो दिन-रात से कुछ अधिक समय लगता है, क्योंकि उसकी गति सूर्य से मन्द है। इसी कारण से चन्द्र के उदय में सूर्य की अपेक्षा आगा-पीछापन दिखाई देता है। एक चन्द्र अपने १५ मंडलों में चन्द्रमास में १४$\frac{१}{४}$ + $\frac{१}{१२४}$ मंडल ही चलता है, अतः चन्द्रमास के अनुसार वर्ष में ३५५ या ३५६ ही दिन होते हैं।

जैन मान्यतानुसार लवण-समुद्र में ४ सूर्य और ४ चन्द्र हैं। धातकीखण्ड में १२ सूर्य १२ चन्द्र हैं। कालोद-समुद्र में ४२ सूर्य और ४२ चन्द्र हैं। पुष्करार्ध-द्वीप में ७२ सूर्य और ७२ चन्द्र हैं। पुष्करार्ध के परवर्ती अर्ध भाग में भी ७२-७२ ही सूर्य-चन्द्र हैं। इससे आगे स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त सूर्य और चन्द्र की संख्या उत्तरोत्तर दूनी-दूनी है।

एक चन्द्र के परिवार में एक सूर्य, अट्ठाईस नक्षत्र, अठ्यासी ग्रह और ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे होते हैं। जम्बूद्वीप में दो चन्द्र होने से नक्षत्रादि की संख्या दूनी जाननी चाहिए। इस प्रकार सारे ज्योतिर्लोक में असंख्य सूर्य, चन्द्र हैं। इनसे अट्ठाईस गुणित नक्षत्र और अठयासी गुणित ग्रह हैं। तथा सूर्य से ६६९७५ कोड़ाकोड़ी गुणित तारे हैं।

मनुष्यलोकवर्ती ज्योतिष्क-विमान यद्यपि स्वयं गमन-स्वभावी हैं, तथापि आभियोग्य जाति के देव; सूर्य चन्द्रादि विमानों को गतिशील बनाये रखने में निमित्त-स्वरूप हैं। ये देव सिंह, गज, बैल और अश्व का आकार धारण कर और क्रमशः पूर्वादि चारों दिशाओं में संलग्न रहकर सूर्यादि को गतिशील बनाये रखते हैं।

७—ऊर्ध्व-लोक

मेरु-पर्वत को तीनों लोक का विभाजक माना गया है। मेरु के अधस्तन भाग को अधोलोक और मेरु के ऊपर के भाग को ऊर्ध्व-लोक कहते हैं। ऊर्ध्वलोक में श्वेताम्बरीय मान्यतानुसार स्वर्गों की संख्या बारह है और दिगम्बरीय मान्यतानुसार सोलह है। इन स्वर्गों में कल्पवासी देव और देवियाँ रहती हैं। इनसे ऊपर नौ ग्रैवेयक, उनके ऊपर दिगम्बरीय मान्यतानुसार नौ अनुदिश और उनके ऊपर पांच अनुत्तर विमान हैं। इन विमानों में रहने वाले देव कल्पातीत कहलाते हैं, क्योंकि उनमें इन्द्र, सामानिक आदि कल्पना नहीं है, वे उससे परे हैं। इन विमानों में रहने वाले देव समान वैभव वाले हैं और सभी अपने आपको इन्द्र-स्वरूप से अनुभव करते हैं, इसलिए वे (अहं + इन्द्रः) 'अहमिन्द्र' कहलाते हैं।

स्वर्गों में जो कल्पवासी देव रहते हैं, उनमें इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद्, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक नाम की दस जातियाँ हैं। जो सामानिक आदि अन्य देवों के स्वामी होते हैं, उन्हें इन्द्र कहते

हैं। उनकी आज्ञा सभी देव शिरोधार्य करते हैं और उनका वैभव, ऐश्वर्य अन्य सर्व देवों से बहुत बढ़ा-चढ़ा होता है। जो आज्ञा और ऐश्वर्य को छोड़कर शेष सब बातों में इन्द्र के समान होते हैं उन्हें सामानिक कहते हैं। मंत्री और पुरोहित का काम करने वाले देव त्रायस्त्रिंश कहलाते हैं। उनकी संख्या तैंतीस ही होती है, इसलिए ये त्रायस्त्रिंश कहे जाते हैं। इन्द्र की सभा या परिषद् के सदस्यों को पारिषद कहते हैं। इन्द्र के अंग-रक्षक देव आत्मरक्ष कहलाते हैं। सर्व देवों की रक्षा करने वाले देव लोकपाल कहलाते हैं। सेना में काम करने वाले देवों को अनीक कहते हैं। साधारण प्रजा-स्थानीय देवों को प्रकीर्णक कहते हैं। देवलोक में जो देव सब से हीन पुण्यवाले होते हैं, उन्हें किल्विषिक कहते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों का भी वर्णन किया है, उनमें से भवनवासियों में भी उपर्युक्त दस भेद हैं। किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल को छोड़कर शेष आठ भेद होते हैं। व्यन्तर देवों के आवास रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम-द्वितीय काण्ड में तथा मध्यलोकवर्ती असंख्यात द्वीप और समुद्रों में पाये जाते हैं।

पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग के अन्त में सारस्वत आदि लौकान्तिक देव रहते हैं। ये देवर्षि कहलाते हैं। वे स्वर्ग के देवों में सर्वाधिक ज्ञानी होते हैं। वे तीर्थंकरों के अभिनिष्क्रमण कल्याणक के सिवाय अन्य किसी कल्याणक में नहीं आते हैं और वे सभी एक भवावतारी होते हैं।

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी इन सभी प्रकार के देवों का औपपातिक जन्म होता है। ये अपनी उपपाद शय्या पर जन्म लेने के पश्चात एक अन्तर्मुहूर्त में ही पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

८—तमस्काय

जम्बूद्वीप से तिर्छे असंख्यात द्वीप-समुद्रों को लांघने पर अरुणवर-द्वीप की बाहरी वेदिका के अन्त से अरुणोद समुद्र में बयालीस हजार योजन अवगाहन करके जल के ऊपरी भाग में एक प्रदेश की श्रेणी वाला तमस्काय (अन्धकार-पिण्ड) आरम्भ होता है। पुनः वह १७२१ योजन ऊपर उठकर विस्तार को प्राप्त होता हुआ सौधर्मादि चार कल्पों को आवृत करके पाँचवें ब्रह्म लोक में रिष्ट विमान को प्राप्त होकर समाप्त होता है। इस तमस्काय का आकार नीचे मल्लकमूल और मुर्गे के पींजरे के समान है। इसके लोकतमिस्र आदि १३ नाम हैं और इसकी आठ कृष्णराजियाँ बतलायी गयी हैं। (विशेष के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ का तद्विषयक प्रसंग देखिए।)

९—सिद्धलोक

ऊर्ध्वलोक के सबसे अन्त में स्थित सर्वार्थसिद्ध विमान के अग्रभाग से बारह योजन ऊपर ईषत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी है। वह पैंतालीस लाख योजन विस्तृत गोल-आकार वाली है। यह बीच में आठ योजन मोटी है फिर क्रम से घटती हुई सबसे अन्तिम प्रदेशों में मक्खी के पंख से भी पतली हो गई है। दिगम्बर मतानुसार इषत्प्राग्भार पृथ्वी लोकान्त तक विस्तृत होने से एक राजू चौड़ी और सात राजु लम्बी है। इसके ठीक मध्य भाग में मनुष्य-क्षेत्र पैंतालीस लाख योजन लम्बा-चौड़ा गोल-आकार वाला सिद्धक्षेत्र है। इसका आकार रूप्यमय छत्राकार है। इस सिद्धक्षेत्र या सिद्धलोक में कर्मों का क्षय करके संसार चक्र से छूटने वाले मुक्त जीव निवास करते हैं और अनन्त काल तक अपने आत्मिक अव्याबाध निरुपम सुख को भोगते रहते हैं।

१०—क्षेत्र—माप

जैन परम्परा में क्षेत्र-माप इस प्रकार बतलाया गया है—

परमाणु	=पुद्गल का सबसे छोटा अविभागी अंश
अनन्तपरमाणु	= १ उस्सण्हसण्हिया (उत्संज्ञसंज्ञिका),
८ उस्सण्हसण्हिया	= १ सण्हसण्हिया (संज्ञासंज्ञिका)
८ सण्हसण्हिया	= १ ऊर्ध्वरेणु
८ ऊर्ध्वरेणु	= १ त्रसरेणु
८ त्रसरेणु	= १ रथरेणु
८ रथरेणु	= १ देवकुरु के मनुष्य का बालाग्र
८ देवकुरु मनुष्य का बालाग्र	= १ हरिवर्ष " "
८ हरिवर्ष " "	= १ हैमवत " "
८ हैमवत " "	= १ विदेहक्षेत्रज " "
८ विदेहक्षेत्रज " "	= १ भरतक्षेत्रज " "
८ भरतक्षेत्रज " "	= १ लिक्षा (लीख)
८ लिक्षा	= १ यूका (जूं)
८ यूका	= १ यवमध्य
८ यवमध्य	= १ उत्सेधांगुल
६ उत्सेधांगुल	= १ पाद
२ पाद	= १ वितस्ति
२ वितस्ति	= १ रत्नि
२ रत्नि	= १ कुक्षि (दि० पर० किष्कु)
२ कुक्षि (किष्कु)	= १ दण्ड (धनुष)
२ सहस्र धनुष	= १ गव्यूति
४ गव्यूति	= १ योजन

उपर्युक्त माप-वर्णन उत्सेधांगुल से है। उत्सेधांगुल से प्रमाणांगुल पाँच सौ गुणा होता है। एक उत्सेधांगुल लम्बी एक प्रदेश की श्रेणी (पंक्ति) को सूच्यंगुल कहते हैं। सूच्यंगुल के वर्ग को प्रतरांगुल कहते हैं और सूच्यंगुल के घन को घनांगुल कहते हैं। असंख्यात कोड़ाकोड़ी घनांगुल गुणित योजनों की पंक्ति को श्रेणी या जगच्छ्रेणी कहते हैं। जगच्छ्रेणी के वर्ग को जगत्प्रतर कहते हैं और जगच्छ्रेणी के घन को लोक या घन-लोक कहते हैं। इनमें से जगच्छ्रेणी के सातवें भाग-प्रमाण क्षेत्र को राजु कहते हैं। लाकाकाश का घनफल ३४३ राजु प्रमाण है।

११—काल—माप

समय		=	काल का सूक्ष्मतम अंश
जघन्य युक्त असंख्यात समय		=	१ आवलिका
४४४६ $\frac{2458}{3773}$		=	आवलिका = १ प्राण
७	प्राण	=	१ स्तोक
७	स्तोक	=	१ लव
३८½	लव	=	१ घड़ी
२	घड़ी	=	१ मुहूर्त (=४८ मिनट)
३०	मुहूर्त	=	१ अहोरात्र
३०	अहोरात्र	=	१ मास
१२	मास	=	१ वर्ष
८४ लाख	वर्ष	=	१ पूर्वांग
,, ,,	पूर्वांग	=	१ पूर्व
,, ,,	पूर्व	=	१ त्रुटितांग
,, ,,	त्रुटितांग	=	१ त्रुटित
,, ,,	त्रुटित	=	१ अडडांग
,, ,,	अडडांग	=	१ अडड
,, ,,	अडड	=	१ अववांग
,, ,,	अववांग	=	१ अवव
,, ,,	अवव	=	१ हूहूकांग
,, ,,	हूहूकांग	=	१ हूहूक
,, ,,	हूहूक	=	१ उत्पलांग
,, ,,	उत्पलांग	=	१ उत्पल

इसी प्रकार आगे पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थ-निपुरांग, अर्थनिपुर, अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, नयुतांग, नयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहेलिका उत्तरोत्तर चौरासी लाख गुणित जानना चाहिए। यह काल-मान श्वेताम्वर-आगमों के अनुसार है।

दिगम्बर मान्यतानुसार उपर्युक्त कालमाप का वर्णन इस प्रकार है—

समय	=	काल का सबसे छोटा अविभागी अंश
असंख्यात समय	=	१ आवली
संख्यात आवली	=	१ प्राण (श्वासोच्छ्वास)
७ प्राण	=	१ स्तोक
७ स्तोक	=	१ लव
७७ लव	=	१ मुहूर्त
३० मुहूर्त	=	१ अहोरात्र
१५ अहोरात्र	=	१ पक्ष
२ पक्ष	=	१ मास
२ मास	=	१ ऋतु
३ ऋतु	=	१ अयन
२ अयन	=	१ वर्ष
८४ लाख वर्ष	=	१ पूर्वांग
८४ लाख पूर्वांग	=	१ पूर्व
८४ ,, पूर्व	=	१ पर्वांग
८४ ,, पर्वांग	=	१ पर्व
८४ ,, पर्व	=	१ नयुतांग
८४ ,, नयुतांग	=	१ नयुत
८४ ,, नयुत	=	१ कुमुदांग
८४ ,, कुमुदांग	=	१ कुमुद
८४ ,, कुमुद	=	१ पद्मांग
८४ ,, पद्मांग	=	१ पद्म
८४ ,, पद्म	=	१ नलिनांग
८४ ,, नलिनांग	=	१ नलिन

इसी प्रकार आगे कमलांग-कमल, तुट्यांग-तुट्य, अटटांग-अटट, अममांग-अमम, हूहूअंग-हूहू, लतांग-लता, महालतांग-महालता, शिरःप्रकम्पित, हस्तप्रहेलित और अचलात्म को उत्तरोत्तर ८४ लाख गुणित जानना चाहिए।

ये सभी संख्याएँ संख्यात गणना के ही भीतर हैं।

पल्योपम और सागरोपम आदि असंख्यात-गणना के भीतर हैं।

इन सबसे ऊपर अन्त-विहीन जो राशि है, वह अनन्त कहलाती है।

(ख) बौद्धमतानुसार लोक-वर्णन

१—लोक-रचना

आ० वसुबन्धु ने अपने अभिधर्म-कोश में लोक रचना इस प्रकार बतलाई है :—

लोक के अधोभाग में सोलह लाख योजन ऊँचा, अपरिमित वायु-मण्डल है[1]। उसके ऊपर ११ लाख बीस हजार योजन ऊँचा जल-मण्डल है। उसमें ३ लाख बीस हजार योजन कंचनमय भूमण्डल है[2]। जल-मण्डल और कंचन-मण्डल का विस्तार १२ लाख ३ हजार चार सौ पचास योजन तथा परिधि छत्तीस लाख दस हजार तीन सौ पचास योजन प्रमाण है[3]।

कांचनमय भूमण्डल के मध्य में मेरु-पर्वत है। यह अस्सी हजार योजन नीचे जल में डूबा हुआ है तथा इतना ही ऊपर निकला हुआ है[4]। इससे आगे अस्सी हजार योजन विस्तृत और दो लाख चालीस हजार योजन प्रमाण परिधि से संयुक्त प्रथम सीता (समुद्र) है। जो मेरु को घेर कर अवस्थित है। इससे आगे चालीस हजार योजन विस्तृत युगन्धर पर्वत वलयाकार से स्थित है। इसके आगे भी इसी प्रकार से एक-एक सीता को अन्तरित करके आधे-आधे विस्तार से संयुक्त क्रमशः युगन्धर, ईशाधर, खदीरक, सुदर्शन, अश्वकर्ण, विनतक, और निमिन्धर पर्वत हैं। सीताओं का विस्तार भी उत्तरोत्तर आधा-आधा होता गया है[5]। उक्त पर्वतों में से मेरु चतुर्रत्नमय और शेष सात पर्वत स्वर्णमय है। सबसे बाहर अवस्थित सीता (महासमुद्र) का विस्तार तीन लाख बाईस हजार योजन प्रमाण है। अन्त में लौहमय चक्रवाल पर्वत स्थित है।

निमिन्धर और चक्रवाल पर्वतों के मध्य में जो समुद्र स्थित है उसमें जम्बूद्वीप, पूर्वविदेह, अवरगोदानीय और उत्तरकुरु, ये चार द्वीप हैं। इनमें जम्बूद्वीप मेरु के दक्षिण भाग में है, उसका आकार शकट के समान है। उसकी तीन भुजाओं मे से दो भुजाएँ दो-दो हजार योजन और एक भुजा तीन हजार पचास योजन की है।

मेरु के पूर्व भाग में अर्द्ध-चन्द्राकार पूर्वविदेह नाम का द्वीप है। इसकी भुजाओं का प्रमाण जम्बूद्वीप की तीनों भुजाओं के समान है[7]। मेरु के पश्चिम भाग में मण्डल-भार अवरगोदानीय-द्वीप है। इसका विस्तार अढाई हजार योजन और परिधि साढ़े सात हजार योजन प्रमाण है[8]। मेरु के उत्तर भाग में सम चतुष्कोण उत्तरकुरुद्वीप है। इसकी एक-एक भुजा दो-दो हजार योजन की है। इनमें से पूर्वविदेह के समीप में देह-विदेह, उत्तर-कुरु के समीप में कुरु-कौरव, जम्बूद्वीप के समीप में चामर, अवर-चामर तथा गोदानीय द्वीप के समीप में शाटा और उत्तरमन्त्री नामक अन्तर्द्वीप अवस्थित हैं। इनमें से चमरद्वीप में राक्षसों का और शेष द्वीप में मनुष्य का निवास है[9]।

मेरु-पर्वत के चार परिखण्ड (विभाग) हैं। प्रथम परिखण्ड शीता-जल से दस हजार योजन ऊपर तक माना गया है। इसके आगे क्रमशः दस-दस हजार योजन ऊपर जाकर दूसरा, तीसरा और चौथा परिखण्ड है। इनमें से पहला परिखण्ड सोलह हजार योजन दूसरा परिखण्ड आठ हजार योजन, तीसरा परिखण्ड चार हजार योजन और चौथा परिखण्ड दो हजार योजन मेरु से बाहर निकला हुआ है। पहले परिखण्ड में पूर्व की ओर करोट-पाणि-यक्ष रहते हैं। दूसरे परिखण्ड में दक्षिण की ओर मालाधर रहते हैं। तीसरे परिखंड में पश्चिम की ओर सदामद रहते हैं और चौथे परिखंड में चातुर्महाराजिक देव रहते हैं। इसी प्रकार शेप सात पर्वतों पर भी उक्त देवों का निवास है[10]।

जम्बूद्वीप में उत्तर की ओर बने कीटादि और उनके आगे हिमवान पर्वत अवस्थित है। हिमवान पर्वत से आगे उत्तर में पाँच सौ योजन विस्तृत अनवतप्त नाम का अगाध सरोवर है। इससे गंगा, सिन्धु, वक्षु और सीता नाम की चार नदियाँ निकली हैं। इस सरोवर के समीप जम्बू-वृक्ष है, जिससे इस द्वीप का नाम जम्बू द्वीप पड़ा है। अनवतप्त–सरोवर के आगे गन्धमादक नाम का पर्वत है[11]।

२—नरक लोक

जम्बूद्वीप के नीचे वीस हजार योजन विस्तृत अवीचि नाम का नरक है। उसके ऊपर क्रमशः प्रतापन, तपन, महारौरव, रौरव, संघात, कालसूत्र और संजीव नाम के सात नरक और

१. अभिधर्मकोश, ३, ४५।
२. अभिधर्मकोश ३, ४६।
३. „ „ ३, ४७-४८।
४. „ „ ३, ५०।
५. „ „ ३, ५१-५२।
६. „ „ ३, ५३।
७. „ „ ३, ५४।
८. „ „ ३, ५५।
९. „ „ ३, ५६।
१०. अभिधर्मकोश ३, ६३-६४,
११. „ „ ३, ५७,

है[1] । इन नरकों के चारों पार्श्व-भागों में कुकूल, कुणप, क्षुर्मार्गादिक, (असिपत्रवन, श्यामसवलस्वस्थान अयः शाल्मलीवन) और खारोदक वाली वैतरणी नदी ये चार उत्सद हैं। अर्बुद, निरर्बुद, अटट, उहहव, हुहूव, उत्पल, पद्म और महापद्म नाम वाले ये आठ शीत-नरक और हैं, जो जम्बूद्वीप के अधो-भाग में महानरकों के धरातल में अवस्थित है[2] ।

३ – ज्योतिर्लोक

मेरु-पर्वत के अर्द्ध-भाग अर्थात् भूमि से चालीस हजार योजन ऊपर चन्द्र और सूर्य परिभ्रमण करते हैं। चन्द्र-मण्डल का प्रमाण पचास योजन और सूर्य-मण्डल का प्रमाण इक्यावन योजन है। जिस समय जम्बू-द्वीप में मध्याह्न होता है उस समय उत्तरकुरु में अर्ध रात्रि, पूर्वविदेह में अस्तगमन और अवरगोदानीय में सूर्योदय होता है[3] । भाद्र मास के शुक्ल-पक्ष की नवमी से रात्रि की वृद्धि और फाल्गुन मास के शुक्ल-पक्ष की नवमी से उसके हानि का आरम्भ होता है। रात्रि की वृद्धि, दिन की हानि और रात्रि की हानि, दिन की वृद्धि होती है। सूर्य के दक्षिणायन में रात्रि की वृद्धि और उत्तरायण में दिन की वृद्धि होती है[4] ।

४— स्वर्गलोक

मेरु के शिखर पर त्रयस्त्रिंश (स्वर्ग) लोक है। इसका विस्तार अस्सी हजार योजन है। यहाँ पर त्रायस्त्रिंश देव रहते हैं। इसके चारों विदिशाओं में वज्रपाणि देवों का निवास है[5] । त्रयस्त्रिंश-लोक के मध्य में सुदर्शन नाम का नगर है, जो सुवर्णमय है। इसका एक-एक पार्श्व भाग ढाई हजार योजन विस्तृत है। उसके मध्य-भाग में इन्द्र का अढाई सौ योजन विस्तृत वैजयन्त नामक प्रासाद है। नगर के बाहरी भाग में चारों ओर चैत्ररथ, पारुष्य, मिश्र और नन्दन ये चार वन हैं[6] । इनके चारों ओर बीस हजार योजन के अन्तर से देवों के क्रीड़ा-स्थल हैं[7] ।

त्रयस्त्रिंश-लोक के ऊपर विमानों में याम, तुषित, निर्माणरति, और परनिर्मित-वशवर्त्ती देव रहते हैं। कामधातुगत देवों में से चातुर्माहाराजिक और त्रयस्त्रिंश देव मनुष्य के समान काम सेवन करते हैं। याम, तुषित, निर्माणरति, परनिर्मितवशवर्ती देव क्रमशः आलिंगन, पाणिसंयोग, हसित, और अवलोकन से ही तृप्ति को प्राप्त होते हैं[8] ।

कामधातु के ऊपर सत्तरह स्थानों से संयुक्त रूपधातु हैं। वे सत्तरह स्थान इस प्रकार हैं। प्रथम स्थान में ब्रह्मकायिक, ब्रह्मपुरोहित, और महाब्रह्म लोक हैं। द्वितीय स्थान में परिताभ, अप्रभाणाभ, और आभस्वर लोक हैं। तृतीय स्थान में परित्तशुभ, अप्रमाणशुभ, और शुभकृत्स्न लोक हैं। चतुर्थ स्थान में अनभ्रक, पुण्यप्रसव, वृहद्फल, पंचशुद्धावासिक, अवृह, अतप सुदृश-सुदर्शन और अकनिष्ठ नाम वाले आठ लोक हैं। ये सभी देवलोक क्रमशः ऊपर-ऊपर अवस्थित हैं। इनमें रहने वाले देव ऋद्धि-बल अथवा अन्य देव की सहायता से ही अपने से ऊपर के देव-लोक को देख सकते हैं[9] ।

जम्बूद्वीपस्थ मनुष्यों का शरीर साढ़े तीन या चार हाथ, पूर्व विदेहवासियों का ७-८ हाथ, गोदानीय द्वीपवासियों का १४-१६ हाथ, और उत्तर-कुरुस्थ मनुष्यों का शरीर २८-३२ हाथ ऊँचा होता है। कामधातुवासी देवों में चातुर्महाराजिक देवों का शरीर $\frac{1}{4}$ कोश, त्रायस्त्रिंशों का $\frac{1}{2}$ कोश, यामों का $\frac{3}{4}$ कोश, तुषितों का १ कोश, निर्माणरति देवों का १$\frac{1}{4}$ कोश और परनिर्मितवशवर्ती देवों का शरीर १$\frac{1}{2}$ कोश ऊँचा है। आगे ब्रह्मपुरोहित, महाब्रह्म, परिताभ, अप्रभाणाभ, आभस्वर, परित्तशुभ, अप्रमाणशुभ, और शुभकृत्स्न देवों का शरीर क्रमशः १, १$\frac{1}{2}$, २, ४, ८, १६, ३२, और ६४ योजन प्रमाण ऊँचा है। अनभ्र देवों का शरीर १२५ योजन ऊँचा है, आगे पुण्यप्रसव आदि देवों के शरीर उत्तरोत्तर दूनी ऊँचाई वाले हैं[10] ।

५—क्षेत्र-माप

बौद्ध ग्रन्थों में योजन का प्रमाण इस प्रकार बतलाया गया है[11] :—

७	परमाणु	=	१ अणु
७	अणु	=	१ लौहरज
७	लौहरज	=	१ जलरज
७	जलरज	=	१ शशरज
७	शशरज	=	१ मेषरज
७	मेषरज	=	१ गोरज
७	गोरज	=	१ छिद्ररज
७	छिद्ररज	=	१ लिक्षा (लीख),
७	लिक्षा	=	१ यव

१. अ. को. ३, ५८,
२. अ. को. ३, ५६,
३. अ. को. ३, ६०,
४. अ. को. ३, ६१,
५. अ. को. ३, ६५,
६. अ. को. ३, ६६-६७,
७. अ. को. ३, ६८।
८. अभि. कोश. ३, ३६,
९. अ. को. ३, ७१-७२,
१०. अ. को. ३, ७५-७७,
११. अ. को. ३, ८५-८७।

७	यव	=	१ अंगुलीपर्व
२४	अंगुलीपर्व	=	१ हस्त
४	हस्त	=	१ धनुष
५००	धनुष	=	१ कोश
८	कोश	=	१ योजन

६—काल-माप

बौद्ध ग्रन्थों में काल का प्रमाण इस प्रकार बतलाया गया है[1]—

१२० क्षण	=	१ तत्क्षण
६० तत्क्षण	=	१ लव
३० लव	=	१ मुहूर्त
६० मुहूर्त	=	१ अहोरात्रि
३० अहोरात्र	=	१ मास
१२ मास	=	१ संवत्सर

कल्पों के अन्तरकल्प, संवर्तकल्प और महाकल्प आदि अनेक भेद बतलाये गये हैं[2]।

तुलना और समीक्षा

बौद्धों ने दस लोक माने हैं—नरकलोक, प्रेतलोक, तिर्यक्-लोक, मनुष्यलोक और ६ देवलोक।[3] छह देवलोकों के नाम इस प्रकार हैं—चातुर्महाराजिक, त्रयस्त्रिंश, याम, तुषित, निर्माणरति और परनिर्मितवशवर्ती। प्रेतों को जैनों ने देवयौनिक माना है। अतएव इसे उक्त ६ देवलोकों में अन्तर्गत करने पर नरक, तिर्यक्, मनुष्य और देव, ये चार लोक ही सिद्ध होते हैं, जो कि जैनाभिमत चारों गतियों का स्मरण कराते हैं।

बौद्धों ने प्रेत-योनि को एक पृथक गति मानकर पाँच गतियाँ स्वीकार की हैं। यथा :—

नरकादिस्वनामोक्ता गतयः पंच तेषु ताः (अभिधर्मकोश ३, ४)

ऊपर बतलाये देवों में से चातुर्महाराजिक देव-इन्द्र का, तुषित-लौकान्तिक देवों का, त्रयस्त्रिंश त्रायस्त्रिंश देवों का, तथा शेष भेद व्यन्तर-देवों का स्पष्ट रूप से स्मरण कराते हैं।

जैनों के समान बौद्धों ने भी देवों और नारकी जीवों को औपपातिक जन्म वाला माना है। यथा :—

नारका उपपादुकाः अन्तरा भव देवश्च।

(अभिधर्मकोष, ३,४)

बौद्धों ने भी जैनों के समान नारकी जीवों का उत्पन्न होने के साथ ही ऊर्ध्वपाद और अधोमुख होकर नरक-भूमि में गिरना माना है। यथा :—

एते पतंति निरय उद्धपादा अवंसिरा। (सुत्तनिपात)

(ऊर्ध्वपादास्तु नारकाः) (अभिधर्मकोष ३, १५)

(ग) वैदिक धर्मानुसार लोक—वर्णन

१—मर्त्य लोक

जिस प्रकार जैन ग्रन्थों से ऊपर भूगोल का वर्णन किया गया है लगभग उसी प्रकार से हिन्दू-पुराणों में भी भूगोल का वर्णन पाया जाता है। विष्णु-पुराण के द्वितीयांश के द्वितीयाध्याय में बतलाया गया है कि इस पृथ्वी पर १ जम्बू, २ प्लक्ष, ३ शाल्मल, ४ कुश, ५ क्रौंच, ६ शाक और ७ पुष्कर नाम वाले सात द्वीप हैं। ये सभी चूड़ी के समान गोलाकार और क्रमशः १ लवणोद, २ इक्षुरस, ३ मदिरारस, ४ घृतरस, ५ दधिरस, ६ दूधरस, ७ मधुररस वाले सात समुद्रों से वेष्टित हैं। इन सबके मध्य-भाग में जम्बूद्वीप है। इसका विस्तार एक लाख योजन है। उसके मध्य भाग में ८४ हजार योजन ऊँचा स्वर्णमय मेरु-पर्वत है। इसकी नींव पृथ्वी के भीतर १६ हजार योजन है। मेरु का विस्तार मूल में १६ हजार योजन है और फिर क्रमशः बढ़कर शिखर पर ३२ हजार योजन हो गया है[4]।

इस जम्बूद्वीप में मेरु-पर्वत के दक्षिण-भाग में हिमवान हेमकूट और निषध तथा उत्तर भाग में नील, श्वेत और श्रृंगी ये छः वर्ष-पर्वत हैं। इन से जम्बूद्वीप के सात भाग हो जाते हैं। मेरु के दक्षिणवर्ती निषध और उत्तरवर्ती नील पर्वत, पूर्व-पश्चिम लवण-समुद्र तक १ लाख योजन लम्बे दो-दो हजार योजन ऊँचे और इतने ही चौड़े हैं। इनमें परवर्ती हेमकूट और श्वेत-पर्वत लवण-समुद्र तक पूर्व-पश्चिम में नब्बे (९०) हजार योजन लम्बे, दो हजार योजन ऊँचे और इतने ही विस्तार वाले हैं। इनसे परवर्ती हिमवान और श्रृंगी-पर्वत पूर्व-पश्चिम में अस्सी (८०) हजार योजन लम्बे, दो हजार योजन ऊँचे और इतने ही विस्तार वाले हैं। इन पर्वतों के द्वारा जम्बू-द्वीप के सात भाग हो जाते हैं। जिनके नाम दक्षिण की ओर से क्रमशः इस प्रकार हैं—१ भारतवर्ष, २ किम्पुरुष, ३ हरिवर्ष, ४ इलावृत, ५ रम्यक,

---

१. अभिधर्म कोशः ३, ८८-८९ २. अभिधर्म कोश ३,९०

३. नरक-प्रेत-तिर्यञ्चो मानुषाः षड् दिवौकसः। (अभिधर्मकोष ३, १)

४. विष्णु-पुराण द्वितीयांश, द्वितीय-अध्याय, श्लोक; ५-९ मार्कण्डेय-पुराण अ० ५४ श्लोक ५-७

६ हिरण्मय ७ और उत्तरकुरु[1]। इनमें इलावृत को छोड़कर शेष ६ का विस्तार उत्तर-दक्षिण में नौ-नौ हजार योजन है। इलावृत-वर्ष मेरु के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चारों ही दिशाओं में नौ-नौ हजार योजन विस्तृत है। इस प्रकार सर्व पर्वतों व वर्षों के विस्तार को मिलाने पर जम्बू-द्वीप का विस्तार १ लाख योजन प्रमाण हो जाता है।

मेरु-पर्वत के दोनों ओर पूर्व-पश्चिम में इलावृत-वर्ष की सीमा स्वरूप माल्यवान और गन्धमादन पर्वत हैं, जो नील और निषध-पर्वत तक विस्तृत हैं। इनके कारण दोनों ओर दो विभाग और हैं, जिनके नाम भद्राश्व और केतुमाल हैं। इस प्रकार उपर्युक्त सात वर्षों को और मिला देने से जम्बू-द्वीप सम्बन्धी सर्व वर्षों (क्षेत्रों) की संख्या नौ हो जाती है[2]।

मेरु के चारों ओर पूर्वादिक दिशाओं में क्रमशः मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व नाम वाले चार पर्वत हैं। इनके ऊपर क्रमशः ११०० योजन ऊँचे कदम्ब, जम्बू, पीपल और वट-वृक्ष हैं। इनमें से जम्बू-वृक्ष के नाम से यह जम्बू-द्वीप कहलाता है[3]।

जम्बूद्वीपस्थ भारतवर्ष में महेन्द्र, मलय, सह्य, सूक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य, पारियात्र, ये कुल सात पर्वत हैं।[4] इनमें से हिमवान से शतद्रु और चन्द्रभागा आदि, पारियात्र से वेद और स्मृति आदि, विन्ध्य से नर्मदा और सुरसा आदि, ऋक्ष से तापी, पयोष्णी और निर्विन्ध्यादि, सह्य से गोदावरी, भीमरथी और कृष्णवेणी आदि, मलय से कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि, महेन्द्र से त्रिसामा और आर्यकुल्या आदि, तथा सूक्तिमान् पर्वत से ऋषिकुल्या और कुमारी आदि नदियाँ निकली हैं[5]। इन नदियों के किनारों पर मध्यदेश को आदि लेकर कुरु और पांचाल, पूर्व देश को आदि लेकर काम-रूप, दक्षिण को आदि लेकर पुण्ड्र, कलिंग और मगध, पश्चिम को आदि लेकर सौराष्ट्र, सूर, आभीर और अर्बुद, तथा उत्तर देश को आदि लेकर मालव, कोसल, सौवीर, सैन्धव, हूण, शाल्व और पारसीकों को आदि लेकर भाद्र, आराम और अम्बष्ठ देशवासी रहते हैं[6]।

उपर्युक्त सप्त क्षेत्रों में से केवल भारतवर्ष में ही कृत, त्रेता, द्वापर, और कलि नामक चार युगों से काल परिवर्तन होता है। किम्पुरुषादिक शेष क्षेत्रों में काल परिवर्तन नहीं होता है। उन आठ क्षेत्रों में रहने वाली प्रजा को शोक, परिश्रम, उद्वेग और क्षुधा आदि की बाधा नहीं होती है। वहाँ के लोग सदा स्वस्थ एवं आतंक और दुःख से विमुक्त रहते हैं। वे सदा जरा और मृत्यु से निर्भय रहकर आनन्द का उपभोग करते हैं। इसलिए वहाँ पर भोगभूमि कही गयी है। वहाँ पर पुण्य-पाप, और ऊँच-नीच आदि का भी भेद नहीं है। उन क्षेत्रों में स्वर्ग-मुक्ति की प्राप्ति के कारणभूत व्रत-तपश्चर्या आदि का भी अभाव है, केवल भारतवर्ष के ही लोगों में व्रत-तपश्चरणादि के द्वारा स्वर्ग-मोक्षादिक की प्राप्ति संभव है। इसलिए यह सर्व क्षेत्रों में श्रेष्ठ माना गया है। यहाँ के लोग असि, मषि, आदि कर्मों के द्वारा अपनी आजीविका का उपार्जन करते हैं। इसलिए यहाँ की भूमि को कर्मभूमि कहा गया है[7]।

जम्बूद्वीप को सर्व ओर से घेरकर लवण-समुद्र अवस्थित है। यह १ लाख योजन विस्तृत है[8]। लवण-समुद्र को घेरकर दो लाख योजन विस्तार वाला प्लक्षद्वीप है। इसके भीतर गोमेध, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक और सुमना नामक ६ पर्वत हैं। इनसे विभाजित होकर शान्तहय, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक, और ध्रुव नामक सात वर्ष अवस्थित हैं। इन वर्षों और पर्वतों के ऊपर देव और गन्धर्व रहते हैं, वे आधि-व्याधि से रहित और अतिशय पुण्यवान हैं। वहाँ युगों का परिवर्तन नहीं है। केवल सदा काल त्रेतायुग जैसा समय रहता है। उनमें चातुर्वर्ण-व्यवस्था है और वे अहिंसा-सत्यादि पाँच धर्मों का पालन करते हैं। इस द्वीप में १ प्लक्ष वृक्ष है, इस कारण यह द्वीप प्लक्ष नाम से प्रसिद्ध है।[9]

प्लक्षद्वीप को चारों ओर से घेरकर इक्षुरसोद समुद्र-अवस्थित है, जो प्लक्षद्वीप के समान ही विस्तार वाला है। इसे चारों ओर से घेरकर चार लाख योजन विस्तार वाला शाल्मलद्वीप है। इसी क्रम से आगे सुरोद समुद्र, कुशद्वीप, घृतोद समुद्र, क्रौंचद्वीप,

---

१. विष्णु-पुराण द्वितीयांश द्वितीय अ० श्लोक १०-१५ मार्कण्डेय-पुराण अ० ५४ श्लोक ८-१४
२. विष्णु-पुराण ,, ,, १६ मार्कण्डेय-पुराण अ० ५४ श्लोक १४-१६
३. विष्णु-पुराण ,, ,, १७-१९ मार्कण्डेय-पुराण अ० ५४ श्लोक ९
४. विष्णु-पुराण ,, ,, १६ मार्कण्डेय-पुराण अ० ५४ श्लोक १४-१६
५. विष्णु-पुराण, द्वितीयांश, द्वितीय अ०, श्लोक १६ मार्क० पु० अ० ५५ श्लोक १४-१६, २०-२४
६. ,, ,, ,, ,, ,, २५-२७ ७. वि० पु० द्वि० अ० मा० अ० श्लोक १९-२२
८. ,, ,, ,, तृतीय ,, ,, २८ ९. ,, ,, ५० अ० ,, १-१२

दधिरसोद समुद्र, शाकद्वीप और क्षीरसमुद्र अवस्थित हैं। ये सभी द्वीप अपने पूर्ववर्ती द्वीप की अपेक्षा दूने विस्तार वाले हैं और समुद्रों का विस्तार अपने-अपने द्वीप के समान है। इन द्वीपों की रचना प्लक्षद्वीप के समान है[1]।

क्षीरसमुद्र को घेरकर सातवाँ पुष्कर-द्वीप अवस्थित है। इसके ठीक मध्य-भाग में गोलाकार वाला मानसोत्तर पर्वत है। इसके बाहरी भाग का नाम महावीर-वर्ष और भीतरी भाग का नाम धातकी वर्ष है। इस द्वीप में रहने वाले लोग भी रोग-शोक, एवं राग-द्वेष से रहित होते हैं। वहाँ न ऊँच नीच का भेद है, और न वर्णाश्रम व्यवस्था ही है। इस पुष्कर द्वीप में नदियाँ और पर्वत भी नहीं हैं[2]।

इस द्वीप को सर्व ओर से घेरकर मधुरोदक समुद्र अवस्थित है। इससे आगे प्राणियों का निवास नहीं है। मधुरोदक समुद्र से आगे उससे दूने विस्तार वाली स्वर्णमयी भूमि है। उसके आगे १० हजार योजन विस्तृत और इतना ही ऊँचा, लोकालोक पर्वत है। उसको चारों ओर से वेष्टित करके तमस्तम स्थित है। इस अण्डकटाह के साथ उपर्युक्त द्वीप-समूहों वाला यह समस्त भूमण्डल ५० करोड़ योजन विस्तार वाला है और इसकी ऊँचाई ७० हजार योजन है[3]।

इस भूमण्डल के नीचे दस-दस हजार योजन के ७ पाताल हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत, महातल, सूतल, और पाताल। ये क्रमशः शुक्ल, कृष्ण, अरुण, पीत, शर्करा, शैल और काञ्चन स्वरूप हैं। यहाँ उत्तम भवनों से युक्त भूमियाँ हैं और यहाँ दानव, दैत्य, यक्ष, एवं नाग आदि निवास करते हैं[4]।

पातालों के नीचे विष्णु भगवान का शेष नामक तामस शरीर स्थित है जो अनन्त कहलाता है। यह शरीर सहस्र-फणों से संयुक्त होकर समस्त भूमण्डल को धारण करके पाताल-मूल में अवस्थित है। कल्पान्त के समय इसके मुख से निकली हुई संकर्पात्मक; रुद्र विषाग्नि-शिखा तीनों लोकों का भक्षण करती है[5]।

२—नरक-लोक

पृथ्वी और जल के नीचे रौरव, सूकर, रौध, ताल, विशासन महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विलोहित, रुधिर, वैतरणी, कृमीश, कृमि-भोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, अलाभक्ष, दारुण, पूयवह, वन्हि-ज्वाल अधःशिरा, सँदेस, कालसूत्र, तम, आवीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ण और अग्रवि, इत्यादि नाम वाले अनेक महान भयानक नरक हैं। इनमें पापी जीव मरकर जन्म लेते हैं[6]। वे वहाँ से निकल कर क्रमशः स्थावर कृमि, जलचर, मनुष्य और देव आदि होते हैं। जितने जीव स्वर्ग में हैं उतने ही जीव नरकों में भी रहते हैं।[7]

३—ज्योतिर्लोक

भूमि से १ लाख योजन दूरी पर सौर-मण्डल है। इससे १लाख योजन ऊपर चन्द्रमण्डल, इससे १ लाख योजन ऊपर नक्षत्र-मण्डल, इससे २ लाख योजन ऊपर बुध, इससे २ लाख योजन ऊपर शुक्र, इससे २ लाख योजन ऊपर मंगल, इससे २ लाख योजन ऊपर वृहस्पति, इससे २ लाख योजन ऊपर शनि, इससे १ लाख योजन ऊपर सप्तर्पिमण्डल तथा इससे १ लाख योजन ऊपर ध्रुवतारा स्थित है[8]।

४—महर्लोक (स्वर्गलोक)

ध्रुव से १ करोड़ योजन ऊपर जाकर महर्लोक है, यहाँ कल्प काल तक जीवित रहने वाले कल्पवासियों का निवास है। इससे २ करोड़ योजन ऊपर जनलोक है यहाँ नन्दनादि से सहित ब्रह्माजी के प्रसिद्ध पुत्र रहते हैं। इससे ८ करोड़ योजन ऊपर तपलोक है। यहाँ वैराज देव निवास करते हैं। इससे १२ करोड़ योजन ऊपर सत्यलोक है, यहां कभी न मरने वाले अमर (अपुनमरिक) रहते हैं। इसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं। भूमि (भूलोक) और सूर्य के मध्य में सिद्धजनों और मुनिजनों में सेवित स्थान भुवर्लोक कहलाता है। सूर्य और ध्रुव के मध्य चौदह लाख योजन प्रमाण क्षेत्र स्वर्लोक नाम से प्रसिद्ध है।[9]

भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक, ये तीनों लोक कृतक, तथा जनलोक, तपलोक और सत्यलोक, ये तीन लोक अकृतक है। इन दोनों लोकों के बीच मे महर्लोक है। यह कल्पांत मे जन-शून्य हो जाता है, किन्तु सर्वथा नष्ट नहीं होता।[10]

---

१. विष्णु पुराण द्वितीय अंश चतुर्थ अध्याय, श्लोक २०-७२
२ विष्णु पुराण द्वितीय अंश चतुर्थ अध्याय श्लोक ७३-८०
३. विष्णु पुराण द्वितीय अंश चतुर्थ अध्याय. श्लोक ९३-९६
४. " " पंचम् " " २-४ १३ १५-१९-२०।
५. " " पंचम " " १—६
६. " " पष्ठम् " " २—६
७. " " पष्ठम् " ३४
८. " " सप्तम् " "
९. विष्णु-पुराण द्वितीयांश पष्ठम् अध्याय श्लोक १२—१८ १९—२०
१०. " " पष्ठम् " "

५—तुलना और समीक्षा

विष्णु-पुराण के आधार पर जो लोक स्थिति या भूगोल का वर्णन किया है उसका हम जैनसम्मत लोक के वर्णन से मिलान करते हैं तो अनेक तथ्य सामने आते हैं। जिनका दोनों मान्यताओं के नाम निर्देश के साथ यहाँ उल्लेख किया जाता है—

द्वीप

जैन मान्यता		वैदिक मान्यता	
१. द्वीप, समुद्र	असंख्यात	द्वीप, समुद्र	७ द्वीप
२. प्रथम द्वीप	जम्बूद्वीप	प्रथम द्वीप	जम्बूद्वीप
३. कुशक	पन्द्रहवाँ द्वीप[1]	कुश	चौथा द्वीप
४. क्रौंच	सोलहवाँ द्वीप[2]	क्रौंच	पाँचवा द्वीप
५. पुष्कर	तीसरा द्वीप	पुष्कर	सातवाँ द्वीप

समुद्र

१. लवणोद	प्रथम समुद्र	लवणोद	प्रथम समुद्र
२. वारुणी रस	चौथा समुद्र	मदिरा रस	तीसरा "
३. क्षीर सागर	पाँचवा "	दूधरस	छठा "
४. घृतवर	छठा "	मधुर रस	सातवां "
५. इक्षुरस	सातवाँ "	इक्षुरस	दूसरा "

क्षेत्र

१. भारतवर्ष	१. भारतवर्ष
२. हैमवत	२. किम्पुरुष
३. हरिवर्ष	३. हरिवर्ष
४. विदेह	४. इलावृत
५. रम्यक	५. रम्यक
६. हैरण्यवत	६. हिरण्मय
७. ऐरावत	७. उत्तर-कुरु

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जैन मान्यतानुसार उत्तर-कुरु विदेह-क्षेत्र का एक भाग है। इलावृत ऐरावत का ही रूपान्तर है। हाँ, दूसरे हैमवत क्षेत्र के स्थान पर किम्पुरुष नाम अवश्य नया है।

६—पर्वत

जैन परम्परा	वैदिक परम्परा
१. हिमवान	१. हिमवान्
२. महाहिमवान	२. हेमकूट
३. निषध	३. निषध
४. नील	४. नील
५. रुक्मी	५. श्वेत
६. शिखरी	६. शृंगी

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि शिखरी एवं शृंगी ये दोनों एकार्थक नाम हैं। पाँचवें रुक्मी पर्वत का वर्ण जैन मान्यतानुसार श्वेत ही माना गया है जो वैदिक मान्यता के श्वेत-पर्वत का ही बोधक है। केवल महाहिमवान के स्थान पर हेमकूट नाम नवीन है।

जैन और वैदिक दोनों ही मान्यताओं के अनुसार मेरु-पर्वत जम्बूद्वीप के मध्य भाग में स्थित है। अन्तर केवल ऊँचाई का का है। वैदिक मान्यता के अनुसार मेरु चौरासी हजार योजन ऊँचा है। जबकि जैनमान्यता इसे १ लाख योजन ऊँचा मानती है।

७—नदियाँ

वैदिक मान्यतानुसार ऊपर जो नदियों के नाम दिये गये हैं वे प्रायः सब आधुनिक नदियों के नाम हैं। जैन मान्यतानुसार जम्बू-द्वीप के सात क्षेत्रों में १४ प्रधान नदियाँ हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—गंगा, सिन्धु, रोहित-रोहितास्या, हरित-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी-नारीकान्ता, स्वर्णकूला-रूप्यकूला, रक्ता-और रक्तोदा। भारतवर्ष आदि क्षेत्रों में क्रमशः उक्त दो नदियाँ बहती हैं। उनमें से पहली नदी पूर्व के समुद्र और दूसरी नदी पश्चिम के समुद्र में जाकर मिलती है। इस प्रकार दोनों ही मान्यताओं वाली नदियों के नामों में कोई समानता नहीं है।

८—नरक—स्थिति

जैन मान्यता के समान ही वैदिक मान्यता में भी अत्यन्त दुःख भोगने वाले नारकी-जीवों का अवस्थान इस धरातल के नीचे माना गया है। दोनों के कुछ नामों में समानता है, और कुछ नामों में विषमता है।

९—ज्योतिर्लोक

जैन मान्यतानुसार सम-भूमितल से सूर्य-चन्द्र आदि की ऊँचाई का जो उल्लेख है उससे वैदिक मान्यता में बहुत भारी अन्तर है। जो दोनों के पूर्व वर्णनों से पाठक भली भाँति जान सकेंगे।

१०—स्वर्गलोक

दोनों ही मान्यताओं के अनुसार स्वर्गलोक की स्थिति ज्योतिर्लोक के ऊपर मानी गई है। वैदिक मान्यता में स्वर्गलोक का नाम महर्लोक दिया गया है तथा वहाँ के निवासियों को जैन मान्यता के समान कल्पवासी कहा गया है। वैदिक मान्यता में स्वर्गलोक की स्थिति सूर्य और ध्रुव के मध्य में चौदह लाख योजन प्रमाण क्षेत्र में है। जबकि जैन मान्यता से यह सुमेरु के ऊपर से लेकर असंख्यात योजन ऊपरी क्षेत्र तक बतलाई गई है।

१-२. तिलोयपण्णत्ती अ०····।

११—कर्मभूमि और भोगभूमि

जिस प्रकार जैनागमों में कर्मभूमि और भोगभूमि का वर्णन आया है उसी प्रकार हिन्दू-पुराणों में भी मिलता है, विष्णु-पुराण के द्वितीयांश के तीसरे अध्याय में कर्मभूमि का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

उत्तरं यत्समुद्रस्यः हिमाद्रेश्च दक्षिणम् ।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥१॥

नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने ! ।
कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च गच्छताम् ॥२॥

अतः सम्प्राप्यतेस्वर्गो मुक्तिमस्मात् प्रायन्ति वै ।
तिर्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा मुने ॥३॥

इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च, मध्यं चान्तश्च गम्यते ।
त खल्वन्यत्र मर्त्यानां, कर्मभूमौ विधीयते ॥४॥

भावार्थ—समुद्र के उत्तर और हिमाद्रि के दक्षिण में भारतवर्ष अवस्थित है। इसका विस्तार नौ हजार योजन विस्तृत है। यह स्वर्ग और मोक्ष जाने वाले पुरुषों की कर्मभूमि है। इसी स्थान से यतः मनुष्य स्वर्ग और मुक्ति प्राप्त करते हैं और यहीं से तिर्यंच और नरक-गति में भी जाते हैं—अतः कर्मभूमि है। इस भारतवर्ष के सिवाय अन्य क्षेत्र में कर्मभूमि नहीं है।

अग्नि-पुराण के एक सौ अठारहवें अध्याय के द्वितीय श्लोक में भी भारतवर्ष को कर्मभूमि कहा गया है। यथा—

कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च गच्छताम् ।

विष्णु-पुराण के अन्त में कर्मभूमि का उपसंहार करते हुए लिखा है– कि भारतवर्ष में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं तथा वे क्रमशः पूजन-पाठ, आयुध-धारण, वाणिज्य-कर्म और सेवादि कार्य करते हैं। यथा—

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्याऽऽयुध्वाणिज्याद्यं वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥६॥

इस अध्याय का उपसंहार करते हुए कहा गया है कि भारतवर्ष के सिवाय अन्य सब क्षेत्रों में भोगभूमि है। यथा—

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ।
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः ॥

भावार्थ—इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि यहाँ पर स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त कराने वाली कर्मभूमि है। भारतभूमि के सिवाय अन्य सर्व क्षेत्रकी भूमियाँ तो भोग-भूमियाँ हैं। क्योंकि वहाँ पर रहने वाले जीव सदाकाल विना किसी रोग-शोक वाधा के भोगों का उपभोग करते रहते हैं।

मार्कण्डेय-पुराण के ५५वें अध्याय के श्लोक २०-२१ में भी भोगभूमि और कर्मभूमि का वर्णन मिलता है।

१२—उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल

जैनागमों में काल के परिवर्तन स्वरूप का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि जिस समय मनुष्य की आयु, सम्पत्ति, सुख-समृद्धि एवं भोगोपभोगों की वृद्धि हो उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं और जिस समय उक्त वस्तुओं की हानि या ह्रास हो तो उसे अवसर्पिणीकाल कहते हैं। दोनों प्रकार के कालों का परिवर्तन कर्मभूमि वाली पृथ्वियों में ही होता है—अन्यत्र भोग भूमि वाली पृथ्वियों में नहीं। विष्णुपुराण में भी इसका उल्लेख इस प्रकार से मिलता है—

अवसर्पिणी न तेषां वै नचोत्सर्पिणी द्विज ! ।
नत्वेषाऽस्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु ॥

अर्थात्—हे द्विज ! जम्बूदीपस्थ अन्य सात क्षेत्रों में भारतवर्ष के समान न काल की अवसर्पिणी अवस्था है और न उत्सर्पिणी अवस्था ही।

१३—वर्षधर पर्वतों पर सरोवर

जैन मान्यता के समान मार्कण्डेय पुराण में भी वर्षधर पर्वतों के ऊपर सरोवरों का तथा उनमें कमलों का उल्लेख इस प्रकार है—

एतेषां पर्वतानां तु द्रोण्योऽतीव मनोहराः ।
वनैरमलपानीयैः सरोभिरुपशोभिताः ॥

(अ० ५५ श्लोक १४—१५)

उक्त सरोवरों में कमलों का उल्लेख इस प्रकार है—

तदेतत् पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम् ।

(अ० ५५ श्लोक २०)।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जैन मान्यता के समान ही पुराणकार ने भी पद्म को पार्थिव माना है।

(घ) 'भारतवर्ष' का नामकरण

जम्बूद्वीप के प्रथम वर्ष या क्षेत्र का नाम 'भारतवर्ष' है। इसका यह नाम कैसे पड़ा, इस विषय में जैन मान्यता है कि आदि तीर्थंकर भ० ऋषभदेव के सौ पुत्रों में ज्येष्ठ आदि पुत्र भरत जो कि प्रथम चक्रवर्ती थे, उन्होंने इस क्षेत्र का सर्वप्रथम राज्य-सुख भोगा, इस कारण इस क्षेत्र का नाम 'भारतवर्ष' प्रसिद्ध हुआ। श्रीमदुमास्वामि-रचित तत्त्वार्थ-सूत्र के महान् भाष्यकार श्रीमदकलंक देव ने तीसरे अध्याय के दसवें सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है :—

"भरतक्षत्रिययोगाद्वर्षो भरतः विजयार्धस्य दक्षिणतो जलधेरुत्तरतः गंगा-सिन्ध्वोर्बहुमध्यदेशभागे विनीता नाम नगरी। तस्यामुत्पन्नः सर्व राजलक्षणसम्पन्नो भरतो नामाद्यश्चक्रधरः षट्खण्डाधिपतिः अवसर्पिण्या राज्य विभागकाले तेनादौ भुक्तत्वात्, तद्योगाद् 'भरत' इत्याख्यायते वर्षः।"

हिन्दुओं के प्रसिद्ध मार्कण्डेय-पुराण में भी व्यास महर्षि ने उक्त कथन का ही समर्थन करते हुए तिरेपनवें अध्याय में कहा है—

ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रंशताद्वरः ।
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं, महाप्राव्राज्यमास्थितः ।।४१।।
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः ।
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं, भरताय पिता ददौ ।।४२।।
तस्मात्तु भारतं वर्षं, तस्य नाम्ना महात्मनः ।।४३।।

अर्थात्—ऋषभ से भरत पैदा हुआ, जो उनके सौ पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ था। उसका राज्याभिषेक करके ऋषभ महानुभाव प्रव्रजित होकर पुलहाश्रम चले गये। जम्बूद्वीप का हिम नामक दक्षिण क्षेत्र पिता ने भरत को दिया। इसके कारण उस महात्मा के नाम से यह क्षेत्र 'भारतवर्ष' कहलाने लगा।

इसके अतिरिक्त जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति में 'भरतक्षेत्र' इस नाम के दो कारण और भी प्रतिपादित किये गये हैं—प्रथम इस क्षेत्र के अधिष्ठायक देव का नाम भरत है। दूसरा यह नाम शाश्वत है।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि प्रत्येक उत्सर्पिणी—अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती का नाम भरत ही होता है। इन सब कारणों से यह क्षेत्र भरत नाम से प्रसिद्ध है।

कुछ लोग दुष्यन्त-पुत्र भरत के नाम से इस क्षेत्र का नामकरण हुआ कहते हैं। किन्तु इस भरत का व्यक्तित्व इतना असाधारण नहीं रहा है कि उसके नाम पर इस क्षेत्र की प्रसिद्धि मानी जाय। इसके अतिरिक्त इससे पूर्व इस क्षेत्र का नाम क्या था, यह अब तक किसी भी इतिहास-वेत्ता ने प्रकट नहीं किया है। इसी कारण अब विचारशील इतिहासज्ञों ने इस अभिमत को अस्वीकार कर दिया है।

(ङ) वैज्ञानिकों के मतानुसार आधुनिक विश्व

१—भूमण्डल

जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हैं वह मिट्टी पत्थर का एक नारंगी के समान चपटा गोला है। इसका व्यास लगभग आठ हजार मील ([illegible]--२६·७) और परिधि लगभग पचीस हजार मील ([illegible]—४२) है।

वैज्ञानिकों के मतानुसार आज से करोड़ों वर्ष पूर्व किसी समय यह ज्वालामयी अग्नि का गोला था। यह अग्नि धीरे-धीरे ठण्डी होती गई और अब यद्यपि पृथ्वी का धरातल सर्वत्र ठोस हो चुका है, तथापि अभी इसके गर्भ में अग्नि तीव्रता से जल रही है, जिसके कारण पृथ्वी का धरातल भी कुछ उष्णता लिए हुए है। नीचे की ओर खुदाई करने पर उत्तरोत्तर अधिक उष्णता पाई जाती है। कभी-कभी यही भूगर्भ की ज्वाला कुपित होकर भूकम्प उत्पन्न कर देती है और कभी ज्वालामुखी के रूप में फूट निकलती है, जिससे पर्वत, भूमि, नदी, समुद्र आदि के जल और स्थल भागों में परिवर्तन होता रहता है। इसी अग्नि के ताप से पृथ्वी का [illegible] और शीतलता पाकर नाना प्रकार की धातु-उपधातुओं एवं तरल पदार्थों में परिवर्तित हो गया है जो हमें पत्थर, कोयला, लोहा, सोना, चाँदी आदि, तथा जल और वायु मण्डल के रूप में दिखाई देता है। जल और वायु ही सूर्य के ताप से मेघ आदि का रूप धारण कर लेते हैं। यह वायुमण्डल पृथ्वी के धरातल से उत्तरोत्तर विरल होते हुए लगभग ४०० मील तक फैला हुआ अनुमान किया जाता है। पृथ्वी का धरातल भी सर्वत्र समान नहीं है। पृथ्वीतल का उच्चतम भाग हिमालय का गौरीशंकर शिखर (माउण्ट एवरेस्ट) माना जाता है, जो समुद्र तल से उनतीस हजार फुट, अर्थात् लगभग साढ़े पाँच मील ऊँचा है। समुद्र की अधिकतम गहराई ३५,४०० फुट अर्थात् लगभग छह मील तक नापी जा चुकी है। इस प्रकार पृथ्वी तल की ऊँचाई-नीचाई में साढ़े ग्यारह मील का अन्तर पाया जाता है।

पृथ्वी की ठंडी होकर जमी हुई पपड़ी [illegible] मील समझी जाती है। इसकी स्तर-रचना के अध्ययन से अनुमान लगाया

गया है कि उसे जमे हुए अरबों खरबों वर्ष हो गये हैं। सजीव तत्व के चिह्न केवल चौंतीस मील की ऊपरी परत में पाये जाते हैं। जिससे अनुमान लगाया गया है कि पृथ्वी पर जीव-तत्त्व उत्पन्न हुए दो करोड़ वर्ष से अधिक समय नहीं हुआ है। इसमें भी मनुष्य के विकास के चिह्न केवल एक करोड़ वर्ष के भीतर ही अनुमान किये जाते हैं।

पृथ्वी तल के ठंडे हो जाने के पश्चात् उस पर आधुनिक जीव-शास्त्र के अनुसार जीवन का विकास इस क्रम से हुआ—सर्वप्रथम स्थिर जल के ऊपर जीव-कोश प्रकट हुए, जो पाषाणादि जड़ पदार्थों से मुख्यतया तीन बातों मे भिन्न थे। एक तो वे आहार ग्रहण करते और बढ़ते थे। दूसरे वे इधर-उधर चल भी सकते थे। और तीसरे वे अपने ही तुल्य अन्य कोश भी उत्पन्न कर सकते थे। काल-क्रम से इनमें से कुछ कोश भूमि में जड़ जमाकर स्थावरकाय वनस्पति वन गये, और कुछ जल में ही विकसित होते-होते मत्स्य वन गये। क्रमशः धीरे-धीरे ऐसे वनस्पति और मेंढक आदि प्राणी उत्पन्न हुए, जो जल में ही नहीं, किन्तु स्थल पर भी श्वासोच्छ्वास ग्रहण कर सकते थे। इन्हीं स्थल प्राणियों में से उदर के वल रेंगकर चलने वाले केंचुआ सांप आदि प्राणी उत्पन्न हुए। इनका विकास दो दिशाओं में हुआ—एक पक्षी के रूप में और दूसरे स्तनधारी प्राणी के रूप में। स्तनधारी प्राणी की यह विशेषता है कि वे अण्डे से उत्पन्न न होकर गर्भ से उत्पन्न होते हैं और पक्षी अण्डे से उत्पन्न होते हैं। मगर से लेकर भेड़, वकरी, गाय, भैंस, घोड़ा आदि सव इसी स्तनधारी जाति के प्राणी हैं। इन्हीं स्तनधारी प्राणियों की एक वानर जाति उत्पन्न हुई। किसी समय कुछ वानरों ने अपने अगले दो पैर उठाकर पीछे के दो पैरों पर चलना-फिरना सीख लिया। बस, यहीं से मनुष्य जाति का विकास प्रारम्भ हुआ माना जाता है। उक्त जीवकोश से लगाकर मनुष्य के विकास तक प्रत्येक नयी धारा उत्पन्न होने में लाखों करोड़ों वर्ष का अन्तर माना जाता है।

इस विकास-क्रम में समय-समय पर तात्कालिक परिस्थितियों के अनुसार नाना प्रकार की जीव-जातियाँ उत्पन्न हुई। उनमें से अनेक जातियाँ समय के परिवर्तन, विप्लव और अपनी अयोग्यता के कारण विनष्ट हो गईं, जिनका पता हमें भूगर्भ में उनके निखातकों द्वारा मिलता है।

पृथ्वी-तल पर भूमि से जल का विस्तार लगभग तिगुना है। (थल २९% जल ७१%)। जल के विभागानुसार पृथ्वी के पांच प्रमुख खण्ड पाये जाते हैं—एशिया, यूरोप और अफ्रीका मिलकर एक, उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका मिलकर दूसरा, आस्ट्रेलिया तीसरा, उत्तरी ध्रुव चौथा, पांचवां दक्षिणी ध्रुव। इनके अतिरिक्त अनेक छोटे-मोटे द्वीप भी हैं। यह भी अनुमान किया जाता है कि सुदूर पूर्व में सम्भवतः ये प्रमुख भूमि-भाग परस्पर जुड़े हुए थे। उत्तरी दक्षिणी अमेरिका की पूर्वी समुद्र तटीय रेखा ऐसी दिखाई देती है कि वह यूरोप-अफ्रीका की पश्चिमी समुद्र-तटीय रेखा के साथ मिलकर ठीक बैठ सकती है। तथा हिन्द-महासागर के अनेक द्वीप समूह की शृंखला एशिया खण्ड को आस्ट्रेलिया के साथ जोड़ती हुई दिखाई देती है। वर्तमान में नहरें खोदकर अफ्रीका का एशिया-यूरोप भूमि खण्ड से, तथा उत्तरी अमेरिका का दक्षिणी अमेरिका से भूमि-सम्बन्ध तोड़ दिया गया है। इन भूमि-खण्डों का आकार, परिमाण और स्थिति परस्पर अत्यन्त विषम है।

भारतवर्ष एशिया-खण्ड का दक्षिणी-पूर्वी भाग है। यह त्रिकोणाकार है। दक्षिणी कोण लंका द्वीप को प्रायः स्पर्श करता है। वहां से भारतवर्ष की सीमा उत्तर की ओर पूर्व-पश्चिम दिशाओं में फैलती हुई चली गई है और हिमालय पर्वत की श्रेणियों पर पर जाकर समाप्त होती है। भारत का पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिणी विस्तार लगभग दो-दो हजार मील का है। इसकी उत्तरी सीमा पर हिमालय पर्वत है। मध्य में विन्ध्य और सतपुड़ा की पर्वतमालाएँ हैं। तथा दक्षिण के पूर्वी और पश्चिमी समुद्र-तटों पर पूर्वी-घाट और पश्चिमी-घाट नाम वाली पर्वत-श्रेणियाँ फैली हुई हैं।

भारतवर्ष की प्रमुख नदियों में हिमालय के प्रायः मध्य भाग से निकलकर पूर्व की ओर समुद्र में गिरनेवाली ब्रह्मपुत्र और गंगा है। इनकी सहायक नदियों में जमुना, चम्बल, वेतवा और सोन आदि हैं। हिमालय से निकलकर पश्चिम की ओर समुद्र में गिरने वाली सिन्धु और उसकी सहायक नदियां झेलम, चिनाव, रावी, व्यास और सतलज हैं। गंगा और सिन्धु की लम्बाई लगभग पन्द्रह सौ मील की है। देश के मध्य में विन्ध्य और सतपुड़ा के बीच पूर्व से पश्चिम की ओर समुद्र तक बहने वाली नर्मदा नदी है। सतपुड़ा के दक्षिण में ताप्ती नदी है। दक्षिण भारत की प्रमुख नदियां गोदावरी, कृष्णा, कावेरी पश्चिम से पूर्व की ओर बहती हैं।

देश के उत्तर में सिन्धु से गंगा के कछार तक प्रायः आर्य जाति के, तथा सतपुड़ा से सुदूर दक्षिण में द्रविड़ जाति के, एवं पहाड़ी प्रदेशों में गोंड, भील, कोल और किरात आदि आदिवासी जन-जातियों के लोग रहते हैं।

वर्तमान में उपलब्ध इस आठ हजार मील विस्तृत और पच्चीस हजार मील परिधि वाले भू-मण्डल के चारों ओर अनन्त आकाश है, जिसमें हमें दिन को सूर्य और रात्रि को चन्द्रमा एवं

ताराओं के दर्शन होते हैं और उनसे प्रकाश मिलता है। इनमें पृथ्वी के सबसे अधिक समीप चन्द्रमा है, जो इस भूमण्डल से लगभग अढाई लाख मील दूर है। यह पृथ्वी के समान ही एक भूमण्डल है जो पृथ्वी से बहुत छोटा है और उसी के चारों ओर घूमा करता है, जिससे हमारे यहां शुक्ल और कृष्ण पक्ष होते हैं। चन्द्रमा में स्वयं प्रकाश नहीं है, किन्तु वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है, इसलिए अपने परिभ्रमण के अनुसार घटता-बढ़ता दिखाई देता है। अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि चन्द्रमा बिल्कुल ठंडा हो गया है और पृथ्वी के गर्भ के समान अब उसमें अग्नि नहीं है। उसके आस-पास वायुमण्डल भी नहीं है और न उसके धरातल पर जल ही है। इन्हीं कारणों से वहां श्वासोच्छ्वास-प्रधान प्राणी और वनस्पति उपलब्ध नहीं हैं। वहां पर्वत तथा कन्दराओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अनुमान किया जाता है कि चन्द्रमा पृथ्वी का ही एक भाग है, जिसे टूटकर अलग हुए पांच-छह करोड़ वर्ष हुए हैं।

२—चन्द्र का क्षेत्रफल आदि

आज के वैज्ञानिकों ने चन्द्र के विषय में जो तथ्य संकलित किये हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:—

चन्द्र व्यास—२१६० मील, या ३४५६ किलोमीटर, पृथ्वी का चतुर्थ भाग

चन्द्र की परिधि—१०८६४ किलोमीटर,

चन्द्र की पृथ्वी से दूरी—३८११७१ किलोमीटर,

चन्द्र का तापमान—११७ सेन्टीग्रेड, जब सूर्य सिर के ऊपर हो,

चन्द्र का रात में तापमान—१३७ सेटीग्रेड

चन्द्र सतह में गुरुत्वाकर्षण—पृथ्वी का छठा अंश

पृथ्वी पर जिस वस्तु का वजन २७ किलो है, उसका चांद पर ४·५ किलो है। चन्द्रविस्तार या बिम्ब पृथ्वी का १०० वां अंश है, और उसका आयतन पृथ्वी के आयतन का ५वां भाग है।

चन्द्रमा की गति ३६६९ किलोमीटर प्रति घण्टा है। चन्द्र को पृथ्वी की एक परिक्रमा करने २७ दिन ७ घण्टे और ४३ मिनट लगते हैं, क्योंकि वह लगभग इसी गति से अपनी धुरी पर घूमता है।

चन्द्रमा से परे क्रमशः शुक्र, बुध, मंगल, बृहस्पति और शनि आदि ग्रह हैं। ये सब पृथ्वी के समान ही भूमण्डल वाले हैं और सूर्य की परिक्रमा किया करते हैं, तथा सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। इन ग्रहों में से किसी में भी हमारी पृथ्वी के समान जीवों की संभावना नहीं मानी जाती है, क्योंकि वहाँ की परिस्थितियां जीवन के साधनों से सर्वथा प्रतिकूल हैं।

इन ग्रहों से पृथ्वी से लगभग साढ़े नौ करोड़ मील की दूरी पर सूर्य-मण्डल है, जो पृथ्वी से लगभग पन्द्रह लाख गुना बड़ा है, अर्थात् पृथ्वी के समान लगभग पन्द्रह लाख भूमण्डल उसके गर्भ में समा सकते हैं। सूर्य का व्यास ८६०००० मील है। यह महाकाय सूर्य-मण्डल अग्नि से प्रज्वलित है और उसकी ज्वाला लाखों मील तक उठती हैं। सूर्य की ज्वाला से करोड़ों मील विस्तृत सौर-मण्डल भर में प्रकाश और उष्णता फैलती है। सूर्य के धरातल पर १०००० फारेनहीट गर्मी है। जेम्स जीन्स वैज्ञानिक का मत है कि इसी सूर्य की विच्छिन्नता से पृथ्वी, बुध, बृहस्पति आदि ग्रह और उनके उपग्रह बने हैं, जो सब अभी तक उसके आकर्षण से निबद्ध होकर उसी के आस-पास घूम रहे हैं। हमारा भूमण्डल सूर्य की परिक्रमा ३६५¼ दिन में तथा प्रति चौथे वर्ष ३६६ दिन में पूरी करता है और इसी के आधार पर हमारा वर्ष-मान अवलम्बित है। इसी परिभ्रमण में पृथ्वी निरन्तर अपनी कीली पर ६० हजार मील प्रति घण्टे के हिसाब से घूमा करती है, जिसके कारण हमारे यहां दिन और रात्रि हुआ करते हैं। पृथ्वी का जो गोलार्ध सूर्य के सम्मुख पड़ता है, वहाँ दिन और शेष गोलार्ध में रात्रि होती है। वैज्ञानिकों का यह भी मत है कि ये पृथ्वी आदि ग्रह और उपग्रह पुनः सूर्य की ओर आकृष्ट हो रहे हैं।

ऊपर जिस महाकाय सूर्य-मण्डल का उल्लेख किया गया है उसकी बराबरी का अन्य कोई भी ज्योतिर्मण्डल आकाश में दिखाई नहीं देता। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उन अति लघु दिखाई देने वाले तारों में सूर्य के समान कोई एक भी नहीं है। वस्तुतः हमें जिन तारों का दर्शन होता है, उनमें सूर्य से छोटे एवं सूर्य की बराबरी वाले तारे तो बहुत थोड़े हैं। उनमें अधिकांश तो सूर्य से भी बहुत विशाल हैं, तथा उससे सैकड़ों, हजारों, लाखों गुने बड़े हैं। किन्तु उनके छोटे दिखाई देने का कारण यह है कि वे हम से सूर्य की अपेक्षा बहुत अधिक दूरी पर हैं। ज्येष्ठा नक्षत्र इतना विशाल है कि उसमें ७००,००,००,००,००,००० पृथिवियाँ समा जायें।

३—प्रकाशवर्ष

तारों की दूरी समझने के लिए हमारे संख्या-वाचक शब्द काम नहीं देते। उनकी गणना के लिए वैज्ञानिकों की दूसरी ही विधि है। प्रकाश की गति प्रति सेकिण्ड एक लाख छयासी हजार

(१८६०००) मील, तथा प्रति मिनिट एक करोड़ ग्यारह लाख साठ हजार (१११६००००) मील मापी गई है। इस प्रमाण से सूर्य का प्रकाश हमारी पृथ्वी तक आने में साढ़े आठ (८½) मिनिट लगते हैं। तारे हमसे इतनी दूर हैं कि उनका प्रकाश हमारे समीप वर्षों में आ पाता है और जितने वर्षों में वह आता है उतने ही प्रकाश-वर्ष की दूरी पर वह तारा कहा जाता है। सेन्चुरी नामक अति निकटवर्ती तारा हमसे साढ़े चार प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है क्योंकि उसके प्रकाश को हमारे पास तक आने में साढ़े चार प्रकाश-वर्ष लगते हैं। इस प्रकार दस, बीस, पचास एवं सैकड़ों प्रकाश-वर्षों की दूरी के ही नहीं, किन्तु ऐसे-ऐसे तारों का ज्ञान हो चुका है जिनकी दूरी दस लाख प्रकाश-वर्ष की मापी गई है तथा जो परिमाण में इस पृथ्वी से तो क्या, हमारे सूर्य से भी लाखों गुने बड़े हैं।

ताराओं की संख्या का पार नहीं है। हमें अपनी दृष्टि से तो अधिक से अधिक छठे प्रमाण तक के लगभग छह-सात हजार तारे ही दिखाई देते हैं। किन्तु दूर-दर्शक यन्त्रों की जितनी शक्ति बढ़ती जाती है, उतने ही अधिकाधिक तारे दिखाई देते हैं। अभी तक बीसवें प्रमाण तक के तारों को देखने योग्य यन्त्र बन चुके हैं; जिनके द्वारा दो अरब से भी अधिक तारे देखे जा चुके हैं। जिनकी तालिका आगे दी जाती है।

४—वैज्ञानिकों के अनुसार तारों की संख्या

आज के वैज्ञानिकों ने प्रकाश की हीनाधिकता के अनुसार तारों को कई वर्गों में बाँटा है। पहिले, दूसरे और तीसरे वर्ग के तारे अधिक चमकीले हैं, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। आठवें वर्ग तक के तारों को आँखों से देखा और गिना जा सकता है, किन्तु इससे आगे के वर्गों के तारों को दूरबीन की सहायता से ही देखा और गिना गया है।

वैज्ञानिकों के द्वारा २० वर्गों में विभक्त तारों की संख्या इस प्रकार है :—

वर्ग	संख्या	वर्ग	संख्या
१	१९	९	११७०००
२	६५	१०	३२४०००
३	२००	११	८७०००
४	५३०	१२	२२,७०,०००
५	१६२०	१३	५७,००,०००
६	४८५०	१४	१,३८,००,०००
७	१४३००	१५	३,२०,००,०००
८	४१०००	१६	७,१०,००,०००
१७	१,५०,००,०००	१९	५६,००,००,०००
१८	२९,६०,००,०००	२०	१,००,००,००,००० (एक अरब)

जेम्स जीन्स सदृश वैज्ञानिक ज्योतिषी का मत है कि तारों की संख्या हमारी पृथ्वी के समस्त समुद्र-तटों की रेत के कणों के बराबर हो तो आश्चर्य नहीं है। ये असंख्य तारे एक दूसरे से कितने दूर-दूर हैं, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सूर्य से अति निकटवर्ती तारा साढ़े चार प्रकाश-वर्ष अर्थात् अरबों-खरबों मील की दूरी पर है। ये सब तारे बड़े वेग से गतिशील हैं और उनका प्रवाह दो भिन्न दिशाओं में पाया जाता है।

५—नीहारिका

बिखरी वाष्प की शकल में जो अनेक तारों का समूह पाया जाता है, उन्हें नीहारिका कहते हैं। बिना दूरबीन के हम अपनी आँखों से एकाध ही नीहारिका देख सकते हैं और वह भी देखने में तारों जैसी ही मालूम होती है। दूरबीन से देखने पर उनमें कुछ गोल दिखाई देती हैं और कुछ की आकृति शंख के चक्कर की भांति है। गोल नीहारिकाएँ हमारे स्थानीय विश्व या आकाश-गंगा के तारागुच्छ हैं। चक्करदार नीहारिकाएँ महान विश्व से छोटी, किन्तु करोड़ों तारा गुच्छकों से मिलकर बने छोटे विश्व हैं। यद्यपि विशेष विवरण के साथ जाँच-पड़ताल की गई नीहारिकाएँ सौ से भी कम हैं, किन्तु दूरबीन से बीस लाख के करीब चक्करदार नीहारिकाओं के अस्तित्व का पता चला है। आकाश-गंगा भी इसी श्रेणी का एक द्वीप-विश्व है। हमारी पृथ्वी न बृहस्पति की भांति विशाल और न शुक्र की भांति छोटा ग्रह है। सूर्य भी मध्यम आकार का एक ग्रह है। किन्तु आकाश-गंगा अपनी श्रेणी के द्वीप-विश्वों से बहुत बड़ी है। आकाश-गंगा भी एक मध्यम आकार की नीहारिका है, जिसकी मात्रा एक अरब सूर्यों से भी ज्यादा है। सूर्य हमारी पृथ्वी से तीन लाख तेरह हजार गुना बड़ा है।

६—आकाश गंगा

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि आकाश गंगा क्या वस्तु है? रात को आकाश में एक सफेद बालुका पथ या गंगा जैसी सफेद चौड़ी धारा दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर लम्बे आकार में दिखाई देती है, इसे ही आकाश-गंगा कहते हैं। आकाश-गंगा स्वयं तारों का एक समूह है। इसमें सूर्य जैसे दो अरब के करीब तारे हैं। इसकी आकृति अण्डाकार जेबी घड़ी या दो जुड़े गोल तवों की भांति बीच में मोटी और किनारे पर पतली है। इसका व्यास ३ लाख प्रकाश-वर्ष और मोटाई १० हजार प्रकाश-वर्ष है।

७—ग्रह

ज्योतिर्मण्डल में ग्रहों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, उनका किंचित् परिचय निम्नलिखित कोष्ठक से ज्ञात हो सकेगा।

ग्रह का नाम	सूर्य से औसत दूरी मीलों में	औसत व्यास मीलों में	परिक्रमा का समय वर्षों में	उपग्रहों की संख्या
१. बुध	३,६०,००,०००	३०३०	०.२२	०
२. शुक्र	६,७२,००,०००	७७००	०.६२	०
३. पृथ्वी	९,२९,००,०००	७९१८	१.००	१
४. मंगल	१४,१५,००,०००	४२३०	१.८८	२
५. बृहस्पति	४८,३२,००,०००	८६५००	११.८६	९
६. शनि	८८,५९,००,०००	७३०००	२९.४६	९
७. अरुण	१,७८,२२,००,०००	३१९००	८४.०२	४
८. वरुण	२,७९,१६,००,०००	३४८००	१६४.७८	१
९. कुबेर	३,७०,००,००,०००	३६०५	२५०.००	अज्ञात

सूर्य तथा उसका ग्रह-कुटुम्ब मिलकर सौर्य-मण्डल कहा जाता है।

८—लोक या ब्रह्माण्ड का आकार

जिसको हम ब्रह्माण्ड कहते हैं, उसमें अनेक सौर्य-मण्डल हैं। ऐसा अनुमान किया जाता कि ऐसे सौर्य-मण्डलों की संख्या लगभग १० करोड़ है। हमारा सौर्य-मण्डल 'ऐरावत पथ' (मिल्की वे) नामक ब्रह्माण्ड में स्थित है। ऐरावत-पथ के चन्द्र रूपी पथ के लगभग २/३ भाग पर एक पीला विन्दु है। यही विन्दु हमारा सूर्य है, जो अपने ग्रहों को साथ लिए ऐरावत पथ पर बराबर घूम रहा है। पूर्व ऐरावत पथ में लगभग ५०० करोड़ तारे विद्यमान हैं। इनमें से बहुतों को हम नहीं देख सकते हैं, क्योंकि वे हमारे सामने से दिन में निकलते हैं, अतः सूर्य के प्रकाश में उनका प्रकाश हमें नहीं दिखाई देता है। तारों के अतिरिक्त ऐरावत-पथ में धुन्ध, गैस और धूल भी अधिक मात्रा में है। रात्रि में अनेक तारागणों का प्रकाश एकत्रित होकर इस गैस और धूल को प्रकाशित कर देता है।

इस प्रकार सारे विश्व या लोक का प्रमाण असंख्य हैं और आकाश का तो कहीं अन्त ही नहीं दिखाई देता है। तारागणों का आकाश में जिस प्रकार वितरण है, तथा आकाश-गंगा में जो तारा-पुञ्ज दिखाई देता है, उस पर से अनुमान लगाया गया है कि तारामण्डल-सहित समस्त लोक का आकार लेन्स के समान है, अर्थात ऊपर नीचे को उभरा हुआ और बीच में फैला हुआ गोल है, जिसकी परिधि पर आकाश गंगा दिखाई देती है और उभरे हुए भाग के मध्य में सूर्य-मण्डल है।

प्रस्तुत प्रस्तावना के लेखन में जिन लेखकों की रचनाओं का उपयोग किया गया है, मैं उन सबका आभारी हूँ साथ ही पं० मुनि श्री कन्हैयालाल जी महाराज 'कमल' का विशेषतः आभार मानता हूँ, जिन्होंने अपने इस महान श्रम-साध्य 'गणितानुयोग'-संकलन की प्रस्तावना लिखने का अवसर प्रदान किया।

—हीरालाल 'सिद्धान्तशास्त्री',
'न्यायतीर्थ'

□□

अनुक्रमणिका

गणितानुयोग

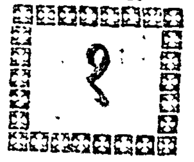
लोक प्रज्ञप्ति पृष्ठ : १-७३६

तिर्यक्लोक

(मध्य लोक)

काल लोक वर्णन—१-६२ ६९१-७३६







लोक - प्रज्ञप्ति

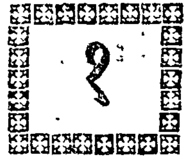


क्षेत्र लोक

अधोलोक वर्णन

[सूत्र १ से २४५, पृष्ठ १ से १२० तक]

☐ द्रव्यलोक का समग्रवर्णन द्रव्यानुयोग में तथा भाव लोक का सम्पूर्ण वर्णन चरणानुयोग में संकलित है। प्रस्तुत में क्षेत्र लोक एवं काल लोक का वर्णन है।





लोक - प्रज्ञप्ति



क्षेत्र लोक

अधोलोक वर्णन

[सूत्र १ से २४५, पृष्ठ १ से १२० तक]

☐ द्रव्यलोक का समग्रवर्णन द्रव्यानुयोग में तथा भाव लोक का सम्पूर्ण वर्णन चरणानुयोग में संकलित है। प्रस्तुत में क्षेत्र लोक एवं काल लोक का वर्णन है।

पंचजोयणसयाइं चक्कवालविक्खंभेणं वट्टे वलयागार-संठाणसंठिए जे णं मंदरं पव्वयं सव्वओ समंता संपरि-क्खित्ताणं चिट्ठइ।

यह पाँच सौ योजन चक्राकार चौड़ा, वर्तुल वलयाकार एवं मेरु पर्वत को चारों ओर से घेरे हुये है ?

चत्तारि जोयणसहस्साइं दुण्णि य बावत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिविक्खंभेणं।

इसके बाहर का गिरि-विष्कंभ $४२७२\frac{८}{११}$ योजन है।

तेरस जोयणसहस्साइं पंच य एक्कारे जोअणसए छच्च इक्कारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिपरिरएणं।

बाह्य गिरि-परिधि $१३५११\frac{६}{११}$ योजन है।

तिण्णि जोअणसहस्साइं दुण्णि अ बावत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोयणस्स अंतो गिरिविक्खंभेणं।

अन्दर का गिरि-विष्कंभ $३२७२\frac{८}{११}$ योजन है।

दस जोअणसहस्साइं तिण्णि य अण्णापण्णे जोअणसए तिण्णि अ इक्कारसभाए जोअणस्स अंतो गिरिपरिरए-णंति।

अन्दर की गिरि-परिधि $१०३४९\frac{३}{११}$ योजन है।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। वण्णओ किण्हे किण्होभासे-जाव-देवा आसयंति।

(सौमनस वन) सब ओर से एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से घिरा हुआ है। यहाँ उनका वर्णन समझ लेना चाहिए। यह कृष्ण और कृष्णावभास है—यावत्—यहाँ देव (क्रीड़ा करते हैं और) बैठते हैं।

एवं कूडवज्जा सच्चेव णंदणवणवत्तव्वया भणियव्वा। तं चेव ओगाहिऊण-जाव-पासायवडेंसगा सक्की-साणाणंति। —जंबु० वक्ख० ४, सु० १०५

इस प्रकार कूटों को छोड़कर शेष वर्णन नन्दनवन के समान कर लेना चाहिए। उतनी ही दूरी पर—यावत्—शक्र और ईशानेन्द्र के प्रासादावतंसक है।

पंडगवणस्स पमाणं—

पंडक वन का प्रमाण—

३७७. प०—कहि णं भंते! मंदरपव्वए पंडगवणे णामं वणे पण्णत्ते?

३७७. प्र०—भगवन्! मेरु पर्वत पर पंडकवन नामक वन कहाँ कहा गया है?

उ०—गोयमा! सोमणसवणस्स बहुसमरमणिज्जाओ भूमि-भागाओ छत्तीसं जोअणसहस्साइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं मंदरे पव्वए सिहरतेले पंडगवणे णामं वणे पण्णत्ते।

उ०—गौतम! सौमनस वन के अति सम एवं रमणीय भूमि-भाग से छत्तीस हजार योजन ऊपर जाने पर मेरु पर्वत पर शिखरतल पर पंडक वन नामक वन कहा गया है।

चत्तारि चउणउए जोयणसए चक्कवालविक्खंभेणं, वट्टे वलयाकार संठाणसंठिए जे णं मंदरचूलिअं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ। तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खे-वेणं। से णं एगाए पउमवरवेइयाए, एगेण य वणसंडेणं -जाव-किण्हे, देवा आसयंति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १०६

यह चार सौ चोरानवें योजन चक्राकार चौड़ा, वर्तुल, वलयाकार एवं मेरुचूलिका को सभी ओर से घेरे हुए स्थित हैं। इसकी परिधि इकतीस सौ बासठ योजन से कुछ अधिक है। यह पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से (सब ओर से घिरा है)—कृष्ण हैं। देव यहाँ बैठते हैं।....

३७८. मंदरचूलियाए णं पुरत्थिमेणं पंडगवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं महं एगे भवणे पण्णत्ते।

३७८. मंदरचूलिका के पूर्व में पण्डगवन में पचास योजन प्रवेश करने पर एक महान् भवन कहा गया है।

एवं जच्चेव सोमणसे पुव्ववणिओ गमो, भवणाणं, पुक्खरिणीणं पासायवडेंसगाणं य सो चेव णेयव्वो जाव सक्कीसाण वडेंसगा तेणं चेव परिमाणेणं ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १०६

इस प्रकार जो वर्णन सौमनसवन के प्रकरण में किया गया है वह सब यहां के भवनों, पुष्करिणियों एवं प्रासादावतंसकों के विषय में समझ लेना चाहिए—यावत्—शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के अवतंसक भी उसी परिमाण के हैं ।

भद्दसालवणे सोडस पुक्खरिणीओ—

भद्रशाल में सोलह पुष्करिणियां—

३७९. मंदरस्स णं पव्वयस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं भद्दसालवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि णंदपुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ तं जहा—१ पउमा, २ पउमप्पभा चेव, ३ कुमुदा ४ कुमुदप्पभा ।

ताओ णं पुक्खरिणीओ पण्णासं जोअणाइं आयामेणं, पणवीसं जोअणाइं विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, वण्णओ । वेइया-वणसंडाणं भाणिअव्वो । चउद्दिसिं तोरणा-जाव-तासि णं पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे ईसाणस्स देवरण्णो पासायवडिसए पण्णत्ते ।

पंच जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खंभेणं, अब्भुग्गयमूसिय, एवं सपरिवारो पासायवडिसओ भाणिअव्वो ।

मंदरस्स णं एवं दाहिणपुरत्थिमेणं पुक्खरिणीओ ?

१ उप्पलगुम्मा, २ णलिणा, ३ उप्पला, ४ उप्पलुज्जला ।
तं चेव पमाणेणं ।

दाहिण-पच्चत्थिमेण वि पुक्खरिणीओ—

गाहा—

१ भिंगा, २ भिंगनिभा चेव, ३ अंजणा, ४ अंजणप्पभा ।
पासायवडिसओ, सक्कस्स सीहासणं सपरिवारं ।

उत्तरपुरत्थिमेणं पुक्खरिणीओ—

गाहा—

१ सिरिकंता, २ सिरिचंदा, ३ सिरिमहिता चेव, ४ सिरिणिलया ।
पासायवडिसओ, ईसाणस्स सीहासणं सपरिवारंति ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १०३

३७९. मेरु पर्वत से उत्तर-पूर्व की ओर भद्रशाल वन में पचास योजन जाने पर चार नन्दा पुष्करिणियाँ (वापिकायें) कही गई हैं, यथा—(१) पद्मा, (२) पद्मप्रभा, (३) कुमुदा, (४) कुमुदप्रभा ।

ये पुष्करिणियाँ पचास योजन लम्बी, पच्चीस योजन चौड़ी एवं दस योजन गहरी हैं । यहाँ इनका वर्णन है । पद्मवरवेदिकाएँ और वनखण्ड का वर्णन यहां कहना चाहिए । इनकी चारों दिशाओं में (चार) तोरण हैं—यावत्—इन पुष्करिणियों के मध्य ईशान-देवेन्द्र देवराज का एक विशाल उत्तम प्रासाद कहा गया है ।

वह पांच सौ योजन ऊँचा, अढ़ाई सौ योजन चौड़ा एवं उन्नत शिखर वाला है । यहां सपरिवार प्रासादावतंसक का वर्णन कर लेना चाहिए ।

इसी प्रकार मेरु से दक्षिण-पूर्व में (चार) पुष्करिणियां हैं—

(१) उत्पलगुल्मा, (२) नलिना, (३) उत्पला और (४) उत्पलोज्ज्वला । इनका प्रमाण भी वही (पूर्वोक्त) है ।

दक्षिण-पश्चिम में भी (चार) पुष्करिणियां हैं ।

गाथार्थ—

(१) भृंगा, (२) भृंगनिभा, (३) अंजना और (४) अंजनप्रभा ।
(इनके मध्य में) प्रासादावतंसक एवं शक्र का सपरिवार सिंहासन है ।

उत्तर-पूर्व में (चार) पुष्करिणियां हैं—

गाथार्थ—

(१) श्रीकान्ता, (२) श्रीचन्द्रा, (३) श्रीमहिता और (४) श्रीनिलया । (इनके मध्य में) प्रासादावतंसक व ईशानेन्द्र का सपरिवार सिंहासन है ।

चत्तारि अभिसेअसिलाओ—

चार अभिषेक शिलाएं—

३८०. प०—पंडगवणे णं भंते ! कइ अभिसेअसिलाओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि अभिसेअसिलाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१ पंडुसिला, २ पंडुकंबलसिला, ३ रत्तसिला, ४ रत्तकंबलसिलेति ।[1]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १०५

३८०. प्र०—भगवन् ! पंडकवन में अभिषेकशिलायें कितनी कही गई हैं ?

उ०—गौतम ! चार अभिषेकशिलायें कही गई हैं, यथा—(१) पाण्डुशिला, (२) पाण्डुकम्बलशिला, (३) रक्तशिला, (४) रक्तकम्बलशिला ।

---

१ जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पंडगवणे चत्तारि अभिसेअसिलाओ पण्णत्ताओ तं जहा—
(१) पंडुकंबलसिला, (२) अइपंडुकंबलसिला, (३) रत्तकंबलसिला, (४) अइरत्तकंबलसिला ।   —ठाणं ४, सु० ३०२

पंडुसिलाए पमाणं—

३८१. प०—कहि णं भंते ! पंडगवणे पंडुसिला णामं सिला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! मंदरचूलिआए पुरत्थिमेणं पंडगवणपुरत्थिम-पेरंते एत्थ णं पंडगवणे पंडुसिला णामं सिला पण्णत्ता।

उत्तर-दाहिणायया, पाईण-पडीणवित्थिन्ना, अद्धचंद-संठाण-संठिया। पंच जोअणसयाइं आयामेणं, अड्ढा-इज्जाइं जोअणसयाइं विक्खंभेणं, चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं, सव्वकणगामई अच्छा-जाव-पडिरूवा।

वेइया-वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता वण्णओ।

तीसे णं पंडुसिलाए चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडि-रूवगा पण्णत्ता-जाव-तोरणा वण्णओ।

तीसे णं पंडुसिलाए उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते-जाव-देवा आसयंति।

तस्सणं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए उत्तर-दाहिणेणं, एत्थ णं दुवे सीहासणा पण्णत्ता, पंच धणुसयाइं आयाम विक्खंभेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं। सीहासणवण्णओ भाणिअव्वो विजयदूस-वज्जोत्ति।

तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ कच्छाइया तित्थयरा अभिसिच्चंति।

तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवणवइ-जाव-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ वच्छाईया तित्थयरा अभिसिच्चंति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १०७

पाण्डुशिला का प्रमाण—

३८१. प्र०—भगवन् ! पंडकवन में पाण्डुशिला नामक शिला कहाँ कही गई है ?

उ०—गौतम ! मंदरचूला से पूर्व में और पंडकवन के पूर्वान्त में पंडकवन में पांडुशिला नामक शिला कही गई है।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बी, पूर्व-पश्चिम में चौड़ी, अर्द्ध-चन्द्राकार, संस्थान वाली, पांच सौ योजन लम्बी, अढाई सौ योजन चौड़ी, चार योजन मोटी, सर्वकनकमयी, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

यह वेदिका तथा वनखण्ड से सब ओर से घिरी हुई है। यहाँ इसका वर्णन कहना चाहिए।

इस पांडुशिला की चारों दिशाओं में चार प्रतिरूप त्रिसोपान (पंक्तियां) कही गई हैं—यावत्—तोरण पर्यन्त सब वर्णन समझ लेना चाहिए।

इस पाण्डुशिला पर अतिसम और रमणीय भूभाग कहा गया है—यावत्—वहाँ देव बैठते हैं।

इस सम और रमणीय भूभाग के बीच में उत्तर-दक्षिण की ओर दो सिंहासन कहे गये हैं। ये पांच सौ धनुष लम्बे-चौड़े और अढ़ाई सौ धनुष मोटे हैं। यहाँ सिंहासन का वर्णन कर लेना चाहिये किन्तु विजयदूष्य का कथन नहीं करना चाहिये।

इनमें से जो उत्तर की ओर का सिंहासन है वहाँ अनेक भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव-देवियां कच्छ आदि (आठ विजयों) के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं।

इनमें जो दक्षिण की ओर का सिंहासन है वहाँ अनेक भवन-पति—यावत्—वैमानिक देव-देवियाँ वत्स आदि (आठ विजयों) के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं।

पंडुकंबलसिलाए पमाणं—

३८२. प०—कहि णं भंते ! पंडगवणे पंडुकंबलसिला णामं सिला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! मंदरचूलिआए दक्खिणेणं, पंडगवणदाहिण-पेरंते, एत्थ णं पंडुकंबलसिलाणामं सिला पण्णत्ता।

पाईण-पडीणायया, उत्तर-दाहिणवित्थिन्ना। एवं तं चेव पमाणं वत्तव्वया य भाणिअव्वा-जाव-तस्स णं बहु-समरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे सीहासणे पण्णत्ते। तं चेव सीहासणप्पमाणं।

पांडुकम्बलशिला का प्रमाण—

३८२. प्र०—भगवन् ! पंडकवन में पाण्डुकम्बल नामक शिला कहाँ कही गई है ?

उ०—गौतम ! मेरु पर्वत के दक्षिण में एवं पण्डक वन के दक्षिणी चरमान्त में पंडकवन में पाण्डुकंबल नामक शिला कही गई है।

यह पूर्व-पश्चिम में लम्बी और उत्तर-दक्षिण में चौड़ी है। इसका सम्पूर्ण प्रमाण पूर्ववत् समझना चाहिए—यावत्—इसके समतल रमणीय भूमिभाग के बीचोंबीच एक विशाल सिंहासन कहा गया है। इस सिंहासन का प्रमाण वही (पूर्वोक्त) है।

तत्थ णं बहूहिं भवणवइ-जाव-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य भारहगा तित्थयरा अहिसिच्चंति ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १०७

यहाँ अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देव-देवियाँ भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।

रत्तसिलाए पमाणं—

३८३. प० कहि णं भंते ! पंडगवणे रत्तसिला णामं सिला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! मंदरचूलिआए पच्चत्थिमेणं, पंडगवण-पच्चत्थिमपेरंते, एत्थ णं पंडगवणे रत्तसिला णामं सिला पण्णत्ता ।

उत्तर-दाहिणायया, पाईण-पडीणविच्छिन्ना-जाव-तं चेव पमाणं, सव्व-तवणिज्जमई, अच्छा-जाव-पडिरूवा । उत्तर-दाहिणेणं एत्थ णं दुवे सीहासणा पण्णत्ता ।

तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवणवइ-जाव-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य पम्हाइआ तित्थयरा अहिसिच्चंति ।

तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवणवइ-जाव-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य वप्पाइआ तित्थयरा अहिसिच्चंति ।

— जंबु० वक्ख० ४, सु० १०७

रक्तशिला का प्रमाण—

३८३. प्र०—भगवन् ! पंडकवन में रक्तशिला नामक शिला कहाँ कही गई है ?

उ०—गौतम ! मेरुपर्वत के पश्चिम में एवं पंडकवन के पश्चिमी चरमान्त में पंडकवन में रक्तशिला नामक शिला कही गई है ।

यह उत्तर-दक्षिण की ओर लम्बी और पूर्व-पश्चिम में चौड़ी है—यावत्—इसका प्रमाण भी वही है । यह सर्वात्मना तपनीय स्वर्णमयी और स्वच्छ है—यावत्—प्रतिरूप है । इसके उत्तर-दक्षिण में दो सिंहासन कहे गये हैं ।

इनमें से जो दक्षिण का सिंहासन है वहाँ अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देव-देवियाँ पद्मादि (आठ विजयों) के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।

इनमें जो उत्तर का सिंहासन है वहाँ अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देव-देवियाँ वप्र आदि (आठ विजयों) के तीर्थंकरों का अभिषेक करते है ।

रत्तकंवलसिलाप्पमाणं—

३८४. प०—कहि णं भंते ! पंडगवणे रत्तकंबलसिला णामं सिला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! मंदरचूलिआए उत्तरेणं, पंडगवणउत्तरचरिमंते एत्थ णं पंडगवणे रत्तकंबलसिला णामं सिला पण्णत्ता ।

पाईण-पडीणायया, उदीण-दाहिणविच्छिन्ना, सव्व तवणिज्जमई, अच्छा-जाव-पडिरूवा । बहुमज्झदेसभाए सीहासणं ।

तत्थ णं बहूहिं भवणवइ-जाव-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य एरावयगा तित्थयरा अहिसिच्चंति ।

— जंबु० वक्ख० ४, सु० १०७

रक्तकंबलशिला का प्रमाण—

३८४. प्र०—भगवन् ! पंडकवन में रक्तकंबल नामक शिला कहाँ कही गई है ?

उ०—गौतम ! मेरुपर्वत के उत्तर में एवं पंडकवन के उत्तरीय चरमान्त में पंडकवन में रक्तकंबलशिला नामक शिला कही गई है ।

यह पूर्व-पश्चिम में लम्बी, उत्तर-दक्षिण में चौड़ी, सर्व-सुवर्णमय एवं स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है । इसके मध्य भाग में सिंहासन है ।

यहाँ अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देव देवियाँ ऐरावत (वर्ष) के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।

नंदणवणस्स चरिमंताणमंतराइं—

३८५. नंदणवणस्स णं उत्तरिल्लाओ चरमंताओ पंडुयवणस्स उत्तरिल्ले चरमंते एस णं अट्ठाणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । —सम. ९८, सु. १

नन्दनवन के चरमान्तों के अन्तर—

३८५. नन्दनवन के उत्तर के चरमान्त से पाण्डुकवन के उत्तर के चरमान्त का अव्यवहित अन्तर अट्ठानवें हजार योजन का कहा गया है ।

३८६. नंदणवणस्स णं पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं नवनउइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।
—सम. ९९, सु. २

३८६. नन्दनवन के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर निन्यानवें सौ योजन का कहा गया है।

३८७. एवं दक्खिणिल्लाओ चरमंताओ उत्तरिल्ले चरमंते एस णं णवणउइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।
—सम. ९९, सु. ३

३८७. इसी प्रकार दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर निन्यानवें सौ योजन का कहा गया है।

३८८. नंदणवणस्स णं हेट्ठिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं पंचासीइजोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। —सम. ८५, सु. ४

३८८. नन्दनवन के नीचे के चरमान्त से सौगंधिक काण्ड के नीचे के चरमान्त का अव्यवहित अन्तर पचासी हजार योजन का कहा गया है।

जंबुद्दीवे चित्त-विचित्तकूडपव्वया—

एगे चित्तकूडे पव्वए—

एगे विचित्तकूडे पव्वए—

जंबूद्वीप में चित्र-विचित्र कूट पर्वत—

एक चित्रकूट पर्वत—

एक विचित्रकूट पर्वत—

३८९. प०—कहि णं भंते! देवकुराए चित्त-विचित्तकूडा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ अट्ठ चोत्तीसे जोयणसए चत्तारि अ सत्तभाए जोयणस्स अबाहाए सीओआए महाणईए पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं उभओ कूले—एत्थ णं चित्त-विचित्तकूडा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता।

एवं जच्चेव, जमगपव्वयाणं सच्चेव।[1]

एएसिं रायहाणीओ दक्खिणेणं ति।[2]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९८

३८९. प्र०—हे भगवन्! देवकुरु में चित्रकूट और विचित्रकूट नाम के दो पर्वत कहाँ कहे गये हैं?

उ०—हे गौतम! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से आठ सौ चोतीस योजन और चार योजन के सात भाग जितने अव्यवहित अन्तर पर शीतोदा महानदी के पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों किनारों पर चित्रकूट और विचित्रकूट नाम के दो पर्वत कहे गये हैं।

जो यमक पर्वतों का प्रमाण है वही प्रमाण इनका है।

इन पर्वतों के अधिपति देवों की राजधानियाँ दक्षिण में हैं।

दो जमगपव्वया—

दो यमक पर्वत—

३९०. प०—कहि णं भंते! उत्तरकुराए जम्मगा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरिमंताओ अट्ठ जोयणसए चोत्तीसे चत्तारि अ सत्तभाए जोयणस्स अबाहाए सीआए महाणईए उभओ कूले—एत्थ णं जमगा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता।[3]

जोअणसहस्सं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उव्वेहेणं।

३९०. प्र०—भगवन्! उत्तरकुरु में यमक नामक दो पर्वत कहाँ हैं?

उ०—गौतम! नीलवन्त नामक वर्षधर पर्वत के दक्षिणी चरमान्त से लेकर आठ सौ चोतीस $834\frac{4}{7}$ योजन के अन्तराल में, शीता महानदी के दोनों तटों पर यमक नामक दो पर्वत हैं।

उनकी ऊँचाई एक हजार योजन की एवं गहराई अढ़ाई सौ योजन की है।

---

१ एवं चित्त-विचित्तकूडा वि भाणियव्वा। —सम. ११३, सु. २
यह संक्षिप्त सूत्र है; विस्तृत पाठ के लिए यमक पर्वतों का टिप्पण नं. २ देखें।

२ एतयोश्चित्र-विचित्रकूटयोः एतदधिपति-चित्रविचित्रदेवयो राजधान्यो दक्षिणेनेति। —जम्बू. वृत्ति

३ "यमकौ-यमलजातौ भ्रातरौ तयोर्यत्संस्थानं तेन संस्थितौ परस्परं सदृशसंस्थानावित्यर्थः, अथवा यमका नाम शकुनिविशेषास्त-त्संस्थानसंस्थितौ—जम्बू. वृत्ति.

मूले एगं जोयणसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं,[1] मज्झे अद्धट्ठमाणि जोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, उवरिं पंच जोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं ।

उनकी लम्बाई-चौड़ाई मूल में एक हजार योजन, मध्य में साढ़े सात सौ योजन और ऊपर पाँच सौ योजन की है ।

मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोयणसयं किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं ।

उनकी परिधि में मूल में इकतीस सौ बासठ ३१६२ योजन से कुछ अधिक है ।

मज्झे दो जोयणसहस्साइं तिण्णि बावत्तरे जोयणसए किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं ।

मध्य में तेवीस सौ बासठ २३६२ योजन से कुछ अधिक ।

उवरिं एगं जोयणसहस्सं पंच य एक्कासीए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं ।

ऊपर पन्द्रह सौ इकासी १५८१ योजन से कुछ अधिक है ।

मूले विच्छिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुआ, जमग संठाणसंठिया, सव्वकणगामया, अच्छा सण्हा ।

वे मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतले हैं । वे यमकों (एक साथ उत्पन्न दो भाइयों) की आकृति के समान हैं अर्थात् दोनों का आकार एक समान है । सर्व कनकमय, स्वच्छ एवं चिकने हैं ।

पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया परिक्खित्ता, पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता ।

प्रत्येक एक-एक पद्मवरवेदिका से घिरा है और प्रत्येक एक-एक वनखण्ड से घिरा है ।

ताओ णं पउमवरवेइयाओ, दो गाउआइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं, वेइया-वणसंड वण्णओ भाणियव्वो ।

वे पद्मवरवेदिकाएँ दो गव्यूति ऊँची एवं पाँच सौ धनुष चौड़ी हैं । पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड का वर्णन समझ लेना चाहिए ।

तेसि णं जमगपव्वयाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,-जाव-तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए-एत्थ णं दुवे पासायवडेंसगा पण्णत्ता ।

उन यमक पर्वतों के ऊपर अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग है—यावत्—उस सम और रमणीय भूमिभाग के बीचोंबीच दो प्रासादावतंसक हैं ।

ते णं पासायवडेंसगा, बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं ।

वे प्रासादावतंसक साढ़े बासठ ६२॥ योजन ऊँचे हैं । तथा इकतीस ३१। योजन लम्बे-चौड़े हैं ।

पासायवण्णओ भाणियव्वो ।

यहाँ प्रासाद का वर्णन समझ लेना चाहिए ।

सीहासणा सपरिवारा-जाव-एत्थ णं जमगाणं देवाणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, सोलसभद्दासण-साहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

—जं० [illegible] ४, सु० ८८

यहाँ सपरिवार सिंहासन हैं—यावत्—यहाँ यमक देवों के सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के सोलह हजार भद्रासन हैं ।

जमगपव्वयाणं णामहेऊ—

यमक पर्वत नाम का हेतु—

२६१. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जमगा पव्वया, जमगा पव्वया ?

२६१. प्र०—भगवन् ! यमक पर्वत यमक पर्वत क्यों कहे जाते हैं ?

उ०—गोयमा ! जमगपव्वएसु णं तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहूइं खुड्डा खुड्डियासु वावीसु-जाव-जमगवण्णाभाइं ।

उ०—गौतम ! यमक पर्वतों पर स्थान-स्थान पर बहुत-सी छोटी-छोटी बावड़ियों में—यावत्—बिलपंक्तियों में बहुत से उत्पल—यावत्—यमक के वर्ण की आभा वाले हैं ।

---

1 सव्वे वि णं जमगपव्वया एगमेगं जोयणसहस्सं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, एगमेगं गाउयसहस्सं उव्वेहेणं, मूले एगमेगं जोयणसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं ।
—सम. ११६, सु. २

जमगा य इत्थ दुवे देवा महिड्ढीया, ते णं तत्थ चउण्हं सामाणिअ साहस्सीणं,-जाव-भुंजमाणा विहरंति ।

वहाँ यमक नामक दो महर्द्धिक देव निवास करते हैं। वे चार हजार सामानिक देवों का आधिपत्य करते हुए—यावत्—भोग भोगते हुए रहते हैं।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"जमगा पव्वया, जमगा पव्वया।"

गोतम ! इस कारण यमक पर्वत, यमक पर्वत कहलाते हैं।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! सासए णामधिज्जे-जाव-जमगा पव्वया, जमगा पव्वया ।—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८८

इसके अतिरिक्त 'यमक पर्वत' यह (उनका) शाश्वत नाम है।

जमिगाओ रायहाणीओ—

यमक देवों की राजधानियाँ—

३९२. प०—कहि णं भंते ! जमगाणं देवाणं जमिगाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ ?

३९२. प्र०—भगवन् ! यमक देवों की यमिका राजधानियाँ कहाँ हैं ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं जमगाणं देवाणं जमिगाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ ।

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप में स्थित मन्दर पर्वत के उत्तर में, दूसरे जम्बूद्वीप द्वीप में बारह हजार (१२०००) योजन जाने पर वहाँ यमक देवों की यमिका राजधानियाँ हैं।

बारसजोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, सत्ततीसं जोयणसहस्साइं णव य अडयाले जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं ।

वे बारह हजार योजन लम्बी-चोड़ी हैं। उनकी परिधि सैंतीस हजार नौ सौ अड़तालीस ३७९४८ योजन से किंचित् अधिक है।

पत्तेयं पत्तेयं पायारपरिक्खित्ता, ते णं पागारा सत्ततीसं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं ।

(दोनों में से—) प्रत्येक प्राकार से घिरी है। वे प्राकार साढ़े सैंतीस ३७॥ योजन ऊँचे हैं।

मूले अद्धतेरसजोयणाइं विक्खंभेणं, मज्झे छ सकोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं, उवरिं तिण्णि सअद्धकोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं ।

मूल में साढ़े बारह योजन विस्तार वाले, मध्य में सवा छह योजन विस्तार वाले और ऊपर तीन योजन एवं आधा कोस विस्तार वाले हैं।

मूले विच्छिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुआ, बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा, सव्वरयणामया अच्छा ।

मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतले हैं। बाहर से वृत्ताकार एवं अन्दर से चौकोर है। सर्वात्मना रत्नमय और स्वच्छ हैं।

ते णं पागारा णाणामणिपंचवण्णेहिं कविसीसएहिं उवसोहिआ, तं जहा—किण्हेहिं-जाव-सुक्किल्लेहिं ।

वे प्राकार नाना प्रकार की पंचरंगी मणियों के कंगूरों से शोभित हैं। वह इस प्रकार—कृष्ण—यावत्—शुक्ल वर्ण के हैं।

ते णं कविसीसगा अद्धकोसं आयामेणं-देसूणं अद्धकोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंचधणुसयाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमया अच्छा ।

वे कंगूरे अर्धकोस लम्बे, कुछ कम अर्ध कोस ऊँचे और पाँच सौ धनुष मोटाई वाले हैं, सर्वमणिमय और स्वच्छ हैं।

जमिगाणं रायहाणीणं एगमेगाए बाहाए पणवीसं पणवीसं दारसयं पण्णत्तं ।

यमिका राजधानियों की एक-एक बाहु में पच्चीस सौ द्वार हैं।

ते णं दारा बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं, तावइयं चेव पवेसेणं, सेआ वरकणगथूभिआगा, एवं रायपसेणइज्ज विमाणवत्तव्वाए दारवण्णओ,-जाव-अट्ठट्ठमंगलाइं ति ।

वे द्वार साढ़े बासठ ६२॥ योजन ऊँचे हैं। सवा इकतीस ३१। योजन चौड़े हैं और उतने ही प्रवेश वाले हैं। श्वेतवर्ण तथा श्रेष्ठ स्वर्णमय स्तूपिकाओं वाले हैं। **इस प्रकार राजप्रश्नीय में कथित विमान की वक्तव्यता के अनुसार द्वारों का वर्णन समझ लेना चाहिए—यावत्—आठ-आठ मंगलद्रव्य हैं।**

जमियाणं रायहाणीणं चउद्दिसिं पंच पंच जोयणसए अबाहाए चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—१ असोगवणे, २ सत्तिवण्णवणे, ३ चंपगवणे, ४ चूअवणे।

ते णं वणसंडा साइरेगाइं बारसजोयणसहस्साइं आयामेणं, पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं।

पत्तेयं पागारपरिक्खित्ता किण्हा वणसंडवण्णओ, भूमीओ, पासायवडेंसगा य भाणियव्वा।

जमिगाणं रायहाणीण अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, वण्णगो त्ति।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं दुवे उवयारियालयणा पण्णत्ता।

बारस जोअणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसहस्साइं सत्त य पंचाणउए जोयणसए परिक्खेवेण, अद्धकोसं च बाहल्लेणं, सव्वजंबूणयामया अच्छा।

पत्तेयं पत्तेय पउमवरवेइया परिक्खित्ता, पत्तेयं पत्तेयं वणसंडवण्णओ भाणियव्वो, तिसोवाणपडिरूवगा, तोरणचउद्दिसिं, भूमिभागा य भाणियव्व त्ति।

तस्स णं बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते।

बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं. वण्णओ, उल्लोआ, भूमिभागा, सीहासणा सपरिवारा।

एवं पासायपंतीओ—एत्थ पढमापंती—ते णं पासायवडेंसया—एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं, साइरेगाइं अद्धसोलसजोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं।

विइयपासायपंती—ते णं पासायवडेंसया साइरेगाइं अद्धसोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, साइरेगाइं अद्धट्ठमाइं जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं।

तइयपासायपंती—ते णं पासायवडेंसया साइरेगाइं अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, साइरेगाइं अद्धुट्ठाइं जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, वण्णओ सीहासणा सपरिवारा।

तेसि णं मूलपासायवडेंसयाणं उत्तर-पुरत्थिमे दिसिभाए एत्थ णं जमगाणं देवाणं सहाओ सुहम्माओ पण्णत्ताओ।

अद्धतेरस जोयणाइं आयामेणं छ सक्कोसाइं जोयणाइं [illegible]

यमिका राजधानियों की चारों दिशाओं में पाँच-पाँच सौ योजन पर चार वनखण्ड हैं, यथा—(१) अशोकवन, (२) सप्तपर्णवन, (३) चंपकवन, (४) चूतवन।

ये वन किंचित् अधिक बारह हजार योजन लम्बे, पाँच सौ योजन चौड़े हैं।

इनमें से प्रत्येक प्राकार से घिरा है। वे कृष्ण हैं, इत्यादि वनखण्ड की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए। भूमियों तथा प्रासादावतंसकों का भी कथन कर लेना चाहिए।

यमिका राजधानियों के अन्दर अत्यन्त सम एवं रमणीय भूमिभाग है, उसका वर्णन समझ लेना चाहिए।

उन अतिसम एवं रमणीय भूभागों के बीचों बीच दो अवतारिकालयन कहे हैं।

वे बारह सौ योजन लम्बे-चौड़े हैं, तीन सौ पिचानवें ३७९५ योजन की परिधि वाले, आधा कोस की मोटाई वाले, सर्वात्मना जम्बूनदमय और स्वच्छ हैं।

(उनमें से) प्रत्येक पद्मवरवेदिका से घिरा है। प्रत्येक के वनखण्ड का वर्णन कह लेना चाहिए, तीन सोपान प्रतिरूपक, तोरण, चारों ओर भूमिभाग भी कह लेने चाहिए।

उनके ठीक मध्य भाग में एक प्रासादावतंसक कहा है।

वह ६२॥ योजन ऊँचा एवं ३१। योजन लम्बा-चौड़ा है। उसके छत, भूमिभाग तथा सपरिवार सिंहासन का वर्णन कह लेना चाहिए।

इसी प्रकार (मूल प्रासादावतंसक के चारों ओर अन्य) प्रासादों की पंक्तियाँ हैं। उनमें प्रथम पंक्ति के प्रासादों की ऊँचाई ३१। योजन की, लम्बाई-चौड़ाई किंचित् अधिक साढ़े पन्द्रह १५॥ योजन की है।

दूसरी पंक्ति के प्रासादों की ऊँचाई कुछ अधिक साढ़े पन्द्रह योजन की है तथा लम्बाई-चौड़ाई साढ़े सात योजन से कुछ अधिक है।

तीसरी पंक्ति के प्रासादों की ऊँचाई कुछ अधिक साढ़े सात योजन की तथा लम्बाई-चौड़ाई कुछ अधिक साढ़े तीन योजन की है। इनका वर्णन समझ लेना चाहिए। वहाँ सपरिवार सिंहासन है।

उन मूल प्रासादावतंसकों के उत्तर-पूर्व दिग्भाग में यमक देवों की सुधर्मा सभाएँ हैं।

वे साढ़े बारह योजन लम्बी, सवा छह योजन विस्तृत [illegible]

विक्खंभेणं, णव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसण्णिविट्ठा, सभा वण्णओ ।

नौ योजन ऊँची हैं। वे अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर सन्निविष्टि हैं, इत्यादि सभा का वर्णन कर लेना चाहिए।

तासि णं सभाणं सुहम्माणं तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता ।

सुधर्मा सभाओं की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं।

तेणं दारा दो जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जोअणं विक्खंभेणं तावइअं चेव पवेसेणं, सेआ वण्णओ-जाव-वणमाला ।

वे द्वार दो योजन ऊँचे, एक योजन चौड़े और उतने ही प्रवेश वाले हैं। श्वेतवर्ण वाले हैं। वनमाला पर्यन्त उनका वर्णन समझ लेना चाहिए।

तेसि णं दाराणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं तओ मुहमंडवा पण्णत्ता ।

उन द्वारों के सामने अलग-अलग तीन मुखमंडप हैं।

तेणं मुहमंडवा अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं, छ सक्कोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं, साइरेगाइं दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं-जाव-दारा भूमिभागा य त्ति ।

वे मुखमंडप साढ़े बारह योजन लम्बे, सवा छह योजन चौड़े और कुछ अधिक दो योजन ऊँचे हैं—यावत्—द्वार एवं भूमिभाग समझ लेना चाहिए।

पेच्छाघरमंडवाणं तं चेव पमाणं, भूमिभागो मणिपेढियाओ त्ति ।

प्रेक्षागृह मंडपों का भी वही प्रमाण है। भूमिभाग तथा मणिपीठिकाओं का वर्णन कर लेना चाहिए।

ताओ णं मणिपेढियाओ जोअणं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईआ सीहासणा भाणियव्वा ।

ये मणिपीठिकाएँ एक योजन लम्बी-चौड़ी, आधा योजन मोटी, सर्वमणिमय हैं। (उन पर) सिंहासनों का कथन कह लेना चाहिए।

तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ ।

उन प्रेक्षागृहमंडपों के सामने मणिपीठिकाएँ हैं।

ताओ णं मणिपेढियाओ दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, जोअणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ ।

वे मणिपीठिकाएँ दो योजन लम्बी-चौड़ी, एक योजन मोटी एवं सर्व मणिमयी हैं -

तासि णं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं तओ थूभा ।

उनके ऊपर अलग-अलग तीन स्तूप हैं।

तेणं थूभा दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, सेआ संखतल-जाव-अट्ठट्ठमंगलया ।

वे स्तूप दो योजन ऊँचे और दो योजन लम्बे-चौड़े हैं। वे शंखखण्ड के समान श्वेत हैं—यावत्—आठ-आठ मंगल-द्रव्य हैं।

तेसि णं थूभाणं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ ।

उन स्तूपों के चारों ओर मणिपीठिकाएँ हैं।

ताओ णं मणिपेढियाओ जोअणं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं, जिणपडिमाओ वत्तव्वाओ ।

वे एक योजन लम्बी-चौड़ी और आधा योजन मोटी हैं। (वहाँ) जिन प्रतिमाओं का कथन समझ लेना चाहिए।

चेइयरुक्खाणं मणिपेढियाओ दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, जोअणं बाहल्लेणं चेइयरुक्खवण्णओ त्ति ।

(वहाँ की) चैत्यवृक्षों की मणिपीठिकाएँ दो योजन लम्बी-चौड़ी, एक योजन मोटी हैं। चैत्यवृक्षों का भी कथन कर लेना चाहिए।

चेइयरुक्खाणं पुरओ तओ मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणिपेढियाओ जोअणं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं ।

चैत्यवृक्षों के सामने तीन मणिपीठिकाएँ हैं, वे मणिपीठिकाएँ एक योजन लम्बी-चौड़ी और आधा योजन मोटी हैं।

तासि णं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं महिंदज्झया पण्णत्ता ।

उनके ऊपर अलग-अलग महेन्द्रध्वजाएँ हैं।

तेणं अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं, [illegible]

वे साढ़े सात योजन ऊँची, आधा कोस गहरी, आधा कोस मोटी हैं। वज्रमय गोल हैं, इत्यादि वर्णन कहना चाहिए। वेदिका, वनखण्ड, त्रिसोपान और तोरण कह लेने चाहिए।

तासि णं सभाणं सुहम्माणं छच्चमणोगुलियासाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुरत्थिमेणं दो साहस्सीओ पण्णत्ताओ, पच्चत्थिमेणं दो साहस्सीओ पण्णत्ताओ, दक्खिणेणं एगा साहस्सी पण्णत्ता, उत्तरेण एगा साहस्सी पण्णत्ता-जाव-दामा चिट्ठन्ति त्ति ।

उन सुधर्मा सभाओं में छह हजार मनोगुलिकाएँ-पीठिकाएँ हैं। वे इस प्रकार-पूर्व में दो हजार, पश्चिम में दो हजार, दक्षिण में एक हजार और उत्तर में एक हजार—यावत्—वहाँ दाम-मालायें हैं।

एवं गोमाणसिआओ, णवरं—धूवघडिआओ त्ति ।

इसी प्रकार गोमानसिकाएं (शय्यारूप स्थान विशेष) भी हैं। विशेष यह है कि वहाँ धूपघटिकाएँ हैं।

तासि णं सभाणं सुहम्माणं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते ।

उन सुधर्मा सभाओं के अन्दर अति सम एवं रमणीय भूमि-भाग है।

मणिपेढिया दो जोयणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, जोअणं बाहल्लेणं ।

वहाँ की मणिपीठिका दो योजन लम्बी-चौड़ी और एक योजन मोटी है।

तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं माणवए चेइयखम्भे महिंदज्झयप्पमाणे उवरिं छक्कोसे ओगाहित्ता, हेट्ठा छक्कोसे वज्जित्ता जिणसकहाओ पण्णत्ताओ त्ति ।

उन मणिपीठिकाओं पर माणवक चैत्यस्तम्भ है, जो महेन्द्रध्वज के बराबर प्रमाण वाला है। (उसके) ऊपर छह कोस अवगाहन करने पर और नीचे छह कोस छोड़ कर जिन की अस्थियाँ हैं।

माणवगस्स पुव्वेणं सीहासणा सपरिवारा, पच्चत्थिमेणं सयणिज्ज वण्णओ ।

माणवक (चैत्यस्तम्भ) के पूर्व में सपरिवार सिंहासन हैं। पश्चिम में शय्याओं का वर्णन करना चाहिए।

सयणिज्जाणं उत्तर-पुरत्थिमे दिसिभाए खुड्डगमहिंदज्झया मणिपेढिआ विहूणा महिंदज्झयप्पमाणा ।

शय्याओं के उत्तर-पूर्व कोण में छोटे महेन्द्रध्वज हैं। वे मणिपीठिका से रहित हैं और महेन्द्रध्वज के बराबर प्रमाण वाले हैं।

तेसिं अवरेण चोप्फाला पहरणकोसा, तत्थ णं बहवे फलिहरयणपामुक्खा-जाव-चिट्ठन्ति ।

उनके पश्चिम में चोप्फाल नामक शस्त्रागार हैं। उनमें परिघरत्न आदि—यावत्—[illegible] हैं।

सुहम्माण उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा ।

सुधर्मा सभाओं के ऊपर आठ-आठ मंगलद्रव्य हैं।

तासि णं उत्तर-पुरत्थिमेणं सिद्धायतणा, एस चेव जिणघराण वि गमो त्ति । णवरं- इम णाणत्तं—एतेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढियाओ, दो जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं जोअणं बाहल्लेणं ।

उनके उत्तर-पूर्व में सिद्धायतन हैं। जिनगृहों का भी यही गम है। विशेषता यह है कि—इनके ठीक मध्यभाग में अलग-अलग मणिपीठिकाएँ हैं, जो दो योजन लम्बी-चौड़ी और एक योजन मोटी हैं।

तासि उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं देवच्छंदया पण्णत्ता ।

उनके ऊपर अलग-अलग देवच्छंदक हैं।

दो जोयणाइं आयाम विक्खम्भेणं, साइरेगाइं दो जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सव्वरयणामया जिणपडिमा, [illegible]

वे दो योजन लम्बे-चौड़े, कुछ अधिक दो योजन ऊँचे, सर्व-[illegible] हैं। [illegible] वर्णन [illegible] कर लेना चाहिए।

[illegible]

इसी प्रकार शेष सभाओं का—यावत्—[illegible] का वर्णन समझना चाहिए। [illegible] का भी वर्णन कर लेना चाहिए।

[illegible]

गाहाओ—

उववाओ संकप्पो अभिसेअविहूसणा य ववसाओ ।
अच्चणिअ सुधम्मगमो जहा य परिवारणा इड्ढी ॥

जावइयंमि पमाणंमि हुंति जमगाओ णीलवंताओ ।
तावइअमंतरं खलु जमगदहाणं दहाणं च ॥

—जंबु वक्ख० ४, सु० ८८

गाथार्थ—

(दोनों यमक देवों का) उपपात, संकल्प, अभिषेक, विभूषणा, व्यवसाय, (सिद्धायतन आदि की) अर्चा, सुधर्मा सभा में गमन तथा परिवार का स्थापना (इन सब का वर्णन करना चाहिए) ॥१॥

जितने प्रमाण वाले नीलवन्त के यमक पर्वत कहे गए हैं, निश्चित रूप से उतना ही प्रमाण यमकद्रहों का एवं द्रहों का समझना चाहिए ॥२॥

जंबुद्दीवे दो कंचणगपव्वयसया—

३९३. जंबुद्दीवे णं दीवे दो कंचणगपव्वयसया पण्णत्ता ।[1]

—सम. १०२, सु. ३

जम्बूद्वीप में दो सो कंचनगपर्वत—

३९३. जम्बूद्वीप द्वीप में दो सो कांचनगपर्वत कहे गये हैं ।

कंचणगपव्वयाणं अवट्ठिई पमाणं च—

णीलवंतद्दहस्स णं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं दसजोयणाइं अवाधाए—एत्थ णं दस दस कंचणगपव्वया पण्णत्ता ।

ते णं कंचणगपव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं, पणवीसं पणवीसं जोयणाइं उव्वेहेणं ।

मूले एगमेगं जोयणसयं विक्खंभेणं,[2]
मज्झे पण्णत्तरिं जोयणाइं विक्खंभेणं,
उवरिं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं,[3]
मूले तिण्णि सोलेजोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं,

मज्झे दोण्णि सत्ततीसे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं,

उवरिं एगं अट्ठावण्णं जोयणसयं किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं,[4]

कंचनगपर्वतों की अवस्थिति और प्रमाण—

नीलवंत द्रह से पूर्व और पश्चिम में दस योजन के बाद व्यवधान रहित दस-दस कांचनगपर्वत कहे गये हैं ।

प्रत्येक कंचनगपर्वत सौ योजन ऊपर की ओर उन्नत है, पचीस-पचीस योजन भूमि में गहरे हैं ।

प्रत्येक पर्वत मूल में सो योजन चौड़े हैं ।
मध्य में पचहत्तर योजन चौड़े हैं ।
ऊपर पचास योजन चौड़े हैं ।
मूल में तीन सो सोलह योजन से कुछ अधिक इनकी परिधि है ।

मध्य में दो सो सेंतीस योजन से कुछ अधिक इनकी परिधि है ।

ऊपर एक सो अट्ठावन योजन से कुछ अधिक इनकी परिधि है ।

---

१ प०—जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइया कंचणगपव्वया पण्णत्ता ?
उ०—गोयमा ! जम्बुद्दीवे दो कंचणगपव्वयसया भवंतीतिमक्खायंती । —जम्बु० वक्ख० ६, सु० १२५
"द्वे काञ्चनकपर्वतशते देवकुरूत्तरवर्ति ह्रददशकोभयकूलयोः प्रत्येकं दश दश काञ्चनकसद्भावात् ।
—जंबु० वक्ष० ६ सूत्र १२५ की वृत्ति

२ सव्वे वि णं कंचणगपव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, एगमेगं गाउयसयं उव्वेहेणं पण्णत्ता एगमेगं जोयणसयं मूले, विक्खंभेणं पण्णत्ता । —सम. १००, सु. ८

३ सव्वे वि णं कंचणगपव्वया सिहरतले पन्नासं पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता । —सम. ५०, सु. ७

४ णीलवंतद्दहस्स पुव्वावरे पासे दस दस जोयणाइं अबाहाए—एत्थ णं वीसं कंचणगपव्वया पण्णत्ता ।
एगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं ।

गाहाओ—मूलंमि जोयणसयं पण्णत्तरि जोयणाइं मज्झंमि ।
उवरितले कंचणगा, पण्णासं जोअणा हुंति ॥
मूलंमि तिण्णि सोले, सत्ततीसाइं दुण्णि मज्झंमि ।
अट्ठावण्णं च सयं, उवरितले परिरओ होइ ॥ —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८८

मूले वित्थिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुया, सव्वकंचणमया अच्छा-जाव-पडिरूवा।[1]

पत्तेअं पत्तेअं पउमवरवेइया परिक्खित्ता।

पत्तेअं पत्तेअं वणसंडपरिक्खित्ता।

तेसि णं कंचणगपव्वयाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तत्थ णं कंचणगा देवा आसयंति-जाव-भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं पासायवडेंसगा, अड्ढतेवट्ठिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं।

मणिपेढिया दो जोयणिया, सीहासणा सपरिवारा।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८०

मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर से पतले, सभी पर्वत कंचनमय हैं स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

प्रत्येक कंचनकपर्वत पद्मवरवेदिका से घिरा हुआ है।

प्रत्येक कंचनक पर्वत वनखण्ड से घिरा हुआ है।

उन कंचनक पर्वतों के ऊपर अतिसमरमणीय भूभाग कहा गया है। वहाँ वे कंचनक देव बैठते हैं—यावत्—भोग भोगते हुए विहार (क्रीड़ा) करते हैं।

उन पर्वतों के अतिसम रमणीय भूभाग के मध्य में प्रत्येक कांचनकदेव के प्रासाद हैं वे प्रासाद साढ़े बासठ योजन ऊपर की ओर ऊँचे हैं, इकतीस योजन और एक कोस चौड़े हैं।

दो योजन (लम्बी-चौड़ी) मणिपीठिका है, (वहाँ पर) सिंहासन युक्त है।

कंचणगपव्वयाणं णामहेऊ—

३६४. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"कंचणगपव्वया, कंचणगपव्वया ?"

उ०—गोयमा ! कंचणगेसु णं पव्वएसु तत्थ तत्थ वावीसु उप्पलाइं पउमाइं कंचणगवण्णाइं कंचणगवण्णाभाइं कंचणगवण्णाभाइं कंचणगदेवा महिड्ढीया-जाव-विहरंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"कंचणगपव्वया, कंचणगपव्वया।"

उत्तरेणं कंचणगाणं देवाणं रायहाणीओ अण्णम्मि जंबुद्दीवे दीवे, सेसं तं चेव भाणियव्वं।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५०

कांचनक पर्वतों के नाम के हेतु—

३६४. प्र०—हे भगवन् ! कांचनक पर्वत किस कारण से कांचनक पर्वत कहे जाते हैं ?

उ०—हे गौतम ! उन कांचनकों पर [illegible] बावड़ियों में उत्पल हैं, पद्म हैं, वे कांचनक वर्ण के [illegible] कांचनक देव महर्द्धिक हैं —यावत् विहार (क्रीड़ा) करते हैं।

हे गौतम ! इस कारण कांचनक पर्वत को कांचनक पर्वत कहा जाता है।

[illegible] उत्तर में कांचनक देवों की राजधानियाँ अन्य जम्बूद्वीप द्वीप में हैं। शेष सब इसी प्रकार कहना चाहिए।

चोत्तीसं दीहवेयड्ढपव्वया

३६५. जंबुद्दीवे णं दीवे चोत्तीसं दीहवेयड्ढपव्वया पण्णत्ता।[2]

३६६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं दो दीहवेयड्ढपव्वया पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला-अविसेस-मणाणत्ता—[illegible] १ भरहे चेव दीहवेयड्ढे, २ एरवए चेव दीहवेयड्ढे।

—ठाणं २, उ. ३, सु. ८७

चौंतीस दीर्घवैताढ्य पर्वत—

३६५. जम्बूद्वीप द्वीप में चौंतीस दीर्घवैताढ्य पर्वत कहे गये हैं।

३६६. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में दो दीर्घवैताढ्य पर्वत [illegible]

१ [illegible] —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८०

२ [illegible]

[illegible]

[illegible]

दीहवेयड्ढपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

दीर्घवैताढ्य पर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

३६७. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे भरहेवासे दीहवेयड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

३६७. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में दीर्घ वैताढ्य नामक पर्वत कहाँ हैं ?

उ०—गोयमा ! उत्तरड्ढ भरहवासस्स दाहिणेणं, दाहिणड्ढ-भरहवासस्स उत्तरेणं, पुरत्थिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिम-लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं—एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे भरहेवासे दीहवेयड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते।

उ०—गौतम ! उत्तरार्ध भरत क्षेत्र के दक्षिण में, दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के भरतवर्ष का दीर्घ वैताढ्य नामक पर्वत कहा है।

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणवित्थिण्णे।

यह पर्वत पूर्व-पश्चिम में लम्बा एवं उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है।

दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे।

दो ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है।

पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे।

पूर्व में पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है तथा पश्चिम में पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है।

पणवीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,[1] छ सकोसाइं जोयणाइं उव्वेहेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं।[3]

इसकी ऊँचाई पच्चीस योजन, गहराई सवा छह योजन, एवं चौड़ाई पचास योजन है।

तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं चत्तारि अट्ठासीए जोयणसए सोलस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं पण्णत्ता।

इसकी बाहु पूर्व-पश्चिम में ४८८$\frac{१६}{१९}+\frac{१}{२}$ योजन लम्बी है।

तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया।
दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा।

इसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी तथा दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है।

पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा।

पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है पश्चिम की ओर पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है।

दस जोयणसहस्साइं सत्तवीसे जोयणसए दुवालस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं।

इसकी लम्बाई १०७२०$\frac{१२}{१९}$ योजन है।

तीसे णं धणुपिट्ठे दाहिणेणं दस जोयणसहस्साइं सत्त-तेयाले जोयणसए पण्णरस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं।

इसका धनुःपृष्ठ दक्षिण में—
१०७४३$\frac{१५}{१९}$ योजन की परिधि वाला है।

रुअगसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

दीर्घ वैताढ्य पर्वत रुचक (ग्रीवा के आभूषण) के आकार का है, सर्वात्मना रत्नमय है, स्वच्छ—यावत्—है।

---

१ सव्वे वि णं दीहवेयड्ढपव्वया एगमेगं गाउयसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। —सम० १०० सु० ६

२ सव्वे वि णं दीहवेयड्ढपव्वया पणुवीसं पणुवीसं जोयणाणि उड्ढं उच्चत्तेणं, पणुवीसं पणुवीसं गाउयाणि उव्वेहेणं पण्णत्ता। —सम० २५, सु० ३

३ सव्वे वि णं दीहवेयड्ढपव्वया मूले पण्णासं पण्णासं जोयणाणि विक्खंभेणं पण्णत्ता। —सम० ५०, सु० ४

अदुत्तरं च णं गोयमा ! दीहवेयड्ढस्स पव्वयस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जं न कयाइ, न आसि-जाव-णिच्चे।
—जंबु० वक्ख० १, सु० १५

इसके अतिरिक्त, गौतम ! दीर्घ वैताढ्य पर्वत का यह नाम शाश्वत है। अथवा यह न कभी नहीं था, न भी नहीं है, न कभी नहीं होगा। यह था, है और रहेगा। यह नाम ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अवस्थित है, नित्य है।

कच्छविजए दीहवेयड्ढपव्वए—

कच्छविजय का दीर्घ वैताढ्य पर्वत—

४०१. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छे विजए दीहवेयड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! दाहिणड्ढ कच्छविजयस्स उत्तरेणं, उत्तरद्ध-कच्छविजयस्स दाहिणेणं, चित्तकूडस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं कच्छे विजए दीहवेयड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते।[1]

पाईण-पडिणायए, उदीण-दाहिण-विच्छिण्णे।

दुहा वक्खारपव्वए पुट्ठे।

पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं।

एवं दोहि वि पुट्ठे,[2] भरह-दीह-वेयड्ढसरिसए[3]।

णवरं—दो बाहाओ, जीवा धणुपुट्ठं च ण कायव्वं[4]।

विजयविक्खंभसरिसे आयामेणं[5] विक्खंभो उच्चत्तं, उव्वेहो तहेवं च[6] विज्जाहरआभिओगसेढीओ तहेव।

णवरं-पणपण्णं पणपण्णं विज्जाहर-णगरावासा पण्णत्ता।

आभिओगसेढीए उत्तरिल्लाओ सेढीओ, सीआए ईसाणस्स, सेसाओ सक्कस्स ति*।
—जम्बु० वक्ख० ४ सु० ९३।

४०१. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप महाविदेह वर्ष के कच्छविजय में दीर्घ वैताढ्य नामक पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! दक्षिणार्ध कच्छविजय के उत्तर में, उत्तरार्ध कच्छ (विजय) के दक्षिण में, चित्रकूट के पश्चिम में एवं माल्यवंत वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में कच्छविजयस्थित दीर्घ वैताढ्य नामक पर्वत है।

यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है।

दो ओर से वक्षस्कार पर्वत से स्पृष्ट है।

पूर्व की ओर से पूर्वी वक्षस्कार एवं पश्चिम की ओर से पश्चिमी वक्षस्कार से स्पृष्ट है।

यह भरतवर्ष के दीर्घ वैताढ्य के समान है।

अन्तर इतना है कि इसके दो भुजाएँ व जीवा है, किन्तु धनुपृष्ठ नहीं है।

यह विजय के समान ही लम्बा, चौड़ा, ऊँचा और गहरा है। इस पर भी उसी प्रकार विद्याधरों एवं आभियोगिक देवों की श्रेणियाँ हैं।

विशेषता यह है कि यहाँ विद्याधरों के पचपन-पचपन नगरावास हैं।

आभियोगिक श्रेणियों में से शीता महानदी के उत्तर की श्रेणियों का स्वामी ईशानेन्द्र तथा शेष (शीता महानदी के दक्षिण) का (स्वामी) शक्रेन्द्र है।

---

१ कच्छस्य विजयस्य बहुमध्यदेशभागे दीर्घवैताढ्यः पर्वतः प्रज्ञप्तः, यः कच्छं विजयं द्विधा विभजं विभजंस्तितिष्ठति, तद्यथा-दक्षिणार्ध-कच्छं चोत्तरार्धकच्छं च। च शब्दौ उभयोस्तुल्यकक्षताद्योतनार्थौ।

२ पूर्वया कोट्या, पौरस्त्यं वक्षस्कारं चित्रकूटं नामानं पाश्चत्यया कोट्या पाश्चत्यं वक्षस्कारं माल्यवन्तं, अतएव द्वाभ्यां कोटिभ्यां स्पृष्टः....

३ भरत-दीर्घवैताढ्यसदृशकः रजतमयत्वात् रुचकसंस्थानसंस्थितत्वाच्च।

४ नवरं-द्वे बाहे, जीवा धनुःपृष्ठं च न कर्तव्यमवक्रक्षेत्रवर्तित्वात्।

५ [illegible] न भरतवैताढ्यसदृश इत्याह-विजयस्य कच्छादेर्यो विष्कम्भः किंचिदूनत्रयोदशाधिकद्वाविंशतिशतयोजनरूपस्तेन सदृश [illegible] यो विष्कम्भ भागः सोऽस्यायामविभाग इति....

६ [illegible] योजनरूपः, उच्चत्वं-पंचविंशतियोजनरूपं। उद्वेधः पंचविंशतिक्रोशात्मकस्तथैव-भरतवैताढ्यवदेवेत्यर्थः....

* [illegible] द्वे भवतः अत्राधिकारात् सर्ववैताढ्याभियोग्यश्रेणिविशेषमाह-उत्तर [illegible] सीताया महानद्या ईशानस्य-द्वितीयकल्पेन्द्रस्य।
[illegible] शक्रस्य-आद्यकल्पेन्द्रस्य।
—जम्बु० वृत्ति०

जंबुद्दीवे उसभकूड-पव्वया—

४०७. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइया उसभकूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे चोत्तीसं उसभकूडापव्वया पण्णत्ता ।

—जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

जम्बूद्वीप में ऋषभकूट पर्वत—

४०७. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में ऋषभकूटपर्वत कितने कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप में चौंतीस ऋषभकूट पर्वत कहे गये हैं ।

(क्रमशः) से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं—जाव—मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं अण्णंमि जम्बूद्दीवे दीवे रायहाणी पण्णत्ता। से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"मालवंतपरिआए वट्टवेयड्ढपव्वए, मालवंतपरिआए वट्टवेयड्ढपव्वए" ।

—जम्बु० वक्ख० ४, सु० १११

[यह पाठ एक प्राचीन प्रति से उद्धृत किया है ।]

(ख) वृत्त वैताढ्यपर्वतस्थान एवं देव-नामों में क्रम भेद—

(१) जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार—

क्रम	पर्वत नाम	क्षेत्र नाम	देव नाम	वक्षस्कार	सूत्रांक
१.	शब्दापाती पर्वत	हैमवतवर्ष	शब्दापाती देव	४	७७
२.	विकटापाती पर्वत	हरिवर्ष	अरुण देव	,,	८२
३.	गंधापाती पर्वत	रम्यक्वर्ष	पद्म देव	,,	१११
४.	माल्यवंतपर्याय पर्वत	हैरण्यवतवर्ष	प्रभास देव	,,	,,

(२) स्थानांग सूत्र के अनुसार—

क्रम	पर्वत नाम	क्षेत्र नाम	देव नाम	स्थान	उद्देशक	सूत्रांक
१.	शब्दापाती पर्वत	हैमवतवर्ष	स्वाती देव	२	३	८७
२.	विकटापाती पर्वत	हैरण्यवतवर्ष	प्रभास देव	,,	,,	,,
३.	गंधापाती पर्वत	हरिवर्ष	अरुण देव	,,	,,	,,
४.	माल्यवंत पर्याय पर्वत	रम्यक्वर्ष	पद्म देव	,,	,,	,,

यह क्रमभेद स्थानांग और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में है। स्थानांग अंग आगम है और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति उपांग आगम है। उपांग की अपेक्षा अंग प्रधान होता है यह मान्यता सर्वमान्य है, फिर भी वृत्तिकार ने स्थानांग का निर्देशन नहीं किया जबकि उनके सामने स्थानांग निर्दिष्ट क्रम भी था ।

वाचनाभेद के कारण भी यह क्रमभेद नहीं है क्योंकि वाचनाभेद प्रायः एक ही आगम में एक ही पाठ के सम्बन्ध में होता है ।

इस क्रमभेद के सम्बन्ध में वृत्तिकार का मन्तव्य—

"शब्दापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत के अधिपति देव का नाम जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में शब्दापाती है किन्तु स्थानांग में उसका नाम 'स्वाती' देव है—वृत्तिकार ने स्थानांग का निर्देश न करके 'क्षेत्रविचार' का निर्देश किया है ।

प्र०—ननु अस्य शब्दापतिवृत्तवैताढ्यस्य क्षेत्रविचारादि ग्रन्थेषु अधिपः 'स्वाति' नामा उक्तः, तत्कथं न तैः सह विरोधः ?

उ०—उच्यते-नामान्तरं मतान्तरं वा ।

—जम्बू० वक्ष० ४, सूत्र ७७ की वृत्ति

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में हरिवर्ष में विकटापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत कहा है और स्थानांग में हैरण्यवतवर्ष में कहा है । (क्रमशः)

उसभकूडपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

४०८. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे वासे उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! गंगाकुण्डस्स पच्चत्थिमेणं, सिंधुकुण्डस्स पुरत्थिमेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले नितंबे—एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढ भरहे वासे उसहकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते।

अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दो जोयणाइं उव्वेहेणं।

मूले अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं, मज्झे छ जोयणाइं विक्खंभेणं उवरिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं।

मूले साइरेगाइं पणवीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं।
मज्झे साइरेगाइं अट्ठारस जोयणाइं परिक्खेवेणं।
उप्पिं साइरेगाइं दुवालस जोयणाइं परिक्खेवेणं।[1]

ऋषभकूट पर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

४०८. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीपवर्ती उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में ऋषभकूट पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! गंगाकुण्ड के पश्चिम में, सिन्धुकुण्ड के पूर्व में, लघु हिमवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिणी भाग पर जम्बूद्वीप द्वीपवर्ती उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में ऋषभकूट नामक पर्वत कहा गया है।

वह आठ योजन ऊपर की ओर ऊँचा है, दो योजन भूमि में गहरा है।

मूल में आठ योजन चौड़ा है, मध्य में छह योजन चौड़ा है—ऊपर चार योजन चौड़ा है।

मूल में पच्चीस योजन से कुछ अधिक की परिधि है।
मध्य में अठारह योजन से कुछ अधिक की परिधि है।
ऊपर बारह योजन से कुछ अधिक की परिधि है।

(क्रमशः) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में विकटापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत का अधिपति देव 'अरुण' कहा है और स्थानांग में 'प्रभास' कहा है। इस सम्बन्ध में भी वृत्तिकार ने 'स्थानांग' का निर्देश नहीं किया है—बृहत्क्षेत्रविचारादिषु हैरण्यवते विकटापाती हरिवर्ष गन्धापातीत्युक्तं, तत्त्वं तु केवलिगम्यम्···· —जम्बू० वक्ष० ४, सूत्र ८२ की वृत्ति

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में गंधापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत रम्यक्वर्ष में कहा है और स्थानांग में हरिवर्ष में कहा है। इसी प्रकार गन्धापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत का अधिपति देव जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में 'पद्मदेव' कहा है और स्थानांग में 'अरुण' देव कहा है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में 'माल्यवंतपर्याय वृत्तवैताढ्यपर्वत' हैरण्यवत वर्ष में कहा है और स्थानांग में रम्यक्वर्ष में कहा है। इसी प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में माल्यवंत वृत्तवैताढ्यपर्वत के अधिपति देव का नाम 'प्रभास' कहा है और 'स्थानांग में' पद्मदेव कहा है। इस क्रम भेद के सम्बन्ध में वृत्तिकार सर्वथा मौन है।

जम्बूद्वीप के मानचित्रों में शब्दापाती आदि चारों पर्वतों के क्षेत्र इस प्रकार अंकित है—

क्रम	पर्वत नाम	क्षेत्र नाम
१.	शब्दापाती पर्वत	हैमवतवर्ष
२.	विकटापाती पर्वत	हैरण्यवतवर्ष
३.	गंधापाती पर्वत	हरिवर्ष
४.	माल्यवंतपर्याय पर्वत	रम्यक्वर्ष

यह क्रम स्थानांग के अनुसार है—

१ पाठंतरं :—मूले बारस जोयणाइं विक्खंभेणं, मज्झे अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं, उप्पिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं। मूले साइरेगाइं सत्ततीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं, मज्झे साइरेगाइं पणवीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं, उप्पिं साइरेगाइं बारस जोयणाइं परिक्खेवेणं।

इस पाठान्तर के सम्बन्ध मे वृत्तिकार का अभिमतः—

"वाचनाभेदस्तद्गतपरिणामान्तरमाह—मूले द्वादश योजनानि विष्कम्भेन, मध्येऽष्टयोजनानि विष्कम्भेन, उपरि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेन अत्रापि विष्कम्भायामतः साधिकत्रिगुणं मूल-मध्यान्तपरिधिमानं सूत्रोक्तं सुबोधं।

अत्राह परः :—एकस्य वस्तुनो विष्कम्भादिपरिमाणे द्विरूप्यासम्भवेन····प्रस्तुतग्रन्थस्य च सातिशयस्थविरप्रणीतत्वेन कथं नान्यतरनिर्णयः ?

(क्रमशः)

मूले विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पि तणुए, गोपुच्छ संठाणसंठिए सव्वजंबूणयामए अच्छे-जाव-पडिरूवे ।

यह मूल में विस्तृत मध्य में संक्षिप्त, ऊपर से पतला, गाय की पूंछ की आकृति के समान स्थित है, सारा जम्बूनद स्वर्णमय है स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप (सुन्दर) है ।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए तहेव-जाव-भवणं ।

यह एक पद्मवरवेदिका से वेष्टित है—यावत्—भवन पर्यन्त सम्पूर्ण वर्णन से युक्त है ।

कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसऊणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं ।

वेदिका की लम्बाई एक कोस, चौड़ाई आधा कोस तथा ऊँचाई एक कोस से कुछ कम है ।

अट्ठो तहेव[1]—

ऋषभकूट पर्वत के नाम का हेतु पूर्ववत् है—

उप्पलाणि पउमाणि-जाव-उसभे अ एत्थ देवे महिड्ढीए -जाव-मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं रायहाणी तहेव जहा विजयस्स अविसेसियं ।[2]—जंबु० वक्ख० ४, सु० १७

""वहाँ उत्पल हैं, पद्म हैं—यावत्—ऋषभ नाम का महर्धिक देव वहाँ है—यावत्—मंदरपर्वत के दक्षिण में उसकी राजधानी है । विजयदेव के समान इस देव का सम्पूर्ण वर्णन है ।

(क्रमशः) यदेकस्यापि ऋषभकूटपर्वतस्य मूलादावष्टादियोजनविस्तृतत्वादिपुनस्तत्रैवास्य द्वादशादियोजनविस्तृतत्वादीति, सत्यं-जिनभट्टारकाणां सर्वेषां क्षायिकज्ञानवतामेकमेवं मतं मूलतः ।

पश्चात्तु कालान्तरेण विस्मृत्यादिनाऽयं वाचना भेदः ।

यदुक्तं श्रीमलयगिरिसूरिभिर्ज्योतिष्ककरण्डवृत्तौ—"इह स्कन्दिलाचार्यप्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगुणनादिकं सर्वमप्यनेशत्, ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः संघमेलापकोऽभवत्, तद्यथा—एको वलभ्यामेको मथुरायां, तत्र च सूत्रार्थसंघटने परस्परं वाचनाभेदो जातः । विस्मृतयोर्हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा स्मृत्वा संघटने भवत्यवश्यं वाचनाभेद" इत्यादि ।

ततोऽत्रापि दुष्करोऽन्यतरनिर्णयः द्वयोः पक्षयोरुपस्थितयोरनतिशायिज्ञानिभिरनभिनिविष्टमतिभिः प्रवचनाशातनाभीरुभिः पुण्यपुरुषैरिति न काचिदनुपपत्तिः ।

किञ्च—सैद्धान्तिकशिरोमणि पूज्यश्री जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण प्रणीत-क्षेत्रसमास सूत्रे उत्तरमतमेवदर्शितं, यथा—

गाहा—सव्वेवि उसहकूडा, उव्विद्धा अट्ठ जोयणे हुंति ।
वारस अट्ठ य चउरो, मूले मज्झुवरि विच्छिण्णा ।। —जम्बू० वक्ष० १, सूत्र १७ की वृत्ति

१ प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"उसहकूडपव्वए उसहकूडपव्वए ?

उ० – गोयमा ! उसहकूडपव्वए खुड्डासु खुड्डियासु वावीसु पुक्खरिणीसु—जाव—विलपंतीसु बहूइं उप्पलाइं पउमाइं—जाव—सहस्सपत्ताइं उसहकूडप्पभाइं उसहकूडवण्णाभाइं" ।

महज्जुईए—जाव—उसहकूडस्स उसहाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूण देवाण य देवीण य अहेवच्चं—जाव—दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ।

से एएणट्ठेणं एवं वुच्चइ—"उसहकूडपव्वए, उसहकूडपव्वए" —जम्बु० वक्ख० १, सु० १७ की वृत्ति

२ प्रत्येक चक्रवर्ती षट्खण्डविजय यात्रा में अपना नाम ऋषभकूटपर्वत पर अंकित करता है । जम्बूद्वीप में चौंतीस चक्रवर्ती विजय हैं अतः ऋषभकूटपर्वत भी चौंतीस हैं ।

"एक भरतक्षेत्र में एक ऐरवतक्षेत्र में और बत्तीस महाविदेह के बत्तीस विजयों में"—इस प्रकार चौंतीस ऋषभकूट पर्वत हैं । यद्यपि ये चौंतीस पर्वत भिन्न क्षेत्रों में हैं फिर भी सबका नाम 'ऋषभकूट' ही है ।

भरत चक्रवर्ती ने ऋषभकूट पर्वत पर अपना नाम अंकित किया था, इसका वर्णन इस प्रकार है :

"तए णं से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ णिगिण्हित्ता रहं परावत्तेइ परावत्तित्ता जेणेव उसहकूडे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता उसहकूड पव्वयं तिक्खुत्तो रहसिरेणं फुसइ फुसित्ता तुरए णिगिण्हइ णिगिण्हित्ता रहं ठवेइ ठवित्ता छत्तलं दुवालसंसिअं अट्ठकण्णिअं अहिगरणसंठियं सोवण्णियं कागणिरयणं परामुसइ परामुसित्ता....उसभकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लंसि णामगं आउडेइ :

गाहाओ—ओसप्पिणी इमीसे, तइआए समाइ पच्छिमे भाए ।
अहमंसि चक्कवट्टी, 'भरहो' इअ नामधिज्जेणं ।।
अहमंसि पढमराया, अहयं भरहाहिवो णरवरिंदो ।
णत्थि महं पडिसत्तू, जिअं मए भारहं वासं ।। —जम्बु० वक्ख० ३, सु० ६३

उत्तरड्ढकच्छविजए उसहकूडपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

४०९. प०—कहि णं भंते ! उत्तरड्ढकच्छविजए उसहकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सिंधुकुण्डस्स पुरत्थिमेणं, गंगाकुण्डस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवंतवासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे—एत्थ णं उत्तरड्ढकच्छविजए उसहकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते ।

अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं चेव पमाणं-जाव-रायहाणी, णवरं से उत्तरेण भाणियव्वं ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९३

उत्तरार्ध कच्छ विजय में ऋषभकूटपर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

४०९. प्र०—हे भगवन् ! उत्तरार्धकच्छ विजय में ऋषभकूट नाम का पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! सिन्धुकुण्ड के पूर्व में, गंगाकुण्ड के पश्चिम में, नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिणी भाग पर उत्तरार्ध कच्छ विजय में ऋषभकूट नामक पर्वत कहा गया है ।

आठ योजन ऊपर की ओर ऊँचा है प्रमाण पूर्ववत् है—यावत्—राजधानी पर्यन्त विशेष—वह उत्तर की ओर है—ऐसा कहना चाहिए ।

जंबुद्दीवे वक्खारपव्वया—

वीसं वक्खारपव्वया—

४१०. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइया वक्खारा[1] पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे वीसं वक्खारपव्वया पण्णत्ता ।

—जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

जम्बूद्वीप में वक्षस्कार पर्वत—

वीस वक्षस्कार पर्वत—

४१०. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में वक्षस्कार (पर्वत) कितने कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप में वीस वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं ।

४११. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीआए महाणईए उभओ कूले दसवक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—

१. मालवंते, २. चित्तकूडे,
३. पम्हकूडे, ४. नलिनकूडे,
५. एगसेले, ६. तिकूडे,
७. वेसमणकूडे, ८. अंजणे,
९. मायंजणे, १०. सोमणसे ।

४११. जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मंदरपर्वत के पूर्व में सीता महानदी के दोनों किनारों पर दस वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं, यथा—

(१) माल्यवंत (२) चित्रकूट
(३) पद्मकूट, (४) नलिनकूट
(५) एकशैल (६) त्रिकूट
(७) वैश्रमणकूट (८) अंजन
(९) मातंजन (१०) सौमनस ।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीओआए महाणईए उभओ कूले दस वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—

१. विज्जुप्पभे, २. अंकावई,
३. पम्हावई, ४. आसीविसे,
५. सुहावहे, ६. चंदपव्वए,
७. सूरपव्वए, ८. नागपव्वए,

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मंदरपर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के दोनों किनारों पर दस वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं, यथा—

(१) विद्युत्प्रभ (२) अंकावती
(३) पद्मावती (४) आशीविष
(५) सुखावह (६) चन्द्रपर्वत
(७) सूर्यपर्वत (८) नागपर्वत

---

[1] "वक्खारपव्वया" इति ।

९. देवपव्वए, १०. गंधमायणे ।[1] (९) देवपर्वत (१०) गंधमादन ।

—ठाणं० अ० १०, सु० ७६८

४१२. सव्वे वि णं वक्खारपव्वया सीया-सीओयाओ महाणईओ मंदरं वा पव्वयं तेणं पंच जोयणसयाइ उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच-गाउयसयाइं उव्वेहेणं ।[2] —ठाणं ५, उ० २, सु० ४३४

४१२. सभी वक्षस्कार पर्वत सीता-सीतोदा महानदियों के तथा मंदरपर्वत के समीप पांच सौ योजन ऊँचे हैं, पांच सौ गाउ भूमि में गहरे हैं।

---

१ (क) जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरे कूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता तं जहा—
(१) चित्तकूडे, (२) पम्हकूडे, (३) नलिनकूडे, (४) एगसेले ।
जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीआए महाणईए दाहिणे कूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) तिकूडे, (२) वेसमणकूडे, (३) अंजणे, (४) मातंजणे ।
जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीओआए महाणईए दाहिणे कूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) अंकावई, (२) पम्हावई, (३) आसीविसे, (४) सुहावहे ।
जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीओआए महाणईए उत्तरे कूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) चन्दपव्वए, (२) सूरपव्वए, (३) देवपव्वए, (४) नागपव्वए ।
जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स चउसु विदिसासु चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) सोमणसे, (२) विज्जुप्पभे, (३) गंधमायणे, (४) मालवंते । —ठाणं ४, उ० २, सु० ३०२

(ख) जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) मालवंते, (२) चित्तकूडे, (३) पम्हकूडे, (४) नलिनकूडे, (५) एगसेले ।
जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीआए महाणईए दाहिणेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) तिकूडे, (२) वेसमणकूडे, (३) अंजणे, (४) मायंजणे, (५) सोमणसे ।
जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीओआए महाणईए दाहिणेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) विज्जुप्पभे, (२) अंकावई, (३) पम्हावई, (४) आसीविसे, (५) सुहावहे ।
जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीओआए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) चन्दपव्वए, (२) सूरपव्वए, (३) नागपव्वए, (४) देवपव्वए, (५) गंधमायणे । —ठाणं ५, उ० २, सु० ४३४

(ग) जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीआए महाणईए उभओ कूले अट्ठ वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) चित्तकूडे, (२) पम्हकूडे, (३) नलिनकूडे, (४) एगसेले, (५) तिकूडे, (६) वेसमणकूडे, (७) अंजणे, (८) मायंजणे ।
जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेण सीओआए महाणईए उभओ कूले अट्ठ वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) अंकावई, (२) पम्हावई, (३) आसीविसे, (४) सुहावई, (५) चन्दपव्वए, (६) सूरपव्वए, (७) नागपव्वए, (८) देव-पव्वए । —ठाणं ८, सु० ६३७

(घ) "तथा विंशतिर्वक्षस्कारपर्वताः, तत्र गजदन्ताकारा गंधमादनादयश्चत्वारः, तथा चतुःप्रकारमहाविदेहे प्रत्येकं चतुष्क चतुष्क सद्भावात् षोडश चित्रकूटादयः सरलाः द्वयेऽपि मिलिता यथोक्तसंख्याकाः । —जम्बू० वृत्ति, वक्ष० ६, सु० १२५

(ङ) स्थानांग ४, उ० २, सु० ३०२, स्थनांग ५, उ० २, सु० ४३४, स्थानांग १०, सू० ७६८—इन तीन सूत्रों में बीस वक्षस्कार पर्वतों के नाम हैं किन्तु स्थानांग ८, सू० ६३७ में १६ वक्षस्कार पर्वतों के नाम हैं किन्तु गजदन्ताकार—(१) गंधमादन, (२) सौमनस, (३) विद्युत्प्रभ और (४) माल्यवन्त—इन चारों के नाम नहीं है अतः सम्भव है वर्षधर पर्वतों की संख्या के सम्बन्ध में दो मान्यतायें प्रचलित रही हैं—एक पक्ष बीस और एक पक्ष सोलह वक्षस्कार पर्वत मानता होगा, जो इन चार गजदन्ताकार पर्वतों को वक्षस्कार पर्वत नहीं मानता होगा ।

२ सम० १०८ सूत्र १ और ऊपर अंकित सूत्र अक्षरशः सर्वथा समान हैं, किन्तु उसी १०८वें समवाय में ५वाँ सूत्र इस प्रकार है ।
"सोमणस-गन्धमादण-विज्जुप्पभ-मालवंता णं वक्खारपव्वया णं मंदरपव्वयं तेणं पंच-पंच जोयणसयाणं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच-पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता । —सम० १०८, सू० ५
इस सूत्र की अपेक्षा ऊपर अंकित सूत्र अधिक व्यापक हैं ।

चत्तारि गजदंतगारा वक्खारपव्वया—

४१३. जंबु-मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, देवकुराए कुराए पुव्वावरे पासे, एत्थ णं आसक्खंधगसरिसा अवद्धचंदसंठाणसंठिया दो वक्खारपव्वया[1] पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं, तं जहा—

सोमणसे चेव, विज्जुप्पभे चेव ।

४१४. जंबु-मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं, उत्तरकुराए कुराए पुव्वावरे पासे, एत्थ णं आसक्खंधगसरिसा अद्धचंदसंठाणसंठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं, तं जहा—

गंधमादणे चेव, मालवंते चेव ।[2]

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८७

चार गजदन्ताकार वक्षस्कार पर्वत—

४१३. जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण में देवकुरा नामक कुरा के पूर्व और पश्चिम पार्श्व में अश्वस्कन्ध के सदृश अर्धचन्द्र के संस्थान से स्थित दो वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं, वे अधिक सम-तुल्य है—यावत्—परिधि की अपेक्षा से एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—

(१) सोमनस, (२) विद्युत्प्रभ ।

४१४. जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर में उत्तरकुरा नामक कुरा के पूर्व और पश्चिम पार्श्व में अश्वस्कंध के सदृश अर्धचन्द्र के संस्थान से स्थित दो वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं वे अधिक सम-तुल्य हैं—यावत्—परिधि की अपेक्षा से एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—

(१) गंधमादन, (२) माल्यवन्त ।

मालवंतवक्खारपव्वयस्स ठाणप्पमाणं—

४१५. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे मालवंते णामं वक्खार-पव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, णील-वंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, उत्तरकुराए पुरत्थि-मेणं, वच्छस्स चक्कवट्टिविजयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे मालवंते णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ।

उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिन्ने, जं चेव गंध-मायणस्स पमाणं विक्खंभो अ, णवरमिमंणाणत्तं-सव्व-वेरुलिआमए, अवसिट्ठं तं चेव ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९१

माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत का स्थान—

४१५. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में माल्यवन्त नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! मन्दर पर्वत से उत्तर-पूर्व में, नीलवन्त वर्ष-धर पर्वत से दक्षिण में, उत्तरकुरु से पूर्व में और वत्स नामक चक्रवर्ती विजय से पश्चिम में, महाविदेह वर्ष में माल्यवन्त नामक वक्षस्कार पर्वत कहा गया है ।

वह उत्तर-दक्षिण में लम्बा, पूर्व-पश्चिम में विस्तीर्ण और गंधमादन पर्वत के बराबर प्रमाण एवं विष्कंभ वाला है । **विशेषता यह है कि यह (माल्यवंत पर्वत) सर्वात्मना वैडूर्यमय है, शेष वर्णन वही है ।**

---

१ "अवद्धचंद"त्ति, अपकृष्टमर्द्धं चन्द्रस्यापार्धचन्द्रस्तस्य यत्संस्थानम् आकारो गजदन्ताकृतिरित्यर्थः । तेन संस्थितावपार्द्धचन्द्रसंस्थान संस्थितौ ।
"अद्धचन्दसंठाणसंठिय" त्ति,
अर्धचन्द्रसंस्थानसंस्थिताविति क्वचित् पाठः ।
तत्र 'अर्ध' शब्देन विभागमात्र विवक्ष्यते ।
न तु समप्रविभागतेति । ताभ्यां अर्धचन्द्राकारा देवकुरवः कृताः ।
अतएव वक्षस्कारक्षेत्रकारिणो पर्वतो वक्षारपर्वताविति ।

२ सोमणस-गंधमादण-विज्जुप्पभ-मालवंताणं वक्खारपव्वयाणं मंदरपव्वयंतेणं-पंच पंच जोयण-सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ताइं, पंच पंच गाउसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ताइं ।
—सम. १०८

मालवंतवक्खारपव्वयस्स णामहेऊ—

४१६. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—मालवंते वक्खारपव्वए मालवंते वक्खारपव्वए ?

उ०—गोयमा ! मालवंते णं वक्खारपव्वए तत्थ तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे सरिआगुम्मा णोमालियागुम्मा-जाव-मगदन्तिआगुम्मा, तेणं गुम्मा दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमेंति, जे णं तं मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं वायविधुअग्गसालामुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिअं करेंति । मालवन्ते अ इत्थ देवे महिड्ढिीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—मालवन्ते वक्खारपव्वए, मालवन्ते वक्खारपव्वए । अदुत्तरं च णं गोयमा ! -जाव-णिच्चे ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९२

माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत के नाम का हेतु—

४१६ प्र०—भगवन् ! माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत को माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत पर स्थान-स्थान पर अनेक सरिकागुल्म, नवमालिकागुल्म—यावत्—मगदन्तिका गुल्म हैं । वे गुल्म पंचरंगी कुसुमों को उत्पन्न करते हैं, जो (कुसुम) माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत के अत्यन्त समतल एवं रमणीय भूमिभाग को, वायु के संचार से, शाखाओं के अग्रभाग के हिलने से जो कुसुम झड़ते हैं, उन कुसुमों के द्वारा वे गुल्म सुशोभित करते हैं । (इसके अतिरिक्त) यहां माल्यवन्त नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है ।

इस कारण गौतम ! यह माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत कहलाता है । इसके अतिरिक्त गौतम ! (यह नाम) —यावत्—नित्य है ।

चित्तकूडवक्खारपव्वयस्स ठाणप्पमाणं—

४१७. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चित्तकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते[1] ?

उ०—गोयमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं, णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, कच्छविजयस्स पुरत्थिमेणं, सुकच्छविजयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चित्तकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ।

उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिण्णे, सोलस-जोअणसहस्साइं पंच य बाणउए जोअणसए दुण्णि य एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं, पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं, नीलवंतवासहरपव्वयं तेणं चत्तारिजोअण-सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउसयाइं उव्वेहेणं, तयणतरं च मायाए-मायाए उस्सेहोव्वेहपरिवुड्ढीए परिवड्ढमाणे परिवड्ढमाणे सीआमहाणई अंतेणं पंच-जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंचगाउअसयाइं उव्वेहेणं, अस्सक्खंधसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए, अच्छे सण्हे-जाव-पडिरूवे, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते ।

वण्णओ दुण्ह वि ।

चित्तकूडस्स णं वक्खारपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,-जाव-भुञ्जमाणा विहरंति ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९४

चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के स्थान और प्रमाण—

४१७. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में चित्रकूट नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! सीता महानदी के उत्तर में, नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, कच्छ विजय के पूर्व में तथा सुकच्छ विजय के पश्चिम में जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में चित्रकूट नामक वक्षस्कार पर्वत कहा गया है ।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा, पूर्व-पश्चिम में चौड़ा—

१६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन लम्बा और पाँच सौ योजन चौड़ा है । नीलवन्त वर्षधर पर्वत के पास इसकी ऊँचाई चार सौ योजन तथा गहराई चार सौ कोस की है । तदनन्तर अनुक्रम से ऊँचाई और गहराई बढ़ती बढ़ती सीता महानदी के पास पाँच सौ योजन की ऊँचाई व पाँच सौ कोस की गहराई हो जाती है । यह (वक्षस्कार पर्वत) अश्व-स्कन्ध के आकार का, सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ चिकना—यावत्—प्रतिरूप है । यह दोनों ओर से दो पद्मवरवेदिकाओं और दो वनखण्डों से घिरा हुआ है ।

इन दोनों का यहाँ वर्णन समझ लेना चाहिए ।

चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के ऊपर अति सम एवं रमणीय भूमिभाग कहा गया है—यावत्—वहाँ (देव-देवियाँ भोग) भोगते हुए रहते हैं ।

---

१ ठाणं ४, उ० २, सु० ३०२

चित्तकूडवक्खारपव्वयस्स णामहेऊ—

४१८. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—चित्तकूडवक्खारपव्वए चित्तकूडवक्खारपव्वए ?

उ०—गोयमा ! चित्तकूडे य इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—चित्तकूडवक्खारपव्वए चित्तकूडवक्खारपव्वए। रायहाणी उत्तरेणं।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९४

चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के नाम का हेतु—

४१८. प्र०—भगवन् ! चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत क्यों कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! यहाँ चित्रकूट नामक महर्धिक—**यावत्**—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है। इस कारण गौतम ! चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत कहा जाता है। राजधानी उत्तर में है।

पम्हकूडवक्खारपव्वयस्स ठाणप्पमाणं—

४१९. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे पम्हकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स दक्खिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, महाकच्छस्स पुरत्थिमेणं, कच्छावईए पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे पम्हकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते।

उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिण्णे, सेसं जहा चित्तकूडस्स,-जाव-भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत के स्थान और प्रमाण—

४१९. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में पद्मकूट (ब्रह्म) नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त (वर्षधर पर्वत) के दक्षिण में, सीता महानदी के उत्तर में, महाकच्छ (विजय) के पूर्व में एवं कच्छावती (विजय) के पश्चिम में, महाविदेह वर्ष में पद्म (ब्रह्म) कूट नामक वक्षस्कार पर्वत कहा गया है।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा और पूर्व-पश्चिम में चौड़ा। है शेष वर्णन चित्रकूट (वक्षस्कार पर्वत) के समान है—**यावत्**—वहाँ (देवादि) भोग भोगते हुए रहते हैं।

पम्हकूडवक्खारपव्वयस्स णामहेऊ—

४२०. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—पम्हकूडे वक्खारपव्वए, पम्हकूडे वक्खारपव्वए ?

उ०—गोयमा ! पम्हकूडे य इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—पम्हकूडे वक्खारपव्वए पम्हकूडे वक्खारपव्वए।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत के नाम का हेतु—

४२०. प्र०—भगवन् ! पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत, पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत क्यों कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! पद्मकूट नामक महर्धिक—**यावत्**—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है, इस कारण गौतम ! पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत कहा जाता है।

णलिणकूडवक्खारपव्वयस्स ठाणप्पमाणं—

४२१. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे णलिणकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, मंगलावइस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं, आवत्तस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे णलिणकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते, उत्तर-दाहिणायए पाईण-पडीणविच्छिण्णे।

सेसं जहा चित्तकूडस्स-जाव-आसयंति।

नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत के स्थान और प्रमाण—

४२१. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में नलिनकूट नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त (वर्षधर पर्वत) से दक्षिण में, सीता महानदी से उत्तर में, मंगलावती विजय से पश्चिम में तथा आवर्तविजय से पूर्व में महाविदेह वर्ष में नलिनकूट नामक वक्षस्कार पर्वत कहा गया है। यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा और पूर्व-पश्चिम में चौड़ा है।

शेष वर्णन चित्रकूट के समान है—**यावत्**—(वहाँ देव-देवियां) बैठते हैं।

नलिनकूटवक्खारपव्वयस्स णामहेऊ—

४२२. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—नलिणकूडे वक्खारपव्वए नलिनकूडेवक्खारपव्वए ?

नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत के नाम का हेतु—

४२२. प्र०—हे भगवन् ! नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत, नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत क्यों कहा जाता है ?

उ०—गोयमा ! नलिणकूडे य इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—नलिणकूडेवक्खारपव्वए, नलिणकूडे वक्खारपव्वए ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

उ०—हे गौतम ! यहाँ नलिनकूट नामक महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है ।

इस कारण हे गौतम ! नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत कहा जाता है ।

एगसेलवक्खारपव्वयस्स ठाणप्पमाणं—

४२३. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे एगसेले णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पुक्खलावत्तचक्कवट्टिविजयस्स पुरत्थिमेणं, पोक्खलावतीचक्कवट्टिविजयस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवंतस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं, एत्थ णं एगसेले णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ।

चित्तकूडगमेणं णेअव्वो-जाव-देवा आसयंति ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

एकशैल वक्षस्कार पर्वत के स्थान और प्रमाण—

४२३. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में एकशैल नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! पुष्कलावर्त्त चक्रवर्ती-विजय से पूर्व में, पुष्कलावती चक्रवर्ती-विजय से पश्चिम में, नीलवंत से दक्षिण में तथा शीता से उत्तर में एकशैल नामक वक्षस्कार पर्वत कहा गया है ।

चित्रकूट के समान इसका वर्णन जानना चाहिए—यावत्—यहाँ देव बैठते हैं ।

एगसेलवक्खारपव्वयस्स णामहेऊ—

४२४. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—एगसेले वक्खारपव्वए, एगसेले वक्खारपव्वए ?

उ०—गोयमा ! एगसेले य इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—एगसेले वक्खारपव्वए, एगसेले वक्खारपव्वए ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

एकशैल वक्षस्कार पर्वत के नाम का हेतु—

४२४. प्र०—भगवन् ! एकशैल वक्षस्कार पर्वत एकशैल वक्षस्कार पर्वत क्यों कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! यहाँ एकशैल नामक महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है—इस कारण गौतम ! एकशैल वक्षस्कार पर्वत एकशैल वक्षस्कार पर्वत कहा जाता है ।

सोमणसवक्खारपव्वयस्स ठाणप्पमाणं—

४२५. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सोमणसे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, मंदरस्स पव्वयस्स दाहिण-पुरत्थिमेणं, मंगलावईविजयस्स पच्चत्थिमेणं, देवकुराए पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सोमणसे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ।

उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीण-वित्थिन्ने ।

जहा मालवन्ते वक्खारपव्वए तहा, णवरं—सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे । णिसहवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउअसयाइ उव्वेहेणं, सेसं तहेव सव्वं ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९७

सौमनस वक्षस्कार पर्वत का स्थान और प्रमाण—

४२५. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में सौमनस नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, मन्दर पर्वत से दक्षिण-पूर्व में, मंगलावती विजय से पश्चिम में और देवकुरु से पूर्व में, जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में सौमनस नामक वक्षस्कार पर्वत कहा गया है ।

वह उत्तर-दक्षिण में लम्बा और पूर्व-पश्चिम में विस्तीर्ण है ।

इसकी वक्तव्यता माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत के समान है । विशेष यह है यह पर्वत सर्व रजतमय है, स्वच्छ है—यावत्—प्रतिरूप है । निषध नामक वर्षधर पर्वत के अन्त से चार सौ योजन ऊँचा और चार सौ गव्यूति गहरा है । शेष सब कथन उसी प्रकार है ।

सोमणसवक्खारपव्वयस्स णामहेऊ—

४२६. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सोमणसवक्खारपव्वए, सोमणसवक्खारपव्वए ?

उ०—गोयमा ! सोमणसे णं वक्खारपव्वए बहवे देवा य देवीओ य सोमा सुमणा, सोमणसे य इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—सोमणसे वक्खारपव्वए सोमणसे वक्खारपव्वए ।

अदुत्तरं च णं गोयमा !-जाव-णिच्चे ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९७

सौमनस वक्षस्कार पर्वत के नाम का हेतु—

४२६. प्र०—भगवन् ! सौमनस वक्षस्कार पर्वत सौमनस वक्षस्कार पर्वत क्यों कहा जाता है ?

उ०—सौमनस वक्षस्कार पर्वत पर बहुत से सौम्य और शुद्ध मन वाले देव-देवियाँ हैं और यहां सौमनस नामक महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है ।

इस कारण गौतम ! सौमनस वक्षस्कार पर्वत सौमनस वक्षस्कार पर्वत कहा जाता है ।

इसके अतिरिक्त गौतम ! (यह नाम)—यावत्—नित्य है ।

विज्जुप्पभवक्खारपव्वयस्स ठाणप्पमाणं—

४२७. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे विज्जुप्पभे णामं वक्खारपव्वए पन्नत्ते ?

उ०—गोयमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, मंदरस्स पव्वयस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं, देवकुराए पच्चत्थिमेणं, पम्हस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए पण्णत्ते ।

उत्तर-दाहिणायए एवं जहा मालवन्ते, णवरि सव्व-तवणिज्जमए अच्छे-जाव-देवा आसयन्ति ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १०१

विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत का स्थान और प्रमाण—

४२७. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में विद्युत्प्रभ नामक वक्षस्कार पर्वत कहां कहा गया है ?

उ०—गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, मंदर पर्वत से दक्षिण-पश्चिम में, देवकुरु के पश्चिम और पद्मविजय के पूर्व में, जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में विद्युत्प्रभ नामक वक्षस्कार पर्वत कहा गया है ।

वह उत्तर-दक्षिण में लम्बा है इत्यादि वर्णन माल्यवन्त के समान समझना चाहिए विशेष यह है कि यह पर्वत सर्वतपनीय-स्वर्णमय है, स्वच्छ है—यावत्—वहाँ देवगण विचरण करते हैं ।

विज्जुप्पभवक्खारपव्वयस्स णामहेऊ—

४२८. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए ?

उ०—गोयमा ! विज्जुप्पभे णं वक्खारपव्वए विज्जुमिव सव्वओ समंता ओभासेइ उज्जोवेइ पभासइ, विज्जुप्पभे य इत्थ देवे महिड्ढिए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए ।

अदुत्तरं च णं गोयमा !-जाव-णिच्चे ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १०१

विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के नाम का हेतु—

४२८. प्र०—भगवन् ! विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत को विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत बिजली की तरह सब दिशा-विदिशाओं में अवभासित, उद्योतित और प्रभासित होता रहता हैं और यहाँ विद्युत्प्रभ नामक महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है ।

इस कारण गौतम ! यह विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत कहलाता है ।

इसके अतिरिक्त गौतम ! यह नाम—यावत्—नित्य है ।

गंधमायणवक्खारपव्वयस्स ठाणप्पमाणं—

४२९. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे गंधमायणे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं, गंधिलावइस्स

गंधमादन वक्षस्कार पर्वत का स्थान और प्रमाण—

४२९. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में गंधमादन नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, मेरु पर्वत से उत्तर-पश्चिम में, गंधिलावतीविजय से पूर्व में एव

विजयस्स पुरच्छिमेणं, उत्तरकुराए पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे गंधमायणे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ।

उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणवित्थिन्ने, तीसं जोअण-सहस्साइं दुण्णि अ णउत्तरे जोअणसए छच्च य एगूण-वीसइभागे जोअणस्स आयामेणं, णीलवंतवासहर-पव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं, पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं, तयणंतरं च णं मायाए मायाए उस्सेहुव्वेह-परिवुड्ढीए परिवड्ढमाणे-परिवड्ढमाणे विक्खंभपरि-हाणीए परिहायमाणे-परिहायमाणे मंदरपव्वयंतेणं पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच गाउअसयाइं उव्वे-हेणं,[1] अंगुलस्स असंखेज्जइभागं विक्खंभेणं पण्णत्ते ।

गयदंतसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे। उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं, दोहिं य वण-संडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।

गंधमायणस्स णं वक्खारपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते-जाव-आसयंति ।

— जंबु० वक्ख० ४, सु० ८६

उत्तरकुरु से पश्चिम में महाविदेह वर्ष में गंधमादन नामक वक्ष-स्कार पर्वत कहा गया है ।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा, पूर्व-पश्चिम में चौड़ा एवं $३०२०९\frac{६}{१९}$ योजन लम्बा है । नीलवन्त वर्षधर पर्वत के पास चार सौ योजन ऊँचा, चार सौ कोस गहरा और पाँच सौ योजन चौड़ा है । तदनन्तर क्रमशः ऊँचाई और गहराई में बढ़ता-बढ़ता किन्तु विस्तार में कम होता-होता मेरु पर्वत के पास पाँच सौ योजन ऊँचा, पाँच सौ कोस गहरा एवं अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना चौड़ा कहा गया है ।

यह गजदन्त के आकार का है, सर्वात्मना रत्नमय एवं स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है । यह दोनों ओर से दो पद्मवरवेदिकाओं और दो वनखण्डों से सब ओर से घिरा हुआ है ।

गंधमादन वक्षस्कार पर्वत पर अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग कहा गया है—यावत्—(वहाँ देवगण क्रीड़ा करते हैं) बैठते हैं ।

गंधमायणवक्खारपव्वयस्स णामहेऊ—

४३०. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—गंधमायणे वक्खार-पव्वए गंधमायणे वक्खारपव्वए ?

उ०—गोयमा ! गंधमायणस्स णं वक्खारपव्वयस्स गंधे से जहाणामए कोट्ठपुडाण वा-जाव-पीसिज्जमाणाण वा, उक्किरिज्जमाणाण वा, विकिरिज्जमाणाण वा, परि-भुज्जमाणाण वा,-जाव-ओराला मणुण्णा-जाव-गंधा अभिणिस्सवंति भवे एयारूवे ।[2]

गंधमादन वक्षस्कार पर्वत के नाम का हेतु—

४३०. प्र०—भगवन् ! गंधमादन वक्षस्कार पर्वत को गंधमादन वक्षस्कार पर्वत क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! गंधमादन वक्षस्कार पर्वत की गंध क्या कोष्ठ नामक सुगंधी द्रव्य के पुट समान—यावत्—जो पीसे जा रहे हों, उत्कीर्ण किये जा रहे हों, बिखेरे जा रहे हों, उपभोग में लिये जा रहे हों—यावत्—उनसे जो उदार मनोज्ञ—यावत्—गंध निकलती है, वैसी है ?

---

१ सव्वेवि णं वक्खारपव्वया सीआ सीओआओ महानईओ मंदर पव्वयंतेणं पंच-पंचजोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच-पंच गाउय-उव्वेहेणं पण्णत्ता । —सम० १०७, सु०

२ इन बीस वक्षस्कार पर्वतों में से चार वक्षस्कार पर्वत गजदन्त जैसी आकृति वाले हैं—
इनके नाम हैं—(१) माल्यवन्त, (२) सौमनस, (३) विद्युत्प्रभ, (४) गंधमादन ।
स्थानांग २, उ० ३, सु० ८० के अनुसार चारों पर्वतों का प्रमाण समान है ।
सौमनस वक्षस्कार पर्वत और विद्युत्प्रभवक्षस्कार पर्वत देवकुरुक्षेत्र का विभाजन करते हैं । गंधमादन वक्षस्कार पर्वत और माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत उत्तरकुरुक्षेत्र का विभाजन करते हैं । शेष सोलह वक्षस्कार पर्वतों में से चार वक्षस्कार पर्वत (१) चित्रकूट, (२) पद्म (पक्ष्म) कूट (३) नलिनकूट और (४) एकशैल पर्वत सीता महानदी के उत्तरी किनारे पर हैं इनके प्रमाणादि का संक्षिप्त वर्णन यहाँ कहा गया है ।
(१) त्रिकूट (२) वैश्रमण, (३) अंजन और (४) मातंजन—ये चार वक्षस्कार पर्वत सीता महानदी के दक्षिणी किनारे पर हैं और ये सीता महानदी के उत्तरी किनारे पर स्थित चारों पर्वतों के समान प्रमाण वाले हैं । यथा—एवं जह चेव सीयाए महाणईए उत्तरं पासं तह चेव दक्खिणिल्लं भाणियव्वं । — जंबु० वक्ख० ४, सु० ९३ (क्रमशः)

णो इणट्ठे समट्ठे ।

नहीं, ऐसा नहीं है ।

गंधमायणस्स णं इत्तो इट्ठतराए चेव-जाव-गंधे पण्णत्ते ।

गंधमादन पर्वत की गंध उनसे भी अधिक इष्ट है—इष्टतर —यावत्—मनोज्ञ गंध कही गई है ।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—गंधमायणे वक्खारपव्वए गंधमायणे वक्खारपव्वए ।

इस कारण गौतम ! यह गंधमादन (अपनी गंध से मतवाला बना देने वाला) वक्षस्कार पर्वत गंधमादन वक्षस्कार पर्वत कहलाता है ।

गंधमायणे अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, अदुत्तरं च णं गोयमा ! सासए णामधिज्जे इति । —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८९

यहाँ गंधमादन नामक महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है । इसके अतिरिक्त गौतम ! यह नाम शाश्वत कहा गया है ।

जंबुद्दीवे सव्वकूड संखा—

जम्बूद्वीप में सर्वकूट संख्या—

४३१. प०—१. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइया वासहरकूडा पण्णत्ता ?

२. केवइया वक्खारकूडा ?

३. केवइया वेअड्ढकूडा ?

४. केवइया मंदरकूडा पण्णत्ता ?

उ०—१. गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे छप्पण्णं वासहरकूडा पण्णत्ता[1] ।

२. छण्णउइं वक्खारकूडा[2] ।

३. तिण्णि छलुत्तरा वेअड्ढकूडसया[3] ।

४३१. प्र०—(१) हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में वर्षधर पर्वतों के कूट (शिखर) कितने कहे गये हैं ?

(२) वक्षस्कार पर्वतों के कूट कितने कहे गये हैं ?

(३) (दीर्घ) वैताढ्यपर्वतों के कूट कितने कहे गये हैं ?

(४) मंदर (मेरु) पर्वत के कूट कितने कहे गये हैं ?

उ०—(१) हे गौतम ! जम्बूद्वीप द्वीप में वर्षधर पर्वतों के छप्पन कूट कहे गये हैं ।

(२) वक्षस्कार पर्वतों के छिनवे कूट हैं ।

(३) (दीर्घ) वैताढ्यपर्वतों के तीन सौ छ कूट हैं ।

(क्रमशः) इस आगमोक्त प्रमाण के अनुसार (१) त्रिकूटादि चारों पर्वतों की समान प्रमाणता स्वतः सिद्ध है ।
इसी प्रकार सीतोदा महानदी के दक्षिणी किनारे पर । (१) अंकावर्त, (२) पक्ष्मावती, (३) आशीविष, (४) सुखावह है, तथा सीतोदा महानदी के उत्तरी किनारे पर (१) चन्द्रपर्वत, (२) सूर्यपर्वत, (३) नागपर्वत, (४) देव पर्वत है ।
ये आठों पर्वत सीतामहानदी के दक्षिणी तथा उत्तरी किनारे स्थित पूर्वोक्त आठों पर्वतों के समान प्रमाण वाले हैं ।
(१)........सीतोदाए दाहिणिल्लं उत्तरिल्लं च.......
(२).......दाहिणिल्ले........उत्तरिल्ले वि एमेव भाणियव्वे जहा सीयाए........ —जम्बु० वक्ख० सु० १०२
आगमोक्त इन दो सूचनाओं के अनुसार सीतोदा महानदी के दक्षिणी और उत्तरी किनारों पर स्थित आठों पर्वतों का प्रमाण सीता महानदी के दक्षिणी तथा उत्तरी किनारों पर स्थित आठों पर्वतों के समान हैं ।

१ "षट्पञ्चाशद्वर्षधरकूटानि-तथाहि,

क्षुद्रहिमवत्-शिखरिणोः प्रत्येकमेकादश,	(११ + ११)	२२
महाहिमवद्रुक्मिणोः प्रत्येकमष्टौ,	(८ + ८)	१६
निषध-नीलवतोः प्रत्येकं नव,	(९ + ९)	१८
	सर्वसंख्या	५६

२ "वक्षस्कारकूटानि षण्णवतिः, (९६) तद्यथा—
तत्र वक्षस्कारेषु षोडशसु, प्रत्येकं चतुष्कसद्भावात् ६४ (१६×४)
गजदन्ताकृतिवक्षस्कारेषु गन्धमादन-सौमनसयोः सप्त, १४ (७+७)
माल्यवद्विद्युत्प्रभयोः नव, १८ इति उभय मिलने सर्वसंख्या", ९६

३ "त्रीणि षडुत्तराणि दीर्घवैताढ्यकूटशतानि—
[illegible] प्रत्येकं नवकूटसद्भावात् [illegible]" ।

४. नव मंदरकूडा पण्णत्ता[1]।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे चत्तारि सत्तट्ठा कूडसया भवंतीतिमक्खायं ति।[2]

—जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

(४) मंदर (मेरु) पर्वत के नौ कूट कहे गये हैं।

इस प्रकार जम्बूद्वीप द्वीप में पहले पीछे के सब मिलाकर चार सौ सडसठ कूट होते हैं—ऐसा कहा है।

---

१ मेरौ नव, तानि च नन्दनवनगतानि ग्राह्याणि, न भद्रशालवनगतानि दिग्हस्तिकूटानि, तेषां भूमिप्रतिष्ठितत्वेन स्वतन्त्रकूटत्वादिति''।

—जम्बू० वक्ष० ६, सूत्र १२५ की वृत्ति

२ जम्बूद्वीप में ६ वर्षधर पर्वतों के कूट ५६
,, २० वक्षस्कार पर्वतों के कूट ९६
,, ३४ दीर्घवैताढ्यपर्वतों के कूट ३०६
,, १ मेरुपर्वत के कूट ९

इकसठ (६१) पर्वतों के सर्व कूट संख्या— ४६७

जम्बूद्वीप स्थित पर्वतों के कूटों (शिखरों) की गणना इस प्रकार है—

६१ कूट वाले पर्वत	कूट संख्या ४६७
६ वर्षधर पर्वतों के कूट	५६
२० वक्षस्कार पर्वतों के कूट	९६
३४ दीर्घ वैताढ्यपर्वतों के कूट	३०६
१ मेरु पर्वत के कूट	९
६१	कूट ४६७

(१) ६ वर्षधर पर्वतों के छप्पन कूट—

(१) हिमवन्त पर्वत के कूट	११
(२) शिखरी पर्वत के कूट	११
(३) महाहिमवंत पर्वत के कूट	८
(४) रुक्मी पर्वत के कूट	८
(५) निषध पर्वत के कूट	९
(६) नीलवन्त पर्वत के कूट	९
	५६

(२) २० वक्षस्कार पर्वतों के छिनवे कूट—

(१६) वक्षस्कार पर्वतों के कूट ६४
(प्रत्येक वक्षस्कार पर्वत पर चार-चार कूट)

(४) गजदन्त पर्वतों के कूट ३२

(१) सौमनस पर्वत के कूट	७
(२) गंधमादन पर्वत के कूट	७
(३) विद्युत्प्रभ पर्वत के कूट	९
(४) माल्यवन्त पर्वत के कूट	९

३२ सर्व कूट =९६

(३) ३४ दीर्घवैताढ्यपर्वतों के तीन सौ छ कूट—

महाविदेह के प्रत्येक विजय में एक दीर्घ वैताढ्यपर्वत है।
बत्तीस विजयों में बत्तीस दीर्घ वैताढ्यपर्वत हैं
प्रत्येक दीर्घ वैताढ्यपर्वत के नो कूट हैं

बत्तीस दीर्घ वैताढ्यपर्वतों के कूट (३२ × ९)	२८८
भरत क्षेत्र स्थित दीर्घ वैताढ्यपर्वत के कूट	९
ऐरवत क्षेत्र स्थित दीर्घ वैताढ्यपर्वत के कूट	९

२८८+९+९=३०६

(४) मेरु पर्वत के (नन्दनवन में) नवकूट

कूटरहित पर्वत—

१ चित्रकूट
१ विचित्रकूट
२ यमक पर्वत
२०० कांचनक पर्वत
४ वृत्तवैताढ्य पर्वत[1]

२०८

मेरु के भद्रशालवन में दिग्हस्तिकूट[2]	८
१६ वृक्षकूट जम्बूकवन में कूट	८
,, ,, शाल्मलिवन में कूट	८
३४ ऋषभ पर्वत के कूट[3]	३४
	५८

---

१ वृत्त वैताढ्येषु च कूटाभावः।

—जम्बु० वक्ष० ६, सूत्र १२५ की वृत्ति

(क्रमशः)

छप्पण्णं वासहरकूडा—

१. चुल्लहिमवंतवासहरपव्वए एक्कारसकूडा—

४३२. प०—चुल्लहिमवंते णं भंते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! इक्कारस कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धाययणकूडे, २ चुल्लहिमवंतकूडे, ३ भरहकूडे, ४ इलादेवी कूडे, ५ गंगादेवीकूडे, ६ सिरिदेवीकूडे, ७ रोहिअंसकूडे, ८ सिंधुदेवीकूडे, ९ सूरादेवीकूडे, १० हेमवयकूडे, ११ वेसमणकूडे ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७५

वर्षधर पर्वतों के छप्पन कूट—

१. क्षुद्रहिमवन्त वर्षधर पर्वत के इग्यारह कूट—

४३२. प्र०—हे भगवान ! क्षुद्र हिमवन्त वर्षधर पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! इग्यारह कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) क्षुद्र हिमवान्कूट, (३) भरतकूट, (४) इलादेवीकूट, (५) गंगादेवीकूट, (६) श्रीदेवीकूट, (७) रोहितांसाकूट, (८) सिंधुदेवीकूट, (९) सुरादेवीकूट, (१०) हैमवतकूट, (११) वैश्रमणकूट ।

सिद्धाययणकूडस्स अवट्ठिई पमाणं च—

४३३. प०—कहि णं भंते ! चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए सिद्धाययण-कूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पुरच्छिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, चुल्ल-हिमवंतकूडस्स पुरत्थिमेणं—एत्थ णं सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ।

पंच जोयणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं ।
मूले पंचजोयणसयाइं विक्खंभेणं ।
मज्झे तिण्णि अ पण्णत्तरे जोयणसए विक्खंभेणं ।
उप्पि अड्ढाइज्जे जोयणसए विक्खंभेणं ।

सिद्धायतन कूट की अवस्थिति और प्रमाण—

४३३. प्र०—हे भगवन् ! क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत का 'सिद्धायतन कूट नामक कूट कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में, क्षुद्र हिमवान् कूट से पूर्व में 'सिद्धायतन कूट' नामक कूट कहा गया है ।

यह पाँच सौ योजन ऊपर की ओर ऊँचा है ।
मूल में पाँच सौ योजन चौड़ा है ।
मध्य में तीन सौ पचहत्तर योजन चौड़ा है ।
ऊपर अढाई सौ योजन चौड़ा है ।

(क्रमशः पृष्ठ २७० का)

२ तेषां भूमिप्रतिष्ठितत्वेन स्वतन्त्रकूटत्वात् । —जम्बू० वक्ष० ६, सूत्र १२५ की वृत्ति

३ एषां गिर्यनाधारत्वेन स्वतन्त्रगिरित्वान्न कूटेषुगणना । —जम्बू० वक्ष० ६, सूत्र १२५ की वृत्ति

मेरु पर्वत के चार दिशाओं में स्थित चार रुचक पर्वतों के बत्तीस कूटों की गणना भी जम्बूद्वीप स्थित पर्वत कूटों की गणना में सम्मिलित नहीं है—(३२ पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं—)

"जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं रुयगवरे पव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—(१) रिट्ठे (२) तवणिज्ज (३) कंचण. (४) रयत (५) दिसासोत्थिए (६) पलंबे य ।
(७) अंजणे (८) अंजणपुलए, रुयगस्स पुरत्थिमे कूडा ॥"

"जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं रुयगवरे पव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—(१) कणए (२) कंचणे, (३) पउमे, (४) णलिणे (५) ससि (६) दिवायरे चेव ।
(७) वेसमणे (८) वेरुलिए, रुयगस्स उ दाहिणे कूडा ॥"

"जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं रुयगवरे पव्वए अट्ठकूडा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—(१) सोत्थिते य (२) अमोहे य, (३) हिमवं (४) मंदरे तहा ।
(५) रुअगे (६) रुयगुत्तमे (७) चंदे, अट्ठमे य (८) सुदंसणे ॥"

"जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रुयगवरे पव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—(१) रयण (२) रयणुच्चए या (३) सव्वरयण (४) रयणसंचए चेव ।
(५) विजये य (६) वेजयंते, (७) जयंते, (८) अपराजिते ॥"

—ठाण ८, सु० ६४३

मूले एगं जोयणसहस्सं पंच य एगासीए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं ।

मूल में पन्द्रह सौ इक्यासी योजन से कुछ अधिक इसकी परिधि है।

मज्झे एगं जोयणसहस्सं एगं च छलसीअं जोयणसयं किंचि विसेसूणं परिक्खेवेणं ।

मध्य में इग्यारह सौ छियासी योजन से कुछ कम की परिधि है।

उप्पिं सत्तइक्काणउए जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं ।

ऊपर सात सौ इकरानवें योजन से कुछ कम की परिधि है।

मूले वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए गोपुच्छ-संठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे ।

यह मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर से पतला है। गाय की पूँछ के आकार का है सर्व रत्नमय है स्वच्छ है—यावत्—सुन्दर है।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।

यह एक पद्मवरवेदिका एवं एक वनखण्ड से सभी ओर से घिरा हुआ है।

सिद्धाययणस्स कूडस्स णं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमि-भागे पण्णत्ते,-जाव-तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमि-भागस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं महं एगे सिद्धाय-यणे पण्णत्ते ।

उस सिद्धायतन कूट पर अधिक सम रमणीय भूभाग कहा गया है—यावत्—उस अधिक सम रमणीय भूभाग के ठीक मध्य भाग में एक महान् सिद्धायतन कहा गया है।

पण्णासं जोयणाइं आयामेणं, पणवीसं जोयणाइं विक्खं-भेणं, छत्तीसं जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं-जाव-जिणपडिमा वण्णओ भाणियव्वो । —जंबु० वक्ख० ४, सु० ७५

वह सिद्धायतन पचास योजन लम्बा है, पच्चीस योजन चौड़ा है, छत्तीस योजन ऊपर की ओर ऊँचा है—**यावत्—यहाँ जिन-प्रतिमा का वर्णन कहना चाहिए।**

चुल्लहिमवंतकूडस्स अवट्ठिई पमाणं च

क्षुद्र हिमवान कूट की अवस्थिति और प्रमाण—

४३४. प०—कहि णं भंते ! चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए चुल्लहिम-वंतकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

४३४. प्र०—हे भगवन् ! क्षुद्र वर्षधर पर्वत पर क्षुद्र हिमवान् कूट नामक कूट कहाँ कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! भरहकूडस्स पुरत्थिमेणं, सिद्धाययणकूडस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए चुल्लहिमवंतकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ।

उ०—हे गौतम ! भरतकूट से पूर्व में, सिद्धायतन कूट से पश्चिम में क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत पर क्षुद्र हिमवान् कूट नामक कूट कहा गया है।

एवं जो चेव सिद्धाययणकूडस्स उच्चत्त-विक्खंभ-परिक्खेवो-जाव-बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहु-मज्झदेसभाए—एत्थ णं महं, एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते ।

सिद्धायतन कूट की ऊँचाई चौड़ाई और परिधि आदि जो पहले कही गई है इसकी भी वही है—यावत्—अधिक समरमणीय भूभाग के ठीक मध्यभाग में एक महान् प्रासादावतंसक कहा गया है।

वासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उद्धं उच्चत्तेणं, इक्क-तीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं ।

यह साढ़े वासठ योजन ऊपर की ओर ऊँचा है और सवा इकतीस योजन चौड़ा है।

अब्भुग्गयमूसिअपहसिए विव विविहमणिरयण-भत्ति-चित्ते, वाउद्धुअ-विजय-वेजयंती-पडाग-छत्ताइछत्तकलिए तुंगे, गगणतलमभिलंघमाणसिहरे, जालंतरयणपंज-रुम्मीलिएव्व मणिरयणथूभिआए, वियसिय-पुण्डरीय-तिलय-रयणद्ध चंदचित्ते, णाणामणिमयदामालंकिए अंतो बहिं च सण्हे वइर-तवणिज्ज-रुइल-वालुगापत्थडे, सुहफासे सस्सिरीअरूवे पासाईए-जाव-पडिरूवे ।

वह प्रबल एवं शुभ्रप्रभापटल के कारण मानो हँस रहा है। विविध प्रकार के मणि-रत्नों से जिसकी भित्तियाँ चित्रित हैं, वायु से उड़ती हुई विजय-वैजयंती पताकाओं एवं छत्रातिछत्रों (छत्रों के ऊपर बने छत्रों) से सुशोभित है, ऊँचा है, जिसका शिखर गगन तल को छूने वाला है, जिस पर जालियों के बीच खुले हुए रत्न-पिंजर के समान मणि-रत्नों की स्तूपिका है, वह विकसित शतपत्र, पुण्डरीक तिलक एवं रत्नमय अर्धचन्द्रों से चित्रित है, नाना मणिमय मालाओं से अलंकृत है, उसके अन्दर और बाहर स्निग्ध हीरे एवं रक्तसुवर्ण की मनोहर वालुका के पटल हैं।

वह सुखद स्पर्श वाला, शोभायमान रूप वाला, प्रसन्नता प्रदान करने वाला है—यावत्—सुन्दर है।

तस्स णं पासायवडेंसगस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,-जाव-सीहासणं सपरिवारं।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७५

इस प्रासादावतंसक के अन्दर अतिसमरमणीय भूमाग कहा गया है—यावत्—सपरिवार सिंहासन है....

चुल्लहिमवंतकूडस्स णामहेऊ—

४३५. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"चुल्लहिमवंतकूडे, चुल्लहिमवंतकूडे ?"

उ०—गोयमा ! चुल्लहिमवंते णामं देवे महिड्ढीए-जाव-परिवसइ। से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"चुल्लहिमवंतकूडे, चुल्लहिमवंतकूडे।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७५

क्षुद्र हिमवान कूट के नाम का हेतु—

४३५. प्र०—हे भगवन् ! क्षुद्र हिमवान् कूट क्षुद्र हिमवान् कूट क्यों कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! क्षुद्र हिमवान् नाम का महर्धिक देव—यावत्—रहता है। इस कारण हे गौतम ! क्षुद्र हिमवान् कूट—क्षुद्र हिमवान कूट कहा जाता है।

दो कूडा बहुसमतुल्ला—

४३६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णाइवट्टंति, आयाम-विक्खंभुच्चत्त-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१ चुल्लहिमवंतकूडे चेव, २ वेसमणकूडे चेव।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८७

दो कूट अधिक सम एवं तुल्य हैं—

४३६. जम्बूद्वीप द्वीप में मंदरपर्वत के दक्षिण में क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं, ये अधिक सम एवं तुल्य हैं इनमें एक-दूसरे से विशेषता एवं नानापन नहीं है, लम्बाई-चौड़ाई ऊँचाई, आकार एवं परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) क्षुद्र हिमवानकूट (२) वैश्रमणकूट।

चुल्लहिमवंता रायहाणी—

४३७. प०—कहि णं भंते ! चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स चुल्लहिमवंता णामं रायहाणी पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चुल्लहिमवंतकूडस्स दक्खिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णं जंबुद्दीवं दीवं दक्खिणेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता इत्थ णं चुल्लहिमवंतस्स गिरिकुमारस्स देवस्स चुल्लहिमवंता णामं रायहाणी पण्णत्ता।

बारस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं।

एवं विजयरायहाणी भाणियव्वा।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७५

क्षुद्र हिमवन्ता राजधानी—

४३७. प्र०—हे भगवन् ! क्षुद्र हिमवन्त-गिरिकुमार देव की क्षुद्र हिमवन्ता नाम की राजधानी कहाँ कही गई है ?

उ०—हे गौतम ! क्षुद्र हिमवान् कूट के दक्षिण में तिरछे असंख्य द्वीप-समुद्र लांघने पर अन्य जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिण में बारह हजार योजन पर्यन्त अवगाहन करने पर क्षुद्र हिमवन्त गिरि कुमार देव की "क्षुद्र हिमवन्ता" नाम की राजधानी कही गई है।

यह बारह हजार योजन की लम्बी-चौड़ी है।

शेष सारा वर्णन (विजय देव की) विजया राजधानी के समान कहना चाहिए।

भरहकूडाईणं वत्तव्वया णिद्देसो—

४३८. एवं अवसेसाण वि कूडाणं वत्तव्वया णेयव्वा।

आयाम-विक्खंभ-परिक्खेव-पासाय-देवयाओ सीहासणपरिवारो अट्ठो अ देवाण य देवीण य रायहाणीओ णेयव्वाओ।

चउसु वि कूडेसु देवा १ चुल्लहिमवंत, २ भरह, ३ हेमवय, ४ वेसमणकूडेसु, सेसेसु देवयाओ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७५

भरतकूट आदि कूटों के कथन का निर्देश—

४३८. इसी प्रकार शेष कूटों का कथन भी जानना चाहिए।

कूटों की लम्बाई, चौड़ाई, परिधि, प्रासाद, देवता, सिंहासन परिवार नाम हेतु, देव-देवियां तथा राजधानियां जानना चाहिए।

विशेष—इन चार कूटों पर देवता हैं—(१) क्षुद्रहिमवान कूट, (२) भरतकूट, (३) हैमवतकूट और (४) वैश्रमणकूट। शेष कूटों पर देवियां हैं।

२. महाहिमवंतवासहरपव्वए अट्ठकूडा—

४३९. प०—महाहिमवंते णं भंते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अट्ठकूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धाययणकूडे, २ महाहिमवंतकूडे, ३ हेमवयकूडे, ४ रोहियकूडे, ५ हिरिदेवीकूडे, ६ हरिकंतकूडे, ७ हरिवासकूडे, ८ वेरुलियकूडे ।[1]

एवं चुल्लहिमवंतकूडाणं जा चेव वत्तव्वया सच्चेव णेयव्वा । —जम्बु० वक्ख० ४, सु० ८२

दो कूडा बहुसमतुल्ला—

४४०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वयस्स दाहिणेणं महाहिमवंते वासहर-पव्वए दो कूडा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्ण-मण्णं नाइवट्टन्ति, आयाम-विक्खंभुच्चत्त-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१ महाहिमवंतकूडे चेव, २ वेरुलियकूडे चेव ।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८७

३. णिसहवासहरपव्वए नवकूडा—

४४१. प०—णिसढे णं भंते ! वासहरपव्वए णं कति कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धाययणकूडे, २ णिसढकूडे, ३ हरिवासकूडे, ४ पुव्वविदेहकूडे, ५ हरिकूडे, ६ धिईकूडे, ७ सीओआ-कूडे, ८ अवरविदेहकूडे, ९ रुअगकूडे ।[2]

एवं चुल्लहिमवंतकूडाणं जा चेव वत्तव्वया सच्चेव णेयव्वा । —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८४

दो कूडा बहुसमतुल्ला—

४४२. एवं (जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं) णिसढे वास-हरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं, तं जहा—१ णिसढकूडे चेव, २ रुयगप्पभे चेव ।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८७

२. महाहिमवान् वर्षधर पर्वत पर आठ कूट—

४३९. प्र०—हे भगवन् ! महाहिमवान् वर्षधर पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! आठ कूट कहे गये हैं यथा—

(१) सिद्धायतन कूट, (२) महाहिमवान् कूट, (३) हैमवत कूट, (४) रोहितकूट, (५) ह्रीदेवीकूट, (६) हरिकंताकूट, (७) हरिवर्षकूट, (८) वैडूर्यकूट ।

क्षुद्र हिमवान् पर्वत के कूटों का जो कथन है वही इनका जानना चाहिए ।

दो कूट अधिक सम एवं तुल्य है—

४४०. जम्बूद्वीप द्वीप में मंदरपर्वत के दक्षिण में महाहिमवान् वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं, ये अधिक सम एवं तुल्य हैं, इनमें एक-दूसरे से विशेपता एवं नानापन नहीं है, लम्बाई चौड़ाई ऊँचाई, आकार एवं परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) महाहिमवान् कूट, (२) वैडूर्यकूट ।

३. निषध वर्षधर पर्वत पर नो कूट—

४४१. प्र०—हे भगवन् ! निषध वर्षधर पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! नौ कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) निषधकूट, (३) हरिवर्षकूट, (४) पूर्व विदेहकूट, (५) ह्रीकूट, (६) धृतिकूट, (७) शीतोदाकूट, (८) अपरविदेहकूट, (९) रुचककूट ।

क्षुद्र हिमवान् पर्वत के कूटों का जो कथन है, वही इनका जानना चाहिए ।

दो कूट अधिक सम एवं तुल्य है—

इसी प्रकार (जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत के दक्षिण में) निषध वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं, ये अधिक सम एवं तुल्य है—यावत्—परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते हैं, यथा—(१) निषध कूट, (२) रुचक प्रभकूट ।

---

१ जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं महाहिमवंते वासहरपव्वए अट्ठकूडा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—(१) सिद्धे (२) महाहिमवंते, (३) हिमवंते (४) रोहिया (५) हरीकूडे ।
(६) हरिकन्ता, (७) हरिवासे, (८) वेरुलिए चेव कूडा उ ॥ —ठाणं ८, सु० ६४३

२ जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं णिसहे वासहरपव्वए णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—(१) सिद्धे (२) णिसहे (३) हरिवास, (४) विदेह (५) हरि (६) धिति अ (७) सीतोदा ।
(८) अवरविदेहे (९) रुयगे, णिसहे कूडाण णामाणि ॥ —ठाणं ९, सु० ६८९

४ णीलवंत वासहरपव्वए णव कूडा—

४४३. प०—णीलवंते णं भंते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धाययणकूडे, २ णीलवंतकूडे, ३ पुव्वविदेहकूडे, ४ सीआकूडे, ५ कित्तिकूडे, ६ णारिकंताकूडे, ७ अवरविदेहकूडे, ८ रम्मगकूडे, ९ उवदंसणकूडे ।[1]

सव्वे एए कूडा पंचसइया ।

रायहाणीओ उत्तरेणं ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ११०

४. नीलवंत वर्षधर पर्वत पर नौ कूट—

४४३. प्र०—हे भगवन् ! नीलवंत वर्षधर पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! नौ कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) नीलवंतकूट, (३) पूर्वविदेहकूट, (४) सीताकूट, (५) कीर्तिकूट, (६) नारिकान्ताकूट, (७) अपरविदेहकूट, (८) रम्यक्कूट, (९) उपदर्शनकूट ।

ये सभी कूट पांच सौ योजन ऊंचे हैं ।

(इन कूट-देवों की) राजधानियां (मंदर पर्वत से) उत्तर में है ।

दो कूडा बहुसमतुल्ला—

४४४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं णीलवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं, तं जहा—१ णीलवंतकूडे चेव, २ उवदंसणकूडे चेव ।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८७

दो कूट अधिक सम एवं तुल्य हैं—

४४४. जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत के उत्तर में नीलवंत वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं, ये अधिक सम एवं तुल्य हैं—यावत्—परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) नीलवंत कूट, (२) उपदर्शनकूट ।

५. रुप्पी वासहरपव्वए अट्ठकूडा—

४४५. प०—रुप्पिमि णं भंते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अट्ठकूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धाययणकूडे, २ रुप्पिकूडे, ३ रम्मकूडे, ४ नरकंतकूडे, ५ बुद्धिकूडे, ६ महापुण्डरीअकूडे, ७ रुप्पकूलाकूडे, ८ हेरण्णवयकूडे[2] (मणिकञ्चणकूडे ।)

सव्वे वि एए कूडा पंचसइया ।

रायहाणीओ उत्तरेण ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

५. रुक्मी वर्षधर पर्वत पर आठ कूट—

४४५. प्र०—हे भगवन् ! रुक्मी वर्षधर पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! आठ कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) रुक्मीकूट, (३) रम्यक्कूट (४) नरकान्ताकूट, (५) बुद्धिकूट, (६) महापुण्डरीककूट, (७) रुप्यकूलाकूट, (८) हैरण्यवतकूट (मणि-कंचनकूट) ।

ये सभी कूट पांच सौ योजन ऊंचे हैं ।

(इन कूट-देवों की) राजधानियां (मंदर पर्वत से) उत्तर में है ।

दो कूडा बहुसमतुल्ला—

४४६. एवं (जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं) रुप्पिंमि वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता-जाव-परिणाहेणं, तं जहा—१ रुप्पिकूडे चेव, २ मणिकंचणकूडे चेव ।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८७

दो कूट अधिक सम एवं तुल्य हैं—

४४६. इसी प्रकार (जम्बूद्वीप द्वीप में मंदरपर्वत के उत्तर में) रुक्मी वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं; ये अधिक सम एवं तुल्य हैं—यावत् परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) रुक्मीकूट, (२) मणि कंचनकूट ।

---

१ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स, उत्तरे णं णीलवंते वासहरपव्वए णवकूडा पण्णत्ता तं जहा—
गाहा—(१) सिद्धे (२) णीले (३) पुव्वविदेहे, (४) सीता य (५) कित्ति (६) णारी य ।
(७) अवरविदेहे (८) रम्मगकूडे (९) उवदंसणे चेव ॥ —ठाणं ९, सु० ६८९

२ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं रुप्पिंमि वासहरपव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता तं जहा—
गाहा—(१) सिद्धे (२) रुप्पी (३) रम्मग (४) णरकंता (५) बुद्धि (६) रुप्पकूडे य ।
(७) हिरण्णवते (८) मणिकंचणे य रुप्पिंमि कूडा उ ॥ —ठाणं ८, सु० ६४३

६. सिहरीवासहरपव्वए इक्कारसकूडा—

४४७. प०—सिहरिम्मि णं भंते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! इक्कारसकूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धाययणकूडे, २ सिहरीकूडे, ३ हेरण्णवयकूडे, ४ सुवण्णकूलाकूडे, ५ सुरादेवीकूडे, ६ रत्ताकूडे, ७ लच्छीकूडे, ८ रत्तवईकूडे, ९ इलादेवीकूडे, १० एरवयकूडे, ११ तिगिच्छकूडे ।

सव्वे वि एए कूडा पंचसइआ ।[1]

रायहाणी उत्तरेणं ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

६. शिखरीवर्षधर पर्वत पर इग्यारह कूट—

४४७. प्र०—हे भगवन् ! शिखरी वर्षधर पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! इग्यारह कूट कहे गये हैं । यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) शिखरीकूट, (३) हैरण्यवतकूट, (४) सुवर्णकूलाकूट, (५) सुरादेवीकूट, (६) रक्ताकूट, (७) लक्ष्मीकूट, (८) रक्तवतीकूट, (९) इलादेवीकूट, (१०) ऐरवतकूट, (११) तिगिच्छकूट ।

ये सभी कूट पाँच सौ योजन ऊँचे हैं ।

(इन कूट-देवों की) राजधानियाँ (मदरपर्वत से) उत्तर में है ।

दो कूडा बहुसमतुल्ला—

४४८. एवं (जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं) सिहरिम्मि वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं, तं जहा—१ सिहरीकूडे चेव, २ तिगिंछिकूडे चेव ।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८७

दो कूट अधिक सम एवं तुल्य हैं—

४४८. इसी प्रकार (जम्बूद्वीप में मंदर पर्वत के उत्तर में) शिखरी वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं, ये अधिक सम एवं तुल्य हैं—यावत्—परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) शिखरीकूट, (२) तिगिच्छकूट ।

छण्णउइं वक्खारकूडा—

वक्षस्कार कूट छिनवे—

सोडससु सरल वक्खारपव्वएसु चउसट्ठी कूडा—

सोलह सरल वक्षस्कार पर्वतों पर चौसठ कूट—

चित्तकूड-वक्खारपव्वए चत्तारि कूडा—

चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत पर चार कूट—

४४९. प०—चित्तकूडे णं भंते ! वक्खारपव्वए कतिकूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धाययणकूडे, २ चित्तकूडे, ३ कच्छकूडे, ४ सुकच्छकूडे, समा उत्तर-दाहिणेणं परुप्परंति ।[2]

४४९. प्र०—हे भगवन् ! चित्रकूट वक्षस्कार पर्वतों पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! चार कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) चित्रकूट, (३) कच्छकूट, (४) सुकच्छकूट, चारों कूट उत्तर-दक्षिण में परस्पर सम है ।

---

१ (क) सव्वे वि णं वासहरकूडा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मूले पंच पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता ।

—सम० १०८, सु० २

(ख) जम्बू-मंदर-दाहिणुत्तरे णं दुवालसकूडा—

जम्बू-मंदर-दाहिणे णं छ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) चुल्लहिमवंत कूडे, (२) वेसमणकूडे, (३) महाहिमवंतकूडे, (४) वेरुलियकूडे, (५) णिसढकूडे, (६) रुयगकूडे ।

जम्बू-मंदर-उत्तरे णं छ कूडा पण्णत्ता तं जहा—

(१) णीलवंतकूडे, (२) उवदंसणकूडे, (३) रुप्पिकूडे, (४) मणिकंचणकूडे, (५) सिहरीकूडे, (६) तिगिच्छकूडे ।

—ठाणं ६, सु० ५२२

२ परस्परमेतानि चत्वार्यपि उत्तर-दक्षिणभावेन समानि-तुल्यानीत्यर्थः तथाहि-प्रथमं सिद्धायतनकूटं द्वितीयस्य चित्रकूटस्य दक्षिणस्यां, चित्रकूटं च सिद्धायतनकूटस्योत्तरस्यां एवं प्राक्तनं प्राक्तनं अग्रेतनाद् अग्रेतनाद्दक्षिणस्यां अग्रेतनमग्रेतन प्राक्तनात् प्राक्तनाद् उत्तरस्यां ज्ञेयं....

पढमं सीआए उत्तरेणं, चउत्थए नीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं—एत्थ णं चित्तकूडे णामं देवे[1] महिड्ढीए-जाव-रायहाणी[2] मेत्ति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९४

प्रथम कूट सीता (महानदी) के उत्तर में है, चतुर्थकूट नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिण में है, इस पर्वत पर चित्रकूट नाम का महर्धिक देव रहता है—यावत्—राजधानी मेरु से उत्तर में है।

पम्हकूडवक्खारपव्वए चत्तारि कूडा—

४५०. प०—पम्हकूडे णं भंते ! वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! पम्हकूडे चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१ सिद्धाययणकूडे, २ पम्हकूडे, ३ महाकच्छकूडे, ४ कच्छावइकूडे।

एवं-जाव-[3] अट्ठो।

४५१. प०—से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ—"पम्हकूडे, पम्हकूडे।"

उ०—गोयमा ! पम्हकूडे इत्थ देवे महिड्ढीए पलिओवमट्ठिईए परिवसइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"पम्हकूडे, पम्हकूडे।" —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत पर चार कूट—

४५०. प्र०—हे भगवन् ! पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत पर चार कूट कहे गये हैं, यथा—(१) सिद्धायतनकूट, (२) पद्मकूट, (३) महाकच्छकूट, (४) कच्छावति कूट।

इस प्रकार—यावत्—नाम के हेतु पर्यन्त जानना चाहिए।

४५१. प्र०—हे भगवन् ! यह पद्मकूट क्यों कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! वहाँ एक पल्योपम की स्थिति वाला पद्मकूट नाम का एक महर्धिक देव रहता है।

हे गौतम ! इस कारण से पद्मकूट पद्मकूट कहा जाता है।

णलिणकूडवक्खारपव्वए चत्तारि कूडा—

४५२. प०—णलिणकूडे णं भंते ! वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१ सिद्धाययणकूडे, २ णलिणकूडे, ३ आवत्तकूडे, ४ मंगलावत्तकूडे।

एए कूडा पंचसइया।

रायहाणीओ उत्तरेणं। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत पर चार कूट—

४५२. प्र०—हे भगवन् ! नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं।

उ०—हे गौतम ! चार कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) नलिनकूट, (३) आवर्तकूट, (४) मंगलावर्तकूट।

ये कूट पांच सो योजन ऊँचे हैं।

इनकी राजधानियां मेरु पर्वत से उत्तर में हैं।

एगसेलवक्खारपव्वए चत्तारि कूडा—

४५३. प०—एगसेले णं भंते ! वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१ सिद्धाययणकूडे, २ एगसेलकूडे, ३ पुक्खलावत्तकूडे, ४ पुक्खलावईकूडे।

एकशैल वक्षस्कार पर्वत पर चार कूट—

४५३. प्र०—हे भगवन् ! एकशैल वक्षस्कार पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! चार कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) एकशैलकूट, (३) पुष्कलावर्तकूट, (४) पुष्कलावती कूट।

कूडाणं तं चेव पंचसइयं परिमाणं....-जाव-एगसेले अ देवे महिड्ढीए।

सोलसण्हं वक्खारपव्वयाणं चित्तकूड वत्तव्वया-जाव-कूडा चत्तारि चत्तारि।[1]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८६

इन कूटों का परिमाण वही पाँच सौ योजन है—यावत्—'एकशैल" महर्धिक देव यहाँ रहता है।

चित्रकूट के कथन के समान सोलह वक्षस्कार पर्वतों का कथन भी है—यावत्—उन सब पर्वतों पर चार-चार कूट हैं।

चउसु गजदंतागारवक्खारपव्वएसु बत्तीसं कूडा—

गजदन्ताकार चार वक्षस्कार पर्वतों पर बत्तीस कूट—

गंधमायण (गजदंतागार) वक्खारपव्वए सत्तकूडा—

गजदन्ताकार गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत पर सात कूट—

४५४. प०—गंधमायणे णं भंते! वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! सत्त कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धाययणकूडे, २ गंधमायणेकूडे, ३ गंधिलावईकूडे, ४ उत्तरकुरुकूडे, ५ फलिहकूडे, ६ लोहियक्खकूडे, ७ आणंदकूडे।[2] —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८६

४५४. प्र०—हे भगवन्! गंधमादन वक्षस्कार पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं?

उ०—हे गौतम! सात कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) गंधमादनकूट, (३) गंधिलावती-कूट, (४) उत्तर-कुरुकूट, (५) स्फटिककूट, (६) लोहिताक्षकूट, (७) आनन्दकूट।

सिद्धाययणकूडस्स अवट्ठिई पमाणं च—

सिद्धायतनकूट की अवस्थिति और प्रमाण—

४५५. प०—कहि णं भंते! गंधमायणे वक्खारपव्वए सिद्धाययण-कूडे णामं कूडे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-पच्चत्थिमेणं, गंध-मायण कूडस्स दाहिण-पुरत्थिमेणं—एत्थ णं गंधमायणे वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते।

जं चेव चुल्लहिमवंते सिद्धाययणकूडस्स पमाणं तं चेव एएसिं सव्वेसिं भाणियव्वं।

एवं चेव विदिसाहिं तिण्णि कूडा भाणियव्वा।[3]

चउत्थे तत्तिअस्स उत्तर-पच्चत्थिमेणं, पंचमस्स दाहिणेणं, सेसा उ उत्तर-दाहिणेणं।[4]

४५५. प्र०—हे भगवन्! गंधमादन वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतन कूट नाम का कूट कहाँ कहा गया है?

उ०—हे गौतम! मंदरपर्वत के उत्तर-पश्चिम में, गन्ध-मादनकूट के दक्षिण-पूर्व में गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतनकूट नाम का कूट कहा गया है।

क्षुद्र हिमवान् पर्वत के सिद्धायतनकूट का जो प्रमाण है वही इन सब कूटों का कहना चाहिए।

इसी प्रकार तीनकूट विदिशाओं में कहने चाहिए।

चतुर्थकूट तृतीयकूट के उत्तर-पश्चिम में है, पंचमकूट दक्षिण शेषकूट उत्तर-दक्षिण में है।

---

१ षोडशवक्षस्कारपर्वतानां चित्रकूट-वक्तव्यता ज्ञेया यावच्चत्वारि चत्वारि कूटानि व्यावर्णितानि भवन्तीति। —जम्बू० वृत्ति

२ जम्बुद्दीवे दीवे गंधमायणे वक्खारपव्वए सत्तकूडा पण्णत्ता, तं जहा—गाहा—(१) सिद्धे य (२) गंधमायणे, बोद्धव्वे (३) गंधिला-वतीकूडे। (४) उत्तरकुरु (५) फलिहे, (६) लोहितक्खे, (७) आणंदणे चेव॥ —ठाणं० ७, सु० ५६०

३ मेरुत उत्तर-पश्चिमायां सिद्धायतनकूटं, तस्मादुत्तर-पश्चिमायां गन्धमादनकूटं, तस्माच्च गन्धिलावतीकूटमुत्तर-पश्चिमायामिति। —जम्बू० वृत्ति०

४ चतुर्थमुत्तर कुरुकूटं तृतीयस्य गन्धिलावतीकूटस्योत्तरपश्चिमायां, पञ्चमस्य स्फटिककूटस्य दक्षिणतः।

प्र०—ननु यथा तृतीयाद् गन्धिलावतीकूटाच्चतुर्थं उत्तरकुरुकूटमुत्तर-पश्चिमायां, चतुर्थाच्च तृतीयं दक्षिण-पूर्वस्यां, तथा पञ्चमात् स्फटिककूटात् कथं दक्षिण-पूर्वस्यां चतुर्थं कूटं न सङ्गच्छते?

उ०—उच्यते पर्वतस्य वक्रत्वेन चतुर्थकूटत एव दक्षिण-पूर्वांप्रति वलनात् पञ्चमाच्चतुर्थं दक्षिणस्यामिति शेषाणि स्फटिक कूटादीनि त्रीणि उत्तर-दक्षिणश्रेणिव्यवस्थया स्थितानि।

प्र०—कोऽर्थः?

उ०—पञ्चमं चतुर्थस्योत्तरतः, षष्ठस्य दक्षिणतः, षष्ठं पञ्चमस्योत्तरतः, सप्तमस्य दक्षिणतः सप्तमं षष्ठस्योत्तरत इति परस्पर मुत्तर-दक्षिणतया इति। —जम्बू० वृत्ति

फलिह-लोहियक्खेसु भोगंकर-भोगवईओ देवयाओ, सेसेसु सरिसणामया देवा ।

छ सु वि पासायवडेंसगा ।

रायहाणीओ विदिसासु ।[2]

स्फटिककूट और लोहिताक्षकूट पर भोगंकरा और भोगवती नाम की दो दिक्कुमारियाँ रहती हैं, शेष कूटों पर कूट सदृश नाम वाले देव रहते हैं ।

इन छः कूटों पर प्रासादावतंसक हैं ।

इन कूट-देवों की राजधानियाँ मंदरपर्वत के उत्तर-पश्चिम में हैं ।

मालवंत (गजदंताकार) वक्खारपव्वए णव कूडा—

४५६. प०—मालवंते णं भंते ! वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! णवकूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धाययणकूडे, २ मालवंतकूडे[3], ३ उत्तरकुरुकूडे[4], ४ कच्छकूडे[5], ५ सागरकूडे, ६ रययकूडे, ७ सीआकूडे[6], ८ पुण्णभद्दकूडे[7], ९ हरिस्सहकूडे[8] ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९१

गजदन्ताकार माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत पर नौ कूट—

४५६. प्र०—हे भगवन् ! माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! नौ कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) माल्यवंतकूट, (३) उत्तरकुरुकूट, (४) कच्छकूट, (५) सागरकूट, (६) रजतकूट, (७) सीताकूट, (८) पूर्णभद्रकूट, (९) हरिस्सहकूट ।

सिद्धाययणकूडाईणं अवट्ठिई पमाणं च—

४५७. प०—कहि णं भंते ! मालवंते वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं, मालवंतस्स कूडस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं एत्थ णं सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ।

पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं ।

अवसिट्ठं तं चेव—जाव—रायहाणी ।

एवं (२) मालवंतस्स कूडस्स, (३) उत्तरकुरुकूडस्स, (४) कच्छकूडस्स एए चत्तारि कूडा दिसाहिं पमाणेहिं णेयव्वा ।[1]

कूडसरिसणामया देवा । —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९१

सिद्धायतनकूट की अवस्थिति और प्रमाण—

४५७. प्र०—हे भगवन् ! माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतन नामका कूट कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! मंदर पर्वत के उत्तर-पूर्व में, माल्यवन्तकूट के दक्षिण-पश्चिम में सिद्धायतनकूट नाम का कूट कहा गया है ।

यह पाँच सौ योजन ऊँचा है ।

शेष सब राजधानी पर्यन्त वही है—

इसी प्रकार (२) माल्यवंतकूट, (३) उत्तरकुरुकूट, (४) कच्छकूट इन चारों का दिशा प्रमाण जानना चाहिए ।

कूट सदृश नाम वाले देव इन कूटों पर रहते हैं....

सागरकूडस्स अवट्ठिई पमाणं च—

४५८. प०—कहि णं भंते ! मालवंते वक्खारपव्वए सागरकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! कच्छकूडस्स उत्तर-पुरत्थिमे णं, रययकूडस्स दक्खिणेणं—एत्थ णं सागरकूडे णामं कूडे पण्णत्ते।

पंच जोयणसयाइं उद्धं उच्चत्ते णं, अवसिट्ठं तं चेव।

सुभोगादेवी; रायहाणी-उत्तर-पुरत्थिमे णं।[1]

रययकूडे भोगमालिणी देवी, रायहाणी-उत्तर-पुरत्थिमे णं।[2]

अवसिट्ठा कूडा उत्तर-दाहिणे णं णेयव्वा, एक्केणं पमाणे णं।[3] —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९१

सागरकूट की अवस्थिति और प्रमाण—

४५८. प्र०—हे भगवन् ! माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत पर सागरकूट नाम का कूट कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! कच्छकूट के उत्तर-पूर्व में, रजतकूट के दक्षिण में सागरकूट नामका कूट कहा गया है।

यह पांच सौ योजन का ऊँचा है, शेष सब वही है।

विशेष—इस कूट पर 'सुभोगा' नाम की दिशाकुमारी रहती है, इसकी राजधानी उत्तर-पूर्व में है।

रजतकूट पर 'भोगमालिनी' नाम की दिशाकुमारी रहती है। इसकी राजधानी उत्तर-पूर्व में है।

शेष कूट उत्तर-दक्षिण में जानने चाहिए। सभी कूटों का प्रमाण हिमवतत्कूट के समान है....

हरिस्सहकूडस्स अवट्ठिई पमाणं च—

४५९. प०—कहि णं भंते ! मालवंते वक्खारपव्वए हरिस्सहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पुण्णभद्दस्स उत्तरेणं, णीलवंतस्स दक्खिणेणं—एत्थ णं हरिस्सहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते।

एगं जोअणसहस्सं उद्धं उच्चत्ते णं; जमगपमाणेणं णेयव्वं।

मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं तिरियमसंखेज्जाइं दीव-समुद्दाइं वीईवइत्ता अण्णम्मि जंबुद्दीवे दीवे उत्तरेणं बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं 'हरिसहस्स देवस्स' 'हरिस्सहा' णामं रायहाणी पण्णत्ता।

चउरासीइं जोअणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं। वे जोयणसयसहस्साइं पण्णट्ठिं च सहस्साइं छच्च छत्तीसे जोयणसए परिक्खेवेणं।

सेसं जहा चमरचंचाए रायहाणीए तहा पमाणं भाणियव्वं। —जंबु० वक्ख० ४ सु० ९२

हरिस्सह कूट की अवस्थिति और प्रमाण—

४५९. प्र०—हे भगवन् ! माल्यवंत वक्षस्कार पर्वत पर हरिस्सह-कूट नाम का कूट कहाँ कहा गया है।

उ०—हे गौतम ! पूर्णभद्रकूट के उत्तर में नीलवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिण में 'हरिस्सहकूट' नाम का कूट कहा गया है।

यह एक हजार योजन का ऊँचा है। इसका प्रमाण यमक पर्वत के समान जानना चाहिए।

मंदर पर्वत के उत्तर में तिरछे असंख्यद्वीप-समुद्रों के बाद अन्य जम्बूद्वीप द्वीप में उत्तर दिशा में बारह हजार योजन जाने पर 'हरिस्सह' देव की 'हरिस्सह' नाम की राजधानी कही गई है।

यह चोरासी हजार योजन की लम्बी-चौड़ी है, दो लाख पैंसठ हजार छः सौ छत्तीस योजन की इसकी परिधि है।

शेष चमरचंचा राजधानी का जैसा प्रमाण है वैसा कहना चाहिए।

हरिस्सहकूडस्स णामहेऊ—

४६०. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"हरिस्सहकूडे, हरिस्सहकूडे ?"

उ०—गोयमा ! हरिस्सहकूडे बहवे उप्पलाइं पउमाइं हरिस्सहकूडसमवण्णाइं-जाव-हरिस्सहे णामं देवे अ इत्थ महिड्ढीए-जाव-परिवसइ।

हरिस्सह कूट के नाम का हेतु—

४६०. प्र०—हे भगवन् ! हरिस्सहकूट हरिस्सह कूट क्यों कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! हरिस्सह कूट पर अनेक उत्पल पद्म हरिस्सहकूट के समान वर्ण वाले हैं—यावत्—'हरिस्सह' नाम का महर्धिक देव—यावत्—रहता है।

---

१ अत्र सुभोगा नाम्नी दिक्कुमारी देवी, अस्या राजधानी मेरोरुत्तरपूर्वस्यां।

२ रजतकूटं षष्ठं पूर्वस्मादुत्तरस्यां, अत्र भोगमालिनी दिक्कुमारी सुरी, अस्या राजधानी उत्तर-पूर्वस्यां।

३ एकेन तुल्य-प्रमाणेन सर्वेषामपि, हिमवत्कूटप्रमाणत्वात्।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"हरिस्सहकूडे, हरिस्सहकूडे।"

अदुत्तरं च णं गोयमा !-जाव-सासए णामधेज्जे।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९२

हे गौतम ! इस कारण से 'हरिस्सह कूट' हरिस्सह कूट कहा जाता है।

अथवा हे गौतम !—यावत्—'हरिस्सह" नाम शाश्वत है।

सोमणस-वक्खारपव्वए सत्तकूडा—

४६१. प०—सोमणसे णं भंते ! वक्खारपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सत्तकूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धाययणकूडे, २ सोमणसकूडे, ३ मंगलावतीकूडे, ४ देवकुरुकूडे, ५ विमलकूडे, ६ कंचणकूडे, ७ वसिट्ठकूडे।[1]

एवं सव्वे पंचसइया कूडा, एएसिं पुच्छा दिसि-विदिसाए भाणिअव्वा, जहा गंधमायणस्स।[2]

णवरि-विमल-कंचणकूडेसु देवयाओ सुवच्छा वच्छमित्ता य।

अवसिट्ठेसु कूडेसु सरिसणामया देवा।
रायहाणीओ दक्खिणे णं ति।[3]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९७

सौमनस वक्षस्कार पर्वत पर सात कूट—

४६१. प्र०—हे भगवन् ! सौमनस वक्षस्कार पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! सात कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) सौमनसकूट, (३) मंगलावर्तीकूट, (४) देवकुरुकूट, (५) विमलकूट, (६) कंचनकूट, (७) वसिष्ठकूट।

ये सब कूट पांच सौ योजन ऊँचे हैं, गंधमादन पर्वत के कूटों के समान इन कूटों के दिशा-विदिशा सम्बन्धी प्रश्नोत्तर कहने चाहिए।

विशेष—विमलकूट और कंचनकूट पर 'सुवत्सा' और 'वत्समित्रा' नाम की दिशाकुमारियां रहती हैं।

शेष कूटों पर कूटसदृश नाम वाले देव रहते हैं।
इनकी राजधानियां दक्षिण में हैं।

विज्जुप्पभ वक्खारपव्वए णव कूडा—

४६२. प०—विज्जुप्पभे णं भंते ! वक्खारपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धाययणकूडे, २ विज्जुप्पभकूडे, ३ देवकुरुकूडे, ४ पम्हकूडे, ५ कणगकूडे, ६ सोवत्थियकूडे, ७ सीओयाकूडे, ८ सयज्जलकूडे, ९ हरिकूडे।[4]

विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत पर नौ कूट—

४६२. प्र०—हे भगवन् ! विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! नौ कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) विद्युत्प्रभकूट, (३) देवकुरुकूट, (४) पक्ष्मकूट, (५) कनककूट, (६) सौवस्तिककूट, (७) सीतोदाकूट, (८) शतज्वलकूट, (९) हरिकूट।

एए हरिकूडवज्जा पंचसइआ णेयव्वा ।

हरिकूट को छोड़कर शेष सभी कूट पाँच सौ योजन ऊँचे जान लेने चाहिए ।

एएसि कूडाणं पुच्छा, दिसि-विदिसाओ णेयव्वाओ ।[1]

इन कूटों के दिशा-विदिशा सम्बन्धी प्रश्नोत्तर जान लेने चाहिए ।

जहा मालवंतस्स हरिस्सह कूडे तह चेव हरिकूडे ।[2]

माल्यवन्त पर्वत का जैसा हरिस्सह कूट है वैसा ही हरिकूट है ।

रायहाणी—जह चेव दाहिणेणं 'चमरचंचा' रायहाणी तह णेयव्वा ।

जैसी दक्षिण में चमरचंचा राजधानी है इन कूटों की राजधानियाँ भी दक्षिण में वैसी ही हैं ।

कणग-सोवत्थिअकूडेसु वारिसेण-बलाहयाओ दो देवयाओ ।[3]

कनककूट और सौवस्तिककूट पर 'वारिसेणा' तथा 'बलाहका' ये दो दिशाकुमारियाँ हैं ।

अवसिट्ठेसु कूडेसु कूडसरिसणामया देवा ।

शेष कूटों पर कूट सदृश नाम वाले देव रहते हैं ।

रायहाणीओ दाहिणेणं ।[4]

राजधानियाँ दक्षिण में हैं ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १०१

चउत्तीस-दीहवेयड्ढपव्वएसु तिण्णि छलुत्तरा कूडसया—

चोतीस दीर्घवैताढ्यपर्वतों पर तीन सौ छः कूट—

भारहे वासे दीहवेयड्ढपव्वए णव कूडा—

भरतक्षेत्र में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट—

४६३. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे दीहवेयड्ढपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! णवकूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धायणकूडे, २ दाहिणड्ढभरहकूडे, ३ खंडप्पवायकूडे, ४ माणिभद्दकूडे, ५ वेअड्ढकूडे, ६ पुण्णभद्दकूडे, ७ तिमिसगुहाकूडे, ८ उत्तरड्ढभरहकूडे, ९ वेसमणकूडे ।[5] —जंबु० वक्ख० १, सु० १२

४६३. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में भरतक्षेत्र में दीर्घवैताढ्यपर्वत पर कितने कूट कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! नौ कूट कहे गये हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) दक्षिणार्धभरतकूट, (३) खण्डप्रपातकूट, (४) माणिभद्रकूट, (५) वैताढ्यकूट, (६) पूर्णभद्रकूट, (७) तमिस्रागुफाकूट, (८) उत्तरार्धभरतकूट, (९) वैश्रमणकूट ।

---

१ मेरोर्दक्षिण-पश्चिमायां दिशि मेरोरासन्नमाद्यं सिद्धायतनकूटं, तस्य दक्षिण-पश्चिमायां दिशि विद्युत्प्रभकूटं, ततोऽपि तस्यां दिशि तृतीयं देवकुरुकूटं तस्यापि तस्यामेव दिशि चतुर्थं पक्ष्मकूटं, एतानि चत्वारि कूटानि विदिग्भावीनि ।
चतुर्थस्य दक्षिण-पश्चिमायां पष्ठस्य कूटस्योत्तरतःपञ्चमं कनककूटं तस्य दक्षिणतः पष्ठं सौवस्तिक कूटं, तस्यापि दक्षिणतः सप्तमं शीतोदाकूटं, तस्यापि दक्षिणतोऽष्टमं शतज्वलकूटं ।

२ नवमस्य सविशेषत्वेन हरिस्सहातिदेशमाह, यथा—माल्यवद्वक्षकारस्य हरिस्सहकूटं तथैव हरिकूटं बोद्धव्यं सहस्रयोजनोच्चं, अर्द्धतृतीयशतान्यवगाढं मूले, सहस्रयोजनानिपृथु, इत्यादि ।
नवरमष्टमतो दक्षिणतः इदं निपधासन्नमित्यर्थ, हरिस्सहकूटं उत्तरतो नीलवदासन्नं ।

३ कनक-सौवस्तिक कूटयोर्वारिषेण-बलाहके दिक्कुमार्यौ द्वे देवते ।

४ यद्यप्युत्तरकुरुवक्षस्कारयोर्यथायोगं सिद्ध-हरिस्सहकूटवर्ज्जकूटाधिपराजधान्यो यथाक्रमं वायव्यामैशान्यां च प्रागभिहिता स्तथा-देवकुरु वक्षस्कारयोर्यथायोगं सिद्ध-हरिकूटवर्ज्जकूटाधिपराजधान्यो यथाक्रममाग्नेय्यां नैऋत्यां च वक्तुमुचितास्तथापि प्रस्तुत सूत्र सम्बन्धियावदादर्शेषु पूज्यश्रीमलयगिरिकृतक्षेत्रविचारवृत्तौ च तथादर्शनाभावात् अस्माभिरपि राजधान्यो दक्षिणेनेत्यलेखि ।
—जम्बू० वृत्ति

५ जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं भरहे दीह वेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—(१) सिद्धे (२) भरहे (३) खडग (४) माणी (५) वेयड्ढ (६) पुण्ण (७) तिमिसगुहा ।
(७) भरहे (८) वेसमणे य, भरहे कूडाण णामाइं ॥ —ठाणं० ९, सु० ६७९

सिद्धाययणकूडस्स अवट्ठिई पमाणं च—

४६४. प०— कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०— गोयमा ! पुरत्थिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, दाहिणड्ढभरहकूडस्स पुरत्थिमेणं—एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ।

छ सक्कोसाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं ।
मूले छ सक्कोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं ।
मज्झे देसूणाइं पंच जोयणाइं विक्खंभेणं ।
उवरि साइरेगाइं तिण्णि जोयणाइं विक्खंभेणं ।

मूले देसूणाइं बावीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं ।
मज्झे देसूणाइं पन्नरस जोयणाइं परिक्खेवेणं ।
उवरि साइरेगाइं णव जोयणाइं परिक्खेवेणं ।

मूले विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए, गोपुच्छसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे ।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए, एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, पमाणं वण्णओ दोण्ह वि ।

सिद्धाययणकूडस्स णं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा णामए आलिंगपुक्खरेइ वा,-जाव-वाणमंतरा देवा य देवीओ य-जाव-विहरंति ।[1]

[1] [illegible]

सिद्धायतनकूट की अवस्थिति और प्रमाण—

४६४. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप के भरतक्षेत्र में दीर्घ-वैताढ्य पर्वत पर सिद्धायतनकूट नाम का कूट कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में दक्षिणार्ध भरत कूट से पूर्व में जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर सिद्धायतनकूट नाम का कूट कहा गया है ।

यह छः योजन और एक कोस ऊँचा है ।
मूल में छः योजन और एक कोस चौड़ा है ।
मध्य में पाँच योजन से कुछ कम चौड़ा है ।
ऊपर तीन योजन से कुछ अधिक चौड़ा है ।

मूल में बाईस योजन से कुछ कम की परिधि वाला है ।
मध्य में पन्द्रह योजन से कुछ कम की परिधि वाला है ।
ऊपर नौ योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला है ।

मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर पतला, गोपुच्छ के आकार वाला सर्वरत्नमय स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है ।

यह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से घिरा हुआ है, **इन दोनों का प्रमाण और वर्णन जान लेना चाहिए ।**

सिद्धायतनकूट के ऊपर अधिक सम एवं रमणीय भूभाग कहा गया है, वह चर्म से मंढे हुए मृदंगपुट के समान है—यावत्—वाणव्यन्तर देव और देवियाँ—यावत्—विचरण करते हैं ।

घंटा-पडाग-परिमंडिअग्गसिहरे धवले मरीइकवयं विणिम्मुअंते, लाउल्लोइअमहिए,-जाव-झया ।[1]

सिद्धायतन का अग्र-शिखर घंटा-पताकाओं से परिमंडित है, तथा धवलप्रभा से युक्त, किरणों के समूह को विकीर्ण करता हुआ, लिपा, पुता—यावत्—ध्वजा से युक्त है।

तस्स णं सिद्धायतणस्स तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता ।

ते णं दारा पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं ।

अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं ।

तावइयं चेव पवेसेणं, सेआवरकणगथूभियाणं, दार वण्णओ-जाव-वणमाला ।

सिद्धायतन की तीन दिशाओं में तीन द्वार कहे गये हैं ।

ये द्वार पांच सौ धनुष ऊँचे हैं ।

अढाई सौ धनुष चौड़े हैं ।

इतने ही प्रवेश वाले, श्वेत तथा श्रेष्ठ स्वर्ण की स्तूपिका वाले हैं, यहां द्वारों का वर्णन कहना चाहिए—यावत्—वनमाला पर्यन्त वर्णन समझ लेना चाहिए ।

तस्स णं सिद्धाययणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा-जाव- ।

उस सिद्धायतन के अन्दर का भू-भाग अधिक सम एवं रमणीय कहा गया है, वह भू-भाग चर्म से मंडे हुए मृदंगवाद्य के तल जैसा है ।

तस्स णं सिद्धाययणस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं महं एगे देवच्छंदए पण्णत्ते ।

पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खंभे णं ।

साइरेगाइं पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्ते णं ।

सव्वरयणामए—एत्थ णं अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमित्ता णं संनिक्खित्तं चिट्ठइ ।

एवं-जाव-धूवकडुच्छुगा । —जंबु० वक्ख० १, सु० १३

उस सिद्धायतन के अन्दर के अतिसम एवं रमणीय भू-भाग के मध्य में एक विशाल 'देवछंदक' कहा गया है ।

यह पांच सौ धनुष लम्बा-चौड़ा है ।

पांच सौ धनुष से कुछ अधिक ऊँचा है ।

सर्वरत्नमय है, यहां जिन भगवान् की ऊँचाई के बराबर ऊँची एक सौ आठ जिन प्रतिमायें हैं ।

इसी प्रकार—यावत्—धूपदानियां हैं ।

दाहिणड्ढभरहकूडस्स अवट्ठिई पमाणं च—

४६६. प०—कहि णं भंते ! दीहवेयड्ढपव्वए दाहिणड्ढभरहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! खंडप्पवायकूडस्स पुरत्थिमेणं, सिद्धाययण कूडस्स पच्चत्थिमेणं–एत्थ णं दीहवेयड्ढपव्वए दाहिणड्ढ भरहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ।

सिद्धाययणकूडप्पमाणसरिसे-जाव- ।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं महं एगे पासायवडिंसए पण्णत्ते ।

कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं[2], अब्भुग्गय मूसिय-पहसिए-जाव-पासाईए-जाव-पडिरूवे ।

दक्षिणार्ध भरतकूट की अवस्थिति और प्रमाण—

४६६. प्र०—हे भगवन् ! दीर्घवैताढ्यपर्वत पर दक्षिणार्ध भरतकूट नामक कूट कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! खण्डप्रपातकूट से पूर्व में सिद्धायतन कूट से पश्चिम में, दीर्घवैताढ्य पर्वत पर दक्षिणार्ध भरतकूट नामक कूट कहा गया है ।

इसका प्रमाण सिद्धायतन कूट के सदृश है—यावत्—

इसके अतिसम एव रमणीय भू-भाग के मध्य में एक विशाल प्रासादावतंसक कहा गया है ।

यह एक कोश ऊँचा है, आधा कोश चौड़ा है, चारों ओर से निकलकर फैलती हुई प्रभाओं से मानो वह हंसता हुआ है—यावत्—दर्शकों के चित्त को प्रसन्न करने वाला—यावत्—मनोहर है ।

---

१ ····अत्र यावत्करणात् वक्ष्यमाण-यमिकाराजधानी-प्रकरण-गतसिद्धायतनवर्णकेऽतिदिष्टः सुधर्मा सभागमो वाच्यो—यावत्—सिद्धायतनोपरि ध्वजा उपवर्णिता भवन्ति ।

यद्यप्यत्र यावत्पदग्राह्ये द्वारवर्णक-प्रतिमावर्णक-धूप-कडुच्छादिकं सर्वमन्तर्भवति, यथापि स्थानाशून्यतार्थं किञ्चित् सूत्रे दर्शयति, 'तस्स णं सिद्धायतणस्स' इत्यादि । —जम्बू० वृत्ति

२ अत्रसूत्रेऽनुक्तमप्यर्द्धक्रोशमायामेनेति बोध्यम् ।

तस्स णं पासायवडेंसगस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं महं एगा मणिपेढिया पण्णत्ता।

पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमई।

तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं सिंहासणं पण्णत्तं, सपरिवारं भाणियव्वं[1]। —जंबु० वक्ख० १, सु० १४

उस प्रासादावतंसक के मध्य में एक विशाल मणिपीठिका कही गई है।

जो पाँच सौ धनुष लम्बी-चौड़ी है एवं ढाई सौ धनुष मोटी है। यह सर्व मणिमय है।

इस मणिपीठिका के ऊपर एक सिंहासन कहा गया है, यहाँ सिंहासन परिवार कहना चाहिए।

दाहिणड्ढभरहकूडस्स णामहेऊ—

४९७. प०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—"दाहिणड्ढभरहकूडे, दाहिणड्ढभरहकूडे?"

उ०—गोयमा! दाहिणड्ढभरहकूडे णं दाहिणड्ढभरहे णामं देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईए परिवसइ।

से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं, चउण्हं अग्गमहिसीणं, सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं दाहिणड्ढभरहकूडस्स दाहिणड्ढाए रायहाणीए, अण्णेसिं बहूणं देवाण य देवीण य-जाव-विहरइ[2]। —जंबु० वक्ख० १, सु० १४

दक्षिणार्ध भरतकूट के नाम का हेतु—

४९७. प्र०—हे भगवन्! दक्षिणार्ध भरतकूट दक्षिणार्ध भरतकूट क्यों कहा जाता है?

उ०—हे गौतम! दक्षिणार्ध भरतकूट पर दक्षिणार्ध भरत नाम का महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है।

वह वहाँ दक्षिणार्ध भरतकूट की दक्षिणार्ध भरत नाम की राजधानी में चार हजार सामानिक देवों का, चार अग्रमहिषियों का सपरिवार, तीन परिषदाओं का, सात सेनाओं का, सात सेनापति देवों का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का और अन्य अनेक देव-देवियों का (आधिपत्य करता हुआ)—यावत्—विचरण करता है....

दाहिणड्ढभरहाए रायहाणीए पमाणं य—

४९८. प०—कहि णं भंते! दाहिणड्ढभरहकूडस्स देवस्स दाहिणड्ढभरहा णाम रायहाणी पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं तिरियमसंखेज्जदीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे दक्खिणेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं दाहिणड्ढभरहकूडस्स देवस्स दाहिणड्ढभरहा णाम रायहाणी भाणियव्वा।

दक्षिणार्धभरता राजधानी की अवस्थिति और प्रमाण—

४९८. प्र०—हे भगवन्! दक्षिणार्ध भरतकूट देव की दक्षिणार्ध भरता नाम की राजधानी कहाँ कही गई है?

उ०—हे गौतम! मंदर पर्वत के दक्षिण में तिरछे असंख्य द्वीप समुद्र पार करने पर अन्य जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिण में बारह हजार योजन जाने पर दक्षिणार्ध भरतकूट देव की दक्षिणार्धभरता नाम की राजधानी कहनी चाहिए।

१ माणिभद्दकूडे, २ वेअड्ढकूडे, ३ पुण्णभद्दकूडे—एए तिण्णि कूडा कणगमया[1], सेसा छप्पि रयणमया ।

(१) मणिभद्रकूट, (२) वैताढ्यकूट, और (३) पूर्णभद्रकूट—ये तीन कूट कनकमय हैं, शेष छः रत्नमय हैं।

दोण्हं विसरिसणामया देवा—१ कयमालए चेव, २ णट्टमालए[2] चेव, सेसाणं छण्हं सरिसणामया,

दो कूटों के देवों के नाम विसदृश (असमान) हैं, (१) कृतमालदेव, (२) नृतमालदेव, शेष छः कूटों के देवों के नाम कूट सदृश हैं,

गाहा—

जण्णामया य कूडा, तन्नामा खलु हवंति ते देवा ।
पलिओवमट्ठिइया, हवंति पत्तेयं पत्तेयं ॥

गाथार्थ—

जो कूटों के नाम हैं वे ही कूटाधिप देवों के नाम हैं ।
प्रत्येक देव की स्थिति एक-एक पल्योपम की है ।

रायहाणीओ—

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरिअं असंखेज्ज-दीव-समुद्दे वीईवइत्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं रायहाणीओ भाणियव्वाओ, विजयरायहाणी सरिसयाओ ।

—जंबु० वक्ख० १, सु० १४

राजधानियाँ—

जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत से दक्षिण में तिरछे असंख्यद्वीप समुद्रों को लाँघने पर अन्य जम्बूद्वीप में बारह हजार योजन जाने पर इनकी राजधानियाँ कहनी चाहिए। इन राजधानियों का वर्णन विजय देव की राजधानी के समान जानना चाहिए।

एरवए वासे दीहवेयड्ढे णवकूडा—

४७०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं एरवए वासे दीहवेयड्ढे पव्वए णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—गाहा—

१ सिद्धे २ एरवए[3] ३ खंडे ४ माणी ५ वेयड्ढ ७ तिमिसगुहा ।
८ एरवए[4] ९ वेसमणे, एरवए कूडणामाइं ॥

—ठाणं ९, सु० ६८९

ऐरवत क्षेत्र में दीर्घ वैताढ्यपर्वत पर नौ कूट—

४७०. जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत के उत्तर में ऐरवत क्षेत्र में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं, यथा-गाथार्थ—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) ऐरवतकूट, (३) खण्डप्रपातकूट, (४) माणिभद्रकूट, (५) वैताढ्यकूट, (६) पूर्णभद्रकूट, (७) तिमिस्रगुफाकूट, (८) ऐरवतकूट, (९) वैश्रमणकूट । ऐरवत क्षेत्र में ये कूटों के नाम हैं ।

महाविदेहवासे बत्तीसविजय-दीहवेयड्ढपव्वएसु दुसय-अट्ठासीइकूडा—

महाविदेह क्षेत्र के बत्तीस विजयों में बत्तीस दीर्घवैताढ्य पर्वतों पर दो सौ अठ्यासी कूट—

प्रत्येक विजय में प्रत्येक दीर्घवैताढ्यपर्वत पर नौ-नौ कूट—

४७१. (१) जंबुद्दीवे दीवे कच्छे दीहवेयड्ढपव्वए णवकूडा पण्णत्ता, तं जहा—गाहा—

१ सिद्धे २ कच्छे ३ खंडग, ४ माणी ५ वेयड्ढ ६ पुण्ण ७ तिमिसगुहा ।
८ कच्छे ९ वेसमणे य, कच्छे कूडाण णामाइं ॥

४७१. (१) जम्बूद्वीप द्वीप के कच्छविजय में दीर्घवैताढ्यपर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं, यथा—गाथार्थ—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) कच्छविजयकूट, (३) खण्डप्रपातकूट, (४) माणिभद्रकूट, (५) वैताढ्यकूट, (६) पूर्णभद्रकूट, (७) तिमिस्रगुफाकूट, (८) कच्छविजयकूट, (९) वैश्रमणकूट, कच्छविजय में ये कूटों के नाम हैं ।

---

१ ....चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठरूपाणि त्रीणि कूटानि कनकमयानि भवन्ति....सर्वेषामपि वैताढ्यानां भरतैरावत-महाविदेहविजयगतानां नवसु कूटेषु सर्वमध्यमानि त्रीणि त्रीणि कूटानि कनकमयानि ज्ञातव्यानि ।

२ तमिस्रगुहा कूटस्य कृतमालः स्वामी, खण्डप्रपातगुहाकूटस्य नृत्तमालः स्वामी.... —जम्बू० वृत्ति

३ इस द्वितीय कूट का नाम 'दक्षिणार्ध ऐरावत कूट' समझना चाहिए ।

४ इस अष्टमकूट का नाम—'उत्तरार्ध ऐरावतकूट' समझना चाहिए ।

१ माणिभद्दकूडे, २ वेअड्ढकूडे, ३ पुण्णभद्दकूडे—एए तिण्णि कूडा कणगमया[1], सेसा छप्पि रयणमया।

(१) मणिभद्रकूट, (२) वैताढ्यकूट, और (३) पूर्णभद्रकूट—ये तीन कूट कनकमय हैं, शेष छः रत्नमय हैं।

दोण्हं विसरिसणामया देवा—१ कयमालए चेव, २ णट्टमालए[2] चेव, सेसाणं छण्हं सरिसणामया,

दो कूटों के देवों के नाम विसदृश (असमान) हैं, (१) कृतमालदेव, (२) नृतमालदेव, शेष छः कूटों के देवों के नाम कूट सदृश हैं,

गाहा—
जण्णामया य कूडा, तन्नामा खलु हवंति ते देवा।
पलिओवमट्ठिइया, हवंति पत्तेयं पत्तेयं॥

गाथार्थ—
जो कूटों के नाम हैं वे ही कूटाधिप देवों के नाम हैं।
प्रत्येक देव की स्थिति एक-एक पल्योपम की है।

रायहाणीओ—

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरिअं असंखेज्ज-दीव-समुद्दे वीईवइत्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं रायहाणीओ भाणियव्वाओ, विजयरायहाणी सरिसयाओ।

—जंबु० वक्ख० १, सु० १४

राजधानियाँ—

जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत से दक्षिण में तिरछे असंख्यद्वीप समुद्रों को लाँघने पर अन्य जम्बूद्वीप में बारह हजार योजन जाने पर इनकी राजधानियाँ कहनी चाहिए। इन राजधानियों का वर्णन विजय देव की राजधानी के समान जानना चाहिए।

एरवए वासे दीहवेयड्ढे णवकूडा—

४७०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं एरवए वासे दीहवेयड्ढे पव्वए णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—गाहा—

१ सिद्धे २ एरवए[3] ३ खंडे ४ माणी ५ वेयड्ढ ७ तिमिसगुहा।
८ एरवए[4] ९ वेसमणे, एरवए कूडणामाइं॥

—ठाणं ९, सु० ६८९

ऐरवत क्षेत्र में दीर्घ वैताढ्यपर्वत पर नौ कूट—

४७०. जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत के उत्तर में ऐरवत क्षेत्र में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं, यथा-गाथार्थ—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) ऐरवतकूट, (३) खण्डप्रपातकूट, (४) माणिभद्रकूट, (५) वैताढ्यकूट, (६) पूर्णभद्रकूट, (७) तिमिस्रगुफाकूट, (८) ऐरवतकूट, (९) वैश्रमणकूट। ऐरवत क्षेत्र में ये कूटों के नाम हैं।

महाविदेहवासे बत्तीसविजय-दीहवेयड्ढपव्वएसु दुसय-अट्ठासीइकूडा—

महाविदेह क्षेत्र के बत्तीस विजयों में बत्तीस दीर्घवैताढ्य पर्वतों पर दो सौ अठ्यासी कूट—

प्रत्येक विजय में प्रत्येक दीर्घवैताढ्यपर्वत पर नौ-नौ कूट—

४७१. (१) जंबुद्दीवे दीवे कच्छे दीहवेयड्डपव्वए णवकूडा पण्णत्ता, तं जहा—गाहा—

१ सिद्धे २ कच्छे ३ खंडग, ४ माणी ५ वेयड्ढ ६ पुण्ण ७ तिमिसगुहा।
८ कच्छे ९ वेसमणे य, कच्छे कूडाण णामाइं॥

४७१. (१) जम्बूद्वीप द्वीप के कच्छविजय में दीर्घवैताढ्यपर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं, यथा—गाथार्थ—

(१) सिद्धायतनकूट, (२) कच्छविजयकूट, (३) खण्डप्रपातकूट, (४) माणिभद्रकूट, (५) वैताढ्यकूट, (६) पूर्णभद्रकूट, (७) तिमिस्रगुफाकूट, (८) कच्छविजयकूट, (९) वैश्रमणकूट, कच्छविजय में ये कूटों के नाम हैं।

---

१ ····चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठरूपाणि त्रीणि कूटानि कनकमयानि भवन्ति....सर्वेषामपि वैताढ्यानां भरतैरावत-महाविदेहविजयगतानां नवसु कूटेषु सर्वमध्यमानि त्रीणि त्रीणि कूटानि कनकमयानि ज्ञातव्यानि।
२ तमिस्रगुहा कूटस्य कृतमालः स्वामी, खण्डप्रपातगुहाकूटस्य नृत्तमालः स्वामी.... —जम्बू० वृत्ति
३ इस द्वितीय कूट का नाम 'दक्षिणार्ध ऐरावत कूट' समझना चाहिए।
४ इस आठवें कूट का नाम—'उत्तरार्ध ऐरावतकूट' समझना चाहिए।

४ हिमवयकूडे, ५ रययकूडे, ६ रुयगकूडे, ७ सागरचित्तकूडे, ८ वइरकूडे, ९ बलकूडे[2] ।

(४) हिमवतकूट, (५) रजतकूट, (६) रुचककूट, (७) सागरचित्रकूट, (८) वज्रकूट, (९) बलकूट ।

४८१. प०—कहि णं भंते ! णंदणवणे णंदणवणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! १—मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लसिद्धाययणस्स उत्तरेणं, उत्तर-पुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसयस्स दक्खिणेणं—एत्थ णं णंदणवणे णंदणवणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ।

पंचसइआ कूडा पुव्ववण्णिया भाणियव्वा ।

देवी-मेहंकरा, रायहाणी-विदिसाए त्ति ।

एआहि चेव पुव्वाभिलावेणं णेयव्वा ।

इमे कूडा इमाहिं दिसाहिं ।

४८१. प्र०—हे भगवन् ! नन्दनवन में नन्दनवनकूट नाम का कूट कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! मन्दर पर्वत के पूर्वी सिद्धायतन से उत्तर में उत्तर-पूर्वी प्रासादावतंसक के दक्षिण में नन्दनवन में नन्दनवन कूट कहा गया है ।

पूर्ववर्णित (विदिक् हस्तिकूट) के समान ये कूट भी पाँच सौ योजन ऊँचे कहने चाहिए ।

यहाँ मेघंकरा देवी निवास करती है, इसकी राजधानी विदिशा (उत्तर-पूर्व) में है ।

पूर्वकथित राजधानियों के समान इस राजधानी का वर्णन भी जानना चाहिए ।

ये कूट इन दिशाओं में है—

(२) एवं मंदरे कूडे—

४८२. पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स दाहिणेणं, दाहिण-पुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेअगस्स उत्तरेणं ।

मेहवई देवी, रायहाणी-पुव्वेणं ।

(२) इसी प्रकार मन्दरकूट है—

४८२. यह पूर्वी भवन से दक्षिण में है, दक्षिण-पूर्वी प्रासादावतंसक से उत्तर में है ।

इस कूट पर मेघवतीदेवी निवास करती है, इसकी राजधानी पूर्व में है ।

(३) एवं णिसहे कूडे—

दक्खिणिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं, दाहिण-पुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं ।

सुमेहा देवी, रायहाणी-दक्खिणेणं ।

(३) इसी प्रकार निषधकूट है—

यह दक्षिणी भवन से पूर्व में है । दक्षिणी-पूर्वी प्रासादावतंसक से पश्चिम में है ।

इस कूट पर सुमेघा देवी निवास करती है, इसकी राजधानी दक्षिण में है ।

(४) एवं हेमवए कूडे—

दक्खिणिल्लस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं, दाहिण-पच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेणं ।

हेममालिनी देवी, रायहाणी-दक्खिणेणं ।

(४) इसी प्रकार हेमवतकूट है—

यह दक्षिणी भवन से पश्चिम में है, दक्षिण-पश्चिमी प्रासादावतंसक से पूर्व में है ।

इस कूट पर हेममालिनी देवी निवास करती है, इसकी राजधानी दक्षिण में है ।

(५) एवं रययकूडे—

पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स दक्खिणेणं, दाहिण-पच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं ।

(५) इसी प्रकार रजतकूट है—

यह पश्चिमी भवन से दक्षिण में है, दक्षिण-पश्चिमी प्रासादावतंसक से उत्तर में है ।

---

२ जम्बुद्दीवे दीवे मंदरपव्वए णंदणवणे णवकूडा पण्णत्ता; तं जहा-गाहा—(१) णंदणे, (२) मंदरे चेव, (३) णिसहे, (४) हेमवते, (५) रयय, (६) रुयए य । (७) सागरचित्ते, (८) वइरे, (९) बलकूडे चेव बोद्धव्वं । —ठाणं ९, सु० ६८९

उ०—गोयमा ! अट्ठ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१ पउमुत्तरकूडे, २ णीलवंतकूडे, ३ सुहत्थीकूडे, ४ अंजणगिरीकूडे, ५ कुमुदकूडे, ६ पलासकूडे, ७ वडिसयकूडे, ८ रोअणगिरीकूडे ।[1]

उ०—हे गौतम ! आठ दिशाहस्तिकूट कहे गये हैं, यथा—
(१) पद्मोत्तरकूट, (२) नीलवंतकूट, (३) सुहस्तिकूट, (४) अंजनगिरिकूट, (५) कुमुदकूट, (६) पलाशकूट, (७) वडिंशककूट, (८) रोचनगिरिकूट ।

४८५. प०—(१) कहि णं भंते ! मंदरे पव्वए भद्दसालवणे पउमुत्तरे णामं दिसाहत्थिकूडे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं, पुरत्थिमिल्लाए सीआए उत्तरेणं—एत्थ णं पउमुत्तरे णामं दिसाहत्थिकूडे पण्णत्ते ।
पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं ।
एवं विक्खंभ-परिक्खेवो भाणियव्वो[2] चुल्लहिमवंत-सरिसो ।
पासायाण य तं चेव[3], पउमुत्तरो देवो, रायहाणी—उत्तर-पुरत्थिमेणं ।

४८५. प्र०—(१) हे भगवन् ! मंदरपर्वत पर भद्रशालवन में पद्मोत्तर नाम का दिशाहस्तिकूट कहाँ कहा गया है ?
उ०—हे गौतम ! मंदरपर्वत के उत्तर पूर्व में, पूर्वी शीता नदी के उत्तर में 'पद्मोत्तर' नाम का दिशाहस्तिकूट कहा गया है,
वह पाँच सौ योजन ऊँचा है, पाँच सौ गाउ भूमि में है ।
इसी प्रकार—विष्कम्भ एवं परिधि चुल्ल हिमवन्त पर्वत के सदृश कहना चाहिए ।
इन कूटों पर स्थित प्रासादों का प्रमाण क्षुद्र हिमवन्कूटाधिपति देव के प्रासाद जितना ही है । वहाँ पद्मोत्तर देव है, उसकी राजधानी उत्तर-पूर्व में है ।

(२) एवं णीलवंतदिसाहत्थिकूडे—
मंदरस्स दाहिण-पुरत्थिमेणं, पुरत्थिमिल्लाए सीआए दक्खिणेणं ।
एयस्स वि णीलवंतो देवो, रायहाणी—दाहिण-पुरत्थिमेणं ।

(२) इसी प्रकार नीलवन्त दिशाहस्तिकूट है—
यह मंदर पर्वत के दक्षिण-पूर्व में है, पूर्वी शीतानदी से दक्षिण में है ।
इस कूट का अधिपति नीलवन्त देव है, इसकी राजधानी दक्षिण-पूर्व में है ।

(३) एवं सुहत्थि दिसाहत्थिकूडे—
मंदरस्स दाहिण-पुरत्थिमेणं, दक्खिणिल्लाए सीओआए पुरत्थिमेणं ।
एयस्स वि सुहत्थी देवो, रायहाणी—दाहिण-पुरत्थिमेणं ।

(३) इसी प्रकार सुहस्ति दिशाहस्तिकूट है—
यह मंदर पर्वत के दक्षिण-पूर्व में है, दक्षिणी शीतोदा नदी से पूर्व में है ।
इस कूट का अधिपति सुहस्ति देव है, इसकी राजधानी दक्षिण-पूर्व में है ।

(४) एवं अंजणागिरिदिसाहत्थिकूडे ।
मंदरस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं, दक्खिणिल्लाए सीओआए पच्चत्थिमेणं ।

(४) इसी प्रकार अंजनगिरि दिशा हस्तिकूट है—
यह मंदर पर्वत के दक्षिण-पश्चिम में है, दक्षिणी शीतोदा नदी से पश्चिम में है ।

---

१ (क) जम्बुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए भद्दसालवणे अट्ठ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता । तं जहा—
गाहा—(१) पउमुत्तर, (२) णीलवंते, (३) सुहत्थि, (४) अंजणागिरी ।
(५) कुमुदे य, (६) पलासे य, (७) वडेंसे, (८) रोयणागिरी ॥ —ठाणं. ८, सु० ६४२
स्थानाङ्गेऽष्टमस्थाने तु पूर्वादिषु दिक्षु हस्त्याकाराणि कूटानीति ।
(ख) अन्यत्र रोहणागिरि—

२ (क) उच्चत्वन्यायेनविष्कम्भः, मूले पञ्चयोजनशतानि, मध्ये त्रीणि योजनशतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि, उपरि अर्द्ध तृतीयानि योजन शतानीत्येवंरूपो विष्कम्भः ।
(ख) परिक्षेपश्च भणितव्यः तथाहि-मूले पञ्चदशयोजनशतानि एकाशीत्यधिकानि, मध्ये एकादशयोजनशतानि षडशीत्यधिकानि किञ्चिदूनानीति परिक्षेपः ।

प्रासादानां च एतद्वर्तिदेवसत्कानां तदेव प्रमाणमिति गम्यं यत् क्षुद्रहिमवत्कूटपतिप्रासादस्येति, अत्र बहुवचननिर्देशो वक्ष्यमाण-दिग्हस्तिकूटवर्तिप्रासादेष्वपि समानप्रमाणसूचनार्थम् । —जम्बू० वृत्ति

एयस्स वि अंजणागिरि देवो, रायहाणी—दाहिण-पच्चत्थिमेणं।

(५) एवं कुमुदे विदिसाहत्थिकूडे—

मंदरस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमिल्लाए सीओआए दक्खिणेणं।

एयस्स वि कुमुदो देवो, रायहाणी—दाहिण-पच्चत्थिमेणं।

(६) एवं पलासे विदिसाहत्थिकूडे—

मंदरस्स उत्तर-पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमिल्लाए सीओआए उत्तरेणं।

एयस्स वि पलासो देवो, रायहाणी—उत्तर-पच्चत्थिमेणं।

(७) एवं वडेंसे विदिसाहत्थिकूडे—

मंदरस्स उत्तर-पच्चत्थिमेणं, उत्तरिल्लाए सीआए पच्चत्थिमेणं।

एयस्स वि वडेंसो देवो, रायहाणी—उत्तर-पच्चत्थिमेणं।

(८) एवं रोअणागिरि विदिसाहत्थिकूडे—

मंदरस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं, उत्तरिल्लाए सीआए पुरत्थिमेणं।

एयस्स वि रोअणागिरी देवो, रायहाणी उत्तर-पुरत्थिमेणं। —जंबु० वक्ख० ४, सु० १०३

इस कूट का अधिपति अंजनगिरि देव है, इसकी राजधानी दक्षिण-पश्चिम में है।

(५) इसी प्रकार कुमुद विदिशा हस्तिकूट है—

यह मंदर पर्वत के दक्षिण-पश्चिम में है, पश्चिमी शीतोदा नदी से दक्षिण में है।

इस कूट का अधिपति कुमुद देव है, इसकी राजधानी दक्षिण-पश्चिम में है।

(६) इसी प्रकार पलास विदिशाहस्तिकूट है—

यह मंदर पर्वत के उत्तर-पश्चिम में है, पश्चिमी शीतोदानदी से उत्तर में है।

इस कूट का अधिपति पलास देव है, इसकी राजधानी उत्तर-पश्चिम में है।

(७) इसी प्रकार अवतंसक विदिशाहस्तिकूट है—

यह मंदर पर्वत के उत्तर-पश्चिम में है, उत्तरी शीता नदी से पश्चिम में है।

इस कूट का अधिपति अवतंसक देव है इसकी राजधानी उत्तर-पश्चिम में है।

(८) इसी प्रकार रोचनगिरि विदिशाहस्तिकूट है।

यह मंदर पर्वत के उत्तर-पूर्व में है, उत्तरी शीता नदी से पूर्व में है।

इस कूट का अधिपति रोचनगिरि देव है, इसकी राजधानी उत्तर-पूर्व में है।

चउसु रुयगवरपव्वएसु बत्तीसकूडा—

४८६. (१) जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं रुयगवरे पव्वए अट्ठकूडा पण्णत्ता, तं जहा—

गाहा—

१ रिट्ठे २ तवणिज्ज ३ कंचण, ४ रयय ५ दिसासोत्थिय ६ पलंबे य।
७ अंजणे ८ अंजणपुलए, रुयगस्स पुरत्थिमे कूडा॥

(२) जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं रुयगवरे पव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

गाहा—

१ कणए २ कंचणे ३ पउमे, ४ णलिणे ५ ससि ६ दिवायरे चेव।
७ वेसमणे ८ वेरुलिए, रुयगस्स उ दाहिणे कूडा॥

(३) जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं रुयगवरे पव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

गाहा—

१ सोत्थिते य २ अमोहे य, ३ हिमवं ४ मंदरे तहा।
५ रुअगे, ६ रुयगुत्तमे ७ चंदे, अट्ठमे य ८ सुदसणे॥

चार रुचक पर्वतों पर बत्तीस कूट—

४८६. (१) जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में रुचक पर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं, यथा—

गाथार्थ—

(१) रिष्टकूट, (२) तपनीयकूट, (३) कांचनकूट, (४) रजतकूट, (५) दिशास्वस्तिक कूट, (६) प्रलंबककूट, (७) अंजनकूट, (८) अंजनपुलककूट।

(२) जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में रुचक पर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं, यथा—

गाथार्थ—

(१) कनककूट, (२) कञ्चनकूट, (३) पद्मकूट, (४) नलिनकूट, (५) शशीकूट, (६) दिवाकरकूट, (७) वैश्रमणकूट, (८) वैडूर्यकूट।

(३) जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चि में रुचक पर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं, यथा—

गाथार्थ—

(१) स्वस्तिककूट, (२) अमोघकूट, (३) हिमवान्कूट, (४) मन्दरकूट, (५) रुचककूट, (६) रुचकोत्तमकूट, (७) चन्द्रकूट, (८) सुदर्शनकूट।

(४) जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रुयगवरे पव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

गाहा—

१ रयण २ रयणुच्चए य, ३ सव्वरयण ४ रयणसंचए चेव।[1]
५ विजये य ६ वेजयंते, ७ जयंते ८ अपराजिते ॥[2]

—ठाणं ८, सु० ६४३

(४) जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दरपर्वत के उत्तर में रुचकपर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं, यथा—

गाथार्थ—

(१) रत्नकूट, (२) रत्नोच्चयकूट, (३) सर्वरत्नकूट, (४) रत्नसंचयकूट, (५) विजयकूट, (६) वैजयन्तकूट, (७) जयन्तकूट, (८) अपराजितकूट।

१ इन कूटों पर निवास करने वाली आठ-आठ दिशाकुमारियों के नाम भी इन सूत्रों में है। धर्मकथानुयोग प्रथम स्कन्ध, ऋषभचरित्र सूत्र २८ से ३१ तक पृष्ठ ११-१२ पर देखना चाहिए।

२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्षस्कार ६ सूत्र १२५ में "जम्बूद्वीप में चार सौ सडसठ (४६७) गिरिकूटों की गणना है" किन्तु इन चार रुचक पर्वतों के बत्तीस कूटों की गणना उनमें नहीं की गई है, अतः इसकी गणना कूट परिशिष्ट में की गई है।

अढाई द्वीप में दो हजार तीन सौ पैंतीस (२३३५) शास्वत कूट—

जम्बूद्वीप में इकसठ (६१) पर्वतों पर चार सौ सडसठ (४६७) शास्वत कूट—

भरत क्षेत्र में—

		कूट
१. क्षुद्र हिमवन्त पर्वत पर	शास्वतकूट	११
२. महाहिमवन्त पर्वत पर	,,	८
३. निषध पर्वत पर	,,	९
४. दीर्घवैताढ्य पर्वत पर	,,	९
		३७

ऐरवत क्षेत्र में—

		कूट
५. शिखरी पर्वत पर	शास्वतकूट	११
६. रुक्मी पर्वत पर	,,	८
७. नीलवन्त पर्वत पर	,,	९
८. दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर	,,	९
		३७

महाविदेह क्षेत्र में—

(क) पूर्व महाविदेह क्षेत्र में—

		कूट
१६. सोलह दीर्घवैताढ्य पर्वतों पर (प्रत्येक पर्वत पर नौ-नौ कूट)	शास्वतकूट	१४४
८. आठ वक्षस्कार पर्वतों पर (प्रत्येक पर्वत पर चार चार कूट)	शास्वतकूट	३२

(ख) पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में—

		कूट
१६. सोलह दीर्घवैताढ्य पर्वतों पर (प्रत्येक पर्वत पर नौ नौ कूट)	शास्वतकूट	१४४
८. आठ वक्षस्कार पर्वतों पर (प्रत्येक पर्वत पर चार चार कूट)	शास्वतकूट	३२

(ग) दक्षिण महाविदेह क्षेत्र में—

		कूट
२. दो गजदन्ता पर्वतों पर (सोमनस पर्वत पर सात कूट) (विद्युत्प्रभ पर्वत पर नौ कूट)	शास्वतकूट	१६

(घ) उत्तर महाविदेह क्षेत्र में—

		कूट
२. दो गजदन्ता पर्वतों पर (गंधमादन पर्वत पर सात कूट) (माल्यवन्त पर्वत पर नौ कूट)	शास्वतकूट	१६

(ङ) जम्बूद्वीप के मध्य में—

		कूट
१ मेरु पर्वत पर	शास्वतकूट	९
६१		

पर्वतगणना :

भरत क्षेत्र में पर्वत	चार	४
ऐरवत क्षेत्र में पर्वत	चार	४
महाविदेह क्षेत्र में पर्वत	त्रेपन	५३
		६१ पर्वत

कूटगणना :

भरत क्षेत्र में	शास्वतकूट	३७
ऐरवत क्षेत्र में	,,	३७
महाविदेह क्षेत्र में	,,	३९३
		४६७

धातकी खण्डद्वीप में एक सौ बाईस (१२२) पर्वतों पर नौ सौ चौतीस (९३४) शास्वतकूट।

पुष्करार्धद्वीप में एक सौ बाईस (१२२) पर्वतों पर नौ सौ चौतीस (९३४) शास्वतकूट।

गुफा वर्णन—

दीहवेयड्ढ गुहाणं गुहाहिवदेवाणं च संखा—

४८७. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयाओ तिमिसगुहाओ ?

केवइयाओ खंडप्पवायगुहाओ पण्णत्ताओ ?

केवइया कयमालया देवा ?

केवइया णट्टमालया देवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे, चोत्तीसं तिमिसगुहाओ।

चोत्तीसं खंडप्पवायगुहाओ।

चोत्तीसं कयमालया देवा।

चोत्तीसं णट्टमालया देवा।[1]

—जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

दीर्घवैताढ्य की गुफा और गुफा स्वामी देवों की संख्या—

४८७. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में तमिस्र गुफायें कितनी हैं ?

खण्डप्रपात गुफायें कितनी कही गई हैं ?

कृतमालक देव कितने हैं ?

नृत्यमालक देव कितने कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप द्वीप में तमिस्र गुफायें चौतीस हैं।

खण्डप्रपात गुफायें चौतीस हैं।

कृतमालक देव चौतीस हैं।

नृत्यमालक देव भी चौतीस हैं।

दुण्हं गुहाणं ठाणं पमाणं च—

४८८. वेयड्ढस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिम-पच्चत्थिमेणं दो गुहाओ पण्णत्ताओ।

उत्तर-दाहिणाययाओ पाईण-पडीणवित्थिन्नाओ।

पण्णासं जोयणाइं आयामेणं,[2] दुवालसजोयणाइं विक्खंभेणं, अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं।[3]

वइरामयकवाडोहाडियाओ जमल-जुअलकवाडघण-दुप्पवेसाओ।

णिच्चंधयारतिमिस्साओ, ववगयगहचंद-सूर-णक्खत्त-जोइसपहाओ,-जाव-पडिरूवाओ।

दोनों गुफाओं के स्थान और प्रमाण—

४८८. वैताढ्य पर्वत के पूर्व और पश्चिम में दो गुफायें कही गई हैं।

ये उत्तर-दक्षिण में लम्बी और पूर्व-पश्चिम में चौड़ी हैं।

इनकी लम्बाई पचास योजन, चौड़ाई बारह योजन और ऊँचाई आठ योजन है।

ये वज्रमय कपाटों से ढकी हुई हैं। इनके जुगल-जोड़ी वाले कपाट सघन और दुष्प्रवेश्य हैं।

ये गुफायें सदैव अन्धकार से व्याप्त रहती हैं। इनमें ग्रह, चन्द्र, सूर्य एवं नक्षत्र रूप ज्योतिष्कों की प्रभा का अभाव है—यावत्—ये प्रतिरूप हैं।

---

१ जम्बू० वक्ष० ६, सु० १२५ में चौतीस दीर्घवैताढ्य पर्वत, उन पर्वतों की गुफायें और उन गुफाओं में निवास करने वाले देव की संख्या भी चौतीस कही गई है। उन सबका गणनाक्रम इस प्रकार है :—
महाविदेह क्षेत्र के बत्तीस विजयों में बत्तीस दीर्घवैताढ्य पर्वत हैं।
भरत क्षेत्र में और ऐरवत क्षेत्र में एक एक दीर्घ वैताढ्य पर्वत हैं।
इस प्रकार ३४ दीर्घवैताढ्यपर्वत हैं, प्रत्येक पर्वत में दो गुफायें हैं, और प्रत्येक गुफा में निवास करने वाला एक एक देव है।
इस प्रकार दीर्घवैताढ्य पर्वत ३४, गुफायें ६८ और उनमें निवास करने वाले देव भी ६८ हैं।
इसी सूत्र में जम्बूद्वीप में विद्यमान २६९ शास्वत पर्वतों की गणना दी गई है, उनमें से केवल चौतीस दीर्घ वैताढ्य पर्वतों की गुफाओं का वर्णन ही आगमों मे उपलब्ध है और अन्य किसी एक गुफा का भी वर्णन उपलब्ध नहीं है—यह एक विचारणीय प्रश्न है।
अन्य अनेक पर्वतों में से कुछ पर्वतों की गुफायें इन गुफाओं से भी विशाल तो होगी ही अतः उनका वर्णन भी उपलब्ध होना चाहिए था, क्योंकि पर्वतों की विशालता के अनुरूप गुफाओं की विशालता भी सम्भव है। केवल दीर्घवैताढ्य पर्वतों की ही गुफायें हैं, अन्य पर्वतों की गुफायें हैं ही नहीं—ऐसा निषेध आगमों में कहीं नहीं है।

२ सव्वाओ णं तिमिसगुहा खंडप्पवायगुहाओ पण्णासं पण्णासं जोयणाइं आयामेणं पण्णत्ताओ। —सम० ५, सु० ६

३ तिमिसगुहाणं अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
खंडप्पवायगुहाणं अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं। —ठाणं ८, सु० ६३७

तं जहा—१. तमिसगुहा चेव, खंडप्पवायगुहा चेव।

तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तं जहा—१. कयमालाए चेव, २. णट्टमालए चेव।

—जंबु० वक्ख० १, सु० १२

यथा—तमिस्रगुफा और खण्डप्रपातगुफा।

इन गुफाओं में दो देव रहते हैं जो महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले हैं यथा—१. कृतमाल और २. नृत्यमाला।

सीया-सीओयामहाणइउत्तर-दाहिणगया पव्वय-गुहा-देवा—

शीता-शीतोदा महानदियों की उत्तर-दक्षिण दिशा स्थित पर्वत, गुफा और देव—

४८९. जंबुमंदर-पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं अट्ठ दीहवेयड्ढा, अट्ठ तिमिसगुहाओ, अट्ठ खंडप्पवायगुहाओ, अट्ठ कयमालगा देवा, अट्ठ नट्टमालगा देवा।

४८९. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व में और सीतामहानदी के उत्तर में आठ दीर्घवैताढ्य पर्वत हैं, आठ तमिस्रगुफायें हैं, आठ खण्डप्रपात गुफायें हैं, आठ कृतमालक देव हैं, और आठ नृत्यमालक देव हैं।

४९०. जंबुमंदर-पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए दाहिणेणं अट्ठ दीहवेयड्ढा, अट्ठ तिमिसगुहाओ, अट्ठ खंडप्पवायगुहाओ, अट्ठ कयमालगा देवा, अट्ठ नट्टमालगा देवा।

४९०. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व में और सीता महानदी के दक्षिण में आठ दीर्घवैताढ्य पर्वत हैं, आठ तमिस्रगुफायें हैं, आठ खण्डप्रपात गुफायें है, आठ कृतमालक देव हैं और आठ नृत्यमालक देव हैं।

४९१. जंबुमंदर-पच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए उत्तरेणं अट्ठ दीहवेयड्ढा-जाव-अट्ठ नट्टमालगा देवा।

४९१. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से पश्चिम में और सीतोदा महानदी के उत्तर में आठ दीर्घवैताढ्य पर्वत है—यावत्—आठ नृत्यमालक देव हैं।

४९२. जंबुमंदर-पच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए दाहिणेणं अट्ठ दीहवेयड्ढा-जाव-अट्ठ नट्टमालगा देवा।

—ठाणं ८, सु० ६३९

४९२. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से पश्चिम में और सीतोदा महानदी के दक्षिण में आठ दीर्घवैताढ्य पर्वत हैं—यावत्—आठ नृत्यमालक देव हैं।

भरहे एरवए य दीहवेयड्ढाणं दुण्हं गुहाणं समतुल्लत्तं—

भरत और ऐरवत के दीर्घवैताढ्य पर्वतों की दोनों गुफाओं की समानता—

४९३. भारहए णं दीहवेयड्ढे दो गुहाओ बहुसमतुल्लाओ अविसेसमणाणत्ताओ अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति आयाम-विक्खंभुच्चत्त-संठाणपरिणाहेणं, तं जहा—तिमिसगुहा चेव, खंडप्पवायगुहा चेव।

तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति। तं जहा—कयमालए चेव नट्टमालए चेव।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८७

४९३. उस भरत-दीर्घ वैताढ्य में दो गुफायें कही गई हैं जो अति समतुल्य, अविशेष, विविधता रहित और एक-दूसरी की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, संस्थान और परिधि में अतिक्रम न करने वाली हैं यथा—तिमिस्र गुफा और खण्ड-प्रपातगुफा।

वहाँ महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं, यथा—कृतमालक और नृत्यमालक।

४९४. एरावयाए णं दीहवेयड्ढे दो गुहाओ बहुसमतुल्ला-जाव-कयमालए चेव, नट्टमालए चेव। —ठाणं २, उ० ३, सु० ८७

४९४. ऐरवत-दीर्घवैताढ्य में दो गुफायें हैं जो अतिसमान हैं—वहाँ कृतमालक और नृत्यमालक देव रहते हैं।

चोद्दसप्पवायकुण्डा[1]—

चौदह प्रपात कुण्ड—

(१) गंगप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ—

(१) गंगा प्रपातकुण्ड का प्रमाण—

४९५. गंगा महाणई जत्थ पवडइ, एत्थ णं महं एगे गंगप्पवाए कुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते।

४९५. गंगा महानदी जहां मिलती (हिमवान आदि पर्वतों से गिरती) है, वहाँ गंगाप्रपात कुण्ड नामक एक विशाल कुण्ड कहा गया है।

---

१ प्रपातकुण्ड और प्रपातद्रह—दोनों समानार्थक हैं।
देखिए—स्थानांग २, उ० ३, सूत्र ८८ की टीका का अंश—
"पवायद्दह" त्ति प्रपतनं प्रपातस्तदुपलक्षितो ह्रदो प्रपात ह्रदो, इह यत्र हिमवदादेर्नगात् गंगादिका महानदी प्रणालेनाधोनिपतति स प्रपातह्रद इति, प्रपातकुण्डमित्यर्थः।"

सट्ठि जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
णउअं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं,
दस जोअणाइं उव्वेहेणं,[1]
अच्छे सण्हे रययामयकूले।

समतीरे वइरामयपासाणे वइरतले सुवण्ण-सुब्भरययामय-वालुआए वेरुलिअमणिफलिअपडलपच्चोअडे,

सुहोआरे सुहोत्तारे णाणामणितित्थ सुवद्धे वट्टे,

अणुपुव्व-सुजाय-वप्प-गंभीर-सीअलजले,

संछण्णपत्त-भिस-मणाले, बहुउप्पल–कुमुअ-णलिण–सुभग-सोगंधिअ-पोंडरीअ-महापोंडरिअ-सयपत्त-सहस्सपत्त-सयसहस्स-पप्फुल्ल-केसरोवचिए, छप्पय-महुयरपरिभुज्जमाणकमले।

अच्छ-विमल-पत्थसलिले पुण्णे, पडिहत्थभमंतमच्छ-कच्छभ-अणेगसउणगण-मिहुणपविअरियसद्दुन्नइअ-महुरसरणाइए, पासाईए-जाव-पडिरूवे।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए, एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

वेइआ-वणसंडगाणं पउमाणं वण्णओ भाणियव्वो।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

यह साठ योजन लम्बा-चौड़ा है।
एक सौ योजन से किंचित अधिक की परिधि वाला है।
दस योजन गहरा है,
स्वच्छ है, चिकना है, रजतमय किनारे वाला है।

तीर समतल हैं, दीवालें वज्रमय हैं, तल भी वज्रमय है, उसमें सुवर्णमय, शुभ्रमय (रूप्यविशेषमय) एवं रजतमय वालुका हैं। उसके किनारे के ऊँचे प्रदेश वैडूर्यमणिमय एवं पटल स्फटिक-रत्नमय है।

सुखपूर्वक उतरने चढ़ने योग्य हैं। उसका तीर्थ (घाट) नाना प्रकार की मणियों के सुवद्ध है। वह गोलाकार है।

अनुक्रम से नीचा और सुनिर्मित केदार में गहरा है और उसमें शीतल जल है।

वह (पद्मिनी के) पत्तों से, कन्दों से और मृणालों से आच्छादित है। खिले हुए उत्पलों, कुमुदों, नलिनों, सुभगों, सौगन्धिकों, पुण्डरीकों, महापुण्डरीकों, सहस्रपत्तों एवं लक्षपत्र कमलों की केसर से सुशोभित है। भ्रमरों (षड्पद मधुपों) से परिभुज्यमान पद्म कमलवाला है।

स्वच्छ विमल एवं पथ्य जल से युक्त है एवं पूरा भरा हुआ है। उसमें मच्छ और कच्छ बड़ी संख्या में घूमते रहते हैं। अनेक पक्षी-युगलों का वहाँ विहार होता रहता है। उनके मधुर स्वरों से वह गूंजता रहता है और चित्त को प्रसन्न करने वाला है—यावत्—मनोहर है।

यह (गंगाप्रपात कुण्ड) एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है।

पद्मवरवेदिका का, वनखण्ड का और पद्मों का वर्णन यहाँ कहना चाहिए।

गंगप्पवायकुण्डस्स तिसोवाणपडिरूवगा—

४६६. तस्स णं गंगप्पवायकुण्डस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता,

तं जहा—पुरत्थिमेणं, दाहिणेणं, पच्चत्थिमेणं।

तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते,

तं जहा—वइरामया णेम्मा, रिट्ठामया पइट्ठाणा, वेरुलिआमया खंभा, सुवण्ण—रुप्पमया फलगा, लोहिअक्खमईओ सूईओ, वइरामया संधी, णाणामणिमया आलंबणा, आलंबण-बाहाओति। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

गंगाप्रपातकुण्ड त्रिसोपान प्रतिरूपक—

४६६. इस गंगप्रपातकुण्ड की तीन दिशाओं में तीन तीन प्रतिरूप (सुन्दर) सोपान पंक्तियाँ कही गई हैं।

यथा—पूर्व में, दक्षिण और पश्चिम में।

इन मनोहर त्रिसोपानों का वर्णन इस प्रकार का कहा गया है—

यथा—इनके पाये वज्रमय हैं, प्रतिष्ठान अरिष्टमय हैं, स्तम्भ वैडूर्यमय हैं, फलक स्वर्ण-रूप्यमय हैं, सूचियाँ लोहिताक्षमय हैं, संधियाँ वज्रमय हैं, आलंबन (उतरते-चढ़ते समय सहारा लेने के साधन) तथा आलंबनवाहाएँ (आलंबन की आधारभूत भित्तियाँ) नाना मणिमय हैं।

---

१ सव्वेवि णं सलिलकुण्डा दसजोयणाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। —ठाणं० १०, सु० ७७६

तिसोवाण पडिरूवगाणं तोरणाइ—

४६७. तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं तोरणा पण्णत्ता।

ते णं तोरणा णाणामणिमया,

णाणामणिमएसु खंभेसु उवणिविट्ठ—संनिविट्ठा,

विविहमुत्तंतरोवइआ विविहतारा—रूवोवचिआ,

इहामिअ-उसह-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरू-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलयभत्तिचित्ता, खंभुग्गय-वइरवेइआ परिगयाभिरामा,

विज्जाहरजमलजुअलजंतजुत्ताविव अच्चीसहस्स-मालणीआ,

रूवगसहस्सकलिआ, भिसमाणा, भिब्भिसमाणा, चक्खुल्लोअणलेसा, सुहभासा, सस्सिरीअरूवा,

घंटावलिचलिअ-महुर-मणहरसरा पासादीया-जाव-पडिरूवा।

तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता,

तं जहा—सोत्थिए, सिरिवच्छे-जाव-पडिरूवा।

तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे किण्हचामरज्झया-जाव-सुक्किल्लचामरज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपट्टा वइरामयदण्डा जलयामलगंधिया सुरम्मा पासादीया-जाव-पडिरूवा।

तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्ताइच्छत्ता, पडागाइ-पडागा घंटाजुअला चामरजुआ उप्पलहत्थगा पउमहत्थगा-जाव-सयसहस्सपत्तहत्थगा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

(२) सिंधुप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ[1]—

(३) रत्तप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ[2]—

(४) रत्तवइप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ[3]—

(५) रोहिअप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ—

४६८. रोहिआ णं महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे रोहिअप्पवायकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते।

त्रिसोपान प्रतिरूपकों के तोरण—

४६७, इन मनोहर त्रिसोपानों के सामने पृथक्-पृथक् तोरण कहे गये हैं।

ये तोरण नानामणिमय हैं।

नानामणिमय स्तम्भों से उपनिविष्ट और सन्निविष्ट हैं।

विविध मुक्ताओं से उपचित हैं। विविध तारारूपों से सहित हैं।

उन पर भेड़िया, वृषभ, तुरंग, नर, मगर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरु (मृग विशेष) अष्टापद, चमर, कुञ्जर, वनलता, पद्मलता आदि के चित्र अंकित हैं। वे स्तम्भ के ऊपर रही हुई वज्रमय वेदिका से सुशोभित हैं।

विद्याधरों की जुगल जोड़ी के चित्रों से युक्त हैं। सहस्रों किरणों की प्रभा वाले हैं।

सहस्र रूप से कलित हैं, चमकीले हैं, देदीप्यमान हैं। देखने पर नेत्र उनमें स्थिर हो जाते हैं। सुखद स्पर्श वाले तथा सश्रीक रूप वाले हैं।

हिलती हुई घंटावली से मधुर एवं मनोहर स्वर को उत्पन्न करने वाले हैं, प्रासादिक है—यावत्—प्रतिरूप हैं।

इन तोरणों पर अनेक अष्ट-अष्ट मंगल कहे गये हैं,

यथा—स्वस्तिक, श्रीवत्स—यावत्—प्रतिरूप हैं।

इन तोरणों पर अनेक कृष्ण चामरध्वजाएँ—यावत्—शुक्ल चामरध्वजाएँ हैं। (चामरध्वजाएँ) स्वच्छ, श्लक्ष्ण, रोप्यपट्टवाली, वज्र के दंड वाली, कमल के समान सुगन्धित, सुरम्य एवं प्रासादिक—यावत्—मनोहर हैं।

इन तोरणों पर अनेक छत्रों पर छत्र, पताकाओं पर पताकाएँ घंटायुगल, चामरयुगल उत्पल, हस्तल (उत्पल-कमल हाथ में लिए हुए के चित्र) पद्महस्तक—यावत्—लक्षपत्र-हस्तक हैं। ये सब सर्वरत्नमय, स्वच्छ—यावत्—मनोहर हैं।

(२) सिन्धुप्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

(३) रक्ताप्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

(४) रक्तवतीप्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

(५) रोहिताप्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

४६८. जहाँ रोहिता महानदी गिरती है वहाँ रोहिताप्रपातकुण्ड नामक एक विशालकुण्ड कहा गया है।

---

१ जम्बू० वक्ष० ४ मूत्र ७४ में 'एवं सिंधूए वि णेयव्वं'—यह संक्षिप्त वाचना की सूचना है, इसके अनुसार सिन्धुप्रपातकुण्ड के आयाम आदि का वर्णन गंगाप्रपातकुण्ड के समान है।

२-३ जम्बू० वक्ष० ४ सूत्र १११ में 'एवं जह चेव गंगा-सिन्धुओ तह चेव रत्तारत्तवइओ णेयव्वाओ' यह संक्षिप्त वाचना की सूचना हैं, इसके अनुसार रक्ता प्रपातकुण्ड और रक्तवतीप्रपातकुण्ड के आयाम आदि का वर्णन भी गंगाप्रपातकुण्ड के समान है।

सवीसं जोयणसयं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्तं।
तिण्णि असीए जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं।
दस जोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे-जाव-पडिरूवे।

सो चेव कुण्ड वण्णओ। वइरतले वट्टे समतीरे-जाव-तोरणा। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

यह एक सौ वीस योजन लम्बा-चौड़ा कहा गया है।
तीन सौ अस्सी योजन से कुछ कम की परिधि वाला है।
दस योजन गहरा स्वच्छ—यावत्—मनोहर है।

यहाँ वही कुण्डवर्णक कहना चाहिए। इसका तल वज्रमय है। यह वर्तुलाकार व सम किनारों वाला है—यावत्—तोरण हैं।

(६) रोहिअंसप्पवायकुण्डस्स पमाणाइं—

(६) रोहितांशप्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

४९९. रोहिअंसा महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे रोहिअंसाप्पवाय-कुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते।

सवीसं जोयणसयं आयाम-विक्खंभेणं,
तिण्णिं असीए जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं।

दस जोअणाणं उव्वेहेणं, अच्छे-जाव-पडिरूवे। कुण्डवण्णओ -जाव-तोरणा। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

४९९. जहाँ रोहितांशा महानदी गिरती है वहाँ एक विशाल रोहितांशाप्रपातकुण्ड नामक कुण्ड कहा गया है।

यह एक सौ वीस योजन लम्बा-चौड़ा है।
तीन सौ अस्सी योजन से कुछ कम की परिधि वाला है।

दस योजन गहरा स्वच्छ—यावत्—मनोहर है। यहाँ कुण्ड का वर्णन समझ लेना चाहिए—यावत्—तोरण हैं।

(७) सुवण्णकूलप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ[1]—

(७) सुवर्णकूला प्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

(८) रुप्पकूलप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ[2]—

(८) रुप्यकूला प्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

(९) हरिकंतप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ—

(९) हरिकांतप्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

५००. हरिकंता णं महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे हरिकंतप्पवायकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते।

दोण्णि अ चत्ताले जोयणसए आयाम-विक्खंभेणं,
सत्तअउणट्ठे जोअणसए परिक्खेवेणं, अच्छे-जाव-पडिरूवे।

एवं कुण्डवत्तव्वया सव्वा नेयव्वा-जाव-तोरणा। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

५००. हरिकान्ता महानदी जहाँ गिरती है वहा हरिकान्ताप्रपात-कुण्ड नामक एक विशाल कुण्ड कहा गया है।

यह दो सौ चालीस योजन लम्बा-चौड़ा है।
सात सौ उनसठ योजन की परिधि वाला है यह स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है।

यह सम्पूर्ण कुण्डवक्तव्यता कहनी चाहिए—यावत्—तोरण हैं।

(१०) हरिसलिलप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ[3]—

(१०) हरिसलिला प्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

(११) नरकंतप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ[4]—

(११) नरकान्ता प्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

(१२) नारीकंतप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ[5]—

(१२) नारीकान्ता प्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

---

१ जम्बु० वक्ष० ४ सूत्र १११ में 'जहा रोहिअंसा'—यह संक्षिप्त वाचना की सूचना है, इसके अनुसार सुवर्णकूला प्रपातकुण्ड के आयामादिका वर्णन रोहितांशाप्रपातकुण्ड के आयामादि के वर्णन के समान है।

२ जम्बु० वक्ष० ४ सूत्र १११ में 'जहा हरिकंता' तथा 'अवसिट्ठं तं चेव' ये दो संक्षिप्त वाचना की सूचनाएँ हैं—इनके अनुसार रुप्यकूलाप्रपातकुण्ड के आयामादि का वर्णन हरिकान्ता प्रपातकुण्ड के आयामादि के वर्णन के समान है।

३ जम्बु० वक्ष० ४ सूत्र ८४ में 'एवं जा चेव हरिकंताए वत्तव्वया सा चेव हरीए वि णेयव्वा। जिब्भियाए, कुंडस्स, दीवस्स, भवणस्स तं चेव पमाणं। अट्ठो वि भाणियव्वो। यह संक्षिप्त सूचना हैं—इनके अनुसार हरिकान्ता प्रपातकुण्ड के आयामादि के समान हरिसलिलाप्रपातकुण्ड के आयामादि है।

४ जम्बु० वक्ष० ४ सूत्र १११ में 'जहा रोहिआ'—यह संक्षिप्त वाचना की सूचना है, इसके अनुसार नरकान्ता प्रपातकुण्ड के आयामादि का वर्णन रोहिता प्रपातकुण्ड के आयामादि के वर्णन के समान है।

५ जम्बु० वक्ष० ४ सूत्र १११ में 'जहा हरिसलिला'—यह संक्षिप्त वाचना की सूचना है, इसके अनुसार नारिकान्ताप्रपातकुण्ड के आयामादि का वर्णन हरिसलिलाप्रपातकुण्ड के आयामादि के वर्णन के समान है।

(१३) सीअप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ[1]—

(१४) सीओअप्पवायकुण्डस्स पमाणाइ—

५०१. सीओआ णं महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे सीओ-अप्पवायकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते।

चत्तारि असीए जोअणसए आयाम-विक्खंभेणं,

पण्णरस-अट्ठारे जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, अच्छे-जाव-पडिरूवे।

एवं कुण्डवत्तव्वया णेअव्वा-जाव-तोरणा।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८४

(१३) सीताप्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

(१४) सीतोदाप्रपातकुण्ड के प्रमाणादि—

५०१. शीतोदा महानदी जहाँ गिरती है वहाँ शीतोदा प्रपातकुण्ड नामक एक विशाल कुण्ड कहा गया है।

यह चार सौ अस्सी योजन का लम्बा-चौड़ा है।

पन्द्रह सौ योजन से कुछ कम की परिधि वाला है, स्वच्छ—यावत्—मनोहर है।

इस प्रकार कुण्ड की वक्तव्यता जान लेना चाहिए—यावत् तोरण है।

जंबुद्दीवे भरहाईवासेसु गंगप्पवायाइ पवायद्दहा—

५०२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वयस्स दाहिणेणं भरहे वासे दो पवायद्दहा,

बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं।

तं जहा—गंगप्पवायद्दहे चेव, सिंधुप्पवायद्दहे चेव।

एवं हिमवए वासे दो पवायद्दहा,

बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं।

तं जहा—रोहियप्पवायद्दहे चेव, रोहियंसप्पवायद्दहे चेव।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वयस्स दाहिणेणं हरिवासे दो पवायद्दहा,

बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं।

तं जहा—हरिप्पवायद्दहे चेव, हरिकंतप्पवायद्दहे चेव।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं महाविदेहवासे दो पवायद्दहा।

बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं,

तं जहा—सीअप्पवायद्दहे चेव, सीओअप्पवायद्दहे चेव।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वयस्स उत्तरेणं रम्मए वासे दो पवायद्दहा,

बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं,

तं जहा—नरकंतप्पवायद्दहे चेव, नारीकंतप्पवायद्दहे चेव।

एवं हेरण्णवए वासे दो पवायद्दहा,

बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं,

तं जहा—सुवन्नकूलप्पवायद्दहे चेव, रुप्पकूलप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीप के भरतादि क्षेत्रों में गंगाप्रपातादि प्रपातद्रह—

५०२. जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में भरत क्षेत्र में दो प्रपात द्रह हैं।

जो अति समतुल्य—यावत्—परिधि तुल्य हैं।

यथा—गंगाप्रपातद्रह और सिन्धु प्रपातद्रह।

इसी प्रकार हैमवत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह हैं।

जो अतिसम तुल्य—यावत्—परिधि तुल्य हैं।

यथा—रोहितप्रपात द्रह और रोहितांशप्रपात द्रह।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के दक्षिण में हरिवर्ष क्षेत्र में दो प्रपातद्रह हैं।

जो अति समतुल्य—यावत्—तुल्य परिधि हैं।

यथा—हरिप्रपात द्रह और हरिकान्त प्रपातद्रह।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर-दक्षिण में महाविदेह क्षेत्र में दो प्रपातद्रह हैं।

जो अतिसम तुल्य—यावत्—परिधि तुल्य है।

यथा—सीताप्रपातद्रह और शीतोदाप्रपातद्रह।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में रम्यक्वर्ष में दो प्रपातद्रह हैं।

जो अतिसमतुल्य—यावत्—परिधि तुल्य हैं।

यथा—नरकान्त प्रपातद्रह और नारीकान्तप्रपात द्रह।

इसी प्रकार हैरण्यवत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह हैं।

जो अतिसम तुल्य—यावत्—परिधि तुल्य है।

यथा—सुवर्णकूल प्रपातद्रह और रुप्यकूल प्रपातद्रह।

---

१ जम्बु० वक्ष० ४ सूत्र ८४ में सीतोद प्रपातकुण्ड के आयामादि का वर्णन तो है किन्तु सीता प्रपातकुण्ड के आयामादि के सम्बन्ध में संक्षिप्त वाचना का सूचना पाठ उपलब्ध नहीं है फिर भी स्थानाङ्ग २, उ० ३, सूत्र ८८ में सीता और सीतोदा महानदी का प्रमाण समान कहा है। अतः दोनों महानदियों के प्रपातकुण्डों के आयामादि भी समान ही हैं—ऐसा समझना चाहिए।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वयस्स उत्तरेणं एरवए वासे दो पवायद्दहा,

बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं,

तं जहा—रत्तप्पवायद्दहे चेव, रत्तावईप्पवायद्दहे चेव ।

—ठा० २, उ० ३, सु० ८८

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में ऐरवत क्षेत्र में दो प्रपात द्रह हैं ।

जो अतिसमतुल्य—यावत्—परिधितुल्य हैं ।

यथा—रजतप्रपाद्रह और रक्तावती प्रपात द्रह ।

पवायकुण्डेसु दीवा देवीभवणाइं च—

(१) गंगादीवस्स अवट्ठिइ पमाणं च—

५०३. तस्स णं गंगप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे गंगादीवे णामं दीवे पण्णत्ते ।

अट्ठ जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,

साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं,

दो कोसे ऊसिए जलंताओ,

सव्ववइरामए अच्छे सण्हे-जाव-पडिरूवे ।

से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समता संपरिक्खित्ते ।

वण्णओ भाणिअव्वो ।

गंगादीवस्स णं दीवस्स उप्पि बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते । —जम्बु० वक्ख० ४, सु० ७४

प्रपातकुण्डों में द्वीप तथा देवियों के भवन—

(१) गंगाद्वीप की अवस्थिति और प्रमाण—

५०३. उस गंगाप्रपातकुण्ड के मध्य में गंगाद्वीप नामक एक विशाल द्वीप कहा गया है ।

वह आठ योजन लम्बा-चौड़ा है ।

पच्चीस योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला है ।

पानी की सतह से दो कोस ऊँचा है.

सर्ववज्रमय, स्वच्छ, चिकना—यावत्—मनोहर है ।

वह 'द्वीप' एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है ।

यहाँ इन दोनों का वर्णन कहना चाहिए ।

गंगाद्वीप के ऊपर अत्यन्त सम एवं रमणीय भूमि भाग कहा गया है ।

गंगादेवीभवणस्स पमाणाई—

५०४. तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगाए देवीए एगे भवणे पण्णत्ते ।

कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणग कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं,

अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे-जाव-बहुमज्झदेसभाए मणिपेढियाए सयणिज्जे । —जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

गंगा देवी के भवन के प्रमाणादि—

५०४. इस द्वीप के मध्य में गंगा देवी का एक विशाल भवन कहा गया है ।

यह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा, एक कोस ऊँचा है ।

सैकड़ों स्तम्भों से संनिविष्ट है—यावत्—इसके मध्य में मणि-पीठिका के ऊपर एक शय्या है ।

गंगद्दीवस्स णामहेऊ—

५०५. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—गंगादीवे गंगा दीवे ?

उ०—गोयमा ! एत्थ णं गंगादेवी महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसइ ।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—गंगादीवे गंगादीवे ।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! गंगादीवे सासए णामधेज्जे पण्णत्ते । —जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

गंगाद्वीप के नाम का हेतु—

५०५. प्र०—भगवन् ! गंगाद्वीप नामक द्वीप को गंगाद्वीप क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! यहाँ गंगा नामक महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली देवी रहती है ।

इस कारण गौतम ! यह गंगाद्वीप गंगाद्वीप कहा जाता है ।

अथवा गौतम ! यह गंगाद्वीप नाम शाश्वत कहा गया है ।

---

१ ठाणं ८ सु० ६२६ ।

(२) सिंधुदीवस्स पमाणाइ—

५०६. सिंधुदीवे अट्ठो सो चेव ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

(२) सिन्धुद्वीप के प्रमाणादि—

५०६. प्र०—'सिन्धुद्वीप' के 'प्रमाणादि' तथा नाम का हेतु गंगाद्वीप के समान है—यावत्—(सिन्धुदेवी का भवन भी गंगादेवी के भवन के समान है।)

(३-४) रत्तादीवस्स रत्तवईदीवस्स च पमाणाइ—

५०७. "एवं जह चेव गंगा-सिंधुओ, तह चेव रत्ता-रत्तवईओ णेयव्वाओ।"

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

(३-४) रक्ताद्वीप के और रक्तवतीद्वीप के प्रमाणादि—

५०७. गंगाद्वीप और सिन्धुद्वीप के प्रमाण के समान रक्ताद्वीप और रक्तवती द्वीप के प्रमाणादि हैं।

(रक्तादेवी और रक्तवती देवी के भवन भी गंगा-सिन्धुदेवी के समान हैं।)

(५) रोहीअदीवस्स पमाणाइ—

५०८. तस्स णं रोहिअप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे रोहिअदीवे णामं दीवे पण्णत्ते।

सोलस जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, साइरेगाइं पण्णासं जोअणाइं परिक्खेवेणं,

दो कोसे ऊसिए जलंताओ,

सव्ववइरामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

(५) रोहिताद्वीप के प्रमाणादि—

५०८. इस रोहिताप्रपातकुण्ड के मध्य में रोहिताद्वीप नामक एक विशाल द्वीप कहा गया है।

यह सोलह योजन लम्बा-चौड़ा, पचास योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला है।

जल की सतह से दो कोस ऊँचा है।

सर्ववज्रमय एवं स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है।

यह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है।

रोहिआ देवीए भवणस्स पमाणाइ—

५०९. रोहिअदीवस्स णं दीवस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे भवणे पण्णत्ते।

कोसं आयामेणं,

सेसं तं चेव, पमाणं च अट्ठो अ भाणिअव्वो।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

रोहितादेवी के भवन के प्रमाणादि—

५०९. रोहिताद्वीप के ऊपर का भूभाग अत्यन्त सम एवं रमणीय कहा गया है।

इस सम एवं रमणीय भूभाग के मध्य में एक विशाल भवन कहा गया है।

यह एक कोस लम्बा है।

शेष वक्तव्यता वही (गंगाद्वीप आदि के समान) है। इसका प्रमाण और नाम का हेतु कहना चाहिए।

(६) रोहिअंसदीवस्स पमाणाइ—

५१०. तस्स णं रोहिअंसप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे रोहिअंसाणामं दीवे पण्णत्ते।

सोलस जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, साइरेगाइं पण्णासं जोअणाइं परिक्खेवेणं,

दो कोसे ऊसिए जलंताओ,

सव्वरयणामए अच्छे सण्हे-जाव-पडिरूवे।

सेसं तं चेव-जाव-भवणं अट्ठो अ भाणिअव्वोत्ति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

(६) रोहितांसद्वीप के प्रमाणादि—

५१०. रोहितांसाप्रपात कुण्ड के मध्य में रोहितांसा नामक एक विशाल द्वीप कहा गया है।

यह सोलह योजन लम्बा-चौड़ा, पचास योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला है।

पानी की सतह से दो कोस ऊँचा है।

पूरा रत्नमय, स्वच्छ, चिकना—यावत्—मनोहर हैं।

शेष वर्णन वही—पूर्ववत् है—यावत्—भवन और नाम का कारण कहलवाना चाहिए।

(७-८) सुवण्णकूलादीवस्स रुप्पकूलादीवस्स य पमाणाइ—

५११. "सुवण्णकूला"...."रुप्पकूला"....अवसिट्ठं तं चेव भाणियव्वं।[1]
—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

(७-८) सुवर्णकूलाद्वीप और रुप्यकूलाद्वीप के प्रमाणादि—

५११. 'सुवर्णकूला'....द्वीप और 'रुप्यकूला'....द्वीप के प्रमाणादि रोहिताद्वीप और रोहितांसाद्वीप के समान है।

सुवर्णकूलादेवी के भवन और रुप्यकूलादेवी के भवन का प्रमाण भी रोहिता और रोहितांसादेवी के भवन के समान है।

(९) हरिदीवस्स पमाणाइ[2]—

५१२. "एवं जा चेव हरिकंताए वत्तव्वया सा चेव हरीए वि णेयव्वा।"
—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८४

(९) हरिद्वीप के प्रमाणादि—

५१२. जो हरिकान्ता नदी का वर्णन है वही हरि (हरिसलिला) नदी का भी जानना चाहिए।

(१०) हरिकंतदीवस्स पमाणाइ—

५१३. तस्स णं हरिकंतप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे हरिकंतदीवे णामं दीवे पण्णत्ते।

बत्तीसं जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, एगुत्तरं जोअणसयं परिक्खेवेणं,

दो कोसे ऊसिए जलंताओ, सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

वण्णओ भाणिअव्वेत्ति पमाणं च, सयणिज्जं च अट्ठो अ भाणिअव्वो। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

(१०) हरिकान्ताद्वीप के प्रमाणादि—

५१३ उस हरिकान्ता प्रपातकुण्ड के मध्य में हरिकान्तद्वीप नामक एक विशाल द्वीप कहा गया है।

यह बत्तीस योजन लम्बा-चौड़ा, एक सौ एक योजन की परिधि वाला है।

जल से दो कोस ऊँचा, सर्वरत्नमय एवं स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है।

यह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सभी ओर से घिरा हुआ है।

यहाँ वर्णक कहना चाहिए, प्रमाण, शय्या तथा नाम का हेतु भी कहना चाहिए।

(११-१२) णरकंतादीवस्स णारिकंतादीवस्स य पमाणाइ[3]—

(११-१२) नरकान्ताद्वीप और नारीकान्ताद्वीप के प्रमाणादि—

(१३) सीआदीवस्स पमाणाइ—

(१३) शीताद्वीप के प्रमाणादि—

(१४) सीओअदीवस्स पमाणाइ[4]—

(१४) शीतोदद्वीप के प्रमाणादि—

५१४. तस्स णं सीओअप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे सीओअदीवे णामं दीवे पण्णत्ते।

५१४. उस शीतोदाप्रपातकुण्ड के मध्य में शीतोदद्वीप नामक एक विशाल द्वीप कहा गया है।

---

१ इस संक्षिप्त वाचनापाठ की सूचनानुसार सुवर्णकूलाद्वीप तथा रुप्यकूलाद्वीप और देवियों के भवनों का प्रमाण रोहिताद्वीप, रोहितांसाद्वीप और रोहितादेवी के भवन एवं रोहितांसादेवी के भवन के समान कहना चाहिए।

२ इस संक्षिप्त वाचना पाठ की सूचना के अनुसार हरिकान्तद्वीप के प्रमाण के समान हरि (सलिला) द्वीप का प्रमाण भी जानना चाहिए। इसी प्रकार हरिकान्ता देवी के भवन के समान हरिदेवी का भवन भी जानना चाहिए।

३ स्थानांग २, उ० ३, सूत्र ८८ में नरकान्ता और नारिकान्ता नदियों को समान कहा है। अतः उनमें नरकान्ताद्वीप और नारीकान्ता द्वीप भी समान है। इसी प्रकार नरकान्ता देवी का भवन तथा नारीकान्तादेवी का भवन समान है।

४ स्थानांग २, उ० ३, सूत्र ८८ में शीता और शीतोदानदी को समान कहा है। अतः शीतोदाद्वीप के प्रमाण के समान शीताद्वीप का प्रमाण है।

इस सूत्र की टीका में भी इस प्रकार कहा है—"....शीताद्वीपश्चतुःषष्टि योजनायामविष्कम्भो द्विनवतियोजनशतद्वयपरिक्षेपः जलान्तात् द्विकोशोच्छ्रितः शीतादेवीभवनेन विभूषितोपरितनभागः....।

चउसट्ठिं जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, दोण्णि बिउत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं ।

दो कोसे ऊसिए जलंताओ सव्ववइरामए अच्छे-जाव-पडिरूवे ।

सेसं तमेव वेइया-वणसंड-भूमिभाग-भवण-सयणिज्ज-अट्ठो भाणिअव्वो । —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८४

वह चौसठ योजन लम्बा-चौड़ा, दो सौ दो योजन की परिधि वाला है,

जल की सतह से दो कोस ऊँचा, सर्ववज्रमय और स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है ।

शेष वेदिका, वनखण्ड, भूमिभाग, भवन, शय्या तथा नाम हेतु का कथन भी उसी प्रकार कह लेना चाहिए ।

(१-१६) गंगाकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ—

५१५. प०—कहि णं भंते ! उत्तरड्ढकच्छे विजए गंगाकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, उसहकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं, णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे एत्थ णं उत्तरड्ढकच्छे विजए गंगाकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते ।

सट्ठिं जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, तहेव जहा सिंधु-जाव-वणसंडेणं य संपरिक्खित्ता । —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९३

(१-१६) गंगाकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

५१५. प्र०—भगवन् ! उत्तरार्ध कच्छ विजय में गंगाकुण्ड नामक कुण्ड कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, ऋषभकूट पर्वत के पूर्व में तथा नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिणी नितम्ब में, उत्तरार्ध कच्छविजय में गंगाकुण्ड नामक कुण्ड कहा गया है ।

यह साठ योजन लम्बा-चौड़ा है, इत्यादि वर्णन सिन्धु कुण्ड के समान है—यावत्—वनखण्ड से घिरा है ।

(१७-३२) सिंधुकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ—

५१६. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरड्ढकच्छे विजए सिंधुकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, उसभकूडस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले नितंबे एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरड्ढकच्छविजए सिंधुकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते ।

सट्ठिं जोअणाणि आयाम-विक्खंभेणं-जाव-भवणं अट्ठो । रायहाणी अ णेअव्वा । भरहसिंधुकुण्डसरिसं सव्वं णेअव्वं-जाव- । —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९३

(१७-३२) सिन्धुकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

५१५. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष के उत्तरार्धकच्छ विजय में सिन्धुकुण्ड नामक कुण्ड कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में, ऋषभकूट के पश्चिम में तथा नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिणी नितम्ब में जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र के उत्तरार्धकच्छ विजय में सिन्धुकुण्ड कहा गया है ।

यह साठ योजन लम्बा-चौड़ा है—यावत्—भवन नाम का हेतु तथा राजधानी पर्यन्त वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए । भरत क्षेत्र के सिन्धुकुण्ड के समान सब वर्णन जानना चाहिए ।

(३३-४८) रत्ताकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ[1]—

(४९-६४) रत्तवइकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ[2]—

(६५) गंगावइकुण्डस्स ठाणप्पमाणाई—

५१७. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे गाहावइकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सुकच्छविजयस्स पुरत्थिमेणं, महाकच्छस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स

(३३-४८) रक्ताकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

(४९-६४) रक्तावती कुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

(६५) ग्राहावती कुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

५१७. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में ग्राहावती कुण्ड नामक कुण्ड कहा गया है ?

उ०—गौतम ! सुकच्छ विजय के पूर्व में, महाकच्छ विजय के पश्चिम में तथा नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिणी नितम्ब में

१-२ रक्ताकुण्ड और रक्तावती कुण्ड का प्रमाण गंगाकुण्ड के समान है ।

दाहिणिल्ले णितंबे एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे गाहावइकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते।

जहेव रोहिअंसाकुण्डे तहेव-जाव-अट्ठो।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में ग्राहावतीकुण्ड नामक कुण्ड कहा गया है।

इसका स्वरूप रोहितांशा कुण्ड के समान—यावत्—नाम हेतु पर्यन्त समझ लेना चाहिए।

(६६) दहावईकुण्डस्स ठाणप्पमाणाई—

५१८. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे दहावई कुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा आवत्तस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं, कच्छगावईए विजयस्स पुरत्थिमेणं, णीलवंतस्स दाहिणिल्ले नितंबे एत्थ णं महाविदेहे वासे दहावईकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते।

सेसं जहा गाहावईकुण्डस्स-जाव-अट्ठो।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

(६६) द्रहावती कुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

५१८, प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में द्रहावतीकुण्ड नामक कुण्ड कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! आवर्तविजय के पश्चिम में, कच्छगावती विजय के पूर्व में तथा नीलवन्त पर्वत के दक्षिणी नितम्ब में महाविदेह वर्ष में द्रहावतीकुण्ड नामक कुण्ड कहा गया है।

शेष वर्णन ग्राहावती कुण्ड के समान है—यावत्—यहाँ नाम हेतु कहना चाहिए।

(६७) पंकावईकुण्डस्स ठाणप्पमाणाई—

५१९. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे पंकावई कुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! मंगलावत्तस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं, पुक्खलविजयस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवतस्स दाहिणणितंबे एत्थ णं महाविदेहे वासे पंकावई कुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते।

तं चेव गाहावइकुण्डप्पमाणं-जाव-अट्ठो।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

(६७) पंकावतीकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

५१९. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में पंकावतीकुण्ड नामक कुण्ड कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! मंगलावर्त्त विजय के पूर्व में, पुष्कल विजय के पश्चिम में तथा नीलवन्त के दक्षिणी नितम्ब में महाविदेह वर्ष में पंकावतीकुण्ड कहा गया है।

इसका प्रमाण ग्राहावती कुण्ड के बराबर कहा गया है—नाम हेतु कहना चाहिए।

(६८) तत्तजलाकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ—

(६९) मत्तजलाकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ—

(७०) उम्मत्तजलाकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ—

(७१) खीरोदाकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ—

(७२) सीअसोआकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ—

(७३) अन्तोवाहिनीकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ—

(७४) उम्मिमालिणीकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ—

(७५) फेणमालिणीकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ—

(७६) गंभीरमालिणीकुण्डस्स ठाणप्पमाणाइ—

(६८) तप्तजलाकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

(६९) मत्तजलाकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

(७०) उन्मत्तजलाकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

(७१) शीतोदाकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

(७२) शीतश्रोताकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

(७३) अंतोवाहिनीकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

(७४) उर्मिमालिनीकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

(७५) फेनमालिनीकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

(७६) गंभीरमालिनीकुण्ड के स्थान-प्रमाणादि—

जंबुद्दीवे सोलस महद्दहा—

५२०. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ महद्दहा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सोलस महद्दहा पण्णत्ता।

—जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

जम्बूद्वीप में सोलह महाद्रह—

५२०. भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने महाद्रह कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! सोलह महाद्रह कहे गये हैं।

---

१ तप्तजलाकुण्ड से लेकर अंतिम गम्भीरमालिनी कुण्ड पर्यन्त का प्रमाण पंकावतीकुण्ड के समान समझना चाहिए।

जम्बुद्दीवे छ महद्दहा, दहदेविओ य—

५२१. जंबुद्दीवे दीवे छ महद्दहा पण्णत्ता तं जहा—

१ पउमदहे, २ महापउमद्दहे, ३ तिगिच्छद्दहे, ४ केसरिद्दहे, ५ महापोंडरीयद्दहे, ६ पुण्डरीयद्दहे।

तत्थ णं छ देवयाओ महिड्ढियाओ-जाव-पलिओवमट्ठियाओ परिवसंति तं जहा—

१ सिरि, २ हिरि, ३ धिति, ४ कित्ति, ५ बुद्धि, ६ लच्छी।

—ठाणं ६, सु० ५२२

जम्बूद्वीप में छह महाद्रह और द्रहदेवियाँ—

५२१. जम्बूद्वीप नामक द्वीप में छह महाद्रह कहे हैं। यथा—

(१) पद्मद्रह, (२) महापद्मद्रह, (३) तिगिछद्रह, (४) केसरिद्रह, (५) महापुण्डरीकद्रह, (६) पुण्डरीकद्रह।

उन (पद्म आदि द्रहों में अनुक्रम से) छह देवियाँ महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली निवास करती है। यथा—

(१) श्री, (२) ह्री, (३) धृति, (४) कीर्ति, (५) बुद्धि, (६) लक्ष्मी।

जंबुमंदर-दाहिणुत्तरेणं तओ तओ महा दहा दहदेविओ य—

५२२. जंबुमंदरस्स दाहिणेणं तओ महादहा पण्णत्ता, तं जहा—

१ पउमदहे, २ महापउमदहे, ३ तिगिछदहे।

तत्थ णं तओ देवयाओ महिड्ढियाओ-जाव-पलिओवमट्ठियाओ परिवसंति, तं जहा—

१ सिरी, २ हिरी, ३ धिती।

जंबुमंदरस्स उत्तरेणं तओ महा दहा पण्णत्ता, तं जहा—

१ केसरीदहे, २ महापोंडरीयदहे, ३ पोंडरीयदहे।

तत्थ णं तओ देवयाओ महिड्ढियाओ-जाव-पलिओवमट्ठियाओ परिवसंति, तं जहा—

१ कित्ती, २ बुद्धि, ३ लच्छी।

—ठाणं ३, उ० ४, सु० १९७

जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत से दक्षिण और उत्तर में तीन तीन महाद्रह और द्रहदेवियाँ—

५२२. जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत से दक्षिण में तीन महाद्रह कहे गये हैं, यथा—

(१) पद्मद्रह, (२) महापद्मद्रह, (३) तिगिछद्रह।

वहाँ महाऋद्धि वाली—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली तीन देवियाँ रहती हैं, यथा—

(१) श्री, (२) ह्री, (३) धृति।

जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत से उत्तर में तीन महाद्रह कहे गये हैं, यथा—

(१) केसरीद्रह, (२) महापोंडरीकद्रह, (३) पोंडरीकद्रह।

वहाँ महाऋद्धिवाली—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली तीन देवियाँ रहती हैं, यथा—

(१) कीर्ति, (२) बुद्धि, (३) लक्ष्मी।

दोण्हं दोण्हं दहाणं समप्पमाणं दहदेवीओ य—

५२३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं चुल्लहिमवंत-सिहरीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा बहुसमतुल्ला अविसेस-मणाणत्ता अण्णमण्णं णाइवट्टन्ति, आयाम-विक्खंभ-उव्वेह-संठाण-परिणाहेणं तं जहा—पउमद्दहे चेव, पुण्डरीयद्दहे चेव।

तत्थ णं दो देवयाओ महिड्ढियाओ, महज्जुइयाओ महाणुभागाओ, महायसाओ महाबलाओ महासोक्खाओ पलिओवमट्ठियाओ परिवसंति, तं जहा—सिरि चेव, लच्छी चेव।

एवं महाहिमवंत-रुप्पीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं, तं जहा—महापउमद्दहे चेव, महापोंडरीयद्दहे चेव।

दो दो द्रहों का समप्रमाण और द्रहदेवियाँ—

५२३. जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के उत्तर और दक्षिण में लघुहिमवान् और शिखरी पर्वतों में दो महान् द्रह हैं। जो अतिसमतुल्य, विशेषता व विविधता रहित लम्बाई-चौड़ाई, गहराई, संस्थान एवं परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करने वाले हैं। यथा—पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रह।

वहाँ महान् ऋद्धि वाली, महाद्युति वाली, महानुभाग वाली, महायश वाली, महाबल वाली, महासुख वाली और पल्योपम की स्थिति वाली दो देवियाँ रहती हैं, यथा—श्री देवी और लक्ष्मी देवी।

इसी तरह—महाहिमवान् और रुक्मि वर्षधर पर्वतों पर दो महाद्रह हैं, जो अतिसमतुल्य हैं, तुल्य परिधियाँ वाले हैं—यावत्—परिधितुल्य हैं, यथा—महापद्मद्रह और महापुण्डरिकद्रह।

तत्थ णं दो देवयाओ महिड्ढियाओ-जाव-पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तं जहा—हिरि चेव, बुद्धि चेव।

एवं निसढ-नीलवंतेसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा बहुसमतुल्ला-जाव-परिणाहेणं, तं जहा—तिगिंछिद्दहे चेव, केसरिद्दहे चेव।

तत्थ णं दो देवयाओ महिड्ढियाओ-जाव-पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तं जहा—धिति चेव, कित्ति चेव।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८८

वहाँ दो देवियाँ महान् ऋद्धि वाली—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली रहती हैं, यथा—ह्री देवी और बुद्धि देवी।

इसी तरह निषध और नीलवंत वर्षधर पर्वतों पर दो महाद्रह हैं, जो अति समतुल्य—यावत्—तुल्य परिधि वाले हैं। यथा—तिगिच्छद्रह और केसरीद्रह।

वहाँ दो देवियाँ महान् ऋद्धि वाली—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली रहती हैं।

(१) पउमद्दहस्स अवट्ठिई पमाणं च—

५२४. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं इक्के महं पउमद्दहे णामं दहे पण्णत्ते।

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिण-वित्थिण्णे इक्कं जोअणसहस्सं आयामेणं,[1] पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं,[2] अच्छे सण्हे, रययामयकूले-जाव-पासाईए-जाव-पडिरूवेति।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

वेइआ-वणसंडवण्णओ भाणिअव्वोत्ति।

तस्स णं पउमद्दहस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता।

वण्णावासो भाणिअव्वोत्ति।

तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं पत्तेअं तोरणा पण्णत्ता। ते णं तोरणा णाणामणिमया।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७३

(१) पद्मद्रह की स्थिति और प्रमाण—

५२४. इस अति सम एवं रमणीय भूमिभाग के मध्य में एक विशाल पद्मद्रह नामक द्रह कहा गया है।

यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा, एक हजार योजन लम्बा, पाँच सौ योजन चौड़ा तथा दस योजन गहरा है। स्वच्छ, चिकना, रजतमय किनारों वाला—यावत्—प्रासादिक—यावत्—प्रतिरूप है।

यह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा है।

यहाँ वेदिका और वनखण्ड का वर्णन कहना चाहिए।

इस (पद्मद्रह) के चारों दिशाओं में चार प्रतिरूप तीन सोपान (पंक्तियाँ) कही गई हैं।

यहाँ इनका भी वर्णन कहना चाहिए।

इन प्रतिरूप तीन सोपानों के सामने पृथक्-पृथक् तोरण कहे गये हैं। ये तोरण नाना मणिमय हैं।

पउमद्दहस्स पउम-वण्णओ—

५२५. तस्स णं पउमद्दहस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पउमे पण्णत्ते।

जोअणं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोअणं बाहल्लेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं।

दो कोसे ऊसिए जलंताओ, साइरेगाइं दस जोअणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता।

से णं एगाए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

पद्मद्रह में पद्मवर्णक—

५२५. इस पद्मद्रह के मध्य में एक विशाल पद्म कहा गया है।

यह एक योजन लम्बा-चौड़ा, आधा योजन मोटा, दस योजन गहरा है।

और जल की सतह से दो कोस ऊँचा है। सब मिलाकर इसका परिमाण कुछ अधिक दस योजन का कहा गया है।

यह चारों ओर से एक जगती (कोट) से घिरा हुआ है।

—ठाणं १०, सु० ७७६

१ सम० ११३ सुत्त १०।

२ सव्वेवि णं महद्दहा दस जोअणाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

जंबुद्दीवजगइप्पमाणा। गवक्खकडए वि तह चेव पमाणेणंति।

इसका परिमाण जम्बूद्वीप की जगती के बराबर है। उसके गवाक्षकटक (जालियों के समूह) का भी परिमाण उसी प्रकार समझना चाहिए।

तस्स णं पउमस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—

इस पद्म का वर्णन इस प्रकार का कहा गया है। यथा—

वइरामया मूला, रिट्ठामए कंदे, वेरुलिआमए णाले वेरुलिआमया बाहिरपत्ता, जम्बूणयामया अब्भिंतरपत्ता, तवणिज्जमया केसरा, णाणामणिमया पोक्खरत्थिभाया, कणगामई कण्णिगा।

इसके मूल वज्रमय हैं। कन्द (मूल नाल के बीच की गांठ) अरिष्टरत्न की है। नाल वैडूर्यरत्नमय है। बाहर के पत्ते वैडूर्यमय है, अन्दर के पत्ते जम्बूनदस्वर्णमय है। केसर रक्तस्वर्णमय हैं। पुष्कर अस्थिभाग (कमल के बीज के विभाग) नाना-मणिमय है। कर्णिका कनकमयी है।

सा णं अद्धजोअणं आयामविक्खंभेणं, कोसं बाहल्लेणं, सव्वकणगामई अच्छा-जाव-पडिरूवा।

यह कर्णिका आधा योजन लम्बी-चौड़ी, एक कोस मोटी तथा स्वर्णमयी स्वच्छ—**यावत्**—प्रतिरूप है।

तीसे णं कण्णिआए उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा,-जाव-तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे भवणे पण्णत्ते।

इस कर्णिका के ऊपर अति सम और रमणीय भू-भाग कहा गया है जैसे आलिंगपुष्कर हो—**यावत्**—उस अतिसम एवं रमणीय भूभाग के मध्य में एक विशाल भवन कहा गया है।

कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणगं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे पासाईए-जाव-पडिरूवे।

यह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा कुछ कम एक कोश ऊँचा सैकड़ों स्तम्भों से सन्निविष्ट, प्रासादिक—**यावत्**—प्रतिरूप है।

तस्स णं भवणस्स तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता। ते णं दारा पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं, तावतिअं चेव पवेसेणं।

इस भवन की तीन दिशाओं में तीन द्वार कहे गये हैं। ये द्वार पाँच सौ धनुष ऊँचे, अढ़ाई सौ धनुष विष्कंभ वाले एवं उतने ही प्रवेश वाले हैं।

सेआवरकणगथूभिआओ-जाव-वणमालाओ णेअव्वाओ।

यहाँ श्वेत व श्रेष्ठ कनक-स्तूपिकायें हैं—**यावत्**—वनमालाओं तक का कथन समझ लेना चाहिए।

तस्स णं भवणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा,-जाव-तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महई एगा मणिपेढिआ पण्णत्ता।

इस भवन के अन्दर का भू-भाग समतल एवं रमणीय कहा गया है जैसे आलिंगपुष्कर हो—**यावत्**—उसके बीचों बीच एक विशाल मणिपीठिका कही गई है।

सा णं मणिपेढिआ पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं।

अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं।

सव्वमणिमई अच्छा-जाव-**पडिरूवा**।

यह मणिपीठिका पांच सौ धनुष लम्बी-चौड़ी है,

अढ़ाई सौ धनुष मोटी है,

सर्वमणिमयी और स्वच्छ—**यावत्**—प्रतिरूप है।

तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं एत्थ णं महं एगे सयणिज्जे पण्णत्ते। सयणिज्जवण्णओ भाणिअव्वो।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७३

इस मणिपीठिका के ऊपर एक बड़ी शय्या कही गई है। **शय्या का वर्णन यहाँ कहना चाहिए।**

पउमपरिवारो—

५२६. से णं पउमे अण्णेणं अट्ठसएणं पउमाणं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्ताणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

ते णं पउमा अद्धजोअणं आयाम-विक्खंभेणं, कोसं बाहल्लेणं, दसजोअणाइं उव्वेहेणं।

पद्म-परिवार—

५२६. वह (उपर्युक्त) पद्म अपने से आधी ऊँचाई वाले अन्य एक सौ आठ पद्मों से सब ओर से घिरा है।

ये पद्म आधा योजन लम्बे-चौड़े, एक कोस मोटे, दस योजन गहरे है।

कोसं ऊसिया जलंताओ, साइरेगाइं दसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं ।

एक कोस पानी से ऊपर (पानी के बाहर) हैं । (इस प्रकार सब मिलाकर) दस योजन से कुछ अधिक ऊँचे हैं ।

तेसि णं पउमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते । तं जहा—

इन पद्मों का वर्णन इस प्रकार कहा गया है । यथा—

वइरामया मूला-जाव-कणगामई कण्णिआ ।

इनके मूल वज्रमय है—यावत्—कर्णिका कनकमय है ।

सा णं कण्णिया कोसं आयामेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं, सव्वकणगामई अच्छा-जाव-पडिरूवा इति ।

यह कर्णिका एक कोस लम्बी आधा कोस मोटी, सर्वजनकमयी और स्वच्छ है—यावत्—प्रतिरूप है ।

तीसे णं कण्णिआए उप्पिं बहुसमरमणिज्जे-जाव-मणीहिं उवसोभिए ।

इस कर्णिका के ऊपर अति सम एवं रमणीय (भूमिभाग) है—यावत्—मणियों से सुशोभित है ।

तस्स णं पउमस्स अवरुत्तेणं उत्तर-पुरत्थिमेणं एत्थ णं सिरीए देवीए चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

इस पद्म से पश्चिमोत्तर में, उत्तर में तथा उत्तर-पूर्व में श्रीदेवी के चार हजार सामानिकों (देवों) के चार हजार पद्म कहे गये हैं ।

तस्स णं पउमस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं सिरीए देवीए चउण्हं महत्तरियाणं चत्तारि पउमा पण्णत्ता ।

इस पद्म के पूर्व में श्रीदेवी की चार महत्तरिकाओं (मुख्य देवियों) के चार पद्म कहे गये हैं ।

तस्स णं पउमस्स दाहिण-पुरत्थिमेणं सिरीए अब्भितरिआए परिसाए अट्ठण्हं देवसाहस्सीणं अट्ठ पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

इस पद्म के दक्षिण-पूर्व में श्रीदेवी की आभ्यंतर परिषद् के आठ हजार देवों के आठ पद्म कहे गये हैं ।

दाहिणेणं मज्झिमपरिसाए दसण्हं देवसाहस्सीणं दस पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

दक्षिण में मध्य परिषद् के दस हजार देवों के दस हजार पद्म कहे गये हैं ।

दाहिण-पच्चत्थिमेणं बाहिरिआए परिसाए बारसण्हं देवसाहस्सीणं बारसपउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

दक्षिण-पश्चिम में बाह्य परिषद के बारह हजार देवों के बारह हजार पद्म कहे गये हैं ।

पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणिआहिवईणं सत्त पउमा पण्णत्ता ।

पश्चिम में सात अनीकाधिपतियों (देवों) के सात पद्म कहे गये हैं ।

तस्स णं पउमस्स चउद्दिसिं सव्वओ समंता एत्थ णं सिरीए देवीए सोलसण्हं आयरक्खदेव-साहस्सीणं सोलस पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

इन पद्मों की चारों दिशाओं में सभी ओर श्रीदेवी के सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के सोलह हजार पद्म कहे गये हैं ।

से णं तीहिं पउमपरिक्खेवेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते तं जहा—अब्भितरएणं, मज्झिमएणं, बाहिरएणं ।

यह पद्म सब ओर से तीन पद्म-परिधियों से घिरा हुआ है, यथा आभ्यन्तरपरिधि, मध्यपरिधि और बाह्यपरिधि ।

अब्भितरए पउमपरिक्खेवे बत्तीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

आभ्यन्तर पद्म-परिधि में बत्तीस लाख पद्म कहे गये हैं ।

मज्झिमए पउमपरिक्खेवे चत्तालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

मध्यमपद्म परिधि में चालीस लाख पद्म कहे गये हैं ।

बाहिरए पउमपरिक्खेवे अडयालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

बाह्यपद्म परिधि में अड़तालीस लाख पद्म कहे गये हैं ।

एवामेव सपुव्वावरेणं तिहिं पउमपरिक्खेवेहिं एगा पउमकोडी वीसं च पउमसयसाहस्सीओ भवंतीतिमक्खायं ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७३

इन तीनों पद्म-परिधियों में सब मिलाकर एक करोड़ बीस लाख पद्म हैं; ऐसा कहा गया है ।

पउमद्दहस्स णामहेऊ—

५२७. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—पउमद्दहे पउमद्दहे ?

पद्मद्रह के नाम का हेतु—

५२७. प्र०—भगवन् ! पद्मद्रह, पद्मद्रह क्यों कहलाता है ?

उ०—गोयमा ! पउमद्दहे णं तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे उप्पलाइं-जाव-सयसहस्सपत्ताइं पउमद्दहप्पभाइं पउमद्दह वण्णाभाइं।

सिरी अ इत्थ देवी महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिईआ परिवसइ।

ऐ एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—पउमद्दहे, पउमद्दहे।

अदुत्तरं च णं गोअमा ! पउमद्दहस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते जं णं कयावि णासि,-जाव-अवट्ठिए णिच्चे पउमद्दहे पण्णत्ते इति। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ७३

उ०—गौतम ! पद्मद्रह में उस-उस स्थान पर बहुत से पद्म हैं—**यावत्**—शतपत्र सहस्रपत्र (जाति के कमल) हैं, वे पद्मद्रह की प्रभा वाले तथा पद्मद्रह के वर्ण जैसे हैं।

यहाँ महर्द्धिक—**यावत्**—पल्योपम की स्थिति वाली श्री नामक देवी निवास करती हैं।

इस कारण गौतम ! पद्मद्रह को पद्मद्रह कहते हैं।

इसके अतिरिक्त, गौतम ! पद्मद्रह यह नाम शाश्वत कहा गया है, जो कभी नहीं था ऐसा नहीं है—**यावत्**—पद्मद्रह अवस्थित एवं नित्य कहा गया है।

महापउमद्दहस्स अवट्ठिई पमाणं च—

५२८. महाहिमवंतस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महापउमद्दहे णामं दहे पण्णत्ते।

दो जोअणसहस्साइं आयामेणं,[1] एगं जोअणसहस्सं विक्खंभेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं अच्छे-जाव-पडिरूवे रययामयकूले।

एवं आयाम-विक्खंभविहूणा जा चेव पउमद्दहस्स वत्तव्वया सा चेव णेअव्वा। पउमप्पमाणं दो जोअणाइं।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

(२) महापद्मद्रह की अवस्थिति और प्रमाण—

५२८. महाहिमवन्त पर्वत के ठीक मध्य भाग में महापद्मद्रह नामक द्रह कहा गया है।

जो दो हजार योजन लम्बा, एक हजार योजन चौड़ा, दस योजन गहरा स्वच्छ—**यावत्**—मनोहर है। एवं रजतमय किनारों वाला है।

इसी प्रकार लम्बाई-चौड़ाई को छोड़कर शेष बातों में पद्मद्रह के समान ही जानना चाहिए। इसके पद्म का प्रमाण दो योजन का है।

महापउमद्दहस्स णामहेऊ—

५२९. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—महापउमद्दहे महापउमद्दहे ?

उ०—गोयमा ! महापउमद्दहेणं तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे उप्पलाइं-जाव-सयसहस्सपत्ताइं महापउमद्दहप्पभाइं महापउमद्दहवण्णाभाइं।

हिरी अ इत्थ देवी महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसइ।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—महापउमद्दहे, महापउमद्दहे।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! महापउमद्दहस्स सासए णामधिज्जे पण्णत्ते।

जं णं कयाइ णासी-जाव-णिच्चे महापउमद्दहे पण्णत्ते, इति। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

महापद्मद्रह के नाम का हेतु—

५२९. प्र०—भगवन् ! महापद्मद्रह-महापद्मद्रह क्यों कहा गया है ?

उ०—गौतम ! महापद्मद्रह में स्थान-स्थान पर अनेक उत्पल हैं—**यावत्**—शतपत्र सहस्रपत्र (जाति के कमल) हैं। वे महापद्मद्रह के वर्ण जैसे हैं।

यहाँ ह्री नामक देवी निवास करती है जो महर्द्धिक—**यावत्**—पल्योपम की स्थिति वाली है।

इस कारण गौतम ! महापद्मद्रह महापद्मद्रह कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त गौतम ! महापद्मद्रह यह नाम शाश्वत कहा गया है।

जो कभी नहीं था, ऐसा नहीं है—**यावत्**—महापद्मद्रह नित्य कहा गया है।

(३) तिगिंछिद्दहस्स अवट्ठिई पमाणं च—

५३०. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे तिगिंछिद्दहे णामं दहे पण्णत्ते।

(३) तिगिंछि द्रह की अवस्थिति और प्रमाण—

५३०. उस अति सम एवं रमणीय भूमिभाग के मध्य में तिगिंछिद्रह नामक एक विशाल द्रह कहा गया है।

---

१ सम० ११५

पाईण-पडीणायए, उदीणदाहिणविच्छिण्णे, चत्तारि जोअण-सहस्साइं आयामेणं[1] दो जोअणसहस्साइं विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, अच्छे-जाव-पडिरूवे रययामयकूले।

यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा, चार हजार योजन लम्बा, दो हजार योजन चौड़ा, दस योजन गहरा और स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है। एवं रजतमय किनारों वाला है।

तस्स णं तिगिंछिद्दहस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडि-रूवगा पण्णत्ता।

उस तिगिंछिद्रह के चारों दिशाओं में चार मनोहर तीन सोपान (पगथिये) कहे गये हैं।

एवं-जाव-आयाम-विक्खंभविहूणा जा चेव महापउमद्दहस्स वत्तव्वया-सा चेव तिगिंछिद्दहस्स वि वत्तव्वया। तं चेव पउ-मप्पमाणं।

इसी प्रकार—यावत्—लम्बाई और चौड़ाई को छोड़कर जो—महापद्मद्रह का कथन है वही तिगिंछिद्रह का कथन है (धृति देवी के) पद्म-कमलों का प्रमाण भी वही (एक करोड़, बीस लाख) समझना चाहिए।

तिगिंछिद्दहस्स णामहेऊ—

तिगिंछिद्रह के नाम का हेतु—

५३१. प०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—तिगिंछिद्दहे तिगिं-छिद्दहे?

५३१. प्र०—भगवन्! तिगिंछिद्रह, तिगिंछिद्रह क्यों कहा जाता है?

उ०—गोयमा! तिगिंछिद्दहेणं तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे उप्पलाइं-जाव-सयसहस्सपत्ताइं तिगिंछिद्दहप्पभाइं तिगिंछिद्दहवण्णाभाइं।

उ०—गौतम! तिगिंछिद्रह में स्थान-स्थान पर अनेक उत्पल हैं—यावत्—सहस्रपत्र (जाति के कमल) हैं। वे तिगिंछिद्रह की प्रभा वाले एवं तिगिंछिद्रह के वर्ण जैसे हैं।

धिई अ इत्थ देवी महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसइ।

यहां महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली धृति नामक देवी रहती है।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—तिगिंछिद्दहे तिगिंछिद्दहे।

इस कारण गौतम! तिगिंछिद्रह तिगिंछिद्रह कहा जाता है।

अदुत्तरं च णं गोयमा! तिगिंछिद्दहस्स सासए णाम-धिज्जे पण्णत्ते।

अथवा गौतम! तिगिंछिद्रह यह नाम शाश्वत कहा गया है।

जं णं कयाइ णासी-जाव-णिच्चे तिगिंछिद्दहे पण्णत्ते इति। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८३

जो कभी नहीं था—ऐसा नहीं है—तिगिंछिद्रह नित्य कहा गया है।

(४) केसरीद्दहस्स अवट्ठिई पमाणं च—

(४) केसरीद्रह की अवस्थिति और प्रमाण—

५३२. ····एत्थ णं केसरीद्दहो···· —जंबु० वक्ख० ४, सु० ११०

५३२. यहाँ केसरीद्रह है।

५३३. तिगिच्छ-केसरिद्दहाणं चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं आयामेणं पण्णत्ताइं। —सम० ४०००, सु० २

५३३. तिगिंछिद्रह और केसरीद्रह की लम्बाई चार-चार हजार योजन की कही गई है।

(५) महापुण्डरीयद्दहस्स अवट्ठिई पमाणं च—

(५) महापुण्डरीकद्रह की अवस्थिति और प्रमाण—

५३४. ····महापुण्डरीयद्दहे···· —जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

५३४. महापुण्डरीकद्रह में—

५३५. महापउम-महापुण्डरीयद्दहाणं दो दो जोयणसहस्साइं आयामेणं पण्णत्ताइं। —सम० २०००, सु० १

५३५. महापद्मद्रह और महापुण्डरीकद्रह की लम्बाई दो-दो हजार योजन की कही गई है।

(६) पुण्डरीयद्दहस्स अवट्ठिई पमाणं च—

५३६. ····पुण्डरीयदहे[1]···· —जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

५३७. पउमपुण्डरीयद्दहा य दस दस जोयणसयाइं आयामेणं पण्णत्ताइं। —सम० १०००, सु० १०

(६) पुण्डरीकद्रह की अवस्थिति और प्रमाण—

५३६. पुण्डरीकद्रह में—

५३७. पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रह की लम्बाई एक-एक हजार योजन की कही गई है।

देवकुराए उत्तरकुराए य दस महद्दहा—

५३८. जंबु-मंदर-दाहिणेणं देवकुराए कुराए पंच महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—१ निसहदहे, २ देवकुरुदहे, ३ सूरदहे, ४ सुलसदहे, ५ विज्जुप्पमदहे।

५३९. जंबु-मंदर-उत्तरेणं उत्तरकुराए पंच महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—१ नीलवंतदहे, २ उत्तरकुरुदहे, ३ चंददहे, ४ एरावणदहे, ५ मालवंतदहे। ठाणं० ५, उ० २, सु० ४३४

देवकुरा और उत्तरकुरा में दस महाद्रह—

५३८. जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण के देवकुरा नामक कुरा में पाँच महाद्रह कहे गये हैं। यथा—(१) निषधद्रह, (२) देवकुरुद्रह, (३) सूर्यद्रह, (४) सुलसद्रह, (५) विद्युत्प्रभद्रह....

५३९. जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर के उत्तरकुरा नामक कुरा में पाँच महाद्रह कहे गये हैं, यथा—(१) नीलवंतद्रह, उत्तरकुराद्रह, (३) चन्द्रद्रह, (४) एरावणद्रह, (५) माल्यवंतद्रह।

देवकुराए णिसढाइ पंचदहाणं ठाणप्पमाणाइ—

५४०. प०—कहि णं भंते ! देवकुराए कुराए णिसढद्दहे णामं दहे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! तेसिं चित्त-विचित्तकूडाणं पव्वयाणं उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ अट्ठ चोत्तीसे जोअणसए चत्तारि अ सत्तमाए जोयणस्स अबाहाए सीओआए महाणईए बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं णिसहद्दहे णामं दहे पण्णत्ते।

एवं जच्चेव नीलवंत-उत्तरकुरु-चंद-एरावय-मालवंताणं सच्चेव णिसह-देवकुरु-सूर-सुलस-विज्जुप्पभाणं णेअव्वा। रायहाणीओ दक्खिणेणंति।[2]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९९

देवकुरु में निषधादि पाँच द्रहों के स्थान प्रमाणादि—

५४०. प्र०—भगवन् ! देवकुरु में निषधद्रह नामक द्रह कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! उन चित्र-विचित्रकूट पर्वतों के उत्तरीय चरमान्त से $८३४\frac{४}{७}$ की बाधा रहित दूरी पर सीतोदा महानदी के बीचों बीच निषधद्रह नामक द्रह कहा गया है।

जिस प्रकार नीलवन्त, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत और माल्यवन्त (नामक उत्तरकुरु के पाँचों द्रहों) की वक्तव्यता की गई है; उसी प्रकार निषध, देवकुरु, सूर्य, सुलस तथा विद्युत्प्रभ द्रह की वक्तव्यता जान लेनी चाहिए (इनके अधिपति देवों की) राजधानियाँ दक्षिण में है।

उत्तरकुराए णीलवंताइ पंचदहाणं ठाणप्पमाणाइ—

५४१. प०—कहि णं भंते ! उत्तरकुराए णीलवंतद्दहे णामं दहे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जमगाणं दक्खिणिल्लाओ चरमंताओ अट्ठसए चोत्तीसे चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीआए महाणईए बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं णीलवंतद्दहे णाम दहे पण्णत्ते।

दाहिण-उत्तरायए, पाईण-पडीणविच्छिण्णे,

उत्तरकुरु में नीलवंतादि पाँच द्रहों के स्थान प्रमाणादि—

५४१. प्र०—भगवन् ! उत्तरकुरु में नीलवन्तद्रह नामक द्रह कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! यमक पर्वतों के दक्षिणी चरमान्त से $८३४\frac{४}{७}$ योजन बाधारहित शीतामहानदी के ठीक मध्य भाग में नीलवन्तद्रह नामक द्रह कहा गया है।

वह दक्षिण-उत्तर में लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम में चौड़ा है;

---

1 पुण्डरीकद्रह की अवस्थिति और प्रमाण पद्मद्रह के समान है।

2 [illegible] दश वर्णयगाथा, शीता-शीतोदयोश्च प्रत्येकं पंच, पंच। —जम्बू० वृत्ति, सु० १२५

जहेव पउमद्दहे, तहेव वण्णओ णेअव्वो, णाणत्तं—दोहि पउमवरवेइयाहि दोहि य वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते,

पद्मद्रह के समान उसका वर्णन समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि—वह दो पद्मवरवेदिकाओं और दो वनखण्डों से घिरा हुआ है।

णीलवंते णामं णागकुमारे देवे, सेसं तं चेव णेअव्वं।

यहाँ नीलवन्त नामक नागकुमार देव हैं, शेष वर्णन वही समझना चाहिए।

गाहा—

पढमित्थ णीलवंतो, वितिओ उत्तरकुरु मुणेअव्वो।
चंदद्दहोत्थ तइओ, एरावय, मालवंतो अ॥[1]

एवं वण्णओ अट्ठो पमाणं पलिओवमट्ठिइआ देवा।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८६

गाथार्थ—

प्रथम नीलवन्त, दूसरा उत्तरकुरु, तीसरा चन्द्रद्रह, चौथा ऐरावत और पाँचवाँ माल्यवन्तद्रह है।

नीलवन्त द्रह के समान उनके नाम का कारण, प्रमाण एवं पल्योपम की स्थिति वाले देव, इत्यादि वर्णन समझ लेना चाहिए।

उत्तरकुराए णीलवंतद्दहस्स ठाणप्पमाणाइ—

५४२. प०—कहि णं भंते! उत्तरकुराए कुराए नीलवंतद्दहे णामं दहे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! जमगपव्वयाणं दाहिणेणं अट्ठचोत्तीसे जोयणसए चत्तारि सत्तभागा जोयणस्स अबाहाए सीताए महाणईए बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं उत्तरकुराए कुराए णीलवंतद्दहे णामं दहे पण्णत्ते।

उत्तरदक्खिणायए पाईण-पडीणविच्छिन्ने एगं जोयणसहस्सं आयामेणं, पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, अच्छे सण्हे रययामयकूले चउक्कोणे समतीरे-जाव-पडिरूवे।

उभओ पासिं दोहि पउमवरवेइयाहि दोहि य वणसंडेहि सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

दोण्हवि वण्णओ।

नीलवंतद्दहस्स णं दहस्स तत्थ तत्थ-जाव-बहवे तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता।

वण्णओ भाणियव्वो-जाव-तोरणत्ति।

—जीवा. प. ३, उ. २, सु. १४६

उत्तरकुरा में नीलवन्तद्रह का स्थान-प्रमाणादि—

५४२. प्र०—भगवन्! उत्तरकुरा नामक कुरा में नीलवन्तद्रह नामक द्रह कहाँ कहा गया है?

उ०—गौतम! यमक पर्वतों के दक्षिण में, आठ सौ चौंतीस योजन और चार योजन के सात भाग की दूरी पर व्यवधानरहित सीता महानदी के ठीक मध्य भाग में उत्तरकुरा नामक कुरा में नीलवन्तद्रह नामक द्रह कहा गया है।

यह उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है और पूर्व-पश्चिम में विस्तृत है। यह एक हजार योजन लम्बा, पाँच सौ योजन चौड़ा और दस योजन गहरा है। स्वच्छ है, चमकदार है, रजतमय किनारे वाला है, चतुष्कोण है, किनारे पर समतल है—यावत्—सुन्दर है।

दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं से एवं दो वनखण्डों से वह (नीलवन्तद्रह) चारों ओर से घिरा हुआ है।

दोनों (वेदिका और वनखण्डों) का वर्णन यहाँ कहना चाहिये।

नीलवन्तद्रह नामक द्रह में स्थान-स्थान पर अनेक त्रिसोपानक (तीन तीन सुन्दर पगथिये) कहे गये हैं।

तोरण पर्यन्त त्रिसोपानकों का वर्णन कहना चाहिए।

नीलवंतद्दहस्स पउम-परिवारो—

५४३. तस्स णं नीलवंतद्दहस्स णं दहस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं एगे महं पउमे पण्णत्ते।

जोयणं आयाम-विक्खंभेणं तं तिउणं सविसेसं परिक्खेवेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं।

नीलवन्तद्रह का पद्म-परिवार—

५४३. उस नीलवन्तद्रह नामक द्रह के ठीक मध्यभाग में एक महान् पद्म (कमल) कहा गया है।

यह (कमल) एक योजन लम्बा-चौड़ा है, कुछ अधिक तीन गुनी इसकी परिधि है, आधा योजन मोटा है, दस योजन (पानी में) गहरा है।

दो कोसे ऊसिए जलंताओ, सातिरेगाइं दसद्धजोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

पानी की सतह से दो कोस ऊँचा है। उसका सम्पूर्ण प्रमाण कुछ अधिक दस योजन का कहा गया है।

तस्स णं पउमस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते,

तं जहा—वइरामया मूला, रिट्ठामए कंदे, वेरुलियामए नाले, वेरुलियामया बाहिरपत्ता, जंबूणदमया अब्भितरपत्ता, तवणिज्जमया केसए, कणगामई कण्णिया, णाणामणिमया पुक्खरत्थिभुगा।

उस पद्म का वर्णन इस प्रकार का कहा गया है—

यथा—उस पद्म के मूल वज्रमय हैं, कंदरिष्टरत्नमय है, नाल (डंडी) वैडूर्यरत्नमय है, बाहर के पत्ते वैडूर्यरत्नमय है, अन्दर के पत्ते जम्बूनद स्वर्णमय हैं, तपाये हुए स्वर्ण जैसे केशर हैं, कनकमय कर्णिका है, कमल के स्तिबुक (जलकण) नानामणिमय है।

साणं कण्णिया अद्धजोयणं आयाम-विक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, कोसं बाहल्लेणं, सव्वप्पणा कणगामई अच्छा-जाव-पडिरूवा।

वह कर्णिका आधा योजन लम्बी-चौड़ी है, तिगुणी से कुछ अधिक उसकी परिधि है, एक कोस की उसकी मोटाई है, और पूर्ण रूप से वह कनकमयी है, स्वच्छ है—**यावत्**—मनोहर है।

तीसेणं कण्णियाए उवरिं बहुसमरमणिज्जे देसभाए पण्णत्ते -जाव-मणीहिं तिणेहिं उवसोभिए।

उस कर्णिका के ऊपर का कुछ भाग अधिक सम एवं रमणीय कहा गया है—**यावत्**—मणियों से निर्मित है। तृण आदि से उपशोभित है।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते।

उस अधिक सम एवं रमणीय भूभाग के ठीक मध्यभाग में एक महान् भवन कहा गया है।

कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसनिविट्ठं-जाव-वण्णओ।

वह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा, कुछ कम एक कोस ऊपर की ओर ऊँचा है उसमें सैकड़ों स्तम्भ लगे हुए हैं—**यावत्**—(भवन) वर्णन कहना चाहिए।

तस्स णं भवणस्स तिदिसिं तओदारा पण्णत्ता, तं जहा—
१ पुरत्थिमेणं, २ दाहिणेणं, ३ उत्तरेणं।

उस भवन के तीन दिशाओं में तीन द्वार कहे गये हैं, यथा—
(१) पूर्व दिशा में एक द्वार, (२) दक्षिण दिशा में एक द्वार, (३) और उत्तर दिशा में एक द्वार है।

तेणं दारा पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं, तावतियं चेव पवेसेणं, सेया वरकणगथुभियागा-जाव-वणमालाउत्ति।

वे द्वार ऊपर की ओर पाँच सौ धनुष ऊँचे हैं। ढाई सौ धनुष चौड़े हैं। उनका प्रवेश मार्ग भी उतना ही चौड़ा है। श्वेत श्रेष्ठ कनक निर्मित स्तूपिकायें हैं—**यावत्**—वनमालायें हैं।

तस्स णं भवणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा-जाव-मणीणं वण्णओ।

उस भवन के अन्दर का भू-भाग अधिक सम एवं रमणीय कहा गया हैं। चर्म से मंढे हुए मृदंग वाद्य जैसा है—**यावत्**—**मणियों का वर्णन कहना चाहिए।**

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं मणिपेढिया पण्णत्ता।

उस भवन के अधिक सम एवं रमणीय भू-भाग के ठीक मध्य भाग में एक मणिपीठिका कही गई।

पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमई अच्छा-जाव-पडिरूवा।

वह मणिपीठिका पाँच सौ धनुष की लम्बी-चौड़ी है, ढाई सौ धनुष की मोटी है एवं सारी मणिमयी स्वच्छ—**यावत्**—प्रतिरूप है।

तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं—एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते। देवसयणिज्जस्स वण्णओ।

उसी मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल देवशय्या कही गई है। **देवशय्या का वर्णन कहना चाहिए।**

से णं पउमे अण्णेणं अट्ठसएणं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेणं पउमाणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

वह (पूर्वोक्त) पद्म उससे आधे जितनी ऊँचाई के प्रमाण वाले अन्य एक सौ आठ पद्मों से चारों ओर से घिरा हुआ है।

ते णं पउमा अद्धजोयणं आयाम-विक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, कोसं बाहल्लेणं दसजोयणाइं उव्वेहेणं, कोसं ऊसिया जलंताओ, साइरेगाइं दसजोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ताइं।

वे पद्म आधायोजन लम्बे-चौड़े हैं, तिगुने से कुछ अधिक उनकी परिधि है। वे एक कोश मोटे हैं, दस योजन गहरे हैं, जल की सतह से एक कोश ऊँचे हैं। सब मिलाकर कुछ अधिक दस योजन के कहे गये हैं।

तेसि णं पउमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—

उन पद्मों का वर्णन इस प्रकार कहा गया है—

तं जहा वइरामया मूला-जाव-णाणामणिमया पुक्खरत्थिभुगा।

यथा—उनके मूल वज्रमय है—यावत्—कमल के स्तिबुक (जलकण) नाना मणिमय हैं।

ताओ णं कण्णियाओ कोसं आयाम-विक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं, सव्वकणगामईओ अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ।

उनकी कर्णिकायें एक कोस लम्बी-चौड़ी है, तिगुणे से कुछ अधिक उनकी परिधि है, आधा कोस मोटे हैं सभी कनकमय हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—मनोहर हैं।

तासि णं कण्णियाणं उप्पि बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा -जाव-मणीणं वण्णो गंधो फासो।

उन कर्णिकाओं के ऊपर का भू-भाग अधिक सम एवं रमणीय है—यावत्—मणियों के वर्णगंध और स्पर्श कहने चाहिए।

तस्स णं पउमस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तर-पुरत्थिमेणं नीलवंतद्दहस्स कुमारदेवस्स चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

उस पद्म के पश्चिमोत्तर में, उत्तर में, और उत्तर-पूर्व में, नीलवन्तद्रह कुमारदेव के चार हजार सामानिकदेवों के चार हजार पद्म कहे गये हैं।

एवं सव्वो परिवारो नवरि पउमाणं भाणियव्वो।

इस प्रकार सभी पद्मों का परिवार कहना चाहिए।

से णं पउमे अण्णेहिं तिहिं पउमवरपरिक्खेवेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, तं जहा—

विशेष—वह (पूर्वोक्त) पद्म अन्य श्रेष्ठ पद्मों की तीन परिधियों से चारों ओर से घिरा हुआ है। यथा—

१ अब्भिंतरेणं, २ मज्झिमेणं, ३ बाहिरएणं।

(१) आभ्यन्तर, (२) मध्यम, (३) बाह्य।

अब्भिंतरएणं पउमपरिक्खेवे बत्तीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

आभ्यन्तर पद्म परिधि बत्तीस लाख पद्मों की कही गई है।

मज्झिमए णं पउमपरिक्खेवे चत्तालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

मध्यम पद्म परिधि चालीस लाख पद्मों की कही गई है।

बाहिरए णं पउमपरिक्खेवे अडयालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

बाह्य पद्मपरिधि अड़तालीस लाख पद्मों की कही गई।

एवामेव सपुव्वावरेणं एगा पउमकोडी वीसं च पउमसयसहस्सा भवंतीतिमक्खाया।

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४८

इस प्रकार पूर्वापर के सब मिलाकर एक करोड़ बीस लाख पद्म होते हैं—ऐसा कहा गया है।

णीलवंतद्दहस्स णामहेऊ—

५४४. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—णीलवंतद्दहे, णीलवंतद्दहे ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतद्दहे णं तत्थ तत्थ जाइं उप्पलाइं -जाव-सयसहस्सपत्ताइं णीलवंतप्पभाइं णीलवंतवण्णाइं।

णीलवंतद्दहकुमारे य णागकुमारे देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईए परिवसइ।

से तेणट्ठेणं-जाव-णीलवंतद्दहे णीलवंतद्दहे।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १४९

नीलवन्तद्रह के नाम का हेतु—

५४४. प्र०—भगवन् ! नीलवन्तद्रह नीलवन्तद्रह क्यों कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! नीलवंतद्रह में जहाँ-जहाँ जितने उत्पल हैं—यावत्—शतपत्र, सहस्रपत्र हैं वे सब नीलवन्त (वर्षधर पर्वत) जैसी प्रभा वाले हैं और नीलरत्न जैसे वर्ण वाले हैं।

नीलवन्तद्रह में नीलवन्त (नाग) कुमार देव महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला रहता है।

(द्रह की नामकरण का) कथन पूर्व के समान है—यावत्—नीलवन्तद्रह नीलवन्तद्रह कहा जाता है।

उत्तरकुरुदहस्स ठाणप्पमाणाई—

५४५. प०—कहि णं भंते ! उत्तराए कुराए उत्तरकुरुद्दहे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! नीलवंतद्दहस्स दाहिणेणं अट्ठचोत्तीसे जोयण-सते।

एवं सो चेव गमो णेतव्वो जो णीलवंतद्दहस्स सव्वेसिं सरिसको दहसरिसनामा य देवा।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १५०

५४६. प०—कहि णं भंते ! चंदद्दहे एरावणद्दहे मालवंतद्दहे ?

उ०—एवं एक्केक्को णेयव्वो।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १५०

उत्तरकुरुद्रह के स्थान प्रमाणादि—

५४५. प्र०—भगवन् ! उत्तरकुरा में उत्तरकुरुद्रह कहां कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्तद्रह के दक्षिण में, आठ सौ चौतीस योजन दूरी पर (उत्तरकुरु द्रह) है।

इसका वर्णन (नीलवन्त द्रह जैसे) कहना चाहिए, देवता का नाम द्रह के नाम के समान है।

५४६. प्र०—भगवन् ! चन्द्रद्रह, एरावण द्रह, माल्यवन्तद्रह कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—इस प्रकार एक-एक द्रह का वर्णन जानना चाहिए। (अर्थात् उत्तरकुरुद्रह के समान ही अन्य द्रहों के वर्णन जानने चाहिए।

जंबुद्दीवे णउतिं महाणईओ—

५४७. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयाओ महाणईओ वास-हरपवहाओ ?

केवइयाओ महाणईओ कुण्डप्पवहाओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस महाणईओ वासहर-पवहाओ।

छावत्तरिं महाणईओ कुण्डप्पवहाओ।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे णउतिं महाणईओ भवंतीतिमक्खायं। —जंबु० वक्ख०, ६, सु० १२५

जम्बूद्वीप में नव्वे महानदियाँ—

५४७. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में कितनी महानदियाँ वर्षधर पर्वतों से प्रवाहित होने वाली कही गई है ?

कितनी महानदियाँ कुण्डों से प्रवाहित होने वाली कही गई हैं ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप द्वीप में चौदह महानदियाँ वर्षधर पर्वतों से प्रवाहित होने वाली कही गई है।

छिहत्तर (७६) महानदियाँ कुण्डों से प्रवाहित होने वाली कही गई हैं।

इस प्रकार पहले पीछे की मिलाने पर जम्बूद्वीप द्वीप में नव्वे महानदियाँ होती हैं ऐसा कहा गया है।

जंबु-मंदर-दाहिणोत्तरेणं दुवालस-महाणईओ—

५४८. जंबु-मंदर-दाहिणेणं छ महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. गंगा, २. सिंधू, ३. रोहिया, ४. रोहितंसा, ५. हरी, ६. हरिकंता।

५४९. जंबु-मंदर उत्तरेणं छ महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. नरकंता, २. नारीकंता, ३. सुवण्णकूला, ४. रुप्पकूला, ५. रत्ता, ६. रत्तवई।[1] —ठाणं० ६, सु० ५२२

जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत से दक्षिण-उत्तर में बारह महानदियाँ—

५४८. जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत से दक्षिण में छः महानदियाँ कही गई है यथा—

(१) गंगा, (२) सिन्धु, (३) रोहिता, (४) रोहितांशा, (५) हरी, (६) हरिकान्ता।

५४९. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में छः महानदियाँ कही गई है, यथा—

(१) नरकान्ता, (२) नारीकान्ता, (३) सुवर्णकूला, (४) रूप्यकूला, (५) रक्ता, (६) रक्तावती।

---

१ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार ६ सूत्र १२५ में चौदह महानदियाँ वर्षधर पर्वतों से प्रवाहित होने वाली कही गई हैं, किन्तु इस सूत्र में छः, छः स्थान का कथन होने से सीता और सीतोदा को छोड़कर शेष बारह महानदियाँ ही कही गई हैं।

वासहरपवहाओ चोद्दस महाणईओ—

५५०. प०—जंबु-मंदर-दाहिणेणं चुल्लहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ पउमदहाओ महद्दहाओ तओ महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. गंगा, २. सिंधू, ३. रोहितंसा।

—ठाणं ३ उ० ४, सु० १३७

५५१. जंबु-मंदर-दाहिणेणं महाहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ महापउमद्दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. रोहियच्चेव, २. हरिकंतच्चेव।

५५२. जंबु-मंदर-दाहिणेणं निसढाओ वासहरपव्वयाओ तिगिछिद्दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. हरिच्चेव, २ सीओअच्चेव।

५५३. जंबु-मंदर-उत्तरेणं नीलवंताओ वासहरपव्वयाओ केसरिद्दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. सीता चेव, २. नारिकंता चेव।

५५४. जंबु-मंदर-उत्तरेणं रुप्पीओ वासहरपव्वयाओ महापोंडरीयद्दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. नरकंता चेव, २. रुप्पकूला चेव।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८८

५५५. जंबु-मंदर-उत्तरेणं सिहरीओ वासहरपव्वयाओ पोंडरीयद्दहाओ महद्दहाओ तओ महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. सुवण्णकूला, २. रत्ता, ३. रत्तवई।

—ठाणं ३, उ० ४, सु० १९७

चउद्दसमहाणईणं णईपरिवारो—

भरहेरवएसु वासेसु चत्तारि महाणईओ—

५५६. प०—जंबुद्दीवे दीवे णं भंते ! भरहेरवएसु वासेसु कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. गंगा, २. सिंधु, ३. रत्ता, ४. रत्तवई।

तत्थ णं एगमेगा महाणई चउद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे भरह-एरवएसु वासेसु छप्पण्णं सलिलासहस्सा भवंतीति मक्खायंति।

—जं० वक्ख० ६, सु० १२५

वर्षधर पर्वतों से प्रवाहित होने वाली चौदह महानदियाँ—

५५०. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में क्षुद्रहिमवन्त वर्षधर पर्वत के पद्मद्रह नामक महाद्रह से तीन महानदियाँ प्रवाहित होती हैं, यथा—

(१) गंगा, (२) सिन्धु, (३) रोहितांशा।

५५१. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत के महापद्म द्रह से दो महानदियाँ प्रवाहित होती हैं, यथा—

(१) रोहिता, (२) हरिकान्ता।

५५२. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में निषध वर्षधर पर्वत के तिगिच्छद्रह से दो महानदियाँ प्रवाहित होती है, यथा—

(१) हरी, (२) सीतोदा।

५५३. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में नीलवंत वर्षधर पर्वत के केसरी द्रह से दो महानदियाँ प्रवाहित होती है यथा—

(१) सीता, (२) नारिकंता।

५५४. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में रुक्मीवर्षधर पर्वत के महापौंडरीकद्रह से दो महानदियाँ प्रवाहित होती है यथा—

(१) नरकान्ता, (२) रूप्यकूला।

५५५. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत के पौंडरीक महाद्रह से तीन महानदियाँ प्रवाहित होती है, यथा—

(१) सुवर्णकूला, (२) रक्ता, (३) रक्तवती।

चौदह महानदियों का परिवार—

भरत और ऐरवत क्षेत्र में चार महानदियाँ—

५५६. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत वर्ष में कितनी महानदियाँ कही गई हैं ?

उ०—गौतम ! चार महानदियाँ कही गई हैं, यथा—

(१) गंगा, (२) सिन्धु, (३) रक्ता और (४) रक्तवती।

इनमें से प्रत्येक महानदी चौदह हजार नदियों से युक्त होकर पूर्व और पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है।

इस प्रकार सब मिलाकर जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत वर्ष में छप्पन हजार नदियाँ हैं, ऐसा कहा गया है।

उत्तरकुरुदहस्स ठाणप्पमाणाई—

५४५. प०—कहि णं भंते ! उत्तराए कुराए उत्तरकुरुद्दहे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! नीलवंतद्दहस्स दाहिणेणं अट्ठचोत्तीसे जोयणसते ।

एवं सो चेव गमो णेतव्वो जो णीलवंतद्दहस्स सव्वेसिं सरिसको दहसरिसनामा य देवा ।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १५०

५४६. प०—कहि णं भंते ! चंदद्दहे एरावणद्दहे मालवंतद्दहे ?

उ०—एवं एक्केक्को णेयव्वो ।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १५०

उत्तरकुरुद्रह के स्थान प्रमाणादि—

५४५. प्र०—भगवन् ! उत्तरकुरा में उत्तरकुरुद्रह कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्तद्रह के दक्षिण में, आठ सौ चौंतीस योजन दूरी पर (उत्तरकुरु द्रह) है ।

इसका वर्णन (नीलवन्त द्रह जैसे) कहना चाहिए, देवता का नाम द्रह के नाम के समान है ।

५४६. प्र०—भगवन् ! चन्द्रद्रह, एरावण द्रह, माल्यवन्तद्रह कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—इस प्रकार एक-एक द्रह का वर्णन जानना चाहिए । (अर्थात् उत्तरकुरुद्रह के समान ही अन्य द्रहों के वर्णन जानने चाहिए ।

जंबुद्दीवे णउतिं महाणईओ—

५४७. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयाओ महाणईओ वासहरपवहाओ ?

केवइयाओ महाणईओ कुण्डप्पवहाओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस महाणईओ वासहरपवहाओ ।

छावत्तरिं महाणईओ कुण्डप्पवहाओ ।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे णउतिं महाणईओ भवंतीतिमक्खायं । —जंबु० वक्ख०, ६, सु० १२५

जम्बूद्वीप में नव्वे महानदियाँ—

५४७. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में कितनी महानदियाँ वर्षधर पर्वतों से प्रवाहित होने वाली कही गई है ?

कितनी महानदियाँ कुण्डों से प्रवाहित होने वाली कही गई हैं ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप द्वीप में चौदह महानदियाँ वर्षधर पर्वतों से प्रवाहित होने वाली कही गई हैं ।

छिहत्तर (७६) महानदियाँ कुण्डों से प्रवाहित होने वाली कही गई हैं ।

इस प्रकार पहले पीछे की मिलाने पर जम्बूद्वीप द्वीप में नव्वे महानदियाँ होती हैं ऐसा कहा गया है ।

जंबु-मंदर-दाहिणोत्तरेणं दुवालस-महाणईओ—

५४८. जंबु-मंदर-दाहिणेणं छ महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. गंगा, २. सिंधू, ३. रोहिया, ४. रोहितंसा, ५. हरी, ६. हरिकंता ।

५४९. जंबु-मंदर उत्तरेणं छ महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. नरकंता, २. नारीकंता, ३. सुवण्णकूला, ४. रुप्पकूला, ५. रत्ता, ६. रत्तवई ।[1] —ठाणं० ६, सु० ५२२

जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत से दक्षिण-उत्तर में बारह महानदियाँ—

५४८. जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत से दक्षिण में छः महानदियाँ कही गई है यथा—

(१) गंगा, (२) सिन्धु, (३) रोहिता, (४) रोहितांशा, (५) हरी, (६) हरिकान्ता ।

५४९. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में छः महानदियाँ कही गई है, यथा—

(१) नरकान्ता, (२) नारीकान्ता, (३) सुवर्णकूला, (४) रूप्यकूला, (५) रक्ता, (६) रक्तावती ।

---

१ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार ६ सूत्र १२५ में चौदह महानदियाँ वर्षधर पर्वतों से प्रवाहित होने वाली कही गई हैं, किन्तु इस सूत्र में छः, छः स्थान का कथन होने से सीता और सीतोदा को छोड़कर शेष बारह महानदियाँ ही कही गई हैं ।

वासहरपवहाओ चोद्दस महाणईओ—

५५०. प०—जंबु-मंदर-दाहिणेणं चुल्लहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ पउमदहाओ महद्दहाओ तओ महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. गंगा, २. सिंधू, ३. रोहितंसा।

—ठाणं ३ उ० ४, सु० १३७

५५१. जंबु-मंदर-दाहिणेणं महाहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ महापउमद्दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. रोहियच्चेव, २. हरिकंतच्चेव।

५५२. जंबू-मंदर-दाहिणेणं निसढाओ वासहरपव्वयाओ तिगिंछिद्दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. हरिच्चेव, २ सीओअच्चेव।

५५३. जंबू-मंदर-उत्तरेणं नीलवंताओ वासहरपव्वयाओ केसरिद्दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. सीता चेव, २. नारिकंता चेव।

५५४. जंबू-मंदर-उत्तरेणं रुप्पीओ वासहरपव्वयाओ महापोंडरीयद्दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. नरकंता चेव, २. रुप्पकूला चेव।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८८

५५५. जंबू-मंदर-उत्तरेणं सिहरीओ वासहरपव्वयाओ पोंडरीयद्दहाओ महादहाओ तओ महाणईओ पवहंति, तं जहा—

१. सुवन्नकूला, २. रत्ता, ३. रत्तवई।

—ठाणं ३, उ० ४, सु० १९७

वर्षधर पर्वतों से प्रवाहित होने वाली चौदह महानदियाँ—

५५०. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में क्षुद्रहिमवन्त वर्षधर पर्वत के पद्मद्रह नामक महाद्रह से तीन महानदियाँ प्रवाहित होती है,यथा—

(१) गंगा, (२) सिन्धु, (३) रोहितांशा।

५५१. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत के महापद्म द्रह से दो महानदियाँ प्रवाहित होती हैं, यथा—

(१) रोहिता, (२) हरिकान्ता।

५५२. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में निषध वर्षधर पर्वत के तिगिच्छद्रह से दो महानदियाँ प्रवाहित होती है, यथा—

(१) हरी, (२) सीतोदा।

५५३. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में नीलवंत वर्षधर पर्वत के केसरी द्रह से दो महानदियाँ प्रवाहित होती है यथा—

(१) सीता, (२) नारिकंता।

५५४. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में रुक्मीवर्षधर पर्वत के महापौंडरीकद्रह से दो महानदियाँ प्रवाहित होती है यथा—

(१) नरकन्ता, (२) रूप्यकूला।

५५५. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत के पौंडरीक महाद्रह से तीन महानदियाँ प्रवाहित होती है, यथा—

(१) सुवर्णकूला, (२) रक्ता, (३) रक्तवती।

चउदसमहाणईणं णईपरिवारो—

भरहेरवएसु वासेसु चत्तारि महाणईओ—

५५६. प०—जंबुद्दीवे दीवे णं भंते ! भरहेरवएसु वासेसु कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. गंगा, २. सिंधू, ३. रत्ता, ४. रत्तवई।

तत्थ णं एगमेगा महाणई चउद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे भरह-एरवएसु वासेसु छप्पण्णं सलिलासहस्सा भवंतीतिमक्खायंति।

—जंबु वक्ख० ६, सु० १२५

चौदह महानदियों का परिवार—

भरत और ऐरवत क्षेत्र में चार महानदियाँ—

५५१. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत वर्ष में कितनी महानदियाँ कही गई हैं ?

उ०—गौतम ! चार महानदियाँ कही गई हैं, यथा—

(१) गंगा, (२) सिन्धु, (३) रक्ता और (४) रक्तवती।

इनमें से प्रत्येक महानदी चौदह हजार नदियों से युक्त होकर पूर्व और पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है।

इस प्रकार सब मिलाकर जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत वर्ष में छप्पन हजार नदियाँ हैं, ऐसा कहा गया है।

हेमवय-हेरण्णवएसु वासेसु चत्तारि महाणईओ—

५५७. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे हेमवय हेरण्णवएसु वासेसु कति महाणईओ पण्णत्ताओ,

उ०—गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

५. रोहिता, ६. रोहिअंसा, ७. सुवण्णकूला, ८. रुप्पकूला।

तत्थ णं एगमेगा महाणई अट्ठावीसाए-अट्ठावीसाए अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं-समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे हेमवय-हेरण्णवएसे वासेसु वारसुत्तरे सलिलासयसंहस्से भवतीति-मक्खायं इति। —जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

हेमवत और हैरण्यवत वर्ष में चार महानदियाँ—

५५७. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में हैमवत और हैरण्यवत वर्ष में कितनी महानदियाँ कही गई हैं ?

उ०—गौतम ! चार महानदियाँ कही गई हैं, यथा—

(५) रोहिता, (६) रोहितांसा, (७) स्वर्णकूला और (८) रूप्यकूला।

इनमें से प्रत्येक महानदी अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार नदियों से युक्त होकर पूर्व और पश्चिम लवणसमुद्र में मिलती है।

इस प्रकार सब मिलकर जम्बूद्वीप के हैमवत और हैरण्यवत वर्ष में एक लाख बारह हजार नदियाँ हैं; ऐसा कहा गया है।

हरिवास-रम्मगवासेसु चत्तारि महाणईओ—

५५८. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे हरिवास-रम्मगवासेसु कति महाणईओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

९. हरी, १०. हरिकंता, ११. नरकंता, १२. नारिकंता।

तत्थ णं एगमेगा महाणई छप्पण्णाए-छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहि समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ,

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे हरिवास-रम्मगवासेसु दो चउवीसा सलिलासयसहस्सा भवंतीति-मक्खायं। —जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष में चार महानदियाँ—

५५८. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के द्वीप के हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष में कितनी महानदियाँ कही गई हैं ?

उ०—गौतम ! चार महानदियाँ कही हैं यथा—

९. हरि, १०. हरिकान्ता, ११. नरकान्ता और १२. नारीकान्ता।

इनमें से प्रत्येक महानदी छप्पन छप्पन हजार नदियों से युक्त होकर पूर्व और पश्चिम लवणसमुद्र में मिलती है।

इस प्रकार सब मिलकर जम्बूद्वीप के हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष में दो लाख चौबीस हजार नदियाँ हैं ऐसा कहा गया है।

महाविदेहवासे दो महाणईओ—

५५९. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे महाविदेहे वासे कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! दो महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१३. सीआ य, १४. सीओआ य।[1]

तत्थ णं एगमेगा महाणई पंचहिं पंचहिं सलिलासयसहस्सेहिं बत्तीसाए अ सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ,

महाविदेह वर्ष में दो महानदियाँ—

५५९. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप के महाविदेह वर्ष में कितनी महानदियाँ कही गई हैं ?

उ०—गौतम ! दो महानदियाँ कही गई है। यथा—

शीता और शीतोदा।

इनमें से प्रत्येक महानदी पाँच लाख बत्तीस हजार नदियों से युक्त होकर पूर्व और पश्चिम लवणसमुद्र में मिलती है।

---

१ शीता और शीतोदा महानदी के प्रवाह कुण्ड और द्वीप का तथा लवणसमुद्र में मिलते समय प्रवाह का प्रमाण समान है। यह स्थानांग २, उ० ३, सू० ८८ में स्पष्ट निर्देश है किन्तु जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति वक्ष० ४, सु० ११० में शीता महानदी के प्रवाह, कुण्ड और द्वीप का प्रमाण नहीं कहा है। वहाँ केवल शीता महानदी के लवण समुद्र में मिलने का वर्णन है।
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के वृत्तिकार ने भी वृत्ति में इस प्रकार कहा है—
"अत्रचावशिष्टपदसंग्रहे प्रवहमुखव्यासादिकं न चिन्तितं समुद्रप्रवेशावेकस्यैवालापकस्य दर्शनात्।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहेवासे दस सलिलासयसहस्सा चउसट्ठिं च सलिलासहस्सा भवंतीतिमक्खायं। —जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

इस प्रकार सब मिलकर जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में दस लाख चौसठ हजार नदियाँ हैं; ऐसा कहा गया है।

दुवालस अंतरणईओ—

५६०. जंबू-मंदर-पुरत्थिमेणं सीताए महाणईए उभयकूले छ अंतरणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. गाहावती, २. दाहावत्ती, ३. पंकवती, ४. तत्तजला, ५. मत्तजला, ६. उम्मत्तजला।[1]

जंबू-मंदर-पच्चत्थिमेणं सीतोदाए महाणईए उभयकूले छ अंतरणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. खीरोदा, २. सीहसोता, ३. अंतोवाहिणी, ४. उम्मिमालिणी, ५. फेणमालिणी, ६. गंभीरमालिणी।[2]

—ठाणं ६, सु० ५२२

महाविदेह में बारह अन्तर नदियां—

५६०. जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पूर्व में शीता महानदी के दोनों किनारों पर छः अन्तर नदियाँ कही गई हैं, यथा—

(१) गाथावती, (२) द्रहवती, (३) पंकवती, (४) तप्तजला, (५) मत्तजला, (६) उन्मत्तजला।

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पश्चिम में शीतोदा महानदी के दोनों किनारों पर छः अन्तरनदियाँ कही गई हैं, यथा—

(१) क्षीरोदा, (२) शीतस्रोता, (३) अन्तोवाहिनी, (४) उर्मिमालिनी, (५) फेनमालिनी, (६) गम्भीरमालिनी।

गंगामहाणईए पवायाईणं पमाणं—

५६१. तस्स णं पउमद्दहस्स पुरित्थिमिल्लेणं तोरणेणं गंगामहाणई पवूढासमाणी पुरत्थाभिमुही पंचजोयणसयाइं पव्वएणं गंता गंगावत्तणकूडे आवत्तासमाणी पचतेवीसे जोयणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगजोयणसइएणं पवाएणं पवडइ।

गंगा महाणई जओ पवडइ इत्थणं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता, सा णं जिब्भिया अद्धजोयणं आयामेणं छसकोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं मगरमुहविउट्ठसंठाणसंठिया सव्ववइरामई अच्छा सण्हा-जाव-पडिरूवा।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

गंगा महानदी के प्रपातादिका प्रमाण—

५६१. इस पद्मद्रह के पूर्व दिशा के तोरण (द्वार) से गंगा महानदी निकलकर पूर्व की ओर पाँच सौ योजन पर्वत पर होकर गई है।

यहाँ गंगावर्तन कूट के नीचे से मुड़कर ५२३ $\frac{३}{१९}$ योजन दक्षिण में पर्वत पर होकर घट के मुख से निकलते हुए सौ योजन से कुछ अधिक चौड़े मुक्ताहार की आकृति वाले प्रपात से नीचे गिरती है।

गंगा महानदी जहाँ से गिरती है वहाँ एक विशाल जिह्विका (नालिका) कही गई है। यह नालिका आधा योजन लम्बी, सवा छह योजन चौड़ी, आधा कोस मोटी, मगर के खुले हुए मुख के आकार की सर्वात्मना वज्रमयी, स्वच्छ और चिकनी है—यावत् मनोहर है।

५६२. गंगा णं महाणई पवहे छ सकोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं, तयणंतरं च णं मायाए-मायाए परिवड्ढ-

५३२. (उद्गम स्थान में) गंगा महानदी के प्रवाह का विष्कम्भ सवा छः योजन और उद्वेध (गहराई) आधाकोश का है, तदनन्तर

---

१ जम्बूमंदरपुरत्थिमेणं सीताए महाणईए उत्तरेणं तओ अंतरणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) गाहावती, (२) दाहावती, (३) पंकवती।
जम्बूमंदर पुरत्थिमेणं सीताए महाणईए दाहिणेणं तओ अंतरणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) तत्तजला, (२) मत्तजला, (३) उम्मत्तजला।

२ जम्बूमंदर पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणईए दाहिणेणं तओ अंतरणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) खीरोदा, (२) सीहसोता, (३) अंतोवाहिणी।
जम्बूमंदरपच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणईए उत्तरेणं तओ अंतरणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) उम्मिमालिणी, (२) फेणमालिणी, (३) गंभीरमालिणी।

—ठाणं, ३, उ० ४, सु० १९७

माणी परिवड्ढमाणी, मुहमूले वासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विक्खंभेणं, सकोसं जोयणं उव्वेहेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता।

अनुक्रम से बढ़ते-बढ़ते मुख के मूल (समुद्र प्रवेश करते समय प्रवाह) का विष्कम्भ साढ़े बासठ योजन और उद्वेध सवा योजन का है, इसके दोनों पार्श्व (किनारे) दो पद्मवर वेदिकाओं तथा दो वनखण्डों से घिरे हुए हैं।

वेइया-वणसंडवण्णओ भाणिअव्वो।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

यहाँ पद्मवर वेदिकाओं का तथा वनखण्डों का वर्णन करना चाहिए।

सिंधुमहाणईए पवायाईणं पमाणं—

सिन्धु महानदी के प्रपात आदि के प्रमाण—

५६३. एवं सिंधूए वि णेअव्वं–जाव–तस्स णं पउमद्दहस्स पच्चत्थिमिल्लेणं तोरणेणं।[1]

५६३. इसी प्रकार (गंगा नदी के समान) सिन्धु नदी के (प्रपातादि के आयामादि) भी जानने चाहिए—**यावत्**—उस पद्मद्रह के पश्चिमी तोरण से·····।

सिंधुआवत्तणकूडे[2]
दाहिणाभिमुही[3]
सिंधुप्पवायकुण्डं[4]
सिंधुद्दीवो[5]
अट्ठो सो चेव-जाव- —जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४[6]

सिन्धु आवर्तनकूट
दक्षिणाभिमुख
सिन्धु प्रपात कुण्ड
सिन्धुद्वीप
सिन्धुनदी नामकरण का कारण (सब गंगा नदी के समान है)।

५६४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं भरहे वासे दो महाणईओ बहुसमतुल्लाओ अविसेसमणाणत्ताओ अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति आयाम-विक्खंभ-उव्वेह-संठाण-परिणाहेणं

तं जहा—

१. गंगाचेव, २. सिंधूचेव। —ठाणं २, उ० ३, सु० ८८

५६४. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण में (दिशास्थित) भरत क्षेत्र में दो महानदियाँ हैं जो (क्षेत्र प्रमाण की अपेक्षा से) अधिक सम या तुल्य है, विशेषता रहित है, (काल अपेक्षा से) नानापन नहीं है, (वे दोनों नदियाँ) लम्बाई-चौड़ाई-गहराई संस्थान और परिधि की अपेक्षा से एक-दूसरे का अतिक्रम नहीं करती है, यथा—

(१) गंगा, और (२) सिन्धु।

५६५. गंगा-सिंधूओ णं महाणईओ पवाहे सातिरेगेणं चउवीसं कोसे वित्थारेणं पण्णत्ताओ। —सम० २४, सु० ५

५६५. गंगा और सिन्धु इन दोनों महानदियों का प्रवाह कुछ अधिक चौवीसकोश के विस्तार का कहा गया है।

५६६. गंगा-सिंधूओ णं महाणदीओ पणवीसं गाऊयाणि पुहुत्तेणं दुहओ घडमुह-पवित्तिएणं मुत्तावलिहार-संठिएणं पवातेण पडंति। —सम० २५, सु० ७

५६६. गंगा और सिन्धु ये दोनों महादियाँ घड़े के मुख से निकलते हुए जल के समान कल-कल शब्द करती हुई पच्चीस गाऊ विस्तृत मुक्तावलीहार की आकृति जैसे प्रपात से गिरती है।

---

१ एवं सिन्ध्वा अपि स्वरूपं नेतव्यं, यावत्तस्य पद्मद्रहस्य पाश्चात्येन तोरणेन सिन्धु महानदी निर्गता सती पश्चिमाभिमुखी पंचयोजनशतानि पर्वतेन गत्वा·······

२ सिन्ध्वावर्तनकूटे आवृता सती पंचयोजनशतानि त्रयोविंशत्यधिकानि त्रींश्चैकोनविंशतिभागान्········

३ दक्षिणाभिमुखी पर्वतेन गत्वा महता घटमुखप्रवृत्तिकेन—यावत्—प्रपातेन प्रपतति, सिन्धु महानदी यतः प्रपतति अत्र महती जिह्विकास्ति, सिन्धु महानदी यत्र प्रपतति तत्र······

४ सिन्धु प्रपातकुण्डं वाच्यं.

५ तन्मध्ये सिन्धुद्वीपो वाच्यो॰: स एव यथा गंगाद्वीपप्रमाणि गंगाद्वीप वर्णाभानि पद्मानि तथा सिन्धुद्वीपप्रमाणि सिन्धुद्वीपवर्णाभानि पद्मानि सिन्धुद्वीप उच्यते।

इस प्रकार टीकाकार ने संक्षिप्त मूलपाठ का स्पष्टीकरण किया है।

६ इस सूत्र में सिन्धुनदी सम्बन्धी मूलपाठ के अन्त में 'सेसं तं चेवत्ति' यह सूचना दी है, टीकाकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—"शेष उच्छ्रितत्वं प्रवह-मुखमानादि तदेव गंगामान समानमेव ज्ञेयम्।"

रत्तारत्तवइओ य पवायाईणं पमाणं—

५६७. एवं जह चेव गंगा-सिंधूओ तह चेव रत्ता-रत्तवईओ णेअव्वाओ पुरत्थिमेणं रत्ता, पच्चत्थिमेणं रत्तवई।

अवसिट्ठं तं चेव भाणिअव्वत्ति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

५६८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं एरवएवासे दो महाणईओ बहुसमतुल्लाओ-जाव-परिणाहेणं,

तं जहा—

रत्ता चेव, रत्तवई चेव। —ठाणं २, उ० ३, सु० ८८

५६९. रत्ता-रत्तवईओ णं महानदीओ पणवीसं गाऊयाणि पुहुत्तेणं मगरमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहार-संठिएणं पवातेण पडंति।

—सम० २५, सु० ८

५७०. रत्ता-रत्तवतीओ णं महाणईओ पवाहे सातिरेगे णं चउवीसं कोसे वित्थारेणं पण्णत्ता। —सम० २४, सु० ६

रोहिआमहाणईए पवायाईणं पमाणं—

५७१. तस्स णं महापउमद्दहस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं रोहिआ महाणई पवूढा समाणी सोलस पंचुत्तरे जोअणसए पंच य एगूणवीसइभाए-जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेग दो जोअणसइएणं पवाएणं पवडइ।

रोहिआ णं महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता, सा णं जिब्भिया जोअणं आयामेणं अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं कोसं वाहल्लेणं, मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिया सव्ववइरामई अच्छा-जाव-पडिरूवा।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

५७२. रोहिआणं जहा रोहिअंसा तहा पवाहे अ मुहे अ भाणियव्वा इति-जाव-सपरिक्खित्ता। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

रोहिअंसामहाणईए पवायाईणं पमाणं—

५७३. तस्स णं पउमद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं रोहिअंसामहाणई

रक्ता और रक्तवती नदी के प्रपातादि का प्रमाण—

५६७. जिस प्रकार गंगा और सिन्धु नदियों का वर्णन है उसी प्रकार रक्ता और रक्तवती नदियों का जानना चाहिए। रक्तानदी पूर्व की ओर रक्तावती नदी पश्चिम की ओर (प्रवाहित होती) है।

शेष सब पूर्ववत् कहना चाहिए।

५६८. जम्बुद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर (दिशा स्थित) ऐरवत क्षेत्र में दो महानदियाँ अधिक सम या तुल्य हैं—यावत्—परिधि की अपेक्षा से एक दूसरी का अतिक्रमण नहीं करती है, यथा—

(१) रक्ता, और (२) रक्तवती।

५६९. रक्ता और रक्तवती—ये दोनों महानदियाँ घड़े के मुख से निकलते हुए जल के समान कल-कल शब्द करती हुई पच्चीस गाउ विस्तृत मुक्तावलीहार की आकृति जैसे प्रपात से गिरती है।

५७०. रक्ता और रक्तवती महानदी प्रवाह कुछ अधिक चौवीस कोश विस्तार वाला कहा गया है।

रोहिता महानदी के प्रपातादि का प्रमाण—

५७१. उस महापद्मद्रह के दक्षिणी तोरण से रोहिता महानदी निकलकर १६०५ $\frac{५}{१९}$ योजन दक्षिण की ओर पर्वत पर जाकर विशाल घट के मुख से निकलती हुई एवं मुक्तावली हार की आकृति वाले दो सौ योजन से कुछ अधिक (चौड़े) प्रपात से नीचे गिरती है।

जहाँ रोहिता महानदी गिरती है वहाँ एक विशाल जिह्विका (नाली) कही गई है। यह नाली एक योजन लम्बी, साढ़े बारह योजन चौड़ी, एक कोस मोटी, खुले हुए मगर के मुख के आकार की, सर्ववज्रमयी और स्वच्छ हैं—यावत्—मनोहर हैं।

५७२. रोहिता का प्रवाह और मुख आदि का प्रमाण रोहितांसा नदी के जैसा कहना चाहिए—यावत्—यह (पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से) संपरिक्षिप्त है।

रोहितांशा महानदी के प्रपातादि का प्रमाण—

५७३. उस पद्मद्रह के उत्तरी तोरण से रोहितांसा महानदी

पवूढा समाणी दोण्णि छावत्तरे जोअणसए छच्च एगूणवीसइ भाए जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुह-पवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ।

निकल कर २७६$\frac{६}{१९}$ योजन उत्तर की ओर पर्वत पर होती हुई विशाल घट के मुख से गिरते हुए एवं मुक्तावलीहार की आकृति के समान, सौ योजन से कुछ अधिक (चौड़े) प्रपात से नीचे गिरती है।

रोहिअंसा महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता।

रोहितांसा महानदी जहाँ गिरती है वहाँ एक विशाल जिह्विका (नालिका) कही गई है।

सा णं जिब्भिआ जोअणं आयामेणं, अद्धतेरस जोअणाइं विक्खंभेणं, कोसं बाहल्लेणं, मगरमुहविउटसंठाणसंठिया सव्ववइरामई अच्छा-जाव-पडिरूवा।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

यह नालिका एक योजन लम्बी, साढ़े बारह योजन चौड़ी एक कोस मोटी, मगर के मुख के आकार की, सर्वात्मना वज्रमयी हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—मनोहर है।

५७४. रोहिअंसाणं पवहे अद्धतेरसजोयणाइं विक्खंभेणं, कोसं उव्वेहेणं।

५७४. (उद्गमस्थान में) रोहितांसा महानदी के प्रवाह का विष्कम्भ साढ़े बारह योजन का है और उद्वेध (गहराई) एक कोश की है।

तयाणंतरं च णं मायाए मायाए परिवड्ढमाणी, परिवड्ढमाणी, मुहमूले पणवीसं जोयणसयं विक्खंभेणं, अड्ढाइज्जाइं जोयणाइं उव्वेहेणं।

तदनन्तर क्रमशः बढ़ते-बढ़ते मुख के मूल (समुद्र में प्रवेश करते समय प्रवाह) का विष्कम्भ एक सौ पच्चीस योजन का है। और उद्वेध अढाई योजन का है।

उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि य वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

इसके दोनों पार्श्व (किनारे) दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो वनखण्डों से घिरे हुए हैं।

५७५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं हेमवए वासे दो महाणईओ बहुसमतुल्लाओ-जाव-परिणाहेणं,

तं जहा—

रोहिता चेव, रोहितंसा चेव।—ठाणं २, उ० ३, सु० ८८

५७५. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा स्थित हेमवत क्षेत्र में दो महानदियाँ अधिक सम या तुल्य हैं—यावत्—परिधि की अपेक्षा से एक दूसरी का अतिक्रमण नहीं करती है, यथा—

(१) रोहिता, और (२) रोहितांसा।

सुवण्णकूला महाणईए पवायाईण पमाणं—

सुवर्णकूला महानदी के प्रपातादि का प्रमाण—

५७६. पुण्डरीए दहे सुवण्णकूला महाणई दाहिणेणं णेअव्वा, जहा रोहिअंसा पुरत्थिमेणं गच्छइ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

५७६. सुवर्णकूला महानदी पुण्डरीकद्रह के दक्षिणी तोरण से निकलती है—ऐसा जानना चाहिए और रोहितांसा महानदी के जैसे पूर्वी लवणसमुद्र में मिलती है।

रुप्पकूला महाणईए पयायाईणं पमाणं—

रूप्यकूला महानदी के प्रपातादि का प्रमाण—

५७७. (महापुण्डरीए दहे) रुप्पकूला (महाणई) उत्तरेणं णेअव्वा। जहा हरिकंता पच्चत्थिमेणं गच्छइ। अवसेसं तं चेवत्ति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

५७७. रूप्यकूला (महानदी) महापुण्डरीकद्रह के उत्तरी तोरण से निकलती है—ऐसा जानना चाहिए और हरिकान्ता महानदी जैसे पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है। शेष वर्णन पूर्ववत् है।

५७८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं हेरण्णवए वासे दो महाणईओ बहुसमतुल्लाओ-जाव-परिणाहेणं,

तं जहा—

सुवण्णकूला चेव, रुप्पकूला चेव।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८०

५७८. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर (दिशा) स्थित हैरण्यवत क्षेत्र में दो महानदियाँ अधिक सम या तुल्य हैं—यावत्—परिधि की अपेक्षा से एक दूसरी का अतिक्रमण नहीं करती हैं। यथा—

(१) सुवर्णकूला, और (२) रूप्यकूला।

हरिसलिलामहाणईए पवायाईणं पमाणं—

५७९. तस्साणं तिगिंछिद्दहस्स दक्खिणिल्लेणं तारेणेणं हरिसलिला महाणई पवूढा समाणी, सत्त जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एकवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता, महया घडमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगचउ-जोअणसइएणं पवाएणं पवडइ।

एवं जा चेव हरिकंताए वत्तव्वया सा चेव हरीए वि णेअव्वा।

जिब्भिआए, कुण्डस्स, दीवस्स, भवणस्स तं चेव पमाणं। अट्ठोवि भाणिअव्वो। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८४

हरिसलिला महानदी के प्रपातादि का प्रमाण—

५७९. उस तिगिच्छद्रह के दक्षिणी तोरण से हरिसलिला महानदी निकलकर ७४२१ $\frac{1}{19}$ योजन दक्षिण की ओर पर्वत पर बहकर विशाल घटमुख से गिरते हुए मुक्तावली हार की आकृति वाले कुछ अधिक चार सौ योजन (चौड़े) प्रपात से नीचे गिरती है।

इस प्रकार हरिकान्ता महानदी का जो वर्णन है वही हरिसलिला महानदी का भी जानना चाहिए।

जिह्विका, कुण्ड, द्वीप और भवन का प्रमाण पूर्ववत् (हरिकान्ता के समान) है। हरिसलिला के नाम का हेतु भी कहना चाहिए।

हरिकंतामहाणईए पवायाईणं पमाणं—

५८०. तस्स णं महापउमद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं हरिकंता महाणई पवूढा समाणी, सोलस पंचुत्तरे जोअणसए पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता, महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेग-दु-जोअणसइएणं पवाएणं पवडइ।

हरिकंता महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता।

दो जोअणाइं आयामेणं, पणवीसं जोअणाइं विक्खंभेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं, मगरमुहविउट्ठसंठाणसंठिआ सव्वरयणामई अच्छा-जाव-पडिरूवा। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

हरिकान्ता महानदी के प्रपातादि का प्रमाण—

५८०. उस महापद्मद्रह के उत्तरी तोरण से हरिकान्ता महानदी निकलकर १६०५ $\frac{5}{19}$ योजन उत्तर की ओर पर्वत पर बहकर विशाल घटमुख से गिरते हुए मुक्तावली हार की आकृति वाले दो सौ योजन से कुछ अधिक (चौड़े) प्रपात से नीचे गिरती हैं।

हरिकान्ता महानदी जहाँ से गिरती है वहाँ एक विशाल जिह्विका (नाली) कही गई हैं।

वह दो योजन लम्बी है, पच्चीस योजन चौड़ी है, आधा योजन मोटी है और मगर के खुले मुख जैसी आकार वाली है। सर्वरत्नमयी है, स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है।

५८१. हरिकंताणं महाणई पवहे पणवीसं जोयणाइं विक्खंभेणं अद्धजोयणं उव्वेहेण, तयणंतरं च मायाए मायाए परिवड्ढमाणी परिवड्ढमाणी मुहमूले अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं पंचजोयणाइं उव्वेहेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिं य वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

५८१. (उद्गम स्थान में) हरिकान्ता महानदी के प्रवाह का विष्कम्भ पच्चीस योजन का है और उद्वेध (गहराई) आधा योजन है, तदनन्तर अनुक्रम से बढ़ते-बढ़ते मुख के मूल (समुद्र में प्रवेश करते समय प्रवाह) का विष्कम्भ अढाई सौ योजन चौड़ा है और उद्वेध पाँच योजन है, इसके दोनों पार्श्व (किनारे) दो वेदिकाओं से और दो वनखण्डों से घिरे हुए हैं।

५८२. तं चेव पवहे अ मुहमूले अ पमाणं, उव्वेहो अ जं हरिकंताए -जाव-वणसंडपरिक्खित्ता। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८४

५८२. (उद्गम स्थान में) प्रवाह का प्रमाण और मुख के मूल (समुद्र में प्रवेश करते समय प्रवाह) का प्रमाण तथा उद्वेध का प्रमाण हरिकान्ता के समान है—यावत्—वनखण्ड से संपरिक्षिप्त है।

५८३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं हरिवासे दो महाणईओ-बहुसमतुल्लाओ-जाव-परिणाहेणं,

तं जहा—

१. हरि (सलिला) २. चेव, हरिकंता चेव।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८८

५८३. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण (दिशा स्थित) हरिवर्ष में दो महानदियाँ अधिक सम या तुल्य है—यावत्—परिधि की अपेक्षा से एक दूसरी का अतिक्रमण नहीं करती हैं, यथा—

(१) हरि (सलिला) और (२) हरिकांता।

णरकंतामहाणईए पवायाईणं पमाण—

५८४. महापुण्डरीए दहे णरकंता महाणई दक्खिणेणं णेयव्वा[1] जहा रोहिआ।[2]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

णारिकंतामहाणईए पवायाईणं पमाणं—

५८५. एवं णारिकंतावि उत्तराभिमुही णेयव्वा।[3]

पवहे अ मुहे अ जहा हरिकंता सलिला[4] इति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ११०

५८६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं रम्मएवासे दो महाणईओ बहुसमतुल्लाओ-जाव-परिणाहेणं,

तं जहा—

१. नरकंता चेव, २ नारिकंता चेव।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८८

सीआमहाणईए पवायाईणं पमाणं—

५८७. एत्थ णं केसरिद्दहो, दाहिणेणं सीआ महाणई पवूढा समाणी,[5]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ११०

सीओआमहाणईए पवायाईणं पमाणं—

५८८. तस्स णं तिगिंछिद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं सीओआमहाणई पवूढा समाणी, सत्त जोयणसहस्साइं चत्तारि अ एगवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता, महया घडमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेग चउ-जोअणसइएणं पवाएणं पवडइ।

सीओआ णं महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता, चत्तारि जोअणाइं आयामेणं, पण्णासं जोअणाइं विक्खंभेणं जोअणं बाहल्लेणं, मगरमुहविउट्ट संठाण-संठिआ सव्ववइरामइ अच्छा-जाव-पडिरूवा।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८४

नरकान्ता महानदी के प्रपातादि का प्रमाण—

५५४. नरकान्ता महानदी महापुण्डरीकद्रह के दक्षिणी तोरण से निकलती है—ऐसा जानना चाहिए। जिस प्रकार रोहिता महानदी

नारीकान्ता मदानदी के प्रपातादि का प्रमाण—

५८५. इसी प्रकार नारीकान्ता महानदी भी उत्तराभिमुखी जानना चाहिए।

प्रवाह और मुख का प्रमाण हरिकान्ता महानदी के (प्रवाह और मुख) के प्रमाण जैसा है।

५८६. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर (दिशा स्थित) रम्यक्‌वर्ष में दो महानदियाँ अधिक सम या तुल्य हैं—यावत्—परिधि की अपेक्षा से एक दूसरी का अतिक्रमण नहीं करती है। यथा—

(१) नरकान्ता, और (२) नारिकान्ता।

शीता महानदी के प्रपातादि का प्रमाण—

५८७. यहाँ केशरीद्रह के दक्षिणी तोरण से शीता महानदी निकलती है।

शीतोदा महानदी के प्रपातादि का प्रमाण—

५८८. उस तिगिंछिद्रह के उत्तरी तोरण से शीतोदा महानदी निकलकर $७४२१\frac{१}{१९}$ योजन उत्तर की ओर पर्वत पर बहकर विशाल घटमुख से गिरती हुई मुक्तावलिहार की आकृति वाले कुछ अधिक चार सौ योजन के प्रपात से नीचे गिरती है।

जहाँ शीतोदा महानदी गिरती है वहाँ एक विशाल जिह्विका कही गई है। यह जिह्विका चार योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी, एक योजन मोटी और मगर के मुख के आकार की है। सारी वज्रमय है, स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है।

---

१ महापुण्डरीकोऽत्र महापद्मद्रहतुल्यः अस्माच्च निर्गता दक्षिणतोरणेन नरकान्ता महानदी नेतव्या।

२ यथा रोहिता महाहिमवतो महापद्मद्रहतो दक्षिणेन प्रव्यूढा तथैषापि प्रस्तुतवर्षधराद्दक्षिणेन निर्गता —टीका।

३ एवं नारीकंता, इत्यादि—एवमुक्तन्यायेन नारीकान्ताऽपि उत्तराभिमुखी नेतव्या-कोऽर्थः ? यथा नीलवंत केशरिद्रहाद् दक्षिणाभिमुखी शीता निर्गता तथा नारीकान्ताऽपि उत्तराभिमुखी निर्गता।

४ प्रवहे च मुखे च यथा हरिकान्ता सलिला,—तथाहि-प्रवहे २५ योजनानि विष्कम्भेन, अर्द्धयोजनमुद्वेधेनेति मुखे २५० योजनानि विष्कम्भेन, ५ योजनान्युद्वेधेनेति।

यच्चात्र हरिसलिला विहाय प्रवहमुखयोर्हरिकान्ता उक्तास्तत् हरिसलिला प्रकरणेऽपि हरिकान्तादेशस्योक्तत्वात् टीका।

५ अत्र केसरिद्रहो नामद्रह अस्माच्च शीता महानदी प्रव्यूढा सती —टीका।

५८९. ....सीओआ णं महाणई पवहे पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, जोयणं उव्वेहेणं, तयणंतरं च णं मायाए मायाए परिवड्ढमाणी परिवड्ढमाणी, मुहमूले पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं।

उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिं अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८४

५८९. (उद्गम स्थान से) शीतोदा महानदी का प्रवाह पचास योजन चौड़ा और एक योजन गहरा है, तदनन्तर अनुक्रम से बढ़ता बढ़ता मुख के मूल में (समुद्र प्रवेश करते समय के) प्रवाह का प्रमाण पाँच सौ योजन चौड़ा और दस योजन गहरा है।

इनके दोनों पार्श्व दो पद्मवरवेदिकाओं से और दो वनखण्डों से घिरे हुए है।

५९०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं महाविदेहवासे दो महाणईओ बहुसमतुल्लाओ-जाव-परिणाहेणं,

तं जहा—

सीआ चेव, सीओआ चेव। —ठाणं २, उ० ३, सु० ८४

५९०. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर और दक्षिण में महाविदेह में दो महानदियाँ अधिक सम या तुल्य हैं—यावत्—परिधि की अपेक्षा से एक दूसरी का अतिक्रमण नहीं करती है, यथा—

(१) शीता, (२) शीतो।

लवणसमुद्दे मिलियाणं महाणईणं संखा—

५९१. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं केवइया सलिलासयसहस्सा पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

उ०—गोयमा ! एगे छण्णउए सलिलासयसहस्से पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहे लवणसमुद्दं समप्पेति त्ति।

प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं केवइया सलिलासयसहस्सा पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

उ०—गोयमा ! एगे छण्णउए सलिलासयसहस्से पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहे लवणसमुद्दं समप्पेंति त्ति।

प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइया सलिलासयसहस्सा पुरत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

उ०—गोयमा ! सत्तसलिलासयसहस्सा अट्ठावीसं च सहस्सा पुरत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति त्ति।

प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइया सलिलासयसहस्सा पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

उ०—गोयमा ! सत्तसलिलासयसहस्सा अट्ठावीसं च सहस्सा पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति त्ति।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे चोद्दससलिलासयसहस्सा छप्पण्णं च सहस्सा भवंतीतिमक्खायं इति।

—जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

लवणसमुद्र में मिलने वाली महानदियों की संख्या—

५९१. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से से दक्षिण में पूर्व और पश्चिम दिशा में बहने वाली कितनी लाख नदियाँ लवणसमुद्र में मिलती हैं ?

उ०—गौतम ! पूर्व और पश्चिम दिशा में बहने वाली एक सौ छिनवें लाख नदियाँ लवणसमुद्र में मिलती है।

प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत के उत्तर में पूर्व और पश्चिम दिशा में बहने वाली कितनी लाख नदियाँ लवणसमुद्र में मिलती हैं।

उ०—गौतम ! पूर्व और पश्चिम दिशा में बहने वाली एक सौ छिनवें लाख नदियाँ लवणसमुद्र में मिलती हैं।

प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप की पूर्व दिशा में बहने वाली कितनी लाख नदियाँ लवणसमुद्र में मिलती हैं ?

उ०—गौतम पूर्व दिशा में बहने वाली सात लाख अठाईस हजार नदियाँ लवणसमुद्र में मिलती हैं।

प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप की पश्चिम दिशा में बहने वाली कितनी लाख नदियाँ लवणसमुद्र में मिलती हैं ?

उ०—गौतम ! पश्चिम दिशा में बहने वाली सात लाख अठाईस हजार नदियाँ लवणसमुद्र में मिलती हैं।

इस प्रकार पूर्वापर की सब मिलाकर जम्बूद्वीप में चौदह लाख छपन हजार नदियाँ होती हैं—ऐसा कहा गया है।

चउद्दसमहाणईणं लवणसमुद्दे समत्ति—

५९२. जंबुद्दीवे णं दीवे चउद्दसमहाणईओ पुव्वावरेणं लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—

चौदह महानदियों का लवणसमुद्र में मिलना—

५९२. जम्बूद्वीप नामक द्वीप में चौदह महानदियाँ पूर्व और पश्चिम में बहती हुई लवणसमुद्र में मिलती हैं। यथा—

१. गंगा, २. सिंधु, ३. रोहिता, ४. रोहितंसा, ५. हरी, ६. हरिकंता, ७. सीता, ८. सीतोदा, ९. नरकंता, १०. नारिकंता, ११. सुवण्णकूला, १२. रूप्पकूला, १३. रत्ता, १४. रत्तवई।[1] —सम० १४, सु० ८

दसण्हं णईणं गंगा-सिंधुसु समत्ति—

५६३. जंबु-मंदरदाहिणेणं गंगा-सिंधुमहाणईओ दसमहाणईओ समप्पेंति, तं जहा—

१. जउणा, २. सरऊ, ३. आवी, ४. कोसी, ५. मही, ६. सतद्दु, ७. वितत्था, ८. विभासा, ९. एरावती, १०. चंदभागा।[2] —ठाणं १०, सु० ७१७

दसण्हं णईणं रत्ता-रत्तवइसु समत्ती—

५६४. जंबु-मंदर उत्तरेणं रत्ता-रत्तवईओ महाणईओ दसमहाणईओ समप्पेंति, तं जहा—

१–१० किण्हा-जाव-महाभागा।[3] —ठाणं १०, सु० ७१७

गंगामहाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

५६५. तस्स णं गंगप्पवायकुण्डस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं गंगामहाणई पवूढासमाणी उत्तरड्ढभरहवासं एज्जेमाणी सत्तहिं सलिलासहस्सेहिं आउरेमाणी आउरेमाणी अहे खंडप्पवायगुहाए वेयड्ढपव्वयं दलइत्ता दाहिणड्ढभरहवासं एज्जेमाणी एज्जेमाणी, दाहिणड्ढभरहवासस्स बहुमज्झदेसभागं गंता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी चोद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइ दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

(१) गंगा, (२) सिन्धु, (३) रोहिता, (४) रोहितांसा, (५) हरी, (६) हरिकान्ता, (७) सीता, (८) सीतोदा, (९) नरकान्ता, (१०) नारीकांता, (११) सुवर्णकूला, (१२) रूप्यकूला, (१३) रक्ता, (१४) रक्तवती।

गंगा और सिन्धु नदी में दस नदियों का मिलना—

५६३. जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण में गंगा और सिन्धु महानदियाँ मिलती हैं, यथा—

(१) यमुना, (२) सरयू, (३) आवी, (४) कोसी, (५) मही, (६) शतद्रु, (७) वितस्ता, (८) विभासा, (९) ऐरावती, (१०) चन्द्रभागा।

रक्ता और रक्तवती नदी में दस नदियों का मिलना—

५६४. जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर में रक्ता और रक्तवती महानदी में दस महानदियाँ मिलती हैं।

यथा—(१) कृष्णा, (२) महाकृष्णा, (३) नीला, (४) महानीला, (५) महातीरा, (६) इन्द्रा, (७) इन्द्रसेना, (८) सुसेणा, (९) वारिसेणा, (१०) महाभागा।

गंगा महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

५६५. उस गंगाप्रपातकुण्ड के दक्षिणी तोरण (द्वार) से गंगा महानदी निकलकर उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में बहती हुई सात हजार नदियों को अपने में मिलाती है और बाद में खण्डप्रपातगुफा के नीचे से होकर वैताढ्य पर्वत को दो भागों में विभक्त करती हुई दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र में बहती हैं। (तथा वह गंगानदी) दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र के मध्य में होकर पूर्वाभिमुख होती हुई चौदह हजार नदियों सहित जगती के नीचे से होती हुई पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है।

---

१ जम्बुद्दीवे दीवे सत्तमहाणईओ पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—(१) गंगा, (२) रोहिता, (३) हरी, (४) सीता, (५) नरकंता, (६) सुवण्णकूला, (७) रत्ता।

जम्बुद्दीवे दीवे सत्तमहाणईओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—(१) सिन्धु, (२) रोहितंसा, (३) हरिकंता, (४) सीतोदा, (५) णारिकंता, (६) रूप्पकूला, (७) रत्तवती। ठाणं ७, सु० ५५५

२ जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं गंगामहानई पंचमहानईओ समप्पेंति, तं जहा—(१) जऊणा, (२) सरऊ, (३) आवी, (४) कोसी, (५) मही।

जम्बूमंदरस्स दाहिणेणं सिन्धुमहाणई पंचमहाणईओ समप्पेंति, तं जहा—(१) सतद्दू, (२) वितत्था, (३) विभासा, (४) एरावती, (५) चंदभागा। —ठाणं ५, उ० ३, सु० ४७०

३ जम्बूमंदरस्स उत्तरेणं रत्तामहाणई पंचमहाणईओ समप्पेंति, तं जहा—(१) किण्हा, (२) महाकिण्हा, (३) नीला, (४) महानीला, (५) महातीरा।

जम्बूमंदरस्स उत्तरेणं रत्तवई महाणई पंचमहाणईओ सप्पेंति, तं जहा—(१) इंदा, (२) इंदसेणा, (३) सुसेणा, (४) वारिसेणा, (५) महाभागा। —ठाणं ५, उ० ३, सु० ४७०

सिंधु महाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

५६६. ·····-जाव-अहे तिमिसगुहाए वेअद्धपव्वयं दालइत्ता[1] पच्चत्थिमाभिमुही आवत्ता समाणी चोद्दससलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं-जाव-[2] समप्पेइ, सेसं तं चेवत्ति।[3]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

सिन्धु महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

५६६. (वह सिन्धु नदी) तमिस्रागुफा के नीचे होकर वैताढ्य पर्वत को दो भागों में विभक्त करती हुई (दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र में वहती है तथा वह सिन्धुनदी दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र के मध्य में होकर) पश्चिमाभिमुख होती हुई चौदह हजार नदियों सहित जगती के नीचे होती हुई पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है। शेष कथन पूर्ववत् है।

रत्तामहाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

रक्तामहानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

रत्तवईमहाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

रक्तवती महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

रोहिआमहाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

५६७. तस्स णं रोहिअप्पवायकुण्डस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं रोहिआ-महाणई पवूढासमाणी, हेमवयं वासं एज्जेमाणी एज्जेमाणी—

सद्दावइं वट्टवेयड्ढपव्वयं अद्धजोअणेणं असंपत्ता, पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी हेमवयंवासं दुहा विभयमाणी विभयमाणी—

अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

रोहिता महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

५६७. उस रोहितप्रपातकुण्ड के दक्षिणी तोरण से रोहिता महानदी निकलकर हैमवतक्षेत्र में बहती, बहती—

शब्दापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत से आधा योजन की दूरी पर पूर्वाभिमुख होती हुई हैमवत वर्ष को दो भागों में विभाजित करती-करती—

अठाईस हजार नदियों से परिपूर्ण (वह रोहिता नदी) जगती के नीचे होती हुई पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है।

रोहिअंसामहाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

५६८. तस्स णं रोहिअंसप्पवायकुण्डस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं रोहिअंसामहाणई पवूढा समाणी हेमवयं वासं एज्जेमाणी, एज्जेमाणी—

रोहितांशा महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

५६८. उस रोहितांशा प्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से रोहितांसा महानदी निकलकर हैमवत वर्ष में बहती बहती—

---

१ आगमोदय समिति की प्रति के पाठ में यहाँ संक्षिप्त वाचना का सांकेतिक वाक्य नहीं दिया है किन्तु यहाँ संक्षिप्त वाचना का सांकेतिक वाक्य देना आवश्यक था, जिससे बीच का पाठ कितना ग्राह्य है—यह जानने में सुविधा होती।

टीकाकार ने यहाँ इस प्रकार सूचित किया है—"अधस्तमिस्रागुहाया वैताढ्यपर्वतं दारयित्वा 'देशदर्शनाद्देशस्मरणमिति' वाहिद्धभरहवासस्स बहुमज्झदेसभागं गंता' इति पदानि बोध्यानि।" टीकाकार के सामने जो प्रति थी उसमें भी 'दालइत्ता' के आगे—दाहिणड्ढभरहवासं एज्जेमाणी एज्जेमाणी इतना पाठ छूटा हुआ प्रतीत होता है। पूरे पाठ के लिए देखें—

"तस्स णं सिन्धुप्पवायकुण्डस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं सिन्धुमहाणई पवूढासमाणि उत्तरद्धभरहवासं एज्जेमाणी एज्जेमाणी, सत्तहिं सलिलासहस्सेहिं आउरेमाणी आउरेमाणी अहे तिमिसगुहाए वेअड्ढपव्वयं दालइत्ता दाहिणड्ढभरहवासं एज्जेमाणी एज्जेमाणी दाहिणद्धभरहवासस्स बहुमज्झदेसभागं गंता पच्चत्थाभिमुही आवत्तासमाणी चोद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइ-दालइत्ता पच्चत्थिमेगं लवणसमुद्दं समप्पेइ, सेसं तं चेवत्ति।

—जम्बु० वक्ख० ४, सु० ७४

२ (क) यह मूलपाठ आगमोदय समिति की प्रति से उद्धृत किया गया है—इस मूलपाठ में यह—जाव—अनावश्यक है।

(ख) जम्बूद्वीप वक्ष० ४, सूत्र ७४ में संक्षिप्त वाचना की सूचना—'एवं सिंधूए वि णेयव्वं' अर्थ—इसी प्रकार (गंगा नदी के समान) सिंधू नदी का वर्णन जानना चाहिए।

३ इसका सम्बन्ध प्रवाह आदि से है।

चउद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी आपूरेमाणी,

सद्दावइवट्टवेयड्ढपव्वयं अद्धजोयणेणं असंपत्तासमाणी,

पच्चत्थाभिमुही आवत्तासमाणी हेमवयंवासं दुहा विभयमाणी विभयमाणी,

अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७४

चौदह हजार नदियों को अपने में मिलाती मिलाती—

शब्दापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत से आधा योजन की दूरी पर,

पश्चिमाभिमुख होती हुई, हैमवतवर्ष को दो भागों में विभक्त करती करती—

अठाईस हजार नदियों से परिपूर्ण (वह रोहितांशा नदी) जगती के नीचे होती हुई पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है ।

सुवण्णकूलाए महाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—
रुप्पकूलाए महाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—
हरिसलिला महाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

सुवर्णकूला महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—
रूप्यकूला महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—
हरिसलिला महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

५९९. ·····-जाव-अहे जगइं दालइत्ता छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिमलवणसमुद्दं समप्पेइ ।[1]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८४

५९९. —यावत्—(हरिसलिला महानदी) छप्पन हजार नदियों सहित जगती के नीचे होकर पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है ।

हरिकंतामहाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

हरिकान्ता महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

६००. तस्स णं हरिकंतप्पवायकुण्डस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं हरिकंता-महाणई पवूढा समाणी हरिवासं वासं एज्जेमाणी एज्जेमाणी,

विअडावइं वट्टवेयड्ढपव्वयं जोयणेणं असंपत्ता पच्चत्थाभिमुही आवत्तासमाणी हरिवासं दुहा विभयमाणी विभयमाणी,

छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८०

६००. उस हरिकान्तप्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से हरिकान्ता महानदी निकलकर हरिवर्ष क्षेत्र में बहती हुई,

विकटापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत से एक योजन दूर पश्चिमाभिमुख होकर हरिवर्षक्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती हुई,

और छप्पन हजार नदियों सहित जगती के नीचे होकर पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है ।

णरकंता महाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

नरकान्ता महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

६०१. जहा रोहिआ पुरत्थिमेणं गच्छइ ।[2]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

६०१. रोहिता नदी के समान (नरकान्ता महानदी भी) पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है ।

---

१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष० ४, सूत्र ८४ में संक्षिप्त वाचना की सूचना इस प्रकार है—"एवं जा चेव हरिकंताए वत्तव्वया सा चेव हरीए वि णेयव्वा" इस प्रकार जो हरिकंता (महानदी) का कथन है वही हरी (महानदी) का भी जानना चाहिए । ऊपर मूलपाठ आगमोदय समिति की प्रति से उद्धृत किया गया है—यह मूलपाठ अशुद्ध प्रतीत होता है । जम्बूद्वीप वक्ष० ४, सु० ८० में हरिकान्ता महानदी के मूल पाठ की रचना के अनुसार शुद्ध पाठ इस प्रकार होना चाहिए—"छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमं लवणसमुद्दं समप्पेइ····।"

पूरित मूलपाठ—

"तस्स णं हरिसलिलप्पवायकुण्डस्स दाहिणेणं हरिसलिला महाणई पवूढासमाणी हरिवासं एज्जेमाणी एज्जेमाणी;

गंधावइवट्टवेयड्ढपव्वयं दुहा विभयमाणी विभयमाणी;

छप्पण्णाए सलिला-सहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमं लवणसमुद्दं समप्पेइ । —जम्बु० वक्ख० ४, सु० ८४

२ जहा रोहियत्ति यथा—रोहिता 'पुरत्थिमेणं गच्छइ' त्ति पूर्वेण गच्छति समुद्रमितिशेषः । —टीका

णारीकंतामहाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

६०२. णवरमिमं णाणत्तं—गंधावइ वट्टवेयड्ढपव्वयं जोअणेणं असंपत्ता पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी अवसिट्ठं तं चेव ।[1]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ११०

नारीकान्ता महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

६०२. विशेष यह है कि—नारीकान्ता महानदी गन्धापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत से एक योजन दूर पश्चिमाभिमुख होकर....शेष पूर्ववत् है ।

सीआमहाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

६०३. ....[2]दाहिणेणं[3] सीआमहाणईपवूढासमाणी उत्तरकुरू एज्जेमाणी एज्जेमाणी, जमगपव्वए १. णीलवंत, २. उत्तरकुरू, ३-४. चंदेरावत, ५. मालवंतद्दहे अ दुहा विभयमाणी, विभयमाणी;

चउरासीए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी आपूरेमाणी,

भद्दसालवणं एज्जेमाणी एज्जेमाणी,

मंदरपव्वयं दोहिं जोयणेणं असंपत्ता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी,

अहे मालवंतवक्खारपव्वयं दालइ, दालइत्ता मंदरपव्वयस्स पुरत्थिमेणं पुव्वविदेहवासं दुहा विभयमाणी विभयमाणी,

एगमेगाओ चक्कवट्टिविजयाओ अट्ठावीसाए अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी आपूरेमाणी,

पंचहिं सलिलासयसहस्सेहिं बत्तिसाए य सलिलासहस्सेहिं समग्गा,

अहे विजयस्स दारस्स जगइं दालइ दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ । अवसिट्ठं तं चेवत्ति ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ११०

शीता महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

६०३. (उस शीताप्रपातकुण्ड के) दक्षिणी (तोरण से) शीता महानदी निकलकर उत्तरकुरु में वहती वहती यमकपर्वतों को तथा (१) नीलवन्त, (२) उत्तरकुरु, (३) चन्द्र, (४) ऐरावत और (५) माल्यवन्त—इन पाँचों द्रहों को दो भागों में विभक्त करती करती;

चौरासी हजार नदियों को मिलाती मिलाती;

भद्रशालवन में वहती वहती;

मेरु पर्वत से दो योजन की दूरी पर पूर्वाभिमुख होती हुई;

माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत के नीचे से होकर मेरुपर्वत से पूर्व में; पूर्व महाविदेह को दो भागों में विभक्त करती करती;

प्रत्येक चक्रवर्ती विजय की अठाईस अठाईस हजार नदियों को अपने में मिलाती मिलाती;

(सब मिलाकर) पाँच लाख वत्तीस हजार नदियों से परिपूर्ण (वह शीता नदी),

विजय द्वार के नीचे होकर पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है ।

सीओआमहाणईए लवणसमुद्दे समत्ति—

६०४. तस्स णं सीओअप्पवायकुण्डस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं सीओआमहाणई पवूढा समाणी देवकुरुं एज्जेमाणा एज्जेमाणा चित्तविचित्तकूडे पव्वए निसढ-देवकुरु-सूर-सुलस-विज्जुप्पमदहे अ दुहा विभयमाणी विभयमाणी;

चउरासीए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी आपूरेमाणी,

भद्दसालवणं एज्जेमाणी एज्जेमाणी,

मंदरं पव्वयं दोहिं जोयणेहिं असंपत्ता पच्चत्थाभिमुही आवत्तासमाणी,

शीतोदा महानदी का लवणसमुद्र में मिलना—

६०४. उस शीतोदा प्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से शीतोदा महानदी निकलकर देवकुरुक्षेत्र में वहती वहती चित्र-विचित्र कूट पर्वतों के तथा (१) निषध, (२) देवकुरु, (३) सूर्य, (४) सुलस और (५) विद्युत्प्रभद्रह को दो भागों में विभक्त करती करती;

चौरासी हजार नदियों को अपने में मिलाती मिलाती;

भद्रशाल भवन में वहती वहती;

मेरुपर्वत से दो योजन की दूरी पर पश्चिमाभिमुख होती हुई,

---

१ अवशिष्टं सर्वं तदेव हरिकान्ता सलिलावद्भाव्यं, तद्यथा—"रम्मगवासं दुहा विभयमाणी विभयमाणी छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहेजगइं दालइ, दालइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ त्ति । टीका—

२ '....तस्स णं सीअप्पवायकुण्डस्स....' इतना पाठ जोड़ देने पर पाठपूर्ण हो जाता है ।

३ आगमोदय समिति की प्रति में 'दाहिणेणं' के आगे 'तोरणेणं' पाठ नहीं है किन्तु 'तोरणेणं' पाठ होना चाहिए, क्योंकि जम्बूद्वीप वक्ष० ४, सु० ८४ में शीतोदानदी सम्बन्धी मूलपाठ में 'उत्तरिल्लेणं' के बाद 'तोरणेणं' पाठ है, अतः यहाँ भी 'तोरणेणं' पाठ होना चाहिए ।

अहे विज्जुप्पभं वक्खारपव्वयं दारइत्ता,

मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं अवरविदेहं वासं दुहा विभयमाणी विभयमाणी,

एगमेगाओ चक्कवट्टि विजयाओ अट्ठावीसाए अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी आपूरेमाणी,

पर्चाहं सलिलासयसहस्सेहिं दुत्तीसाए अ सलिलासहस्सेहिं समग्गा,

अहे जयंतस्स दारस्स जगइं दालइत्ता पच्चत्थिमेणं लवण-समुद्दं समप्पेति,[1] —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८४

विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के नीचे से होकर,

मेरुपर्वत से पश्चिमकी ओर अपरविदेह क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती करती;

प्रत्येक चक्रवर्ती विजय की अठाईस-अठाईस हजार नदियों को अपने में मिलाती मिलाती;

(सब मिलाकर) पाँच लाख बत्तीस हजार नदियों से परिपूर्ण (वह शीतोदा नदी),

जयन्तद्वार के नीचे होकर पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है।

जंबुद्दीवे एगे विउत्तरे तित्थसए—

६०५. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भरहे वासे कति तित्था पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तओ तित्था पण्णत्ता, तं जहा—१. मागहे, २. वरदामे, ३. पभासे ।[2]

जम्बूद्वीप में एक सौ दो तीर्थ—

६०५. प्र० भगवन् ! जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप के भरतक्षेत्र में कितने तीर्थ कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! तीन तीर्थ कहे गये हैं यथा—(१) मागध, (२) वरदाम, (३) प्रभास ।

---

१ महाविदेह क्षेत्र के बत्तीस विजयों में प्रवाहित होने वाली बारह अन्तर नदियों में से छह अन्तर नदियाँ सीता महानदी और छह अन्तर नदियाँ सीतोदा महानदी में मिलती हैं ।
सीता और सीतोदा नदियाँ लवणसमुद्र में मिलती हैं ।

२ (क) ठाणं ३, उ० १, सु० १४२
धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीप के तीर्थों की गणना उनके वर्णन में देखें ।
(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार ३, सूत्र ४४-४५ और ४६ में भरत चक्रवर्ती की षट्खण्ड विजय यात्रा के प्रारम्भ में मागध वरदाम और प्रभास—इन तीनों तीर्थो का संक्षिप्त परिचय मिलता है अतः इनसे सम्बन्धित कुछ वाक्य यहाँ उद्धृत किये गये हैं ।
....गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूले णं पुरत्थिमं दिसं मागहतित्थाभिमुहं पयातं पासइ । —जम्बु० वक्ख० ३, सु० ४४
'जेणेव मागहतित्थे तेणेव उवागच्छइ'
'मागहतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ'
'मागहतित्थोदगं च गेण्हइ'
'मागहतित्थकुमारं देवं सक्कारेइ'
'मागहतित्थेणं लवणसमुद्दाओ पच्चुत्तरइ' —जम्बु० वक्ख० सु, सु० ४५
तए णं भरहेराया तं दिव्व चक्करयणं, दाहिण-पच्चत्थिम-वरदामतित्थाभिमुहं पयातं चाविपासइ....
....'जेणेव वरदामतित्थे तेणेव उवागच्छइ' उवागच्छित्ता वरदामतित्थस्स अदूरसामंते दुवालस जोयणायामं, नवजोयणवित्थिण्णं विजयखंधावार निवेसं करेइ ।
'वरदामतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहियाए महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए'
'तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं—जाव—उत्तरपच्चत्थिमं दिसिं तहेव—जाव—पच्छिमदिसाभिमुहे पभासतित्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहेइ'
'पभासतित्थोदगं च गिण्हइ २. त्ता—जाव—पच्चत्थिमेणं पभासतित्थमेराए....
'तएणं से दिव्वे चक्करयणे पभासतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिआए महामहिमाए णिवत्ताए समाणीए....। —जम्बु० वक्ख० ३, सु० ४६

यह वर्णन केवल भरतक्षेत्र से सम्बन्धित है ।

प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे एरवएवासे कति तित्था पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तओ तित्था पण्णत्ता, तं जहा—१. मागहे, २. वरदामे, ३. पभासे।

प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे महाविदेहे वासे एगमेगे चक्कवट्टिविजए कति तित्था पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तओ तित्था पण्णत्ता, तं जहा—१. मागहे, २. वरदामे, ३. पभासे[1]।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे एगे विउत्तरे तित्थसए भवंतीतिमक्खायंति।

—जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप के ऐरवतक्षेत्र में कितने तीर्थ कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! तीन तीर्थ कहे गये हैं, यथा—(१) मागध, (२) वरदाम, (३) प्रभास।

प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप के महाविदेह क्षेत्र के प्रत्येक चक्रवर्ती विजय में कितने तीर्थ कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! तीन तीर्थ कहे गये हैं, यथा—(१) मागध (२) वरदाम, (३) प्रभास।

इस प्रकार सब मिलाकर जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप में एक सौ दो तीर्थ हैं—ऐसा कहा गया है।

अन्तरदीवगाणं परूवणा—

एगोरुयदीवाइणं ठाणप्पमाणाई—

६०६. प०—कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगुरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते।

तिन्नि जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं,

णव एगूणपण्णजोयणसए किंचिविसेसेणं परिक्खेवेणं, एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं च वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

—जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. १०९

अंतरद्वीपों की प्ररूपणा—

एकोरुकद्वीप के स्थान-प्रमाणादि—

६०६. प्र०—हे भदन्त ! दक्षिणदिशा के—दाक्षिणात्य एकोरुक मनुष्यों का एकोरुकद्वीप नाम का द्वीप कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में क्षुद्रहिमवन्त वर्षधर पर्वत के अन्तिम उत्तरपूर्वान्त से लवणसमुद्र में तीन सौ योजन जाने पर दक्षिणदिशा के एकोरुक वाले मनुष्यों का एकोरुकद्वीप नाम का द्वीप कहा गया है।

वह तीन सौ योजन लम्बा-चौड़ा है।

नव सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक उसकी परिधि है।

एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से वह चारों ओर घिरा हुआ है।

पउमवरवेइयाए वणसंडस्स य पमाणं—

६०७. सा णं पउमवरवेइया अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं, एगूरुयदीवं सव्वओ समंता परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते,

पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का प्रमाण—

६०७. वह पद्मवरवेदिका आठ योजन ऊँची और पांच सौ धनुप चौड़ी है। उससे एकोरुकद्वीप चारों ओर से घिरा हुआ कहा गया है।

उस पद्मवरवेदिका का यह और इस प्रकार वर्णन कहा गया है।

---

१ जम्बूद्वीप में १०२ तीर्थों की गणना इस प्रकार है—

भरत और ऐरवत क्षेत्र में तीन-तीन तथा महाविदेह के ३२ विजयों में (प्रत्येक में) तीन तीन—इस प्रकार १०२ तीर्थ होते हैं। इनके तीर्थ स्थल इस प्रकार हैं—

भरत और ऐरवत के ६ तीर्थ लवणसमुद्र में हैं। महाविदेह की कच्छादि आठ विजयों के और वत्सादि आठ विजयों के (अर्थात् सोलह विजयों के) ४८ तीर्थ सीतानदी में हैं।

तं जहा—वइरामया निम्मा एवं वेइयावण्णओ भाणियव्वो।[1]

सा णं पउमवरवेइया एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता।

से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं, वेइयासमेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते,

से णं वणसडे किण्हे किण्होभासे एवं वणसंडवण्णओ भाणियव्वो।[2]

तणाण य वण्ण-गंध-फासो सद्दो तणाणं वावीओ उप्पायपव्वया पुढविसिलापट्टगा य भाणियव्वा-जाव-तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति-जाव-विहरंति।

—जीवा. पडि. ३, सु. १०९-११०

यथा—उसकी वज्रमय नींवें—आधारभूमियाँ हैं इस प्रका वेदिका का वर्णन कहना चाहिए।

वह पद्मवरवेदिका एक वनखण्ड से चारों ओर घि हुई है।

वह वनखण्ड कुछ कम दो योजन चारों ओर चौड़ा है। वेदिका के समान उस वनखण्ड की परिधि कही गई है।

वह वनखण्ड सघन वृक्ष समूह से श्याम एवं श्याम जैस प्रतीत हो रहा है।

तृणों के वर्ण, गंध और स्पर्श तथा तृणों के शब्द, वापिकाये उत्पात पर्वत, पृथ्वीशिला पट कहने चाहिए—यावत्—वहाँ अने वाणव्यन्तर देव-देवियाँ बैठते हैं—यावत्—विहरण करते हैं।

एगोरुयदीवे वणमाला—

६०८. एगोरुयदीवस्स णं दीवस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते.

से जहाणामए आलिंगपुक्खरेति वा,

एवं सयणिज्जे भाणितव्वे-जाव-पुढविसिलापट्टगंसि तत्थ णं बहवे एगुरुयदीवया मणुस्सा य, मणुस्सीओ य आसयंति-जाव-विहरंति।

एगुरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे उद्दालका कोद्दालका कतमाला णयमाला णट्टमाला सिंगमाला संखमाला दंतमाला सेलमालगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!

कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला मूलमंतो कंदमंतो-जाव-बीयमंतो पत्तेहि य पुप्फेहि य अच्छण्णपडिच्छण्णा सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा उवसोहेमाणा चिट्ठन्ति।

एक्कोरुयदीवे णं दीवे रुक्खा बहवे हेरुयालवणा भेरुयालवणा मेरुयालवणा सेरुयालवणा सालवणा सरलवणा सत्तवण्णवणा पूतफलिवणा खज्जूरिवणा णालिएरिवणा कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला-जाव-चिट्ठन्ति।

एगुरुयदीवे णं तत्थ तत्थ बहवे तिलया लवया नग्गोधा -जाव-रायरुक्खा णंदिरुक्खा कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला -जाव-चिट्ठन्ति।

एगुरुयदीवे णं तत्थ बहूओ पउमलयाओ-जाव-सामलयाओ निच्चं कुसुमिताओ, एवं लयावण्णओ-जाव-[3]पडिरूवाओ।

एकोरुकद्वीप में वनमाला—

६०८. एकोरुकद्वीप में सर्वथा सम एवं रमणीय भूभाग कहा गया है।

जिस प्रकार मृदंगतल है।

इसी प्रकार शय्या कहनी चाहिए—यावत्—पृथ्वीशिलापट पर अनेक एकोरुकद्वीप के मनुष्य और स्त्रियाँ बैठते हैं—यावत् विहरण करते हैं।

हे आयुष्मान् श्रमण! एकोरुकद्वीप में अनेक जगह अनेक उद्दालक, कोद्दालक, कृतमाल, नत्तमाल, नृत्यमाल, शृङ्गमाल, शंखमाल, दंतमाल, शैलमाल नाम के वृक्षों का समूह कहा गया है।

कुश, विकुश आदि निकालकर जिन वृक्षों के मूल शुद्ध किए गये हैं ऐसे शुद्ध मूल वाले कंद वाले—यावत्—बीज वाले, वृक्ष पत्र एवं पुष्पों से आच्छादित तथा शोभा से अत्यन्त सुशोभित हैं।

एकोरुकद्वीप में हेरुताल-भेरुताल, मेरुताल, सेरुताल आदि अनेक प्रकार के तालवृक्षों के वन हैं। साल, सरल, सप्तवर्ण, पूतफल, खजूर, नालियर आदि वृक्षों के अनेक वन हैं। सभी वृक्षों के मूल, कुश, विकुश रहित हैं, अतएव शुद्ध हैं।

एकोरुकद्वीप में अनेक जगह अनेक तिलक, लवक, न्यग्रोध —यावत्—राजवृक्ष, नंदिवृक्ष हैं। कुश विकुश रहित उनके मूल शुद्ध हैं।

एकोरुक द्वीप में अनेक जगह अनेक पद्मलताएँ—यावत्—सामलताएँ सदा पुष्पयुक्त हैं, इस प्रकार लता-वर्णक कहना—चाहिए—यावत्—मनोहर है।

१ जहा रायपसेणईए तहा भाणियव्वा।

२ एवं जहा रायपसेणइय वणसंडवण्णओ तहा निरवसेसं भाणियव्वं।

३ जहा उववाइए।

एकोरुयदीवे णं तत्थ तत्थ बहवे सेरियागुम्मा-जाव-महाजातिगुम्मा, ते णं गुम्मा दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमंति विधूयग्गसाहा जेण वायविधूयग्गसाला।

एगुरुयदीवस्स बहुसमरमणिज्जभूमिभागं मुक्कपुप्फपुञ्जोवयारकलियं करेंति।

एकोरुयदीवे णं तत्थ तत्थ बहूओ वणराईओ पण्णत्ताओ, ताओ णं वणराईतो किण्हातो किण्होभासाओ-जाव-रम्माओ, महामेहणिगुरुबभूताओ-जाव-महंति गंधद्धणिं मुयंतीओ पासादीयाओ-जाव-पडिरूवाओ।

—जीवा. पडि. ३, सु. १११

एकोरुकद्वीप में अनेक जगह अनेक सेरिकागुल्म—**यावत्**—महाजाइगुल्म हैं वे सभी गुल्म पाँच वर्ण के पुष्पों से सुशोभित हैं और उनकी शाखायें वायु से हिलती हुई है।

एकोरुकद्वीप के सभी सर्वथा सम एवं रमणीय भूभाग सदा खिले हुए पुष्पों से सुशोभित हैं।

एकोरुकद्वीप में अनेक जगह अनेक वनराजियाँ हैं।

वे सभी वनराजियाँ अनेकानेक वृक्षों से सघन एवं श्याम हैं। श्याम ही भासित होती हैं—**यावत्**—रमणीय हैं। वे श्याम मेघ घटाएँ जैसी दिखाई देती हैं—**यावत्**—अति उग्र गंध फैलाती रहती हैं अतएव प्रसन्नता पैदा करने वाली है—**यावत्**—मनोहर हैं।

एगुरुयदीवे दसविहादुमगणा—

एकोरुकद्वीप में दस प्रकार के वृक्षों के समूह—

६०९. एगुरुयदीवे तत्थ तत्थ बहवे मत्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!

जहा से चंदप्पभ-मणिसिलाग-वरसीधु-पवरवारुणि-सुजात-फल-पत्त-पुप्फचोयणिज्जा, संसारबहुदव्वजुत्तसंभारकालसंधयासवा।

महुमेरग—रिट्ठाभ[1]—दुद्धजातीय[2]—पसन्नतल्लग—सताउ[3], खज्जूर-मुद्दियासार-काविसायण-सुपक्कखोयरस-वरसुरा-वण्ण-रस-गंध-फरिसजुत्तबलवीरिय-परिणामा, मज्जविहित्थबहुप्पगारा।

तहेव ते मत्तंगयावि दुमगणा, अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए मज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा वीसंदंति।

कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला-जाव-चिट्ठन्ति।

६०९. हे आयुष्मान् श्रमण! एकोरुक द्वीप के अनेक स्थानों में 'मत्तंग' नाम के अनेक वृक्षसमूह कहे गये हैं।

जिस प्रकार (१) चन्द्रप्रभ, (२) मणिसिलाक, (३) श्रेष्ठ सिधु, (४) उत्तम वारुणी, (५) सुजात (परिपक्व) (६) पत्र, (७) पुष्प, (८) फल के साररूप, (९) अनेक प्रकार कल्कों के संयोजन से सर्जित आसव।

(१) मधुमेरकसार, (२) रिष्टाभसार, (३) दुग्धजातिसार, (४) तल्लकसार, (५) शतायुसार, (६) खजूरसार, (७) मृद्वीका—द्राक्षासार, (८) कपिशायन, (९) सुपक्व, इक्षुरस निष्पन्न सुरा, श्रेष्ठ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श युक्त, बलवीर्य संवर्धक, अनेक प्रकार के मद्यों का विधान है।

उसी प्रकार मत्तंग नामक द्रुमगण भी अनेक प्रकार से स्वभावसिद्ध मद्य विधान युक्त फलों से पूर्ण विकसित हैं।

उन वृक्षों के मूल कुश=डाभ, विकुश=बल्वजघास रहित हैं अतएव विशुद्ध हैं।

६१०. एक्कोरुए दीवे तत्थ तत्थ बहवो भिंगंगया णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!

जहा से वारग-घड-करग-कलस-कक्करि-पायंकंचणि-उदकवद्धणि-सुपविट्ठर-पारी-चसक-भिंगार-करोडि-सरग-थरग-पत्ती-

६१०. हे आयुष्मान् श्रमण! एकोरुकद्वीप के अनेक स्थानों में 'भृतांग' नाम के अनेक वृक्षों के समूह कहे गये हैं।

जिस प्रकार (१) वारक=मांगल्यघट, (२) घट=घड़ा, (३) करक, (४) कलश, (५) कर्करी, (६) पादकंचनिका, (७) उदकवर्धनी, (८) सुप्रतिष्ठक—पुष्पपात्र, (९) पारी—घी का बर्तन, (१०) चसक=सुरापान पात्र, (११) भृंगार=भरणी, (१२) करोड़ी=घिलोडी, (१३) सरक=सरवो या सिकोरा,

---

१ जम्बूफलकलिकाभा।

२ आस्वादतः क्षीरसदृशी।

३ शतायुर्नाम या सुराशतवारं शोधितापि स्वरूपं न जहाति।

थाल-नल्लक-चपलित-अवपद-दगवारक-विचित्तवट्टक-मणिवट्टक सुत्ति-चारू-पिणया-कंचण-मणि-रयण-भत्तिविचित्ता, भायण-विधीए बहुप्पगारा ।

(१४) थरग, (१५) पत्री, (१६) थाल, (१७) न्यस्तक कवलित, (१८) अवय, (१९) दगवारक=पानी का घड़ा, (२०) सचित्र वर्तन, (२१) मणिजटित वर्तन, (२२) सीप का वर्तन, (२३) चरु, (२४) पीनक—अफीम लेने का पात्र, (२५) सचित्र स्वर्ण-पात्र, (२६) सचित्र मणिपात्र, (२७) सचित्र रत्नजटिल पात्र आदि अनेक प्रकार के पात्र होते हैं ।

तहेव ते भिगंगयावि दुमगणा, अणेगबहुविविहवीससाए, परिणताए भाजणविधीए उववेया फलेंहि पुन्नाविव विसट्टन्ति,

उसी प्रकार 'भृतांग' नाम के वृक्ष समूह भी अनेक स्वभाव-सिद्ध पात्राकार युक्त फलों से पूर्ण विकसित हैं,

कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला-जाव-चिट्ठन्ति ।

उन वृक्षों के मूल कुश=डाभ, विकुश=वल्वजघास रहित हैं अतएव विशुद्ध हैं ।

६११. एगोरुगदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे तुडियंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो !

जहा से आलिंग[1]-मुयंग[2]-पणव[3]-पडह-दद्दर[4]-करडि-डिंडिम[5] भंभा[6]-होरंभ[7]-कण्णिया-खरमुहि[8]-मुगुन्द[9]-संखिय[10]—परिली—वच्चग[11]-परिवाइणि-वंस-वेणु-वीणा-सुघोस—विवंचि—महति—कच्छभि-रिगसिगा[12]-तलताल[13]-कंसताल-सुसंपउत्ता, आतोज्जविधिणिउणगंधव्वसमयकुसलेंहि फंदिया, तिट्ठाणसुद्धा,

६११. हे आयुष्मान् श्रमण ! एकोरुकद्वीप के अनेक स्थानों में 'त्रुटितांग' नाम के अनेक वृक्षों के समूह कहे गये हैं ।

जिस प्रकार (१) आलिग—मुरज, (२) मृदंग, (३) पणव, (४) पटह, (५) दर्दर, (६) करटी, (७) डिंडिम, (८) भंभा, (९) होरंभ, (१०) कणिका, (११) खरमुखी, (१२) मुकुन्द, (१३) शंखिका, (१४) परिली, (१५) वच्चक, (१६) परिवादिनी, (१७) वंस, (१८) वेणुवीणा, (१९) सुघोपा, (२०) विपंची, (२१) महति, (२२) कच्छभी, (२३) रिगिसिगिका, (२४) तलताल, (२५) कांस्यताल आदि विविध वाद्यों के बजाने में निपुण संगीतशास्त्रकुशलों द्वारा बजाये गये त्रिस्थान (आदि-मध्य और अवसान स्थानों से) शुद्ध वाद्य होते हैं,

तहेव ते तुडियंगयावि दुमगणा, अणेगबहुविविधवीससा-परिणामाए तत-वितत-घण-सुसिराए चउव्विहाए आतोज्ज-विहीए उववेया फलेंहि पुण्णा विसट्टन्ति,

उसी प्रकार त्रुटितांग नाम के द्रुमगण भी अनेक प्रकार के स्वभावसिद्ध वाद्य विधानों से युक्त फलों से पूर्ण विकसित हैं ।

कुस-विकुस-विसुद्धरुक्खमूला-जाव-चिट्ठन्ति ।

उन वृक्षों के मूल कुश—डाभ, विकुश—वल्वजघास रहित हैं अतएव शुद्ध हैं ।

६१२. एगोरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे दीवसिहा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो !

६१२. हे आयुष्मन् श्रमण ! एकोरुकद्वीप के अनेक स्थानों में 'दीपशिखा' नाम के अनेक वृक्षों का समूह कहा गया है ।

---

१ 'आलिंगोनाम' यो वादकेन आलिंग्य वाद्यते, 'मुरज' इति ।
२ 'मृगङ्गो' लघुमर्दल. ।
३ 'पणवः' भाण्डपटहः ।
४ 'दर्द्दरिको' यस्य चतुर्भिश्चरणैरवस्थानं भुवि स गोधाचर्मावनद्धो वाद्य विशेषः ।
५ 'डिंडिमः' प्रथम प्रस्तावना सूचकः पणवविशेषः ।
६ भंभा=ढक्का । ७ होरंभा=महाढक्का । ८ खरमुही=काहला ।
९ 'मुकुन्द'—मुरजविशेषो, यो अतिलीनं प्रायो वाद्यते ।
१० शंखिका लघुशंखरूपा । ११ पिरली-वच्चको, तृणरूपवाद्यविशेषो ।
१२ रिगिसिगिका—घर्ष्यमाण वादित्र विशेष, देशिभाषायां—'रणसिंगा' इति प्रसिद्धः ।
१३ तलताल—तलं हस्तपुटं—यद्यपि हस्तपुटं न कश्चित्तूर्य विशेषस्तथापि तदुत्थित शब्दप्रतिकृतिः शब्दो लक्ष्यते ।

जहा से संझाविरागसमए नवणिहिपतिणो दीविया चक्कवालविंदे पभूयवट्टिपलित्ताणेहिं धणिउज्जालियतिमिरमद्दए, कणगणिगरकुसुमितपालियातयवणप्पगासो कंचणमणिरयण-विमल-महरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाहिं दीवियाहिं सहसा पज्जलिऊसविय-णिद्धतेय-दिप्पंत-विमलगहगण--समप्पहाहिं वितिमिरकर-सूरपसरिउल्लोयचिल्लियाहिं जावुज्जलपहसियाभिरामाहिं सोभेमाणा,

जिस प्रकार संध्या समय की लालिमा, चक्रवर्ती के मणि-रत्न जटित महर्घ्य स्वर्णमय विचित्र दण्डदीपिका चक्रवाल की स्नेहसिक्त (तेल-तृप्त) अधिक बढ़ी हुई एक साथ प्रज्वलित अनेक वत्तियों का अन्धकार नाशक अति उज्ज्वल प्रकाश है, स्वर्णमय पारिजात पुष्प-वन का प्रकाश, देदीप्यमान ग्रहगण की विमल प्रभा, और तिमिरनाशक सूर्य की सुशोभित एवं मनोहर किरणों का प्रकाश होता है—

तहेव ते दीवसिहावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणामाए उज्जोयविधीए उववेदा फलेहिं पुण्णा विसट्टन्ति,

—उसी प्रकार दीपशिखा नामक द्रुमगण भी अनेक प्रकार के स्वभावसिद्ध प्रकाशयुक्त फलों से परिपूर्ण विकसित हैं।

कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला-जाव-चिट्ठन्ति।

उन वृक्षों के मूल कुश—डाभ, विकुश—वल्वजघास रहित हैं अतएव शुद्ध हैं!

६१३. एगुरुयदीवे तत्थ तत्थ बहवे जोतिसिहा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!

६१३. हे आयुष्मान् श्रमण! एकोरुक द्वीप के अनेक स्थानों में 'ज्योतिशिखा' नाम के अनेक वृक्ष-समूह कहे गये हैं।

जहा से अचिरुग्गयसरय-सूरमंडल-पडंत-उक्कासहस्स-दिप्पंत-विज्जुज्जालहुयवहनिद्धूम-जलियनिद्धंतधोय-तत्ततव-णिज्ज-किंसुयासोयजावासुयणकुसुम-विमउलियपुञ्जमणिरयण-किरणजच्चहिंगुलुयणिगररुवाइरेगरूवा,

जिस प्रकार शरदऋतु के उदीयमान सूर्य का प्रकाश, उल्का सहस्र का उज्ज्वल तेज, बिजलियों की चमक, प्रज्वलित निर्धूम अग्नि की ज्वालायें, तपाये हुए स्वर्ण का वर्ण, विकसित किंशुक एवं जवाकुसुम पुष्पसमूह की प्रभा, मणि-रत्नों का किरण पुंज, और हिंगुल की राशि होती है—

तहेव ते जोतिसिहावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससा-परिणयाए उज्जोयविहीए उववेदा सुहलेस्सा मंदलेस्सा मंदायवलेस्सा कूडाय इव ठाणठिया अन्नमन्नसमोगाढाहिं लेस्साहिं साए पभाए सपदेसे सव्वओ समंता ओभासंति उज्जोवेंति पभासेंति,

उसी प्रकार ज्योतिशिखा नाम के द्रुमगण भी अनेक प्रकार के स्वभावसिद्ध शुभ, मंद, मंदातप प्रकाशों से कूट—शिखर के समान एक (अपने-अपने) स्थान पर स्थित; उन सभी वृक्षों के प्रकाश एक दूसरे से समन्वित होकर अपने-अपने प्रदेश में चारों ओर अवभासित; उद्योतित एवं प्रभासित होते हैं।

कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला-जाव-चिट्ठन्ति।

उन वृक्षों के मूल कुश=डाभ, विकुश=वल्वजघास रहित हैं अतएव विशुद्ध हैं।

६१४. एगुरुयदीवे तत्थ तत्थ बहवे चित्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!

६१४. हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुकद्वीप के अनेक स्थानों में 'चित्रांग' नाम के वृक्ष-समूह कहे गये हैं।

जहा से पेच्छाघरे विचित्ते रम्मे वरकुसुमदाममालुज्जले, भासंतमुक्कपुप्फपुञ्जोवयारकलिए, विरल्लिविचित्तमल्लसिरि-दाममल्लसिरिसमुदयप्पगब्भे गंथिम-वेढिम-पूरिम-संघाइमेण मल्लेण छेयसिप्पियं विभारतिएण सव्वतो चेव समणुबद्धे पविरललवंतविप्पइट्ठेहिं पंचवण्णेहिं कुसुमदामेहिं सोभमाणेहिं सोभमाणे वणमालतग्गए चेव दिप्पमाणे,

जिस प्रकार प्रेक्षागृह=नाट्यशाला कुशल शिल्पियों द्वारा अनेक प्रकार के चित्रों से रमणीय, श्रेष्ठ पुष्पमालाओं से देदीप्यमान, विकसित मनोहर विरल-विचित्र पुष्पमालाओं से सुशोभित किया जाता है। ग्रन्थिम=गूँथकर, वेष्टिम=पुष्प पर पुष्प लगाकर शिखर सदृश या मुकुट सदृश गूँथकर, पूरिम=लघुछिद्र में पुष्प पूरकर, संघातिम=एक पुष्प की नाल में दूसरे पुष्प की नाल जोड़कर बनाई हुई पांच वर्ण की पुष्पमालायें कहीं-कहीं अल्प अन्तर पर कहीं-कहीं अधिक अन्तर पर लगाने से सज्जित होता है तथा उसके द्वारा वनमाला=वन्दन मालाओं से देदीप्यमान होता है।

तहेव ते चित्तंगयावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए मल्लविहीए उववेया,

उसी प्रकार चित्रांग नाम के द्रुमगण भी स्वभाव सिद्ध माल्य विधियों से युक्त होते हैं।

कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला-जाव-चिट्ठन्ति ।

उन वृक्षों के मूल कुश—डाम, विकुश—वल्वजघास रहित हैं अतएव शुद्ध हैं ।

६१५. एगुरुयदीवे तत्थ तत्थ वहवे चित्तरसा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो !

जहा से सुगंधवर-कलमसालि-विसिट्ठ-णिरुवहत-दुद्धरद्धे, सारयघय-गुड-खंड-महुमेलिए, अत्तिरसे परमण्णे होज्ज, उत्तम-वण्णगंधमंते,

रण्णो जहा वा चक्कवट्टिस्स होज्ज णिउणेहिं सूतपुरिसेहिं सज्जिएहिं चउकप्पसेअसित्ते इव ओदणे, कलमसालिणिज्जति-एवि, विपक्क सवप्फ-मिउ-वसय-सगालसित्थे, अणेगसालण-ग-संजुत्ते,

अहवा पडिपुण्ण-दव्वुवक्खडेसु सक्कए वण्ण-गंध-रस फरिस-जुत्त-वलवीरियपरिणामे, इंदियवलपुट्ठिवद्धणे, खुप्पिवासमहणे पहाणंगुलकढिय-खंड-मच्छंडिय-उवणीए पमोयगे सण्हसमिय-गब्भे हवेज्ज परमइट्ठंगसंजुत्ते,

तहेव ते चित्तरसावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरि-णयाए भोजणविहीए उववेदा,

कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला-जाव-चिट्ठन्ति ।

६१५. हे आयुष्मान् श्रमण ! एकोरुकद्वीप के अनेक स्थलों में 'चित्ररस' नाम के अनेक वृक्षों के समूह कहे गये हैं ।

जिस प्रकार अविक्रित विशिष्ट दूध में रांधे हुए और शरद् ऋतु के घृत, गुड़, खांड या मधु से मिश्रित श्रेष्ठ सुगन्धित चावल । उत्तम वर्ण, गंध, रस युक्त परमान्न = क्षीर ।

अथवा—चक्रवर्ती के पाकविद्या विशारद रसोइए के बनाए हुए चतुष्कल्प से सिक्त कलमशाली । भाप से पकाने पर कोमल एवं फूली हुई, अनेक प्रकार के पुष्प-फल संयुक्त चावल की कणिका ।

अथवा—एला आदि समस्त द्रव्यों से संस्कारित, श्रेष्ठ वर्ण, गंध, रस-स्पर्श युक्त, वल-वीर्य रूप में परिणमित, चक्षु आदि सभी इन्द्रियों को पुष्ट करने वाले तथा शक्ति बढ़ाने वाले, क्षुधा, तृषा, शामक, पक्व एवं पवित्र गुड़, खांड या मिश्री-मिश्रित, तीन वार छने हुए आटे से वनाये हुए, अत्यन्त प्रिय-उपयोगी द्रव्यों से संयुक्त मोदक होते हैं—

उसी प्रकार चित्ररस द्रुमगण भी अनेक प्रकार की स्वभाव सिद्ध भोजन विधि से युक्त होते हैं ।

उन वृक्षों के मूल कुश = डाभ, विकुश = वल्वजघास रहित हैं अतएव विशुद्ध हैं ।

६१६. एगुरुयदीवे तत्थ तत्थ वहवे मणियंगा नाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो ।

जहा से हार-ऽद्धहार-वट्टणग-मउड-कुण्डल-वामुत्तग-हेम-जाल-मणिजाल–कणगजालग–सुत्तग–उच्चियकडगा–खुडिय–एकावलि-कंठसुत्त-मंगरिम-उरत्थ-गेवेज्ज–सोणिसुत्तग–चूला–मणि-कणगतिलग-फुल्ल-सिद्धत्थय–कण्णवालि-ससि-सूर-उसभ-चक्कगतलभंग-तुडिय-हत्थमालक-वलक्ख-दीणारमालिता, चंद-सूर-मालिता, हरिसय-केयूर-वलय-पालंब-अंगुलेज्जग-कंची-मेहला कलावपयरग-पायजाल-घंटिय-खिखिणि-रयणोरुजाल-त्थिगियवरणेउर-चलणमालिया, कणगणिगरमालिया, कंचण-मणिरयणभत्तिचित्ता, भूसणविधी बहुप्पगारा,

६१६. हे आयुष्मान् श्रमण ! एकोरुकद्वीप के अनेक स्थानों में 'मणिअंग' नाम के अनेक वृक्षों के समूह कहे गये हैं ।

जिस प्रकार (१) हार—अठारह लड़ियों वाला, (२) अर्ध-हार—नौ लड़ियों वाला, (३) वेष्टनक—कानों के झेले, (४) मुकुट, (५) कुण्डल, (६) वामोत्तक, (७) हेमजाल, (८) मणिजाल, (९) कनकजाल, (१०) सुवर्णसूत्र, (११) उचित-कटक, (१२) क्षुद्रक, (१३) एकावलि—कण्ठसूत्र, (१४) मकरा-कारहार, (१५) ग्रैवेयक = गले में पहनने का आभरण, (१६) कटिसूत्र, (१७) चूड़ामणि, (१८) स्वर्णतिलक, (१९) पुष्पक, (२०) सिद्धार्थक, (२१) कर्णवालि, (२२) चन्द्रचक्र, (२३) सूर्य चक्र, (२४) वृषभ चक्र, (२५) तलभंग, (२६) त्रुटित = भुजवंध, (२७) हस्तमालक, (२८) वलक्ष, (२९) दीनारमालक, (३०) चन्द्रमालक, (३१) सूर्यमालक, (३२) हर्षक, (३३) केयूर, (३४) वलय = कंकण, (३५) प्रालम्ब = लम्बी शृङ्खला अथवा झूमका, (३६) अंगुलेयक = अंगुठी, (३७) कांचीमेखला = स्वर्णमयकटिसूत्र, (३८) कलापप्रतरक, (३९) पायल, (४०) घण्टिका, (४१) खिंखिणी = छोटी घंटिका, (४२) रत्नोरुजाल, (४३) क्षुद्रिका, (४४) श्रेष्ठनूपुर, (४५) चरणमालिका, (४६) कनकनिकर-मालिका = पैरों में पहनने के सोने के कड़े, स्वर्ण-मणि-रत्नजड़ित-चित्रयुक्त अनेक प्रकार के आभूषण होते हैं ।

तहेव ते मणियंगावि दुमगणा अणेगवहुविविहवीससापरिणताए भूसणविहीए उववेया।

उसी प्रकार 'मणिअंग' नाम के द्रुमगण भी अनेक प्रकार की स्वभावसिद्ध भूषण विधि से युक्त होते हैं।

कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला-जाव-चिट्ठन्ति।

उन वृक्षों के मूल, कुश—डाभ, विकुश—वल्वजघास रहित होते हैं अतएव शुद्ध होते हैं।

६१७. एगुरुयए दीवे तत्थ तत्थ वहवे गेहागारा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!

जहा से पागार-ऽट्टालग-चरिय-दार-गोपुर-पासायाकासतल-मंडव-एगसाल-बिसालग-तिसालग-चउरंसचउसाल गब्भघर-मोहणघर-वलभिघर-चित्तसाल-मालय-भत्तिघर-वट्ट—तंस-चतुरंसणंदियावत्तसंठियायतपंडुरतलमुण्डमालहम्मिय,

६१७. हे आयुष्मान् श्रमण! एकोरुकद्वीप के अनेक स्थानों में 'गृहाकार' नाम के अनेक वृक्षों के समूह कहे गये हैं।

जिस प्रकार (१) प्राकार—नगर की चार दिवारी, (२) अट्टालक—प्राकार पर बना हुआ एक मकान, (३) चरिका—प्राकार पर आठ हाथ चौड़ा मार्ग, (४) गोपुर—नगर का द्वार, (५) प्रासाद—राजमहल, (६) आकाशतल—चटाइयों से बनी हुई कुटिया, (७) मण्डप—छाया के लिए कपड़े का बना हुआ तम्बू, (८) एगशाल-भवन, (९) द्वि-शाल-भवन, (१०) त्रि-शाल भवन, (११) चतुश्शाल-भवन, (१२) गर्भगृह=बीच का घर, (१३) मोहनघर=सुरतगृह, (१४) वल्लभी=वल्लियों के आधार पर बना हुआ घर, (१५) चित्रशाला, (१६) मालकगृह=मकान की छत पर बना घर, (१७) भक्तिगृह=अलग अलग घर, (१८) वृत्तगृह=गोल, (१९) त्रिकोणघर, (२०) चतुष्कोणघर, (२१) नन्द्यावर्तसंस्थितघर, (२२) पंडुरतल-सुधामयतल, (२३) मुण्डमालहर्म्य=महल की छत पर बना हुआ बिना छत का घर।

अहवा णं धवलहर-अद्धमागह-विब्भम-सेलद्धसेलसंठिय-कूडागारट्ठसुविहिकोट्ठग-अणेग घरसरणलेण-आवण-विडंगजाल-चंदणिज्जूहअपवरकदोवालि-—चंदसालियरुवविभत्तिकलिता भवणविही वहुविकप्पा।

अथवा—(२४) धवलगृह, (२५) अर्धमागधविभ्रम, (२६) (२७) अर्द्धशैलसंस्थित=आधा पर्वत पर और आधाभूतल पर बना हुआ भवन, (२८) कूटागाराढ्यसुविहितकोष्ठक=शिखराकार सुरचित अनेक गृह (२९) अनेकघरसरणलयन=घास के छप्पर वाले अनेक घर, (३०) आपण=दूकान, (३१) विटंक=कपोतपालि, (३२) जालवृन्द=गवाक्ष-पंक्ति, (३३) निर्यूह-द्वार के ऊपर के भाग में निकले हुए काष्ठ, (३४) अपवरक=शयनागार, (३५) चन्द्रशालिका=सबसे ऊपर का घर इत्यादि अनेक प्रकार के घर हैं।

तहेव ते गेहागारावि दुमगणा अणेग-वहुविविध-वीससा-परिणयाए, सुहारुहणे सुहोत्ताराए, सुहनिक्खमणप्पवेसाए, दद्दरसोपाणपंतिकलिताए पइरिक्काए सुहविहाराए मणोऽणुकूलाए भवणविहीए उववेया।

उसी प्रकार गृहाकार द्रुमगण भी अनेक प्रकार के स्वभावसिद्ध आराम से चढ़े, उतरे, प्रवेश करे, निकले, इच्छानुसार शयनादि करें, ऐसे सोपान पंक्ति सहित मन के अनुकूल विविध भवन विधियों से युक्त हैं।

कुस-विकुस-विसुद्ध रुक्खमूला-जाव-चिट्ठन्ति।

उन वृक्षों के मूल कुश—डाभ, विकुश—वल्वजघास रहित हैं, अतएव शुद्ध हैं।

६१८. एगोरुयदीवे तत्थ तत्थ वहवे अणिगणा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!

६१८. हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुकद्वीप के अनेक स्थानों में 'अनग्न' नाम के अनेक वृक्षों के समूह कहे गये हैं।

जहा से अणेगसोमं तणुतं, कंबल-दुगुल्ल-कोसेज्ज-काल-मिगपट्ट-चीणंसुय-वरणातवारवणिगय-तुआभरण-चित्तसहिणग-कल्लाणग-भिंगिणील-कज्जल-बहुवण्ण-रत्त-पीत-सुक्किल-

जिस प्रकार अनेक प्रकार के (१) शरीर के अनुकूल वस्त्र, कम्बल, दुकूल=गौड देश के कपास से बने हुए वस्त्र, (३) कौशेय=कृमियों के निकाले हुए तन्तुओं से बने हुए वस्त्र,

मवखयमिगलोम हेमप्फरुल्लगअवरुत्तरग-सिधु-ओसभ-दामिल-बंग-कलिग-नलिणतंतुमयमत्तिचित्ता, वत्थविही बहुप्पकारा हवेज्ज वरपट्टणुग्गता वण्णरागकलिता,

(४) कालमृगपट्ट=काले मृग के चर्म से बने हुए वस्त्र, (५) चीनांशुक=चीन देश के बने हुए वस्त्र, (६) सूत के बने हुए आभरणों के चित्रों से चित्रित वस्त्र, (७) सूक्ष्म तन्तुओं से निष्पन्न वस्त्र, (८) कल्याणक=उत्कृष्ट वस्त्र, (९) भृंगनील=भृंग कीट जैसे नीले वस्त्र, (१०) कज्जल=वर्ण वाले वस्त्र, (११) बहुवर्ण =अनेक वर्ण वाले वस्त्र, (१२) रक्त, (१३) पीत, (१४) शुक्ल, वर्ण वाले वस्त्र, (१५) म्रक्षित=शुभ पुद्‌गलों से संस्कारित वस्त्र, (१६) मृग रोम और हेमसूत्रों से बने हुए वस्त्र, (१७) रल्लक=राली, एक प्रकार का कम्बल, (१८) पश्चिम, (१९) उत्तर, (२०) सिन्धु, (२१) ऋषभ, (२२) द्रविड, (२३) वंग, (२४) कलिंग आदि देशों में बने हुए वस्त्र, (२५) नलिन तन्तु-मय वस्त्र, (२६) विशिष्ट चित्र-चित्रित वस्त्र, इत्यादि अनेक प्रकार के श्रेष्ठ वर्ण युक्त वस्त्र हैं।

तहेव ते अणियणावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणताए वत्थविधीए उववेया,

उसी प्रकार अनग्न नाम के द्रुमगण भी अनेक प्रकार के स्वभावसिद्ध वस्त्र युक्त हैं।

कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला-जाव-चिट्ठन्ति।[1]

उन वृक्षों के मूल कुश=डाभ, विकुश=वल्वजघास रहित है अतएव विशुद्ध हैं।

से त्तं दसविहा दुमगणा।

दस प्रकार के द्रुमगण समाप्त।

६१९. प०—कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं आभासियमणुस्साणं आभासियदीवे नामं दीवे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिण-पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवण-समुद्दं तिण्णि जोयणसयं ओगाहित्ता, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं आभासियमणुस्साणं आभासियदीवे णामं दीवे पण्णत्ते।

सेसं जहा एगुरुयाणं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

६१९. प्र०—हे भदन्त! दाक्षिणात्य आभासिक मनुष्यों का आभासिकद्वीप नाम का द्वीप कहाँ कहा गया है?

उ०—हे गौतम! जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत से दक्षिण में क्षुद्रहिमवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिण-पूर्वान्त के अन्तिम भाग से लवणसमुद्र में तीन सौ योजन जाने पर दाक्षिणात्य आभासिक मनुष्यों का आभासिकद्वीप नाम का द्वीप कहा गया है।

शेष सब एकोरुकद्वीपवासी मनुष्यों के समान कहना चाहिए।

६२०. प०—कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं णंगोलिय-मणुस्साणं णंगुलियद्दीवे नामं दीवे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ

६२०. प्र०—हे भदन्त! दाक्षिणात्य नांगोलिक मनुष्यों का नांगोलिक द्वीप नामक द्वीप कहाँ कहा गया है?

उ०—हे गौतम! जम्बूद्वीप में मन्दर पर्वत से दक्षिण में क्षुद्रहिमवन्त वर्षधर पर्वत के पश्चिमान्त के अन्तिम भाग से

---

१ (क) गाहा—सत्तविहा रुक्खा—

(१) मत्तंगा य, (२) भिंगा, (३) चित्तंगा, चेव होंति, (४) चित्तरसा।
(५) मणियंगा य, (६) अणियणा, (७) सत्तमगा कप्परुक्खा य॥ —ठाणं अ० ७ सु० ५५६

(ख) गाहा—दसविहा रुक्खा—

(१) मत्तंगा य, (२) भिंगा, (३) तुडियंगा, (४) दीव, (५) जोइ, (६) चित्तंगा।
(७) चित्तरसा, (८) मणियंगा, (९) गेहागारा, (१०) अणियणा य॥ —ठाणं अ० १० सु० ७६६

(ग) जम्बु० वक्ख० २ सु० २०। विस्तृत वर्णन है।

चरिमंताओ दाहिण-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहित्ता, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं णंगोलियमणुस्साणं णंगुलियद्दीवे नामं दीवे पण्णत्ते।

सेसं जहा एगुरुयाणं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

६२१. प०—कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं वेसाणियमणुस्साणं वेसाणियद्दीवे नामं दीवे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स उत्तर-पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ उत्तर-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहित्ता, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं वेसाणियमणुस्साणं वेसाणियदीवे नामं दीवे पण्णत्ते।

सेसं जहा एगुरुयाणं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

—जीवा. पडि. ३, सु. १११

दक्षिण-पश्चिम में लवणसमुद्र में तीन सौ योजन जाने पर दाक्षिणात्य नांगोलिक मनुष्यों का नांगोलिकद्वीप नाम का द्वीप कहा गया है।

शेष सब एकोरुकद्वीपवासी मनुष्यों के समान कहना चाहिए।

६२१. प्र०—हे भदन्त ! दाक्षिणात्य वैसाणिक मनुष्यों का वैसाणिकद्वीप नाम का द्वीप कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में क्षुद्रहिमवन्त वर्षधर पर्वत के उत्तर-पश्चिमान्त के अन्तिम भाग में उत्तर-पश्चिम में लवणसमुद्र में तीन सौ योजन जाने पर दाक्षिणात्य वैसालिक मनुष्यों का वैसालिकद्वीप नाम का द्वीप कहा गया है।

शेष सब एकोरुक द्वीप के मनुष्यों के समान कहना चाहिए।

हयकण्णाइयं दीव चउक्कं—

६२२. प०—कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणस्साणं हयकण्णदीवे नामं दीवे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एगोरुयदीवस्स उत्तर-पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणुस्साणं हयकण्णदीवे नामं दीवे पण्णत्ते।

चत्तारि जोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं।

बारसजोयणसया पण्णट्ठी किंचिविसेसूणा परिक्खेवेणं, से णं एगाए पउमवरवेइयाए।

सेसं जहा एगुरुयाणं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

६२३. प०—कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं गयकण्ण-मणुस्साणं गयकण्णदीवे नामं दीवे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! आभासियदीवस्स दाहिण-पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहित्ता, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं गयकण्णमणुस्साणं गयकण्णदीवे नामं दीवे पण्णत्ते।

सेसं जहा हयकण्णाणं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

६२४. प०—कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं गोकण्णमणुस्साणं गोकण्णदीवे नामं दीवे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! वेसाणियदीवस्स दाहिण-पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं गोकण्णमणुस्साणं गोकण्णदीवे नामं दीवे पण्णत्ते।

सेसं जहा हयकण्णाणं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

हयकर्णादिक द्वीप चतुष्क—

६२२. प्र०—हे भदन्त ! दाक्षिणत्य हयकर्णमनुष्यों का हयकर्ण द्वीप नाम का द्वीप कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! एकोरुकद्वीप के उत्तर-पूर्वान्त के अन्तिम भाग से लवणसमुद्र में चार सौ योजन जाने पर दाक्षिणात्य हयकर्ण मनुष्यों का हयकर्णद्वीप नाम का द्वीप कहा गया है।

उस हयकर्णद्वीप की लम्बाई-चौड़ाई चार सौ योजन की कही गई है।

बारह सौ पैंसठ योजन से कुछ कम की परिधि कही गई है।

वह एक पद्मवरवेदिका से चारों ओर घिरा हुआ है।

शेष सब एकोरुकद्वीपवासी मनुष्यों के समान कहना चाहिए।

६२३. प्र०—हे भदन्त ! दाक्षिणात्य गजकर्ण मनुष्यों का गजकर्णद्वीप नाम का द्वीप कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! आभासिकद्वीप के दक्षिणपूर्वान्त के अन्तिम भाग से लवणसमुद्र में चार सौ योजन जाने पर दाक्षिणात्य गजकर्ण मनुष्यों का गजकर्णद्वीप नाम का द्वीप कहा गया है।

शेष सब हयकर्णद्वीपवासी मनुष्यों के समान कहना चाहिए।

६२४. प्र०—हे भदन्त ! दाक्षिणात्य गोकर्ण मनुष्यों का गोकर्णद्वीप नाम का द्वीप कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! वैसानिकद्वीप के दक्षिण-पश्चिमान्त के अन्तिम भाग से लवणसमुद्र में चार सौ योजन जाने पर दाक्षिणात्य गोकर्ण मनुष्यों का गोकर्णद्वीप नाम का द्वीप कहा गया है।

शेष सब हयकर्णद्वीपवासी मनुष्यों के समान कहना चाहिए।

६२५. प०—कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं सक्कुलिकण्ण-मणुस्साणं सक्कुलिकण्णदीवे नामं दीवे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णंगोलियदीवस्स उत्तर-पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहित्ता, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सक्कुलिकण्णमणुस्साणं सक्कुलिकण्णदीवे नामं दीवे पण्णत्ते।

सेसं जहा हयकण्णाणं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

आयंसमुहाईयं दीवचउक्कं—

(पंचजोयणसयाइं ओगाहं)

आसमुहाईयं दीवचउक्कं—

(छ जोयणसयाइं ओगाहं)

आसकन्नाईयं दीवचउक्कं—

(सत्त जोयणसयाइं ओगाहं)

उक्कामुहाईयं दीवचउक्कं—

(अट्ठ जोयणसयाइं ओगाहं)

घणदंताईयं दीवचउक्कं—

(नव जोयणसयाइं ओगाहं)

गाहा—

एगूरुयपरिक्खेवो नव चेव सयाइं अउणपन्नाइं।

बारसपन्नट्ठाइं हयकण्णाईणं परिक्खेवो॥

आयंसमुहाईणं पन्नरसेकासीए जोयणसते किंचिविसेसाधिए परिक्खेवेणं।

एवं एएणं कमेणं उवउंजिऊण णेतव्वा चत्तारि चत्तारि एगपमाणा।

णाणत्तं ओगाहे, विक्खंभे परिक्खेवे।

पढम-बीय-तइय-चउक्काणं उग्गहो विक्खंभो परिक्खेवो भणिओ।

चउत्थचउक्के छजोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं, अट्ठारसत्ताणउते जोयणसते परिक्खेवेणं।

पंचमचउक्के सत्त जोयणसताइं आयामविक्खंभेणं, बावीसं तेरसोत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं।

छट्ठचउक्के अट्ठजोयणसताइं आयामविक्खंभेणं, पणुवीसं गुणतीसंजोयणसए परिक्खेवेणं।

सत्तमचउक्के नवजोयणसताइं आयामविक्खंभेणं, दो जोयणसहस्साइं अट्ठ पणयाले जोयणसए परिक्खेवेणं।

६२५. प्र०—हे भदन्त ! दाक्षिणात्य शष्कुलिकर्ण मनुष्यों का शष्कुलिकर्णद्वीप नाम का द्वीप कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! नंगोलिकाद्वीप के उत्तर-पश्चिमान्त के अन्तिम भाग से लवणसमुद्र में चार सौ योजन जाने पर दाक्षिणात्य शष्कुलिकर्ण मनुष्यों का शष्कुलिकर्णद्वीप नाम का द्वीप कहा गया है।

शेष सब हयकर्णद्वीपवासी मनुष्यों के समान कहना चाहिए।

आदर्शमुखादिकद्वीप चतुष्क—

(ये पांच सौ योजन अवगाहन के बाद हैं।)

अश्वमुखादिक द्वीप चतुष्क—

(ये छह सौ योजन अवगाहन के बाद हैं।)

अश्वकर्णादिक द्वीप चतुष्क—

(ये सात सौ योजन अवगाहन के बाद हैं।)

उल्कामुखादिक द्वीप चतुष्क—

(ये आठ सौ योजन अवगाहन के बाद हैं।)

घणदंतादिक द्वीप चतुष्क—

(ये नव-सौ योजन अवगाहन के बाद हैं।)

गाथार्थ—

(१) एकोरुकादि द्वीप चतुष्क की परिधि नौ सौ योजन की है।

(२) हयकर्णादि द्वीप चतुष्क की परिधि बारा सौ पैंसठ योजन की हैं।

(३) अश्वमुखादिक द्वीप चतुष्क की परिधि पन्द्रह सौ इक्यासी योजन से कुछ अधिक कहे हैं।

इस प्रकार इस क्रम से उपयोग लगाकर चार चार द्वीपों की परिधि एक समान जाननी चाहिए।

अवगाहन, विष्कम्भ और परिधि नाना प्रकार के हैं।

प्रथम, द्वितीय और तृतीय, चतुष्क की परिधि कही गई है।

चतुर्थ द्वीप चतुष्क का आयाम-विष्कम्भ छ सौ योजन का है। अठारह सौ नव्वे योजन की परिधि है।

पंचम द्वीप चतुष्क का आयाम-विष्कम्भ सात सौ योजन का है। बावीस सौ तेरह योजन की परिधि है।

छठे द्वीप चतुष्क का आयाम-विष्कम्भ आठ सौ योजन का है। पच्चीस सौ गुणतीस योजन की परिधि हैं।

सप्तम द्वीप चतुष्क का आयाम-विष्कम्भ नौ सौ योजन का है। दो हजार आठ सौ पैंतालीस योजन की परिधि हैं।

गाहा—

जस्स य जो विक्खंभो ओग्गहोणोतस्स तत्तिओ चेव ।

पढमाइयाण परिरतो जाण सेसाण अहिओ उ ॥

सेसा जहा एगुरुयदीवस्स—जाव—सुद्धदन्तदीवे, देवलोकपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो ।

—जीवा० पडि० ३ सु० ११२

गाथार्थ—

जिस द्वीप का जो विष्कम्भ है उसका उतना ही अवगाहन अन्तर है ।

प्रथमादि द्वीप चतुष्क की जितनी परिधि है शेष चतुष्कों की परिधि उनसे अधिक है ।

शुद्धदन्तद्वीप पर्यन्त शेष सब एकोरुकद्वीप के समान है । हे आयुष्मान् श्रमण ! वे मनुष्य देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

उत्तरिल्लाणं एगोरुयाइदीवाण ठाणप्पमाणाइं—

६२६. प०—कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं एगुरुयमणुस्साणं एगुरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिस्स वासधरपव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं उत्तरिल्लाणं एगुरुयमणुस्साणं एगुरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ।

एवं जहा दाहिणिल्लाणं तहा उत्तरिल्लाणं भाणितव्वं,

णवरं—सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स विदिसासु, एवं —जाव—सुद्धदन्तदीवेत्ति[1]—जाव—सत्त अन्तरदीवका ।

—जीवा० पडि० ३, सु० ११२

औत्तरेय एकोरुकादि द्वीपों के स्थान-प्रमाणादि—

६२६. प्र०—हे भदन्त ! औत्तरेय एकोरुक मनुष्यों का एकोरुक द्वीप नाम का द्वीप कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत के उत्तर-पूर्वान्त के अन्तिम भाग से लवणसमुद्र में तीन सौ योजन जाने पर औत्तरेयएकोरुक मनुष्यों का एकोरुकद्वीप नामक द्वीप कहा गया है ।

जिस प्रकार दाक्षिणात्य मनुष्यों के द्वीप कहे उसी प्रकार औत्तरेय मनुष्यों के द्वीप कहने चाहिए ।

विशेष—शिखरी वर्षधर पर्वत की विदिशाओं में शुद्धदन्त द्वीप पर्यन्त ये सात अन्तरद्वीप हैं ।



लवणसमुद्दवण्णओ—

लवणसमुद्रवर्णन—

लवणसमुद्दस्स संठाणं, विक्खंभ-परिक्खेव-पमाणं च—

६२७. जंबुद्दीवं नामं दीवं लवणे नामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठति ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५४

६२८. प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! गोतित्थसंठिते, नावासंठाणसंठिते, सिप्पिसंपुडसंठिते, आसखंधसंठिते वलभिसंठिते, वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते पण्णत्ते !

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५२

लवणसमुद्र का संस्थान, विष्कम्भ और परिधि का प्रमाण—

६२७. वृत्त एवं वलयाकार संस्थान से स्थित लवणसमुद्र जम्बूद्वीप को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

६२८. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र का संस्थान (आकार) कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र गोतीर्थ-संस्थान, नावा-संस्थान, शुक्तासंपुट-संस्थान, अश्वस्कंध-संस्थान, वलभीगृह-संस्थान, वृत्त और वलयाकार-संस्थान से स्थित कहा गया है ।

---

१ भग० स० १० उ० ७-२८ सु० १ ।

६२९. प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे किं समचक्कवालसंठिते ? विसमचक्कवालसंठिते ?

उ०—गोयमा ! समचक्कवालसंठिए, नो विसमचक्कवालसंठिए ।

६२९. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र क्या समचक्राकार संस्थान से स्थित है ? या विषमचक्राकार संस्थान से स्थित है ?

उ०—गौतम ! समचक्राकार-संस्थान से स्थित है, विषमचक्राकार-संस्थान से स्थित नहीं है ।

६३०. प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते,[1]

पण्णरसजोयणसयसहस्साइं एगासीइसहस्साइं सयमेगोणचत्तालीसे किंचिविसेसाहिए लवणोदधिणो चक्कवालपरिक्खेवेणं पण्णत्ते ।[2]

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५४

६३०. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र की चक्राकार चौड़ाई कितनी कही गई है और परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम लवणसमुद्र की चक्राकार चौड़ाई दो लाख योजन की कही गई ।

पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनतालीस योजन से कुछ अधिक की लवणसमुद्र की चक्रवाल-परिधि कही गई है ।

लवणसमुद्दस्स पउमवरवेइयाए वणसंडस्स य पमाणं—

लवणसमुद्र की पद्मवरवेदिका का तथा वनखण्ड का प्रमाण—

६३१. से णं एक्काए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते चिट्ठइ । दोण्हवि वण्णओ ।

६३१. वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है । दोनों (पद्मवरवेदिका और वनखण्ड) का वर्णन कहना चाहिए ।

६३२. सा णं पउमवरवेइया अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं[3], पंचधणुसयविक्खंभेणं, लवणसमुद्दसमियपरिक्खेवेणं, सेसं तहेव ।

६३२. वह पद्मवरवेदिका आधा योजन ऊपर की ओर ऊँची है, पाँच सौ धनुष चौड़ी है, लवणसमुद्र के समान परिधि वाली है शेष उसी प्रकार है ।

---

१ (क) ठाणं २, उ० ३, सु० ८१ ।

(ख) सम० सु० १२५ ।

(ग) जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १७२ ।

(घ) लवणे णं भंते ! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं पन्नत्ते ? एवं नेयव्वं—जाव—लोगट्ठिती, लोगाणुभावे ।

—भग. स. ५, उ. २, सु. १८

२ (क) प०—लवणे णं ! समुद्दे केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पण्णरसजोयणसयसहस्साइं एकासीति च सहस्साइं सतं च इगुयालं किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

—जीवा पडि. ३, उ. २, सू. १७२

जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १५४ में लवणसमुद्र की परिधि १५,८१,१३९ (पन्द्रह लाख, इक्यासी हजार, एक सौ उनतालीस) योजन से कुछ अधिक की कही गई है और जीवा. प्रति. ३, उ. २, सूत्र १७२ में १५,८१,१३९-(पन्द्रह लाख, इक्यासी हजार, एक सौ उनतालीस) योजन से कुछ कम की कही गई है । यद्यपि यह अन्तर विशेष नहीं है किन्तु एक ही आगम में दो प्रकार के ये कथन भ्रान्तिमूलक हैं ।

(ख) जीवा. प्रति. ३, उ. २, सूत्र १७२ में लवणसमुद्र के (१) संस्थान, (२) चक्रवालविष्कम्भ, (३) परिधि, (४) उद्वेध, (५) उत्सेध और सर्वप्रमाण से सम्बन्धित पांच प्रश्न एक साथ हैं तथा पांच उत्तर भी एक साथ हैं । किन्तु यहाँ एक प्रश्नोत्तर टिप्पण में दिया है और शेष प्रश्नोत्तर विषयानुक्रम से विभक्त करके दिये गये हैं ।

(ग) सूरिय. पा. १९, सू. १०० ।

३ ठाणं. अ. २, उ. ३, सु. ८१ ।

६३३. से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं -जाव-विहरइ । —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५४

६३३. वह वनखण्ड कुछ कम दो योजन चक्रवाल चौड़ा है—यावत्—(देव) विचरण करते हैं ।

लवणसमुद्दस्स उदगमाल पमाणं—

६३४. प०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स के महालए उदगमाले[1] पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! दसजोयणसहस्साइं उदगमाले पण्णत्ते ।[2] —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७१

लवणसमुद्र की उदकमाला का प्रमाण—

६३४. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र की उदकमाला कितनी विशाल कही गई है ?

उ०—गौतम ! उदकमाला दस हजार योजन की कही गई है ।

लवणसमुद्दस्स उव्वेहाईणं पमाणं—

६३५. प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवतियं उव्वेहेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं पण्णत्ते ।

६३६. प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवतियं उस्सेहेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सोलसजोयणसहस्साइं उस्सेहेणं पण्णत्ते ।[3]

६३७. प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवतियं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सत्तरसजोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ।[4] —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७२

लवणसमुद्र के उद्वेधादि का प्रमाण—

६३५. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र की गहराई कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम ! एक हजार योजन की गहराई कही गई है ।

६३६. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र की ऊँचाई कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम ! सोलह हजार योजन की ऊँचाई कही गई है ।

६३७. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र का सर्वाग्र कितना कहा गया है ।

उ०—गौतम ! सतरह हजार योजन का सर्वाग्र कहा गया है ।

लवणसमुद्दस्स उव्वेहपरिवुड्ढी—

६३८. प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवतियं उव्वेहपरिवुड्ढीते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउतिं पंचाणउतिं पदेसे गंता पदेसं उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

पंचाणउतिं पंचाणउतिं वालग्गाइं गंता वालग्गं उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

पंचाणउतिं पंचाणउतिं लिक्खाओ गंता लिक्खा उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

एवं पंचाणउइ जवाओ जवमज्झे अंगुल-विहत्थि-रयणी-कुच्छी-धणु-गाउय-जोयण-जोयणसत-जोयणसहस्साइं गंता जोयणसहस्सं उव्वेहपरिवुड्ढीए ।[5] —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७०

लवणसमुद्र में गहराई की वृद्धि—

६३८. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र में गहराई की वृद्धि कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के दोनों ओर (जम्बूद्वीप की वेदिका एवं लवणसमुद्र की वेदिका के अन्त में आरम्भ करके) पंचानवे पंचानवे प्रदेश जाने पर एक एक प्रदेश गहराई की वृद्धि कही गई ।

पंचानवे पंचानवे वालाग्र जाने पर एक-एक वालाग्र गहराई की वृद्धि कही गई है ।

पंचानवे पंचानवे लीक्षा जाने पर एक-एक लीक्षा गहराई की वृद्धि कही गई है ।

इसी प्रकार पंचानवे पंचानवे यव, यवमध्य, अंगुल, वितस्ति, रत्नि, कुक्षी, धनुष, गाउ, सौ योजन और हजार योजन पर एक-एक यव, यवमध्य—यावत्—हजार योजन गहराई की वृद्धि कही गई है ।

लवणसमुद्दस्स उस्सेहपरिवुड्ढी—

६३९. प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवतियं उस्सेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ?

लवणसमुद्र की उत्सेध परिवृद्धि—

६३९. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र की उत्सेधपरिवृद्धि (ऊंचाई-वृद्धि) कितनी कही गई है ?

---

1 उदकमाला-[illegible] ।
2 ठाण. १०, सु० ७२० ।
3 सम. १६, सु. २ ।
4 सम. १७, सु. ५ ।
5 सम. ९५ सु. ३ ।

उ०—गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउतिं पंचाणउतिं पदेसेगंता सोलसपएसे उस्सेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स एएणेव कमेणं-जाव-पंचाणउतिं पंचाणउतिं जोयणसहस्साइं गंता सोलस-जोयणसहस्साइं उस्सेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।[1]

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७०

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के दोनों ओर पंचानवे पंचानवे प्रदेश जाने पर सोलह प्रदेशों की शिखावृद्धि कही गई है।

गौतम ! इसी क्रम से—यावत्—पंचानवे पंचानवे हजार योजन की लवणसमुद्र की शिखावृद्धि कही गई।

लवणसमुद्दवुड्ढी हाणि-कारणाइं—

६४०. प०—कम्हा णं भंते ! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णिमासिणीसु अतिरेगं अतिरेगं वड्ढति वा, हायति वा ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चउद्दिसिं बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ लवणसमुद्दं पंचाणउतिं पंचाणउतिं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं चत्तारि महालिंजरसंठाणसंठिया महइमहालया महापायाला पण्णत्ता,

तं जहा—१. वलयामुहे, २. केतूए,
३. जूवे, ४. ईसरे ।[2]

तेणं महापायाला एगमेगं जोयणसयसहस्सं उव्वेहेणं ।

मूले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं,

मज्झे एगपदेसियाए सेढीए एगमेगं जोयणसतसहस्सं विक्खंभेणं,

उवरिं मुहमूले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं,

तेसि णं महापायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दसजोयणसतबाहल्ला पण्णत्ता, सव्ववइरामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।[4]

तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य अवक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उवचयंति ।

सासया णं ते कुड्डा दव्वट्ठयाए ।

वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया ।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति,

लवणसमुद्र की वृद्धि और हानि के कारण—

६४०. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र (का पानी) चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को किस कारण से अधिकाधिक बढ़ता और घटता है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के चारों ओर की बाहरी वेदिकाओं के अन्त से लवणसमुद्र में पंचानवे पंचानवे हजार योजन जाने पर महाआलिंजर (विशालकुम्भ) के आकार के चार बड़े-बड़े महापाताल (कलश) कहे गये हैं।

यथा—(१) वलयामुख, (२) केतुक,
(३) यूप, और (४) ईश्वर।

प्रत्येक महापाताल (कलश) एक लाख योजन गहरा है।

मूल दस हजार योजन चौड़ा है।

एक एक प्रदेश की श्रेणी से (बढ़ते बढ़ते) मध्य में एक लाख योजन का चौड़ा है।

ऊपर के मुख का मूल (एक एक प्रदेश की श्रेणी कम होते होते) दस हजार योजन चौड़ा है।

उन महापाताल कलशों की दिवालें सर्वत्र समान हैं, वे दस हजार योजन मोटी कही गई हैं। सब वज्रमय हैं स्वच्छ हैं—यावत्—मनोहर हैं।

उन (दिवारों) में से अनेक जीव और पुद्गल निकलते हैं, उत्पन्न होते हैं, चय और उपचय को प्राप्त होते हैं।

वे दिवारें द्रव्यों की अपेक्षा से शाश्वत हैं।

वर्णपर्यायों, गंधपर्यायों, रसपर्यायों और स्पर्शपर्यायों की अपेक्षा से अशाश्वत हैं।

वहाँ महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले चार देव रहते हैं।

---

१ सम. १६, सु. ७।

२ (क) ठाणं० ४, उ० २, सु० ३०५। (ख) सम० ९५, सु० २।

३ ठाणं १०, सु० ७२०। ४ ठाणं १०, सु० ७२०।

तं जहा—१. काले, २. महाकाले,
३. वेलंबे, ४. पभंजणे ।[1]

यथा—(१) काल, (२) महाकाल,
(३) वेलम्ब और (४) प्रभंजन ।

६४१. तेसि णं महापायालाणं तओ तिभागा पण्णत्ता,

६४१. उन महापातालों के तीन विभाग कहे गये हैं ।

तं जहा—हेट्ठिल्ले तिभागे, मज्झिल्ले तिभागे, उवरिमे तिभागे ।

यथा—(१) नीचे का विभाग, (२) मध्य का विभाग, (३) ऊपर का विभाग ।

ते णं तिभागा तेत्तीसं जोयणसहस्सा तिण्णि य तेत्तीसं जोयणसतं जोयणतिभागं च बाहल्लेणं ।

ये तीन भाग तेतीस हजार, तीन सौ, तेतीस योजन और एक योजन के तीन भाग जितने मोटे हैं ।

तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे—एत्थ णं वाउकाओ संचिट्ठति ।

उनमें से जो नीचे का विभाग है उसमें वायुकाय है ।

तत्थ णं जे से मज्झिल्ले तिभागे—एत्थ णं वाउकाए य, आउकाए य संचिट्ठति ।

उनमें से जो मध्य का विभाग है उसमें वायुकाय और अप्काय है ।

तत्थ णं जे से उवरिल्ले तिभागे—एत्थ णं आउकाए संचिट्ठति ।

उनमें से जो ऊपर का विभाग है उसमें अप्काय है ।

६४२. अदुत्तरं च णं गोयमा ! लवणसमुद्दे तत्थ तत्थ देसे बहवे खुड्डालिंजरसंठाणसंठिया खुड्डपायालकलसा पण्णत्ता ।

६४२. गौतम ! इनके अतिरिक्त लवणसमुद्र में जहाँ तहाँ छोटे कलश के आकार के अनेक छोटे पाताल कलश कहे गये हैं ।

ते णं खुड्डा पाताला एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं,

प्रत्येक छोटे पाताल कलश एक हजार योजन के गहरे हैं ।

मूले एगमेगं जोयणसतं विक्खंभेणं,

प्रत्येक (छोटे पाताल कलश) का मूल (पैंदा) एक सौ योजन चौड़ा है ।

मज्झे एगदेसियाए सेढीए एगमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं,

प्रत्येक (छोटे पाताल कलश) का मध्य एक एक प्रदेश की श्रेणी से (बढ़ते बढ़ते) एक हजार योजन का चौड़ा है ।

उप्पिं मुहमूले एगमेगं जोयणसतं विक्खंभेणं ।

प्रत्येक (छोटे पाताल कलश) के ऊपर के मुख का मूल (एक एक प्रदेश की श्रेणी कम होते होते) एक सौ एक सौ योजन का चौड़ा है ।

६४३. तेसि णं खुड्डागपायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दस जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता सव्ववइरामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।[2]

६४३. उन छोटे पातालकलशों की दिवालें सर्वत्र समान हैं, वे दस योजन की मोटी कही गई हैं । सब वज्रमय हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—मनोहर हैं ।

तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य अवक्कमंति-जाव-उववज्जंति ।

उनमें से अनेक जीव और पुद्गल निकलते हैं—यावत्—उत्पत्ति को प्राप्त होते हैं ।

सासया णं ते कुड्डा दव्वट्ठाए ।

उन (छोटे पातालकलशों) की दिवालें द्रव्यों की अपेक्षा से शाश्वत हैं ।

वण्णपज्जवेहिं-जाव-फासपज्जवेहिं असासया ।

वर्णपर्यायों की अपेक्षा से—यावत्—स्पर्शपर्यायों की अपेक्षा से अशाश्वत हैं ।

पत्तेयं पत्तेयं अद्धपलिओवमट्ठितीयाहिं देवताहिं परिग्गहिया ।

प्रत्येक (क्षुद्र पाताल कलश) अर्धपल्योपम की स्थिति वाली देवियों से परिगृहीत हैं ।

---

१ ठाणं ४, उ० २, सु० ३०५ २ ठाणं १०, सु० ७२० ।

६४४. तेसि णं खुड्डुगपातालाणं ततो तिभागा पण्णत्ता, तं जहा— हेट्ठिल्ले तिभागे, मज्झिल्ले तिभागे, उवरिल्ले तिभागे।

६४४. उन क्षुद्रपाताल कलशों के तीन त्रिभाग कहे गये हैं। यथा—(१) नीचे का त्रिभाग, (२) मध्य का त्रिभाग, (३) ऊपर का त्रिभाग।

ते णं तिभागा तिण्णि तेत्तीसे जोयणसते जोयणतिभागं च वाहल्लेणं पण्णत्ते।

ये त्रिभाग तीन सौ तेतीस योजन और एक योजन के तीन भाग जितने मोटे कहे गये हैं।

तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे—एत्थ णं वाउकाओ संचिट्ठति,

उनमें से जो नीचे का त्रिभाग है—उसमें वायुकाय है।

तत्थ णं जे से मज्झिल्ले तिभागे—एत्थ णं वाउकाए य आउकाए य संचिट्ठति,

उनमें से जो मध्य का त्रिभाग है—उसमें वायुकाय और अप्काय है।

तत्थ णं जे से उवरिल्ले तिभागे—एत्थ णं आउकाए संचिट्ठति,

उनमें से जो ऊपर का त्रिभाग है—उसमें अप्काय है।

एवामेव सपुव्वावरेणं लवणसमुद्दे सत्त पायालसहस्सा अट्ठ य चुलसीता पातालसता भवंतीतिमक्खाया।

इस प्रकार सब मिलाकर लवणसमुद्र में सात हजार आठ सौ, चौरासी (क्षुद्र) पाताल (कलश) हैं, ऐसा कहा गया है।

६४५. तेसि णं महापायालाणं खुड्डुगपायालाण य हेट्ठिममज्झिमिल्लेसु तिभागेसु वहवे ओरालावाया संसेयंति संमुच्छिमंति एयंति चलंति कंपंति खुब्भंति घट्टन्ति फंदंति तं तं भावं परिणमंति, तया णं से उदए उण्णाभिज्जंति।

६४५. उन महापाताल कलशों के और क्षुद्रपाताल कलशों के नीचे के तथा मध्य के त्रिभागों में उदार वायुकाय (के जीव) उत्पन्न होते हैं, सम्मूर्छित होते हैं, हिलते हैं, चलते हैं,* कम्पित होते हैं, क्षुब्ध होते हैं, टकराते हैं, घर्षण को प्राप्त होते हैं तथा उन उन भावों में परिणत होते हैं, तब वहाँ का पानी ऊपर की ओर उछलता है।

जया णं तेसि महापायालाणं खुड्डुगपायालाण य हेट्ठिल्ल-मज्झिल्लेसु तिभागेसु नो वहवे ओराला वाया संसेयंति-जाव-फंदंति, तं तं भावं परिणमंति तया णं से उदए नो उन्ना-मिज्जइ।

जब उन महापाताल कलशों और क्षुद्रपाताल कलशों के नीचे के तथा मध्य के त्रिभागों में उदार अनेक वायुकाय के जीव उत्पन्न नहीं होते हैं—यावत्—घर्षण को प्राप्त नहीं होते हैं और उन उन भावों को परिणत नहीं होते है तब वहाँ का पानी ऊँचा नहीं उछलता है।

अंतरा वि य णं ते वायं उदीरेंति, अंतरा वि य णं से उदगे उण्णामिज्जइ।

अतिरिक्त समय में भी जब वायुकाय की उदीरणा होती है तो पानी ऊपर की ओर उछलता है।

अंतरा वि य ते वाया नो उदीरंति, अंतरा वि य णं ते उदगे नो उण्णामिज्जइ।

और जब वायुकाय की उदीरणा नहीं होती है तो पानी ऊपर की ओर नहीं उछलता है।

एवं खलु गोयमा! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमा-सिणीसु अइरेगं अइरेगं वड्ढति वा, हायति वा।[1]

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५६

इस प्रकार गौतम! लवणसमुद्र (का पानी) चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को अधिकाधिक बढ़ता और घटता है।

तीसमुहुत्तेसु लवणसमुद्दो वड्ढति हायति य—

तीस मुहूर्त में लवणसमुद्र बढ़ता है और घटता है—

६४६. प०—लवणे णं भंते! समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं कतिखुत्तो अतिरेगं अतिरेगं वड्ढति वा हायति वा?

उ०—गोयमा! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अतिरेगं अतिरेगं वड्ढति वा, हायति वा।

६४६. प्र०—भगवन्! तीस मुहूर्त में (अहोरात्रि में) लवणसमुद्र का पानी अधिक से अधिक कितनी बार बढ़ता है और घटता है?

उ०—गौतम! तीस मुहूर्त में लवणसमुद्र का पानी अधिक से अधिक दो बार बढ़ता है और घटता है।

---

१ [illegible] ३, उ० ३, सु० १७।

६४७. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—"लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा ?

उ०—गोयमा ! उड्ढमंतेसु पायालेसु वड्ढइ, आपूरितेसु पायालेसु हायइ ।

से तेणट्ठे णं गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा, हायइ वा ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५७

६४७. प्र०—भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—"तीस मुहूर्त में लवणसमुद्र का पानी अधिक से अधिक दो बार बढ़ता है और घटता है ?"

उ०—गौतम ! पाताल कलशों से पानी के बाहर आने पर पानी बढ़ता है और पाताल कलशों में वायु भर जाने पर पानी घटता है ।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—तीस मुहूर्त में लवणसमुद्र का पानी अधिक से अधिक दो बार बढ़ता है और घटता है ।

लवणसिहाए चक्कवालविक्खंभो—

६४८. प०—लवणसिहा णं भंते ! केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं, केवतियं अइरेगं अइरेगं वड्ढति वा, हायति वा ?

उ०—गोयमा ! लवणसिहाए णं दस जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, देसूणं अद्धजोयणं अतिरेगं अतिरेगं वड्ढति वा, हायति वा ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५८

लवणशिखा का चक्रवाल विष्कम्भ—

६४८. प्र०—भगवन् ! लवणशिखा की चक्राकार चौड़ाई कितनी है ? और वह ज्यादा से ज्यादा कितनी बढ़ती व घटती है ?

उ०—गौतम ! लवणशिखा की चक्राकार चौड़ाई दस हजार योजन की है और ज्यादा से ज्यादा कुछ कम आधा योजन जितनी बढ़ती व घटती है ।

लवणसमुद्दस्स वेलंधरणागरायाणं संखा—

६४९. प०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स—

कइ णागसाहस्सीओ अब्भिंतरियं वेलं धारेंति ?
कइ नागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारेंति,
कइ नागसाहस्सीओ अग्गोदयं[1] वेलं धारेंति ?

उ०—गोयमा ! लवणसमुद्दस्स—

बायालीसं णागसाहस्सीओ अब्भिंतरियं वेलं धारेंति,[2]

बावत्तरिं णागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारेंति,[3]

सट्ठि णागसाहस्सीओ अग्गोदयवेलं धारेंति ।[4]

एवामेव सपुव्वावरेणं एगा णागसतसाहस्सी चोवत्तरिं च णागसहस्सा भवतीतिमक्खाया ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५८

लवणसमुद्र के वेलंधर नागराजों की संख्या—

६४९. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र की—

आभ्यन्तर वेला को कितने हजार नाग धारण करते हैं ?
बाह्य वेला को कितने हजार नाग धारण करते हैं ?
अग्रोदक वेला को कितने हजार नाग धारण करते है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र की—

आभ्यन्तर वेला को बियालीस हजार नाग धारण करते हैं ।

बाह्य वेला को बहत्तर हजार नाग धारण करते हैं ।

अग्रोदक वेला को साठ हजार नाग धारण करते हैं ।

इस प्रकार पूर्वापर के मिलाकर एक लाख चोहत्तर हजार नाग होते हैं—ऐसा कहा गया है ।

वेलंधर नागरायचउक्कवण्णणं—

६५०. प०—कति णं भंते ! वेलंधरा णागराया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि वेलंधरा णागराया पण्णत्ता तं जहा—
१. गोथूभे, २. सिवए, ३. संखे, ४. मणोसिलए ।

चार वेलंधर नागराजों का वर्णन—

६५०. प्र०—भगवन् ! वेलंधर नागराज कितने कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! वेलंधर नागराज चार कहे गये हैं, यथा—(१) गोस्तूप, (२) शिवक, (३) शंख, (४) मनःशिलाक ।

---

१ 'अग्गोदयं'—'देशोनषोडशयोजनोच्छ्रायात् उपरि वर्धमानं जलम्' ।—टीका
२ सम. ४२, सु. ५ ।
३ सम. ७२, सु. २ ।
४ सम. ६०, सु. २ ।

प०—एतेसि णं भंते ! चउण्हं वेलंधरणागरायाणं कति आवासपव्वता पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि आवासपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
१. गोथूभे, २. उदगभासे, ३. संखे, ४. दगसीमे ।[1]

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५९

प्र०—भगवन् ! इन चार वेलंधर नागराजों के आवासपर्वत कितने कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! चार आवासपर्वत कहे गये हैं, यथा—
(१) गोस्तूप, (२) उदकभास, (३) शंख, (४) दकसीम ।

गोथूभ आवासपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं य—

६५१. प०—कहि णं भंते ! गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे आवासपव्वते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं लवणं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं गोथूभस्स भुजगिंदस्स भुजगरायस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते ।

सत्तरसएक्कवीसाइं जोयणसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं[2],
चत्तारि तीसे जोयणसते कोसं च उव्वेधेणं,
मूले दसबावीसे जोयणसते आयाम-विक्खंभेणं,
मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसते आयाम-विक्खंभेणं,
उवरिं चत्तारि चउवीसे जोयणसते आयाम-विक्खंभेणं,

मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसते किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं,

मज्झे दो जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलसीते जोयणसते किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं,

उवरिं एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य ईयाले जोयणसते किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं ।

मूले वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए गोपुच्छ-संठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे-जाव-पडिरूवे ।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते । दोण्हवि वण्णओ ।

गोस्तूप आवासपर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

६५१. प्र०—भगवन् ! गोस्तूप वेलंधर नागराज का गोस्तूप आवासपर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप के मेरुपर्वत से पूर्व में लवणसमुद्र में बियालीस हजार योजन जाने पर यहाँ पर गोस्तूप भुजगेन्द्र भुजगराज नामक वेलंधर नागराज का गोस्तूप नामक आवासपर्वत कहा गया है ।

सत्रह सौ इक्कीस योजन ऊपर की ओर ऊँचा है ।
चार सौ, तीस योजन और एक कोश (भूमि में) गहरा है ।
मूल में एक हजार बावीस (१०२२) योजन लम्बा-चौड़ा है ।
मध्य में सात सौ, तेवीस (७२३) योजन लम्बा-चौड़ा है ।
ऊपर चार सौ, चौवीस (४२४) योजन लम्बा-चौड़ा है ।

मूल में तीन हजार, दो सौ, बत्तीस (३२३२) योजन से कुछ कम की परिधि है ।

मध्य में दो हजार, दो सौ, छियासी (२२८६) योजन से कुछ अधिक की परिधि है ।

ऊपर एक हजार, तीन सौ इकतालीस (१३४१) योजन से कुछ कम की परिधि है ।

मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर से पतला है, गाय के पूँछ के आकार जैसा है, पूरा कनकमय है स्वच्छ है—यावत्—प्रतिरूप है ।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है । यहाँ दोनों का वर्णन कहना चाहिए ।

६५२. गोथूभस्स णं आवासपव्वतस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते-जाव-तत्थ णं बहवे नागकुमारा देवा आसयंति सयंति-जाव-विहरंति ।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए ।

बावट्ठं जोयणद्धं च उड्ढं उच्चत्तेणं, तं चेव पमाणं । अद्धं आयाम-विक्खंभेणं वण्णओ-जाव-सीहासणं सपरिवारं ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५९

६५२. गोस्तूप आवासपर्वत के ऊपर अधिक सम एवं रमणीय भूभाग कहा गया है—यावत्—वहाँ पर बहुत से नागकुमार देव बैठते हैं, सोते हैं—यावत्—विचरण करते हैं ।

उस अधिक सम एवं रमणीय भूभाग के ठीक मध्य भाग में एक महान् प्रासादावतंसक है ।

(वह) साढ़ा बासठ योजन ऊपर की ओर ऊँचा है, उसका वही प्रमाण है । उसका आधा (सवा बत्तीस योजन) लम्बा-चौड़ा है । प्रासाद का वर्णन—यावत्—सपरिवार सिंहासन का वर्णन है ।

---

१ ठाणं, अ. ४, उ. २, सु. ३०५ ।

२ सम. १७, सु. ४ ।

गोथूभ आवासपव्वयस्स णामहेऊ—

६५३. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—गोथूभे आवासपव्वए, गोथूभे आवासपव्वए ?

उ०—गोयमा ! गोथूभे णं आवासपव्वते तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहूओ खुड्डाखुड्डियाओ-जाव-गोथूभवण्णाइं बहूइं उप्पलाइं तहेव-जाव-गोथूभे तत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठितीए परिवसति ।

से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं-जाव-गोथूभस्स आवासपव्वतस्स गोथूभाए रायहाणीए-जाव-विहरति ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—गोथूभे आवासपव्वए सासए-जाव-णिच्चे ।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १५६

गोस्तूप आवासपर्वत के नाम का हेतु—

६५३. प्र०—भगवन् ! किस कारण से गोस्तूप आवासपर्वत को गोस्तूप आवासपर्वत कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! गोस्तूप आवासपर्वत पर जगह-जगह अनेक छोटी छोटी (वापिकायें)—यावत्—गोस्तूप वर्ण वाले अनेक कमल है उसी प्रकार—यावत्—महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला गोस्तूप देव वहाँ रहता है ।

वह वहाँ चार हजार सामानिक देवों के (साथ)—यावत्—गोस्तूप आवासपर्वत की गोस्तूपा राजधानी में—यावत्—विचरण करता है ।

गौतम ! इसी कारण से गोस्तूप आवासपर्वत शाश्वत—यावत्—नित्य कहा गया है ।

गोथूभा रायहाणी—

६५४. प०—कहि णं भंते ! गोथूभस्स भुजगिंदस्स भुजगरायस्स गोथूभा रायहाणी पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! गोथूभस्स आवासपव्वतस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीतिवइत्ता अण्णंमि लवणसमुद्दे तं चेव पमाणं, तहेव सव्वं ।[1]

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५६

गोस्तूपा राजधानी—

६५४ प्र०—हे भगवन् ! गोस्तूप भुजगेन्द्र भुजगराज की गोस्तूपा राजधानी कहाँ कही गई है ?

हे गौतम ! गोस्तूप आवासपर्वत के पूर्व में तिरछे असंख्यद्वीप समुद्र लांघने पर अन्य लवणसमुद्र में (राजधानी है) वही प्रमाण है । उसी प्रकार सब है ।

दओभासपव्वयस्स अवट्ठिइ पमाणं य—

६५५. प०—कहि णं भंते ! सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासणामे आवासपव्वते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते ।

से चेव पमाणं जं गोथूभस्स । णवरि सव्वअंकामए, अच्छे-जाव-पडिरूवे-जाव- अट्ठो भाणियव्वो ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५६

दकभास आवासपर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

६५५. प्र०—भगवन् ! शिवक वेलंधर नागराज का दकभास नाम का आवासपर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण में लवणसमुद्र में बियालीस हजार योजन जाने पर शिवक वेलंधर नागराज का दकभास नामक आवासपर्वत कहा गया है ।

जो गोस्तूप (आवासपर्वत) का प्रमाण है वही इसका प्रमाण है । विशेष यह है कि पूरा पर्वत अंकरत्नमय है स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है—यावत्—नाम का हेतु कहना चाहिए ।

दओभासपव्वयस्स णामहेऊ—

६५६. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—"दओभासे णामं आवासपव्वए, दओभासे णामं आवासपव्वए ?"

दकभास आवासपर्वत के नाम का हेतु—

६५६. प्र०—हे भगवन् ! किस कारण से दकभास आवासपर्वत को दकभास आवासपर्वत कहा जाता है ?

---

1 गोयमा ! गोथूभस्स आवासपव्वयस्स [illegible] ओगाहित्ता गोथूभस्स भुजगिंदस्स भुजगरायस्स गोथूभा नाम रायहाणी पण्णत्ता, सा य विजयारायहाणी सरिसी वत्तव्वा । ([illegible] पाठान्तर)

उ०—गोयमा ! दओभासे णं आवासपव्वते लवणसमुद्दे अट्ठ-जोयणियखेत्ते दगं सव्वतो समंता ओभासेति उज्जोवेति तवति पभासेति।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५६

उ०—गौतम ! दकभास आवासपर्वत लवणसमुद्र के आठ योजन जितने क्षेत्र में जल को सब ओर से अवभासित करता है, उद्योतित करता है, तपाता है और प्रभासित करता है।

सिविगा रायहाणी—

६५७. सिवए इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-रायहाणी।

से दओभासस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं अण्णंमि लवणसमुद्दे सिविगा रायहाणी दओभासस्स। सेसं तं चेव।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५६

शिविका राजधानी—

६५७. यहाँ शिवक महर्धिक देव है—**यावत्**—राजधानी (का वर्णन) कहें,

वह शिविका राजधानी दकभासपर्वत के दक्षिण में है। शेष पूर्ववत् है।

संखस्स आवासपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं य—

६५८. प०—कहि णं भंते ! संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवासपव्वते। तं चेव पमाणं, णवरं सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं-जाव-अट्ठो बहुओ खुड्डाखुड्डियाओ-जाव-बहूइं उप्पलाइं संखाभाइं संखवण्णाइं संखवण्णाभाइं।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५६

शंख आवासपर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

६५८. प्र०—भगवन् ! शंख वेलंधर नागराज का शंख नामक आवासपर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप के मेरुपर्वत से पश्चिम में लवणसमुद्र में बियालीस हजार योजन जाने पर शंख वेलंधर नागराज का शंख नामक आवासपर्वत है। **पर्वत का प्रमाण गोस्तूप पर्वत के समान है। विशेष यह है कि—पूरा पर्वत रत्नमय है, स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है।**

वह पर्वत एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से (सब ओर से घिरा हुआ है)—**यावत्**—नाम का हेतु कहना चाहिए। अनेक छोटी-छोटी (वापिकायें)—**यावत्**—अनेक उत्पल हैं। वे शंख जैसी आभा वाले हैं, शंख जैसे वर्ण वाले हैं, शंख जैसे वर्ण की आभा वाले हैं।

संखा रायहाणी—

६५९. संखे एत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-रायहाणीए पच्चत्थिमेणं,

संखस्स आवासपव्वयस्स संखा नामं रायहाणी, तं चेव पमाणं। —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५६

शंखा राजधानी—

६५९. वहाँ शंख (नामक) देव महर्धिक है—**यावत्**—राजधानी पश्चिम में है।

शंख आवासपर्वत की शंखा नाम की राजधानी है। **राजधानी का प्रमाण गोस्तूपा राजधानी के प्रमाण के समान है।**

दगसीम आवासपव्वयस्स अवट्ठिइ पमाणं य—

६६०. प०—कहि णं भंते ! मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स दगसीमे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं, लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स दगसीमे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते। तं चेव पमाणं, णवरि सव्वफलिहामए अच्छे-जाव-अट्ठो।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५६

दकसीम आवासपर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

६६०. प्र०—भगवन् ! मन:शिलाक वेलंधर नागराज का दकसीम नामक आवासपर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर में लवणसमुद्र में बियालीस हजार योजन जाने पर मन:शिलाक वेलंधर नागराज का दकसीम नामक आवासपर्वत कहा गया है। **पर्वत का प्रमाण गोस्तूपपर्वत के समान है। विशेष यह है कि—पूरा पर्वत स्फटिक रत्नमय है स्वच्छ है—यावत्—नाम का हेतु कहना चाहिए।**

दगसीम आवासपव्वयस्स णामहेउ—

६६१. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—"दगसीमेणं आवासपव्वए दगसीमेणं आवासपव्वए ?

उ०—गोयमा ! दगसीमंते णं आवासपव्वते सीतासीतोदगाणं महाणदीणं तत्थ गतो सोए पडिहम्मति ।

से तेणट्ठेण दगसीमे णामं आवासपव्वते सासए जाव-णिच्चे ।

मणोसिलए एत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं-जाव-विहरति ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५६

दकसीम आवासपर्वत के नाम का हेतु—

६६१. प्र०—भगवन् ! किस कारण से दकसीम आवासपर्वत को दकसीम आवासपर्वत कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! दकसीम आवासपर्वत सीता और सीतोदा महानदी के प्रवाह को प्रतिहत करता है ।

इस कारण से यह दकसीम नामक आवासपर्वत शाश्वत—यावत्—नित्य है ।

यहाँ मनःशिलाक महर्धिक देव है—यावत्—वह वहाँ चार हजार सामानिक देवों का (आधिपत्य करता हुआ)—यावत्—विचरण करता है ।

मणोसिला रायहाणी—

६६२. प०—कहि णं भंते ! मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स मणोसिला णामं रायहाणी पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दगसीमस्स आवासपव्वयस्स उत्तरेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीतिवइत्ता अण्णंमि लवणसमुद्दे एत्थ णं मणोसिला णामं रायहाणी पण्णत्ता । तं चेव पमाणं-जाव-मणोसिलए देवे ।

गाहा—कणगंक-रययफालियमया य वेलंधराणमावासा ।
अणुवेलंधरराईण पव्वया होंति रयणमया ॥

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५६

मनःशिला राजधानी—

६६२. प्र०—भगवन् ! मनःशिलाक वेलंधर नागराज की मनःशिला नाम की राजधानी कहाँ कही गई है ?

उ०—गौतम ! दकसीम आवासपर्वत के उत्तर में तिरछे असंख्यद्वीप-समुद्र लांघने पर अन्य लवणसमुद्र में मनःशिला नाम की राजधानी कही गई है । राजधानी का प्रमाण पूर्ववत् है—यावत्—मनःशिलाक देव है ।

गाथार्थ—वेलंधरों के आवासपर्वत कनकमय, अंकरत्नमय, रजतमय और स्फटिक रत्नमय हैं । अनुवेलंधरों के आवासपर्वत रत्नमय होते हैं ।

अणुवेलंधरनागरायचउक्कवण्णणं—

६६३. प०—कहि णं भंते ! अणुवेलंधरणागरायाणो पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि अणुवेलंधरणागरायाणो पण्णत्ता, तं जहा—१. कक्कोडए, २. कद्दमए, ३. केलासे, ४. अरुणप्पभे ।

प०—एतेसि णं भंते ! चउण्हं अणुवेलंधरणागरायाणं कति आवासपव्वया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—१. कक्कोडए, २. कद्दमए, ३. कइलासे ४. अरुणप्पभे ।[1]

६६४. प०—कहि णं भंते ! कक्कोडगस्स अणुवेलंधरणागरायस्स कक्कोडए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता - कक्कोडगस्स अणुवेलंधरणागरायस्स कक्कोडए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते ।

चार अनुवेलंधर नागराजों का वर्णन—

६६३. प्र०—भगवन् ! अनुवेलंधर नागराज कितने कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! अनुवेलंधर नागराज चार कहे गये हैं, यथा—(१) कर्कोटक, (२) कर्दमक (३) कैलाश, (४) अरुणप्रभ ।

प्र०—भगवन् ! इन चार अनुवेलंधर नागराजों के आवासपर्वत कितने कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! चार आवासपर्वत कहे गये हैं, यथा—(१) कर्कोटक, (२) कर्दमक, (३) कैलाश, (४) अरुणप्रभ ।

६६४. प्र०—भगवन् ! कर्कोटक अनुवेलंधर नागराज का कर्कोटक नाम का आवासपर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर पूर्व में लवणसमुद्र में बियालीस हजार योजन जाने पर कर्कोटक अनुवेलंधर नागराज का कर्कोटक नामक आवासपर्वत कहा गया है ।

---

१. ठाणं अ. ४, उ. २, सु. ३०५ ।

तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स। णवरं-सव्वरयणामए अच्छे—जाव—निरवसेसं जाव सिंहासणं सपरिवारं।

अट्ठो-से बहूइं उप्पलाइं कक्कोडप्पभाइं सेसं तं चेव। णवरि कक्कोडगपव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं। एवं तं चेव सव्वं।

गोस्तूप पर्वत का जितना प्रमाण है उतना ही इस पर्वत का प्रमाण है। विशेष यह है कि पूरा पर्वत सर्व रत्नमय है स्वच्छ है—यावत्—सपरिवार सिंहासन का सम्पूर्ण वर्णन है।

नामहेतु—अनेक उत्पल कर्कोटक जैसी प्रभावाले हैं, शेष वर्णन पूर्ववत् है। विशेष यह है कि कर्कोटक पर्वत के उत्तर-पूर्व में (कर्कोटका नाम की राजधानी है) इस प्रकार सर्व वर्णन पूर्ववत् है।

६६५. (२) कद्दमस्स वि सो चेव गमओ अपरिसेसो। नवरं—दाहिणपुरत्थिमेणं आवासो, विज्जुप्पभा रायहाणी दाहिण-पुरत्थिमेणं।

(३) कइलासे वि एवं चेव। नवरं—दाहिण-पच्चत्थिमेणं कइलासा वि रायहाणी ताए चेव दिसाए।

(४) अरुणप्पभे वि उत्तरपच्चत्थिमेणं, रायहाणी वि ताए चेव दिसाए।

चत्तारि वि एगप्पमाणा सव्वरयणामया य।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १६०

६६५. (२) कर्दमक (अनुवेलंधर नागराज) का सम्पूर्ण वर्णन कर्कोटक जैसा है। विशेष यह है कि कर्दमक आवासपर्वत दक्षिण पूर्व में है। विद्युत्प्रभा राजधानी दक्षिण-पूर्व में है।

(३) कैलाश (अनुवेलंधर नागराज) का वर्णन भी इसी प्रकार है। विशेष यह है कि—कैलाश (आवासपर्वत) दक्षिण-पश्चिम में है। कैलाशा राजधानी भी उसी दिशा में है।

(४) अरुणप्रभ आवासपर्वत भी उत्तर-पश्चिम में है। राजधानी भी उसी दिशा में है।

चारों पर्वत एक समान प्रमाण वाले हैं और सर्वरत्नमय हैं।

जंबुद्दीवचरमंताओ गोत्थुभाइचरमंताणमंतरं—

६६६. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ १. गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते, एस णं बायालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते,

एवं चउद्दिसिं पि,

२. दओभासे,

३. संखे,

४. दगसीमे य।

—सम. ४२, सु. २-३

जम्बूद्वीप के चरमान्त से गोस्तूपादि पर्वतों के चरमान्तों का अन्तर—

६४६. जम्बूद्वीप द्वीप के पूर्वी चरमान्त से गोस्तूप आवासपर्वत के पश्चिमी चरमान्त का व्यवहित अन्तर बियालीस हजार योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार चारों दिशाओं में,

इसी प्रकार जम्बूद्वीप के दक्षिणी चरमान्त से दकावभास आवासपर्वत के उत्तरी चरमान्त का,

जम्बूद्वीप के पश्चमी चरमान्त से शंख आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त का,

जम्बूद्वीप के उत्तरी चरमान्त से दकसीम आवासपर्वत के दक्षिणी चरमान्त का व्यवहित अन्तर बियालीस हजार योजन का है।

६६७. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्ले चरमंते, एस णं तेयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते,

एवं चउद्दिसिं पि,

२. दओभासे,

३. संखे,

४. दगसीमे य।

—सम. ४३, सु, ३, ४

६६७. जम्बूद्वीप द्वीप के पूर्वी चरमान्त से गोस्तूप आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त का व्यवहित अन्तर तियालीस हजार योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार चारों दिशाओं में,

इसी प्रकार जम्बूद्वीप के दक्षिणी चरमान्त से दकावभास आवासपर्वत के दक्षिणी चरमान्त का

जम्बूद्वीप के पश्चिमी चरमान्त से शंख आवासपर्वत के पश्चिमी चरमान्त का,

जम्बूद्वीप के उत्तरी चरमान्त से दकसीम आवासपर्वत के उत्तरी चरमान्त का व्यवहित अन्तर तियालीस हजार योजन का है।

मन्दरचरमंताओ गोथुभाइ य चरमंताणमंतरं—

६६८. मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मंदरस्स णं पव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरमंताओ दगभासस्स आवासपव्वयस्स उत्तरिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ संखस्स आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्ले चरमंते, एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते,

मंदरस्स णं पव्वयस्स उत्तरिल्लाओ चरमंताओ दगसीमस्स आवासपव्वयस्स दाहिणिल्ले चरमंते, एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। —सम. ८७, सु. १-४

६६९. मंदरस्स ण पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते, एस णं सत्ताणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते,

एवं चउद्दिसिं वि, —सम. ९७, सु. १, २

६७०. मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्ले चरमंते, एस णं अट्ठाणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते,

एवं चउद्दिसिं वि, —सम. ९८, सु. २, ३

मन्दर मज्झभागाओ गोथुभाई चरमंताणमंतरं—

६७१. मंदरस्स णं पव्वयस्स बहुमज्झदेसभागाओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते, एस णं बाणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते.

एवं चउण्हं पि आवासपव्वयाणं, —सम. ९२, सु. ३,

गोथुभाइचरमंताओ वलयामुहाइमहापायालचरमंताणमंतरं—

६७२. गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ १. वलयामुहस्स महापायालस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते, एस णं बावण्णं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

[illegible] —[illegible],

मंदरपर्वत और गोस्तूपादि चरमान्तों का अन्तर—

६६८. मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त से गोस्तूप आवासपर्वत के पश्चिमी चरमान्त का व्यवहित अन्तर सत्तासी हजार योजन का कहा गया है।

मन्दर पर्वत के दक्षिणी चरमान्त से दकभास आवासपर्वत के उत्तरी चरमान्त का व्यवहित अन्तर सत्तासी हजार योजन का कहा गया है।

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से शंख आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त का व्यवहित अन्तर सत्तासी हजार योजन कहा गया है।

मन्दर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से दकसीम आवासपर्वत के दक्षिणी चरमान्त का व्यवहित अन्तर सत्तासी हजार योजन का कहा गया है।

६६९. मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से गोस्तूप आवास पर्वत के पश्चिमी चरमान्त का व्यवहित अन्तर सत्तानवें हजार योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार चारों दिशाओं में अन्तर कहना चाहिए।

६७०. मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से गोस्तूप आवास पर्वत के पूर्वी चरमान्त का व्यवहित अन्तर अठानवे हजार योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार चारों दिशाओं में अन्तर कहना चाहिए।

मन्दरपर्वत के मध्यभाग से गोस्तूपादि पर्वतों के चरमान्तों का अन्तर—

६७१. मन्दर पर्वत के बहुमध्य देशभाग से गोस्तूप आवासपर्वत के पश्चिमी चरमान्त का व्यवहित अन्तर बानवे हजार योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार—

दकभास आवासपर्वत के उत्तरी चरमान्त का,
शंख आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त का,
दकसीम आवासपर्वत के दक्षिणी चरमान्त का व्यवहित अन्तर बानवे हजार योजन का है।

गोस्तूपादि पर्वतों के चरमान्तों से वलयामुखादि महापाताल कलशों के चरमान्तों का अन्तर—

६७२. गोस्तूप आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त से वलयामुख महापाताल कलश के पश्चिमी चरमान्त का व्यवहित अन्तर बावन हजार योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार दकभास पर्वत के पूर्वी चरमान्त से केतुक महापाताल कलश के पश्चिमी चरमान्त का अन्तर है।

३. संखस्स ३. जूयगस्स,

इसी प्रकार संख आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त से युपक पातालकलश के पश्चिमी चरमान्त का अन्तर है।

४. दगसीमस्स ४. ईसरस्स,

—सम. ५२, सु. २, ३

इसी प्रकार दकसीम आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त से ईसर पातालकलश के पश्चिमी चरमान्त का अन्तर है।

गोथुभाइचरमन्ताओ वलयामुहमहापायालाइ मज्झभागाणमन्तरं—

गोस्तूपादि पर्वतों के चरमान्तों से वलयामुखादि महापाताल कलशों के मध्यभागों का अन्तर—

६७३. गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं सत्तावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते,

एवं २. दगभासस्स २. केउगस्स,

३. संखस्स ३. जूयगस्स,

४. दगसीमस्स ४. ईसरस्स,

—सम. ५७, सु. २, ३

६७३. गोस्तूप आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त से वलयामुखपाताल कलश के मध्यभाग का व्यवहित अन्तर सत्तावन हजार योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार दकभास आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त से केतुक पातालकलश के मध्यभाग का अन्तर है।

इसी प्रकार संख आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त से यूपक पातालकलश के मध्यभाग का अन्तर है।

इसी प्रकार दकसीम आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त से ईसर पातालकलश के मध्यभाग का अन्तर है।

गोथुभ चरमन्ताओ वलयामुहमहापायाल मज्झभायस्स अंतरं—

गोस्तूप के चरमान्त से वलयामुख महापातालकलश के मध्यभाग का अन्तर—

६७४. गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं अट्ठावण्णं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

एवं चउदिसिं पि नेयव्वं, —सम. ५८, सु. ३, ४

६७४. गोस्तूप आवासपर्वत के पूर्वी चरमान्त और वलयामुख पातालकलश के मध्यभाग का व्यवहित अन्तर अट्ठावन हजार योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार चारों दिशाओं में जानना चाहिए।

लवणसमुद्दजलावपीडणाओ जंबुद्दीवस्स अबाहाए कारणाणि—

लवणसमुद्र के जल से जम्बूद्वीप के जलमग्न न होने के कारण—

६७५. प०—जइ णं भंते! लवणसमुद्दे दो जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, पण्णरसजोयणसयसहस्साइं एकासीतिं च सहस्साइं सतं इगुयालं किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, सोलसजोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

कम्हा णं भंते! लवणसमुद्दे जंबुद्दीव दीवं नो उवीलेति, नो उप्पीलेति नो चेव णं एक्कोदगं करेंति?

उ०—१. गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे भरहेरवएसु वासेसु अरहंतचक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेवा चारणा विज्जाधरा समणा समणीओ सावया सावियाओ मणुया एगधच्चा पगतिभद्दया पगतिविणीया पगतिउवसंता पगतिपयणु-कोह-माण-माया-लोभा मिउमद्दवसंपन्ना अल्लीणा मद्दगा विणीता—तेसि णं पणिहाते लवणे समुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेति, नो उप्पीलेति, नो चेव णं एगोदगं करेंति।

६७५. प्र०—भगवन्! यदि लवणसमुद्र की चक्राकार चौड़ाई दो लाख योजन की है, पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ गुनतालीस योजन से कुछ कम की परिधि है, एक हजार योजन की गहराई है, सोलह हजार योजन की ऊँचाई है और सतरह हजार योजन का सर्वाग्र कहा गया है।

तो भगवन्! किस कारण से लवणसमुद्र जम्बूद्वीप नामक द्वीप को बहाता क्यों नहीं है, उत्पीड़ित क्यों नहीं करता है और जलमग्न क्यों नहीं करता है?

उ०—(१) गौतम! जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में अर्हन्त (तीर्थकर), चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण (जंघाचारण और विद्याचारण मुनि) विद्याधर; श्रमण-श्रमणियाँ श्रावक-श्राविकायें हैं तथा भद्र प्रकृति वाले, विनीत प्रकृति वाले, उपशांत प्रकृति वाले, अल्पक्रोध मान माया-लोभ की प्रकृति वाले, मार्दवसम्पन्न अलिप्त भद्र एवं विनीत मनुष्य रहते हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप को बहाता नहीं है, उत्पीड़ित नहीं करता है और जलप्लावित नहीं करता है।

२. गंगा-सिंधु-रत्ता-रत्तवईसु सलिलासु देवयाओ-जाव-पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति। तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-नो चेव णं एगोदगं करेंति।

३. चुल्लहिमवत-सिहरेसु वासहरपव्वतेसु देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति। तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-नो चेव णं एगोदगं करेंति।

४. हेमवतेरण्णवतेसु वासेसु मणुया पगतिभद्दया-जाव-विणीता-तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-नो चेव णं एगोदगं करेंति।

५. रोहिता-रोहितंस-सुवण्णकूल-रुप्पकूलासु सलिलासु देवयाओ महिड्ढियाओ-जाव-पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति। तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-नो चेव णं एगोदगं करेंति।[1]

६. सद्दावति-वियडावतिवट्टवेयड्ढपव्वतेसु देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति। तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-नो चेव ण एगोदगं करेंति।

७. महाहिमवंत-रुप्पिसु वासहरपव्वतेसु देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति। तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-नो चेव णं एगोदगं करेंति।

८. हरिवास-रम्मयवासेसु मणुया पगतिभद्दया-जाव-विणीता—तेसि ण पणिहाए लवणे समुद्दे-जाव-नो चेव णं एगोदगं करेंति।

९. गंधावति-मालवंतपरियाएसु वट्टवेयड्ढपव्वतेसु देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति। तेसि ण पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-नो चेव ण एगोदगं करेंति।

१०. णिसढ-णीलवंतेसु वासहरपव्वतेसु देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति। तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-नो चेव णं एगोदगं करेंति।

११. सव्वाओ दहदेवयाओ भाणियव्वाओ।[2]

पउमद्दह-पुंडरीयद्दह-महापउमद्दह-महापुंडरीयद्दह-तिगिंछिद्दह-केसरिद्दहादिएसु देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति। तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-नो चेव णं एगोदगं करेंति।

१२. पुव्वविदेहावरविदेहेसु वासेसु अरिहंत-चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेवा चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावया सावियाओ मणुया पगतिभद्दया-जाव-विणीया तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-नो चेव णं एगोदगं करेंति।

(२) गंगा सिन्धु रक्ता और रक्तवती नदियों में महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली देवियाँ रहती हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

(३) लघुहिमवन्त और शिखरी वर्षधर पर्वत पर महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

(४) हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रों में भद्र प्रकृति वाले मनुष्य रहते हैं—यावत्—विनीत मनुष्य रहते हैं उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

(५) रोहिता, रोहितांशा, सुवर्णकूला और रूप्यकूला नदियों में महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली देवियाँ रहती हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

(६) शब्दापाति और विकटापति वृत्तवैताढ्य पर्वतों पर महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

(७) महाहिमवंत और रुक्मि वर्षधर पर्वत पर महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

(८) हरिवर्ष और रम्यकवर्ष में भद्र प्रकृति वाले मनुष्य रहते हैं—यावत्—विनीत मनुष्य रहते हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

(९) गंधापाति और माल्यवंत पर्याय वृत्त वैताढ्य पर्वतों पर महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

(१०) निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वत पर महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

(११) सभी द्रह देवियों का भी कथन करना चाहिए—

पद्मद्रह पुण्डरीकद्रह महापद्मद्रह महापुण्डरीकद्रह तिगिंछद्रह और केसरीद्रह इत्यादिद्रहों पर महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

(१२) पूर्वविदेह और अपरविदेह (महाविदेह, क्षेत्र में अरिहंत चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव चारण विद्याधर श्रमण-श्रमणियाँ श्रावक-श्राविकायें तथा भद्र प्रकृति वाले—यावत्—विनीत मनुष्य रहते हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

---

१ [illegible] के प्रभाव से [illegible] है—नदियों के नामों के [illegible] नहीं का [illegible] हुआ है।

२ [illegible] के पुंडरीकद्रह, [illegible], महापुंडरीकद्रह का [illegible] हुआ है।

१३. सीता-सीतोदासु सलिलासु देवताओ महिड्ढीयाओ-जाव-पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति । तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-णो चेव णं एगोदगं करेंति ।

(१३) सीता और सीतोदा नदियों में महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली देवियां रहती हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

१४. देवकुरु-उत्तरकुरुसु वासेसु मणुया पगतिभद्दया-जाव-विणीता । तेसि णं पणिहाए लवणे समुद्दे-जाव-णो चेव णं एगोदगं करेंति ।

(१४) देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र में भद्रप्रकृति वाले—यावत् विनीत मनुष्य रहते हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

१५. मंदरे पव्वते देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति । तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-णो चेव णं एगोदगं करेंति ।

(१५) मन्दरपर्वत पर महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं—उनके प्रभाव से लवणसमुद्र—यावत्—जलप्लावित नहीं करता है।

१६. जंबूए य सुदंसणाए जंबुद्दीवाहिवती अणाढिए णामं देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठितीए परिवसति । तस्स पणिहाए लवणसमुद्दे णो उवीलेति णो उप्पीलेति णो चेव णं एगोदगं करेति ।

(१६) जम्बू सुदर्शन वृक्ष पर महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला जम्बूद्वीप का अधिपति अनादृत नामक देव रहता है, उसके प्रभाव से लवणसमुद्र जम्बूद्वीप को दबाता नहीं है, उत्पीड़ित नहीं करता है और जलप्लावित नहीं करता है।

१७. अदुत्तरं च णं गोयमा ! लोगट्ठिती लोगाणुभावे जण्णं लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं णो उवीलेति णो उप्पीलेति णो चेव णं एगोदगं करेति ।[1]
—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७३

(१७) अथवा हे गौतम ! लोक स्थिति एवं लोकानुभाव ही ऐसा है जिसके कारण लवणसमुद्र जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप को दबाता नहीं है, उत्पीड़ित नहीं करता है और जलप्लावित नहीं करता है।

लवणसमुद्दे दव्वसरूवं—

६७६. प०—अत्थि णं भंते ! लवणसमुद्दे दव्वाइं—
सवण्णाइं पि, अवण्णाइं पि,
सगंधाइं पि, अगंधाइं पि,
सरसाइं पि, अरसाइं पि,
सफासाइं पि, अफासाइं पि,
अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्ण पुट्ठाइं,
अण्णमण्णबद्धपुट्ठाइं, अण्णमण्ण घडत्ताए चिट्ठन्ति ?

उ०—हंता गोयमा ! अत्थि ।
—भग. स. ११, उ. ६, सु. २६

लवणसमुद्र में द्रव्यों का स्वरूप—

६७६. प्र०—हे भगवन् ! लवणसमुद्र में द्रव्य—
वर्णसहित भी है, वर्णरहित भी है,
गंधसहित भी है गंधरहित भी है,
रससहित भी है, रसरहित भी है,
स्पर्शसहित भी है, स्पर्शरहित भी है,
परस्पर बद्ध है, परस्पर स्पृष्ट है,
परस्पर बद्ध-स्पृष्ट है, परस्पर सम्बद्ध है ?

उ०—हाँ गौतम ! है ।

जंबुद्दीवपएसाणं लवणसमुद्दफासाइ—

६७७. प०—जंबुद्दीवस्स णं भंते ! दीवस्स पएसा लवणं समुद्दं पुट्ठा ?

उ०—हंता । पुट्ठा ।

प०—ते णं भंते ! किं जंबुद्दीवे दीवे लवणसमुद्दे ?

उ०—गोयमा ! जंबुदीवे नो खलु ते लवणसमुद्दे ।[2]
—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १४६

जम्बूद्वीप के प्रदेशों का लवणसमुद्र से स्पर्श—

६७७. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप के प्रदेश क्या लवणसमुद्र से स्पृष्ट है ?

उ०—हाँ स्पृष्ट हैं।

प्र०—भगवन् ! क्या वे (प्रदेश) जम्बूद्वीप हैं या लवणसमुद्र है ?

उ०—गौतम ! वे (प्रदेश) जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप है किन्तु लवणसमुद्र नही है ।

---

१ (क) भग. स. ५, उ. २, सु. १८ । (ख) भग. स. ३, उ. ३ सु. १७ ।
२ जंबु० वक्ख० ६, सु० १२४ ।

लवणसमुद्द-पएसाणं जंबुद्दीवफासाइ—

६७८. प०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स पदेसा जंबुद्दीवं दीवं पुट्ठा ?

उ०—हंता ! पुट्ठा ।

प०—ते णं भंते ! किं लवणसमुद्दे जंबुद्दीवे दीवे ?

उ०—गोयमा ! लवणे णं ते समुद्दे नो खलु ते जंबुद्दीवे दीवे ।[1] —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १४६

लवणसमुद्र के प्रदेशों का जम्बूद्वीप से स्पर्श—

६७८. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र के प्रदेश क्या जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप से स्पृष्ट हैं ?

उ०—हाँ स्पृष्ट हैं ।

प्र०—भगवन् ! क्या वे (प्रदेश) लवणसमुद्र हैं या जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप है ?

उ०—गौतम ! वे (प्रदेश) लवणसमुद्र हैं किन्तु वे (प्रदेश) जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप नहीं है।

जंबुद्दीवजीवाणं लवणसमुद्दे उप्पत्ति—

६७९. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता लवणसमुद्दे पच्चायंति ?

उ०—गोयमा ! अत्थेगतिया पच्चायंति, अत्थेगतिया नो पच्चायंति । —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १४६

जम्बूद्वीप के जीवों की लवणसमुद्र में उत्पत्ति—

६७९. भगवन् ! जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप के जीव मर-मरकर क्या लवणसमुद्र में उत्पन्न होते है ?

उ०—गौतम ! कुछ उत्पन्न होते हैं और कुछ उत्पन्न नहीं होते हैं ।

लवणसमुद्दस्स जीवाणं जंबुद्दीवे उप्पत्ति—

६८०. प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता जंबुदीवे दीवे पच्चायंति ?

उ०—गोयमा ! अत्थेगतिया पच्चायंति, अत्थेगतिया नो पच्चायंति । —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १४६

लवणसमुद्र के जीवों की जम्बूद्वीप में उत्पत्ति—

६८०. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र के जीव मर-मर कर क्या जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप में उत्पन्न होते हैं ?

उ०—गौतम ! कुछ उत्पन्न होते है और कुछ उत्पन्न नहीं होते हैं ।

लवणसमुद्दस्स दारचउक्कं—

६८१. प०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—१. विजए, २. वेजयंते, ३. जयंते, ४. अपराजिते ।[2]

६८२. प०—कहि णं भंते ! लवणसमुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमपेरंते, धायइसंडस्स दीवस्स पुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं, सीओदाए महानदीए उप्पि—एत्थ णं लवणसमुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते । अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं ।

एवं तं चेव सव्वं जहा जंबुद्दीवस्स विजयस्ससरिसे ।

६८३. रायहाणी पुरत्थिमेणं अण्णमि लवणसमुद्दे ।

६८४. प०—कहि णं भंते ! लवणसमुद्दे वेजयंते नामं दारं पण्णत्ते ?

लवणसमुद्र के चार द्वार—

६८१. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र के द्वार कितने कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! चार द्वार कहे गये हैं, यथा—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित ।

६८२. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र का विजय नामक द्वार कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के पूर्वान्त में, धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध के पश्चिम में और शीतोदा महानदी के ऊपर लवणसमुद्र का विजय नामक द्वार कहा गया है । वह आठ योजन ऊपर की ओर ऊँचा है, चार योजन चौड़ा है।

इसका सम्पूर्ण वर्णन जम्बूद्वीप के विजयद्वार के सदृश है ।

६८३. इसकी राजधानी पूर्व में अन्य लवणसमुद्र में है ।

६८४. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र का वैजयन्त नामक द्वार कहाँ कहा गया है ?

---

१ जंबु० वक्ख० ६, सु० १२४ की संक्षिप्त वाचना है ।

२ ठाणं ४. उ. २, सु. ३०५ ।

उ०—गोयमा ! लवणसमुद्दे दाहिणपेरंते धायइसंडस्स दीवस्स दाहिणद्धस्स उत्तरेणं। सेसं तं चेव।

एवं जयंते वि। णवरि सीयाए महाणईए उप्पिं भाणियव्वे।

एवं अपरिजाते वि। णवरं—दिसिभागे भाणियव्वो।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५४

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के दक्षिणान्त में धातकीखण्ड द्वीप के दक्षिणार्ध के उत्तर में है। शेष पूर्ववत् है।

इस प्रकार जयन्त द्वार का भी वर्णन है। विशेष यह है कि यह द्वार शीता महानदी के ऊपर कहना चाहिए।

इस प्रकार अपराजित द्वार का भी वर्णन है। विशेष यह है कि इसका दिशाभाग कहना चाहिए।

६८५. ते णं दारा णं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसे णं पण्णत्ते, तं जहा—तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया -जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तं जहा—१. विजए, २. विजयंते, ३. जयंते, ४. अपराजिए।

—ठाणं ४, उ. २, सु. ३०५

६८५. ये द्वार चार योजन चौड़े हैं उतना ही उनका प्रवेश मार्ग है। यथा—वहाँ चार देव महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले रहते हैं, यथा—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित।

लवणसमुद्दस्स दारस्स दारस्स य अंतरं—

६८६. प०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! (गाहा—)

तिण्णेव सतसहस्सा, पंचाणउतिं भवे सहस्साइं।
दो जोयणसतअसिता, कोसं दारंतरे लवणे॥

-जाव-अबाधाए अंतरे पण्णत्ते।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५४

लवणसमुद्र के एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर—

६८६. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र के एक द्वार से दूसरे द्वार का अबाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ०—गौतम ! (गाथार्थ) लवणसमुद्र के द्वारों का व्यवहित अन्तर तीन लाख पंचानवे हजार दो सौ अस्सी योजन और एक कोश का—यावत्—कहा गया है।

लवणसमुद्द नामहेउ—

६८७. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—"लवणसमुद्दे, लवणसमुद्दे ?"

उ०—गोयमा ! लवणे णं समुद्दे उदगे आविले रइले लोणे लिंदे खारए कडुए।

अपेज्जे बहूणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खि-सिरीसवाणं णण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं।[1]

सोत्थिए एत्थ लवणाहिवई देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईएपरिवसइ,

से णं तत्थ सामाणिय-जाव-लवणसमुद्दस्स सुत्थियाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं वाणमंतरदेवाणं देवीणं आहेवच्चं-जाव-विहरइ।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—लवणे णं समुद्दे, लवणे णं समुद्दे।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! लवणसमुद्दे सासए-जाव-णिच्चे। —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५४

लवणसमुद्र के नाम का हेतु—

६८७. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र को लवणसमुद्र किस कारण से कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र का जल मलिन है, कीचड़ वाला है, लवणसदृश है, गोबर सदृश है, खारा है, कड़ुआ है।

अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरीसृपों के पीने योग्य नहीं है। केवल लवणसमुद्र में उत्पन्न प्राणियों के पीने योग्य है।

यहाँ लवणाधिपति सुस्थित देव महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला रहता है।

वह वहाँ सामानिक—यावत्—लवणसमुद्र की सुस्थिता राजधानी में अन्य अनेक वाणव्यन्तर देव देवियों का आधिपत्य करता हुआ—विचरण करता है।

गौतम ! इस कारण से लवणसमुद्र को लवणसमुद्र कहा जाता है।

अथवा—गौतम ! लवणसमुद्र शास्वत है—यावत्—नित्य है।

---

१ प्र०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! लवणस्स उदए आइले रइले (खारे) लिंदे लवणे कडुए। अपेज्जे बहुणं दुपय-चउप्पय-मिग-पसु-पक्खि-सरिसवाणं। णण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं। —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १३७

लवणसमुद्दस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिम चरिमाण अंतरं—

६८८. लवणसमुद्दस्स णं पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते—एस णं पंच जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। —सम० सु० १२८

लवणसमुद्र के पूर्व-पश्चिम चरमान्तों का अन्तर—

६८८. लवणसमुद्र के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त का व्यवहित अन्तर पाँच लाख योजन का कहा गया है।

लवणसमुद्दस्स गोतित्थस्स गोतित्थविरहितखेत्तस्स य पमाणं—

६८९. प०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स के महालए गोतित्थे[1] पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! लवणस्स णं समुददस्स उभओ पासिं पंचाणउतिं पंचाणउतिं जोयणसहस्साइं गोतित्थं पण्णत्ते।

६९०. प०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स के महालए गोतित्थविरहिते खेत्ते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयणसहस्साइं गोतित्थ-विरहिते खेत्ते पण्णत्ते।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७१

लवणसमुद्र के गोतीर्थ का और गोतीर्थ-विरहित क्षेत्र का प्रमाण—

६८९. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र का गोतीर्थ (क्रमशः निम्न निम्नतर अर्थात् ढालुभाग) कितना विशाल कहा गया हैं ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के दोनों ओर से (जम्बूद्वीप की वेदिका के अन्तिम भाग से लवणसमुद्र की वेदिका के अन्तिम भाग से) पंचानवे पंचानवे हजार योजन जाने पर गोतीर्थ कहा गया है।

६९०. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र का गोतीर्थ-विरहित क्षेत्र (उतार चढ़ाव रहित भाग !) कितना विशाल कहा गया है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र का गोतीर्थ-विरहित क्षेत्र दस हजार योजन का कहा गया है।

गोयमदीववण्णणं—

६९१. प०—कहि णं भंते ! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे णामं दीवे पण्णत्ते।

बारसजोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं,

सत्ततीसं जोयणसहस्साइं नव य अडयाले जोयणसए किंचिविसेसोणे परिक्खेवेण।

जंबूदीवं तेणं अद्धेकोणणउते जोयणाइं चत्तालीसं पंचणउतिभागे जोयणस्स ऊसिए जलंताओ,

लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिते जलंताओ,

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

तहेव वण्णओ दोण्ह वि।

गोयमदीवस्स णं दीवस्स अंतो-जाव-बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते।

से जहानामए—आलिंगपुक्खरेइ वा-जाव-आसयंति।

गौतम द्वीप का वर्णन—

६९१. प्र०—हे भगवन् ! लवणाधिपति सुस्थित (देव) का गौतम द्वीप नामक द्वीप कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप (नामक) द्वीप के मेरुपर्वत से पश्चिम में लवणसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर लवणाधिपति सुस्थित देव का गौतम द्वीप नामक द्वीप कहा गया है।

वह बारह हजार योजन का लम्बा-चौड़ा कहा गया है।

सैंतीस हजार नौ सौ अड़तालीस योजन से कुछ कम की परिधि वाला है।

जम्बूद्वीप की ओर से—

८८-११ $\frac{४०}{९५}$ योजन वह जल से ऊँचा है।

लवणसमुद्र की ओर से वह जल से दो कोश ऊँचा है।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है।

(पद्मवरवेदिका और वनखण्ड) इन दोनों का वर्णन पूर्ववत् है।

गौतमद्वीप नामक द्वीप के अन्दर का भूभाग अत्यधिक सम एवं रमणीय कहा गया है।

जिस प्रकार मृदंगवाद्य पर मंढा हुआ चर्म हो—यावत्—देवता बैठते हैं।

---

१ गोतीर्थमिव गोतीर्थं क्रमेण नीचोनीचतरः प्रदेशमार्गः।

२ ठाणं १०, सु० ७२०।

रायाति वा खन्नाति वा अग्घाति वा सिहाति वा विजातीति वा[1] हासवट्टीति वा[2] ?

उ०—हंता अत्थि ।

प०—जहा णं भंते ! लवणसमुद्दे अत्थि वेलंधराति वा णागरायाति वा अग्गाति वा सिहाति वा विजातीति वा हासवट्टीति वा तहा णं बाहिरतेसु वि समुद्देसु अत्थि वेलंधराइ वा णागरायाति वा अग्घीति वा सीहाति वा विजातीति वा हासबट्टीति वा ?

उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १६८

खन्न अग्घ सीह विजाति (आदि मच्छ कच्छ) हैं ? और जल की हानि या वृद्धि है ?

उ०—हाँ—ऐसा है ।

प्र०—भगवन् ! जिस प्रकार लवणसमुद्र में वेलंधर नागराज हैं, खन्न अग्घ सीह विजाति (आदि मच्छ-कच्छ) हैं और जल की हानि या वृद्धि है तो क्या उसी प्रकार बाह्यसमुद्रों में भी वेलंधर नागराज हैं ? खन्न अग्घ सीह विजाति (आदि मच्छ-कच्छ) हैं, और जल की हानि या वृद्धि हैं ?

उ०—नहीं, ऐसा नहीं है ।

लवणाइसु समुद्देसु वुट्ठी, बाहिरएसु समद्देसु अवुट्ठी[3]—

लवणादि समुद्रों में वृष्टि और बाह्यसमुद्रों में अनावृष्टि—

६६८. प०—अत्थि णं भंते ! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहका संसेयंति, संमुच्छंति वासं वासंति ?

उ०—हंता अत्थि ।

प०—जहा णं भंते ! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहका संसेयंति, संमुच्छंति, वासं वासंति वा, तहा णं बाहिरएसु वि समुद्देसु बहवे ओराला बलाहका संसेयंति, संमुच्छंति, वासं वासंति ?

उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चति—"बाहिरगा णं समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडियाए चिट्ठन्ति ?"

उ०—गोयमा ! बाहिरएसु णं समुद्देसु बहवे उदगजोणिया जीवा य, पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति, विउक्कमंति, चीयंते उवचीयंते ।

से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ—"बाहिरगा समुद्दा पुण्णा-जाव-समभरघडत्ताए चिट्ठन्ति ।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १६६

६६८. प्र०—भगवन् ! क्या लवणसमुद्र में बहुत से उदारमेघ बनने लगते हैं, बनते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?

उ०—हाँ, ऐसा होता है ।

प्र०—भगवन् ! जिस प्रकार लवणसमुद्र में बहुत से उदारमेघ बनने लगते हैं, बनते हैं और वर्षा बरसाते हैं क्या उसी प्रकार बाहर के समुद्रों में भी बहुत से उदारमेघ बनने लगते हैं, बनते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?

उ०—ऐसा नहीं होता है ।

प्र०—भगवन् ! किस किरण से ऐसा कहा जाता है कि—'बाह्य समुद्र पूर्ण हैं अपनी सीमा तक परिपूर्ण हैं, भरे हुए होने से छलकते हुए प्रतीत होते हैं, अत्यधिक छलकते हुए प्रतीत होते हैं तथा भरे हुए घड़े जैसे प्रतीत होते हैं ?

उ०—गौतम ! बाह्यसमुद्रों में से बहुत से जलयोनिक जीव तथा पुद्गल बाहर निकलते हैं और बहुत से उनमें उत्पन्न होते हैं; बढ़ते हैं, बहुत ज्यादा बढ़ते हैं ।

गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि बाह्य समुद्र पूर्ण है—यावत्—भरे हुए घड़े जैसे प्रतीत होते हैं ।

देवेसु लवणसमुद्दाणुपरियट्टणसामत्थ-परूवणं—

देवों में लवणसमुद्र की परिक्रमा करने के सामर्थ्य का प्ररूपण—

६६६. प०—देवे णं भंते ! महिड्ढीए-जाव-महेसोक्खे, पभू लवणसमुद्दं अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छित्तए ?

उ०—हंता गोयमा ! पभू ।

—भग० स० १८ उ० ७, सु० ४५

६६६. प्र०—हे भगवन् ! महर्धिक—यावत्—महासुखी देव लवणसमुद्र की परिक्रमा करके शीघ्र आने में समर्थ है ?

उ०—हाँ गौतम ! समर्थ है ।

---

१ अग्घादयो मत्स्य-कच्छपविशेषाः आह च चूर्णिकृत्—अग्घा सीहा विजाइ इति मच्छ-कच्छभा इति ।

२ 'हासवट्टीति वा'—ह्रस्व-वृद्धी जलस्येति गम्यते इति ।

३ अढाईद्वीप अर्थात् मनुष्य-क्षेत्र अथवा समय क्षेत्र में केवल दो समुद्र हैं—(१) लवणसमुद्र और (२) कालोदधिसमुद्र । अढाईद्वीप से बाहर अनेक द्वीप तथा अनेक समुद्र हैं । यहाँ अढाईद्वीप के बाहर के समुद्रों से सम्बन्धित ये प्रश्न हैं ।

धायइसंडो दीवो—

धातकीखण्ड द्वीप—

धायइसंडदीवस्स संठाणं—

७००. लवणसमुद्दं धायइसंडे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठति ।

प०—धायइसंडे णं भंते ! किं समचक्कवालसंठिते, विसमचक्कवालसंठिते ?

उ०—गोयमा ! समचक्कवालसंठिते, नो विसमचक्कवालसंठिते । —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७४

धातकीखण्डद्वीप का संस्थान—

७००. वृत्त एवं वलयाकार संस्थान से स्थित धातकीखण्ड नामक द्वीप लवणसमुद्र को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

प्र०—भगवन् ! धातकीखण्ड द्वीप समचक्राकार है या विषम चक्राकार है ?

उ०—गौतम ! समचक्राकार है, विषमचक्राकार नहीं है ।

धायइसंडस्स विक्खंभ-परिक्खेवं—

७०१. प०—धायइसंडे णं भंते ! दीवे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं,[2] एगयालीसं जोयणसतसहस्साइं दसजोयणसहस्साइं णवएगट्ठे जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।[3] —जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १७४

धातकीखण्डद्वीप की चौड़ाई और परिधि—

७०१. प्र०—भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप की चक्राकार चौड़ाई एवं परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम ! चार लाख योजन की चक्राकार चौड़ाई एवं इकतालीस लाख, दस हजार, नो सौ इकसठ योजन से कुछ कम की परिधि कही गई है ।

धायइसंडस्स पउमवरवेइया—

७०२. से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते । दोण्ह वि वण्णओ, दीवसमिया परिक्खेवेणं ।[4] —जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १७४

धातकीखण्डद्वीप की पद्मवरवेदिका—

७०२. वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है । दोनों का वर्णन (कहना चाहिए) इनकी परिधि द्वीप के समान है ।

धायइसंडे दीवे वासा—

७०३. धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासा पण्णत्ता, तं जहा—१-७भरहे-जाव-महाविदेहे ।[5]

धायइसंडदीवे पच्छत्थिमद्धे णं सत्त वासा एवं चेव । —ठाणं ७, सु० ५५५

धातकीखण्डद्वीप मे वर्ष—

७०३. धातकीखण्ड द्वीप में पूर्वार्ध में सात वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं, हैं, यथा—१-७ (भरत—यावत्—(१) भरत, (२) ऐरवत, (३) हेमवत, (४) हिरण्यवत, (५) हरिवर्ष, (६) रम्यक्वर्ष, (७) महाविदेह) महाविदेह ।

धातकीखण्डद्वीप के पश्चिमार्ध में भी इसी प्रकार (सात वर्ष) हैं ।

धायइसंडे दीवे कम्मभूमीओ—

७०४. धायइसंडेदीवे पुरत्थिमद्धे तओ कम्मभूमिओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. भरहे, २. एरवए, ३. महाविदेहे ।

धातकीखण्डद्वीप में कर्मभूमियाँ—

७०४. धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में तीन कर्मभूमियां कही गई है यथा—(१) भरत, (२) ऐरवत, (३) महाविदेह ।

---

१ सूरिय पा० १९ सु० १०० ।

२ (क) समः सु० १२७ । (ख) ठाणं अ० ४ उ० २ सु० ३०६ ।

३ सूरिय० पा० १९ सु० १०० । ४ ठाणं० अ० २, उ० ३, सु० ९२ ।

५ (क) ठाणं, ६, सूत्र ५२२ में एक महाविदेह का नाम छोड़कर शेष छह वर्ष (क्षेत्र) कहे गये है । तथा ठाणं १० सूत्र ७२३ में जम्बूद्वीपवर्ति दस क्षेत्रों के नाम कहे गये हैं । ऊपर सूत्र (ठाणं ७, सूत्र ५१२२) में जो सात वर्ष (क्षेत्र) कहे हैं—उनमें से महाविदेह के स्थान में महाविदेह के चार विभागों के अलग-अलग नाम देकर सूत्र ७२३ मे दस की संख्या पूरी की गई हैं । धातकीखण्डद्वीप और पुष्करार्धद्वीप में भी ये दस क्षेत्र हैं किन्तु सूत्र ७२३ में ऐसी कोई संक्षिप्त वाचना की सूचना नहीं हैं । धातकीखण्डद्वीप और पुष्करार्धद्वीप में महाविदेह क्षेत्र तो है ही, अतः सूत्र ७२३ के अनुसार जम्बूद्वीप के समान धातकीखण्ड द्वीप और पुष्करार्धद्वीप में भी दस क्षेत्र माने जा सकते हैं ।

एवं पच्चत्थिमद्धे वि। —ठाणं ३, उ० ३, सु० १८३

इसी प्रकार (धातकीखण्ड के) पश्चिमार्ध में भी (तीन कर्मभूमियाँ) हैं।

धायइसंडे दीवे अकम्मभूमीओ—

७०५. धायइसंडदीवे-पुरत्थिमद्धे णं छ अकम्मभूमिओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१—६ हेमवए-जाव-उत्तरकुरा।[1]

एवं पच्चत्थिमद्धे वि। —ठाणं ६, सु० ५२२

धातकीखण्डद्वीप में अकर्मभूमियाँ—

७०५. धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में छह अकर्मभूमियाँ कही गई हैं। यथा—१-६ हैमवत्—यावत्—उत्तरकुरु।

इसी प्रकार (धातकीखण्ड के) पश्चिमार्ध में भी (छह अकर्मभूमियाँ कही गई) हैं।

धायइसंडे दीवे धायइ दुमस्स पमाणं—

७०६. धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं धायइरुक्खे,
अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं बहुमज्झदेसभाए,
अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं,
साइरेगाइं अट्ठजोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते,
एवं धायइरुक्खाओ आढवेत्ता सच्चेव जंबूदीववत्तव्वया भाणियव्वा-जाव-मंदर चूलियत्ति,
एवं पच्चत्थिमद्धे वि महाधायइरुक्खाओ आढवेत्ता-जाव-मंदर चूलियत्ति। —ठाणं अ० ८, सु० ६४१

धातकीखण्डद्वीप में धातकी वृक्ष का प्रमाण—

७०६. धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में धातकी वृक्ष,
मध्यभाग में आठ योजन ऊँचा है।
आठ योजन चौड़ा है,
आठ योजन से कुछ अधिक उसकी पूरी ऊँचाई कही गई है।
धातकी वृक्ष से मन्दर चूलिका पर्यन्त जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में जो कहा गया है उसके समान कहना चाहिए।
इसी प्रकार पश्चिमार्ध में भी महाधातकी वृक्ष से मन्दर चूलिका पर्यन्त कहना चाहिए।

धायइसंडदीवे वासहरपव्वया—

७०७. धायइसंडदीवे पुरच्छिमद्धे णं सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते-जाव-मंदरे।

एवं पच्चत्थिमद्धे वि।[2] —ठाणं ७, सु० ५५५

धातकीखण्ड में वर्षधर पर्वत—

७०७. धातकी खण्डद्वीप के पूर्वार्ध में सात वर्षधरपर्वत कहे गये हैं यथा—क्षुद्रहिमवंत पर्वत—यावत्—मन्दर पर्वत।

इसी प्रकार पश्चिमार्ध में भी (सात वर्षधर पर्वत कहे गये) हैं।

---

१ (क) १. धायइसंडदीव-पुरत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) हेमवए, हरिवासे, (३) देवकुरा।
२. धायइसंडदीव-पुरत्थिमद्धे णं मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) हेरण्णवए, (२) रम्मगवासे, (३) उत्तरकुरा। एवं पच्चत्थिमद्धे वि। —ठाणं ३, उ० ४, सु० १९७

(ख) ठाणं ४, उ० २, सु० ३०२।

(ग) ठाणं ६, सु. ५२२, ठाण ३, सु. १९७ और ठाण ४, उ. २, सु. ३०२ में—'एवं जहा जम्बुद्दीवे'—संक्षिप्तवाचना की इस सूचना के अनुसार ऊपर सूत्रों के मूल पाठों की पूर्ति की गई है।

२ (क) धायइसंडे णं दीवे दो चुल्लमहाहिमवंता।
धायइसंडे णं दीवे दो महाहिमवंता,
धायइसंडे णं दीवे दो णिसहा,
धायइसंडे णं दीवे दो णीलवंता,
धायइसंडे णं दीवे दो रुप्पी,
धायइसंडे णं दीवे दो सिहरी। —ठाणं उ. ३, सु. ९९

(ख) धायइसंडदीवपुरच्छिमद्धे मंदरदाहिणेण तओ वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—(१) चुल्लहिमवंते, (२) महाहिमवंते, (३) णिसढे।
धायइसंडदीवपुरच्छिमद्धे मंदरदाहिणेणं तओ वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—(१) नीलवंते, (२) रुप्पी, (३) सिहरी।
एवं पच्चत्थिमद्धे वि, —ठाणं ३, उ. ४, सु. १९७

(ग) धायइसंडदीवपुरच्छिमद्धे णं छ वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
चुल्लहिमवंते—जाव—सिहरी,
एवं पच्चत्थिमद्धे वि, —ठाणं ६, सु. ५२२

धायइसंडदीवे वक्खारपव्वया—

७०८. धायइसंडदीवपुरच्छिमद्धेणं मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए उभओ कूले दस वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—मालवंते-जाव-सोमणसे।

७०९. धायइसंडदीवपुरच्छिमद्धेणं मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीतोदाए महाणईए उभओ कूले दस वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—विज्जुप्पभे-जाव-गंधमादणे,

एवं धायइसंडे पच्चत्थिमद्धे वि।

—ठाणं १०, सु० ७६८

७१०. १. धायइसंडे णं दीवे दो मालवंता वक्खारपव्वया,
२. धायइसंडे णं दीवे दो चित्तकूडा वक्खारपव्वया,
३. धायइसंडे णं दीवे दो पम्हकूडा वक्खारपव्वया,
४. धायइसंडे णं दीवे दो नलिनकूडा वक्खारपव्वया,
५. धायइसंडे णं दीवे दो एगसेला वक्खारपव्वया,
६. धायइसंडे णं दीवे दो तिकूडा वक्खारपव्वया,
७. धायइसंडे णं दीवे दो वेसमणकूडा वक्खारपव्वया,
८. धायइसंडे णं दीवे दो अंजणा वक्खारपव्वया,
९. धायइसंडे णं दीवे दो मातंजणा वक्खारपव्वया,
१०. धायइसंडे णं दीवे दो सोमणसा वक्खारपव्वया,
११. धायइसंडे णं दीवे दो विज्जुप्पभा वक्खारपव्वया,
१२. धायइसंडे णं दीवे दो अंकावती वक्खारपव्वया,
१३. धायइसंडे णं दीवे दो पम्हावती वक्खारपव्वया,

धातकीखडद्वीप के वक्षस्कार पर्वत—

७०८. धातकीखण्डद्वीप नामक द्वीप के पूर्वार्ध में (स्थित) मेरुपर्वत के पूर्व में (बहने वाली) शीता महानदी के दोनों (उत्तर-दक्षिण) किनारों पर दस वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं, यथा—(१-१०) माल्यवंत—यावत्—सौमनस।

७०९. धातकीखण्ड नामक द्वीप के पूर्वार्ध में (स्थित) मेरुपर्वत के पश्चिम में (बहने वाली) शीतोदा महानदी के दोनों किनारों पर दस वक्षस्कार पर्वत कहे हैं, यथा—(१-१०) विद्युत्प्रभ—यावत्—गंधमादन।

इसी प्रकार धातकीद्वीपखण्ड के पश्चिमार्ध में भी वक्षस्कार पर्वत हैं।

७१०. (१) धातकीखण्डद्वीप में दो माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत हैं।
(२) धातकीखण्डद्वीप में दो चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत हैं।
(३) धातकीखण्डद्वीप में दो पक्ष्मकूट वक्षस्कार पर्वत हैं।
(४) धातकी खण्डद्वीप में दो नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत हैं।
(५) धातकीखण्डद्वीप में दो एकशैल वक्षस्कार पर्वत हैं।
(६) धातकीखण्डद्वीप में दो त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत हैं।
(७) धातकीखण्डद्वीप में दो वैश्रमण वक्षस्कार पर्वत हैं।
(८) धातकीखण्डद्वीप में दो अंजनक वक्षस्कार पर्वत हैं।
(९) धातकीखण्डद्वीप में दो मातंजन वक्षस्कार पर्वत हैं।
(१०) धातकीखण्डद्वीप में दो सौमनस वक्षस्कार पर्वत हैं।
(११) धातकीखण्डद्वीप में दो विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत हैं।
(१२) धातकीखण्डद्वीप में दो अंकावती वक्षस्कार पर्वत हैं।
(१३) धातकीखण्डद्वीप में दो पक्ष्मावती वक्षस्कार पर्वत हैं।

---

१ (क) ....एवं धायइसंडपुरत्थिमद्धे वि वक्खारा भाणियव्वा—जाव—पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे। ठाण १० सु. ७६८ में संक्षिप्त पाठ है, ऊपर विस्तृत पाठ दिया है।

(ख) ... एवं धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे वि कालं आदि करेत्ता—जाव—मंदरचूलियत्ति। ठाणं ४ उ. २, सु. ३०२ में संक्षिप्त पाठ है। इस सूत्र के अनुसार मंदरपर्वत से पूर्व-पश्चिम में शीता-शीतोदा के दक्षिणी-उत्तरी किनारों पर तथा चार विदिशाओं में चार चार वक्षस्कार पर्वत हैं।

(ग) धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीताए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—मालवंते जहा जम्बुद्दीवे।

—ठाणं ५, उ. २ सु. ४३४

इस सूत्र के अनुसार मंदरपर्वत से पूर्व-पश्चिम में शीता-शीतोदा के दक्षिणी-उत्तरी किनारों पर पाँच पाँच वक्षस्कार पर्वत है।

(घ) स्थानांग ८ सूत्र ६३७ में जम्बूद्वीप के मंदरपर्वत से पूर्व-पश्चिम में शीता-शीतोदा के दक्षिणी-उत्तरी किनारों पर आठ आठ वक्षस्कार पर्वत हैं—ऐसा कहा है किन्तु धातकीखण्डद्वीप तथा पुष्करार्धद्वीप में भी इसी प्रकार आठ आठ वक्षस्कार पर्वत हैं' ऐसी सूचना का संक्षिप्तसूत्र नहीं है।

ऊपर स्थानांग १० सूत्र ७६८ में दस वक्षस्कार पर्वतों का कथन है अतः संक्षिप्तसूत्र के न होने पर भी आठ आठ वक्षस्कार पर्वत धातकीखण्डद्वीप में तथा पुष्करार्धद्वीप में स्वतः सिद्ध है।

१४. धायइसंडे णं दीवे दो आसीविसा वक्खारपव्वया,
१५. धायइसंडे णं दीवे दो सुहावहा वक्खारपव्वया,
१६. धायइसंडे णं दीवे दो चंदपव्वया वक्खारपव्वया,
१७. धायइसंडे णं दीवे दो सूरपव्वया वक्खारपव्वया,
१८. धायइसंडे णं दीवे दो णागपव्वया वक्खारपव्वया,
१९. धायइसंडे णं दीवे दो देवपव्वया वक्खारपव्वया,
२०. धायइसंडे णं दीवे दो गंधमायणा वक्खारपव्वया,

—ठाणं २, उ० ३, सु० १००

(१४) धातकीखण्डद्वीप में दो आशिविष वक्षस्कार पर्वत हैं।
(१५) धातकीखण्डद्वीप में दो सुखावह वक्षस्कार पर्वत हैं।
(१६) धातकीखण्डद्वीप में दो चन्द्र वक्षस्कार पर्वत हैं।
(१७) धातकीखण्डद्वीप में दो सूर्य वक्षस्कार पर्वत हैं।
(१८) धातकीखण्डद्वीप में दो नाग वक्षस्कार पर्वत हैं।
(१९) धातकीखण्डद्वीप में दो देव वक्षस्कार पर्वत हैं।
(२०) धातकीखण्डद्वीप में दो गंधमादन वक्षस्कार पर्वत हैं।

धायइसंडे दीवे मन्दर पव्वया—

७११. धायइसंडे णं दीवे दो मंदरा पव्वया पण्णत्ता।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ९२

७१२. धायइसंडस्स णं मंदरा पंचासीतिं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता। —सम० ८५, सु० २

७१३. धायइसंडगा णं मंदरा दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं,

धरणितले देसूणाइं दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं,
उवरिं दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

—ठाणं १०, सु० ७२२

७१४. धायइसंडे णं दीवे दो मंदरचूलिया पण्णत्ता।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ९२

७१५. धायइसंडेणं दीवे मंदरचूलिया णं उवरिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। —ठाणं ४, उ० २, सु० २९९

७१६. धायइसंडे णं दीवे मंदरचूलिया णं बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। —ठाणं ८, सु० ६४०

धातकीखण्डद्वीप में मन्दर पर्वत—

७११. धातकीखण्डद्वीप में दो मन्दर पर्वत कहे गये हैं।

७१२. धातकीखण्डद्वीप के मन्दर पर्वत पच्यासी हजार योजन पूर्ण प्रमाण के कहे गये हैं।

७१३. धातकीखण्डद्वीप के मन्दरपर्वत एक हजार योजन भूमि में गहरे हैं।

कुछ कम दस हजार योजन चौड़े हैं।
ऊपर एक हजार योजन चौड़े कहे गये हैं।

७१४. धातकीखण्डद्वीप में दो मन्दर पर्वत की चूलिकायें कही गई हैं।

७१५. धातकीखण्डद्वीप में मन्दर पर्वत की चूलिकाओं का ऊपर का भाग चार योजन चौड़ा कहा गया है।

७१६. धातकीखण्डद्वीप में मन्दर पर्वतों की चूलिकाओं का मध्य भाग आठ योजन चौड़ा कहा गया है।

धायइसंडे मन्दरे वणाइं—

७१७. दो भद्दसालवणा, दो नंदणवणा,
दो सोमणसवणा, दो पंडगवणा,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सु० १००

धातकीखण्ड के मन्दर पर्वत पर वन—

७१७. दो भद्रशालवन, दो नन्दनवन।
दो सोमनसवन, दो पण्डगवन।

धायइसंडे मन्दरे अभिसेयसिलाओ—

७१८. दो पंडुकंबलसिलाओ, दो अइपंडुकंबलसिलाओ,
दो रत्तकंबलसिलाओ, दो अइरत्तकंबलसिलाओ,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सु० १००

धातकीखण्ड के मन्दर पर्वत पर अभिषेकशिलायें—

७१८. दो पाण्डुकंबल शिलाएँ, दो अतिपाण्डु कंबल शिलाएँ।
दो रक्त कंबल शिलाएँ, दो अतिरक्त कंबल शिलाएँ।

धायइसंडे दीवे उसुयारपव्वया—

७१९. धायइसंडे ण दीवे दो उसुआरपव्वया पण्णत्ता।[1]

- ठाणं २, उ० ३, सु० ९२

धातकीखण्डद्वीप में इषुकार पर्वत—

७१९. धातकीखण्ड द्वीप में दो इषुकार पर्वत कहे गये हैं।

---

१ (क) यह इषुकार पर्वत जम्बूद्वीप में नहीं है।
धातकीखण्ड में दो और पुष्करार्ध द्वीप में दो—इस प्रकार चार इषुकार पर्वत हैं।
(ख) स्था. अ. ४, उ. २, सूत्र ३०६ में चार इषुकार पर्वत कहे गये हैं।

धायइसंडदीवे चवकवट्टिविजया रायहाणीओ य—

७२०. धायइसंडे णं दीवे अट्ठसट्ठि चक्कवट्टिविजया, अट्ठसट्ठि रायहाणीओ पण्णत्ताओ।[1] —सम० ६८, सु० १

धातकीखण्डद्वीप में चक्रवर्ती विजय और राजधानियाँ—

७२०. धातकीखण्डद्वीप में अडसठ चक्रवर्ति विजय हैं और उनकी अडसठ राजधानियाँ कही गई हैं।

धायइसंडदीवे चवकवट्टिविजया—

पुव्वमहाविदेहे चवकवट्टिविजया—

७२१. (१) १. धायइसंडेणं दीवे दो कच्छा,
(२) २. धायइसंडेणं दीवे दो सुकच्छा,
(३) ३. धायइसंडेणं दीवे दो महाकच्छा,
(४) ४. धायइसंडेणं दीवे दो कच्छावती,
(५) ५. धायइसंडेणं दीवे दो आवत्ता,
(६) ६. धायइसंडेणं दीवे दो नंगलावत्ता,
(७) ७. धायइसंडेणं दीवे दो पुक्खला
(८) ८. धायइसंडेण दीवे दो पुक्खलावती,

(९) १. धायइसंडेणं दीवे दो वच्छा,
(१०) २. धायइसंडेणं दीवे दो सुवच्छा,
(११) ३. धायइसंडेण दीवे दो महावच्छा.
(१२) ४. धायइसंडेणं दीवे दो वच्छगावती,
(१३) ५. धायइसंडेणं दीवे दो रम्मा,
(१४) ६. धायइसंडेणं दीवे दो रम्मगा,
(१५) ७. धायइसंडेणं दीवे दो रमणिज्जा,
(१६) ८. धायइसंडेणं दीवे दो मंगलावती,

—ठाणं २, उ० ३, सु० १००

धातकीखण्डद्वीप मे चक्रवर्ती विजय—

पूर्वमहाविदेह में चक्रवर्ती विजय—

७२१. (१) १. कच्छ नाम वाले दो विजय हैं।
(२) २. दो सुकच्छ विजय हैं।
(३) ३. दो महाकच्छ विजय हैं।
(४) ४. दो कच्छावती विजय है।
(५) ५. दो आवर्त विजय हैं।
(६) ६. दो नंगलावर्त विजय है।
(७) ७. दो पुष्कल विजय हैं।
(८) ८. पुष्कलावती विजय हैं।

(९) १. वत्स नाम वाले दो विजय हैं।
(१०) २. दो सुवत्स विजय हैं।
(११) ३. दो महावत्स विजय हैं।
(१२) ४. दो वत्सगावती विजय हैं।
(१३) ५. दो रम्य विजय हैं।
(१४) ६. दो रम्यक् विजय है।
(१५) ७. दो रमणीय विजय हैं।
(१६) ८. दो मंगलावती विजय हैं।

अवरमहाविदेहे चवकवट्टिविजया—

७२२. (१७) १. धायइसंडेणं दीवे दो पम्हा,
(१८) २. धायइसंडेणं दीवे दो सुपम्हा,
(१९) ३. धायइसंडेणं दीवे दो महापम्हा,
(२०) ४. धायइसंडेणं दीवे दो पम्हगावती,
(२१) ५. धायइसडेणं दीवे दो संखा,
(२२) ६. धायइसंडेणं दीवे दो णलिणा,
(२३) ७. धायइसंडेणं दीवे दो कुमुया,
(२४) ८. धायइसंडेण दीवे दो सलिलावती,

पश्चिम महाविदेह में चक्रवर्ती विजय—

७२२. (१७) १. दो पक्ष्म नाम वाले विजय है।
(१८) २. दो सुपक्ष्म विजय हैं।
(१९) ३. दो महापक्ष्म विजय हैं।
(२०) ४. दो पक्ष्मकावति विजय हैं।
(२१) ५. दो शंख विजय हैं।
(२२) ६. दो नलिन विजय हैं।
(२३) ७. दो कुमुद विजय हैं।
(२४) ८. दो सलिलावति विजय हैं।

---

१ (क) जम्बुद्वीप के महाविदेह में ३२ विजय, भरत क्षेत्र में एक विजय, एरवत क्षेत्र में एक विजय, ये ३४ विजय और ३४ उनकी राजधानियाँ है।
इसी प्रकार धातकीखण्ड के पूर्वार्ध में ३४ विजय, ३४ राजधानियाँ है तथा पश्चिमार्ध में ३४ विजय, ३४ राजधानियाँ हैं। सब मिलकर ६८ विजय और ६८ राजधानियाँ धातकीखण्ड में है।

(ख) जम्बुद्वीप में जितने क्षेत्र पर्वत आदि है उनसे दुगुने क्षेत्र पर्वत आदि धातकीखण्ड में है' यह विधान स्थानांग अ. २, उ. ३, सूत्र ९२ में है। अतः धातकीखण्ड में ६८ विजय और ६८ राजधानियाँ हैं।

(२५) १. धायइसंडेणं दीवे दो वप्पा,
(२६) २. धायइसंडेणं दीवे दो सुवप्पा,
(२७) ३. धायइसंडेणं दीवे दो महावप्पा,
(२८) ४. धायइसंडेणं दीवे दो वप्पगावई,
(२९) ५. धायइसंडेणं दीवे दो वग्गु,
(३०) ६. धायइसंडेणं दीवे दो सुवग्गु
(३१) ७. धायइसंडेणं दीवे दो गंधिला
(३२) ८. धायइसंडेणं दीवे दो गंधिलावई।

—ठाणं २, उ० ३, सु० १००

(२५) १. दो वप्र नाम वाले विजय है।
(२६) २. दो सुवप्रविजय हैं।
(२७) ३. दो महावप्र विजय हैं।
(२८) ४. दो वप्रकावति विजय हैं।
(२९) ५. दो वल्गु-विजय हैं।
(३०) ६. दो सुवल्गु विजय हैं।
(३१) ७. दो गंधिल विजय हैं।
(३२) ८. दो गंधिलावति विजय हैं।

धायइसंडेणं दीवे चक्कवट्टिविजयाणं रायहाणीओ—

पुव्वविदेहे चक्कवट्टिविजयाणं रायहाणीओ—

७२३. (१) १. धायइसंडेणं दीवे दो खेमाओ,
(२) २. धायइसंडेणं दीवे दो खेमपुराओ,
(३) ३. धायइसंडेणं दीवे दो रिट्ठाओ,
(४) ४. धायइसंडेणं दीवे दो रिट्ठपुराओ,
(५) ५. धायइसंडेणं दीवे दो खग्गीओ,
(६) ६. धायइसंडेणं दीवे दो मंजूसाओ,
(७) ७. धायइसंडेणं दीवे दो ओसधीओ,
(८) ८. धायइसंडेणं दीवे दो पुण्डरगिणीओ,
(९) १. धायइसंडेणं दीवे दो सुसीमाओ,
(१०) २. धायइसंडेणं दीवे दो कुण्डलाओ,
(११) ३. धायइसंडेणं दीवे दो अपराजियाओ,
(१२) ४. धायइसंडेणं दीवे दो पभंकराओ,
(१३) ५. धायइसंडेणं दीवे दो अंकावईओ,
(१४) ६. धायइसंडेणं दीवे दो पम्हावईओ,
(१५) ७. धायइसंडेणं दीवे दो सुभाओ,
(१६) ८. धायइसंडेणं दीवे दो रयणसंचयाओ।

—ठाणं २, उ० ३, सु० १००

धातकीखण्डद्वीप के चक्रवर्ति-विजयों की राजधानियाँ—

पूर्वमहाविदेह में चक्रवर्ति-विजयों की राजधानियाँ—

७२३. (१) १. क्षेमा नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(२) २. दो क्षेमपुरा राजधानियाँ हैं।
(३) ३. दो रिष्टा राजधानियाँ हैं।
(४) ४. दो रिष्टपुरा राजधानियाँ हैं।
(५) ५. दो खड्गी राजधानियाँ हैं।
(६) ६. दो मंजूषा राजधानियाँ हैं।
(७) ७. दो औषधी राजधानियाँ हैं।
(८) ८. दो पुण्डरिकणी राजधानियाँ हैं।
(९) १. सुसीमा नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(१०) २. दो कुण्डला नाम वाली राजधानियाँ हैं।
(११) ३. दो अपराजिता नाम वाली राजधानियाँ हैं।
(१२) ४. दो प्रभंकरा नाम वाली राजधानियाँ हैं।
(१३) ५. दो अंकावति नाम वाली राजधानियाँ हैं।
(१४) ६. दो पक्ष्मावति नाम वाली राजधानियाँ हैं।
(१५) ७. दो शुभा नाम वाली राजधानियाँ हैं।
(१६) ८. रत्नसंचया नाम वाली राजधानियाँ हैं।

अवरविदेहे चक्कवट्टियाणं रायहाणीओ—

(१७) १. धायइसंडेणं दीवे दो आसपुराओ,
(१८) २. धायइसंडेणं दीवे दो सीहपुराओ,
(१९) ३. धायइसंडेणं दीवे दो महापुराओ,
(२०) ४. धायइसंडेणं दीवे दो विजयपुराओ,
(२१) ५. धायइसंडेणं दीवे दो अवराजिआओ,
(२२) ६. धायइसंडेणं दीवे दो अरयाओ,
(२३) ७. धायइसंडेणं दीवे दो असोगाओ,
(२४) ८. धायइसंडेणं दीवे दो विगयसोगाओ,
(२५) १. धायइसंडेणं दीवे दो विजयाओ,
(२६) २. धायइसंडेणं दीवे दो वेजयंतीओ,

पश्चिम महाविदेह में चक्रवर्ति-विजयों की राजधानियाँ—

७२४. (१७) १. अश्वपुरा नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(१८) २. सिंहपुरा नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(१९) ३. महापुरा नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(२०) ४. विजयपुरा नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(२१) ५. अपराजिता नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(२२) ६. अरजा नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(२३) ७. अशोका नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(२४) ८. विगतशोका नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(२५) १. विजया नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(२६) २. वैजयन्ति नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।

(२७) ३. धायइसंडेणं दीवे दो जयंतीओ,
(२८) ४, धायइसंडेणं दीवे दो अपराजियाओ,
(२९) ५. धायइसंडेणं दीवे दो चक्कपुराओ,
(३०) ६. धायइसंडेणं दीवे दो खग्गपुराओ,
(३१) ७. धायइसंडेणं दीवे दो अवज्झाओ,
(३२) ८. धायइसंडेणं दीवे दो अउज्झाओ।

—ठाणं २, उ० ३. सु० १००

(२७) ३. जयन्ति नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(२८) ४. अपराजिता नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(२९) ५. चक्रपुरा नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(३०) ६. खड्गपुरा नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(३१) ७. अवध्या नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।
(३२) ८. अयोध्या नाम वाली दो राजधानियाँ हैं।

धायइसंडदीवे चोद्दस महाणईओ—

७२५. धायइसंडदीवे पुरत्थिमद्धे णं सत्तमहाणईओ पुरत्थाभिमुहीओ कालोयसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—गंगा-जाव-रत्ता,

धायइसंडदीवे पुरत्थिमद्धेणं सत्तमहाणईओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—सिंधु-जाव-रत्तवई।

धायइसंडदीवे पच्चत्थिमद्धे णं सत्तमहाणईओ पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—गंगा-जाव-रत्ता,

धायइसंडदीवे पच्चत्थिमद्धे णं सत्तमहाणईओ पच्चत्थाभिमुहीओ कालोयसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—सिंधु-जाव-रत्तवई,

ठाणं अ० ७, सु० ५५५

धातकीखण्डद्वीप में चौदह महानदियाँ—

७२५. धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में सात महानदियाँ हैं जो पूर्व दिशा में बहती हुई कालोदसमुद्र में मिलती हैं यथा—गंगा—यावत्—रक्ता।

धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में सात महानदियाँ हैं जो पश्चिम दिशा में बहती हुई लवणसमुद्र में मिलती हैं; यथा—सिंधु——यावत्—रक्तवती।

धातकीखण्डद्वीप के पश्चिमार्ध में सात महानदियाँ हैं जो पूर्व दिशा में बहती हुई लवणसमुद्र में मिलती हैं, यथा—गंगा—यावत्—रक्ता।

धातकीखण्डद्वीप के पश्चिमार्ध में सात महानदियाँ हैं जो पश्चिमदिशा में बहती हुई कालोदसमुद्र में मिलती हैं; यथा—सिन्धु—यावत्—रक्तवती।

धायइसंडे दीवे अन्तर नईओ—

७२६. दो गाहावईओ, दो दहवईओ, दो पंकवईओ,
दो तत्तजलाओ, दो मत्तजलाओ, दो उम्मत्तजलाओ,
दो खीरोयाओ, दो सीयसोयाओ, दो अंतोवाहिणीओ,
दो उम्मिमालिणीओ, दो फेणमालिणीओ, दो गंभीरमालिणीओ,

—ठाणं अ० २, उ० ३. सु० १००

धातकीखण्डद्वीप में अन्तर नदियाँ—

७२६. दो ग्राहावती, दो द्रहवती, दो पंकवती,
दो तप्तजला, दो मत्तजला, दो उन्मत्तजला,
दो क्षीरोदका, दो शीतश्रोता, दो अन्तर्वाहिनी,
दो उर्मिमालिनी, दो फेनमालिनी, दो गंभीरमालिनी।

धायइसंडे चउत्तरदुसया तित्था—

७२७. एवं धायइसंडदीवे पुरत्थिमद्धे वि, पच्चत्थिमद्धे वि,[1]

—ठाणं ३, उ० १, सु० १४२

धातकीखण्डद्वीप में दो सौ चार तीर्थ—

७२७. इस प्रकार धातकीखण्ड के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में तीर्थ हैं।

धायइसंडदीवे दव्वसरूवं—

७२८. प०—अत्थि णं भंते ! धायइसंडे दीवे दव्वाइं—
सवण्णाइं वि, अवण्णाइं वि-जाव-
सफासाइं वि, अफासाइं वि,
अण्णमण्णबद्धाइं, अण्णमण्णपुट्ठाइं,
अण्णमण्ण बद्धपुट्ठाइं, अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठन्ति ?
उ०—हंता गोयमा ! अत्थि,

धातकीखण्डद्वीप में द्रव्यों का स्वरूप—

७२८. प्र०—हे भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप में द्रव्य
वर्ण सहित भी है, वर्णरहित भी हैं—यावत्—
स्पर्श सहित भी हैं स्पर्शरहित भी हैं।
परस्पर बद्ध हैं, परस्पर स्पृष्ट हैं।
परस्पर बद्ध-स्पृष्ट हैं, परस्पर सम्बद्ध हैं ?
उ०—हाँ गौतम ! है।

---

१ जम्बूद्वीप के समान धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में १०२ तीर्थ हैं और पश्चिमार्ध में भी १०२ तीर्थ हैं, इस प्रकार २०४ तीर्थ धातकीखण्डद्वीप में है।

लवणसमुद्दस्स धायइसंडस्स य पदेसाणं फासो—

७२९. लवणस्स णं पएसा धायइसंडं दीवं पुट्ठा, तहेव जहा जंबुदीवे धायइसंडे वि, सोच्चेव गमो[1],

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १५४

लवणसमुद्र और धातकीखण्डद्वीप के प्रदेशों का स्पर्श—

७२९. लवणसमुद्र के प्रदेश धातकीखण्डद्वीप का स्पर्श करते हैं। जिस प्रकार लवणसमुद्र के प्रदेश जम्बूद्वीप का स्पर्श करते हैं उसी प्रकार धातकीखण्ड का भी स्पर्श करते हैं। पूरा वर्णन उसी प्रकार है।

धायइसंडस्स कालोयसमुद्दस्स य पदेसाणं फासाइ—

७३०. प०—धायइसंडस्स णं भंते ! दीवस्स पदेसा कालोयगं समुद्दं पुट्ठा ?

उ०—हंता पुट्ठा !

प०—ते णं भंते ! किं धायइसंडे दीवे, कालोए समुद्दे ?

उ०—ते धायइसंडे, नो खलु ते कालोयसमुद्दे।

एवं कालोयस्स वि।

—जीवा० प्रति ३, उ० २, सु० १७४

धातकीखण्ड और कालोदसमुद्र के प्रदेशों का स्पर्श—

७३०. प्र०—भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप के प्रदेश कालोदक समुद्र से स्पृष्ट हैं ?

उ०—हाँ स्पृष्ट हैं।

प्र०—क्या वे (प्रदेश) धातकीखण्डद्वीप के हैं (अथवा) कालोदसमुद्र के हैं ?

उ०—वे (प्रदेश) धातकीखण्डद्वीप के हैं, कालोदसमुद्र के नहीं हैं।

इसी प्रकार कालोदसमुद्र के (प्रदेशों के प्रश्नोत्तर) भी हैं।

लवणसमुद्दस्स धायइसंडस्स य जीवाणं उप्पत्ति-परूवणं—

७३१. प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता धायइसंडे दीवे पच्चायंति ?

उ०—गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति, अत्थेगइया नो पच्चायंति।

एवं धायइसंडे वि।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १५४

लवणसमुद्र और धातकीखण्डद्वीप के जीवों की उत्पति का प्ररूपण—

७३१. प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र के जीव मर-मरकर धातकी-खण्डद्वीप में उत्पन्न होते हैं ?

उ०—गौतम ! कुछ उत्पन्न होते हैं और कुछ उत्पन्न नहीं होते हैं।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के जीव भी उत्पन्न होते हैं।

धायइसंडदीवे—कालोयसमुद्दजीवाणं उप्पत्तिपरूवणं—

७३२. प०—धायइसंडदीवे जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता कालोए समुद्दे पच्चायंति ?

उ०—गोयमा ! अत्थेगतिया पच्चायंति, अत्थेगतिया नो पच्चायंति।

एवं कालोए वि, अत्थेगतिया पच्चायंति, अत्थेगतिया नो पच्चायंति।—जीवा पडि० ३, उ० २, सु० १७४

धातकीखण्डद्वीप और कालोदसमुद्र के जीवों की उत्पत्ति का प्ररूपण—

७३२. प्र०—भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप के जीव मर-मरकर क्या कालोदसमुद्र में उत्पन्न होते हैं ?

उ०—गौतम ! कोई कोई उत्पन्न होते हैं और कोई कोई उत्पन्न नहीं होते हैं।

इसी प्रकार कालोदसमुद्र के (जीव) भी कोई कोई (धातकी-खण्डद्वीप) में उत्पन्न होते हैं और कोई कोई उत्पन्न नहीं होते हैं।

धायइसंडस्स दारचउक्कं—

७३३. प०—धायइसंडस्स णं भंते ! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता ?

धातकीखण्डद्वीप के चार द्वार—

७३३. प्र०—भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप के कितने द्वार कहे गये हैं ?

---

१ (क) पाठपूर्ति के लिए देखें—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १४६।
(ख) जंबु. वक्ख. ६, सु. १२४।

उ०—गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—
१. विजए, २. वेजयंते, ३. जयंते, ४. अपराजिए ।

प०—कहि णं भंते ! धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! धायइसंडपुरत्थिमपेरंते, कालोयसमुद्दपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं, सीयाए महाणदीए उप्पि—एत्थ णं धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ।
दीवस्स वत्तव्वया भाणियव्वा । एवं चत्तारि वि दारा भाणियव्वा । —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७४

उ०—गौतम ! चार द्वार कहे गये हैं, यथा—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त और (४) अपराजित ।

प्र०—भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप का विजय नामक द्वार कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! धातकीखण्डद्वीप के पूर्वान्त में, कालोदसमुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिम में एवं शीतामहानन्दी के ऊपर धातकीखण्ड द्वीप का विजय नामक द्वार कहा गया है ।

द्वीप का वर्णन कहना चाहिए । इसी प्रकार चारों द्वारों का वर्णन कहना चाहिए ।

धायइसंडस्स दीवस्स दारस्स दारस्स य अंतरं—

७३४. प०—धायइसंडस्स णं भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! दस जोयणसयसहस्साइं, सत्तावीसं च जोयणसहस्साइं, सत्तपणतीसे जोयणसए, तिन्नि य कोसे दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।
—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७४

धातकीखण्डद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर—

७३४. प्र०—भगवन् ! धातकीखण्ड के एक द्वार से दूसरे द्वार का अव्यवहित अन्तर कितना कहा गया है ?

उ०—गौतम ! एक द्वार से दूसरे द्वार का अव्यवहित अन्तर दस लाख सत्तावीस हजार सात सौ पैंतीस योजन और तीन कोश का कहा गया है ।

जंबुद्दीववेइयंताओ धायइसंडचरिमंतमंतरं—

७३५. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ धायइसंडचक्कवालस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते सत्तजोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते, —सम. सु. १३०

जम्बूद्वीप की वेदिका के अन्त से धातकीखण्ड के अन्त का अन्तर—

७३५. जम्बूद्वीप द्वीप की पूर्वी वेदिका के अन्त से धातकीखण्ड के पश्चिमान्त का व्यवहित अन्तर सात लाख योजन का कहा गया है ।

धायइसंडदीवस्स णामहेऊ—

७३६. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति—"धायइसंडे दीवे धायइसंडे दीवे ?

उ०—गोयमा ! धायइसंडे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे धायइरुक्खा धायइवणा धायइसंडा णिच्चं कुसुमिया-जाव-उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठन्ति ।

धायइ—महाधायइरुक्खेसु सुदंसण-पियदंसणा दुवे देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति ।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"धायइसंडे दीवे, धायइसंडे दीवे ।
अदुत्तरं च णं गोयमा !-जाव-णिच्चे ।
—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७४

धातकीखण्डद्वीप के नाम का हेतु—

७३६. प्र०—भगवन् ! किस कारण से धातकीखण्डद्वीप धातकीखण्डद्वीप कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! धातकीखण्डद्वीप में जगह जगह धातकी वृक्ष हैं, धातकी वन है, और धातकीखण्ड है जो नित्य कुसुमित होते हैं—यावत्—(बहुत बहुत) सुशोभित होते हुए स्थित हैं ।

धातकी और महाधातकी वृक्षों पर महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले सुदर्शन और प्रियदर्शन (नाम के) दो देव रहते है ।

गौतम ! इस कारण से धातकीखण्डद्वीप धातकीखण्डद्वीप कहा जाता है ।

अथवा गौतम ! (यह नाम) शाश्वत—यावत्—नित्य है ।

देवेसु धायइसंडदीवाणुपरियट्टणसामत्थ-निरूवणं—

७३७. प०—देवे णं भंते ! महिड्ढीए-जाव-महेसक्खे पभू धायइसंडं दीवं अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छित्तए ?

उ०—हंता गोयमा ! पभू । —भग. स. १८, उ. ७, सु. ४९

देवों में धातकीखण्डद्वीप की परिक्रमा करने के सामर्थ्य का निरूपण—

७३७. प्र०—हे भगवन् ! महर्धिक—यावत्—महासुखी देव धातकीखण्डद्वीप की परिक्रमा करके शीघ्र आने में समर्थ है ?

उ०—हाँ गौतम ! समर्थ है ।

कालोदसमुद्द वण्णओ—

कालोदसमुद्दस्स संठाणं—

७३८. धायइसंडं णं दीवं कालोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागार-संठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ।

प०—कालोदे णं भंते! समुद्दे किं समचक्कवालसंठाणसंठिते? विसमचक्कवालसंठाणसंठिते?

उ०—गोयमा! समचक्कवालसंठाणसंठिते, नो विसमचक्क-वालसंठाणसंठिते।[1]

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७५

कालोदसमुद्दस्स आयाम-विक्खंभ-परिक्खेवं—

७३९. प०—कालोदे णं भंते! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! अट्ठ जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं,[2] एकाणउति जोयणसयसहस्साइं सत्तरिसहस्साइं छच्च पंचुत्तरे जोयणसते किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।[3] —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७५

कालोदसमुद्दस्स पउमवरवेइयाए—

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते णं चिट्ठइ। दोण्ह वि वण्णओ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७५

कालोदसमुद्दस्स दारचउक्कं—

७४०. प०—कालोदस्स णं भंते! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—१. विजय, २. वेजयंते, ३. जयंते, ४. अपराजिए।

प०—कहि णं भंते! कालोदस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! कालोदे समुद्दे पुरत्थिमपेरंते पुक्खरवरदीव पुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीतोदाए महानदीए उप्पि—एत्थ णं कालोदस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते। अट्ठ जोयणाइं (उड्ढं उच्चत्तेणं) तं चेव पमाणं-जाव-रायहाणी।

प०—कहि णं भंते! कालोयस्स समुद्दस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते?

कालोदसमुद्र वर्णन—

कालोदसमुद्र के संस्थान—

७३८. वृत्त एवं वलयाकार संस्थान से स्थित कालोद नामक समुद्र धातकीखण्डद्वीप को चारों ओर से घेरकर स्थित है।

प्र०—भगवन्! कालोदसमुद्र क्या समचक्राकार स्थित है (अथवा) विषम चक्राकार स्थित है?

उ०—गौतम! (वह समुद्र) समचक्राकार स्थित है, विषम चक्राकार स्थित नहीं है।

कालोदसमुद्र की आयाम-विष्कम्भ-परिधि—

७३९. प्र०—भगवन्! कालोदसमुद्र की चक्राकार चौड़ाई व परिधि कितनी कही गई है?

उ०—गौतम! आठ लाख योजन की चक्राकार चौड़ाई है। इकानवें लाख, सतरह हजार छह सौ पचहत्तर योजन से कुछ अधिक की परिधि कही गई है।

कालोदसमुद्र की पद्मवरवेदिका—

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है। दोनों का वर्णन यहाँ कहना चाहिए।

कालोदसमुद्र के चार द्वार—

७४०. प्र०—भगवन्! कालोदसमुद्र के कितने द्वार कहे गये हैं?

उ०—गौतम! चार द्वार कहे गये हैं, यथा—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित।

प्र०—भगवन्! कालोदसमुद्र का विजय नामक द्वार कहाँ कहा गया है?

उ०—गौतम! कालोदसमुद्र के पूर्वान्त में, पुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध के पश्चिम में और शीतोदा महानदी के ऊपर कालोदसमुद्र का विजय नामक द्वार कहा गया है। प्रमाण आठ योजन ऊँचा पूर्ववत् है—यावत्—राजधानी है।

प्र०—भगवन्! कालोदसमुद्र का वैजयन्त नामक द्वार कहाँ कहा गया है?

---

१ सूरिय. पा. १९, सु. १००।
३ (क) सम. ९१, सु. २। (ख) सूरिय. पा. १९ सु. १००।
२ ठाणं ८, ६३।
४ ठाणं २, उ. ३, सु. ९३।

उ०—गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स दक्खिणपेरंते, पुक्खरवरदीवस्स दक्खिणद्धस्स उत्तरेणं, एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते ।

प०—कहि णं भंते ! कालोयसमुद्दस्स जयंते णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स पच्चत्थिमपेरंते पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमद्धस्स पुरत्थिमेणं, सीताए महाणदीए उप्पि—(एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स) जयंते णामं दारे पण्णत्ते ?

प०—कहि णं भंते ! (कालोयसमुद्दस्स) अपराजिए णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स उत्तरद्धपेरंते, पुक्खरवरदीवोत्तरद्धस्स दाहिणओ, एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स अपराजिए णामं दारे पण्णत्ते । सेसं तं चेव ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७५

उ०—गौतम ! कालोदसमुद्र के दक्षिणांत में, और पुष्करवरद्वीप के दक्षिणार्ध के उत्तर में कालोद समुद्र का वैजयन्त नामक द्वार कहा गया है ।

प्र०—भगवन् ! कालोदसमुद्र का जयंत नामक द्वार कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! कालोदसमुद्र के पश्चिमांत में, पुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्ध के पूर्व में और शीता महानदी के ऊपर जयंत नामक द्वार कहा गया है ।

प्र०—भगवन् ! कालोदसमुद्र का अपराजित नामक द्वार कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! कालोदसमुद्र के उत्तरार्ध के अन्त में और पुष्करवरद्वीप के उत्तरार्ध के दक्षिण में कालोदसमुद्र का अपराजित नामक द्वार कहा गया हैं । शेष वर्णन पूर्ववत् है ।

कालोयसमुद्दस्स दारस्स दारस्स य अन्तरं—

७४१. प०—कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवतियं केवतियं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा !

गाहा—बावीससयसहस्सा, बाणउति खलु भवे सहस्साइं ।
छच्चसया बायाला, दारंतर तिन्नि कोसा य ॥

दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २. सु. १७५

कालोदसमुद्र के एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर—

७४१ प्र०—भगवन् ! कालोदसमुद्र के एक द्वार से दूसरे द्वार के मध्य में व्यवहित अन्तर कितना कहा गया है ?

उ०—गौतम !

गाथार्थ—एक द्वार से दूसरे द्वार के मध्य का व्यवहित अन्तर बाईस लाख बानवे हजार छह सौ बियालीस योजन तथा तीन कोश का कहा गया है ।

कालोयस्स पुक्खरवरदीवद्धस्स य पएसाणं फुसणा—

७४२. प०—कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स पएसा पुक्खरवरदीवद्धं पुट्ठा ?

उ०—गोयमा ! तहेव !

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७५

कालोदसमुद्र और पुष्करवरद्वीपार्ध के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श—

७४२. प्र०—भगवन् ! कालोदसमुद्र के प्रदेश पुष्करवरद्वीपार्ध से स्पृष्ट है ?

उ०—गौतम ! (ये प्रश्नोत्तर) पूर्ववत् है ।

पुक्खरवरदीवद्धस्स कालोयसमुद्दस्स य परोप्परं जीवाणं उप्पई—

एवं पुक्खरवरदीवद्धस्स वि जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता कालोयसमुद्दे पच्चायंति । तहेव भाणियव्वं ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २. सु. १७५

कालोद और पुष्करवरद्वीपार्ध के जीवों की एक-दूसरे में उत्पत्ति—

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के जीव मर मरकर कालोदसमुद्र में उत्पन्न होते हैं । (ये प्रश्नोत्तर भी) पूर्ववत् कहने चाहिए ।

कालोदसमुद्दस्स नामहेऊ—

७४३. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—'कालोए समुद्दे कालोए समुद्दे' ?

कालोदसमुद्र के नाम का हेतु—

७४३. भगवन् ! किस कारण से कालोदसमुद्र कालोदसमुद्र कहा जाता है ?

उ०—गोयमा ! कालोयस्स णं समुद्दस्स उदके आसले मासले पेसले कालए मासरासिवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते,[1]

काल-महाकाला-एत्थ दुवे देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"कालोए समुद्दे कालोए समुद्दे ।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! कालोए समुद्दे सासए-जाव-णिच्चे ।[2] —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७४

उ०—गौतम ! कालोदसमुद्र का पानी स्वादिष्ट, पुष्टिकारक श्रेष्ठ, कृष्ण माष (उड़द) की राशि जैसे वर्ण वाला एवं प्राकृतिक पानी जैसे रस वाला कहा गया है ।

यहाँ काल और महाकाल नाम के महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं ।

इस कारण से गौतम ! यह कालोदसमुद्र कालोदसमुद्र कहा जाता है ।

अथवा गौतम ! कालोदसमुद्र शाश्वत है—यावत्—नित्य है ।



पुक्खरवरदीवो—

पुष्करवरद्वीप—

पुक्खरवरदीवस्स संठाणं—

७४४. कालोयं णं समुद्दं पुक्खरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाण-संठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति ।

तहेव-जाव-समचक्कवालसंठाणसंठिते, नो विसमचक्कवाल-संठाणसंठिए ।[3] —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७६

पुष्करवरद्वीप का संस्थान—

७४४. वृत्त (गोल) एवं वलयाकार संस्थान से स्थित पुष्करवर नामक द्वीप कालोदसमुद्र को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

उसी प्रकार—यावत्—समचक्राकार संस्थान से स्थित है, विषम चक्राकार संस्थान से स्थित नहीं है ।

पुक्खरवरदीवस्स विक्खंभ-परिक्खेवं—

७४५. प०—पुक्खरवरे णं भंते ! दीवे केवतियं चक्कवाल विक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सोलस जोयणसतसहस्साइं चक्कवाल विक्खंभेणं पण्णत्ते ।

गाहा—एगाजोयणकोडी, वाणउतिं खलु भवे सयसहस्सा ।
अउणाणउतिं च सहस्सा, अट्ठसया चउणउया परिक्खेवेणं पण्णत्ते (परिरओ) पुक्खरवरस्स ।[4]
—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७६

पुष्करवरद्वीप का विष्कम्भ और परिधि—

७४५. प्र०—भगवन् ! पुष्करवरद्वीप की चक्राकार चौड़ाई और परिधि कितनी कही गई हैं ?

उ०—गौतम ! सोलह लाख योजन की चक्राकार चौड़ाई कही गई है ।

गाथार्थ—एक करोड़, बाणवें लाख, निव्यासी हजार, आठ सौ चौरानवें योजन की परिधि पुष्करवरद्वीप की कही गई है ।

---

१ प्र०—कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! आसले पेसले मासले कालए मासरासिवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते ।
— जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८७

२ भग. स. ५ उ. १ सु. २६ ।

३ सूरिय. पा. १९, सू. १०० ।

४ सूरिय. पा. १९, सू. १०० ।

पुक्खरवरदीवस्स वेइया वणखंडो य —

७४६. से णं एगाए पउमवरवेदियाए[1] एगेण य वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते चिट्ठइ। दोण्ह वि वण्णओ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७६

पुक्खरवरदीवस्स चत्तारि दारा—

७४७. प०—पुक्खरवरस्स णं भंते ! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता?

उ०—गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—१. विजए, २. वेजयंते, ३. जयंते, ४. अपराजिते।

प०—कहि णं भंते ! पुक्खरवरस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा ! पुक्खरवरदीव पुरच्छिमपेरंते, पुक्खरोदसमुद्द पुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं पुक्खरवरदीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते।

तं चेव सव्वं, एवं चत्तारि वि दारा।

सीया-सीओदा णत्थि भाणियव्वाओ॥

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७४

चउण्हं दाराणमंतरं—

७४८. प०—पुक्खरवरस्स णं भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य, एस णं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा ! अडयालीसं च जोयणसयसहस्साइं बावीसं सहस्साइं चत्तारि य अउणुत्तरे जोयणसए दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते[2]।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७४

कालोदसमुद्दस्स पुक्खरवरदीवस्स य पएसाणं परोप्परं फुसणा—

७४९. "पदेसा दोण्ह वि पुट्ठा"—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७६

कालोदसमुद्दस्स पुक्खरवरदीवस्स य जीवाणं अण्णमण्णेसु उववज्जणं —

७५०. जीवा दोसु भाणियव्वा—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७६

पुक्खरवरदीवस्स णाम हेऊ—

७५१. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति—'पुक्खरवरदीवे, पुक्खरवरदीवे'?

पुष्करवरद्वीप की वेदिका और वनखण्ड—

७४६. वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ स्थित है। दोनों का वर्णन (यहाँ कहना चाहिए)।

पुष्करवरद्वीप के चार द्वार—

७४७. प्र०—भगवन् ! पुष्करवरद्वीप के द्वार कितने कहे गये हैं?

उ०—गौतम ! चार द्वार कहे गये हैं, यथा—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयंत, (४) अपराजित।

प्र०—भगवन् ! पुष्करवरद्वीप का विजय नामक द्वार कहाँ कहा गया है?

उ०—गौतम ! पुष्करवरद्वीप के पूर्वान्त में एवं पुष्करोद समुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिम में पुष्करवरद्वीप का विजय नामक द्वार कहा गया है।

उसका सब वर्णन पूर्ववत् है। इसी प्रकार चारों द्वारों का वर्णन भी पूर्ववत् कहना चाहिए। किन्तु यहाँ सीता और शीतोदा महानदियों का कथन नहीं करना चाहिए।

चारों द्वारों का अन्तर—

७४८. भगवन् ! पुष्करवरद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का व्यवहित अन्तर कितना कहा गया है?

उ०—गौतम ! पुष्करवरद्वीप के चारों द्वारों का व्यवहित अन्तर (अर्थात् प्रत्येक द्वार का अन्तर) अड़तालीस लाख, बाईस हजार, चार सौ, उनसत्तर योजन का है।

कालोदसमुद्र और पुष्करवरद्वीप के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श—

७४९. दोनों के प्रदेश परस्पर स्पृष्ट हैं।

कालोदसमुद्र और पुष्करवरद्वीप के जीवों की एक दूसरे में उत्पत्ति—

७५०. दोनों में जीव (मर-मरकर उत्पन्न होते हैं—ऐसा) कहना चाहिए।

पुष्करवरद्वीप के नाम का हेतु—

७५१. प्र०—भगवन् ! पुष्करवरद्वीप को पुष्करवरद्वीप ही क्यों कहा जाता है?

---

१ [illegible] दीवसमुद्दाणं वेइयाओ दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ताओ।

२ गाहा—अडयाल सयसहस्सा, बावीसं खलु भवे सहस्साइं।
[illegible] य चउरो, दारंतरं य पुक्खरवरस्स॥

—जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. १७४

उ०—गोयमा ! पुक्खरवरे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे पउमरुक्खा पउमवणसंडा णिच्चं कुसुमिता-जाव-चिट्ठन्ति ।

उ०—पुष्करवरद्वीप में स्थान स्थान पर पद्मवृक्ष हैं और पद्म वनखण्ड हैं वे नित्य कुसुमित हैं—यावत्—स्थित हैं।

पउम-महापउमरुक्खे—एत्थ णं पउम-पुण्डरीआ णामं दुवे देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति ।

(उक्त) पद्म और महापद्मवृक्ष पर पद्म और पुण्डरीक नामक दो देव रहते हैं जो महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले हैं।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति—पुक्खरवरदीवे, पुक्खरवरदीवे ।

गौतम ! इस कारण से पुष्करवरद्वीप को पुष्करवरद्वीप कहा जाता है।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! पुक्खरवरे दीवे सासए-जाव-णिच्चे । —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७६

अथवा गौतम ! पुष्करवरद्वीप (यह नाम) शाश्वत है—यावत्—नित्य है।

माणुसोत्तरपव्वयस्स पमाणं—

मानुषोत्तर पर्वत का प्रमाण—

७५२. प०—माणुसुत्तरे णं भंते ! पव्वते केवतियं उड्ढं उच्चत्तेणं ? केवतियं उव्वेहेणं ? केवतियं मूले विक्खंभेणं ? केवतियं मज्झे विक्खंभेणं ? केवतियं सिहरे विक्खंभेणं ? केवतियं अंतो गिरिपरिरएणं ? केवतियं बाहिं गिरिपरिरएणं ? केवतियं मज्झे गिरिपरिरएणं, केवतियं उवरिं परिरएणं ?

७५२. प्र०—भगवन् ! मानुषोत्तर पर्वत ऊपर की ओर ऊँचा कितना है ? भूमि में गहरा कितना है ? भूमि में चौड़ा कितना है ? मध्य में चौड़ा कितना है ? शिखर पर चौड़ा कितना है ? भूमि में उस पर्वत की परिधि कितनी है ? भूमि के बाहर उस पर्वत की परिधि कितनी है ? मध्य में उस पर्वत की परिधि कितनी है ?

उ०—गोयमा ! माणुसुत्तरे णं पव्वते सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं[1], चत्तारि तीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं,

उ०—गौतम ! मानुषोत्तर पर्वत सत्रह सौ इकवीस (१७२१) योजन ऊपर की ओर ऊंचा है। चार सौ तीस (४३०) योजन और एक कोश भूमि में गहरा है।

मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खंभेणं[2], मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसते विक्खंभेणं, उवरिं चत्तारि चउवीसे जोयणसते विक्खंभेणं,

मूल में एक हजार बावीस (१०२२) योजन चौड़ा है। मध्य में सात सौ तेवीस (७२३) योजन चौड़ा है। ऊपर चार सौ चौवीस (४२४) योजन चौड़ा है।

अंतो गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसते किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं,

भूमि में उस पर्वत की परिधि एक करोड़, बियालीस लाख, तीस हजार, दो सौ एगुनपचास (१,४२,३०,२४९) योजन से कुछ अधिक है।

बाहिरगिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं छत्तीसं च सहस्साइं सत्त चोद्दसोत्तरे जोयणसते परिक्खेवेणं,

भूमि के बाहर उस पर्वत की परिधि एक करोड़, बियालीस लाख, छत्तीस हजार, सात सौ चौदह (१,४२,३६,७१४) योजन की है।

मज्झे गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सतसहस्साइं चोत्तीसं च सहस्साइं अट्ठतेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं,

मध्य में उस पर्वत की परिधि एक करोड़, बियालीस लाख चौतीस हजार, आठ सौ तेवीस (१,४२,३४,८२३) योजन की है।

उवरिं गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं बत्तीसं च सहस्साइं नव य बत्तीसे जोयणसते परिक्खेवेणं,

ऊपर उस पर्वत की परिधि एक करोड़, बियालीस लाख, बत्तीस हजार, नव सौ बत्तीस (१,४२,३२,९३२) योजन की है।

मूले वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए,

मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर से पतला।

---

1 सम० १७, सु० ३। 2 ठां० १०, सु० ७२४।

अंतो सण्हे, मज्झे उदग्गे, बाहिं दरिसणिज्जे, ईसि सण्णिसण्णे सीहणिसाई, अवद्धजवरासिसंठाणसंठिए, सव्वजंबूणयामए अच्छे सण्हे-जाव-पडिरूवे।

उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेदियाहिं दोहि य वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। वण्णओ दोण्ह वि। —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७८

अन्दर से चिकना, मध्य में श्रेष्ठ, ऊपर से दर्शनीय बैठे हुए सिंह के समान एक ओर से नीचा तथा एक ओर से ऊँचा, आधे यवों की राशि के आकार से स्थित, सम्पूर्ण पर्वत जम्बूनद स्वर्णमय है, स्वच्छ है, श्लक्ष्ण है—यावत्—मनोहर है।

(वह पर्वत) दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं से एवं दो वनखण्डों से चारों ओर से घिरा हुआ है। यहाँ दोनों का वर्णक कहना चाहिए।

माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स चत्तारि कूडा—

७५३. माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स चउद्दिसिं चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तं जहा—१. रयणे, २. रयणुच्चए, ३. सव्वरयणे, ४. रयणसचए। —ठाणं अ० ४, उ० २, सु० ३००

मानुषोत्तर पर्वत के चार कूट—

७५३. मानुषोत्तर पर्वत के चारों दिशाओं में चार कूट कहे गये हैं। यथा—(१) रत्नकूट, (२) रत्नोच्चयकूट, (३) सर्वरत्नकूट, (४) रत्नसंचयकूट।

माणुसोत्तर पव्वयस्स नामहेऊ—

७५४. प०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति—"माणुसुत्तरे पव्वत्ते, माणुसुत्तरे पव्वते?"

उ०—गोयमा! माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स अंतो मणुया, उप्पिं सुवण्णा, बाहिं देवा।

अदुत्तरं च णं गोयमा! माणुसुत्तरपव्वतं मणुया ण कयाइ वीतिवइंसु वा, वीतिवयंति वा, वीतिवइस्संति वा, णण्णत्थ चारणेहिं वा, विज्जाहरेहिं वा, देवकम्मुणा वावि।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—"माणुसुत्तरे पव्वते माणुसुत्तरे पव्वते।"

अदुत्तरं च णं गोयमा! माणुसुत्तरे पव्वए[1] सासए -जाव-णिच्चे ति।—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७८

मानुषोत्तर पर्वत के नाम का हेतु—

७५४ प्र०—भगवन्! मानुषोत्तरपर्वत मानुषोत्तरपर्वत ही क्यों कहा जाता है?

उ०—गौतम! मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर की ओर मनुष्य रहते हैं, ऊपर सुवर्णकुमार (भवनवासीदेव) रहते हैं, और बाहर देव (ज्योतिषीदेव) रहते हैं।

अथवा गौतम! जंघाचारण, विद्याधर और देव अपहृत मनुष्य के अतिरिक्त किसी भी मनुष्य ने मानुषोत्तर पर्वत का अतीत में उल्लंघन किया नहीं था, वर्तमान में उल्लंघन करते नहीं है और भविष्य में भी उल्लंघन करेंगे नहीं।

गौतम! इस कारण से मानुषोत्तरपर्वत मानुषोत्तरपर्वत ही कहा जाता है।

अथवा गौतम! मानुषोत्तरपर्वत यह नाम शाश्वत है—यावत्—नित्य है।

पुक्खरवरदीवस्स दुवे भागा—

७५५. पुक्खरवरदीवस्स णं बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं माणुसुत्तरे नामं पव्वते पण्णत्ते वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते जे णं पुक्खरवरं दीवं दुहा विभयमाणे विभयमाणे चिट्ठति, तं जहा—अब्भिंतरपुक्खरद्धं च, बाहिरपुक्खरद्धं च।[2]

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७६

पुष्करवरद्वीप के दो विभाग—

७५५. पुष्करवरद्वीप के ठीक मध्य भाग में वृत्त वलयाकार संस्थान से स्थित मानुषोत्तर नामक पर्वत कहा गया है जो पुष्करवरद्वीप के दो विभाग करता हुआ स्थित है, यथा—(१) आभ्यन्तर पुष्करार्ध (२) बाह्य पुष्करार्ध।

अब्भिंतर पुक्खरद्धस्स संठाण—

७५६. प०—अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं भंते! केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

आभ्यन्तर पुष्करार्ध का संस्थान—

७५६. प्र०—भगवन्! आभ्यन्तर पुष्करार्ध की चक्राकार चौड़ाई कितनी कही गई है और परिधि कितनी कही गई है?

---

1 ठाणं अ० ३, उ० ४, सु० १८१, मानुषोत्तरपर्वत के नाम का उल्लेख है।

2 सूरिय० पा० १९ सु० १००।

उ०—गोयमा ! अट्ठ जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं[1] पण्णत्ते।

गाहा—एक्काजोयणकोडी, पातालीसं च सतसहस्साइं च।
तीसं च सहस्साइं, दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसते ॥
किंचिविसेसाहिया परिक्खेवेणं पण्णत्ते।[2]

उ०—गौतम ! आठ लाख योजन की चक्राकार चौड़ाई कही गई है।

गाथार्थ—एक करोड़, पैंतालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास (१,४५,३०,२४९) योजन से कुछ अधिक की परिधि कही गई है।

पुक्खरवरदीवड्ढे कम्मभूमीओ—

७५७. पुक्खरवरदीवड्ढ पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे य तओ तओ कम्मभूमीओ पण्णत्ताओ; तं जहा—

१. भरहे, २. एरवए, ३. महाविदेहे।

—ठाणं अ० ३, उ० ३, सु० १८९

पुष्करवरद्वीपार्ध में कर्मभूमियाँ—

७५७. पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्ध में तीन तीन कर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा—

(१) भरत, (२) ऐरवत, (३) महाविदेह।

पुक्खरवरदीवड्ढे अकम्मभूमीओ—

७५८. पुक्खरवरदीवड्ढ पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे य छ छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. हेमवए, २. हेरण्णवए, ३. हरिवस्से, ४. रम्मगवस्से, ५. देवकुरा, ६. उत्तरकुरा।[3] —ठाणं अ० ६, सु० ५२२

पुष्करवरद्वीपार्ध में अकर्मभूमियाँ—

७५८. पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में छः छः अकर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा—

(१) हैमवत, (२) हैरण्यवत, (३) हरिवर्ष, (४) रम्यक्वर्ष, (५) देवकुरा, (६) उत्तरकुरा।

पुक्खरवरदीवड्ढे वासहरपव्वया—

७५९. पुक्खरवरदीवड्ढ पुरच्छिमद्धेणं सत्तवासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते-जाव-मंदरे।

एवं पच्चत्थिमद्धे वि, —ठाणं ७, सु० ५५५

७६०. पुक्खरवरदीवड्ढपुरच्छिमद्धे णं छ वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते-जाव-सिहरी।

एवं पच्छद्धिमद्धे वि[4], —ठाणं ६, सु० ५२२

पुष्करवरद्वीपार्ध में वर्षधर पर्वत—

७५९. पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं, यथा—क्षुद्रहिमवंत पर्वत—यावत्—मन्दर पर्वत।

इसी प्रकार पश्चिमार्ध में भी हैं।

७६०. पुष्करवरद्वीपार्ध में छ वर्षधर पर्वत कहे गये हैं, यथा—क्षुद्रहिमवंत पर्वत—यावत्—शिखरी पर्वत।

इसी प्रकार पश्चिमार्ध में भी हैं।

---

१ (क) अब्भंतरपुक्खरद्धे णं अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते। एवं बाहिरपुक्खरद्धे वि। —ठाणं ८, सु० ६३२
(ख) सूरिय० पा० १९ सु० १००।

२ कोडी बायालीसा, तीसं दोण्णि य सया अगुणवण्णा।
पुक्खरअद्ध परिरओ, एवं च मणुसखेत्तस्स ॥ —जीवा. पडि. ३ उ० २ सु० १७६

३ पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
(१) हेमवए, (२) हरिवासे, (३) देवकुरा।
पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं तओ कम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
(१) उत्तरकुरा, (२) रम्मगवासे, (३) एरण्णवए। —ठाणं अ० ३, उ० ४, सु० १९९

४ (क) पुक्खरवरदीवड्ढपुरच्छिमद्धे मंदरदाहिणेणं तओ वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) चुल्लहिमवंते, (२) महाहिमवंते, (३) णिसढे।
पुक्खरवरदीवड्ढपुरच्छिमद्धे मंदरउत्तरेणं तओ वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—(१) नीलवंते, (२) रूप्पी, (३) सिहरी।
एवं पच्छद्धिमद्धे वि। —ठाणं ३, उ० ४, सु० १९७
(ख) पुक्खरवरदीवड्ढ पुरच्छिमद्धे दो चुल्लहिमवंता—जाव—दो सिहरी। एवं पुक्खरवरदीवड्ढ पच्चत्थिमद्धे वि।
—ठाणं २, उ० ३, सु० ९३

पुक्खरवरदीवड्ढे वक्खारपव्वया—

७६१. पुक्खरवरदीवड्ढ पुरच्छिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए उभओ कूले दस वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—मालवंते-जाव-सोमणसे।

पुक्खरवरदीवड्ढ पुरच्छिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीतोदाए महाणईए उभओ कूले दस वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—विज्जुप्पभे-जाव-गंधमादणे,

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ पच्चत्थिमद्धे वि।

—ठाणं १०, सु० ७६८

पुष्करवरद्वीपार्ध में वक्षस्कार पर्वत—

७६१. पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में मन्दर पर्वत से पूर्व में शीता महानदी के दोनों किनारों पर दस वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं, यथा—मालवंत पर्वत—यावत्—सौमनस पर्वत।

पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में मन्दर पर्वत से पश्चिम में शीतोदा महानदी के दोनों किनारों पर दस वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं, यथा—विद्युत्प्रभ पर्वत—यावत्—गंधमादन पर्वत।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में भी वक्षस्कार पर्वत हैं।

पुक्खरवरदीवड्ढे मंदरपव्वया—

७६२. पुक्खरवरदीवड्ढे णं दो मंदरा पव्वया पण्णत्ता,

—ठाणं २, उ० ३, सु० ९२

पुष्करवरद्वीपार्ध में मन्दर पर्वत—

७६२. पुष्करवरद्वीपार्ध में दो मन्दर पर्वत कहे गये हैं।

७६३. पुक्खरवरदीवड्ढगाणं मंदरा दसजोयणसयाइं[1] उव्वेहेणं -जाव-दस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

—ठाणं १०, सु० ७२१

७६३. पुष्करवरद्वीपार्ध के मन्दर एक हजार योजन भूमि में गहरे हैं—यावत्—दस योजन चौड़े कहे गये हैं।

७६४. पुक्खरवरदीवड्ढेणं दो मंदरचूलिया पण्णत्ता[2],

—ठाणं २, उ० ३, सु० ९२

७६४. पुष्करवरद्वीपार्ध में दो मंदरचूलिकायें कही गई हैं।

पुक्खरवरदीवड्ढ उसुयारपव्वया—

७६५. पुक्खरवरदीवड्ढे दो उसुयारपव्वया पण्णत्ता।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ९३

पुष्करवरद्वीपार्ध में इषुकार पर्वत—

७६५. पुष्करवरद्वीपार्ध में दो इषुकार पर्वत कहे गये हैं।

पुक्खरवरदीवड्ढे चक्कवट्टिविजया रायहाणीओ य—

पुष्करवरद्वीपार्ध में चक्रवर्तिविजय और उनकी राजधानियाँ—

७६६. पुक्खरवरदीवड्ढे णं अट्ठसट्ठि विजया अट्ठसट्ठि रायहाणीओ पण्णत्ताओ। —सम० ६८, सु० २

७६६. पुष्करवरद्वीपार्ध में अड़सठ (६८) चक्रवर्ति विजय हैं और उनकी अड़सठ (६८) राजधानियाँ कही गई हैं।

पुक्खरवरदीवड्ढे चउत्तर दुसया तित्था—

पुष्करवरद्वीपार्ध में दो सौ चार तीर्थ—

७६७. एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे वि, पच्चत्थिमद्धे वि।[3]

—ठाणं अ० ३, उ० १, सु० १४२

७६७. इस प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में भी और पश्चिमार्ध में भी तीर्थ हैं।

...एवं धायइसंडपुरत्थिमद्धे वि वक्खारा भाणियव्वा—जाव—पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे —ठाण १०, सु० ७६८ में संक्षिप्त पाठ है, ऊपर विस्तृत पाठ दिया है।

एवं—जाव—पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे—जाव—मंदरचूलियंति। —ठाणं, १० उ० ३, सु० ७२१

[illegible]—जाव—पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे वक्खारा [illegible] भाणियव्वं।

—ठाणं ४ उ० २, सु० ३३८

[illegible]

1 [illegible]

2 [illegible]

3 [illegible]

पुक्खरवरदीवड्ढे तुल्ला महद्दुमा—

७६८. पुक्खरवरदीवड्ढपुरच्छिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं दो कुराओ बहुसमतुल्लाओ अविसेस मणाणत्ताओ अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति, आयाम-विक्खम्भ-संठाण-परिणाहेणं त जहा— १. देवकुरा चेव, २. उत्तरकुरा चेव।

तत्थ णं दो महइमहालया महद्दुमा बहुसमतुल्ला, अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वहे-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१. कूडसामली चेव, २. पउमरुक्खे चेव।[1]

तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया-जाव-महासोक्खा पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तं जहा—१. गरुले चेव वेणुदेवे, २. पउमे चेव।

पुक्खरवरदीवड्ढ पच्चत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो कुराओ बहुसमतुल्लाओ-जाव-आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१. देवकुरा चेव, २. उत्तरकुराओ चेव।

तत्थ णं दो महइ महालया महद्दुमा बहुसमतुल्ला-जाव-आयाम विक्खंभुच्चत्तोव्वेह सठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१. कूडसामली चेव, २. महापउमरुक्खे चेव।[2]

तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया-जाव-महासोक्खा पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तं जहा—१. गरुले चेव वेणुदेवे, २. पुण्डरीए चेव। —ठाण अ० २, उ० ३, सु० ९३

पुष्करवरद्वीपार्ध में तुल्य महाद्रुम—

७६८. पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में दो कुरा अधिक सम एवं तुल्य हैं, न इनमें विशेषता है न इनमें नानापन है। आयाम-विष्कम्भ, संस्थान एवं परिधि से एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) देवकुरा, (२) उत्तरकुरा।

वहाँ दो अतिविशाल महावृक्ष अधिक सम एवं तुल्य हैं, न इनमें विशेपता हैं, न इनमें नानापन है, आयाम-विष्कम्भ-ऊँचाई गहराई संस्थान एवं परिधि से एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) कूटशाल्मली वृक्ष (२) पद्मवृक्ष।

उन वृक्षों पर महर्धिक—**यावत्**—महासुखी पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं, यथा—(१) गरुड वेणुदेव, (२) पद्मदेव।

पुष्करवरद्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में दो कुरा अधिक सम एवं तुल्य है—**यावत्**—आयाम विष्कम्भ संस्थान एवं परिधि से एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। यथा—(१) देवकुरा, (२) उत्तरकुरा।

उनमें दो अति विशाल महावृक्ष हैं वे अधिक सम एवं तुल्य हैं—**यावत्**—वे आयाम, विष्कम्भ, ऊँचाई, गहराई, संस्थान एवं परिधि से एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) कूटशाल्मली वृक्ष, (२) महापद्म वृक्ष।

उन वृक्षों पर महर्धिक—**यावत्**—महासुखी, पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं, यथा—(१) गरुडवेणु देव, (२) पुण्डरीक देव।

अब्भितर पुक्खरद्धस्स णामहेउ—

७६९. प०—से केणट्ठे णं भंते! एवं वुच्चति—"अब्भितरपुक्खरद्धे य, अब्भितरपुक्खरद्धे य।

उ०—गोयमा! अब्भितर पुक्खरद्धेणं माणुसुत्तरेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते णं चिट्ठति। से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—अब्भितरपुक्खरद्धे य, अब्भितरपुक्खरद्धे य।

अदुत्तरं च णं गोयमा! अब्भितरपुक्खरद्धे य सासए-जाव-णिच्चे। —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७६

आभ्यन्तरपुष्करार्ध के नाम का हेतु—

७६९. प्र०—भगवन्! आभ्यन्तर पुष्करार्ध को आभ्यन्तर पुष्करार्ध क्यों कहा जाता है?

उ०—गौतम! आभ्यन्तर पुष्करार्ध को मानुषोत्तर पर्वत चारों ओर से घेरकर स्थित है। गौतम! इस कारण से आभ्यन्तर पुष्करार्ध को आभ्यन्तर पुष्करार्ध कहा जाता है।

अथवा गौतम! आभ्यन्तर पुष्करार्ध (यह नाम) शाश्वत है—**यावत्**—नित्य है।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्लावासा—

७७०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं दो वासा पण्णत्ता,

अढाई द्वीप में तुल्य वर्ष—

७७०. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र कहे गये हैं।

---

१ ठाणं अ० ८ सु० ६४१।

२ ठाणं अ० ८ सु० ६४१।

बहुसमतुल्ला, अविसेसमणाणत्ता,

वे (दोनों क्षेत्र) सर्वथा सदृश हैं, न उनमें किसी प्रकार की विशेषता है और न नानापन है।

अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति आयाम-विक्खंभ-संठाण परिणाहेणं तं जहा—१. भरहे चेव, २. एरवए चेव।

एवमेएणमभिलावेणं,

१. हेमवए चेव, २. हेरण्णवए चेव,

१. हरिवासे चेव, २. रम्मएवासे चेव,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ८०

वे लम्बाई, चौड़ाई, संस्थान और परिधि से एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। यथा—(१) भरत, (२) ऐरवत।

इसी प्रकार ऐसे ही अभिलाप से—

(१) (दक्षिण में) हेमवत, (२) (उत्तर में) हेरण्यवत।

(१) (दक्षिण में) हरिवर्ष, (२) (उत्तर में) रम्यक्वर्ष क्षेत्र तुल्य हैं।

२. एवं धायइसंडे पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ९९

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में भी दो दो तुल्य क्षेत्र हैं।

३. एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १०३

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी दो दो तुल्य क्षेत्र हैं।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्ला खेत्ता—

अढाई द्वीप में तुल्य क्षेत्र—

७७१. १. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं दो खेत्ता पण्णत्ता,

बहुसमतुल्ला, अविसेससमणाणत्ता,

अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति, आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं पण्णत्ता, तं जहा—१. पुव्वविदेहे चेव, २. अवरविदेहे चेव,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ८१

७७१. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व-पश्चिम में दो क्षेत्र कहे गये हैं।

वे (दोनों क्षेत्र) सर्वथा सदृश हैं, न उनमें किसी प्रकार की विशेषता है और न नानापन है।

वे लम्बाई, चौड़ाई, आकार और परिधि से एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—१. पूर्वविदेह, (२) पश्चिम विदेह।

२. एवं धायइसंडे पुरत्थिमद्ध, पच्चत्थिमद्धे वि,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ९९

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी तुल्य क्षेत्र हैं।

३. एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १०३

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी तुल्य क्षेत्र है।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्ला कुरा—

अढाई द्वीप में तुल्य कुरा—

७७२. १. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो कुराओ पण्णत्ताओ,

बहुसमतुल्लाओ, अविसेसमणाणत्ताओ,

अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति, आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१. देवकुरा चेव २. उत्तरकुरा चेव।[1]

तत्थ णं दो महइमहालया महादुमा पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला, अविसेसमणाणत्ता,

७७२. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में दो कुरा कहे गये हैं।

वे (दोनों क्षेत्र) सर्वथा सदृश हैं, न उनमें किसी प्रकार की विशेषता है और न नानापन है।

लम्बाई, चौड़ाई, आकार और परिधि से एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। यथा—(दक्षिण में) देवकुरा, (२) (उत्तर में) उत्तरकुरा।

वहाँ दो अतिविशाल महावृक्ष कहे गये हैं जो सर्वथा समान है, उनमें किसी प्रकार की कोई विशेषता नहीं है और न नानापन है।

---

१ (क) स्था० अ० ७, सु० ५५५ में जम्बूद्वीप में सात वर्ष कहे गये हैं किन्तु यहाँ समान प्रमाण की विवक्षा होने के कारण छ वर्ष कहे गये हैं।

(ख) ठाणं० अ० ३, उ० ४, सुत्तं १९९ (ग) ठाणं अ० ६, सुत्तं ५२२।

अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति, आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१. कूडसामली चेव, २. जंबू चेव सुदंसणा,

तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया, महज्जुइया, महाणुभागा, महायसा, महाबला, महासोक्खा, पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—

१. गरुले चेव वेणुदेवे, २. अणाढिए च्चेव जंबुद्दीवाहिवइ,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ८२

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे,
णवरं—दुमा १. कूडसामली चेव, २. धायइरुक्खे चेव,
देवा, १. गरुले चेव वेणुदेवे, २. सुदंसणे चेव।
एवं धायइसंडे दीवे पच्चत्थिमद्धे,
णवरं—दुमा, १. कूडसामली चेव, २. महाधायइरुक्खे,
देवा, १. गरुले चेव वेणुदेवे, २. पियदंसणे चेव।

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं० ९९

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ पुरत्थिमद्धे,
णवरं—महद्दुमा, १. कूडसामली चेव, २. पउमरुक्खे चेव,
देवा—१. गरुले चेव वेणुदेवे, २. पउमे चेव,
एवं पुक्खरवरदीवड्ढ पच्चत्थिमद्धे,
णवरं—महद्दुमा, १. कूडसामली चेव, २. महापउमरुक्खे चेव,
देवा—१. गरुले चेव वेणुदेवे, २. पुण्डरीए चेव,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १०३

लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई, आकार और परिधि से वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) कूटशाल्मली, (२) जम्बू-सुदर्शना।

वहाँ पल्योपम की स्थिति वाले, महाऋद्धि वाले, महाद्युति वाले, महासामर्थ्य वाले, महायश वाले, महाबल वाले, महासुख भोगने वाले दो देव रहते हैं यथा—

(१) गरुडवेणुदेव, (२) जम्बूद्वीपाधिपति अनाधृत देव।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में है—
विशेष—वृक्ष (१) कूटशाल्मली वृक्ष, (२) धातकी वृक्ष।
देव (१) गरुड वेणुदेव, (२) सुदर्शन देव।
इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पश्चिमार्ध में है—
विशेष—वृक्ष (१) कूटशाल्मलीवृक्ष (२) महाधातकीवृक्ष।
देव (१) गरुडवेणुदेव, (२) प्रियदर्शनदेव।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में है—
विशेष—वृक्ष (१) कूटशाल्मली वृक्ष, (२) पद्मवृक्ष।
देव (१) गरुडवेणुदेव, (२) पद्मदेव।
इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में है—
विशेष—वृक्ष (१) कूटशाल्मलीवृक्ष (२) महापद्मवृक्ष।
देव (१) गरुडवेणुदेव, (२) पुण्डरीकदेव।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्ला वासहरपव्वया—

७७३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे णं दो वासहरपव्वया पण्णत्ता,

बहुसमतुल्ला, अविसेसमणाणत्ता,

अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति, आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१. चुल्लहिमवंते चेव, २. सिहरी चेव,

एवं १. महाहिमवंते चेव, २. रुप्पि चेव,
एवं १. निसढे चेव, २. नीलवंते चेव[1]।

ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ८३

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि,

१. दो चुल्लहिमवंता,
२. दो महाहिमवंता,

अढाईद्वीप में तुल्य वर्षधर पर्वत—

७७३. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में दो वर्षधर पर्वत कहे गये हैं।

वे (दोनों पर्वत) सर्वथा सदृश हैं, न उनमें किसी प्रकार की विशेषता है और न नानापन है।

वे लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई, संस्थान और परिधि से एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(दक्षिण में) क्षुद्र हिमवन्त पर्वत (२) (उत्तर में) शिखरी पर्वत।

(दक्षिण में) महाहिमवान् पर्वत (उत्तर में) रुक्मिपर्वत।
(दक्षिण में) निषधपर्वत, (उत्तर में) नीलवंत पर्वत।

धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में वर्षधर पर्वत हैं।

(१) (दक्षिण में) दो क्षुद्र हिमवन्त पर्वत हैं।
(२) (उत्तर में) दो महाहिमवन्त पर्वत हैं।

---

१ स्था० अ० ७, सूत्र ५५५ में जम्बूद्वीप में सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं किन्तु यहाँ समान प्रमाण की विवक्षा होने के कारण मंदरपर्वत को छोड़कर छः वर्षधर पर्वत कहे गये हैं।

३. दो निसढा,
४. दो नीलवंता,
५. दो रुप्पी,
६. दो सिहरी, —ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १००

एवं पुक्खरवरदीवड्ढे— पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि, दो चुल्लहिमवंता-जाव-दो सिहरी।
—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १०३

(३) (दक्षिण में) दो निषध पर्वत हैं।
(४) (उत्तर में) दो नीलवन्त पर्वत हैं।
(५) (दक्षिण में) दो रुक्मि पर्वत हैं।
(६) (उत्तर में) दो शिखरी पर्वत हैं।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में भी दो क्षुद्रहिमवान्—यावत्—दो शिखरी वर्षधर पर्वत है।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्ला वट्टवेयड्ढपव्वया—

७७४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे णं हेमवय-हेरण्णवएसु वासेसु दो वट्टवेयड्ढपव्वया पण्णत्ता,

बहुसमतुल्ला, अविसेसमणाणत्ता,

अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति, आयाम-विक्खंभोच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—

१. सद्दावई चेव,
२. वियडावई चेव,

तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तं जहा—

१. साती चेव, २. पभासे चेव।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं हरिवास-रम्मएसु वासेसु दो वट्टवेयड्ढपव्वया पण्णत्ता,

बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—

१. गंधावती चेव, २. मालवंतपरियाए चेव।

तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तं जहा—

१. अरुणे चेव, २. पउमे चेव,
—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ८४

अढाईद्वीप में तुल्य वृत्तवैताढ्य पर्वत —

७७४. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में हेमवत-हैरण्यवत् क्षेत्रों में दो वृत्त-वैताढ्यपर्वत कहे गये हैं।

वे (दोनों पर्वत) सर्वथा सदृश हैं, उनमें न किसी प्रकार की विशेषता है और न नानापन है।

वे लम्बाई चौड़ाई ऊँचाई गहराई संस्थान और परिधि से एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—

(दक्षिण में हैमवतक्षेत्र में) शब्दापाति (वृत्तवैताढ्य पर्वत) है।
(उत्तर में हैमवत क्षेत्र में) विकटापाति (वृत्तवैताढ्य पर्वत) हैं।

उन पर महर्धिक—**यावत्**—पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं, यथा—

(शब्दापाती पर्वत पर) स्वातिदेव, (विकटापाती पर्वत पर) प्रभास देव।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष में दो वृत्तवैताढ्य पर्वत कहे गये हैं।

वे (दोनों पर्वत) सर्वथा सदृश हैं—**यावत्**—यथा—

(दक्षिण में हरिक्षेत्र में) गंधापाती (वृत्तवैताढ्य पर्वत) है।
(उत्तर में रम्यक्क्षेत्र में) माल्यवन्तपर्याय (वृत्तवैताढ्य पर्वत) है।

उन पर महर्धिक—**यावत्**—पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं, यथा—

(गंधापाती पर्वत पर) अरुणदेव, (माल्यवन्तपर्याय पर्वत पर) पद्मदेव।

धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि—

७७५. दो सद्दावई, दो सद्दावईवासी साई देवा,

दो वियडावई, दो वियडावईवासी पभासा देवा,

दो गंधावई, दो गंधावईवासी अरुणा देवा,

धातकीखण्डद्वीप (के पूर्वार्ध-पश्चिमार्ध) में—

७७५. दो शब्दापाती पर्वत हैं, दो शब्दापाती पर्वतवासी दो स्वाती देव हैं।

दो विकटापाती पर्वत हैं, दो विकटापाती पर्वतवासी दो प्रभास देव हैं।

दो गंधापाती पर्वत हैं दो गंधापाती पर्वतवासी दो अरुण देव हैं।

दो मालवंतपरियागा, दो मालवंतपरियागवासी पउमा-देवा, —ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १००

दो माल्यवन्तपर्याय पर्वत हैं, दो माल्यवन्तपर्याय पर्वतवासी दो पद्मदेव हैं।

एवं पुक्खरवरदीवड्ढे, पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि।

—ठाणं० अ० २, उ० ३, सुत्तं १०३

इसी प्रकार पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी वृत्तवैताढ्य पर्वत हैं।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्ला वक्खारपव्वया—

अढाईद्वीप में तुल्य वक्षस्कार पर्वत—

७७६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं देवकुराए कुराए पुव्वावरे पासे एत्थ णं आसखंधगसरिसा अद्धचंदसंठाणसंठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता,

बहुसमतुल्ला, अविसेसमणाणत्ता,

अण्णमण्णं णाइवट्टन्ति आयाम-विक्खंभोच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—

१. सोमणसे चेव, २. विज्जुप्पभे चेव,

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं,

उत्तरकुराए कुराए पुव्वावरे पासे, एत्थ णं आसखंधग-सरिसा अद्धचंदसंठाणसंठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता,

बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—

१. गंधमायणे चेव, २. मालवंते चेव।

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ८५

७७६. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में देवकुरा कुरा के पूर्व-पश्चिम पार्श्व में अश्वस्कन्ध के सदृश अर्धचन्द्र के आकार से स्थित दो वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं।

वे (दोनों पर्वत) सर्वथा सदृश हैं न उनमें किसी प्रकार की विशेषता है और न नानापन है।

वे लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई, संस्थान और परिधि से एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं यथा—

(१) सौमनस, (२) विद्युत्प्रभ।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में।

उत्तरकुरा कुरा के पूर्व-पश्चिम पार्श्व में अश्वस्कन्ध के सदृश अर्धचन्द्र के आकार से स्थित दो वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं।

वे (दोनों पर्वत) सर्वथा सदृश हैं—**यावत्**—यथा—

(१) गंधमादन पर्वत, (२) मालवन्त पर्वत।

धायईसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे—

धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में—

७७७. दो मालवंता, दो चित्तकूडा,
दो पम्हकूडा, दो नलिनकूडा,
दो एगसेला, दो तिकूडा,
दो वेसमणकूडा, दो अंजणा,
दो मातंजणा, दो सोमणसा,
दो विज्जुप्पभा, दो अंकावती,
दो पम्हावती, दो आसीविसा,
दो सुहावहा, दो चंदपव्वया,
दो सूरपव्वया, दो णागपव्वया,
दो देवपव्वया, दो गंधमायणा,
दो उसुगारपव्वया,

एवं पच्चत्थिमद्धे वि।

—ठाणं अ० २, उ० ३, सु० १००

एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि।

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १०३

७७७. दो माल्यवन्त पर्वत, दो चित्रकूट पर्वत
दो पक्ष्मकूट पर्वत, दो नलिनकूट पर्वत
दो एकशैल पर्वत, दो त्रिकूट पर्वत
दो वैश्रमणकूट पर्वत, दो अंजन पर्वत
दो मातंजन पर्वत, दो सौमनस पर्वत
दो विद्युत्प्रभ पर्वत, दो अंकावती पर्वत
दो पक्ष्मावती पर्वत, दो आशीविष पर्वत
दो सुखावह पर्वत, दो चन्द्र पर्वत
दो सूर्य पर्वत, दो नाग पर्वत
दो देव पर्वत, दो गंधमादन पर्वत
दो इषुकार पर्वत।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पश्चिमार्ध में भी वक्षस्कार पर्वत एवं इषुकार पर्वत हैं।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में तथा पश्चिमार्ध में भी हैं।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्ला दीहवेयड्ढा—

अढाईद्वीप में तुल्य दीर्घ वैताढ्य पर्वत—

७७८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं दो दीह-वेयड्ढा पण्णत्ता,

७७८. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में दो दीर्घ-वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं।

बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता,

अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति आयाम-विक्खंभोच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा —

१. भारहए चेव दीहवेयड्ढे,

२. एरावए चेव दीहवेयड्ढे।

—ठाणं० २, उ० ३, सुत्तं ८६

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे, वि।

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ९९

एवं पुक्खवरदीवड्ढ पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि।

—ठाणं अ० २, उ. ३, सुत्तं १०३

वे (दोनों पर्वत) सर्वथा सदृश हैं, न उनमें किसी प्रकार की विशेषता है और न नानापन है।

वे लम्बाई, चौड़ाई; ऊँचाई, गहराई, संस्थान और परिधि से एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—

(१) (दक्षिण में) भरतक्षेत्र में दीर्घवैताढ्य पर्वत।

(२) (उत्तर में) ऐरवत क्षेत्र में दीर्घवैताढ्य पर्वत।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध एवं पश्चिमार्ध में भी दीर्घवैताढ्य पर्वत हैं।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध-पश्चिमार्ध में भी दीर्घ-वैताढ्य पर्वत हैं।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्लाओ गुहाओ—

७७९. भारहए णं दीहवेयड्ढे दो गुहाओ पण्णत्ताओ,

बहुसमतुल्लाओ, अविसेसमणाणत्ताओ,

अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति आयाम-विक्खंभुच्चत्त-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१. तिमिसगुहा चेव, २. खंडप्पवाय-गुहा चेव।

तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तं जहा—१. कयमालए चेव, २. णट्टमालए चेव।

एवं एरवए वि दीहवेयड्ढे दो गुहाओ,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ८६

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ९९

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ-पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सु० १०३

अढाई द्वीप में तुल्य गुफाएँ—

७७९. भरतक्षेत्र के दीर्घवैताढ्य पर्वत पर दो गुफाएँ कही गई हैं।

वे (दोनों गुफाएँ) सर्वथा सदृश हैं। न उनमें किसी प्रकार की विशेषता है और न नानापन है।

वे लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, संस्थान और परिधि से एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करती है, यथा—(१) तमिस्र गुफा, (२) खण्डप्रपात गुफा।

उनमें महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं यथा—(१) कृतमालदेव, (२) नृत्यमालकदेव।

इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र के दीर्घवैताढ्य पर्वत पर ये गुफायें हैं।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध-पश्चिमार्ध में भी है।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध-पश्चिमार्ध में भी हैं।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्ला कूडा—

७८०. १. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता।

बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता,

अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति आयाम-विक्खंभुच्चत्त-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१. चुल्लहिमवंतकूडे चेव, २. वेसमण-कूडे चेव।

२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं महाहिमवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता,

अढाई द्वीप में तुल्य कूट—

७८०. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में क्षुद्र हिमवन्त वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं।

वे (दोनों कूट) सर्वथा सदृश हैं, उनमें न किसी प्रकार की विशेषता है, और न नानापन है।

वे लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, संस्थान और परिधि से एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। यथा—(१) क्षुद्रहिमवन्त कूट, (२) वैश्रमण कूट।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं।

बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—१. महाहिमवंतकूडे चेव, २. वेरुलिएकूडे चेव।

वे (दोनों कूट) सर्वथा सदृश हैं—**यावत्**—यथा—(१) महाहिमवन्त कूट, (२) वैडूर्य कूट।

३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं निसढे वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता,

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं।

बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—१. निसधकूडे चेव, २. रुयगकूडे चेव।

वे (दोनों कूट) सर्वथा सदृश हैं—**यावत्**—यथा—(१) निषधकूट, (२) रूचककूट।

४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं नीलवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता,

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में नीलवन्त वर्षधर पर्वत दो कूट कहे गये हैं।

बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—१. नीलवंतकूडे चेव, २. उवदंसणकूडे चेव।

वे (दोनों कूट) सर्वथा सदृश हैं—**यावत्**—यथा—नीलवन्त कूट, (२) उपदर्शन कूट।

५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं रुप्पिमि वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता,

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में रुक्मि वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं।

बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—१. रुप्पिकूडे चेव, २. मणिकंचणकूडे चेव।

वे (दोनों कूट) सर्वथा सदृश हैं—**यावत्**—यथा—(१) रुक्मिकूट, (२) मणिकंचनकूट।

६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिम्मि वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता,

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं।

बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—१. सिहरीकूडे चेव, २. तिगिंछिकूडे चेव। —ठाणं २, उ० ३, सुत्तं ८७

वे (दोनों कूट) सर्वथा सदृश हैं—**यावत्**—यथा—(१) शिखरीकूट, (२) तिकित्सकूट।

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि—

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में—

७८१. दो चुल्लहिमवन्त कूडा दो वेसमण कूडा
दो महाहिमवन्त कूडा दो वेरूलिय कूडा
दो निसध कूडा दो रूयग कूडा
दो नीलवंत कूडा दो उवदंसण कूडा

—ठाणं अ० २, उ० ३, सु० १००

७८१. दो क्षुद्र हिमवन्तकूट, दो वैश्रमणकूट,
दो महाहिमवन्तकूट, दो वैडूर्यकूट,
दो निषधकूट, दो रुचककूट,
दो नीलवन्तकूट, दो उपदर्शनकूट हैं।

एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सु० १०३

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी कूट हैं।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्ला महद्दहा—

अढाई द्वीप में तुल्य महाद्रह—

७८२. १. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं चुल्लहिमवंत-सिहरीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता,

७८२. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में क्षुद्र हिमवन्त और शिखरी वर्षधर पर्वत पर दो महाद्रह कहे गये हैं।

बहुसमतुल्ला, अविसेसमणाणत्ता,

वे (दोनों महाद्रह) सर्वथा सदृश हैं, उनमें न किसी प्रकार की विशेषता है और न नानापन है।

अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति, आयाम-विक्खंभ-उव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१. पउमद्दहे चेव, २. पुण्डरीयद्दहे चेव।

वे लम्बाई, चौड़ाई, गहराई, संस्थान और परिधि से एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) पद्मद्रह, (२) पुण्डरीकद्रह।

तत्थ णं दो देवयाओ महिड्ढियाओ-जाव-महासोक्खाओ पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तं जहा—१. सिरि चेव, २. लच्छी चेव।

उन द्रहों पर महर्धिक—**यावत्**—**महासुखी** पल्योपम की स्थिति वाली दो देवियाँ रहती हैं, यथा—(१) श्रीदेवी, (२) लक्ष्मीदेवी।

२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं महा-हिमवंत-रुप्पीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता,

बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—

१. महापउमद्दहे चेव, २. महापोंडरीयद्दहे चेव,

तत्थ णं दो देवयाओ महिड्ढियाओ-जाव-महासोक्खाओ पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तं जहा—१. हिरि चेव, २. बुद्धि चेव।

जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में महाहिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वत पर दो महाद्रह कहे गये हैं।

वे (दोनों महाद्रह) सर्वथा सदृश हैं—**यावत्**—यथा—

(१) महापद्मद्रह, (२) महापौंडरीकद्रह।

उन द्रहों पर महर्धिक—**यावत्**—महासुखी पल्योपम की स्थिति वाली दो देवियाँ रहती हैं, यथा—(१) ह्रीदेवी, (२) बुद्धिदेवी।

३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं निसढ-नीलवंतेसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता,

बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—

१. तिगिंछिद्दहे चेव, २. केसरिद्दहे चेव।

तत्थ णं दो देवयाओ महिड्ढियाओ-जाव-महासोक्खाओ पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तं जहा—१. धिती चेव, २. कित्ती चेव। —ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ८८

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वत पर दो महाद्रह कहे गये हैं।

वे (दोनों महाद्रह) सर्वथा सदृश हैं—**यावत्**—यथा—

(१) तिगिच्छद्रह, (२) केसरीद्रह।

उन द्रहों पर महर्धिक—**यावत्**—महासुखी पल्योपम की स्थिति वाली दो देवियाँ रहती है, यथा—(१) धृति देवी, (२) कीर्ति देवी।

७८३. धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे य,

१. दो पउमद्दहा, दो पउमद्दहवासिणीओ सिरीदेवीओ।

२. दो महापउमद्दहा, दो महापउमद्दहवासिणीओ हिरीओ देवीओ।

३. दो तिगिंछिद्दहा, दो तिगिंछिद्दहवासिणीओ धिईओ देवीओ।

४. दो केसरिद्दहा, दो केसरिद्दहवासिणीओ कित्तीओ देवीओ।

५. दो महापोंडरीयद्दहा, दो महापोंडरीयद्दहावासिणीओ बुद्धीओ देवीओ।

६. दो पोंडरीयद्दहा, दो पोंडरीयद्दहवासिणीओ लच्छीओ देवीओ। —ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १००

एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि।

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १०३

७८३. धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध, पश्चिमार्ध में—

(१) दो पद्मद्रह, दो पद्मद्रहवासिनी श्रीदेवियाँ हैं।

(२) दो महापद्मद्रह, दो महापद्मद्रहवासिनी ह्रीदेवियाँ हैं।

(३) दो तिगिच्छद्रह, दो तिगिच्छद्रहवासिनी धृति देवियाँ हैं।

(४) दो केसरीद्रह, दो केसरीद्रहवासिनी कीर्तिदेवियाँ हैं।

(५) दो महापौंडरीकद्रह, दो महापौंडरीकद्रहवासिनी बुद्धि देवियाँ हैं।

(६) दो पौंडरीकद्रह, दो पौंडरीकद्रहवासिनी लक्ष्मी देवियाँ।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी महाद्रह हैं।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्ला पवायद्दहा—

७८४. १. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं भरहे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला। अविसेसमणाणत्ता, अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति, आयाम-विक्खंभ-उव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—१. गंगप्पवायद्दहे चेव, २. सिंधुप्पवायद्दहे चेव।

२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं हेमवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता। बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—१. रोहियप्पवायद्दहे चेव, २. रोहियंसप्पवायद्दहे चेव।

३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं हरिवासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—१. हरिप्पवायद्दहे चेव, २. हरिकंतप्पवायद्दहे चेव।

अढाई द्वीप में तुल्य प्रपात द्रह—

७८४. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में भरत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं जो सर्वथा समान है, न उनमें किसी प्रकार की कोई विशेषता है और न उनमें नानापन है, लम्बाई चौड़ाई, गहराई, आकार और परिधि में एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते है, यथा—(१) गंगाप्रपातद्रह, (२) सिंधुप्रपातद्रह।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में हेमवत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं, जो सर्वथा समान हैं—**यावत्**—यथा—(१) रोहित प्रपातद्रह, (२) रोहितांस प्रपातद्रह।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में हरिक्षेत्र मे दो प्रपातद्रह कहे गये हैं, जो सर्वथा समान हैं—**यावत्**—यथा—(१) हरिप्रपातद्रह, (२) हरिकान्तप्रपातद्रह।

४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं महाविदेहे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—१. सीतप्पवायद्दहे चेव, २. सीतोदप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में महाविदेह क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं, जो सर्वथा समान है—यावत्—यथा—(१) शीतप्रपातद्रह, (२) शीतोदप्रपातद्रह।

५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं रम्मए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—१. नरकंतप्पवायद्दहे चेव, २. नारिकंतप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में रम्यक् क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये है, जो सर्वथा समान है—यावत्—यथा—(१) नरकान्तप्रपातद्रह, (२) नारीकान्त प्रपातद्रह।

६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं हेरण्णवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—१. सुवण्णकूलप्पवायद्दहे चेव, २. रुप्पकूलप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में हैरण्यवतक्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं। जो सर्वथा समान हैं—यावत्—यथा—(१) सुवर्णकूलाप्रपातद्रह, (२) रूप्यकूलाप्रपातद्रह।

७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं एरवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला-जाव-तं जहा—१. रत्तप्पवायद्दहे चेव, २. रत्तावईपवायद्दहे चेव।

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ९०

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में ऐरवत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं जो सर्वथा समान हैं—यावत्—यथा—(१) रक्तप्रपातद्रह, (२) रक्तावतीप्रपातद्रह।

धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे—

७८५. १. दो गंगप्पवायद्दहा, दो सिंधुप्पवायद्दहा।
२. दो रोहियप्पवायद्दहा, दो रोहियंसप्पवायद्दहा।
३. दो हरिप्पवायद्दहा, दो हरिकंतप्पवायद्दहा।
४. दो सीतप्पवायद्दहा, दो सीतोदप्पवायद्दहा।
५. दो नरकंतप्पवायद्दहा, दो नारिकंतप्पवायद्दहा।
६. दो सुवण्णकूलप्पवायद्दहा, दो रुप्पकूलप्पवायद्दहा।
७. दो रत्तप्पवायद्दहा, दो रत्तावईपवायद्दहा।

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १००

धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में—

७८५. (१) दो गंगप्रपातद्रह, दो सिन्धुप्रपातद्रह।
(२) रोहितप्रपातद्रह, दो रोहितांसप्रपातद्रह।
(३) दो हरिप्रपातद्रह, दो हरिकान्तप्रपातद्रह।
(४) दो शीतप्रपातद्रह, दो शीतोदप्रपातद्रह।
(५) दो नरकान्तप्रपातद्रह, दो नारीकान्तप्रपातद्रह।
(६) दो सुवर्णकूलप्रपातद्रह, दो रूप्यकूलाप्रपातद्रह।
(७) दो रक्तप्रपातद्रह, दो रक्तावतीप्रपातद्रह।

९. एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि,
—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १०३

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में भी हैं।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु तुल्लाओ महाणईओ—

७८६. १. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं भरहे वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ, बहुसमतुल्लाओ, अविसेसमणाणत्ताओ,

अण्णमण्णं णाइवट्टन्ति, आयाम-विक्खंभ-उव्वेह-संठाण-परिणाहेणं; तं जहा—

१. गंगा चेव, २. सिंधु चेव।

अढाई द्वीप में तुल्य महानदियाँ—

७८६. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण भरत क्षेत्र में दो महानदियाँ कही गई हैं, जो सर्वथा समान हैं, न उनमें किसी प्रकार की कोई विशेषता है और न उनमें नानापन हैं।

लम्बाई चौड़ाई गहराई आकार और परिधि में एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करती हैं यथा—

(१) गंगा, और (२) सिन्धु।

२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं हेमवए वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ बहुसमतुल्लाओ-जाव-तं जहा—१. रोहिता चेव, २. रोहितंसा चेव।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण हैमवत क्षेत्र में दो महानदियाँ कही गई हैं, जो सर्वथा समान हैं—यावत्—यथा—(१) रोहिता, और (२) रोहितांसा।

३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं हरिवासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ, बहुसमतुल्लाओ-जाव-तं जहा—१ हरि चेव, २. हरिकंता चेव।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण हरिवासक्षेत्र में दो महानदियाँ कही गई हैं, जो सर्वथा समान है—यावत्—यथा—(१) हरी, और (२) हरीकान्ता।

४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं महाविदेहेवासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ, बहुसमतुल्लाओ-जाव-तं जहा—१. सीता चेव, २. सीतोदा चेव।

५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं रम्मए वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ, बहुसमतुल्लाओ-जाव-तं जहा—१. नरकंता चेव, २. नारिकंता चेव।

६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं हेरण्णवए वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ, बहुसमतुल्लाओ-जाव-तं जहा—१. सुवण्णकूला चेव, २. रुप्पकूला चेव।

७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेण एरवए वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ, बहुसमतुल्लाओ-जाव-तं जहा—१. रत्ता चेव, २. रत्तवती चेव।

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं ६१

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में महाविदेह क्षेत्र में दो महानदियाँ कही गई हैं, जो सर्वथा समान हैं—**यावत्**—यथा—(१) दक्षिण में शीता, (२) उत्तर में शीतोदा।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में रम्यक्षेत्र में दो महानदियाँ कही गई हैं, जो सर्वथा समान हैं—**यावत्**—यथा—(१) नरकान्ता, और (२) नारीकान्ता।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दरपर्वत से उत्तर में हैरण्यवत में दो महानदियाँ कही गई हैं, जो सर्वथा समान हैं—यथा—(१) सुवर्ण कूला। (२) रूप्यकूला।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दरपर्वत से उत्तर में ऐरवत क्षेत्र में दो महानदियाँ कही गई हैं, जो सर्वथा समान हैं,—**यावत्**—यथा—(१) रक्ता, और (२) रक्तावती।

धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे य—

७८७. १. दो गंगा, दो सिंधू,
२. दो रोहिया दो रोहितंसा,
३. दो हरी दो हरिकंता,
४. दो सीता, दो सीतोदा,
५. दो नरकंता, दो नारिकंता,
६. दो सुवण्णकूला, दो रुप्पकूला,
७. दो रत्ता, दो रत्तवती।

—ठाणं अ० २ उ० ३ सुत्तं १००

धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में—

७८७. (१) दो गंगा, दो सिन्धु,
(२) दो रोहिता, दो रोहितांसा,
(३) दो हरी, दो हरीकान्ता,
(४) दो शीता, दो शीतोदा,
(५) दो नरकंता, दो नारीकान्ता,
(६) दो सुवर्णकूला, दो रूप्यकूला,
(७) दो रक्ता, दो रक्तावती हैं।

६. एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि,

—ठाणं अ० २, उ० ३, सुत्तं १०३

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी हैं।

वेइयामूल विक्खंभे—

७८८. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स वेइयामूले दुवालस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।[1] —सम० १२, सु० ७

वेदिका के मूल की चौड़ाई—

७८८. जम्बूद्वीप द्वीप की वेदिका मूल में बारह योजन की चौड़ी कही गई हैं।

सव्वेसिं दीव-समुद्दाणं वेइया पमाणं—

७८९. सव्वेसिं पि णं दीव-समुद्दाणं वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।[2] —ठाणं अ० २, उ० ३, सु० ६३

सब द्वीप-समुद्रों की वेदिका का प्रमाण—

७८९. सब द्वीप-समुद्रों की वेदिका दो गाऊ ऊँची कही गई है।

---

१ (क) जीवा. प्रति. ३, सूत्र १८६ में 'जम्बूद्वीप आदि नाम वाले द्वीप तथा लवणसमुद्र आदि नाम वाले समुद्र इस तिर्यक्लोक में असंख्य हैं' और (१) देव, (२) नाग, (३) यक्ष, (४) भूत, (५) स्वयम्भूरमण, इन पांच नाम वाले द्वीप-समुद्र एक एक हैं" ऐसा कहा है।
इन सब द्वीप-समुद्रों की वेदिका प्रमाण इस सूत्र के अनुसार कहा गया है।
(ख) इस सूत्र में केवल जम्बूद्वीप की वेदिका के मूल का विष्कम्भ कहा गया है किन्तु वेदिका की ऊँचाई निरूपक उपरोक्त सूत्रानुसार सभी द्वीप-समुद्रों की वेदिकाओं के मूल का विष्कम्भ भी जानना चाहिए।

२ जम्बुद्दिवस्स ण दीवस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्ते णं पण्णत्ता, —ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ६१
लवणस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्ते णं पण्णत्ता, —ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ६१
धायइसंडस्स णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्ते णं पण्णत्ता, —ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ६२
पुक्खरवरस्स णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्ते णं पण्णत्ता, —ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ६३
लवणस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्ते णं पण्णत्ता, —ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ६१

समयखेत्तो—

समयक्षेत्र—

समयखित्त-सरूव निद्देसो—

७९०. प०—किमिदं भंते ! समयखेत्ते त्ति पवुच्चइ ?

उ०—गोयमा ! अड्ढाइज्जा दीवा, दो य समुद्दा, एस णं एवतिए, समयखेत्ते त्ति पवुच्चइ ।

—भग० स० २, उ० ९, सु० १

समयक्षेत्र के स्वरूप का निर्देश—

७९०. प्र०—हे भगवन् ! समयक्षेत्र का स्वरूप क्या है ?

उ०—हे गौतम ! अढाईद्वीप और दो समुद्र यह इतना समयक्षेत्र कहा जाता है ।

समयखेत्तस्स आयामाईणं पमाणं—

७९१. प०—समयखेत्ते णं भंते ! केवतियं आयाम-विक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं[1],

एगा जोयणकोडी-जाव-अब्भितरपुक्खरद्धपरिरओ से भाणियव्वो-जाव-अउणपण्णे ।[2]

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १७७

समयक्षेत्र क आयामादि का प्रमाण—

७९१. हे भगवन् ! समयक्षेत्र की लम्बाई चौड़ाई और परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—हे गौतम ! पैंतालीस लाख योजन की लम्बाई चौड़ाई कही गई है ।

एक करोड़ (बियालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास योजन की) आभ्यन्तर पुष्करार्ध की परिधि कही गई है । यही परिधि समयक्षेत्र की है ।

समयखेत्ते कुलपव्वया—

७९२. समयखेत्ते णं एकूणचत्तालीसं कुलपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—तीसं वासहरा, पंच मंदरा चत्तारि उसुकारा ।

—सम० ३९, सु० २

समयक्षेत्र में कुलपर्वत—

७९२. समयक्षेत्र में एगुनचालीस कुलपर्वत कहे गये हैं, यथा—तीस वर्षधर पर्वत, पाँच मेरु पर्वत और चार इषुकार पर्वत ।

समयखेत्ते वासा पव्वया य—

७९३. समयखेत्ते णं मंदरवज्जा एकूणसत्तरिं वासा, वासहरपव्वया, उसुयारपव्वया य पण्णत्ता, तं जहा—पणतीसं वासा, तीसं वासहरा, चत्तारि उसुयारा य पण्णत्ता,

—सम० ६९, सु० १

समयक्षेत्र में क्षेत्र पर्वतादि का प्ररूपण—

७९३. समयक्षेत्र में (पाँच) मेरु को छोड़कर एगुनसित्तर वर्ष, वर्षधर पर्वत और इषुकार कहे गये हैं, यथा—पैंतीस वर्ष, तीस वर्षधरपर्वत और चार इषुकार (पर्वत) कहे गये हैं ।

---

१ सम. ४५ सु. १ ।

२ (क) गाथा—एक्का जोयणकोडी, बातालीसं च सतसहस्साइं ।
तीसं च सहस्साइं, दोण्णि य अउणापण्णजोयणसते ।। —जीवा. पडि. ३. उ. २ सु. १७७

(ख) समयखेत्ते पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, एगा जोयणकोडी बायालीसं च जोयणसयसहस्साइं तीसं च जोयणसहस्साइं दोन्नि य अउणापन्ने जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते, —भग. स. ११, उ. १०, सुत्तं २७
—भग. स. २, उ. १, सुत्तं २४/३

(ग) सूरिय. पा. १९ सु. १०० ।
आभ्यन्तर पुष्करार्ध की परिधि और समयक्षेत्र की परिधि समान है ।
मनुष्यक्षेत्र और समयक्षेत्र ये दोनों नाम यद्यपि पर्यायवाची हैं किन्तु दोनों की व्याख्या भिन्न भिन्न हैं—

(अ) मनुष्यक्षेत्र में कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तरद्वीपज मनुष्य रहते हैं । मनुष्यों का जन्म-मरण भी मनुष्यक्षेत्र में ही होता है । बाहर नहीं इसलिए यह मनुष्यक्षेत्र कहा जाता है ।

(ब) समयक्षेत्र में ही घड़ी, मुहूर्त, दिन-रात आदि सभी समय विभागों का सर्वदा व्यवहार होता है अन्यत्र नहीं । वह पैंतालीस लाख योजन का लम्बा चौड़ा है । ठाणं, समवायंग, भगवती आदि आगमों में मनुष्यक्षेत्र एवं समयक्षेत्र—इन दोनों शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

समयखेत्ते भरहाईणं परूवणं—

७९४. समयखेत्ते णं पंच भरहाइं, पंच एरवयाइं। एवं जहा चउट्ठाणे वितीयउद्द`से तहा एत्थ वि भाणियव्वं-जाव-पंच मंदरा, पंच मंदर चूलियाओ, नवरं उसुयारा नत्थि।

—ठाणं ५, उ० २, सु० ४३४

समयक्षेत्र में भरतादि का प्ररूपण—

७९४. जिस प्रकार ठाणांग, चतुर्थस्थान के द्वितीय उद्देशक में (चार भरत, चार ऐरवत—यावत्—चार मन्दर-पर्वत, चार मंदर चूलिकायें) कही हैं उसी प्रकार यहाँ भी समयक्षेत्र में भी पाँच भरत, पाँच ऐरवत—यावत्—पाँच मंदर पर्वत, पाँच मंदर-चूलिकायें कहनी चाहिए। विशेष यह है कि इषुकार पर्वत (पाँच) नहीं है।

समयखेत्ते कुरासु दुमाणं तहा देवाणं निरूवणं—

७९५. समयखेत्ते णं दस कुराओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पंच देव-कुराओ, पंच उत्तरकुराओ।

तत्थ णं दस महइमहालया, महादुमा पण्णत्ता, तं जहा—१. जबूसुदंसणा, २. धायइरुक्खे, ३. महाधायइरुक्खे, ४. पउमरुक्खे, ५. महापउमरुक्खे, ६. पंचकूडसामलीओ।

तत्थ णं दस देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितिया परिवसंति, त जहा—१. अणाढिए जंबुद्दीवाहिवई, २. सुदंसणे, ३. पियदंसणे, ४. पोंडरीए, ५. महापोंडरीए।

६-१० पंच गरुलावेणुदेवा। —ठाणं १०, सु० ७६४

समयक्षेत्र के कुराओं में वृक्ष और देवों का निरूपण—

७९५. समयक्षेत्र में दस कुरा कहे गये हैं, यथा—पाँच देवकुरा और पाँच उत्तरकुरा।

उनमें दस महाविशाल महावृक्ष कहे गये हैं, यथा—(१) जम्बू सुदर्शन, (२) धातकीवृक्ष, (३) महाधातकीवृक्ष, (४) पद्मवृक्ष, (५) महापद्मवृक्ष, ६-१०, पाँचकूटशाल्मलीवृक्ष।

उन पर दस महर्धिक—यावत्—पल्योपमस्थिति वाले देव रहते हैं, यथा—(१) अनाधृत-जम्बूद्वीपाधिपति, (२) सुदर्शन, (३) प्रियदर्शन, (४) पौंडरिक, (५) महापौंडरिक।

(६-१०) पाँच गरुड वेणुदेव।

मणुस्सखेत्ते दो समुद्दा—

७९६. अंतो णं मणुस्स खेत्तस्स दो समुद्दा पण्णत्ता, तं जहा—

१. लवणे चेव, २. कालोदे चेव।

—ठाणं अ० २, उ० ४, सु० १२२

मनुष्यक्षेत्र में दो समुद्र—

७९६. मनुष्य क्षेत्र के अन्दर दो समुद्र कहे गये हैं, यथा—

(१) लवणसमुद्र, और (२) कालोदसमुद्र।

माणुसखेत्तस्स नाम हेउ—

७९७. प०—से केणट्ठे णं भंते! एवं वुच्चति—"माणुसखेत्ते, माणुसखेत्ते?"

उ०—गोयमा! माणुसखेत्ते णं तिविधा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा—

१. कम्मभूमगा, २. अकम्मभूमगा, ३. अंतरदीवगा।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति—"माणुसखेत्ते, माणुसखेत्ते।"

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १७७

मनुष्य क्षेत्र के नाम का हेतु—

७९७. प्र०—भगवन्! मनुष्यक्षेत्र मनुष्यक्षेत्र ही क्यों कहा जाता है?

उ०—गौतम! मनुष्यक्षेत्र में तीन प्रकार के मनुष्य रहते हैं, यथा—

(१) कर्मभूमिज, (२) अकर्मभूमिज, (३) अंतर्द्वीपज।

गौतम! इस कारण से मनुष्यक्षेत्र मनुष्यक्षेत्र कहा जाता है।



पुक्खरोदसमुद्द वण्णओ—

पुक्खरोदसमुद्दस्स संठाणं—

७९८. पुक्खरवरण्णं दीवं पुक्खरोदे नामं समुद्दे वट्टे वलयागार-संठाणसंठिते सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति ।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८०

पुक्खरोदसमुद्दस्स विक्खंभ-परिक्खेवं—

७९९. प०—पुक्खरोदे णं भंते ! समुद्दे केवतियं चक्कवाल-विक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं चक्कवाल-विक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।[1]

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८०

पुक्खरोदसमुद्दस्स चत्तारि दारा—

८००. प०—पुक्खरोदस्स णं भंते ! समुद्दस्स कतिदारा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता ।

तहेव सव्वं—

णवरं—पुक्खरोदसमुद्दपुरत्थिमपेरंते, वरुणवरदीवपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं—एत्थ णं पुक्खरोदस्स विजए नामं दारे पण्णत्ते ।

एवं सेसाण वि भाणिअव्वो त्ति ।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८०

चउण्हदाराणमंतरं—

८०१. दारंतरंमि संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

एवं सेसाण वि ।

पदेशा, जीवा य तहेव ।

पुक्खरोदसमुद्दस्स णामहेउ—

८०२. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—"पुक्खरोदे समुद्दे, पुक्खरोदे समुद्दे ?

उ०—गोयमा ! पुक्खरोदस्स णं समुद्दस्स उदगे अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं ।[2]

पुष्करोद समुद्र वर्णन—

पुष्करोदसमुद्र का संस्थान—

७९८. वृत्त एवं वलयाकार संस्थान में स्थित पुष्करोद नामक समुद्र पुष्करवरद्वीप को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

पुष्करोदसमुद्र का विष्कम्भ और परिधि—

७९९. भगवन् ! पुष्करोद समुद्र कितना चौड़ा कहा गया है ? और उसकी परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम ! वह संख्यात लाख योजन का चक्राकार चौड़ा कहा गया है और संख्यात लाख योजन की ही परिधि कही गई है ।

पुष्करोदसमुद्र के चार द्वार—

८००. प्र०—भगवन् ! पुष्करोद समुद्र के कितने द्वार कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! चार द्वार कहे गये हैं ।

जम्बूद्वीप के चार द्वारों के समान इन चार द्वारों का सम्पूर्ण वर्णन है ।

विशेष यह है कि—पुष्करोद समुद्र के पूर्वान्त में और वरुणवरद्वीप के पूर्वार्ध के पश्चिम में पुष्करोद समुद्र का विजय नामक द्वार कहा गया है ।

इसी प्रकार शेष तीन द्वारों का वर्णन कहना चाहिए ।

चारों द्वारों का अन्तर—

८०१. द्वारों का अव्यवहित अन्तर संख्यात लाख योजन का कहा गया है ।

शेष तीनों द्वारों का अन्तर भी इसी प्रकार है ।

प्रदेशों का परस्पर स्पर्श और जीवों की उत्पत्ति पूर्ववत् है ।

पुष्करोद समुद्र के नाम का हेतु—

८०२. प्र०—भगवन् ! पुष्करोद समुद्र को पुष्करोद समुद्र ही क्यों कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! पुष्करोद समुद्र का पानी स्वच्छ है पथ्य है, स्वजातीय है, हल्का है, स्फटिक वर्ण वाला है, स्वाभाविक स्वाद वाला है ।

---

१ सूरिय. पा. १९ सु० १०१ ।

२ प०—पुक्खरोदस्स णं भंते ! समुद्दस्स केरिसए अस्साए पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! अच्छे- जाव- फालियवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते । —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८३

सिरिधर-सिरिप्पभा य दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसति।

श्रीधर और श्रीप्रभ—ये दो महर्थिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले देव वहाँ रहते हैं।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"पुक्खरोदे समुद्दे, पुक्खरोदे समुद्दे।"

गौतम ! इस कारण से पुष्करोद समुद्र को पुष्करोद समुद्र का जाता है।

पुक्खरोदसमुद्दस्स निच्चत्तं—

पुष्करोदसमुद्र की नित्यता—

८०३. अदुत्तरं च णं गोयमा ! पुक्खरोदे समुद्दे सासए-जाव-णिच्चे।
—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८०

८०३. अथवा—गौतम ! पुष्करोदसमुद्र यह नाम शास्वत है—यावत् नित्य है।



वरुणवरदीववण्णओ—

वरुणवरद्वीप वर्णन—

वरुणवरदीवस्स संठाणं—

वरुणवरद्वीप का संस्थान—

८०४. पुक्खरोदे णं समुद्दे वरुणवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाण-संठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति।

तहेव समचक्कवाल संठाणसंठिते।
—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८०

८०४. वृत्त एवं वलयाकार संस्थान से स्थित वरुणवरद्वीप पुष्करोद समुद्र को चारों ओर से घेरकर स्थित है।

यह उसी प्रकार समचक्कवाल संस्थान से स्थित है।

वरुणवरदीवस्स विक्खंभ-परिक्खेवं—

वरुणवरद्वीप का विष्कम्भ एवं परिधि—

८०५. प०—वरुणवरे णं भंते ! दीवे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवाल-विक्खंभेणं, संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।[1]

पउमवरवेदिया वणसंडवण्णओ।

दारा, दारंतरं, पदेसा, जीवा, तहेव सव्वं।
—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८०

८०५. प्र०—भगवन् ! वरुणवरद्वीप चक्राकार चौड़ा कितना कहा गया है और (उसकी) परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम ! वह संख्यात लाख योजन चक्राकार चौड़ा हैं और संख्यात लाख योजन की ही उसकी परिधि कही गई है।

पद्मवरवेदिका और वनखण्ड के वर्णक (यहाँ कहने चाहिए।)

द्वार, द्वारों के अन्तर, प्रदेशों का स्पर्श, जीवों की उत्पति ये सब उसी प्रकार (पूर्ववत्) हैं।

वरुणवरदीवस्स णामहेऊ—

वरुणवरद्वीप के नाम का हेतु—

८०६. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"वरुणवरे दीवे, वरुणवरे दीवे ?

उ०—गोयमा ! वरुणवरे णं दीवे तत्थ देसे तहिं तहिं बहुओ खुड्डाखुड्डियाओ-जाव-बिलपंतियाओ अच्छाओ-जाव-महूर सरणाइयाओ वारुणिवरोदगपडिहत्थाओ पासा-तीताओ-जाव-पडिरूवाओ।

पत्तेअं पत्तेअं पउमवरवेइया-वणसंडपरिक्खित्ताओ।

८०६. प्र०—भगवन् ! वरुणवरद्वीप को वरुणवरद्वीप ही क्यों कहा जाता है ?

उ०—वरुणवरद्वीप में स्थान स्थान पर अनेक छोटी छोटी वापिकायें हैं—यावत्—बिलपंक्तियाँ हैं; स्वच्छ हैं—यावत्—मधुर स्वर से गुंजायमान हैं श्रेष्ठ वारुणि जैसे जल से परिपूर्ण है। प्रसादगुणयुक्त हैं—यावत्—मनोहर हैं।

प्रत्येक वापिका पद्मवरवेदिका एवं वनखण्ड से घिरी हुई है।

---

[1] सुरिय. पा. १९ सु. १०१।

तासु णं खुड्डा खुड्डियासु-जाव-बिलपंतियासु बहवे उप्पाय-पव्वता-जाव-खडहडगा सव्वफलिहामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

तहेव वरुण-वरुणप्पभा य एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—"वरुणरे दीवे, वरुणवरे दीवे।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८०

उन वापिकाओं—यावत्—बिलपंक्तियों के मध्य में अनेक उत्पात पर्वत—पर्वतगर्त हैं। सभी स्फटिक रत्नमय हैं स्वच्छ हैं—यावत्—मनोहर हैं।

उसी प्रकार वरुण, वरुणप्रभ ये दो महर्धिक—यावत्—पल्योपमस्थिति वाले देव वहाँ रहते हैं।

गौतम! इस कारण से वरुणवरद्वीप कहा जाता है।

वरुणवरदीवस्स निच्चत्तं—

८०७. अदुत्तरं च णं गोयमा! वरुणवरे दीवे सासए-जाव-णिच्चे।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८०

वरुणवरद्वीप की नित्यता—

८०७. अथवा—गौतम! वरुणवरद्वीप यह नाम शास्वत है—यावत्—नित्य है।



वरुणोदसमुद्दवण्णओ—

वरुणोद समुद्र वर्णन—

वरुणोदसमुद्दस्स संठाणं—

८०८. वरुणवरण्णं दीवं वरुणोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागार संठाण-संठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति।[1]

तहेव समचक्कवालसंठाणसंठिए।

विक्खंभ-परिक्खेवो संखिज्जाइं जोयणसयसहस्साइं।

दारा, दारंतरं पउमवरवेइया, वणसंडे, पएसा, जीवा, अट्ठो तहेव। —जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. १०८

वरुणोद समुद्र का संस्थान—

८०८. वरुणवरद्वीप को वृत्त एवं वलयाकार संस्थान से स्थित वरुणोद समुद्र चारों ओर से घेरकर स्थित है।

उसी प्रकार समचक्राकार संस्थान से स्थित है।

विष्कम्भ एवं परिधि संख्यात लाख योजन की है।

वरुणोद समुद्र का द्वार, द्वारों के अन्तर, पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, प्रदेशों का स्पर्श, जीवों की उत्पति पूर्ववत् है।

वरुणोदसमुद्दस्स नामहेउ—

८०९. प०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—"वरुणोदे समुद्दे, वरुणोदे समुद्दे?

उ०—गोयमा! वरुणोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहा नामए—चंदप्पभाइ वा, मणिसिलागाइ वा, वरसीधु-वरवारुणीइ वा, पत्तासवेइ वा, पुप्फासवेइ वा, चोयासवेइ वा, फलासवेइ वा, महुमेरएइ वा, जाति-प्पसन्नाइ वा, खज्जूरसारेइ वा, मुद्दियासारेइ वा, काविसायणाइ वा, सुपक्कखोयरसेइ वा, पभूतसंभार-संचिता, पोसमास-सतभिसयजोगवत्तिता, निरुवहत विसिट्ठदिन्नकालोवयारा, सुधोता उक्कोसगमयपत्ता

वरुणोद समुद्र के नाम का हेतु—

८०९. प्र०—भगवन्! वरुणोद समुद्र को वरुणोदसमुद्र ही क्यों कहा जाता है?

उ०—गौतम! वरुणोद समुद्र का जल क्या चन्द्रप्रभा, मणिशिला श्रेष्ठ सीधु, श्रेष्ठ वारुणि, पत्रासव, पुष्पासव, चोयासव त्वचासव फलासव, मधुमेरक, जाई के पुष्पों से निर्मित मदिरा, खजूरसार, द्राक्षासार, कापिशायनमद्य, सुपक्वइक्षुरस, अतिसंभार पूर्वक संचित, पौषमास में शतभिषा नक्षत्र का योग होने पर निर्मित सावधानी से विशिष्ट काल में उपचार से निर्मित, सुधा जैसा उज्ज्वल, उत्कृष्टमद प्राप्त, अष्ट प्रकार से पिष्टद्रव्यों से

---

१ सूरिय. पा. १९ सु. १०१।

अट्ठपिट्ठपुट्ठा पिट्ठनिट्ठिज्जा।[1] आसला मांसला पेसला (ईसी ओट्ठावलंबिणी, ईसी तंवच्छिकरणी, ईसी वोच्छेया कडुआ) वण्णेणं उववेया, गंधेणं उववेया, रसेणं उववेया भवे एयारूवे सिया ?

निर्मित स्वादिष्ट, मांसवर्धक, मधुर (ओष्ठ को, आँखों को कुछ लालिमा देने वाली कुछ कटु होने से त्याज्य) वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श से युक्त क्या ऐसा है ?

गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे। वारुणस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठतरे-जाव-उदए आसाएणं पण्णत्ते।[2]

हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। वारुण समुद्र का पानी इससे भी अधिक इष्ट, इष्टतर—**यावत्**—अधिक स्वादिष्ट कहा गया है।

तत्थ णं वारुणि-वारुणकंता देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितिया परिवसंति।

वहाँ पर वारुणि और वारुणकंता नामक महर्धिक—**यावत्**—पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"वरुणोदे समुद्दे, वरुणोदे समुद्दे।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८०

हे गौतम ! इस कारण से वरुणोद समुद्र वरुणोद समुद्र कहा जाता है।

वरुणोदसमुद्दस्स निच्चत्तं—

वरुणोद समुद्र की नित्यता—

८१०. अदुत्तरं च णं गोयमा ! वरुणोदे समुद्दे सासए-जाव-णिच्चे।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८०

८१०. अथवा—हे गौतम ! वरुणोद समुद्र शाश्वत—**यावत्**—नित्य है।



---

१ "मुखदंत वरकिमदिण्णकद्दमा, कोपसन्ना, अच्छा, वरवारुणी, अतिरसा, जम्बूफलपुट्ठवन्ना, सुजात ईसिउट्ठावलंबिणी, अहियमधुरपेज्जा, ईसासिरत्तणेत्ता, कोमलकवोलकरणी—जाव—आसादिता, विसादित्ता, अणिहुयसंलावकरणहरिसपीतिजणणी, संतोस-तत-बिवोक्क-हाव-विब्भम-विलास-वेल्लहलगमणकरणी, विरणमधियमत्तजणणी य होति संगाम-देस-कालिकरयणसमरपसरकरणी, कढियाणविज्जुपयतिहियाण मंउयकरणी य होति, उववेसिता समाणा गति खलावेति य सयलंमि वि सुभास वुप्पालिया समरभग्गवणोसहयारसुरभिरसदीविया सुगंधा आसायणिज्जा विस्सायणिज्जा पीणणिज्जा दप्पणिज्जा मयणिज्जा सव्विंदियगातपल्हायणिज्जा।" मूल प्रति में कोष्ठकान्तर्गत इतना पाठ और है किन्तु वृत्तिकार ने इस की व्याख्या नहीं की है।

२ प्र०—वरुणोदस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! से जहा नामए पत्तासवेति वा चोयासवेति वा खज्जूरसारेति वा, मुद्दियासारेति वा, मेरएति वा काविसायणेति वा चंदप्पभाति वा मणसिलातिवा वरसीधूति वा पवरवारुणी वा, अट्ठपिट्ठपरिणिट्ठिताति वा जम्बूफलकालिया वरप्पसण्णा उक्कोसमदपत्ता ईसिउट्ठावलंबिणी ईसितंबच्छिकरणी ईसिवोच्छेयकरणी आसला मांसला पेसला वण्णेणं उववेता—जाव—फासेणं उववेता।

प्र०—भवे एतारूवे सिया ?

उ०—गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे। वारुणोदए एत्तो इट्ठतराए चेव—जाव—अस्साएणं पण्णत्ते।

—जीवा पडि. ३, उ. २, सु. १८६

खीरवरदीवो वण्णओ—

खीरवरदीवस्स संठाणं—

८११. वरुणोदण्णं समुद्दं खीरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाण-संठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति ।[1]

तहेव समचक्कवाल संठाणसंठिए ।

विक्खंभ-परिक्खेवो संखिज्जाइं जोयणसयसहस्साइं ।

दारा, दारंतरं, पउमवरवेइया, वणसंडे, पएसा, जीवा तहेव ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८१

खीरदीवस्स णामहेऊ—

८१२. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"खीरवरे दीवे, खीरवरे दीवे ?"

उ०—गोयमा ! खीरवरेणं दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहुओ खुड्डाखुड्डियाओ वावीओ-जाव-सरसरपंतियाओ खीरोदगपडिहत्थाओ पासातीयाओ-जाव-पडिरूवाओ ।

तासु णं खुड्डियासु-जाव-बिलपंतियासु बहवे उप्पाय-पव्वगा-जाव-सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

पुण्डरीग-पुप्फदंता एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति ।

से एतेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"खीरवरे दीवे, खीरवरे दीवे । —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८१

खीरवरदीवस्स निच्चत्तं—

८१३. अदुत्तरं च णं गोयमा ! खीरवरे दीवे सासए-जाव-णिच्चे ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु, १८१

क्षीरवरद्वीप वर्णन—

क्षीरवरद्वीप का संस्थान—

८११. वृत्त एवं वलयाकार संस्थान से स्थित क्षीरवरद्वीप वरुणोद समुद्र को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

वह उसी प्रकार समचक्राकार संस्थान से स्थित है ।

उसका विष्कम्भ और परिधि संख्यात लाख योजन की है ।

क्षीरवरद्वीप के द्वार, द्वारों के अन्तर, पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वीप और समुद्र के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श, द्वीप और समुद्र के जीवों की एक दूसरे में उत्पत्ति पूर्ववत् है ।

क्षीरवरद्वीप के नाम का हेतु—

८१२. प्र०—क्षीरवरद्वीप क्षीरवरद्वीप ही क्यों कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! क्षीरवरद्वीप में स्थान स्थान पर अनेक छोटी छोटी वापिकायें है—यावत्—सरोवरों की पंक्तियाँ है । वे सब क्षीर जैसे उदक से प्रतिपूर्ण भरे हुए हैं, दर्शनीय है—यावत्—मनोहर हैं ।

उन छोटी छोटी वापिकाओं में—यावत्—बिलपंक्तियों में अनेक उत्पात पर्वत हैं—यावत्—वे सब रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं—मनोहर हैं ।

पुण्डरीक और पुष्पदन्त नामक महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले दो देव वहाँ रहते हैं ।

गौतम ! इस कारण से क्षीरवरद्वीप, क्षीरवरद्वीप कहा जाता है ।

क्षीरवरद्वीप की नित्यता—

८१३. अथवा—गौतम ! क्षीरवरद्वीप यह नाम शास्वत है—यावत्—नित्य है ।



खीरोदसमुद्दो—

खीरोदसमुद्दस्स संठाणं—

८१४. खीरवरण्णं दीवं खीरोए णामं समुद्दे वट्टे वलयागार संठाण-संठिते सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठति ।[2]

क्षीरोदसमुद्र—

क्षीरोद समुद्र का वर्णन—

८१४. वृक्ष एवं वलयाकार संस्थान से स्थित क्षीरोदसमुद्र क्षीरवरद्वीप को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

---

१ सूरिय. पा. १९ सु. १०१ ।

२ सूरिय. पा. १९ सु. १०१ ।

तहेव समचक्कवालसंठाणसंठिए ।

विक्खंभ-परिक्खेवो संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं ।

दारा, दारंतरं, पउमवरवेइया, वणसंडो, पदेसा, जीवा य तहेव । —जीवा. पडि, ३ उ. २ सु. १८१

वह उसी प्रकार समचक्राकार संस्थान से स्थित है।

उसका विष्कम्भ और परिधि संख्यात लाख योजन के हैं।

क्षीरोदसमुद्र के द्वार, द्वारों के अन्तर, पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वीप और समुद्र के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श, द्वीप और समुद्र के जीवों की एक दूसरे में उत्पत्ति, पूर्ववत् है।

खीरोदसमुद्दस्स नामहेऊ—

८१५. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—"खीरोदसमुद्दे, खीरोदसमुद्दे" ?

उ०—गोयमा ! खीरोयस्स णं समुद्दस्स उदगं से जहाणामए रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स उवट्ठविते खंडगुडमच्छडितो वणीते पयत्तमंदग्गिसुकठिते वण्णेणं उववेते-जाव-फासेणं उववेते आसायणिज्जे विसायणिज्जे पीणणिज्जे-जाव-सव्विदियगातपल्हायणिज्जे भवे एयारूवे सिया ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

खीरोदस्स णं से उदए एत्तो इट्ठतराए चेव आसाएणं पण्णत्ते ।[1]

विमल-विमलप्पभा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"खीरोदसमुद्दे, खीरोदसमुद्दे । —जीवा. पडि० ३, उ. २, सु. १८१

क्षीरोदसमुद्र के नाम का हेतु—

८१५. भगवन् ! क्षीरोदसमुद्र को क्षीरोदसमुद्र ही क्यों कहा जाता है ?

उ०—जैसे खांड, गुड़ या मिश्री युक्त जल जो मंदाग्नि से पक्व हो, चारों दिशाओं के स्वामी चक्रवर्ती राजा के पीने योग्य, आस्वादनीय, विशेष आस्वादनीय पुष्टिकर—यावत्—सभी इन्द्रियों और शरीर को आनन्ददायी वर्णयुक्त—यावत्—स्पर्शयुक्त जल है, गौतम ! क्षीरोद समुद्र का जल क्या ऐसा है ?

गौतम ! यह अर्थ-अभिप्राय समर्थ—संगत नहीं है।

क्षीरोदसमुद्र का जल इससे भी इष्टतर है—यावत्—स्वाद से मनोहर कहा गया है।

विमल और विमलप्रभ—ये दो महर्धिक—यावत्—पल्योपम स्थिति वाले देव वहाँ रहते हैं।

गौतम ! इस कारण से क्षीरोदसमुद्र क्षीरोदसमुद्र कहा जाता है।

खीरोदसमुद्दस्स निच्चत्तं—

८१६. अदुत्तरं च णं गोयमा ! खीरोदसमुद्दे सासए-जाव-णिच्चे । —जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८१

क्षीरोदसमुद्र की नित्यता—

८१६. अथवा—गौतम ! क्षीरोदसमुद्र यह नाम शास्वत है—यावत्—नित्य है।

---

१ गोयमा ! खीरोयस्स णं समुद्दस्स उदग से जहाणामए (मुउमुहीमारुपण्ण अज्जुणतरुण-सरसपत्तकोमलअत्थिग्गत्तणग्ग पोंडगवरुच्छुचारिणीणं लवंगपत्तपुप्फपल्लवककोलगसफल रुक्खबहुगुच्छगुम्मकलितमलट्ठिमधुपयुर पिप्पलीफलितवल्लिवरविवर चारिणीणं, अप्पोदगपीतसइरससमभूमिभागणिभयसुहोसियाणं, सुप्पेसितसुहातरोगपरिवज्जिताण णिरुवहतसरीरिणं कालप्पसविणीणं बितियततिय सामप्पसूताणं अंजणवरगवलवलयजलधर जच्चंजण रिट्ठभमरपभूयसमप्पभाणं कुण्डदोहणाणं वद्धत्थीपत्थुताणं रुढाणं मधुमासकालेसंगहनेहो अज्ज चातुरक्केव होज्ज तासि खीरे मधुररसविवगच्छबहुदव्वसंपउत्ते पत्तेयं मदग्गिसुकढिते आउत्ते) ।

आगमोदय समिति से प्रकाशित जीवाभिगम सूत्र की प्रति में यह कोष्ठकान्तर्गत मूलपाठ है किन्तु टीकाकार ने इस पाठ की टीका नहीं की है अतः यह पाठ यहाँ टिप्पण में दिया गया है।

प्र०—खीरोदस्स णं भंते ! उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! से जहा णामए रण्णो चाउरंत चक्कवट्टिस्स चाउरक्के गोखीरे पयत्तमंदग्गिसुकढिते आउत्ते खंडमच्छंडितोवणीते वण्णेणं उववेते—जाव—फासेणं उववेते ।

भवे एयारूवे सिया ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । गोयमा । एत्तो इट्ठतराए चेव—जाव—अस्साएणं पण्णत्ते । —जीवा पडि. ३, उ. २, सु. १८७

ऊपर अंकित पाठ में और इस पाठ में याने दोनों पाठों में क्षीरोदसमुद्र के पानी के आस्वाद का वर्णन है, दोनों पाठों का भाव समान होने से एक पाठ यहाँ टिप्पण में दिया है।

घयवरदीवो—

घयवरदीवस्स सठाणं—

८१७. खीरोदण्ण समुद्दं घयवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाण-संठिते सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठति ।[1]

तहेव समचक्कवालसंठाणसंठिए ।

विक्खंभ-परिक्खेवो संखिज्जाइं जोयणसयसहस्साइं ।

दारा, दारंतरं, पउमवरवेइया, वणसंडे, पएसा जीवा तहेव ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८१

घयवरदीवस्स णामहेऊ—

८१८. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"घयवरेदीवे घयवरे-दीवे ?"

उ०—गोयमा ! घयवरे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहुओ खुड्डाखुड्डियाओ वावीओ-जाव-सरसरपंतियाओ घयोदगपडिहत्थाओ पासाइयाओ-जाव-पडिरूवाओ ।

तासु णं खुड्डियासु-जाव-बिलपंतियासु बहवे उप्पाय-पव्वगा-जाव-खडहडगा सव्वकंचणमया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

कणय-कणयप्पभा एत्थ दो देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठितिया परिवसंति ।

से एतेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"घयवरे दीवे घयवरे दीवे ।"

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८१

घयवरदीवस्स निच्चत्तं—

८१९. अदुत्तरं च णं गोयमा ! घयवरे दीवे सासए-जाव-णिच्चे ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८१

घृतवरद्वीप—

घृतवरद्वीप का संस्थान—

८१७. वृत्त एवं वलयाकार संस्थान से स्थित घृतवर नाम का द्वीप क्षीरोदसमुद्र को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

वह उसी प्रकार समचक्राकार संस्थान से स्थित है ।

उसका विष्कम्भ और परिधि संख्यात लाख योजन के हैं ।

घृतवर द्वीप के द्वार और द्वारों के अन्तर, पद्मवर वेदिका, वनखण्ड, द्वीप और समुद्र के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श, द्वीप और समुद्र के जीवों की एक दूसरे में उत्पत्ति पूर्ववत् है ।

घृतवरद्वीप के नाम हेतु—

८१८. प्र०—भगवन् ! घृतवर द्वीप को घृतवर द्वीप ही क्यों कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! घृतवरद्वीप में स्थान स्थान पर अनेक छोटी छोटी वापिकायें हैं—यावत्—सरों की पंक्तियाँ है, वे सब घृतोदक से परिपूर्ण हैं, प्रसन्नताजनक हैं—यावत्—मनोहर हैं ।

उन वापिकाओं में—यावत्—बिलपंक्तियों में अनेक उत्पात पर्वत हैं—यावत्—पर्वतगृह हैं, सभी कंचनमय हैं स्वच्छ हैं—यावत्—मनोहर हैं ।

कनक और कनकप्रभ ये दो महर्धिक—यावत्—पल्योपम स्थिति वाले देव वहाँ रहते हैं ।

गौतम ! इस कारण से घृतवरद्वीप घृतवरद्वीप कहा जाता है ।

घृतवरद्वीप का नित्यत्व—

८१९, अथवा हे गौतम ! घृतवर द्वीप यह नाम शास्वत-यावत्-नित्य है ।



---

१ सूरिय० पा. १९ सु. १०१ ।

घयोदसमुद्दो—

घयोदसमुद्दस्स संठाणं—

८३०. घयवरण्णं दीवं घतोदे नामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाण-संठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताण चिट्ठति।[1]

तहेव समचक्कवाल-संठाणसंठिए,

विक्खंभ-परिक्खेवो, संखिज्जाइं जोयणसयसहस्साइं,

दारा दारंतरं, पउमवरवेइया, वणसंडे, पएसा, जीवा तहेव,

—जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. १८२

घयोदसमुद्दस्स णामहेऊ—

८३१. प०—से केणट्ठे णं भंते! एवं वुच्चइ—"घतोदे समुद्दे, घतोदे समुद्दे?

उ०—गोयमा! घयोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहा नामए पप्फुल्लसल्लइ-विमुक्कलकण्णियार सरसवसुविबुद्धको-रेंटदामपिंडिततरस्स निद्धगुणतेयदीविय निरुवहयवि-सिट्ठसुन्दरतरस्स सुजायदहिमहियतद्दिव सगहिय नव-णीय-पडुवणाविययमुक्कड्ढिय उद्दावसज्जविसंदियस्स अहियं पीवरसुरहिगंधमणहरमहुरपरिणामदरिसणि-ज्जस्स पत्थनिम्मलसुहोवभोगस्स सरयकालंमि होज्ज गोघतवरस्स मंडए, भवे एयारूवे सिया।[2]

णो तिणट्ठे समट्ठे।

गोयमा! घतोदस्स णं समुद्दस्स एत्तो इट्ठतराए चेव -जाव-आसाएणं पण्णत्ते।[3]

कंत-सुकंता एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओव-मट्ठितिया परिवसंति।

से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—"घतोदे समुद्दे घतोदे समुद्दे।" —जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. १८२

घृतोदसमुद्र—

घृतोद समुद्र का संस्थान—

८३०. वृत्त एवं वलयाकार संस्थान से स्थित घृतोद नामक समुद्र घृतवरद्वीप को चारों ओर से घेरकर स्थित है।

वह उसी प्रकार समचक्राकार संस्थान से स्थित है।

उसका विष्कम्भ और परिक्षेप संख्यात लाख योजन का है।

घृतोदसमुद्र के द्वार, द्वारों के अन्तर पद्मवरवेदिका, वन-खण्ड, द्वीप और समुद्र के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श, द्वीप और समुद्र के जीवों की एक दूसरे में उत्पत्ति पूर्ववत् है।

घृतोदसमुद्र के नाम का हेतु—

८३१. प्र०—भगवन्! घृतोदसमुद्र घृतोदसमुद्र ही क्यों कहा जाता है?

उ०—हे गौतम! घृतोद समुद्र का जल क्या विकसित शल्लकी, विकसित कनेर, सरसों, खिले हुए कोरंट पुष्पों की गुंथी माला के वर्ण के समान वर्ण वाले, स्निग्ध गुण वाले, अग्नि पर पकाए हुए किन्तु निरुपहत एवं विशिष्ट सुन्दर, दधि को मथ कर निकाले हुए उसी दिन के नवनीत को तपाकर तैयार किये हुए ताजा, अतिश्रेष्ठ, सुगन्धयुक्त, मनोहर मधुर परिणमन से युक्त दर्शनीय पथ्य निर्मल सुखोपभोग्य शरत्कालीन गोघृत के समान है?

हे गौतम! नहीं, ऐसा नहीं है—

घृतोद समुद्र का जल इससे भी अधिक इष्ट—यावत्—आस्वादनीय कहा गया है।

यहाँ कान्त सुकान्त नामक महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं।

हे गौतम! इस कारण से घृतोदसमुद्र घृतोदसमुद्र कहा जाता है।

---

१ सूरिय. पा. १९ सु. १००।

२ आगमोदय समिति से प्रकाशित जीवाभिगम की प्रति में यह मूलपाठ मुद्रित है किन्तु टीकाकार ने इस मूलपाठ की टीका नहीं की है।

३ प०—घतोदस्स णं भंते! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! से जहाणामए सारइयस्स गोघयवरस्स मंडे सल्लइ-कण्णियापुप्फवण्णाभे सुकढिय उदारसज्झवियदिन्ने वण्णेणं उववेते—जाव—फासेण उववेते, भवे एयारूवे सिया? णो तिणट्ठे समट्ठे। गोयमा! घतोदस्स उदए एत्तो इट्ठतराए चेव —जाव—अस्साएणं पण्णत्ते। —जीवा. पडि. ३ उ. २, सु. १८३

ऊपर अंकित पाठ और इस पाठ में घृतोदसमुद्र के पानी के आस्वाद का ही वर्णन है, दोनों पाठों में शब्द साम्य भी है अतः यह पाठ यहां टिप्पण में दिया है।

घयोदसमुद्दस्स निच्चत्तं—

८३२. अदुत्तरं च णं गोयमा ! घतोदे समुद्दे सासए-जाव-णिच्चे ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८२

घृतोद समुद्र की नित्यता—

८३२. अथवा हे गौतम ! घृतोद समुद्र शास्वत है—**यावत्**—नित्य है ।



खोदवरदीवा—

क्षोदवरद्वीप—

खोदवरदीवस्स संठाणं—

८३४. घतोदण्णं समुद्दं खोदवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति ।[1]

तहेव समचक्कवालसंठाणसंठिए ।

विक्खंभ-परिक्खेवो संखिज्जाइं जोयणसयसहस्साइं ।

दारा, दारंतरं, पउमवरवेइया, वणसंडे, पएसा, जीवा तहेव ।

—जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. १८२

क्षोदवरद्वीप का संस्थान—

८३३. वृत्त एवं वलयाकार संस्थान से स्थित क्षोदवरद्वीप घृतोद समुद्र को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

पूर्ववत् समचक्रवाल संस्थान से स्थित है ।

विष्कम्भ और परिधि संख्यात लाख योजन की है ।

क्षोदवर द्वीप के द्वार, द्वारों के अन्तर, पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, समुद्र और द्वीप के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श, समुद्र और द्वीप के जीवों की एक दूसरे में उत्पत्ति पूर्ववत् कहें ।

खोदवरदीवस्स णामहेऊ—

८३४. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"खोदवरे दीवे, खोदवरे दीवे ?"

उ०—गोयमा ! खोतवरे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहुओ खुड्डाखुड्डियाओ बावीओ-जावसरसरपंतियाओ खोदोदगपडिहत्थाओ पासाइयाओ-जाव- पडिरूवाओ ।

तासु णं खुड्डियासु-जाव-बिलपंतियासु बहवे उप्पायपव्वगा-जाव-खडहडगा सव्व वेरुलियामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

सुप्पभ-महप्पभा य दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितिया परिवसंति ।

से एतेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"खोदवरे दीवे खोदवरे दीवे । —जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. १८२

क्षोदवरद्वीप के नाम का हेतु—

८३४. प्र०—हे भगवन् ! खोदवरद्वीप को 'खोदवरद्वीप' किस कारण के कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! खोदवरद्वीप के प्रत्येक विभाग में और उन विभागों के छोटे छोटे विभागों में अनेक छोटी छोटी वावड़ियाँ क्षोदोदक (ईक्षुरस जैसे जल) से परिपूर्ण हैं वे दर्शनीय हैं—**यावत्**—मनोहर हैं ।

उन वावड़ियों पर—**यावत्**—बिलों की पंक्तियों पर अनेक उत्पात पर्वत हैं—**यावत्**—पर्वत गृह हैं, वे सभी वैडूर्यरत्नमय हैं स्वच्छ हैं—**यावत्**—मनोहर हैं ।

वहाँ पर महर्धिक—**यावत्**—पल्योपम की स्थिति वाले, सप्रभ, महाप्रभ नाम के दो देव रहते हैं ।

हे गौतम ! इस कारण से 'खोदवरद्वीप' खोदवरद्वीप कहा जाता है ।

खोदवरदीवस्स निच्चत्तं—

८३५. अदुत्तरं च णं गोयमा ! खोदवरे दीवे सासए-जाव-णिच्चे ।

—जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. १८२

क्षोदवरद्वीप की नित्यता—

८३५. अथवा हे गौतम ! खोदवरद्वीप यह नाम शास्वत है—**यावत्**—नित्य है ।



१ सूरिय. पा. १६ सु १०१ ।

खोदोदसमुद्दो—

खोदोदसमुद्दस्स संठाणं—

८३६. खोयवरण्णं दीवं खोदोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति।[1]

तहेव समचक्कवालसंठाणसंठिए।

विक्खंभ-परिक्खेवो संखिज्जाइं जोयणसयसहस्साइं।

दारा, दारंतरं, पउमवरवेइया, वणसंडे, पएसा, जीवा तहेव।

—जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. १८२

खोदोदसमुद्दस्स णामहेऊ—

८३७. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—"खोदोदसमुद्दे, खोदोदसमुद्दे ?"

उ०—गोयमा ! खोदोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहा णामए आसल-मांसल-पसत्थ-वीसंत-निद्ध सुकुमालभूमिभागे सुच्छिन्ने सुकट्ठ-लट्ठ विसिट्ठ-निरुवहयाजीयवावीय-सुकासजपयत्तनिउण-परिकम्म-अणुपालिय-सुवुड्ढि-वुड्ढाणं, सुजाताणं, लवणतणदोसवज्जियाणं णयाय-परिवड्ढियाणं, णिम्मातसुन्दराणं, रसेणं परिणयमउ-पीणपोरभंगुरसुजाय-मधुररस-पुप्फविरिइयाणं, उवद्दव-विवज्जियाणं, सीयपरिफासियाणं, अभिणवमग्गाणं-अभिलित्ताणं तिभायणिच्छोटियवाडिगाण, अवणित-मूलाणं गंठिपरिसोहियाणं, कुसलनरकप्पियाणं, उच्छूणं-जाव-पोंडियाणं, बलवगणरजंत, जतपरिगालितमेत्ताणं खोयरसे होज्जा[2] वत्थपरिपूए चाउज्जातगसुवासिते, अहियपत्थलहुके वण्णोववेते-जाव-फासेणोववेते।

भवे एयारूवे सिया ?

णो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! खोदोदस्सणं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठतराए चेव-जाव-आसाएण पण्णत्ते।[3]

क्षोतोद समुद्र—

क्षोतोद समुद्र का संस्थान—

८३६. वृत्त वलयाकार संस्थान से स्थित क्षोतोद नामक समुद्र क्षोतवरद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए है।

वह पूर्ववत् समचक्रवाल संस्थान से स्थित है।

उसका विष्कम्भ और परिधि संख्यात लाख योजन की है।

क्षोतोद समुद्र के द्वार, द्वारों के अन्तर, पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वीप और समुद्र के प्रवेशों का परस्पर स्पर्श, समुद्र के जीवों की द्वीप में उत्पत्ति और द्वीप के जीवों की समुद्र में उत्पत्ति पूर्ववत् है।

क्षोतोदसमुद्र के नाम का हेतु—

८३६. प्र०—हे भगवन् ! क्षोतोदसमुद्र किस कारण से क्षोतोद समुद्र कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! जिस प्रकार आस्वाद्य, मसल (लाभप्रद) प्रशस्त, विश्रान्त, स्निग्ध एवं सुकुमाल भूमिभाग को कोई कुशल कृषिकार सुकाष्ठ के सुन्दर एवं विशिष्ट हल से जोतकर ईख बोये, निपुण रक्षक उसकी रक्षा करे, निनाण करने पर अच्छी तरह बढ़े, तृण आदि के दोष से रहित कृषि प्रणाली से परिवर्धित, मृदु, पुष्ट एवं मधुर रस युक्त पोर, पुष्परज रहित, उपद्रववर्जित शीतस्पर्श युक्त ताजा तोड़े हुए रस से लिप्त ऊपर तृतीय भाग और अधोभाग (मूल) रहित, गांठे साफ कर कुशल पुरुष द्वारा काटकर तैयार किए गये—यावत्—पौण्ड्रजनपद के ईख बलवान पुरुष द्वारा यंत्र से पीले गये वस्त्र से छाने गये, इलायची आदि से सुवासित किये गये, पथ्यकर सुपाच्य वर्णवान् इक्षुरस है,

क्या क्षोतोद समुद्र का जल ऐसा है ?

गौतम ! नहीं ऐसा नहीं है, क्षोतोदसमुद्र का जल इससे भी इष्टतर—यावत्—स्वादिष्ट कहा गया है।

---

१ सूरिय. पा. १९ सु. १०१।

२ रसेणं परिणय-मउ-पीण-पोर-भंगुर-सुजाय-महुररस-पुप्फविरहियाणं उवद्दवविवज्जियाणं, सीयपरिफासियाणं, अभिणवअग्गाणं अपालित्ताणं (कुछ प्रतियों में इतना पाठ अधिक है।)

३ प०—खोदोदस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! से जहा णामए उच्छूणं जच्चपुण्ड्गाणं वा, हरियालपिण्डराणं वा, भेरुण्डछणाणं वा, कालपोराणं वा, तिभागनिव्वडियवाडगाणं वा, बलवगणरजंत-परिगालियमित्ताणं वा, जे य से रसे होज्जा वत्थपरिपूए चाउज्जातगसुवासिते अहियपत्थे लहुए वण्णेणं उववेए—जाव—फासेणं उववेए।

प०—भवे एयारूवे सिया।

उ०—णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! एत्तो इट्ठतराए चेव—अस्साएणं पण्णत्ते।

जहा खोदोदे तहा सेसा वि, वत्तं—सयंभूरमणसमुद्दो—जाव—पुक्खरोदो।

—जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. १८३

पुण्णभद्द-माणिभद्दा य इत्थ दुवे देवा महिड्ढीया -जाव-पलिओवमट्ठितिया परिवसंति ।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"खोदोदसमुद्दे, खोदोदसमुद्दे ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८२

यहां पल्योपम की स्थिति वाले महर्धिक—यावत्—महासुखी पूर्णभद्र, माणिभद्र नाम वाले दो देव रहते हैं ।

हे गौतम ! इस कारण से 'क्षोतोदसमुद्र' क्षोतोदसमुद्र कहा जाता है ।

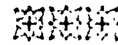
खोदोदसमुद्दस्स निच्चत्तं—

८३८. अदुत्तरं च णं गोयमा ! खोदोदसमुद्दे सासए-जाव-णिच्चे ।

—जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. १८२

क्षोतोद समुद्र की नित्यता—

८३८. अथवा हे गौतम ! क्षोतोदसमुद्र शास्वत है—यावत्—नित्य है ।



णंदीसरदीवो—

नंदीश्वरद्वीप—

णंदीसरवरदीवस्स संठाणं—

८३९. खोदोदण्णं समुद्दं णंदिसरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागार-सठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति ।[1]

तहेव समचक्कवालसंठाणसंठिए ।

विक्खंभ-परिक्खेवो संखिज्जाइं जोयणसयसहस्साइं ।

दारा, दारंतरं, पउमवरवेइया, वणसंडे, पएसा जीवा तहेव ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २ सु. १८३

नन्दीश्वर द्वीप का संस्थान—

८३९. नन्दीश्वर नामक द्वीप वृत्त वलयाकार संस्थान से स्थित क्षोतोदसमुद्र को चारों ओर से घेरे हुए स्थित है ।

वह पूर्ववत् समचक्रवाल संस्थान से स्थित है ।

उसकी चौड़ाई और परिधि संख्येय लाख योजन की कही गई है ।

नदीश्वर द्वीप के द्वार, द्वारों के अन्तर, पद्मवरवेदिका वनखण्ड, द्वीप और समुद्र के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श द्वीप और समुद्र के जीवों की एक दूसरे में उत्पत्ति, ये सब पूर्ववत हैं ।

णंदीसरवरदीवस्स णामहेऊ—

८४०. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"णंदीसरदीवे, णंदीसरदीवे ?"

उ०—गोयमा ! णंदीसरवरे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं वहुओ खुड्डाखुड्डियाओ बावीओ-जाव-सरसरपंतियाओ खोदोदगपडिहत्थाओ पासाइयाओ-जाव-पडिरूवाओ ।

तासु णं खुड्डियासु-जाव-बिलपंतियासु बहवे उप्पाय-पव्वगा-जाव-खडहडगा सव्ववइरामया अच्छा-जाव-पडिरूवा । —जीवा. पडि. ३ उ २ सु. १८३

नन्दीश्वर द्वीप के नाम का हेतु—

८४०. हे भगवन् ! किस कारण से 'नन्दीश्वर द्वीप' नन्दीश्वर द्वीप कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! नन्दीश्वरद्वीप के सब विभागों में जगह जगह अनेक छोटी छोटी वावड़ियां हैं—यावत्—सरोवरों की पंक्तियाँ हैं, वे सब ईक्षुरस से भरी हुई हैं, प्रसन्नता देने वाली है यावत्—मनोहर है ।

उन छोटी छोटी वावड़ियों पर—यावत्—विलपंक्तियों पर अनेक पर्वत—यावत्—पर्वतगर्त (खडहडगा) हैं, सभी वज्रमय हैं स्वच्छ हैं—यावत्—मनोहर हैं ।

णंदीसरवरदीवे चत्तारि अंजणगपव्वया—

८४१. अदुत्तरं च णं गोयमा ! णंदिरसरदीवचक्कवालविक्खंभबहुमज्झदेसभागे एत्थ णं चउद्दिसिं चत्तारि अंजणगपव्वता पण्णत्ता ।

नन्दीश्वरवरद्वीप में चार अंजनक पर्वत—

८४१. अथवा हे गौतम ! नन्दीश्वरवरद्वीप के चक्रवाल विष्कम्भ के मध्य भाग की चारों दिशाओं में चार अंजकनक पर्वत कहे गये हैं ।

१ सूरिय पाठ १९, सु० १०१ ।

ते णं अंजणगपव्वयगा चतुरासीतिजोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं,[1]

एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं,

मूले साइरेगाइं दस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं,

धरणियले दस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं[2],

ततोऽणंतरं च णं माताए माताए पदेसपरिहाणीए परिहायमाणा परिहायमाणा उवरिं एगमेगं जोयणसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं,

मूले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते किंचिविसेसाहिया परिक्खेवेणं,

धरणियले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते देसूणे परिक्खेवेणं,

सिहरतले तिण्णि जोयणसहस्साइं एक्कं च बावट्ठं जोयणसतं किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ता,

मूले वित्थिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुया, गोपुच्छ-संठाणसंठिया सव्वंजणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया परिक्खित्ता, पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता,

वण्णओ।

तेसि णं अंजणगपव्वयाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं बहुसमरमणिज्जो भूमिभागो पण्णत्तो, से जहा णामए आलिंगपुक्खरेति वा-जाव-विहरंति।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सिद्धायतणा पण्णत्ता।

एगमेगं जोयणसतं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरिजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसतसंनिविट्ठा, वण्णओ।

तेसि णं सिद्धायतणाणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—

१. पुरत्थिमेणं देवद्दारे,
२. दाहिणेणं असुरद्दारे,
३. पच्चत्थिमेणं णागद्दारे,
४. उत्तरेणं सुवण्णद्दारे।

वे अंजनक पर्वत चौरासी हजार योजन ऊँचे हैं।

एक हजार योजन भूमि में गहरे हैं।

मूल में दस हजार योजन से कुछ अधिक लम्बे चौड़े हैं।

धरणि तल पर दस हजार योजन लम्बे चौड़े हैं।

तदनन्तर थोड़े थोड़े प्रदेश घटते घटते ऊपर एक हजार योजन लम्बे चौड़े हैं।

मूल में इकतीस हजार छः सौ तेवीस योजन में कुछ कम की परिधि हैं।

धरणितल पर इकतीस हजार छः सौ तेवीस योजन में कुछ अधिक की परिधि है।

शिखरतल पर तीन हजार एक सौ बासठ योजन से कुछ अधिक की परिधि कही गई है।

मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर पतले गोपुच्छ के आकार वाले वे सारे अंजनक पर्वत स्वच्छ हैं—यावत्—मनोहर हैं।

प्रत्येक अंजनक पर्वत पद्मवरवेदिका से घिरा हुआ है और प्रत्येक पद्मवरवेदिका वनखण्ड से घिरी हुई है।

पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णक कहें।

प्रत्येक अंजनक पर्वत पर सर्वथा सम रमणीय भूमिभाग कहा गया है जिस प्रकार मृदंगतल है—यावत्—वहाँ देव-देवियाँ विहरण करते हैं।

उन सर्वथा रमणीय भूमिभागों के ठीक मध्यभाग में सिद्धायतन कहे गये हैं।

प्रत्येक सिद्धायतन सौ योजन लम्बा, पचास योजन चौड़ा बहत्तर योजन ऊँचा सैकड़ों स्तम्भों से बना हुआ है।

यहाँ सिद्धायतन का वर्णक कहें।

उन प्रत्येक सिद्धायतनों के चारों दिशाओं में चार चार द्वार कहे गये हैं यथा—

(१) पूर्व दिशा में, देवद्वार,
(२) दक्षिण दिशा में असुरद्वार,
(३) पश्चिम दिशा में नागद्वार,
(४) उत्तर दिशा में सुवर्णद्वार।

---

१ [illegible]

२ [illegible] मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, उवरिं दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। — ठाण १०, सु० ७२५

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, त जहा—

वहां पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्धिक—यावत्—महासुखी देव रहते हैं यथा—

देवे, असुरे, णागे, सुवण्णे ।

(१) देव, (२) असुर, (३) नाग, (४) सुपर्ण ।

तेणं दारा सोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं, तावतियं चेव पवेसेणं, सेता वरकणगथूभियागा -जाव-वणमाला ।

वे द्वार सोलह योजन ऊँचे हैं । आठ योजन चौड़े हैं उतने ही चौड़े उनके प्रवेश भाग है, वे सब श्रेष्ठ कनक स्तूपिकाओं से सुशोभित हैं—यावत्—वनमालायें लटक रही है ।

वण्णओ ।

यहां द्वार वर्णक है ।

तेसि णं दाराणं चउद्दिसिं चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता ।

उन द्वारों के चारों दिशाओं में चार मुख मण्डप कहे गये हैं,

तेणं मुहमंडवा एगमेगं जोयणसतं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं,

वे मुख मण्डप एक सौ योजन लम्बे हैं, पचास योजन चौड़े है,

साइरेगाइं सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,

सोलह योजन से कुछ अधिक ऊँचे है ।

वण्णओ ।

यहां मुखमण्डप वर्णक है ।

तेसि णं मुहमंडवाणं चउद्दिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता,

उन मुखमण्डपों में चारों दिशाओं के चार द्वार कहे गये हैं ।

तेणं दारा सोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,

वे द्वार सोलह योजन ऊँचे हैं,

अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं,

आठ योजन चौड़े हैं ।

तावतियं चेव पवेसेणं,

उतना ही चौड़ा उनका प्रवेशभाग है ।

सेसं तं चेव-जाव-वणमालाओ ।

शेष सब पूर्ववत्—यावत्—वनमालाओं का वर्णन करना चाहिए ।

एवं पेच्छाघरमंडवा वि ।

इसी प्रकार प्रेक्षाघर मण्डप भी है ।

तं चेव पमाणं, जं मुहमडवाणं,

उन प्रेक्षाघर मण्डपों का प्रमाण पूर्ववत् है ।

दारा वि तहेव।

उनके द्वारों का प्रमाण भी पूर्ववत् है ।

णवरं—बहुमज्झदेसे पेच्छाघरमंडवाणं, अक्खाडगा, मणि-पेढियाओ अद्धजोयणप्पमाणाओ,

विशेष—वे द्वार प्रेक्षाघर मण्डपों के मध्यभाग में हैं; आधे योजन लम्बे चौड़े अखाड़े और मणिपीठिकायें हैं ।

सीहासणा अपरिवारा-जाव-दामा ।

परिवार रहित सिंहासन—यावत्—मालाओं का वर्णन कहना चाहिए ।

थूभाइं चउद्दिसिं तहेव ।

चारों दिशाओं में पूर्ववत् चार स्तूप हैं ।

णवरं—सोलस जोयणप्पमाणा सातिरेगाइं सोलस जोय-णाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सेसं तहेव-जाव-जिणपडिमा ।

विशेष—वे स्तूप सोलह योजन से कुछ अधिक ऊँचे हैं, शेष पूर्ववत्—यावत्—जिन प्रतिमाओं का वर्णक है ।

चेइयरुक्खा तहेव चउद्दिसिं तं चेव पमाणं, जहा विजयाए रायहाणीए ।

स्तूपों के चारों दिशाओं में चैत्यवृक्ष पूर्ववत् है, उनका प्रमाण विजया राजधानी के चैत्य वृक्षों के समान है ।

णवरं—मणिपेढियाए सोलस जोयणप्पमाणाओ ।

विशेष—मणिपीठिकायें सोलह योजन लम्बी चौड़ी है ।

तेसि णं चेइयरुक्खाणं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ अट्ठ जोयणविक्खंभाओ चउजोयण बाहल्लाओ ।

उन चैत्य वृक्षों के चारों दिशाओं में आठ योजन चौड़ी चार योजन मोटी मणिपीठिकायें हैं ।

महिंदज्झया चउसट्ठिजोयणुच्चा, जोयणोव्वेधा, जोयण-विक्खंभा ।

चौसठ योजन ऊँची महेन्द्र ध्वजायें हैं ।
वे एक योजन भूमि में गहरी हैं और एक योजन चौड़ी है ।

सेसं तं चेव ।

शेष सब पूर्ववत् है ।

एवं चउद्दिसिं चत्तारि णंदा पुक्खरिणीओ,

इसी प्रकार चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ हैं ।

णवरं—खोयरसपडिपुण्णाओ ।

विशेष—वे इक्षुरस जैसे जल से भरी हुई है ।

जोयणसतं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, पण्णासं जोयणाइं उव्वेहेणं । सेसं तं चेव ।

एक सौ योजन लम्बी हैं—पचास योजन चौड़ी है, पचास योजन गहरी है, शेष सब पूर्ववत् है ।

मणोगुलियाणं गोमाणसीण य अडयालीसं अडयालीसं सहस्साइं ।

आस्थानमण्डप और शय्यागृह अड़तालीस अड़तालीस हजार हैं ।

पुरत्थिमेणं वि सोलस,
पच्चत्थिमेणं वि सोलस,
दाहिणेणं वि अट्ठ,
उत्तरेणं वि अट्ठ साहस्सीओ,
तहेव सेसं ।

पूर्व दिशा में सोलह हजार,
पश्चिम दिशा में सोलह हजार,
दक्षिण दिशा में आठ हजार,
उत्तर दिशा में आठ हजार,
शेष सब पूर्ववत् है ।

उल्लोया भूमिभागा-जाव-बहुमज्झदेसभागे मणिपेढिया सोलसजोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं तारिसं ।

छतों के भूमिभाग—यावत्—उनके मध्यभाग में सोलह योजन लम्बी चौड़ी और आठ योजन मोटी मणिपीठिकायें हैं ।

मणिपेढियाणं उप्पिं देवच्छंदगा सोलस जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, सातिरेगाइं सोलस जोयणाइं, उड्ढं उच्चत्तेणं, सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

मणिपीठिकाओं के ऊपर सोलह योजन लम्बे चौड़े और सोलह योजन से कुछ अधिक ऊँचे देवछंदक—चंदवे हैं. वे सब रत्नमय हैं—यावत्—मनोहर हैं ।

अट्ठसयं जिणपडिमाणं सव्वो सो चेव गमो जहेव वेमाणिय सिद्धायतणस्स । —जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८३

एक सौ आठ जिन प्रतिमाओं का सम्पूर्ण वर्णन वैमानिक देवों के सिद्धायतनों की प्रतिमाओं के समान है ।

पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए—

८४२. तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पोक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
णंदुत्तरा य णंदा आणंदा णंदिवद्धणा ।[1]

ताओ णंदा पुक्खरिणीओ एगमेगं जोयणसयं आयाम-विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ ।

पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेदिया परिक्खित्ता, पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता ।

तत्थ तत्थ-जाव-सोवाणपडिरूवगा तोरणा ।
—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८३

पूर्वी अंजनक पर्वत—

८४२. उनमें से पूर्व दिशा के अंजनक पर्वत पर उसके चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ कही गई हैं, यथा—
(१) नन्दुत्तरा, (२) नन्दा, (३) आनन्दा, (४) नन्दीवर्धना ।

वे नन्दा पुष्करणियाँ प्रत्येक एक सौ योजन लम्बी चौड़ी है दस योजन गहरी है । स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है ।

प्रत्येक नन्दापुष्करणी पद्मवरवेदिका से घिरी हुई है. प्रत्येक पद्मवरवेदिका वनखण्ड से घिरी हुई है ।

उन सबके—यावत्—पगथिया तथा तोरण हैं ।

पुक्खरणीसु दधिमुहपव्वया—

८४३. तासि णं पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए,

पत्तेयं पत्तेयं दहिमुहपव्वया चउसट्ठिं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं[1], एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं,

सव्वत्थ समा पल्लगसंठाणसंठिया दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं,

पुष्करणियों में दधिमुख पर्वत—

८४३. उन पुष्करिणियों के मध्य भाग में दधिमुख पर्वत हैं ।

प्रत्येक दधिमुख पर्वत चौंसठ हजार योजन ऊँचा है, एक हजार योजन भूमि में गहरा है ।

पल्यंक के आकार से स्थित है, अतएव सर्वत्र समान है, दस हजार योजन चौड़ा है ।

एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्चतेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ता,

उसकी परिधि इकतीस हजार छः सौ तेवीस योजन की कही गई है।

सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

प्रत्येक पर्वत सर्वरत्नमय है स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है।

तहा पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया परिक्खित्ता, पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता, दोण्ह वि वण्णओ।

प्रत्येक पर्वत पद्मवरवेदिका से घिरा हुआ है और प्रत्येक पद्मवरवेदिका वनखण्ड से घिरी हुई।

तेसि णं दधिमुहपव्वयाणं उवरिं बहुसमरमणिज्जो भूमिभागो पण्णत्तो, से जहा नामए आलिंगपुक्खरेइ वा-जाव-विहरंति।

उन दधिमुख पर्वतों पर सर्वथा सम रमणीय भूभाग कहा गया है। जिस प्रकार मृदंग तल है—यावत्—उन पर देव देवियाँ विहरण करती हैं।

सिद्धायतणं तं चेव पमाणं।

उन पर सिद्धायतन का प्रमाण पूर्ववत् है।

अंजणपव्वएसु सच्चेव वत्तव्वया णिरवसेसं भाणियव्वं -जाव-उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८३

अंजनक पर्वतों पर का सम्पूर्ण वर्णन वही है—यावत्—उन पर आठ आठ मंगल हैं।

दक्खिणिल्ले अंजणगपव्वए—

दक्षिणी अंजनक पर्वत—

८४४. तत्थ णं जे से दक्खिणिल्ले अंजणपव्वते तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भद्दा य विसाला य कुमुया पुण्डरिगिणी[1],

तं चेव पमाण,

तं चेव दधिमुहा पव्वया, तं चेव पमाण,

-जाव-सिद्धायतणा।—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८३

८४४. उनमें से दक्षिण दिशा के अंजनक पर्वत पर उसके चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ कही गई हैं, यथा—(१) भद्रा, (२) विसाला, (३) कुमुदा, (४) पुण्डरीकिणी।

उन सबका प्रमाण पूर्ववत् है।

दधिमुख पर्वतों का प्रमाण भी पूर्ववत् है।

यावत्—सिद्धायतनों का वर्णन भी पूर्ववत् है।

पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए—

पश्चिमी अंजनक पर्वत—

८४५. तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउदिसिं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ तं जहा—णंदिसेणा य, अमोहा य, गोत्थूभा य सुदंसणा।[2]

तं चेव सव्वभाणियव्वं-जाव-सिद्धायतणा।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८३

८४५. उनमें से पश्चिमदिशा के अंजनक पर्वत पर उसके चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ कही गई है, यथा—(१) नन्दिसेणा, (२) अमोघा, (३) गोस्तूपा और (४) सुदर्शना।

सिद्धायतन पर्यन्त सारा वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।

उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए—

उत्तरी अंजनक पर्वत—

८४६. तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिया।

सेसं तहेव-जाव-सिद्धायतणा, सव्वा वण्णणा णातव्वा[3],

८४६. उनमें उत्तरदिशा के अंजनक पर्वत पर उसके चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ कहीं गई हैं, यथा—(१) विजया, (२) वेजयंती, (३) जयंती, (३) अपराजिता।

शेष सिद्धायतन पर्यन्त सारा वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

---

१ पाठान्तर—नंदुत्तरा य नंदा आनंदा नंदिवड्ढणा।

२ (भद्दा विसाला कुमुदा पुण्डरीकिणी)

३ णंदीसरवरदीवे चत्तारि अंजणगपव्वया :—

णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभागे चत्तारि अंजणगपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—

१. पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए, २. दाहिणिल्ले अंजणगपव्वए, ३. पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए, ४. उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए।

ते णं अंजणगपव्वया चउरासीइंजोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं,

एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं,

मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं,

(शेष पृ० ४०५ पर)

तत्थ णं बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोतिसिय वेमाणिया देव चाउमासियापडिवएसु संवच्छरिएसु वा अण्णेसु य बहूसु जिणजम्मण-णिक्खमण णाणुप्पत्ति-णिव्वाणमादिएसु य देवकज्जेसु य देवसमुदयेसु य देवसमितीसु य देवसमवाएसु य देवपओयणेसु य एगतओ सहिता समुवागता समाणा पमुदित-पक्कीलिया अट्ठाहितारूवाओ महामहिमाओ करेमाणा पालेमाणा सुहं सुहेणं विहरंति ।

इन पर्वतों पर अनेक भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव चातुर्मासिक प्रतिपदाओं में, संवत्सरी में अन्य अनेक जिन जन्म-निष्क्रमण ज्ञानोत्पत्ति, निर्वाण आदि के प्रसंग पर तथा देवकार्यों में, देवसमूहों में, देवसमितियों में, देवसमवायों में, देव प्रयोजनों में एकत्रित होकर आए हुए आमोद प्रमोद करते हुए क्रीड़ा करते हुए सुखपूर्वक विहरण करते हैं ।

———————— (शेष पृ० ४०४ का)

तदणंतरं च णं मायाए मायाए परिहायमाणे परिहायमाणे, उवरिमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं पण्णत्ता ।
मूले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं ।
उवरिं तिण्णि तिण्णि जोयणसहस्साइं सयं च बावट्ठं जोयणसयं परिक्खेवेणं ।
मूले वित्थिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुया, गोपुच्छसंठाणसंठिया, सव्व अंजणमया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।
तेसि णं अंजणगपव्वयाणं उवरिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता ।
तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि सिद्धाययणा पण्णत्ता,
ते णं सिद्धाययणा एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
तेसि णं सिद्धाययणाणं चउदिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—१. देवदारे, २. असुरदारे, ३. णागदारे, ४. सुवण्णदारे ।
तेसु णं दारेसु चउव्विहा देवा परिवसन्ति तं जहा—१. देवा, २. असुरा, ३. णागा, ४. सुवण्णा ।
तेसि णं दाराणं पुरओ चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता,
तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ चत्तारि पेच्छा घरमंडवा पण्णत्ता ।
तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अक्खाडगा पण्णत्ता ।
तेसि णं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ,
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि सीहासणा पण्णत्ता,
तेसि णं सीहासणाणं उवरिं चत्तारि विजयदूसा पण्णत्ता ।
तेसि णं विजयदूसगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अंकुसा पण्णत्ता,
तेसि णं वइरामएसु अंकुसेसु कुम्भिक्कमुत्तादामा पण्णत्ता,
ते णं कुम्भिक्का मुत्तादामा पत्तेयं पत्तेयं अन्नेहिं तदद्ध उच्चत्तपमाणमेत्तेहिं चउहिं अद्ध कुम्भिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता.
तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि चेइयथूभा पण्णत्ता ।
तेसि णं चेइयथूभाणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि जिणपडिमाओ सव्वरयणामईओ सपलियंक णिसण्णाओ थूभाभिमुहीओ चिट्ठंति तं जहा—
१. रिसभा, २. वद्धमाणा, ३. चंदाणणा, ४. वारिसेणा,
तेसि णं चेइयथूभाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि चेइयरुक्खा पण्णत्ता ।
तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि महिंदज्झया पण्णत्ता ।
तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ ।
तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. पुरत्थिमेणं, २. दाहिणेणं, ३. पच्चत्थिमेणं, ४. उत्तरेणं ।

(शेष पृष्ठ ४०६ पर)

एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्चतेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ता,

उसकी परिधि इकतीस हजार छः सौ तेवीस योजन की कही गई है।

सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

प्रत्येक पर्वत सर्वरत्नमय है स्वच्छ है—यावत्—मनोहर है।

तहा पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया परिक्खित्ता, पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता, दोण्ह वि वण्णओ।

प्रत्येक पर्वत पद्मवरवेदिका से घिरा हुआ है और प्रत्येक पद्मवरवेदिका वनखण्ड से घिरी हुई।

तेसि णं दधिमुहपव्वयाणं उवरिं बहुसमरमणिज्जो भूमिभागो पण्णत्तो, से जहा नामए आलिंगपुक्खरेइ वा-जाव-विहरंति।

उन दधिमुख पर्वतों पर सर्वथा सम रमणीय भूभाग कहा गया है। जिस प्रकार मृदंग तल है—यावत्—उन पर देव देवियाँ विहरण करती हैं।

सिद्धायतणं तं चेव पमाणं।

उन पर सिद्धायतन का प्रमाण पूर्ववत् है।

अंजणपव्वएसु सच्चेव वत्तव्वया णिरवसेसं भाणियव्वं -जाव-उप्पि अट्ठट्ठमंगलगा।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८३

अंजनक पर्वतों पर का सम्पूर्ण वर्णन वही है—यावत्—उन पर आठ आठ मंगल हैं।

दक्खिणिल्ले अंजणगपव्वए—

८४४. तत्थ णं जे से दक्खिणिल्ले अंजणपव्वते तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भद्दा य विसाला य कुमुया पुण्डरिगिणी[1],

तं चेव पमाण,

तं चेव दधिमुहा पव्वया, तं चेव पमाण,

-जाव-सिद्धायतणा। —जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८३

दक्षिणी अंजनक पर्वत—

८४४. उनमें से दक्षिण दिशा के अंजनक पर्वत पर उसके चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ कही गई हैं, यथा—(१) भद्रा, (२) विसाला, (३) कुमुदा, (४) पुण्डरीकिणी।

उन सबका प्रमाण पूर्ववत् है।

दधिमुख पर्वतों का प्रमाण भी पूर्ववत् है।

यावत्—सिद्धायतनों का वर्णन भी पूर्ववत् है।

पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए—

८४५. तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउदिसिं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ तं जहा—णंदिसेणा य, अमोहा य, गोत्थूभी य सुदंसणा।[2]

तं चेव सव्वभाणियव्वं-जाव-सिद्धायतणा।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८३

पश्चिमी अंजनक पर्वत—

८४५. उनमें से पश्चिमदिशा के अंजनक पर्वत पर उसके चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ कही गई है, यथा—(१) नन्दिसेणा, (२) अमोघा, (३) गोस्तूपा और (४) सुदर्शना।

सिद्धायतन पर्यन्त सारा वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।

उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए—

८४६. तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिया।

सेसं तहेव-जाव-सिद्धायतणा, सव्वा वण्णणा णातव्वा[3],

उत्तरी अंजनक पर्वत—

८४६. उनमें उत्तरदिशा के अंजनक पर्वत पर उसके चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ कहीं गई हैं, यथा—(१) विजया, (२) वेजयंती, (३) जयंती, (३) अपराजिता।

शेष सिद्धायतन पर्यन्त सारा वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

---

१ पाठान्तर—नंदुत्तरा य नंदा आनंदा नंदिवड्ढणा।

२ (भद्दा विसाला कुमुदा पुण्डरीकिणी)

३ णंदीसरवरदीवे चत्तारि अंजणगपव्वया :—

णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभागे चत्तारि अजणगपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—

१. पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए, २. दाहिणिल्ले अंजणगपव्वए, ३. पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए, ४. उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए।

ते णं अंजणगपव्वया चउरासीइजोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं,

एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं,

मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं,

(शेष पृ० ४०५ पर)

तत्थ णं बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोतिसिय वेमाणिया देव चाउमासियापडिवएसु संवच्छरिएसु वा अण्णेसु य बहूसु जिणजम्मण-णिक्खमण णाणुप्पत्ति-णिव्वाणमादिएसु य देवकज्जेसु य देवसमुदएसु य देवसमितीसु य देवसमवाएसु य देवपओयणेसु य एगतओ सहिता समुवागता समाणा पमुदित-पक्कीलिया अट्ठाहितारूवाओ महामहिमाओ करेमाणा पालेमाणा सुहं सुहेणं विहरंति।

उन पर्वतों पर अनेक भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव चातुर्मासिक प्रतिपदाओं में, संवत्सरी में अन्य अनेक जिन जन्म-निष्क्रमण ज्ञानोत्पत्ति, निर्वाण आदि के प्रसंग पर तथा देवकार्यों में, देवसमूहों में, देवसमितियों में, देवसमवायों में, देव प्रयोजनों में एकत्रित होकर आए हुए आमोद प्रमोद करते हुए क्रीड़ा करते हुए सुखपूर्वक विहरण करते हैं।

(शेष पृ० ४०४ का)

तदणंतरं च णं मायाए मायाए परिहायमाणे परिहायमाणे, उवरिमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं पण्णत्ता।
मूले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं।
उवरिं तिण्णि तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोयणसयं परिक्खेवेणं।
मूले विच्छिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुया, गोपुच्छसंठाणसंठिया, सव्व अंजणमया अच्छा-जाव-पडिरूवा।
तेसि णं अंजणगपव्वयाणं उवरिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता।
तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि सिद्धायतणा पण्णत्ता,
ते णं सिद्धायतणा एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
तेसि णं सिद्धायतणाणं चउद्दिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—१. देवदारे, २. असुरदारे, ३. णागदारे, ४. सुवण्णदारे।
तेसु णं दारेसु चउव्विहा देवा परिवसन्ति तं जहा—१. देवा, २. असुरा, ३. णागा, ४. सुवण्णा।
तेसि णं दाराणं पुरओ चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता,
तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ चत्तारि पेच्छा घरमंडवा पण्णत्ता।
तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अक्खाडगा पण्णत्ता।
तेसि णं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ,
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि सीहासणा पण्णत्ता,
तेसि णं सीहासणाणं उवरिं चत्तारि विजयदूसा पण्णत्ता।
तेसि णं विजयदूसगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अंकुसा पण्णत्ता,
तेसि णं वइरामएसु अंकुसेसु कुंभिक्कमुत्तादामा पण्णत्ता,
ते णं कुंभिक्का मुत्तादामा पत्तेयं पत्तेयं अन्नेहिं तदद्ध उच्चत्तपमाणमित्तेहिं चउहिं अद्ध कुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता,

तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि चेइयथूभा पण्णत्ता।
तेसि णं चेइयथूभाणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि जिणपडिमाओ सव्वरयणामईओ संपलियंक णिसण्णाओ थूभाभिमुहीओ चिट्ठंति तं जहा—
१. रिसभा, २. वद्धमाणा, ३. चंदाणणा, ४. वारिसेणा,
तेसि णं चेइयथूभाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि चेइयरुक्खा पण्णत्ता।
तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि महिंदज्झया पण्णत्ता।
तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ।
तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. पुरत्थिमेणं, २. दाहिणेणं, ३. पच्चत्थिमेणं, ४. उत्तरेणं।

(शेष पृष्ठ ४०६ पर)

कइलास—हरिवाहणा य तत्थ दुवे देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितिया परिवसंति।

से एतेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"णंदिस्सरवरे दीवे, णंदिस्सरवरे दीवे।"

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८३

वहाँ पर पल्योपम की स्थिति वाले महर्धिक—यावत्—महासुखी कैलाश और हरिवाहन ये दो देव रहते हैं।

हे गौतम ! इस कारण से 'नन्दीश्वरद्वीप' नन्दीश्वरद्वीप कहा जाता है।

णंदीसरवरदीवस्स निच्चत्तं—

नन्दीश्वरद्वीप की नित्यता—

८४७. अदुत्तरं च णं गोयमा ! णंदिस्सरवरे दीवे सासए-जाव-णिच्चे। —जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८३

७४७. अथवा हे गौतम ! नन्दीश्वरद्वीप शाश्वत है—यावत्—नित्य है।

(शेष पृष्ठ ४०५ का)

गाहा—पुव्वे णं असोगवणं, दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं। अवरेण चंपगवणं, चूअवणं उत्तरे पासे।

१ पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए—

तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउदिसिं चत्तारि णंदाओ पोक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. णंदुत्तरा, २. णंदा, ३. आणंदा, ४. णंदिवद्धणा।

ताओ णं णंदाओ पोक्खरणीओ एगं जोयणसयसहस्सं आयामेणं, पण्णासं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, दसजोयणसयाइं उव्वेहेणं।

तासि णं पोक्खरणीणं पत्तेयं पत्तेयं चउदिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता,

तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ चत्तारि तोरणा पण्णत्ता, तं जहा—

१. पुरत्थिमेणं, २. दाहिणेणं, ३. पच्चत्थिमेणं, ४. उत्तरेणं।

तासि णं पोक्खरणीणं पत्तेयं पत्तेयं चउदिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—

१. पुरत्थिमे णं, २. दाहिणे णं, ३. पच्चत्थिमे णं, ४. उत्तरे णं।

गाहा—पुव्वे णं असोगवणं, दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं। अवरे णं चंपगवणं, चूय वणं उत्तरे पासे॥

तासि णं पुक्खरणीणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि दधिमुहगपव्वया पण्णत्ता।

ते णं दधिमुहगपव्वया चउसट्ठि जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा, पल्लगसंठाणसंठिया।

दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं, सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

२. दाहिणिल्ले अंजणगपव्वए—

तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउदिसिं चत्तारि णंदाओ पोक्खरणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. भद्दा, २. विसाला, ३. कुमुदा, ४. पोंडरिगिणी।

ताओ णं णंदाओ पोक्खरणीओ एक्कं जोयणसयसहस्सं, आयामेणं, सेसं तं चेव पमाणं तहेव दधिमुहगपव्वया, तहेव सिद्धाययणा-जाव-वणसंडा।

३. पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए—

तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए, तस्स णं चउदिसिं चत्तारि णंदाओ पोक्खरणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. [illegible], २. अमोहा, ३. गोथुभा, ४. सुदंसणा।

ताओ णं णंदाओ पोक्खरणीओ एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामेणं, सेसं तं चेव पमाणं, तहेव दधिमुहगपव्वया, तहेव सिद्धायणा-जाव-[illegible]।

४. उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए—

[illegible] उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए,

[illegible] चउदिसिं चत्तारि णंदाओ पोक्खरणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. विजया, २. वेजयंती, ३. जयंती, ४. अपराजिया।

[illegible] पोक्खरणीओ एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामेणं, सेसं तं चेव पमाणं, तहेव दधिमुहगपव्वया, तहेव सिद्धायणा [illegible]।

—ठाणं अ० ४, उ० ३, सु० ३०७

णंदीसरवरे दीवे चत्तारि रतिकरगपव्वया—

८४८. णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभागे चउसु विदिसासु चत्तारि रतिकरगपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—

१. उत्तर-पुरत्थिमिल्ले, रतिकरगपव्वए,
२. दाहिण-पुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए,
३. दाहिण-पच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए,
४. उत्तर-पच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए,

ते णं रतिकरगपव्वया दसजोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं,
सव्वत्थसमा, झल्लरिसंठाणसंठिया,

दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं,
एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं,
सव्वरयणामया, अच्छा-जाव-पडिरूवा।

—ठाणं अ० ४, उ० २, सु० ३०७

नन्दीश्वर में चार रतिकर पर्वत—

८४८. नन्दीश्वरद्वीप के चक्रवाल विष्कम्भ के मध्यभाग की चार विदिशाओं में चार रतिकर पर्वत कहे गये हैं। यथा—

(१) उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) में रतिकर पर्वत।
(२) दक्षिण-पूर्व (आग्नेयकोण) में रतिकर पर्वत।
(३) दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण) में रतिकर पर्वत।
(४) उत्तर-पश्चिम (वायव्यकोण) में रतिकर पर्वत।

ये रतिकर पर्वत एक हजार योजन ऊँचे हैं।
एक हजार गाउ भूमि में गहरे हैं।
ये पर्वत झालर के आकार से स्थित हैं अर्थात् सर्वत्र समान हैं।

दस हजार योजन चौड़े हैं।
इन पर्वतों की परिधि इकतीस हजार छः सौ तेवीस योजन की है।
ये पर्वत सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—मनोहर हैं।

उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए—

८४९. तत्थ णं जे से उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, तस्स णं चउद्दिसिमीसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. णंदुत्तरा, २. णंदा, ३. देवकुरा, ४. उत्तरकुरा।

१. कण्हाए,
२. कण्हराईए,
३. रामाए,
४. रामरक्खियाए।

—ठाणं अ० ४, उ० २, सु० ३०७

उत्तरपूर्व दिशा में रतिकर पर्वत—

८४९. उन पर्वतों में से उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) के रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में ईशान देवेन्द्र देवराज की चारों अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप जितनी लम्बी चौड़ी चार राजधानियाँ कही गई हैं, यथा—

(१) नन्दुत्तरा, (२) नन्दा, (३) कुरा, (४) उत्तरकुरा।

(कृष्णा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) नन्दुत्तरा,
(कृष्णराजी अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) नन्दा,
(रामा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) देवकुरा,
(रामरक्षिता अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) उत्तरकुरा,

दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए—

८५०. तत्थ णं जे से दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो, चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. समणा, २. सोमणसा, ३. अच्चिमाली, ४. मणोरमा।

१. पउमाए,
२. सिवाए,
३. सुईए,
४. अंजूए। —ठाणं अ० ४, उ० २, सु० ३०७

दक्षिण-पूर्व दिशा में रतिकर पर्वत—

८५०. उन पर्वतों में से दक्षिण-पूर्व (आग्नेयकोण) के रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में शक्र देवेन्द्र देवराज की चारों अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप जितनी लम्बी चौड़ी चार राजधानियाँ कही गई हैं, यथा—

(१) समना, (२) सोमनसा, (३) अर्चिमाली, (४) मनोरमा,

(पद्मा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) समना,
(शिवा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) सोमनसा,
(शची अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) अर्चिमाली,
(अंजू अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) मनोरमा,

दाहिण पच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए—

८५१. तत्थ णं जे से दाहिण-पच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. भूता, २. भूतवडेंसा, ३. गोथूभा, ४. सुदंसणा।

१. अमलाए,
२. अच्छराए,
३. णवमियाए,
४. रोहिणीए। —ठाणं अ० ४, उ० ४, सु० ३०७

दक्षिण-पश्चिम दिशा में रतिकर पर्वत—

८५१. उन पर्वतों में से दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण) के रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में शक्र देवेन्द्र देवराज की चारों अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप जितनी लम्बी चौड़ी चार राजधानियां कही गई हैं। यथा—

(१) भूता, (२) भूतावतंसा, (३) गोस्तूपा, (४) सुदर्शना।

(१) ('अमरा' अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) भूता,
(२) (अप्सरा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) भूतावतंसा,
(३) ('नवमिला' अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) गोस्तूपा,
(४) ('रोहिणी' अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) सुदर्शना,

उत्तर-पच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए—

८५२. तत्थ णं जे से उत्तर-पच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, तस्स णं चउद्दिसिमीसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं, जंबुद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. रयणा, २. रयणुच्चया, ३. सव्वरयणा, ४. रयणसंचया।

१. वसूए,
२. वसुगुत्ताए,
३. वसुमित्ताए,
४. वसुन्धराए।[1] —ठाणं अ० ४, उ० ४, सु० ३०७

उत्तर-पश्चिम दिशा में रतिकर पर्वत—

८५२. उन पर्वतों में से उत्तर-पश्चिम (वायव्यकोण) के रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में ईशान देवेन्द्र देवराज की चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप जितनी लम्बी चौड़ी चार राजधानियां कही गई हैं, यथा—

(१) रत्ना, (२) रत्नोच्चया, (३) सर्वरत्ना, (४) रत्नसंचया।

(१) ('वसु' अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) रत्ना,
(२) ('वसुगुप्ता' अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) रत्नोच्चया,
(३) ('वसुमित्रा' अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) सर्वरत्ना,
(४) ('वसुन्धरा' अग्रमहिषी की राजधानी का नाम) रत्नसंचया,



१ तृतीय उपांग जीवाभिगम के वृत्तिकार श्री मलयगिरि इस सूत्र की वृत्ति में लिखते हैं—"केषु चित्पुस्तकेषु रतिकरपर्वत चतुष्टय-वक्तव्यता सर्वथा न दृश्यते" अतः यह स्वतः स्पष्ट है कि उनके सामने एक ऐसी प्रति भी थी, जिसमें रतिकरपर्वत चतुष्टयवाला पाठ था, क्योंकि इस पाठ की वृत्ति भी उन्होंने की है।

[illegible] से प्रकाशित जीवाभिगम की प्रति में "रतिकरपर्वत" चतुष्टयवाला मूलपाठ तो नहीं है किन्तु उस पाठ की भी मलयगिरिकृत वृत्ति अवश्य अंकित है।

[illegible] द्वितीय उद्देशक सूत्र ३०७ में जीवाभिगम के समान नंदीश्वरवरद्वीप की चार दिशाओं में स्थित चार [illegible] चार विदिशा में स्थित चार रतिकर पर्वतों का वर्णन है।

[illegible] प्रति से (रतिकरपर्वत चतुष्टय वाला) पाठ यहां उद्धृत किया गया है। यदि [illegible] पाठ विच्छिन्न हो गया होगा। क्योंकि जीवाभिगम की उपलब्ध [illegible]

नंदीसरोदसमुद्दो—

नंदीश्वरोद समुद्र—

नंदीसरोदसमुद्दस्स संठाणं—

८५३. णंदीसरवरण्णं दीवं णंदीसरोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागार-संठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ,

तहेव समचक्कवालसंठाणसंठिए।

विक्खंभ-परिक्खेवो संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं।

दारा, दारंतरं, पउमवरवेइया, वणसंडे, पएसा, जीवा, तहेव,

अट्ठो जो खोदोदगस्स,-जाव-

सुमण-सोमणस भद्दा, एत्थ दो देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिईया परिवसंति,

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"णंदीसरोदे समुद्दे, णंदीसरोदे समुद्दे,"

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८४

नन्दीश्वरोद समुद्र का संस्थान—

८५३. नन्दीश्वरोद नामक समुद्र वृत्त वलयाकार संस्थान से स्थित नन्दीश्वरवरद्वीप को चारों ओर से घेरकर स्थित है।

यह समचक्रवाल संस्थान से पूर्ववत् स्थित है।

इसकी चौड़ाई और परिधि संख्यात लाख योजन की है।

नन्दीश्वरोदसमुद्र के द्वार, द्वारों के अन्तर, पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वीप और समुद्र के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श, समुद्र और द्वीप के जीवों की एक दूसरे में उत्पत्ति पूर्ववत् है।

नन्दीश्वरोद नामक समुद्र के नाम का हेतु क्षोदोदसमुद्र के नाम के हेतु के समान है—यावत्—

पल्योपम की स्थिति वाले सुमन और सौमनसभद्र नाम वाले दो महर्धिक—यावत्—देव यहाँ रहते हैं।

हे गौतम ! इस कारण से 'नन्दीश्वरोद समुद्र' नन्दीश्वरोद समुद्र कहा जाता है।

नंदीसरोदसमुद्दस्स निच्चत्तं—

८५४. अदुत्तरं च णं गोयमा ! णंदीसरोदे समुद्दे सासए-जाव-णिच्चे। —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८४

नन्दीश्वरोद समुद्र की नित्यता—

८५४. अथवा हे गौतम ! नन्दीश्वरोदसमुद्र शाश्वत है—यावत्—नित्य है।

णंदीसरदीवे सत्तदीवा—

८५५. णंदीसरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्तदीवा पण्णत्ता, तं जहा—
१. जंबुद्दीवे, २. धायइसंडे, ३. पोक्खरवरे, ४. वरुणवरे, ५. खीरवरे, ६. घयवरे, ७. खोदवरे।

—ठाणं. ७, सु. ५८०

नन्दीश्वरद्वीप में सात द्वीप—

८५५. नन्दीश्वरद्वीप में सात द्वीप कहे गये हैं, यथा—(१) जम्बूद्वीप, (२) धातकीखण्डद्वीप, (३) पुष्करवरद्वीप, (४) वरुणवरद्वीप, (५) क्षीरवरद्वीप, (६) घृतवरद्वीप।

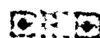
णंदीसरदीवे सत्त समुद्दा—

८५६. णंदीसरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्तसमुद्दा पण्णत्ता, तं जहा—
१. लवणे, २. कालोए, ३. पुक्खरोदे, ४. वरुणोदे, ५. खीरोदे, ६. घओदे, ७. खोओदे।

—ठाणं. ७, सु. ५८०

नन्दीश्वरद्वीप में सात समुद्र—

८५६. नन्दीश्वरद्वीप में सात समुद्र कहे गये हैं, यथा—(१) लवणसमुद्र, (२) कालोदसमुद्र (३) पुष्करोदसमुद्र, (४) वरुणोदसमुद्र (५) क्षीरोदसमुद्र, (६) घृतोदसमुद्र, (७) क्षोदोदसमुद्र।



अरुणाइदीवसमुद्दा—

अरुणाइ दीव-समुद्दाणं संखित्त परूवणं—

अरुणदीवस्स संठाणं—

८५७. णंदीसरोदं समुद्दं अरुणे णामं दीवे वट्टे वलयागार संठाण-संठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठति,

प०—अरुणे णं भंते ! दीवे किं समचक्कवाल सठाणसंठिए विसमचक्कवाल संठाणसंठिए ?

उ०—गोयमा ! समचक्कवालसंठाणसंठिए, नो विसमचक्क-वालसंठाणसंठिए,

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सू. १८५

अरुणदीवस्स विक्खंभ-परिक्खेवं—

८५८. प०—अरुणे णं भंते ! दीवे केवइयं चक्कवाल-विक्खंभेणं केवइयं चक्कवाल-परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवाल-विक्खंभेणं, पण्णत्ते, संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते,[1]

'पउमवर वेइया' वणखंडो, दारा, दारंतरं य तहेव,

संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं दारंतरं—जाव—अट्ठो,

वावीओ खोदोदगपडिहत्था,

उप्पायपव्वया सव्ववइरामया अच्छा-जाव-पडिरूवा,

असोग-वीतसोगा य एत्थ दुवे देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ अरुणे णामं दीवे, अरुणे णामं दीवे[2],

—जीवा पडि. ३, उ. २, सु. १८५

८५९. अरुणे णं दीवं अरुणोद णामं समुद्दे वट्टे वलयागार-संठाण-संठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ[3],

तस्स वि तहेव चक्कवालविक्खंभो पक्खिवो, य,

अट्ठो, खोतोदगं तहेव

णवरं—सुभद्द-सुमणभद्दा, एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, सेसं तहेव ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८५

अरुणादिद्वीप समुद्र—

अरुणादि दीप-समुद्रों का संक्षिप्त प्ररूपण—

अरुणद्वीप का संस्थान—

८५७. 'अरुण' नामक द्वीप वृत्त वलयाकार संस्थान से स्थित है, वह नन्दीश्वरोद समुद्र को चारों ओर से घेरे हुए स्थित हैं।

प्र०—हे भदंत ! अरुणद्वीप क्या समचक्रवाल संस्थान से स्थित है या विषमचक्रवाल संस्थान से स्थित है ?

उ०—हे गौतम ! (अरुणद्वीप) समचक्रवाल संस्थान से स्थित हैं किन्तु विषमचक्रवाल संस्थान से स्थित नहीं है।

अरुणद्वीप की चौड़ाई और परिधि—

८५८. प्र०—हे भदंत ! अरुणद्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ और चक्रवाल परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—हे गौतम ! संख्यात लाख योजन की चक्रवाल चौड़ाई और संख्यात लाख योजन की परिधि कही गई है।

अरुणद्वीप की पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वार, द्वारों के अन्तर पूर्ववत् हैं।

द्वारों का संख्यात लाख योजन का अन्तर है—यावत्—नाम का हेतु पूर्ववत् है।

वापिकायें इक्षुरस से भरी हुई हैं।

उत्पात पर्वत सर्ववज्रमय हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—मनोहर हैं।

अशोक और वीतशोक नाम वाले महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले दो देव वहाँ रहते हैं।

हे गौतम ! इस कारण से अरुण नामक द्वीप 'अरुण नामक द्वीप' कहा जाता है।

८५९. अरुणोद समुद्र वृत्त, वलयाकार संस्थान से स्थित है, वह अरुणद्वीप को चारों ओर से घेरकर स्थित है।

उसकी चक्रवाल चौड़ाई और परिधि, पूर्ववत् है।

उसके नाम का हेतु और इक्षुरस जैसा जल, पूर्ववत् है।

विशेष—सुभद्र और सुमनभद्र नाम वाले महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले दो देव वहाँ रहते हैं। शेष पूर्ववत् है।

---

१ सूरिय० पाठ १९, सु० १०१।

२ स च देवप्रभया, पर्वतादिगत वज्ररत्नप्रभया चारुण इति अरुणनामा।

३ सूरिय० पाठ १९, सु० १०१।

अरुणवरदीवस्स संठाणं—

८६०. णंदीसरवरोदं समुद्दं अरुणवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाण-संठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति ।[1]

प०—अरुणवरे णं भंते ! दीवे किं समचक्कवालसंठाणसंठिते, विसमचक्कवालसंठाणसंठिते ?

उ०—गोयमा ! समचक्कवालसंठाणसंठिते, नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिते ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८५

अरुणद्वीप का संस्थान—

८६०. अरुणवर नामक द्वीप वृत्त वलयाकार संस्थान से स्थित है, वह नन्दीश्वरोद समुद्र को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

प्र०—हे भगवन् ! अरुणवरद्वीप क्या समचक्रवाल-संस्थान से स्थित है ?

उ०—हे गौतम ! अरुणवरद्वीप समचक्रवाल-संस्थान से स्थित है, विषम चक्रवाल संस्थान से स्थित नहीं है ।

अरुणवरदीवस्स विक्खंभ-परिक्खेवं—

८६१. प०—अरुणवरे णं भंते ! दीवे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवाल-विक्खंभेणं, संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

दारा, दारंतरा य तहेव संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं ।

सेणं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते चिट्ठइ, दोण्हवि वण्णओ ।

पदेसा दोण्हवि (परोप्परं) पुट्ठा ।

जीवा दोसु (दोसु विसमुद्देसु) वि पच्चायंति ।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८५

अरुणवरद्वीप की चौड़ाई एवं परिधि—

८६१. प्र०—हे भगवन् ! अरुणवरद्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ और उसकी परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—हे गौतम ! संख्यात लाख योजन की चक्रवाल चौड़ाई है और संख्यात लाख योजन की परिधि कही गई है ।

उसके द्वार और द्वारों का अन्तर संख्यात लाख योजन के हैं ।

यहां पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णन है ।

अरुणवरद्वीप और नन्दीश्वरोद समुद्र के प्रदेश परस्पर स्पृष्ट हैं ।

अरुणद्वीप के जीव और नन्दीश्वरोद समुद्र के जीव एक दूसरे में उत्पन्न होते हैं ।

अरुणवरदीवस्स णामहेऊ—

८६२. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"अरुणवरे दीवे, अरुणवरे दीवे ?

उ०—गोयमा ! अरुणवरे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहूओ खुड्डाखुड्डियाओ-जाव-बिलपंतियाओ अरुणोभासाओ [illegible] खोदोदगपडिहत्थाओ [illegible] ।

[illegible]

[illegible]

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ अरुणवरे दीवे अरुणवरे दीवे ।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८५

अरुणवरद्वीप के नाम का हेतु—

८६२. प्र०—हे भगवन् ! किस कारण से "अरुणवरद्वीप अरुणवरद्वीप" कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! अरुणवरद्वीप में [illegible] यावत् [illegible] हैं, वे सब स्वच्छ हैं—यावत्— [illegible] यावत्— [illegible] है ।

[illegible] यावत् [illegible] यावत् [illegible] है ।

[illegible]

हे गौतम ! इस कारण से "अरुणवरद्वीप, अरुणवरद्वीप" कहा जाता है ।

[1] [illegible]

अरुणवरदीवस्स निच्चत्तं—

८६३. अदुत्तरं च णं गोयमा ! अरुणवरे दीवे सासए-जाव-णिच्चे ।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८५

८६४. अरुणवरं णं दीवं अरुणवरोदे णामं समुद्दे वट्टे-जाव-चिट्ठति ।[1]

अरुणवर-अरुणवरमहावरा य एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति,

सेसं सव्वं तहेव ।

८६५. अरुणवरोदं समुद्दं अरुणवरावभासे णामं दीवे वट्टे-जाव-चिट्ठति ।

अरुणवरावभासभद्दं—अरुणवराभासमहाभद्दा य एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति,

सेसं सव्वं तहेव ।

८६६. अरुणवरावभासे णं दीवं अरुणवरावभासे णामं समुद्दे वट्टे-जाव-चिट्ठति ।[3]

अरुणवरावभास—अरुणवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति,

सेसं सव्वं तहेव ।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८५

अरुणवरद्वीप की नित्यता—

८६३. अथवा हे गौतम ! अरुणवरद्वीप शाश्वत है—यावत्—नित्य है ।

८६४. वृत्त वलयाकार संस्थान से स्थित अरुणवरोद समुद्र अरुणवरद्वीप को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

पल्योपम की स्थिति वाले अरुणवर और अरुणवरमहावर नाम के दो महर्धिक देव—यावत्—वहाँ रहते हैं ।

शेष सब वर्णन पूर्ववत् है ।

८६५. वृत्त वलयाकार संस्थान से स्थित अरुणवरावभासद्वीप अरुणवरोदसमुद्र को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

पल्योपम की स्थिति वाले अरुणवरावभासभद्र और अरुणवरावभासमहाभद्र नाम के दो महर्धिक देव—यावत्—वहाँ रहते हैं,

शेष सब वर्णन पूर्ववत् है ।

८६६. वृत्त-वलयाकार संस्थान से स्थित अरुणवरावभास समुद्र अरुणवरावभासद्वीप को चारों ओर से घेरकर स्थित है ।

पल्योपम की स्थिति वाले अरुणवरावभास और अरुणवरावभासमहावर नाम के दो महर्धिक देव—यावत्—वहाँ रहते हैं ।

शेष सब वर्णन पूर्ववत् है ।



---

१ सूरिय० पा० १९, सु० १०१ ।

२ सूरिय० पा० १९, सु० १०१ ।

३ सूरिय० पा० १९, सु० १०१ ।

कुण्डलाइ दीव-समुद्दा—

कुण्डलवरादि द्वीप समुद्र—

कुण्डलाइ दीव-समुद्दाणं संखित्त परूवणं—

८६७. कुंडले दीवे—कुंडलभद्द-कुंडलमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।[1]

८६८. कुंडलोदे समुद्दे—चक्खुसुभ-चक्खुकंता एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।[2]

८६९. कुंडलवरे दीवे—कुंडलवरभद्द-कुंडलवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।

८७०. कुंडलवरोदे समुद्दे—कुंडलवर-कुंडलवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।[3]

८७१. कुंडलवरावभासे दीवे—कुंडलवरावभासभद्द-कुंडलवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।[4]

८७२. कुंडलवरोभासोदे समुद्दे—कुंडलवरोभासवर-कुंडलवरोभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।[5]

—जीवा. पडि. ३, उ. २ सु. १८५

कुण्डलादि द्वीप-समुद्रों का संक्षिप्त प्ररूपण—

८६७. पल्योपम की स्थिति वाले कुण्डलभद्र और कुण्डलमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव—यावत्—कुण्डलद्वीप में रहते हैं।

८६८. पल्योपम की स्थिति वाले चक्षु और शुभचक्षुकांत नाम के दो महर्द्धिक देव—यावत्—कुण्डलोद समुद्र में रहते हैं।

८६९. पल्योपम की स्थिति वाले कुण्डलवरभद्र और कुण्डलवर-महाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव—यावत्—कुण्डलवरद्वीप में रहते हैं।

८७०. पल्योपम की स्थिति वाले कुण्डलवर और कुण्डलवरमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव—यावत्—कुण्डलवरोद समुद्र में रहते हैं।

८७१. पल्योपम की स्थिति वाले कुण्डलवरावभासभद्र और कुण्डल-वरावभास महाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव—यावत्—कुण्डल-वरावभास द्वीप में रहते हैं।

८७२. पल्योपम की स्थिति वाले कुण्डलवरोभासवर और कुण्डल-वरोभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव—यावत्—कुण्डल-वरोभासोद समुद्र में रहते हैं।

रुयगाइ-दीवसमुद्दाणं संखित्तपरूवणं—

रुयगदीवस्स संठाणं—

८७३. कुंडलवरोभासं णं समुद्दं रुयगे णामं दीवे वट्टे वलयागार-संठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ।

प०—रुयगे णं भंते! दीवे किं समचक्कवालसंठाणसंठिए, विसमचक्कवालसंठाणसंठिए?

उ०—गोयमा! समचक्कवालसंठाणसंठिए, नो विसमचक्कवाल-संठाणसंठिए।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८६

रुचकादि द्वीप-समुद्रों का संक्षिप्त प्ररूपण—

रुचकद्वीप का संस्थान—

८७३. रुचक नामक द्वीप वृत्त एवं वलयाकार संस्थान से संस्थित है और कुण्डलवरावभासोद समुद्र को चारों ओर से घेरे हुए स्थित है।

प्र०—हे भगवन्! रुचकद्वीप समचक्रवाल संस्थान से स्थित है या विषम चक्रवाल संस्थान से स्थित है?

उ०—हे गौतम! समचक्रवाल संस्थान से स्थित है, विषम चक्रवाल संस्थान से स्थित नहीं है।

रुयगवरदीवस्स विक्खंभ-परिक्खेवो—

८७४. प०—रुयगे णं भंते! दीवे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।[6]

रुचकवरद्वीप की चौड़ाई और परिधि—

८७४. प्र०—हे भगवन्! रुचकद्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ और परिधि कितनी कही गई है?

उ०—हे गौतम! असंख्य हजार योजन का चक्रवाल विष्कम्भ और असंख्य हजार योजन की परिधि कही गई है।

१-५. [illegible] —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८७

[illegible]

[illegible] —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८६

[illegible]

दारा, दारंतरं पि सव्वं संखेज्जं भाणियव्वं।

सव्वट्ठ-मणोरमा एत्थ दो देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति,

सेसं सव्वं तहेवं।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८५

रुचकवरद्वीप के द्वार, द्वारों के अन्तर आदि का प्रमाण सभी संख्यात योजन के कहने चाहिए।

पल्योपम की स्थिति वाले सर्वार्थ और मनोरमा नाम के दो महर्धिक देव—यावत्—वहाँ रहते हैं।

शेष सब पूर्ववत् है।

देवेसु रूयगवरदीवाणुपरियट्टणसामत्थनिरूवणं—

देवों में रुचकवरद्वीप की परिक्रमा करने के सामर्थ्य का निरूपण—

८७५. प०—देवे णं भंते! महिड्ढीए-जाव-महासोक्खे पभू रूयगवरं दीवं अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छित्तए?

उ०—हंता गोयमा! पभू।

ते णं परं वीईवएज्जा नो चेव णं अणुपरियट्टेज्जा।

—भग० स० १८, उ० ७, सु० ४७

८७५. प्र०—हे भगवन्! महर्धिक—यावत्—महासुखी देव रुचकवरद्वीप की परिक्रमा करके शीघ्र आने में समर्थ है?

उ०—हाँ गौतम! आने में समर्थ नहीं हैं।

उससे आगे वह देव जा तो सकता है किन्तु परिक्रमा करके शीघ्र आने में समर्थ नहीं है।

८७६. रूयगोदेणामं समुद्दे जहा खोदोदे समुद्दे[1],

अट्ठो वि जहेव।

सुमण-सोमणसा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।

रूयगाओ आढत्तं सव्वं असंखेज्जं भाणियव्वं।

८७६ रुचकोदसमुद्र क्षोतोदसमुद्र के समान है।

उसके नाम का हेतु भी उसी प्रकार है।

पल्योपम की स्थिति वाले सुमन और सोमनस नाम के दो महर्धिक देव—यावत्—वहाँ रहते हैं।

रुचकवरद्वीप और उससे आगे के सभी द्वीप समुद्र असंख्य योजन के प्रमाण वाले कहने चाहिए।

८७७. रुयगोदण्णं समुद्दं रुयगवरे णं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति[2],

रुयगवरभद्द-रुयगवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।

८७७. वृत्त और वलयाकार संस्थान से स्थित रुचकवरद्वीप रुचकोदसमुद्र को चारों ओर से घेरे हुए स्थित है।

पल्योपम की स्थिति वाले रुचकवरभद्र और रुचकवरमहाभद्र नाम के दो महर्धिक देव—यावत्—वहाँ रहते हैं।

८७८. रुयगवरोदे समुद्दे—रुयगवर-रुयगवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति[3],

८७८. पल्योपम की स्थिति वाले रुचकवर और रुचकवर महावर नाम के दो महर्धिक देव—यावत्—रुचकवरोद समुद्र में रहते हैं।

८७९. रुयगवरावभासे दीवे—रुयगवरावभासद्द-रुयगवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीयाजाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति[4],

८७९. पल्योपम की स्थिति वाले रुचकवरावभासभद्र और रुचकवरावभासमहाभद्र नाम वाले दो महर्धिक देव—यावत्—रुचकवरावभासद्वीप में रहते हैं।

८८०. रुयगवरावभासे समुद्दे—रुयगवरावभासवर-रुयगवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति[5],

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८५

८८०. पल्योपम की स्थिति वाले रुचकवरावभासवर और रुचकवरावभास महावर नाम वाले दो महर्धिक देव—यावत्—रुचकवरावभास समुद्र में रहते हैं।

हाराइदीव-समुद्दाणं संखित्त-परूवणं—

हारादि द्वीप-समुद्रों का संक्षिप्त प्ररूपण—

८८१. हारद्दीवे—हारभद्द-हारमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।

८८२. हारसमुद्दे—हारवर-हारवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।

८८१. पल्योपम की स्थिति वाले हारभद्र और हारमहाभद्र नाम वाले दो महर्धिक देव—यावत्—हारद्वीप में रहते हैं।

८८२. पल्योपम की स्थिति वाले हारवर और हारवरमहावर नाम वाले दो महर्धिक देव—यावत्—हारसमुद्र में रहते हैं।

१ सूरिय० पा० १९, सु० १०१।

२–५ सूरिय० पा० १९, सु० १०१।

सयंभूरमण समुद्दस्स संठाणं—

८९३. सयंभूरमणण्णं दीवं सयंभूरमणोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठति।

तहेव समचक्कवालसंठाणसंठिए।

विक्खंभ-परिक्खेवो असंखेज्जाइं जोयणसतसहस्साइं,

दारा, दारंतरं, पउमवरवेइया, वणसंडे, पएसा जीवा,

सव्वं तहेव। —जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८५

स्वयम्भूरमण समुद्र का संस्थान—

८९३. वृत्त वलयाकार संस्थान से स्थित स्वयम्भूरमणोद नाम का समुद्र स्वयंभूरमणद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए स्थित है।

वह समचक्रवाल संस्थान से पूर्ववत् स्थित है।

उसकी चौड़ाई और परिधि असंख्यात लाख योजन की है।

स्वयंभूरमण समुद्र के द्वार, द्वारों का अन्तर, पद्मवरवेदिका वनखण्ड, द्वीप और समुद्र के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श, द्वीप और समुद्र के जीवों की एक दूसरे में उत्पत्ति।

शेष सब पूर्ववत् है।

सयंभूरमणसमुद्दस्स णामहेऊ—

८९४. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सयंभूरमणोदे समुद्दे, सयंभूरमणोदे समुद्दे ?

उ०—गोयमा ! सयंभूरमणोदए उदए अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते।

सयंभूरमणवर-सयंभूरमणमहावरा एत्थ दो महिड्ढीया -जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति,

सेसं सव्वं तहेव।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८५

स्वयम्भूरमणसमुद्र के नाम का हेतु—

८९४. हे भगवन् ! किस कारण से 'स्वयम्भूरमणोद समुद्र' स्वयम्भूरमणोद समुद्र कहा जाता है ?

हे गौतम ! स्वयम्भूरमणोद समुद्र का उदक स्वच्छ, पथ्य, शुद्ध, लघु, स्फटिकवर्ण सदृश, स्वाभाविक उदक रस जैसा कहा गया है।

पल्योपम की स्थिति वाले स्वयम्भूरमणवर और स्वयम्भूरमणमहावर नाम वाले दो महर्धिक देव—यावत्—वहाँ रहते हैं।

शेष सब पूर्ववत् कहना चाहिए।

दीव-समुद्दाणं संखा—

८९५. प०—केवइया णं भंते ! जंबुद्दीवा दीवा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! असंखेज्जा जंबुद्दीवा दीवा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता।

८९६. प०—केवइया णं भंते ! लवणसमुद्दा समुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! असंखेज्जा लवणसमुद्दा समुद्दा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता।

एवं धायइसंडा वि-जाव-असंखेज्जा सूरदीवा णामधेज्जेहिं य।

द्वीप-समुद्रों की संख्या—

८९५. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नाम वाले द्वीप (मध्यलोक में) कितने कहे गए हैं ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप नाम वाले द्वीप असंख्य कहे गये हैं।

८९६. प्र०—हे गौतम ! लवणसमुद्र नाम वाले समुद्र (मध्यलोक में) कितने कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! लवणसमुद्र नाम वाले समुद्र असंख्य कहे गये हैं।

इसी प्रकार धातकीखण्ड—यावत्—सूर्यद्वीप नाम वाले द्वीप असंख्य कहे गये हैं।

एए दीवा समुद्दा एगेगा—

८९७. १. एगे देवे दीवे, २. एगे देवोदे समुद्दे,
३. एगे नागे दीवे, ४. एगे नागोदे समुद्दे,
५. एगे जक्खे दीवे, ६. एगे जक्खोदे समुद्दे,
७. एगे भूते दीवे, ८. एगे भूतोदे समुद्दे,
९. एगे सयंभूरमणे दीवे, १०. एगे सयंभूरमणेसमुद्दे,[1]
नामधेज्जेणं पण्णत्ते।[2]

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १८६

ये द्वीप-समुद्र एक एक हैं—

८९७. (१) एक देव द्वीप, (२) एक देवोद समुद्र,
(३) एक नाग द्वीप, (४) एक नागोद समुद्र,
(५) एक यक्ष द्वीप, (६) एक यक्षोद समुद्र,
(७) एक भूत द्वीप, (८) एक भूतोद समुद्र,
(९) एक स्वयम्भूरमण द्वीप, (१०) एक स्वयम्भूरमण समुद्र नाम वाला कहा गया है।

---

१ सव्वेसिं विक्खंभ परिक्खेव जोइसाइं देवदीव सरिसाइं। —सूरिय० पा० १९, सु० १०१

२ एवं दशाप्येते एकाकारा वक्तव्याः।

कतिहिं वा काएहिं फुडे ?

कितनी कायों से स्पृष्ट है ?

किं धम्मत्थिकाएणं-जाव-आगासत्थिकाएणं फुडे ?

क्या धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है ?—यावत्—क्या आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट है ?

एएणं भेदेणं-जाव-किं पुढविकाइएणं फुडे-जाव-तसकाएणं फुडे ?

क्या पृथ्वीकाय से स्पृष्ट हैं—यावत्—क्या त्रसकाय से स्पृष्ट है ?

अद्धासमएणं फुडे ?

अद्धा समय से स्पृष्ट है ?

उ०—गोयमा ! णो धम्मत्थिकाएणं फुडे,
धम्मत्थिकायस्स देसेणं फुडे,
धम्मत्थिकायस्स पएसेहिं फुडे।

उ०—हे गौतम ! धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट नहीं है।
धर्मास्तिकाय के देश से स्पृष्ट है।
धर्मास्तिकाय के प्रदेश से स्पृष्ट है।

एवं अधम्मत्थिकायस्स वि, आगासत्थिकायस्स वि।

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय से भी स्पृष्ट नहीं है। (किन्तु इनके देश-प्रदेश से स्पृष्ट है।)

पुढविकाइएणं फुडे-जाव-वणप्फइकाइएणं फुडे।
तसकाएणं सियफुडे, सिय नो फुडे,[1]

पृथ्वीकाय से स्पृष्ट है—यावत्—वनस्पतिकाय से स्पृष्ट है।
त्रसकाय से कभी स्पृष्ट है कभी स्पृष्ट नहीं है।

अद्धासमएणं फुडे।

अद्धासमय से स्पृष्ट है।

६०४. एवं लवणसमुद्दे, धायइसंडेदीवे, कालोए समुद्दे, अब्भितर पुक्खरद्धे।

६०४. इसी प्रकार लवणसमुद्र, धातकीखण्ड, कालोदसमुद्र, आभ्यन्तर पुष्करार्ध है।

बाहिरपुक्खरद्धे एवं चेव,
णवरं—अद्धासमएणं णो फुडे,
एवं-जाव-सयंभूरमणे समुद्दे।

बाह्यपुष्करार्ध भी इसी प्रकार है।
विशेष—बाह्यपुष्करार्ध अद्धासमय से स्पृष्ट नहीं है।
इसी प्रकार—यावत्—स्वयम्भूरमण समुद्र भी अद्धासमय से स्पृष्ट नहीं है।

एसा परिवाडी इमाहिं गाहाहिं अणुगंतव्वा, तं जहा—

यह क्रम इन गाथाओं में जानना चाहिए यथा—

जंबुद्दीवे लवणे, धायइ कालोए पुक्खरे वरुणे।
खीर घत खोत नंदि य, अरुणवरे कुण्डले रुयए ॥१॥

जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्ड, कालोदसमुद्र, पुष्करवरद्वीप, वरुणद्वीप।
क्षीर, घृत, क्षोत=इक्षुरस, नन्दी, अरुणवर, कुण्डल, और रुचक ॥१॥

आभरण-वत्थ-गंधे, उप्पल-तिलए य पुढवि-णिहि-रयणे।
वासहर-दह-नदीओ, विजया-वक्खार-कप्पिदा ॥२॥

आभरण, वस्त्र, गंध, उत्पल, तिलक, पृथ्वी, निधिरत्न, वर्षधर, द्रह, नदियाँ, विजय, वक्षस्कार कल्पेन्द्र ॥२॥

कुरु-मंदर-आवासा, कूडा णक्खत्त-चंद-सूरा य[2]।
देवे णागे जक्खे, भूए य सयंभूरमणे य ॥३॥

कुरु, मन्दर, आवासपर्वत, कूट, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, देव, नाग, यक्ष, भूत, स्वयम्भूरमण ॥३॥
(इन नाम वाले द्वीप-समुद्र इस मध्यलोक में है)

---

१ यह कथन सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की अपेक्षा से है।
सूक्ष्म पृथ्वीकाय—यावत्—सूक्ष्म वनस्पतिकाय के समान त्रसकाय के सूक्ष्म न होने से सर्वत्र व्याप्त नहीं है।
अतएव जम्बूद्वीप त्रसकाय से कभी स्पृष्ट नहीं है' यह कथन संगत है।
केवली त्रस हैं—केवल समुद्घात के समय उनके आत्म-प्रदेशों से सम्पूर्ण लोक के समान सम्पूर्ण जम्बूद्वीप भी त्रसकाय से स्पृष्ट है। अतः यह कथन भी संगत है।

२ जीवा. पडि. ३, २, सु. १६६।

वाणमंतरा देवा—

वाणमंतर देवठाणाइं—

६०६. प० १—कहि णं भंते ! वाणमंतराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

२—कहि णं भंते ! वाणमंतरा देवा परिवसंति ?

उ० १—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्स बाहल्लस्स,

उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहित्ता,

हेट्ठा वि एगं जोयणसयं वज्जेत्ता,

मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु[1], एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जणगरावाससतसहस्सा भवंतीतिमक्खातं ।

ते णं भोमेज्जा णगरा बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा -जाव-पडागमालाउलाभिरामा, सव्वरयणामया अच्छा -जाव-पडिरूवा[2]—एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

२—तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे—तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा परिवसंति, तं जहा—१. पिसाया, २. भूया, ३. जक्खा, ४. रक्खसा, ५. किन्नरा, ६. किंपुरिसा, ७. भुयगवइणो य महाकाया, ८. गंधव्वगणा य निउणगंधव्वगीतरइणो,[3]

१. अणवण्णिय, २. पणवण्णिय, ३. इसिवाइय, ४. भूयवाइय ५. कंदिय, ६. महाकंदिया य, ७. कुहंड, ८. पयंगदेवा ।

चंचलचलचवलचित्तकीलण-दवप्पिया, गहिरहसिय-गीय-णच्चणरई, वणमाला-मेल-मउल-कुण्डल-सच्छंद-विउव्वियाभरणचारुभूसणधरा, सव्वोउयसुरभि-कुसुम मुरइय पलंबनोहंतकंतवियसंतचित्त-वणमालरइयवच्छा, कामकामा,

वाणव्यंतर देव—

वाणव्यन्तर देवों के स्थान—

६०६. प्र०—(१) हे भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

(२) हे भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—(१) हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के सहस्र योजन विस्तीर्ण रत्नमय काण्डरूप पृथ्वीपिण्ड के—

ऊपर से सौ योजन अवगाहन करने पर और

सो योजन नीचे के भाग को छोड़कर,

मध्य के आठ सौ योजन में तिरछे वाणव्यन्तर देवों के असंख्य लाख भौमेय नगरावास हैं—ऐसा कहा गया है ।

ये भौमेय नगर बाहर से गोल अन्दर से चौकोर—यावत्—पताकाओं की श्रेणी से व्याप्त और मनोहर हैं, वे सब रत्नमय हैं स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं । यहाँ पर्याप्त तथा अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवों के स्थान कहे गये हैं ।

(२) इनका उपपात समुद्घात और स्वस्थान—ये तीनों ही लोक के असंख्यातवें भाग में हैं—वहाँ अनेक वाणव्यन्तर देव रहते हैं यथा—(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किंपुरुष, (७) भुजगपति महाकाय महोरग, (८) गन्धर्वों के निपुण गायन में प्रीति रखने वाले गन्धर्व गण ।

(१) अणपन्निक, (२) पणपन्निक, (३) रिषिवादिक, (४) भूतवादिक, (५) कंदित, (६) महाकंदित, (७) कुहंड, (८) पतंगदेव ।

ये सब चंचल और अत्यन्त चपल चित्त वाले हैं इन्हें क्रीड़ा एवं हास्य प्रिय है, गीत और नृत्य में इनकी अधिक रुचि है, वनमालाओं से सजे हुए मुकुट तथा कुण्डल और स्वेच्छा से (वैक्रियशक्ति द्वारा) बनाये हुए आभरण एवं सुन्दर भूषण धारण करने वाले हैं, इनके वक्षस्थल पर सभी ऋतुओं के सुगन्धित विकसित पुष्पों से सुशोभित अनेक प्रकार की विचित्र वनमालायें हैं, ये स्वेच्छा से गमन करने वाले हैं, अपनी इच्छाओं के अनुरूप

---

१ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए पढमे कंडे अट्ठसु जोयणसएसु वाणमंतर भोमेज्ज विहारा पण्णत्ता । —सम. ८००, सु. १११

२ सम० १५०/सु० ३ ।

३ (क) ठाणं ८, सु. ६५४ । (ख) उत्त. अ. ३६, गा. २०७ ।

(ग) भग. स. ५ उ. ८, सु. १३ । (घ) भग. स. ८, उ. १, सु. १४ ।

(ङ) पण्ण. प. १, सु. १४१ क्रम भिन्न है ।

दाहिणिल्लपिसायदेवठाणाइं—

६०६. प० १—कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

२—कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति ?

उ० १—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स।

उवरिं एगं जोयणसतं ओगाहेत्ता,

हेट्ठा वेगं जोयणसतं वज्जेत्ता,

मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु—एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जनगरावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं।

ते णं भोमेज्ज-णगरा बाहिं वट्टा, जहा ओहिओ भवणवण्णो तहा भाणियव्वो-जाव-पडिरूवा।

एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

२—तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे—तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति। महिड्ढिया जहा ओहिया-जाव-विहरंति।[1]

—पण्ण. प. २, सु. १६०(१)

दाक्षिणात्य पिशाच देवों के स्थान—

६०६. प्र०—(१) हे भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त दक्षिण के पिशाच देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

(२) हे भगवन् ! दक्षिण के पिशाच देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—(१) हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के सहस्र योजन विस्तीर्ण रत्नमय काण्डरूप पृथ्वी पिण्ड के,

ऊपर से सौ योजन अवगाहन करने पर,

और सौ योजन नीचे के भाग को छोड़कर,

मध्य के आठ सौ योजन में तिरछे दक्षिण के पिशाच देवों के असंख्येय लाख भौमेयनगरावास हैं—ऐसा कहा गया है।

(१) ये भौमेयनगर बाहर से वृत्ताकार हैं—सामान्य भवन वर्णन जिस प्रकार है उसी प्रकार यहाँ कहना चाहिए—यावत्—नित्य नये दिखाई देने वाले हैं।

यहाँ पर्याप्त तथा अपर्याप्त दक्षिण के पिशाच देवों के स्थान कहे गये हैं।

(२) इन देवों के [उपपात समुद्घात और स्वस्थान]—ये तीनों ही लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ पर अनेक दक्षिण के पिशाच देव रहते हैं। वे महर्धिक हैं—सामान्य वर्णन के समान—यावत्—रहते हैं।

दाहिणिल्लपिसायइंदस्स "कालस्स" वण्णणं—

६१०. काले यऽत्थ पिसायइंदे पिसायराया परिवसइ। महिड्ढीए-जाव-पभासेमाणे। से णं तत्थ तिरियमसंखेज्जाणं भोमेज्जगनगरावाससतसहस्साणं, चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं, चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाधिवईणं, सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं-जाव-विहरइ।

—पण्ण. प. २, सु. १६०(२)

दाक्षिणात्य पिशाचेन्द्र 'काल' का वर्णन—

६१०. यहाँ पर काल नामक पिशाचराज पिशाचेन्द्र रहते हैं—वे महर्धिक हैं—यावत्—प्रभासमान हैं। वे वहाँ पर तिरछे असंख्येय लाख भौमेयनगरावासों का चार हजार सामानिक देवों का, सपरिवार चार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदाओं का, सात सेनाओं का, सात सेनापतियों का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का और अन्य अनेक दक्षिण के पिशाच वाणव्यन्तर देव-देवियों का आधिपत्य करता हुआ—यावत् विचरते हैं।

उत्तरिल्लपिसायदेवाणं ठाणाइं—

तेसिं इंदस्स महाकालस्स वण्णणं च—

६११. प०—कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

कहि णं भंते ! उत्तरिल्ला पिसाया देवा परिवसंति ?

उत्तरीय पिशाचदेवों के स्थान—

और उनके इन्द्र महाकाल का वर्णन—

६११. प्र०—हे भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त उत्तर के पिशाच देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

हे भगवन् ! उत्तर के पिशाचदेव कहाँ रहते हैं ?

---

१ जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० १२१ ।

दाहिणिल्लपिसायदेवठाणाइं—

६०६. प० १—कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

२—कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति ?

उ० १—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स।

उवरिं एगं जोयणसतं ओगाहेत्ता,

हेट्ठा वेगं जोयणसतं वज्जेत्ता,

मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु—एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जनगरावास-सयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं।

ते णं भोमेज्ज-णगरा बाहिं वट्टा, जहा ओहिओ भवणवण्णो तहा भाणियव्वो-जाव-पडिरूवा।

एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

२—तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे—तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति। महिड्ढिया जहा ओहिया-जाव-विहरंति।[1]

—पण्ण. प. २, सु. १६०(१)

दाक्षिणात्य पिशाच देवों के स्थान—

६०६. प्र०—(१) हे भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त दक्षिण के पिशाच देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

(२) हे भगवन् ! दक्षिण के पिशाच देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—(१) हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के सहस्र योजन विस्तीर्ण रत्नमय काण्डरूप पृथ्वी पिण्ड के,

ऊपर से सौ योजन अवगाहन करने पर,

और सौ योजन नीचे के भाग को छोड़कर,

मध्य के आठ सौ योजन में तिरछे दक्षिण के पिशाच देवों के असंख्येय लाख भौमेयनगरावास हैं—ऐसा कहा गया है।

(१) ये भौमेयनगर बाहर से वृत्ताकार हैं—सामान्य भवन वर्णन जिस प्रकार है उसी प्रकार यहाँ कहना चाहिए—यावत्—नित्य नये दिखाई देने वाले हैं।

यहाँ पर्याप्त तथा अपर्याप्त दक्षिण के पिशाच देवों के स्थान कहे गये हैं।

(२) इन देवों के [उपपात समुद्घात और स्वस्थान]—ये तीनों ही लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ पर अनेक दक्षिण के पिशाच देव रहते हैं। वे महर्धिक हैं—सामान्य वर्णन के समान—यावत्—रहते हैं।

दाहिणिल्लपिसायइंदस्स "कालस्स" वण्णणं—

६१०. काले यऽत्थ पिसायइंदे पिसायराया परिवसइ। महिड्ढीए-जाव-पभासेमाणे। से णं तत्थ तिरियमसंखेज्जाणं भोमेज्जगनगरावाससतसहस्साणं, चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं, चउण्हमग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाधिवईणं, सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं-जाव-विहरइ।

—पण्ण. प. २, सु. १६०(२)

दाक्षिणात्य पिशाचेन्द्र 'काल' का वर्णन—

६१०. यहाँ पर काल नामक पिशाचराज पिशाचेन्द्र रहते हैं—वे महर्धिक हैं—यावत्—प्रभासमान हैं। वे वहाँ पर तिरछे असंख्येय लाख भौमेयनगरावासों का चार हजार सामानिक देवों का, सपरिवार चार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदाओं का, सात सेनाओं का, सात सेनापतियों का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का और अन्य अनेक दक्षिण के पिशाच वाणव्यन्तर देव-देवियों का आधिपत्य करता हुआ—यावत् विचरते हैं।

उत्तरिल्लपिसायदेवाणं ठाणाइं—

तेसिं इंदस्स महाकालस्स वण्णणं च—

६११. प०—कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

कहि णं भंते ! उत्तरिल्ला पिसाया देवा परिवसंति ?

उत्तरीय पिशाचदेवों के स्थान—

और उनके इन्द्र महाकाल का वर्णन—

६११. प्र०—हे भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त उत्तर के पिशाच देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

हे भगवन् ! उत्तर के पिशाचदेव कहाँ रहते हैं ?

---

१ जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० १२१।

उ०—गोयमा ! जहेव दाहिणिल्लाणं वत्तव्वया तहेव उत्तरिल्ला णं पि। नवरं-मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं।
—पण्ण. प. २, सु १६१ (१)

महाकाले यऽत्थ पिसायइंदे पिसायराया परिवसंति -जाव-विहरंति। —पण्ण. प. २, सु १६१(२)

उ०—हे गौतम ! जिस प्रकार दक्षिण के पिशाचों का वर्णन है उसी प्रकार उत्तर के पिशाचों का भी वर्णन है, विशेष—ये मेरु पर्वत के उत्तर में है।

यहाँ पिशाचराज पिशाचेन्द्र महाकाल रहते हैं—यावत्—विहार करते हैं।

वाणमंतराणं देवाणं ठाणजाणणानिद्देसो, तेसिं इंदा य—

६१२. एवं जहा पिसायाणं तहा भूयाणं वि-जाव-गंधव्वाणं। णवरं-इंदेसु णाणत्तं भाणियव्वं इमेण विहिणा

(२) भूयाणं—१. सुरूव, २. पडिरूवा।

(३) जक्खाणं—१. पुण्णभद्द, २. माणिभद्दा।

(४) रक्खसाणं—१. भीम, २. महाभीमा।

(५) किण्णराणं—१. किण्णर, २. किंपुरिसा।

(६) किंपुरिसाणं—१. सप्पुरिस, २. महापुरिसा।

(७) महोरगाणं—१. अइकाय, २. महाकाया।

(८) गंधव्वाणं—१. गीतरती, २. गीतजसे-जाव-विहरति।

वाणव्यन्तरों के स्थान जानने का निर्देश और उनके इन्द्र—

६१२. जिस प्रकार पिशाचों का वर्णन है उसी प्रकार भूतों का—यावत्—गंधर्वों का है। विशेष—इन्द्रों के विभिन्न नाम इस प्रकार कहने चाहिए।

(२) भूतों के—दक्षिण के इन्द्र[3] १, सुरूप; उत्तर के इन्द्र २, प्रतिरूप[4]।

(३) यक्षों के—दक्षिण के इन्द्र १, पूर्णभद्र[5]; उत्तर के इन्द्र २, मणिभद्र[6]।

(४) राक्षसों के—दक्षिण में इन्द्र १, भीम[7]; उत्तर के इन्द्र २, महाभीम[8]।

(५) किन्नरों के—दक्षिण के इन्द्र १, किन्नर[9]; उत्तर के इन्द्र २, किंपुरुष[10]।

(६) किंपुरुषों के—दक्षिण के इन्द्र १, सत्पुरुष[11]; उत्तर के इन्द्र २, महापुरुष[12]।

(७) महोरगों के—दक्षिण के इन्द्र १, अतिकाय[13]; उत्तर के इन्द्र २, महाकाय[14]।

(८) गंधर्वों के—दक्षिण के इन्द्र १, गीतरती[15]; उत्तर के इन्द्र २, गीतयश—यावत्—रहते हैं[16]।

वाणमंतरेंदनामसंगहगाहाओ—

६१३. १. काले य महाकाले, २. सुरूव-पडिरूव, ३. पुण्णभद्दे य।
अमरवइ माणिभद्दे, ४. भीमे य तहा महाभीमे॥
५. किण्णर किंपुरिसे खलु, ६. सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे।
७. अइकाय महाकाए ८. गीयरई चेव गीतजसे॥
—पण्ण. प. २, सु १६२

वाणव्यन्तर इन्द्रों के नामों की संग्रह गाथाएँ—

६१३. गाथार्थ—(१) काल, (२) महाकाल, (३) सुरूप, (४) प्रतिरूप, (५) पूर्णभद्र, (६) मणिभद्र, (७) भीम, (८) महाभीम, (९) किन्नर, (१०) किंपुरुष, (११) सत्पुरुष, (१२) महापुरुष, (१३) अतिकाय, (१४) महाकाय, (१५) गीतरती, (१६) गीतयश।

वाणमन्तरदेवाणं चेइयरुक्खा—

६१४. एएसि णं अट्ठण्हं वाणमंतरदेवाणं अट्ठ चेयइरुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—गाहाओ—

कलंबो अ पिसायाणं वडो जक्खाण चेइयं।
तुलसी भूयाण भवे, रक्खसाणं च कंडओ॥
असोओ किण्णराणं च, किंपुरिसाण य चंपओ।
नागरूक्खो भुयंगाणं, गंधव्वाण य तेंदुओ॥
—ठाणं अ. ८, सु ६५४

वाणव्यन्तर देवों के चैत्यवृक्ष—

६१४. इन आठ वाणव्यन्तर देवों के आठ चैत्य वृक्ष कहे गये हैं, यथा—गाथार्थ—

(१) पिशाचों का चैत्यवृक्ष—कदंब, (२) यक्षों का चैत्यवृक्ष—वटवृक्ष, (३) भूतों का चैत्यवृक्ष—तुलसी, (४) राक्षसों का चैत्यवृक्ष—कंटक, (५) किन्नरों का चैत्यवृक्ष—अशोक, (६) किंपुरुषों का चैत्यवृक्ष—चंपक, (७) भुजंगों का चैत्यवृक्ष—नागवृक्ष, (८) गंधर्वों का चैत्यवृक्ष—तिंदुक।

चेइयरुक्खाणं उच्चत्तं—

वाणमंतराणं देवाणं चेयइरूक्खा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता. —सम. ८, सु ३

चैत्य वृक्षों की ऊँचाई—

वाणव्यन्तर देवों के चैत्यवृक्ष आठ योजन ऊँचे कहे गये हैं।

अणवन्निय वाणमन्तरदेवठाणाइं—

६१५. प० १—कहि णं भंते ! अणवन्नियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

२—कहि णं भंते ! अणवण्णिया देवा परिवसंति ?

उ० १—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्स वाहल्लस्स

उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहित्ता,
हेट्ठा वेगं एगं जोयणसयं वज्जेत्ता,
मज्झे अट्ठसु जोयणसतेसु—
एत्थ णं अणवण्णियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा णगरावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खातं।

तेणं भोमेज्ज-णगरा वाहिं वट्टा जहा ओहिओ भवण-वण्णओ, तहा भाणियव्वो-जाव-पडिरूवा एत्थ णं अणवण्णियाणं देवाणं ठाणा पण्णत्ता।

२—उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, तत्थ णं वहवे अणवन्निया देवा परिवसंति, महड्ढिया जहा पिसाया जाव विहरंति।

—पण्ण. प. २, सु. १९३(१)

अणपन्निक वाणव्यन्तर देवों के स्थान—

६१५. प्र०—(१) हे भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त अणपन्निक देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

(२) हे भगवन् ! अणवन्निक देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—(१) हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के सहस्र योजन विस्तीर्ण रत्नमय काण्डरूप पृथ्वीपिण्ड के,

ऊपर से सौ योजन अवगाहन करने पर,
और सौ योजन नीचे के भाग को छोड़कर,
मध्य के आठ सौ योजन में,
तिरछे अणपन्निक देवों के असंख्य लाख भौमेयनगरावास हैं—ऐसा कहा गया है।

ये भौमेय नगर बाहर से वृत्ताकार हैं जिस प्रकार सामान्य भवन वर्णन हैं उसी प्रकार कहना चाहिए—यावत्—वे भवन नित नये दिखाई देने वाले हैं—यहाँ पर अणपन्निक देवों के स्थान कहे गये हैं।

(२) उपपात की अपेक्षा से ये लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

समुद्घात की अपेक्षा से ये लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा ये लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ पर अनेक अणपन्निक देव रहते हैं। वे महर्धिक हैं। जिस प्रकार पिशाचों का वर्णन है उसी प्रकार इनका वर्णन है—यावत्—ये रहते हैं।

अणवन्निय देवेंदा—

६१६. सन्निहिय-सामाणा यऽत्थ दुवे अणवण्णिंदा अणवण्णियकुमाररायाणो परिवसंति। महिड्ढिया जहा काल-महाकाला।

—पण्ण. प. २, सु. १९३(२)

अणपन्निक देवेन्द्र—

६१६. अणपन्निक कुमारराज अणपन्निकेन्द्र सन्निहित और सामान्य ये दो इन्द्र यहाँ रहते हैं—ये महर्धिक हैं—जिस प्रकार काल-महाकाल इन्द्रों का वर्णन है उसी प्रकार इनका वर्णन है।

दाहिणिल्ल उत्तरिल्ल अणवन्नियदेवाणं,
तेसिं इंदाणं च वत्तव्वया निद्देसो—

एवं जहा काल-महाकालाणं दोण्हं पि दाहिणिल्लाणं उत्तरिल्लाणं य भणिया तहा सन्निहिय-सामाणाईणं पि भाणियव्वा। —पण्ण. प. २, सु. १९४

दाक्षिणात्य और उत्तरीय अणपन्निक देवों की और उनके इन्द्रों की वक्तव्यता का निर्देश—

जिस प्रकार दक्षिण और उत्तर के काल-महाकाल इन्द्रों का वर्णन है उसी प्रकार सन्निहित और सामान्य नामक इन्द्रों का वर्णन है।

अणवन्नियाइवाणमन्तरदेवनामाइं तहासोलसेंदनाम-गाहाओ—

६१७. १. अणवन्निय, २. पणवन्निय,
३. इसिवाइय, ४. भूयवाइया चेव।

अणपन्निकादि वाणव्यन्तरदेवों के नाम—
और उनके सोलह इन्द्रों के नाम—

६१७, (१) अणपन्निक, दक्षिण के इन्द्र सन्निहित १७, २ उत्तर के इन्द्र सामान्य १८।

५. कंदिय, ६. महाकंदिया,
७. कुहंड, ८. पययदेवा य इमे इंदा ॥

१. सण्णिहिया-सामाणा, २. धाय,
४. विधाए, ५. इसी य, ६. इसिपाले ।
७. ईसर, ८. महेसरे य, हवइ,
९. सुवच्छे, १०. विसाले य ॥

११. हासे, १२. हासरई वि य,
१३. सेते य तहा भवे, १४. महासेते ।
१५. पयते, १६. पययपई वि य,
नेयव्वा आणुपुव्वीए ॥

—पण्ण. प. २, सु. १९४

(२) पणपन्निक, १ दक्षिण के इन्द्र धाता १९, २ उत्तर के इन्द्र विधाता २० ।

(३) ऋषीवादी १ दक्षिण के इन्द्र ऋषि २१, २ उत्तर के इन्द्र ऋपिपाल २२ ।

(४) भूतवादी, १ दक्षिण के इन्द्र ईश्वर २३, २ उत्तर के इन्द्र महेश्वर २४ ।

(५) कंदित, १ दक्षिण के इन्द्र सुवत्स २५, २ उत्तर के इन्द्र विशाल २६ ।

(६) महाकंदित, १ दक्षिण के इन्द्र हास २७, २ उत्तर के इन्द्र हासरति २८ ।

(७) कोहंड, १ दक्षिण के इन्द्र श्वेत २९, २ उत्तर के इन्द्र महाश्वेत ३० ।

(८) पतंगदेव, दक्षिण के इन्द्र पतंग ३१, २ उत्तर के इन्द्र पतंगपति ३२ । इस प्रकार क्रम से जानना चाहिए ।

वाणमंतरिंदाणं अग्गमहिसीओ—

६१८. कालस्स णं पिसाइंदस्स पिसायरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. कमला, २. कमलप्पभा, ३. उप्पला, ४. सुदंसणा । एवं महाकालस्स वि ।

सुरूवस्स णं भूइंदस्स भूयरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. रूववई, २. बहुरूवा, ३. सुरूवा, ४. सुभगा । एवं पडिरूवस्स वि ।

पुण्णभद्दस्स णं जक्खिंदस्स जक्खरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. पुत्ता, २. बहुपुत्तिया, ३. उत्तमा, ४. तारगा । एवं मणिभद्दस्स वि ।

भीमस्स णं रक्खसिंदस्स रक्खसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. पउमा, २. वसुमई, ३. कणगा, ४. रयणप्पभा । एवं महाभीमस्स वि ।

किन्नरस्स णं किंनरिंदस्स किन्नररण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तं जहा—१. वडेंसा, २. केतुमई, ३. रतिसेणा, ४. रतिप्पभा । एवं किंपुरिसस्स वि ।

सप्पुरिसस्स णं किंपुरिसिंदस्स किंपुरिसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. रोहिणी, २. नवमिया, ३. हिरी, ४. पुप्फवई । एवं महापुरिसस्स वि ।

अइकायस्स णं महोरगिंदस्स महोरगरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. भुयगा, २. भुयगवई,

वाणव्यन्तरों के इन्द्रों की अग्रमहिषियाँ—

६१८. काल पिशाचराज पिशाचेन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—(१) कमला, (२) कमलप्रभा, (३) उत्पला, (४) सुदर्शना । इसी प्रकार महाकाल पिशाचेन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ हैं ।

सुरूप भूतराज भूतेन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—(१) रूपवती, (२) बहुरूपा, (३) सुरूपा, (४) सुभगा । इसी प्रकार प्रतिरूप भूतेन्द्र की चार अग्रमहिषियों के नाम हैं ।

पूर्णभद्र यक्षराज यक्षेन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—(१) पुत्रा, (२) बहुपुत्रिका, (३) उत्तमा, (४) तारका । इसीप्रकार मणिभद्र यक्षेन्द्र की चार अग्रमहिषियों के नाम हैं ।

भीम राक्षसराज राक्षसेन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—(१) पद्मा, (२) वसुमती, (३) कनका, (४) रत्नप्रभा । इसी प्रकार महाभीम राक्षसेन्द्र की चार अग्रमहिषियों के नाम हैं ।

किन्नर किन्नरराज किन्नरेन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—(१) अवतंसिका, (२) केतुमति, (३) रतिसेना, (४) रतिप्रभा । इसी प्रकार किंपुरुष की चार अग्रमहिषियों के नाम हैं ।

सत्पुरुष किंपुरुषराज किंपुरुषेन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—(१) रोहिणी, (२) नवमिका, (३) ह्री, (४) पुष्पवती । इसी प्रकार महापुरुष की चार अग्रमहिषियों के नाम हैं ।

अतिकाय महोरगराज महोरगेन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—(१) भुजगा, (२) भुजगवती, (३) महाकच्छा,

३. महाकच्छा, ४. फुडा। एवं महाकायस्स वि।

(४) स्फुटा। इसी प्रकार महाकाय महोरगेन्द्र की चार अग्रमहिषियों के नाम हैं।

गीयरइस्स णं गंधव्विंदस्स गंधव्वरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. सुघोसा, २. विमला, ३. सुस्सरा, ४. सरस्सई। एवं गीयजसस्स वि।

—ठाणं ४, उ० १, सु० २७३

गीतरत गंधर्वराज गंधर्वेन्द्र की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, यथा—(१) सुघोषा, (२) विमला, (३) सुस्वरा, (४) सरस्वती। इसी प्रकार गीतयश महोरगेन्द्र की चार अग्रमहिषियों के नाम हैं।

वाणमंतर-नगराणं संखा सरूवं च—

६१९. प०—केवतिया णं भंते! वाणमंतर भोमेज्जनगरावाससयसहस्सा पन्नत्ता?

उ०—गोयमा! असंखेज्जा वाणमंतर भोमेज्जनगरावाससयसहस्सा पन्नत्ता।

प०—ते णं भंते! किंमया पन्नत्ता?

उ०—गोयमा! सव्वरयणामया अच्छा सण्हा-जाव-पडिरूवा। तत्थ णं बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति।

सासया णं ते भवणा दव्वट्ठयाए, वण्णपज्जवेहिं-जाव-फासपज्जवेहिं असासया। एवं-जाव-गीयजस-भोमेज्जनगरावासा। —भग. स. १९, उ. ७, सु. ४-५

वाणव्यन्तरों के नगरों की संख्या और स्वरूप—

६१९. प्र०—हे भगवन्! वाणव्यन्तर देवों के कितने लाख भौमेय नगरावास कहे गये हैं?

उ०—हे गौतम! वाणव्यन्तरदेवों के असंख्य लाख भौमेय नगरावास कहे गये हैं।

प्र०—हे भगवन्! वे भौमेयनगरावास किन पदार्थों के बने हुए हैं?

उ०—हे गौतम! वे सब रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, श्लक्ष्ण हैं—यावत्—नित्य नये दिखाई देने वाले हैं। उनमें अनेक जीव उत्पन्न होते हैं, मरते हैं, तथा अनेक पुद्गल मिलते हैं और बिखरते हैं।

द्रव्यों की अपेक्षा से वे भवन शास्वत हैं, और वर्ण पर्यायों—यावत्—स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा से अशास्वत हैं—यावत्—गीतयश इन्द्र के भौमेयनगरावास हैं।

असंखेज्जा वाणमंतरावासा तेसिं वित्थरं च—

६२०. प०—केवतिया णं भंते! वाणमंतरावाससयसहस्सा पन्नत्ता?

उ०—गोयमा! असंखेज्जा वाणमंतरावाससयसहस्सा पन्नत्ता।

प०—ते णं भंते! किं संखेज्ज वित्थडा असंखेज्जवित्थडा?

उ०—गोयमा! संखेज्ज वित्थडा, नो असंखेज्जवित्थडा।

—भग. स. १३, उ. २, सु. ७-८

असंख्य वाणव्यन्तरावास और उनका विस्तार—

६२०. हे भंते! वाणव्यन्तरावास कितने लाख कहे गये है?

उ०—हे गौतम! वाणव्यन्तरावास असंख्य लाख कहे गये हैं।

प्र०—हे भंते! वे संख्येय योजन विस्तार वाले हैं या असंख्येय योजन विस्तार वाले हैं?

उ०—हे गौतम! संख्येय योजन विस्तार वाले हैं, असंख्येय योजन विस्तार वाले नहीं हैं।

सभाए सुहम्माए उच्चत्तं—

६२१. वाणमंतराणं देवाणं सभाओ सुहम्माओ नव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। —सम. ९, सु. १०

सुधर्मा सभा की ऊँचाई—

६२१. वाणव्यन्तर देवों की सुधर्मा सभाएँ नौ योजन ऊँची कही गई है।

अंजण कंडाओ भोमेज्जविहाराणं अन्तरं—

६२२. इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए, अंजणस्स कंडस्स हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ वाणमंतर-भोमेज्जविहाराणं उवरिमंते, एस णं नवनउइ जोयणसयाइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते।

—सम. ९९, सु. ७

अंजण काण्ड से भौमेयविहारों का अन्तर—

६२२. इस रत्नप्रभापृथ्वी के अंजन काण्ड के ऊपर के अन्तिम भाग से वाणव्यंतरों के भौमेय-विहारों के ऊपर के अन्तिम भाग का व्यवधांनात्मक अन्तर निन्यानवें सौ ९९०० योजन का कहा गया है।

वाणमंतराणं परिसाणं देव-देवीणं संखा—

६२३. प०—कालस्स णं भंते! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ?

वाणव्यन्तरों की परिषदों के देव-देवियों की संख्या—

६२३. प्र०—हे भंते! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचराज की कितनी परिषदाएँ कही गई है?

उ०—गोयमा ! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. ईसा, २. तुडिया, ३. दढरहा,

१. अब्भितरिया ईसा,

२. मज्झिमिया तुडिया,

३. वाहिरिया दढरहा,[1]

प०—कालस्स णं भंते ! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमार-रण्णो अब्भितरियाए, मज्झिमियाए, बाहिरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सिओ पण्णत्ताओ ? अब्भितरियाए, मज्झिमियाए, वाहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अब्भितरियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सिओ पण्णत्ताओ,

मज्झिमियाए परिसाए दस देवसाहस्सिओ पण्णत्ताओ,

वाहिरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सिओ पण्णत्ताओ,

अब्भितरियाए परिसाए एगं देविसयं पण्णत्तं,

मज्झिमियाए परिसाए एगं देविसयं पण्णत्तं,

वाहिरियाए परिसाए एगं देविसयं पण्णत्तं,

एवं जहा पिसायाणं तहा भूयाण वि-जाव-गंधव्वाणं ।

—जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. १२१

उ०—हे गौतम ! तीन परिषदाएँ कही गई हैं, यथा—

(१) ईसा, (२) त्रुटिता, (३) दृढ़रथा,

(१) आभ्यन्तर परिषद ईसा,

(२) मध्य परिषद् त्रुटिता,

(३) बाह्य परिषद् दृढ़रथा,

प्र०—हे भंते ! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचराज काल की आभ्यन्तर, मध्यमिका और बाह्य परिषद् के कितने हजार देव कहे गये हैं ? तथा कितनी सौ देवियाँ कही गई हैं ?

उ०—हे गौतम ! आभ्यन्तर परिषद् के आठ हजार देव कहे गये हैं ?

मध्यमिका परिषद् के दस हजार देव कहे गये हैं,

बाह्य परिषद् के बारह हजार देव कहे गये हैं ।

आभ्यन्तर, मध्यमिका और बाह्य परिषद् की एकेक सौ देवियाँ कही गई हैं

पिशाचों की परिषदों के देव-देवियों की जितनी संख्या हैं उतनी ही भूतों की परिषदों के देव-देवियों की संख्या हैं—यावत् गंधर्वों की भी उतनी ही है ।

जंभयाणं देवाणं सरूवं भेया ठाणं य—

६२४. प०—अत्थि णं भंते ! जंभया देवा, जंभयादेवा ?

उ०—हंता, अत्थि ।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–"जंभयादेवा, जंभयादेवा

उ०—गोयमा ! जंभगाणं देवा निच्चं पमुदितपक्कीलिया कंदप्परतिमोहणसीला जे णं ते देवे पासेज्जा से णं महंतं अयसं पाउणेज्जा, जे णं ते देवे तुट्ठे पासेज्जा से णं महंतं जसं पाउणेज्जा ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! "जंभगादेवा, जंभगादेवा ।"

प०—कतिविहाणं भंते ! जंभगादेवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दसविहा पन्नत्ता, तं जहा—१. अन्नजंभगा, ३. वत्थजंभगा, ४. लेणजंभगा, ५. सयणजंभगा, ६. पुप्फफलजंभगा, ६. विज्जाजंभगा, १०. अवियत्ति-जंभगा ।

प०—जंभगाणं भंते ! देवाणं कहिं वसहिं उवेंति ?

जृम्भक देवों का स्वरूप भेद और स्थान—

६२४. प्र०—हे भंते ! जृम्भकदेव जृम्भकदेव हैं ?

उ०—(गौतम !) हाँ है ।

प्र०—हे भन्ते ! किस कारण ये 'जृम्भकदेव' जृम्भकदेव कहे जाते हैं ?

उ०—गौतम ! ये जृम्भकदेव सदा प्रमुदित एवं क्रीड़ारत रहते हैं तथा काम-क्रीड़ा में मुग्ध रहते हैं । जो उन देवों को तुष्ट (प्रसन्न) देखता है वह महान् यश को प्राप्त होता है । जो उन देवों को कुपित देखता है वह महान् अयश को प्राप्त होता है ।

इसलिए गौतम ! वे जृम्भकदेव जृम्भकदेव कहे जाते हैं ।

प्र०—हे भन्ते ! जृम्भकदेव कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! दस प्रकार के कहे गये हैं, यथा—(१) अन्न-जृम्भक, (२) पानजृम्भक, (३) वस्त्रजृम्भक, (४) लयनजृम्भक, (६) पुष्पजृम्भक, (७) फलजृम्भक, (८) पुष्प-फलजृम्भक, (६) विद्याजृम्भक, (१०) अव्यक्तजृम्भक ।

प्र०—हे भन्ते ! जृम्भकदेवों की वसति (स्थान) कहाँ पर है ?

---

1 ठाणं ३, उ० २, सु० १५४ ।

उ०—सव्वेसु चेव दीहवेयड्ढेसु चित्तविचित्तजमगपव्वएसु कंचणपव्वएसु य—एत्थ णं जंभगादेवा वसहिं उवेंति,[1]

—भग. स. १४, उ. ८, सु. २५, २६, २७

उ०—(गौतम) सभी दीर्घ वैताढ्यों पर, चित्र-विचित्र यमक पर्वतों पर, कंचनपर्वतों पर—जृम्भकदेवों की वसति प्राप्त होती है।



जोइसिय-निरुवणं—

ज्योतिष्क-निरूपण—

जोइसियाणं संखाणं सव्वण्णूपदिट्ठं—

६२५. गाहा—

रवि-ससि-गह-णक्खत्ता, एवइया आहिया मणुयलोए।
जेसिं नामागोयं, न पागया पन्नवेहिंति॥

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १७७

ज्योतिष्कों का गणित सर्वज्ञ कथित है—

६२५. गाथार्थ—

सूर्य-चंद्र-ग्रह-नक्षत्र मनुष्य लोक में इतने कहे गये हैं, जिनके नाम गोत्रादि सामान्य व्यक्ति नहीं कह सकते हैं, अर्थात् सर्वज्ञ ही कह सकते हैं।

जोइसियाणं चारविसेसेणं मणुस्साणं सुह-दुक्खं—

६२६. गाहा—

रयणियर-दिणयराणं, नक्खत्ताणं महग्गहाणं च।
चारविसेसेण भवे, सुह-दुक्खविही मणुस्साणं[2]॥

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १७७

ज्योतिष्कों की विशेष गति से मनुष्यों को सुख-दुख होता है—

६२६. गाथार्थ—

चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र और ग्रहों की विशेष गति से मनुष्यों को सुख-दुःख प्राप्त होता है।

---

१ (क) जृम्भकदेवों की स्थिति द्रव्यानुयोग के स्थितिप्रज्ञप्ति विभाग में देखें।

(ख) ये जृम्भकदेव व्यंतरदेव हैं—यह उनकी स्थिति और स्थान से निश्चित हो जाता है और वे दृश्य देव हैं—यह भी जृम्भक नाम से परिलक्षित हो जाता है किन्तु १६ प्रकार के व्यंतरों में ये किसके अन्तर्गत है? व्यंतरों के ३२ इन्द्रों में से किस इन्द्र के अधीनस्थ है? तथा शक्रेन्द्र के चार लोकपालों में से किस लोकपाल के अधीन है? ये सभी प्रश्न समाधान के की अपेक्षा रखते हैं।

भग. श. ३, उ. ७ में वैश्रमणलोकपाल के अधीन वाणव्यंतरदेव माने गये हैं, पर वहाँ जृम्भकदेवों का नाम निर्देश नहीं हैं। भग. श. ३, उ. ७ में यमलोकपाल के अपत्यस्थानीयदेवों में "कंदर्प" नामक देव हैं। यहाँ जृम्भकदेवों का विशेषण "कंदर्प" है—यदि इस विशेषण से जृम्भकदेव यमलोकपाल के अधीनस्थ हो तो ठीक है। आगमज्ञों की परम्परागत धारणाओं के अनुसार स्पष्टीकरण आवश्यक है।

२ (क) सूरिय० पा० १९, सु० १००, चंद० पा० १९, सु० १००

(ख) "रजनिकर-दिनकराणां" चन्द्रादित्यानां, नक्षत्राणां, महाग्रहाणां च "चार विशेषेण" तेन तेन चारेण सुख-दुःखविधयो मनुष्याणां, संभवंति, तथाति-द्विविधानि संति सदा मनुष्याणां कर्माणि, तद्यथा-शुभवेद्यानि, अशुभवेद्यानि च, कर्मणां च सामान्यतो विपाकहेतवः पंचः तद्यथा—१. द्रव्यं, २. क्षेत्रं, ३. कालो, ४. भावो, ५. भवश्च।

उक्तं च, गाहा—

उदय-क्खय-खओवसमोवसमा, जं च कम्मुणो भणिया।
दव्वं, खेत्तं, कालं, भावं, भवं च संपप्प॥

पंचविहा जोइसिया—

६२७. प०—से किं तं जोइसिया ?

उ०—जोइसिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. चंदा, २. सूरा, ३. गहा, ४. णक्खत्ता, ५. तारा।[1]

—पण्ण० प० १, सु० १४२/१

पाँच प्रकार के ज्योतिषिक—

६२७. प्र०—ज्योतिषिक कितने प्रकार के हैं ?

उ०—ज्योतिषिक पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र और (५) तारे।

जोइसियाणं देवाणं ठाणाइं—

६२८. प०—कहि णं भंते ! जोइसियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

कहि णं भंते ! जोइसिया देवा परिवसंति ?

ज्योतिषी देवों के स्थान—

६२८. प्र०—हे भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त ज्योतिषी देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

हे भगवन् ! ज्योतिषी देव कहाँ रहते हैं ?

(क्रमशः) शुभवेद्यानां च कर्मणां प्रायः शुभद्रव्य-क्षेत्रादि सामग्री विपाकहेतु :

अशुभवेद्यानामशुभ द्रव्य-क्षेत्रादि सामग्री, ततो यदा येषां जन्मनक्षत्राद्यानुकूलश्चंद्रादीनां चारस्तदा तेषां प्रायो यानि शुभवेद्यानि कर्माणि तानि तथाविधां विपाकसामग्रीमधिगम्य विपाकं प्रपद्यन्ते।

प्रपन्नविपाकानि शरीरनीरोगतासंपादनतो धनवृद्धिकरणेन च वैरोपशमनतः प्रियसंप्रयोगसंपादनतो वा। यदि वा, प्रारब्धाभीष्टप्रयोजन-निष्पत्तिकरणतः सुखमुपजनयंति। अत एव महीयांसः परमविवेकिनः स्वल्पमपि प्रयोजनं शुभ-तिथि-नक्षत्रादावारभंते। न तु यथा कथं च न।

अत एव जिनानामपि भगवतामाज्ञा प्रव्राजनादिकमधिकृत्यैवमवतिष्टः यथा शुभक्षेत्रे शुभदिशमभिमुखीकृत्य शुभे तिथि-नक्षत्र-मुहूर्तादौ प्रव्राजन-व्रतारोपणादि कर्तव्यं, नान्यथा तथा चोक्तं पंचवस्तुके—

गाहा—

एसा जिणाण आणा, खेत्ताइया य कम्मुणो भणिया।
उदयाइ कारणं जं, तम्हा सव्वत्थ जइयव्वं॥

अस्या अक्षरगमनिका—

एषा जिनानामाज्ञा यथा शुभक्षेत्रे शुभां दिशमभिमुखीकृत्य शुभे तिथि-नक्षत्र-मुहूर्तादौप्रव्राजन-व्रतारोपणादि कर्तव्यं नान्यथा। अपि च-क्षेत्रादयोऽपि कर्मणामुदयादिकारणं भगवद्भिरुक्तास्ततो शुभ-द्रव्य-क्षेत्रादि सामग्रीमवाप्य कदाचिदशुभवेद्यानि कर्माणि विपाकं गत्वोदसमासादयेयुः। तदुदये च गृहीत-व्रतभंगादिदोष-प्रसंगः।

शुभक्षेत्रादिसामग्री तु प्राप्य जनानां शुभकर्मविपाकसम्भवः इति, सम्भवति निर्विघ्नं सामायिक-परिपालनादि, तस्मादवश्यं छद्मस्थेन सर्वत्र शुभक्षेत्रादौ यतितव्यम्।

ये तु भगवंतोऽतिशयमंतस्ते अतिशयवलादेव निर्विघ्नं सविघ्नं वा सम्यगवगच्छंति। अतो न शुभ-तिथि-मुहूर्तादिक मपेक्षंत, इति तन्मार्गानुसरणं छद्मस्थानां न न्याय्यं।

तेन ये च परममुनिपर्युपासित-प्रवचनविडम्बका अपरिमलित जिनशासनोपनिषद्भूतशास्त्र-गुरुपरम्परायात-निरवद्य-विशद कालोचित सामाचारी। प्रतिपन्थिनः स्वमतिकल्पित-सामाचारिका अभिदधति। "यथा न प्रव्राजनादिषु शुभ-तिथि-नक्षत्रादि-निरीक्षणे यतितव्यं, न खलु भगवान् जगत्स्वामी प्रव्राजनायोपस्थितेषु शुभ-तिथ्यादिनिरीक्षणं कृतवानिति तेऽपास्ता द्रष्टव्या इति।

— जीवा. प्र. ३ उ. २ सू. १७७ की टीका से उद्धृत

१ (क) ठाणं ५. उ. १, सु. ४०१. केवल उत्तर सूत्र हैं।

(ख) भग. स. ५. उ. ६, सु. १७. "जोतिसिया पंचविहा" इतना ही है।

(ग) चंदा सूरा य नक्खत्ता, गहा तारागणा तहा।
दिसाविचारिणो देव, पंचहा जोइसालया॥

—उत्त. अ. ३६, गा. २०८

(घ) चंदा सूरा तारागणा य, नक्खत्त-गहगण समत्ता।
पंचविहा जोइसिया ....॥

—देविंद. गा. ८१

(ङ) भग. स. १९, उ. ८, सु. ४, जीवनिवृत्ति के भेद प्रभेद में।

उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए वहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्ताणउए जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता दसुत्तरे जोयणसय वाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोइसविसये; एत्थ णं जोइसियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा जोइसियाविमाणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं।[1]

उ०—हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अतिसम एवं रमणीय भूमिभाग से सात सौ नव्वे योजन की ऊँचाई पर ऊपर की ओर एक सौ दस योजन के विस्तृत क्षेत्र में ज्योतिषी देवों के असंख्य स्थान हैं। यहाँ तिरछे ज्योतिषी देवों के असंख्य लाख विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है।

ते णं विमाणा अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिया[2] सव्वफालियामया अब्भुग्गयमूसियपहसिया इव विविहमणिकणग-रयणभित्तिचित्ता वाउद्धूयविजयवेजयंतीपडागछत्ताइछत्तकलिया तुंगा गगणतलमणुलिहमाणसिहरा[3] जालंतररयण-पंजरुम्मिलियव्व - मणि-कणगथूभियागा वियसियसयवत्तपुण्डरीया तिलयरयणद्धचंदचित्ता णाणामणिमय दामालंकिया अंतो वहिं च सण्हा तवणिज्जरूइल-वालुयापत्थडा सुहफासा सस्सिरीया सुरूवा पासाईया-जाव-पडिरूवा =

ये विमान अर्धकपित्थक (आधे कपित्थफल) के आकार के हैं, सभी स्फटिक रत्नमय हैं, ऊँचे उन्नत अपनी प्रभा से हँसते हुए से प्रतीत होते हैं, विविधमणी, कनक-रत्नों की रचना से चित्र-विचित्र हैं, वायु से उड़ती हुई विजय-वैजयन्ती पताकाओं से तथा छत्रातिछत्रों से सुशोभित हैं, ऊँचे गगनचुम्बी शिखरों वाले हैं, जालियों में लगे हुए रत्नों वाले हैं, मणिजटित कनकमय स्तूपिकाओं से युक्त हैं, विकसित शतपत्र एवं पुण्डरीक कमलों वाले हैं, तिलक एवं रत्नमय अर्धचन्द्रों से विचित्र हैं, नाना मणिमयमालाओं से अलंकृत हैं. अन्दर और वाहर चिकने हैं, मुलायम तपनीय (लाल-स्वर्ण) की वालुका वाले हैं, सुखद स्पर्श वाले हैं, शोभायुक्त हैं सुरूप हैं प्रासादिक हैं—यावत्—प्रतिरूप-रमणीय हैं।

एत्थ णं जोइसियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

यहाँ (इन विमानों में) पर्याप्त और अपर्याप्त ज्योतिषी देवों के स्थान कहे गये हैं।

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे =

(उत्पत्ति, समुद्घात और स्वस्थान) इन तीन की अपेक्षा से ये (ज्योतिष्क देवों के विमान) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

तत्थ णं वहवे जोइसिया देवा परिवसंति, तं जहा—१. वहस्सई, २. चंदा, ३. सूरा, ४. सुक्का, ५. सणिच्छरा, ६. राहू, ७. धूमकेऊ, ८. वुहा, ९. अंगारगा, तत्ततवणिज्जकणगवण्णा।

इन विमानों में अनेक ज्योतिषी देव रहते हैं, यथा—(१) वृहस्पती, (२) चन्द्र, (३) सूर्य, (४) शुक्र, (५) शनैश्चर (६) राहु, (७) धूमकेतु, (८) बुध, (९) अंगारक (मंगल) ये तप्तस्वर्ण वर्ण जैसे वर्ण वाले हैं।

जे य गहा जोइसम्मि चारं चरंति केतू य गइरइया अट्ठावीसइविहा य नक्खत्तदेवयगणा, णाणासंठाणसंठियाओ य पंचवण्णाओ तारयाओ, ठितलेस्सा-

(इन उक्त ग्रहों से) ज्योतिष क्षेत्र में गति करने वाले अन्य ग्रह, गतिरतकेतु, अठावीस प्रकार के नक्षत्र देवों के गण, और नाना प्रकार के पांच वर्ण वाले तारे—ये सदा समान तेज वाले

---

१ प्र०—कहि णं भंते ! जोइसियाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता ?
कहिणं भंते ! जोइसिया देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! उप्पिं दीवसमुद्दाणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए वहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तणउए उड्ढं उप्पइत्ता दसुत्तरसया जोयणवाहल्लेणं तत्थ णं जोइसियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा जोइसियविमाणावासयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं।
—जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. १२२

२ (क) जीवा. प. ३, सु. १९७। (ख) सूरिय. पा. १८, सु. ९४।
(ग) चंद. पा. १८ सु. ९४।

३ गगणतलमहिलंघमाणसिहरा-पाठांतर।

चारिणो अविस्सामभंडलगई पत्तेयणामंकपागडियचिंध-मउडा महिड्ढिया-जाव-पभासेमाणा,

हैं, अपने अपने मण्डल में निरन्तर गति करने वाले हैं, प्रत्येक देव-मुकुट में स्पष्ट नामांकन चिह्न वाले हैं, महाऋद्धि वाले—यावत्—प्रभासमान हैं।

ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयसहस्साणं, साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं, साणं साणं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, साणं साणं परिसाणं, साणं साणं अणियाणं, साणं साणं अणियाहिवईणं, साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं-जाव-विहरंति,[1]

—पण्ण० प० २, सु० १९५/२

ये अपने अपने लाखों विमानावासों का, अपने अपने हजारों सामानिक देवों का, अपनी अपनी सपरिवार अग्रमहिषियों का, अपनी अपनी परिषदाओं का, अपनी अपनी सेनाओं का, अपने सेनापतियों का, अपने अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का और अन्य अनेक देव-देवियों का आधिपत्य एवं पुरोवर्तित्व करते हुए—यावत्—विचरते हैं।

चंद-सूर-गह-णवखत्त-ताराविमाणाणं संठाणं—

६२९. प्र०—चंद विमाणे णं भंते ! किं संठिते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिते पण्णत्ते, सव्वफालियामए अब्भुग्गयमूसियपहसिए-जाव-[2]पडिरूवे।

एवं सूरविमाणेवि, गहविमाणेवि, नक्खत्तविमाणेवि, ताराविमाणेवि अद्धकविट्ठसंठाणसंठिए[3]।

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १९७

चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और ताराविमानों के संस्थान—

६२९. प्र०—हे भगवन् ! चन्द्र विमान का संस्थान=आकार किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! अर्ध कपित्थगफल जैसा आकार कहा गया है। सारा स्फटिकमय है, चारों ओर से निकलती हुई किरणों से प्रभासित है—यावत्—प्रतिरूप है।

इसी प्रकार सूर्यविमान, ग्रहविमान, नक्षत्रविमान और ताराविमान अर्धकपित्थक फल जैसे संस्थान से स्थित है।

---

४ (क) सम. सु. १५०। (ख) जीवा. प. ३, सु. १२२।

१ यावत्करणात्-विविहमणिरयणभत्तिचित्ते, वाउद्धुयविजयवेजयंती पडागछत्तातिछत्त कलिए, तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे, जालंतर-रयण-पंजरोम्मीलिय-मणि-कणग-थूभियागे वियसियसयवत्तपुंडरीयतिलगरयद्धचंदचित्ते, अंतो बहिं च सण्हे तवणिज्जवालुयापत्थडे, सुहफासे, सस्सिरीयरूवे पासाईए—जाव—पडिरूवे। —जीवा. प. ३, उ. २; सु. १९७ की टीका से उद्धृत

२ (क) चन्द्र आदि सभी ज्योतिष्क विमानों के संस्थान आकार अर्धकपित्थफल जैसे कहे है किन्तु सभी ज्योतिष्कों के विमान हमें वर्तुलाकार दिखाई देते हैं—टीकाकार स्वयं इस प्रकार की आशंका करके समाधान करते हैं—

प्र०—यदि चन्द्रविमानमुत्तानीकृतार्धकपित्थसंस्थानसंस्थितं तत उदयकालेऽस्तमयकाले वा यदि वा तिर्यक् परिभ्रमत् पौर्णमास्यां कस्मात्तदर्धकपित्थफलाकारं नोपलभ्यते ?

उ०—कामं शिरस उपरि वर्तमानं वर्तुलमुपलभ्यते, अर्धकपित्थस्य शिरस उपरि दूरमवस्थापित-परभागादर्शनतो वर्तुलतया दृश्यमानत्वात्।

उच्यते—इहार्धकपित्थफलाकारं चन्द्रविमानं न सामस्त्येन प्रतिपत्तव्यं किन्तु तस्य विमानस्य पीठं, तस्य व पीठस्योपरि चन्द्रवेदस्य ज्योतिष्चक्रराजस्य प्रासादः, स च प्रासादस्तथा कथञ्चनापि व्यवस्थितो यथा पीठेन सह भूयान् वर्तुल आकारो भवति।

स च दूराभावादेकान्ततः समवृत्ततया जनानां प्रतिभासते-ततो न कश्चिद्दोषः नचैतत् स्वमनीषिकाया विजृम्भितं, यत एतदेव जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणेन विशेषणवत्यामाक्षेप पुरस्सरमुक्तम्—

गाहाओ—अद्धकविट्ठागारा, उदयत्थमणंमि कहं न दीसंति।
ससि-सूराणविमाणा, तिरियक्खेत्ते ठियाणं च॥
उत्ताणद्धकविट्ठागारं, पीढं तदुवरिं च पासाओ।
वट्टालेखेण ततो, समवं दूरभावातो॥ —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९७ टीका

(ख) सूरिय. प. १८, सु. ९४। (ग) जंबू. वक्ख. ७, सु. १६५।
(घ) चंद्र. पा. १८, सु. ९४।

मणुस्सखेत्ते चंद-सूर-गह-णक्खत्त-ताराणं परिमाणं—

९३०. प्र०—ता कइ णं चंदिम-सूरिया सव्वलोयं ओभासंति उज्जोएंति, तवेंति, पभासेंति ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—तत्थ खलु इमाओ दुवालस पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु :—

१. ता एगे चंदे एगे सव्वलोयं ओभसइ उज्जोएइ, तवेइ, पभासेइ, एगे एवमाहंसु।

२. एगे पुण एवमाहंसु :—
ता तिण्णि चंदा, तिण्णि सूरा सव्वलोयं ओभासंति उज्जोएंति, तवेंति, पभासेंति, एगे एवमाहंसु।

३. एगे पुण एवमाहंसु :—
ता अद्धुट्ठ चंदा, अद्धुट्ठ सूरा, सव्वलोयं ओभासेंति -जाव-पभासेंति एगे एवमाहंसु।

एएणं अभिलावेणं णेयव्वं।

४. सत्त चंदा, सत्त सूरा,
५. दस चंदा, दस सूरा,
६. वारस चंदा, वारस सूरा,
७. वायालीसं चंदा, वायालीसं सूरा,
८. वावत्तरी चंदा, वावत्तरी सूरा,
९. वायालीसं चंदसयं, वायालीसं सूरसयं,
१०. वावत्तरं चंदसयं, वावत्तरं सूरसयं,
११. वायालीसं चंदसहस्सं, वायालीसं सूरसहस्सं,
१२. वावत्तरं चंदसहस्सं, वावत्तरं सूरसहस्सं, सव्वलोयं ओभासंति-जाव-पभासेंति एगे एवमाहंसु।

वयं पुण एवं वयामो :—

ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डाए-जाव-एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं, सोलस सहस्साइं, दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि य कोसे, अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं, अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते[1]।

सूरिय० पा० १९, सु० १००

मनुष्य क्षेत्र में चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और ताराओं का परिमाण—

९३०. प्र०—कितने चन्द्र-सूर्य तारे (मनुष्य) लोक को अवभासित करते हैं, उद्योतित करते हैं, तपाते हैं और प्रकाशित करते हैं? कहें।

उ०—इस सम्बन्ध में बारह प्रतिपत्तियाँ (मान्यता) कही गई हैं यथा—

इनमें से एक मान्यता वाले इस प्रकार कहते हैं—

(१) एक चन्द्र और एक सूर्य सारे लोक को अवभासित करता है, उद्योतित करता है, तपाता है, प्रकाशित करता है।

(२) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं—
तीन चन्द्र और तीन सूर्य सारे लोक को अवभासित करते हैं, उद्योतित करते हैं, तपाते हैं, प्रकाशित करते हैं।

(३) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं—
साढ़े तीन चन्द्र और साढ़े तीन सूर्य सारे लोक को अवभासित करते हैं—यावत्—प्रकाशित करते हैं।

इस प्रकार के अभिलाप (आगे) जानने चाहिए—

(४) सात चन्द्र सात सूर्य,
(५) दस चन्द्र, दस सूर्य,
(६) बारह चन्द्र, बारह सूर्य,
(७) बयालीस चन्द्र, बयालीस सूर्य,
(८) बहत्तर चन्द्र, बहत्तर सूर्य,
(९) एक सौ बियालीस चन्द्र, एक सौ बियालीस सूर्य,
(१०) एक सौ बहत्तर चन्द्र, एक सौ बहत्तर सूर्य,
(११) बयालीस हजार चन्द्र, बयालीस हजार सूर्य,
(१२) बहत्तर हजार चन्द्र, बहत्तर हजार सूर्य,
सारे लोक को अवभासित करते हैं—यावत्—प्रकाशित करते हैं।

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

यह जम्बूद्वीप द्वीप सर्व द्वीप समुद्रों के मध्य में सबसे छोटा —यावत्—एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा, तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तवीस योजन तीन कोश अट्ठावीस धनुष तेरह अंगुल आधे अंगुल से कुछ विशेष अधिक की परिधि वाला कहा गया है।

---

१ चन्द्र. पा. १९, सु. १००।

जंबुद्दीवे जोइसिया देवा—

६३१. (१) प०—ता जंबुद्दीवे दीवे—
केवइया चंदा पभासिसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा ?

(२) प०—केवइया सूरा तविंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा ?

(३) प०—केवइया गहा चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा ?

(४) प०—केवइया णक्खत्ता जोअं जोइंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा ?

(५) प०—केवइया तारागणकोडि-कोडिओ सोभं सोभेंसु वा, सोभंति वा, सोभिस्संति वा ?

(१) उ०— ता जंबुद्दीवे दीवे—
दो चन्दा पभासेंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा,

(२) उ०— दो सूरिया तविंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा,

(३) उ०—छावत्तरिं गहसयं चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा,

(४) उ०—छप्पण्णं णक्खत्ता जोयं जोएंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा,

(५) उ०—एगं सयसहस्सं तेत्तीसं च सहस्सा णव सया पण्णासा तारागण कोडि-कोडीणं सोभं सोभेंसु वा, सोभंति वा, सोभिस्संति वा।

गाहाओ—

दो चंदा दो सूरा, णक्खत्ता खलु हवंति, छप्पणा।
जावत्तरं गहसयं, जंबुद्दीवे विचारी णं ॥
एगं च सयसहस्सं तेत्तीसं खलु भवे सहस्साइं।
णव य सया पण्णासा, तारागणकोडि कोडीणं[1] ॥

—सूरिय० पा० १६, सु० १००

जम्बूद्वीप में ज्योतिष्क देव—

६३१. (१) प्र०—इस जम्बूद्वीप द्वीप में—
अतीत में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, वर्तमान में कितने चन्द्र प्रभासित होते हैं और भविष्य में कितने चन्द्र प्रभासित होंगे ?

(२) प्र०—अतीत में कितने सूर्य तपाते थे, वर्तमान में कितने सूर्य तपाते हैं और भविष्य में कितने सूर्य तपाएँगे ?

(३) प्र०—अतीत में कितने ग्रह गति करते थे, वर्तमान में कितने ग्रह गति करते हैं और भविष्य में कितने ग्रह गति करेंगे ?

(४) प्र०—अतीत में कितने नक्षत्र योग करते थे वर्तमान में कितने नक्षत्र योग करते हैं और भविष्य में कितने नक्षत्र योग करेंगे ?

(५) प्र०—अतीत में कितने कोटा कोटी तारागण सुशोभित होते थे, वर्तमान में कितना कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते हैं और भविष्य में कितने कोटाकोटी तारागण सुशोभित होंगे ?

(१) उ०—इस जम्बूद्वीप में—
अतीत में दो चन्द्र प्रकाशित होते थे वर्तमान में दो चन्द्र प्रकाशित होते हैं और भविष्य में दो चन्द्र प्रकाशित होंगे।

(२) उ०—अतीत में दो सूर्य तपते थे, वर्तमान में दो सूर्य तपते हैं और भविष्य में दो सूर्य तपेंगे।

(३) उ०—अतीत में एक सौ छिहत्तर महाग्रह गति करते थे, वर्तमान में एक सौ छिहत्तर ग्रह गति करते हैं और भविष्य में एक सौ छिहत्तर ग्रह गति करेंगे।

(४) उ०—अतीत में छप्पन नक्षत्र योग करते थे, वर्तमान में छप्पन नक्षत्र योग करते हैं भविष्य में छप्पन नक्षत्र योग करेंगे।

(५) उ०—एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोटा कोटी तारागण अतीत में सुशोभित होते थे, वर्तमान में सुशोभित होते हैं और भविष्य में सुशोभित होंगे।

गाथार्थ—

दो चन्द्र, दो सूर्य, छप्पन नक्षत्र एक सौ छिहत्तर ग्रह और एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोटा कोटी तारागण इस जम्बूद्वीप में गति करते हैं।

---

१ (क) चंद, पा. १६, सु. १००। (ख) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १२६।
(ग) जीवा. प. ३, उ. २, सु. १५३। (घ) भग. स. ६, उ. २, सु. २।
प्र०—ता एगमेगस्स णं चंदस्स देवस्स केवतिया गहा परिवारो पण्णत्तो ?
केवतिया णक्खत्ता परिवारो पण्णत्तो ?
केवतिया तारा परिवारो पण्णत्तो ?

(क्रमशः ४३४ पर)

लवणसमुद्दे जोइसिया देवा—

६३२. (१) प०—ता लवणसमुद्दे—

केवइया चंदा पभासिंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा ?

(२) प०—केवइयं सूरा तविंसु वा तविंति वा, तविस्संति वा ?

(३) प०—केवइया गहा चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा ?

(४) प०—केवइया णक्खत्ता जोगं जोइंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा ?

(५) प०— केवइया तारागण कोडाकोडीओ सोभं सोभेंसु वा सोभंति वा सोभिस्संति वा ?

(१) उ०—ता लवणसमुद्दे—

चत्तारि चन्दा पभासिंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा,

(२) उ०—चत्तारि सूरिया तविंसु वा, तविंति वा, तविस्संति वा,

(३) उ०—तिण्णि बावण्णा महग्गहसया चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा,

(४) उ०—बारस णक्खत्तसयं जोगं जोएंसु वा जोएंति वा, जोइस्संति वा,

(५) उ०—दो सयसहस्सा सत्तट्ठिं च सहस्सा णव य सया तारागण कोडाकोडीणं सोभं सोभेंसु वा, सोभंति वा, सोभिस्संति वा,

गाहाओ—

चत्तारि चेव चंदा, चत्तारि य सुरिया लवणतोए।
बारस णक्खत्तसयं गहाण तिण्णेव बावण्णा ॥
दो च्चेव सयसहस्सा, सत्तट्ठिं खलु भवे सहस्साइं ।
णव य सया लवणजले, तारागण कोडिकोडी णं ॥[1]

—सूरिय० पा० १६, सु० १००

लवणसमुद्र में ज्योतिष्क देव—

६३२. (१) लवणसमुद्र में—

कितने चन्द्र प्रभासित हुए थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे ?

(२) प्र०—कितने सूर्य तपाते थे, तपाते हैं और तपाएँगे ?

(३) प्र०—कितने ग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे ?

(४) प्र०—कितने नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे ?

(५) प्र०—कितने कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे ?

(१) उ०—लवणसमुद्र में—

चार चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे ।

(२) उ०—चार सूर्य तपाते थे, तपाते हैं और तपाएँगे ।

(३) उ०—तीन सौ बावन महाग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे ।

(४) उ०—बारह सौ नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे ।

(५) उ०—दो लाख सडसठ हजार नौ सौ कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे; सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे ।

गाथार्थ—

लवणसमुद्र में चार चन्द्र, चार सूर्य, बारह सौ नक्षत्र, तीन सौ बावन ग्रह और दो लाख सडसठ हजार नौ सौ कोटाकोटी तारागण हैं ।

(क्रमशः ४३३ का)

उ०—ता एगमेगस्स णं चंदस्स देवस्स अट्ठासीति गहा परिवारो पण्णत्तो, अट्ठावीसं णक्खत्ता परिवारो पण्णत्तो—

गाहा—

छावट्ठिसहस्साइं णव चेव सताइं पंचुत्तराइं (पंचसयराइं) ।
एगससीपरिवारो, तारागणकोडिकोडीणं परिवारो पण्णत्तो ॥* —सूर. पा. १८, सु. ९१

* तुलना—(क) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १६३ । (ख) जीवा. प. ३, उ. २, सु. १९४ ।

१ (क) चंद. पा. १६, सु. १०० । (ख) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५५ ।
(ग) भग. स. ६, उ. २, सु. ३ । (घ) ठाणं अ. ४, उ. २, सु. ३०५ ।

धायइसंडे जोइसिय देवा—

६३३. (१) प०—धायइसंडे दीवे—

केवइया चंदा पभासेंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा?

(२) प०—केवइया सूरिया तवेंसु वा, तविंति वा, तविसिस्संति वा?

(३) प०—केवइया गहा चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा?

(४) प०—केवइया णक्खत्ता जोगं जोइंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा?

(५) प०—केवइया तारागण कोडाकोडीओ, सोभं सोभेंसु वा, सोभंति वा, सोभिस्संति वा?

धायइसंडे दीवे—

(१) उ०—बारस चंदा पभासेंसु वा, पभासंति वा, पभासिस्संति वा,

(२) उ०—बारस सूरिया तवेंसु वा, तविंति वा तविसिस्संति वा,

(३) उ०—एगं छप्पण्णं महग्गहसहस्सं चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा,

(४) उ०—तिण्णि छत्तीसा णक्खत्तसया जोगं जोएंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा,

(५) उ०—अट्ठेवसय सहस्सा, तिण्णि सहस्साइं सत्त य सयाइं। एगससीपरिवारो, तारागणकोडिकोडी णं सोभं सोभेंसु वा, सोभंति वा, सोभिस्संति वा॥

गाहाओ—

चउवीसं ससि-रविओ, णक्खत्तसया य तिण्णि छत्तीसा।
एगं च गहसहस्सं, छप्पण्णं धायइसंडे॥
अट्ठेव सयसहस्सा, तिण्णि सहस्साइं सत्त य सयाइं।
धायइसंडे दीवे, तारागण कोडिकोडी णं[1]॥

—सूरिय० पा० १६, सु० १००

धातकीखण्डद्वीप में ज्योतिष्क देव—

६३३. (१) प्र०—धातकीखण्ड द्वीप में—

कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे?

(२) प्र०—कितने सूर्य तपाए थे, तपाते हैं और तपाएँगे?

(३) प्र०—कितने ग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे?

(४) प्र०—कितने नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे?

(५) प्र०—कितने कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे?

(१) उ०—धातकीखण्ड द्वीप में—

बारह चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे।

(२) उ०—बारह सूर्य तपाते थे, तपाते हैं और तपाएँगे।

(३) उ०—एक सौ छप्पन महाग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे।

(४) तीन सौ नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे।

(५) उ०—आठ लाख तीन हजार सात सौ कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे।

गाथार्थ—

धातकीखण्ड द्वीप में बारह चन्द्र, बारह सूर्य, तीन सौ छत्तीस नक्षत्र, एक हजार छप्पन ग्रह, आठ लाख तीन हजार सात सौ कोटाकोटी तारागण हैं।

कालोद समुद्दे जोइसिय देवा—

६३४. (१) प०—ता कालोयणे णं समुद्दे—

केवइया चंदा पभासिंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा?

कालोदसमुद्र में ज्योतिष्क देव—

६३४. (१) प्र०—कालोदसमुद्र में—

कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे?

---

१ (क) चंद पा. १६, सु. १००।
(ख) भग. स. ६, उ. २, सु. ४।
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७८।

(२) प०—केवइया सूरा तविंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा ?

(३) प०—केवइया गहा चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा ?

(४) प०—केवइया णक्खत्ता जोगं जोइंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा ?

(५) प०—केवइया तारागण कोडि कोडीओ सोभं सोभेंसु वा सोभंति वा, सोभिस्संति वा ?

(१) उ०—ता कालोयणे णं समुद्दे—

बायालीसं चंदा पभासेंसु वा पभासिंति वा, पभासिस्संति वा,

(२) उ०—बायालीसं सूरा तवेंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा,

(३) उ०—तिन्नि सहस्सा छच्च छन्नउया महग्गहसया चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा,

(४) उ०—एक्कारस छावत्तरा णक्खत्तसया जोगं जोइंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा,

(५) उ०—अट्ठावीसं सयसहस्साइं, बारस सहस्साइं नव य सयाइं पण्णासा तारागण कोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा सोभंति वा, सोभिस्संति वा,

गाहाओ—

बायालीसं चंदा, बायालीसं च दिणकरादित्ता ।
कालोदहिंमि एए, चरंति संबद्धलेसागा ॥

णक्खत्तसहस्सं, एगमिव छावत्तरं ज सतमण्णे ।
छच्चसया छण्णउया, महग्गह, तिण्णि य सहस्सा ॥

अट्ठावीसं सयसहस्सं, बारस य सहस्साइं ।
णव य सया पण्णासा, तारागण कोडिकोडीणं[1] ॥

—सूरिय० पा० १९, सु० १००

(२) प्र०—कितने सूर्य तपाते थे, तपाते हैं और तपाते होंगे ?

(३) प्र०—कितने ग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे ?

(४) प्र०—कितने नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे ?

(५) प्र०—कितने कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे ?

(१) उ०—कालोदसमुद्र में—

बियालीस चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे ।

(२) उ०—बियालीस सूर्य तपाते थे, तपाते हैं और तपाएँगे ।

(३) उ०—तीन हजार छः सौ छिनवे महाग्रह गति करते थे; गति करते हैं और गति करेंगे ।

(४) उ०—इग्यारह सौ छिहत्तर नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे ।

(५) उ०—अट्ठावीस लाख बारह हजार नौ सौ कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे ।

गाथार्थ—

कालोद समुद्र में बियालीस चन्द्र, बियालीस सूर्य इग्यारह सौ छिहत्तर नक्षत्र, तीन हजार छः सौ छिनवे महाग्रह और

अट्ठावीस लाख बारह हजार नौ सौ पचास कोटा कोटी तारागण हैं ।

पुक्खरवरदीवे जोईसिय देवा—

६३५. (१) प०—ता पुक्खरवरे णं दीवे—

केवइया चंदा पभासेंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा ?

(२) प०—केवइया सूरा तविंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा ?

(३) प०—केवइया गहा चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा ?

(४) प०—केवइया णक्खत्ता जोगं जोइंसु वा, जोएंति वा जोइस्संति वा ?

पुष्करवरद्वीप में ज्योतिष्क देव—

६३५. (१) प्र०—पुष्करवरद्वीप में—

कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे ?

(२) प्र०—कितने सूर्य तपाते थे, तपाते हैं और तपाएँगे ?

(३) प्र०—कितने ग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे ?

(४) प्र०—कितने नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे ?

---

१ (क) चंद पा. १९, सु. १०० ।
(ख) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७५ ।
(ग) भग. स. ९, उ. २, सु. ४ ।
(घ) सम. ४२, सु. ४ ।

(५) प०—केवइया तारागणकोडिकोडिओ सोभं सोभेंसु वा, सोभेंति वा, सोभिस्संति वा ?

(१) उ०—पुक्खरवरे णं दीवे—
ता चोयालं चंदसयं पभासेंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा,

(२) उ०—चोयालं सूरियाणं सयं तविंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा,

(३) उ०—बारस सहस्साइं छच्च बावत्तरा महग्गहसया चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा,

(४) उ०—चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं च णक्खत्ता जोगं जोएंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा,

(५) उ०—छण्णउइसयसहस्साइं चोयालीसं सहस्साइं चत्तारि य सयाइं तारागणकोडिकोडी णं सोभं सोभेंसु वा, सोभेंति वा, सोभिस्संति वा,

गाहाओ—
चत्तालं चंदसयं, चत्तालं चेव सूरियाण सयं ।
पोक्खरवरदीवम्मि य, चरंति एए पभासेंता ॥
चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं चेव हुंति णक्खत्ता ।
छच्च सया बावत्तरं, महग्गहा बारह सहस्सा ॥
छण्णउइ सय सहस्सा चोत्तालीसं खलु भवे सहस्साइं ।
चत्तारि य सया खलु, तारागणकोडिकोडी णं[1] ॥
—सूरिय. पा. १९. सु० १००

(५) प्र०—कितने कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे ?

(१) उ०—पुष्करवर द्वीप में—
एक सौ चम्मालीस चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे ।

(२) उ०—एक सौ चम्मालीस सूर्य तपाते थे, तपाते हैं और तपाएँगे ।

(३) उ०—बारह हजार छः सौ बहत्तर महाग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे ।

(४) उ०—चार हजार बत्तीस नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे ।

(५) उ०—छिनवे लाख चमालीस हजार चार सौ कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे ।

गाथार्थ—
पुष्करवरद्वीप में चम्मालीस सौ चन्द्र चम्मालीस सौ सूर्य प्रकाश करते हुए विचरते हैं,
चार हजार बत्तीस नक्षत्र, बारह हजार छः सौ बहत्तर महाग्रह, (तथा)
छिनवे लाख चम्मालीस हजार चार सौ कोटाकोटी तारागण हैं ।

अब्भंतरपुक्खरद्धे जोइसिय देवा

६३६. (१) प०—ता अब्भिंतर पुक्खरद्धे णं,
केवइया चंदा पभासेंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा ।

(२) प०—केवइया सूरा तवेंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा ?

(३) प०—केवइया गहा चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा ?

(४) प०—केवइया णक्खत्ता जोगं जोएंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा ?

(५) प०—केवइया तारागण कोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा, सोभेंति वा, सोभिस्संति वा ?

(१) उ०—अब्भितर पुक्खरद्धे णं—
बावत्तरिं चंदा पभासेंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा,

आभ्यन्तर पुष्करार्ध में ज्योतिष्क देव—

६३६. प्र०—आभ्यन्तर पुष्करार्ध में—
कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे ?

(२) प्र०—कितने सूर्य तपाते थे, तपाते हैं और तपाएँगे ?

(३) प्र०—कितने ग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे ?

(४) प्र०—कितने नक्षत्र योग करते थे योग करते हैं और योग करेंगे ?

(५) प्र०—कितने कोटा कोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे ।

(१) उ०—आभ्यन्तर पुष्करार्ध में—
बहत्तर चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे ।

१ (क) चंद पा. १९, सु. १०० ।
(ख) भग. स. ९. उ. ५, सु. ८ ।
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७६ ।

(२) उ०—बावत्तरिं सूरिया तवेंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा,

(२) प्र०— बहत्तर सूर्य तपाते थे तपाते हैं और तपाएँगे।

(३) उ०—छ महग्गहसहस्सा तिन्निसए य छत्तीसा चारं चरेंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा,

(३) उ०—छः हजार तीन सौ छत्तीस महाग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे।

(४) उ०—दोण्णि सोला णक्खत्तसहस्सा जोगं जोएंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा,

(४) उ०— सोलह हजार दो नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे।

(५) उ०—अडयालीसं सयसहस्सा, बावीसं च सहस्सा दोण्णि य सया तारागणकोडिकोडीणं सोभं सोभेंसु वा सोभंति वा सोभिस्संति वा,

(५) उ०— अड़तालीस लाख बाईस हजार दो सौ कोटा कोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते और सुशोभित होंगे।

गाहाओ—

बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिणकरादित्ता।
पुक्खरवरदीवड्ढे, चरंति एए पभासेंता॥

तिण्णि सया छत्तीसा, छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु।
णक्खत्ताणं तु भवे, सोलाइं दुवे सहस्साइं॥

अडयालसय सहस्सा, बावीसं खलु भवे सहस्साइं।
दो य सए पुक्खरद्धे, तारागण कोडिकोडीणं[1]॥

—सूरिय. पा. १९, सु. १००

गाथार्थ—

पुष्करवरद्वीपार्ध में बहत्तर चन्द्र, बहत्तर सूर्य प्रकाश करते हुए विचरते हैं।

छः हजार तीन सौ छत्तीस महाग्रह सोलह हजार दो नक्षत्र,

अड़तालीस लाख बाईस हजार दो सौ कोटाकोटी तारागण है।

पुक्खरोदे समुद्दे जोइसिया देवा—

६३७. प०—ता पुक्खरोदे णं समुद्दे—

(१) केवइया चंदा पभासिंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा?

(२) केवइया सूरा तविंसु वा, तविंति वा, तविस्संति वा?

(३) केवइया गहा चारं चरिंसु वा, चारं चरंति वा, चारं चरिस्संति वा?

(४) केवइया णक्खत्ता जोगं जोएंसु वा, जोगं जोएंति वा, जोगं जोइस्संति वा?

(५) केवइया तारा सोभं सोभिंसु वा, सोभं सोभंति वा, सोभं सोभिस्संति वा?

उ०—(१) पुक्खरोदे णं समुद्दे—
संखेज्जा चंदा पभासिंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा,

(२) संखेज्जा सूरा तविंसु वा, तविंति वा, तविस्संति वा,

(३) संखेज्जा गहा चारं चरिंसु वा, चारं चरंति वा, चारं चरिस्संति वा,

पुष्करोद समुद्र में ज्योतिष्कदेव—

६३७. (१) प्र०—पुष्करोदसमुद्र में—

कितने चन्द्र प्रकाशित हुए हैं, प्रकाशित होते हैं और प्रकाशित होंगे?

(२) कितने सूर्य तपे, तपते हैं और तपेंगे?

(३) कितने ग्रह गति युक्त रहे, गति युक्त हैं और गति युक्त रहेंगे?

(४) कितने नक्षत्र (चन्द्र या सूर्य) के साथ योग युक्त रहे, योग युक्त हैं और योग युक्त रहेंगे?

(५) कितने तारागण शोभा से सुशोभित हुए, शोभा से सुशोभित हैं और शोभा से सुशोभित होंगे?

(१) उ०—पुष्करोद समुद्र में—
संख्येय चन्द्र प्रकाशित हुए प्रकाशित है और प्रकाशित होंगे।

(२) संख्येय सूर्य तपे, तपते हैं और तपेंगे।

(३) संख्येय ग्रह गति युक्त रहे, गति युक्त हैं और गति युक्त रहेंगे।

---

१ (क) चंद पा. १९, सु. १००। (ख) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७६।
(ग) भग. स. ९, उ. २, सु. ५। (घ) सम. ७२, सु. ५।

(४) संखेज्जा णक्खत्ता जोगं जोएंसु वा, जोगं जोएंति वा, जोगं जोइस्संति वा,

(५) संखेज्जा तारागण कोडाकोडीणं सोभं सोभिंसु वा, सोभं सोभिंति वा, सोभं सोभिस्संति वा[1]।

—सूरिय. पा. १९, सु० १०१

(४) संख्येय नक्षत्र योग युक्त रहे, योग युक्त हैं और योग युक्त रहेंगे।

(५) संख्येय कोटाकोटी तारागण शोभा से सुशोभित रहे, शोभा से सुशोभित हैं और शोभा से सुशोभित रहेंगे।

समयखेत्ते जोइसिय देवा—

९३८. (१) प०—ता समयखेत्ते णं केवइया चंदा पभासेंसु वा, पभासेंति वा, पभासिस्संति वा ?

(२) प०—केवइया सूरा तवेंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा ?

(३) प०—केवइया गहा चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा ?

(४) प०—केवइया णक्खत्ता जोगं जोइंसु वा, जोइंति वा, जोइस्संति वा ?

(५) प०—केवइया तारागण कोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा सोभंति वा, सोभिस्संति वा ?

(१) उ०—समयखेत्ते-

ता बत्तीसं चंदसयं पभासेंसु वा, पभासेंति वा, पभासिस्संति वा,

(२) उ०—ता बत्तीसं सूरसयं तवेंसु वा, तवेंति वा तविस्संति वा,

(३) उ०—ता एक्कारस सहस्सा छच्च सोलस महग्गहसया चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा,

(४) उ०—ता तिण्णि सहस्सा छच्च छण्णउया णक्खत्तसया जोगं जोएंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा,

(५) उ०—ता अट्ठासीइं सयसहस्साइं चत्तालीसं च सहस्सा सत्त य सया तारागण कोडिकोडिणं सोभं सोभेंसु वा, सोभंति वा सोभिस्संति वा,

गाहाओ—

बत्तीसं चंदसयं, बत्तीसं चेव सूरियाणं सयं।
सयलं माणुसलोयं चरंति एए पभासेंता॥
एक्कारस य सहस्सा, छप्पिय सोला महग्गहाणं तु।
छच्च सया छण्णउया णक्खत्ता तिण्णि य सहस्सा॥
अट्ठासीइ सयाइं सय सहस्साइं मणुयलोगंमि।
सत्त य सया अणूणा, तारागणकोडिकोडीणं[2]॥

—सूरिय. पा. १९, सु० १००

मनुष्यक्षेत्र में ज्योतिष्क देव

९३८. (१) प्र०—मनुष्य क्षेत्र में—

कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे ?

(२) प्र०—कितने सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपते होंगे ?

(३) प्र०—कितने ग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे।

(४) प्र०—कितने नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे ?

(५) प्र०—कितने कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे ?

(१) उ०—मनुष्य क्षेत्र में—

एक सौ बत्तीस चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे।

(२) उ०—एक सौ बत्तीस सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे।

(३) उ०—इग्यारह हजार छः सौ सोलह महाग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे।

(४) उ०—तीन हजार छः सौ छिनवे नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे।

(५) उ०—अट्ठासी लाख चालीस हजार सात सौ कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे।

गाथार्थ—

मनुष्य क्षेत्र में एक सौ बत्तीस चन्द्र एक सौ बत्तीस सूर्य प्रकाश करते हुए विचरते हैं।

इग्यारह हजार छः सौ सोलह ग्रह, तीन हजार छः सौ छिनवे नक्षत्र और

अट्ठासी लाख चालीस हजार सात सौ कोटाकोटी तारागण हैं।

---

१ (क) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७७। (ख) चंद. पा. १९ सु. १०१।

२ (क) चंद पा. १९, सु. १००। (ख) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७७। (ग) भग. स. ९, उ. २, सु. ४।

वरुणवराइसु दीव-समुद्देसु जोइसिया देवा—

६३९. एवं एएणं अभिलावेणं—

१. वरुणवरे दीवे[1], २. वरुणोदे समुद्दे,
१. खीरवरे दीवे, २. खीरोदे समुद्दे,
१. घयवरे दीवे, २. घयोदे समुद्दे,
१. खोयवरे दीवे, २. खोयोदे समुद्दे[2],
१. नंदीसरवरे दीवे, २. नंदीसरे समुद्दे,
१. अरुणे दीवे, २. अरुणोदे समुद्दे,
१. अरुणवरे दीवे, २. अरुणवरोदे समुद्दे,
१. अरुणवरोभासे दीवे, २. अरुणवरभासोदे समुद्दे[3],
१. कुण्डले दीवे, २. कुण्डलोदे समुद्दे,
१. कुण्डलवरे दीवे, २. कुण्डलवरोदे समुद्दे,
१. कुण्डलवरोभासे दीवे, २. कुण्डलवरभासोदे समुद्दे[4],

सव्वेसिं जोइसाइं पुक्खरोदसागरसरिसाइं।

—सूरिय. पा. १९, सु. १०१

वरुणवरादि द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्कदेव—

६३९. इसी प्रकार इस अभिलाप से—

(१) वरुणवरद्वीप, (२) वरुणोद समुद्र,
(१) क्षीरवरद्वीप, (२) क्षीरोद समुद्र,
(१) घृतवरद्वीप, (२) घृतोद समुद्र,
(१) क्षोतवरद्वीप, (२) क्षोतोद समुद्र,
(१) नन्दीश्वरवरद्वीप, (२) नन्दीश्वर समुद्र,
(१) अरुणद्वीप, (२) अरुणोद समुद्र,
(१) अरुणवरद्वीप, (२) अरुणवरोद समुद्र,
(१) अरुणवरोभासद्वीप, (२) अरुणवरोभासोद समुद्र,
(१) कुण्डलद्वीप, (२) कुण्डलोद समुद्र,
(१) कुण्डलवरद्वीप, (२) कुण्डलवरोद समुद्र,
(१) कुण्डलवरोभासद्वीप, (२) कुण्डलवरभासोद समुद्र,

इन सबके ज्योतिष्क देव पुष्करोद सागर के सदृश हैं।

रुयगाइसु दीव-समुद्देसु जोइसिया देवा—

६४०. प०—ता रुयगे णं दीवे केवइया चंदा पभासेंसु वा-जाव-केवइया तारागणकोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा सोभिस्संति वा ?

उ०—ता रुयगे णं दीवे असंखेज्जा चंदा पभासेंसु वा-जाव-असंखेज्जाओ तारागण कोडिकोडीओ सोभं सोभिस्संति वा ?

एवं रुयगोदे समुद्दे,
१. रुयगवरे दीवे, २. रुयगवरोदे समुद्दे,
२. रुयगवरोभासे दीवे, २. रुयगवरभासोदे समुद्दे[5],

एवं तिपडोयारा दीव-समुद्दा णायव्वा,-जाव-
१. सूरे दीवे, २. सूरोदे समुद्दे,
१. सूरवरे दीवे, २. सूरवरोदे समुद्दे,
१. सूरवरोभासे दीवे, २. सूरवरभासोदे समुद्दे,

सव्वेसिं जोइसाइं रुयगवर दीव-सरिसाइं,[6]

—सूरिय. पा. १९, सु. १०१

रुचकादि द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्कदेव—

६४०. प्र०—रुचकद्वीप में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे—यावत्—कितने कोटा कोटी तारागण सुशोभित होंगे ?

उ०—रुचकद्वीप में असंख्य चन्द्र प्रभासित होते थे—यावत् असंख्य कोटा कोटी तारागण सुशोभित होंगे।

इसी प्रकार रुचकोद समुद्र है।
(१) रुचकवरद्वीप, (२) रुचकवरोद समुद्र,
(१) रुचकवरोभास द्वीप, (२) रुचकवरभासोद समुद्र,

इस प्रकार तीन-तीन द्वीप-समुद्र जानने चाहिए—यावत्—
(१) सूरद्वीप, (२) सूरोद समुद्र,
(१) सूरवरद्वीप, (२) सूरवरोद समुद्र,
(१) सूरवरोभासद्वीप, (२) सूरवरभासोद समुद्र।

इन सबके ज्योतिष्क देव रुचक द्वीप के सदृश है।

देवाइसु दीव-समुद्देसु जोइसिया देवा—

६४१. प०—ता देवे णं दीवे केवइया चंदा पभासेंसु वा-जाव-केवइया तारागण कोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा ?

देवादि द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्कदेव—

६४१. प्र०—देव द्वीप में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे—यावत् कितने कोटा कोटी तारागण सुशोभित होंगे ?

---

१ जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८०।
३-४ (क) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८५।
५ जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८५।
२ जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८२।
(ख) चंद. पा. १९, सु. १०१।
६ चंद. पा. १९ सु. १०१।

उ०—ता देवे णं दीवे असंखेज्जा चंदा पभासेंसु वा-जाव-असंखेज्जाओ तारागणकोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा,

एवं देवोदे समुद्दे—

१. णागे दीवे, २. णागोदे समुद्दे,

१. जक्खे दीवे, २. जक्खोदे समुद्दे

१. भूए दीवे, २. भूओदे समुद्दे,

१. सयंभुरमणे दीवे, २. सयंभुरमणे समुद्दे,[1]

सव्वेसिं जोइसाइं देवदीव सरिसाइं।[2]

—सूरिय. पा. १९, सु. १०१

उ०—देव द्वीप में असंख्य चन्द्र प्रभासित होते—यावत्—असंख्य कोटा कोटी तारागण सुशोभित होंगे।

इसी प्रकार देवोद समुद्र है—

(१) नागद्वीप, (२) नागोद समुद्र,

(१) यक्षद्वीप, (२) यक्षोद समुद्र,

(१) भूतद्वीप, (२) भूतोद समुद्र,

(१) स्वयंभूरमण द्वीप, (२) स्वयंभूरमण समुद्र।

सबके ज्योतिष्क देव देवद्वीप के सदृश हैं।

जोइसियाणं अप्प-बहुत्तं—

९४२. प०—ता एएसि णं चंदिम-सूरिय-गह-ताराणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

उ०—ता चंदा य, सूरा य एएणं दोवि तुल्ला,

सव्वत्थोवा णक्खत्ता,

संखिज्जगुणा गहा,

संखिज्जगुणा तारा[3] —सूरिय. पा. १८, सु. १००

ज्योतिष्कों का अल्प-बहुत्व—

९४२. प्र०—इन चन्द्र-सूर्य-ग्रह नक्षत्र और ताराओं में कौन किससे अल्प है, बहुत है, तुल्य है और विशेषाधिक है?

उ०—चन्द्र और सूर्य तुल्य है।

सबसे अल्प नक्षत्र है।

ग्रह संख्येय गुण है।

तारा संख्येय गुण है।

मंदरपव्वयाओ जोइसियाणं अंतरं—

९४३. प०—मंदरस्स णं भंते! पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए जोइसं चारं चरइ?

उ०—गोयमा! इक्कारसहिं इक्कवीसेहिं जोअणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरइ[4],

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १६४

मन्दर पर्वत से ज्योतिष्कों का अन्तर—

९४३. प्र०—हे भगवन्! मन्दरपर्वत से कितने अन्तर पर ज्योतिष्क गति करते हैं?

उ०—हे गौतम! इग्यारह सौ इक्कीस योजन के अन्तर पर ज्योतिष्क गति करते हैं।

---

१ जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८५।

२ चंद. पा. १९ सु. १०१।

३ (क) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १७८।

(ख) चंद. पा. १८, सु. ९९।

(ग) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. २०६।

४ (क) जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसे चारं चरंति।

—सम. ११, सु. ३

(ख) प०—ता मंदरस्स पव्वयस्स केवतियं अबाधाए जोइसे चारं चरइ?

उ०—ता एक्कारस एक्कवीसे जोयणसते अबाधाए जोइसे चारं चरति। —सूरिय. पा. १८, सु. ९२

(ग) प०—जम्बुद्दीवे णं भंते! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ केवइयं अबाहाए जोइसं चारं चरति?

उ०—गोयमा! एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरति, एवं दक्खिणिल्लाओ पच्चत्थिमिल्लाओ, उत्तरिल्लाओ, चरिमंताओ एक्कारसहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरति। —जीवा. पडि. ३, उ. २ सु. १९४

(घ) इस प्रश्नोत्तर सूत्र में ज्योतिष्कों का जो अन्तर कहा गया है वह जम्बूद्वीप के मध्यभागवर्ती मन्दर (मेरु) पर्वत की अपेक्षा से ही कहा गया है।

इसी प्रकार धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीप के चार मन्दर पर्वतों से भी इतने ही अन्तर पर ज्योतिष्क विमान हैं।

लोगंताओ जोइसियाणं अन्तरं—

९४४. प०—लोगंताओ णं भंते ! केवइआए अवाहाए जोइसे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एक्कारस एक्कारसेहिं जोयणसएहिं अवाहाए जोइसे पण्णत्ते[1], —जंबु. वक्ख. ७, सु. १६४

लोकान्त से ज्योतिष्कों का अन्तर—

९४४. प्र०—हे भगवन् ! लोकान्त से कितने अन्तर पर ज्योतिष्क कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! लोकान्त से इग्यारह सौ इग्यारह योजन के अन्तर पर ज्योतिष्क कहे गये हैं।

चंदाइच्चाइणं भूमिभागाओ उड्ढत्तं—

९४५. प०—ता कहं ते उच्चत्ते आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तिओ पण्णत्ताओ तं जहा—

१. तत्थेगे एवमाहंसु—

ता एग जोयणसहस्सं सूरे उड्ढं उच्चत्ते णं दिवड्ढं चंदे, एगे एवमाहंसु,

२. एगे पुण एवमाहंसु—

ता दो जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढातिज्जाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

३. एगे पुण एवमाहंसु—

ता तिन्नि जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धुट्ठाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

४. एगे पुण एवमाहंसु—

ता चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धपंचमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

चन्द्र-सूर्य आदि की भू-भाग से ऊँचाई—

९४५. प्र०—चन्द्र-सूर्य आदि की भूभाग से कितनी ऊँचाई कही गई है; सो कहें ?

उ०—इस सम्बन्ध में ये पच्चीस प्रतिपत्तियाँ कही गई हैं यथा—

(१) इनमें से कुछ पर-तीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य एक हजार योजन ऊँचाई पर है, चन्द्र डेढ हजार योजन ऊँचा है।

(२) कुछ पर-तीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य दो हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र ढाई हजार योजन ऊँचा है।

(३) कुछ पर-तीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य तीन हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साडे तीन हजार योजन ऊँचा है।

(४) कुछ पर-तीर्थिकों ने ऐसा कहा—

सूर्य चार हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साडे चार हजार योजन ऊँचा है।

---

१ (क) लोगंताओ णं एक्कारसहिं एक्कारेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते। —सम. ११, सु. २

(ख) जीवा. प. ३, सु. १९५।

(ग) प०—ता लोअंताओ णं केवइयं अवाहाए जोइसे पण्णत्ते ?

उ०—ता एक्कारस एक्कारे जोयणसए अवाहाए जोइसे पण्णत्ते। —सूरिय. पा. १८ सु. ९२

(घ) लोकान्त से इग्यारह सौ इग्यारह योजन के अन्तर पर जो ज्योतिष्क हैं वे स्थिर ज्योतिष्क हैं, क्योंकि इस प्रश्नोत्तर सूत्र में ज्योतिष्कों की गति का कथन नहीं है। मनुष्य क्षेत्र के अन्तिम भाग से अर्थात् मनुष्य क्षेत्र के बाहर लोकान्त पर्यन्त स्थिर ज्योतिष्क हैं, मनुष्य क्षेत्र के बाहर लोकान्त पर्यन्त का क्षेत्र असंख्य योजन विस्तृत है, इसमें असंख्य स्थिर ज्योतिष्कदेव हैं।

गाहाओ—

अंतो मणुस्सखेत्ते, हवंति चारोवगा य उववण्णा।
पंचविहा जोइसिया, चंदासूरागहगणा य॥
तेण परं जे सेसा, चंदाइच्च-गह-तार-नक्खत्ता।
नत्थि गई न वि चारो, अवट्ठिया ते मुणेयव्वा॥ —जीवा. प. ३, उ. २, सु. १७७ गा. २१, २२

५. एगे पुण एवमाहंसु—

ता पंच जोयणसहस्साइं सूरे उच्चत्तेणं, अद्धछट्ठाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

(५) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य पांच हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे पांच हजार योजन ऊँचा है।

६. एगे पुण एवमाहंसु—

ता छ जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धसत्तमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

(६) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य छः हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे छः हजार योजन ऊँचा है।

७. एगे पुण एवमाहंसु—

ता सत्तजोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धट्ठमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

(७) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य सात हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे सात हजार योजन ऊँचा है।

८. एगे पुण एवमाहंसु—

ता अट्ठ जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धनवमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

(८) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य आठ हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे आठ हजार योजन ऊँचा है।

९. एगे पुण एवमाहंसु,

ता नवजोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धदसमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु

(९) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य नौ हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे नौ हजार योजन ऊँचा है।

१०. एगे पुण एवमाहंसु—

ता दसजोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धएक्कारस चंदे, एगे एवमाहंसु,

(१०) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य दस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे दस हजार योजन ऊँचा है।

११. एगे पुण एवमाहंसु—

ता एक्कारस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धबारस चंदे, एगे एवमाहंसु,

(११) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य ग्यारह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे ग्यारह हजार ऊँचा है।

एते णं अभिलावेणं णेतव्वं—

नीचे लिखे अभिलाप के अनुसार पच्चीसवीं प्रतिपत्ति पर्यन्त जानें—

१२. बारस सूरे, अद्धतेरस चंदे,

(१२) सूर्य बारह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे बारह हजार योजन ऊँचा है।

१३. तेरस सूरे, अद्धचोद्दस चंदे,

(१३) सूर्य तेरह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे तेरह हजार योजन ऊँचा है।

१४. चोद्दस सूरे, अद्धपण्णरस चंदे,

(१४) सूर्य चौदह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे चौदह हजार योजन ऊँचा है।

१५. पण्णरस सूरे, अद्धसोलस चंदे,

(१५) सूर्य पन्द्रह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे पन्द्रह हजार योजन ऊँचा है।

१६. सोलस सूरे, अद्धसत्तरस चंदे,

(१६) सूर्य सोलह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे सोलह हजार योजन ऊँचा है।

१७. सत्तरस सूरे, अद्धअट्ठारस चंदे,

(१७) सूर्य सत्तरह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे सत्तरह हजार योजन ऊँचा है।

१८. अट्ठारस सूरे, अद्धएगूणवीस चंदे,

(१८) सूर्य अठारह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साढे अठारह हजार योजन ऊँचा है।

१६. एकोणवीसं सूरे, अद्धवीस चन्दे, — (१६) सूर्य उन्नीस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े उन्नीस हजार योजन ऊँचा है।

२०. वीसं सूरे, अद्धएक्कवीसं चन्दे, — (२०) सूर्य बीस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े बीस हजार योजन ऊँचा है।

२१. एक्कवीसं सूरे, अद्धवावीसं चन्दे, — (२१) सूर्य इक्कीस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े इक्कीस हजार योजन ऊँचा है।

२२. वावीसं सूरे, अद्धतेवीसं चन्दे, — (२२) सूर्य बाईस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े बाईस हजार योजन ऊँचा है।

२३. तेवीसं सूरे, अद्धचउवीसं चन्दे, — (२३) सूर्य तेईस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े तेईस हजार योजन ऊँचा है।

२४. चउवीसं सूरे, अद्धपणवीसं चन्दे, — (२४) सूर्य चोवीस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े चोवीस हजार योजन ऊँचा है।

२५. एगे पुण एवमाहंसु—
ता पणवीसजोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धछव्वीसं चन्दे, एगे एवमाहंसु, — (२५) सूर्य पच्चीस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े पच्चीस हजार योजन ऊँचा है।

वयं पुण एवं वदामो— — हम इस प्रकार कहते हैं—

ता इमीसे रयणप्पभापुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ, सत्तणउइ जोयणसए उड्ढं उपतित्ता हिट्ठिल्ले ताराविमाणे चारं चरति, — इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अति सम-रमणीय भूभाग से सात सौ नब्वे योजन ऊपर-नीचे का तारा विमान चलता है।

अट्ठ जोयणसते उड्ढं उप्पतित्ता सूरविमाणे चारं चरति, — आठ सौ अस्सी योजन ऊपर चन्द्र विमान चलता है।

अट्ठअसीए जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता चंदविमाणे चारं चरति। — आठ सौ योजन ऊपर सूर्य विमान चलता है।

णवजोयणसताइं उड्ढं उप्पतित्ता उवरिं ताराविमाणे चारं चरति[1], — नव सौ योजन ऊपर तारा विमान संचार करता है।

हेट्ठिलातो ताराविमाणातो दसजोयणाइ उड्ढं उप्पइत्ता सूरविमाणा चारं चरंति। — नीचे के तारा विमान से दस योजन ऊपर सूर्य विमान विचरता है।

नउतिं जोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता चंदविमाणा चारं चरति। — नब्वे योजन ऊपर जाने पर चन्द्र विमान चलता है।

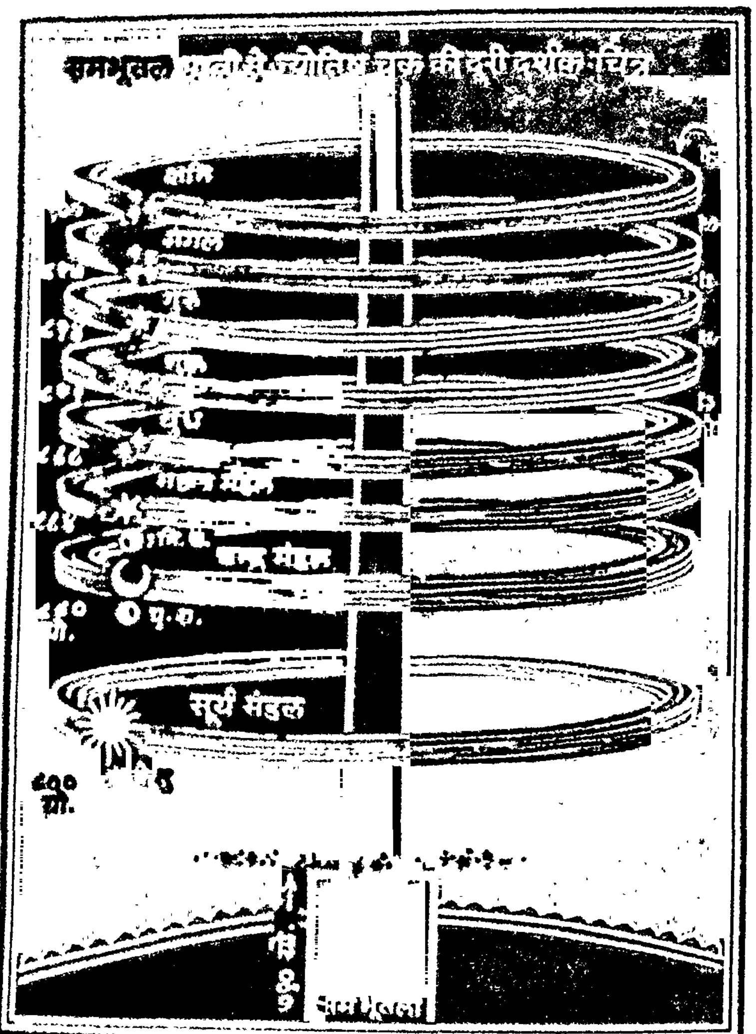
दसोत्तरं जोयणसतं उड्ढं उप्पइत्ता उवरिल्ले तारारूवे चारं चरति। — एक सौ दस योजन ऊपर तारा विचरता है।

सूरविमाणातो असीतिं जोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता चंदविमाणे चारं चरति। — सूर्य विमान से अस्सी योजन ऊपर जाने पर चन्द्र विमान विचरता है।

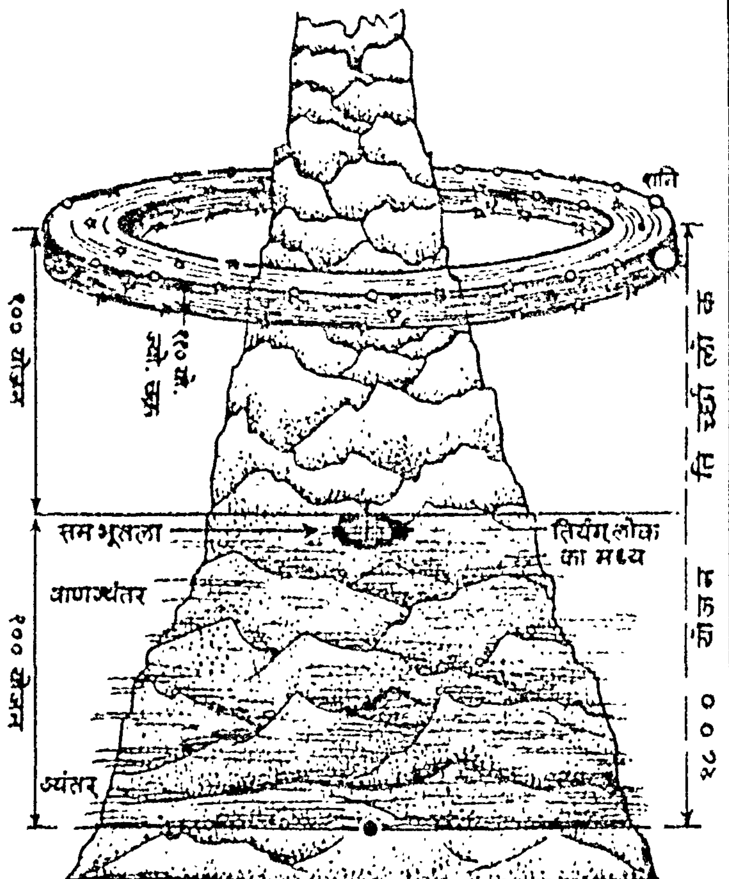
जोयणसतं उड्ढं उप्पइत्ता उवरिल्ले तारारूवे चारं चरति। — सौ योजन ऊपर तारा विचरण करता है।

---

१ (क) भग. श. १४, उ. ८, सु. ५। (ख) ठाण अ. ९, सु. ६७०।
(ग) सम. ९, सु. ३। (घ) सम. ११२, सु. ५।



विशेष वर्णन के लिए देखें—सूत्र ६४५ पृष्ठ ४४४



वर्णन देखें—सूत्र ६२८ पृष्ठ ४३० पर

ता चंदविमाणातो णं वीसं जोयणाइं उड्ढं उप्पतित्ता उवरिल्ले ताराख्वे चारं चरति ।

चन्द्र विमान से बीस योजन ऊँचा ऊपर वाला तारा विचरण करता है ।

एवमेव सपुव्वावरेणं दसुत्तर जोयणसतं बाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोतिसविसए जोतिसं चारं चरति ।

आहितेति वदेज्जा[1] । —सूर० पा० १८, सु० ८६

इस प्रकार सब मिलाकर एक सौ दस योजन के विस्तार में तिर्यक् असंख्य ज्योतिष्क मनुष्य लोक में विचरण करते हैं ऐसा कहा गया है ।

चन्द-सूर-गह-णक्खत्त-ताराविमाणाणं आयाम-विक्खंभ परिक्खेव-बाहल्लाइं—

चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और ताराविमानों का आयाम-विष्कम्भ-परिधि और मोटाई—

६४६. प०—ता चन्दविमाणे णं—

केवइयं आयाम-विक्खंभे णं,

६४६. प्र०—चन्द्र विमान का—

आयाम-विष्कम्भ कितना है ?

१ (क) चंद पा. १८, सु. ८६ ।

(ख) प०—क—इमी से णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ केवइयं अबाहाए सव्वहेट्ठिल्ले ताराख्वे चारं चरति ?

ख—केवइयं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरति ?

ग—केवइयं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरति ?

घ—केवइयं अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरति ?

उ०—क—गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तहिं णउएहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइस सव्वहेट्ठिल्ले ताराख्वे चारं चरति,

ख—अट्ठहिं जोयणसएहिं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरति,

ग—अट्ठहिं असीएहिं जोयणसएहिं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरति,

घ—नवहिं जोयणसएहिं अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरति ।

प०—क—सव्वहेट्ठिल्लाओ णं भंते ! ताराख्वाओ केवइयं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ ?

ख—केवइयं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ ?

ग—केवइयं अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ ?

उ०—क—गोयमा ! सव्वहेट्ठिल्लाओ णं ताराख्वाओ दसहिं जोयणेहिं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ,

ख—णउइए जोयणेहिं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ,

ग—दसुत्तरे जोयणसए अबाहाए सव्वोवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ,

प०—क—सूरविमाणाओ णं भंते ! केवइयं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरति ।

ख—केवइयं सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरति ?

उ०—क—गोयमा ! सूरविमाणाओ णं असीए जोयणेहिं चंदविमाणे चारं चरति ।

ख—जोयणसयं अबाहाए सव्वोवरिल्ले ताराख्वे चारं चरति । —जीवा. प. ३, उ. २, सु. १९५

(ग) प०—धरणितलाओ णं भंते ! उड्ढं उप्पइत्ता केवइयाए अबाहाए हिट्ठिल्ले जोइसे चारं चरइ ?

उ०—गोयमा ! सत्तहिं णउएहिं जोयणसएहिं जोइसे चारं चरइ,

एवं सूरविमाणे अट्ठहिं सएहिं, चंदविमाणे अट्ठहिं असीएहिं, उवरिल्ले ताराख्वे नवहिं जोयणसएहिं चारं चरइ,

प०—जोइसस्स णं भंते ! हेट्ठिल्लाओ तलाओ केवइयाए अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ ?

उ०—गोयमा ! दसहिं जोयणेहिं अबाहाए चारं चरइ,

एवं चंदविमाणे णउईए जोयणेहिं चारं चरइ, उवरिल्ले ताराख्वे दसुत्तरे जोयणसए चारं चरइ,

सूरविमाणाओ चंदविमाणे असीईए जोयणेहिं चारं चरइ,

सूरविमाणाओ जोयणसए उवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ,

चंदविमाणाओ वीसाए जोयणेहिं उवरिल्ले णं ताराख्वे चारं चरइ. —जम्बु. वक्ख. ७, सु. १६८

केवइयं परिक्खेवे णं,
केवइयं बाहल्ले णं पण्णत्ते ?

परिधि कितनी है ?
बाहल्य कितना है ? कहें,

उ०—ता छप्पण्णं एगट्ठिभागे जोयणस्स आयाम-विक्खंभे णं,

उ०—एक योजन के इगसठ भागों में से छप्पन भाग जितना है।

तं तिगुण सविसेसं परिक्खेवे णं,
अट्ठावीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्ले णं पण्णत्ते[1],

इससे तिगुणी परिधि है।
एक योजन के इगसठ भागों में से अट्ठावीस भाग जितना है।

प०—ता सूरविमाणे णं केवइयं आयाम-विक्खंभे ण ?
केवइयं परिक्खेवेणं ?
केवइयं बाहल्ले णं पण्णत्ते ?

प्र०—सूर्य विमान का आयाम-विष्कम्भ कितना है ?
परिधि कितनी है ?
बाहल्य कितना है ?

उ०—ता अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स आयाम-विक्खभे णं,

उ०—एक योजन के इगसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितना है।

तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवे णं-
चउव्वीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्ले ण पण्णत्ते[2],

इससे तिगुणी परिधि है।
एक योजन के इगसठ भागों में से चौबीस भाग जितना है।

प०—ता गहविमाणे णं केवइयं आयाम-विक्खंभे णं ?
केवइयं परिक्खेवे णं ?
केवइयं बाहल्ले णं पण्णत्ते ?

प्र०—ग्रहविमान का आयाम-विष्कम्भ कितना है ?
परिधि कितनी है ?
बाहल्य कितना है ?

उ०—ता अद्धजोयणं आयाम-विक्खंभे णं,
तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवे णं,
कोसं बाहल्ले णं पण्णत्ते,

उ०—आधे योजन का आयाम-विष्कम्भ है।
इससे तिगुनी परिधि है।
एक कोस का बाहल्य है।

प०—ता णक्खत्तविमाणे णं केवइयं आयाम-विक्खंभे णं ?
केवइयं परिक्खेवेणं ?
केवइयं बाहल्लेणं ?

प्र०—नक्षत्र विमान का आयाम-विष्कम्भ कितना है ?
परिधि कितनी है ?
बाहल्य कितना है ?

उ०—ता कोसं आयाम-विक्खभे णं,
तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवे णं,
अद्धकोसं बाहल्ले णं पण्णत्ते.

उ०—एक कोस का आयाम-विष्कम्भ है।
इससे तिगुनी परिधि है।
आधे कोस का बाहल्य है।

प०—ता ताराविमाणे णं केवइयं आयाम-विक्खंभेणं ?
केवइयं परिक्खेवे णं ?
केवइयं बाहल्ले णं ?

प्र०—तारा विमान का आयाम-विष्कम्भ कितना है ?
परिधि कितनी है ?
बाहल्य कितना है ?

उ०—ता अद्धकोसं आयाम-विक्खंभेणं
तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं,
पंचधणुसयाइं बाहल्ले णं पण्णत्ते।[3]
—सूरिय० पा० १८, सु० ९४

उ०—आधे कोस का आयाम-विष्कम्भ है।
इससे तिगुनी परिधि है।
पाँच सौ धनुष का बाहल्य है।

---

१ (क) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १४७।
(ख) चंदमंडले णं एगसट्ठिविभाग-विभाइए समंसे पण्णत्ते, —सम. ६१, सु. ३
इस सूत्र से यह स्पष्ट है कि चंद्र विमान और चंद्र मण्डल एक ही है।

२ (क)—सम. ६१, सु. ४। (ख) सम. १३, सु. ८।

३ (क) प०—चंदविमाणे णं भंते ! केवइयं आयाम-विक्खंभेणं ? केवइयं बाहल्ले णं ? (क्रमशः)

चंद-सूर-गह-णक्खत्त-ताराण-विमाण-वाहगदेवाणं संखा—

९४७. प०—चंदविमाणे णं भंते ! कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?

उ०—गोयमा ! सोलसदेवसाहस्सीओ परिवहंतीति।

चंदविमाणस्स णं पुरत्थिमेणं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतल-विमल-निम्मल-दधिघण-गोखीरफेण-रययणिगर-प्पगासाणं, थिर-लट्ठ-पउट्ठ-पीवर-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-तिक्खदाढाविडंबिअ मुहाणं,

रत्तुप्पलपत्त-मउय-सूमाल-तालु-जीहाणं,
महुगुलिअ-पिंगलक्खाणं,
पीवरवरोरु-पडिपुण्ण-विउल-खंधाणं,

मिउविसय-सुहुम-लक्खणपसत्थ-वरवण्ण-केसरसडोवसोहिआणं,

ऊसिय-सुनमिय-सुजाय-अप्फोडिअ-लंगूलाणं,

वइरामय-णक्खाणं,
वइरामय-दाढाणं,
वइरामय-दंताणं,
तवणिज्ज-जीहाणं,
तवणिज्ज-तालुआणं,
तवणिज्ज-जोत्तगसुजोइआणं,

कामगमाणं, पीइगमाणं, मणोगमाणं, मणोरमाणं, अमिअ-गईणं,

चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और ताराविमानवाहक देवों की संख्या—

९४७. प्र०—हे भगवन् ! चन्द्रविमान को कितने हजार देव वहन करते हैं ?

उ०—हे गौतम ! सोलह हजार देव वहन करते हैं—

चन्द्रविमान के पूर्व में श्वेत सुभग सुप्रभ, शंखतल के समान विमल, निर्मल-दधिपिण्ड-गोदुग्धफेन (झाग) एवं रजतराशि के समान प्रकाशमान दृढ़ कान्त कठोर गोल पुष्ट छिद्ररहित तीक्ष्ण-दाढ़ाओं से युक्त खुले हुए मुंह वाले,

रक्तकमलपत्र के सदृश अतिकोमल-तालु एवं जिह्वा वाले,
गाढ़ मधु-पिण्ड के सदृश—पीली आंखों वाले,
स्थूल एवं विशाल जंघा वाले, प्रतिपूर्ण-विशाल स्कंध वाले,

कोमल लम्बे पतले प्रशस्त लक्षणयुक्त केशर वर्ण वाले स्कन्ध पर फैले हुए सुशोभित केशों वाले।

ऊपर उठी हुई कुछ झुकी हुई एवं भूमि पर उछलती हुई सुशोभित पूंछ वाले,

वज्रमय नखों वाले,
वज्रमय दाढ़ाओं वाले,
वज्रमय दांतों वाले,
तप्त स्वर्ण सदृश जिह्वा वाले,
तप्त स्वर्ण सदृश तालु वाले,
तप्त स्वर्ण जोत वाले,

इच्छानुसार गमन करने वाले, प्रीतिकर गति वाले, मन के समान वेगवती गति वाले, मनोरम मनहर अमित गति वाले,

अमिअ-बल-वीरिअ-पुरिसक्कार-परक्कमाणं, अप्फोडिअ-सीहणाय-बोल-कलकल-रवेणं, महुरेणं, मणहरेण, पुरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ सीहरूवधारीणं पुरित्थिमिल्लं बाहं वहंति,

अमित बल, वीर्य, पौरुष एवं पराक्रम वाले, महासिंहनाद की ध्वनि के मधुर मनहर कलकलरव से पूरित आकाश एवं दिशाओं को सुशोभित करते हुए सिंहरूपधारी चार हजार देव पूर्वी बाहु का वहन करते हैं।

चंदविमाणस्स णं दाहिणे णं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतल-विमल-निम्मल-दधिघन - गोखीरफेण - रयय-णिगरप्पगासाणं,

चन्द्रविमान के दक्षिण में श्वेत सुभग सुप्रभ शंखतल के समान विमल, निर्मल दधिपिण्ड, गोदुग्ध फेन तथा रजतराशि के समान प्रकाशमान,

वइरामय कुम्भजुअल सुट्ठिअ-पीवर-वरवइर सोंड वट्टिअ-दित्त-सुरत्त-पउमप्पगासाणं, अब्भुण्णय-मुहाणं,

वज्रमय कुंभयुगल (गण्डस्थल) वाले, सुस्थित श्रेष्ठ पुष्ठ वज्रमय गोल शुण्ड से दैदिप्यमान-रक्तकमल सदृश उन्नत मुख वाले,

तवणिज्जविसाल कण्णं चंचलचलंत-विमलुज्जलाणं,

तप्त स्वर्ण सदृश विशाल-चंचल-चलायमान-विमल-उज्ज्वल कर्ण वाले,

महुवण्ण-भिसंत-णिद्ध- पत्तल-निम्मल-तिवण्णमणिरयण लोअणाणं

मधु सदृश वर्ण से दैदीप्यमान-स्निग्ध-पिंगल-भोहों से युक्त एवं त्रिवर्ण के मणि-रत्नमय-निर्मल लोचन वाले।

अब्भुग्गय-मउल-मल्लिआ-धवल-सरिस-संठिअ-णिव्वण-दढ-कसिण-फालियामय-सुजाय-दंतमुसलो व सोभिआणं,

उन्नत-कलिकायें तथा चमेली-पुष्प-सदृश श्वेत, एक समान सुन्दराकार-व्रणरहित-दृढ़-सर्वफटिकमय-सुन्दर दन्तमूसल वाले।

कंचणकोसीपविट्ठ-दंतग्ग-विमल मणिरयण-रुइल-पेरंत-चित्तरूवग-विराइआणं,

विमलमणि-रत्नमय-सुन्दर-विचित्र-चित्रचित्रित-स्वर्णमय कोशी में प्रविष्ट द्रन्ताग्र वाले,

तवणिज्ज-विसालतिलग-प्पमुह-परिमंडिआणं, नाना-मणि-रयण-मुद्ध-गेविज्ज-बद्ध-गलय-वरभूसणाणं,

तप्त स्वर्णसदृश वर्ण के विशाल तिलकादि से परिमण्डित, नाना प्रकार के मणि-रत्न-जटित गले के आभूषणों से बद्ध ग्रीवा वाले,

वेरुलिअ- विचित्त-दण्ड- निम्मल-वइरामय-तिक्ख-लट्ठ-अंकुस-कुम्भजुयलंतरोडिआणं,

वैडूर्यमय विचित्र दण्ड एवं निर्मल वज्रमय अंकुश युक्त कुंभ-युगल वाले,

तवणिज्ज-सुबद्ध-कच्छ-दप्पिअ-बलुद्धराणं,

स्वर्णमयी रज्जु के बद्ध एवं मदमत्त उत्कट बल वाले,

विमलघणमण्डल-वइरामय-लालाललियताणं,

निर्मल निविडघन मण्डल वाली,

णाणामणियरण-घंट पासग-रजतामय-बद्ध-रज्जु-लंबिअ-घंटाजुअल-महुरसरमणहराणं,

नानामणि-रत्नमय-पार्श्ववर्ती घंटा वाली, रत्नमय रज्जु से बँधे हुए एवं लटकते हुए घंटायुगल के मधुर स्वर से मनहर,

अल्लीणपमाणजुत्त-वट्टिअ-सुजाय-लक्खण-पसत्थ-रमणि-ज्ज-वालगत-परिपुंछणाणं,

संलग्न-प्रमाणयुक्त-गोल-सुन्दर-प्रशस्त लक्षण एवं रमणीय वालों से युक्त पूंछ से गात्र पूछने वाले,

उवचिअ-पडिपुण्ण-कुम्मचलण-लहुविक्कमाणं,

मांसल-प्रतिपूर्ण कूर्म जैसे चरणों से शीघ्र गति वाले,

अंकमय-णक्खाणं,

अंकरत्नमय- नख वाले,

तवणिज्ज-जीहाणं,

तप्त स्वर्ण वर्ण जैसी जिह्वा वाले,

तवणिज्ज तालुआणं,

तप्त स्वर्ण वर्ण जैसे तालु वाले,

तवणिज्ज-जोत्तग-सुजोइआणं,

तप्त स्वर्ण वर्ण जैसे जोतों से जुते हुए,

कामगमाणं, पीइगमाणं, मणोगलाणं मणोरमाणं, अमिअगईणं,

इच्छानुसार चाल वाले, प्रीतिकर चाल वाले, मन के जैसी वेगवती गति वाले, मनोरम,-मनोहर-अमित गति वाले,

अमिअवलवीरिय-पुरिसक्कारपरक्कमाणं,

अमितबल-वीर्य-पुरुषार्थ एवं पराक्रम वाले,

महया गम्भीर-गुलगुलाइत-रवेणं, महुरेणं, मणहरेणं, पूरेंता

अति गम्भीर-गुलगुलायित, मधुर और मनोहर शब्दों से पूरित,

अम्बरं दिसाओअसोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ गयरूवधारीणं देवाणं दक्खिणिल्लं बाहं परिवहंति.

आकाश एवं दिशाओं को सुशोभित करते हुए चार हजार गजरूपधारी देव दक्षिण की बाहु का वहन करते हैं।

चन्दविमाणस्स पच्चत्थिमेणं,

चन्द्रविमान के पश्चिम में,

सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं चल-चवल-ककुह सालीणं,

श्वेत सुभग सुप्रभ-चलाचल उन्नत ककुद से सुशोभित,

घण निचिअ-सुबद्ध-लक्खणुण्णय-ईसिआणय-वसभोट्ठाणं,

सघन पुष्ट सुबद्ध सुलक्षणयुक्त कुछ झुके हुए श्रेष्ठ ओष्ठ वाले,

चंकमिअ-ललिअ-पुलिअ-चल-चवल-गव्विअगईणं,

कुटिलगति–ललितगति–आकाशगति–चंचलगति–चपलगति एवं गर्वित गति वाले,

सन्नतपासाणं संगतपासाणं सुजायपासाणं,

सन्नत और संगत पार्श्व वाले सुगठित पार्श्व वाले,

पीवर-वट्टिअ-सुसंठिअ-कडीणं,

पुष्ट गोल एवं सुसंस्थित कटि वाले,

ओलंब-पलंब-लक्खणपमाणजुत्त-रमणिज्जवाल गण्डाणं,

लटकती हुई-लम्बी-लक्षण एवं प्रमाणयुक्त-रमणीय रोमराजि वाले,

समखुर-वालिधाणाणं,

समान खुर और समान पूंछ वाले,

समलिहिअ-सिंगतिक्खग्गसिंगाणं,

एक से अलिखित एवं तीक्ष्ण शृंगाग्र वाले,

तणु-सुहुम-सुजाय-णिद्ध-लोमच्छविधराणं,

पतली-सूक्ष्म-सुन्दर एवं स्निग्ध रोमराजि वाले,

उवचिअ-मंसल-विसाल-पडिपुण्ण-खंधपएस-सुन्दराणं,

भरे हुए मांसल-विशाल-प्रतिपूर्ण एवं सुन्दर स्कन्धप्रदेश वाले,

वेरुलिअ-भिसंत-कडक्ख-सुनिरिक्खणाणं,

वैडूर्यमणि के समान चमकदार कटाक्ष पूर्ण निरीक्षण करने वाले,

जुत्तपमाण, पहाण-लक्खण-पसत्थ-रमणिज्ज-गग्गर-गल्लसोभिआणं

प्रधान प्रमाणयुक्त प्रशस्त लक्षणयुक्त एवं रमणीय गलकम्बलों से सुशोभित गले वाले,

घरघर-सुसद्द-बद्ध-कंठ-परिमण्डिआणं,

मधुर ध्वनिवाली घुंघरमालाओं से परिमंडित कंठ वाले,

णाणामणि-कणग-रयण-घंटिआ-वेगच्छिग-सुकयमालियाणं,

नाना प्रकार के मणिरत्न एवं स्वर्ण से सुरचित घंटियों की माला धारण करने वाले,

वरघंटा-गलय-मालुज्जल-सिरिधराणं,

श्रेष्ठ घण्टाओं की चमकती हुई सुशोभित गलमालायें धारण करने वाले,

वसहरूवधारीणं देवाणं पच्चत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति त्ति[1], वृषभ रूपधारी देव पश्चिमी बाहु का वहन करते हैं।

---

१ (क) प०—ता चंदविमाणे णं कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?

उ०—सोलस देवसाहस्सीओ परिवहंति, तं जहा—

पुरत्थिमेणं सीहरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति।

दाहिणेणं गयरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति।

पच्चत्थिमेणं वसभरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति।

उत्तरेणं तुरगरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति।

एवं सूरविमाणं पि।

प०—ता गहविमाणे णं कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?

उ०—ता अट्ठ देवसाहस्सीओ परिवहंति तं जहा—

पुरत्थिमे णं सीहरूवधारीणं देवाणं दो देवसाहस्सीओ परिवहंति।

एवं-जाव-उत्तरे णं तुरगरूवधारिणं देवाणं दो देवसाहस्सीओ परिवहंति।

प०—ता णक्खत्तविमाणे णं कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?

उ०—ता चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति, तं जहा—

पुरत्थिमे णं सीहरूवधारीणं देवाणं एक्का देवसाहस्सी परिवहंति।

एवं-जाव-उत्तरे णं तुरगरूवधारीणं देवाणं एक्का देवसाहस्सी परिवहंति।

प०—ता ताराविमाणे णं कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?

उ०—ता दो देवसाहस्सीओ परिवहंति, तं जहा—

पुरत्थिमे णं सीहरूवधारीणं देवाणं पंच देवसता परिवहंति।

एवं-जाव-उत्तरे णं तुरगरूवधारीणं देवाणं पंच देवसता परिवहंति। —सूरिय. पा. १८, सु. ९४

(ख) चंद. पा. १८ सु. ९४।

(ग) प०—चंदविमाणे णं भंते ! कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?

उ०—गोयमा ! चंदविमाणस्स णं पुरत्थिमे णं सेयाणं, सुभगाणं सुप्पभाणं संखतल-विमल-निम्मल-दधिघण-गोखीरफेण-रययणिगरप्पगासाणं, थिरलट्ठ-वट्ट-पीवर-सुविलिट्ठ-सुविसिट्ठ-तिक्खदाढाविडंबितमुहाणं, रत्तुप्पलपत्त-मउय-सुकुमाल-तालुजीहाणं, विसाल-पीवरोरू-पडिपुण्ण-विउलखंधाणं, मिउविसय-पसत्थ-सुहुम-लक्खण-वित्थिण्ण-केसरसडोवसोभिताणं, चंकमित-ललिय-पुलित-धवल-गव्वितगणीणं उस्सिय-सुणिम्मिय-सुजाय-अप्फोडिय-णंगूलाणं, वइरामय-णक्खाणं, वइरामय-दंताणं, वइरामय-दाढाणं, तवणिज्ज-जीहाणं, तवणिज्ज-तालुयाणं, तवणिज्ज-जोत्तगसुजोइयाणं, कामगमाणं, पीतिगमाणं-मणोगमाणं, मणोरमाणं, मणोहराणं, अमियगतीणं, अमिय-बल-वीरिय-पुरिसक्कार-परक्कमाणं, महया अप्फोडिय-सीहनादीयबोलकल-कल-रवेणं, महुरेणं, मणहरेण य पूरिता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ सीहरूवधारीणं, देवाणं पुरित्थिमिल्लं बाहं परिवहंति।

कोष्ठकान्तर्गतपाठ :—(महुगुलियपिंगलक्खाणं) (पउट्ठ) पसत्थसत्थ-वेरूलियभिसंत-कक्कड-नहाणं)

चंदविमाणस्स णं दक्खिणे णं, सुभगाणं, सुप्पभाणं, संखतल-विमल-निम्मल-दधिघण-गोखीरफेण-रययणियरप्पगासाणं, वइरामय-कुम्भजुयल-सुट्ठिय-पीवर-वरवइर-सोंडवट्टिय-दित्त-सुरत-पउमप्पकासाणं, अब्भुण्णयगुणाणं, तवणिज्ज-विसाल-चंचल-चलंत-चवल-कण्ण-विमलुज्जलाणं, मधुवण्ण-भिसंत-णिद्ध-पिंगल-पत्तल-तिवण्णं-मणि-रयण-लोयणाणं, अब्भुग्गय-मउल-मल्लियाणं, धवल-सरिस-संठित-णिव्वण-दढ-कसिण-फालियामय-सुजाय-दंत-मुसलोवसोभियाणं, कंचण-कोसी-पविट्ठ-दंतग्ग-विमल-मणि-रयण-रुइर-पेरंत-चित्तरूवग-विरायिताणं, तवणिज्ज-विसाल-तिलग-पमुहपरिमंडिताणं, णाणा-मणि-रयण-मुद्ध-गेवेज्ज-बद्ध-गलय-वरभूसणाणं, वेरुलिय-विचित्त-दंड-णिम्मल-वइरामय-तिक्ख-लट्ठ-

ललंत-लाम गललाय-वरभूसणाणं,
सन्नयपासाणं, संगत-पासाणं, सुजायपासाणं,
पीवर-वट्टिअ-सुसंठिअ-कडीणं,
ओलम्ब-पलम्ब-लक्खण-पमाण-जुत्त-रमणिज्जवाल-पुच्छाणं,
तणु-सुहुम-सुजाय-णिद्ध-लोमच्छविहराणं,
मिउ-विसय-सुहुम-लक्खण-पसत्थ-विच्छिण्णं केसरवालि-हराणं,
ललंत-थासग-ललाड-वरभूसणाणं,
मुहमण्डल-ओचूलग-चामर-थासग-परिमण्डिअ-कडीणं,
तवणिज्ज-खुराणं,
तवणिज्ज-जीहाणं,
तवणिज्ज-तालुआणं,
तवणिज्ज-जोत्तगसुजोइयाणं,
कामगमाणं जाव मणोरमाणं, अमिअगईणं,
अमिअ-वल-वीरिअ-पुरिसक्कारपरक्कमाणं,
महया हयहेसिअ किलकिलाइय-रवेणं मणहरेणं पूरेंता अम्बरं दिसाओ य सोभयन्ता चत्तारि देवसाहस्सीओ हयरूवधारीणं देवाणं उत्तरिल्लं वाहं परिवहंति,

गाहाओ—

सोलसदेवसहस्सा, हवंति चंदेसु चेव सूरेसु।
अट्ठेव सहस्साइं एक्केक्कंमि गहविमाणे ॥

चत्तारि सहस्साइं, णक्खत्तंमि अ हवंति इक्किक्के।
दो चेव सहस्साइं, ताराख्वेक्कमेक्कंमि ॥

एवं सूरविमाणाणं-जाव-ताराख्व विमाणाणं[1] णवरं—एस देवसंघाएत्ति। —जंबु. वक्ख. ७, सु. १६६

जिनके गले में, श्रेष्ठ आभूषण लटक रहे हैं,
सन्नत-संगत एवं सुन्दर पार्श्व वाले,
पुष्ट-गोल-सुसंस्थित कटि वाले,
लटकती हुई लम्बी लक्षण एवं प्रमाणयुक्त रमणीय केशों की पूंछ वाले,
पतली-सूक्ष्म-सुन्दर-स्निग्ध (चिकनी) श्याम रोमराजी वाले,
कोमल - विशाल - बारीक - प्रशस्त लक्षणयुक्त-विस्तृत-अयाल (गर्दन के बाल) वाले,
जिनके ललाट पर दर्पणाकार श्रेष्ठ आभूषण बँधे हुए हैं,
मुखमण्डल (मुंह पर पहराने का आभूषण) लम्बे चामर तथा दर्पणाकार आभूषणों से परिमण्डित कटि वाले,
तप्त स्वर्ण सदृश खुरों वाले,
तप्त स्वर्ण सदृश जिह्वा वाले,
तप्त स्वर्ण सदृश तालु वाले,
तप्त स्वर्ण सदृश जोतों से जुते हुए।
इच्छानुसार गति वाले—यावत्—मनोरम अमित गति वाले,
अमित-बल-वीर्य-पौरुष एवं पराक्रम वाले,
महान् हिनहिनाट तथा मनहर कल-कल ध्वनि से पूरित आकाश एवं दिशाओं को सुशोभित करते हुए चार हजार अश्वरूपधारी देव उत्तर की बाहु का वहन करते हैं।

गाथार्थ—

चंद्र और सूर्य के विमानों का वहन सोलह सोलह हजार देव करते हैं, प्रत्येक ग्रह-विमान का वहन आठ आठ हजार देव करते हैं।

प्रत्येक नक्षत्र-विमान का वहन चार-चार हजार देव करते हैं, प्रत्येक तारा-विमान का वहन दो दो हजार देव करते हैं।

इसी प्रकार सूर्यविमानों का—यावत्—तारा विमानों का वहन कहते है।

---

१ प०—एवं सूरविमाणस्स वि पुच्छा ?
उ०—गोयमा ! सोलसदेवसाहस्सीओ परिवहंति पुव्वकमेणं।
प०—एवं गहविमाणस्स वि पुच्छा ?
उ०—गोयमा ! अट्ठदेवसाहस्सीओ परिवहंति, पुव्वकमेणं।
दो देवाणं साहस्सीओ पुरित्थिमिल्लं वाहं परिवहंति।
दो देवाणं साहस्सीओ दक्खिणिल्लं बाहं परिवहंति।
दो देवाणं साहस्सीओ पच्चत्थिमिल्लं वाहं परिवहंति।
दो देवाणं साहस्सीओ हयरूवधारिणं उत्तरिल्लं वाहं परिवहंति।
प०—एवं णक्खत्तविमाणस्स वि पुच्छा ?

(क्रमशः)

(४) प्र०—केवइया तारागणकोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा, सोभंति वा, सोभिस्संति वा ?

(१) उ० पुक्खरवरे णं दीवे—
चोयालं चंदसयं पभासेंसु वा, पभासेंति वा, पभासिस्संति वा,

(२) उ० चोयालं सूरियाणं सयं तविंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा,

(३) उ० बारस सहस्साइं छच्च बावत्तरा महग्गहसया चारं चरिंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा,

(४) उ० चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं च णक्खत्ता जोगं जोएंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा,

(५) उ०—छण्णउइसयसहस्साइं चोयालीसं सहस्साइं चत्तारि य सयाइं तारागणकोडिकोडीणं सोभं सोभेंसु वा, सोभेंति वा, सोभिस्संति वा,

गाहाओ—

चोयालं चंदसयं, चोयालं चेव सूरियाण सयं।
पुक्खरवरदीवम्मि य, चरंति एए पभासेंता॥
चत्तारि सहस्साइं, बत्तीसं चेव होंति णक्खत्ता।
छच्च सया बावत्तर, महग्गहा बारह सहस्सा॥
छण्णउइ सय सहस्सा चोयालीसं खलु भवे सहस्साइं।
चत्तारि य सया खलु, तारागणकोडिकोडीणं॥

—सूरिय. पा. १९, सु. १००

(४) प्र०—कितने कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे ?

(१) उ०—पुष्करवर द्वीप में—
एक सौ चवालीस चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे।

(२) उ०—एक सौ चवालीस सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे।

(३) उ०—बारह हजार छह सौ बहत्तर महाग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे।

(४) उ०—चार हजार बत्तीस नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे।

(५) उ०—छियानवे लाख चवालीस हजार चार सौ कोटा-कोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते हैं और सुशोभित होंगे।

गाथार्थ—

पुष्करवर द्वीप में एक सौ चवालीस चन्द्र और एक सौ चवालीस सूर्य प्रभास करते हुए विचरते हैं,

चार हजार बत्तीस नक्षत्र, बारह हजार छह सौ बहत्तर महाग्रह, (तथा)

छियानवे लाख चवालीस हजार चार सौ कोटाकोटी तारागण हैं।

अब्भंतरपुक्खरद्धे जोइसिय देवा

आभ्यन्तर पुष्करार्ध में ज्योतिष्क देव

१३५. (१) प्र० [illegible]

[illegible]

[illegible]

(२) उ०—बावत्तरिं सूरिया तवेंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा,

(३) उ०—छ महग्गहसहस्सा तिन्निसए य छत्तीसा चारं चरेंसु वा, चरंति वा, चरिस्संति वा,

(४) उ०—दोण्णि सोला णक्खत्तसहस्सा जोगं जोएंसु वा, जोएंति वा, जोइस्संति वा,

(५) उ०—अडयालीसं सयसहस्सा, बावीसं च सहस्सा दोण्णि य सया तारागणकोडिकोडीणं सोभं सोभेंसु वा सोभंति वा सोभिस्संति वा,

गाहाओ—

बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिणकरादित्ता।
पुक्खरवरदीवड्ढे, चरंति एए पभासेंता॥

तिण्णि सया छत्तीसा, छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु।
णक्खत्ताणं तु भवे, सोलाइं दुवे सहस्साइं॥

अडयालसय सहस्सा, बावीसं खलु भवे सहस्साइं।
दो य सय पुक्खरद्धे, तारागण कोडिकोडीणं[1]॥

—सूरिय. पा. १९, सु. १००

(२) प्र०—बहत्तर सूर्य तपाते थे तपाते हैं और तपाएँगे।

(३) उ०—छः हजार तीन सौ छत्तीस महाग्रह गति करते थे, गति करते हैं और गति करेंगे।

(४) उ०—सोलह हजार दो नक्षत्र योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे।

(५) उ०—अड़तालीस लाख बाईस हजार दो सौ कोटाकोटी तारागण सुशोभित होते थे, सुशोभित होते और सुशोभित होंगे।

गाथार्थ—

पुष्करवरद्वीपार्ध में बहत्तर चन्द्र, बहत्तर सूर्य प्रकाश करते हुए विचरते हैं।

छः हजार तीन सौ छत्तीस महाग्रह सोलह हजार दो नक्षत्र,

अड़तालीस लाख बाईस हजार दो सौ कोटाकोटी तारागण है।

पुक्खरोदे समुद्दे जोइसिया देवा—

९३७. प०—ता पुक्खरोदे णं समुद्दे—

(१) केवइया चंदा पभासिंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा?

(२) केवइया सूरा तविंसु वा, तविंति वा, तविस्संति वा?

(३) केवइया गहा चारं चरिंसु वा, चारं चरंति वा, चारं चरिस्संति वा?

(४) केवइया णक्खत्ता जोगं जोएंसु वा, जोगं जोएंति वा, जोगं जोइस्संति वा?

(५) केवइया तारा सोभं सोभिंसु वा, सोभं सोभंति वा, सोभं सोभिस्संति वा?

उ०—(१) पुक्खरोदे णं समुद्दे—
संखेज्जा चंदा पभासिंसु वा, पभासिंति वा, पभासिस्संति वा,

(२) संखेज्जा सूरा तविंसु वा, तविंति वा, तविस्संति वा,

(३) संखेज्जा गहा चारं चरिंसु वा, चारं चरंति वा, चारं चरिस्संति वा,

पुष्करोद समुद्र में ज्योतिष्कदेव—

९३७. (१) प्र०—पुष्करोदसमुद्र में—

कितने चन्द्र प्रकाशित हुए हैं, प्रकाशित होते हैं और प्रकाशित होंगे?

(२) कितने सूर्य तपे, तपते हैं और तपेंगे?

(३) कितने ग्रह गति युक्त रहे, गति युक्त हैं और गति युक्त रहेंगे?

(४) कितने नक्षत्र (चन्द्र या सूर्य) के साथ योग युक्त रहे, योग युक्त हैं और योग युक्त रहेंगे?

(५) कितने तारागण शोभा से सुशोभित हुए, शोभा से सुशोभित हैं और शोभा से सुशोभित होंगे?

(१) उ०—पुष्करोद समुद्र में—
संख्येय चन्द्र प्रकाशित हुए प्रकाशित हैं और प्रकाशित होंगे।

(२) संख्येय सूर्य तपे, तपते हैं और तपेंगे।

(३) संख्येय ग्रह गति युक्त रहे, गति युक्त हैं और गति युक्त रहेंगे।

---

1 (क) चंद. पा. १९, सु. १००।
(ख) भग. स. ९, उ. २, सु. ५।
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७६।
(घ) सम. ७२, सु. ५।

वरुणवराइसु दीव-समुद्देसु जोइसिया देवा—

९. एवं एएणं अभिलावेणं—

१. वरुणवरे दीवे[1], २. वरुणोदे समुद्दे,
१. खीरवरे दीवे, २. खीरोदे समुद्दे,
१. घयवरे दीवे, २. घयोदे समुद्दे,
१. खोयवरे दीवे, २. खोयोदे समुद्दे[2],
१. नंदीसरवरे दीवे, २. नंदीसरे समुद्दे,
१. अरुणे दीवे, २. अरुणोदे समुद्दे,
१. अरुणवरे दीवे, २. अरुणवरोदे समुद्दे,
१. अरुणवरोभासे दीवे, २. अरुणवरभासोदे समुद्दे[3],
१. कुण्डले दीवे, २. कुण्डलोदे समुद्दे,
१. कुण्डलवरे दीवे, २. कुण्डलवरोदे समुद्दे,
१. कुण्डलवरोभासे दीवे, २. कुण्डलवरभासोदे समुद्दे[4], .

सव्वेसिं जोइसाइं पुक्खरोदसागरसरिसाइं ।

—सूरिय. पा. १९, सु. १०१

वरुणवरादि द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्कदेव—

६३९. इसी प्रकार इस अभिलाप से—

(१) वरुणवरद्वीप, (२) वरुणोद समुद्र,
(१) क्षीरवरद्वीप, (२) क्षीरोद समुद्र,
(१) घृतवरद्वीप, (२) घृतोद समुद्र,
(१) क्षोतवरद्वीप, (२) क्षोतोद समुद्र,
(१) नन्दीश्वरवरद्वीप, (२) नन्दीश्वर समुद्र,
(१) अरुणद्वीप, (२) अरुणोद समुद्र,
(१) अरुणवरद्वीप, (२) अरुणवरोद समुद्र,
(१) अरुणवरोभासद्वीप, (२) अरुणवरोभासोद समुद्र,
(१) कुण्डलद्वीप, (२) कुण्डलोद समुद्र,
(१) कुण्डलवरद्वीप, (२) कुण्डलवरोद समुद्र,
(१) कुण्डलवरोभासद्वीप, (२) कुण्डलवरभासोद समुद्र,

इन सबके ज्योतिष्क देव पुष्करोद सागर के सदृश हैं ।

रुयगाइसु दीव-समुद्देसु जोइसिया देवा—

०. प०—ता रुयगे णं दीवे केवइया चंदा पभासेंसु वा-जाव-केवइया तारागणकोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा सोभिस्संति वा ?

उ०—ता रुयगे णं दीवे असंखेज्जा चंदा पभासेंसु वा-जाव-असंखेज्जाओ तारागण कोडिकोडीओ सोभं सोभिस्संति वा ?

एवं रुयगोदे समुद्दे,
१. रुयगवरे दीवे, २. रुयगवरोदे समुद्दे,
२. रुयगवरोभासे दीवे, २. रुयगवरभासोदे समुद्दे[4],

एवं तिपडोयारा दीव-समुद्दा णायव्वा,-जाव-

१. सूरे दीवे, २. सूरोदे समुद्दे,
१. सूरवरे दीवे, २. सूरवरोदे समुद्दे,
१. सूरवरोभासे दीवे, २. सूरवरभासोदे समुद्दे,

सव्वेसिं जोइसाइं रुयगवर दीव-सरिसाइं,[5]

—सूरिय. पा. १९, सु. १०१

रुचकादि द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्कदेव—

६४०. प्र०—रुचकद्वीप में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे—यावत्—कितने कोटा कोटी तारागण सुशोभित होंगे ?

उ०—रुचकद्वीप में असंख्य चन्द्र प्रभासित होते थे—यावत् असंख्य कोटा कोटी तारागण सुशोभित होंगे ।

इसी प्रकार रुचकोद समुद्र है ।

(१) रुचकवरद्वीप, (२) रुचकवरोद समुद्र,
(१) रुचकवरोभास द्वीप, (२) रुचकवरभासोद समुद्र,

इस प्रकार तीन-तीन द्वीप-समुद्र जानने चाहिए—यावत्—

(१) सूरद्वीप, (२) सूरोद समुद्र,
(१) सूरवरद्वीप, (२) सूरवरोद समुद्र,
(१) सूरवरोभासद्वीप, (२) सूरवरभासोद समुद्र ।

इन सबके ज्योतिष्क देव रुचक द्वीप के सदृश है ।

देवाइसु दीव-समुद्देसु जोइसिया देवा—

१. प०—ता देवे णं दीवे केवइया चंदा पभासेंसु वा-जाव-केवइया तारागण कोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा ?

देवादि द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्कदेव—

६४१. प्र०—देव द्वीप में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे—यावत् कितने कोटा कोटी तारागण सुशोभित होंगे ?

जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८० ।
-४ (क) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८५ ।
जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८५ ।

२ जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८२ ।
(ख) चंद. पा. १९, सु. १०१ ।
६ चंद. पा. १९ सु. १०१ ।

वरुणवराइसु दीव-समुद्देसु जोइसिया देवा—

६३९. एवं एएणं अभिलावेणं—

१. वरुणवरे दीवे[1], २. वरुणोदे समुद्दे,
१. खीरवरे दीवे, २. खीरोदे समुद्दे,
१. घयवरे दीवे, २. घयोदे समुद्दे,
१. खोयवरे दीवे, २. खोयोदे समुद्दे[2],
१. नंदीसरवरे दीवे, २. नंदीसरे समुद्दे,
१. अरुणे दीवे, २. अरुणोदे समुद्दे,
१. अरुणवरे दीवे, २. अरुणवरोदे समुद्दे,
१. अरुणवरोभासे दीवे, २. अरुणवरभासोदे समुद्दे[3],
१. कुण्डले दीवे, २. कुण्डलोदे समुद्दे,
१. कुण्डलवरे दीवे, २. कुण्डलवरोदे समुद्दे,
१. कुण्डलवरोभासे दीवे, २. कुण्डलवरभासोदे समुद्दे[4],

सव्वेसिं जोइसाइं पुक्खरोदसागरसरिसाइं।

—सूरिय. पा. १९, सु. १०१

वरुणवरादि द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्कदेव—

६३९. इसी प्रकार इस अभिलाप से—

(१) वरुणवरद्वीप, (२) वरुणोद समुद्र,
(१) क्षीरवरद्वीप, (२) वरुणोद समुद्र,
(१) घृतवरद्वीप, (२) घृतोद समुद्र,
(१) क्षोतवरद्वीप, (२) क्षोतोद समुद्र,
(१) नन्दीश्वरवरद्वीप, (२) नन्दीश्वर समुद्र,
(१) अरुणद्वीप, (२) अरुणोद समुद्र,
(१) अरुणवरद्वीप, (२) अरुणवरोद समुद्र,
(१) अरुणवरोभासद्वीप, (२) अरुणवरोभासोद समुद्र,
(१) कुण्डलद्वीप, (२) कुण्डलोद समुद्र,
(१) कुण्डलवरद्वीप, (२) कुण्डलवरोद समुद्र,
(१) कुण्डलवरोभासद्वीप, (२) कुण्डलवरभासोद समुद्र,

इन सबके ज्योतिष्क देव पुष्करोद सागर के सदृश हैं।

रुयगाइसु दीव-समुद्देसु जोइसिया देवा—

६४०. प०—ता रुयगे णं दीवे केवइया चंदा पभासेंसु वा-जाव-केवइया तारागणकोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा सोभिस्संति वा ?

उ०—ता रुयगे णं दीवे असंखेज्जा चंदा पभासेंसु वा-जाव-असंखेज्जाओ तारागण कोडिकोडीओ सोभं सोभिस्संति वा ?

एवं रुयगोदे समुद्दे,
१. रुयगवरे दीवे, २. रुयगवरोदे समुद्दे,
२. रुयगवरोभासे दीवे, २. रुयगवरभासोदे समुद्दे[5],

एवं तिपडोयारा दीव-समुद्दा णायव्वा,-जाव-
१. सूरे दीवे, २. सूरोदे समुद्दे,
१. सूरवरे दीवे, २. सूरवरोदे समुद्दे,
१. सूरवरोभासे दीवे, २. सूरवरभासोदे समुद्दे,

सव्वेसिं जोइसाइं रुयगवर दीव-सरिसाइं,[6]

—सूरिय. पा. १९, सु. १०१

रुचकादि द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्कदेव—

६४०. प्र०—रुचकद्वीप में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे—यावत्—कितने कोटा कोटी तारागण सुशोभित होंगे ?

उ०—रुचकद्वीप में असंख्य चन्द्र प्रभासित होते थे—यावत् असंख्य कोटा कोटी तारागण सुशोभित होंगे।

इसी प्रकार रुचकोद समुद्र है।
(१) रुचकवरद्वीप, (२) रुचकवरोद समुद्र,
(१) रुचकवरोभास द्वीप, (२) रुचकवरभासोद समुद्र,

इस प्रकार तीन-तीन द्वीप-समुद्र जानने चाहिए—यावत्—
(१) सूरद्वीप, (२) सूरोद समुद्र,
(१) सूरवरद्वीप, (२) सूरवरोद समुद्र,
(१) सूरवरोभासद्वीप, (२) सूरवरभासोद समुद्र।

इन सबके ज्योतिष्क देव रुचक द्वीप के सदृश हैं।

देवाइसु दीव-समुद्देसु जोइसिया देवा—

६४१. प०—ता देवे णं दीवे केवइया चंदा पभासेंसु वा-जाव-केवइया तारागण कोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा ?

देवादि द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्कदेव—

६४१. प्र०—देव द्वीप में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे—यावत् कितने कोटा कोटी तारागण सुशोभित होंगे ?

---

१ जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८० ।
३-४ (क) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८५ ।
५ जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८५ ।
२ जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८२ ।
(ख) चंद. पा. १९, सु. १०१ ।
६ चंद. पा. १९ सु. १०१ ।

उ०—ता देवे णं दीवे असंखेज्जा चंदा पभासेंसु वा-जाव-असंखेज्जाओ तारागणकोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा,

एवं देवोदे समुद्दे—

१. णागे दीवे, २. णागोदे समुद्दे,

१. जक्खे दीवे, २. जक्खोदे समुद्दे,

१. भूए दीवे, २. भूओदे समुद्दे,

१. सयंभुरमणे दीवे, २. सयंभुरमणे समुद्दे,[1]

सव्वेसिं जोइसाइं देवदीव सरिसाइं।[2]

—सूरिय. पा. १९, सु. १०१

उ०—देव द्वीप में असंख्य चन्द्र प्रभासित होते—**यावत्**—असंख्य कोटा कोटी तारागण सुशोभित होंगे।

इसी प्रकार देवोद समुद्र है—

(१) नागद्वीप, (२) नागोद समुद्र,

(२) यक्षद्वीप, (२) यक्षोद समुद्र,

(१) भूतद्वीप, (२) भूतोद समुद्र,

(१) स्वयंभूरमण द्वीप, (२) स्वयंभूरमण समुद्र।

सबके ज्योतिष्क देव देवद्वीप के सदृश हैं।

जोइसियाणं अप्प-बहुत्तं—

६४२. प०—ता एएसि णं चंदिम-सूरिय-गह-ताराणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

उ०—ता चंदा य, सूरा य एएणं दोवि तुल्ला,

सव्वत्थोवा णक्खत्ता,

संखिज्जगुणा गहा,

संखिज्जगुणा तारा[3] —सूरिय. पा. १८, सु. १००

ज्योतिष्कों का अल्प-बहुत्व—

६४२. प्र०—इन चन्द्र-सूर्य-ग्रह नक्षत्र और ताराओं में कौन किससे अल्प है, बहुत है, तुल्य है और विशेषाधिक है?

उ०—चन्द्र और सूर्य तुल्य है।

सबसे अल्प नक्षत्र है।

ग्रह संख्येय गुण है।

तारा संख्येय गुण है।

मंदरपव्वयाओ जोइसियाणं अंतरं—

६४३. प०—मंदरस्स णं भंते! पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए जोइसं चारं चरइ?

उ०—गोयमा! इक्कारसहिं इक्कवीसेहिं जोअणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरइ[4],

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १६४

मन्दर पर्वत से ज्योतिष्कों का अन्तर—

६४३. प्र०—हे भगवन्! मन्दरपर्वत से कितने अन्तर पर ज्योतिष्क गति करते हैं?

उ०—हे गौतम! इग्यारह सौ इकवीस योजन के अन्तर पर ज्योतिष्क गति करते हैं।

---

१ जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८५।

२ चंद. पा. १९ सु. १०१।

३ (क) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १७२।
(ख) चंद. पा. १८, सु. ९९।
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. २०६।

४ (क) जम्बुद्दीवे दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसे चारं चरंति। —सम. ११, सु. ३

(ख) प०—ता मंदरस्स पव्वतस्स केवतियं अबाधाए जोइसे चारं चरइ?
उ०—ता एक्कारस एक्कवीसे जोयणसते अबाधाए जोइसे चारं चरति। —सूरिय. पा. १८, सु. ९२

(ग) प०—जम्बुदीवे णं भंते! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ केवइयं अबाहाए जोइसं चारं चरति?
उ०—गोयमा! एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरति, एवं दक्खिणिल्लाओ पच्चत्थिमिल्लाओ, उत्तरिल्लाओ, चरिमंताओ एक्कारसहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरति।—जीवा. पडि. ३, उ. २ सु. १९५

(घ) इस प्रश्नोत्तर सूत्र में ज्योतिष्कों का जो अन्तर कहा गया है वह जम्बूद्वीप के मध्यभागवर्ति मन्दर (मेरु) पर्वत की अपेक्षा से ही कहा गया है।
इसी प्रकार धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीप के शेष चार मन्दर पर्वतों से भी इतने ही अन्तर पर ज्योतिष्क विमान हैं।

लोगंताओ जोइसियाणं अन्तरं—

९४४. प०—लोगंताओ णं भंते ! केवइआए अबाहाए जोइसे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एक्कारस एक्कारसेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते[1], —जंबु. वक्ख. ७, सु. १६४

लोकान्त से ज्योतिष्कों का अन्तर—

९४४. प्र०—हे भगवन् ! लोकान्त से कितने अन्तर पर ज्योतिष्क कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! लोकान्त से ग्यारह सौ ग्यारह योजन के अन्तर पर ज्योतिष्क कहे गये हैं।

चंदाइच्चाइणं भूमिभागाओ उड्ढत्तं—

९४५. प०—ता कहं ते उच्चत्ते आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तिओ पण्णत्ताओ तं जहा—

१. तत्थेगे एवमाहंसु—

ता एगं जोयणसहस्सं सूरे उड्ढं उच्चत्ते णं दिवड्ढं चंदे, एगे एवमाहंसु,

२. एगे पुण एवमाहंसु—

ता दो जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढातिज्जाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

३. एगे पुण एवमाहंसु—

ता तिन्नि जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धुट्ठाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

४. एगे पुण एवमाहंसु—

ता चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धपंचमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

चन्द्र-सूर्य आदि की भू-भाग से ऊँचाई—

९४५. प्र०—चन्द्र-सूर्य आदि की भूभाग से कितनी ऊँचाई कही गई है; सो कहें ?

उ०—इस सम्बन्ध में ये पच्चीस प्रतिपत्तियाँ कही गई हैं यथा—

(१) इनमें से कुछ पर-तीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य एक हजार योजन ऊँचाई पर है, चन्द्र डेढ हजार योजन ऊँचा है।

(२) कुछ पर-तीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य दो हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र ढाई हजार योजन ऊँचा है।

(३) कुछ पर-तीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य तीन हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साडे तीन हजार योजन ऊँचा है।

(४) कुछ पर-तीर्थिकों ने ऐसा कहा—

सूर्य चार हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साडे चार हजार योजन ऊँचा है।

---

१ (क) लोगंताओ णं एक्कारसहिं एक्कारेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते। —सम. ११, सु. २

(ख) जीवा. प. ३, सु. १९५।

(ग) प०—ता लोअंताओ णं केवइयं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते ?

उ०—ता एक्कारस एक्कारे जोयणसए अबाहाए जोइसे पण्णत्ते। —सूरिय. पा. १८ सु. ९२

(घ) लोकान्त से ग्यारह सौ ग्यारह योजन के अन्तर पर जो ज्योतिष्क हैं वे स्थिर ज्योतिष्क हैं, क्योंकि इस प्रश्नोत्तर सूत्र में ज्योतिष्कों की गति का कथन नहीं है। मनुष्य क्षेत्र के अन्तिम भाग से अर्थात् मनुष्य क्षेत्र के बाहर लोकान्त पर्यन्त स्थिर ज्योतिष्क हैं, मनुष्य क्षेत्र के बाहर लोकान्त पर्यन्त का क्षेत्र असंख्य योजन विस्तृत है, इसमें असंख्य स्थिर ज्योतिष्क हैं।

गाथाएँ—

अंतो मणुस्सखेत्ते, हवंति चारोवगा य उववण्णा।
पंचविहा जोइसिया [illegible] गहगणा य॥
[illegible] ठिया, चंदाइच्च-गह-तार-नक्खत्ता।
[illegible] अवट्ठिया ते मुणेयव्वा॥ —जीवा. प. ३, उ. २, सु. १७७ गा. २१, २२

५. एगे पुण एवमाहंसु—

ता पंच जोयणसहस्साइं सूरे उच्चत्तेणं, अद्धछट्ठाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

(५) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य पांच हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े पाँच हजार योजन ऊँचा है।

६. एगे पुण एवमाहंसु—

ता छ जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धसत्तमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

(६) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य छः हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े छः हजार योजन ऊँचा है।

७. एगे पुण एवमाहंसु—

ता सत्तजोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धट्ठमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

(७) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य सात हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े सात हजार योजन ऊँचा है।

८. एगे पुण एवमाहंसु—

ता अट्ठ जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धनवमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु,

(८) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य आठ हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े आठ हजार योजन ऊँचा है।

९. एगे पुण एवमाहंसु,

ता नवजोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धदसमाइं चंदे. एगे एवमाहंसु

(९) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य नौ हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े नौ हजार योजन ऊँचा है।

१०. एगे पुण एवमाहंसु—

ता दसजोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धएक्कारस चंदे, एगे एवमाहंसु,

(१०) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य दस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े दस हजार योजन ऊँचा है।

११. एगे पुण एवमाहंसु—

ता एक्कारस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धबारस चंदे, एगे एवमाहंसु,

(११) कुछ परतीर्थिकों ने ऐसा कहा है—

सूर्य इग्यारह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े इग्यारह हजार ऊँचा है।

एते णं अभिलावेणं णेतव्वं—

नीचे लिखे अभिलाप के अनुसार पच्चीसवीं प्रतिपत्ति पर्यन्त जानें—

१२. बारस सूरे, अद्धतेरस चंदे,

(१२) सूर्य बारह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े बाहर हजार योजन ऊँचा है।

१३. तेरस सूरे, अद्धचोद्दस चंदे,

(१३) सूर्य तेरह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े तेरह हजार योजन ऊँचा है।

१४. चोद्दस सूरे, अद्धपण्णरस चंदे,

(१४) सूर्य चौदह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े चौदह हजार योजन ऊँचा है।

१५. पण्णरस सूरे, अद्धसोलस चंदे,

(१५) सूर्य पन्द्रह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े पन्द्रह हजार योजन ऊँचा है।

१६. सोलस सूरे, अद्धसत्तरस चंदे,

(१६) सूर्य सोलह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े सोलह हजार योजन ऊँचा है।

१७. सत्तरस सूरे, अद्धअट्ठारस चंदे,

(१७) सूर्य सत्तरह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े सत्तरह हजार योजन ऊँचे हैं।

१८. अट्ठारस सूरे, अद्धएकोणवीस चंदे,

(१८) सूर्य अठारह हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साड़े अठारह हजार योजन ऊँचा है।

१९. एकोणवीसं सूरे, अद्धवीस चन्दे,

(१९) सूर्य उन्नीस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साडे उन्नीस हजार योजन ऊँचा है।

२०. वीसं सूरे, अद्धएक्कवीसं चन्दे,

(२०) सूर्य बीस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साडे वीस हजार योजन ऊँचा है।

२१. एक्कवीसं सूरे, अद्धबावीसं चन्दे,

(२१) सूर्य इक्कीस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साडे इक्कीस हजार योजन ऊँचा है।

२२. बावीसं सूरे, अद्धतेवीसं चन्दे,

(२२) सूर्य बाईस हजार योजन ऊँचा हैं, चन्द्र साडे बाईस हजार योजन ऊँचा है।

२३. तेवीसं सूरे, अद्धचउवीसं चन्दे,

(२३) सूर्य तेईस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साडे तेईस हजार योजन ऊँचा है।

२४. चउवीसं सूरे, अद्धपणवीसं चन्दे,

(२४) सूर्य चोवीस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साडे चोवीस हजार योजन ऊँचा है।

२५. एगे पुण एवमाहंसु—
ता पणवीसजोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धछव्वीसं चन्दे, एगे एवमाहंसु,

(२५) सूर्य पच्चीस हजार योजन ऊँचा है, चन्द्र साडे पच्चीस हजार योजन ऊँचा है।

वयं पुण एवं वदामो—

हम इस प्रकार कहते हैं—

ता इमीसे रयणप्पभापुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ, सत्तणउइ जोयणसए उड्ढं उपतित्ता हिट्ठिल्ले ताराविमाणे चारं चरति,

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अति सम-रमणीय भूभाग से सात सौ नव्वे योजन ऊपर-नीचे का तारा विमान चलता है।

अट्ठ जोयणसते उड्ढं उप्पतित्ता सूरविमाणे चारं चरति,

आठ सौ अस्सी योजन ऊपर चन्द्र विमान चलता है।

अट्ठअसीए जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता चंदविमाणे चारं चरति।

आठ सौ योजन ऊपर सूर्य विमान चलता है।

णवजोयणसताइं उड्ढं उप्पतित्ता उवरिं ताराविमाणे चारं चरति[1],

नव सौ योजन ऊपर तारा विमान संचार करता है।

हेट्ठिलातो ताराविमाणातो दसजोयणाइ उड्ढं उप्पइत्ता सूरविमाणा चारं चरंति।

नीचे के तारा विमान से दस योजन ऊपर सूर्य विमान विचरता है।

नउतिं जोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता चंदविमाणा चारं चरति।

नव्वे योजन ऊपर जाने पर चन्द्र विमान चलता है।

दसोत्तरं जोयणसतं उड्ढं उप्पइत्ता उवरिल्ले तारारूवे चारं चरति।

एक सौ दस योजन ऊपर तारा विचरता है।

सूरविमाणातो असीतिं जोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता चंदविमाणे चारं चरंति।

सूर्य विमान से अस्सी योजन ऊपर जाने पर चन्द्र विमान विचरता है।

जोयणसतं उड्ढं उप्पइत्ता उवरिल्ले तारारूवे चारं चरंति।

सौ योजन ऊपर तारा विचरण करता है।

---

१ (क) भग. श. १४, उ. ८, सु. ४।
(ख) सम. ९, सु. ३।
(ग) ठाण अ. ९, सु. ६७०।
(घ) सम. ११२, सु. ५।

चंदस्स गहाणं य जोग-गइकाल परूवणं—

९६३. ता जया णं चंदं गइसमावण्णं गहे गइसमावण्णे पुरत्थिमाए भागाए समासाएइ पुरत्थिमाए भागाए समासाइत्ता, चंदेणं सद्धि जोगं जोएइ, जोगं जोएत्ता जोगं अणुपरियट्टइ, जोगं अणुपरियट्टित्ता जोगं विप्पजहइ, विगयजोगी या वि भवइ।[1]

—सूरिय. पा. १५, सु. ८४

चन्द्र का ग्रह से योग युक्त होने पर उसकी गति का काल-प्ररूपण—

९६३. जब चन्द्र गति युक्त होता है तब पूर्वी भाग से ग्रह चन्द्र से योग करता है, योग करके परिभ्रमण करता है, परिभ्रमण करके योग का परित्याग करता है और योग-मुक्त होकर योग रहित हो जाता है।

सूरस्स-णक्खत्ताणं य जोग-गइकाल परूवणं—

९६४. १. ता जया णं सूरं गइसमावण्णं अभिईणक्खत्ते गइसमावण्णे पुरत्थिमाए भागाए समासाएइ, पुरत्थिमाए भागाए समासाइत्ता, चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धि जोगं जोएइ, जोगं जोएत्ता जोगं अणुपरियट्टइ, जोगं अणुपरियट्टित्ता जोगं विप्पजहइ, विगयजोगी या वि भवइ,

२-२७. एवं छ अहोरत्ता एक्कवीसं मुहुत्ता य, तेरस अहोरत्ता वारस मुहुत्ता य, वीसं अहोरत्ता तिण्णि मुहुत्ता य सव्वे भाणियव्वा जाव—

२८. ता जया णं सूरं गइसमावण्णं उत्तरासाढा णक्खत्ते गइसमावण्णे पुरत्थिमाए भागाए समासाएइ, पुरत्थिमाए भागाए समासाइत्ता वीसं अहोरत्ते तिण्णि च मुहुत्ते सूरेण सद्धि जोगं जोएइ, जोगं जोएत्ता जोगं अणुपरियट्टइ, जोगं अणुपरियट्टित्ता जोगं विप्पजहइ, विगयजोगी या वि भवइ।[2]

—सूरिय. पा. १५, सु. ८४

सूर्य का नक्षत्रों से योग युक्त होने पर उनकी गति का काल प्ररूपण—

९६४. (१) जब सूर्य गति युक्त होता है तब पूर्वी भाग से अभिजित नक्षत्र चार अहोरात्र और छः मुहूर्त पर्यन्त सूर्य से योग करता है, योग करके परिभ्रमण करता है, परिभ्रमण करके योग का परित्याग करता है और योग-मुक्त होकर योग रहित हो जाता है।

(२-२७) इस प्रकार छः अहोरात्र इक्कीस मुहूर्त, तेरह अहोरात्र बारह मुहूर्त और बीस अहोरात्र तीन मुहूर्त सभी नक्षत्रों का क्रमशः सूर्य के साथ योग कहना चाहिए—यावत्—

(२८) जब सूर्य गति युक्त होता है तब पूर्वी भाग से उत्तरापाढा नक्षत्र बीस अहोरात्र तीन मुहूर्त पर्यन्त सूर्य से योग करता है योग करके परिभ्रमण करता है और योग मुक्त होकर योगरहित हो जाता है।

सूरस्स गहाणं य जोग-गइकाल परूवणं—

९६५. ता जया णं सूरं गइसमावण्णं गहे गइसमावण्णे पुरत्थिमाए भागाए समासाएइ, पुरत्थिमाए भागाए समासाइत्ता सूरेण सद्धि जोगं जोएइ, जोगं जोएत्ता जोगं अणुपरियट्टइ, जोगं अणुपरियट्टित्ता जोगं विप्पजहइ विगयजोगी या वि भवइ।[2]

—सूरिय. पा. १५, सु. ८४

सूर्य का ग्रह से योग युक्त होने पर उसकी गति का काल प्ररूपण—

९६५. जब सूर्य गति युक्त होता है तब पूर्वी भाग से ग्रह सूर्य से योग करता है योग करके परिभ्रमण करता है परिभ्रमण करके योग का परित्याग करता है और योग मुक्त होकर योग रहित हो जाता है।

एगमेगे अहोरत्ते चन्द-सूर-णक्खत्ताणं मंडल चारं—

९६६. १. प०—ता एगमेगे णं अहोरत्ते णं चंदे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता एगं अद्धमंडलं चरइ एक्कतीसेहिं भागेहिं ऊणं णवहिं पण्णरसेहिं सएहिं अद्धमंडलं छेत्ता।

प्रत्येक अहोरात्र में चन्द्र सूर्य और नक्षत्रों की मण्डल गति—

९६६. (१) प्र०—प्रत्येक अहोरात्र में चन्द्र कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—एक अर्द्धमण्डल और अर्धमण्डल के पन्द्रह सौ नौ भागों में से इकतीस भाग कम पर्यन्त चन्द्र गति करता है।

---

१ चन्द. पा. १५, सु. ८४।

३ चन्द. पा. १५, सु. ८४।

२ चन्द. पा, १५, सु. ८४।

२. प०—ता एगमेगे णं अहोरत्ते णं सूरे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता एगं अद्धमंडलं चरइ।

३. प०—ता एगमेगे णं अहोरत्ते णं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता एगं अद्धमंडलं चरइ, दोहिं भागेहिं अहियं सत्तहिं बत्तीसेहिं सएहिं अद्धमडलं छेत्ता।[1]

—सूरिय. पा. १५, सु. ८६

(२) प्र०—प्रत्येक अहोरात्र में सूर्य कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—एक अर्द्धमण्डल पर्यन्त गति करता है।

(३) प्र०—प्रत्येक अहोरात्र में नक्षत्र कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—एक अर्द्ध मण्डल और अर्द्ध मण्डल के सात सौ बत्तीस भागों में से दो भाग अधिक नक्षत्र गति करता है।

एगमेगे मंडले चन्द-सूर-णक्खत्ताणं अहोरत्त चारं—

प्रत्येक मण्डल में चन्द्र-सूर्य और नक्षत्र कितने अहोरात्र गति करता है—

९६७. १. प०—ता एगमेगं मंडलं चंदे कतिहिं अहोरत्तेहिं चरइ ?

उ०—ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरइ एक्कतीसेहिं भाएहिं अहिएहिं चउहिं चोयालेहिं सएहिं राइदिएहिं छेत्ता।

२. प०—ता एगमेगं मंडलं सूरे कतिहिं अहोरत्तेहिं चरइ ?

उ०—ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरइ।

३. प०—ता एगमेगं मंडलं णक्खत्ते कतिहिं अहोरत्तेहिं चरइ ?

उ०—ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरइ, दोहिं भागेहिं ऊणेहिं तिहिं सत्तसट्ठेहिं सएहिं राइदिएहिं छेत्ता।[2]

—सूरिय. पा. १५, सु० ८६

९६७. (१) प्र०—प्रत्येक मण्डल को चन्द्र कितने अहोरात्र में पूर्ण रूप से पार करता है ?

उ०—दो अहोरात्र और एक अहोरात्र के चार सौ चुमालीस भागों में से इकतीस भाग अधिक में चन्द्र प्रत्येक मण्डल को पार करता है।

(२) प्र०—प्रत्येक मण्डल को सूर्य कितने अहोरात्र में पार करता है ?

उ०—दो अहोरात्र में प्रत्येक मण्डल को सूर्य पार करता है।

(३) प्र०—प्रत्येक मण्डल को नक्षत्र कितने अहोरात्र में पार करता है ?

उ०—दो अहोरात्र और एक अहोरात्र के तीन सौ सडसठ भागों में से दो भाग कम प्रत्येक मण्डल को नक्षत्र पार करता है।

एगमेगे जुगे चन्द-सूर-णक्खत्ताणं मंडल चारं—

प्रत्येक युग में चन्द्र-सूर्य और नक्षत्रों की मण्डल गति—

९६८. १. प०—ता जुगे णं चन्दे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता अट्ठचुल्लसीए मंडलसए चरइ।

२. प०—ता जुगे णं सूरे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता णव-पण्णरस मंडलसए चरइ।

३. प०—ता जुगे णं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता अट्ठारस पणतीसे दुभागमंडलसए चरइ।[3]

इच्चेसा मुहुत्तगई रिक्ख-उडुमास-राइंदिय-जुग मंडल पविभत्ति सिग्घगई वत्थु, आहिए त्तिबेमि।

—सूरिय. पा. १५, सु. ८६

९६८. (१) प्र०—प्रत्येक युग में चन्द्र कितने मण्डल गति करता है ?

उ०—आठ सौ चौरासी मण्डल पर्यन्त गति करता है।

(२) प्र०—प्रत्येक युग में सूर्य कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—पन्द्रह सौ नौ मण्डल गति करता है।

(३) प्र०—प्रत्येक युग में नक्षत्र कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—अठारह सौ पैंतीस अर्द्धमण्डल पर्यन्त नक्षत्र गति करता है।

यह मुहूर्त गति नक्षत्र-ऋतुमास-अहोरात्र-युग, मण्डल आदि की शीघ्र गति का अध्ययन कहा, ऐसा मैं कहता हूँ।

१ चन्द. पा. १५, सु. ८६।
२ चन्द. पा. १५, सु. ८६।
३ चन्द. पा. १५, सु. ८६।

चन्दमासे चन्दस्स सूरस्स णक्खत्तस्स य मण्डल चारं—

९६९. १. प०—ता चंदे णं मासे णं चन्दे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—चोद्दस चउभागाइं मंडलाइं चरइ। एगं च चउवीस-सयं भागं मंडलस्स।

२. प०—ता चंदे णं मासे णं सूरे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता पण्णरस चउभागूणाइं मंडलाइं चरइ। एगं च चउवीससयभागं मंडलस्स।

३. प०—ता चन्दे ण मासे णं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता पण्णरस चउभागूणाइं मंडलाइं चरइ। छच्च चउवीससयभागे मंडलस्स।[1]

—सूरिय. पा. १५, सु. ८५

आइच्चमासे चंदस्स, सूरस्स णक्खत्तस्स य मण्डल चारं—

९७०. १. प०—ता आइच्चे णं मासे णं चन्दे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता चोद्दस मंडलाइं चरइ, एक्कारस भागे मंडलस्स।

२. प०—ता आइच्चे णं मासे णं सूरे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता पण्णरस चउभागाहिगाइं मंडलाइं चरइ।

३. प०—ता आइच्चे णं मासे णं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता पण्णरस चउभागाहिगाइं मंडलाइं चरइ पंच-तीसं च चउवीससयभागे मंडलाइं चरइ।[2]

—सूरिय. पा. १५, सु. ८५

णक्खत्तमासे चंदस्स, सूरस्स, णक्खत्तस्स य मण्डल चारं—

९७१. १. प०—ता णक्खत्ते णं मासे णं चन्दे कइ मंडलाइं चरइ ?

चन्द्रमास में चन्द्र-सूर्य और नक्षत्रों की मण्डल गति-संख्या—

९६९. (१) प्र०—चन्द्रमास में चन्द्र कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—चौदह मण्डल और पन्द्रहवें मण्डल का चौथा भाग तथा मण्डल के एक सौ चौबीस भागों में से एक भाग पर्यन्त गति करता है।

(२) प्र०—चन्द्रमास में सूर्य कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—चौदह मण्डल पूर्ण पन्द्रहवें मण्डल का चौथा भाग कम और पन्द्रहवें मण्डल के एक सौ चौबीस भागों में से एक भाग पर्यन्त सूर्य गति करता है।

(३) प्र०—चन्द्रमास में नक्षत्र कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—चौदह मण्डल पूर्ण, पन्द्रहवें मण्डल का चौथा भाग कम और पन्द्रहवें मण्डल के एक सौ चौबीस भागों में से छः भाग पर्यन्त सूर्य गति करता है।

आदित्यमास में चन्द्र-सूर्य और नक्षत्रों की मण्डल गति संख्या—

९७०. (१) प्र०—आदित्यमास में चन्द्र कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—चौदह मण्डल पूर्ण और पन्द्रहवें मण्डल के इग्यारह भाग पर्यन्त चन्द्र गति करता है।

(२) प्र०—आदित्य मास में सूर्य कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—पन्द्रह मण्डल पूर्ण और सोलहवें मण्डल के चौथे भाग पर्यन्त सूर्य गति करता है।

(३) प्र०—आदित्यमास में नक्षत्र कितने मण्डल पर्यन्त गति पर्यन्त करता है ?

उ०—पन्द्रह मण्डल पूर्ण सोलहवें मण्डल का चौथा भाग और सोलहवें मण्डल के एक सौ चौबीस भागों में से पैंतीस भाग पर्यन्त गति करता है।

नक्षत्रमास में चन्द्र-सूर्य और नक्षत्रों की मण्डल गति संख्या—

९७१. (१) प्र०—नक्षत्रमास में चन्द्र कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

---

१ चन्द. पा. १५, सु. ८५।

२ चन्द. पा. १५, सु. ८५।

उ०—ता तेरस मंडलाइं चरइ। तेरस य सत्तट्ठिभागे मंडलस्स।

२. प०—ता णक्खत्ते णं मासे णं सूरे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता तेरस मंडलाइं चरइ। चोत्तालीसं च सत्तट्ठिभागे मंडलस्स।

३. प०—ता णक्खत्ते णं मासे मं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता तेरस मंडलाइं चरइ। अद्ध सेतालीसं च सत्तट्ठिभागे मंडलस्स।[1] —सूरिय. पा. १५, सु. ८५

उ०—तेरह मण्डल और एक मण्डल के सड़सठ भागों में से तेरह भाग पर्यन्त गति करता है।

(२) प्र०—नक्षत्रमास में सूर्य कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—तेरह मण्डल और एक मण्डल के सड़सठ भागों में से चुमालीस भाग पर्यन्त गति करता है।

(३) प्र०—नक्षत्र मास में नक्षत्र कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—तेरह मण्डल और एक मण्डल के सड़सठ भागों में से साढ़े सेंतालीस भाग पर्यन्त गति करता है।

उडुमासे चंदस्स सूरस्स णक्खत्तमासस्स य मण्डल चारं—

९७२. १. प०—ता उडुणा मासे णं चन्दे कइ मंडलाइं चरइं ?

उ०—ता चोद्दस मंडलाइं चरइ तीसं च एगट्ठिभागे मंडलस्स।

२. प०—ता उडुणा मासे णं सूरे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता पण्णरस मंडलाइं चरइ।

३. प०—ता उडुणा मासे णं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता पण्णरस मंडलाइं चरइ। पंच य बावीससय भागे मंडलस्स।[2] —सूरिय, पा. १५, सु. ८५

ऋतुमास में चन्द्र-सूर्य और नक्षत्रों की मण्डल गति संख्या—

९७२. (१) प्र०—ऋतुमास में चन्द्र कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—चौदह मण्डल पूर्ण और मण्डल के इगसठ भागों में से तीस भाग पर्यन्त चन्द्र गति करता है।

(२) प्र०—ऋतुमास में सूर्य कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—पन्द्रह मण्डल पूर्ण पर्यन्त सूर्य गति करता है ?

(३) प्र०—ऋतुमास में नक्षत्र कितने मण्डल पर्यन्त गति करता है ?

उ०—पन्द्रह मण्डल पूर्ण और सोलहवें मण्डल के एक सौ बावीस भागों में से पाँच भाग पर्यन्त नक्षत्र गति करता है।

अभिवड्ढियमासे चंदस्स सूरस्स णक्खत्तस्स य मंडल चारं—

९७३. १. प०—ता अभिवड्ढिए णं मासे णं चन्दे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता पण्णरस मंडलाइं चरइ, तेसीइं छलसीयभागे मंडलस्स।

२. प०—ता अभिवड्ढिए णं मासे णं सूरे कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता सोलस मंडलाइं चरइ, तिहिं भागेहिं ऊणगाइं दोहिं अडयालेहिं सएहिं मंडलं छित्ता।

३. प०—ता अभिवड्ढिए णं मासे णं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ ?

उ०—ता सोलसमंडलाइं चरइ। सेयालीसएहिं भागेहिं अहियाहिं चोद्दसहिं अट्ठासीएहिं मंडलं छेत्ता।[3] —सूरिय. पा. १५, सु. ८५

अभिवर्धित मास में चन्द्र-सूर्य और नक्षत्रों की मण्डल गति संख्या—

९७३. (१) प्र०—अभिवर्धितमास में चन्द्र कितने मण्डल गति करता है ?

उ०—पन्द्रह मण्डल पूर्ण सोलहवें मण्डल के छियासी भागों में से तियासी भाग पर्यन्त चन्द्र गति करता है।

(२) प्र०—अभिवर्धित मास में सूर्य कितने मंडल गति करता है ?

उ०—सोलह मंडल पूर्ण, सत्रहवें मंडल के दो सौ अड़तालीस भागों में से तीन भाग कम सूर्य गति करता है।

(३) प्र०—अभिवर्धित मास में नक्षत्र कितने मंडल गति करता है ?

उ०—सोलह मंडल पूर्ण सत्रहवें मंडल के चौदह सौ अट्ठासी भागों में से सैंतालीस भाग अधिक पर्यन्त नक्षत्र गति करता है।

---

१ चन्द. पा. १५, सु. ८५।

२ चन्द. पा. १५, सु. ८५।

३ चन्द. पा. १५, सु. ८५।

चन्द्र वर्णन

ससी सद्दस्स विसिट्ठऽत्थं—

६७४. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—चन्दे ससी चन्दे ससी ?

उ०—गोयमा ! चन्दस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो मियंके विमाणे, कंता देवा कंताओ देवीओ, कंताइं आसण-सयण-खंभ-भंडमत्तोवगरणाइं ।

अप्पणा वि य णं चन्दे जोतिसिंदे जोतिसराया सोमे कंते सुभए पियदंसणे सुरूवे ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"चन्दे ससी चन्दे ससी ।"[1] —भग. स. १२, उ. ६, सु. ४

शशि शब्द का विशिष्टार्थ—

६७४. प्र०—हे भगवन् ! चन्द्र को "शशी" किस अभिप्राय से कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र के मृगाङ्क विमान में मनोहर देव, मनोहर देवियाँ, तथा मनोज्ञ आसन-शयन-स्तम्भ भाण्ड-पात्र आदि उपकरण हैं, और ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र स्वयं भी सौम्य, कान्त, सुभग, प्रियदर्शन एवं सुरूप हैं ।

हे गौतम ! इस कारण से चन्द्र को "शशी" (या सश्री) कहा जाता है ।

जंबुद्दीवे चंद उदयऽत्थमण-परूवणा—

६७५. प०—(क) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे चंदिमा—

उदीण-पादीणमुग्गच्छ पादीणं-दाहिणमागच्छंति ?

(ख) पादीणं-दाहिणमुग्गच्छ दाहिण-पादीणमागच्छंति ?

(ग) दाहिण-पादीणमुग्गच्छ पादीण-उदीणमागच्छंति ?

(घ) पादीणं-उदीणमुग्गच्छ उदीणं-पादीणमागच्छंति ?

उ०—(क-घ) हंता गोयमा ! जबुद्दीवे णं दीवे चंदिमा—

उदीणं-पादीणमुग्गच्छ पादीणं-दाहिणमागच्छंति, -जाव-पादीणं-उदीणमुग्गच्छ उदीण पादीण-मागच्छंति ।[2] —भग. स. ५, उ. १०, सु. १

जम्बूद्वीप में चन्द्रमाओं का उदयास्त प्ररूपण—

६७५. प्र०—(क) हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में चन्द्र—

ईशानकोण में उदय होकर अग्निकोण में अस्त होते हैं ?

(ख) अग्निकोण में उदय होकर नैऋत्यकोण में अस्त होते हैं ?

(ग) नैऋत्यकोण में उदय होकर वायव्यकोण में अस्त होते हैं ?

(घ) वायव्यकोण में उदय होकर ईशानकोण में अस्त होते हैं ?

उ०—(क-घ) हाँ गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में चन्द्र—

ईशानकोण में उदय होकर अग्निकोण में अस्त होते हैं—यावत्—वायव्यकोण में उदय होकर ईशानकोण में अस्त होते हैं ।

लवणसमुद्द-धायइसंड-कालोयसमुद्द-पुक्खरद्धेसु चंद-उदयऽत्थमण-परूवणा—

"जच्चेव जंबुद्दीवस्स वत्तवता भणिता, सच्चेव सव्वा लवणसमुद्दपभिइ पुक्खरद्धपज्जवसाणा वि भाणितव्वा ।"

—भग. स. ५, उ. १० का संक्षिप्त पूरक पाठ

लवणसमुद्र धातकीखण्ड कालोदसमुद्र-पुष्करार्ध में चन्द्र-माओं के उदयास्त का प्ररूपण—

"जो जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में कहने योग्य कहा गया है वही लवणसमुद्र आदि से पुष्करार्धद्वीप पर्यन्त के सम्बन्ध में कहना चाहिए ।

---

१ (क) सूरिय. पा. २०, सु. १०८ ।
(ख) चन्द. पा. २० सु. १०५ ।

२ (क) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १५० ।
(ख) चन्द. पा. ८ सु. २६ ।
(ग) सूरिय. पा. ८, सु. २६ ।

चंदस्स परिवुड्ढि-परिहाणी—

६७६. गाहाओ—

केणइ वड्ढइ चन्दो ? परिहाणी केण हुन्ति चन्दस्स ?
कालो वा जोण्हो वा, केणऽणुभावेण चन्दस्स ?

किण्हं राहु विमाणं, णिच्चं चंदेण होइ अविरहियं ।
चउरंगुलमसंपत्तं, हिच्चा चन्दस्स तं चरइ ॥

बावट्ठिं बावट्ठिं, दिवसे दिवसे तु सुक्कपक्खस्स ।
जं परिवड्ढइ चन्दो, खवेइ तं चेव कालेणं ॥[1]

पण्णरसइ भागेण य चन्दे पण्णरसमेव तं वरइ ।
पण्णरसइ भागेण य, पुणो वि तं चेवऽवक्कमइ ॥[2]

एवं वड्ढइ चन्दो, परिहाणी एवं होइ चन्दस्स ।[3]
कालो वा जोण्हो वा, एवंऽणुभावेण चन्दस्स ॥[4]

—सूरिय. पा. १९, सु. १००

चन्द्र की हानि-वृद्धि—

६७६. गाथार्थ—

प्र०—चन्द्र की हानि किसके निमित्त से होती है ? चन्द्र की वृद्धि किसके निमित्त से होती है ? चन्द्र का प्रभास काल किसके निमित्त से घटता बढ़ता है ? और चन्द्र की ज्योत्सना किसके निमित्त से घटती बढ़ती है ?

उ०—राहु का कृष्ण विमान चन्द्र विमान का स्पर्श किए चार अंगुल छोड़कर नीचे नित्य निरन्तर गति करता है।

उ०—शुक्ल पक्ष में चन्द्र का प्रतिदिन बासठवां भाग (राहु से अनावृत्त होकर) बढ़ता जाता है और कृष्ण पक्ष में चन्द्र का बासठवाँ भाग (राहु से आवृत्त होकर) घटता जाता है।

पन्द्रह दिन चन्द्र के पन्द्रह भाग क्रमशः राहु के पन्द्रह भागों से अनावृत होते रहते हैं।

पन्द्रह दिन चन्द्र के पन्द्रह भाग क्रमशः राहु के पन्द्रह भागों से आवृत होते रहते हैं।

इस प्रकार चन्द्र की वृद्धि और हानि प्रतिभासित होती है और इसी कारण से चन्द्र का कृष्ण पक्ष तथा शुक्ल पक्ष होता है।

---

१ (क) सम. स. ६२, सु. ३।
(ख) "बावट्ठि" मित्यादि, इह द्वाषष्टिभागीकृतस्यचन्द्रविमानस्य द्वौ भागावुपरितनावपाकृत्य शेषस्य पंचदशभागे हृते ये चत्वारो भागा लभ्यन्ते, ते द्वाषष्टिशब्देनोच्यन्ते, "अवयवे समुदायोपचारात्" एतच्चव्याख्यानम् ।
अस्या एव गाथाया व्याख्याने जीवाभिगम चूर्णि—
"चन्द्रविमानं द्वाषष्टिभागी क्रियते, ततः पंचदशभिर्भागो ह्रियते, तत्र चत्वारो भागा द्वाषष्टिभागानां पंचदशभागेन लभ्यन्ते शेषौ द्वौ भागौ, एतावद् दिने दिने शुक्लपक्षस्य राहुणा मुच्यते"
"यत् समवायांग सूत्रे उक्तम्"—सुक्कपक्खस्स दिवसे दिवसे चन्दो बावट्ठि भागे परिवड्ढइ, त्ति तद्येवंमेव व्याख्येयम् ।
"शुक्लपक्षस्य दिवसे दिवसे द्वाषष्टिभागसत्कान् चतुरश्चतुरो भागान् परिवर्द्धति" ।
"काले-कृष्णपक्षे दिवसे दिवसे तानेव द्वाषष्टिभागसत्कान् चतुरश्चतुरो भागान् क्षपयति, परिहापयति" ।

२ "पण्णरस" इत्यादि·········
कृष्ण पक्षे प्रतिपद् आरम्यालीयेन पंचदशेन भागेन प्रतिदिवसमेकेकं पंचदशभागमुपरितनभागादारभ्यावृणोति ।
शुक्लपक्षे तु प्रतिपद् आरम्भ तेनैव क्रमेण प्रतिदिवसमेकैकं पंच दशभागं प्रकटीकरोति ।
तेन जगति चन्द्रमंडल वृद्धि-हानि प्रतिभासेते,
स्वरूपतः पुनश्चन्द्रमण्डलावस्थितमेव ।

३ "एवं वड्ढइ" इत्यादि,
एवं—राहुविमानेन प्रतिदिवसं क्रमेणानावरणतो वर्द्धते, वर्द्धमानःप्रतिभासते चन्द्रः एव राहुविमानेन प्रतिदिवसं क्रमेणावरण-करणतः प्रतिहानिःप्रतिभासो भवति चन्द्रस्य विषये ।
"एतेनैनानुभावेन कारणेन एकःपक्षःकालःकृष्णो भवति,
यत्र चन्द्रस्य परिहानिः प्रतिभासते ।
एकन्तु ज्योत्स्नः शुक्लो यत्र चन्द्रविषयो वृद्धिप्रतिभासः"

४ (क) जीवा. प. ३, उ. २, सु. १७७ । (ख) चन्द. पा. १९ सु. १०० ।

चंदमसो वड्ढोऽवड्ढी—

६७७. प०—ता कहं ते चंदमसो वड्ढोऽवड्ढो ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता अट्ठ पंचासीते मुहुत्तसते तीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स ।

ता दोसिणापक्खाओ णं अंधगारपक्खं अयमाणे चंदे चत्तारि बायालमुहुत्तसए । छत्तालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाइं चन्दे रज्जइ,[1] तं जहा—पढमाए पढमं भागं वितियाए वितियं भागं-जाव-पण्णरसीए पण्णरसमं भागं ।

चरिमसमए चंदे रत्ते भवइ । अवसेसे समए चंदे रत्ते य विरत्ते य भवइ । इयण्णं अमावासा, एत्थ णं पढमे पव्वे अमावासे ता अंधगार पक्खो ।

ता णं दोसिणापक्खं अयमाणे चंदे चत्तारे बायाले मुहुत्तसए छत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स जाइं चंदे विरज्जइ,

तं जहा—पढमाए पढमं भागं वितियाए वितियं भाग -जाव-पण्णरसीए पण्णरसमं भागं,

चरिमसमए चंदे विरत्ते भवइ,

अवसेसे समए रत्ते य विरत्ते य भवइ ।

इयण्णं पुण्णमासिणी एत्थ णं दोच्चे पव्वे पुण्णमासिणी, ता दोसिणा पक्खो ।[2]

—सूरिय. पा. १३, सु० ७६

चन्द्र की वृद्धि-हानि—

६७७. प्र०—चन्द्र की वृद्धि-हानि किस प्रकार होती है ? कहें ।

उ०—आठ सौ पिच्यासी मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से तीस भाग तक चन्द्र की वृद्धि-हानि होती रहती है ।

शुक्ल पक्ष से कृष्ण पक्ष की ओर आता हुआ चन्द्र चार सौ बियालीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से छियालीस भाग तक राहु से रक्त (आच्छादित) रहता है. यथा-प्रतिपदा को एक भाग, द्वितीया को दो भाग—यावत्—पन्द्रहवीं को पन्द्रह भाग ।

पन्द्रहवीं के अन्तिम समय में चन्द्र राहु से पूर्ण रक्त रहता है, शेष समयों में चन्द्र राहु से रक्त या विरक्त भी रहता है । यह अमावस्या है । यह प्रथम पर्व अमावस्या का है । यह कृष्ण पक्ष है ।

कृष्ण पक्ष से शुक्ल पक्ष में जाता हुआ चन्द्र चार सौ बियालीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से छियालीस भाग तक राहु से विरक्त (अनाच्छादित) रहता है ।

यथा—प्रतिपदा को एक भाग, द्वितीया को दो भाग—यावत्—पन्द्रहवीं को पन्द्रह भाग ।

पन्द्रहवीं के अन्तिम समय में चन्द्र राहु से सर्वथा विरक्त रहता है ।

अवशेष समयों में रक्त और विरक्त भी रहता है ।

यह पूर्णमासी है, यह दूसरा पर्व पूर्णमासी का है, यह शुक्ल पक्ष है ।

विवेचन—

एक चन्द्रमन्डल के ९३१ भाग कल्पित हैं । उनमें से एक भाग अमावस्या की रात्रि में भी नित्य राहु से अनावृत रहता है । अतः उस एक भाग को छोड़कर शेष ९३० भागों में से शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन बासठ बासठ भाग चन्द्रमा बढ़ता रहता है । अर्थात् चन्द्रमा नित्य राहु से अनावृत होता रहता है । इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा प्रतिदिन बासठ बासठ भाग घटता रहता है । अर्थात् चन्द्रमा नित्य राहु से आवृत होता रहता है ।

दोसिणा अंधयारस्स य बहुत्त कारणं—

६७८. (क) १. प०—ता कता ते दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता दोसिणापक्खे णं दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा,

चन्द्रिका और अन्धकार आधिक्य के कारण—

६७८. (१) प्र०—(क) चन्द्रिका कब अधिक कही गई है ?

उ०—शुक्लपक्ष में चन्द्रिका अधिक कही गई है ।

---

1. सम. ६२ सु. ३ ।
2. (क) चन्द. पा. १३, सु. ७६ । (ख) जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. १७७ ।

२. प०—ता कहं ते दोसिणापक्खे णं दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता अंधकारपक्खाओ णं दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा,

३. प०—ता कहं ते अंधकारपक्खाओ णं दोसिणापक्खे दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता अंधकारपक्खाओ णं दोसिणापक्खं अयमाणे चन्दे चत्तारि बायाले मुहुत्तसते छत्तालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाइं चन्दे विरज्जति, तं जहा—पढमाए पढमं भागं वितियाए वितियं भागं-जाव-पण्णरसीए पण्णरसं भागं,

एवं खलु अंधकारपक्खाओ णं दोसिणापक्खे दोसिणा बहू आहितात्ति वदेज्जा,

४. प०—ता केवतिया णं दोसिणापक्खे दोसिणा बहू आहितात्ति वदेज्जा ?

उ०—ता परित्ता असंखेज्जा भागा,

(ख) १. प०—ता कता ते अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता अंधकारपक्खे णं अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा,

२. प०—ता कहं ते अंधकारपक्खे णं अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता दोसिणापक्खाओ अंधकारपक्खे णं अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा,

३. प०—ता कहं ते दोसिणापक्खाओ अंधकारपक्खेणं अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता दोसिणापक्खाओ णं अंधकारपक्खं अयमाणे चंदे चत्तारि बायाले मुहुत्तसते छत्तालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाइं चन्दे रज्जति, तं जहा—पढमाए पढमं भागं वितियाए वितियं भागं-जाव-पण्णरसं भागं,

एवं खलु दोसिणापक्खाओ ण अंधकारपक्खे अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा,

४. प०—ता केवतिए णं अंधकारपक्खे अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा ?

उ०—परित्ते असंखेज्ज भागे,[1]

—सूरिय. पा. १४, सु. ८२

(२) प्र०—शुक्लपक्ष में चन्द्रिका अधिक क्यों कहीं गई है ?

उ०—अन्धकार पक्ष से (शुक्लपक्ष की) चन्द्रिका अधिक कही गई है।

(३) प्र०—अन्धकार पक्ष से शुक्ल पक्ष में चन्द्रिका अधिक क्यों कही गई है ?

उ०—अन्धकार पक्ष से शुक्ल पक्ष में आता हुआ चन्द्र चार सौ बियालीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से छियालीस भाग जितने समय तक नित्यराहु से अनावृत रहता है यथा—प्रतिपदा को एक भाग, द्वितीया को दो भाग—यावत् पन्द्रहवीं (पूर्णिमा) को पन्द्रह भाग।

इस प्रकार अन्धकार पक्ष से शुक्लपक्ष में चन्द्रिका अधिक रहती है।

(४) प्र०—शुक्लपक्ष में चन्द्रिका कितनी अधिक कही गई है ?

उ०—परिमित असंख्य भाग।

(१) प्र०—(ख) अन्धकार कब अधिक कहा गया है ?

उ०—अन्धकार कृष्णपक्ष में अधिक कहा गया है।

(२) प्र०—अन्धकार पक्ष में अन्धकार अधिक क्यों कहा गया है ?

उ०—शुक्लपक्ष से कृष्णपक्ष में अन्धकार अधिक कहा गया है।

(३) प्र०—शुक्ल से अन्धकार पक्ष में अन्धकार अधिक क्यों कहा गया है ?

उ०—शुक्ल पक्ष से अन्धकार पक्ष में आता हुआ चन्द्र चार सौ बियालीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से छियालीस भाग जितने समय तक नित्य राहु से आवृत होता रहता है, यथा—प्रतिपदा को एक भाग, द्वितीया को दो भाग—यावत्—पन्द्रहवीं (अमावस्या) को पन्द्रह भाग।

इस प्रकार शुक्लपक्ष से अन्धकार पक्ष में अन्धकार अधिक कहा गया है।

(४) प्र०—अन्धकार पक्ष में अन्धकार कितना अधिक कहा गया है ?

उ०—परिमित असंख्य भाग।

---

१ (क) चन्द. पा. १४, सु. ८२।

(ख) "सूर्यप्रज्ञप्ति प्राभृत १३, सूत्र ७९ और सूर्यप्रज्ञप्ति प्राभृत १४ सूत्र ८२" इन दोनों सूत्रों का फलितार्थ समान है। अन्तर इतना ही है कि सूत्र ७९ में "चन्द्र की हानि-वृद्धि" का कथन है। सूत्र ८२ में "चन्द्रिका तथा अन्धकार की अधिकता" का कथन है। किन्तु चन्द्र की हानि-वृद्धि से ही चन्द्रिका एवं अन्धकार की अधिकता होती है।

चंदमण्डल संखा—

६७६. प०—ता कति ते चंदमंडला पण्णत्ता ?

उ०—ता पण्णरस चंदमंडला पण्णत्ता,[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु० ११, सु० ४५

चन्द्रमण्डलों की संख्या—

६७६. प्र०—चन्द्रमंडल कितने कहे गये हैं ?

उ०—पन्द्रह चन्द्रमंडल कहे गये हैं।

चंदमंडलस्स पमाण —

६८०. प०—चंदमंडले णं भंते !

केवइयं आयाम-विक्खंभेणं ?

केवइयं परिक्खेवेणं ?

केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! छप्पन्नं एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयाम-विक्खंभेणं।

तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं।

अट्ठावीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते।[2]

—जंबु० वक्ख-७, सु० १४५

चन्द्रमण्डल का प्रमाण—

६८०. प्र०—हे भगवन् ! चन्द्रमंडल का—

आयाम-विष्कम्भ कितना कहा गया है ?

परिधि कितनी कही गई है ?

और बाहल्य (मोटाई) कितना कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! एक योजन के इकसठ भागों में से छप्पन भाग जितना आयाम-विष्कम्भ कहा गया है।

इससे कुछ अधिक तीन गुणी परिधि कही गई है।

एक योजन के इकसठ भागों में से अठावीस भाग जितना बाहल्य कहा गया है।

पण्णरस-चंदमंडलाणं ओगाहणखेत्त—

६८१. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयं ओगाहित्ता केवइया चंदमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे असीयं जोयणसयं ओगाहित्ता एत्थ णं पंच चंदमंडला पण्णत्ता।

प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइयं ओगाहित्ता। केवइया चंदमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसाइं जोयणसयाइं ओगाहित्ता। एत्थ णं दस चंदमंडला पण्णत्ता।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे। लवणे य पन्नरस चंदमंडला भवंतीतिमक्खायं।

—जंबु० वक्ख० ७, सु० १४२

पन्द्रह चन्द्रमंडलों का अवगाहन क्षेत्र—

६८१. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में कितना अवगाहन करने पर कितने चन्द्रमंडल कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में एक सौ अस्सी योजन अवगाहन करने पर पाँच चन्द्रमंडल कहे गये हैं।

प्र०—हे भगवन् ! लवणसमुद्र में कितना अवगाहन करने पर कितने चन्द्रमंडल कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! लवणसमुद्र में तीन सौ तीस योजन अवगाहन करने पर दस चन्द्रमंडल कहे गये हैं।

इस प्रकार पूर्वापर के मिलाकर जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र में पन्द्रह चन्द्रमंडल कहे गये हैं।

पत्तेयं चन्दमण्डलस्स अंतरं—

६८२. प०—चंदमंडलस्स णं भंते ! चंदमंडलस्स केवइआए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणतीसं पणतीसं जोयणाइं तीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स। एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता। चत्तारि चुण्णिआभाए चंदमंडलस्स चंदमंडलस्स अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। —जंबु. वक्ख. ७, सु. १४४

प्रत्येक चन्द्रमंडल का अन्तर—

६८२. प्र०—हे भगवन् ! एक चन्द्रमंडल से दूसरे चन्द्रमंडल का व्यवधान रहित कितना अन्तर कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! पैंतीस योजन तथा एक योजन के इकसठ भागों में से तीस भाग और एक भाग के सात भागों में से चार चूर्णिका भाग जितना एक चन्द्रमंडल से दूसरे चन्द्रमंडल का व्यवधान रहित अन्तर कहा गया है।

---

1 (क) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १४२। (ख) चन्द. पा. १० पाहु. ११ सु. ४५।

2 इस सूत्र से यह स्पष्ट है कि चन्द्र विमान और चन्द्र मण्डल एक ही है।

सव्वब्भंतर-बाहिर-चंदमण्डलाणं अन्तरं—

९८३. प०—सव्वब्भंतराओ णं भंते ! चंदमंडलाओ णं केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरे चंदमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पंचदसुत्तरे जोयणसए अबाहाए सव्वबाहिरए चंदमंडले पण्णत्ते।[1] —जंबु. वक्ख. ७, सु. १४३

सर्वआभ्यंतर और सर्वबाह्य चन्द्रमंडलों का अन्तर—

९८३. प्र०—हे भगवन् ! सर्व आभ्यन्तर चन्द्रमंडल से सर्वबाह्य चन्द्रमंडल व्यवधान रहित कितनी दूरी पर कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! सर्व आभ्यन्तर से सर्वबाह्य चन्द्रमंडल व्यवधान रहित पाँच सौ दस योजन की दूरी पर कहा गया है।

मंदरपव्वयाओ सव्वब्भंतर-बाहिर-चन्दमण्डलाणं अबाहा अन्तरे—

९८४. १. प०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए सव्वब्भंतरे चंदमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोयणसए अबाहाए सव्वब्भंतरे चंदमंडले पण्णत्ते

२. प०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स केवइयाए अबाहाए अब्भंतराणंतरे चंदमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य छप्पण्णे जोयणसए। पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स। एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए अबाहाए अब्भंतराणंतरे[2] चंदमंडले पण्णत्ते ?

३. प०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए अब्भंतर तच्चे चंदमण्डले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य बाणउए जोयणसए एगावण्णं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स। एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता। एगं चुण्णिआभागं अबाहाए अब्भंतर तच्चे चंदमंडले पण्णत्ते।

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चंदे तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलसंकममाणे संकममाणे छत्तीसं छत्तीसं जोयणाइं पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स। एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता। चत्तारि चुण्णिआभाए एगमेगे मंडले अबाहाए वुड्ढि अभिवड्ढेमाणे अभिवड्ढेमाणे सव्वबाहिरं चंदमण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

मन्दर पर्वत से सर्व आभ्यन्तर और सर्व बाह्य चन्द्रमंडलों का व्यवधान रहित अन्तर—

९८४. (१) प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत से व्यवधान रहित कितनी दूरी पर सर्व आभ्यन्तर चन्द्रमंडल कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! मन्दर पर्वत से व्यवधान रहित चम्मालीस हजार आठ सौ बीस योजन की दूरी पर सर्वआभ्यन्तर चन्द्रमंडल कहा गया है।

(२) प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नाम द्वीप में मन्दर पर्वत से व्यवधान रहित कितनी दूरी पर सर्व आभ्यन्तर चन्द्रमंडल से "अनन्तर चन्द्रमंडल" कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! (मन्दर पर्वत से व्यवधान रहित) चम्मालीस हजार आठ सौ छप्पन योजन तथा एक योजन के इकसठ भागों में से पच्चीस भाग और एक भाग के सात भागों में से चार चूर्णिका भाग जितनी दूरी पर सर्व आभ्यन्तर चन्द्रमंडल से "अनन्तर चन्द्रमंडल" कहा गया है।

(३) प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत में व्यवधान रहित कितनी दूरी पर सर्व आभ्यन्तर चन्द्रमंडल से तृतीय चन्द्रमंडल कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! मन्दर पर्वत से व्यवधान रहित चुम्मालीस हजार आठ सौ बाणवे योजन एक योजन के इगसठ भागों में से इक्कावन भाग और एक भाग के सात भागों में एक चूर्णिका भाग कितनी दूरी पर आभ्यन्तर चन्द्रमंडल से तृतीय चन्द्रमंडल कहा गया है।

इस प्रकार इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र एक चन्द्रमंडल से अनन्तर चन्द्रमंडल की ओर बढ़ता बढ़ता व्यवधान रहित छत्तीस छत्तीस योजन एक योजन के इकसठ भागों में से पच्चीस भाग एक भाग के सात भागों में से चार चूर्णिका भाग जितनी दूरी की प्रत्येक चन्द्रमंडल में वृद्धि करता करता सर्व बाह्य चन्द्रमंडल की ओर बढ़ता हुआ गति करता है।

---

१ जम्बू वक्ष. ७, सु. १४२ के अनुसार जम्बूद्वीप में एक सौ अस्सी योजन अवगाहन करने पर पाँच चन्द्रमंडल हैं और लवणसमुद्र में तीन सौ तीस योजन अवगाहन करने पर दस चन्द्रमंडल हैं, अतः एक सौ अस्सी और तीन सौ तीस—इन दोनों संख्याओं को संयुक्त करने पर पाँच सौ दस योजन होते हैं।

२ आभ्यंतरानन्तर—अर्थात् आभ्यंतर के बाद का दूसरा।

१. प०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए सव्वबाहिरे चंदमण्डले पण्णत्ते ?

(१) प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर पर्वत से व्यवधान रहित कितनी दूरी पर सर्व बाह्य चन्द्रमडल कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोयणसहस्साइं तिण्णि अ तीसे जोयणसए अबाहाए सव्वबाहिरए चंदमण्डले पण्णत्ते।

उ०—हे गौतम ! मन्दर पर्वत से व्यवधान रहित पैंतालीस हजार तीन सौ तीस योजन की दूरी पर सर्वबाह्य चन्द्रमंडल कहा गया है।

२. प०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए बाहिराणंतरे चंदमण्डले पण्णत्ते ?

(२) प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर पर्वत से व्यवधान रहित कितनी दूरी पर सर्व बाह्य चन्द्रमंडल से अनन्तर चन्द्रमंडल कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोयणसहस्साइं दोण्णि य तेणउए जोयणसए। पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता तिण्णि चुण्णिया भाए अबाहाए बाहिराणंतरे चंदमण्डले पण्णत्ते।

उ०—हे गौतम ! मन्दर पर्वत से व्यवधान रहित पैंतालीस हजार दो सौ तिरानवे योजन एक योजन के इगसठ भागों में से पैंतीस भाग एक भाग के सात भागों में से तीन चूर्णिका भाग जितनी दूरी पर सर्व बाह्य चन्द्रमंडल से अनन्तर का चन्द्रमंडल कहा गया है।

३. प०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए बाहिरतच्चे चंदमण्डले पण्णत्ते ?

(३) हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर पर्वत से व्यवधान रहित कितनी दूरी पर सर्व बाह्य चन्द्रमंडल से तृतीय चन्द्रमंडल कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोयणसहस्साइं दोण्णि अ सत्तावण्णे जोयणसए णव य एगसट्ठिभाए जोयणस्स। एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता। छ चुण्णिआभाए अबाहाए बाहिरतच्चे चंदमण्डले पण्णत्ते।

उ०—हे गौतम ! मन्दर पर्वत से व्यवधान रहित पैंतालीस हजार दो सौ सत्तावन योजन एक योजन के इगसठ भागों में से नौ भाग और एक भाग के सात भागों में से छः चूर्णिका भाग जितनी दूरी पर सर्व बाह्य चन्द्रमंडल से तृतीय चन्द्रमंडल कहा गया है।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे चंदे तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकममाणे छत्तीसं छत्तीसं जोयणाइं। पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए एगमेगे मण्डले अबाहाए वुड्ढिं निवुड्ढेमाणे निवुड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।[1]

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १४९

इस प्रकार इस क्रम से प्रवेश करता हुआ चन्द्र एक चन्द्रमंडल से अनन्तर चन्द्रमंडल की ओर बढ़ता बढ़ता व्यवधान रहित छत्तीस छत्तीस योजन एक योजन के इगसठ भागों में से पच्चीस भाग और एक भाग के सात भागों में से चार चूर्णिका भाग जितनी दूरी की प्रत्येक चन्द्रमंडल में हानि करता करता सर्व आभ्यन्तर चन्द्रमंडल की ओर बढ़ता हुआ गति करता है।

सव्वब्भंतर-बाहिर चन्दमण्डलाणं आयाम-विक्खंभो परिक्खेवो य—

सर्व आभ्यन्तर और बाह्य चन्द्रमंडलों का आयाम-विष्कम्भ तथा परिधि—

९८५. १. प०—(क) सव्वब्भंतरे णं भंते ! चंदमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं ?

(ख) केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

९८५. (१) प्र०—(क) हे भगवन् ! सर्व आभ्यन्तर चन्द्रमंडल का कितना आयाम-विष्कम्भ है ?

(ख) और कितनी परिधि कही गई है ?

---

१ प्रस्तुत सूत्र के सभी प्रश्नों में "जम्बुद्दीवे दीवे" ऐसा मूल पाठ है, इसके स्थान में "जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे" ऐसा पाठ होना उचित है। क्योंकि सभी उत्तरों में "गोयमा" पाठ का प्रयोग है।

उ०—(क) गोयमा ! सव्वब्भंतरे णं चंदमण्डले णवणउइं जोयणसहस्साइं छच्चत्ताले जोयणसए आयाम विक्खंभेणं ।

(ख) तिण्णि अ जोयणसयसहस्साइं पण्णरस जोयण-सहस्साइं अउणाणउतिं च जोयणाइं किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

उ०—(क) हे गौतम ! सर्व आभ्यन्तर चन्द्रमंडल का आयाम-विष्कम्भ निन्यानवे हजार छः सौ चालीस योजन का है।

(ख) और तीन लाख पन्द्रह हजार निव्यासी योजन से कुछ अधिक की परिधि कही गई है ।

२. प०—(क) अब्भंतराणंतरे णं भंते ! चंदमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं ?

(ख) केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

(२) प्र०—(क) हे भगवन् ! आभ्यन्तरानन्तर चन्द्र मंडल का कितना आयाम-विष्कम्भ है ?

(ख) और कितनी परिधि कही गई है ?,

उ०—(क) गोयमा ! अब्भंतराणंतरे णं चंदमण्डले णवण-उइं जोयणसहस्साइं—सत्त य बारसुत्तरे जोयणसए एगावण्णं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं आयाम-विक्खंभेणं ।

(ख) तिण्णि अ जोयणसयसहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे जोयणसए किंचिविसेसाहिए परि-क्खेवेणं पण्णत्ते ।

उ०—(क) हे गौतम ! आभ्यन्तरानन्तर का चन्द्रमंडल का आयाम-विष्कम्भ निन्यानवे हजार सात सौ बारह योजन और एक योजन के इगसठ भागों से इक्कावन भाग तथा एक भाग के सात भागों में से एक चूर्णिका भाग जितना है ।

(ख) तीन लाख तीन सौ उन्नीस योजन से कुछ अधिक की परिधि कही गई है ।

३. प०—(त) अब्भंतरतच्चे णं भंते ! चंदमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं ?

(ख) केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

(३) प्र०—(क) हे भगवन् ! आभ्यन्तर तृतीय चन्द्रमंडल का कितना आयाम-विष्कम्भ है ?

(ख) और कितनी परिधि कही गई है ?

उ०—(क) गोयमा ! अब्भंतरच्चे णं चंदमण्डले णवणउइं जोयणसहस्साइं सत्त य पंचासीए जोयणसए इगतालीसं च एगसट्ठीभाए जोयणस्स । एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता दोण्णि अ चुण्णियाभाए आयाम-विक्खंभेणं ।

(ख) तिण्णि अ जोयणसयसहस्साइं पण्णरस जोयण-सहस्साइं पंच य इगुणापण्णे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

उ०—(क) हे गौतम ! आभ्यन्तर-तृतीय चन्द्रमंडल का आयाम-विष्कम्भ निन्यानवे हजार सात सौ पच्चीस योजन तथा एक योजन के इकसठ भागों से इगतालीस भाग और एक भाग में से दो चूर्णिका भाग जितना है ।

(ख) तीन लाख पन्द्रह हजार पाँच सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक की परिधि कही गई है ।

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चन्दे तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकममाणे बावत्तरिं बावत्तरिं जोयणाइं एगावण्णं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स । एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं च चुण्णिआ-भागं एगमेगे मण्डले विक्खंभवुड्ढि अभिवड्ढे-माणे अभिवड्ढेमाणे । दो दो तीसाइं जोयण-सयाइ परिरयवुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे अभिवड्ढे-माणे सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइं ।

इस प्रकार इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र एक चन्द्र मंडल से दूसरे चन्द्रमंडल की ओर बढ़ता बढ़ता बहत्तर-बहत्तर योजन एक योजन के इगसठ भागों में से इक्कावन भाग और एक भाग के सात भागों से एक चूर्णिका भाग जितनी विष्कम्भ वृद्धि को प्रत्येक मडल में बढ़ाता बढ़ाता दो सौ तीस योजन, दो सौ तीस योजन परिधि की वृद्धि करता करता सर्व बाह्य-मँडल की ओर गति करता है ।

१. प०—(क) सव्वबाहिरए णं भंते ! चंदमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं ?

(१) प्र०—(क) हे भगवन् ! सर्व बाह्य चन्द्रमंडल का कितना आयाम-विष्कम्भ हैं ?

(ख) केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

(ख) और कितनी परिधि कही गई है ?

उ०—(क) गोयमा ! सव्वबाहिरए णं चंदमण्डले एगं जोयणसयसहस्सं छच्चसट्ठे जोयणसए । आयाम-विक्खंभेणं ।

उ०—हे गौतम ! सर्व बाह्य चन्द्रमंडल का आयाम-विष्कम्भ एक लाख छः सौ साठ योजन का है ।

(ख) तिण्णि अ जोयणसयसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

(ख) और तीन लाख अठारह हजार तीन सौ पन्द्रह योजन की परिधि कही गई है ।

२. प०—(क) बाहिराणंतरे णं भंते ! चंदमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं ?

(ख) केवइयं परिक्खेवेण पण्णत्ते ?

(२) प्र०—(क) हे भगवन् ! बाह्याभ्यन्तर चन्द्रमंडल का कितना आयाम-विष्कम्भ है ?

(ख) और परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—(क) गोयमा ! बाहिराणंतरे णं चंदमण्डले एगं जोयणसयसहस्सं पंच सत्तासीए जोयणसए । णव य एगसट्ठिभाए जोयणस्स । एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता छ चुण्णिआभाए आयाम-विक्खंभेणं ।

उ०—(क) हे गौतम ! बाह्याभ्यन्तर चन्द्रमंडल का आयाम-विष्कम्भ एक लाख पाँच सौ सित्यासी योजन; एक योजन के इगसठ भागों में से नौ भाग और एक भाग के सात भागों में से छः चूर्णिका भाग जितना है ।

(ख) तिण्णि अ जोयणसयसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं, पंचासीइं च जोयणाइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

(ख) और तीन लाख अठारह हजार पच्यासी योजन की परिधि कही गई है ।

३. प०—(क) बाहिरतच्चे णं भंते ! चंदमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभे णं ?

(ख) केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

(३) प्र०—(क) हे भगवन् ! बाह्य तृतीय मंडल का कितना आयाम-विष्कम्भ है ?

(ख) और कितनी परिधि कही गई है ?

उ०—(क) गोयमा ! बाहिरतच्चे णं चंदमण्डले एगं जोयणसयसहस्सं पंच य दसुत्तरे जोयणसए एगूणवीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स । एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता पंच चुण्णियाभाए आयाम-विक्खंभेणं ।

उ०—(क) हे गौतम ! बाह्य तृतीय मंडल का आयाम-विष्कम्भ एक लाख पांच सौ दस योजन एक योजन के इगसठ भागों में से उन्नीस भाग और एक भाग के सात भागों में से पांच चूर्णिका भाग जितना है ।

(ख) तिण्णि अ जोयणसयसहस्साइं । सत्तरस सहस्साइं अट्ठ य पणपण्णे जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे चन्दे तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकममाणे बावत्तरिं बावत्तरिं जोयणाइं एगावण्णं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स । एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआ भागं एगमेगे मण्डले विक्खंभवुड्ढिं णिवुड्ढेमाणे णिवुड्ढेमाणे दो दो तीसाइं जोयणसयाइं परिरयवुड्ढिं णिवुड्ढेमाणे णिवुड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ।

—जम्बु. वक्ख. ७, सु. १४९

(ख) और तीन लाख सतरह हजार आठ सौ पचपन योजन की परिधि कही गई है ।

इस प्रकार इस क्रम से प्रवेश करता हुआ चन्द्र एक चन्द्रमंडल से दूसरे चन्द्रमंडल की ओर बढ़ता बढ़ता बहत्तर बहत्तर योजन एक योजन के इगसठ भागों में से इक्यावन भाग और एक भाग के सात भागों में से एक चूर्णिका भाग जितनी विष्कम्भ वृद्धि को प्रत्येक चन्द्रमंडल में घटाता तथा दो सौ तीस योजन दो सौ तीस योजन (प्रत्येक चन्द्रमंडल में) परिधि की वृद्धि को घटाता घटाता सर्व आभ्यन्तर चन्द्रमंडल की ओर बढ़ता बढ़ता गति करता है—

सव्वब्भंतरं-बाहिर-चंदमण्डलेसु चंदस्स एगमुहुत्तगति पमाणं—

सर्व आभ्यन्तर और वाह्य चन्द्रमण्डलों में चन्द्र की एक मुहूर्त की गति का प्रमाण—

९८६. १. प०—जया णं भंते चन्दे सव्वब्भंतरमण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंचजोयणसहस्साइं। तेवत्तरिं च जोयणाइं। सत्तत्तरिं च चोआले भागसए गच्छइ।

मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहिं छेत्ता इति।

तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोयणसहस्सेहिं दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणएहिं एगवीसाए इगसट्ठिभाएहिं जोयणस्स चन्दे चक्खुफासं हव्वमागच्छइ।

२. प०—जया णं भंते ! चन्दे अब्भंतराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच जोयणसहस्साइं सत्तत्तरिं च जोयणाइं। छत्तीसं च चोअत्तरे भागसए गच्छइ।

मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहि सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहि छेत्ता इति।

३. प०—जया णं भंते ! चन्दे अब्भंतर तच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंचजोयणसहस्साइं असीइं च जोयणाइं। तेरस य भागसहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे भागसए गच्छइ।

मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहि अ पणवीसेहिंसएहिं छेत्ता इति।

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खम्ममाणे चन्दे तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरे मण्डलं संकममाणे संकममाणे तिण्णि तिण्णि जोयणाइं छण्णउइं च पन्नावण्णे भागसए एगमेगे मण्डले मुहुत्तगइं अभिवड्ढेमाणे अभिवड्ढेमाणे सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

९८६. (१) प्र०—हे भगवन् ! चन्द्र सर्व आभ्यन्तर मंडल में पहुँचकर जब गति करता है, तब प्रत्येक मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पार करता है ?

उ०—हे गौतम ! पाँच हजार तेहत्तर योजन और सितत्तर सौ चम्मालीस भाग जितने क्षेत्र को (प्रत्येक मुहूर्त में) पार करता है।

मंडल की परिधि को तेरह हजार सात सौ पच्चीस का भाग देने पर (चन्द्र की एक मुहूर्त में होने वाली गति का प्रमाण) होता है।

(चन्द्र जब सर्व आभ्यन्तर मण्डल में गति करता है) उस समय सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन और एक योजन के इगसठ भागों में से इकवीस भाग जितनी दूरी से यहाँ रहे हुए मनुष्य को अपनी आँख से चन्द्र दिखाई देता है।

(२) प्र०—हे भगवन् ! चन्द्र जब आभ्यन्तरानन्तर (अर्थात् सर्व आभ्यन्तर से दूसरा) मण्डल में पहुँच कर गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पार करता है ?

उ०—हे गौतम ! पाँच हजार सत्तर योजन और छत्तीस सौ चोहत्तर भाग जितना क्षेत्र (प्रत्येक मुहूर्त में) पार करता है।

मंडल की परिधि को तेरह हजार सात सौ पच्चीस का भाग देने पर (चन्द्र की एक मुहूर्त में होने वाली गति का प्रमाण) होता है।

(३) प्र०—हे भगवन् ! चन्द्र आभ्यन्तर तृतीय मंडल में पहुँचकर जब गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पार करता है ?

उ०—हे गौतम ! पाँच हजार अस्सी योजन और तेरह हजार तीन सौ उगणीस भाग जितने क्षेत्र को (प्रत्येक मुहूर्त में) पार करता है।

मंडल की परिधि को तेरह हजार सात सौ पच्चीस का भाग देने पर (चन्द्र की एक मुहूर्त में होने वाली गति का प्रमाण) होता है।

इस प्रकार इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र तदनन्तर मंडल से तदनन्तर मंडल में पहुँचता पहुँचता प्रत्येक मंडल में तीन तीन योजन तथा छिनवे सौ पचास भाग जितने क्षेत्र की मुहूर्त गति बढ़ाता बढ़ाता सर्व वाह्यमंडल की ओर बढ़ता हुआ गति करता है।

१. प०—जया णं भंते ! चन्दे सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । तया णं एगमेगे णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

(१) प्र०—हे भगवन् ! चन्द्र सर्व बाह्यमंडल में पहुँच कर जब गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पार करता है ?

उ०—गोयमा ! पंच जोयणसहस्साइं एगं च पणवीसं जोयणसयं अउणत्तरिं च णउए भागसए गच्छइ ।

उ०—हे गौतम ! पाँच हजार एक सौ पच्चीस योजन और उनहत्तर सौ निव्वे भाग जितने क्षेत्र को (प्रत्येक मुहूर्त में) पार करता है ।

मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहिं छेत्ता इति ।

मंडल (की परिधि) को तेरह हजार सात सौ पच्चीस का भाग देने पर (चन्द्र की एक मुहूर्त में होने वाली गति का प्रमाण) होता है ।

तया णं इहगयस्स मणूसस्स एगतीसाए जोयण-सहस्सेहिं अट्ठहि य एगतीसेहिं जोयणसएहिं चन्दे चक्खुफासं हव्वमागच्छइ ।

(चन्द्र जब सर्व बाह्य मंडल में गति करता है) उस समय इकतीस हजार आठ सौ इकतीस योजन की दूरी से यहाँ रहे हुए मनुष्य को अपनी आँख से चन्द्र दिखाई दे जाता है ।

२. प०—जया णं भंते ! चंदे बाहिराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

(२) प्र०—हे भगवन् ! बाह्यान्तर मण्डल में पहुँचकर चन्द्र जब गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पार करता है ?

उ०—गोयमा ! पंच जोयणसहस्साइं एगं च एगवीसं जोयणसयं एक्कारस य सट्ठे भागसए गच्छइ ।

उ०—हे गौतम ! पाँच हजार एक सौ इक्कीस योजन और ग्यारह सौ साठ भाग जितने क्षेत्र को (प्रत्येक मुहूर्त में) पार करता है ।

मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहिं छेत्ता इति ।

मंडल की परिधि को तेरह हजार सात सौ पच्चीस का भाग देने पर (चन्द्र की एक मुहूर्त में होने वाली गति का प्रमाण) होता है ।

३. प०—जया णं भंते ! चंदे बाहिर तच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

(३) प्र०—हे भगवन् ! चन्द्र बाह्य तृतीय मण्डल में जब गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पार करता है ?

उ०—गोयमा ! पंच जोयणसहस्साइं एगं च अट्ठारसुत्तरं जोयणसयं चोद्दस य पंचुत्तरे भागसए गच्छइ ।

उ०—हे गौतम ! पाँच हजार एक सौ अठारह योजन और चौदह सौ पाँच भाग जितने क्षेत्र को (प्रत्येक मुहूर्त में) पार करता है ।

मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहिं पणवीसेहिं सएहिं छेत्ता इति ।

मण्डल (की परिधि) को तेरह हजार सात सौ पच्चीस का भाग देने पर (चन्द्र की एक मुहूर्त में होने वाली गति का प्रमाण) होता है ।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे चंदे तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे तिण्णि तिण्णि जोयणाइं छण्णउइं च पंचावण्णे भागसए एगमेगे मण्डले मुहुत्तगइं णिवुड्ढेमाणे णिवुड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ।

इस प्रकार इस क्रम से प्रवेश करता हुआ चन्द्र तदनन्तर मंडल से तदनन्तर [illegible] तीन योजन तथा [illegible] मुहूर्त गति [illegible] करता है ।

— [illegible]

एगमेगे मुहुत्ते मण्डलस्स भागेसु चंदस्स गईए परूवणं—

९८७. प० —एगमेगे णं भंते ! मुहुत्ते णं चंदे केवइयाइं भागसयाइं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! जं जं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। तस्स तस्स मण्डलपरिक्खेवस्स सत्तरस अडसट्ठिं भागसए गच्छइ। मण्डलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउइए सएहिं छेत्ता।[1] —जंबु. वक्ख. ७, सु. १४६

प्रत्येक मुहूर्त में मंडल के भागों में चन्द्र की गति का प्ररूपण—

९८७. प्र०—भगवन् ! चन्द्र प्रत्येक मुहूर्त में मण्डल के कितने भागों में गति करता है ?

उ०—हे गौतम ! चन्द्र जिस जिस मंडल पर आरूढ़ होकर गति करता है उस उस मण्डल की एक लाख अठानवें सौ योजन की परिधि के सतरह सौ अडसठ भाग चलता है।

जोगाणं चन्देण सद्धिं जोग-परूवणं—

९८८. तत्थ खलु इमे दसविहे जोए पण्णत्ते, तं जहा—

१. वसभाणु जोए, २. वेणुयाणु जोए

३. मंचे जोए, ४. मंचाइमंचे जोए

५. छत्ते जोए, ६. छत्ताइछत्ते जोए

७. जुवणद्धे जोए, ८. घणसंमद्दे जोए

९. पीणिए जोए, १०. मंडुकप्पुते जोए

१. प०—ता एएसिं णं पंचण्हं संवच्छराणं छत्ताइछत्तं जोयं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंबुद्दीवस्स दीवस्स, पाईण-पडिणीआययाए, उदीण-दाहिणाययाए जीवाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता दाहिण-पुरत्थिमिल्लंसि चउभाग-मण्डलंसि सत्तावीसं भागे उवाइणावेत्ता अट्ठावीसइ-भागं वीसधा छेत्ता अट्ठारसभागे उवाइणावेत्ता तिहिं भागेहिं दोहिं कलाहिं दाहिण-पुरत्थिमिल्लं चउब्भाग-मण्डलं असंपत्ते एत्थ णं से चन्दे छत्तातिच्छत्तं जोयं जोएइ।

उप्पिं चंदो, मज्झे णक्खत्ते, हेट्ठा आइच्चे,

२. प०—तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता चित्ताहिं चित्ताणं चरम समए।[2]

—सूरिय० पा० १२, सु० ७८

योगों का चन्द्र के साथ योग प्ररूपण—

९८८. ये दस प्रकार के योग कहे गये हैं यथा—

(१) वृषभानुयोग, (२) वेणुकानुयोग,

(३) मंचयोग, (४) मंचातिमंचयोग,

(५) छत्रयोग, (६) छत्रातिछत्रयोग,

(७) युगनद्धयोग, (८) घनसंमर्दयोग,

(९) प्रीणितयोग, (१०) मंडुकप्लुतयोग,

(१) प्र०—इन पाँच संवत्सरों में चन्द्र मंडल के किस भाग में छत्रातिछत्र योग करता है ?

उ०— जम्बूद्वीप द्वीप की पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर लम्बी जीवा से मंडल के एक सौ चौवीस भाग करके दक्षिण-पूर्व (नैऋत्यकोण) में मंडल के चतुर्थ भाग प्रदेश में सत्तावीस अंश भोग कर अट्ठावीसवें अंश के बीस भाग करके अठारह अंशों को ग्रहण करके तीन भाग दो कला से दक्षिण-पूर्व के चतुर्थ भाग प्रदेश में प्रवेश करने से पूर्व चन्द्र "छत्रातिछत्र" योग करता है।

ऊपर चन्द्र, मध्य में नक्षत्र और नीचे सूर्य।

(२) प्र०—उस समय चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—चित्रा नक्षत्र से योग करता है।

चन्दस्स पुण्णिमासिणिसु जोगो—

९८९. तत्थ खलु इमाओ बावट्ठिं पुण्णिमासिओ बावट्ठिं अमावासाओ पण्णत्ताओ,

१. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

चन्द्र का पूर्णिमाओं में योग—

९८९. पाँच संवत्सरों में ये बासठ पूर्णिमायें और बासठ अमावास्यायें कही गई हैं।

(१) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की प्रथम पूर्णिमासी को चन्द्र मंडल के किस देश (विभाग) में योग करता है ?

---

१ सूरिय. पा. १५, सु. ८३।

२ चन्द. पा. १२ सु. ७८।

उ०—जंसि णं देसंसि चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं जोएइ ताए तेणं पुण्णिमासिणिट्ठाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता, एत्थ णं से चंदे पढमं पुण्णिमासिणि जोएइ,

उ०—अंतिम बासठवीं पूर्णमासी को मंडल के जिस देश में चंद्र योग करता है उसी पूर्णिमास्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके (उनमें से) बत्तीस विभाग को लेकर उनमें प्रथमा पूर्णिमासी को चंद्र योग करता है।

२. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

(२) प्र०—इन पांच संवत्सरों की द्वितीया पूर्णमासी को चंद्र मंडल के किस देश-विभाग में योग करता है ?

उ०—जंसि णं देसंसि चंदे पढमं पुण्णिमासिणिं जोएइ, ताए तेणं पुण्णिमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता एत्थ णं से चंदे दोच्चं पुण्णिमासिणिं जोएइ,

उ०—प्रथमा पूर्णमासी को मंडल के जिस देश में योग करता है उसी पूर्णिमा स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके (उनमें से) बत्तीस विभाग को लेकर उनमें द्वितीया पूर्णमासी को चंद्र योग करता है।

३. प० ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

(३) प्र०—इन पांच संवत्सरों की तृतीया पूर्णमासी को चंद्र मंडल के किस देश-विभाग में योग करता है ?

उ०—जंसि णं देसंसि चंदे दोच्चं पुण्णिमासिणिं जोएइ, ताए ते णं पुण्णिमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता एत्थ णं से चंदे तच्चं पुण्णिमासिणिं जोएइ,

उ०—द्वितीया पूर्णमासी को मंडल के जिस देश में चंद्र योग करता है उसी पूर्णिमा स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके (उनमें से) बत्तीस विभाग को लेकर उनमें तृतीया पूर्णमासी को चंद्र योग करता है।

४. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

(४) प्र०—इन पांच संवत्सरों की बारहवीं पूर्णमासी को चंद्र मंडल के किस देश=विभाग में योग करता है ?

उ०—जंसि णं देसंसि चंदे तच्चं पुण्णमासिणिं जोएइ, ता पुण्णिमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता दोण्णि अट्ठासीए भागसए उवाइणावेत्ता, एत्थ णं से चंदे दुवालसमं पुण्णिमासिणिं जोएइ.

उ०—तृतीया पूर्णमासी को चंद्र मंडल के जिस देश में योग करता है उसी पूर्णिमास्थान से आगे वाले मंडलों के एक सौ चौबीस एक सौ चौबीस विभाग करके उनमें से दो सौ अट्ठासी भाग लेकर उनमें क्रमशः योग करता हुआ बारहवी पूर्णमासी को चंद्र योग करता है।

एवं खलु एएणं उवाएणं ताए ताए पुण्णिमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता तंसि तंसि देसंसि तं तं पुण्णमासिणिं चंदे जोएइ।

इस प्रकार इस क्रम से उन उन पूर्णिमा स्थानों से आगे वाले मंडलों के एक सौ चौबीस एक सौ चौबीस विभाग करके उनमें से प्रत्येक मंडल के बत्तीस बत्तीस विभागों को लेकर उन उन विभागों में उन उन पूर्णिमाओं को चंद्र योग करता है।

५. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

(५) प्र०—इन पांच संवत्सरों की अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा को चंद्र मंडल के किस विभाग में योग करता है ?

उ०—ता जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पाईण-पडिणाययाए उदीण-दाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता दाहिणिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि सत्तावीसं भागे उवाइणावेत्ता, अट्ठावीसइ भागे वीसहा छेत्ता

उ०—जम्बूद्वीप के पूर्व-पश्चिम एवं उत्तर-दक्षिण लम्बी जीवा से मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके, दक्षिण में मंडल के चार भागों में से सत्ताईस भाग लेकर अट्ठाईसवें भाग के बीस भाग करके उनमें से अठारह भाग लेकर पश्चिम वाले

एगमेगे मुहुत्ते मण्डलस्स भागेसु चंदस्स गईए परूवणं— प्रत्येक मुहूर्त में मंडल के भागों में चन्द्र की गति का प्ररूपण—

९८७. प०—एगमेगे णं भंते ! मुहुत्ते णं चंदे केवइयाइं भागसयाइं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! जं जं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। तस्स तस्स मण्डलपरिक्खेवस्स सत्तरस अडसट्ठिं भागसए गच्छइ। मण्डलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउइए सएहिं छेत्ता।[1] —जंबु. वक्ख. ७, सु. १४९

९८७. प्र०—भगवन् ! चन्द्र प्रत्येक मुहूर्त में मण्डल के कितने भागों में गति करता है ?

उ०—हे गौतम ! चन्द्र जिस जिस मंडल पर आरूढ़ होकर गति करता है उस उस मण्डल की एक लाख अठानवें सौ योजन की परिधि के सतरहा सौ अडसठ भाग चलता है।

जोगाणं चन्देण सद्धिं जोग-परूवणं— योगों का चन्द्र के साथ योग प्ररूपण—

९८८. तत्थ खलु इमे दसविहे जोए पण्णत्ते, तं जहा—

१. वसभाणु जोए, २. वेणुयाणु जोए
३. मंचे जोए, ४. मंचाइमंचे जोए
५. छत्ते जोए, ६. छत्ताइछत्ते जोए
७. जुवणद्धे जोए, ८. घणसंमद्दे जोए
९. पीणिए जोए, १०. मंडुकप्पुते जोए

१. प०—ता एएसिं णं पंचण्हं संवच्छराणं छत्ताइछत्तं जोयं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंबुद्दीवस्स दीवस्स, पाईण-पडिणीआययाए, उदीण-दाहिणाययाए जीवाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता दाहिण-पुरत्थिमिल्लंसि चउभाग-मण्डलंसि सत्तावीसं भागे उवाइणावेत्ता अट्ठावीसइ-भागं वीसधा छेत्ता अट्ठारसभागे उवाइणावेत्ता तिहिं भागेहिं दोहिं कलाहिं दाहिण-पुरत्थिमिल्लं चउब्भाग-मण्डलं असंपत्ते एत्थ णं से चन्दे छत्तातिच्छत्तं जोयं जोएइ।

उप्पिं चंदो, मज्झे णक्खत्ते, हेट्ठा आइच्चे,

२. प०—तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता चित्ताहिं चित्ताणं चरम समए।[2]

—सूरिय० पा० १२, सु० ७८

९८८. ये दस प्रकार के योग कहे गये हैं यथा—

(१) वृषभानुयोग, (२) वेणुकानुयोग,
(३) मंचयोग, (४) मंचातिमंचयोग,
(५) छत्रयोग, (६) छत्रातिछत्रयोग,
(७) युगनद्धयोग, (८) घनसंमर्दयोग,
(९) प्रीणितयोग, (१०) मंडुकप्लुतयोग,

(१) प्र०—इन पाँच संवत्सरों में चन्द्र मंडल के किस भाग में छत्रातिछत्र योग करता है ?

उ०— जम्बूद्वीप द्वीप की पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर लम्बी जीवा से मंडल के एक सौ चौबीस भाग करके दक्षिण-पूर्व (नैऋत्यकोण) में मंडल के चतुर्थ भाग प्रदेश में सत्तावीस अंश भोग कर अट्ठावीसवें अंश के बीस भाग करके अठारह अंशों को ग्रहण करके तीन भाग दो कला से दक्षिण-पूर्व के चतुर्थ भाग प्रदेश में प्रवेश करने से पूर्व चन्द्र "छत्रातिछत्र" योग करता है।

ऊपर चन्द्र, मध्य में नक्षत्र और नीचे सूर्य।

(२) प्र०—उस समय चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—चित्रा नक्षत्र से योग करता है।

चन्दस्स पुण्णिमासिणिसु जोगो— चन्द्र का पूर्णिमाओं में योग—

९८९. तत्थ खलु इमाओ बावट्ठिं पुण्णिमासिओ बावट्ठिं अमावासाओ पण्णत्ताओ,

१. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

९८९. पाँच संवत्सरों में ये बासठ पूर्णिमायें और बासठ अमावास्यायें कही गई हैं।

(१) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की प्रथम पूर्णिमासी को चन्द्र मंडल के किस देश (विभाग) में योग करता है ?

---

१ सूरिय. पा. १५, सु. ८३।

२ चन्द. पा. १२ सु. ७८।

उ०—जंसि णं देसंसि चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं जोएइ ताए तेणं पुण्णिमासिणिट्ठाए[1] मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता, एत्थ णं से चंदे पढमं पुण्णिमासिणिं जोएइ,

उ०—अंतिम बासठवीं पूर्णमासी को मंडल के जिस देश में चंद्र योग करता है उसी पूर्णिमास्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौवीस विभाग करके (उनमें से) बत्तीस विभाग को लेकर उनमें प्रथमा पूर्णिमासी को चंद्र योग करता है।

२. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

(२) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की द्वितीया पूर्णमासी को चंद्र मंडल के किस देश-विभाग में योग करता है ?

उ०—जंसि णं देसंसि चंदे पढमं पुण्णिमासिणिं जोएइ, ताए तेणं पुण्णिमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता एत्थ णं से चंदे दोच्चं पुण्णिमासिणिं जोएइ,

उ०—प्रथमा पूर्णमासी को मंडल के जिस देश में योग करता है उसी पूर्णिमा स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके (उनमें से) बत्तीस विभाग को लेकर उनमें द्वितीया पूर्णमासी को चंद्र योग करता है।

३. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

(३) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की तृतीया पूर्णमासी को चंद्र मंडल के किस देश-विभाग में योग करता है ?

उ०—जंसि णं देसंसि चंदे दोच्चं पुण्णिमासिणिं जोएइ, ताए ते णं पुण्णिमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता एत्थ णं से चंदे तच्चं पुण्णिमासिणिं जोएइ,

उ०—द्वितीया पूर्णमासी को मंडल के जिस देश में चंद्र योग करता है उसी पूर्णिमा स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके (उनमें से) बत्तीस विभाग को लेकर उनमें तृतीया पूर्णमासी को चंद्र योग करता है।

४. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

(४) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की बारहवीं पूर्णमासी को चंद्र मंडल के किस देश=विभाग में योग करता है ?

उ०—जंसि णं देसंसि चंदे तच्चं पुण्णमासिणिं जोएइ, ता पुण्णिमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता दोण्णि अट्ठासीए भागसए[2] उवाइणावेत्ता, एत्थ णं से चंदे दुवालसमं पुण्णिमासिणिं जोएइ,

उ०—तृतीया पूर्णमासी को चंद्र मंडल के जिस देश में योग करता है उसी पूर्णिमास्थान से आगे वाले मंडलों के एक सौ चौवीस एक सौ चौवीस विभाग करके उनमें से दो सौ अट्ठासी भाग लेकर उनमें क्रमशः योग करता हुआ बारहवीं पूर्णमासी को चंद्र योग करता है।

एवं खलु एएणं उवाएणं ताए ताए पुण्णिमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता तंसि तंसि देसंसि तं तं पुण्णमासिणिं चंदे जोएइ।

इस प्रकार इस क्रम से उन उन पूर्णिमा स्थानों से आगे वाले मंडलों के एक सौ चौबीस एक सौ चौबीस विभाग करके उनमें से प्रत्येक मंडल के बत्तीस बत्तीस विभागों को लेकर उन उन विभागों में उन उन पूर्णिमाओं को चंद्र योग करता है।

५. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

(५) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा को चंद्र मंडल के किस विभाग में योग करता है ?

उ०—ता जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पाईण-पडिणाययाए उदीण-दाहिणययाए जीवाए मंडलं चउव्वीसेण सएणं छेत्ता दाहिणंसि चउब्भागमंडलंसि सत्तावीसं भागे उवाइणावेत्ता, अट्ठावीसइ भागे वीसहा छेत्ता

उ०—जम्बूद्वीप के ईशान एवं नैऋत्यकोण स्थित लम्बी जीवा में मंडल के एक सौ चौवीस विभाग करके, दक्षिण में मंडल के चार भागों में से सत्तावीस भाग लेकर अठावीसवें भाग के वीस भाग करके उनमें से अठारह भाग लेकर पश्चिम वाले

१ तस्मात्पूर्णमासीस्थानात्-चरमद्वाषष्टितम, पौर्णमासीपरिसमाप्तिस्थानात् परतोमण्डलं, चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्वाविभज्य,

२ "दोण्णि अट्ठासीए भागसए" त्ति, तृतीयस्याः पौर्णमास्याः परतो द्वादशी किल पौर्णमासी नवमी भवति, ततो नवभिर्द्वात्रिंशतो गुणने द्वे शते अष्टाशीत्यधिके भवतः।

अट्ठारसभागे उवाइणावेत्ता तिहिं भागेहिं दोहि य कलाहिं पच्चत्थिमिल्लं चउब्भागमडलं असंपत्ते एत्थ णं चंदे चरिमं बावट्ठि पुण्णिमासिणिं जोएइ -[1]

—सूरिय० पा० १०, पाहु० २२, सु० ६३

मंडल के चार भागों को प्राप्त किए बिना तीन भागों में दो दो कलाओं से चंद्र अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा को योग करता है।

चन्दस्स अमावासासु जोगो—

चन्द्र का अमावस्याओं में योग—

६६०. १. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि चन्दे चरिमं बावट्ठि अमावासं जोएइ ताए अमावासट्ठाणाए मंडलं चउव्वीसे णं सएणं छेत्ता बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता एत्थ णं से चन्दे पढमं अमावासं जोएइ,

एवं जेणेव अभिलावेणं चंदस्स पुण्णिमासिणीओ भणिआओ तेणेव अभिलावेणं अमावासाओ भाणियव्वाओ तं जहा—बिइया, तइया, दुवालसमी।[2]

एवं खलु एएणं उवाएणं ताए ताए अमावासाठाणाए मंडलं चउव्वीसे णं सएणं छेत्ता बत्तीसं बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता तंसि तंसि देसंसि तं तं अमावासं चंदेण जोएइ,

२. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं बावट्ठि अमावासं चन्दे कंसि देसंसि जोएइ ?

६६०. प्र०—इन पाँच संवत्सरों की प्रथम अमावस्या को चंद्र मंडल के किस देश=विभाग में योग करता है ?

उ०—चंद्र अन्तिम बासठवीं अमावस्या को जिस देश में योग करता है उसी अमावस्या स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके उनमें से बत्तीस भाग लेकर उनमें चंद्र प्रथम अमावस्या को योग करता है।

इस प्रकार जिस अभिलाप से चंद्र का पूर्णिमाओं में योग कहा है उसी अभिलाप से चंद्र का अमावस्याओं में योग कहना चाहिए, यथा—द्वितीया, तृतीया, बारहवीं।

इस प्रकार इस क्रम से उन उन अमावस्याओं में मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके उनमें से बत्तीस बत्तीस विभागों को लेकर उन उन विभागों में एवं उन उन अमावस्याओं में चन्द्र योग करता है।

प्र०—इन पाँच संवत्सरों की अन्तिम बासठवीं अमावस्या को चंद्र मंडल के किस देश में योग करता है।

---

१ (क) चन्द. पा. १० सु. ६३

"जम्बुद्दीवस्स णमित्यादि"। जम्बूद्वीपस्य णमिति वाक्यालंकारे द्वीपस्योपरि प्राचीना प्राचीनतया, इह प्राचीन ग्रहणेनोत्तरपूर्वा (ईशान) गृह्यते, अपाचीन ग्रहणेन दक्षिणापरा, (नैऋत्य)।

ततोऽयमर्थः पूर्वोत्तर-दक्षिणापरायतया, एवमुदीचि-दक्षिणायतया, पूर्व-दक्षिणोत्तरापरायतया जीवया प्रत्यंच्चया दवरिकया इत्यर्थः, मण्डलं चतुर्विंशेन-चतुर्विशष्यधिकेन शतेन छित्वा, विभज्य भूयश्चतुर्भिर्विभज्यते, ततो दाक्षिणात्ये चतुर्भाग मण्डले एकत्रिंशद्भागप्रमाणे सप्तविंशतिभागानुपादायाष्टाविंशतितमं च भागं विंशतिधा छित्वा तद्गतानष्टादशभागानुपादायशेषैस्त्रिभिर्भागैश्चतुर्थस्य भागस्य द्वाभ्यां कलाभ्यां, पाश्चात्यं चतुर्भागमडलमसंप्राप्तः अस्मिन् प्रदेशे चन्द्रो द्वाषष्टितमां चरमां पौर्णिमासिं परिसमापयति। —टीका

२ "एवमित्यादि" एवमुक्तप्रकारेण येनैवाभिलापेन चन्द्रस्य पौर्णमास्यो भणितास्ते नैवाभिलापेनामावास्या अपि भणितव्या= तद्यथा—द्वितीया, तृतीया, द्वादशी च ताश्चैवम्।

प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं अमावासं चंदे कंसि देसंमि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि चन्दे पढमं अमावासं जोएइ, ताओ णं अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता, एत्थ णं से चंदे दोच्चं अमावासं जोएइ,

प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं अमावासं चन्दे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि चंदे दोच्चं अमावासं जोएइ, ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता, बत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता, एत्थ णं से चन्दे तच्चं अमावासं जोएइ,

प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं अमावासं चन्दे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि चन्दे तच्चं अमावासं जोएइ, ताओ णं अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता, दोण्णि अट्ठासीए भागसए उवाइणावेत्ता, एत्थ णं चन्दे दुवालसमं अमावासं जोएइ।

उ०—ता जंसि णं देसंसि चन्दे चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं जोएंति, ताए पुण्णिमासिणिठाणाए मंडलं चउव्वीसेणं सए णं छेत्ता सोलसभागे ओसक्कवइत्ता, एत्थ णं से चन्दे चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएइ,[1] —सूरिय. पा. १०, पाहु. २२, सु. ६५

उ०—चंद्र अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा को मंडल के जिस देश=विभाग में योग करता है उसी पूर्णिमा स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौवीस विभाग करके उनमें से सोलह भाग कम करके चन्द्र अन्तिम बासठवीं अमावास्या को योग करता है।

जम्बुद्दीवग चंदाणं चंददीवा—

६६१. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवस्स मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं जबुद्दीवगाणं चंदाणं चददीवा णामं दीवा पण्णत्ता।

जंबुद्दीवतेणं अद्धेकोणणउइ जोयणाइं चत्तालीसं पंचाणउइभागे जोयणस्स ऊसिया जलंताओ, लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिया जलंताओ,

बारस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेण,

सेसं तं चेव जहा गोतमदीवस्स।

पत्तेयं पत्तेयं एगाए पउमवरवेइयाए, एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्तेण चिट्ठति, दोण्हं वि वण्णओ।

चंददीवाणं अंतो-जाव-बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता,-जाव-जोइसिया देवा विहरंति।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोयणाइं उड्ढ उच्चत्तेणं,

पासायवण्णओ भाणियव्वो।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जभूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ, ताओ मणिपेढियाओ दो जोयणाइं आयाम-विक्खभेणं-जाव-सीहासणा सपरिवारा भाणियव्वा।

—जीवा० पडि० ३, उ० २ सु० १६२

जम्बूद्वीप के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप—

६२६. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ कहे गये है ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दरपर्वत से पूर्व में लवण समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर जम्बूद्वीप के चन्द्रों के 'चन्द्रद्वीप' नाम के द्वीप कहे गये हैं।

वे चन्द्रद्वीप जम्बूद्वीप के अन्तिम भाग से साढ़े नवासी योजन तथा एक योजन के पचानवें भागों में से चालीस भाग जितने जल से ऊँचे हैं और लवणसमुद्र के अन्तिम भाग से दो कोस जल से ऊँचे हैं।

वे बारह हजार योजन के लम्बे कहे गये हैं।

शेष सब पूर्ववत् गौतम द्वीप जैसा है।

प्रत्येक चन्द्रद्वीप एक-एक पद्मवरवेदिका और एक एक वनखण्ड से घिरे हुए हैं। यहाँ दोनों के वर्णक हैं।

चन्द्रद्वीपों के अन्दर—यावत्—सर्वथा सम रमणीय भूमिभाग कहे गये हैं—यावत्—ज्योतिषी देव वहाँ विहरण करते हैं।

उन चन्द्रद्वीपों के सर्वथा समरमणीय भूभागों पर बासठ योजन ऊँचे प्रासादावतंसक हैं।

यहाँ प्रासादों के वर्णक कहने चाहिए।

उन सर्वथा सम रमणीय भूभागों के मध्यभाग में मणिपीठिकायें दो योजन लम्बी-चौड़ी हैं—यावत्—सपरिवार सिंहासन कहने चाहिए।

चंददीवाणं णामहेऊ—

६६२. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—"चंदद्दीवा, चंददीवा ?"

उ०—गोयमा ! चंदद्दीवेसु णं तत्थ तत्थ तहिं तहिं बहुसु खुड्डासु खुड्डियासु बहूइं उप्पलाइं चंदवण्णाभाइं चंदा

चन्द्रद्वीपों के नाम का हेतु—

६३०. प्र०—हे भगवन् ! किस कारण से चन्द्रद्वीप चन्द्रद्वीप कहे जाते है ?

उ०—हे गौतम ! चन्द्रद्वीपों में जगह जगह छोटी छोटी बावड़ियाँ हैं उनमें अनेकानेक चन्द्र वर्ण वाले कमल हैं। वहाँ पर

---

१ चन्द पा. १० सु. ६५।

एत्थ जोतिसिंदा जोतिसिरायाणो महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति,[1]

महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज रहते हैं।

तेणं तत्थ पत्तेयं पत्तेयं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं -जाव-चंददीवाणं चंदाण य रायहाणीणं, अण्णेसिं च बहूणं जोतिसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं-जाव-विहरंति ।

अतः प्रत्येक चन्द्र के चार हजार सामानिक देव—यावत्—चन्द्रद्वीपों के चन्द्रों की राजधानियाँ हैं और वे अन्य अनेक ज्योतिषी देव-देवियों पर आधिपत्य करते हुए—यावत्—विहरण करते हैं।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"चंदद्दीवा चंदद्दीवा।"

हे गौतम ! इस कारण से 'चन्द्रद्वीप' चन्द्रद्वीप कहे जाते हैं।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! चंदद्दीवा सासया-जाव-णिच्चा। —जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १६२

अथवा हे गौतम ! चन्द्रद्वीप शाश्वत हैं—यावत्—नित्य हैं।

चंदाणं रायहाणीणं परूवणं—

चन्द्रा राजधानियों का प्ररूपण—

९९३. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंदाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! चंदद्दीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वीतिवतित्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जंबुद्दीवगाणं चंदाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं चेव पमाणं -जाव-महिड्ढीया-जाव- चंदा देवा, चंदा देवा।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १६२

९९३. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप के चन्द्रों की चन्द्र राजधानियाँ कहाँ कही गई हैं ?

उ०—हे गौतम ! चन्द्रद्वीपों के पूर्व में तिरछे असंख्य द्वीप में बारह योजन जाने पर जम्बूद्वीप के चन्द्रों की चन्द्रा नाम की राजधानियाँ कही गई हैं। उनका प्रमाण पूर्ववत्—यावत्—ऐसे महर्धिक चन्द्रदेव है।

रवि-ससि-णक्खत्तेहिं अविरहियाणं, विरहियाणं, सामण्णाणं य चन्दमण्डलाणं सखा—

सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रों से अविरहित-विरहित तथा सामान्य चन्द्रमंडलों की संख्या—

९९४. (क) ता एएसि णं पण्णरसण्हं चंदमण्डलाणं अत्थि चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं अविरहिया,

(ख) अत्थि चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं विरहिया,

(ग) अत्थि चन्दमण्डला जे णं रवि-ससि-णक्खत्ताणं सामण्णा भवंति,

(घ) अत्थि चन्दमण्डला जे णं सया आदिच्चेहिं विरहिया,

९९४. (क) इन पन्द्रह चन्द्रमण्डलों में से कुछ चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सदा नक्षत्रों से अविरहित रहते हैं।

(ख) कुछ चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सदा नक्षत्रों से विरहित रहते हैं।

(ग) कुछ चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रों के साथ सामान्य रहते हैं।

(घ) कुछ चन्द्रमण्डल ऐसे जो सदा सूर्यों से विरहित रहते हैं।

प०—(क) ता एएसि णं पण्णरसण्हं चन्दमण्डलाणं कयरे चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं अविरहिया ?

(ख) कयरे चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं विरहिया ?

प्र०—(क) इन पन्द्रह चन्द्रमण्डलों में से कितने चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सदा नक्षत्रों से अविरहित रहते हैं ?

(ख) कितने चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सदा नक्षत्रों से विरहित रहते हैं ?

---

१ प्र०—चंदविमाणे णं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

उ०—*गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं।* —पण्णं. प. ४, सु. ३९७ (१)

प्रज्ञापना के इस पाठ से ऊपर अंकित जीवाभिगम के पाठ का साम्य नहीं है, चन्द्र-ज्योतिष्क देवों का इन्द्र है अतः उसकी स्थिति सदा उत्कृष्ट ही होती है।

(ग) कयरे चन्दमण्डला जे णं रवि-ससि-णक्खत्ताणं सामण्णा भवंति ?

(घ) कयरे चन्दमण्डला जे णं सया आदिच्चेहिं विरहिया ?

उ०—(क) ता एएसि णं पण्णरसण्हं चन्दमण्डलाणं तत्थ जे ते चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं अविरहिया, ते णं अट्ठ, तं जहा—

१. पढमे चन्दमण्डले, २. ततिए चंदमण्डले, ३. छट्ठे चन्दमण्डले, ४. सत्तमे चन्दमण्डले, ५. अट्ठमे चन्दमण्डले, ६. दसमे चन्दमण्डले, ७. एकादसे चन्दमंडले, ८. पण्णरसमे चन्दमंडले,

(ख) तत्थ जे ते चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं विरहिया, ते णं सत्त तं जहा—

१. बितिए चन्दमण्डले. २. चउत्थे चन्दमण्डले, ३. पंचमे चन्दमण्डले, ४. नवमे चन्दमण्डले, ५. वारसमे चन्दमण्डले, ६. तेरसमे चन्दमण्डले, ७. चउद्दसमे चन्दमण्डले,

(ग) तत्थ जे ते चन्दमण्डला जे णं रवि-ससि-णक्खत्ताणं सामण्णा भवंति, ते णं चत्तारि, तं जहा—

१. पढमे चन्दमण्डले, २. बीए चन्दमण्डले, ३. इक्कारसमे चदमंडले, ४. पन्नरसमे चंदमंडले,

(घ) तत्थ जे ते चंदमण्डला जे णं सया आदिच्चेहिं विरहिया ते णं पंच। तं जहा—

१. छट्ठे चन्दमण्डले. २. सत्तमे चन्दमण्डले, ३. अट्ठमे चन्दमण्डले, ४. नवमे चन्दमण्डले, ५. दसमे चन्दमण्डले,

—सूरिय. पा. १०, पाहु. ११, सु. ४५

(ग) कितने चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रों के साथ सामान्य रहते हैं ?

(घ) कितने चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सदा सूर्यों से विरहित रहते हैं ?

उ०—(क) इन पन्द्रह चन्द्रमण्डलों में से जितने चन्द्रमण्डल नक्षत्रों से सदा अविरहित रहते हैं वे आठ हैं, यथा—

(१) प्रथम चन्द्रमण्डल, (२) तृतीय चन्द्रमण्डल, (३) छठा चन्द्रमण्डल, (४) सातवाँ चन्द्रमण्डल, (५) आठवाँ चन्द्रमण्डल, (६) दसवाँ चन्द्रमण्डल, (७) इग्यारहवाँ चन्द्रमण्डल, (८) पन्द्रहवाँ चन्द्रमण्डल।

(ख) जितने चन्द्रमण्डल नक्षत्रों से सदा विरहित रहते हैं, वे सात हैं, यथा—

(१) द्वितीय चन्द्रमण्डल, (२) चतुर्थ चन्द्रमण्डल, (३) पंचम चन्द्रमण्डल, (४) नवम चन्द्रमण्डल, (५) द्वादशम चन्द्रमण्डल, (६) त्रयोदशम चन्द्रमण्डल, (७) चतुर्दशम चन्द्रमण्डल।

(ग) जितने चन्द्रमण्डल सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रों के साथ सामान्य रहते हैं वे चार हैं. यथा—

(१) प्रथम चन्द्रमण्डल, (२) द्वितीय चन्द्रमण्डल, (३) एकादशम चन्द्रमण्डल, (४) पंचदशम चन्द्रमण्डल।

(घ) जितने चन्द्रमण्डल सूर्यों से सदा विरहित रहते हैं, वे पाँच हैं; यथा—

(१) छठा चन्द्रमण्डल, (२) सप्तम चन्द्रमण्डल, (३) अष्टम चन्द्रमण्डल, (४) नवम चन्द्रमण्डल, (५) दसम चन्द्रमण्डल।

एत्थ जोतिसिंदा जोतिसिरायाणो महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति,[1]

महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज रहते हैं।

तेणं तत्थ पत्तेयं पत्तेयं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं -जाव-चंदद्दीवाणं चंदाण य रायहाणीणं, अण्णेसिं च बहूणं जोतिसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं-जाव-विहरंति।

अतः प्रत्येक चन्द्र के चार हजार सामानिक देव—यावत्—चन्द्रद्वीपों के चन्द्रों की राजधानियाँ हैं और वे अन्य अनेक ज्योतिषी देव-देवियों पर आधिपत्य करते हुए—यावत्—विहरण करते हैं।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—"चंदद्दीवा चंदद्दीवा।"

हे गौतम! इस कारण से 'चन्द्रद्वीप' चन्द्रद्वीप कहे जाते हैं।

अदुत्तरं च णं गोयमा! चंदद्दीवा सासया-जाव-णिच्चा। —जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १६२

अथवा हे गौतम! चन्द्रद्वीप शाश्वत हैं—यावत्—नित्य हैं।

चंदाणं रायहाणीणं परूवणं—

चन्द्रा राजधानियों का प्ररूपण—

९९३. प०—कहि णं भंते! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंदाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ?

उ०—गोयमा! चंदद्दीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वीतिवतित्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जंबुद्दीवगाणं चंदाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं चेव पमाणं -जाव-महिड्ढीया-जाव- चंदा देवा, चंदा देवा।

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० १६२

९९३. प्र०—हे भगवन्! जम्बूद्वीप के चन्द्रों की चन्द्र राजधानियाँ कहाँ कही गई हैं?

उ०—हे गौतम! चन्द्रद्वीपों के पूर्व में तिरछे असंख्य द्वीप में बारह योजन जाने पर जम्बूद्वीप के चन्द्रों की चन्द्रा नाम की राजधानियाँ कही गई हैं। उनका प्रमाण पूर्ववत्—यावत्—ऐसे महर्धिक चन्द्रदेव है।

रवि-ससि-णक्खत्तेहिं अविरहियाणं, विरहियाणं, सामण्णाणं य चन्दमण्डलाणं सखा—

सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रों से अविरहित-विरहित तथा सामान्य चन्द्रमंडलों की संख्या—

९९४. (क) ता एएसिं णं पण्णरसण्हं चंदमण्डलाणं अत्थि चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं अविरहिया,

(ख) अत्थि चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं विरहिया,

(ग) अत्थि चन्दमण्डला जे णं रवि-ससि-णक्खत्ताणं सामण्णा भवंति,

(घ) अत्थि चन्दमण्डला जे णं सया आदिच्चेहिं विरहिया,

प०—(क) ता एएसिं णं पण्णरसण्हं चन्दमण्डलाणं कयरे चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं अविरहिया?

(ख) कयरे चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं विरहिया?

९९४. (क) इन पन्द्रह चन्द्रमण्डलों में से कुछ चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सदा नक्षत्रों से अविरहित रहते हैं।

(ख) कुछ चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सदा नक्षत्रों से विरहित रहते हैं।

(ग) कुछ चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रों के साथ सामान्य रहते हैं।

(घ) कुछ चन्द्रमण्डल ऐसे जो सदा सूर्यो से विरहित रहते हैं।

प्र०—(क) इन पन्द्रह चन्द्रमण्डलों में से कितने चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सदा नक्षत्रों से अविरहित रहते हैं?

(ख) कितने चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सदा नक्षत्रों से विरहित रहते हैं?

---

१ प्र०—चंदविमाणे णं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?
उ०—गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं। —पण्णं. प. ४, सु. ३९७ (१)
प्रज्ञापना के इस पाठ से ऊपर अंकित जीवाभिगम के पाठ का साम्य नहीं है, चन्द्र-ज्योतिष्क देवों का इन्द्र है अतः उसकी स्थिति सदा उत्कृष्ट ही होती है।

(ग) कयरे चन्दमण्डला जे णं रवि-ससि-णक्खत्ताणं सामण्णा भवंति ?

(घ) कयरे चन्दमण्डला जे णं सया आदिच्चेहिं विरहिया ?

उ०—(क) ता एएसि णं पण्णरसण्हं चन्दमण्डलाणं तत्थ जे ते चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं अविरहिया, ते णं अट्ठ, तं जहा—

१. पढमे चन्दमण्डले, २. ततिए चंदमण्डले, ३. छट्ठे चन्दमण्डले, ४. सत्तमे चन्दमण्डले, ५. अट्ठमे चन्दमण्डले, ६. दसमे चन्दमण्डले, ७. एकादसे चन्दमंडले, ८. पण्णरसमे चन्दमंडले,

(ख) तत्थ जे ते चन्दमण्डला जे णं सया णक्खत्तेहिं विरहिया, ते णं सत्त तं जहा—

१. बितिए चन्दमण्डले, २. चउत्थे चन्दमण्डले, ३. पंचमे चन्दमण्डले, ४. नवमे चन्दमण्डले, ५. बारसमे चन्दमण्डले, ६. तेरसमे चन्दमण्डले, ७. चउद्दसमे चन्दमण्डले,

(ग) तत्थ जे ते चन्दमण्डला जे णं रवि-ससि-णक्खत्ताणं सामण्णा भवंति, ते णं चत्तारि, तं जहा—

१. पढमे चन्दमण्डले, २. बीए चन्दमण्डले, ३. इक्कारसमे चंदमंडले, ४. पन्नरसमे चंदमंडले,

(घ) तत्थ जे ते चंदमण्डला जे णं सया आदिच्चेहिं विरहिया ते णं पंच। तं जहा—

१. छट्ठे चन्दमण्डले, २. सत्तमे चन्दमण्डले, ३. अट्ठमे चन्दमण्डले, ४. नवमे चन्दमण्डले, ५. दसमे चन्दमण्डले,

—सूरिय. पा. १०, पाहु. ११, सु. ४५

(ग) कितने चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रों के साथ सामान्य रहते हैं ?

(घ) कितने चन्द्रमण्डल ऐसे हैं जो सदा सूर्यों से विरहित रहते हैं ?

उ०—(क) इन पन्द्रह चन्द्रमण्डलों में से जितने चन्द्रमण्डल नक्षत्रों से सदा अविरहित रहते हैं वे आठ हैं, यथा—

(१) प्रथम चन्द्रमण्डल, (२) तृतीय चन्द्रमण्डल, (३) छठा चन्द्रमण्डल, (४) सातवाँ चन्द्रमण्डल, (५) आठवाँ चन्द्रमण्डल, (६) दसवाँ चन्द्रमण्डल, (७) इग्यारहवाँ चन्द्रमण्डल, (८) पन्द्रहवाँ चन्द्रमण्डल।

(ख) जितने चन्द्रमण्डल नक्षत्रों से सदा विरहित रहते हैं, वे सात हैं, यथा—

(१) द्वितीय चन्द्रमण्डल, (२) चतुर्थ चन्द्रमण्डल, (३) पंचम चन्द्रमण्डल, (४) नवम चन्द्रमण्डल, (५) द्वादशम चन्द्रमण्डल, (६) त्रयोदशम चन्द्रमण्डल, (७) चतुर्दशम चन्द्रमण्डल।

(ग) जितने चन्द्रमण्डल सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रों के साथ सामान्य रहते हैं वे चार हैं. यथा—

(१) प्रथम चन्द्रमण्डल, (२) द्वितीय चन्द्रमण्डल, (३) एकादशम चन्द्रमण्डल, (४) पंचदशम चन्द्रमण्डल।

(घ) जितने चन्द्रमण्डल सूर्यो से सदा विरहित रहते हैं, वे पाँच है; यथा—

(१) छठा चन्द्रमण्डल, (२) सप्तम चन्द्रमण्डल, (३) अष्टम चन्द्रमण्डल, (४) नवम चन्द्रमण्डल, (५) दसम चन्द्रमण्डल।

सूर्य वर्णन

सूर सद्दस्स विसिट्ठऽत्थं—

९९५. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"सूरे आदिच्चे सूरे आदिच्चे" ?

उ०—गोयमा ! सूरादीया णं समया इ वा, आवलिया इ वा, -जाव-ओसप्पिणी इ वा, उस्सप्पिणी इ वा ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"सूरे आदिच्चे सूरे आदिच्चे" ।[1] —भग. स. १२, उ. ६, सु. ५

सूर्य शब्द का विशिष्टार्थ—

९९५. प्र०—हे भगवन् ! सूर्य को "आदित्य" किस अभिप्राय से कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! समय, आवलिका—**यावत्**—अवसर्पिणी, उत्सर्पिणीकाल का आदि भूत कारण सूर्य है ।

हे गौतम ! इस कारण से सूर्य "आदित्य" का जाता है ।

सूरियस्स सरुवअण्णयत्थ-पभा-छाया-लेस्साणं सुभत्तं—

९९६. तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं गोयमे अचिरुग्गयं बालसूरियं जासुमणा कुसुमपुञ्जप्पगासं लोहीतगं पासति, पासित्ता जाय-सड्ढे-जाव-समुप्पन्नकोउहल्ले जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता-जाव-एवं वयासी—

प०—किमिदं भंते ! सूरिए ? किमिदं भंते ! सूरियस्स अट्ठे ?

उ०—गोयमा ! सुभे सूरिए; सुभे सूरियस्स अट्ठे ।

प०—किमिदं भंते ! सूरिए ? किमिदं भंते ! सूरियस्स पभा ?

उ०—एवं चेव । एवं छाया । एवं लेस्सा ।

—भग. स. १४, उ. ९, सु. १३-१६

सूर्य के स्वरूप अन्वयार्थ-प्रभा-छाया और लेश्याओं का शुभत्व—

९९६. उस काल और उस समय में भगवान गौतम अचिरोद्गत (अभी अभी उगे हुए) जासुमन-पुष्प-पुंज के समान रक्तवर्ण आभा वाले बाल सूर्य को देखते हैं देखकर श्रद्धावश—**यावत्**—उत्पन्न-कौतूहल के वश हो जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे वहाँ आते हैं आकर वन्दना नमस्कार करते हैं, वन्दना नमस्कार करके—**यावत्**—इस प्रकार बोले—

प्र०—हे भगवन् ! यह सूर्य क्या है ? और सूर्य का अर्थ क्या है ?

उ०—हे गौतम ! सूर्य शुभ हैं और सूर्य का अर्थ शुभ है ।

प्र०—हे भगवन् ! यह सूर्य क्या है और सूर्य की प्रभा क्या है ?

उ०—**पूर्वोक्त के समान है । इसी प्रकार छाया और लेश्या के प्रश्नोत्तर हैं ।**

सूरिअस्स उदगऽत्थमणाइं पडुच्च अन्तर-पगास-खेत्ताइं परूवणं—

९९७. १. प०—जावइयाओ णं भंते ! ओवासंतराओ उदयंते सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ ।

अत्थमंते वि य णं सूरिए तावइयाओ चेव ओवासंतराओ चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ ?

उ०—हंता गोयमा ! जावइयाओ णं ओवासंतराओ उदयंते सूरिए चक्खुफासं हव्वमागच्छइ ।

अत्थमंते वि सूरिए तावइयाओ चेव ओवासंतराओ चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ ।

सूर्य के उदयास्त को लेकर अन्तर, प्रकाश, देवादि का प्ररूपण—

९९७. (१) प्र०—भगवन् ! उदय के समय में सूर्य जितने अवकाशान्तर से चक्षुस्पर्श को शीघ्र प्राप्त होता है ।

क्या अस्त के समय भी सूर्य उतने ही अवकाशान्तर से चक्षु-स्पर्श को शीघ्र प्राप्त होता है ?

उ०—हाँ गौतम ! उदय के समय में सूर्य जितने अवकाशान्तर से चक्षुस्पर्श को शीघ्र प्राप्त होता है ।

अस्त समय में भी सूर्य उतने ही अवकाशान्तर से चक्षुस्पर्श को शीघ्र प्राप्त होता है ।

---

१ (१) सूरिय. पा. २०, सु. १०४ । (ख) चन्द पा. २०, सु. १०४ ।

२. प०—जावइयं णं भंते ! खेत्तं उदयंते सूरिए आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ उज्जोएइ, तवेइ, पभासेइ।

अत्थमंते वि य णं सूरिए तावइयं चेव खेत्तं आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ, उज्जोएइ, तवेइ पभासेइ?

उ०—गोयमा ! जावइयं ण खेत्तं उदयंते सूरिए आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ, उज्जोएइ, तवेइ, पभासेइ।

अत्थमंते वि सूरिए तावइयं चेव खेत्तं आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ, उज्जोएइ, तवेइ, पभासेइ।

३. प०—तं भंते ! किं पुट्ठं ओभासेइ ? अपुट्ठं ओभासेइ ?

उ०—गोयमा ! पुट्ठं ओभासेइ, नो अपुट्ठं ।

४. प०—तं भंते ! किं ओगाढं ओभासेइ ? अणोगाढं ओभासेइ ?

उ०—गोयमा ! ओगाढं ओभासेइ, नो अणोगाढं ।

५. प०—तं भंते ! किं अणंतरोगाढं ओभासेइ ? परम्परोगाढं ओभासेइ ?

उ०—गोयमा ! अणंतरोगाढं ओभासेइ, नो परंपरोगाढं ।

६. प०—तं भंते ! किं अणुं ओभासेइ ? बायरं ओभासेइ ?

उ०—गोयमा ! अणुं पि ओभासेइ, बायरं पि ओभासेइ।

७. प०—तं भंते ! किं उड्ढं ओभासेइ ? तिरियं ओभासेइ ? अहे ओभासेइ ?

उ०—गोयमा ! उड्ढं पि ओभासेइ तिरियं पि ओभासेइ अहे पि ओभासेइ ।

८. प०—तं भंते ! किं आइं ओभासेइ ? मज्झे ओभासेइ ? अंते ओभासेइ ?

उ०—गोयमा ! आइं पि ओभासेइ मज्झे वि ओभासेइ अंते वि ओभासेइ ।

(२) प्र०—भगवन् ! उदय के समय में सूर्य चारों ओर से जितने क्षेत्र को आतप से अवभासित करता है उद्योतित करता है, तपाता है प्रभासित करता है ।

क्या अस्त समय में भी सूर्य चारों ओर से उतने ही क्षेत्र को आतप से अवभासित करता हैं ? उद्योतित करता है ? तपाता है ? प्रभासित करता है ?

उ०—हाँ गौतम ! उदय के समय में सूर्य चारों ओर से जितने क्षेत्र को आतप से अवभासित करता है, उद्योतित करता है तपाता है, प्रभासित करता है ।

अस्त समय में भी सूर्य चारों ओर से उतने ही क्षेत्र को आतप से अवभासित करता है, उद्योतित करता है। तपाता है प्रभासित करता है ।

(३) प्र०—भगवन् ! क्या वह सूर्य स्पृष्टक्षेत्र को अवभासित करता है ।

उ०—हे गौतम ! स्पृष्टक्षेत्र को अवभासित करता है अस्पृष्टक्षेत्र को अवभासित नहीं करता है ।

(४) प्र०—भगवन् ! क्या वह अवगाढक्षेत्र को अवभासित करता है ?

उ०—हे गौतम ! अवगाढक्षेत्र को अवभासित करता है । अनवगाढक्षेत्र को अवभासित नहीं करता है ।

(५) प्र०—भगवन् ! क्या वह अनन्तरावगाढक्षेत्र को अवभासित करता है ? या परम्परावगाढ क्षेत्र को अवभासित करता है ?

उ०—हे गौतम ! अवगाढक्षेत्र को अवभासित करता है परम्परावगाढक्षेत्र को अवभासित नहीं करता है ?

(६) प्र०—भगवन् ! क्या वह अणु (सूक्ष्म) को अवभासित करता है ? या बादर (स्थूल) को अवभासित करता है ?

उ०—हे गौतम ! अणु को भी अवभासित करता है; बादर को भी अवभासित करता है ।

(७) भगवन् ! क्या वह ऊँचे क्षेत्र को अवभासित करता है ? तिरछे क्षेत्र को अवभासित करता है ? नीचे के क्षेत्र को अवभासित करता है ?

उ०—हे गौतम ! ऊँचे, तिरछे और नीचे के क्षेत्र को भी अवभासित करता है ।

(८) प्र०—भगवन् ! क्या वह सूर्य क्षेत्र के आदि भाग को अवभासित करता है ? क्षेत्र के मध्यभाग को अवभासित करता है ? क्षेत्र के अन्तिमभाग को अवभासित करता है ?

उ०—हे गौतम ! वहाँ सूर्य क्षेत्र के आदि भाग को, मध्य-भाग को और अन्तिम भाग को अवभासित करता है ।

९. प०—तं भंते ! किं सविसए ओभासेइ ? अविसए ओभासेइ ?

उ०—गोयमा ! सविसए ओभासेइ नो अविसए ।

१०. प०—तं भंते ! किं आणुपुव्विं ओभासेइ ? अणाणुपुव्विं ओभासेइ ?

उ०—गोयमा ! आणुपुव्विं ओभासेइ णो अणाणुपुव्विं ओभासेइ ।

११. प०—तं भंते ! कइदिसिं ओभासेइ ?

उ०—गोयमा ! नियमा छद्दिसिं ।

एवं (११) २२ उज्जोवेइ, (११) ३४ तवेइ (११) ४४ पभासेइ-जाव-नियमा छद्दिसिं ।[1]

४५. प०—से नूणं भंते ! सव्वंति सव्वावंति फुसमाणकाल समयंसि जावइयं खेत्तं फुसइ तावइयं फुसमाणे पुट्ठे त्ति वत्तव्वं सिया ?

उ०—हंता गोयमा ! सव्वंति सव्वावंति फुसमाणकाल समयंसि जावइयं खेत्तं फुसइ तावइयं फुसमाणे पुट्ठे त्ति वत्तव्वं सिया ।

४६. प०—तं भंते ! किं पुट्ठं फुसइ ? अपुट्ठं फुसइ ?

उ०—गोयमा ! पुट्ठं फुसइ नो अपुट्ठं ।

४७-५६-जाव-

५७. प०—तं भंते ! कइदिसिं फुसइ ?

उ०—गोयमा ! नियमा छद्दिसिं फुसइ ।

—भग. स. १, उ. ६, सु. १-४

(९) प्र०—भगवन् ! क्या वह सूर्य स्वविषय को अवभासित करता है ? या अविषय को अवभासित करता है ?

उ०—हे गौतम ! वह स्वविषय को ही अवभासित करता है अविषय को अवभासित नहीं करता है ।

(१०) प्र०—भगवन् ! क्या वह सूर्य क्रम से अवभासित करता है ? या बिना क्रम के अवभासित करता है ?

उ०—हे गौतम ! वह क्रम से अवभासित करता है, बिना क्रम के अवभासित नहीं करता है ।

(११) प्र०—भगवन् ! वह सूर्य किस दिशा को अवभासित करता है ?

उ०—हे गौतम ! वह नियमित छहों दिशाओं को अवभासित करता है ।

इसी प्रकार वह (११)२२ उद्योतित करता है (११)३३ तपाता है—यावत्—वह नियमतः छहों दिशाओं को (११)४४ प्रभासित करता है ।

(४५) प्र०—भगवन् ! क्या वह सूर्य स्पर्शकाल के समय जितने क्षेत्र को स्पर्श करता है उतने सारे क्षेत्र को सब ओर से स्पर्श करता हुआ स्पृष्ट कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! स्पर्शकाल के समय जितने क्षेत्र को स्पर्श करता है उतने सारे क्षेत्र को सब ओर से स्पर्श करता हुआ स्पृष्ट कहा जाता है ।

(४६) प्र०—भगवन् ! क्या वह सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र को स्पर्श करता है ? या अस्पृष्ट क्षेत्र को स्पर्श करता है ?

उ०—हे गौतम ! स्पृष्ट क्षेत्र को स्पर्श करता है । अस्पृष्ट क्षेत्र को स्पर्श नहीं करता है ।

यावत्—(४७-५६) ।

५७. प्र०—भगवन् ! वह किस दिशा को स्पर्श करता है ?

उ०—हे गौतम ! वह नियमित छहों दिशाओं को स्पर्श करता है ।

लवणसमुद्दे सूरिय-उदयाइ परूवणा—

६६८. प०—लवणे णं भंते ? समुद्दे सूरिया—
उदीण-पाईणमुग्गच्छ दाहिण-दाहिणमागच्छंति ?
पाईण-दाहिणमुग्गच्छ दाहिण-पाईणमागच्छंति ?
दाहिण-पाईणमुग्गच्छ पाईण-उदीणमागच्छंति ?
पाईण-उदीणमुग्गच्छ उदीण-पाईणमागच्छंति ?

लवणसमुद्र में सूर्योदयादि का प्ररूपण—

६६८. प्र०—हे भगवन् ! लवणसमुद्र में सूर्य—
ईशानकोण में उदय होकर अग्निकोण में अस्त होते हैं ?
अग्निकोण में उदय होकर नैऋत्यकोण में अस्त होते हैं ?
नैऋत्यकोण में उदय होकर वायव्यकोण में अस्त होते हैं ?
वायव्यकोण में उदय होकर ईशानकोण में अस्त होते हैं ?

१ जम्बु. वक्ख. ७. सु. १३७ ।

उ०—हंता गोयमा ! लवणसमुद्दे सूरिया—
उदीण-पाईणमुग्गच्छ-जाव-उदीण-पाईणमागच्छंति,

"जच्चेव जंबुद्दीवस्स वत्तव्वया भणिया, सच्चेव सव्वा अपरिसेसिया लवणसमुद्दस्स वि भाणियव्वा"

नवरं—इमेण आलावेण सव्वे आलावगा भाणियव्वा,

प०—"जया णं भंते ! लवणे समुद्दे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे वि दिवसे भवइ, जयाणं उत्तरड्ढे दिवसे भवइ, तया णं लवणे समुद्दे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं राई भवइ।"

उ०—हंता गोयमा ! जया णं लवणसमुद्दे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ-जाव-तयाणं लवणसमुद्दे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं राई भवइ,

एएणं अभिलावेणं णेयव्वं,[1]

—भग. स. ५, उ. १, सु. २२

उ०—हाँ गौतम ! लवणसमुद्र में सूर्य—
ईशानकोण में उदय होकर—यावत्—ईशानकोण में अस्त होते हैं।

जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में पहले जितने प्रश्नोत्तर कहे गये हैं वे सारे प्रश्नोत्तर लवणसमुद्र के सम्बन्ध में कहने चाहिए।

विशेष—प्रश्नोत्तर इस प्रकार जानने चाहिए।

प्र०—हे भगवन् ! जब लवणसमुद्र के दक्षिणार्ध में दिन होता है तब उत्तरार्ध में भी दिन होता है, जब उत्तरार्ध में दिन होता है तब लवणसमुद्र के पूर्व-पश्चिम में रात्रि होती है ?

उ०—हाँ गौतम ! जब लवणसमुद्र के दक्षिणार्ध में दिन होता है—यावत्—तब लवणसमुद्र के पूर्व-पश्चिम में रात्रि होती है।

एसे प्रश्नोत्तर जानने चाहिए।

धायइसंडे सूरिय उदयाइ परूवणा—

६६६. प०—धायइसंडे णं भंते ! दीवे सूरिया—
उदीचि पाईणमुग्गच्छ-जाव-उदीण-पाईणमागच्छंति ?

उ०—हंता गोयमा ! धायइसंडेदीवे सूरिया—
उदीचि-पाईणमुग्गच्छ-जाव-उदीण-पाईणमागच्छंति।

"जच्चेव जंबुद्दीवस्स वत्तव्वया भणिया,
सच्चेव धायइसंडस्स वि भाणियव्वा,
नवरं—इमेण आलावेण सव्वे आलावगा भाणियव्वा।

प०—जया णं भंते ! धायइसंडे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे वि दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे दिवसे भवइ, तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं राई भवइ ?

उ०—हंता गोयमा ! जया णं धायइसंडे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ-जाव-तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं राई भवइ।

प०—जया णं भंते ! धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमेणं दिवसे भवइ, तया णं पच्चत्थिमेणं वि दिवसे भवइ ?

धातकीखण्ड में सूर्योदयादि की प्ररूपणा—

६६६. प्र०—हे भगवन ! धातकीखण्ड द्वीप में सूर्य—
ईशानकोण में उदय होकर—यावत्—ईशानकोण में अस्त होते हैं ?

उ०—हे गौतम ! धातकीखण्ड द्वीप में सूर्य—
ईशानकोण में उदय होकर—यावत्—ईशानकोण में अस्त होते हैं।

"जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में पहले जितने प्रश्नोत्तर कहे गये हैं वे सारे प्रश्नोत्तर धातकीखण्ड के सम्बन्ध में कहने चाहिए।

विशेष—इस आलापक के अनुसार सारे आलापक कहने चाहिए।

प्र०—हे भगवन् ! जब धातकीखण्ड द्वीप के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी दिन होता है, जब उत्तरार्द्ध में दिन होता है तब धातकीखण्डद्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व-पश्चिम में रात्रि होती है ?

उ०—हां गौतम ! जब धातकीखण्ड द्वीप के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है—यावत्—तब धातकीखण्ड के मन्दर पर्वत से पूर्व-पश्चिम में रात्रि होती है।

प्र०—हे भगवन् ! जब धातकीखण्ड द्वीप में मन्दर पर्वतों से पूर्व में दिन होता है तब पश्चिम में भी दिन होता है ?

---

१ (क) सूरिय. पा. ८, सु, २६।
(ग) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १५०।
(ख) चन्द. पा. ८, स. २६।

जया णं पच्चत्थिमणं दिवसे भवइ, तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं उत्तरदाहिणेणं राई भवइ ?

उ०—हंता गोयमा ! जया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमे दिवसे भवइ-जाव-तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं उत्तर-दाहिणेणं राई भवइ ।

एवं एएणं अभिलावेणं णेयव्वं[1]

—भग. स. ५, उ. १, सु. २३-२५

जब पश्चिम में दिन होता है तब धातकीखण्ड द्वीप में मन्दर पर्वतों के उत्तर-दक्षिण में रात्रि होती है ?

उ०—हाँ गौतम ! जब धातकीखण्ड द्वीप में मन्दर पर्वतों के पूर्व दिन होता है—यावत्—तब धातकीखण्ड द्वीप में मन्दर-पर्वतों से उत्तर-दक्षिण में रात्रि होती है ।

इस प्रकार के प्रश्नोत्तर से सारे प्रश्नोत्तर जानने चाहिए ।

कालोद समुद्दे सूरियोदयाई परूवण—

१०००. जहा लवणसमुद्दस्स वत्तव्वया भणिया,
तहा कालोदस्स वि भाणियव्वा,
नवरं :—कालोदस्स नामं भाणियव्वं,[2]

—भग. स. ५, उ. १, सु. २६

कालोदसमुद्र में सूर्योदय आदि का प्ररूपण—

१०००. जिस प्रकार लवणसमुद्र के सम्बन्ध में कहने योग्य कहा—उसी प्रकार कालोदसमुद्र के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए ।

विशेष—(लवणसमुद्र के प्रश्नोत्तर सूत्रों में "लवणसमुद्र" नाम के स्थान में "कालोदसमुद्र" कहना चाहिए) "कालोद" नाम कहना चाहिए ।

अब्भतर पुक्खरद्धे सूरिय-उदयाइ परूवणा—

※१. ता अब्भंतर-पुक्खरद्धे णं दीवे सूरिया—

उदीण-पाईणमुग्गच्छंति, पाईण-दाहिणमागच्छंति,

-जाव-पडीण-उदीणमुग्गच्छंति, उदीण-पाईणमागच्छंति,

ता जया णं अब्भंतर-पुक्खरद्धे मंदराणं पव्वयाणं दाहिणड्ढे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे दिवसे भवइ, तया णं अब्भिंतरपुक्खरद्धे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं राई भवइ,

सेसं जहा जंबुद्दीवे दीवे तहेव-जाव-ओसप्पिणी,[3]

—सूरिय. पा. ८, सु. २९

आभ्यन्तर पुष्करार्ध में सूर्योदयादि का प्ररूपण—

१. आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध द्वीप में सूर्य—

उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) में उदय होकर (अग्निकोण) पूर्व-दक्षिण में आते हुए दिखाई देते हैं ।

—यावत्—पश्चिम उत्तर (वायव्यकोण) में उदय होकर उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) में आते हुए दिखाई हैं ।

जब आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध के मन्दर पर्वत से दक्षिणार्द्ध में दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी दिन होता है ।

जब उत्तरार्द्ध में दिन होता है तब आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध के मन्दर पर्वत से पूर्व-पश्चिम में रात्रि होती है ।

जिस प्रकार जम्बूद्वीप के आलापक कहे हैं उसी प्रकार आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध के अवसर्पिणी पर्यन्त शेष आलापक कहने चाहिए ।

---

१ (क) सूरिय. पा. ८, सु. २९ । (ख) चन्द. पा. ८, सु. २९ ।
(ग) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १५० ।

२ (क) सूरिय. पा. ८, सू. २९ । (ख) चन्द. पा. ८, सु. २९ ।

३ (क) प०—अब्भिंतर पुक्खरद्धे णं भंते ! सूरिया—
उदीण-पाईणमुग्गच्छ पाईण-दाहिणमागच्छंति-जाव-
पाईणउदीणमुग्गच्छ उदीण-पाईणमागच्छंति ?
उ०—हंता गोयमा ! अब्भिंतर पुक्खरद्धे सूरिया—
उदीण-पाईणमुग्गच्छ, पाईण-दाहिणमागच्छंति-जाव-पादीण-उदीणमुग्गच्छ उदीण-पाईणमागच्छंति,
जहेव धायइसंडस्स वत्तव्वया भणिया,
तहेव अब्भिंतरपुक्खरद्धस्स वि भाणियव्वा,
नवरं:—सव्वे अभिलावा जाणियव्वा-जाव- । —भग. स. ५, उ. १, सु. २७

(ख) चन्द. पा. ८, सु. २९ । (ग) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १५० ।

※ सूत्र संख्या १ से पुनः प्रारम्भ की गई है जिसे पाठक १००१ क्रमशः समझें ।

सूरस्स उदय-संठिई—

२. प०—ता कहं ते उदयसंठिई ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ तिण्णि पडिवत्तीओ, पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. तत्थेगे एवमाहंसु—

(क) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

(ख) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

(ग) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे सोलसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि सोलसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे सोलसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि सोलसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

(घ) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

(ङ) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे चउद्दसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि चउद्दसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे चउद्दसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि चोद्दसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

(च) ता जया ण जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे तेरसमुहुत्ते दिवसे भवइ. तया णं उत्तरड्ढेऽवि तेरसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे तेरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि तेरसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

सूर्य की उदय व्यवस्था—

२. प्र०—(सूर्य की) उदय-संस्थिति=व्यवस्था किस प्रकार है ? कहें।

उ०—(सूर्य की उदय-व्यवस्था के सम्बन्ध में) ये तीन प्रतिपत्तियाँ कही गई है, यथा—

१. इनमें से एक मान्यता वालों ने इस प्रकार कहा है—

(क) जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में अठारह मुहूर्त का दिन होता है, तब उत्तरार्द्ध में भी अठारह मुहूर्त का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में अठारह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी अठारह मुहूर्त का दिन होता है।

(ख) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में सतरह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी सतरह मुहूर्त का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में सतरह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी सतरह मुहूर्त का दिन होता है।

(ग) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में सोलह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी सोलह मुहूर्त का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में सोलह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी सोलह मुहूर्त का दिन होता है।

(घ) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है।

(ङ) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में चौदह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी चौदह मुहूर्त का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में चौदह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी चौदह मुहूर्त का दिन होता है।

(च) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में तेरह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी तेरह मुहूर्त का दिन होता है

जब उत्तरार्द्ध में तेरह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी तेरह मुहूर्त का दिन होता है।

(छ) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

(ज) तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ, अवट्ठिया णं तत्थ राइंदिया पण्णत्ता,

समणाउसो ! एगे एवमाहंसु,

२. एगे पुण एवमाहंसु—

(क) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

(ख) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

(ग) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

(घ) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

(ङ) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

(छ) जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी बारह मुहूर्त का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी बारह मुहूर्त का दिन होता है।

(ज) जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दरपर्वत से पूर्व-पश्चिम में सदा पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है और पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि होती है। वहाँ रात-दिन अवस्थित कहे गये हैं।

हे आयुष्मन् श्रमण ! एक मान्यता वाले इस प्रकार कहते हैं।

(२) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं—

(क) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में अठारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध भी अठारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में अठारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है। तब दक्षिणार्द्ध में भी अठारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

(ख) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में सत्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी सत्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में सत्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी सत्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

(ग) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में सोलह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी सोलह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में सोलह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी सोलह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

(घ) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में पन्द्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी पन्द्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में पन्द्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी पन्द्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

(ङ) जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में चौदह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है। तब उत्तरार्द्ध में भी चौदह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में चौदह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी चौदह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

(च) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

(छ) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेऽवि बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढेऽवि बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,

(ज) तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं णो सया पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ,
णो सया पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ,
अणवट्ठिया णं तत्थ राइंदिया पण्णत्ता,
समणाउसो ! एगे एवमाहंसु,

३. एगे पुण एवमाहंसु—

(क) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

(ख) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

(क) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

(ख) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,
जया णं उत्तरड्ढे सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

(क) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे सोलसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(च) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में तेरह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी तेरह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में तेरह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी तेरह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

(छ) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी बारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी बारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है।

(ज) जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व-पश्चिम में पन्द्रह मुहूर्त का दिन सदा नहीं होता है और न पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि ही सदा होती है।

वहाँ रात-दिन अनवस्थित कहे गये हैं।

हे आयुष्मन् श्रमण ! एक मान्यता वाले इस प्रकार कहते हैं।

(३) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं—

(क) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध भरत में अठारह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जब उत्तरार्द्ध में अठारह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(ख) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में अठारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है, तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जब उत्तरार्द्ध में अठारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(क) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में सत्रह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जब उत्तरार्द्ध में सत्रह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(ख) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में सत्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जब उत्तरार्द्ध में सत्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(क) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में सोलह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जया णं उत्तरड्ढे सोलसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

जब उत्तरार्द्ध में सोलह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(ख) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(ख) जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में सोलह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जया णं उत्तरड्ढे सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

जब उत्तरार्द्ध में सोलह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(क) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(क) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जया णं उत्तरड्ढे पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

जब उत्तरार्द्ध में पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(ख) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(ख) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में पन्द्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जया णं उत्तरड्ढे पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

जब उत्तरार्द्ध में पन्द्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(क) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे चोद्दसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(क) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणर्द्धा में चौदह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्ध में बारह मुहूर्त रात्रि होती है।

जया णं उत्तरड्ढे चोद्दसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

जब उत्तरार्द्ध में चौदह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती होती है।

(ख) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(ख) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में चौदह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जया णं उत्तरड्ढे चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

जब उत्तरार्द्ध में चौदह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(क) ता जया णं जं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे तेरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(क) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में तेरह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जया णं उत्तरड्ढे तेरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

जब उत्तरार्द्ध में तेरह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(ख) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(ख) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में तेरह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जया णं उत्तरड्ढे तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

जब उत्तरार्द्ध मे तेरह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(क) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

(ख) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ,

(ग) तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम पच्चत्थिमे णं णेवत्थि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, णेवत्थि पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ,

वोच्छिण्णा ण तत्थ राइंदिया पण्णत्ता, समणाउसो !

एगे एवमाहंसु,[1] —सूरिय. पा. ८, सु. २६

वयं पुण एवं वयामो—

ता जंबुद्दीवे दीवे सूरिया,

उदीण-पाईणमुग्गच्छंति, पाईण-दाहिणमागच्छंति,

पाईण-दाहिणमुग्गच्छंति, दाहिण-पडीणमागच्छंति,

दाहिण-पडीणमुग्गच्छंति, पडीण-उदीणमागच्छंति,

पडीण-उदीणमुग्गच्छंति, उदीण-पाइणमागच्छंति,[2]

२. (क) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेवि दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे पच्चत्थिमे णं राई भवइ,

(क) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है !

(ख) जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है। तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(ग) उस समय जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व-पश्चिम में न पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है और न पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि होती है।

वहाँ रात-दिन व्युच्छिन्न कहे गये हैं, हे आयुष्मन् श्रमण ! एक मान्यता वाले इसे इस प्रकार कहते हैं।

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

जम्बूद्वीप द्वीप में सूर्य—

१—उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) में उदय होते हैं और पूर्व-दक्षिण (आग्नेयकोण) में आते (हुए दिखाई देते) हैं।

पूर्व-दक्षिण (आग्नेयकोण) में उदय होते हैं और दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण) में आते (हुए दिखाई देते) हैं।

दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण) में उदय होते हैं और पश्चिम-उत्तर (वायव्यकोण) में आते (हुए दिखाई देते) हैं।

पश्चिम-उत्तर (वायव्यकोण) में उदय होते हैं और उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) में आते (हुए दिखाई देते) हैं।

२—(क) जब जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिणार्द्ध में दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में दिन होता है तब जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व और पश्चिम में रात्रि होती है।

---

१ चन्द. पा. ८, सु. २६।

२ (क) प०—जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआ उदीण-पाईणमुग्गच्छ पाईण-दाहिणमागच्छंति ?
पाइण-दाहिणमुग्गच्छ दाहिण-पडीणमागच्छंति ?
दाहिण-पडीणमुग्गच्छ पडीण-उदीणमागच्छंति ?
पडीण-उदीणमुग्गच्छ उदीण-पाईणमागच्छंति ?
उ०—हंता गोयमा ! जहा पंचमसए पढमे उद्देसे-जाव-णेवत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पं. समणाउसो !
—भग. स. ५, उ. १, सु. ५

(ख) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १५०।

३. (ख) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण दिवसे भवइ, तया णं पच्चत्थिमेऽवि दिवसे भवइ,

जया णं पच्चत्थिमे णं दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं राई भवइ,

४. (क) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तर-ड्ढेऽवि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

जया णं उत्तरड्ढे उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

५. (ख) ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं पच्चत्थिमेऽवि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

जया णं पच्चत्थिमे णं उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

एवं एएणं गमेणं णेयव्वं—

अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेग-दुवालस-मुहुत्ता राई,

सत्तरस-मुहुत्ते दिवसे, तेरस-मुहुत्ता राई,

सत्तरस-मुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेग-तेरस-मुहुत्ता राई,

सोलस-मुहुत्ते दिवसे, चोद्दस-मुहुत्ता राई,

सोलस-मुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेगे-चोद्दस-मुहुत्ता राई,

पण्णरस-मुहुत्ते दिवसे, पण्णरस-मुहुत्ता राई,

पण्णरस-मुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेग-पण्णरस-मुहुत्ता राई,

चोद्दस-मुहुत्ते दिवसे, सोलस-मुहुत्ता राई,

चोद्दस-मुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेग-सोलस-मुहुत्ता राई,

तेरस-मुहुत्ते दिवसे सत्तरस-मुहुत्ता राई,

३—(ख) जब जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व में दिन होता है तब पश्चिम में भी दिन होता है।

जब पश्चिम में दिन होता है तब जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर और दक्षिण में रात्रि होती है।

४—(क) जब जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिणार्द्ध में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है।

जब उत्तरार्द्ध में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है तब जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व-पश्चिम में जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(ख) जब जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है तब पश्चिम में भी उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है।

जब पश्चिम में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है तब जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर-दक्षिण में जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

इस प्रकार इस इन सदृश पाठों से (आगे) जानना चाहिए।

जब अठारह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब बारह मुहूर्त से कुछ अधिक की रात्रि होती है।

जब सत्रह मुहूर्त का दिन होता है तब तेरह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जब सत्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब तेरह मुहूर्त से कुछ अधिक की रात्रि होती है।

जब सोलह मुहूर्त का दिन होता है तब चौदह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जब सोलह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब चौदह मुहूर्त से कुछ अधिक की रात्रि होती है।

जब पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है तब पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जब पन्द्रह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब पन्द्रह मुहूर्त से कुछ अधिक की रात्रि होती है।

जब चौदह मुहूर्त का दिन होता है तब सोलह मुहूर्त की रात्रि होती है।

जब चौदह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब सोलह मुहूर्त से कुछ अधिक की रात्रि होती है।

जब तेरह मुहूर्त का दिन होता है तब सत्रह मुहूर्त की रात्रि होती है।

तेरस-मुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेग-सत्तरस-मुहुत्ता राई,

जब तेरह मुहूर्त से कुछ कम का दिन होता है तब सत्रह मुहूर्त से कुछ अधिक की रात्रि होती है।

जहण्णए दुवालस-मुहुत्ते दिवसे भवइ, उक्कोसिया अट्ठारस-मुहुत्ता राई भवइ। एवं भाणियव्वं।[1]

—सूरिय० पा० ८, सु० २६

जब जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है। इस प्रकार कहना चाहिए।

सूरियस्स ओयसंठिई—

सूर्य के ओज (प्रकाश) की संस्थिति (एक रूप में रहने की सीमा)

३. प०—ता कहं ते ओयसंठिई ? आहिए त्ति वएज्जा,

३. प्र०—(सूर्य के) ओज (प्रकाश) की संस्थिति कितनी है ? कहें।

उ०—तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ तं जहा—

उ०—इस सम्बन्ध में ये पच्चीस प्रतिपत्तियाँ (मान्यतायें) कही गई है, यथा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

उनमें से एक (मान्यता वालों) ने ऐसा कहा है—

१. ता अणुसमयमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु—

(१) सूर्य का प्रकाश प्रतिक्षण अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

२. ता अणुमुहुत्तमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

(२) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक मुहूर्त में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

३. ता अणुराइंदियमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

(३) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक अहोरात्र में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

४. ता अणुपक्खमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

(४) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक पक्ष में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

५. ता अणुमासमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

(५) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक मास में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

६. ता अणु उउमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

(६) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक ऋतु में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

७. ता अणु अयणमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

(७) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक अयन में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

८. ता अणुसंवच्छरमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

(८) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक संवत्सर में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

---

१ भग. श. ५ उ. १ सु. ५-१३। —सूरिय. पा. ८ सु. २६

एगे पुण एवमाहंसु—

९. ता अणुजुगमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१०. ता अणुवास-सयमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

११. ता अणुवास-सहस्समेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१२. ता अणुवाससयसहस्समेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१३. ता अणुपुव्वमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१४. ता अणुपुव्वसयमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१५. ता अणु पुव्वसहस्समेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१६. ता अणुपुव्वसयसहस्समेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१७. ता अणुपलिओवममेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१८. ता अणुपलिओवमसयमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१९. ता अणुपलिओवमसहस्समेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२०. ता अणुपलिओवमसयसहस्समेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(९) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक युग में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(१०) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक सौ वर्षों में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(११) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक हजार वर्ष में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(१२) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक लाख वर्ष में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(१३) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक पूर्व में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(१४) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक सौ पूर्व में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(१५) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक हजार पूर्व में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(१६) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक लाख पूर्व में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालो) ने फिर ऐसा कहा है—

(१७) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक पल्योपम में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(१८) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक सौ पल्योपम में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(१९) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक हजार पल्योपम में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२०) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक लाख पूर्व में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

२१. ता अणुसागरोवममेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२२. ता अणुसागरोवम-सयमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२३. ता अणुसागरोवम-सहस्समेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२४. ता अणुसागरोवम-सयसहस्समेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२५. ता अणु उस्सप्पिणि, ओसप्पिणिमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु,[1]

वयं पुण एवं वयामो —

(क) ता तीसं तीसं मुहुत्ते सूरियस्स ओया अवट्ठिया भवइ तेण परं सूरियस्स ओया अणवट्ठिया भवइ,

(ख) छम्मासे सूरिए ओयं णिव्वुड्ढेइ,
छम्मासे सूरिए ओयं अभिवुड्ढइ,

(ग) निक्खममाणे सूरिए देसं णिव्वुड्ढेइ,

पविसमाणे सूरिए देसं अभिवुड्ढेइ,

प०—तत्थ को हेउ ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्व दीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्व खुड्डागे वट्टे-जाव-जोयणसहस्समायाम-विक्खंभे णं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं, दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि कोसे, अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवे णं पण्णत्ते,

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२१) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक सागरोपम में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२२) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक सौ सागरोपम में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२३) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक हजार सागरोपम में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

एक (मान्यता वालों ने) फिर ऐसा कहा—

(२४) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक लाख सागरोपम में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता हैं।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२५) सूर्य का प्रकाश प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी में अन्य उत्पन्न होता है और अन्य विलीन होता है।

हम फिर इस प्रकार कहते हैं -

(क) सूर्य का प्रकाश तीस तीस मुहूर्त पर्यन्त अवस्थित रहता है तदनन्तर सूर्य का प्रकाश अनवस्थित हो जाता है।

(ख) सूर्य का प्रकाश छः मास में घटता रहता है।
सूर्य का प्रकाश छः मास में बढ़ता रहता है।

(ग) (सर्वाभ्यन्तर मण्डल से) निकलता हुआ सूर्य (१८३० भागों में से एक एक भाग को) देश को (प्रत्येक अहोरात्र में) घटाता रहता है।

(सर्व बाह्यमण्डल से सर्वाभ्यन्तर मण्डल की ओर) प्रवेश करता हुआ सूर्य (१८३० भागों में से एक एक भाग को) देश को (प्रत्येक अहोरात्र मे) बढ़ाता रहता है।

प्र०—इस प्रकार कथन करने का हेतु क्या है? कहें।

उ०—यह जम्बूद्वीप द्वीप सब द्वीप-समुद्रों के अन्दर हैं सबसे छोटा है वृत्ताकार संस्थान से स्थित है—यावत्—एक लाख योजन लम्बा चौड़ा है, तीन लाख दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठावीस धनुष तेरह अंगुल और आधे अंगुल से कुछ अधिक की परिधि कही गई है।

---

१ इन प्रतिपत्तियों से ऐसा प्रतीत होता है कि जैनागमों के अतिरिक्त अन्य दार्शनिक पुराणादि ग्रन्थों में भी औपमिककालवाचक "पल्योपम-सागरोपम, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी" आदि शब्दों का प्रयोग था।
वर्तमान में भी यदि पुराणादि ग्रन्थों में इन औपमिककाल वाचक शब्दों का कहीं प्रयोग हो तो अन्वेषणशील आत्मायें प्रयत्न करके प्रकाशित करें।

(१) ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारस-मुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(२) से निक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

ता जया णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगे णं राइंदिए णं एगं भागं ओयाए दिवसखित्तस्स निव्वुड्ढित्ता रयणि-खित्तस्स अभिवुड्ढित्ता चारं चरइ, मंडलं अट्ठारसेहिं तीसेहिं सएहिं छेत्ता,

तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगट्ठिभाग-मुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ; दोहिं एगट्ठि-भागमुहुत्तेहिं अहिया,

(३) से निक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतरा-णंतरं तच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

ता जया णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं तच्चं मण्डलं उवसंक-मित्ता चारं चरइ, तया णं दोहिं राइंदिएहिं दो भागे ओयाए दिवस-खेत्तस्स निव्वुड्ढिता, रयणि-खेत्तस्स-अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइ, मंडलं अट्ठारसेहिं तीसेहिं सएहिं छेत्ता,

तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठिभाग मुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगट्ठि-भागमुहुत्तेहिं अहिया,

(४) एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंत-राओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकम-माणे एगमेगे मंडले, एगमेगे णं राइंदिए णं एगमेगं एगमेगं भागं ओयाए दिवस-खेत्तस्स निव्वुड्ढेमाणे निव्वुड्ढेमाणे रयणि-खेत्तस्स अभिवुड्ढेमाणे अभिवुड्ढे-माणे सव्व वाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(५) ता जया ण सूरिए सव्वब्भंतराओ मंडलाओ सव्व वाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वब्भंतरं मंडलं पणिहाय एगे णं तेसिए राइंदियसए णं एगं तेसीयं भागसयं ओयाए दिवस-खेत्तस्स निव्वुड्ढेत्ता रयणि-खेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइ मंडलं अट्ठार-सेहिं तीसेहिं सएहिं छेत्ता,

(१) जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है, जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है ।

(२) (सर्वाभ्यन्तर मण्डल से) निकलता हुआ सूर्य नये संवत्सर के दक्षिणायन को प्रारम्भ करता हुआ प्रथम अहोरात्र में आभ्यन्त-रान्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

जब सूर्य आभ्यन्तरानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब मण्डल को अठारह सौ तीस भागों में विभाजित करके एक अहोरात्र में एक भाग दिवस क्षेत्र के एक प्रकाश को घटाकर और रजनि-क्षेत्र को बढ़ाकर गति करता है ।

उस समय एक मुहूर्त के इगसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है और एक मुहूर्त के इगसठ भाग तथा दो भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है ।

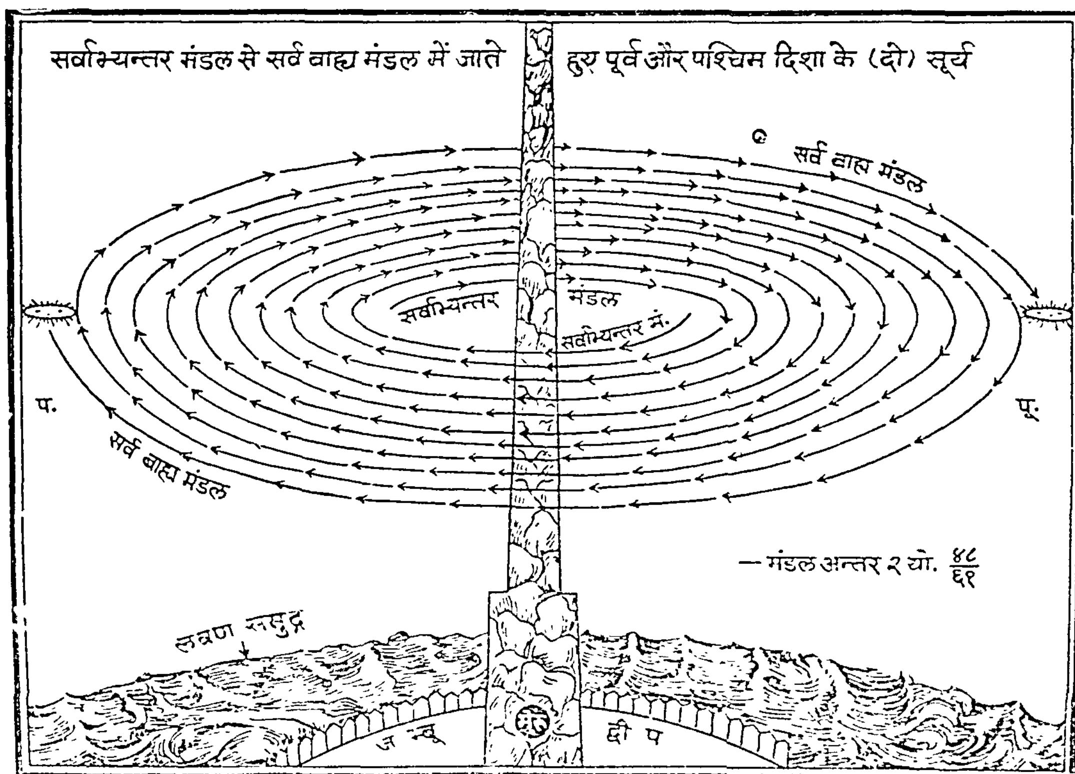
(३) (आभ्यन्तरानन्तर मण्डल से) निकलता हुआ वह सूर्य दूसरे अहोरात्र में आभ्यन्तरानन्तर तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है ।

जब सूर्य आभ्यन्तरान्तर तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब मण्डल को अठारह सौ तीस भागों में विभाजित करके दो अहोरात्र में दो भाग दिवस-क्षेत्र के प्रकाश को घटाकर और रजनि-क्षेत्र को बढ़ाकर गति करता है ।

उस समय एक मुहूर्त के इगसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है और एक मुहूर्त के इगसठ भाग तथा चार भाग अधिक बारह मुहुर्त की रात्रि होती है ।

(४) इस प्रकार इस क्रम से निकलता हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल को संक्रमण करता करता प्रत्येक मण्डल में एवं प्रत्येक अहोरात्र में एक एक भाग दिवस क्षेत्र के प्रकाश को घटाता घटाता और रजनि-क्षेत्र को बढ़ाता बढ़ाता सर्व बाह्य मण्डल की ओर बढ़ता हुआ गति करता है ।

(५) जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल से सर्व बाह्यमण्डल की ओर गति करता है तब मण्डल को अठारह सौ तीस भागों में विभाजित करके सर्वाभ्यन्तर मण्डल को छोड़कर एक सौ तिरासी भाग दिवस क्षेत्र के प्रकाश को घटाकर और रजनि-क्षेत्र को बढ़ाकर गति करता है ।



सर्व वाह्य मंडल मे स्थित पूर्व और पश्चिम दिशा के सूर्यों का पुनः सर्वाभ्यन्तर मंडल में प्रवेश

सर्व बाह्य मंडल

सर्वाभ्यन्तर मंडल

सर्वाभ्यन्तर मंडल

प.

पू.

सर्व बाह्य मंडल

लवण समुद्र

जम्बू द्वीप

विशेष वर्णन के लिए देखें—सूत्र १००३ पृष्ठ ४६५ से ४६७ तक

तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

एस णं पढमे छम्मासे,

एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

ये प्रथम छः मास (दक्षिणायन के) हैं।

यह प्रथम छः मास का अन्त है।

(१) से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(१) (सर्व बाह्य मण्डल की ओर से) प्रवेश करता हुआ वह सूर्य दूसरे छः मास से उत्तरायण प्रारम्भ करता हुआ प्रथम अहोरात्र में बाह्यानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगे णं राइंदिए णं एगं भागं ओयाए रयणिखेत्तस्स निव्वुड्ढेत्ता दिवस-खेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइ मंडलं अट्ठारसेहिं तीसेहिं सएहिं छेत्ता,

जब सूर्य बाह्यानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब मण्डल को अठारह सौ तीस भागों में विभाजित करके एक अहोरात्र में एक भाग रजनि-क्षेत्र में से प्रकाश को घटाकर और दिवस-क्षेत्र का बढ़ाकर गति करता है।

तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं एगट्ठिभाग-मुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगट्ठि-भागमुहुत्तेहिं अहिए,

उस समय एक मुहूर्त के इगसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और एक मुहूर्त के इगसठ भाग तथा दो भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है।

(२) से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं तच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(२) (बाह्यानन्तर मण्डल की ओर से) प्रवेश करता हुआ वह सूर्य दूसरे अहोरात्र में बाह्य तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए बाहिराणंतर तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं दोहिं राइंदिएहिं दोभाए ओयाए रयणिखेत्तस्स निव्वुड्ढेत्ता दिवस-खेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइ, मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं सएहिं छेत्ता,

जब सूर्य बाह्यानन्तर तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब मण्डल को अठारह सौ तीस भागों में विभाजित करके दो अहोरात्र में दो भाग रजनि-क्षेत्र में से प्रकाश से घटाकर और दिवस-क्षेत्र के बढ़ाकर गति करता है।

तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगट्ठिभाग-मुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठि-भागमुहुत्तेहिं अहिए,

उस समय एक मुहूर्त के इगसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और एक मुहूर्त के इगसठ भाग तथा चार भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है।

(३) एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणे एग-मेगे मंडले एगमेगे णं राइंदिए णं एगमेगं भागं ओयाए रयणि-खेत्तस्स निव्वुड्ढेमाणे निव्वुड्ढेमाणे दिवस-खेत्तस्स अभिवुड्ढेमाणे अभिवुड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

इस प्रकार इस क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल की ओर संक्रमण करता करता प्रत्येक मण्डल में एवं प्रत्येक अहोरात्र में एक एक भाग रजनि-क्षेत्र में से प्रकाश के घटाता घटाता और दिवस क्षेत्र के बढ़ाता बढ़ाता सर्वाभ्यन्तर मण्डल की ओर बढ़ता हुआ गति करता है।

(४) ता जया णं सूरिए सव्व बाहिराओ मंडलाओ सव्व-ब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं सव्व-बाहिरं मंडलं पणिहाय एगे णं तेसीए णं राइंदियसए णं एगे तेसीयं भागसयं ओयाए रयणि-खेत्तस्स निव्वुड्ढेत्ता दिवस-खेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइ, मंडलं अट्ठारसेहिं तीसेहिं सएहिं छेत्ता,

(४) जब सूर्य सर्व बाह्यमण्डल से सर्वाभ्यन्तरमण्डल की ओर गति करता है तब मण्डल को अठारह सौ तीस भागों में विभाजित करके सर्व बाह्यमण्डल को छोड़कर एक सौ तिरासी अहोरात्र में एक सौ तिरासी भाग रजनि-क्षेत्र में से प्रकाश के घटाकर और दिवसक्षेत्र के बढ़ाकर गति करता है।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

एस णं दोच्चे छम्मासे,
एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,
एस णं आइच्चे संवच्छरे,
एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे,[1]
—सूरिय. पा. ६, सु. २७

ये दूसरे छः मास (उत्तरायण के) हैं।
ये दूसरे छः मास का पर्यवसान है।
यह आदित्य संवत्सर है।
यह आदित्य संवत्सर का पर्यवसान है।

सूरियेण पगासिया पव्वया—

४. प०—ता किं ते सूरियं वरइ ? आहिएत्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ वीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता मंदरे णं पव्वए सूरियं वरइ, एगे एवमाहंसु,
एगे पुण एवमाहंसु—
२. ता मेरू णं पव्वए सूरियं वरइ एगे एवमाहंसु,
३-१९. एवं एएणं अभिलावे णं णेयव्वं तहेव-जाव- ।[3]

एगे पुण एवमाहंसु—
२०. ता पव्वयराये णं पव्वए सूरियं वरइ, एगे एवमाहंसु,

वयं पुण एवं वदामो—
ता मंदरे णं पव्वए सूरियं वरइ, एवं वि पवुच्चइ तहेव-जाव-(१-२० सूरिय. पा. ५, सु. २६ को देखें ।[3]
ता पव्वयराये णं पव्वए सूरियं वरइ, एवं वि पवुच्चइ

(क) ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति, ते णं पुग्गला सूरियं वरयंति,
(ख) अदिट्ठा वि णं पोग्गला सूरियं वरयंति,
(ग) चरिमलेस्संतरगया वि णं पोग्गला सूरियं वरयंति,[4]
—सूरिय. पा. ७, सु० २८

सूर्य से प्रकाशित पर्वत—

४. प्र०—सूर्य से कौनसा (पर्वत) प्रकाशित होता है ? कहें ।[2]

उ०—इस सम्बन्ध में ये बीस प्रतिपत्तियां (मान्यतायें) कही गई हैं, यथा—इनमें से एक (मान्यता वालों) ने ऐसा कहा है—

(१) सूर्य से 'मन्दर पर्वत' प्रकाशित होता है।
एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—
(२) सूर्य से 'मेरु पर्वत' प्रकाशित होता है।
(३-१९) इस प्रकार इन अभिलापों से पूर्ववत्—**यावत्**—जानना चाहिए।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—
(२०) सूर्य से "पर्वतराज" प्रकाशित होता है।

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—
सूर्य से "मन्दर पर्वत" भी प्रकाशित कहा जाता है—**यावत्** "पर्वतराज" भी प्रकाशित कहा जाता है।

(क) जितने पुद्गल सूर्य के प्रकाश का स्पर्श करते हैं उतने ही पुद्गलों को सूर्य प्रकाशित करता है।

(ख) अदृष्ट (अति सूक्ष्म) पुद्गलों को भी सूर्य प्रकाशित करता है।

(ग) मन्दर पर्वत के चारों ओर के ऊपरी भाग के पुद्गलों को भी सूर्य प्रकाशित करता है।

---

१ चन्द. पा. ६ सु. २७।

२ प्र०—सूर्य को (स्व प्रकाश रूप में) कौन (पर्वत) वरण (स्वीकार) करता है ?
उ०—सूर्य को "मन्दर पर्वत" (स्व प्रकाश रूप में) वरण (स्वीकार) करता है।
ऊपर लिखे इन बीस सूत्रों का शब्दार्थ इस प्रकार होता है, यहाँ अनुवाद में केवल फलितार्थ ही दिया हैं।

३ "सूरियस्स लेस्सा पडिघायगा पव्वया" इस शीर्षक के अन्तर्गत सूर्य. प्रा. ५, सु. २६ में बीस प्रतिपत्तियों के अनुसार सूर्य की लेश्या को प्रतिहत करने वाले बीस पर्वतों के नाम गिनाये हैं यहाँ भी उसी के अनुसार मूल-पाठ एवं अनुवाद के सभी आलापक कहने चाहिए।

४ ऊपर के टिप्पण में सूचित शीर्षक के अन्तर्गत सूर्य. पा. ५, सु. २६ के अनुसार सूर्य-प्रज्ञप्ति के संकलन कर्ता ने यहाँ भी मन्दर पर्वत के बीस नामों को पर्यायवाची मानकर समन्वय कर लिया हैं।

५ चन्द. पा. ७ सु. २८।

सूरियस्स लेस्सा पडिघायगा पव्वया—

५. प०—ता कस्सि णं सूरियस्स लेस्सा पडिहया ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—तत्थ खलु इमाओ वीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता मंदरंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया, आहिए त्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२. ता मेरूंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया, आहिए त्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

३. ता मणोरमंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया, आहिए त्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

४. ता सुदंसणंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया, आहिए त्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

५. ता सयंपहंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया, आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

६. ता गिरिरायंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया, आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

७. ता रयणुच्चयंसि पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

८. ता सिलुच्चयंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया, आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

९. ता लोयमज्झंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया. आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१०. ता लोगनाभिंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया, आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

११. ता अच्छंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

सूर्य के तेज को अवरुद्ध करने वाले पर्वत—

५. प्र०—सूर्य का तेज किससे अवरुद्ध होता है ? कहें।

उ०—इस सम्बन्ध में ये बीस प्रतिपत्तियाँ (मान्यताएँ) कही गई हैं, यथा—

इनमें से एक (मान्यता वालों) ने ऐसा कहा है—

(१) सूर्य का तेज "मन्दर" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२) सूर्य का तेज "मेरु" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(३) सूर्य का तेज "मनोरम" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(४) सूर्य का तेज "सुदर्शन" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(५) सूर्य का तेज "स्वयम्प्रभ" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(६) सूर्य का तेज "गिरिराज" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(७) सूर्य का तेज "रत्नोच्चय" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(८) सूर्य का तेज "शिलोच्चय" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(९) सूर्य का तेज "लोक-मध्य" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(१०) सूर्य का तेज "लोक-नाभि" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(११) सूर्य का तेज "अच्छ" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—
१२. ता सूरियावत्तंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिए त्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु,

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—
(१२) सूर्य का तेज "सूर्यावर्त" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—
१३. ता सूरियावरणंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिए त्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु,

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—
(१३) सूर्य का तेज "सूर्यावरण" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—
१४. ता उत्तमंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिए त्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु,

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—
(१४) सूर्य का तेज "उत्तम" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—
१५. ता दिसादिंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु—

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—
(१५) सूर्य का तेज "दिशाओं के आदिरूप" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—
१६. ता अवयंसंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—
(१६) सूर्य का तेज "अवतंस" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एगे पुण एवमाहंसु —
१७. ता धरणि खीलंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया. आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु.

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—
(१७) सूर्य का तेज "धरणी-कील" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—
१८. ता धरणि सिंगंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—
(१८) सूर्य का तेज "धरणी-शृंग" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—
१९. ता पव्वइंदंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—
(१९) सूर्य का तेज "पर्वतेन्द्र" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

एगे पुण एवमाहंसु—
२०. ता पव्वयरायंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—
(२०) सूर्य का तेज "पर्वतराज" पर्वत से अवरुद्ध होता है।

वयं पुण एवं वयामो—
जंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया, से ता मंदरे वि पवुच्चइ-जाव-पव्वयराया वि पवुच्चइ,[1]

हम फिर ऐसा कहते हैं—
जिस पर्वत से सूर्य का तेज अवरुद्ध होता है वह "मन्दर पर्वत" भी कहा जाता है—**यावत्**—"पर्वतराज" भी कहा जाता है।

---

१ मन्दरस्स णं पव्वयस्स सोलस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा, गाहाओ—
(१) मन्दर (२) मेरु (३) मणोरम (४) सुदंसण (५) सयंपभे य (६) गिरिराया ।।
(७) रयणुच्चय (८) पियदंसण (९-१०) मज्झे लोगस्स, नाभी य ।।१।।
(११) अच्छे य (१२) सूरियावत्ते (१३) सूरियावरणे त्ति य ।।
(१४) उत्तमे य (१५) दिसादि य (१६) वडेसेइ य सोलसे ।।२।।
—(क) सम. स. १६, सु. ३
—(ख) जम्बु. वक्ख. ४, सु. १०९

इन दो गाथाओं में "मन्दर पर्वत" के सोलह नाम गिनाये हैं, यहाँ उनके अतिरिक्त चार औपमिक नाम और भी हैं। मन्दर पर्वत के इन बीस पर्यायवाची नामों को अन्यान्य मान्यता वाले भिन्न भिन्न पर्वत मानते हैं। किन्तु सूर्यप्रज्ञप्ति के संकलन कर्ता ने समवायांग और जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति के अनुसार मन्दर पर्वत के ये बीस पर्यायवाची नाम मानकर सभी अन्य मान्यताओं का "समन्वय" किया है।

(क) ता जे णं पुग्गला सूरियस्स लेस्सं फुसंति ते णं पुग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति,

(ख) अदिट्ठा वि णं पुग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति,

(ग) चरिमलेस्संतरगया वि पुग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति,[1] —सूरिय. पा. ५, सु. २६

जितने पुद्गल सूर्य के तेज का स्पर्श करते हैं वे ही पुद्गल सूर्य के तेज को अवरुद्ध करते हैं।

अदृष्ट (सूक्ष्म) पुद्गल भी सूर्य के तेज को अवरुद्ध करते हैं।

चरिम (मेरु पर्वत के चारों ओर के ऊपरी भाग के) पुद्गल भी सूर्य तेज को अवरुद्ध करते हैं।

जंबुद्दीवे सूरियाणं खेत्तगइ-परूवणं—

६. प०—(क) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया—किं तीयं खेत्तं गच्छंति ?

(ख) पडुप्पन्नं खेत्तं गच्छंति ?

(ग) अणागयं खेत्तं गच्छंति ?

उ०—(क) गोयमा ! णो तीयं खेत्तं गच्छंति।

(ख) पडुप्पन्नं खेत्तं गच्छंति,

(ग) नो अणागयं खेत्तं गच्छंति।[2]

प०—तं भंते ! किं पुट्ठं गच्छंति, अपुट्ठं गच्छंति ?

उ०—गोयमा ! पुट्ठं गच्छंति, नो अपुट्ठं गच्छंति-जाव-[3]

प०—तं भंते ! किं एगदिसिं गच्छंति, छद्दिसिं गच्छंति ?

उ०—गोयमा ! णो एगदिसिं गच्छंति, नियमा छद्दिसिं गच्छंति। —जंबु. वक्ख. ७, सु. १३७

जम्बूद्वीप में सूर्यों की क्षेत्र गति का प्ररूपण—

६. प्र०—(क) हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य क्या अतीत क्षेत्र में चलते हैं ?

(ख) वर्तमान क्षेत्र में चलते हैं ?

(ग) या अनागत क्षेत्र में चलते हैं ?

उ०—(क) हे गौतम ! अतीत क्षेत्र में नहीं चलते हैं।

(ख) वर्तमान क्षेत्र में चलते हैं।

(ग) अनागत क्षेत्र में नहीं चलते हैं।

प्र०—हे भगवन् ! वे सूर्य वर्तमान क्षेत्र का स्पर्श करके चलते हैं या स्पर्श किये बिना ही चलते हैं ?

उ०—हे गौतम ! वे सूर्य वर्तमान क्षेत्र का स्पर्श करके ही चलते हैं, स्पर्श किये बिना नहीं चलते हैं—**यावत्**—

प्र०—हे भगवन् ! क्या वे (सूर्य) एक दिशा में चलते हैं या छहों दिशा में चलते हैं ?

उ०—हे गौतम ! वे एक दिशा में नहीं चलते हैं, वे निश्चित रूप से छहों दिशा में चलते हैं।

---

१ चन्द. पा. ५ सु. २६।

२ भग. स. ८, उ. ८, सु. ३८।

३ यावत्—पद से संग्रहित सूत्र—

प०—तं भंते ! किं ओगाढं गच्छंति, अणोगाढं गच्छंति ?

उ०—गोयमा ! ओगाढं गच्छंति णो अणोगाढं गच्छंति।

प०—तं भंते ! किं अणंतरोगाढं गच्छंति, परंपरोगाढं गच्छंति ?

उ०—गोयमा ! अणंतरोगाढं गच्छंति, णो परंपरोगाढं गच्छंति।

प०—तं भंते ! किं अणुं गच्छंति, बायरं गच्छंति ?

उ०—गोयमा ! अणुं पि गच्छंति, बायरं पि गच्छंति।

प०—तं भंते ! किं उड्ढं गच्छंति, अहे गच्छंति, तिरियं गच्छंति ?

उ०—गोयमा ! उड्ढं पि गच्छंति, अहे वि गच्छंति, तिरियं वि गच्छंति।

तं भंते ! किं आइं गच्छंति, मज्झे गच्छंति, पज्जवसाणे गच्छंति ?

गोयमा ! आइं पि गच्छंति, मज्झे वि गच्छंति, पज्जवसाणे वि गच्छंति।

तं भंते ! किं सविसयं गच्छंति, अविसयं गच्छंति ?

गोयमा ! सविसयं गच्छंति, णो अविसयं गच्छंति।

तं भंते ! किं आणुपुव्विं गच्छंति, अणाणुपुव्विं गच्छंति ?

गोयमा ! आणुपुव्विं गच्छंति, णो अणाणुपुव्विं गच्छंति।

तं भंते ! किं एगदिसिं गच्छंति—जाव—छद्दिसिं गच्छंति ?

गोयमा ! नो एगदिसिं गच्छंति, नियमा छद्दिसिं गच्छंति। —जम्बु. वक्ख. ७, सु. १३७, टीका से उद्धृत

जंबुद्दीवे सूरिया पडुप्पन्नं खेत्तं उज्जोवेंति—

७. प०—(क) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया—किं तीयं खेत्तं उज्जोवेंति ?

(ख) पडुप्पन्नं खेत्तं उज्जोवेंति ?

(ग) अणागयं खेत्तं उज्जोवेंति ?

उ०—(क) गोयमा ! नो तीयं खेत्तं उज्जोवेंति,

(ख) पडुप्पन्नं खेत्तं उज्जोवेंति,

(ग) नो अणागयं खेत्तं उज्जोवेंति,

एवं तवेंति, एवं भासंति-जाव-नियमा छद्दिसि भासंति,[1] —भग. स. ८, उ. ८, सु. ४१-४२

जम्बूद्वीप में सूर्य वर्तमान क्षेत्र को उद्योतित करते हैं—

(७) प्र०—(क) हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य क्या अतीत क्षेत्र को उद्योतित करते हैं ?

(ख) वर्तमान क्षेत्र को उद्योतित करते हैं ?

(ग) अनागत क्षेत्र को उद्योतित करते हैं ?

उ०—(क) हे गौतम ! वे अतीत क्षेत्र को उद्योतित नहीं करते हैं।

(ख) वर्तमान क्षेत्र को उद्योतित करते हैं।

(ग) अनागत क्षेत्र को उद्योतित नहीं करते हैं।

इसी प्रकार तपाते हैं, इसी प्रकार प्रकाशित करते हैं—यावत् नियमित रूप से छहों दिशाओं को प्रकाशित करते हैं—

जंबुद्दीवे सूरिया पडुप्पन्नं खेत्तं ओभासंति—

८. प०—(क) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया, किं तीयं खेत्तं ओभासंति ?

(ख) पडुप्पन्नं खेत्तं ओभासंति ?

(ग) अणागयं खेत्तं ओभासंति ?

उ०—(क) गोयमा ! नो तीयं खेत्तं ओभासंति,

(ख) पडुप्पन्नं खेत्तं ओभासंति,

(ग) नो अणागयं खेत्तं ओभासंति,

प०—तं भंते ! किं पुट्ठं ओभासंति, अपुट्ठं ओभासंति ?

उ०—गोयमा ? पुट्ठं ओभासंति, नो अपुट्ठं ओभासंति-जाव-[2]

जम्बूद्वीप में सूर्य वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं—

८. प्र०—(क) हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य क्या अतीत क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ?

(ख) वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते है ?

(ग) या अनागत क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ?

उ०—(क) हे गौतम ! अतीत क्षेत्र को प्रकाशित नहीं करते हैं।

(ख) वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं।

(ग) अनागत क्षेत्र को प्रकाशित नहीं करते हैं।

प्र०—हे भगवन् ! क्या वे स्पर्शित क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ? या अस्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ?

उ०—हे गौतम ! वे स्पर्शित क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं। अस्पर्शित क्षेत्र को प्रकाशित नहीं करते हैं।

---

१ जम्बु० वक्ख. ७, सु० १३७।

२ —यावत्—पद से संग्रहितसूत्र:—

प०—तं भंते ! किं ओगाढं ओभासंति, अणोगाढं ओभासंति ?

उ०—गोयमा ! ओगाढं ओभासंति, नो अणोगाढं ओभासंति,

प०—तं भंते ! किं अणंतरोगाढं ओभासंति. परंपरोगाढं ओभासंति ?

उ०—गोयमा ! अणंतरोगाढं ओभासंति, नो परंपरोगाढं ओभासंति,

प०—तं भंते ! किं अणुं ओभासंति, वायरं ओभासेंति ?

उ०—गोयमा ! अणुं पि ओभासेंति, वायरं पि ओभासेंति.

प०—तं भंते ! किं उड्ढं ओभासेंति, तिरियं ओभासेंति अहे ओभासेंति ?

उ०—गोयमा ! उड्ढं पि, तिरियं पि. अहे वि ओभासेंति,

प०—तं भंते ! किं आइं ओभासेंति, मज्झे ओभासेंति, अंते ओभासेंति ?

उ०—गोयमा ! आइं पि, मज्झे वि, अंते वि ओभासेंति,

(क्रमशः)

प०—तं भंते ! किं एगदिसिं ओभासेंति, छद्दिसिं ओभासेंति ?

उ०—गोयमा ! नो एक दिसिं ओभासेंति, नियमा छद्दिसिं ओभासेंति।[1] —भग. स. ८, उ. ८, सु. ३९-४०

प्र०—हे भगवन् ! क्या वे एक दिशा को प्रकाशित करते हैं ? या छः दिशा को प्रकाशित करते हैं ?

उ०—हे गौतम ! वे एक दिशा को प्रकाशित नहीं करते हैं वे नियमित छहों दिशाओं को प्रकाशित करते हैं।

जंबुद्दीवे सूरियाणं ताव खेत्तपमाणं—

९. प०—(क) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया—केवतियं खेत्तं उड्ढं तवंति ?

(ख) केवतियं खेत्तं अहे तवंति ?

(ग) केवतियं खेत्तं तिरियं तवंति ?

उ०—(क) गोयमा ! एगं जोयणसयं उड्ढं तवंति,[2]

(ख) अट्ठारसजोयणसयाइं अहे तवंति,[3]

(ग) सीयालीसं जोयणसहस्साइं दोण्णि तेवट्ठे जोयणसए एक्कवीसं च सट्ठिभाए जोयणस्स तिरियं तवंति[4], —भग. स. ८, उ. ८, सु. ४५

जम्बूद्वीप में सूर्यों का तापक्षेत्र प्रमाण—

९. प्र०—(क) हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य ऊपर की ओर कितना क्षेत्र तपते हैं ?

(ख) नीचे की ओर कितना क्षेत्र तपते हैं ?

(ग) तिरछे कितना क्षेत्र तपते हैं ?

उ०—(क) हे गौतम ! ऊपर की ओर एक सौ योजन तपते हैं।

(ख) नीचे की ओर अठारह सौ योजन तपते हैं।

(ग) तिरछे सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन और एक योजन के साठ भागों में से इकवीस भाग जितना क्षेत्र तपते हैं।

(क्रमशः)

प०—तं भंते ! किं सविसए ओभासेंति, अविसए ओभासेंति ?

उ०—गोयमा ! सविसए ओभासेंति नो अविसए ओभासेंति,

प०—तं भंते ! किं आणुपुव्विं ओभासेंति अणाणुपुव्वि ओभासेंति ?

उ०—गोयमा ! आणुपुव्वि ओभासेंति नो अणाणुपुव्वि ओभासेंति,

प०—तं भंते ! कइ दिसिं ओभासेंति ?

उ०—गोयमा ! नियमा छद्दिसिं ओभासेंति,

प०—तं भंते ! किं एगदिसिं ओभासेंति छद्दिसिं ओभासेंति ?

उ०—गोयमा ! नो एगदिसिं ओभासेंति, नियमा छद्दिसिं ओभासेंति, —भग. स. ८, उ. ८, सु. ३९ टीका

१ जम्बु. वक्ख. ७, सु. १३७।

२ सूर्य के विमान से सौ योजन ऊपर शनैश्चर ग्रह का विमान है और वहीं तक ज्योतिष चक्र की सीमा है, अतः इससे ऊपर सूर्य का तापक्षेत्र नहीं है।

३ (क) जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह से जयंतद्वार की ओर लवण समुद्र के समीप क्रमशः एक हजार योजन पर्यन्त भूमि नीचे है, इस अपेक्षा से एक हजार योजन तथा मेरु के समीप की समभूमि से ८०० योजन ऊंचा सूर्य का विमान है, ये आठ सौ योजन संयुक्त करने पर अठारह सौ योजन सूर्य विमान से नीचे की ओर का तापक्षेत्र है, अन्य द्वीपों में भूमि सम रहती है। इसलिए वहां सूर्य का नीचे का तापक्षेत्र केवल आठ सौ योजन का है। अठारह सौ योजन नीचे की ओर के तापक्षेत्र के और सौ योजन ऊपर की ओर के तापक्षेत्र के इन दोनों संख्याओं के संयुक्त करने पर १९०० योजन का सूर्य का तापक्षेत्र है।

४ (क) यहां तिरछे तापक्षेत्र का कथन पूर्व-पश्चिम दिशा की अपेक्षा से कहा गया है, अर्थात् उत्कृष्ट इतनी दूरी पर स्थित सूर्य मानव-चक्षु से देखा जा सकता है।

उत्तर में १८० योजन न्यून पैंतालीस हजार योजन तथा दक्षिण दिशा में द्वीप में १८० योजन और लवण समुद्र में तेतीस हजार तीन सौ तेतीस योजन तथा एक योजन के तृतीय भाग युक्त दूरी से सूर्य देखा जा सकता है।

(ख) जम्बुद्दीवे णं दीवे सूरिया उक्कोसेणं एगूणवीसजोयणसयाइं उड्ढमहो तवयंति। —सम. १९ सु. ३

(ग) जम्बु. वक्ख. ७ सु. १३६। (घ) सूरिय. पा. ४, सु. २५।

(ङ) चन्द. पा. ४ सु. २५।

सूरियस्स तावक्खेत्तसंठिती—

१०. प०—ता कहं ते तावक्खेत्तसंठिती ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ सोलसपडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थ णं एगे एवमाहंसु—

१. ता गेहसंठिता तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

२. एगे पुण एवमाहंसु—

गेहावणसंठिया तावक्खेत्त संठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

३. एगे पुण एवमाहंसु—

पासायसंठिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

४. एगे पुण एवमाहंसु—

गोपुरसंठिया तावक्खेत्तसंठितो पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

५. एगे पुण एवमाहंसु—

पिच्छाघरसंठिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

६. एगे पुण एवमाहंसु—

वलभीसंडिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

७. एगे पुण एवमाहंसु—

हम्मियतलसंठिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहसु,

८. एगे पुण एवमाहंसु—

वालग्गपोतिया संठिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

९. एगे पुण एवमाहंसु—

जस्संठिए जंबुद्दीवे तस्संठिए तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

१०. एगे पुण एवमाहंसु—

जस्संठिए भारहे वासे तस्संठिए तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

सूर्य के ताप-क्षेत्र की संस्थिति—

१०. प्र०—सूर्य के ताप-क्षेत्र की संस्थिति=व्यवस्था कैसी है ? कहें।

उ०—(सूर्य के तापक्षेत्र से सम्बन्धित) ये सोलह प्रतिपत्तियाँ=मान्यताएँ कही गई हैं, यथा—

(१) इनमें से एक मान्यता वाले इस प्रकार कहते हैं।

"घर के आकार जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

(२) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,

गृहापण=घर और दुकान एक साथ जैसी (सूर्य के) तापक्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

(३) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,

प्रासाद=राजमहल जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

(४) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,

गोपुर=नगरद्वार जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

(५) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,

प्रेक्षा-गृह=मंत्रणागृह जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

(६) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,

वलभी=घर पर ढाँके जाने वाले छप्पर जैसी (सूर्य के) तापक्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

(७) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,

हर्म्यतल=तलघर जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

(८) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,

वालाग्रपोतिका=आकाशतटाक के मध्य में स्थित क्रीडागृह के लिए लघुप्रासाद जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

(९) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,

जम्बूद्वीप का जो आकार है उसी आकार की (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

(१०) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,

भरतक्षेत्र का जो आकार है उसी आकार की (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

११. एगे पुण एवमाहंसु—
उज्जाणसंठिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता,
एगे एवमाहंसु,

(११) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
उद्यान=बाग जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

१२. एगे पुण एवमाहंसु—
निज्जाणसंठिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता,
एगे एवमाहंसु,

(१२) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
निर्याण=ग्राम या नगर से निकलने के मार्ग जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

१३. एगे पुण एवमाहंसु—
एगओ णिसधसंठिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता,
एगे एवमाहंसु,

(१३) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
एक निषध=रथ के एक बैल जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

१४. एगे पुण एवमाहंसु—
दुहओ णिसधसंठिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता,
एगे एवमाहंसु,

(१४) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
दो निषध=रथ के दो बैलों जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

१५. एगे पुण एवमाहंसु—
सेयणगसंठिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(१५) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
सेचानक=बाज पक्षी जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

१६. एगे पुण एवमाहंसु—
सेयणगपट्ठसंठिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता,
एगे एवमाहंसु,

(१६) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
सेचानक-पृष्ठ=बाज पक्षी के पृष्ठ भाग जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।

वयं पुण एवं वदामो—
ता उद्धीमुह कलंबुआ-पुप्फसंठिया तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता,
अंतो संकुचिया, बाहिं वित्यडा
अंतो वट्टा, बाहिं पिथुला.
अंतो अंकमुहसंठिया.[1] बाहिं सत्यिमुहसंठिया[2]
—सूरिय. पा. ४. सु. २५

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—
ऊपर की ओर मुँह किये हुए कलंबुकापुष्प=नालिका पुष्प जैसी (सूर्य के) ताप-क्षेत्र की संस्थिति कही गई है।
अन्दर से संकुचित, बाहर से विस्तृत,
अन्दर से वृत्त=वर्तुलाकार, बाहर से पृथुल=लम्बी-चौड़ी,
अन्दर से अंकमुख=पद्मासन स्थित पुरुषाकार है बाहर से स्वस्तिक-अग्रभागाकार है।

तावक्खेत्त संठिइए दुवे बाहाओ—

तापक्षेत्र संस्थिति की दो बाहायें—

११. उभओ पासेणं तीसे दुवे बाहाओ अवट्ठियाओ[3] भवंति, पणयालीसं पणयालीसं जोयणसहस्साइं आयामेणं,
तीसे दुवे बाहाओ अणवट्ठिआओ[4] भवंति, तं जहा—१. सव्वब्भंतरिया चेव बाहा, २. सव्व बाहिरिया चेव बाहा,

११. तापक्षेत्र के दोनों पार्श्व में दोनों बाहायें पैंतालीस पैंतालीस हजार योजन लम्बी अवस्थित हैं।
ये दोनों बाहायें अनवस्थित हैं। यथा—(१) सर्व आभ्यन्तर बाहा, (२) सर्व बाह्य बाहा,

---

१ अंतर्मेरुदिशि अंकः=पद्मासनोपविष्टस्योत्संगरूप आसनबन्धः तस्य मुखं अग्रभागोऽर्द्धवलयाकारस्तद्वत् संस्थितं संस्थानं यस्याः सा.

२ (क) तथा बहिर्लवणदिशि स्वस्तिकमुखसंस्थिता, स्वस्तिकः सुप्रतीतः तस्य मुखं अग्रभागः तद्वदतिविस्तीर्णतया संस्थित-संस्थानं यस्याः सा.
(ख) चंद. पा. ४ सु, २५।

३ "ये द्वे बाहे ते आयामेन-जम्बूद्वीपगतमायाममाश्रित्यावस्थिते भवतः।" —सूरिय. वृत्ति.

४ "द्वे च बाहे अनवस्थिते भवतः
तद्यथा सर्वाभ्यन्तरा, सर्व बाह्या च।
(क) तत्र या मेरुसमीपे विष्कम्भमधिकृत्य बाहा सा सर्वाभ्यन्तरा।
(ख) या तु लवणदिशि जम्बूद्वीप पर्यन्ते विष्कम्भमधिकृत्य बाहा सा सर्व बाह्यबाहा।
(ग) आयामश्च-परिमाणमनयो प्रतिमण्डलं नियमतः पूर्वोक्तप्रमाणम्।

प०—तत्थ को हेउ त्ति ? वएज्जा,

उ०—ता अयण्णं जबुद्दीवे दीवे—
सव्वदीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए, सव्व खुड्डाए
वट्टे तेल्लापूय-संठाण-संठिए,
वट्टे रहचक्कवाल-संठाण-संठिए,
वट्टे पुक्खरकण्णिया-संठाण-संठिए,
वट्टे पडिपुण्णचंद-संठाण-संठिए,
एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं,

तिण्णि जोयणसयसहस्साइं, सोलससहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि य कोसे, अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते,[1]

—सूरिय० पा० ४, सु० २५

प्र०—उक्त व्यवस्था का हेतु क्या है ? कहें ।

उ०—यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सब द्वीप-समुद्रों के अन्दर है, सबसे छोटा है ।
तेल में पके हुए मालपुए जैसे वृत्ताकार संस्थान से स्थित है ।
रथ के पहिए जैसे वृत्ताकार संस्थान से स्थित है ।
कमल-कणिका जैसे वृत्ताकार संस्थान से स्थित है ।
प्रतिपूर्ण चन्द्र जैसे वृत्ताकार संस्थान से स्थित है ।
एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है ।

तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोस अट्ठावीस धनुष तेरह अंगुल और आधे अंगुल से कुछ अधिक उसकी परिधि कही गई है ।

तावक्खेत्तसंठिइए परिक्खेवा—

१२. ता जयाणं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति, तया णं उद्धीमुहकलंबुआ-पुप्फसंठिया तावक्खेत्तसंठिई आहिताति वएज्जा, अंतो संकुडा, बाहिं वित्थडा, अंतो वट्टा, बाहिं पि थुला, अंतो अंकमुहसंठिया, बाहिं सत्थिमुहसंठिया, दुहओ पासेणं तीसे तहेव जाव सव्वबाहिरिया चेव बाहा,

(क) तीसे णं सव्वब्भंतरिया बाहा-मंदरपव्वयं तेणं णव जोयणसहस्साइं चत्तारि य छलसीए जोयणसए णव य दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं, आहिए त्ति वएज्जा,

प०—ता सेणं परिक्खेवविसेसे कओ ? आहिए त्ति वएज्जा ?

उ०—ता जे णं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे, तं परिक्खेवं तिहिं गुणित्ता, दसहिं छित्ता दसहिं भागे हीरमाणे—एस णं परिक्खेवविसेसे, आहिए त्ति वएज्जा,

(ख) तीसे णं सव्वबाहिरिया बाहा=लवणसमुद्दं तेणं, चउणउइं जोयणसहस्साइं, अट्ठ य अट्ठसट्ठे जोयणसए, चत्तारि य दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं, आहिए त्ति वएज्जा,[2]

तापक्षेत्र संस्थिति की परिधि—

१२. जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल का लक्ष्य करके गति करता है तब ऊपर की ओर मुंह वाले नलिनी पुष्प के संस्थान जैसी तापक्षेत्र की आकृति होती है ।

वह अन्दर से संकुचित, बाहर से विस्तृत, अन्दर से वृत्ताकार बाहर से विस्तृत, अन्दर से पद्मासन के अग्रभाग जैसी अर्थात् अर्द्धवलयाकार, बाहर से स्वस्तिक के अग्रभाग जैसी है ।

दोनों पार्श्वभाग से तापक्षेत्र की संस्थिति उसी प्रकार है—यावत्—सर्वबाह्य बाहा,

(क) उस (तापक्षेत्र) की सर्व आभ्यन्तर बाहा उसकी परिधि मन्दर पर्वत के समीप नौ हजार चार सौ छियासी योजन और एक योजन के दस भागों में से नौ भाग जितनी है ।

प्र०—उस (सर्व आभ्यन्तर) बाहा की इस परिधि विशेष की सिद्धि किस प्रकार है ? कहें ।

उ०—मन्दर पर्वत की परिधि को तीन से गुणा करें । दश का भाग दें, दस का भाग देने पर यह परिधि विशेष होती है ।

(ख) उस (तापक्षेत्र) की सर्व बाह्य बाहा=उसकी परिधि लवणसमुद्र के समीप चोराणवें हजार आठ सौ अडसठ योजन और एक योजन के दस भागों में से चार भाग जितनी है ।

---

१ (क) चन्द. पा. ४ सु. २५ । (ख) जम्बु. वक्ख ७ सु. १३५ ।

२ मेरु की परिधि ३१,६,२३ योजन की है, इसे तीन से गुणा करने पर ९४,८,७९ योजन हुए । इनके दस का भाग देने पर $९.८,८६\frac{९}{१०}$ लब्ध होते हैं—यह सर्व आभ्यन्तर बाहा की परिधि है ।

प०—ता से णं परिक्खेवविसेसे कओ ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता जे णं जंबुद्दीव-दीवस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं तिहिं गुणित्ता, दसहिं छेत्ता, दसहिं भागे हीरमाणे—एस णं परिक्खेव-विसेसे, आहिए त्ति वएज्जा,[१]

—सूरिय. पा. ४, सु. २५

प्र०—इस (सर्व बाह्य बाहा की) परिधि की (सिद्धि) किस प्रकार है ?

उ०—जम्बूद्वीप की परिधि तीन गुणा करें, दस का भाग दें, दस का भाग देने पर यह परिधि विशेष होती है।

तावखेत्तस्स अंधकार खेत्तस्स य आयामाईणं परूवणं—

तापक्षेत्र और अन्धकारक्षेत्र के आयामादि का प्ररूपण—

१३. प०—ता तीसे णं तावक्खेत्ते केवइयं आयामेणं ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता अट्ठत्तरिं जोयणसहस्साइं, तिण्णि य तेत्तीसे जोयणसए जोयणतिभागे च आयामेणं, आहिए त्ति वएज्जा,

प०—तया णं किं संठिया अंधकारसंठिई ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—उद्धीमुह-कलंबुआ-पुप्फसंठिया तहेव जाव बाहिरिया चेव बाहा,

तीसे णं सव्वब्भंतरिया बाहा मंदरपव्वयंतेणं छज्जोयणसहस्साइं तिण्णि य चउवीसे जोयणसए छच्च दस-भागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहिए त्ति वएज्जा,

प०—ता तीसे णं परिक्खेवविसेसे कओ ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता जे णं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवेणं तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता, दसहिं छित्ता दसहिं भागे हीरमाणे, एस णं परिक्खेव-विसेसे, आहिए त्ति वएज्जा,

तीसे णं सव्वबाहिरिया बाहा लवणसमुद्दं तेणं तेवट्ठि जोयणसहस्साइं दोण्णि य पणयाले जोयणसए छच्च दस भागे जोयणस्स परिक्खेवेणं, आहिए त्ति वएज्जा,

प०—ता से णं परिक्खेवविसेसे कओ ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता जे णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स परिक्खेवे, तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागेहिं हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे, आहिए त्ति वएज्जा,

प०—ता से णं अंधकारे केवइयं आयामेणं ? आहिए त्ति वएज्जा,

१३. प्र०—सूर्य के उस ताप (प्रकाशित) क्षेत्र का आयाम कितना है ? कहें,

उ०—अठहत्तर हजार तीन सौ तेतीस योजन और एक योजन के तीन भागों में से एक भाग जितना है।

प्र०—उस अन्धकार (सूर्य से अप्रकाशित क्षेत्र) की संस्थिति कैसी है ? कहें,

उ०—ऊपर की ओर मुंह किये हुए नलिनी पुष्प जैसी है—यावत्—बाह्य पर्यन्त उसी प्रकार से कहें।

उसकी सर्वाभ्यन्तर बाहा मन्दर पर्वत के समीप छः हजार तीन सौ चौबीस योजन और एक योजन के दस भागों में से छः भाग जितनी परिधि वाली है।

प्र०—उसकी इस परिधि विशेष का प्रमाण किस प्रकार है ? कहें।

उ०—मन्दर पर्वत की पूर्वोक्त परिधि को दो से गुणा करके दस से भाग देने पर परिधि विशेष का प्रमाण उपलब्ध होता है।

उसकी सर्व बाह्य बाहा लवणसमुद्र के समीप त्रेसठ हजार दो सौ पैंतालीस योजन और एक योजन के दस भागों में से छः भाग जितनी परिधि वाली है।

प्र०—उसकी इस परिधि विशेष का प्रमाण किस प्रकार है ? कहें,

उ०—जम्बूद्वीप की पूर्वोक्त परिधि को दुगुना करके दस का भाग देने पर इस परिधि विशेष का प्रमाण उपलब्ध होता है।

प्र०—उस अन्धकार (सूर्य से अप्रकाशित क्षेत्र) का आयाम कितना है ? कहें,

---

१ (क) जम्बूद्वीप की परिधि ३, १६, २, २७ योजन तीन कोस २८ धनुष १३ अंगुल आधा अंगुल से कुछ अधिक है। इसको दस का भाग देने पर ९४,८,६८ योजन और एक योजन के दस भागों में से चार भाग जितनी सर्वबाह्य बाहा की परिधि विशेष है।

(ख) चन्द. पा. ४ सु. २५ । (ग) जम्बू. वक्ख. ७ सु. १३६ ।

उ०—ता अट्ठत्तरिं जोयणसहस्साइं तिण्णि य तेत्तीसे जोयण-सए जोयणतिभागं च आयामेणं, आहिए त्ति वएज्जा,

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

प०—ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं किं संठिया तावखेत्तसंठिई ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता उद्धीमुह-कलंबुया पुप्फसंठिया तावक्खेत्तसंठिई आहिए त्ति वएज्जा,

एवं जं अब्भिंतरमंडले अंधकारसंठिईए पमाणं तं बाहिरमंडले तावक्खेत्तसंठिईए जं तहिं तावक्खेत्त-संठिईए तं बाहिरमंडले अंधकारसंठिईए भाणियव्वं, जाव····

तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसेणं अट्ठारस मुहुत्ता राई भवति, जहण्णिए दुवालस मुहुत्ते दिवसे भवइ,[1]

—सूरिय. पा. ४, सु. २५

उ०—अठहत्तर हजार तीन सौ तेतीस योजन और एक योजन के तीन भागों में से एक भाग जितना है।

उस समय सूर्य का परम उत्कर्ष होने से उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

प्र०—जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल का लक्ष्य करके गति करता है तब सूर्य के उस ताप क्षेत्र की संस्थिति किस प्रकार की होती है ? कहें,

उ०—ऊपर की ओर मुंह किये हुए नलिनी पुष्प जैसी होती है।

जिस प्रकार आभ्यन्तर मण्डल में अन्धकार की संस्थिति का प्रमाण है वही बाह्य मण्डल में ताप क्षेत्र की संस्थिति का प्रमाण है और आभ्यन्तर मण्डल में जो ताप क्षेत्र की संस्थिति का प्रमाण है वही बाह्य मण्डल में अन्धकार की संस्थिति का प्रमाण कहना चाहिए—यावत्—

उस समय सूर्य का परम उत्कर्ष होने से उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

जंबुद्दीवे सूरियाणं खेत्तं किरिया परूवणं—

१४. प०—(क) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया—किं तीए खेत्ते किरिया कज्जइ ?

(ख) पडुप्पन्ने खेत्ते किरिया कज्जइ ?

(ग) अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ ?

उ०—(क) गोयमा ! नो तीए खेत्ते किरिया कज्जइ,

(ख) पडुप्पण्णे खेत्ते किरिया कज्जइ,

(ग) नो अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ,

प०—सा भंते ! किं पुट्ठा किरिया कज्जति, अपुट्ठा किरिया कज्जति ?

उ०—गोयमा ! पुट्ठा किरिया कज्जति, नो अपुट्ठा किरिया कज्जति-जाव-[2]

जम्बूद्वीप में सूर्यों की क्षेत्रों में क्रिया प्ररूपण—

१४. प्र०—(क) हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य क्या अतीत क्षेत्र में क्रिया करते हैं ?

(ख) वर्तमान क्षेत्र में क्रिया करते हैं ?

(ग) या अनागत क्षेत्र में क्रिया करते हैं ?

उ०—(क) हे गौतम ! वे अतीत क्षेत्र में क्रिया नहीं करते हैं।

(ख) वर्तमान क्षेत्र में क्रिया करते हैं,

(ग) अनागत क्षेत्र में क्रिया नहीं करते हैं।

प०—हे भगवन् ! वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट क्रिया करते हैं ?

उ०—हे गौतम ! वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं, अस्पृष्ट क्रिया नहीं करते हैं—यावत्—

---

१ (क) जम्बु. वक्ख. ७ सु. १३५। (ख) चन्द. पा. ४ सु. २५।

१ —यावत्—पद से संग्रहित सूत्र—

प०—से णं भंते ! किं ओगाढा किरिया कज्जइ ? अणोगाढा किरिया कज्जइ ?

उ०—गोयमा ! ओगाढा किरिया कज्जइ, नो अणोगाढा किरिया कज्जइ।

प०—से णं भंते ! किं अणंतरोगाढा किरिया कज्जइ ? परंपरोगाढा किरिया कज्जइ ?

उ०—गोयमा ! अणंतरोगाढा किरिया कज्जइ, नो परंपरोगाढा किरिया कज्जइ।

(क्रमशः)

प०—सा भंते ! किं एगदिसिं किरिया कज्जति, छद्दिसिं किरिया कज्जइ ?

उ०—गोयमा ! नो एगदिसिं किरिया कज्जति, नियमा छद्दिसिं किरिया कज्जइ[1].

—भग. स. ८, उ. ८, सु. ४३. ४४

प०—हे भगवन् ! क्या वे एक दिशा में क्रिया करते हैं या छहों दिशाओं में क्रिया करते हैं ?

उ०—हे गौतम ! वे एक दिशा में क्रिया नहीं करते हैं वे नियमित रूप से छहों दिशाओं में क्रिया करते हैं।

जंबुद्दीवे सूरिया कहं दूरे समीवे दीसंति ?—

जम्बूद्वीप में सूर्य दूर और समीप किस प्रकार दिखाई देते हैं—

१५. प०—(क) जंबुद्दीवे णं भंते ? दीवे सूरिया[2] उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य, मूले य दीसंति ?

(ख) मज्झंतियमुहुत्तंसि मूले य, दूरे य दीसंति ?

(ग) अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य, मूले य, दीसंति ?

उ०—(क-ग) हंता गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया—उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य, मूले य दीसंति-जाव-अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य, मूले य दीसंति,

प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया—उग्गमणमुहुत्तंसि य, मज्झंतियमुहुत्तंसि य, अत्थमणमुहुत्तंसि य सव्वत्थ समा उच्चत्ते ण ?

उ०—हंता गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया—उग्गमणमुहुत्तंसि य, मज्झंतियमुहुत्तंसि य, अत्थमणमुहुत्तंसि य सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं ।

प०—जइ णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि य, मज्झंतियमुहुत्तंसि य, अत्थमणमुहुत्तंसि य सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं,

(क्रमशः)

१५. प्र०—(क) हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य उदय के समय दूर होते हुए भी समीप में दिखाई देते हैं ?

(ख) मध्याह्न के समय समीप होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं ?

(ग) अस्त होने के समय दूर होते हुए भी समीप में दिखाई देते हैं ?

उ०—(क-ग) हाँ गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य उदय के समय दूर होते हुए भी समीप में दिखाई देते हैं—यावत्—अस्त होने के समय दूर होते हुए भी समीप दिखाई देते हैं।

प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य उदय के समय मध्याह्न और अस्त के समय अर्थात् सर्वत्र समान ऊँचे रहते हैं।

उ०—हाँ गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य उदय के समय, मध्याह्न के समय और अस्त के समय अर्थात् सर्वत्र समान ऊँचे रहते हैं।

प्र०—हे भगवन् ! यदि जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य उदय के समय मध्याह्न के समय और अस्त के समय अर्थात् सर्वत्र समान ऊँचे रहते हैं तो,—

प०—सा णं भंते ! किं अणु किरिया कज्जइ ? बायरा किरिया कज्जइ ?

उ०—गोयमा ! अणु वि किरिया कज्जइ, बायरा वि किरिया कज्जइ ।

प०—सा णं भंते ! किं उड्ढं किरिया कज्जइ ? अहे किरिया कज्जइ ? तिरियं किरिया कज्जइ ?

उ०—गोयमा ! उड्ढं वि किरिया कज्जइ, अहे वि किरिया कज्जइ, तिरियं किरिया कज्जइ ।

प०—सा णं भंते ! किं आइं किरिया कज्जइ ? मज्झे किरिया कज्जइ ? पज्जवसाणे किरिया कज्जइ ?

उ०—गोयमा ! आइं वि किरिया कज्जइ, मज्झे वि किरिया कज्जइ, पज्जवसाणे किरिया कज्जइ ।

प०—सा णं भंते ! किं सविसया किरिया कज्जइ ? अविसया किरिया कज्जइ ?

उ०—गोयमा ! सविसया किरिया कज्जइ, नो अविसया किरिया कज्जइ ।

प०—सा णं भंते ! किं आणुपुव्विं किरिया कज्जइ ? अणाणुपुव्विं किरिया कज्जइ ?

उ०—गोयमा ! आणुपुव्विं किरिया कज्जइ, नो अणाणुपुव्विं किरिया कज्जइ ।

प०—सा णं भंते ! किं एगदिसिं किरिया कज्जइ-जाव-छद्दिसिं किरिया कज्जइ ?

उ०—गोयमा ! नो एगदिसिं किरिया कज्जइ, नियमा छद्दिसिं किरिया कज्जइ । —जम्बु. वक्ख. ७ सु. १३८ की टीका से

१ जम्बु. वक्ख. ७, सु. १३८ ।

२ जम्बूद्वीप में दो चन्द्र और दो सूर्य हैं — इस अपेक्षा से यहाँ बहुवचन का प्रयोग है ।

से के णं खाइ अट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—"जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य, मूले य दीसंति -जाव-अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य, मूले य दीसंति ?

हे भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—"जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य उदय के समय दूर होते हुए भी समीप में दिखाई देते हैं—यावत्—अस्त होने के समय दूर होते हुए भी समीप में दिखाई देते हैं ?

उ०—(क) गोयमा। लेसापडिघाएणं उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य, मूले य दीसंति,

(ख) लेसाभितावेणं मज्झंतियमुहुत्तंसि मूले य, दूरे य दीसंति,

(ग) लेस्सापडिघाएणं अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति,

से तेणट्ठे णं गोयमा ! एवं वुच्चइ—'जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति -जाव-अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य, मूले य दीसंति[1]।

—भग. स. ८, उ. ८, सु. ३५-३७

उ०—(क) हे गौतम ! लेश्या-तेज के प्रतिघात से उदय के समय दूर होते हुए भी समीप दिखाई देते हैं।

लेश्या के अभिताप से मध्याह्न के समय समीप होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं।

लेश्या के प्रतिघात से अस्त होने के समय दूर होते हुए भी समीप में दिखाई देते हैं।

इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—"जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य उदय के समय दूर होते हुए भी समीप में दिखाई देते हैं—यावत्—अस्त होने के समय दूर होते हुए भी समीप में दिखाई देते हैं।

पोरिसि च्छाय-निव्वत्तणं—

पौरुषी छाया की उत्पत्ति—

१६. प०—ता कइकट्ठं ते सूरिए पोरिसीच्छायं णिव्वत्ते ति ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ तिण्णि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. तत्थेगे एवमाहंसु—

ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति, ते णं पोग्गला संतप्पंति, ते णं पोग्गला संतप्पमाणा तदणंतराइं वाहिराइं पोग्गलाइं संतावेंतीति,

एस णं से समिए तावक्खेत्ते एगे एवमाहंसु,

२. एगे पुण एवमाहंसु—

ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति, ते णं पोग्गला नो संतप्पंति, ते णं पोग्गला असंतप्पमाणा तदणंतराइं बाहिराइं पोग्गलाइं णो संतावेंतीति,

एस णं से समिए तावक्खेत्ते, एगे एवमाहंसु,

३. एगे पुण एवमाहंसु—

ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति, ते णं पोग्गला अत्थेगइया संतप्पंति, अत्थेगइया नो संतप्पंति,

तत्थ अत्थेगइया संतप्पमाणा तदणंतराइं बाहिराइं पोग्गलाइं अत्थेगयाइं संतावेंति, अत्थेगयाइं नो संतावेंतीति,

१६. प्र०—सूर्य कैसी स्थिति में पौरुषी छाया को उत्पन्न करता है ? कहें।

उ०—इस सम्बन्ध में तीन अन्य मान्यताएँ कही गई है यथा—

(१) उनमें से एक मान्यता वाले इस प्रकार कहते हैं।

सूर्य के तेज से जितने पुद्गल स्पर्श को प्राप्त होते हैं वे तपते हैं और तपने के बाद वे बाह्य पुद्गलों को तपाते हैं।

यह (सूर्य से) उत्पन्न ताप क्षेत्र है।

(२) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं—

सूर्य के तेज से जितने पुद्गल स्पर्श को प्राप्त होते हैं वे नहीं तपते हैं, नहीं तपे हुए वे पुद्गल समीप के बाह्य पुद्गलों को भी नहीं तपाते हैं।

वह (सूर्य से) उत्पन्न ताप क्षेत्र हैं।

(३) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं—

सूर्य के तेज से जितने पुद्गल स्पर्श को प्राप्त होते हैं उनमें से कुछ पुद्गल तपते हैं और कुछ पुद्गल नहीं तपते हैं।

उनमें से तपे हुए कुछ पुद्गल समीप के कुछ बाह्य पुद्गलों को तपाते है और कुछ को नहीं तपाते हैं।

[1] जम्बु. वक्ख. ७, सु. १३६।

एस णं से समिए तावक्खेत्ते, एगे एवमाहंसु,

यह (सूर्य से) उत्पन्न ताप क्षेत्र है।

वयं पुण एवं वयामो—

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

ता जाओ इमाओ चंदिम-सूरियाणं देवाणं विमाणेहिंतो लेसाओ बहित्ता उच्छूढा अभिणिसट्ठाओ पतावेंति,

सूर्य देवों के विमानों से निकले हुए तेज से तेज तथा चन्द्र देवों के विमानों से निकले हुए उद्योत से उद्योत निकलकर पुद्गलों को तपाते हैं; प्रकाशित करते हैं।

एयासि णं लेसाणं अंतरेसु अण्णयरीओ छिण्णलेसाओ संमुच्छंति, तए णं ताओ छिण्णलेस्साओ संमुच्छियाओ समाणीओ तदणंतराइं बाहिराइं पोग्गलाइं संतावेंतीति,

सूर्य के तेज से निकले हुए तेज तथा चन्द्र के उद्योत से निकले हुए उद्योत सम्मूर्छित होते हुए अनन्तर स्थित बाह्य पुद्गलों को तपाते हैं, प्रकाशित करते हैं।

एस णं से समिए तावक्खेत्ते,[1]

—सूरिय. पा. ९, सु. ३०

यह सूर्य से उत्पन्न तापक्षेत्र है।

(यह चन्द्र से उत्पन्न प्रकाशक्षेत्र है।)

पोरिसिच्छाय-निवत्तणं—

पौरुषी-छाया का निष्पादन—

१७. प०—ता कइकट्ठं ते सूरिए पोरिसिच्छायं णिव्वत्ति ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता अणुसमयमेव सूरिए पोरिसिच्छायं णिव्वत्तेइ, आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२. ता अणुमुहुत्तमेव सूरिए पोरिसिच्छायं णिव्वत्तेइ, आहिए त्ति वएज्जा,

जाओ चेव ओयसंठिईए पडिवत्तीओ एएणं अभिलावेणं णेयव्वाओ,-जाव-[2] (३-२४)

एगे पुण एवमाहंसु—

२५. ता अणुउस्सप्पिणि-ओसप्पिणिमेव सूरिए पोरिसिच्छायं णिव्वत्तेइ, आहिए त्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

वयं पुण एवं वयामो—

१. ता सूरियस्स णं—

उच्चत्तं च लेसं च, पडुच्च छायुद्देसे,

२. उच्चत्तं च, छायं च पडुच्च लेसुद्देसे,

३. लेसं च छायं च पडुच्च उच्चत्तोद्देसे[1]

—सूरिय. पा. ९, सु. ३१

१७. प्र०—सूर्य कितने समय में "पौरुषी-छाया" की निष्पत्ति करता है? कहें।

उ०—इस सम्बन्ध में ये पच्चीस प्रतिपत्तियाँ (मान्यतायें) कही गई हैं, यथा—

उनमें से एक (मान्यता वाले) इस प्रकार कहते हैं—

(१) सूर्य प्रत्येक समय में पौरुषी-छाया की निष्पत्ति करता है।

एक (मान्यता वाले) फिर इस प्रकार कहते हैं—

(२) सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में पौरुषी-छाया की निष्पत्ति करता है।

(३-२४) ओज संस्थिति की जितनी (पच्चीस) प्रतिपत्तियाँ हैं उतनी ही यहाँ इन अभिलापों से जाननी चाहिए।

एक (मान्यता वाले) फिर इस प्रकार कहते हैं—

(२५) सूर्य प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी में "पौरुषी-छाया" की निष्पत्ति करता है।

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

(१) सूर्य की ऊँचाई और लेश्या (प्रकाश) की अपेक्षा करके छाया (पौरुषी-छाया) का कथन है।

(२) सूर्य की ऊँचाई और छाया (पौरुषी-छाया) की अपेक्षा करके लेश्या (प्रकाश) का कथन है।

(३) सूर्य की लेश्या (प्रकाश) और छाया (पौरुषी-छाया) की अपेक्षा करके ऊँचाई का कथन है।

---

१ चन्द. पा. ९, सु. ३०।

२ चन्द. पा. ९, सु. ३१।

२ सूरिय. पा. ९, सु. २५।

पोरिसिच्छाय-निव्वत्तणं—

१८. प०—..........[1]

उ०—तत्थ खलु इमाओ दुवे पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

(क) १. ता अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए चउपोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ,

(ख) अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए दु-पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ, एगे एवमाहंसु—

एगे पुण एवमाहंसु—

(क) २. ता अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए दु-पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ,

(ख) अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए नो किंचि पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ,

तत्थ जे ते एवमाहंसु —

(क) १. ता अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए चउ-पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ,

(ख) अत्थि णं से दिवसे-जंसि णं दिवसंसि सूरिए दु-पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ,

ते एवमाहंसु,

(क) १. ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

तंसि च णं दिवसंसि सूरिए चउ-पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ, तं जहा—

उग्गमण-मुहुत्तंसि य, अत्थमण-मुहुत्तंसि य,

लेसं अभिवड्ढेमाणे नो चेव णं निव्वुड्ढेमाणे,

पौरुषी छाया का निवर्तन—

१८. प्र०—प्रश्न सूत्र विछिन्न है,[2]

उ०—इस सम्बन्ध में ये दो प्रतिपत्तियां (मान्यतायें) कही गई हैं यथा—

उनमें से एक (मान्यता वाले) इस प्रकार कहते है—

(क) १. ऐसा एक दिवस है—जिस (दिवस) में सूर्य चार पौरुषी-छाया का निवर्तन (निष्पादन) करता है।

(ख) ऐसा एक दिवस है—जिस (दिवस) में सूर्य दो-पौरुषी छाया का निवर्तन (निष्पादन) करता है।

एक (मान्यता वाले) फिर इस प्रकार कहते है—

(क) २. ऐसा एक दिवस है—जिस (दिवस) में सूर्य दो-पौरुषी छाया का निवर्तन (निष्पादन) करता है।

(ख) ऐसा एक दिवस है—जिस (दिवस) में सूर्य किसी प्रकार की छाया का निवर्तन (निष्पादन) नहीं करता है।

उनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

(क) १. ऐसा एक दिवस है—जिस (दिवस) मे सूर्य चार पौरुषी-छाया का निवर्तन (निष्पादन) करता है।

(ख) ऐसा एक दिवस हैं—जिस (दिवस) में सूर्य दो-पौरुषी छाया का निवर्तन (निष्पादन) करता है।

(वे अपनी मान्यताओं की सिद्धि इस प्रकार करते है[2])

(क) जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है, उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है—

उस दिन सूर्य चार पौरुषी-छाया का निवर्तन करता है यथा—

उद्गमन मुहूर्त में और अस्तमन मुहूर्त में,

लेश्या (प्रकाश) को वढ़ाता हुआ, घटाता हुआ नहीं,

---

१ सूर्य प्रज्ञप्ति की संकलन शैली के अनुसार यहाँ प्रश्नसूत्र होना चाहिए था, किन्तु यहाँ प्रश्नसूत्र आ. स. आदि किसी प्रति में नहीं है, अत: यहाँ का प्रश्नसूत्र विच्छिन्न हो गया है, ऐसा मान लेना ही उचित है।

सूर्यप्रज्ञप्ति के टीकाकार भी यहाँ प्रश्न-सूत्र के होने या न होने के सम्बन्ध में सर्वथा मौन हैं, अत: यहाँ प्रश्न-सूत्र का स्थान रिक्त रखा है।

यदि कहीं किसी प्रति में प्रश्न-सूत्र हो तो स्वाध्यायशील आगमज्ञ सूचित करने की कृपा करें, जिससे द्वितीय संस्करण में संशोधन परिवर्धन किया जा सके।

२ मूल पाठ में ऐसा सूचना पाठ नहीं है—यह सूचना सम्पादक ने अपनी ओर से दी है।

(ख) ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालस-मुहुत्ता दिवसे भवइ,

(ख) जब सूर्य सर्व बाह्य मण्डल को प्राप्त करके गति करता है, उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है, जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

तंसि च णं दिवसंसि सूरिए दु-पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ, तं जहा—

उस दिन सूर्य दो-पौरुषी-छाया का निवर्तन करता है, यथा—

उग्गमण-मुहुत्तंसि य, अत्थमण-मुहुत्तंसि य,
लेसं अभिवड्ढेमाणे नो चेव णं निव्वुड्ढेमाणे.

उद्गमन मुहूर्त में और अस्तमन मुहूर्त में,
लेश्या को बढ़ाता हुआ, घटाता हुआ नहीं,

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु

उनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

(क) २. ता अत्थि णं से दिवसे-जंसि णं दिवसंसि सूरिए दु-पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ,

(क) ऐसा एक दिवस है—जिस (दिवस) में सूर्य दो पौरुषी छाया का निवर्तन (निष्पादन) करता है।

अत्थि णं से दिवसे-जंसि णं दिवसंसि सूरिए नो किंचि पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ,

ऐसा एक दिवस है—जिस (दिवस) में सूर्य किसी प्रकार की छाया का निवर्तन नहीं करता है।

ते एवमाहंसु—

वे अपनी मान्यताओं को इस प्रकार सिद्ध करते हैं—

(क) ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसिए अट्ठारस-मुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालस मुहुत्ता राई भवइ,

(क) जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है, तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

तंसि च णं दिवसंसि सूरिए दु-पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ तं जहा—

उस दिन सूर्य दो पौरुषी छाया का निवर्तन करता है, यथा—

उग्गमण-मुहुत्तंसि य, अत्थमण-मुहुत्तंसि य.
लेसं अभिवड्ढेमाणे, नो चेव णं निव्वुड्ढेमाणे

उद्गमन मुहूर्त में और अस्तमन मुहूर्त में,
लेश्या (प्रकाश) को बढ़ाता हुआ—घटाता हुआ नहीं।

(ख) ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारस-मुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालस-मुहुत्ते दिवसे भवइ.

(ख) जब सूर्य सर्व बाह्यमण्डल को प्राप्त करके गति करता है, तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

तंसि च णं दिवसंसि सूरिए नो किंचि पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ. तं जहा—

उस दिन सूर्य किसी प्रकार की पौरुषी छाया का निवर्तन नहीं करता है यथा—

उग्गमण-मुहुत्तंसि य. अत्थमण-मुहुत्तंसि य.
नो चेव णं लेसं अभिवड्ढेमाणे वा, निव्वुड्ढेमाणे वा[1].

उद्गमन मुहूर्त में और अस्तमन मुहूर्त में,
न किरण (प्रकाश) को बढ़ाता हुआ, न घटाता हुआ।

—सूरिय. पा. ९, सु. ३१

पोरिसिच्छाय-निव्वत्तणं—

१६. प०—ता कइकट्टं ते सूरिए पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ इमाओ छण्णउइ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता अत्थि णं से देसे-जंसि णं देसंसि सूरिए एग-पोरिसीयं छायं निव्वत्तेइ,[1] एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२. ता अत्थि णं से देसे-जंसि णं देसंसि सूरिए दु-पोरिसीयं छायं निव्वत्तेइ, एगे एवमाहंसु,

एवं एएणं अभिलावेणं णेयव्वं,-जाव-(३-६५)

एगे पुण एवमाहंसु—

६६. ता अत्थि णं से देसे-जंसि णं देसंसि सूरिए छण्ण-उइ पोरिसीयं छाय निव्वत्तेइ, एगे एवमाहंसु,

तत्थ जे ते एवमाहंसु—

१. ता अत्थि णं से देसे-जंसि णं देसंसि सूरिए एग-पोरिसीयं छायं निव्वत्तेइ त्ति,

ते एवमाहंसु,

ता सूरियस्स णं सव्वहेट्ठिमाओ सूर-प्पडिहीओ वहित्ता अभिणिसट्ठाहिं लेसाहिं ताडिज्जमाणीहिं इमीसे रयण-प्पभाए पुढवीए वहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ जावइयं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं, एवइयाए एगाए अद्धाए, एगेणं छायाणुमाणप्पमाणेणं उमाए, तत्थ से सूरिए एगपोरिसीयं छायं निव्वत्तेइ त्ति,

तत्थ जे ते एवमाहंसु—

२. ता अत्थि णं से देसे, जंसि णं देसंसि सूरिए दु-पोरिसीयं छायं निव्वत्तेइ 'त्ति'

ते एवमाहंसु,

ता सूरियस्स णं सव्वहेट्ठिमाओ सूर-प्पडिहीओ वहित्ता अभिणिसट्ठाहिं लेसाहिं ताडिज्जमाणीहिं, इमीसे रयण-प्पभाए पुढवीए वहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ

पौरुषी छाया का निवर्तन—

१६. प्र०—सूर्य किस स्थान में कितनी पौरुषी छाया की निष्पत्ति करता है ? कहें ।

उ०—इस सम्बन्ध में ये छन्नवे (६६) प्रतिपत्तियाँ (मान्यतायें) कही गई हैं यथा—

उनमें से एक (मान्यता वाले) इस प्रकार कहते हैं—

(१) एक ऐसा देश (स्थान) है—जिस देश में सूर्य एक पौरुषी-छाया की निष्पत्ति करता है,

एक (मान्यता वाले) फिर इस प्रकार कहते हैं—

(२) एक ऐसा देश है—जिस देश में सूर्य दो पौरुषी छाया की निष्पत्ति करता है ।

(३-६५) इस प्रकार इस अभिलाप से जानना चाहिए—यावत्—

एक (मान्यता वाले) फिर इस प्रकार कहते हैं—

(६६) एक ऐसा देश है—जिस देश में सूर्य छिन्नवे पौरुषी छाया की निष्पत्ति करता है ।

उनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

(१) एक ऐसा देश है—जिस देश में सूर्य एक पौरुषी-छाया की निष्पत्ति करता है ।

(वे अपनी मान्यता को इस प्रकार सिद्ध करते हैं)

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अधिक सम-रमणीय भूभाग से सूर्य जितना ऊँचा है उतने ही एक मार्ग में, सूर्य के सबसे नीचे के निवेश से निकली हुई किरणों से स्पर्शित पदार्थ की छाया जहाँ अनुमान प्रमाण से विभक्त की जाती है, वहाँ सूर्य (एक पुरुष प्रमाण) पौरुषी छाया की निष्पत्ति करता है ।

उनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

(२) ऐसा एक देश है—जिस देश में सूर्य दो पौरुषी छाया की निष्पत्ति करता है ।

(वे अपनी मान्यता को इस प्रकार सिद्ध करते हैं)

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अधिक सम-रमणीय भूभाग से सूर्य जितना ऊँचा है उतने ही दो मार्गों में सूर्य के सबसे नीचे के निवेश से निकलती हुई किरणों से स्पर्शित पदार्थ की छाया जहाँ

---

१ तत्र-तेषां षण्णवतेः परतीर्थिकानां मध्ये, एके एवमाहुः
"ता" इति पूर्ववत् अस्ति स देशो, यस्मिन् देशे सूर्यः आगतःसन् एकपौरुषी-एकपुरुष-प्रमाणां (पुरुषग्रहणमुपलक्षणं सर्वस्यापि प्रकाश्यवस्तुनः स्व-प्रमाणां) छायां निवर्तयति,
—सूर्य. टीका.

जावइयं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं, एवइयाए दोहिं अद्धाहिं दोहिं छायाणुमाण-प्पमाणेहिं उमाए, एत्थ णं से सूरिए दुपोरिसीयं छायं निव्वत्तेइ त्ति,

अनुमान प्रमाण से दो भागों में विभक्त की जाती है वहाँ सूर्य दो (पुरुषप्रमाण) पौरुषी छाया की निष्पत्ति करता है।

३-९५. एवं एएणं अभिलावेणं णेयव्वं-जाव-

(३-९५) इस प्रकार इस अभिलाप से जानना चाहिए— यावत्—

तत्थ जे ते एवमाहंसु—

उनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

९६. "ता अत्थि णं से देसे-जंसि णं देसंसि सूरिए छण्णउइं पोरिसीयं छायं निव्वत्तेइत्ति"

९६. ऐसा एक देश है—जिस देश में सूर्य छियानवे पौरुषी छाया की निष्पत्ति करता है।

ते एवमाहंसु,

(वे अपनी मान्यता को इस प्रकार सिद्ध करते हैं)

ता सूरियस्स णं सव्वहिट्ठिमाओ सूरप्पडिहीओ बहित्ता अभिणिसट्ठाहिं लेसाहिं ताडिज्जमाणीहिं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ जावइयं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं, एवइयाए छण्णउईए छायाणुमाण-प्पमाणेहिं उमाए, एत्थ णं से सूरिए छण्णउइं पोरिसीयं छायं निव्वत्तेइ त्ति,

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अधिक समरमणीय भूभाग से सूर्य जितना ऊँचा है उतने ही "छियानवे" मार्गों से सूर्य के सबसे नीचे के किनारे से निकली हुई किरणों से प्रतिहत पदार्थ की छाया जहाँ अनुमान प्रमाण से छियानवे भागों में विभक्त की जाती है वहाँ सूर्य छियानवे (पुरुष प्रमाण) पौरुषी छाया की निष्पत्ति करता है।

वयं पुण एवं वयामो—

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

ता साइरेग-अउणट्ठि-पोरिसीणं सूरिए पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ त्ति.   —सूरिय. पा. ९. सु. ३१

सूर्य कुछ अधिक उनसठ (५९) पौरुषी छाया की निष्पत्ति करता है।

पोरिसिच्छाय-प्पमाणं—

पौरुषी छाया का प्रमाण—

१०२०. (क) प०—ता अवड्ढ-पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा, सेसे वा ?

१०२०. प्र०—अपार्धपौरुषी "अर्धपौरुषी" अर्थात् पुरुष की आधी छाया तथा सभी प्रकाश्य पदार्थों की आधी छाया, दिन का कितना भाग बीतने पर अथवा कितना भाग शेष रहने पर होती है ?

उ०—ता ति-भागे गए वा सेसे वा।

उ०—दिन के तीन भाग बीतने पर अथवा तीन भाग शेष रहने पर आधी पौरुषी होती है।

(ख) प०—ता पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा, सेसे वा ?

प्र०—पौरुषी अर्थात् पुरुष की स्वप्रमाण छाया तथा सभी प्रकाश्य पदार्थों की स्वप्रमाण छाया दिन का कितना भाग बीतने पर अथवा कितना भाग शेष रहने पर होती है ?

उ०—ता चउब्भागे गए वा, सेसे वा,

उ०—दिन के चार भाग बीतने पर अथवा दिन के चार भाग शेष रहने पर "पौरुषी-छाया" होती है।

(ग) प०—ता दिवड्ढ-पोरिसी ण छाया दिवसस्स किं गए वा, सेसे वा ?

उ०—ता पंचभागे गए वा, सेसे वा ।

प्र०—डेढ-पौरुषी छाया दिन का कितना भाग बीतने पर अथवा कितना भाग शेष रहने पर होती है ?

उ०—दिन के पाँच भाग बीतने पर तथा दिन के पाँच भाग शेष रहने पर "डेढ पौरुषी-छाया" होती है ।

(घ) प०—ता बि-पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा, सेसे वा ?

उ०—छब्भागगए वा, सेसे वा ।

प्र०—दो-पौरुषी-छाया दिन का कितना भाग बीतने पर अथवा कितना भाग शेष रहने पर होती है ?

उ०—दिन के छः भाग बीतने पर तथा दिन के छः भाग शेष रहने पर "दो-पौरुषी-छाया" होती है ।

प०—ता अड्ढाइज्ज-पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा, सेसे वा ?

उ०—ता सत्तभाग गए वा, सेसे वा ।

प्र०—अढाई-पौरुषी-छाया दिन का कितना भाग बीतने पर अथवा कितना भाग शेष रहने पर होती है ?

उ०—दिन के सात भाग बीतने पर तथा दिन के सात भाग शेष रहने पर "अढाई-पौरुषी-छाया" होती है ।

एवं अवड्ढपोरिसिं छोढुं छोढुं पुच्छा[1] दिवसभागं छोढुं छोढुं वागरणं[2]-जाव-····

इस प्रकार "अर्धपौरुषी" मिला मिलाकर प्रश्नसूत्र कहें । दिवसभाग मिला मिलाकर उत्तरसूत्र कहें—यावत्—

प०—ता अद्धा अउणसट्ठि-पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा, सेसे वा ?

उ०—ता एगूणवीस-सय-भागे गए वा, सेसे वा ।

प्र०—उनसठ-पौरुषी-छाया दिन का कितना भाग बीतने पर अथवा कितना भाग शेष रहने पर होती है ?

उ०—दिन के एक सौ उन्नीस भाग बीतने पर तथा दिन के एक सौ उन्नीस भाग शेष रहने पर "उनसठ-पौरुषी-छाया" होती है ।

प०—ता अउणसट्ठि पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा, सेसे वा ?

उ०—बावीससहस्सभागे गए वा, सेसे वा ।

प्र०—उनसठ पौरुषी छाया दिन का कितना भाग बीतने पर अथवा कितना भाग शेष रहने पर होती है ?

उ०—दिन का एक हजार बावीसवाँ भाग व्यतीत होने पर एवं बाकी अर्ध का शेष रहने पर होती है ।

प०—ता साइरेग-अउणसट्ठि-पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा, सेसे वा ?

उ०—ता नत्थि किंचि गए वा, सेसे वा,[3]

प्र०—कुछ अधिक "उनसठ-पौरुषी-छाया" दिन का कितना भाग बीतने पर अथवा कितना भाग शेष रहने पर होती है ?

उ०—दिन का कोई भाग बीतने पर या शेष रहने पर साठ पौरुषी छाया नहीं होती हैं ।

---

१ एवमित्यादि-एवमुक्तेन प्रकारेण "अर्द्ध-पौरुषी" अर्द्धपुरुष प्रमाणां छायां क्षिप्त्वा, क्षिप्त्वा पृच्छा, पृच्छा सूत्रं द्रष्टव्यं ।—सूर्य. टीका.

२ दिवसभागं ति, पूर्व-पूर्वसूत्रापेक्षया एकैकमधिकं दिवसभागं क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा व्याकरणं, उत्तरसूत्रं ज्ञातव्यं । —सूर्य. टीका.

३ यहाँ अंकित प्रश्नोत्तर यहाँ दी गई संक्षिप्त वाचना की सूचनानुसार संशोधित है । सूर्यप्रज्ञप्ति की "१ अ. स. १२ शा. स. १२ अ. सु. १४ ह. ग्र." इन चारों प्रतियों में दिये गये प्रश्नोत्तर यहाँ दी गई संक्षिप्त वाचना की सूचना से कितने विपरीत हैं ? यह निर्णय पाठक स्वयं करें ।

प०—"ता अद्ध अउणसट्ठि पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गये वा, सेसे वा ?

उ०—ता एगूणवीससयभागे गए वा, सेसे वा ।

प०—ता अउणसट्ठि पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा, सेसे वा ?

उ०—ता बावीस-सहस्स भागे गए वा, सेसे वा ।

प०—साइरेग-अउणसट्ठि-पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा, सेसे वा ?

उ०—ता नत्थि किंचि गए वा, सेसे वा ।

(क्रमशः)

तत्थ खलु इमा पणवीसविहा छाया पण्णत्ता, तं जहा-

१. खंभ-छाया, २. रज्जु-छाया, ३. पागार-छाया, ४. पासाय-छाया, ५. उग्गम-छाया, ६. उच्चत्त-छाया, ७. अणुलोम-छाया, ८. पडिलोम-छाया, ९. आरंभिया-छाया, १०. उवहया-छाया, ११. समा-छाया, १२. पडिहया-छाया, १३. खील-छाया, १४. पक्ख-छाया, १५. पुरओ-उदया-छाया, १६. पुरिम कंठ-भागुवगया-छाया, १७. पच्छिम-कंठ-भागुवगया-छाया, १८. छाया-णुवाइणी-छाया १९. किट्टाणुवाइणी-छाया, २०. छाय-छाया, २१. विकप्प-छाया, २२. वेहास-छाया, २३. कड-छाया, २४. गोल-छाया, २५. पिट्ठओदग्गा-छाया।

तत्थ णं गोल-छाया अट्ठविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. गोल-छाया, २. अवड्ढ-गोल-छाया, ३. गाढ-गोल-छाया, ४. अवड्ढ-गाढ-गोल-छाया, ५. गोलावलि-छाया, ६. अवड्ढ-गोलावलि-छाया ७. गोलपुंजछाया, ८. अवड्ढ-गोल-पुंज-छाया।[1]

—सूरिय. पा. ९, सु. ३१

इनमें ये पच्चीस प्रकार की छाया कही गई है, यथा—

(१) स्तम्भछाया, (२) रज्जुछाया, (३) प्राकारछाया, (४) प्रासाद छाया, (५) उद्गम छाया, (६) उच्चत्व=(ऊँचाई की) छाया, (७) अनुलोमछाया, (८) प्रतिलोम छाया, (९) आरम्भिता छाया, (१०) उपहता छाया, (११) समा छाया, (१२) प्रतिहता छाया, (१३) खील छाया, (१४) पक्ष छाया, (१५) पुरोदय छाया, (१६) पूर्वकण्ठभाग उपगता छाया, (१७) पश्चिम कण्ठभाग उपगता छाया, (१८) छायानुवादिनी छाया, (१९) कृष्णानुवादिनी छाया, (२०) छाय-छाया, (२१) विकल्प छाया, (२२) विहाय छाया, (२३) कट छाया, (२४) गोल छाया, (२५) पृष्ठोदग्ना छाया।

इनमें गोल छाया आठ प्रकार की कही गई है, यथा—

(१) गोल छाया, (२) अपार्धगोल छाया, (३) गाढगोल छाया, (४) अपार्धगाढगोल छाया, (५) गोलावलि छाया, (६) अपार्धगोलावलि छाया, (७) गोलपुंज छाया, (८) अपार्धगोलपुंज छाया।

सूरमडलाणं संखा—

२१. प०—कइ णं भंते! सूरमडला पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! एगे चउरासीए मंडलसए पण्णत्ते।

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १२७

सूर्यमण्डलों की संख्या—

२१. प्र०—हे भगवन्! सूर्यमण्डल कितने कहे गये हैं?

उ०—हे गौतम! एक सौ चौरासी सूर्यमण्डल कहे गये हैं।

जंबुद्दीवे सूरमंडलाणं संखा—

२२. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयं ओगाहित्ता केवइया सूरमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे असीअं जोयणसयं ओगाहित्ता एत्थ णं पण्णट्ठी सूरमंडला पण्णत्ता[1]

—जंबु, वक्ख. ७, सु. ११७

लवणसमुद्दे सूरमंडलाणं संखा—

२३. प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ सूरमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! लवणे समुद्दे तिण्णि तीसे जोयणसए ओगाहित्ता एत्थ णं एगूणवीसे सूरमंडलसए पण्णत्ते।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे लवणे असमुद्दे एगे चउरासीए मंडलसए भवंतीति मक्खायंति[2],

— जंबु. वक्ख. ७, सु. १२७

निसढ-नीलवंतेसु सूरमंडल संखा परूवणं—

२४. णिसढे णं पव्वए तेवट्ठि सूरोदया पण्णत्ता।
एवं नीलवंते वि। —सम. ६३, सु. ३-४

सूरियाणं अण्णमण्णस्स अन्तर-चारं—

२५. प०—ता केवइयं एए दुवे सूरिया अण्णमण्णस्स अन्तरं कट्टु चारं चरंति ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ छ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थ एगे एवमाहंसु—

१. ता एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसयं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति, आहितेति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२. ता एगं जोयणसहस्सं एगं च चोत्तीसं जोयणसयं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति, आहितेति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,.

एगे पुण एवमाहंसु—

३. ता एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसयं

जम्बूद्वीप में सूर्यमण्डलों की संख्या—

२२. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में कितने (योजन) अवगाहन करने पर कितने सूर्यमण्डल कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में एक सौ अस्सी योजन अवगाहन करने पर पैंसठ सूर्यमण्डल कहे गये हैं।

लवणसमुद्र में सूर्य-मण्डलों की सख्या—

२३. प्र०—हे भगवन् ! लवणसमुद्र में कितने (योजन) अवगाहन करने पर कितने सूर्यमण्डल कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! लवणसमुद्र में तीन सौ तीस योजन अवगाहन करने पर एक सौ उन्नीस सूर्यमण्डल कहे गये हैं।

इस प्रकार जम्बूद्वीप नामक द्वीप में और लवणसमुद्र में पूर्वापर के मिलाकर एक सौ चौरासी सूर्यमण्डल होते हैं—ऐसा कहा गया है।

निषध और नीलवंत पर्वत पर सूर्यमण्डलों की संख्या का प्ररूपण—

२४. निषध पर्वत पर त्रेसठ सूर्य मण्डल कहे गये हैं।
इसी प्रकार नीलवंत पर्वत पर भी त्रेसठ सूर्य मण्डल हैं।

सूर्यों की एक दूसरे से अन्तर गति—

२५. प्र०—ये दोनों (भारतीय[3] और ऐरावतीय) सूर्य एक दूसरे से कितना अन्तर करके गति करते हैं ?

उ०—इस सम्बन्ध में ये छः प्रतिपत्तियाँ (मतान्तर) कही गई हैं, यथा—

इनमें से एक (मत वालों) ने ऐसा कहा है—

(१) भारतीय सूर्य ऐरावतीय सूर्य से एक हजार योजन का अन्तर करके गति करता है और ऐरावतीय सूर्य भारतीय सूर्य से एक सौ तेतीस योजन का अन्तर करके गति करता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२) भारतीय सूर्य ऐरावतीय सूर्य से एक हजार योजन का अन्तर करके गति करता है और ऐरावतीय सूर्य भारतीय सूर्य से एक सौ चौतीस योजन का अन्तर करके गति करता है।

एक (मतवालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(३) भारतीय सूर्य ऐरावतीय सूर्य से एक हजार योजन का

---

१ जम्बुद्दीवे णं दीवे पणसट्ठि सूरमंडला पण्णत्ता। —सम. स. ८५, सु. १

२ जम्बूद्वीप में पैंसठ सूर्यमण्डल और लवणसमुद्र में एक सौ उगणीस सूर्य मण्डल—इन दोनों संख्याओं के संयुक्त करने पर एक सौ चौरासी सूर्यमण्डल होते हैं।

३ भरतक्षेत्रवर्ती।

अण्णमण्णस्स अन्तरं कट्टु सूरिया चारं चरन्ति, आहितेति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

अन्तर करके गति करता है और ऐरवतीय सूर्य भारतीय सूर्य से एक सौ पैंतीस योजन का अन्तर करके गति करता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

४-१. ता एगं दीवं, एगं समुद्दं अण्णमण्णस्स अन्तरं कट्टु सूरिया चारं चरन्ति, आहितेति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

(४-१) भारतीय सूर्य ऐरवतीय सूर्य से एक द्वीप का अन्तर करके गति करता है और ऐरवतीय सूर्य भारतीय सूर्य से एक समुद्र का अन्तर करके गति करता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

५-२. ता दो दीवे, दो समुद्दे अण्णमण्णस्स अन्तरं कट्टु सूरिया चारं चरंति, आहितेति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

(५-२) भारतीय सूर्य ऐरवतीय सूर्य से दो द्वीप का अन्तर करके गति करता है और ऐरवतीय सूर्य भारतीय सूर्य से दो समुद्र का अन्तर करके गति करता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

६-३. ता तिण्णि दीवे, तिण्णि समुद्दे, अण्णमण्णस्स अन्तरं कट्टु सूरिया चारं चरंति, आहितेति वएज्जा, एगे एवमाहंसु,

(६-३) भारतीय सूर्य ऐरवतीय सूर्य से तीन द्वीप का अन्तर करके गति करता है ऐरवतीय सूर्य भारतीय सूर्य से तीन समुद्र का अन्तर करके गति करता है।

वयं पुण एवं वयामो

हम फिर इस प्रकार कहते हैं

ता पंच पंच जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले अण्णमण्णस्स अन्तरं अभिवड्ढेमाणा वा, निवड्ढेमाणा वा सूरिया चारं चरंति आहितेति वएज्जा,

प्रत्येक मण्डल में ये दोनों सूर्य पाँच पाँच योजन तथा एक योजन के इकसठ भागों में से पैंतीस भाग जितना अन्तर एक दूसरे से बढ़ाते या घटाते हुए गति करते हैं।

१०—ताए णं को हेऊ ? आहितेति वएज्जा,

१०—इस (ताप) मान्यता (की स्थिति) के सम्बन्ध में क्या हेतु है ? कहें।

सहस्साइं छच्च पणयाले जोयणसए पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अन्तरं कट्टु चारं चरंति आहितेति वएज्जा,

तथा एक योजन के इगसठ भागों में से पैंतीस भाग जितना परस्पर अन्तर करके गति करते हैं।

तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगट्ठिभाग मुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगट्ठिभाग मुहुत्तेहिं अहिया,

तब एक मुहूर्त के इगसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है और एक मुहूर्त के इगसठ भाग तथा दो भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

३. ते निक्खममाणा सूरिया दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति,

(३) (आभ्यन्तरानन्तर मण्डल से) निकलत हुए वे दोनों सूर्य दूसरे अहोरात्र में आभ्यन्तर तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करते हैं।

ता जया णं एते दुवे सूरिया अब्भिंतरं तच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरंति, तया णं णवणउइं जोयणसहस्साइं छच्च इक्कावण्णे जोयणसए नव य एगट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अन्तरं कट्टु चारं चरंति, आहितेति वदेज्जा,

जब ये दोनों सूर्य आभ्यन्तर तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करते हैं तब वे निन्यानवे हजार छः सौ इक्कावन योजन तथा एक योजन के इगसठ भागों में से नौ भाग जितना परस्पर अन्तर करके गति करते हैं।

तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया,

तब एक मुहूर्त के इगसठ भागों से चार भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है और एक मुहूर्त के इगसठ भाग तथा चार भाग अधिक बार मुहूर्त की रात्रि होती है।

एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणा एते दुवे सूरिया तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणा संकममाणा पंच पंच जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मण्डले अण्णमण्णस्स अंतरं अभिवड्ढेमाणा अभिवड्ढेमाणा सव्व बाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरंति,

इस प्रकार इस क्रम से निकलते हुए ये दोनों सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल की ओर संक्रमण करते करते प्रत्येक मण्डल में पाँच पाँच योजन तथा एक योजन के इगसठ भागों में से पैंतीस भाग जितने अन्तर को परस्पर बढ़ाते बढ़ाते सर्व बाह्य मण्डल की ओर बढ़ते हुए गति करते हैं।

१. ता जया णं एते दुवे सूरिया सव्व बाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरंति, तया णं एगं जोयणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोयणसए अण्णमण्णस्स अन्तरं कट्टु चारं चरंति,

(१) जब ये दोनों सूर्य सर्व बाह्यमण्डल की ओर बढ़ते हुए गति करते हैं तब एक लाख छः सौ साठ योजन जितना अन्तर परस्पर करके गति करते हैं।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

ये प्रथम छः मास (दक्षिणायन के) है यह प्रथम छः मास का अन्त है।

२. ते पविसमाणा सूरिया दोच्चं छम्मासं अयमाणा पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरंति,

(२) (सर्व बाह्यमण्डल की ओर से प्रवेश करते हुए वे दोनों सूर्य दूसरे छः मास में उत्तरायण प्रारम्भ करते हुए प्रथम अहोरात्र में बाह्यान्तरमण्डल को प्राप्त करके गति करते हैं।

ता जया णं एते दुवे सूरिया बाहिराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरंति, तया णं एगं जोयणसयसहस्सं छच्च चउप्पण्णे जोयणसए छत्तीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स, अण्णमण्णस्स अन्तरं कट्टु चारं चरंति,

जब ये दोनों सूर्य बाह्यानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करते हैं तब एक लाख छः सौ चौवन तथा एक योजन के इगसठ भागों में से छत्तीस भाग जितना अन्तर परस्पर करके गति करते हैं।

मुहुत्तेहिं एगमेगं अद्धमण्डलं चरइ, सट्ठीए सट्ठीए मुहुत्तेहिं एगमेगं मण्डलं संघाययंति,

एक एक अर्धमण्डल पर चलता है. और साठ साठ मुहूर्त में एक एक पूर्णमण्डल पर चलता है।

प०—ता निक्खममाणा खलु एते दुवे सूरिया अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरन्ति, पविसमाणा खलु एते दुवे सूरिया अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरन्ति तं सयमेगं चोयालं,

प्र०—(सर्व आभ्यन्तरमण्डल से) निकलते हुए ये दोनों सूर्य एक-दूसरे के चले हुए क्षेत्र में नहीं चलते हैं (किन्तु सर्व बाह्य-मण्डल से) प्रवेश करते हुए ये दोनों सूर्य एक दूसरे के चले हुए क्षेत्र में चलते हैं यह चीर्ण (चला हुआ) क्षेत्र मण्डलों के एक सौ चुम्मालीस भागों में विभक्त है।

तत्थ ण को हेउ, त्ति वदेज्जा ?

इसमें क्या हेतु है ? वह कहें।

उ०—ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्व दीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्व खुड्डागे वट्टे-जाव-जोयणसयसहस्समायाम-विक्खंभे णं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं, दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस य अंगुलाइं, अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवे णं पण्णत्ते,

उ०—यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सर्व द्वीप-समुद्रों के मध्य में है, सबसे छोटा है वृत्ताकार हैं—**यावत्**—एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा और तीन लाख दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोश एक सौ अठावीस धनुष तेरह अंगुल तथा आधे अंगुल से कुछ अधिक की परिधि वाला कहा गया है।

तत्थ णं अयं भारहए चेव सूरिए जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाईण-पडीणाययाए उदीण-दाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सएणं छेत्ता—दाहिण-पुरत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि बाणउतिय सूरियमयाइं जाइं सूरिए अप्पणा चेव चिण्णाइं पडिचरइ,

इस जम्बूद्वीप में जम्बूद्वीप की पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण की लम्बी जीवा से मण्डल के एक सौ चोवीस भाग करने पर मण्डल के दक्षिण-पूर्वी चतुर्थ भाग में अर्थात् इगतीस भागों में रहा हुआ ये भरतक्षेत्र का सूर्य (भरतक्षेत्रीय सूर्य के ही चले हुए) बानवे मण्डलों में स्वयं पीछा चलता है।

उत्तर-पच्चत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि एक्काणइयं सूरियमयाइं जाइं सूरिए अप्पणा चेव चिण्णाइं पडिचरइ,

मण्डल के उत्तर-पश्चिमी चतुर्थ भाग में रहा हुआ यह भरत का सूर्य (भरतक्षेत्रीय सूर्य के ही चले हुए) इकानवे मण्डलों में स्वयं पुनः चलता है।

तत्थ णं अयं भारहे सूरिए एरवयस्स सूरियस्स जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाईण-पडीणाययाए उदीण-दाहिणाययाए जीवाए मण्डलं चउवीसए णं सए णं छेत्ता—उत्तर-पुरत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि बाणउइय सूरियमयाइं जाइं सूरिए परस्स चेव चिण्णाइं पडिचरइ,

इस जम्बूद्वीप में जम्बूद्वीप की पूर्व-पश्चिमी तथा उत्तर-दक्षिण की लम्बी जीवा से मण्डल के एक सौ चौवीस भाग करने पर मण्डल के उत्तर-पूर्वी चतुर्थ भाग में रहा हुआ यह भरत क्षेत्र का सूर्य (ऐरावतक्षेत्रीय सूर्य के चले हुए क्षेत्र में) पर के चले हुए बानवें मण्डलों में चलता है।

दाहिण-पच्चत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि एक्काणउइयं सूरियमयाइं जाइं सूरिए परस्स चेव चिण्णाइं पडिचरइ,

मण्डल के दक्षिण-पश्चिमी चतुर्थ भाग मे रहा हुआ यह भरत क्षेत्र का सूर्य (ऐरावत क्षेत्रीय सूर्य के चले हुए क्षेत्र में) परके चले हुए इकानवें मण्डलों में पीछा चलता है।

तत्थ णं अयं एरवए चेव सूरिए जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाइण-पडीणाययाए उदीण-दाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सएणं छेत्ता—उत्तर-पुरत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि बाणउइयं सूरियमयाइं जाइं सूरिए अप्पणा चेव चिण्णाइं पडिचरइ,

इस जम्बूद्वीप में जम्बूद्वीप की पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण लम्बी जीवा से मण्डल के एक सौ चौवीस भाग करने पर मण्डल के उत्तर-पूर्वी चतुर्थ भाग में रहा हुआ यह ऐरावत क्षेत्र का सूर्य (ऐरावतक्षेत्रीय सूर्य के ही चले हुए) बानवे मण्डलों में स्वयं पीछा चलता हैं।

दाहिण-पुरत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि एक्काणउइय सूरियमयाइं जाइं सूरिए अप्पणा चेव चिण्णाइं पडिचरइ,

मण्डल के दक्षिण-पूर्वी चतुर्थ भाग में रहा हुआ यह भरत क्षेत्र का सूर्य (ऐरावतक्षेत्रीय सूर्य के ही चले हुए) इकानवें मण्डलों में स्वयं पीछा चलता है।

१. ता सव्वा वि णं मण्डलवया जोयणं बाहल्ले णं, एगं जोयणसहस्सं एगं तेत्तीसं जोयणसयं आयाम-विक्खंभे णं, तिण्णि जोयणसहस्साइं तिण्णि य णवण-उई जोयणसए परिक्खेवे णं पण्णत्ता एगे एवमाहंसु,

(१) (सूर्य के) सभी मण्डलों का बाहल्य एक योजन का है। एक हजार एक सौ तेतीस योजन का आयाम-विष्कम्भ हैं। तीन हजार तीन सौ निन्यानवें योजन की परिधि कही गई है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

२. ता सव्वा वि णं मण्डलवया जोयणं बाहल्ले णं, एगं जोयणसहस्सं एगं च चउत्तीसं जोयणसयं आयाम-विक्खभे णं, तिण्णि जोयणसहस्साइं चत्तारि बिउत्तराइं जोयणसयाइं परिक्खेवे णं पण्णत्ता, एगं एवमाहंसु,

(२) (सूर्य के) सभी मण्डलों का बाहल्य एक योजन का है— एक हजार एक सौ चौंतीस योजन का आयाम-विष्कम्भ है। तीन हजार चार सौ दो योजन की परिधि कहीं गई है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

३. ता सव्वा वि णं मण्डलवया जोयणं बाहल्ले णं, एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसयं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसहस्साइं चत्तारि पंचुत्तराइं जोयणसयाइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता—एगे एवमाहंसु,

(३) (सूर्य के) सभी मण्डलों का बाहल्य एक योजन का है। एक हजार एक सौ पैंतीस योजन का आयाम-विष्कम्भ है। तीन हजार चार सौ पाँच योजन की परिधि कही गई है।

वयं पुण एवं वयामो—

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

ता सव्वा वि णं मण्डलवया अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्ले णं,

(सूर्य के) सभी मण्डलों का बाहल्य एक योजन के इगसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितना है।

अणियया आयाम-विक्खंभ-परिक्खेवे णं, आहितेति वदेज्जा,

आयाम-विष्कम्भ और परिधि अनियत कही हैं।

प०—तत्थ णं कोहेऊ ? त्ति वदेज्जा,

प्र०—इस प्रकार कहने का कारण क्या है ?

उ०—ता अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्व दीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्व खुड्डागे वट्टे-जाव-जोयणसहस्समायाम-विक्खंभे णं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं, दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि कोसे, अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस य अंगुलाइं, अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवे णं पण्णत्ते,

उ०—यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सब द्वीप-समुद्रों के मध्य में है, सबसे छोटा है. वृत्ताकार है—**यावत्**—एक लाख योजन का लम्बा-चौड़ा है और तीन लाख दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोश एक सौ अठावीस धनुष तेरह अंगुल तथा आधे अंगुल से कुछ अधिक की परिधि कही गई है।

१. ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं सा मण्डलवया अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्ले णं, णवणउइ जोयणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोयणसयाइं आयाम-विक्खंभे णं,

(१) जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है, तब मण्डल का बाहल्य एक योजन के इगसठ भागों में से अडतालीस भाग जितना है। निन्यानवे हजार छः सौ चालीस योजन का आयाम-विष्कम्भ है।

तिण्णि जोयणसय सहस्साइं पण्णरस जोयणसहस्साइं एगूणणउई जोयणाइं किंचि विसेसाहिए परिक्खेवे णं,[1]

तीन लाख पन्द्रह हजार निव्यासी योजन से कुछ अधिक की परिधि कही गई है।

---

१ सूर्यप्रज्ञप्ति तथा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के सूत्रों में सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ कहा गया है किन्तु समवायांग के सूत्र में केवल विष्कम्भ ही कहा गया है; इसका समाधान यह है कि वृत्ताकार का आयाम विष्कम्भ सदा समान होता है, सूर्यमण्डल वृत्ताकार है अतः केवल विष्कम्भ कहने से आयाम विष्कम्भ समझ लेना चाहिए।
सूर्यप्रज्ञप्ति में सूर्यमण्डल का बाहल्य एक योजन के इगसठ भागों में से अडतालीस भाग जितना कहा गया है।
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में सूर्यमण्डल का बाहल्य एक योजन के इगसठ भागों में से चौवीस भाग जितना कहा गया है। (क्रमशः)

णस्स एगमेगे मंडले विक्खंभ वुड्ढि अभिवड्ढेमाणे अट्ठारस अट्ठारस जोयणाइं परिरयवुड्ढि अभिवड्ढेमाणे अभिवड्ढेमाणे सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

विष्कम्भ वृद्धि प्रत्येक मण्डल में वढ़ाता वढ़ाता अठारह अठारह योजन परिधि की वृद्धि वढ़ाता सर्व बाह्यमण्डल की ओर वढ़ता हुआ गति करता है।

४. ता जया णं सूरिए सव्व बाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं सा मंडलवया अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्ले णं,

(४) जव सूर्य सर्व वाह्यमण्डल को प्राप्त करके गति करता है तव मण्डल का वाहल्य एक योजन के इगसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितना है ।

एगं च जोयणसयसहस्सं छच्चसट्ठे जोयणसए आयाम-विक्खंभे णं,

एक लाख छः सौ साठ योजन जितना आयाम-विष्कम्म है।

तिण्णि जोयणसयसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं तिण्णि य पण्णरसुत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं,

तीन लाख अठारह हजार तीन सौ पन्द्रह योजन की परिधि कही गई है।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णिए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

एस णं पढमे छम्मासे एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

ये प्रथम छः मास (दक्षिणायन के) हैं यह प्रथम छः मास का अन्त है।

१. से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(१) (सर्व वाह्यमण्डल से) प्रवेश करता हुआ वह सूर्य दूसरे छः मास से उत्तरायण प्रारम्भ करता हुआ प्रथम अहोरात्र में वाह्यानन्तर मण्डल को प्राप्त करता हुआ गति करता है ।

ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं सा मंडलवया अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्ले णं,

जव सूर्य वाह्यानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तव मण्डल का वाहल्य एक योजन के इगसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितना है।

एगं जोयणसयसहस्सं छच्च चउप्पणे जोयणसए छव्वीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स आयाम-विक्खंभे णं

एक लाख छः सौ चौवन योजन और एक योजन के इगसठ भागों में से छव्वीस भाग जितना मण्डल का आयाम-विष्कम्भ है।

तिण्णि जोयणसयसहस्साइं अट्ठारस सहस्साइं दोण्णि य सत्ताणउए जोयणसए परिक्खेवे णं पण्णत्ते,

तीन लाख अठारह हजार दो सौ सत्तानवे योजन की परिधि कही गई है।

तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगट्ठिभाग-मुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए,

उस समय एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग तथा दो भाग अधिक वारह मुहूर्त का दिन होता है।

२. से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(२) (वाह्यानन्तर मण्डल से) प्रवेश करता हुआ वह सूर्य दूसरे अहोरात्र में वाह्य तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं सा मंडलवया अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्ले णं,

जव सूर्य वाह्य तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तव मण्डल का वाहल्य एक योजन के इकसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितना है।

एगं जोयणसयसहस्सं छच्च अडयाले जोयणसए बावण्णं च एगट्ठिभागे जोयणस्स आयाम-विक्खंभे णं,

एक लाख छः सौ अड़तालीस योजन और एक योजन के इगसठ भागों में से बावन भाग जितना आयाम-विष्कम्भ है।

तिण्णि जोयणसयसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं दोण्णि य अउणासीए जोयणसए परिक्खेवे णं पण्णत्ते,

तीन लाख अठारह हजार दो सौ गुण्यासी योजन की परिधि कही गई है।

प०—ता अब्भिंतराओ मण्डलवयाओ बाहिरं मण्डलवयं बाहिराओ वा मंडलवयाओ अब्भिंतरं मण्डलवयं, एस णं अद्धा केवइयं आहिए त्ति वदेज्जा ?

उ०—ता पंचदसुत्तरे जोयणसए आहिए त्ति वएज्जा,

प०—अब्भिंतराए मण्डलवयाए बाहिरा मंडलवयाओ अब्भिंतर मण्डलवया एस णं अद्धा केवइयं आहिए त्ति वएज्जा ?

उ०—ता पंचदसुत्तरे जोयणसए अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स अहिया,

प०—ता अब्भिंतराओ मण्डलवयाओ बाहिरमण्डलवया बाहिराओ मण्डलवयाओ अब्भिंतर-मण्डलवया—एस णं अद्धा केवइयं आहिए त्ति वदेज्जा ?

उ०—ता पंचनवुत्तरे जोयणसए तेरस एगट्ठिभागे जोयणस्स आहिए त्ति वदेज्जा,

प०—अब्भिंतराओ मण्डलवयाओ बाहिरा मण्डलवया, बाहिराए मण्डलवयाए अब्भिंतर-मण्डलवया—एस णं अद्धा केवइया आहिए त्ति वदेज्जा ?

उ०—ता पंचदसुत्तरे जोयणसए, आहिए त्ति वदेज्जा,[1]

—सूरिय० पा० १, पाहु० ८, सु० २०

प्र०—आभ्यन्तर मण्डल से बाह्यमण्डल और बाह्यमण्डल से आभ्यन्तरमण्डल (पर्यन्त) कितना (लम्बा) मार्ग है ?

उ०—पांच सौ दस योजन (जितना लम्बा मार्ग) है।

प्र०—आभ्यन्तर मण्डल पद से बाह्यमण्डल पद और बाह्यमण्डल पद से आभ्यन्तर मण्डल पद का मार्ग कितना लम्बा है ?

उ०—पाँच सौ दस योजन और एक योजन के इकसठ भाग तथा अड़तालीस भाग अधिक (लम्बा मार्ग) है ।

प्र०—आभ्यन्तर मण्डल पद से बाह्यमण्डल पद और बाह्यमण्डल पद से आभ्यन्तर मण्डल पद—इनका मार्ग कितना (लम्बा) है ?

उ०—पाँच सौ नौ योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से तेरह भाग जितना (लम्बा) मार्ग है।

प्र०—आभ्यन्तर मण्डल पद से बाह्य मण्डल पद और बाह्य मण्डल पद से आभ्यन्तर मण्डल पद—इनका मार्ग कितना (लम्बा) है ?

उ०—पाँच सौ दस योजन जितना (लम्बा मार्ग) है ।

सूरमण्डलस्स आयाम-विक्खंभो परिक्खेवो बाहल्लं च—

३१. प०—(क) सूरमण्डले णं भंते ! केवइयं आयाम-विक्खंभे णं ?

(ख) केवइयं परिक्खेवे णं ?

(ग) केवइयं बाहल्ले णं पण्णत्ते ?

उ०—(क) गोयमा ! सूरमण्डले—अडयालीसं एगसट्ठिभाए जोयणस्स आयाम-विक्खंभे णं[2],

(ख) तं तिगुणं सविसेस परिक्खेवे णं,

(ग) चउवीसं एगसट्ठिभाए जोयणस्स बाहल्ले णं पण्णत्ते,

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १३०

सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ; परिधि और बाहल्य—

३१. प्र०—(क) हे भगवन् ! सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ कितना है ?

(ख) कितनी परिधि है ?

(ग) और कितना बाहल्य कहा गया है ?

उ०—(क) हे गौतम ! एक योजन के इगसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितना सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ है।

(ख) इससे कुछ अधिक तीन गुणी परिधि है ।

(ग) एक योजन के इगसठ भागों में से चौवीस भाग जितना बाहल्य = मोटाई है ।

सूरमण्डलाणं आयाम-विक्खंभ-परिक्खेवं मण्डलाणं विक्खंभ वुड्ढि हाणिं च—

३२. १. प०—जंबुद्दीवे दीवे सव्वब्भंतरे णं भंते ! सूरमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभे णं, केवइयंप रिक्खेवे णं पण्णत्ते ?

सूर्यमण्डलों का आयाम-विष्कम्भ-परिधि और मण्डलों के विष्कम्भ की हानि-वृद्धि—

३२. (१) प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में सर्वाभ्यन्तर सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ और परिधि कितनी कही गई है ?

---

१ चन्द. पा. १ सु. २० ।

२ (क) सूरमण्डले णं अडयालीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स विक्खंभे णं पण्णत्ता, —सम. ४८, सु. ३

(ख) सूरमण्डलं जोयणे णं तेरसहिं एगट्ठिभागेहिं जोयणस्स ऊणं पण्णत्तं, —सम. १३. सु. ८

प०—ता अब्भिंतराओ मण्डलवयाओ वाहिरं मण्डलवयं वाहिराओ वा मंडलवयाओ अब्भिंतरं मण्डलवयं, एस णं अद्धा केवइयं आहिए त्ति वदेज्जा ?

प्र०—आभ्यन्तर मण्डल से बाह्यमण्डल और बाह्यमण्डल से आभ्यन्तरमण्डल (पर्यन्त) कितना (लम्बा) मार्ग है ?

उ०—ता पंचदसुत्तरे जोयणसए आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—पाँच सौ दस योजन (जितना लम्बा मार्ग) है।

प०—अब्भिंतराए मण्डलवयाए बाहिरा मंडलवयाओ अब्भिंतर मण्डलवया एस णं अद्धा केवइयं आहिए त्ति वएज्जा ?

प्र०—आभ्यन्तर मण्डल पद से बाह्यमण्डल पद और बाह्य-मण्डल पद से आभ्यन्तर मण्डल पद का मार्ग कितना लम्बा है ?

उ०—ता पंचदसुत्तरे जोयणसए अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स अहिया,

उ०—पाँच सौ दस योजन और एक योजन के इकसठ भाग तथा अड़तालीस भाग अधिक (लम्बा मार्ग) है ।

प०—ता अब्भिंतराओ मण्डलवयाओ बाहिरमण्डलवया बाहिराओ मण्डलवयाओ अब्भिंतर-मण्डलवया—एस णं अद्धा केवइयं आहिए त्ति वदेज्जा ?

प्र०—आभ्यन्तर मण्डल पद से बाह्यमण्डल पद और बाह्य-मण्डल पद से आभ्यन्तर मण्डल पद—इनका मार्ग कितना (लम्बा) है ?

उ०—ता पंचनवुत्तरे जोयणसए तेरस एगट्ठिभागे जोयणस्स आहिए त्ति वदेज्जा,

उ०—पाँच सौ नौ योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से तेरह भाग जितना (लम्बा) मार्ग है।

प०—अब्भिंतराओ मण्डलवयाओ बाहिरा मण्डलवया, बाहिराए मण्डलवयाए अब्भिंतर-मण्डलवया—एस णं अद्धा केवइया आहिए त्ति वदेज्जा ?

प्र०—आभ्यन्तर मण्डल पद से बाह्य मण्डल पद और बाह्य मण्डल पद से आभ्यन्तर मण्डल पद—इनका मार्ग कितना (लम्बा) है ?

उ०—ता पंचदसुत्तरे जोयणसए, आहिए त्ति वदेज्जा,[1]

—सूरिय० पा० १, पाहु० ८, सु० २०

उ०—पाँच सौ दस योजन जितना (लम्बा मार्ग) है।

सूरमण्डलस्स आयाम-विक्खंभो परिक्खेवो बाहल्लं च—

सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ; परिधि और बाहल्य—

३१. प०—(क) सूरमण्डले णं भंते ! केवइयं आयाम-विक्खंभे णं ?

(ख) केवइयं परिक्खेवे णं ?

(ग) केवइयं वाहल्ले णं पण्णत्ते ?

३१. प्र०—(क) हे भगवन् ! सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ कितना है ?

(ख) कितनी परिधि है ?

(ग) और कितना बाहल्य कहा गया है ?

उ०—(क) गोयमा ! सूरमण्डले—अडयालीसं एगसट्ठिभाए जोयणस्स आयाम-विक्खंभे णं[2],

(ख) तं तिगुणं सविसेस परिक्खेवे णं,

(ग) चउवीसं एगसट्ठिभाए जोयणस्स बाहल्ले णं पण्णत्ते,

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १३०

उ०—(क) हे गौतम ! एक योजन के इगसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितना सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ है।

(ख) इससे कुछ अधिक तीन गुणी परिधि है।

(ग) एक योजन के इगसठ भागों में से चौवीस भाग जितना बाहल्य = मोटाई है।

सूरमण्डलाणं आयाम-विक्खंभ-परिक्खेवं मण्डलाणं विक्खंभ वुड्ढिं हाणिं च—

सूर्यमण्डलों का आयाम-विष्कम्भ-परिधि और मण्डलों के विष्कम्भ की हानि-वृद्धि—

३२. १. प०—जंबुद्दीवे दीवे सव्वब्भंतरे णं भंते ! सूरमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभे णं, केवइयंप रिक्खेवे णं पण्णत्ते ?

३२. (१) प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल का आयाम-विष्कम्भ और परिधि कितनी कही गई है ?

---

१ सूरिय. पा. १ सु. २० ।

२ (क) सूरमण्डले णं अडयालीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स विक्खंभे णं पण्णत्ता, —सम. ४८, सु. ३

(ख) सूरमण्डलं जोयणं णं तेरसहिं एगट्ठिभागेहिं जोयणस्स ऊणं पण्णत्तं, —सम. १३. सु. ८

उ०—गोयमा ! णवणउइं जोयणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोयणसए आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं, पण्णरस य जोयणसहस्साइं एगूणणउइं च जोयणाइं किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

उ०—हे गौतम ! निन्यानवे हजार छः सौ चालीस योजन का आयाम-विष्कम्भ और तीन लाख पन्द्रह हजार निवासी योजन से कुछ अधिक की परिधि कही गई है।

२. प०—अब्भंतराणंतरे णं भंते ! सूरमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

(२) प्र०—भगवन् ! आभ्यन्तरानन्तर (दूसरे) सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ और परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—गोयमा ! णवणउइं जोयणसहस्साइं छच्च पणयाले जोयणसए पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स आयाम-विक्खंभेणं। तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं एगं सत्तुत्तरं जोयणसयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

उ०—हे गौतम ! निन्यानवे हजार छः सौ पैंतालीस योजन और पैंतीस योजन के इगसठ भाग जितना आयाम-विष्कम्भ तथा तीन लाख पन्द्रह हजार एक सौ सात योजन की परिधि कही गई है।

३. प०—अब्भंतर तच्चे णं भंते ! सूरमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

(३) प्र०—भगवन् ! आभ्यन्तर तृतीय सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ और परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—गोयमा ! णवणउइं जोयणसहस्साइं छच्चं एकावण्णे जोयणसए णव य एगसट्ठिभाए जोयणस्स आयाम-विक्खंभेणं। तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं पण्णरस जोयणसहस्साइं एगं च पणवीसं जोयणसयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

उ०—हे गौतम ! निन्यानवे हजार छः सौ इक्कावन योजन तथा नौ योजन के इकसठ भाग जितना आयाम-विष्कम्भ और तीन लाख पन्द्रह हजार एक सौ पच्चीस योजन की परिधि कही गई है।

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं उवसंकममाणे उवसंकममाणे पंच पंच जोयणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे मण्डले विक्खंभवुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे अभिवड्ढेमाणे अट्ठारस अट्ठारस जोयणाइं परिरयवुड्ढिं अभिवुड्ढेमाणे अभिवुड्ढेमाणे सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

इस प्रकार इस क्रम से निकलता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे मण्डल पर उपसंक्रमण करता करता प्रत्येक मण्डल में पाँच पाँच योजन तथा तैंतीस योजन के इकसठ भाग जितनी विष्कम्भ वृद्धि करता करता और परिधि में अठारह अठारह योजन की वृद्धि करता करता सर्वबाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

४. प०—सव्व बाहिरएणं भंते ! सूरमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

(४) प्र०—भगवन् ! सर्वबाह्य सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ और परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—गोयमा ! एगं जोयणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोयणसए आयाम-विक्खंभेणं। तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं तिण्णि य पण्णरसुत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

उ०—हे गौतम ! एक लाख छः सौ साठ योजन का आयाम विष्कम्भ और तीन लाख अठारह हजार तीन सौ पन्द्रह योजन की परिधि कही गई है।

५. प०—बाहिराणंतरे णं भंते ! सूरमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

(५) प्र०—भगवन् ! बाह्यानन्तर (बाहर से दूसरा) सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ और परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—गोयमा ! एगं जोयणसयसहस्सं छच्च चउप्पण्णे जोयणसए छव्वीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स आयाम-विक्खंभेणं। तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं दोण्णि य सत्ताणउए जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

उ०—हे गौतम ! एक लाख छः सौ चौवन योजन तथा छब्बीस योजन के इगसठ भाग जितना आयाम-विष्कम्भ और तीन लाख अठारह हजार दो सौ सत्तानवे योजन की परिधि कही गई है।

६. प०—बाहिर तच्चे णं भंते ! सूरमण्डले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

(६) प्र०—भगवन् ! बाह्य तृतीय सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ और परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—गोयमा ! एगं जोयणसयसहस्सं छच्च अडयाले जोयणसए बावण्णं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स आयाम-विक्खंभेणं। तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं दोण्णि य अउणासीए जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकममाणे पंच पंच जोयणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे मण्डले विक्खंभवुड्ढिं णिव्वुड्ढेमाणे णिव्वुड्ढेमाणे अट्ठारस अट्ठारस जोयणाइं परिरयवुड्ढिं णिव्वुड्ढेमाणे णिव्वुड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १३२

उ०—हे गौतम ! एक लाख छः सौ अड़तालीस योजन तथा बावन योजन के इगसठ भाग जितना आयाम-विष्कम्भ और तीन लाख अठारह हजार दो सौ उन्नासी योजन की परिधि कही गई है।

इस प्रकार इस क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे मण्डल पर संक्रमण करता करता प्रत्येक मण्डल में पाँच-पाँच योजन तथा पैंतीस योजन के इगसठ भाग जितनी विष्कम्भ (चौड़ाई में) हानि करता करता और परिधि में अठारह-अठारह योजन की कमी करता करता सर्वाभ्यन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

पत्तेय सूरमण्डलस्स अन्तरं—

३३. प०—सूरमण्डलस्स णं भंते ! सूरमण्डलस्स य केवइयं अबाहाए अन्तरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सूरमण्डलस्स सूरमण्डलस्स य दो जोयणाइं अबाहाए अन्तरे पण्णत्ते।

— जंबु. वक्ख. ७, सु. १२९

प्रत्येक सूर्यमण्डल का अन्तर—

३३. प्र०—हे भगवन् ! एक सूर्यमण्डल से दूसरे सूर्यमण्डल का व्यवधान रहित कितना अन्तर कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! एक सूर्यमण्डल से दूसरे सूर्यमंडल का व्यवधान रहित दो योजन का अन्तर कहा गया है।

मन्दरपव्वयाओ सूरियमण्डलाणमंतरं मण्डलेसु गईए हाणि-वुड्ढी य—

३४. १. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए सव्वब्भंतरे सूरमण्डले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोयणसए अबाहाए सव्वब्भंतरे सूरमण्डले पण्णत्ते।

२. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए सव्वब्भंतराणंतरे सूरमण्डले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य बावीसे जोयणसए अडयालीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स अबाहाए सव्वब्भंतराणंतरे सूरमण्डले पण्णत्ते।

३. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए अब्भंतर तच्चे सूरमण्डले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य पणवीसे जोयणसए पणतीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स अबाहाए अब्भंतर तच्चे सूरमण्डले पण्णत्ते।

एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंतरं मण्डल संकममाणे संकममाणे दो दो जोयणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स अबाहाए वुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे अभिवड्ढेमाणे सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ त्ति।

मन्दरपर्वत से सूर्यमण्डलों का अन्तर और मण्डलों में गति की हानि-वृद्धि—

३४. (१) प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से कितने व्यवहित अन्तर पर सर्वाभ्यन्तर सूर्यमण्डल कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! सर्वाभ्यन्तर सूर्यमण्डल चम्मालीस हजार आठ सौ बीस योजन के अन्तर पर कहा गया है।

(२) प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से कितने व्यवहित अन्तर पर सर्वाभ्यन्तरानन्तर सूर्यमण्डल कहा गया है।

उ०—हे गौतम ! सर्वाभ्यन्तरानन्तर मण्डल चम्मालीस हजार आठ सौ बावीस योजन और अड़तालीस योजन के इकसठ भाग जितने अन्तर पर कहा गया है।

(३) प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के मन्दरपर्वत से कितने व्यवहित अन्तर पर आभ्यन्तर तृतीय सूर्यमण्डल कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! आभ्यन्तर तृतीय सूर्यमण्डल चम्मालीस हजार आठ सौ पच्चीस योजन और पैंतीस योजन के इकसठ भाग जितने अन्तर पर कहा गया है।

इस क्रम से निकलता हुआ सूर्य एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर संक्रमण करता करता प्रत्येक मण्डल की दूरी में दो दो योजन और अड़तालीस योजन के इकसठ भाग जितनी वृद्धि करता करता सर्वबाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

४. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अवाहाए सव्वबाहिरे सूरमण्डले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोयणसहस्साइं तिण्णि य तीसे जोयणसए अवाहाए सव्वबाहिरे सूरमंडले पण्णत्ते

५. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अवाहाए सव्वबाहिराणंतरे सूरमण्डले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणयालीस जोयणसहस्साइं तिण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तेरस य एगसट्ठिभागे जोयणस्स अबाहाए बाहिराणंतरे सूरमण्डले पण्णत्ते ।

६. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अवाहाए बाहिर तच्चे सूरमण्डले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोयणसहस्साइं तिण्णि य चउवीसे जोयणसए छव्वीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स अवाहाए बाहिर तच्चे सूरमण्डले पण्णत्ते ।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकममाणे दो दो जोयणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे मण्डले अवाहाए वुड्ढिं णिव्वुड्ढेमाणे णिव्वुड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ।

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १३१

(४) प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के मन्दरपर्वत के कितने व्यवहित अन्तर पर सर्ववाह्यसूर्यमण्डल कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! सर्ववाह्य सूर्यमण्डल पैंतालीस हजार तीन सौ तीस योजन के अन्तर पर कहा गया है ।

(५) प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के मन्दरपर्वत से कितने व्यवहित अन्तर पर सर्ववाह्यानन्तर सूर्यमण्डल कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! सर्ववाह्यानन्तर सूर्यमण्डल पैंतालीस हजार तीन सौ सत्तावीस योजन और तेरह योजन के इगसठ भाग जितने अन्तर पर कहा गया है ।

(६) प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के मन्दरपर्वत से कितने व्यवहित अन्तर पर वाह्य तृतीय सूर्य मण्डल कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! वाह्य तृतीय सूर्य मण्डल पैंतालीस हजार तीन सौ चौवीस योजन और छव्वीस योजन के इकसठ भाग जितने अन्तर पर कहा गया है ।

इस क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर संक्रमण करता करता प्रत्येक मण्डल की दूरी में दो दो योजन और अड़तालीस योजन के इगसठ भाग जितनी कमी करता करता सर्वाभ्यन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है ।

सव्व सूरमण्डलमग्गे सूरस्स गमणागमण-राइंदिय-प्पमाणं—

सर्व सूर्यमण्डलों के मार्ग में सूर्य के गमनागमन के रात-दिनों का प्रमाण—

३५. प०—ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मण्डलाओ सव्व-वाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । सव्व वाहिराओ मण्डलाओ सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । एस णं अद्धा केवइयं राइंदियग्गे णं आहितेत्ति वदेज्जा ?

उ०—ता तिण्णि छावट्ठे राइंदियसए राइंदियग्गे णं आहितेति वदेज्जा ।[1] —सूरिय. पा. १, पाहु. १, सु. ९

३५. प्र०—सूर्य जब सर्व आभ्यन्तर मण्डल के सर्व वाह्य मण्डल की ओर तथा सर्व वाह्य मण्डल से सर्व आभ्यन्तर मण्डल की ओर गति करता है, तब वह सूर्य मण्डलों का मार्ग कितने रात-दिनों में पार करता है ? यह कहें ।

उ०—वह मार्ग तीन सौ छासठ पूर्ण दिन-रात में पार करता है—ऐसा कहा है ।

सूरमण्डलेसु सूरस्स सइं दुक्खुत्तो वा चारं—

सूर्य मण्डलों में सूर्य की एक वार अथवा दो वार गति—

३६. प०—ता एताए अद्धाए सूरिए कति मण्डलाइं चरइ ?

उ०—ता चुलसीयं मंडलसयं चरइ ।

वासीइ मण्डलसयं दुक्खुत्तो चरइ, तं जहा—णिक्खममाणे चेव, पवेसमाणे चेव ।[2]

दुवे य खलु मण्डलाइं सइं चरइ, तं जहा—सव्वब्भंतरं चेव मण्डलं, सव्ववाहिरं चेव मण्डलं ।[1]

—सूरिय. पा. १, पाहु. १, सु. १०

३६. प्र०—इन सूर्यमण्डलों के मार्ग में सूर्य कितने मण्डलों में गति करता है ?

उ०—सूर्य एक सौ चौरासी मण्डलों में गति करता है ।

एक सौ बियासी मण्डलों में सूर्य दो वार गति करता है, यथा—निष्क्रमण करता हुआ और प्रवेश करता हुआ ।

दो मण्डलों में सूर्य एक वार गति करता है, यथा—सर्व-आभ्यन्तर मण्डल में और सर्व वाह्यमण्डल में ।

---

१ चन्द. पा. १ सु. ९ ।

१ चन्द. पा. १ सु. १० ।

२ सम. ८२ सु. १ ।

सूरस्स मण्डलाओ मण्डलांतर-संकमणं—

३७. प०—ता कहं ते मण्डलाओ मण्डलं संकममाणे संकममाणे सूरिए चारं चरइ ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ दुवे पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता मण्डलाओ मण्डलं संकममाणे संकममाणे सूरिए भेयघाएणं संकामइ, एगे एवमाहंसु—

एगे पुण एवमाहंसु—

२. ता मण्डलाओ मण्डलं संकममाणे संकममाणे सूरिए कण्णकलं निव्वेढेइ एगे एवमाहंसु,

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

१. ता मण्डलाओ मण्डलं संकममाणे संकममाणे सूरिए भेयघाए णं संकामइ।[1]

तेसि णं अयं दोसे,

ता जेणंतरेणं मण्डलाओ मण्डलं संकममाणे संकममाणे भेयघाएणं संकमइ—एवइयं च णं अद्धं पुरओ न गच्छइ, पुरओ पुरओ अगच्छमाणे मण्डलकालं परिहवेइ। तेसि णं अयं दोसे,

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

२. ता मण्डलाओ मण्डलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं निव्वेढेइ,[2]

सूर्य का एक मण्डल से दूसरे मण्डल की ओर संक्रमण—

३६. प्र०—सूर्य एक मंडल से दूसरे मंडल की ओर संक्रमण करता करता किस प्रकार की गति करता है ? कहें।

उ०—इस सम्बन्ध में ये दो प्रतिपत्तियाँ (मान्यताएँ) कही गई हैं। यथा—

इनमें से एक (मान्यता वालों) ने ऐसा कहा है—

(१) सूर्य एक मंडल से दूसरे मंडल की ओर संक्रमण करता करता भेदघात से संक्रमण करता है।

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२) सूर्य एक मंडल से दूसरे मंडल की ओर संक्रमण करता हुआ कर्णकला से मंडल को छोड़ता है।

उनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

(१) सूर्य एक मंडल से दूसरे मंडल की ओर संक्रमण करता करता भेद (दो मंडलों के अन्तराल में) घात (गमन) से संक्रमण करता है।

उनकी इस मान्यता में यह दोष है।

सूर्य एक मंडल से दूसरे मडल की ओर संक्रमण करता करता भेद (दो मंडलों क अन्तराल में) घात (गमन करने) से जितने समय में संक्रमण करता है उतने समय तक वह आगे (अन्य मंडल में) नहीं जाता है। इस प्रकार आगे आगे (अन्य अन्य मंडलों में) न जाने पर (मंडलों के अन्तरालों में सूर्य की गति होते रहने से) मडलों में गति करने का काल समाप्त हो जाता है (अतः सर्वविदित दिन-रात का निश्चित प्रमाण भंग हो जाता है।)

उनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

(२) एक मंडल से दूसरे मंडल की ओर संक्रमण करता हुआ कर्ण (मंडल के प्रारम्भ से द्वितीय मंडल के प्रारम्भ तक) (एकेक) कला से मंडल को छोड़ता है।

---

१ मण्डलादपरमण्डलं संक्रामन् संक्रमितुमिच्छन् सूर्यो भेदघातेन संक्रामति भेदो मंडलस्य मंडलस्यापान्तरालं तत्र घातो-गमनं, एतच्च-प्रागेवोक्तं, तेन संक्रामति,
किमुक्तं भवति ? विवक्षिते मण्डले सूर्येणापूरिते सति तदनन्तरमपान्तरालगमनेन द्वितीयं मंडलं संक्रामति संक्रम्य च तस्मिन् मंडले चारं चरति,
—सूर्य० टीका

२ मंडलान्मण्डलं संक्रामन् संक्रमितुमिच्छन् सूर्यस्तदधिकृतं मंडलं प्रथमक्षणादूर्ध्वमारभ्य कर्ण-कलं निर्वेष्टयति मुंचति,
इयमत्र भावना—"भारतैरावतो वा सूर्यः स्वे स्वे स्थाने उद्गतः सन् अपरमंडलगतं कर्णं प्रथमकोटिभागरूपं लक्ष्यीकृत्य [illegible] चारं चरति" येन तस्मिन्नहोरात्रेऽतिक्रान्ते सति अपरानन्तरमंडलस्यारम्भे [illegible]।
[illegible] भावनीय "कर्ण-अपरमंडलगतप्रथमकोटिभागरूपं लक्ष्यीकृत्याधिकृतमंडलं [illegible] निर्वेष्टयतीति,
—सूर्य. टीका.

तेसि णं अयं विसेसे,

ता जेणंतरेणं मण्डलाओ मण्डलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं निव्वेढेइ एवइयं च णं अद्धं पुरओ गच्छइ,

पुरओ गच्छमाणे मण्डलकालं न परिहवेइ, तेसि णं अयं विसेसे,

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

मण्डलाओ मण्डलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं निव्वेढेइ एएणं ण्एणं णेयव्वं, णो चेव णं इयरेणं,[1]

—सूरिय० पा० २, पाहु. २, सु० २२

उनकी इस मान्यता में यह विशेषता है—

एक मंडल से दूसरे मंडल की ओर संक्रमण करता हुआ सूर्य जितने समय में कर्ण (मंडल के प्रारम्भ से द्वितीय मंडल के प्रारम्भ पर्यन्त (एकेक) कला (समय का विभाग) से मंडल को छोड़ता है उतने ही समय में आगे (अन्य मंडल पर्यन्त) वह पहुँच जाता है।

आगे (अन्य मंडल पर्यन्त) जाने पर मंडल में गति करने का काल समाप्त नहीं होता है (अतः सर्वविदित दिन-रात का निश्चित प्रमाण भंग नहीं होता है।

उनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

"सूर्य एक मंडल से दूसरे मंडल की ओर संक्रमण करता हुआ कर्ण-कला से मंडल को छोड़ता है"। इस अभिप्राय के अनुसार ही हमारा मन्तव्य जानना चाहिए। अन्य मन्तव्य के अनुसार नहीं।

सूरस्स एगमेगे राइंदिए मण्डलाओ मण्डलसंकमण-खेत्त चारं—

प्रत्येक अहोरात्र में सूर्य की एक मंडल से दूसरे मण्डल में संक्रमणक्षेत्र की गति—

३८. प०—ता केवइयं ते एगमेगे णं राइंदिए णं विकंपइत्ता विकंपइत्ता सूरिए चारं चरइ ? आहितेति वदेज्जा।

उ०—तत्थ खलु इमाओ सत्त पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता दो जोयणाइं अद्धदुचत्तालीसे तेसीइं सयभागे जोयणस्स एगमेगे णं, राइंदिए णं विकंपइत्ता विकंपइत्ता, सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२. ता अड्ढाइज्जाइं जोयणाइं एगमेगे णं राइंदिए णं विकंपइत्ता विकंपइत्ता सूरिए चारं चरइ। एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

३. ता तिभागूणाइं तिन्नि जोयणाइं एगमेगे णं राइंदिए णं विकंपइत्ता विकंपइत्ता सूरिए चारं चरइ। एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

४. ता तिण्णि जोयणाइं अद्धसीतालीसं च तेसीइसयभागे जोयणस्स एगमेगे णं राइंदिए णं विकंपइत्ता विकंपइत्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु,

३८. प्र०—प्रत्येक अहोरात्र में सूर्य एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर्यन्त पहुँचने में कितने क्षेत्र को पार करता है ? कहें।

उ०—इस सम्बन्ध में ये सात प्रतिपत्तियाँ (मतान्तर) कही गई हैं, यथा—

(१) इनमें से एक (मत वालों) ने ऐसा कहा है।

प्रत्येक अहोरात्र में सूर्य एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर्यन्त पहुँचने में दो योजन और एक योजन के एक सौ तिरासी भागों में से साढ़े इकतालीस भाग जितने क्षेत्र को पार करता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२) प्रत्येक अहोरात्र में सूर्य एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर्यन्त पहुँचने में अढाई योजन जितने क्षेत्र को पार करता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(३) प्रत्येक अहोरात्र में सूर्य एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर्यन्त पहुँचने में (एक योजन के एक सौ तिरासी भागों में से) तीन भाग कम तीन योजन जितने क्षेत्र को पार करता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(४) प्रत्येक अहोरात्र में सूर्य एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर्यन्त पहुँचने में तीन योजन और एक योजन के एक सौ तिरासी भागों में से साढे छियालीस भाग जितने क्षेत्र को पार करता है।

---

१ चन्द. पा. २, सु. २२।

एगे पुण एवमाहंसु—

५. ता अद्धुट्ठाइं जोयणाइं एगमेगे णं राइंदिए णं विकंपइत्ता विकंपइत्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

६. ता चउब्भागूणाइं चत्तारि जोयणाइं एगमेगे णं राइंदिए णं विकंपइत्ता विकंपइत्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

७. ता चत्तारि जोयणाइं अद्ध बावण्णं च तेसीइसयभागे जोयणस्स एगमेगे णं राइंदिए णं विकंपइत्ता विकंपइत्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु,

वयं पुण एवं वयामो—

ता दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगं मण्डलं एगमेगे णं राइंदिए णं विकंपइत्ता विकंपइत्ता चारं चरइ,

प०—तत्थ णं को हेऊ ? इति वदेज्जा,

उ०—ता अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्व दीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डागे वट्टे-जाव-जोयणसयसहस्समायामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं, दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं, अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते,

१. ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

२. से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

ता जया णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे णं राइंदिए णं विकंपइत्ता विकंपइत्ता चारं चरइ, तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया,

३. से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतरतच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(५) प्रत्येक अहोरात्र में सूर्य एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर्यन्त पहुँचने में साडे तीन योजन जितने क्षेत्र को पार करता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(६) प्रत्येक अहोरात्र में सूर्य एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर्यन्त पहुँचने में (एक योजन के एक सौ तिरासी भागों में से) चार भाग कम चार योजन जितने क्षेत्र को पार करता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(७) प्रत्येक अहोरात्र में सूर्य एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर्यन्त पहुँचने में चार योजन और एक योजन के एक सौ तिरासी भागों में से साडे इक्कावन भाग जितने क्षेत्र को पार करता है।

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

सूर्य एक अहोरात्र में दो योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितने क्षेत्र को पार करके एक मण्डल को पहुँचता है।

प्र०—इस कथन के सम्बन्ध में हेतु क्या है ?

उ०—यह जम्बूद्वीप सब द्वीप-समुद्रों के मध्य में है, सबसे छोटा है, वृत्ताकार है—यावत्—एक लाख योजन का लम्बा-चौड़ा है, और तीन लाख दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोश एक सौ अठावीस धनुष तेरह अंगुल तथा आधे अंगुल से कुछ अधिक की परिधि वाला कहा गया है।

(१) जब सूर्य आभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब परम उत्कर्ष को प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(२) (सर्व आभ्यन्तर मण्डल से) निकलता हुआ वह सूर्य नए संवत्सर के दक्षिणायन को प्रारम्भ करता हुआ प्रथम अहोरात्र में आभ्यन्तरानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

जब सूर्य आभ्यन्तरानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब एक अहोरात्र में दो योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितने क्षेत्र को पार करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है तथा एक मुहूर्त के इकसठ भाग में से दो भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(३) (आभ्यन्तरानन्तर मण्डल से) निकलता हुआ वह सूर्य दूसरे अहोरात्र में आभ्यन्तर तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए अब्भिंतरं तच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं पंच जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठि-भागे जोयणस्स दोहिं राइंदिएहिं विकंपइत्ता चारं चरइ, तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठिभाग मुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। चउहिं एगट्ठि-भागमुहुत्तेहिं अहिया,

जब सूर्य आभ्यन्तर तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब पाँच योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से पैंतालीस भाग जितने क्षेत्र को दो अहोरात्र में पार करता है, तब तक मुहूर्त में। इकसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग तथा चार भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंत-राओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकम-माणे दो दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोय-णस्स एगमेगं मण्डलं एगमेगे णं राइंदिएहिं विकंपमाणे विकंपमाणे सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

इस प्रकार इस क्रम से निकलता हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल को संक्रमण करता करता प्रत्येक अहोरात्र में दो दो योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितने क्षेत्र को पार करता करता सर्व बाह्यमण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मण्डलाओ सव्व बाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं सव्व-भंतरं मण्डलं पणिहाय एगे णं तेसीए णं राइंदियसए णं पंचदसुत्तरजोयणसए विकंपइत्ता विकंपइत्ता चारं चरइ,

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल से सर्व बाह्यमण्डल पर्यन्त उप-संक्रमण करके गति करता है तब सर्वाभ्यन्तर मंडल को छोड़कर एक सौ तिरासी अहोरात्र में पाँच सौ दस योजन जितने क्षेत्र को पार करके गति करता है।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

ये प्रथम छः मास (दक्षिणायन के) हैं यह प्रथम छः मास का अन्त है।

१. से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(१) (सर्व बाह्यमंडल से सर्व आभ्यन्तर मंडल की ओर) प्रवेश करता हुआ वह सूर्य दूसरे छः मास का उत्तरायण प्रारम्भ कर प्रथम अहोरात्र में बाह्यानन्तर मंडल को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं दो दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगे णं राइंदिए णं विकंपइत्ता चारं चरइ,

जब सूर्य बाह्यानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब एक अहोरात्र में दो योजन एक योजन के इकसठ भागों में से अडतालीस भाग जितने क्षेत्र को पार करता है।

तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ। दोहिं एगट्ठिभाग-मुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ। दोहिं एगट्ठि-भाग मुहुत्तेहिं अहिए,

तब तक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती हैं और एक मुहूर्त के इकसठ भाग तथा दो भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है।

२. से पविसेमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तच्च मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं पंचजोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स दोहिं राइंदिएहिं विकंपइत्ता विकंपइत्ता चारं चरइ,

(२) (बाह्यानन्तरमंडल से बाह्य तृतीय मंडल की ओर) प्रवेश करता हुआ वह सूर्य दूसरे अहोरात्र में बाह्य तृतीय मंडल को प्राप्त करके गति करता है; तब दो अहोरात्र में पाँच योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से पैंतीस भाग जितने क्षेत्र को पार करता है।

तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगट्ठिभाग-मुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए,

तब तक मुहूर्त के इकसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग तथा चार भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकममाणे दो दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगं मण्डलं एगमेगे णं राइंदिए णं विकंपमाणे विकंपमाणे सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

इस प्रकार इस क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य तदनन्तर मंडल से तदनन्तर मंडल को संक्रमण करता करता प्रत्येक अहोरात्र में प्रत्येक मंडल के दो योजन और एक योजन के इगसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितने क्षेत्र को पार करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मंडल को प्राप्त करके गति करता है ।

ता जया णं सूरिए सव्ववाहिराओ मण्डलाओ सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं सव्वबाहिरं मण्डलं पणिहाय एगे णं तेसीए णं राइंदियसए णं पंचदसुत्तरे जोयणसए विकंपइत्ता चारं चरइ,

जब सूर्य सर्व बाह्यमंडल से सर्व आभ्यन्तर मंडल की ओर लक्ष्य करके गति करता है तब बाह्य मंडल की अवधि से एक सौ तिरासी अहोरात्र में पाँच सौ दस योजन जितने क्षेत्र को पारकर सर्वाभ्यन्तर मंडल को प्राप्त करके गति करता है।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया राई भवइ,

तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

ये दूसरे छः मास (उत्तरायण से) हैं, यह दूसरे छः मास का अन्त है।

एस णं आइच्चे संवच्छरे एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे.[1] —सूरिय. पा. १, पाहु. ८, सु. १८

यह आदित्य संवत्सर है, यह आदित्य संवत्सर का अन्त है।

सूरस्स दीव-समुद्द-ओगाहणाणंतरं चारं—

सूर्य की द्वीप-समुद्र के अवगाहनानन्तर गति—

३९. प०—ता केवइयं ते दीवं वा, समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ ? आहिते ति वदेज्जा,

३९. प्र०—कितने द्वीप-समुद्र का अवगाहन (लंघन) करके सूर्य गति करता है ? कहें।

उ०—तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

उ०—इस सम्बन्ध में ये पाँच प्रतिपत्तियाँ (मतान्तर) कहे गये हैं, यथा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

इनमें से एक (मत वालों) ने ऐसा कहा हैं—

१. ता एगं जोयण-सहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसयं, दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु,

(१) एक हजार एक सौ तेतीस योजन (विस्तृत) द्वीप या समुद्र का अवगाहन करके सूर्य गति करता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

२. ता एगं जोयण-सहस्सं, एगं च चउत्तीसं जोयणसयं, दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु,

(२) एक हजार एक सौ चौतीस योजन (विस्तृत) द्वीप या समुद्र का अवगाहन करके सूर्य गति करता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

३. ता एगं जोयण-सहस्सं, एगं च पणतीसं जोयणसयं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु,

(३) एक हजार एक सौ पैंतीस योजन (विस्तृत) द्वीप या समुद्र का अवगाहन करके सूर्य गति करता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

४. ता अवड्ढं दीवं वा, समुद्दं वा, ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु,

(४) आधे द्वीप या समुद्र का अवगाहन करके सूर्य गति करता है।

[1] पा. १ सु. १८।

एगे पुण एवमाहंसु—

ता नो किंचि दीवं वा, समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु,

तत्थ जे ते एवमाहंसु—

१. ता एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसयं, दीवं वा समुद्दं वा, ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ,

ते एवमाहंसु—

(क) ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं जंबुद्दीवं दीवं एगं जोयणसहस्सं, एगं च तेत्तीसं जोयणसयं ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ,

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(ख) ता जया णं सूरिए सव्व बाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं लवणसमुद्दं एगं जोयणसहस्सं, एगं च तेत्तीसं जोयणसयं ओगाहित्ता चारं चरइ,

तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

२. एवं चउत्तीसे वि जोयणसयं,

३. पणतीसे वि एवं चेव भाणियव्वं,

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

४. ता अवड्ढं दीवं वा, समुद्दं वा, ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ,

ते एवमाहंसु—

ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं अवड्ढं जंबुद्दीवं दीवं ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ,

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

एवं सव्व बाहिरे मंडले वि,

णवरं—"अवड्ढं लवणसमुद्दं" तया णं "राईदिय" तहेव।[1]

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(५) किसी द्वीप या समुद्र का अवगाहन करके सूर्य गति नहीं करता है।

इनमें से जिन्होंने इस प्रकार कहा है—

(१) एक हजार एक सौ तेतीस योजन (विस्तृत) द्वीप या समुद्र का अवगाहन करके सूर्य गति करता है।

उन्होंने इस प्रकार कहा है—

(क) जब सूर्य सर्वाभ्यन्तरमंडल को प्राप्त करके गति करता है तब एक हजार एक सौ तेतीस योजन जम्बूद्वीप का अवगाहन करके गति करता है।

तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(ख) जब सूर्य सर्व बाह्यमंडल को प्राप्त करके गति करता है तब एक हजार एक सौ तेतीस योजन लवण समुद्र का अवगाहन करके गति करता है।

तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है, और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

(२) इसी प्रकार एक हजार एक सौ चौंतीस योजन अवगाहित द्वीप-समुद्र के बाद सूर्य की गति तथा दिन-रात्रि का प्रमाण कहें।

(३) इसी प्रकार एक हजार एक सौ पेंतीस योजन अवगाहित द्वीप-समुद्र के बाद सूर्य की गति तथा दिन-रात्रि का प्रमाण कहें,

इनमें से जिन्होंने इस प्रकार कहा है—

(४) आधे द्वीप या समुद्र का अवगाहन करके सूर्य गति करता है।

उन्होंने इस प्रकार कहा है—

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल को प्राप्त करके गति करता है तब आधे जम्बूद्वीप का अवगाहन करके गति करता है।

तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

इसी प्रकार सर्वबाह्यमण्डल में भी कहें—

विशेष—आधे लवणसमुद्र के बाद सूर्य की गति तथा दिन-रात्रि का प्रमाण उसी प्रकार कहें—

१ ऊपर अंकित सूत्र के समान है।

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

५. ता नो किंचि दीवं वा, समुद्दं वा ओगाहित्ता चारं चरइ,

ते एवमाहंसु—

ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं नो किंचि दीवं वा, समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ,

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

एवं सव्व बाहिरे मंडले वि,

णवरं—"नो किंचि लवणसमुद्दं ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ, राइंदियं तहेव ।[1]"

वयं पुण एवं वयामो—

(क) ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं जंबुद्दीवं दीवं असीयं जोयणसयं ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ,[2]

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(ख) ता जया णं सूरिए सव्व बाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं लवणसमुद्दं तिण्णि तीसे जोयणसए ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ,

तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

(गाहाओ भाणियव्वाओ)[3]

—सूरिय. पा. १, पाहु. ५, सु. १६-१७

इनमें से जिन्होंने इस प्रकार कहा है—

(५) किसी द्वीप या समुद्र का अवगाहन करके सूर्य गति नहीं करता है,

उन्होंने इस प्रकार कहा है—

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब किसी द्वीप या समुद्र का अवगाहन करके गति नहीं करता है।

तब परम उत्कर्ष को प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

इसी प्रकार सर्व बाह्य मण्डल में भी कहें—

विशेष—लवणसमुद्र का अवगाहन करके सूर्य गति नहीं करता है, रात्रि और दिन का प्रमाण उसी प्रकार कहें,

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

(क) जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल को प्राप्त करके गति करता है—तब एक सौ अस्सी योजन जम्बूद्वीप को अवगाहन करके गति करता है।

तब परम उत्कर्ष को प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है,

(ख) जब सूर्य सर्व बाह्यमंडल को प्राप्त करके गति करता है तब तीन सौ तीस योजन लवणसमुद्र को अवगाहन करके गति करता है।

तब परम उत्कर्ष को प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

गाथायें कहनी चाहिए।

सूराणं तेरिच्छगई—

४०. प०—ता कहं ते तेरिच्छगई ? आहिए त्ति वएज्जा ।

उ०—तत्थ खलु इमाओ अट्ठ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता पुरत्थिमाओ लोयंताओ पाओ मरीची आगासंसि उट्ठेइ, से णं इमं लोयं तिरियं करेइ, करित्ता पच्चत्थिमंसि लोयंतंसि सायंमि आगासंसि विद्धंसइ एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२. ता पुरत्थिमाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आगासंसि

सूर्यों की तिरछी गति—

४०. प्रा०—(सूर्यों की) तिरछी गति कितनी कही गई है ? कहें।

उ०—इस सम्बन्ध में ये आठ प्रतिपत्तियाँ कही गई, यथा—

इनमें से एक (मत वालों) ने ऐसा कहा है—

(१) पूर्वी लोकान्त से किरण-समुदाय आकाश में उठता है वह इस तिर्यक्लोक को (प्रकाशित) करता है और प्रकाशित करके पश्चिमी लोकान्त में सायंकाल के समय आकाश में विलीन होता है।[4]

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२) पूर्वी लोकान्त से प्रातः सूर्य आकाश में उदय होता है,

१ ...२ अंकित सूत्र के समान हैं।

३ ... पा. १ सु. १६-१७ ।

२ सम. ८० सु. ७ ।

४ इनकी मान्यतानुसार सूर्य किरण-समुदाय मात्र है।

उट्ठेइ, से णं इमं लोयं तिरियं करेइ करित्ता पच्चत्थिमंसि लोयतंसि सायं सूरिए आगासंसि विद्धंसइ। एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

३. ता पुरत्थिमाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आगासंसि उट्ठेइ से णं इमं लोयं तिरियं करेइ करित्ता पच्चत्थिमंसि लोयंतंसि सायं सूरिए आगासं अणुपविसइ अणुपविसित्ता अहे पडियागच्छइ पडियागच्छित्ता पुणरवि अवरभू-पुरत्थिमाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आगासंसि उट्ठेइ. एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

४. ता पुरत्थिमाओ लोयंताओ पाओ सूरिए पुढविकायंसि उट्ठेइ से णं इमं लोयं तिरियं करेइ करित्ता पच्चत्थिमंसि लोयंतंसि सायं सूरिए पुढविकायंसि विद्धंसइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

५. ता पुरत्थिमाओ लोयंताओ पाओ सूरिए पुढविओ उट्ठेइ, से णं इमं तिरियं लोय करेइ, करित्ता पचत्थिमंसि लोयंतंसि सायं सूरिए पुढविकायं अणुपविसइ अणुपविसित्ता अहे पडियागच्छइ पडियागच्छित्ता पुणरवि अवरभू-पुरत्थिमाओ लोयंताओ पाओ सूरिए पुढविओ उट्ठेइ एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

६. ता पुरत्थिमाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आउकायंसि उट्ठेइ से णं इमं लोयं तिरियं करेइ करित्ता पच्चत्थिमंसि लोयंतंसि सायं सूरिए आउकायंसि विद्धंसइ, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

७. ता पुरत्थिमाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आउओ उट्ठेइ, से णं इमं लोयं तिरियं करेइ करित्ता पच्चत्थिमंसि लोयंतंसि सायं सूरिए आउकायंसि पविसइ, पविसित्ता अहे पडियागच्छइ पडियागच्छित्ता पुणरवि अवरभू-पुरत्थिमाओ लोयन्ताओ पाओ सूरिए आउओ उट्ठेइ, एगे एवमाहंसु.

एगे पुण एवमाहंसु—

८. ता पुरत्थिमाओ लोयन्ताओ बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं पाओ सूरिए आगासंसि उट्ठेइ. से णं इमं

वह इस तिर्यक् लोक को (प्रकाशित) करता है और प्रकाशित करके पश्चिमी लोकान्त में सायंकाल के समय सूर्य आकाश में विलीन हो जाता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(३) पूर्वी लोकान्त से प्रातः सूर्य आकाश में उदय होता है, वह इस तिर्यक् लोक को (प्रकाशित) करता है, प्रकाशित करके पश्चिमी लोकान्त में सायंकाल के समय सूर्य आकाश में प्रवेश करता है, आकाश में प्रवेश करके नीचे चला जाता है, नीचे जाकर के पुनः वह दूसरे भू (लोक) के पूर्वी लोकान्त से आकाश में (वही) सूर्य उदय होता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(४) पूर्वी लोकान्त से प्रातः सूर्य पृथ्वी में से निकल कर उदय होता है। वह इस तिरछे लोक को (प्रकाशित) करता है। प्रकाशित करके पश्चिमी लोकान्त में सायंकाल के समय पृथ्वीकाय में विलीन हो जाता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(५) पूर्वी लोकान्त से प्रातः सूर्य पृथ्वी में से निकलकर उदय होता है, वह इस तिरछे लोक को (प्रकाशित) करता है प्रकाशित करके पश्चिमी लोकान्त में सायंकाल के समय पृथ्वी में प्रवेश करता है, पृथ्वी में प्रवेश करके नीचे चला जाता है, नीचे जाकर के पुनः दूसरे भू लोक में पूर्वी लोकान्त से प्रातः सूर्य पृथ्वी में से निकल कर उदय होता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(६) पूर्वी लोकान्त से प्रातः सूर्य आकाश में अप्काय (जल) से उदय होता है। वह इस तिर्यक् लोक को (प्रकाशित) करता है। प्रकाशित करके पश्चिमी लोकान्त में सायंकाल के समय सूर्य अपकाय (जल) में विलीन हो जाता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(७) पूर्वी लोकान्त से प्रातः सूर्य (समुद्र के) जल में से निकलकर उदय होता है वह इस तिर्यक् लोक को प्रकाशित करता है, प्रकाशित करके पश्चिमी लोकान्त में सायंकाल के समय (समुद्र के) जल में प्रवेश करता है, प्रवेश करके नीचे चला जाता है, नीचे जाकर पुनः दूसरे भू लोक में पूर्वी लोकान्त से प्रातः सूर्य (समुद्र के) जल में से निकलकर उदय होता है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(८) पूर्वी लोकान्त से अनेक योजन अनेक शत योजन और अनेक सहस्र योजन ऊपर दूर दूर चलकर यहाँ प्रातः सूर्य आकाश में उदय होता है वह इस दक्षिणार्द्ध तिर्यक् लोक को

दाहिणड्ढं लोयं तिरियं करेइ करित्ता उत्तरड्ढलोयं तमेव राओ, से णं इमं उत्तरड्ढलोयं तिरियं करेइ करित्ता दाहिणड्ढलोयं तमेव राओ, से णं इमाइं दाहिण-उत्तरड्ढलोयाइं तिरियं करेइ करित्ता पुरत्थिमाओ लोयन्ताओ बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं उड्ढं दूरं उप्पइत्ता, एत्थ णं पाओ सूरिए आगासंसि उट्ठेइ, एगे एवमाहंसु,

वयं पुण एवं वयामो—

ता जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाईण-पडीणायय-उदीण-दाहिणाययाए जीवाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता दाहिण-पुरत्थिमंमि उत्तर-पच्चत्थिमंसि य चउब्भाग-मण्डलंसि इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठजोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं पाओ दुवे सूरिया आगासाओ उत्तिट्ठन्ति,

ते णं इमाइं दाहिणुत्तराइं जंबुद्दीव-भागाइं तिरियं करेंति, करेंतित्ता पुरत्थिम-पच्चत्थिमाइं जंबुद्दीव-भागाइं तामेव राओ,

ते णं इमाइं पुरत्थिम-पच्चत्थिमाइं जंबुद्दीवभागाइं तिरियं करेंति, करेंतित्ता दाहिणुत्तराइं जंबुद्दीवभागाइं तामेव राओ,

ते णं इमाइं दाहिणुत्तराइं पुरत्थिम-पच्चत्थिमाइं जंबुद्दीवभागाइं तिरियं करेंति, करेंतित्ता जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाईण-पडीणायय-उदीण-दाहिणाययाए जीवाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता दाहिण-पुरत्थिमंसि उत्तर-पच्चत्थिमंसि य चउब्भाग-मण्डलंसि इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठ जोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता—एत्थ णं पाओ दुवे सूरिया आगासंसि उत्तिट्ठन्ति,[1]

—सूरिय. पा. २, पाहु. १, सु. २१

प्रकाशित करता है प्रकाशित करके उत्तरार्द्ध तिर्यक्लोक में रात्रि करता है। वह इस उत्तरार्द्ध तिर्यक् लोक को प्रकाशित करता है प्रकाशित करके दक्षिणार्द्ध तिर्यक् लोक में रात्रि करता है।

इस प्रकार दक्षिणार्द्ध-उत्तरार्द्ध तिर्यक्लोकों को प्रकाशित करता है, प्रकाशित करके पूर्वी लोकान्त से अनेक योजन अनेक सहस्र योजन ऊपर दूर दूर चलकर यहाँ प्रातः सूर्य आकाश में उदय होता है।

हम फिर ऐसा कहते हैं—

जम्बूद्वीप की पूर्व-पश्चिम और उत्तर-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण लम्बी जीवा से मंडलों के एक सौ चौबीस विभाग करके दक्षिण-पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी मण्डल के चतुर्थ भागों में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अति सम-रमणीय भू-भाग से आठ सौ योजन ऊपर की ओर जाने पर यहाँ प्रातः दो सूर्य आकाश में उदय होते हैं।

वे सूर्य तिर्यक्लोक में जम्बूद्वीप के इन दक्षिण-उत्तर के विभागों को प्रकाशित करते हैं, प्रकाशित करके जम्बूद्वीप के पूर्वी पश्चिमी विभागों में रात्रि करते हैं।

वे सूर्य तिर्यक् लोक में जम्बूद्वीप के पूर्वी-पश्चिमी विभागों को प्रकाशित करते हैं, प्रकाशित करके जम्बूद्वीप के दक्षिण-उत्तर के विभागों में रात्रि करते हैं।

(इस प्रकार) ये सूर्य तिर्यक् लोक में जम्बूद्वीप के इन दक्षिणी-उत्तरी तथा पूर्वी-पश्चिमी विभागों को प्रकाशित करते हैं प्रकाशित करके जम्बूद्वीप द्वीप की पूर्व-पश्चिम और दक्षिण-उत्तर लम्बी जीवा से मण्डलों के एक सौ चौबीस विभाग करके दक्षिण-पूर्वी तथा उत्तर-पश्चिमी मण्डलों के चतुर्थ भागों में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अति सम रमणीय भू भाग से आठ सौ योजन ऊपर जाने पर प्रातः यहाँ दो सूर्य आकाश में उदय होते हैं।

सूरस्स मुहुत्त-गइ-पमाणं—

४१. प०—ता केवइयं ते खेत्तं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ चत्तारि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता छ छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ, एगे एवमाहंसु,

सूर्य की मुहूर्त-गति का प्रमाण—

४१. प्र०—सूर्य एक मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पार करता है? कहें।

उ०—इस सम्बन्ध में ये चार प्रतिपत्तियाँ (मान्यतायें) कही गई हैं, यथा—

उनमें से एक (मान्यता वालों) ने ऐसा कहा है—

(१) सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में छः छः हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता हैं,

१ चंद. पा. २ सु. २१।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

२. ता पंच पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ, एगे एवमाहंसु,

(२) सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में पाँच पाँच हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

३. ता चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ, एगे एवमाहंसु,

(३) सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में चार चार हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता है।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मान्यता वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

४. ता छ वि, पंच वि, चत्तारि वि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ, एगे एवमाहंसु,

(४) सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में छः हजार पाँच हजार और चार हजार योजन जितने क्षेत्रों को भी पार करता है।

तत्थणं जे ते एवमाहंसु—

इनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

१. ता छ छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ ते एवमाहंसु,

(१) सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में छः छः हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता है,

(क) "ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालस मुहुत्ता राई भवइ,

(क) जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है। और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

तंसि च णं दिवसंसि एगं जोयणसयसहस्सं अट्ठ य जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते,

उस दिन एक लाख आठ हजार योजन जितना ताप क्षेत्र कहा गया है।

(ख) ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारस मुहुत्ता राई भवइ। जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

(ख) जब सूर्य सर्व बाह्यमण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

तंसि च णं दिवसंसि बावत्तरिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते, तया णं छ छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

उस दिन बहत्तर हजार योजन (जितना) ताप क्षेत्र कहा गया है, उस समय सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में छः छः हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता है।[1]

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

इनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

२. ता पंच पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ, ते एवमाहंसु—

(२) सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में पाँच पाँच हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता है।

(क) ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(क) जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

तंसि च णं दिवसंसि नउइ जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते,

उस दिन निन्यानवे हजार योजन का ताप क्षेत्र कहा गया है।

टिप्पणी – १. $\left(\frac{१०८०००}{१८} = ६०००, \ \frac{७२०००}{१२} = ६००० \right)$

(ख) ता जया णं सूरिए सव्व वाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तयाणं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ। जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

(ख) जब सूर्य सर्व वाह्यमण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य वारह मुहूर्त का दिन होता है।

तंसि च णं दिवसंसि सट्ठिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते तया णं पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

उस दिन साठ हजार योजन का तापक्षेत्र कहा गया है उस समय सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में पाँच पाँच हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता है।[1]

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

इनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

३. ता चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ, ते एवमाहंसु—

सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में चार चार हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता है।

(क) ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ। जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(क) जब सूर्य सर्व आभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य वारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

तंसि च णं दिवसंसि वावत्तरिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते,

उस दिन वहत्तर हजार योजन का तापक्षेत्र कहा गया है।

(ख) ता जया णं सूरिए सव्व वाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ। जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

(ख) जव सूर्य सर्व वाह्यमण्डल को प्राप्त करके गति करता है तव परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य वारह मुहूर्त का दिन होता है।

तंसि च णं दिवसंसि अडयालीसं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते तया णं चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

उस दिन अडतालीस हजार योजन का ताप क्षेत्र कहा गया है, उस समय सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में चार चार हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता है।[2]

तत्थ णं जे ते एवमाहसु—

इनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

४. ता छ वि पंच वि, चत्तारि वि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ, ते एवमाहंसु,

(४) सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में छः, पाँच और चार हजार योजन (जितने क्षेत्र) को भी पार करता है!

ता सूरिए णं उग्गमणमुहुत्तंसि य, अत्थमणमुहुत्तंसि य सिग्घगई भवइ, तया णं छ छ जोयणसहस्साइं एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

सूर्य उदय-मुहूर्त (काल) में और अस्त-मुहूर्त (काल) में शीघ्र गति वाला होता है, उस समय छः छः हजार योजन (जितने क्षेत्र) को प्रत्येक मुहूर्त में पार करता है।

मज्झिमं तावक्खेत्ते समासाएमाणे समासाएमाणे सूरिए मज्झिमगइ भवइ, तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

मध्यम ताप क्षेत्र को प्राप्त सूर्य मध्यम गति वाला होता है, उस समय वह प्रत्येक मुहूर्त में पाँच पाँच हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता है।

टिप्पणी—१. $\left(\frac{९००००}{१८} = ५०००, \frac{६००००}{१२} = ५००० \right)$

२. $\left(\frac{७२०००}{१८} = ४०००, \frac{४८०००}{१२} = ४००० \right)$

मज्झिमं तावक्खेत्तं संपत्ते सूरिए मंदगई भवइ, तया णं चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकठपत्ते उक्कोसए अट्ठारस-मुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

तंसि च दिवसंसि एक्काणउइ जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते,

ता जया णं सूरिए सव्व बाहिर मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ। जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

तंसि च णं दिवसंसि एगट्ठि जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते तया णं छ वि पंच वि चत्तारि वि जोयण-सहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ, एगे एवमाहंसु—

वयं पुण एवं वयामो—

ता साइरेगाइं पंच पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

प०—तत्थ को हेउ ? त्ति वएज्जा,

उ०—ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्व खुड्डागे वट्टे-जाव जोयण-सय-सहस्समायाम-विक्खंभे णं, तिन्नि जोयणसयसहस्साइं दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि कोसे, अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस य अंगुलाइं, अद्धंगुलं च किंचि विसे-साहिए परिक्खेवे णं पण्णत्ते।

(१) ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलंउवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि य एक्कावण्णे जोयणसयाइं एगूणतीसं च सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

तदा णं इहगयस्स मणूसस्स सीयालीसाए जोयण-सहस्सेहिं दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमा-गच्छइ,[2]

मध्यम ताप क्षेत्र को प्राप्त सूर्य मंदगति वाला होता है, उस समय वह प्रत्येक मुहूर्त में चार चार हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता है।

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है, तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य मुहूर्त की रात्रि होती है।

उस दिन इकानवे हजार योजन का ताप क्षेत्र कहा गया है।

जब सूर्य सर्व बाह्यमण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

उस दिन इकसठ हजार योजन का ताप क्षेत्र कहा गया है।

उस समय सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में छः पांच और चार हजार योजन (जितने क्षेत्र) को भी पार करता है।[1]

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

सूर्य प्रत्येक मुहूर्त में कुछ अधिक पांच पांच हजार योजन (जितने क्षेत्र) को पार करता है।

प्र०—इस प्रकार कथन करने का हेतु क्या है ?

उ०—यह जम्बूद्वीप द्वीप सब द्वीप समुद्रों के अन्दर है, सबसे छोटा है, वृत्ताकार है—यावत्—एक लाख योजन लम्बा चौड़ा है, तीन लाख दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठावीस धनुष तेरह अंगुल और आधे अंगुल से कुछ अधिक की परिधि कही गई है।

(१) जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में पांच पांच हजार दो सौ इक्कावन योजन और एक योजन के साठ भागों में से उनतीस भाग (जितने क्षेत्र) को पार करता है।

उस समय सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन तथा एक योजन के साठ भागों में से इक्कीस भाग जितनी दूरी से यहां रहे हुए मनुष्य को सूर्य आंखों से दिखाई दे जाता है।

---

१ विधि—९१००० योजन का हिसाब इस प्रकार है—प्रथम मुहूर्त ६०००, अन्तिम मुहूर्त ६०००, मध्यम मुहूर्त ४००० एवं शेष १५ मुहूर्त ५०००×१५=७५,०००, कुल ६०००+६०००+४०००+७५,०००=९१,०००,

६१००० योजन का हिसाब इस प्रकार है—प्रथम मुहूर्त में ६०००, अन्तिम मुहूर्त में ६०००, मध्यम मुहूर्त में ४००० एवं ९ मुहूर्त में ५०००×९=४५,०००, कुल ६०००+६०००—४०००+४५,०००=६१,०००।

२ सम. ४७ सु. १।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

२. से निक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(२) (सर्वाभ्यन्तर मण्डल से) निकलता हुआ सूर्य नये संवत्सर के दक्षिणायन को प्रारम्भ करता हुआ प्रथम अहोरात्र में आभ्यन्तरानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए अब्भितराणंतरं मडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि य एक्कावण्णे जोयणसए सीयालीसं च सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

जब सूर्य आभ्यन्तरानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में पाँच पाँच हजार दो सौ इक्कावन योजन और एक योजन के साठ भागों में से सेंतालीस भाग (जितने क्षेत्र) को पार करता है।

तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीयालीसाए जोयणसहस्सेहिं एगूणासीए य जोयणसए सत्तावण्णाए सट्ठिभाएहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगट्ठिहा छेत्ता एगूणवीसाए चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ,

उस समय सेंतालीस हजार एक सौ गुण्यासी योजन तथा एक योजन के साठ भागों में से सत्तावन भाग और साठवें भाग को इगसठ से विभाजित करके उन्नीस चूर्णिका भाग जितनी दूरी से यहाँ रहे हुए मनुष्य को सूर्य आँखों से दिखाई दे जाता है।

तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगट्ठिभाग मुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया,

उस समय एक मुहूर्त के इकसठ भागों में में दो भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग तथा दो भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

३. से निक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भितरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(३) (आभ्यन्तरानन्तर मण्डल से) निकलता हुआ सूर्य दूसरे अहोरात्र में आभ्यन्तर तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए अब्भितरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि य बावण्णे जोयणसए पंच य सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

जब सूर्य आभ्यन्तर तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में पाँच हजार दो सौ बावन योजन और एक योजन के साठ भागों में से पाँच भाग (जितने क्षेत्र) को पार करता है।

तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोयणसहस्सेहिं छण्णउईए य जोयणेहिं तेतीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगट्ठिहा छेत्ता दोहिं चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ,

उस समय सेंतालीस हजार छिन्नवे योजन और एक योजन के साठ भागों में से तेतीस भाग तथा साठवें भाग को इकसठ से विभाजित करने पर दो चूर्णिका भाग जितनी दूरी से यहाँ रहे हुए मनुष्य को सूर्य आँखों से दिखाई दे जाता है।

तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया,

उस समय एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग तथा चार भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणे अट्ठारस अट्ठारस सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगई अभिवुड्ढेमाणे अभिवुड्ढेमाणे चुलसीइं सीयाइं जोयणाइं पुरिसच्छायं निव्वुड्ढेमाणे निव्वुड्ढेमाणे सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

इस प्रकार इस क्रम से निकलता हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल को संक्रमण करता करता प्रत्येक मण्डल में एक मुहूर्त के साठ भागों में से अठारह अठारह भाग जितनी मुहूर्त-गति बढ़ाता बढ़ाता कुछ कम चौरासी चौरासी योजन पुरुष छाया (सूर्य के दृष्टिपथ प्राप्त परिमाण में से) को घटाता घटाता सर्व बाह्यमण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

१. ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं

(१) जब सूर्य सर्व बाह्यमण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में पाँच पाँच हजार तीन सौ पाँच योजन और

तिन्नि य पंचुत्तरे जोयणसए पण्णरस य सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

एक योजन के साठ भागों में से पन्द्रह भाग (जितना क्षेत्र) को पार करता है।

तया णं इहगयस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोयणसहस्सेहिं अट्ठहिं एक्कतीसेहिं जोयणसएहिं तीसाए य सट्ठिभाएहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ,[1]

उस समय इकतीस हजार आठ सौ इकतीस योजन और एक योजन के साठ भागों में से तीस भाग जितनी दूरी से यहाँ रहे हुए मनुष्य को सूर्य आँखों से दिखाई दे जाता है।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

ये प्रथम छः मास (दक्षिणायन के) हैं, यह प्रथम छः मास का अन्त है।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(सर्व बाह्यमण्डल से) प्रवेश करता हुआ वह सूर्य दूसरे छः मास से उत्तरायण प्रारम्भ करता हुआ प्रथम अहोरात्र में बाह्यानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

२. ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं तिण्णि य चउरुत्तरे जोयणसए सत्तावण्णं च सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

(२) जब सूर्य बाह्यानन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में पांच पांच हजार तीन सौ चार योजन और एक योजन के साठ भागों में से सत्तावन भाग (जितना क्षेत्र) पार करता है।

तया णं इहगयस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोयणसहस्सेहिं नवहि य सोलसुत्तरेहिं जोयणसएहिं एगूणचत्तालीसाए सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगट्ठिहा छेत्ता सट्ठिए चुण्णिया भागेहिं, सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ,

उस समय इकतीस हजार नौ सौ सोलह योजन और एक योजन के साठ भागों में से गुनचालीस भाग के साठवें भाग का इकसठ से विभाजन करने पर साठ चूर्णिका भाग जितनी दूरी से यहाँ रहे हुए मनुष्य को सूर्य आँखों से दिखाई दे जाता है।

तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए,

उस समय एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग तथा दो भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(बाह्यानन्तर मण्डल से) प्रवेश करता हुआ वह सूर्य दूसरे अहोरात्र में बाह्य तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं तिन्नि य चउरुत्तरे जोयणसए एगूणचत्तालीसं च सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

(३) जब सूर्य बाह्य तृतीय मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में पांच पांच हजार तीन सौ चार योजन और एक योजन के साठ भागों में से उनचालीस भाग (जितने क्षेत्र) को पार करता है।

तया णं इहगयस्स मणूसस्स एगाहिएहिं बत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं एगूणपण्णाए य सट्ठिभाएहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगट्ठिहा छेत्ता तेवीसाए चुण्णियाभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ[2],

उस समय बत्तीस हजार एक योजन और एक योजन के साठ भागों में से उनपचास भाग तथा साठवें भाग को इकसठ से विभाजित करने पर तेईस चूर्णिका भाग जितनी दूरी से यहाँ रहे हुए मनुष्य को सूर्य दिखाई दे जाता है।

---

1 सम. ३१ सु. ३।

2 तया णं सूरिए बाहिराणंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं इहगयस्स पुरिसस्स तेत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं किंचि विसेसूणेहिं चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ। —सम. ३३, सु. ६

तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभाग-मुहुत्तेहिं उणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए,

उस समय एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग तथा चार भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है।

एवं खलु एएण उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणे अट्ठारस अट्ठारस सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगई निव्वुड्ढेमाणे निव्वुड्ढेमाणे साइरेगाइं पंचासीइ पंचासीइ जोयणाइं पुरिसच्छायं अभिवुड्ढेमाणे अभिवुड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं

इस प्रकार इस क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल की ओर संक्रमण करता करता प्रत्येक मण्डल में योजन के साठ भागों में से अठारह अठारह भाग (जितने क्षेत्र) को घटाता घटाता कुछ अधिक पच्यासी पच्यासी योजन पुरुष छाया (सूर्य के दृष्टि पथ प्राप्त परिमाण) को बढ़ाता बढ़ाता सर्वाभ्यन्तर मण्डल की ओर बढ़ता हुआ गति करता है।

चरइ, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरई, तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि य एक्कावण्णे जोयणसए अट्ठतीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को प्राप्त करके गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में पाँच पाँच हजार दो सौ इक्कावन योजन और एक योजन के साठ भागों में से अड़तीस भाग जितने क्षेत्र को पार करता है।

तया णं इहगयस्स मणुसस्स सीयालीसाए जोयणसहस्सेहिं दोहिं य तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं य एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ,[1]

उस समय सेंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन और एक योजन के साठ भागों में से इकवीस भाग जितनी दूरी से यहाँ रहे हुए मनुष्य को सूर्य आँखों से दिखाई दे जाता है।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,[2]

उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

---

१ सम. ४७, सु. १।

२ (१) प०—जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि अ एगावण्णे जोयणसए एगूणतीसं च सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ।

तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोयणसहस्सेहिं दोहि अ तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं एगवीसाए जोयणस्स सट्ठिभाएहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, त्ति,

से णिक्खममाणे सूरिए नवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, त्ति,

(२) प०—जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि अ एगावण्णे जोयणसए सीआलीसं च सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

तया ण इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोयणसहस्सेहिं एगूणासीए जोयणसए सत्तावण्णाए अ सट्ठिभाएहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगट्ठिधा छेत्ता एगूणवीसाए चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, त्ति,

से निक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, त्ति,

(३) प०—जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि अ बावण्णे जोयणसए पंच य सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीयालीसाए जोयणसहस्सेहिं छण्णउइए जोयणेहिं तेत्तिसाए सट्ठिभाएहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता दोहिं चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ त्ति, (क्रमशः)

एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

ये दूसरे छः मास (उत्तरायण के) हैं, यह दूसरे छः मास का अन्त है।

एस णं आइच्चे संवच्छरे, एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे,[४]

यह आदित्य संवत्सर है, यह आदित्य संवत्सर का अन्त है।

—सूरिय. पा. २, पाहु. ३, सु. २३

एगमेगे मण्डले सूरस्स मुहुत्तगई पमाणं-परूवण—

प्रत्येक मुहूर्त में सूर्य की मुहूर्त गति के प्रमाण का प्ररूपण—

४२. एगमेगे णं मण्डले सूरिए सट्ठि मुहुत्तेहिं संघाइए।

—सम. ६०, सु. १

४२. प्रत्येक मण्डल में सूर्य साठ, साठ मुहूर्त पूरे करता है।

(क्रमशः)

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकमाणे अट्ठारस अट्ठारस सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं अभिवड्ढेमाणे अभिवड्ढेमाणे चुलसीइं चुलसीइं सयाइं जोयणाइं पुरिसच्छायं[१] निवुड्ढेमाणे निवुड्ढेमाणे सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(१) प०—जया णं भंते ! सूरिए सव्व बाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच पंच जोयणसहस्साइं तिण्णि अ पंचुत्तरे जोयणसए पण्णरसए सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

तया णं इहगयस्स मणूसस्स एगतीसाए जोयणसहस्सेहिं अट्ठहि य एगत्तीसेहिं जोयणसएहिं तीसाए अ सट्ठिभाएहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, त्ति,

एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

से सूरिए दोच्चे छम्मासे अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(२) प०—जया णं भंते ! सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच पंच जोयणसहस्साइं तिण्णि अ चउरुत्तरे जोयणसए सत्तावण्णं च सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

तया णं इहगयस्स एगत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं णवहि अ सोलसुत्तरेहिं जोयणसएहिं इगुणालीसाए अ सट्ठिभाएहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता, सट्ठिए चुण्णिआभाएहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ त्ति,

से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(३) प०—जया णं भंते ! सूरिए बाहिरतच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच पंच जोयणसहस्साइं तिण्णि अ चउरुत्तरे जोयणसए इगुणालीसं च सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे णं मुहुत्ते णं गच्छइ,

तया णं इहगयस्स मणूसस्स एगाहिएहिं बत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं एगूणपन्नाए अ सट्ठिभाएहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता तेवीसाए चुण्णिआभाएहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, त्ति,

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकममाणे अट्ठारस अट्ठारस सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे मण्डले मुहुत्तगइं निवुड्ढेमाणे निवुड्ढेमाणे सातिरेगाइं पंचासीति पंचासीति जोयणाइं पुरिसच्छायं अभिवड्ढेमाणे अभिवड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

एस णं आइच्चे संवच्छरे, एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे पण्णत्ते। —जम्बु. वक्ख. ७ सु. १३३

(४) चन्द. पा. २ सु. २३ :

१ "चक्खुप्फास"—"चक्षुस्पर्श" और "पुरिसच्छायं" पुरुष-छाया—ये दोनों समानार्थक हैं, —सूर्य. सूत्र २० की टीका.
पुरुषछाया अर्थात् जितने योजन दूर से सूर्यदर्शन होता है उतनी दूरी से ही सूर्योदय [illegible]

एगमेगे मुहुत्ते मण्डलभागगइ पमाण-परूवणं—

४३. प०—एगमेगे णं भंते ! मुहुत्ते णं सूरिए केवइयाइं भागसयाइं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! जं जं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तस्स तस्स मण्डल परिक्खेवस्स अट्ठारस पणतीसे भागसए गच्छइ, मण्डलं सयसहस्सेहिं अट्ठाणउइए अ सएहिं छेत्ता। —जंबु. वक्ख. ७, सु. १४९

प्रत्येक मुहूर्त में मण्डल के भागों में गति के प्रमाण का प्ररूपण—

४३. प्र०—भगवन् ! प्रत्येक मुहूर्त में सूर्य मण्डल का कितना भाग चलता है ?

उ०—हे गौतम ! सूर्य जिस जिस मण्डल पर आरूढ़ होकर गति करता है उस उस मण्डल की परिधि का अठारह सौ पैंतीस योजन के एक लाख अठाणवें सौ भाग चलता है।

आइच्च संवच्छरे अहोरत्तप्पमाणं—

४४. जइ खलु तस्सेव आदिच्चस्स संवच्छरस्स सइं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

सइं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ,

सइं दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

सइं दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

पढमे छम्मासे—

अत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, नत्थि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे,

अत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे, नत्थि दुवालसमुहुत्ता राई भवइ।

दोच्चे छम्मासे—

अत्थि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, नत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई,

अत्थि दुवालसमुहुत्ता राई, नत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

प०—पढमे छम्मासे, दोच्चे छम्मासे, णत्थि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, णत्थि पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ। तत्थ णं कं हेउं वदेज्जा ?

उ०—ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्व खुड्डागे वट्टे-जाव-जोयण-सयसहस्समायाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि कोसे, अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस य अंगुलाइं, अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

आदित्य संवत्सर में अहोरात्र का प्रमाण—

४४. उस आदित्य संवत्सर में एक वार अठारह मुहूर्त का दिन होता है।

एक वार अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

एक वार वारह मुहूर्त का दिन होता है।

एक वार वारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

प्रथम छः मास में—

अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है किन्तु अठारह मुहूर्त का दिन नहीं होता है।

वारह मुहूर्त का दिन होता है किन्तु वारह मुहूर्त की रात्रि नहीं होती है।

द्वितीय छः मास में—

अठारह मुहूर्त का दिन होता है किन्तु अठारह मुहूर्त की रात्रि नहीं होती है।

वारह मुहूर्त की रात्रि होती है किन्तु वारह मुहूर्त का दिन नहीं होता है।

प्र०—प्रथम छः मास में तथा द्वितीय छः मास में न पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है, और न पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि होती है, उक्त मान्यता का हेतु क्या है ?

उ०—यह जम्बूद्वीप द्वीप सब द्वीप-समुद्रों के अन्दर है, सबसे छोटा है, वृत्ताकार है—यावत्—एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है, तीन लाख दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष, तेरह अंगुल और आधे अंगुल से कुछ अधिक की परिधि कही गई है।

१. ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतर-मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारस-मुहुत्ते दिवसे भवइ जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

(१) जब सूर्य सर्व आभ्यन्तर मण्डल की ओर संक्रमण करके गति करता है तब परम उत्कर्ष को प्राप्त होने पर उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

से निक्खममाणे सूरिए नवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

वह निष्क्रमण करता हुआ सूर्य नये संवत्सर के दक्षिणायन की प्रथम अहोरात्र में आभ्यन्तर मण्डल के अनन्तर (द्वितीय) मण्डल की ओर संक्रमण करके गति करता है।

२. ता जया णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे। दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया,

से निक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भितरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

(२) जब सूर्य आभ्यन्तर द्वितीय मण्डल की ओर संक्रमण करके गति करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है। एक मुहूर्त के इकसठ भागों में दो भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

वह निष्क्रमण करता हुआ सूर्य अहोरात्र में आभ्यन्तर तृतीय मण्डल की ओर संक्रमण करके गति करता है।

३. ता जया णं सूरिए अब्भिंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया,

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराणंतरं मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणेदो दो एगट्ठिभागमुहुत्ते एगमेगे मंडले दिवसखेत्तस्स णिवुड्ढेमाणे णिवुड्ढेमाणे रयणिखेत्तस्स अभिवुड्ढेमाणे अभिवुड्ढेमाणे सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(३) जब सूर्य आभ्यन्तर तृतीय मण्डल की ओर संक्रमण करके गति करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है। एक मुहूर्त के इकसठ भागों से चार भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

इस प्रकार इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य (तृतीय) मण्डल से मण्डलान्तर की ओर संक्रमण करता करता प्रत्येक मण्डल में एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो दो भाग दिवस क्षेत्र को घटाता घटाता तथा रजनी क्षेत्र को बढ़ाता बढ़ाता सर्व बाह्य मण्डल की ओर संक्रमण करता हुआ गति करता है।

१. ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मंडलाओ सव्व बाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वब्भतरं मंडलं पणिहाय एगे णं तेसीए णं राइंदियसए णं तिण्णि छावट्ठे एगट्ठिभागमुहुत्तसए दिवसखित्तस्स णिवुड्ढित्ता रयणि-खित्तस्स अभिवुड्ढित्ता चारं चरइ,

(१) जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल से बाह्य मण्डल की ओर उपसंक्रमण करके गति करता है, तब सर्व आभ्यन्तर मण्डल का लक्ष्य करके एक सौ तिरासी दिन-रात में से एक मुहूर्त के इकसठ भाग जैसे तीन सौ छासठ भाग दिन के क्षेत्र में घटाकर तथा रात्रि के क्षेत्र में बढ़ाकर गति करता है।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

ये दक्षिणायन के प्रथम छ मास हुए।

यह प्रथम छः मास का पर्यवसान हुआ।

यह प्रवेश करता हुआ सूर्य दूसरे छः मास के (उत्तरायण) प्रथम अहोरात्र में बाह्यानन्तर मण्डल की ओर संक्रमण करके गति करता है।

२. ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए,

से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

(२) जब सूर्य बाह्यानन्तर मण्डल की ओर संक्रमण करके गति करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है। एक मुहूर्त के इकसठ भागों में दो भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है।

यह प्रवेश करता हुआ सूर्य दूसरे अहोरात्र में बाह्य तृतीय मण्डल की ओर संक्रमण करके गति करता है।

३. ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा

(३) जब सूर्य बाह्य तृतीय मण्डल की ओर संक्रमण करके गति करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए,

एक मुहूर्त के इकसठ भागों से चार भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणे दो दो एगट्ठिभागमुहुत्ते एगमेगेमंडले रयणिखेत्तस्स णिवुड्ढेमाणे णिवुड्ढेमाणे दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेमाणे अभिवड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

इस प्रकार इस क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य अनन्तर मण्डल से अनन्तर मण्डल की ओर संक्रमण करता करता प्रत्येक मण्डल में एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो दो भाग रजनि-क्षेत्र को घटाता घटाता तथा दिवस क्षेत्र को बढ़ाता-बढ़ाता सर्व आभ्यन्तर मण्डल की ओर संक्रमण करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए सव्व बाहिराओ मंडलाओ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं सव्व बाहिरं मंडलं पणिहाय एगे णे तेसीए णं राइंदियसए णं तिन्नि छावट्ठे एगट्ठिभागमुहुत्तसए रयणि-खेत्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवस खेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइ।

जब सूर्य बाह्यमण्डल से सर्व आभ्यन्तर मण्डल की ओर संक्रमण करके गति करता है तब सर्व बाह्यमण्डल को छोड़कर एक सौ तिरासी दिन में एक मुहूर्त के इकसठ भागों की गणना से तीन सौ छासठ भाग क्षेत्र से घटाकर तथा दिवस क्षेत्र में बढ़ाकर गति करता है।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवइ। जहण्णियादुवालसमुहुत्ता राइ भवइ,

उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है तथा जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

एस णं दोच्चे छम्मासे,

ये (उत्तरायण) के दूसरे छः मास हैं।

एस णं दुच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

यह दूसरे छः मास का पर्यवसान है।

एस णं आदिच्चे संवच्छरे

यह आदित्य संवत्सर है।

एस णं आदिच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे,[1]

यह आदित्य संवत्सर का पर्यवसान है।

---

१ (१) प०—जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं के महालए दिवसे के महालया राई भवइ ?
उ०—गोयमा ! तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ।
से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भंतराणं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(२) प०—जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं के महालए दिवसे के महालया राई भवइ ?
उ०—गोयमा ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे,
दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं अ एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिअत्ति.
से निक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भंतरतच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(३) प०—जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतरतच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं के महालए दिवसे के महालया राई भवइ ?
उ०—गोयमा ! अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिअत्ति.
एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकममाणे दो दो एगट्ठिभाग मुहुत्तेहिं एगमेगे मण्डले दिवस-खित्तस्स निवुड्ढेमाणे निवुड्ढेमाणे रयणि-खित्तस्स अभिवड्ढेमाणे अभिवड्ढेमाणे सव्व बाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ त्ति,
जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मण्डलाओ सव्व बाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,
तया णं सव्वब्भंतरं मण्डलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं तिण्णि छावट्ठे एगट्ठिभागमुहुत्तसए दिवस-खेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइ त्ति. (क्रमशः)

उवसंहार सुत्तं—

एवं खलु तस्सेव आदिच्चस्स संवच्छरस्स सइं अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवइ, सइं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, सइं दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

पढमे छम्मासे—अत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, अत्थि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे,

अत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, नत्थि दुवालसमुहुत्ता राई,

दोच्चे वा छम्मासे—अत्थि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, नत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई,

अत्थि दुवालसमुहुत्ता राई, नत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

पढमे वा छम्मासे, दोच्चे वा छम्मासे—णत्थि पण्णरस-मुहुत्ते दिवसे भवइ, णत्थि पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ, णत्थि राइंदियाणं वड्ढोवड्ढीए, मुहुत्ताण वा चयोवचएणं णण्णत्थ वा अणुवायगईए,

उपसंहार सूत्र—

इस प्रकार उस आदित्य संवत्सर में एक बार अठारह मुहूर्त का दिन होता है। एक बार अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है। एक बार बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

प्रथम छः मास में अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है किन्तु अठारह मुहूर्त का दिन नहीं होता है।

बारह मुहूर्त का दिन होता है किन्तु बारह मुहूर्त की रात्रि नहीं होती है।

द्वितीय छः मास में अठारह मुहूर्त का दिन होता है किन्तु अठारह मुहूर्त की रात्रि नहीं होती है।

बारह मुहूर्त की रात्रि होती है किन्तु बारह मुहूर्त का दिन नहीं होता है।

प्रथम छः मास में तथा द्वितीय छः मास में—(१) रात-दिन की वृद्धि-हानि, (२) मुहूर्तों की घट-बढ़ तथा, (३) अनुपात गति के अतिरिक्त न पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है और न पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(क्रमशः)

(१) प०—जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं के महालए दिवसे के महालिया राई भवइ ?

उ०—गोयमा ! तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिआ अट्ठारस मुहुत्ता राई भवइ।

जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, त्ति,

एस णं पढमे छम्मासे एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(२) प०—जया णं भंते ! सूरिए बाहिराणंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं के महालए दिवसे के महालिया राई भवइ ?

उ०—गोयमा ! अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए त्ति,

से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(३) प०—जया णं भंते ! सूरिए बाहिरतच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं के महालए दिवसे के महालिया राई भवइ ?

उ०—गोयमा ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा

दुवालसमुहुत्ते दिवसे चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए त्ति,

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकममाणे दो दो एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं एगमेगे मण्डले रयणिखेत्तस्स णिवुड्ढेमाणे णिवुड्ढेमाणे दिवसखेत्तस्स अभिवुड्ढेमाणे अभिवुड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ त्ति,

जया णं सूरिए सव्व बाहिराओ मण्डलाओ सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

तया णं सव्वबाहिरं मण्डलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं तिण्णि छावट्ठे एगसट्ठिभागमुहुत्तसए रयणिखेत्तस्स णिवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइ,

एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे

एस णं आइच्चे संवच्छरे, एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे पण्णत्ते. —जम्बू. वक्ख. ७, सु. १३६

गाहाओ भाणियव्वाओ,[1]

—सूरिय. पा. १, पाहु. १, सु. ११

यहाँ गाथाएँ कहनी चाहिए।

सूरिअस्स गमणागमणेण विसम अहोरत्त परूवणं—

४५. तेणउईमंडलगते णं सूरिए अतिवट्टमाणे वा, निवट्टमाणे वा समं अहोरत्तं विसमं करेइ।

—सम. ९३, सु. ३

सूर्य के गमनागमन से विषम अहोरात्र का प्ररूपण—

४५. तिरानवेवें मण्डल में रहा हुआ, सूर्य आभ्यन्तर मण्डल की ओर जाता हुआ तथा बाह्य मण्डल की ओर आता हुआ समान अहोरात्र को विषम करता है।

सूरस्सदाहिणा अद्धमंडल सठिई—

४६. प०—ता कहं ते अद्धमंडलसंठिई आहितातिं वदेज्जा?

उ०—तत्थ खलु इमे दुवे अद्धमंडलसंठिई पण्णत्ता, तं जहा—१. दाहिणा चेव अद्धमंडलसंठिई, २. उत्तरा चेव अद्धमंडलसंठिई।

प०—ता कहं ते दाहिणा अद्धमंडलसंठिई आहितातिं वदेज्जा?

उ०—ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव-समुद्दाणं सव्वब्मंतराए सव्वखुड्डागे वट्टे जाव जोयणसयसहस्समायाम-विक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं, दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए-तिण्णि कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

ता जया णं सूरिए सव्वब्मंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिंति उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालस मुहुत्ता राइ भवइ।

से निक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अंतराए भागाए तस्सादि पदेसाए अब्भितराणंतरं उत्तरं अद्धमंडलं संठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

ता जया णं सूरिए अब्भितराणंतरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं अट्ठारसमुहुत्तेहिं दिवसे भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे।

दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं एगट्ठि भागमुहुत्तेहिं अहिया

सूर्य की दक्षिणार्द्ध मण्डल-संस्थिति—

४६. सूर्य की अर्धमण्डल संस्थिति अर्थात् "प्रत्येक अहोरात्र में सूर्य की एकेक अर्द्धमण्डलों में परिभ्रमण-व्यवस्था" किस प्रकार कही गई है? वह कहें,

उ०—यहां ये दो प्रकार की अर्धमण्डल-संस्थिति कही गई हैं, यथा—दक्षिणार्धमण्डलसंस्थिति और उत्तरार्धमण्डलसंस्थिति।

प्र०—दक्षिणार्धमण्डल-संस्थिति किस प्रकार की कही गई है? वह कहें।

उ०—यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप-समुद्रों के मध्य में सबसे छोटा वृत्ताकार है—यावत्—एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा है और तीन लाख दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोश एक सौ अट्ठावीस धनुष तेरह अंगुल तथा आधे अंगुल से कुछ अधिक की परिधि वाला कहा गया है।

जब सूर्य सर्व आभ्यन्तर दक्षिणार्धमण्डल संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब परम उत्कर्ष को प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि है।

(सर्व आभ्यन्तर मण्डल से) निकलता हुआ वह सूर्य नये संवत्सर का दक्षिणायन प्रारम्भ करता हुआ प्रथम अहोरात्र में दक्षिण के आभ्यन्तर भाग के आदि प्रदेश से आभ्यन्तरानन्तर उत्तरार्धमण्डल संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है।

जब सूर्य आभ्यन्तरानन्तर उत्तरार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है, तब तक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है।

एक मुहूर्त के इकसठ भाग तथा दो भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

---

१ (क) [illegible]

(ख) [illegible] निर्युक्तिकृता तत्प्रतिबद्धा अन्या वा [illegible] [illegible] पुस्तके न दृश्यन्त, [illegible] [illegible]"

—सूर्य. टीका.

से निक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि उत्तराए अंतराए भागाए तस्सादिपदेसाए अब्भिंतरं तच्चं दाहिणं अद्धमंडलसंठिति उवसंकमित्ता चारं चरइ।

(आभ्यन्तरानन्तर मण्डल से) निकलता हुआ वह सूर्य दूसरे अहोरात्र में उत्तर के आभ्यन्तर भाग के आदि प्रदेश से आभ्यन्तर तृतीय दक्षिणार्धमण्डल संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए अब्भिंतरं तच्चं दाहिणं अद्धमंडलसंठिति उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे। दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया।

जब सूर्य आभ्यन्तर तृतीय दक्षिणार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग चार भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरमंडलस्स तंसि देसंसि तं तं अद्धमंडलसंठिति संकममाणे संकममाणे दाहिणाए अंतराए भागाए तस्सादिपदेसाए सव्वबाहिरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिति उवसंकमित्ता चारं चरइ।

इस प्रकार इस क्रम से निकलता हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल के उस उस प्रदेश की उस उस अर्धमण्डल-संस्थिति को संक्रमण करता करता दक्षिण के आभ्यन्तर भाग के आदि प्रदेश से सर्व बाह्य उत्तरार्धमण्डलसंस्थिति को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिति उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ।

जब सूर्य सर्व बाह्य उत्तरार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है, तब मण्डल के अन्तिम भाग को प्राप्त होने पर, उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे।

ये (दक्षिणायन के) प्रथम छः मास हैं और यह प्रथम छः मास का अन्त है।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि उत्तराए अंतराए भागाए तस्सादिपदेसाए बाहिराणंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिति उवसंकमित्ता चारं चरइ,

(सर्व बाह्यमण्डल से सर्व आभ्यन्तरमण्डल की ओर) प्रवेश करता हुआ वह सूर्य छः मास का उत्तरायण प्रारम्भ करता हुआ प्रथम अहोरात्र में उत्तर के आभ्यन्तर भाग के आदि प्रदेश से बाह्यानन्तर दक्षिणार्धमण्डल संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिति उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा। दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए।

जब सूर्य बाह्यानन्तर दक्षिणार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग तथा दो भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अंतराए भागाए तस्सादिपदेसाए बाहिरं तच्चं उत्तरं अद्धमंडलसंठिति उवसंकमित्ता चारं चरइ

(बाह्यानन्तर मण्डल से बाह्य तृतीयमण्डल की ओर) प्रवेश करता हुआ वह सूर्य दूसरे अहोरात्र में दक्षिण के आभ्यन्तर भाग के आदि प्रदेश से बाह्य तृतीय उत्तरार्धमण्डल संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है।

ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं उत्तरं अद्धमंडलसंठिति उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा। दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए,

जब सूर्य बाह्य तृतीय उत्तरार्धमण्डल संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग चार भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरमंडलस्स तंसि देसंसि तं तं [illegible]

इस प्रकार इस क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल के [illegible]

अद्धमण्डलसंठिइं संकममाणे संकममाणे उत्तराए अंतराए भागस्स तस्सादिपदेसाए सव्वब्भंतरं दाहिणं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं दाहिणं अद्धमण्डलसंठिंतिं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ।

एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

एस णं आइच्चे संवच्छरे, एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे,[1]

—सूरिय० पा० १, पाहु० २, सु० १२

संस्थितियों की ओर संक्रमण करता करता उत्तर के आभ्यन्तर भाग के आदिप्रदेशों से सर्व आभ्यन्तर दक्षिणार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है।

जब सूर्य सर्व आभ्यन्तर दक्षिणार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब (मण्डल के अन्तिम भाग को प्राप्त करने पर) उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

ये दूसरे छः मास (उत्तरायण के) हुए, यह दूसरे छः मास का अन्त हुआ।

यह आदित्य संवत्सर है, यह आदित्य संवत्सर का अन्त है।

सूरस्स उत्तरा अद्धमण्डलसंठिई—

४७. प०—ता कहं ते उत्तरा अद्धमण्डलसंठिई आहितेति वदेज्जा?

उ०—ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्व दीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्व खुड्डागे वट्टे-जाव-जोयणसयसहस्समायामविक्खंभे णं। तिण्णि जोयणसयसहस्साइं, दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस य अंगुलाइं, अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवे णं पण्णत्ते,

ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं उत्तरं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ।

से निक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि उत्तराए अन्तराए भागाए तस्साइपएसाए अब्भंतराणंतरं दाहिणं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

ता जया णं सूरिए अब्भतराणंतरं दाहिणं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ। तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया।

से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अन्तराए भागाए तस्साइपएसाए अब्भिंतराणंतरं तच्चं उत्तरं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

सूर्य की उत्तरार्धमण्डल-संस्थिति—

४७. प्र०—उत्तरार्धमण्डल-संस्थिति किस प्रकार की कही गई है? वह कहें।

उ०—यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सर्व द्वीप-समुद्रों के मध्य में सबसे छोटा वृत्ताकार है—**यावत्**—एक लाख योजन का लम्बा-चौड़ा है और तीन लाख दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोश एक सौ अट्ठावीस धनुष तेरह अंगुल तथा आधे अंगुल से कुछ अधिक की परिधि वाला कहा गया है।

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर उत्तरार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब परम प्रकर्ष को प्राप्त उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

सर्व आभ्यन्तर मण्डल से निकलता हुआ सूर्य नये संवत्सर का दक्षिणायन को प्रारम्भ करता हुआ प्रथम अहोरात्र में उत्तर के आभ्यन्तर भाग के आदि प्रदेश से आभ्यन्तरानन्तर दक्षिणार्ध मण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है।

जब सूर्य आभ्यन्तरानन्तर दक्षिणार्ध मण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग तथा दो भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

(आभ्यन्तरानन्तर मण्डल से) निकलता हुआ वह सूर्य दूसरे अहोरात्र में दक्षिण के आभ्यन्तर भाग के आदि प्रदेश से आभ्यन्तरानन्तर तृतीय उत्तरार्ध मण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है।

[1] चन्द. पा. १ सु. १२।

ता जया णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं तच्चं उत्तरं अद्धमण्डलसंठियं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ । चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया ।

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकममाणे तंसि तंसि देसंसि तं तं अद्धमण्डलसंठिइं संकममाणे संकममाणे उत्तराए अन्तराए भागाए तस्साइ पएसाए सव्वबाहिरं दाहिणं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं दाहिणं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,

एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अन्तराए भागाए तस्साइपएसाए बाहिराणंतरं उत्तरं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं उत्तरं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए

से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि उत्तराए अन्तराए भागाए तस्साइपएसाए बाहिरं तच्चं दाहिणं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं दाहिणं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए,

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मण्डलाओ तयाणंतरं मण्डलं संकममाणे संकममाणे तंसि तंसि देसंसि तं तं अद्धमण्डलसंठिइं संकममाणे संकममाणे दाहिणाए अन्तराए भागाए तस्साइपएसाए सव्वब्भंतरं उत्तरं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ

जब सूर्य आभ्यन्तरानन्तर तृतीय उत्तरार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग सहित चार भाग अधिक बारह मुहूर्त की रात्रि होती है ।

इस प्रकार इस क्रम से निष्क्रमण हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल को संक्रमण करता करता उस उस दिन के उन उन अर्धमण्डल-संस्थितियों की ओर संक्रमण करता करता उत्तर के आभ्यन्तर भाग के आदि प्रदेश से सर्व बाह्य दक्षिणार्ध मण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है ।

जब सूर्य सर्व बाह्य दक्षिणार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब परम प्रकर्ष को प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है ।

ये प्रथम छः मास दक्षिणायन के हैं यह प्रथम मास का अन्त है ।

(सर्व बाह्य मण्डल से) प्रवेश करता हुआ जब सूर्य दूसरे छः मास में उत्तरायण प्रारम्भ करता हुआ प्रथम अहोरात्र में दक्षिण के आभ्यन्तर भाग के आदि प्रदेश से बाह्यानन्तर उत्तरार्धमण्डल संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है ।

जब सूर्य बाह्यानन्तर उत्तरार्ध मण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग सहित दो भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है ।

(बाह्यानन्तर मण्डल से) प्रवेश करता हुआ सूर्य दूसरे अहोरात्र में उत्तर के आभ्यन्तर भाग के आदि प्रदेश से बाह्य तृतीय दक्षिणार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है ।

जब सूर्य बाह्य तृतीय दक्षिणार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से चार भाग कम अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और एक मुहूर्त के इकसठ भाग सहित चार भाग अधिक बारह मुहूर्त का दिन होता है ।

इस प्रकार इस क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल को संक्रमण करता करता उस उस दिन के उन उन अर्धमण्डल-संस्थितियों की ओर संक्रमण करता करता दक्षिण के आभ्यन्तर भाग के आदि प्रदेश से सर्व आभ्यन्तर उत्तरार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है ।

ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं उत्तरं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहन्निया दुवालस-मुहुत्ता राई भवई,

एस णं दोच्चे छम्मासे एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,

एस णं आइच्चे संवच्छरे एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे,[1]

—सूरिय० पा० १, पाहु० २, सु० १३

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर उत्तरार्धमण्डल-संस्थिति को प्राप्त करके गति करता है तब परम प्रकर्ष को प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

ये दूसरे छः मास (उत्तरायण के) हुए, यह दूसरे छः मास का अन्त हुआ।

यह आदित्य संवत्सर है, यह आदित्य संवत्सर का अन्त है।

उत्तरे पढम-बितिय-तइय सूरियमण्डलाणं आयाम-विक्खंभ परूवणं—

४८. उत्तरे पढमे सूरिय मण्डले नवनउइ-जोयण-सहस्साइं साइरेगाइं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ते,

दोच्चे सूरियमण्डले नवनउइ-जोयण-सहस्साइं साहियाइं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ते।

तइए सूरियमण्डले नवनउइ-जोयण-सहस्साइं साहियाइं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ते। —सम. ९९, सु. ४-६

उत्तर दिशा के प्रथम-द्वितीय और तृतीय सूर्यमण्डल के आयाम विष्कम्भ का प्ररूपण—

४८. उत्तर दिशा के प्रथम सूर्य मण्डल का आयाम-विष्कम्भ कुछ अधिक निनानवे हजार योजन का कहा गया है।

दूसरे सूर्य मण्डल का आयाम-विष्कम्भ कुछ अधिक निनानवे हजार योजन का कहा गया है।

तृतीय सूर्य मण्डल का आयाम-विष्कम्भ कुछ अधिक निनानवे हजार योजन का कहा गया है।

उत्तरायणे दक्खिणायणे य सूरस्सगइए हाणी-वुड्ढी परूवणं—

४९. उत्तरायणनियट्टे णं सूरिए पढमाओ मण्डलाओ एगूणचत्तालीसइमे मण्डले अट्ठत्तरिं एगसट्ठिभाए दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता णं चारं चरइ,

एवं दक्खिणायणनियट्टे वि। —सम, ७८, सु. ३-४

वाहिराओ उत्तराओ णं कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमाणे चोवालीसइमे मण्डलगते अट्ठासीइ इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता सूरिए चारं चरइ।

दक्खिणकट्ठाओ णं सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे चोयालीसइमे मण्डलगते अट्ठासीई इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स रयणिखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिनिवुड्ढित्ता णं सूरिए चारं चरइ। —सम. ८८, सु. ६

उत्तराओ णं कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमाणे एगूणपन्नासतिमे मण्डलगते अट्ठाणउइ एकसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढित्ता णं सूरिए चारं चरइ।

उत्तरायण और दक्षिणायन में सूर्य की गति की हानि-वृद्धि का प्ररूपण—

४९. उत्तरायण से लौटता हुआ सूर्य प्रथम मण्डल से उनतालीसवें मण्डल पर्यन्त एक मुहूर्त अठहत्तर भागों में से इकसठ भाग प्रमाण दिन की हानि तथा रात्रि की वृद्धि करता हुआ गति करता है।

इसी प्रकार दक्षिणायन से लौटता हुआ भी गति करता है।

वाह्य मण्डलात्मक उत्तर दिशा से प्रथम छः मास में (दक्षिणायन की ओर) गति करता हुआ सूर्य जब चौवालीसवें मण्डल में आता है तब एक मुहूर्त के अट्ठायासी भागों में से इकसठ भाग प्रमाण दिन की हानि तथा रात्रि की वृद्धि करता हुआ गति करता है।

दक्षिण दिशा से दूसरे छः मास में (उत्तरायण की ओर) गति करता हुआ सूर्य जब चौवालीसवें मण्डल में आता है तब एक मुहूर्त के अट्ठयासी भागों में से इकसठ भाग प्रमाण रात्री की हानि तथा दिन की वृद्धि करता हुआ गति करता है।

प्रथम छः मास में उत्तर दिशा से (दक्षिण दिशा की ओर) गति करता हुआ सूर्य जब उनचासवें मण्डल में आता है तब एक मुहूर्त के अठानवें भागों में से इकसठ भाग प्रमाण दिन की हानि तथा रात्रि की वृद्धि करता हुआ गति करता है।

१. पा० १ नु, १३।

दक्खिणाओ णं कट्ठाओ सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे चुम्मालीसइमे मण्डलगते अट्ठाणउइ एकसट्ठिभाए मुहुत्तस्स रयणिखित्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिनिवुड्ढित्ता णं सूरिए चारं चरइ। —सम. ९८, सु. ५-६

द्वितीय छः मास में दक्षिण दिशा से (उत्तर दिशा की ओर) गति करता हुआ सूर्य जब चवालीसवें मण्डल में आता है तब एक मुहूर्त के इकसठवें भागों में से अट्ठानवे भाग प्रमाण रात्रि की हानि तथा दिन की वृद्धि करता हुआ गति करता है।

सूरस्स पुण्णमासिणिसु जोगो—

सूर्य का पूर्णिमाओं में योग—

५०. १. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि सूरे चरिमं बावट्ठिं पुण्णमासिणिं जोएइ, ताए पुण्णमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता चउणवइं भागे उवाइणावेत्ता एत्थ णं से सूरिए पढमं पुण्णमासिणिं जोएइ।

५०. (१) प्र०—इन पांच संवत्सरों की प्रथमा पूर्णिमासी को सूर्य मण्डल के किस देश-विभाग में योग करता है ?

उ०—सूर्य अन्तिम बासठवीं पूर्णमासी को मण्डल के जिस देश-विभाग में योग करता है उसी पूर्णिमा स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके उनमें से चौरानवे भाग लेकर उनमें सूर्य प्रथम पूर्णमासी को योग करता है।

२. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं पुण्णमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि सूरे पढमं पुण्णमासिणिं जोएइ, ताए पुण्णमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता दो चउणवइभागे उवाइणावेत्ता एत्थ णं से सूरिए दोच्चं पुण्णमासिणिं जोएइ,

(२) प्र०—इन पांच संवत्सरों की द्वितीया पौर्णमासी को सूर्य मंडल के किस देश-विभाग में योग करता है ?

उ०—सूर्य प्रथमा पूर्णिमासी को मंडल के जिस देश-विभाग में योग करता है, उसी पूर्णिमा स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके उनमें से चौरानवे भाग लेकर उनमें सूर्य द्वितीया पूर्णमासी को योग करता है।

३. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं पुण्णमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि सूरे दोच्चं पुण्णमासिणिं जोएइ, ताए पुण्णमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता चउणवइभागे उवाइणावेत्ता एत्थ णं से सूरिए तच्चं पुण्णमासिणिं जोएइ,

(३) प्र०—इन पांच संवत्सरों की तृतीया पूर्णमासी को सूर्य मंडल के किस देश-विभाग में योग करता है ?

उ०—सूर्य द्वितीया पूर्णमासी को मंडल के जिस देश-विभाग में योग करता है उसी पूर्णिमा स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके उनमें से चौरानवे भाग लेकर उनमें सूर्य तृतीया पूर्णिमासी को योग करता है।

४. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं पुण्णमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि सूरे तच्चं पुण्णमासिणिं जोएइ, ताए पुण्णमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता, अट्ठछत्ताले भागसए उवाइणावेत्ता एत्थ णं से सूरिए दुवालसमं पुण्णमासिणिं जोएइ

(४) प्र०—इन पांच संवत्सरों की बारहवीं पूर्णमासी को सूर्य मंडल के किस देश-विभाग में योग करता है ?

उ०—सूर्य तृतीया पूर्णमासी को मंडल के जिस देश-विभाग में योग करता है उसी पूर्णिमा स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस [illegible] विभाग करके उनमें से [illegible] लेकर उनमें [illegible] करता हुआ सूर्य बारहवीं पूर्णमासी को योग करता है।

एवं खलु एएणं उवाएणं ताए ताए पुण्णमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता चउणवइ चउणवइ भागे

(५) इसी प्रकार इस क्रम से उस उस पूर्णमासी स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस भाग करके चौरानवे चौरानवे विभाग करके

वइं भागे उवाइणावेत्ता,[1] तंसि णं देसंसि तं तं पुण्णिमासिणिं सूरे जोएइ,

उनमें से प्रत्येक मंडल के चौरानवें चौरानवें भाग लेकर उन उन विभागों में उन उन पूर्णिमाओं को सूर्य योग करता है।

५. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरिमं बावट्ठि पुण्णिमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पाईण-पडिणाणयाए उदीण दाहिणाययाए जीवाए मण्डलं चउव्वीसे णं सए णं छेत्ता पुरत्थिमिल्लंसि चउब्भागमण्डलंसि सत्तावीसं भागे उवाइणावेत्ता अट्ठावीसइभागं वीसहा छेत्ता अट्ठारसभागे उवाइणावेत्ता तिहिं भागेहिं दोहि य कलाहिं दाहिणिल्लं चउब्भागमण्डलं असंपत्ते, एत्थ णं सूरिए चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं जोएइ,[2]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. २२, सु. ६४

(५) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा को सूर्य मंडल के किस देश-विभाग में योग करता है ?

उ०—जम्बूद्वीप द्वीप के ईशान एवं नैऋत्यकोण स्थित लम्बी जीवा में मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके पूर्व वाले मंडल के चार भागों में से सत्तावीस भाग लेकर अट्ठावीसवें भाग के बीस भाग करके उनमें से अठारह भाग लेकर दक्षिण वाले मंडल के चार भागों को प्राप्त किए बिना तीन भागों में दो दो कलाओं से सूर्य अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा को योग करता है।

सूरस्स अमावासासु जोगो—

सूर्य का अमावस्याओं में योग—

५१. प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि सूरे चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएइ, ताए अमावासठाणाए मण्डलं चउव्वीसे णं सए णं छेत्ता चउणउइभागे उवाइणावेत्ता, एत्थ णं से सूरे पढमं अमावासं जोएइ,

एवं जेणेव अभिलावेणं सूरियस्स पुण्णिमासिणीओ तेवेण अभिलावेणं अमावासाओ भणियव्वाओ, तं जहा-बिइया, तइया, दुवालसंमी।[3]

५१. प्र०—इन पाँच संवत्सरों की प्रथमा अमावस्या को सूर्य मंडल के किस देश-विभाग में योग करता है ?

उ०—सूर्य अन्तिम बासठवीं अमावस्या को मंडल के जिस देश में योग करता है, उसी अमावस्या स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके उनमें से चौरानवें विभाग लेकर उनमें सूर्य प्रथमा अमावस्या को योग करता है।

इस प्रकार जिस अभिलाप से सूर्य का पूर्णिमाओं में योग कहा उसी अभिलाप से अमावस्याओं में कहना चाहिए, यथा—दूसरी, तीसरी और बारहवीं अमावस्या में,

---

१ पाश्चात्ययुग चरम द्वाषष्टितम पौर्णमासी-परिसमाप्तिनिबन्धतात् स्थानात् परतो मंडलस्य चतुर्विंशत्यधिकरात्रि प्रविभक्तस्य सत्कानां चतुर्नवति चतुर्नवति भागानामतिक्रमे तस्याः तस्याः पौर्णमास्याः परिसमाप्तिः, ततश्चतुर्नवति द्वाषष्ट्या गुण्येते, जाता-न्यष्टा पंचाशच्छतानि अष्टाविंशत्यधिकानि, तेषां चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते लब्धाः सप्तचत्वारिंशत्सकलमंडल-परावर्ताः। —टीका

२ चन्द. पा. १० सु. ६४।

३ एवमित्यादि एवमुक्तेनप्रकारेण येनैवाभिलापेन सूर्यस्य पौर्णमास्य उक्तास्तेनैवाभिलापेनामावास्या अपि वक्तव्याः तद्यथा-द्वितीया, तृतीया द्वादशी च ताश्चैवम्।

प०—एएसिणं णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं अमावासं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि सूरे पढमं अमावासं जोएइ, ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउवीसेणं सएणं छेत्ता चउणउई भागे उवाइणावेत्ता, एत्थ णं सूरे दोच्चं अमावासं जोएइ,

प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं अमावासं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि दोच्चं अमावासं जोएइ, ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसे णं सएणं छेत्ता चउणउइ भागे उवाइणावेत्ता एत्थणं सूरे तच्चं अमावासं जोएइ,

प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि सूरे तच्चं अमावासं जोएइ, ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसे णं सएणं छेत्ता अट्ठ छत्ताले भागसए उवाइणावेत्ता, एत्थ णं से सूरे दुवालसमं अमावासं जोएइ,

एवं खलु एएणं उवाएणं ताए ताए अमावासट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता, चउप्पण्णं चउप्पण्णं भागे उवाइणावेत्ता तंसि तंसि देसंसि तं तं अमावासं सूरिए जोएइ.

प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरिमं बावट्ठिं अमावासं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि सूरे चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएइ, ताए पुण्णिमासिणिट्ठाणाए मण्डलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता सत्तालीसं भागे ओसक्कावइत्ता, एत्थ णं से सूरिए चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएइ,

—सूरिय. पा. १०, पाहु. २२, सु. ६६

इस प्रकार इस क्रम से उन उन अमावस्याओं में आगे आगे प्रत्येक मंडल के एक सौ चौबीस एक सौ चौबीस विभाग करके उनमें से चउपनवें चउपनवें विभाग छोड़कर उन उन विभागों में उन उन अमावस्याओं को सूर्य योग करता है।

प्र०—इन पांच संवत्सरों की अन्तिम बासठवीं अमावस्या को सूर्य मंडल के किस देश-विभाग में योग करता है ?

उ०—सूर्य अन्तिम बासठवीं अमावस्या को मंडल के जिस देश में योग करता है उसी पूर्णिमा स्थान से आगे वाले मंडल के एक सौ चौबीस विभाग करके उनमें से सैंतालीस भाग पीछे खसकाकर शेष भागों में सूर्य अन्तिम बासठवीं अमावस्या को योग करता है।



चन्द्र-सूर्य वर्णन

जोइसिन्दा चंद-सूरिया—

१०५२. चंदिम-सूरिया एत्थ दुवे जोइसिंदा जोइसियरायाणो परिवसंति[1] महिड्ढिया जाव पभासेमाणा,

ते णं तत्थ साणं साणं जोइसियविमाणावाससतसहस्साणं,

चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं,

चउण्हं अग्गमहिसीण सपरिवाराणं,

तिण्हं परिसाणं,

सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाधिवतीणं,

सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं,

अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव विहरंति, —पण्ण. प. २, सु. १९५ (२)

एगमेगस्स चंदिम-सूरियस्स परिवार परूवणं—

१०५३. प०—एगमेगस्स णं भंते ! चंदिम-सूरियस्स,

ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र और सूर्य—

५२. यहाँ दो ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र और सूर्य रहते हैं वे महर्द्धिक हैं—यावत्—दीप्तिमान हैं।

वे वहाँ अपने अपने ज्योतिष्क विमानावासों लाखों देवों का,

चार हजार सामानिक देवों का,

चार सपरिवार अग्रमहिषियों का,

तीन परिषदाओं के,

सात सेनाओं के, सात सेनाधिपतियों के,

सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के,

और अन्य अनेक देव-देवियों के आधिपत्य व अग्रसरत्व करते—यावत्—विहरण करते हैं।

प्रत्येक चन्द्र सूर्य के परिवार का प्ररूपण

५३. प्र०—भगवन् ! प्रत्येक चन्द्र-सूर्य के,

(क) [illegible]

[illegible]

केवइया महग्गहा परिवारो ?[1]
केवइया णक्खत्ता परिवारो ?
केवइया तारागण कोडाकोडी परिवारो ?

उ०—गोयमा ! अट्ठासीइ महग्गहा परिवारो,
अट्ठावीसं णक्खत्ता परिवारो,
छावट्ठिसहस्साइं णवसया पण्णत्तरा तारागण कोडाकोडीओ पण्णत्ताओ।[2]
—जीवा० पडि० ३, उ० २, नु० १६४

महाग्रहों का परिवार कितना है ?
नक्षत्रों का परिवार कितना है ?
ताराओं का परिवार कितना है ?

उ०—गौतम ! अठयासी महाग्रहों का परिवार है।
अट्ठवीस नक्षत्रों का परिवार है।
छासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोटाकोटी ताराओं का परिवार है।

चन्दस्स सूरस्स य परिसाओ—

५४. चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोयसरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. तुम्बा, २. तुडिया, ३. पव्वा।

एवं सामाणिय अग्गमहिसीणं।

एवं सूरस्स वि।[3] —ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६२

चन्द्र-सूर्य की परिषदाएँ—

५४. ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र की तीन परिषदाएँ कही गई हैं, यथा—(१) तुम्बा, (२) तुटिका, (३) पर्वा।

इसी प्रकार सामानिक देवों की तथा अग्रमहिषियों की परिषदाएँ हैं।

इसी प्रकार सूर्य की परिषदाएँ भी हैं।

---

१ एगमेगस्स णं चन्दिम-सूरियस्स अट्ठासीइ अट्ठासीइ महग्गहा परिवारो पण्णत्तो। —सम. ८८, सु. १

२ (क) प०—एगमेगस्स णं भंते ! चन्दस्स केवइआ महग्गहा परिवारो ? केवइआ णक्खत्ता परिवारो ? केवइआ तारागण कोडाकोडीओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! अट्ठासीइ महग्गहा परिवारो, अट्ठावीसं णक्खत्ता परिवारो, छावट्ठि सहस्साइं णवसया पण्णत्तरा तारागण कोडाकोडीओ पण्णत्ताओ। —जम्बु. वक्ष. ७, सु. १६३

(ख) प०—ता एगमेगस्स णं चन्दस्स देवस्स केवइया गहा परिवारो पण्णत्तो ? केवइया णक्खत्ता परिवारो पण्णत्तो ? केवइया तारा परिवारो पण्णत्तो ?

उ०—ता एगमेगस्स णं चदस्स देवस्स अट्ठासीति गहा परिवारो पण्णत्तो, अट्ठावीसं णक्खत्ता परिवारो पण्णत्तो।

गाहा—छावट्ठिसहस्साइं णव चेव सयाइं पंचसयराइं।
एगससि परिवारो, तारागण कोडिकोडी णं॥ परिवारो पण्णत्तो॥ —सूरिय. पा. १८, सु. ९१

(ग) चन्द. पा. १८, सु. ९१।

सूर्यप्रज्ञप्ति सौवें (१००) सूत्र में भी एक चन्द्र के परिवार की सूचक दो गाथाएँ जीवाभिगम के समान हैं।
सूत्र संकलन की विभिन्न शैलियाँ तुलनात्मक अध्ययन के योग्य हैं।
चन्द्र-सूर्य के ग्रह परिवार का सूचक समवायांग का सूत्र है। इसी सूत्र के एक अंश को जीवाभिगम के संकलनकर्ता ने उद्धृत करके चन्द्र परिवार की सूचक दो गाथायें उद्धृत की हैं।
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति और सूर्य प्रज्ञप्ति में ग्रह, नक्षत्र, तारा, चन्द्र का परिवार माना गया है, तो सर्वथा संगत है।
जीवाभिगम और समवायांग में ग्रह, नक्षत्र, ताराओं को चन्द्र-सूर्य का संयुक्त परिवार माना गया है, किन्तु ग्रह नक्षत्र और ताराओं का इन्द्र (स्वामी) चन्द्र ही है, सूर्य तो इनका औपचारिक इन्द्र है अतः ग्रह, नक्षत्र, तारा चन्द्र के ही परिवार है।

३ प्र०—सूरस्स णं भंते ! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कति परिसाओ पण्णत्ताओ।
उ०—गोयमा ! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) तुम्बा, (२) तुडिया, (३) पेच्चा,
(१) अब्भिंतरिया तुम्बा, (२) मज्झिमिया तुडिया, (३) वाहिरिया पेच्चा……चन्दस्स वि एवं चेव।
—जीवा. प. ३, उ. १, सु. १२२

धरा, वरमल्लधरा, वराभरणधरा अवोछित्तिणयट्ठयाए अन्ने चयंति, अन्ने उववज्जंति,[1]

—सूरिय. पा. २०, सु. १०२

श्रेष्ठ वस्त्र धारण करने वाले हैं, श्रेष्ठ मालायें धारण करने वाले हैं, श्रेष्ठ आभूषण धारण करने वाले हैं, द्रव्यार्थिक नय से पूर्वोत्पन्न अन्य च्यवते (देह च्युत होते) हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

चंद-सूर-मण्डल-संठिई—

५७. प०—ता कहं ते मंडल-संठिई ? आहितेति वदेज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ अट्ठ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता सव्वावि णं मण्डलावता समचउरंस-संठाण संठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२. ता सव्वावि णं मण्डलावता विसमचउरंस-संठाण संठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

३. ता सव्वावि णं मण्डलावता समचउक्कोणसंठिया पण्णत्ता. एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

४. ता सव्वा वि णं मण्डलावता विसमचउक्कोणसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

५. ता सव्वा वि णं मण्डलावता समचक्कवालसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

६. ता सव्वा वि णं मण्डलावता विसमचक्कवाल-संठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

७. ता सव्वा वि णं मण्डलावता चक्कद्धचक्कवाल-संठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

८. ता सव्वा वि णं मण्डलावता छत्तागारसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु.

तत्थ जे ते एवमाहंसु—

ता सव्वा वि णं मण्डलावता छत्तागारसंठिया पण्णत्ता,

चन्द्र-सूर्य के मंडलों का आकार—

५७. प्र०—(चन्द्र-सूर्य के) मंडलों की संस्थिति कैसी है ?

उ०—इस सम्बन्ध में ये आठ प्रतिपत्तियाँ (मतान्तर) कही गई हैं, यथा—

इनमें से एक मत वालों ने ऐसा कहा है—

(१) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल समचतुरस्र-संस्थान से स्थित हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल विषमचतुरस्र-संस्थान से स्थित हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(३) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल समचतुष्कोण रूप में स्थित है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(४) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल विषम चतुष्कोण रूप में स्थित हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(५) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल समचक्रवालरूप में स्थित हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(६) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल विषमचक्रवाल रूप में स्थित हैं।

एक (मतवालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(७) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल अर्धचक्र के चक्रवाल के रूप में स्थित हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(८) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल छत्राकार के रूप में स्थित हैं।

इनमें से जिन्होंने ऐसा कहा है—

(चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल छत्राकार के रूप में स्थित हैं

---

[1] चंद. पा. २०, सु. १०२ ।

धरा, वरमल्लधरा, वराभरणधरा अवोछित्तिणयट्ठयाए अन्ने चयंति, अन्ने उववज्जंति,[1]

—सूरिय. पा. २०, सु. १०२

चंद-सूर-मण्डल-संठिई—

५७. प०—ता कहं ते मंडल-संठिई ? आहितेति वदेज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ अट्ठ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता सव्वावि णं मण्डलावता समचउरंस-संठाण संठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

२. ता सव्वावि णं मण्डलावता विसमचउरंस-संठाण संठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

३. ता सव्वावि णं मण्डलावता समचउक्कोणसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

४. ता सव्वा वि णं मण्डलावता विसमचउक्कोणसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

५. ता सव्वा वि णं मण्डलावता समचक्कवालसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

६. ता सव्वा वि णं मण्डलावता विसमचक्कवाल-संठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

७. ता सव्वा वि णं मण्डलावता चक्कद्धचक्कवाल-संठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

८. ता सव्वा वि णं मण्डलावता छत्तागारसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

तत्थ जे ते एवमाहंसु—

ता सव्वा वि णं मण्डलावता छत्तागारसंठिया पण्णत्ता,

श्रेष्ठ वस्त्र धारण करने वाले हैं, श्रेष्ठ मालायें धारण करने वाले हैं, श्रेष्ठ आभूषण धारण करने वाले हैं, द्रव्यार्थिक नय से पूर्वोत्पन्न अन्य च्यवते (देह च्युत होते) हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

चन्द्र-सूर्य के मंडलों का आकार—

५७. प्र०—(चन्द्र सूर्य के) मंडलों की संस्थिति कैसी है ?

उ०—इस सम्बन्ध में ये आठ प्रतिपत्तियां (मतान्तर) कही गई हैं, यथा—

इनमें से एक मत वालों ने ऐसा कहा है—

(१) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल समचतुरस्र-संस्थान से स्थित हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(२) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल विषमचतुरस्र-संस्थान से स्थित हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(३) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल समचतुष्कोण रूप में स्थित हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(४) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल विषम चतुष्कोण रूप में स्थित हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(५) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल समचक्रवालरूप में स्थित हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(६) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल विषमचक्रवाल रूप में स्थित हैं।

एक (मतवालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(७) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल अर्धचक्र के चक्रवाल के रूप में स्थित हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(८) (चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल छत्राकार के रूप में स्थित हैं।

इनमें से जिन्होंने ऐसा कहा है—

(चन्द्र-सूर्य के) सभी मंडल छत्राकार के रूप में स्थित हैं.

१ चंद. पा. २०, सु. १०२।

एएणं णएणं णायव्वं, णो चेव णं इयरेहिं ।[1]

केवल इस प्रतिपत्ति का यह कथन नयानुसार (हमारी मान्यतानुसार) जानना चाहिए शेष (पूर्वोक्त) सात प्रतिपत्तियों का कथन हमारी मान्यतानुसार नहीं है—(क्योंकि ऊपर उठाये हुए अर्ध-कपित्थ के आकार जैसे चन्द्र-सूर्य के सभी मंडल-विमान हैं। अर्ध-कपित्थ और छत्र के आकार में साम्य हैं।)

पाहुडगाहाओ भाणियव्वाओ ।[2]

—सूरिय. पा. १, पाहु. ७, सु. १९

यहां प्राभृत गाथायें कहनी चाहिए।

चन्द-सूर मण्डलाणं समंस-परूवणं—

१०५८. चंद मण्डले णं एगसट्ठि विभाग विभाइए समंसे पण्णत्ते ।

एवं सूरस्स वि । —सम. ६१, सु. ३-४

चन्द्र-सूर्य मंडलों के समांश का प्ररूपण—

१०५८. चन्द्र मंडल का समांश एक योजन के इकसठ विभाग करने पर पैंतालीस (४५) होता है।

इसी प्रकार सूर्यमंडल का समांश भी है।

चंदिम-सूरियसंठिई—

१०५९. प०—ता कहं ते सेआते[3] संठिइ[4] आहिताति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमा दुविहा संठिती पण्णत्ता, तं जहा—
१. चंदिम-सूरियसंठिती य, २. तावक्खेत्तसंठिती य,

प०—ता कहं ते चंदिम-सूरियसंठिती आहिताति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. तत्थेगे एवमाहंसु—
ता समचउरंससंठिया चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता एगे एवमाहंसु,

२. एगे पुण एवमाहंसु—
ता विसम चउरंससंठिया चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

३. एगे पुण एवमाहंसु—
ता सम चउक्कोणसंठिया चंदिम-सूरिय संठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

चन्द्र-सूर्य की संस्थिति—

१०५९. प्र०—श्वेतता की संस्थिति (आकार) किस प्रकार की कही गई है ? कहें।

उ०—यह संस्थिति दो प्रकार की कही गई है, यथा—
(१) चन्द्र-सूर्य की संस्थिति, (२) तापक्षेत्र की संस्थिति।

प्र०—चन्द्र-सूर्य की संस्थिति किस प्रकार की कही गई है ?

उ०—इस विषय में सोलह प्रतिपत्तियाँ (मान्यतायें) कही गई हैं, यथा—

(१) उनमें से एक मान्यता वाले इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की समचतुरस्र संस्थिति है।

(२) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की विषम चतुरस्र संस्थिति है।

(३) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की समचतुष्कोण संस्थिति है।

---

१ चन्द. पा. १, सु. १९।

२ ये गाथायें उपलब्ध नहीं हैं।

३ वृत्तिकार ने "श्वेतता" की व्याख्या इस प्रकार की है—
"इह श्वेतता चन्द्र-सूर्य विमानानामपि विद्यते, तत्कृततापक्षेत्रस्य च, ततः श्वेततायोगादुभयमपि श्वेतताशब्देनोच्यते।

४ चन्द्र-सूर्य विमानों के संस्थान अन्यत्र कहे गये हैं अतः चन्द्र-सूर्य विमानों की संस्थिति के सम्बन्ध में प्रश्नकर्ता के अभिप्राय का स्पष्टीकरण वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है—
"इह चन्द्र-सूर्यविमानानां संस्थानरूपा संस्थिति प्रागेवाभिहिता तत इह चन्द्र-सूर्य विमान-संस्थितिश्चतुर्णामपि अवस्थानरूपा पृष्टा द्रष्टव्या"

४. एगे पुण एवमाहंसु—
ता विसमचउक्कोणसंठिया चंदिम-सूरिय संठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(४) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की विषमचतुष्कोण संस्थिति है।

५. एगे पुण एवमाहंसु—
ता सम चक्कवालसंठिया चंदिम-सूरिय संठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(५) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की समचक्राकार संस्थिति है।

६. एगे पुण एवमाहंसु—
ता विसम चक्कवालसंठिया चंदिम-सूरिय संठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(६) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की विषम चक्राकार संस्थिति है।

७. एगे पुण एवमाहंसु—
ता चक्कद्धचक्कवालसंठिया चंदिम-सूरिय संठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(७) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की अर्धचक्राकार संस्थिति है।

८. एगे पुण एवमाहंसु—
ता छत्तागारसंठिया चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(८) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की छत्राकार संस्थिति है।

९. एगे पुण एवमाहंसु—
ता गेहसंठिया चंदिम-सूरिय संठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(९) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की गृहाकार संस्थिति है।

१०. एगे पुण एवमाहंसु—
ता गेहावणसंठिया चंदिम-सूरिय संठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(१०) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की गृहापण (घर-दुकान साथ) जैसी संस्थिति है

११. एगे पुण एवमाहंसु—
ता पासायसंठिया चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(११) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की प्रासादाकार संस्थिति है।

१२. एगे पुण एवमाहंसु—
ता गोपुरसंठिया चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(१२) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की गोपुराकार संस्थिति है।

१३. एगे पुण एवमाहंसु—
ता पेच्छाघरसंठिया चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(१३) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की प्रेक्षागृहाकार संस्थिति है।

१४. एगे पुण एवमाहंसु—
ता वलभीसंठिया चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(१४) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की वलभी (घर के छप्पर) जैसी संस्थिति है।

१५. एगे पुण एवमाहंसु—
ता हम्मियतलसंठिया चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

(१५) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,
चन्द्र-सूर्य की हर्म्यतल (तलघर) जैसी संस्थिति है।

१६. एगे पुण एवमाहंसु—

ता वालग्गपोतिया संठिया[1] चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

तत्थ जे ते एवमाहंसु—

ता समचउरंस-संठिया चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता, एएणं णएणं णेयव्वं; णो चेव णं इयरेहिं[2]

—सूरिय. पा. ४, सु० २५

(१६) एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं,

चन्द्र-सूर्य की वालाग्रपोतिकाकार (आकाश गंगा में क्रीडागृह के लिऐ लघु प्रासाद) जैसी संस्थिति है।

इनमें से जो यह कहते कि—

"चन्द्र-सूर्य की समचतुरस्र संस्थिति है" यह कथन नययुक्त है अतएव मान्य है, अन्य मान्यताएँ मान्य नहीं हैं।

दोसिणाइया णं लक्खणा—

६०. १. प०—ता कहं ते दोसिणा लक्खणा ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता चंदलेसाई य दोसिणाई य,

२. प०—दोसिणाई य चंदलेसाई य के अट्ठे, किं लक्खणे ?

उ०—ता एगट्ठे एग लक्खणे,

१. प०—ता कहं ते सूरलेस्सा लक्खणो ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता सूरलेस्साई य आयवेई य,

२. प०—ता सूरलेस्साई य, आयवेई य के अट्ठे किं लक्खणे ?

उ०—ता एगट्ठे, एगलक्खणे,

१. प०—ता कहं ते छाया लक्खणे ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता छायाई य, अंधकाराई य,

२. प०—ता छायाई य अंधकाराई य के अट्ठे किं लक्खणे ?

उ०—ता एगट्ठे, एगलक्खणे।[3]

—सूरिय. पा. १६, सु. ८७

ज्योत्स्ना (आतप-अन्धकार) आदि के लक्षण—

६०. (१) प्र०—ज्योत्स्ना का क्या लक्षण है ? कहें,

उ०—चन्द्र की लेश्या ही ज्योत्स्ना है।

(२) प्र०—ज्योत्स्ना और चन्द्र लेश्या का क्या अर्थ है और क्या लक्षण है ?

उ०—इन दोनों का अर्थ एक है और एक ही लक्षण है।

(१) प्र०—सूर्य लेश्या का क्या लक्षण है ? कहें,

उ०—सूर्य की लेश्या ही आतप है,

(२) प्र०—सूर्य लेश्या और आतप का क्या अर्थ है और क्या लक्षण है ?

उ०—इन दोनों का अर्थ एक है और एक ही लक्षण है।

(१) प्र०—छाया का क्या लक्षण है ? कहें,

उ०—छाया ही अन्धकार है।

(२) प्र०—छाया और अन्धकार का क्या अर्थ है और क्या लक्षण है ?

उ०—इन दोनों का अर्थ एक है और एक ही लक्षण है।

---

१ वालाग्रपोतिका शब्दो देशीशब्दत्वादाकाशतडागमध्ये व्यवस्थितंक्रीडास्थानं लघुप्रासादम्। —सूर्य. वृत्ति

२ (क) परतीर्थिकों की इन सोलह प्रतिपत्तियों में से केवल एक प्रतिपत्ति सूत्रकार की मान्यतानुसार है, इस विषय में वृत्तिकार का कथन यह है—"तत्थे इत्यादि—तत्र तेषां षोडपानां परतीर्थिकानां मध्ये ये ते वादिन एवमाहु—"समचतुरस्रसंस्थिता चन्द्रसूर्यसंस्थितिःप्रज्ञप्ता इति, एतेन नयेन नेतव्यं, ऐतेनाभिप्रायेणाऽस्मन्मतेऽपि चन्द्र-सूर्यसंस्थितिरवधार्येति भावः, तथाहि- "इह सर्वेऽपि कालविशेषाःसुषम-सुषमादयो युगमूलाः युगस्य चादौ श्रावणे मासि बहुलपक्षप्रतिपदिप्रातरुदयसमये एकसूर्यो दक्षिणपूर्वस्यां दिशि वर्तते, तद्द्वितीयस्त्वपरोत्तरस्यां, चन्द्रमा अपि तत्समये एको दक्षिणापरस्यां दिशि वर्तते, द्वितीय उत्तर-पूर्वस्यामत एतेषु युगस्यादौ चन्द्र-सूर्याःसमचतुरस्रसंस्थिति वर्तन्ते, यत्वत्र मण्डलकृतं वैषम्यं यथा सूर्यो सर्वाभ्यन्तरमण्डले वर्तते, चन्द्रमसौ सर्वबाह्ये-इति तदल्पमितिकृत्वा न विवक्ष्यते, तदेवं यतःसकलकालविशेषाणां सुषमा-सुषमादिरूपाणामादि-भूतस्य युगस्यादौ समचतुरस्रसंस्थितासूर्य-चन्द्रमसो भवन्ति, ततस्तेषां संस्थितिः समचतुरस्रसंस्थानेनोपवर्णिता, अन्यथा वा यथासम्प्रदायं समचतुरस्रसंस्थितिःपरिभावनीयेति नो चेव णं इयरेहिं ति-नो चेव नैव इतरैः—शेषैर्नयैश्चन्द्र-सूर्यसंस्थिति-र्ज्ञातव्या, तेषां मिथ्यारूपत्वात्, तदेवमुक्ता चन्द्र-सूर्यसंस्थितिः।

(ख) चन्द. पा. ४ सु. २५।

३ चंद. पा. १६, सु. ८७।

चंदिम-सूरियाणं ओभासखेत्तं उज्जोयखेत्तं तावखेत्तं पगासखेत्तं च—

चन्द्र-सूर्यों का अवभासक्षेत्र, उद्योतक्षेत्र, तापक्षेत्र और प्रकाशक्षेत्र—

६१. प०—ता केवइयं खेत्तं चंदिम-सूरिया ओभासेंति, उज्जोवेंति तवेंति पगासेंति ? आहिएत्ति वएज्जा,

६१. प्र०—चन्द्र और सूर्य कितने क्षेत्र को अवभासित करते हैं उद्योतित करते हैं, तपाते हैं तथा प्रकाशित करते हैं ? कहें,

उ०—तत्थ खलु इमाओ बारसपडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

उ०—इस सम्बन्ध में बारह प्रतिपत्तियाँ (मतान्तर) हैं, यथा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

इनमें से एक मत (मत वालों) ने ऐसा कहा है—

१. ता एगं दीवं एगं समुद्दं चंदिम सूरिया ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति, पगासेंति[1] एगे एवमाहंसु,

(१) चन्द्र और सूर्य एक द्वीप तथा एक समुद्र को अवभासित करते हैं, उद्योतित करते हैं, तपाते हैं, प्रकाशित करते हैं।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

२. ता तिण्णि दीवे, तिण्णि समुद्दे चंदिम-सूरिया ओभासेंति-जाव-पगासेंति एगे एवमाहंसु,

(२) चन्द्र और सूर्य तीन द्वीप तथा तीन समुद्रों को अवभासित करते हैं—यावत्—प्रकाशित करते हैं।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

३. ता अद्ध चउत्थे दीवे, अद्ध चउत्थे समुद्दे चंदिम-सूरिया ओभासेंति-जाव-पगासेंति, एगे एवमाहसु,

(३) चन्द्र और सूर्य साढ़े तीन द्वीप तथा साढ़े तीन समुद्रों को अवभासित करते हैं—**यावत्**—प्रकाशित करते हैं।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

४. ता सत्तदीवे, सत्तसमुद्दे चंदिम-सूरिया ओभासेंति, -जाव-पगासेंति, एगे एवमाहंसु,

(४) चन्द्र और सूर्य सात द्वीपों तथा सात समुद्रों को अवभासित करते हैं—**यावत्**—प्रकाशित करते हैं।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

५. ता दसदीवे, दससमुद्दे चंदिम-सूरिया ओभासेंति -जाव-पगासेंति, एगे एवमाहंसु,

(५) चन्द्र और सूर्य दस द्वीप तथा दस समुद्रों को अवभासित करते हैं—**यावत्**—प्रकाशित करते हैं।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

६. ता बारसदीवे, बारससमुद्दे चदिम-सूरिया ओभासेंति -जाव-पगासेंति, एगे एवमाहंसु,

(६) चन्द्र और सूर्य बारह द्वीप तथा बारह समुद्रों को अवभासित करते हैं।

एगे पुण एवेमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

७. ता बायालीसं दीवे, बायालीसं समुद्दे चंदिम-सूरिया ओभासेंति-जाव-पगासेंति एगे एवमाहंसु,

(७) चन्द्र और सूर्य बियालीस द्वीप तथा बियालीस समुद्रों को अवभासित करते हैं—**यावत्**—प्रकाशित करते हैं।

एगे पुण एवमाहंसु—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

८. ता बावत्तरिं दीवे, बावत्तरिं समुद्दे चंदिम-सूरिया ओभासेंति-जाव-पगासेंति, एगे एवमाहंसु,

(८) चन्द्र और सूर्य बहत्तर द्वीप तथा बहत्तर समुद्रों को अवभासित करते हैं—**यावत्**—प्रकाशित करते हैं।

---

१ अवभासयन्ति, तत्रावभासो ज्ञानस्यापि व्यवह्रियते अतस्तद्व्यवच्छेदार्थमाह उद्योतयन्ति, स चोद्योतो यद्यपि लोके भेदेन प्रसिद्धो यथा सूर्यगत आतप इति, चन्द्रगतः प्रकाश इति, तथाप्यातपशब्दश्चन्द्रप्रभायामपि वर्तते, यदुक्तम् चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना, तथा चन्द्रातपः स्मृतः, इति, प्रकाशशब्दः सूर्यप्रभायामपि, एतच्च प्रायो बहूनां सुप्रतीतं, तत एतदर्थं प्रतिपत्त्यर्थमुभयसाधारणं भूयोऽप्येकार्थिकद्वयमाह तापयन्ति प्रकाशयन्ति आख्याता इति,

एगे पुण एवमाहंसु—

९. ता बायालीसं दीवसयं, बायालीसं समुद्दसयं चंदिम-सूरिया ओभासेंति-जाव-पगासेंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१०. ता बावत्तरिं दीवसयं बावत्तरिं समुद्दसयं चंदिम-सूरिया ओभासेंति,-जाव-पगासेंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

११. ता बायालीसं दीवसहस्सं, बायालीसं समुद्दसहस्सं चंदिम-सूरिया ओभासेंति-जाव-पगासेन्ति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

१२. ता बावत्तरं दीवसहस्सं बावत्तरं समुद्दसहस्सं चंदिम-सूरिया ओभासेंति-जाव-पगासेंति, एगे एवमाहंसु,

वयं पुण एवं वयामो—

ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्व दीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डागे वट्टे-जाव-जोयणसहस्समायाम-विक्खंभे णं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं, दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवे णं पण्णत्ते,

से णं एगाए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, साणं जगई अट्ठ-जोयणाइं उड्ढं उच्चत्ते णं पण्णत्ता,

एवं जहा जंबुद्दीवपण्णत्तीए-जाव-[1] एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस सलिलासयसहस्सा छप्पण्णं च सलिलासहस्सा भवंतीतिमक्खायं,

जंबुद्दीवे णं दीवे पंच चक्कभागसंठिया, आहियात्ति वएज्जा,

प०—ता कहं णं जंबुद्दीवे दीवे पंच चक्कभागसंठिए ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता जया णं एए दुवे सूरिया सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरन्ति, तया णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स तिण्णि पंच चक्कभागे ओभासेंति-जाव-पगासेन्ति, तं जहा—

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(९) चन्द्र और सूर्य एक सौ बियालीस द्वीप तथा एक सौ बियालीस समुद्रों को अवभासित करते हैं—**यावत्**—प्रकाशित करते हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(१०) चन्द्र और सूर्य एक सौ बहत्तर द्वीप तथा एक सौ बहत्तर समुद्रों को अवभासित करते हैं—**यावत्**—प्रकाशित करते हैं।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(११) चन्द्र और सूर्य बियालीस हजार द्वीप तथा बियालीस हजार समुद्रों को अवभासित करते हैं—**यावत्**—प्रकाशित करते है।

एक (मत वालों) ने फिर ऐसा कहा है—

(१२) चन्द्र और सूर्य बहत्तर हजार द्वीप तथा बहत्तर हजार समुद्रों को अवभासित करते हैं—**यावत्**—प्रकाशित करते हैं।

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

यह जम्बूद्वीप द्वीप सब द्वीप समुद्रों के अन्दर है सबसे छोटा है, वृत्ताकार है—**यावत्**—एक लाख योजन लम्बा चौड़ा है, तीन तीन लाख दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठावीस धनुष तेरह अंगुल और आधे अंगुल से कुछ अधिक की परिधि कही गई है।

वह जम्बूद्वीप चारों ओर एक जगती से घिरा हुआ है; वह जगती आठ योजन ऊँची कही गई है।

जिस प्रकार जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में कहा है उसी प्रकार पूर्वापर को मिलाकर जम्बूद्वीप द्वीप में चौदह लाख छप्पन हजार नदियाँ हैं; ऐसा कहा गया है।

जम्बूद्वीप पाँच चक्र भाग संस्थान से स्थित है।

प्र०—जम्बूद्वीप द्वीप में पाँच चक्र भाग कौन से हैं ? कहें,

उ०—जब ये दोनों (एक भरत का और एक ऐरवत का) सूर्य सर्वाभ्यन्तरमण्डल को प्राप्त करके गति करते हैं तब जम्बूद्वीप द्वीप के पाँच चक्रभागों में से तीन चक्र भागों को अवभासित करते हैं—**यावत्**—प्रकाशित करते हैं। यथा—

१ जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति के प्रथम वक्षस्कार सूत्रांक ४ से षष्ठवक्षस्कार सूत्रांक १२५ पर्यन्त के सभी सूत्रों के पाठ यहाँ समझने की सूचना है।

ता एगे वि सूरिए एगं दिवड्ढं पंच चक्कभागं ओभासेइ-जाव-पगासेइ,

एक सूर्य (भरत का) पाँच चक्र भागों में से (पूर्वोक्त तीन भाग के आधे) डेढ़ भाग को अवभासित करता है—**यावत्**—प्रकाशित करता है।

ता एगे वि सूरिए एगं दिवड्ढं पंच चक्कभागं ओभासेइ-जाव-पगासेइ,

एक सूर्य (ऐरवत) पाँच चक्र भागों में से (पूर्वोक्त तीन भाग के आधे डेढ़ भाग को अवभासित करता है—**यावत्**—प्रकाशित करता है।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है, जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

ता जया णं एए दुवे सूरिया सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरंति, तया णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स दोण्णि पंच चक्कभागे ओभासेन्ति-जाव-पगासेन्ति,

जब ये दोनों सूर्य सर्व बाह्यमण्डल को प्राप्त करके गति करते हैं, तब जम्बूद्वीप द्वीप के पाँच चक्रभागों में से दो चक्र भागों को अवभासित करते हैं—**यावत्**—प्रकाशित करते हैं।

ता एगे वि सूरिए एगं पंच चक्कवालभागं ओभासेइ-जाव-पगासेइ,

एक सूर्य (भरत का) पाँच चक्र भागों में से (पूर्वोक्त तीन के बाद शेष रहे दो में से) एक चक्र भाग को अवभासित करता है—**यावत्**—प्रकाशित करता है।

ता एगे वि सूरिए एगं पंच चक्कवालभागं ओभासेइ-जाव-पगासेइ,

एक सूर्य (ऐरवत का) पाँच चक्र भागों में से (पूर्वोक्त दो में से शेष रहे) एक चक्र भाग को अवभासित करता है—**यावत्**—प्रकाशित करता है।

तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ,[1]

—सूरिय. पा. ३, सु. २४

उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है; जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

एगे जुगे आदिच्च-चन्द चार संखा—

६२. प०—ता कहं ते चारा ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमा दुविहा चारा पण्णत्ता, तं जहा—
१. आदिच्चचारा य, २. चंदचारा य,

प०—(क) ता कहं ते चंदचारा ? आहिएत्ति वएज्जा,

उ०— ता पंच संवच्छरिए णं जुगे,

१. अभीइ णक्खत्ते सत्तसट्ठिचारे चंदेण सद्धि जोगं जोएइ,

२. सवणे णक्खत्ते सत्तसट्ठिचारे चंदेण सद्धि जोगं जोएइ, एवं-जाव-,

३-२८. उत्तरासाढा णक्खत्ते सत्तसट्ठिचारे चदेण सद्धि जोगं जोएइ,

एक युग में सूर्य और चन्द्र की गति संख्या—

६२. प्र०—(एक युग में सूर्य-चन्द्र की) गति कितनी बार होती है ? कहें,

उ०—ये दो प्रकार की गति कही गई है, यथा—(१) सूर्य की गति, (२) चन्द्र की गति।

प्र०—(क) (एक युग में) चन्द्र की गति कितनी बार होती है ? कहें,

उ०—पाँच संवत्सर का एक युग होता है,

(ऐसे एक युग में)—

(१) अभिजित नक्षत्र सडसठ (६७) बार चन्द्र के साथ योग योग करता है।

(२) श्रवण नक्षत्र सडसठ (६७) बार चन्द्र के साथ योग करता है—**इस प्रकार—यावत्**—

(३-२८) उत्तराषाढा नक्षत्र सडसठ (६७) बार चन्द्र के साथ योग करता है।

---

[1] चन्द. पा. ३ सू. २४।

प०—(ख) ता कहं ते आइच्च चारा ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०— ता पंचसंवच्छरिए णं जुगे,

१. अभीई णक्खत्ते पंचचारे सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ एवं-जाव-,

२-२८. उत्तरासाढा णक्खत्ते पंचचारे सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ,[1]

—सूरिय० पा० १०, पाहु. १८, सु० ५२

प्र०—(एक युग में) सूर्य की गति कितनी बार होती है ? कहें,

उ०—पाँच संवत्सर का एक युग होता है,

(ऐसे एक युग में)

(१) अभिजित नक्षत्र पाँच बार सूर्य के साथ योग करता है, इस प्रकार—यावत्—

(२-२८) उत्तराषाढा नक्षत्र पाँच बार सूर्य के साथ योग करता है।

चन्दाइच्च अद्धमासे चन्दाइच्चाणं मण्डलचारं—

६३. १. प०—ता चंदेणं अद्धमासेणं चंदे कइ मण्डलाइं चरइ ?

उ०—ता चउद्दस चउब्भागमण्डलाइं चरइ एगं च चउवीस-सयभागं मण्डलस्स,

२. प०—ता आइच्चे णं अद्धमासे णं चंदे कइ मण्डलाइं चरइ ?

उ०—ता सोलस मण्डलाइं चरइ, सोलसमण्डलाचारी तया अवराइं खलु दुवे अट्ठकाइ जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता पविट्ठित्ता चारं चरइ,

३. प०—कयराइं खलु दुवे अट्ठगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता पविट्ठित्ता चारं चरइ ?

उ०—इमाइं खलु ते दुवे अट्ठगाइ जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता पविट्ठित्ता चारं चरइ, तं जहा—

१. निक्खम्ममाणे चेव अमावासंतेणं,

२. पविसमाणे चेव पुण्णिमासितेणं,

एयाइं खलु दुवे अट्ठगाइं जाइं चंदे केणई असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता पविट्ठित्ता चारं चरइ,

पढमं चंदायणं—

ता पढमायण गए चंदे दाहिणाए भागाए पविसमाणे सत्त अद्धमण्डलाइं जाइं चंदे दाहिणाए भागाए पविसमाणे चारं चरइ,

चन्द्र-सूर्य अर्द्धमास में चन्द्र-सूर्य की मण्डल गति—

६३. (१) प्र०—चन्द्र अर्द्धमास में चन्द्र कितने मंडलों में गति करता है ?

उ०—चौदह मंडल और (पन्द्रहवें) मण्डल के एक सौ चौवीस भागों में से चौथा भाग (अर्थात् इकतीस भाग) और एक भाग में गति करता है ?

(२) प्र०—सूर्य अर्द्धमास में चन्द्र कितने मंडलों में गति करता है।

उ०—सोलह मंडलों में गति करता है और सोलहवें मंडल में गति करते समय अन्य दो आठ भागों में जिनमें चन्द्र किसी असामान्य गति से स्वयं प्रवेश करके गति करता है।

(३) प्र०—ये दो आठ भाग कौनसे है जिनमें चन्द्र किसी असामान्य गति से स्वयं प्रवेश कर करके गति करता है ?

उ०—ये दो आठ भाग हैं, जिनमें चन्द्र किसी असामान्य गति से स्वयं प्रवेश करके गति करता है।

यथा—

(१) सर्वाभ्यन्तर मंडल से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र अमावस्या को प्रथम अष्टक में किसी असामान्य गति से स्वयं प्रवेश करके गति करता है।

(२) सर्व बाह्य मंडल मे प्रवेश करता हुआ चन्द्र पूर्णिमा की द्वितीय अष्टक में किसी असामान्य गति से स्वयं प्रवेश कर करके गति करता है।

ये दो आठ भाग हैं, जिनमें चन्द्र किसी असामान्य गति से प्रवेश कर करके गति करता है।

प्रथम चन्द्रायण—

प्रथम अयन गत चन्द्र दक्षिण भाग से प्रवेश करता हुआ सात अर्द्धमंडलों में जिनमें चन्द्र दक्षिण भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है।

---

१ चन्द. पा. १० सु० ५२।

१. प०—कयराइं खलु ताइं सत्त अद्धमण्डलाइं जाइं चंदे दाहिणाए भागाए पविसमाणे, चारं चरइ ?

उ०—इमाइं खलु ताइं सत्तअद्धमण्डलाइं जाइं चंदे दाहिणाए भागाए पविसमाणे चारं चरइ, तं जहा—

१. बिइए अद्धमण्डले, २. चउत्थे अद्धमण्डले, ३. छट्ठे अद्धमण्डले, ४. अट्ठमे अद्धमण्डले ५. दसमे अद्धमण्डले, ६. बारसमे अद्धमण्डले, ७. चउदसमे अद्धमण्डले,

एयाइं खलु ताइं सत्त अद्धमण्डलाइं जाइं चंदे दाहिणाए भागाए पविसमाणे चारं चरइ,

ता पढमायणगए चंदे उत्तराए भागाए पविसमाणे छ अद्धमण्डलाइं तेरस य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमण्डलस्स जाइं चंदे उत्तराए भागाए पविसमाणे चारं चरइ,

२. प०—कयराइं खलु ताइं छ अद्धमण्डलाइं तेरस य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमण्डलस्स जाइं चंदे उत्तराइं भागाए पविसमाणे चारं चरइ ?

उ०—इमाइं खलु ताइं छ अद्धमण्डलाइं तेरस य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमण्डलस्स जाइं चंदे उत्तराए भागाए पविसमाणे चारं चरइ, तं जहा—

१. तईए अद्धमण्डले, २. पंचमे अद्धमण्डले, ३. सत्तमे अद्धमण्डले, ४. नवमे अद्धमण्डले, ५. एक्कारसमे अद्धमण्डले, ६. तेरसमे अद्धमण्डले, पण्णरस मण्डलस्स तेरस सत्तट्ठिभागाइं,

एताइं खलु ताइं छ अद्धमण्डलाइं तेरस य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमण्डलस्स जाइं चन्दे उत्तराए भागाए पविसमाणे चारं चरइ,

एयावया च पढमे चंदायणे समत्ते भवइ,

दोच्चे चंदायणे—

ता णक्खत्ते अद्धमासे नो चंदे अद्धमासे,

चंदे अद्धमासे नो णक्खत्ते अद्धमासे,

१. प०—ता णक्खत्ताओ अद्धमासाओ ते चंदे चंदेणं अद्धमासे णं किमधियं चरइ ?

उ०—ता एगं अद्धमण्डलं चरइ, चत्तारि य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमण्डलस्स सत्तट्ठिभागं एगतीसाए छेत्ता णव भागाइं,

ता दोच्चायणगए चंदे पुरच्छिमाए भागाए णिक्खममाणे सत्त चउप्पणाइं जाइं चंदे परस्स चिन्नं पडिचरइ, सत्त तेरसगाइं जाइं चंदे अप्पणा चिण्णं चरइ,

(१) प्र०—वे सात अर्द्धमंडल कौनसे हैं जिनमें चन्द्र दक्षिण भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है ?

उ०—ये वे सात अर्द्धमंडल हैं जिनमें चन्द्र दक्षिण भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है । यथा—

(१) दूसरा अर्द्धमंडल, (२) चौथा अर्द्धमंडल, (३) छठा अर्द्धमंडल, (४) आठवाँ अर्द्धमंडल, (५) दसवाँ अर्द्धमंडल, (६) बारहवाँ अर्द्धमंडल, (७) चौदहवाँ अर्द्धमंडल ।

ये सात अर्द्धमंडल हैं जिनमें चन्द्र दक्षिण भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है ।

प्रथम अयनगत चन्द्र उत्तर भाग से प्रवेश करता हुआ छः अर्द्धमंडल और अर्द्धमंडल के सड़सठ भागों में से तेरह भाग हैं जिनमें चन्द्र उत्तर भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है ।

(२) प्र०—वे कौन से छह अर्द्धमंडल और अर्द्धमंडल के सड़सठ भागों में से तेरह भाग हैं जिनमें चन्द्र उत्तर भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है ?

उ०—वे ये छह अर्द्धमंडल और अर्द्धमंडल के सड़सठ भागों में से तेरह भाग हैं जिनमें चंद्र उत्तर भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है, यथा—

(१) तीसरा अर्द्धमंडल, (२) पाँचवाँ अर्द्धमंडल, (३) सातवाँ अर्द्धमंडल, (४) नवमा अर्द्धमंडल, (५) ग्यारहवाँ अर्द्धमंडल, (६) तेरहवाँ अर्द्धमंडल ।

पन्द्रहवें मंडल के सड़सठ भागों में से तेरह भाग ।

वे ये छह अर्द्धमंडल और अर्द्धमंडल के सड़सठ भागों में से तेरह भाग हैं जिनमें चन्द्र उत्तर से प्रवेश करता हुआ गति करता है ।

इतने पर प्रथम चन्द्रायण समाप्त होता है ।

द्वितीय चन्द्रायण—

नक्षत्र अर्द्धमास. चन्द्र अर्द्धमास नहीं है ।

चन्द्र अर्द्धमास, नक्षत्र अर्द्धमास नहीं है ।

(१) प्र०—चन्द्र-नक्षत्र अर्द्धमास से चन्द्र-अर्द्धमास कितना अधिक चलता है ?

उ०—एक अर्द्धमंडल तथा द्वितीय अर्द्धमंडल के सड़सठ भागों में से चार भाग और सड़सठवें इकतीस भागों में से नौ भाग अधिक चलता है ।

द्वितीय अयनगत चन्द्र सर्वाभ्यन्तर मंडल के पूर्वी भाग से निष्क्रमण करता हुआ (अर्द्धमंडल के) सड़सठ भागों में से चौवन भागों में जिनमें अन्य संचरित मंडल के भागों में चन्द्र गति करता है और (अर्द्धमंडल के) सड़सठ भागों में से तेरह भागों में जिनमें चन्द्र (अपने) संचरित मंडल के भागों में चन्द्र गति करता है ।

ता दोच्चायणगए चंदे पच्चत्थिमाए भागाए णिक्खममाणे छ चउप्पण्णाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरइ, छ तेरसगाइं चंदे अप्पणो चिण्णं पडिचरइ,

द्वितीय अयनगत चन्द्र सर्वाभ्यन्तर मंडल के पश्चिम भाग से निष्क्रमण करता हुआ (अर्द्धमंडल के) सड़सठ भागों में से चौवन भागों में जिनमें अन्य संचरित मंडल के भागों में चन्द्र गति करता है और (अर्द्धमंडल के) सड़सठ भागों में से तेरह भागों मे जिनमें स्वयं संचरित मंडल के भागों में चन्द्र गति करता है।

अवरगाइं खलु दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता पविट्ठित्ता चारं चरइ,

दो दूसरे तेरह भाग हैं, जिनमें चन्द्र किसी असामान्य गति से स्वयं प्रवेश कर करके गति करता है।

२. प०—कयराइं खलु ताइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णागाइं सयमेव पविट्ठित्ता पविट्ठित्ता चारं चरइ ?

(२) प्र०—वे कौनसे दो दूसरे तेरह भाग हैं जिनमें चन्द्र किसी असामान्य गति से स्वयं प्रवेश कर करके गति करता है ?

उ०—इमाइं खलु ताइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता पविट्ठित्ता चारं चरइ,

उ०—वे ये दो दूसरे तेरह भाग हैं जिनमें चन्द्र किसी असामान्य गति से स्वयं प्रवेश कर करके गति करता है।

१. सव्वब्भंतरे चेव मण्डले,

२. सव्ववाहिरे चेव मण्डले,

सर्व आभ्यन्तर मंडल के (सड़सठ भागों में से तेरह भाग),

सर्व बाह्यमंडल के (सड़सठ भागों में से तेरह भाग),

एयाणि खलु ताणि दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता पविट्ठित्ता चारं चरइ,

ये वे दो दूसरे तेरह भाग हैं जिनमें चन्द्र किसी असामान्य गति से स्वयं प्रवेश कर करके गति करता है।

एयावया दोच्चे चंदायणे समत्ते भवइ,

यह दूसरा चन्द्रायण समाप्त हुआ।

तच्चे चंदायणे—

तृतीय चन्द्रायण—

ता णक्खत्ते मासे नो चंदे मासे,
चंदे मासे नो णक्खत्ते मासे,

नक्षत्र मास है, वह चन्द्रमास नहीं है,
चन्द्र मास है, वह नक्षत्र मास नहीं है,

१. प०—ता णक्खत्ताए मासाए चंदे चंदेणं मासे णं किमधिय चरइ ?

प्र०—चन्द्रनक्षत्र मास से चान्द्रमास में कितनी अधिक गति करता है ?

उ०—ता दो अद्धमण्डलाइं चरइ अट्ठ य सत्तट्ठि भागाइं अद्धमण्डलस्स, सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसधा छेत्ता अट्ठारस भागाइं,

उ०—दो अर्द्धमंडल तथा अर्द्धमंडल से सड़सठ भागों में से आठ भाग और सड़सठवें भाग के इकवीस भागों में से अठारह भाग अधिक गति करता है।

ता तच्चायणगए चंदे पच्चत्थिमाए भागाए पविसमाणे वाहिराणंतरस्स पच्चत्थिमिल्लस्स अद्धमण्डलस्स इगयालीसं सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे अप्पणो, परस्स य चिन्नं पडिचरइ,

तृतीय अयनगत चन्द्र पश्चिमी बाह्यानन्तर अर्द्धमंडल के सड़सठ भागों में से स्व-संचरित इकतालीस भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है।

तेरस सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरइ,

उसी अर्द्धमंडल के सड़सठ भागों में से पर संचरित तेरह भागों में जिनमें चन्द्र (बाह्यानन्तर मण्डल के पश्चिमी भाग से प्रवेश करता हुआ) गति करता है।

तेरस सत्तट्ठिभागाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडिचरइ,

उसी अर्द्धमण्डल के सड़सठ भागों में से स्व-पर संचरित तेरह भागों में, जिनमें चन्द्र (बाह्यानन्तर मण्डल के पश्चिमी भाग से प्रवेश करता हुआ) गति करता है।

एयावया वाहिराणंतरे पच्चत्थिमिल्ले अद्धमण्डले समत्ते भवइ,

यह बाह्यानन्तर (बाह्यमण्डल से दूसरा) पश्चिमी अर्द्धमण्डल समाप्त हुआ।

तच्चायणगए चंदे पुरत्थिमाए भागाए पविसमाणे वाहिरतच्चस्स पुरत्थिमिल्लस्स अद्धमण्डलस्स इगयालीसं सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडियरइ,

तृतीय अयनगत चन्द्र बाह्य तृतीय पूर्व अर्द्धमण्डल के सड़सठ भागों में से स्व-पर संचरित इकतालीस भागों में जिनमें चन्द्र पूर्वी भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है।

तेरस सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडियरइ,

उसी पूर्वी तृतीय अर्द्धमण्डल के सड़सठ भागों में से पर-संचरित तेरह भागों में, जिनमें चन्द्र पूर्वी भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है।

तेरस सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडियरइ,

उसी पूर्वी तृतीय अर्द्धमण्डल के सड़सठ भागों में से स्व-पर संचरित तेरह भागों में जिनमें चन्द्र पूर्वी भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है।

एयावया वाहिरतच्चे पुरत्थिमिल्ले अद्धमण्डले समत्ते भवइ.

यह बाह्य तृतीय पूर्वी अर्द्धमण्डल समाप्त हुआ।

ता तच्चायणगए चंदे पच्चत्थिमाए भागाए पविसमाणे वाहिर चउत्थस्स पच्चत्थिमिल्लस्स अद्धमण्डलस्स अट्ठसत्तट्ठिभागाइं, सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसधा छेत्ता अट्ठारस भागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडियरइ,

तृतीय अयनगत चन्द्र बाह्य चतुर्थ पश्चिमी अर्द्धमण्डल के सड़सठ भागों में से आठ जिनमें चन्द्र पश्चिमी भाग से प्रवेश करता हुआ गति करता है।

एयावया वाहिरचउत्थ पच्चत्थिमिल्ले अद्धमण्डले समत्ते भवइ,

यह बाह्य चतुर्थ पश्चिमी अर्द्धमण्डल समाप्त हुआ।

एवं खलु चंदेणं मासेणं चंदे तेरस चउप्पण्णगाइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडियरइ,

इस प्रकार चन्द्र मास में चन्द्र पर-संचरित चौवन भागों में स्व-संचरित तेरह भागों में तथा दो तेरह भागों में जिनमें चन्द्र प्रवेश कर करके गति करता है।

तेरस तेरसगाइं जाइं चंदे अप्पणो चिण्णाइं पडियरइ,

सभी स्व-संचरित तेरह भागों में जिनमें चन्द्र प्रवेश करके गति करता है।

दुवे इगयालीसगाइं दुवे तेरसगाइं, अट्ठ सत्तट्ठिभागाइं सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसधा छेत्ता अट्ठारसभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडियरइ,

स्व-पर संचरित दो इकतालीस भाग दो तेरह भाग सड़सठ भागों में से आठ भाग सड़सठवें भाग के इकतीस भागों में से अठारह भाग जिनमें चन्द्र प्रवेश करके गति करता है।

अवराइं खलु दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ अस्सामन्नगाइं सयमेव पविट्ठित्ता पविट्ठित्ता चारं चरइ,

अन्य दो तेरह भागों में, जिनमें चन्द्र स्वयं किसी असामान्य-प्रवेश कर करके गति करता है।

इच्चेसो चंदमासो अभिगमण-णिक्खमणवुड्ढि-णिव्वुड्ढि-अणवट्ठिय-संठाण-संठिई-विउव्वणगिड्ढि-पत्ते रूवी चंदे देवे चंदे देवे, आहिए त्ति वएज्जा,[1]

—सूरिय. पा. १३, सु. ८१

यह चन्द्र देव का चन्द्र मास, प्रवेश-निष्क्रमण हानि-वृद्धि, अवस्थित, संस्थान-संस्थिति, विकुर्वणा, काम-भोगों में आसक्ति-चन्द्रदेव आदि कहा गया है।

१ चन्द. पा. १३ सु. ८१।

चंदेण य सूरेण य णक्खत्ताणं जोगकालं—

६४. १. (क)—ता जे णं अज्ज णक्खत्ते णं चंदे जोगं जोएइ जंसि देसंसि से णं इमाइं अट्ठ एगूणवीसाइं मुहुत्तसयाइं चउवीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, बावट्ठि चुण्णियाभागे उवाइणावेत्ता पुणरवि से चंदे अण्णेणं सरिसएणं चेव णक्खत्तेणं जोगं जोएइ अण्णंसि देसंसि।

(ख)—ता जे णं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोगं जोएइ, जंसि देसंसि से णं इमाइं सोलस अट्ठतीसं मुहुत्तसयाइं अउणापण्णं च बावट्ठि भागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, पण्णट्ठि चुण्णियाभागे उवाइणावेत्ता, पुणरवि से णं चंदे ते णं चेव णक्खत्ते णं जोगं जोएइ, अण्णंसि देसंसि,

(ग)—ता जे णं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोगं जोएइ, जसि देसंसि से णं इमाइं चउपण्णमुहुत्त सहस्साइं णव य मुहुत्त सयाइं उवाइणावेत्ता पुणरवि से चंदे अण्णेणं तारिसएणं णक्खत्तेणं जोगं जोएइ, तंसि देसंसि,

(घ)—ता जे णं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोगं जोएइ जंसि देसंसि से णं इमाइं एगलक्खं नव य सहस्सं अट्ठ य मुहुत्तसए उवाइणावेत्ता पुणरवि से चंदे ते णं चेव णक्खत्ते णं जोगं जोएइ तंसि देसंसि,

२. (क)—ता जे णं अज्ज णक्खत्तेणं सूरे जोगं जोएइ जंसि देसंसि से णं इमाइं तिण्णि छावट्ठाइं राइंदियसयाइ उवाइणावेत्ता पुणरवि से सूरिए अण्णे णं तारिसएणं चेव णक्खत्तेणं जोगं जोएइ तंसि देसंसि,

(ख)—ता जे णं अज्ज णक्खत्तेणं सूरे जोगं जोएइ तंसि देससि से णं इमाइं सत्त दुतीसं राइंदियसयाइं उवाइणावेत्ता पुणरवि से सूरे अण्णेणं चेव तारिसएण णक्खत्तेणं जोगं जोएइ तंसि देसंसि,

(ग)—ता जे णं अज्ज णक्खत्तेणं सूरे जोगं जोएइ, जंसि देसंसि से णं इमाइं अट्ठारस तीसाइं राइंदियसयाइं उवाइणावेत्ता पुणरवि सूरे तेणं णक्खत्तेणं जोगं जोएइ, तंसि देसंसि,

(घ)—ता जे णं अज्ज णक्खत्तेणं सूरे जोगं जोएइ जंसि देसंसि से णं इमाइं छत्तीसं सट्ठाइं राइंदियसयाइं उवाइणावेत्ता पुणरवि से सूरे ते णं चेव णक्खत्तेणं जोगं जोएइ तं सि देसंसि।[1]

—सूरिय० पा० १०, पाहु० २२, सु० ६६

चन्द्र और सूर्य से नक्षत्रों का योगकाल—

६४. (१) (क) जो चन्द्र मण्डल के जिस देश में जिस नक्षत्र से आज योग करता है तो (अठाईस नक्षत्रों के योगकाल के) आठ सौ उन्नीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से चौवीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से बासठ चूर्णिका भाग (बीतने के बाद) पुनः वही चन्द्र मंडल के अन्य देश में अन्य सदृश नक्षत्र से योग करता है।

(ख) जो चन्द्र मण्डल के जिस देश में जिस नक्षत्र से आज योग करता है तो (छप्पन नक्षत्रों के योगकाल के) सोलह सौ अड़तीस मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से उनपचास भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से पैंसठ चूर्णिका भाग (बीतने के बाद) पुनः वही चन्द्र मण्डल के अन्य देश में उसी नक्षत्र से योग करता है।

(ग) जो चन्द्र मण्डल के जिस देश में जिस नक्षत्र से आज योग करता है तो (अठाईस नक्षत्रों से एक युग के योगकाल के) चौवन हजार नौ सौ मुहूर्त (बीतने के बाद) पुनः वही चन्द्र मण्डल के उसी देश में अन्य वैसे ही नक्षत्र से योग करता है।

(घ) जो चन्द्र मण्डल के जिस देश में जिस नक्षत्र में आज योग करता है तो (अठाईस नक्षत्रों से दो युग के योगकाल के) एक लाख नौ हजार आठ सौ मुहूर्त (बीतने के बाद) पुनः वही चन्द्र मण्डल के उसी देश में उसी नक्षत्र से योग करता है।

(२) (क) जो सूर्य मण्डल के जिस देश में जिस नक्षत्र से आज योग करता है तो तीन सौ छासठ अहोरात्र के बाद पुनः वही सूर्य मण्डल के उसी देश में अन्य वैसे ही नक्षत्र से योग करता है।

(ख) जो सूर्य मण्डल के जिस देश में जिस नक्षत्र से आज योग करता है तो सात सौ बत्तीस अहोरात्र के बाद पुनः वही सूर्य मण्डल के उसी देश में अन्य वैसे ही नक्षत्र से योग करता है।

(ग) जो सूर्य मण्डल के जिस देश में जिस नक्षत्र से आज योग करता है तो अठारह सौ तीस अहोरात्र के बाद पुनः वही सूर्य मण्डल के उसी देश में अन्य वैसे ही नक्षत्र से योग करता है।

(घ) जो सूर्य मण्डल के जिस देश में जिस नक्षत्र से आज योग करता है तो छत्तीस सौ साठ (तीन हजार छः सौ साठ) अहोरात्र के बाद पुनः वही सूर्य मण्डल के उसी देश में उसी नक्षत्र से योग करता है।

---

[1] चंद. पा. १०, सु. ६६।

पुण्णिमासिणिसु चंदस्स य सूरस्स य णक्खत्ता णं जोगो—

६५. १. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णिमासिणिं चंदे केणं णक्खत्ते णं जोएइ ?

उ०—ता धणिट्ठाहिं धणिट्ठाणं तिण्णि मुहुत्ता एगूणवीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता पण्णट्ठि चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरिए के णं णक्खत्ते णं जोएइ ?

उ०—ता पुव्वफग्गुणीहिं पुव्वफग्गुणीणं अट्ठावीसं मुहुत्ता अट्ठतीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता बत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा,

२. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं पुण्णिमासिणिं चंदे के णं णक्खत्ते णं जोएइ ?

उ०—ता उत्तराहिं पोट्ठवयाहिं उत्तराणं पोट्ठवयाणं सत्तावीसं मुहुत्ता चोद्दस य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठि भागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता बावट्ठि चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरिए के णं णक्खत्ते णं जोएइ ?

उ०—ता उत्तराहिं फग्गुणीहिं उत्तराफग्गुणीणं सत्तमुहुत्ता च तेत्तीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठि भागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, एक्कवीसं चुण्णिया भागा सेसा,

३. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं पुण्णिमासिणिं चंदे के णं णक्खत्ते णं जोएइ ?

उ०—ता अस्सिणीहिं अस्सिणीणं एक्कवीसं मुहुत्ता णव य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तेवट्ठिं चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे के णं णक्खत्ते णं जोएइ ?

उ०—ता चित्ताहिं चित्ताणं एक्को मुहुत्तो अट्ठावीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, तीसं चुण्णियाभागा सेसा,

४. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं पुण्णिमासिणिं चंदे केणं णक्खत्ते णं जोएइ ?

पूर्णिमाओं में चन्द्र और सूर्य का नक्षत्रों से योग—

६५. (१) (क) प्र०—इन पांच संवत्सरों की प्रथमा पूर्णमासी में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—धनिष्ठा के तीन मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से उगणीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ विभागों में से पैंसठ चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र धनिष्ठा नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—पूर्वाफाल्गुनी के अठावीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से अड़तीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से बत्तीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर सूर्य पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के साथ योग करता है।

(२) (क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की द्वितीया पूर्णमासी में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उत्तरा भाद्रपद के सत्तावीस मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से चौदह भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से बासठ चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उत्तरा फाल्गुनी के सात मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से तेतीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से इक्कीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर सूर्य उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र से योग करता है।

(३) (क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की तृतीया पूर्णिमासी को चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—अश्विनी के इक्कीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से नौ भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से त्रेसठ चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र अश्विनी नक्षत्र के साथ योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—चित्रा का एक मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से अठावीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से तीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर सूर्य चित्रा नक्षत्र से योग करता है।

(४) (क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की बारहवीं पूर्णिमासी को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं उत्तराणं च आसाढाणं छवीसं मुहुत्ता छवीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, चउप्पण्णं चुण्णियाभागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे के णं णक्खत्ते णं जोएइ ?

उ०—ता पुणव्वसुणा पुणव्वसुस्स सोलस मुहुत्ता अट्ठ य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता बीसं चुण्णियाभागा सेसा।

५. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणि चंदे के णं णक्खत्ते णं जोएइ ?

उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं उत्तराणं आसाढाणं चरम समए,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे के णं णक्खत्ते णं जोएइ ?

उ०—ता पुस्से णं पुस्सस्स एगूणवीसं मुहुत्ता तेतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तेतीसं चुण्णिया भागा सेसा,[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. २२, सु. ६७

उ०—उत्तराषाढा के छब्बीस मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से छब्बीस भाग और बासठवें भाग के इकसठ भागों में से चौवन चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र उत्तराषाढा नक्षत्र के साथ योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—पुनर्वसु के सोलह मुहूर्त, एक मुहूर्त बासठ भागों में से आठ भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से बीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर सूर्य पुनर्वसु नक्षत्र से योग करता है।

(५) (क) प्र०—इन पांच संवत्सरों की अन्तिम बासठवीं पूर्णमासी को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उत्तराषाढा के अन्तिम समय में उत्तराषाढा नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है।

उ०—पुष्य के उन्नीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से तियालीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से तेतीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर सूर्य पुष्य नक्षत्र से योग करता है।

अमावासासु चंदस्स य सूरस्स य णक्खत्ताणं जोगो—

६६. १. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं चंदे केण णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता अस्सेसाहिं चेव अस्सेसाणं एक्के मुहुत्ते चत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं सत्तट्ठिधा छेत्ता, बावट्ठिं चुण्णिया भागा सेसा।

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता अस्सेसाहिं चेव अस्सेसाणं एक्को मुहुत्तो चत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता बावट्ठिं चुण्णिया भागा सेसा,

२. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता उत्तराहिं चेव फग्गुणीहिं उत्तराणं फग्गुणीणं चत्तालीसं मुहुत्ता पणतीसं च बावट्ठि-

अमावस्याओं में चन्द्र और सूर्य के साथ नक्षत्रों का योग—

६६. (१) (क) प्र०—इन पांच संवत्सरों की प्रथमा अमावस्या को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—अश्लेषा का एक मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से चालीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से बासठ चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र अश्लेषा नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—अश्लेषा का एक मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से चालीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से बासठ चूर्णिका भाग शेष रहने पर सूर्य अश्लेषा नक्षत्र से योग करता है।

(२) (क) प्र०—इन पांच संवत्सरों की द्वितीया अमावस्या को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उत्तराफाल्गुनी के चालीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से पैंतीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ

[1] चन्द. पा. १० सु. ६७।

भागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, पण्णट्ठिं चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता उत्तराहिं चेव फग्गुणीहिं उत्तराणं फग्गुणीणं जहेव चंदस्स,

३. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता हत्थे णं चेव हत्थस्स चत्तारि मुहुत्ता तीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता बावट्ठि चुण्णियाभागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता हत्थे णं चेव हत्थस्स जहेव चंदस्स,

४. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता अद्दाहिं चेव अद्दाणं चत्तारि मुहुत्ता, दस य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता चउप्पण्णं चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता अद्दाहिं चेव अद्दाणं जहेव चंदस्स,

५. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरिमं बावट्ठिं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता पुणव्वसुणा चेव पुणव्वसुस्स बावीसं मुहुत्ता बायालीसं च बासट्ठिभागा मुहुत्तस्स सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता पुणव्वसुणा चेव, पुणव्वसुस्स जहा चंदस्स[1]

—सूरिय० पा० १०, पाहु० २२, सु० ६८

भागों में से पैंसठ चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उपरोक्त चन्द्र के जैसे उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र से योग करता है।

(३) (क) प्र०—इन पांच संवत्सरों की तृतीया अमावस्या को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—हस्त के चार मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से तीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से बासठ चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र हस्त नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उपरोक्त चन्द्र के जैसे हस्त नक्षत्र से योग करता है।

(४) (क) प्र०—इन पांच संवत्सरों की बारहवीं अमावस्या को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—आर्द्रा नक्षत्र के चार मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से दस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से चौवन चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र आर्द्रा नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उपरोक्त चन्द्र के जैसे सूर्य आर्द्रा नक्षत्र से योग करता है।

(५) (क) प्र०—इन पांच संवत्सरों की अन्तिम बासठवीं अमावस्या को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—पुनर्वसु के बावीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से बियालीस भाग शेष रहने पर चन्द्र पुनर्वसु नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उपरोक्त चन्द्र के जैसे सूर्य पुनर्वसु नक्षत्र से योग करता है।

हेमंतियासु आवट्टियासु चंदेण, सूरेण य णक्खत्त-जोगकालो—

हेमंति आवृत्तियों में चन्द्र-सूर्य से नक्षत्रों का योगकाल—

६७. १. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं हेमंति आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता हत्थे णं, हत्थस्स णं पंचमुहुत्ता, पण्णासं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता सट्ठि चुण्णियाभागा सेसा,

६७. (१) (क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की पहली हेमंति आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—हस्त नक्षत्र के पाँच मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से पचास भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से साठ चूर्णिका भाग शेष रहने पर हस्त नक्षत्र के साथ चन्द्र योग करता है।

[1] चन्द. पा. १० सु, ६८।

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?
उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं उत्तराणं आसाढाणं चरिम समए,

२. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं हेमंतिं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?
उ०—ता सतभिसयाहिं सतभिसयाणं दुन्निमुहुत्ता अट्ठावीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता छत्तालीसं च चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?
उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं उत्तराणं आसाढाणं चरिम समए,

३. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं हेमंतिं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेण जोएइ ?
उ०—ता पूसे णं, पूसस्स एगूणवीसं मुहुत्ता, तेतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तेत्तीसं चुण्णियाभागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?
उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं उत्तराणं आसाढाणं चरिम समए,

४. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थिं आउट्टिं चन्दे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?
उ०—ता मूले णं, मूलस्स छमुहुत्ता, अट्ठावन्नं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं सत्तट्ठिधा छेत्ता वीसं चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?
उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढा णं, चरिम समए,

५. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पंचमं हेमंतिं आउट्टिं चन्दे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?
उ०—ता कत्तियाहिं, कत्तियाणं अट्ठारस मुहुत्ता, छत्तीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता छ चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?
उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरिम समए, —सूरिय. पा. १२, सु. [illegible]

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—उत्तराषाढा के अन्तिम समय में सूर्य उससे योग करता है ?

(२) (क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की दूसरी हेमंति आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—शतभिषक् के दो मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से अठावीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से छियालीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र शतभिषक् नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—उत्तराषाढा के अन्तिम समय में सूर्य उससे योग करता है।

(३) (क) प्र०—इन पांच संवत्सरों की तीसरी हेमंति आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—पुष्य के उन्नीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से तियालीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से तेतीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र पुष्य नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—उत्तराषाढा के अन्तिम समय में सूर्य उससे योग करता है।

(४) (क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की चौथी हेमंति आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—मूल के छः मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से अठावन भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से बीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र मूल नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—उत्तराषाढा के अन्तिम समय में सूर्य उससे योग करता है।

(५) (क) प्र०—इन पांच संवत्सरों की पांचवीं हेमंति आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—कृत्तिका के अठारह मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से छत्तीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से छह चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र कृत्तिका नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—उत्तराषाढा के अन्तिम समय में सूर्य उससे योग करता है।

वासिक्कियासु आउट्टियासु चंदेण सूरेण य णक्खत्त-जोगकालो—

६८. तत्थ खलु इमाओ पंचवासिकीओ, पंच हेमंतीओ आउट्टिओ पण्णत्ताओ,

१. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं वासिक्किं आउट्टिं चन्दे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता अभिईणा, अभिइस्स पढमसमएणं,

(ख) प०—तं समयं च सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता पूसेणं, पूसस्स एगूणवीसं मुहुत्ता तेतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा तेतीसं चुण्णिया भागा सेसा,

२. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं वासिक्कं आउट्टिं चन्दे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता संठाणाहिं, संठाणाणं एक्कारस मुहुत्ते, एगूणतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, तेपण्णं चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता पूसे णं, पूसस्स णं तं चेव, जं पढमाए,

३. (क) प०—एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं वासिक्किं आउट्टिं चन्दे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता विसाहाहिं, विसाहा णं तेरस मुहुत्ता, चउप्पण्णं च बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, चत्तालीसं चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता पूसे णं, पूसस्स णं तं चेव, जं पढमाए।

४. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्ह संवच्छराणं च चउत्थं वासिक्किं आउट्टिं चन्दे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता रेवईहि, रेवईणं पणवीसं मुहुत्ता बत्तीसं च बासट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता छत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

वार्षिकी आवृत्तियों में चन्द्र-सूर्य के नक्षत्रों का योग काल—

६८. इनमें ये पाँच वार्षिकी (वर्षाकाल भाविनी) और पाँच हेमंति आवृत्तियाँ कही गई हैं—

(१) (क) प्र०—इन पांच संवत्सरों की पहली वार्षिकी आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—चन्द्र अभिजित नक्षत्र के प्रथम समय में अभिजित नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—पुष्य के उन्नीस मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से तियालीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से तेतीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र पुष्य नक्षत्र से योग करता है।

(२) (क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की दूसरी वार्षिकी आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—मृगसर के इग्यारह मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से गुनतालीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से त्रेपन चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र मृगशिर नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—प्रथम वार्षिकी आवृत्ति के समान सूर्य पुष्य नक्षत्र के साथ योग करता है।

(३) (क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों की तीसरी वार्षिकी आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—विशाखा के तेरह मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से चोवन भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से चालीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र विशाखा नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—प्रथम वार्षिकी आवृत्ति के समान सूर्य पुष्य नक्षत्र के साथ योग करता है।

(४) (क) प्र०—इन पाँच सवत्सरों की चौथी वार्षिकी आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—रेवती के पच्चीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से बत्तीस भाग और बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से छत्तीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र रेवती नक्षत्र से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—ता पूसे णं, पूसस्स णं तं चेव, जं पढमाए।

उ०—प्रथम वार्षिकी की आवृत्ति के समान सूर्य पुष्य नक्षत्र के साथ योग करता है।

५. (क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं च पंचमं वासिक्किं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्ते णं जोएइ?

उ०—ता पुव्वाहि फग्गुणीहिं, पुव्वाफग्गुणीण वारसमुहुत्ता सत्तालीसं च वावट्ठिभागा मुहुत्तस्स वावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तेरस चुण्णिया भागा सेसा,

(ख) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ?

उ०—ता पूसे णं पूसस्स णं तं चेव, जं पढमाए।[1]

—सूरिय. पा. १२, पाहु. सु. ७६

(५) (क) प्र०—इन पांच संवत्सरों की पांचवीं वार्षिकी आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है?

उ०—पूर्वा फाल्गुनी के बारह मुहूर्त एक मुहूर्त के वासठ भागों में से सैंतालीस भाग और वासठवें भाग के सड़सठ भागों में से तेरह चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र पूर्वाफाल्गुनी से योग करता है।

(ख) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है?

प्रथम वार्षिकी आवृत्ति के समान सूर्य पुष्य नक्षत्र के साथ योग करता है।

अब्भिंतरलावणगाणं चंद-सूरदीवाणं परूवणं—

६९. प०—कहि णं भंते! अब्भिंतरलावणगाणं चन्दाणं चन्ददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं लवणसमुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं अब्भिंतरलावणगाणं चन्दाणं चन्ददीवा णामं दीवा पण्णत्ता।

जहा जंबुद्दीवगा चंदा तहा भाणियव्वा।

णवरं—रायहाणीओ अण्णंमि लवणे समुद्दे, सेसं तं चेव।

एवं अब्भिंतरलावणगाणं सूराण वि। तहेव सव्वं-जाव रायहाणीओ। —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १६३

लवणसमुद्र के अन्दर के चन्द्र-सूर्य द्वीपों का प्ररूपण—

६९. प्र०—हे भगवन्! लवणसमुद्र के अन्दर के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ कहे गये हैं?

उ०—हे गौतम! जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दरपर्वत से पूर्व में लवणसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर लवणसमुद्र के अन्दर के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहे गये हैं।

जिस प्रकार जम्बूद्वीप के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहे उसी प्रकार लवणसमुद्र के अन्दर के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहने चाहिए।

विशेष—इनकी राजधानियां अन्य लवणसमुद्र में हैं। शेष सब पूर्ववत् है।

इसी प्रकार लवणसमुद्र के अन्दर के सूर्यों के सूर्यद्वीप हैं। सब पूर्ववत् है—यावत्—राजधानियां कहनी चाहिए।

वाहिरलावणगाणं चन्द-सूरदीवाणं परूवणं—

७०. प०—कहि णं भंते! वाहिरलावणगाणं चन्दाणं चन्ददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! लवणस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ लवणसमुद्दं पच्चत्थिमे णं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं वाहिरलावणगाणं चन्दाणं चन्ददीवा णामं दीवा पण्णत्ता।

आयाम-विक्खंभ-परिक्खेवो जहा गोतमदीवस्स।

धायतिसंडदीवंतेणं अद्धकोणणवतिजोयणाइं चत्तालीसं च पंचणउतिभागे जोयणस्स ऊसिताजलंताओ।

लवणसमुद्र के बाहर के चन्द्र-सूर्य द्वीपों का प्ररूपण—

७०. प्र०—हे भगवन्! लवणसमुद्र के बाहर के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ कहे गये हैं?

उ०—हे गौतम! लवणसमुद्र की पूर्वी वेदिका के अन्तिम भाग से लवणसमुद्र के पश्चिम बारह हजार योजन जाने पर लवणसमुद्र के बाहर के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप कहे गये हैं।

चन्द्र द्वीपों की लम्बाई-चौड़ाई और परिधि गौतमद्वीप के समान है।

ये द्वीप धातकीखण्डद्वीप के अन्तिम भाग से साढ़े अठ्यासी योजन और चालीस योजन के पच्चानवें भाग $\left(८८\frac{४०}{९५}\right)$ जितने स्थान (जल-स्थल) से ऊंचे हैं।

---

१ चन्द. पा. १२ सु. ७६।

लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिता जलंताओ ।

लवणसमुद्र के अन्तिम भाग के जलान्त से दो कोश ऊँचे हैं ।

पउमवरवेइयाओ, वणसंडा, बहुसमरमणिज्जा भूमि-भागा, मणिपेढियाओ, सो चेव अट्ठो ।

इन द्वीपों की पद्मवरवेदिकायें वनखण्ड सर्वथा सम-रमणीय भूमिभाग, मणिपीठिकायें और नाम का हेतु पूर्ववत् है ।

रायहाणीओ सगाणदीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियम-संखेज्जे दीव-समुद्दे वीतिवतिता अण्णंमि लवणसमुद्दे ।

उन द्वीपों की राजधानियाँ पूर्व दिशा में तिरछे असंख्यद्वीप-समुद्रों के बाद अन्य लवणसमुद्र में है ।

तहेव सव्वं भाणियव्वं ।

शेष सब पूर्ववत् कहना चाहिए ।

प०—कहि णं भंते ! बाहिरलावणगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

प्र०—हे भगवन् ! लवणसमुद्र के बाहर के सूर्यों के सूर्यद्वीप नामक द्वीप कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—गोयमा ! लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमिल्लातो वेदियंताओ लवणसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं बाहिरलावगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता ।

उ०—हे गौतम ! लवणसमुद्र की पश्चिमी वेदिका के अन्तिम भाग से लवणसमुद्र के पूर्व में बारह हजार योजन जाने पर लवणसमुद्र के बाहर के सूर्यों के सूर्यद्वीप नामक द्वीप कहे गये हैं ।

आयाम-विक्खंभ-परिक्खेवो जहा गोतमदीवस्स ।

उन द्वीपों की लम्बाई-चौड़ाई और परिधि गौतमद्वीप के समान है ।

धायइसंडदीवंतेणं अद्धेकूणणउतिं जोयणाइं चत्तालीसं च पंचणउतिभागे जोयणस्स ऊसिता जलंताओ,

ये द्वीप धातकीखण्डद्वीप के अन्तिम भाग से साढ़े अठ्यासी योजन और चालीस योजन के पच्यानवें भाग ($८८\frac{१}{२}\frac{४०}{९५}$) जितने जलान्त से ऊँचे हैं ।

लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे उसिता जलंताओ ।

लवणसमुद्र के अन्तिम भाग के जलान्त से दो कोश ऊँचे हैं ।

पउमवरवेइयाओ, वणसंडा, बहुसमरमणिज्जा भूमि-भागा, मणिपेढियाओ, सो चेव अट्ठो ।

इन द्वीपों की पद्मवरवेदिकायें, वनखण्ड सर्वथा समरमणीय भूमिभाग, मणिपीठिकायें, नाम का हेतु—ये सब पूर्ववत् हैं ।

रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्यिमेणं तिरियम-संखेज्जे दीव-समुद्दे वीतिवतित्ता अण्णंमि लवणसमुद्दे,

उन द्वीपों की राजधानियाँ पश्चिम में तिरछे असंख्यद्वीप-समुद्रों के बाद अन्य लवणसमुद्र में है ।

तहेव सव्वं भाणियव्वं ।

शेष सब पूर्ववत् है ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १६३

धायतिसंडदीवगाणं चन्दसूरदीवाणं परूवणं—

धातकीखण्डद्वीप के चन्द्र-सूर्य द्वीपों का प्ररूपण—

७१. प०—कहि णं भंते ! धायतिसंडदीवगाणं चन्दाणं चन्ददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

७१. प्र०—हे भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—गोयमा ! धायइसंडस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ कालोयं णं समुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ ण धायइसंडदीवाणं चन्दाणं चन्ददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ।

उ०—हे गौतम ! धातकीखण्डद्वीप की पूर्वी वेदिका के अन्तिम भाग से कालोदसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर धातकीखण्डद्वीप नाम के द्वीप कहे गये हैं ।

आयाम-विक्खंभ-परिक्खेवो जहा गोतमदीवस्स ।

उन द्वीपों की लम्बाई-चौड़ाई और परिधि **गौतमद्वीप** के समान है ।

सव्वाओ समंता दो कोसा ऊसिता जलंताओ ।

ये द्वीप चारों ओर जलान्त से दो कोश ऊँचे हैं ।

पउमवरवेइयाओ, वणसंडा बहुसमरमणिज्जा भूमि-भागा, पासायवडिंसगा, मणिपेढियाओ सीहासणा सपरिवारा सो चेव अट्ठो ।

इन द्वीपों की पद्मवरवेदिकायें, वनखण्ड सर्वथा समरमणीय भूमिभाग, प्रासादावतंसक मणिपीठिकायें सपरिवार सिंहासन और नाम का हेतु पूर्ववत् है ।

रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं तीरियम-संखेज्जे दीव-समुद्दे वीतिवतित्ता अण्णंमि धायतिसंडे दीवे सेसं तं चेव ।

एवं सूरदीवावि ।

णवरं—धायइसंडस्स दीवस्स पच्चत्थिमिल्लातो वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं धायइसंडदीवाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता ।

तहेव सव्वं-जाव-रायहाणीओ सूराणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीतिवतित्ता अण्णंमि धायइसंडे दीवे । सव्वं तहेव ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १६४

उन द्वीपों की राजधानियां अपने अपने द्वीपों के पूर्व में तिरछे असंख्य द्वीप-समुद्रों के बाद अन्य धातकीखण्डद्वीप में है, शेष सब पूर्ववत् है ।

इसी प्रकार सूर्यद्वीप भी है ।

विशेष—धातकीखण्डद्वीप की पश्चिमी वेदिका के अन्तिम भाग के कालोद समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर धातकीखण्ड द्वीप के सूर्यों के सूर्यद्वीप कहे गये हैं ।

इसी प्रकार सब पूर्ववत् है—यावत्—उनकी राजधानियां सूर्यद्वीपों के पश्चिम में तिरछे असंख्यद्वीप-समुद्रों के बाद अन्य धातकीखण्डद्वीप में है । शेष सब पूर्ववत् है ।

कालोयगाणं चन्द-सूरदीवाणं परूवणं—

७२. प०—कहि णं भंते ! कालोयगाणं चन्दाणं चन्ददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! कालोदगसमुद्देसु पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयण्णं समुद्दं पच्चत्थिमेण बारसजोयणसहस्साइ ओगाहित्ता—एत्थ णं कालोयगचन्दाणं चन्ददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ।

आयाम-विक्खंभ-परिक्खेवो जहा गोतमदीवस्स । सव्वओ समंता दो कोसा ऊसिता जलंताओ ।

पउमवरवेइयाओ, वणसंडा, बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा, पासायवडिंसगा, मणिपेढियाओ, सीहासणा सपरिवारा, सो चेव अट्ठो ।

सेसं तहेव-जाव-रायहाणीओ ।

सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वीतिवतित्ता अण्णंमि कालोदगसमुद्दे । तं चेव सव्वं -जाव-चंदा देवा, चंदा देवा ।

एवं सूराण वि ।

णवरं—कालोयगपच्चत्थिमिल्लातो वेदियंताओ कालोयगसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता कालोयगसूराणं सूरदीवा णामं सूरदीवा पण्णत्ता ।

सेसं तहेव-जाव-रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीतिवतित्ता अण्णंमि कालोदगसमुद्दे ।

तं चेव सव्वं सूरा देवा, सूरादेवा ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १६५

कालोदगसमुद्र के चन्द्र-सूर्य द्वीपों का प्ररूपण—

७२. प्र०—हे भगवन् ! कालोदक समुद्र के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! कालोदकसमुद्र की पूर्वी वेदिका के अन्तिम भाग से कालोदसमुद्र के पश्चिम भाग में बारह हजार योजन जाने पर कालोदक समुद्र के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप कहे गये हैं ।

उनकी लम्बाई-चौड़ाई और परिधि गौतमद्वीप के समान है । वे द्वीप जल की ऊपरी सतह से दो कोस ऊंचे हैं ।

उन द्वीपों की पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, सर्वथा समरमणीय भूमिभाग, प्रासादावतंसक, मणिपीठिकायें सपरिवार सिंहासन और नाम के हेतु पूर्ववत् कहें ।

शेष पूर्ववत्—यावत्—राजधानियां ।

अपने द्वीपों के पूर्व में तिरछे असंख्य द्वीप समुद्रों का अतिक्रमण करने पर अन्य कालोदसमुद्र में है । शेष पूर्ववत्—यावत् चंद्रदेव चंद्रदेव ।

इसी प्रकार सूर्यों के सूर्यद्वीप भी हैं ।

विशेष—कालोदसमुद्र की पश्चिमी वेदिका के अन्तिम भाग से, कालोदसमुद्र के पूर्वी भाग में बारह हजार योजन जाने पर कालोदसमुद्र के सूर्यों के सूर्यद्वीप कहे गये हैं ।

शेष पूर्ववत—यावत्—राजधानियां अपने द्वीपों से पश्चिम में तिरछे असंख्य द्वीप-समुद्रों का अतिक्रमण करने पर अन्य कालोदसमुद्र में हैं ।

शेष सब पूर्ववत् सूर्यदेव सूर्यदेव ।

पुक्खरवरदीवगाणं सेसाणं सव्वदीव-समुद्दगाणं य चंद-सूराणं चंद-सूरदीवाणं परूवणं—

७३. एवं पुक्खरवरगाणं चंदाणं पुक्खरवरस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ पुक्खरवर समुद्दं ओगाहित्ता चंददीवा।

अण्णंमि पुक्खरवरे दीवे रायहाणीओ तहेव,

एवं सूराण वि दीवा,

पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ पुक्खरोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, तहेव सव्वं—जाव—रायहाणीओ।

दीविल्लगाणं दीवे, समुद्दगाणं समुद्दे चेव।

एगाणं अब्भिंतरपासे एगाणं बाहिरपासे।

रायहाणीओ दीविल्लगाणं दीवेसु।

समुद्दगाणं समुद्देसु सरिसणामएसु[1],

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १६८

पुष्करवरद्वीपगत और शेष सब द्वीप-समुद्रगत चन्द्र-सूर्यों के चन्द्र-सूर्य द्वीपों का प्ररूपण—

७३. इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपगत चन्द्रों के चन्द्र द्वीप पुष्करवरद्वीप पूर्वी वेदिका के अन्तिम भाग से पुष्करोद समुद्र में जाने पर आते हैं।

उन द्वीपों की राजधानियाँ अन्य पुष्करवरद्वीप में हैं, शेष पूर्ववत् है।

इसी प्रकार सूर्यों के सूर्यद्वीप भी हैं।

पुष्करवरद्वीप की पश्चिमी वेदिका के अन्तिम भाग से बारह हजार योजन जाने पर, पूर्ववत् सब हैं—यावत्—राजधानियाँ हैं।

द्वीपगत चन्द्र-सूर्य द्वीपों की राजधानियाँ द्वीपों में और समुद्रगत चन्द्र-सूर्य द्वीपों की राजधानियाँ समुद्रों में है।

कुछ की राजधानियाँ आभ्यन्तर पार्श्व में है।

कुछ की राजधानियाँ बाह्य पार्श्व में है।

राजधानियाँ द्वीपगत चन्द्र-सूर्यों की सदृश नाम वाले अन्य द्वीपों में है।

समुद्रगत चन्द्र-सूर्यों की राजधानियाँ सदृश नाम वाले समुद्रों में है।

देवदीवगाणं चंद-सूराणं चन्द-सूरदीवाणं परूवणं—

७४. **प०—कहि णं भंते ! देवदीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?**

उ०—गोयमा ! देवदीवस्स देवोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तेणेव कमेणं पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ -जाव-रायहाणीओ, सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं देवोदं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं देवदीवगाणं चंदाणं चंदाओ णामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ,

सेसं तं चेव, देवदीव चंदादीवा।

एवं सूराणवि,

देवद्वीपगत चन्द्र-सूर्यों के चन्द्र-द्वीपों का प्ररूपण—

७४. हे भगवन् ! देवद्वीप के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! देवद्वीप से देवोदसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर उसी (पूर्वोक्त) क्रम से पूर्वी वेदिका के अन्तिम भाग से—यावत्—अपने अपने द्वीपों से पूर्व में देव समुद्र में असंख्य हजार योजन आगे जाने पर देवद्वीप के चन्द्रों की चन्द्रा नाम की राजधानियाँ कही गई हैं।

शेष सब पूर्ववत् है; ये देवद्वीप के चन्द्रद्वीप है।

इसी प्रकार सूर्यों के सूर्यद्वीप भी है।

---

१ एवं शेष द्वीपगतानापि चन्द्राणां चन्द्रद्वीपगतात्पूर्वस्माद्वेदिकान्तादनन्तरे समुद्रे द्वादशयोजनसहस्राण्यवगाह्य वक्तयाः।
सूर्याणां सूर्यद्वीपाः स्वस्वद्वीपगतात्पश्चिमान्ताद्वेदिकान्तादनन्तरे समुद्रे।
राजधान्यश्चन्द्राणामात्मीयचन्द्रद्वीपेभ्यः पूर्वदिशि अन्यस्मिन् सदृशनामके सदृशनामके द्वीपे।
सूर्याणामप्यात्मीयसूर्यद्वीपेभ्यःपश्चिमदिशि तस्मिन्नेव सदृशनामकेऽन्यस्मिन् द्वीपे द्वादशयोजनसहस्रेभ्यः परतः।
शेषसमुद्रगतानां तु चन्द्राणां चन्द्रद्वीपाः स्व स्व समुद्रस्य पूर्वस्माद्वेदिकान्तात्पश्चिमदिशि द्वादशयोजनसहस्राण्यवगाह्य।
सूर्याणां तु स्व स्व समुद्रस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्तात्पूर्वदिशि द्वादश योजन सहस्राण्यवगाह्य।
चन्द्राणां राजधान्यः स्व-स्वद्वीपानां पूर्वदिशि अन्यस्मिन सदृशनामके समुद्रे।

णवरं—पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ पच्चत्थिमेणं भाणियव्वा, तंमि चेव समुद्दे ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १६७

विशेष—पश्चिमी वेदिका के अन्तिम भाग से पश्चिम में ही उसी देव समुद्र में उनकी राजधानियां कहनी चाहिए ।

देवोदसमुद्दगाणं चन्द-सूराणं चन्द-सूरदीवाण परूवणं—

७५. प०—कहि णं भंते ! देवोदसमुद्दगाणं चन्दाणं चन्ददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! देवोदगस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ देवोदगं समुद्द पच्चत्थिमे णं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता,

तेणेव कमेणं-जाव-रायहाणीओ सगाणं दीवा णं पच्चत्थिमे णं देवोदगं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं देवोदगाणं चन्दाणं चन्दाओ नामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ ।

सेस तं चेव सव्वं ।

एवं सूराण वि ।

णवरं—देवोदगस्स समुद्दगस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ देवोदगं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ।

एवं णागे, जक्खे, भूते वि चउण्हं दीवसमुद्दाणं ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २ सु. १६७

देवोद समुद्रगत चन्द्र-सूर्यों के चन्द्र-सूर्य द्वीपों का प्ररूपण—

७५. प्र०—हे भगवन् ! देवोदसमुद्रगत चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप कहां कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! देवोद समुद्र की पूर्वी वेदिका के अन्तिम भाग से देवोद समुद्र के पश्चिम भाग में बारह हजार योजन जाने पर हैं ।

उसी (पूर्वोक्त) क्रम से—यावत्—राजधानी पर्यन्त अपने अपने द्वीपों से पश्चिम में देवोद समुद्र में असंख्य हजार योजन जाने पर देवोद समुद्रगत चन्द्रों की चन्द्रा नाम की राजधानियां कही गई हैं ।

शेष सब पूर्ववत् है ।

इसी प्रकार सूर्यों के सूर्यद्वीप भी हैं ।

विशेष—देवोद समुद्र की पश्चिमी वेदिका के अन्तिम भाग से देवोद समुद्र के पूर्वभाग में बारह हजार योजन जाने पर राजधानियां हैं जो अपने अपने द्वीपों के पूर्व में देवोदक समुद्र से असंख्य हजार योजन पर हैं ।

इसी प्रकार नागद्वीप, यक्षद्वीप और भूतद्वीप के चन्द्र-सूर्यों के चन्द्र-सूर्य द्वीप तथा समुद्रगत चन्द्र-सूर्यों के चन्द्र-सूर्यद्वीप तथा राजधानियां हैं ।

सयंभूरमणदीवगाणं चंद-सूराणं चांद-सूरदीवाणं परूवणं—

७६. प०—कहि णं भंते ! सयंभूरमणदीवगाणं चन्दाणं चन्ददीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सयंभूरमणस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ सयंभूरमणोदगं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, सेसं तहेव ।

रायहाणीओ सगाणं सगाणं दीवाणं पुरत्थिमे णं सयंभूरमणोदगं समुद्दं पुरत्थिमे णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं, तं चेव ।

एवं सूराण वि ।

सयंभूरमणस्स दीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ रायहाणीओ सगाणं सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमे णं सयंभूरमणोदं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, सेसं तं चेव ।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १६७

स्वयम्भूरमणद्वीपगत चन्द्र-सूर्यों के चन्द्र-सूर्य द्वीपों का प्ररूपण—

७६. प्र०—हे भगवन् ! स्वयम्भूरमणद्वीपगत चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहां कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! स्वयम्भूरमणद्वीप की पूर्वी वेदिका के अन्तिम भाग से स्वयम्भूरमणोदक समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर हैं । शेष पूर्ववत् है ।

राजधानियां उनके अपने-अपने द्वीप से पूर्व में स्वयम्भूरमणोदक समुद्र में असंख्य हजार योजन जाने पर हैं । शेष सब पूर्ववत् है ।

इसी प्रकार सूर्यों के द्वीप हैं ।

स्वयम्भूरमणद्वीप की पश्चिमी वेदिका के अन्तिम भाग से राजधानियां अपने-अपने द्वीपों के पश्चिम में स्वयम्भूरमणोद समुद्र में असंख्य हजार योजन जाने पर हैं ।

शेष सब पूर्ववत् है ।

सयंभूरमणसमुद्दगाणं चंद-सूराणं चंद-सूरदीवाणं परूवणं—

७७. प०—कहि णं भंते ! सयंभूरमणसमुद्दगाणं चन्दाणं चन्ददीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सयंभूरमणस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ सयंभूरमणसमुद्दं पच्चत्थिमे णं बारस जोयण-सहस्साइं ओगाहित्ता, सेसं तं चेव।

एवं सूराण वि।

सयंभूरमणस्स समुद्दस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ सयंभूरमणोदं समुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता,

रायहाणीओ सगाणं सगाणं दीवाणं पुरत्थिमे णं सयंभू-रमणं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता।

एत्थ णं सयंभूरण—जाव—सूरादेवा।

—जीवा. पडि. ३. उ. २, सु. १६७

स्वयम्भूरमणसमुद्रगत चन्द्र-सूर्यों के चन्द्र-सूर्य द्वीपों का प्ररूपण—

७७. प्र०—हे भगवन् ! स्वयम्भूरमण समुद्रगत चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! स्वयम्भूरमण समुद्र की पूर्वी वेदिका के अन्तिम भाग से स्वयम्भूरमण समुद्र के पश्चिम में बारह हजार योजन जाने पर हैं। शेष सब पूर्ववत् है।

इसी प्रकार सूर्यों के द्वीप हैं।

स्वयम्भूरमण समुद्र की पश्चिमी वेदिका के अन्तिम भाग से स्वयम्भूरमणोद समुद्र के पूर्व में बारह हजार योजन जाने पर है।

राजधानियाँ अपने अपने द्वीपों के पूर्व में स्वयम्भूरमणसमुद्र में असंख्य हजार योजन जाने पर है।

यहाँ स्वयम्भूरमण समुद्र से—यावत्—सूर्यदेव के द्वीप है।



ग्रह वर्णन

अट्ठासी महग्गहा—

७८. तत्थ खलु इमे अट्ठासीई महग्गहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. इंगालए, २. वियालए, ३. लोहियक्खे, ४. सणिच्छरे, ५. आहुणिए, ६. पाहुणिए, ७. कणे, ८. कणए, ९. कणकणए, १०. कणवियाणए, ११. कणसंताणए।

१२. सोमे, १३. सहिए, १४. अस्सासणे, १५. कज्जोवए, १६. कव्वडए, १७. अयकरए, १८. दुन्दुभए, १९. संखे, २०. संखवण्णे, २१. संखवण्णाणे, २२. कंसे।

२३. कंसवण्णे, २४. कंसवण्णाभे, २५. णीले, २६. णीलो-भासे, २७. रुप्पो, २८. रुप्पोभासे, २९. भासे, ३०. भास-रासी, ३१. तिले, ३२. तिलपुप्फवण्णे, ३३. दगे।

३४. दगपंचवण्णे, ३५. काए, ३६. काकंधे, ३७. इंदग्गी, ३८. धुमकेऊ, ३९. हरी, ४०. पिंगले, ४१. बुहे, ४२. सुक्के, ४३. बहस्सई, ४४. राहू।

अट्ठयासी महाग्रह—

७८. इनमें ये अट्ठयासी महाग्रह कहे गये हैं यथा—

१. अंगारक, २. विकालक, ३. लोहिताक्ष, ४. शनैश्चर, ५. आधुनिक, ६. प्राधुनिक, ७. कन, ८. कनक, ९. कनकनक, १०. कनवितानक, ११. कनसंतानक।

१२. सोम, १३. सहित, १४. आश्वासन, १५. कार्योपक, १६. कर्वटक, १७. अजकरक, १८. दुन्दुभक, १९. शंख, २०. शंखवर्ण, २१. शंखवर्णाभ, २२. कंस।

२३. कंसवर्ण, २४. कंसवर्णाभ, २५. नील, २६. नीलाव-भास, २७. रुक्म, २८. रूप्यावभास, २९. भस्म, ३०. भस्मराशी, ३१. तिल, ३२. तिलपुष्पवर्ण, ३३. दक।

३४. दकपंचवर्ण, ३५. काय, ३६. काकंध, ३७. इन्द्राग्नि, ३८. धूमकेतु, ३९. हरी, ४०. पिंगल, ४१. बुध, ४२. शुक्र, ४३. बृहस्पति, ४४. राहु।

४५. अगत्थी, ४६. माणवगे, ४७. कासे, ४८. फासे, ४९. धुरे, ५०. पमुहे, ५१. वियडे, ५२. विसंधी, ५३. णियल्ले, ५४. पयल्ले, ५५. जडियाइल्ले।

५६. अरुणे, ५७. अग्गिलए, ५८. काले, ५९. महाकाले, ६०. सोत्थिए, ६१. सोवत्थिए, ६२. वद्धमाणगे, ६३. पलंबे, ६४. णिच्चालोए, ६५. निच्चुज्जोए, ६६. सयंपभे।

६७. ओभासे, ६८. सेयंकरे, ६९. खेमंकरे, ७०, आभंकरे, ७१. पभंकरे, ७२. अपराजिए, ७३. अरए, ७४. असोगे, ७५. वीयसोगे, ७६. विमले, ७७. वियत्ते।

७८. वितये, ७९. विसाले, ८०. साले, ८१. सुव्वए, ८२. अनियट्टी, ८३. एगजडी, ८४, दुजडी, ८५. करकरिए, ८६. रायग्गले, ८७. पुप्फकेऊ, ८८. भावकेऊ।[1]

—सूरिय. पा. २०, सु. १०६

४५. अगस्ती, ४६. माणवक, ४७. काम, ४८. स्पर्श, ४९. धुर, ५०. प्रमुख, ५१. विकट, ५२. विसंधी, ५३. निकल्प, ५४. प्रकल्प, ५५. जटिलक।

५६. अरुण, ५७. अग्निल, ५८. काल, ५९. महाकाल, ६०. स्वस्तिक, ६१. सौवस्तिक, ६२. वर्धमान, ६३. प्रलंब, ६४. नित्यालोक, ६५. नित्योद्योत, ६६. स्वयंप्रभ।

६७. अवभास, ६८. श्रेयस्कर, ६९. क्षेमंकर, ७०. आभंकर, ७१. प्रभंकर, ७२. अपराजित, ७३. अरज, ७४. अशोक, ७५. वीतशोक, ७६. विमल, ७७. वितत।

७८. वित्रस्त, ७९. विशाल, ८०. शाल, ८१. सुव्रत, ८२. अनिवृत्ति, ८३. एकजटी, ८४. द्विजटी, ८५. करकरिक, ८६. राजर्गल, ८७. पुष्पकेतु, ८८. भावकेतु[2],

अट्ठमहग्गहणाम परूवणं—

७९. अट्ठ महग्गहा पण्णत्ता।

तं जहा—१. चन्दे, २. सूरे, ३. सुक्के, ४. बुहे, ५. वहस्सइ, ६. अंगारे, ७. सणिच्छरे, ८. केऊ।

— ठाणं अ. ८, सु. ६१३

आठ महाग्रहों के नामों का प्ररूपण—

७९. आठ महाग्रह कहे गये हैं,

यथा—(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) शुक्र, (४) बुध, (५) बृहस्पति, (६) मंगल, (७) शनैश्चर, (८) केतु।

छ तारग्गह णाम परूवणं—

८०. छ तारग्गहा पण्णत्ता।

तं जहा—१. सुक्के, २. बुहे, ३. वहस्सइ, ४. अंगारे, ५. सणिच्छरे, ६. केऊ। —ठाणं. अ. ६, सु. ४८१

छ तारक ग्रहों का प्ररूपण—

८०. छः तारक ग्रह कहे गये हैं,

यथा—(१) शुक्र, (२) बुध, (३) बृहस्पति, (४) मंगल, (५) शनिश्चर, (६) केतु।

सुक्क महग्गहस्स वीहीणं परूवणं—

८१. सुक्कस्स णं महग्गहस्स णव वीहीओ पण्णत्ताओ।

शुक्र महाग्रह की वीथियों का प्ररूपण—

८१. शुक्र महाग्रह की नौ वीथियाँ कही गई हैं,

---

१ (क) स्थानांग अ. २, उ. ३, सु. ९५ में जम्बूद्वीप के दो चन्द्र दो सूर्य के ८८ ग्रहों की संख्या दो दो की दी गई है।
(ख) ठाणं २, उ. ३, सु. ९० । (ग) चन्द. पा. २०, सु. १०६ ।
(घ) एगमेगस्स णं चंदिम सूरियस्स अट्ठासीइ-अट्ठासीइ महग्गहा परिवारो पण्णत्तो। —सम. ८८, सु. १
(ङ) अठ्यासी ग्रहों के नामों की संग्रहणी गाथाएं भी सूर्य प्रज्ञप्ति प्राभृत २० सूत्र १०६ में है किन्तु उनमें कुछ नाम भेद और क्रम भेद है।
(छ) (१) विजया, (२) वेजयंती, (३) जयंती, (४) अपराजिआ। सव्वेसिं गहाईणं एयाओ अग्गमहिसीओ। वावत्तरस्सवि महग्गहस्स एयाओ अग्गमहिसीओ वत्तव्वाओ, णवरं भावकेउस्स अग्गमहिसीओ त्ति।
—जम्बु. वक्ख. ७ सु. १६६

२ इन ग्रहों की संख्या अठ्यासी निश्चित है किन्तु प्रत्येक प्रतियों में अठ्यासी से कुछ कम या कुछ अधिक मिलते हैं। पूरे अठ्यासी नाम किसी एक ही प्रति में मिले हैं, तो कुछ नामों में क्रमभंग दिखता है।

अनुवाद में भी इतना वैषम्य है कि किसी अनुवादक ने एक नाम का जो अनुवाद किया है दूसरे अनुवादक ने उसी नाम का दूसरा अनुवाद किया है।

तं जहा—१. हयवीही, २. गयवीही, ३. णागवीही, ४. वसहवीही, ५. गोवीही, ६. उरगवीही, (जरग्गउवीही) ७. अयवीही, ८. मियावीही, ९. वेसाणवीही।

—ठाणं. अ. ९, सु. ६९९

यथा—(१) अश्ववीथी, (२) गजवीथी, (३) नागवीथी, (४) वृषभवीथी, (५) गौवीथी, (६) उरगवीथी (जरद्गववीथी), (७) अजवीथी, (८) मृगवीथी, (९) वेश्वानरवीथी।

सुक्कस्स उदय-अत्थमण परूवणं—

८२. सुक्के णं महग्गहे अवरेणं उदिए समाणे एगूणवीसं णक्खत्ताइं सम चारं चरित्ता अवरेणं अत्थमणं उवागच्छइ।

—सम. १९, सु. ३

शुक्र के उदयास्त का प्ररूपण—

८२. शुक्र महाग्रह पश्चिम दिशा में उदित होकर उन्नीस नक्षत्रों के साथ गति करके गति पश्चिम दिशा में ही अस्त हो जाता है।

राहुस्स दुविहत्तं—

८३. प०—कइविहे णं राहू पण्णत्ते ?

उ०—दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—ता धुव राहु य, पव्वराहु य।

(क) तत्थ णं जे से धुव राहु से णं बहुलपक्खस्स पाडिवए पण्णरसइ भागे णं पण्णरसइ भागं चन्दस्स लेसं आवरेमाणे आवरेमाणे चिट्ठइ, तं जहा—पढमाए पढमं भागं,-जाव-पण्णरसमीए पण्णरसमं भागं।

चरमे समए चन्दे रत्ते भवइ,

अवसेसे समए चन्दे रत्ते य विरत्ते य भवइ,

तमेव सुक्कपक्खे उवदंसेमाणे उवदंसेमाणे चिट्ठइ, तं जहा—पढमाए पढमं भागं-जाव-पण्णरसमीए पण्णरसमं भागं।[1]

चरमे समए चन्दे विरत्ते भवइ।

अवसेसे समए चन्दे रत्ते य विरत्ते य भवइ,

तत्थ णं जे ते पव्वराहू से जहण्णेणं छण्हं मासाणं,

उक्कोसेणं बायालीसाए मासाणं चन्दस्स, अटयालीसाए संवच्छराणं सूरस्स।[2]

—सूरिय. पा. २०, सु. १०३

राहु के दो प्रकार—

८३. प्र०—राहु कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ०—दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–ध्रुवराहु और पर्वराहु,

इनमें जो ध्रुव राहु है वह कृष्ण पक्ष प्रतिपदा से प्रारम्भ करके पन्द्रहवें दिन पर्यन्त अपने पन्द्रहवें भाग से चन्द्र के पन्द्रहवें भाग के प्रकाश को आवृत करता हुआ रहता है, यथा—प्रतिपदा में प्रथम भाग को—यावत्—पन्द्रहवीं में पन्द्रहवें भाग को।

पन्द्रहवें के अन्तिम समय में चन्द्र ध्रुव राहु से पूर्ण आवृत होता है।

शेष समयों में चन्द्र ध्रुव राहु से आवृत और अनावृत रहता है।

वही ध्रुव राहु शुक्लपक्ष में चन्द्र को अनावृत करता रहता है; यथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त प्रतिदिन एक एक भाग को अनावृत करता रहता है।

प्रतिपदा को प्रथम भाग—यावत्—पूर्णिमा को पन्द्रहवाँ भाग अनावृत हो जाता है।

पूर्णिमा के अन्तिम समय में चन्द्र सर्वथा अनावृत हो जाता है, शेष समयों में चन्द्र कुछ आवृत और कुछ अनावृत रहता हैं।

इनमें से जो पर्व राहु है वह जघन्य छः मास बाद चन्द्र या सूर्य को आवृत करता है।

उत्कृष्ट बियालीस मास बाद चन्द्र को आवृत करता है और अड़तालीस संवत्सर बाद सूर्य को आवृत करता है।

राहुस्स णव णामाइं—

८४. ता राहुस्स णं देवस्स णव णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सिंघाडए, २. जडिलए, ३. खरए,
४. खेत्तए, ५. दद्दुरे, ६. मगरे,
७. मच्छे, ८. कच्छभे, ९. कण्हसप्पे।[1]

—सूरिय. पा. २०, सु. १०३

राहु के नौं नाम—

८४. राहु देव के नौ नाम कहे गये हैं, यथा—

(१) सिंघाटक, (२) जटिल, (३) खर,
(४) क्षेत्र, (५) दर्वी, (६) मगर,
(७) मच्छ, (८) कच्छप, (९) कर्णसर्प,

---

१ सम. १९, सु. ३ ।

२ (क) [illegible] २०, सु. १०३ ।

(ख) [illegible] स. १२, उ. ६, सु. ३ ।

(ग) भग. स. १२, उ. ६, सु. ३ ।

(घ) चन्द. पा. २० सु. १०३ ।

राहुस्स विमाणा पंचवण्णा—

८५. तं राहुस्स ण देवस्स विमाणा पंचवण्णा पण्णत्ता, तं तहा—
१. किण्हा, २. नीला, ३. लोहिया, ४. हालिद्दा, ५. सुक्किल्ला,
१. अत्थि कालए राहुविमाणे खंजणवण्णाभे, पण्णत्ते,
२. अत्थि नीलए राहुविमाणे लाउयवण्णाभे, पण्णत्ते,
३. अत्थि लोहिए राहुविमाणे मंजिट्ठवण्णाभे, पण्णत्ते,
४. अत्थि हालिद्दए राहुविमाणे हालिद्दा वण्णाभे पण्णत्ते,
५. अत्थि सुक्किल्लए राहुविमाणे भासरासि वण्णाभे पण्णत्ते,[1]
—सूरिय. पा. २०, सु. १०३

राहु-सरुव परूवणं—

८६. प०—ता कहं ते राहुकम्मे ? आहिए त्ति वएज्जा,
उ०—तत्थ खलु इमाओ दो पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
तत्थेगे एवमाहंसु —
१. अत्थि णं से राहु देवे, जे णं चंदं वा, सूरं वा, गिण्हइ, 'एगे एवमाहंसु'
एगे पुण एवमाहंसु—
२. नत्थि णं से राहु देवे जे णं चंदं वा, सूरं वा गिण्हइ, 'एगे एवमाहंसु' तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—
ता अत्थिणं से राहु देवे, जे णं चंदं वा सूरं वा गिण्हइ, से एवमाहंसु—
ता राहु णं देवे चंदं वा, सूरं वा गेण्हमाणे—
१. बुद्धंतेणं गिण्हित्ता, बुद्धंतेणं मुयइ,
२. बुद्धंतेणं गिण्हित्ता, मुद्धंतेणं मुयइ,
३. मुद्धंतेणं गिण्हित्ता, बुद्धंतेणं मुयइ,
४. मुद्धंतेणं गिण्हित्ता, मुद्धंतेणं मुयइ,
१. वामभुयंते णं गिण्हित्ता वामभुयंते णं मुयइ,
२. वामभुयंते णं गिण्हित्ता, दाहिणभुयंते णं मुयइ,
३. दाहिणभुयंते णं गिण्हित्ता, वामभुयंते णं मुयइ,
४. दाहिणभुयंते णं गिण्हित्ता, दाहिणभुयंते णं मुयइ ।

राहु विमाण के पांच वर्ण—

८५. राहु देव के विमान पांच वर्ण वाले कहे गये हैं, यथा—
(१) कृष्ण, (२) नील, (३) रक्त, (४) पीत, (५) शुक्ल ।

राहु का कृष्ण वर्ण विमान खंजन वर्ण वाला कहा गया है ।

राहु का नील वर्ण विमान तुम्ब वर्ण वाला कहा गया है ।

राहु का लोहित वर्ण विमान मंजिष्ठ वर्ण वाला कहा गया है ।

राहु का हारिद्र वर्ण विमान हारिद्र वर्ण वाला कहा गया है ।

राहु का शुक्ल वर्ण विमान भस्मराशि वर्ण वाला कहा गया है ।

राहु कर्म प्ररूपण—

८६. प्र०—राहु का कर्म (कार्य) क्या है ? कहें ।

उ०—इस सम्बन्ध में दो प्रतिपत्तियां (अन्य मान्यतायें) कही गई हैं, यथा—

इनमें से एक मान्यता वाले इस प्रकार कहते हैं—

(१) राहु देव है, वह चन्द्र और सूर्य को ग्रहण करता है ।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं—

(२) चन्द्र-सूर्य को ग्रहण करने वाला राहु देव नहीं है ।

इनमें से जो ऐसा कहते हैं कि 'राहु' चन्द्र-सूर्य को ग्रहण करने वाला देव है, (उनके कथनानुसार) राहु देव चन्द्र-सूर्य को–

(१) नीचे से ग्रहण करके नीचे से मुक्त करते हैं ।
(२) नीचे से ग्रहण करके ऊपर से मुक्त करते हैं ।
(३) ऊपर से ग्रहण करके नीचे से मुक्त करते हैं ।
(४) ऊपर से ग्रहण करके ऊपर से ही मुक्त करते हैं ।

(१) वामभुजा से ग्रहण करके वामभुजा से मुक्त करते हैं ।
(२) वामभुजा से ग्रहण करके दक्षिणभुजा से मुक्त करते हैं ।
(३) दक्षिणभुजा से ग्रहण करके वामभुजा से मुक्त करते हैं ।
(४) दक्षिण भुजा से ग्रहण करके दक्षिणभुजा से ही मुक्त करते हैं ।

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

ता नत्थि णं से राहू देवे जेणं चंदं वा, सूरं वा गेण्हइ, ते एवमाहंसु—तत्थ णं इमे पण्णरस कसिण-पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—

इनमें से जो ऐसा कहते हैं कि "चन्द्र-सूर्य को ग्रहण करने वाले राहु देव नहीं हैं" (उनकी मान्यता के अनुसार ये पन्द्रह प्रकार के कृष्ण वर्ण वाले पुद्‌गल कहे गये हैं, यथा—

१. सिंघाणए,	२. जडिलए,	३. खरए
४. खतए,	५. अंजणे,	६. खंजणे
७. सीतले,	८. हिमसीतले,	९. केलासे
१०. अरुणाभे,	११. परिज्जए,	१२. णभसूरए
१३. कविलिए,	१४. पिंगलए,	१५. राहू

(१) सिंघाण=लोहे का काठ, (२) जटिल, (३) खंजन, (४) क्षत, (५) अंजन, (६) खंजन (७) शीतल, (८) हिमशीतल, (९) कैलाश, (१०) अरुणाभ, (११) पारिजात, (१२) णभसूर, (१३) कपिल, (१४) पिंगल, (१५) राहू ।

ता जया णं एए पण्णरस कसिणा कसिणा पोग्गला सया चंदस्स वा सूरस्स वा लेसाणुवद्धचारिणो भवंति, तया णं माणुसलोयंसि माणुसा एवं वयंति 'एवं खलु राहु चंदं वा सूरं वा गेण्हइ,

ये पन्द्रह प्रकार के पुद्‌गल जब जब चन्द्र-सूर्य के प्रकाश से अनुवद्ध होकर चलते हैं तब मनुष्य लोक में मनुष्य इस प्रकार कहते हैं कि "राहु ने चन्द्र-सूर्य को ग्रहण कर लिया" ।

एवं एवं ता जया णं एए पण्णरस कसिणा कसिणा पोग्गला णो सया चंदस्स वा सूरस्स वा लेसाणुवद्ध-चारिणो भवंति, णो खलु तया माणुसलोयंसि माणुसा एवं वयंति, 'एवं खलु राहु चंदं वा सूरं वा गेण्हइ' ते एवमाहंसु,

ये पन्द्रह प्रकार के कृष्ण वर्ण वाले पुद्‌गल जब जब चन्द्र-सूर्य के प्रकाश से अनुवद्ध होकर नहीं चलते हैं तब तब मनुष्य लोक में मनुष्य ऐसा नहीं कहते हैं कि "राहु ने चन्द्र-सूर्य को ग्रहण कर लिया ।

वयं पुण एवं वयामो—

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

ता राहू णं देवे महिड्ढीए महज्जुइए महवले महायसे महासोक्खे महाणुभावे, वरवत्थधरे, वरमल्लधरे वराभरणधारी ।[1]

— सूरिय. पा. २०, सु. १०३

राहु देव महर्धिक है, महा द्युति वाला है, महा बल वाला है, महायश वाला है, अत्यन्त सुखी है, अति आदरणीय है, श्रेष्ठ वस्त्र धारण करने वाला है, श्रेष्ठ मालाएँ धारण करने वाला है, श्रेष्ठ आभरण करने वाला है ।

चंदोवरागस्स सूरोवरागस्स य परूवणं—

चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण का प्ररूपण—

८७. १. ता जया णं राहूदेवे आगच्छमाणे वा, गच्छमाणे वा, विउव्वेमाणे वा, परियारमाणे वा, चंदस्स वा, सूरस्स वा लेस्सं पुरत्थिमेणं आवरित्ता पच्चत्थिमे णं वीईवयइ, तया णं पुरत्थिमेणं चन्दे वा सूरे वा उवदंसेइ पच्चत्थिमेणं राहू ।

८७. (१) राहु देव आता हुआ, जाता हुआ विकुर्वणा करता हुआ अथवा परिचारणा करता हुआ जब सूर्य के प्रकाश को पूर्व से आवृत करके पश्चिम में चला जाता है तब चन्द्र या सूर्य पूर्व में दिखाई देता है और राहु पश्चिम में दिखाई देता है ।

२. ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा, गच्छमाणे वा, विउव्वेमाणे वा, परियारेमाणे वा, चन्दस्स वा, सूरस्स वा, लेसं दाहिणेणं आवरित्ता, उत्तरेणं वीईवयइ, तया णं दाहिणेणं चन्दे वा, सूरे वा, उवदंसेइ, उत्तरेणं राहू ।

(२) राहु देव आता हुआ, जाता हुआ विकुर्वणा करता हुआ परिचारणा करता हुआ जब चन्द्र या सूर्य के प्रकाश को दक्षिण में आवृत करके उत्तर में चला जाता है तब दक्षिण में चन्द्र या सूर्य दिखाई देता है और उत्तर में राहु दिखाई देता है ।

एएणं अभिलावे णं पच्चत्थिमे णं आवरित्ता पुरत्थिमे णं वीईवयइ, उत्तरेणं आवरित्ता दाहिणे णं वीईवयइ ।

इस प्रकार के अभिलाप से—चन्द्र या सूर्य को पश्चिम में आवृत करके राहु पूर्व में चला जाता है उत्तर में आवृत करके दक्षिण में चला जाता है, ऐसा कहें ।

३. ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा, गच्छमाणे वा, विउव्वेमाणे वा, परियारेमाणे वा, चन्दस्स वा, सूरस्स

(३) राहु देव आता हुआ, जाता हुआ विकुर्वणा करता हुआ या परिचारणा करता हुआ जब चन्द्र या सूर्य के प्रकाश को

१ (क) भग. स. १२, उ. ६, सु. २ ।

(ख) चन्द्र. पा. २०, उ. सु. १०३ ।

वा लेसं दाहिणपुरत्थिमे णं आवरित्ता उत्तरपच्चत्थिमेणं वीईवयइ, तया णं दाहिणपुरत्थिमेणं चन्दे वा, सूरे वा, उवदंसेइ, उत्तरपच्चत्थिमेणं राहू।

४. ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा, गच्छमाणे वा, विउव्वेमाणे वा, परियारेमाणे वा चन्दस्स वा सूरस्स वा लेसं दाहिणपच्चत्थिमे णं आवरित्ता, उत्तरपुरत्थिमे णं वीईवयइ, तया णं दाहिणपच्चत्थिमे णं चन्दे वा, सूरे वा उवदंसेइ उत्तरपुरत्थिमे णं राहू।

एएणं अभिलावेणं उत्तर-पच्चत्थिमे णं आवरेत्ता दाहिणपुरत्थिमे णं वीईवयइ, उत्तरपुरत्थिमे णं आवरेत्ता दाहिणपच्चत्थिमे णं वीईवयइ,

५. ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा, विउव्वेमाणे वा, परियारेमाणे वा, चंदस्स वा, सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता वीईवयइ तया णं माणुसलोयंसि मणुस्सा एवं वयंति, 'राहुणा चंदे वा, सूरे वा गहिए,

६. ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा, गच्छमाणे वा विउव्वेमाणे वा, परियारेमाणे वा, चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता पासेण वीईवयइ, तया णं माणुसलोयंसि मणुस्सा एवं वयंति 'चंदेन वा, सूरेण वा राहुस्स कुच्छी-भिण्णा,

७. ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा, गच्छमाणे वा, विउव्वेमाणे वा, परियारेमाणे वा चंदस्स वा, सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता पच्चोसक्कइ तया णं माणुसलोयंसि मणुस्सा एवं वयंति 'राहुणा चंदे वा, सूरे वा वंते',

८. ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा, गच्छमाणे वा, विउव्वेमाणे वा, परियारेमाणे वा, चंदस्स वा, सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता मज्झंमज्झेणं वीईवयइ, तया णं माणुस-लोयंसि मणुस्सा एवं वयंति 'राहुणा चंदे वा, सूरे वा विइचरिए',

९. ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा, गच्छमाणे वा विउव्वेमाणे वा, परियारेमाणे वा चंदस्स वा, सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता अहे सपक्खिं सपडिदिसिं चिट्ठइ, तया णं माणुसलोयंसि मणुस्सा एवं वयंति 'राहुणा चंदे वा सूरे वा घत्थे'' —सूरिय. पा. २०, सु. १०३

दक्षिण-पूर्व में आवृत करके उत्तर-पूर्व में चला जाता है तब दक्षिण पूर्व में चन्द्र या सूर्य दिखाई देता है और उत्तर-पश्चिम में राहु दिखाई देता है।

(४) राहु देव आता हुआ जाता हुआ विकुर्वणा करता हुआ या परिचारणा करता हुआ जब चन्द्र या सूर्य के प्रकाश को दक्षिण-पश्चिम में आवृत करके उत्तर-पश्चिम में चला जाता है तब दक्षिण-पश्चिम में चन्द्र या सूर्य दिखाई देता है और उत्तर-पूर्व में राहु दिखाई देता है।

इस प्रकार के अभिलाप से—चन्द्र या सूर्य को उत्तर दिशा में आवृत करके राहु दक्षिण-पूर्व में चला जाता है, उत्तर-पूर्व में आवृत करके दक्षिण-पश्चिम में चला जाता है, ऐसा कहें।

(५) राहु देव आता हुआ, जाता हुआ विकुर्वणा करता हुआ या परिचारणा करता हुआ जब चन्द्र या सूर्य के प्रकाश को आवृत करके चला जाता है तब मनुष्य लोक में मनुष्य ऐसा कहते हैं "राहु ने चन्द्र या सूर्य को ग्रहण किया है।"

(६) राहु देव आता हुआ, जाता हुआ विकुर्वणा करता हुआ या परिचारणा करता हुआ जब चन्द्र या सूर्य के प्रकाश को आवृत करके पार्श्व भाग से निकल जाता है तब मनुष्य लोक में मनुष्य इस प्रकार कहते हैं—"चन्द्र या सूर्य ने राहु की कुक्षी को भिन्न कर दिया है।"

(७) राहु देव आता हुआ, जाता हुआ विकुर्वणा करता हुआ या परिचारणा करता हुआ जब चन्द्र या सूर्य के प्रकाश को आवृत करके पीछे हटता है तब मनुष्य लोक में मनुष्य इस प्रकार कहते हैं—"राहु ने चन्द्र या सूर्य का वमन कर दिया है।"

(८) राहु देव आता हुआ, जाता हुआ विकुर्वणा करता हुआ या परिचारणा करता हुआ जब चन्द्र या सूर्य के प्रकाश को आवृत करके मध्य भाग में से जाता है तब मनुष्य लोक में मनुष्य इस प्रकार कहते हैं—"राहु ने चन्द्र या सूर्य को विदीर्ण किया है।"

(९) राहु देव आता हुआ, जाता हुआ विकुर्वणा करता हुआ या परिचारणा करता हुआ जब चन्द्र या सूर्य के प्रकाश को आवृत करके नीचे सभी दिशा-विदिशाओं में रहता है तब मनुष्यलोक में मनुष्य इस प्रकार कहते हैं—"राहु ने चन्द्र या सूर्य को ग्रस लिया है।"

● ●

नक्षत्र वर्णन

णक्खत्त णामाइं—

८८. प०—कइ णं भंते ! नक्खत्ता पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अट्ठावीसं णक्खत्ता पण्णत्ता,

१. अभिई, २. सवणो, ३. धणिट्ठा, ४. सयभिसया, ५. पुव्वभद्दवया, ६. उत्तरभद्दवया, ७. रेवई, ८. अस्सिणी, ९. भरणी, १०. कत्तिआ[1], ११. रोहिणी, १२. मिअसिर, १३. अद्दा, १४. पुणव्वसु, १५. पूसो, १६. अस्सेसा, १७. मघा, १८. पुव्वफग्गुणी, १९. उत्तरफग्गुणी, २०. हत्थो, २१. चित्ता, २२. साई, २३. विसाहा, २४. अणुराहा, २५. जेट्ठा, २६. मूलं, २७. पुव्वसाढा, २८. उत्तरासाढा,

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १५५

नक्षत्रों के नाम—

८८. प्र०—भगवन् ! नक्षत्र कितने कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! अट्ठावीस नक्षत्र कहे गये हैं।

(१) अभिजित्, (२) श्रवण, (३) धनिष्ठा, (४) शतभिषक्, (५) पूर्वाभाद्रपद, (६) उत्तराभाद्रपद, (७) रेवति, (८) अश्विनी, (९) भरणी, (१०) कृत्तिका, (१२) मृगशीर्ष, (१३) आर्द्रा, (१४) पुनर्वसु, (१५) पुष्य, (१६) अश्लेषा, (१७) मघा, (१८) पूर्वाफाल्गुनी, (१९) उत्तराफाल्गुनी, (२०) हस्त, (२१) चित्रा, (२२) स्वाति, (२३) विशाखा, (२४) अनुराधा, (२५) ज्येष्ठा, (२६) मूल, (२७) पूर्वाषाढा, (२८) उत्तराषाढा।

णक्खत्ताणं आवलिया-णिवाय जोगो य—

८९. प०—ता कहं ते जोगे ति वत्थुस्स आवलिया-णिवाए ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता सव्वे वि णं णक्खत्ता, कत्तियादिया भरणि-पज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

एगे पुण एवमाहंसु—

२. ता सव्वे वि णं णक्खत्ता, महादिया अस्सेस-पज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

एगे पुण एवमाहंसु—

३. ता सव्वे वि णं णक्खत्ता, धणिट्ठादिया सवण-पज्जवसाणा पण्णत्ता; एगे एवमाहंसु।

एगे पुण एवमाहंसु—

४. ता सव्वे वि णं णक्खत्ता, अस्सिणी-आदिया रेवई पज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

एगे पुण एवमाहंसु—

५. ता सव्वे वि णं णक्खत्ता, भरणी आदिया अस्सिणी पज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

नक्षत्रों का आवलिकानिपात और योग—

८९. प्र०—(चन्द्र-सूर्य के साथ) नक्षत्र समुदाय के योग का पंक्तिरूप क्रम कैसा है ? कहें—

उ०—इस सम्बन्ध में पाँच प्रतिपत्तियाँ (मान्यताएँ) कही गई है, यथा—

उनमें से एक मान्यता वाले इस प्रकार कहते हैं—

(१) कृत्तिका से भरणीपर्यन्त सभी नक्षत्रों का (चन्द्र-सूर्य के साथ) योग पंक्तिरूप क्रम है।

एक (मान्यता वाले) फिर इस प्रकार कहते हैं—

(२) मघा से अश्लेषा पर्यन्त सभी नक्षत्रों का (चन्द्र-सूर्य के साथ) योग पंक्तिरूप क्रम है।

एक (मान्यता वाले) फिर इस प्रकार कहते हैं—

(३) धनिष्ठा से श्रवण पर्यन्त सभी नक्षत्रों का (चन्द्र-सूर्य के साथ) योग पंक्तिरूप क्रम है।

एक (मान्यता वाले) फिर इस प्रकार कहते हैं—

(४) अश्विनी से रेवती पर्यन्त सभी नक्षत्रों का (चन्द्र-सूर्य के साथ) योग पंक्तिरूप क्रम है।

एक (मान्यता वाले) फिर इस प्रकार कहते हैं—

(५) भरणी से अश्विनी पर्यन्त सभी नक्षत्रों का (चन्द्र-सूर्य के साथ) योग पंक्तिरूप क्रम है।

---

१ (क) ठाणं. अ. २, उ. ३, सु. ९५। (ख) अणु. सु. २८५, गाथा. ८६-८८।
ठाणांग में और अनुयोगद्वार में कृत्तिका से भरणी पर्यन्त नक्षत्र गणना का क्रम है।

वयं पुण एवं वयामो—

ता सव्वे वि णं णक्खत्ता, अभिई आदिया, उत्तरासाढा पज्जवसाणा, पण्णत्ता तं जहा-अभिई सवणो जाव उत्तरासाढा,[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु.१, सु. ३२

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

अभिजित् से उत्तराषाढा पर्यन्त सभी नक्षत्रों का (चन्द्र-सूर्य के साथ) योग पंक्तिरूप क्रम है, यथा—अभिजित् श्रवण—**यावत्**—उत्तराषाढा।

जंबुद्दीवे ववहारजोग्गा णक्खत्ता—

९०. जंबुद्दीवे दीवे अभिइवज्जेहिं सत्तावीसाए णक्खत्तेहिं संववहारे वट्टति, —सम. २७, सु. २

जम्बूद्वीप में व्यवहार योग्य नक्षत्र—

९०. जम्बूद्वीप द्वीप में अभिजित् को छोड़कर सत्तावीस नक्षत्रों से व्यवहार होता है।

णक्खत्ताणं गोत्ता—

९१. प०—ता कहं ते गोत्ता ? आहिए त्ति वएज्जा,

१. प०—ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ता णं अभियी णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—ता मोग्गलायणसगोत्ते पण्णत्ते,

२. प०—सवणे णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—संखायणसगोत्ते पण्णत्ते,

३. प०—धणिट्ठा णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—अग्गितावसगोत्ते पण्णत्ते,

४. प०—सतभिसया णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—कण्णलोयणस गोत्ते पण्णत्ते,

५. प०—पुव्वा पोट्ठवया णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—जोउकण्णियस गोत्ते पण्णत्ते,

६. प०—उत्तरा पोट्ठवया णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—धनंजयस गोत्ते पण्णत्ते,

७. प०—रेवई णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—पुस्सायणस गोत्ते पण्णत्ते,

८. प०—अस्सिणी णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—अस्सादणस गोत्ते पण्णत्ते,

९. प०—भरणी णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—भग्गवेसस गोत्ते पण्णत्ते,

१०. प०—कत्तिया णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—अग्गिवेसस गोत्ते पण्णत्ते,

नक्षत्रों के गोत्र—

९१. नक्षत्रों के गोत्र कौन-कौन से हैं ? कहें,

(१) प्र०—इन अट्ठावीस नक्षत्रो में से अभिजित् नक्षत्र का गोत्र कौनसा कहा गया है ?

उ०—मौद्गलायनस गौत्र कहा गया है।

(२) प्र०—श्रवण नक्षत्र का गौत्र कौनसा कहा गया है ?

उ०—संखायनस गौत्र कहा गया है।

(३) प्र०—धनिष्ठा नक्षत्र का गौत्र कौनसा कहा गया है ?

उ०—अग्नितापस गौत्र कहा गया है।

(४) प्र०—शतभिषक् नक्षत्र का गौत्र कौनसा कहा गया है ?

उ०—कर्णलोचनस गौत्र कहा गया है।

(५) प्र०—पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र का गौत्र कौनसा कहा गया है ?

उ०—जातुकर्णिस गौत्र कहा गया है।

(६) प्र०—उत्तराभाद्रपद नक्षत्र का गौत्र कौनसा कहा गया है ?

उ०—धनंजयस गोत्र कहा गया है।

(७) प्र०—रेवति नक्षत्र का कौनसा गौत्र कहा गया है ?

उ०—पुष्यायनस गौत्र कहा गया हैं।

(७) प्र०—अश्विनी नक्षत्र का कौनसा गौत्र कहा गया है ?

उ०—आश्वायनस गौत्र कहा गया है।

(९) प्र०—भरणी नक्षत्र का कौनसा गौत्र कहा गया है ?

उ०—भार्गवेसश गौत्र कहा गया है।

(१०) प्र०—कृत्तिका नक्षत्र का कौनसा गौत्र कहा गया है ?

उ०—अग्निवेसश गौत्र कहा गया है।

---

१ (क) जम्बुद्दीवे दीवे अभिइवज्जेहिं सत्तावीसाए णक्खत्तेहिं संववहारे वट्टति। —सम. २७, सु. २
(ख) चन्द. पा. १०, सु. ३२। (ग) जम्बु. वक्ख. ७, सु. १५५।

११. प०—रोहिणी णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—गोतमस गोत्ते पण्णत्ते,

१२. प०—संठाणा णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—भारद्दायस गोत्ते पण्णत्ते,

१३. प०—अद्दा णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—लोहिच्चायणस गोत्ते पण्णत्ते,

१४. प०—पुणव्वसु णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—वासिट्ठस गोत्ते पण्णत्ते,

१५. प०—पुस्से णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—उज्जायणस गोत्ते पण्णत्ते,

१६. प०—अस्सेसा णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—मंडव्वायणस गोत्ते पण्णत्ते,

१७. प०—मघा णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—पिंगायणस गोत्ते पण्णत्ते,

१८. प०—पुव्वाफग्गुणी णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—गोवल्लायणस गोत्ते पण्णत्ते,

१९. प०—उत्तराफग्गुणी णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—कासवगोत्ते पण्णत्ते,

२०. प०—हत्थे णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—कोसिय गोत्ते पण्णत्ते,

२१. प०—चित्ता णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—दब्भियाणस गोत्ते पण्णत्ते,

२२. प०—साई णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—चामरच्छ गोत्ते पण्णत्ते,

२३. प०—विसाहा णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—सुंगायणस गोत्ते पण्णत्ते,

२४. प०—अणुराहा णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—गोलव्वायणस गोत्ते पण्णत्ते,

२५. प०—जेट्ठा णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—तिगिच्छायणस गोत्ते पण्णत्ते,

२६. प०—मूले णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—कच्चायणसगोत्ते पण्णत्ते,

२७. प०—पुव्वासाढा णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?
उ०—वज्झियायणस गोत्ते पण्णत्ते,

(११) प्र०—रोहिणी नक्षत्र का कौनसा गौत्र कहा गया है ?
उ०—गौतमस गौत्र कहा गया है।

(१२) प्र०—मृगशिर नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—भारद्वाजस गोत्र कहा गया है।

(१३) प्र०—आर्द्रा नक्षत्र का कौनसा गौत्र कहा गया है ?
उ०—लोहित्यायनस गोत्र कहा गया है।

(१४) प्र०—पुनर्वसू नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—वासिष्ठस गोत्र कहा गया है।

(१५) प्र०—पुष्य नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—उद्यायनस गोत्र कहा गया है।

(१६) प्र०—अश्लेषा नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—मांडव्यायनस गोत्र कहा गया है।

(१७) प्र०—मघा नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—पिंगायनस गोत्र कहा गया है।

(१८) प्र०—पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—गोभिल्लायनस गोत्र कहा गया है।

(१९) प्र०—उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—काश्यप गोत्र कहा गया है।

(२०) प्र०—हस्त नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—कौशिक गोत्र कहा गया है।

(२१) प्र०—चित्रा नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—दार्भिकानस गोत्र कहा गया है।

(२२) प्र०—स्वाति नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—चामरक्ष गोत्र कहा गया है।

(२३) प्र०—विशाखा नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—सुंगायनस गोत्र कहा गया है।

(२४) प्र०—अनुराधा नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया हैं ?
उ०—गोलव्यायनस गोत्र कहा गया है।

(२५) प्र०—ज्येष्ठा नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—चिकित्सायनस गोत्र कहा गया है।

(२६) प्र०—मूल नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है।
उ०—कात्यायनस गोत्र कहा गया है।

(२७) प्र०—पूर्वाषाढा नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?
उ०—वात्स्यायनस गोत्र कहा गया है।

२८. प०—उत्तरासाढा णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—वग्घावच्चस गोत्ते पण्णत्ते,[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. १६, सू. ५०

(२८) प्र०—उत्तराषाढा नक्षत्र का कौनसा गोत्र कहा गया है ?

उ०—व्याघ्रायनस गोत्र कहा गया है।

णक्खत्ताणं देवया—

नक्षत्रों के देवता—

६२. १. प्र०—ता कहं ते णक्खत्ताणं देवया ? आहिए त्ति वएज्जा,

ता एएणं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभीई णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?

उ०—बंभदेवयाए पण्णत्ते,

६२. (१) प्र०—नक्षत्रों के देवता कौनसे हैं ? कहें।

इन अट्ठावीस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?

उ०—ब्रह्मा देवता कहा गया है।

---

१ (क) प०—एएसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिइ णक्खत्ते किं गोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! मोग्गलायणस गोत्ते पण्णत्ते,

गाहाओ—(१) मोग्गलायण. (२) संखायणे अ तह, (३) अग्गभाव, (४) कसिणल्ले ।

ततो अ, (५) जाउकण्णे, (६) धणंजए चेव बोद्धव्वे ॥१॥

(७) पुस्सायणे य, ८. अस्सायणे य, (९) भगावेसे य, (१०) अग्गिवेसे य ।

(११) गोयम, (१२) भारद्दाए, (१३) लोहिच्चे चेव, (१४) वासिट्ठे ॥२॥

(१५) ओमज्जायण, (१६) मंडव्वायणे य, (१७) पिंगायणे य, (१८) गोवल्ले ।

(१९) कासव, (२०) कोसिय, (२१) दब्भाय, (२२) चामरच्छाय, (२३) सुंगा य ॥३॥

(२४) गोवल्लायण, (१५) तेगिच्छायणे अ, (२६) कच्चायणे हवइ मूले ।

(२७) ततो अ वज्झियायण, (२८) वग्घावच्चे य गोत्ताइं ॥४॥ —जम्बु. वक्ख. ७, सु. १५९

(ख) चन्द्र. पा. १० सु. ५० ।

(ग)

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, एवं सूर्यप्रज्ञप्ति में नक्षत्र नाम	नक्षत्र गोत्र	वृहद् देवज्ञरंजन ग्रन्थ में संहिता प्रदीप से उद्धृत,	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, एवं सूर्यप्रज्ञप्ति में नक्षत्र नाम	नक्षत्र गोत्र	वृहद् देवज्ञरंजन ग्रन्थ में संहिता प्रदीप से उद्धृत
१ अभिजित्	मौद्गलयायन		१५ पुष्य	अवमज्जायन	
२ श्रवण	सांखयायन	अगस्त्य	१६ अश्लेषा	माण्डव्यायन	आग्रायणी
३ धनिष्ठा	अग्रभाव	संख्यानक	१७ मघा	पिंगायन	
४ शतभिषक्	कण्णिलायन	कात्यायन	१८ पूर्वाफाल्गुनी	गोवल्लायन	परासर
५ पूर्वाभाद्रपद	जातुकर्ण	हारित	१९ उत्तराफाल्गुनी	काश्यप	खादसत्य
६ उत्तराभाद्रपद	धनंजय	काश्यप	२० हस्त	कौशिक	कुण्डिनी
७ रेवती	पुष्यायन	गर्ग	२१ चित्रा	दार्भायन	अग्निगोत्र
८ अश्विनी	आश्वायन	आश्विन	२२ स्वाति	चामरच्छायन	मांडव
९ भरणी	भार्गवेश	मोद्गल्यायन	२३ विशाखा	शुंगायन	कौशिकी
१० कृत्तिका	अग्निवेश्य	अग्निवेश्य	२४ अनुराधा	गोलव्यायन	पाक्क
११ रोहिणी	गौतम	गोतम	२५ ज्येष्ठा	चिकित्सायन	काश्यप
१२ मृगशिरा	भारद्वाज	कात्यायन	२६ मूल	कात्यायन	कौशिकी
१३ आर्द्रा	लौहित्यायन	शौदी	२७ पूर्वाषाढा	वाभ्रव्यायन	दाक्षायण
१४ पुनर्वसु	वाशिष्ठ	वात्स्यायन	२८ उत्तराषाढा	व्याघ्रापत्य	गार्गी

२. प०—ता सवणे णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—विण्हुदेवयाए पण्णत्ते,

(२) प्र०—श्रवण नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—विष्णु देवता कहा गया है ।

३. प०—ता धणिट्ठा णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—वसुदेवयाए पण्णत्ते,

(३) प्र०—धनिष्ठा नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—वसु देवता कहा गया है ?

४. प०—ता सयभिसया णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—वरुणदेवयाए पण्णत्ते,

(४) प्र०—शत्भिषक् नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—वरुण देवता कहा गया है ।

५. प०—ता पुव्वपोट्ठवया णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—अजदेवयाए पण्णत्ते,

(५) प्र०—पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—अज देवता कहा गया है ।

६. प०—ता उत्तरापोट्ठवया णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—अहिवड्ढि[1] देवयाए पण्णत्ते,

(६) प्र०—उत्तराभाद्रपद नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—अभिवृद्धि देवता कहा गया है ।

७. प०—ता रेवई णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—पुस्सदेवयाए[2] पण्णत्ते,

(७) प्र०—रेवती नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—पूष देवता कहा गया है ।

८. प०—ता अस्सिणी णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—अस्सदेवयाए[3] पण्णत्ते,

(८) प्र०—अश्विनी नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—अश्व देवता कहा गया है ।

९. प०—ता भरिणी णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—जमदेवयाए पण्णत्ते,

(९) प्र०—भरणी नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—यम देवता कहा गया है ।

१०. प०—ता कत्तिया णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—अग्गिदेवयाए पण्णत्ते,[4]

(१०) प्र०—कृतिका नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—अग्नि देवता कहा गया है ।

११. प०—ता रोहिणी णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—पयावइदेवयाए[5] पण्णत्ते,

(११) प्र०—रोहिणी नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—प्रजापति देवता कहा गया है ।

१२. प०—ता संठाणा णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—सोमदेवयाए[6] पण्णत्ते,

(१२) प्र०—संठाणा = मृगशिरा नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—सोम देवता कहा गया है ।

१३. प०—ता अद्दा णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—रुद्ददेवयाए[7] पण्णत्ते,

(१३) प्र०—आर्द्रा नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—रुद्र देवता कहा गया है ।

---

१ अभिवृद्धि, अन्यत्र-अहिर्बुध्न, इति ।
२ पूणा-पूपानामको देवो, नैतु सूर्य पर्यायस्तेन रेवत्येव पौष्णमिति प्रसिद्धं ।
३ अश्व नामको देव,
४ (क) ठाणं, अ. २ उ. ३ सु, ९५ । (ख) अणु. सु. २८६, गा. ८९-९०,
स्थानांग और अनुयोगद्वार में अग्नि से यम पर्यंत नक्षत्र देवता का गणना क्रम है ।
५ प्रजापतिरिति ब्रह्म नामको देवः, अयं च ब्रह्मणः पर्यायान् सहत, तेन ब्राह्ममित्यादि प्रसिद्धम ।
६ सोमः—चन्द्रस्तेन सौम्यं चान्द्रमसमित्यादि प्रसिद्धम् ।
७ रुद्र—शिवस्तेन रौद्रा कालिनीति प्रसिद्धम् ।

१४. प०—ता पुणव्वसू णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—अदितिदेवयाए पण्णत्ते,

(१४) प्र०—पुनर्वसु नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—अदिति देवता कहा गया है।

१५. प०—ता पुस्से णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—बहस्सइ देवयाए पण्णत्ते,

(१५) प्र०—पुष्य नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—बृहस्पति देवता कहा गया है।

१६. ता अस्सेसा णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—सप्पदेवयाए पण्णत्ते,

(१६) प्र०—अश्लेषा नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—सर्प देवता कहा गया है।

१७. प०—ता महा णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—पिति देवयाए[1] पण्णत्ते,

(१७) प्र०—मघा नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—पितृ देवता कहा गया है।

१८. प०—ता पुव्वाफग्गुणी णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—भगदेवयाए पण्णत्ते,

(१८) प्र०—पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—भग देवता कहा गया है।

१९. प०—ता उत्तराफग्गुणी णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—अज्जम[2] देवयाए पण्णत्ते,

(१९) प्र०—उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है।
उ०—अर्यमा देवता कहा गया है।

२०. प०—ता हत्थे णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—सुविया देवयाए[3] पण्णत्ते,

(२०) प्र०—हस्त नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—सविता देवता कहा गया है।

२१. प०—ता चित्ता णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—तट्ठदेवयाए[4] पण्णत्ते,

(२१) प्र०—चित्रा नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—त्वष्टा देवता कहा गया है।

२२. प०—ता साती णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—वाउदेवयाए पण्णत्ते,

(२२) प्र०—स्वाती नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—वायु देवता कहा गया है।

२३. प०—ता विसाहा णक्खत्ते[5] किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—इंदग्गीदेवयाए पण्णत्ते,

(२३) प्र०—विशाखा नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—इन्द्राग्नि देवता कहा गया है।

२४. प०—ता अणुराहा णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—मित्तदेवयाए पण्णत्ते,

(२४) प्र०—अनुराधा नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—मित्र देवता कहा गया है।

२५. प०—ता जेट्ठा णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—इंद देवयाए पण्णत्ते,

(२५) प्र०—ज्येष्ठा नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—इन्द्र देवता कहा गया है।

२६. प०—ता मूले णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?
उ०—णिरइदेवयाए[6] पण्णत्ते,

(२६) प्र०—मूल नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?
उ०—नैर्ऋत देवता कहा गया है।

---

१ पितृनामा देव।
३ सविता-सूर्य।
५ (क) विशाखा-द्विदैवतमिति प्रसिद्धिम्।
६ नैर्ऋतः—राक्षसस्तेनमूल, आस्रप इति प्रसिद्धम्।

२ अर्यमा-अर्यम नामको देव विशेषः।
४ त्वष्टा-त्वष्ट नामको देवस्तेन त्वाष्ट्री-चित्रा इति प्रसिद्धम्।

२७. प०—ता पुव्वासाढा णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?

उ०—आउदेवयाए[1] पण्णत्ते,

२८. प०—ता उत्तरासाढा णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?

उ०—विस्सदेवयाए पण्णत्ते,[2]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. १२, सु. ४६

(२७) प्र०—पूर्वाषाढा नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?

उ०—आप=जल देवता कहा गया है।

(२८) प्र०—उत्तराषाढा नक्षत्र का कौनसा देवता कहा गया है ?

उ०—विश्व देवता कहा गया है।

णक्खत्ताणं संठाणं—

९३. ता कहं ते णक्खत्त संठिई ? आहिए त्ति वएज्जा,

१. प०—ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभीयी णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—गोसीसावलि संठिए पण्णत्ते,

२. प०—ता सवणे णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—काहार संठिए पण्णत्ते,

नक्षत्रों के संस्थान—

९३. नक्षत्रों के संस्थान किस प्रकार के हैं ? कहें।

(१) प्र०—इन अठाईस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'गो शृंग' जैसा संस्थान कहा गया है।

(२) प्र०—श्रवण नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'कावड' जैसा संस्थान कहा गया है।

---

७ आपो—जलनामा देवस्तेन पूर्वाषाढा तोयमिति प्रसिद्धम्।

४ (क) विश्वेदेवास्त्रयोदश।

(ख) प०—एएसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभीई णक्खत्ते किं देवयाए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! वम्हदेवया पण्णत्ता,

एएणं कमेणं णेयव्वा अणुपरिवाडी य इमाओ देवयाओ,

गाहाओ—(१) वम्हा, (२) विण्हु, (३) वसू, (४) वरुणे, (५) अय, (६) अभिवद्धी, (७) पूसे, (८) आसे, (९) जमे,
(१०) अग्गी, (११) पयावई, (१२) सोमे, (१३) रुद्दे, (१४) अदिइ ॥ १ ॥
(१५) वहस्सई, (१६) सप्पे, (१७) पिऊ, (१८) भगे, (१९) अज्जम, (२०) सविआ, (२१) तट्ठा,
(२२) वाउ, (२३) इंदग्गी, (२४) मित्तो, (२५) इंद, (२६) निरई, (२७) आउ, (२८) विस्सा य ॥ २ ॥

एवं णक्खत्ताणं एगा परिवाडी णेअव्वा, जाव—

प०—उत्तरासाढा णक्खत्ते णं भंते किं देवयाए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! विस्सदेवया पण्णत्ता। —जम्बु० वक्ख० ७. सु० १५७।

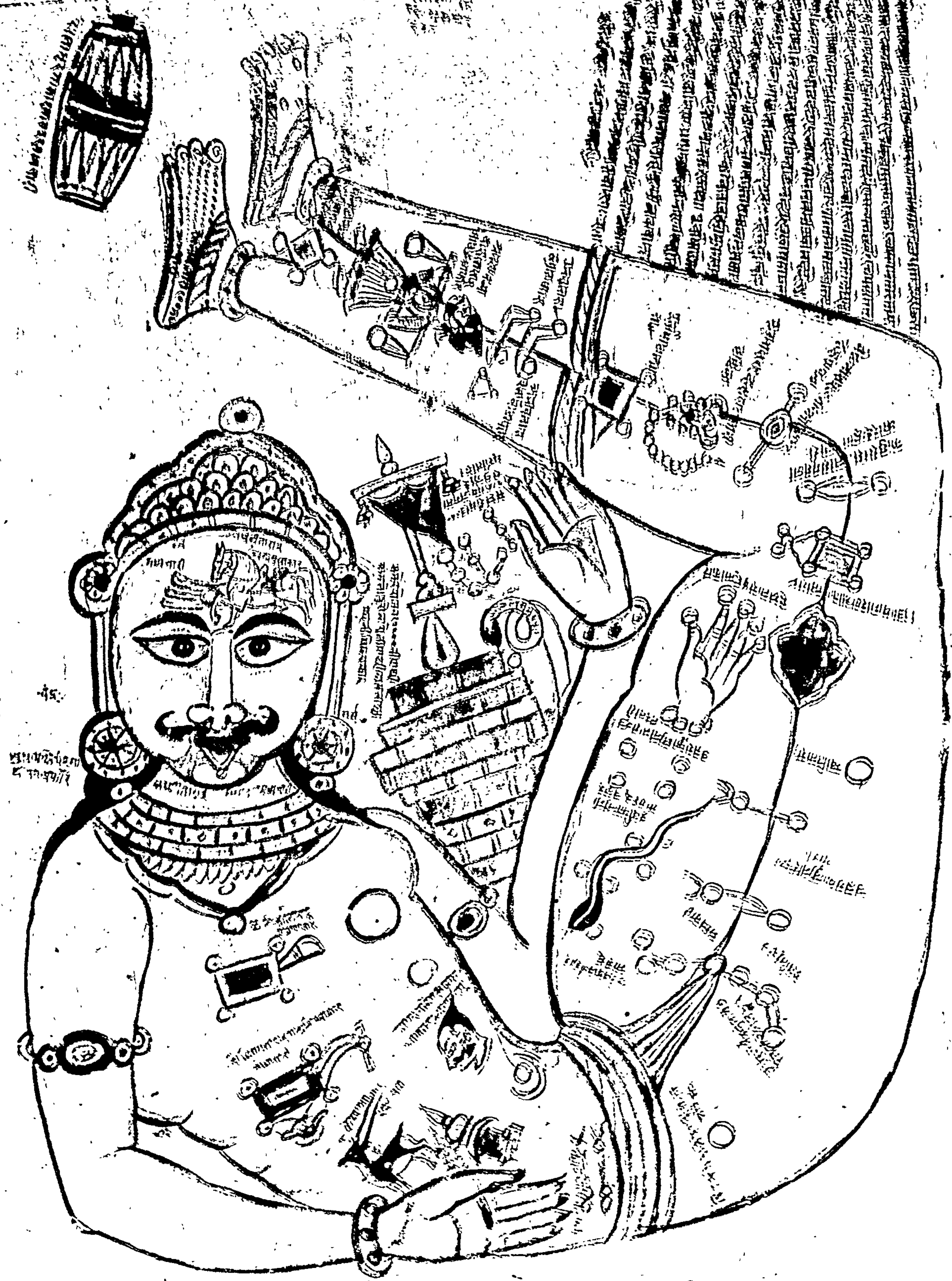
(ग) एतया-ब्रह्म-विष्णु-वरुणादिरुपया परिपाट्या, न तु परतीर्थिकप्रयुक्त-अश्व-यम-दहन-कमल आदिरुपया नेतव्या—परिसमाप्ति प्रापणीया।

गाहाओ—(१) वम्हा, (२) विण्हू, (३) वसू, (४) वरुणे, (५) अय, (६) वुड्ढी, (७) पूस, (८) आस, (९) जमे।
(१०) अग्गि, (११) पयावइ, (१२) सोमे, (१३) रुद्दे, (१४) अदिति, (१५) वहस्सई, (१६) सप्पे ॥१॥
(१७) पिउ, (१८) भग, (१९) अज्जम, (२०) सविआ, (२१) तट्ठा, (२२) वाउ, (२३) तहेव इंदग्गी।
(२४) मित्ते, (२५) इंदे, (२६) निरई, (२७) आउ, (२८) विस्साय बोद्धव्वे ॥ २ ॥[1]

—जम्बु० वक्ख० ७, सु. १७०

(घ) सूर. पा. १० सु. ४६.

(१) एक ही आगम में अट्ठाईस नक्षत्र देवताओं के नामों की गाथाएँ भिन्न भिन्न रचना शैली में दो बार आना, विचारणीय प्रश्न है। इसका समाधान बहुश्रुत करें तो जिज्ञासुओं के ज्ञान की वृद्धि होगी।



एक प्राचीन चित्र के अनुसार २८ नक्षत्रों के तारा एवं संस्थान (आकृति)
वर्णन देखें पृष्ठ ५९६ सूत्र ९३-९४

३. प०—ता धणिट्ठा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—सउणीपलीणगसंठिए पण्णत्ते,

४. प०—ता सयभिसया णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—पुप्फोवयार संठिए पण्णत्ते,

५. प०—ता पुव्वापोट्ठवया णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—अवड्ढवावि संठिए पण्णत्ते,

६. प०—ता उत्तरापोट्ठवया णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—अवड्ढवावि संठिए पण्णत्ते,

७. प०—ता रेवई णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—णावा संठिए पण्णत्ते,

८. प०—ता अस्सिणी णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—आसक्खंध संठिए पण्णत्ते,

९. प०—ता भरणी णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—भगसंठिए पण्णत्ते,

१०. प०—ता कत्तिया णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—छुरघरग संठिए पण्णत्ते,

११. प०—ता रोहिणी णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—सगडुड्ढि संठिए पण्णत्ते,

१२. प०—ता मियसिरा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—मिगसीसावलि संठिए पण्णत्ते,

१३. प०—ता अद्दा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—रुहिरबिंदु संठिए पण्णत्ते,

१४. प०—ता पुणव्वसु णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—तुला संठिए पण्णत्ते,

(३) प्र०—धनिष्ठा नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'पक्षियों के पिंजरे' जैसा संस्थान कहा गया है।

(४) प्र०—शतभिषक् नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'पुष्प-राशि' जैसा संस्थान कहा गया है।

(५) प्र०—पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—आधी 'वापी' जैसा संस्थान कहा गया है।

(६) प्र०—उत्तराभाद्रपद नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है।

आधी 'वापी' जैसा संस्थान कहा गया है।

(७) प्र०—रेवती नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार कहा गया है ?

उ०—'नौका' जैसा संस्थान कहा गया है।

(८) प्र०—अश्विनी नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'अश्वस्कंध' जैसा संस्थान कहा गया है।

(९) प्र०—भरणी नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'भग' जैसा संस्थान कहा गया है।

(१०) कृत्तिका नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'छुरे के घर' जैसा संस्थान कहा गया है।

(११) प्र०—रोहिणी नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया हैं ?

उ०—'गाड़ी की धुरी' जैसा संस्थान कहा गया है।

(१२) प्र०—मृगशिरा नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'मृग के मस्तक' जैसा संस्थान कहा गया है।

(१३) प्र०—आर्द्रा नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'रुधिर के बिन्दु' जैसा संस्थान कहा गया है।

(१४) प्र०—पुनर्वसु नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'तुला' जैसा संस्थान कहा गया है।

१५. प०—ता पुस्से णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—वद्धमाण संठिए पण्णत्ते,

१६. प०—ता अस्सेसा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—पडागसंठिए पण्णत्ते,

१७. प०—ता महा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—पागार संठिए पण्णत्ते,

१८. प०—ता पुव्वाफग्गुणी णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—अद्धपलियंक संठिए पण्णत्ते,

१९. प०—ता उत्तराफग्गुणी णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—अद्धपलियंक संठिए पण्णत्ते,

२०. प०—ता हत्थ णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—हत्थ संठिए पण्णत्ते,

२१. प०—ता चित्ता णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—मुहफुल्ल संठिए पण्णत्ते,

२२. प०—ता साई णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—खीलग संठिए पण्णत्ते,

२३. प०—ता विसाहा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—दामणि संठिए पण्णत्ते,

२४. प०—ता अणुराहा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—एगावलि संठिए पण्णत्ते,

२५. प०—ता जेट्ठा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—गयदन्त संठिए पण्णत्ते,

२६. प०—ता मूले णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—विच्छुयलंगोलसंठिए पण्णत्ते,

(१५) प्र०—पुष्य नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'वर्धमान' दीपक जैसा संस्थान कहा गया है।

(१६) अश्लेषा नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'पताका' जैसा संस्थान कहा है।

(१७) प्र०—मघा नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

ऊ०—'प्राकार' जैसा संस्थान कहा गया है।

(१८) प्र०—पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'आधे पलंग' जैसा संस्थान कहा गया है।

(१९) प्र०—उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'आधे पलंग' जैसा संस्थान कहा गया है।

(२०) प्र०—हस्त नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'हाथ' जैसा संस्थान कहा गया है।

(२१) प्र०—चित्रा नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—फूले हुए मुँह जैसा संस्थान कहा गया है।

(२२) प्र०—स्वाती नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'खीले' जैसा संस्थान कहा गया है।

(२३) प्र०—विशाखा नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है।

उ०—दामनिका (पशु बाँधने की रज्जु) जैसा संस्थान कहा गया है।

(२४) प्र०—अनुराधा नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'एकावलिहार' जैसा संस्थान कहा गया है।

(२५) प्र०—ज्येष्ठा नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'गजदन्त' जैसा संस्थान कहा गया है।

(२६) प्र०—मूल नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'बिच्छू की पूंछ' जैसा संस्थान कहा गया है।

२७. प०—ता पुव्वासाढा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—गयविक्कम संठिए पण्णत्ते,

२८. प०—ता उत्तरासाढा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—सीहनिसाइय संठिए पण्णत्ते,[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. ८, सु. ४१

(२७) प्र०—पूर्वाषाढा नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'गजगति' जैसा संस्थान कहा गया है।

(२८) प्र०—उत्तराषाढा नक्षत्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—'बैठे हुए सिंह जैसा संस्थान कहा गया है।

---

१ (क) प०—एएसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभीई णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! गोसीसावलिसंठिए पण्णत्ते,

गाहाओ—(१) गोसीसावलि, (२) काहार, (३) सउणी, (४) पुप्फोवयार, (५-६) वावी य।
(७) णावा, (८) आसक्खंधग, (९) भग, (१०) छुरघरए, अ (११) संगडुद्धी ॥
(१२) मिगसीसावली, (१३) रूहिरबिंदु, (१४) तुल्ल, (१५) वद्धमाणग, (१६) पडागा।
(१७) पागारे, (१८-१९) पलिअंके, (२०) हत्थे, (२१) मुहफुल्लए चेव ॥
(२२) खीलग, (२३) दामणी, (२४) एगावली य, (२५) गयदंत, (२६) विच्छुयलगुले य।
(२७) गयविक्कमे य तत्तो, (२८) सीहनिसीही य संठाणा ॥

—जम्बु. वक्ख. ७, सु. १५९

सूर्यप्रज्ञप्ति की वृत्ति में भी ये गाथाएँ उद्धृत हैं।

पूर्वाभाद्रपद-उत्तराभाद्रपद के संस्थान तथा पूर्वाफाल्गुनी-उत्तराफाल्गुनी के संस्थान समान माने गये हैं किन्तु पूर्वाषाढा के संस्थान भिन्न भिन्न माने गये हैं।

संस्थानों की इस विभिन्नता का हेतु इस प्रकार है—

पूर्वभद्रपदायाः अर्द्धवापीसंस्थानं, उत्तरभद्रपदाया अप्यर्धवापीसंस्थानं, एतदर्द्धवापी द्वयमीलनेन परिपूर्णा वापी भवति, तेन सूत्रे वापीत्युक्तम्।

पूर्वफल्गुन्या अर्धपल्यंकसंस्थानं, उत्तरफल्गुन्या अप्यर्धपल्यंक संस्थानं-अत्रापि अर्धपल्यंक द्वयमीलनेन परिपूर्ण पल्यंको भवति, तेन संख्यान्यूनता न। —जंबु. वक्ख. ६, सु. १५९ वृत्ति

(ख) चंद. पा. १० सु. १।

(ग)

	मुहूर्त चिन्तामणी नक्षत्र नाम	मुहूर्त चिन्तामणी नक्षत्र संस्थान	सूर्यप्रज्ञप्ति नक्षत्र नाम	सूर्यप्रज्ञप्ति नक्षत्र संस्थान
१	अश्विनी	अश्वमुख	अभिजित्	अश्वस्कंध
२	भरणी	भग	श्रवण	भग
३	कृत्तिका	छुरा	धनिष्ठा	छुरा
४	रोहिणी	शकट	शतभिषक्	शकट
५	मृगसिरा	हरिणमुख	पूर्वाभाद्रपद	मृग का शिर
६	आर्द्रा	मणि	उत्तराभाद्रपद	रुधिर विन्दु
७	पुनर्वसु	गृह	रेवती	तुला
८	पुष्य	वाण	अश्विनी	वर्धमान
९	अश्लेषा	चक्र	भरणी	पताका
१०	मघा	भवन	कृत्तिका	प्राकार
११	पूर्वाफाल्गुनी	मंच	रोहिणी	अर्ध पल्यंक
१२	उत्तराफाल्गुनी	शय्या	मृगशिरा	अर्ध पल्यंक

(क्रमशः)

णक्खत्ताणं तारग्ग सखा—

६४. १. प०—ता कहं ते तारग्गे ? अहिए त्ति वएज्जा,

ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभीई णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—तितारे पण्णत्ते।[1]

२. प०—सवणे णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—तितारे पण्णत्ते।[2]

३. प०—घणिट्ठा णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—पणतारे पण्णत्ते।[3]

३. प०—सतभिसया णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—सत्ततारे पण्णत्ते।[4]

नक्षत्रों के ताराओं की संख्या—

६४. (१) प्र०—नक्षत्रों के ताराओं का प्रमाण कितना है ? कहें—

इन अट्ठावीस नक्षत्रों में से अभिजित् नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?

उ०—तीन तारे कहे गये हैं।

(२) प्र०—श्रवण नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?

उ०—तीन तारे कहे गये हैं ?

(३) प्र०—धनिष्ठा नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?

उ०—पांच तारे कहे गये हैं।

(४) प्र०—शतभिषक् नक्षत्र के कितने तारे कहे गये है ?

उ०—सात तारे कहे गये हैं।

———————— (क्रमशः)

१३	हस्त	हाथ	आर्द्रा	हाथ
१४	चित्रा	मोती	पुनर्वसु	प्रफुल्लमुख
१५	स्वाती	मूंग	पुष्य	खीला
१६	विशाखा	तोरण	अश्लेषा	दामणा-पशु बाँधने की रस्सी
१७	अनुराधा	भात (रथ)	मघा	एकावली हार
१८	जेष्ठा	कुण्डल	पूर्वाफाल्गुनी	गजदंत
१९	मूल	सिंह-पुच्छ	उत्तराफाल्गुनी	बिच्छु की पूंछ
२०	पूर्वापाढा	हाथी-दाँत	हस्त	गज-विक्रम
२१	उत्तरापाढा	मंच	चित्रा	सिंह निषद्या
२२	अभिजित्	त्रिकोण	स्वाति	गो शृंगावलि
२३	श्रवण	त्रिचरण वामनरूप	विशाखा	कावड़
२४	धनिष्ठा	मृदंग	अनुराधा	पक्षी-पिंजरा
२५	शतभिपक्	वर्तुल	जेष्ठा	पुष्पहार
२६	पूर्वाभाद्रपद	मंच	मूल	अर्ध वापी
२७	उत्तराभाद्रपद	मानव युगल	पूर्वापाढा	अर्ध वापी
२८	रेवती	मृदंग	उत्तरापाढा	नौका।

सूर्यप्रज्ञप्ति में नक्षत्रों के संस्थान अभिजित् से प्रारम्भ होकर उत्तरापाढा पर्यन्त कहे गये हैं। मुहूर्त चिन्तामणी में नक्षत्रों के संस्थान अश्विनी से रेवती पर्यन्त कहे गये हैं। संहिता प्रदीप में नक्षत्रों के संस्थान कृतिका से भरणी पर्यन्त कहे गये हैं।

२ (क) प०—एएसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! तितारे पण्णत्ते, एवं णेयव्वा जस्स जइयाओ ताराओ इमं च तं तारग्गं।

गाहाओ—तिग-तिग-पंचग-सय-दुग-बत्तीसग-तिगं तह तिगं तह तिगं च।

छ-पंचग-तिग एक्कग-पंचग-तिग-छक्कगं चेव ॥ १ ॥

सत्तग-दुग-दुग-पंचग-एक्केक्कग-पंच-चउ-तिगं चेव।

एक्कारसग-चउक्कं, चउक्कं चेव तारग्गं ॥ २ ॥ —जंबु. वक्ष. ६, सु. १५८

(ख) अभिइ णक्खत्ते तितारे पण्णत्ते, एवं सवणो, अस्सिणी, भरणी, मगसिरे, पूसे, जेट्ठा। —ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. २२७

(ग) अभिइ णक्खत्ते तितारे पण्णत्ते। —सम. ३, सु. ६

२ (क) ठाणं. अ. ३, उ, ३, सु. २२७। (ख) सम. ३, सु. १०।

३ (क) पंच णक्खत्ता पंचतारा पण्णत्ता, तं जहा—(१) धणिट्ठा, (२) रोहिणी, (३) पुणव्वसू, (४) हत्थो, (५) विसाहा। —ठाणं अ, ५, उ. ३, सु. ४७३

(ख) सम. ५, सु. १३।

४ सतभिसया णक्खत्ते एगसयतारे पण्णत्ते। —सम. १००, सु. २

५. प०—पुव्वापोट्ठवया णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—दुतारे पण्णत्ते ।[१]

६. प०—उत्तरापोट्ठवया णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—दुतारे पण्णत्ते ।[२]

७. प०—रेवई णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—बत्तीसइतारे पण्णत्ते ।[३]

८. प०—अस्सिणी णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—तितारे पण्णत्ते ।[४]

९. प०—भरणी णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—तितारे पण्णत्ते ।[५]

१०. प०—कत्तिया णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—छ तारे पण्णत्ते ।[६]

११. प०—रोहिणीणक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—पंचतारे पण्णत्ते ।[७]

१२. प०—मिगसिरे णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—तितारे पण्णत्ते ।[८]

१३. प०—अद्दा णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—एगतारे पण्णत्ते ।[९]

१४. प०—पुणव्वसू णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—पंचतारे पण्णत्ते ।[१०]

१५. प०—पुस्से णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—तितारे पण्णत्ते ।[११]

१६. प०—अस्सेसा णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—छ तारे पण्णत्ते ।[१२]

(५) प्र०—पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—दो तारे कहे गये हैं ।

(६) प्र०—उत्तराभाद्रपद नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—दो तारे कहे गये हैं ।

(७) प्र०—रेवति नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—बत्तीस तारे कहे गये हैं ।

(८) प्र०—अश्विनी नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—तीन तारे कहे गये हैं ।

(९) प्र०—भरणी नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—तीन तारे कहे गये हैं ।

(१०) प्र०—कृत्तिका नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—छ तारे कहे गये हैं ।

(११) प्र०—रोहिणी नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—पाँच तारे कहे गये हैं ।

(१२) प्र०—मृगशिर नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—तीन तारे कहे गये हैं ।

(१३) प्र०—आर्द्रा नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—एक तारा कहा गया है ।

(१४) प्र०—पुनर्वसु नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—पाँच तारे कहे गये हैं ।

(१५) प्र०—पुष्य नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—तीन तारे कहे गये हैं ।

(१६) प्र०—अश्लेषा नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—छ तारे कहे गये हैं ।

---

१ (क) पुव्वा भद्दवया णक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते । —ठाणं अ. २, उ. ४, सु. ११०
(ख) सम. २, सु. ७ ।

२ (क) उत्तराभद्दवया णक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते । —ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. ११०
(ख) सम. २, सु. ७ ।

३ रेवई णक्खत्ते बत्तीसइ तारे पण्णत्ते । —सम. ३२. सु. ५

४ (क) ठाणं, अ. ३, उ. ३, सु. २२७ । (ख) सम. ३, सु. ११ ।

५ (क) ठाणं, अ. ३, उ. ३, सु. २२७ । (ख) सम. ३, सु. १२ ।

६ कत्तिया णक्खत्ते छ तारे पण्णत्ते । —ठाणं, अ. ६, सु. ७ ।

७ (क) ठाणं, अ. ५, उ. ३, सु. ४७३ । (ख) सम. ५, सु. ९ ।

८ (क) ठाणं अ. ३, उ. ३, सु. २२७ । (ख) सम. ३, सु. ६ ।

९ (क) अद्दा णक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते । —ठाणं. अ. १ सु. ५५
(ख) सम. १, सु. २३ ।

१० (क) ठाणं. ५, उ. ३, सु, ४७३ । (ख) सम. ५, सु. १० ।

११ (क) ठाणं अ. ३, उ. ३, सु. २२७ । (ख) सम. ३ सु. ७ ।

१२ (क) ठाणं, अ. ६ सु. ५३९ । (ख) सम. ६, सु. ८ ।

१७. प०—मघा णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—सत्ततारे पण्णत्ते ।[1]

(१७) प्र०—मघा नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—सात तारे कहे गये हैं ।

१८. प०—पुव्वा फग्गुणी णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—दुतारे पण्णत्ते ।[2]

(१८) प्र०—पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—दो तारे कहे गये हैं ।

१९. प०—उत्तराफग्गुणी णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—दुतारे पण्णत्ते ।[3]

(१९) प्र०—उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—दो तारे कहे गये हैं ।

२०. प०—हत्थ णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—पंचतारे पण्णत्ते ।[4]

(२०) प्र०—हस्त नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—पाँच तारे कहे गये हैं ।

२१. प०—चित्ता णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—एकतारे पण्णत्ते ।[5]

(२१) प्र०—चित्रा नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—एक तारा कहा गया है ।

२२. प०—साती णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—एकतारे पण्णत्ते ।[6]

(२२) प्र०—स्वाती नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—एक तारा कहा गया है ।

२३. प०—विसाहा णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—पंचतारे पण्णत्ते ।[7]

(२३) प्र०—विशाखा नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—पाँच तारे कहे गये हैं ।

२४. प०—अणुराहा णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—पंचतारे पण्णत्ते ।[8]

(२४) प्र०—अनुराधा नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—पाँच तारे कहे गये हैं ।

२५. प०—जेट्ठा णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?[9]
उ०—तितारे पण्णत्ते ।[10]

(२५) प्र०—ज्येष्ठा नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—तीन तारे कहे गये हैं ।

२६. प०—मूले णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—एगतारे पण्णत्ते ।[11]

(२६) प्र०—मूल नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—एक तारा कहा गया है ।

२७. प०—पुव्वासाढा णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—चउतारे पण्णत्ते[12]

(२७) प्र०—पूर्वाषाढा नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—चार तारे कहे गये हैं ।

---

१ (क) मघा णक्खत्ते सत्ततारे पण्णत्ते । —ठाणं, अ. ७, सु. ५८९
(ख) सम. ७, सु. ७ ।

२ (क) ठाणं अ. २, उ. ४, सु. ११० । (ख) सम. २, सु. ४ ।

३ (क) ठाणं ठा, २, उ. ४, सु. ११० । (ख) सम, २, सु. ५ ।

४ (क) ठाणं, ठा. ५, उ. ३, सु. ४७३ । (ख) सम. ५, सु. ११ ।

५ (क) ठाणं. ठा. १, सु. ५५ । (ख) सम. १, सु. २४ ।

६ (क) ठाणं. ठा. १, सु. ५५ । (ख) सम. १, सु. २५ ।

७ (क) ठाणं, ठा. ५, उ. ३, सु. ४७३ । (ख) सम. ५, सु. १२ ।

८ (क) अणुराहा णक्खत्ते चउतारा पण्णत्ते । —ठाणं ४, उ. ४, सु. ३८६
(ख) सम. ४, सु. ७ ।

९ रेवई-पढम-जेट्ठा पज्जवसाणं एगूणवीसाए नक्खत्ताणं अट्ठाणउइ ताराओ तारग्गेणं पण्णत्ताओ । —सम. ९८, सु. १
(रेवती से प्रारम्भ कर ज्येष्ठा पर्यन्त १९ नक्षत्रों के ९८ तारे होते हैं ।)

१० (क) ठाणं, ठा. ३, उ. ३, सु. २२७ । (ख) सम. ३, सु. ८ ।

११ मूले नक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते । —सम. ११, सु. ५

१२ (क) ठाणं, ठा. ४, उ. ४, सु. ३८६ । (ख) सम. ४, सु. ८ ।

२८. प०—उत्तरासाढा णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?
उ०—चउतारे पण्णत्ते ।[1]
—सूरिय. पा. १०, पाहु. ९, सु. ४२

(२८) प्र०—उत्तराषाढा नक्षत्र के कितने तारे कहे गये हैं ?
उ०—चार तारे कहे गये हैं ।

---

१ (क) ठाणं, ठा. ४, उ. ४, सु. ३८६ । (ख) सम. ४ सु. ६ ।
(ग) सम० की गणना से ६८, जम्बु० की गणना से ६७ नक्षत्र होते हैं ।)
(घ) चन्द० पा० सु० ४२ ।
आगमों में और ज्योतिष ग्रन्थों में नक्षत्रों के ताराओं की संख्या समान होनी चाहिए क्योंकि नक्षत्रों के ताराओं की संख्या आकाश में तो सुनिश्चित एवं एक रूप है फिर यह अन्तर क्यों है ।
सूर्य प्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में मूल नक्षत्र का एक तारा कहा गया है और समवायांग के इग्यारहवें समवाय में मूल नक्षत्र के इग्यारह तारे कहे गये हैं ।
सूर्य प्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में नक्षत्रों के ताराओं की गणना अभिजित् नक्षत्र से प्रारम्भ होकर उत्तराषाढा नक्षत्र पर्यन्त की कही गई है ।
किन्तु सूर्य प्रज्ञप्ति में अनुराधा नक्षत्र के पाँच तारे कहे गये हैं और स्थानांग, समवायांग, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में अनुराधा नक्षत्र के चार तारे गये हैं ।
यदि यह अन्तर लिपिक युग के लेखकों की असावधानी से हो गया हो तो आधुनिक आकाश दर्शक यन्त्र द्वारा निर्णय करके संशोधन करना आवश्यक है ।
आगमों में सदा नक्षत्रों के ताराओं की वास्तविक संख्या एवं एकवाक्यता होना ही उनकी प्रामाणिकता का मूल है ।
(च) नक्षत्रों के तारे

क्रम०	स्थानांग	स्थान	उ०	सूत्र	विवरण
१	,,	३	४	२२७	अभिजित् के ३ तारे
२	,,	३	४	२२७	श्रवण के तीन तारे
३	,,	५	३	४७३	धनिष्ठा के ३ तारे
४	,,	०	०	०	
५	,,	२	४	११०	पूर्वभाद्र पद के २ तारे
६	,,	२	४	११०	उत्तराभाद्र पद के दो तारे
७	,,	०	०	०	
८	,,	३	४	२२७	अश्विनी के ३ तारे
९	,,	३	४	२२७	भरणी के ३ तारे
१०	,,	६	०	५३९	कृत्तिका के ६ तारे
११	,,	५	३	४७३	रोहिणी के ५ तारे
१२	,,	३	४	२२७	मृगशिरा के ३ तारे
१३	,,	१	०	५५	आर्द्रा का १ तारा
१४	,,	५	३	४७३	पुनर्वसु के ५ तारे
१५	,,	३	४	२२७	पुष्य के ३ तारे
१६	,,	६	०	५३९	अश्लेषा के ६ तारे
१७	,,	०	०	५८९	मघा के ७ तारे
१८	,,	२	४	११०	पूर्वाफाल्गुनी के २ तारे
१९	,,	२	४	११०	उत्तराफाल्गुनी के २ तारे
२०	,,	५	३	४७३	हस्त के ५ तारे
२१	,,	१	०	५५	चित्रा का १ तारा
२२	,,	१	०	५५	स्वाती का १ तारा

(क्रमशः)

(क्रमशः)

२३	,,	५	३	४७३	विशाखा के ५ तारे
२४	,,	४	४	३८६	अनुराधा के ४ तारे
२५	,,	३	४	२२७	ज्येष्ठा के ३ तारे
२६	,,	०	०	०	
२७	,,	४	४	३८६	पूर्वाषाढा के ४ तारे
२८	,,	४	४	३८६	उत्तराषाढा के ४ तारे
२९	,,	६	०	४८१	तारक ग्रह ६ हैं।

(ग) नक्षत्रों के तारे

क्रम०	समवायांग	सं०	सूत्र	विवरण
१	,,	३	९	अभिजित् के ३ तारे
२	,,	३	१०	श्रवण के ३ तारे
३	,,	५	१३	धनिष्ठा के ५ तारे
४	,,	१००	२	शतभिषक् के १०० तारे
५	,,	२	६	पूर्वाभाद्रपद के २ तारे
६	,,	२	७	उत्तराभाद्रपद के २ तारे
७	,,	३२	५	रेवती के ३२ तारे
८	,,	३	११	अश्विनी के ३ तारे
९	,,	३	१२	भरणी के ३ तारे
१०	,,	६	७	कृत्तिका के ६ तारे
११	,,	५	९	रोहिणी के ५ तारे
१२	,,	३	६	मृगशिरा के ३ तारे
१३	,,	१	२३	आर्द्रा का १ तारा
१४	,,	५	१०	पुनर्वसु के ५ तारे
१५	,,	३	७	पुष्य के तीन तारे
१६	,,	६	८	अश्लेषा के ६ तारे
१७	,,	७	७	मघा के ७ तारे
१८	,,	२	४	पूर्वाफाल्गुनी के २ तारे
१९	,,	२	५	उत्तराफाल्गुनी के २ तारे
२०	,,	५	११	हस्त के ५ तारे
२१	,,	१	२४	चित्रा का १ तारा
२२	,,	१	२५	स्वाति का १ तारा
२३	,,	५	१२	विशाखा के ५ तारे
२४	,,	४	७	अनुराधा के ४ तारे
२५	,,	३	८	जेष्ठा के ६ तारे
२६	,,	११	५	मूल के ११ तारे
२७	,,	४	८	पूर्वाषाढा के ४ तारे
२८	,,	४	९	उत्तराषाढा के ४ तारे
२९	,,	९८	७	रेवती से ज्येष्ठा तक ९८ तारे
३०	,,	९	७	सर्वोपरि तारा की ऊँचाई
३१	,,	११२	५	सर्वोपरि तारा की ऊँचाई

णक्खत्ताणं दाराइं—

६५. प०—ता कहं ते जोइसस्स दारा ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तत्थेगे एवमाहंसु—

१. ता कत्तियादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

नक्षत्रों के दिशा द्वार—

६५. प्र०—ज्योतिष्कों के (दिशा) द्वार किस प्रकार कहे गये हैं ? कहें।

उ०—इस सम्बन्ध में ये पांच प्रतिपत्तियां कही गई हैं यथा—

उनमें से एक मान्यता वाले इस प्रकार कहते हैं—

(१) कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं।

(क्रमशः)

(घ)

मुहूर्त चिन्तामणी नक्षत्र नाम	मुहूर्त चिन्तामणी नक्षत्र-तारा संख्या	सूर्यप्रज्ञप्ति नक्षत्र नाम	सूर्यप्रज्ञप्ति नक्षत्र-तारा संख्या
१ अश्विनी	३ तारा	अभिजित्	३ तारा
२ भरणी	३ ,,	श्रवण	३ ,,
३ कृत्तिका	६ ,,	धनिष्ठा	६ ,,
४ रोहिणी	५ ,,	शतभिषक	५ ,,
५ मृगशिरा	३ ,,	पूर्वाभाद्रपद	३ ,,
६ आर्द्रा	१ ,,	उत्तराभाद्रपद	१ ,,
७ पुनर्वसु	४ ,,	रेवती	५ ,,
८ पुष्य	३ ,,	अश्विनी	३ ,,
९ अश्लेषा	५ ,,	भरणी	६ ,,
१० मघा	५ ,,	कृत्तिका	७ ,,
११ पूर्वाफाल्गुनी	२ ,,	रोहिणी	२ ,,
१२ उत्तराफाल्गुनी	२ ,,	मृगशिरा	२ ,,
१३ हस्त	५ ,,	आर्द्रा	५ ,,
१४ चित्रा	१ ,,	पुनर्वसु	१ ,,
१५ स्वाती	१ ,,	पुष्य	१ ,,
१६ विशाखा	४ ,,	अश्लेषा	५ ,,
१७ अनुराधा	४ ,,	मघा	५ ,,
१८ जेष्ठा	३ ,,	पूर्वाफाल्गुनी	३ ,,
१९ मूल	११ ,,	उत्तराफाल्गुनी	१ ,,
२० पूर्वाषाढा	२ ,,	हस्त	४ ,,
२१ उत्तराषाढा	२ ,,	चित्रा	४ ,,
२२ अभिजित्	३ ,,	स्वाती	३ ,,
२३ श्रवण	३ ,,	विशाखा	३ ,,
२४ धनिष्ठा	४ ,,	अनुराधा	५ ,,
२५ शतभिषक्	१०० ,,	जेष्ठा	३ ,,
२६ पूर्वाभाद्रपद	२ ,,	मूल	२ ,,
२७ उत्तराभाद्रपद	२ ,,	पूर्वाषाढा	२ ,,
२८ रेवती	३२ ,,	उत्तराषाढा	३२ ,,

एगे पुण एवमाहंसु—

२. ता महादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

३. ता धणिट्ठादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एगे एवमाहसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

४. ता अस्सिणीयादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु—

५. ता भरणीयादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु,

१. तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

(क) ता कत्तियादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, ते एवमाहसु, तं जहा—१. कत्तिया, २. रोहिणी, ३. संठाणा, ४. अद्दा, ५. पुणव्वसु, ६. पुस्सो, ७. असिलेसा।

(ख) महादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तं जहा—१. महा, २. पुव्वाफग्गुणी, ३. उत्तराफग्गुणी, ४. हत्थो, ५. चित्ता, ६. साई, ७. विसाहा,

(ग) अणुराधादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता तं जहा—१. अणुराधा, ३. जेट्ठा, ३. मूलो, ४. पुव्वासाढा, ५. उत्तरासाढा, ६. अभीह, ७. सवणो,

(घ) धणिट्ठारीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा—१. धणिट्ठा, २. सतभिसया, ३. पुव्वापोट्ठवया, ४. उत्तरापोट्ठवया, ५. रेवई, ६. अस्सिणो, ७. भरणी,[1]

२. तत्थ णं जेते एवमाहंसु—

(क) ता महादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं—

(२) मघा आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं—

(३) धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं—

(४) अश्विनी आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते है—

(५) भरणी आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं।

उनमें से जो इस प्रकार कहते है—

(१) कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं वे इस प्रकार कहते हैं, यथा—(१) कृत्तिका, (२) रोहिणी, (३) मृगशिर, (४) आर्द्रा, (५) पुनर्वसु, (६) पुष्य, (७) अश्लेषा।

(२) मघादि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) मघा, (२) पूर्वाफाल्गुनी, (३) उत्तराफाल्गुनी, (४) हस्त, (५) चित्रा, (६) स्वाती, (७) विशाखा।

(३) अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) अनुराधा, (२) ज्येठा, (३) मूल, (४) पूर्वाषाढा, (५) उत्तराषाढा, (६) अभिजित्, (७) श्रवण,

(४) धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) धनिष्ठा, (२) शतभिषक्, (३) पूर्वाभाद्रपद, (४) उत्तराभाद्रपद, (५) रेवती, (६) अश्विनी, (७) भरणी।

उनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

(१) मघा आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले हैं,

---

१ (क) कत्तियाईया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता,
(ख) महाईया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता,
(ग) अणुराहाईया सत्त णक्खत्ता अवरदारिया पण्णत्ता,
(घ) धणिट्ठाइया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, —सम० स० ७ सु० ८, ९, १०, ११

ये समवायांग के सूत्र जो यहाँ दिए गये हैं वे अन्य मान्यता के सूचक हैं किन्तु इन सूत्रों में ऐसा कोई वाक्य नहीं है जिससे सामान्य पाठक इन सूत्रों को अन्य मान्यता के जान सकें, यद्यपि जैनागमों में नक्षत्र मण्डल का प्रथम नक्षत्र अभिजित् है और अन्तिम नक्षत्र उत्तराषाढा है, परं इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न कालों में परिवर्तित नक्षत्र मण्डलों के भिन्न भिन्न क्रमों का परिज्ञान आगमों के स्वाध्याय के विना सम्भव कैसे ?

ते एवमाहंसु, तं जहा—१. महा, २. पुव्वाफग्गुणी, ३. उत्तराफग्गुणी, ४. हत्थो, ५. चित्ता, ६. साती, ७. विसाहा,

(ख) अणुराधादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता; तं जहा—१. अणुराधा, २. जेट्ठा, ३. मूले, ४. पुव्वासाढा, ५. उत्तरासाढा, ६. अभिई, ७. सवणे,

(ग) अणिट्ठादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता; जं जहा—१. धणिट्ठा, २. सतभिसया, ३. पुव्वापोट्ठवया, ४. उत्तरापोट्ठवया, ५. रेवई, ६. अस्सिणी, ७. भरणी,

(घ) कत्तियादीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता तं जहा—१. कत्तिया, २. रोहिणी, ३. संठाणा, ४. अद्दा, ५. पुणव्वसु, ६. पुस्सो, ७. अस्सेसा,

३. तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

(क) ता धणिट्ठादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा—

१. धणिट्ठा, २. सतभिसया, ३. पुव्वापोट्ठवया, ४. उत्तरापोट्ठवया, ५. रेवई, ६. अस्सिणी, ७. भरणी,

(ख) कत्तियादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता; तं जहा—१. कत्तिया, २. रोहिणी, ३. सठाणा ४. अद्दा, ५. पुणव्वसु, ६. पुस्सो, ७. अस्सेसा,

(ग) महादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता तं जहा—१. महा, २. पुव्वाफग्गुणी, ३. उत्तराफग्गुणी, ४. हत्थो, ५. चित्ता, ६. साई, ७. विसाहा,

(घ) अणुराधादीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता; तं जहा—१. अणुराहा, २. जेट्ठा, ३. मूलो, ४. पुव्वासाढा, ५. उत्तरासाढा, ६. अभीयी, ७. सवणो,

४. तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

(क) ता अस्सिणी आदीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा—१. अस्सिणी, २. भरणी, ३. कत्तिया, ४. रोहिणी, ५. संठाणा, ६. अद्दा, ७. पुणव्वसु,

(ख) पुस्सादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता तं जहा—१. पुस्सा, २. अस्सेसा, ३. महा, ४. पुव्वाफग्गुणी, ६. हत्थो, ७. चित्ता,

(ग) साइयाइया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता तं जहा—१. साती, २. विसाहा, ३. अणुराहा, ४. जेट्ठा, ५. मूलो, ६. पुव्वासाढा, ७. उत्तरासाढा,

वे इस प्रकार कहते हैं यथा—(१) मघा, (२) पूर्वाफाल्गुनी, (३) उत्तराफाल्गुनी, (४) हस्त, (५) चित्रा, (६) स्वाती, (७) विशाखा।

(२) अनुराधा आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा के द्वार वाले हैं, यथा—(१) अनुराधा, (२) ज्येष्ठा, (३) मूल, (४) पूर्वाषाढा, (५) उत्तराषाढा, (६) अभिजित्, (७) श्रवण।

(३) धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा के द्वार वाले हैं, यथा—(१) धनिष्ठा, (२) शतभिषक्, (३) पूर्वाभाद्रपद्र, (४) उत्तराभाद्रपद, (५) रेवती, (६) अश्विनी, (७) भरणी।

(४) कृत्तिका आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) कृत्तिका, (२) रोहिणी, (३) मृगशिर, (४) आर्द्रा, (५) पुनर्वसु, (६) पुष्य, (७) अश्लेषा।

उनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

(१) धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं; वे इस प्रकार कहते हैं, यथा—(१) धनिष्ठा, (२) शतभिषक्, (३) पूर्वाभाद्रपद, (४) उत्तराभाद्रपद, (५) रेवती, (६) अश्विनी, (७) भरणी।

(२) कृत्तिका आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं; यथा—(१) कृत्तिका, (२) रोहिणी, (३) मृगशिर, (४) आर्द्रा, (५) पुनर्वसु, (६) पुष्य, (७) अश्लेषा।

(३) मघा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं; यथा—(१) मघा, (२) पूर्वाफाल्गुनी, (३) उत्तराफाल्गुनी, (४) हस्त, (५) चित्रा, (६) स्वाति, (७) विशाखा।

(४) अनुराधा आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं; यथा—(१) अनुराधा, (२) ज्येष्ठा, (३) मूल, (४) पूर्वाषाढा, (५) उत्तराषाढा, (६) अभिजित्, (७) श्रवण।

उनमें जो इस प्रकार कहते हैं—

(१) अश्विनी आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) अश्विनी, (२) भरणी, (३) कृत्तिका, (४) रोहिणी, (५) मृगशिर, (६) आर्द्रा, (७) पुनर्वसु।

(२) पुष्यादि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) पुष्य, (२) अश्लेषा, (३) मघा, (४) पूर्वाफाल्गुनी, (५) उत्तराफाल्गुनी, (६) हस्त, (७) चित्रा।

(३) स्वाति आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) स्वाती, (२) विशाखा, (३) अनुराधा, (४) ज्येष्ठा, (५) मूल, (६) पूर्वाषाढा, (७) उत्तराषाढा।

(घ) अभिइयाविया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता; तं जहा—१. अभिई, २. सवणो, ३. धणिट्ठा, ४. सतभिसया, ५. पुव्वभद्दवया, ६. उत्तरभद्दवया, ७. रेवई,

(४) अभिजित् आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) अभिजित्, (२) श्रवण, (३) धनिष्ठा, (४) शतभिषक्, (५) पूर्वाभाद्रपद, (६) उत्तराभाद्रपद, (७) रेवती।

५. तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—

उनमें से जो इस प्रकार कहते हैं—

(क) ता भरणियादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा—१. भरणी, २. कत्तिया, ३. रोहिणी, ४. संठाणा, ५. अद्दा, ६. पुणव्वसु, ८. पुस्सो,

(१) भरणी आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, वे इस प्रकार कहते हैं, यथा—(१) भरणी, (२) कृत्तिका, (३) रोहिणी, (४) मृगशिर, (५) आर्द्रा, (६) पुनर्वसु, (७) पुष्य।

(ख) अस्सेसादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तं जहा—१. अस्सेसा, २. महा, ३. पुव्वाफग्गुणी, ४. उत्तराफग्गुणी, ५. हत्थो, ६. चित्ता, ७. साई,

(२) अश्लेषा आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) अश्लेषा, (२) मघा, (३) पूर्वाफाल्गुनी, (४) उत्तराफाल्गुनी, (५) हस्त, (६) चित्रा, (७) स्वाति।

(ग) विसाहादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता; तं जहा—१. विसाहा, २. अणुराहा, ३. जेट्ठा, ४. मूलो, ५. पुव्वासाढा, ६. उत्तरासाढा, ७. अभिई,

(३) विशाखा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) विशाखा, (२) अनुराधा, (३) ज्येष्ठा, (४) मूल, (५) पूर्वाषाढा (६) उत्तराषाढा, (७) अभिजित्।

(घ) सवणादीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा—१. सवणो, २. धणिट्ठा, ३. सतभिसया, ४. पुव्वापोट्ठवया, ५. उत्तरापोट्ठवया, ६. रेवई, ४. अस्सिणी,

(४) श्रवण आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) श्रवण, (२) धनिष्ठा, (३) शतभिषक्, (४) पूर्वाभाद्रपद, (६) रेवती, (७) अश्विनी।

वयं पुण एवं वयामो—

हम फिर इस प्रकार कहते हैं—

(क) ता अभीईयादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता; तं जहा—१. अभिई, २. सवणो, ३. धणिट्ठा, ४. सतभिसया, ५. पुव्वापोट्ठवया, ६. उत्तरापोट्ठवया, ७. रेवई।

(१) अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) अभिजित्, (२) श्रवण, (३) धनिष्ठा, (४) शतभिषक्, (५) पूर्वाभाद्रपद, (६) उत्तराभाद्रपद, (७) रेवती।

(ख) अस्सिणीआदीया सत्त णक्खणा दाहिणदारिया पण्णत्ता; तं जहा—१. अस्सिणी, २. भरणी, ३. कत्तिया, ४. रोहिणी, ५. संठाणा, ६. अद्दा, ७. पुणव्वसु,

(२) अश्विनी आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) अश्विनी, (२) भरणी, (३) कृत्तिका, (४) रोहिणी, (५) मृगशिर, (६) आर्द्रा, (७) पुनर्वसु।

(ग) पुस्सादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता तं जहा—१. पुस्सो, २. अस्सेसा, ३. महा, ४. पुव्वाफग्गुणी, ५. उत्तराफग्गुणी, ६. हत्थो, ७. चित्ता।

(३) पुष्य आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) पुष्य, (२) अश्लेषा, (३) मघा, (४) पूर्वाफाल्गुनी, (५) उत्तराफाल्गुनी, (६) हस्त, (७) चित्रा।

(घ) साइआदीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता तं जहा—१. साई, २. विसाहा, ३. अणुराहा, ४. जेट्ठा, ५. मूले, ६. पुव्वासाढा, ७. उत्तरासाढा।[1]
—सूरिय. पा. १०, पाहु. २१, सु० ५९

(४) स्वाति आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा के द्वार वाले कहे गये हैं, यथा—(१) स्वाति, (२) विशाखा, (३) अनुराधा (४) ज्येष्ठा, (५) मूल, (६) पूर्वाषाढा, (७) उत्तराषाढा।

१ (क) ठाणं अ० ७ सु० ५८९ में नक्षत्रों के जो दिशा द्वार कहे गये हैं वे स्वमान्यता के सूचक हैं।
(ख) चंद० पा० १० सु० ५९।

णक्खत्ताणं कुलोवकुलाइ —

६६. प०—ता कहं ते कुला ('उवकुला, कुलोवकुला') ? आहिए त्ति वएज्जा ।[1]

उ०—तत्थ खलु इमे बारस कुला, बारस उवकुला, चत्तारि कुलोवकुला पण्णत्ता।

बारसकुला पण्णत्ता, तं जहा—१. धणिट्ठा कुलं, २. उत्तरा भद्दवयाकुलं, ३. अस्सिणीकुलं, ४. कत्तिया-कुलं, ५. मिगसिरकुलं, ६. पुस्साकुलं, ७. महाकुलं, ८. उत्तराफग्गुणी कुलं, ९. चित्ताकुलं, १०. विसाहा-कुलं, ११. मूलाकुलं, १२. उत्तरासाढाकुलं ।[2]

बारस उवकुला पण्णत्ता; तं जहा—१. सवणो उवकुलं, २. पुव्वापोट्ठवया उवकुलं, ३. रेवई उवकुलं, ४. भरणी उवकुलं, ५. रोहिणी उवकुलं, ६. पुणव्वसु उवकुलं, ७. अस्सेसा उवकुलं. ८. पुव्वाफग्गुणी उवकुलं, ९. हत्थो उवकुलं, १०. साती उवकुलं, ११. जेट्ठा उव-कुलं, १२. पुव्वासाढा उवकुलं ।

चत्तारि कुलोवकुला पण्णत्ता; तं जहा—१. अभियी कुलोवकुलं, २. सतभिसया कुलोवकुलं, ३. अद्दा कुलो-वकुलं, ४. अणुराहा कुलोवकुला ।[3]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. ५, सु. ३७

नक्षत्रों के कुल, उपकुल और कुलोपकुल—

६६. प्र०—(नक्षत्रों के) कुल (उपकुल और कुलोपकुल) किस प्रकार हैं ? कहें।

उ०—(अठाईस नक्षत्रों में) ये बारह कुल संज्ञक नक्षत्र है, बारह उपकुल संज्ञक नक्षत्र हैं, और चार कुलोपकुल संज्ञक नक्षत्र हैं।

बारह कुल (संज्ञक नक्षत्र) कहे गये हैं; यथा—(१) धनिष्ठा-कुल, (२) उत्तराभाद्रपदकुल, (३) अश्विनीकुल, (४) कृत्तिका कुल, (५) मृगसिराकुल, (६) पुष्यकुल, (७) मघाकुल, (८) उत्तराफाल्गुनीकुल, (९) चित्राकुल, (१०) विशाखाकुल, (११) मूलकुल, (१२) उत्तराषाढाकुल ।

बारह उपकुल (संज्ञक नक्षत्र) हैं; यथा—(१) श्रवण उपकुल, (२) पूर्वाभाद्रपद उपकुल, (३) रेवती उपकुल, (४) भरणी उपकुल, (५) रोहिणी उपकुल, (६) पुनर्वसु उपकुल, (७) अश्लेषा उपकुल, (८) पूर्वाफाल्गुनी उपकुल, (९) हस्त उपकुल, (१०) स्वाती उपकुल, (११) ज्येष्ठा उपकुल, (१२) पूर्वाषाढा उपकुल ।

चार कुलोपकुल (संज्ञक नक्षत्र) हैं, यथा—(१) अभिजित् कुलोपकुल, (२) शतभिषक् कुलोपकुल, (३) आर्द्रा कुलोपकुल, (४) अनुराधा कुलोपकुल ।

---

१ सूर्य प्रज्ञप्ति में प्रस्तुत प्रश्नसूत्र खण्डित है, अतः कोष्ठक के अन्तर्गत "उवकुला, कुलोवकुला" अंकित करके उसे पूरा किया है, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्ष० ७ सूत्र १६१ में, यह प्रश्नसूत्र इस प्रकार है।

प्र०—कति णं भंते ! कुला ? कति उवकुला ? कति कुलोवकुला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! बारसकुला, बारस उवकुला, चत्तारि कुलोवकुला पण्णत्ता ।

शेष पाठ सूर्य प्रज्ञप्ति के समान है, किन्तु जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के इस प्रश्नोत्तर सूत्र में बारह कुल नक्षत्रों के नामों के बाद कुलादि के लक्षणों की सूचक एक गाथा दी गई है जो सूर्यप्रज्ञप्ति की टीका में भी उद्धृत है और यह गाथा प्रस्तुत संकलन में भी उद्धृत है ।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के संकलन कर्ता यदि यह गाथा प्रस्तुत सूत्र के प्रारम्भ में या अन्त में देते तो अधिक उपयुक्त रहती ।

२ गाहा—मासाणं परिणामा, होंति कुला, उवकुला उहेट्ठिमगा ।
होंति पुण कुलोवकुला, अभियी-सयभिसय-अद्द-अणुराहा ॥[1] —जम्बु० वक्ख० ७, सु० १६१

"किं कुलादिनां लक्षणं ?
उच्यते-मासानां परिणामानि-परिसमापकानि भवन्ति कुलानि, को अर्थः ? इह यैर्नक्षत्रैःप्रायो मासानां परिसमाप्तयः उपजायन्ते मासमदृश नामानि च तानि नक्षत्राणि कुलानीति प्रसिद्धानि"

"कुलानामधस्तनानि नक्षत्राणि श्रवणादीनि उपकुलानि, कुलानां समीपमुपकुलम् तत्र वर्तन्ते यानि नक्षत्राणि तान्युपकुला-न्युपकुलानि" ।

"यानि कुलानामुपकुलानां चाधस्तानि तानि कुलोपकुलानि" —जम्बू० टीका०

३ चंद० पा० १०, सु० ३७ ।

दुवालससु पुण्णमासिणीसु कुलाइ-णक्खत्त-जोगसंखा—

९७. १. प०—ता साविट्ठिण्णं पुण्णिमं णं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ।

१. कुलं जोएमाणे धणिट्ठा णक्खत्ते जोएइ,

२. उवकुलं जोएमाणे सवणे णक्खत्ते जोएइ,

३. कुलोवकुलं जोएमाणे अभिई णक्खत्ते जोएइ,

साविट्ठिण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ कुलोवकुलं वा जोएइ।

कुलेण वा, उवकुलेण वा, कुलोवकुलेण वा जुत्ता साविट्ठी पुण्णिमा जुत्ताति वत्तव्वं सिया।

२. प०—ता पोट्ठवइण्णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ,

१. कुलं जोएमाणे उत्तरापोट्ठवया णक्खत्ते जोएइ,

२. उवकुलं जोएमाणे पुव्वापोट्ठवया णक्खत्ते जोएइ,

३. कुलोवकुलं जोएमाणे सतभिसया णक्खत्ते जोएइ,

पोट्ठवइण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ[1],

कुलेण वा, उवकुलेण वा, कुलोवकुलेण वा जुत्ता पुट्ठवया पुण्णिमा जुत्ताति वत्तव्वं सिया।

बारह पूर्णिमाओं में कुलादि नक्षत्रों की योग संख्या—

९७. (१) प्र०—श्रावणी पूर्णिमा को क्या कुल संज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है या कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो धनिष्ठा नक्षत्र योग करता है।

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो श्रवण नक्षत्र योग करता है।

(३) कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो अभिजित् नक्षत्र योग करता है।

इस प्रकार श्रावणी पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलसंज्ञक, उपकुलसंज्ञक और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का श्रावणी पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

(२) प्र०—भाद्रपदी पूर्णिमा को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र भी योग करता है।

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो उत्तराभाद्रपद नक्षत्र योग करता है।

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र योग करता है।

(३) कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो शतभिषक् नक्षत्र योग करता है।

इस प्रकार भाद्रपदी पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है। उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलसंज्ञक, उपकुलसंज्ञक और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का भाद्रपदी पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

---

१ शेषमपि सूत्रं निगमनीयं एवं नेयव्वाओ,-जाव-आसाढी-पुण्णिमं जुत्तेति वत्तव्वं सिया, णवरं पौषी पौर्णमासी, ज्येष्ठामूली च पौर्णमासी कुलोपकुलमपि युनक्ति, अवशेषासु च पौर्णमासीषु कुलोपकुलनास्तीति परिभाव्य वक्तव्याः। —सूर्य. टीका

३. प०— ता आसोइण्णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ ? कुलोवकुलं जोएइ ?

(३) प्र०—आसोजी पूर्णिमा को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नोलभइ कुलोवकुलं।

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे अस्सिणी णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो अश्विनी नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे रेवई णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो रेवती नक्षत्र योग करता है।

आसोइण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ,

इस प्रकार आसोजी पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, और उपकुलसंज्ञक योग करता है।

कुलेण वा, उवकुलेण वा जुत्ता आसोइण्णं पुण्णिमं जुत्ते ति वत्तव्वं सिया,

कुलसंज्ञक और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का आसोजी पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

४. प०—ता कत्तिइण्णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(४) प्र०—कार्तिकी पूर्णिमा को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुल संज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लभइ कुलोवकुलं,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे कत्तिआ णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो कृत्तिका नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे भरणी णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो भरणी नक्षत्र योग करता है।

कत्तिइण्णं पुण्णिमं कुलेण वा जोएइ, उवकुलेण वा जोएइ,

इस प्रकार कार्तिकी पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा, उवकुलेण वा जुत्ता कत्तिइण्णं पुण्णिमं जुत्ते त्ति वत्तव्वं सिया,

कुलसंज्ञक और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का कार्तिकी पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

५. प०—ता मागसिरीं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(५) प्र०—मार्गसिरी पूर्णिमा को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुल-संज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लभइ कुलोवकुलं,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे मगसिरं णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो मृगशिर नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे, रोहिणी णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो रोहिणी नक्षत्र योग करता है।

मागसिरीं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ,

इस प्रकार मार्गसिरी पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा, उवकुलेण जुत्ता मागसिरीं पुण्णिमं जुत्तेत्ति वत्तव्वं सिया।

कुलसंज्ञक और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का मार्गसिरी पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती हैं।

६. प०—ता पोसिण्णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(६) प्र०—पौषी पूर्णिमा को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ? उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ,

उ०—कुलसंज्ञक योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

१. कुलं जोएमाणे पुस्से णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो पुष्य नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे पुणव्वसू णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो पुनर्वसु नक्षत्र योग करता है।

३. कुलोवकुलं जोएमाणे अद्दा णक्खत्ते जोएइ,

(३) कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो आर्द्रा नक्षत्र योग करता है।

पोसिण्णं पुण्णिमं कुल वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ,

इस प्रकार पौषी पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र भी योग करता है।

कुलेण वा, उवकुलेण वा, कुलोवकुलेण वा जुत्ता पोसिण्णं पुण्णिमं जुत्तेत्ति वत्तव्वं सिया,

कुलसंज्ञक नक्षत्र, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र और कुलोपकूलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का पौषी पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

७. प०—ता माहिण्णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(७) प्र०—माघी पूर्णिमा को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लभइ कुलोवकुलं,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे महा णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो मघा नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे अस्सेसा णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो अश्लेषा नक्षत्र योग करता है।

माहिण्णं पुण्णिमं कुलेण वा जोएइ, उवकुलेण वा जोएइ,

इस प्रकार माघी पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा, उवकुलेण वा जुत्ता माहिण्णं पुण्णिमं जुत्तेत्ति वत्तव्वं सिया,

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का माघी पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

८. प०—ता फग्गुणीं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(८) प्र०—फाल्गुनी पूर्णिमा को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ नो लभइ कुलोवकुलं,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे उत्तराफग्गुणी णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे पुव्वाफग्गुणी णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र योग करता है।

फग्गुणीणं पुण्णिमं कुलेण वा जोएइ, उवकुलेण वा जोएइ,

इस प्रकार फाल्गुनी पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा उवकुलेण वा जुत्ता फग्गुणीणं पुण्णिमं जुत्तेत्ति वत्तव्वं सिया,

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का फाल्गुनी पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

९. प०—ता चित्तिण्णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ ?

(९) प्र०—चैत्री पूर्णिमा को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लभइ कुलोवकुलं,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे चित्ता णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो चित्रा नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोयमाणे हत्थ णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो हस्त नक्षत्र योग करता है।

चित्तिण्णं पुण्णिमं कुलेण वा जोएइ, उवकुलेण वा जोएइ,

इस प्रकार चैत्री पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुल संज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा, उवकुलेण वा जुत्ता चित्तिण्णं पुण्णिमं जुत्तेत्ति वत्तव्वं सिया।

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का चैत्री पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

१०. प०—ता विसाहिण्णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ ?

(१०) प्र०—वैशाखी पूर्णिमा को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लभइ कुलोवकुलं,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे विसाहा णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो विशाखा नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे साती णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो स्वाति नक्षत्र योग करता है।

विसाहिण्णं पुण्णिमं कुलेण वा जोएइ, उवकुलेण वा जोएइ,

इस प्रकार वैशाखी पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा, उवकुलेण वा जुत्ता विसाहिण्णं पुण्णिमं जुत्तेत्ति वत्तव्वं सिया,

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का वैसाखी पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

११. प०—ता जेट्ठा-मूलिण्णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(११) प्र०—ज्येष्ठा-मूली पूर्णिमा को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

१. कुलं जोएमाणे मूले णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो मूल नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे जेट्ठा णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो ज्येष्ठा नक्षत्र योग करता है।

३. कुलोवकुलं जोएमाणे अणुराहा णक्खत्ते जोएइ,

(३) कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो अनुराधा नक्षत्र योग करता है।

जेट्ठा-मूलिण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ,

इस प्रकार ज्येष्ठामूली पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा, उवकुलेण वा, कुलोवकुलेण वा जुत्ता जेट्ठा-मूलिण्णं पुण्णिमं जुत्तेत्ति वत्तव्वं सिया,

कुलसंज्ञक नक्षत्र, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का ज्येष्ठामूली पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

१२. प०—ता आसाढिण्णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(१२) प्र०—आषाढी पूर्णिमा को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लभइ कुलोवकुलं,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे उत्तरासाढा णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो उत्तराषाढा नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे पुव्वासाढा णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो पूर्वाषाढा नक्षत्र योग करता है।

आसाढिण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ,

इस प्रकार आषाढी पूर्णिमा को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा उवकुलेण वा जुत्ता आसाढिण्णं पुण्णिमं जुत्तेत्ति वत्तव्वं सिया,[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. ६, सु. ३९

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का आषाढी पूर्णिमा को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

१ (क) जंबु० वक्ख० ७ सु० १६१। (ख) चंद० पा० १० सु० ३९।

दुवालससु अमावासु कुलाइ-णक्खत्त-जोगसंखा—

६८. १. प०—ता साविट्ठिण्णं अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

उ०—कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुलं,

१. कुलं जोएमाणे महा णक्खत्ते जोएइ,

२. उवकुलं जोएमाणे असिलेसा जोएइ,

ता साविट्ठि णं अमावासं कुल वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ।

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता, साविट्ठी अमावासा जुत्ताति वत्तव्वं सिया।

२. प०—ता पोट्ठवइ णं अमावास किं कुलं जोएइ, उवकुल जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

उ०—कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुल,

१. कुलं जोएमाणे उत्तराफग्गुणी जोएइ,

२. उवकुलं जोएमाणे पुव्वाफग्गुणी जोएइ,

पुट्ठवइं णं अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुल वा जोएइ,

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता, पोट्ठवया अमावासा जुत्ताति वत्तव्वं सिया।

३. प०—ता आसोइं णं अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

उ०—कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुलं,

१. कुलं जोएमाणे चित्ता णक्खत्ते जोएइ,

२. उवकुलं जोएमाणे हत्थ णक्खत्ते जोएइ,

बारह अमावस्याओं में कुलादि नक्षत्रों की योग संख्या—

६७. (१) प्र०—श्रावणी अमावास्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है या कुलोपकुल-संज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता नहीं है।

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो मघा नक्षत्र योग करता है।

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो अश्लेषा नक्षत्र योग करता है।

इस प्रकार श्रावणी अमावास्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का श्रावणी अमावास्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

(२) प्र०—भाद्रपदी अमावास्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र योग करता है।

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र योग करता है।

इस प्रकार भाद्रपदी अमावास्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का भाद्रपदी अमावास्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

(३) प्र०—आसोजी अमावास्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुल-संज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो चित्रा नक्षत्र योग करता है।

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो हस्त नक्षत्र योग करता है।

ता आसोइं णं अमावासं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ,

इस प्रकार आसोजी अमावास्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता आसोइ अमावासा जुत्ता त्ति वत्तव्वं सिया,

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का आसोजी अमावास्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

४. प०—कत्तिइं णं अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(४) प्र०—कार्तिकी अमावास्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुलं,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे विसाहा णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो विशाखा नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे साई णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो स्वाति नक्षत्र योग करता है।

ता कत्तिइं णं अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ,

इस प्रकार कार्तिकी अमावास्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता कत्तिइ णं अमावासं जुत्तात्ति वत्तव्वं सिया,

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का कार्तिकी अमावास्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

५. प०—ता मग्गसिरिं णं अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(५) प्र०—मार्गसिरी अमावास्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

१. कुलं जोएमाणे मूल णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो मूल नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे, जेट्ठा णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो जेष्ठा नक्षत्र योग करता है।

३. कुलोवकुलं जोएमाणे अणुराहा णक्खत्ते जोएइ,

(३) कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो अनुराधा नक्षत्र योग करता है।

ता मग्गसिरिं णं अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ,

इस प्रकार मार्गसिरी अमावास्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता कुलोवकुलेण वा जुत्ता, मग्गसिरिं णं अमावासं जुत्तात्ति वत्तव्वं सिया।

कुलसंज्ञक नक्षत्र, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का मार्गसिरी अमावास्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

६. प०—ता पोसिं णं अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(६) प्र०—पोषी अमावास्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुलं,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे पुव्वासाढा णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो पूर्वाषाढा नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे उत्तरासाढा णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो उत्तराषाढा नक्षत्र योग करता है।

ता पोषि णं अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ,

इस प्रकार पौषी अमावास्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता, पोषि णं अमावासा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिया,

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का पौषी अमावास्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

७. प०—ता माहिं णं अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(७) प्र०—माही अमावास्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

१. कुलं जोएमाणे अभीयी णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो अभिजित् नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे सवणे णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो श्रवण नक्षत्र योग करता है।

३. कुलोवकुलं जोएमाणे धणिट्ठा णक्खत्ते जोएइ,

(३) कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो धनिष्ठा नक्षत्र योग करता है।

ता माहिं णं अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ,

इस प्रकार माही अमावास्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता, कुलोवकुलेण वा जुत्ता माहिं णं अमावासा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिया,

कुलसंज्ञक नक्षत्र, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का माही अमावास्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

८. प०—ता फग्गुणीणं अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(८) प्र०—फाल्गुनी अमावास्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुलं,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे सतभिसया णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो शतभिषक् नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे पुव्वापोट्ठवया णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र योग करता है।

ता फग्गुणी णं अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ,

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता फग्गुणी णं अमावासा जुत्तात्ति वत्तव्वं सिया,

९. प०—ता चेत्ति अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

उ०—कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुलं,

१. कुलं जोएमाणे रेवती णक्खत्ते जोएइ,

२. उवकुलं जोएमाणे अस्सिणी णक्खत्ते जोएइ,

ता चेत्ति अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ,

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता, चेत्ति अमावासा जुत्तात्ति वत्तव्वं सिया,

१०. प०—ता वेसाहिं अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

उ०—कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुलं,

१. कुलं जोएमाणे भरणि णक्खत्ते जोएइ,

२. उवकुलं जोएमाणे कत्तिया णक्खत्ते जोएइ,

ता वेसाहिं अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ,

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता वेसाहिं अमावासा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिया,

११. प०—ता जेट्ठामूली अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

इस प्रकार फाल्गुनी अमावास्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र को फाल्गुनी अमावस्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

(९) प्र०—चैत्री अमावास्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो रेवती नक्षत्र योग करता है।

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो अश्विनी नक्षत्र योग करता है।

इस प्रकार चैत्री अमावास्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का चैत्री अमावास्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

(१०) प्र०—वैशाखी अमावास्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो भरणी नक्षत्र योग करता है।

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो कृत्तिका नक्षत्र योग करता है।

इस प्रकार वैशाखी अमावास्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का वैशाखी अमावास्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

(११) प्र०—ज्येष्ठामूली अमावस्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ नो लब्भइ कुलोवकुलं,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है किन्तु कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग नहीं करता है।

१. कुलं जोएमाणे रोहिणी णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो रोहिणी नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे मग्गसिरे णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो मृगशिर नक्षत्र योग करता है।

ता जेट्ठामूली अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ,

इस प्रकार ज्येष्ठामूली अमावास्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है।

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता जेट्ठामूली अमावासा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिया

कुलसंज्ञक नक्षत्र और उपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का ज्येष्ठामूली अमावास्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

१२. प०—ता आसाढि अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

(१२) प्र०—आषाढी अमावस्या को क्या कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है ?

उ०—कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ,

उ०—कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र भी योग करता है।

१. कुलं जोएमाणे अद्दा णक्खत्ते जोएइ,

(१) कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो आर्द्रा नक्षत्र योग करता है।

२. उवकुलं जोएमाणे पुणव्वसू णक्खत्ते जोएइ,

(२) उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो पुनर्वसु नक्षत्र योग करता है।

३. कुलोवकुलं जोएमाणे पुस्से णक्खत्ते जोएइ,

(३) कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करे तो पुष्य नक्षत्र योग करता है।

ता आसाढि अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ,

इस प्रकार आषाढी अमावस्या को कुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र योग करता है और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र भी योग करता है।

कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता, कुलोवकुलेण वा जुत्ता, आसाढि अमावासा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिया।[1]
—सूरिय. पा. १०, पाहु. ६, सु. ३६

कुलसंज्ञक नक्षत्र, उपकुलसंज्ञक नक्षत्र और कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र का आषाढी अमावस्या को योग होने पर वह उसी नक्षत्र से युक्त कही जाती है।

णक्खत्ताणं पुव्वाइभागा खेत्त-कालप्पमाणं य—

नक्षत्रों का पूर्वादिभागों से योग क्षेत्र और काल प्रमाण—

९९. प०—ता कहं ते पुव्वभागा ? आहिए त्ति वएज्जा,

९९. प्र०—नक्षत्रों का पूर्वादिभागों से योग क्षेत्र और काल प्रमाण कैसा है ? कहें,

उ०—(क) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं

अत्थि णक्खत्ता पुव्वंभागा, समखेत्ता तीसइ मुहुत्ता पण्णत्ता।

उ०—(क) इन अट्ठाईस नक्षत्रों में—

[illegible]

---

1. (क) सूर्य० पाहु० १० सू० ६६। [illegible]

अत्थि णक्खत्ता पच्छंभागा, समखेत्ता तीसइ मुहुत्ता पण्णत्ता।

अत्थि णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढ खेत्ता पण्णरस-मुहुत्ता पण्णत्ता।

अत्थि णक्खत्ता उभयं भागा दिवड्ढ खेत्ता, पणयालीसं मुहुत्ता पण्णत्ता।

(क) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ता णं,

कयरे णक्खत्ता पुव्वं भागा, सम खेत्ता, तीसइ-मुहुत्ता पण्णत्ता ?

ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

कयरे णक्खत्ता पच्छंभागा समखेत्ता तीसइ-मुहुत्ता पण्णत्ता ?

ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

कयरे णक्खत्ता, णत्तंभागा अवड्ढखेत्ता पण्णरस-मुहुत्ता पण्णत्ता ?

ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

कयरे णक्खत्ता उभयंभागा दिवड्ढ खेत्ता, पणयालीसं-मुहुत्ता पण्णत्ता ?

-(क) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

तत्थ जे ते णक्खत्ता पुव्वं भागा, समखेत्ता, तीसइ मुहुत्ता पण्णत्ता, ते णं छ; तं जहा—१. पुव्वा पोट्ठवया, २. कत्तिया, ३. महा, ४. पुव्वाफग्गुणी, ५. मूलो, ६. पुव्वासाढा।

ता एएसि ण अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

तत्थ जे ते णक्खत्ता पच्छं भागा समक्खेत्ता तीसइ मुहुत्ता पण्णत्ता, ते णं दस, तं जहा—१. अभिई, २. सवणो, ३. धणिट्ठा, ४. रेवई, ५. अस्सिणी, ६. मिगसिरं, ७. पूसो, ८. हत्थो, ९. चित्ता, १०. अनुराहा।

ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

तत्थ जे ते णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढखेत्ता पण्णरस-मुहुत्ता पण्णत्ता, ते णं छ, तं जहा—१. सयभिसया, २. भरणी, ३. अद्दा, ४. अस्सेसा, ५. साती, ६. जेट्ठा।

(ख) कुछ नक्षत्र हैं जो दिन के अन्तिम भाग में (चन्द्र के साथ) समक्षेत्र में तीस मुहूर्त पर्यन्त योग करने वाले कहे गये हैं।

(ग) कुछ नक्षत्र हैं जो चन्द्र के साथ रात्रि के प्रारम्भ में (चन्द्र के साथ) आधे क्षेत्र में पन्द्रह मुहूर्त पर्यन्त योग करने वाले कहे गये हैं।

(घ) कुछ नक्षत्र हैं जो चन्द्र के साथ प्रथम दिन के प्रारम्भ से दूसरे दिन के सायंकाल तक डेढ़ क्षेत्र में पैंतालीस मुहूर्त पर्यन्त योग करने वाले कहे गये हैं।

प्र०—(क) इन अट्ठाईस नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं जो दिन के प्रारम्भ में चन्द्र के साथ सम-क्षेत्र में तीस मुहूर्त पर्यन्त योग करते हैं ?

(ख) इन अट्ठाईस नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं जो दिन के अन्तिम भाग में (चन्द्र के साथ) समक्षेत्र में तीस मुहूर्त पर्यन्त योग करने वाले कहे गये हैं ?

(ग) इन अट्ठाईस नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं जो रात्रि के प्रारम्भ में (चन्द्र के साथ) आधे क्षेत्र में पन्द्रह मुहूर्त योग करने वाले कहे गये हैं ?

(घ) इन अट्ठाईस नक्षत्रो में—

कितने नक्षत्र हैं जो प्रथम दिन के प्रारम्भ से दूसरे दिन के सायंकाल तक डेढ़ क्षेत्र में पैंतालीस मुहूर्त पर्यन्त योग करने वाले कहे गये हैं।

उ०—(क) इन अट्ठाईस नक्षत्रों में—

जो दिन के प्रारम्भ में (चन्द्र के साथ) समक्षेत्र में तीस मुहूर्त पर्यन्त योग करने वाले हैं वे छह हैं, यथा—(१) पूर्वाभाद्र-पद, (२) कृत्तिका, (३) मघा, (४) पूर्वाफाल्गुनी, (५) मूल, (६) पूर्वाषाढा।

(ख) इन अट्ठाईस नक्षत्रों में—

जो दिन के अन्त में (चन्द्र के साथ) समक्षेत्र में तीस मुहूर्त पर्यन्त योग करने वाले हैं, वे दश हैं, यथा—(१) अभिजित, (२) श्रवण, (३) धनिष्ठा, (४) रेवती, (५) अश्विनी, (६) मृग-शिरा, (७) पुष्य, (८) हस्त, (९) चित्रा, (१०) अनुराधा।

(ग) इन अट्ठाईस नक्षत्रों में—

जो रात्रि के प्रारम्भ में (चन्द्र के साथ) आधे क्षेत्र में पन्द्रह मुहूर्त पर्यन्त योग करने वाले हैं, वे छह हैं, यथा—(१) शतभिषक, (२) भरणी, (३) आर्द्रा, (४) अश्लेषा, (५) स्वाती, (६) ज्येष्ठा।

(घ) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

तत्थ जे ते णक्खत्ता उभयंभागा दिवड्ढ खेत्ता, पणयालीसं मुहुत्ता पण्णत्ता, ते णं छ, तं जहा—
१. उत्तरापोट्ठवया, २. रोहिणी ३. पुणव्वसू, ४. उत्तराफग्गुणी, ५. विसाहा, ६. उत्तरासाढा।[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. ३, सु. ३५

(घ) इन अट्ठाईस नक्षत्रों में—

जो नक्षत्र (चन्द्र के साथ) प्रथम दिन के प्रारम्भ से दूसरे दिन के सायंकाल तक डेढ़ क्षेत्र में पैंतालीस मुहूर्त पर्यन्त योग करने वाले हैं, वे छह हैं, यथा—(१) उत्तराभाद्रपद, (२) रोहिणी, (३) पुनर्वसु, (४) उत्तराफाल्गुनी, (५) विशाखा, (६) उत्तराषाढा।

णक्खत्ताणं अब्भतराइ चारं—

११००. १. प०—ता जंबुद्दीवे णं दीवे कयरे णक्खत्ते सव्वब्भंतरिल्लं चारं चरइ ?

२. प०—कयरे णक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरइ ?

३. प०—कयरे णक्खत्ते सव्वुवरिल्लं चारं चरइ ?

४. प०—कयरे णक्खत्ते सव्वहेट्ठिल्लं चारं चरइ ?

१. उ०—अभिई णक्खत्ते सव्वब्भंतरिल्लं चारं चरइ।[2]

२. उ०—मूले णक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरइ।[3]

३. उ०—साई णक्खत्ते सव्वुवरिल्लं चारं चरइ।

४. उ०—भरणी णक्खत्ते सव्वहेट्ठिल्लं चारं चरइ।[4]

—सूरिय. पा. १८, सु. ९३

नक्षत्रों का आभ्यन्तरादि संचरण—

१००. प्र०—(क) जम्बूद्वीप द्वीप में कौनसा नक्षत्र सर्वाभ्यन्तर मण्डल में गति करता है ?

(ख) जम्बूद्वीप द्वीप में कौनसा नक्षत्र सर्वबाह्य मण्डल में गति करता है ?

(ग) जम्बूद्वीप द्वीप में कौनसा नक्षत्र सर्वोपरि गति करता है ?

(घ) जम्बूद्वीप द्वीप में कौनसा नक्षत्र सबसे नीचे गति करता है ?

उ०—(क) अभिजित् नक्षत्र सर्वाभ्यन्तर मण्डल में गति करता है।

(ख) मूल नक्षत्र सर्व बाह्य मण्डल में गति करता है।

(ग) स्वाती नक्षत्र सर्वोपरि गति करता है।

(घ) भरणी नक्षत्र सबसे नीचे गति करता है।

णक्खत्ताण चन्देण जोगं—

१०१. (क) प०—ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—कि सया पादो चंदेण सद्धिं जोगं जोएंति ?

(ख) प०—ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—कि सया साय चंदेण सद्धिं जोगं जोएंति ?

नक्षत्रों का चन्द्र के साथ योग—

१०१. प्र०—(क) ये छप्पन नक्षत्र क्या प्रातःकाल चन्द्र के साथ योग करते हैं ?

(ख) ये छप्पन नक्षत्र क्या सदा सायंकाल चन्द्र के साथ योग करते हैं ?

(ग) प०—ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—किं सया दुहा पविसिय पविसिय चंदेण सद्धिं जोगं जोएंति?

(क) उ०—ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—न किं पि तं जं सया पादो चंदेण सद्धिं जोगं जोएंति,

(ख) उ०—न सया सायं चंदेण सद्धिं जोगं जोएंति,

(ग) उ०—न सया दुहओ पविसित्ता पविसित्ता चंदेण सद्धिं जोगं जोएंति, णण्णत्थ दोहिं अभिईहिं।

ता एएणं दो अभिई पायंचिय पायंचिय चोत्तालीसं चोत्तालीसं अमावासं जोएन्ति णो चेव णं पुण्णमासिणिं।[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. २२, सु. ६२

(ग) ये छप्पन नक्षत्र क्या प्रातः और सायं दोनों ओर से (आकाश में) प्रवेश करके चन्द्र के साथ योग करते हैं?

उ०—ये छप्पन नक्षत्र न सदा प्रातः चन्द्र के साथ योग करते हैं।

(ख) ये छप्पन नक्षत्र न सदा सायं चन्द्र के साथ योग करते हैं।

(ग) दो अभिजित् के अतिरिक्त ये छप्पन नक्षत्र प्रातः और सायं दोनों ओर से (आकाश में) प्रवेश करके चन्द्र के साथ योग नहीं करते हैं।

ये दो अभिजित् (प्रत्येक) चुमालीसवीं अमावस्या को प्रातः काल ही चन्द्र के साथ योग करते हैं (किन्तु) पूर्णिमा को चन्द्र के साथ योग नहीं करते हैं।

चंदमग्गे णक्खत्त जोगसंखा—

१०२. प०—ता कहं ते चंदमग्गा? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—१. ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं—

अत्थि णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणे णं जोगं जोएंति,

२. अत्थि णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स उत्तरेण जोगं जोएंति,

३. अत्थि णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणऽवि उत्तरेण वि पमद्दंपि जोगं जोएंति,

४. अत्थि णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणऽवि पमद्दंपि जोगं जोएंति,

५. अत्थि णक्खत्ता जे णं चंदस्स सया पमद्दं जोगं जोएंति,

प०—१. ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं—

कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणेणं जोगं जोएंति?

२. कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति?

३. कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणेणऽवि उत्तरेणऽवि पमद्दं जोगं जोएंति?

४. कयरे णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणऽवि पमद्दं जोगं जोएंति?

चन्द्र के मार्ग में योग करने वाले नक्षत्रों की संख्या—

१०२. प्र०—चन्द्र के मार्ग कितने हैं? कहें।

उ०—(१) इन अट्ठावीस नक्षत्रों में—

कुछ नक्षत्र हैं जो सदा चन्द्र के दक्षिण भाग में योग करते हैं।

(२) कुछ नक्षत्र हैं जो सदा चन्द्र के उत्तर भाग में योग करते हैं।

(३) कुछ नक्षत्र हैं जो दक्षिण भाग में भी और उत्तर भाग में भी प्रमर्द योग करते हैं।

(४) कुछ नक्षत्र हैं जो दक्षिण भाग में ही प्रमर्द योग करते हैं।

(५) कुछ नक्षत्र हैं जो चन्द्र के साथ सदा प्रमर्द योग करते हैं।

प्र०—(१) इन अट्ठावीस नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं जो सदा चन्द्र के दक्षिण भाग में योग करते हैं?

(२) कितने नक्षत्र हैं जो सदा चन्द्र के उत्तर भाग में योग करते हैं?

(३) कितने नक्षत्र हैं जो चन्द्र के दक्षिण में भी और उत्तर भाग में भी प्रमर्द योग करते हैं?

(४) कितने नक्षत्र हैं जो चन्द्र के दक्षिण भाग में ही प्रमर्द योग करते हैं?

---

१ चंद. पा. १० सु. ६२।

५. कयरे णक्खत्ता जे णं चंदस्स सया पमद्दं जोगं जोएंति ?

(५) कितने नक्षत्र हैं जो चन्द्र के साथ सदा प्रमर्द योग करते हैं ?

उ०—१. ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताण—
तत्थ जे णं णक्खत्ता सया चंदस्स दाहिणे णं जोगं जोएंति, ते णं छ, तं जहा—१. संठाणा, २. अद्दा, ३. पुस्सो ४. अस्सेसा, ५. हत्थो, ६. मूलो,

उ०—(१) इन अट्ठाईस नक्षत्रों में जो नक्षत्र सदा चन्द्र के दक्षिण भाग में योग करते हैं वे छह हैं, यथा—(१) मृगशिर, (२) आर्द्रा, (३) पुष्य, (४) अश्लेषा, (५) हस्त, (६) मूल ।

२. तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स उत्तरे णं जोगं जोएंति, ते ण बारस, त जहा—१. अभिई, २. सवणो, ३. धणिट्ठा, ४. सतभिसया, ५. पुव्व-भद्दवया, ६. उत्तरभद्दवया, ७. रेवई, ८. अस्सिणी, ६. भरणी,[1] १०. पुव्वफग्गुणी, ११. उत्तरफग्गुणी, १२. साती,

(२) जो नक्षत्र सदा चन्द्र के उत्तर भाग में योग करते हैं वे बारह हैं, यथा—(१) अभिजित्, (२) श्रवण, (३) धनिष्ठा, (४) शतभिषक्, (५) पूर्वाभाद्रपद, (६) उत्तराभाद्रपद, (७) रेवती, (८) अश्विनी, (९) भरणी, (१०) पूर्वाफाल्गुनी, (११) उत्तराफाल्गुनी, (१२) स्वाती ।

३. तत्थ जे ते णक्खत्ता जे ण चंदस्स दाहिणेणऽवि उत्तरेणऽवि पमद्दं जोगं जोएंति, ते णं सत्त, त जहा—१. कत्तिया, २. रोहिणी, ३. पुणव्वसू, ४. महा, ५. चित्ता, ६. विसाहा, ७. अणुराहा,[2]

(३) जो नक्षत्र चन्द्र के दक्षिण भाग में भी और उत्तर भाग में भी प्रमर्द योग करते हैं वे सात हैं, यथा—(१) कृत्तिका, (२) रोहिणी, (३) पुनर्वसु, (४) मघा, (५) चित्रा, (६) विशाखा, (७) अनुराधा ।

४. तत्थ जे ते णक्खत्ता जे ण चंदस्स दाहिणेणऽवि पमद्दं जोगं जोएंति, ताओ णं दो आसाढाओ सव्व-बाहिरे मण्डले जोगं जोएंसु वा, जोएंति वा, जोएस्संति वा,

(४) जो नक्षत्र चन्द्र के दक्षिण भाग में ही प्रमर्द योग करते हैं वे दो पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा हैं । जो सर्व बाह्य मण्डल में योग करते थे, योग करते हैं, और योग करेंगे ।

५. तत्थ जे ते णक्खत्ते जे णं सया चंदस्स पमद्दं जोगं जोएइ, सा णं एगा जेट्ठा,[3]
—सूरिय. पा. १०, पाहु. ११, सु० ४४

(५) जो नक्षत्र चन्द्र के साथ सदा प्रमर्द योग करता है वह एक ही ज्येष्ठा ।

दुवालसासु पुण्णमासिणीसु णक्खत्त-संजोग-संखा—

१०३. प०—ता कहं ते पुण्णिमासिणी ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमाओ बारस पुण्णिमासिणीओ, बारस अमावासाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. साविट्ठि, २. पोट्ठवई, ३. आसोया, ४. कत्तिया, ५. मग्गसिरी, ६. पोसी, ७. माही, ८. फग्गुणी, ९. चेती, १०. विसाही, ११. जेट्ठामूली, १२. आसाढी,

प०—१. ता साविट्ठिण्णं पुण्णमासिं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—ता तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—१. अभिई, २. सवणो, ३. धणिट्ठा,

प०—२. ता पोट्ठवईण्णं पुण्णमासिं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—ता तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—१. सतभिसया, २. पुव्वापोट्ठवया, ३. उत्तरापोट्ठवया,

प०—३. ता आसोईण्णं पुण्णमासिं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—१. रेवती, २. अस्सिणी य,

प०—४. ता कत्तिइण्णं पुण्णमासिं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—१. भरणी, २. कत्तिया य,

प०—५. ता मग्गसिरीं पुण्णिमासिं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—१. रोहिणी, २. मग्गसिरी य,

प०—६. ता पोसिण्णं पुण्णमासिं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—ता तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—१. अद्दा, २. पुणव्वसू, ३. पुस्सो,

(क्रमशः)

बारह पूर्णिमाओं में चन्द्र के साथ योग करने वाले नक्षत्रों की संख्या—

१०३. प्र०—पूर्णिमायें कितनी हैं ? कहें ।

उ०—बारह पूर्णिमायें और बारह अमावास्यायें कही गई हैं, यथा—

(१) श्रावणी, (२) भाद्रपदी, (३) आश्विनी, (४) कार्तिकी, (५) मार्गशिर्षी, (६) पौषी, (७) माघी, (८) फाल्गुनी, (९) चैत्री, (१०) वैशाखी, (११) ज्येष्ठामूली, (१२) आषाढ़ी ।

(१) प्र०—श्रावणी पूर्णिमा को चन्द्र के साथ कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—तीन नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) अभिजित्, (२) श्रवण, (३) धनिष्ठा ।

(२) प्र०—भाद्रपदी पूर्णिमा को चन्द्र के साथ कितने नक्षत्र योग करते है ?

उ०—तीन नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) शतभिषक्, (२) पूर्वभाद्रपद. (३) उत्तराभाद्रपद ।

(३) प्र०—आश्विनी पूर्णिमा को चन्द्र के साथ कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—दो नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) रेवती, (२) अश्विनी ।

(४) प्र०—कार्तिकी पूर्णिमा को चन्द्र के साथ कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—दो नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) भरणी, (२) कृत्तिका ।

(५) प्र०—मार्गशिर्षी पूर्णिमा को चन्द्र के साथ कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—दो नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) रोहिणी, (२) मृगशिरा ।

(६) प्र०—पौषी पूर्णिमा को चन्द्र के साथ कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—तीन नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) आर्द्रा, (२) पुनर्वसु, (३) पुष्य ।

---

(३) तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणओऽवि, उत्तरओऽवि पमद्दं जोगं जोएंति, ते ण सत्त, तं जहा—(१) कत्तिया, (२) रोहिणी, (३) पुणव्वसु, (४) मघा, (५) चित्ता, (६) विसाहा, (७) अणुराहा ।

(४) तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणओ पमद्दं जोगं जोएंति, ताओ णं दुवे आसाढाओ सव्व बाहिरए मंडलेजोगं जोएंसु वा, जोएंति वा, जोएस्संति वा ।

(५) तत्थ णं जे से णक्खत्ता, जे णं सया चंदस्स जोगं जोएइ सा णं एगा जेट्ठा । —जम्बु. वक्ख. ७, सु. १५६

(ख) चन्द. पा. १० सु. ४४ ।

उ०—दुण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—हत्थो, चित्ता य,

४. प०—ता कत्तिइं णं अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—दुण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—साती, विसाहा य,

५. प०—ता मग्गसिरिं णं अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—तिण्णि णक्खत्ता जोएंति तं जहा—अणुराहा, जेट्ठा, मूलो य,

६. प०—ता पोसिं णं अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—दुण्णि णक्खत्ता जोएंति तं जहा—पुव्वासाढा, उत्तरासाढा,

७. प०—ता माहिं णं अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—१. अभीयी, २. सवणो, ३. धणिट्ठा,

८. प०—ता फग्गुणी णं अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—दुण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—१. सतभिसया, २. पुव्वापोट्ठवया।

९. प०—ता चेत्तिं णं अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—दुण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—रेवई, अस्सिणी य,

१०. प०—ता विसाहिं णं अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—दुण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—भरणी, कत्तिया य,

११. प०—ता जेट्ठा-मूलिं णं अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—दुण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—रोहिणी, मग्गसिरं च,

१२. प०—ता आसाढिं णं अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—१. अद्दा, २. पुणव्वसु, ३. पुस्सो,[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. ६, सु. ३६

उ०—दो नक्षत्र योग करते हैं यथा—हस्त, चित्रा।

(४) प्र०—कार्तिकी अमावास्या को कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—दो नक्षत्र योग करते हैं यथा—स्वाती, विशाखा।

(५) प्र०—मार्गसिरी अमावास्या को कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—तीन नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) अनुराधा, (२) जेष्ठा, (३) मूल।

(६) प्र०—पौषी अमावास्या को कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—दो नक्षत्र योग करते हैं, यथा—पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा।

(७) प्र०—माघी अमावास्या को कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—तीन नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) अभिजित्, (२) श्रवण, (३) धनिष्ठा।

(८) प्र०—फाल्गुनी अमावास्या को कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—दो नक्षत्र योग करते हैं यथा—(१) शतभिषक्, (२) पूर्वाभाद्रपद।

(९) प्र०—चैत्री अमावास्या को कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—दो नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) रेवती, (२) अश्विनी।

(१०) प्र०—वैशाखी अमावास्या को कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—दो नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) भरणी, (२) कृत्तिका।

(११) प्र०—ज्येष्ठामूली अमावस्या को कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—दो नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) रोहिणी, (२) मृगसिर।

(१२) प्र०—आषाढ़ी अमावास्या को कितने नक्षत्र योग करते हैं ?

उ०—तीन नक्षत्र योग करते हैं, यथा—(१) आर्द्रा, (२) पुनर्वसु, (३) पुष्य।

---

1 चंद. पा. १० सु. ३६।

(ग) जम्बु. वक्ख. ७ सु. १६१।

दुवालसपुण्णिमासु अमावासासु य चंदेण-णक्खत्त संजोगो—

११०५. १. प०—ता कहं ते सण्णिवाए ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—(क) ता जया णं साविट्ठी पुण्णिमा भवइ,
तया णं माही अमावासा भवइ ।

(ख) ता जया णं माही पुण्णिमा भवइ,
तया णं साविट्ठी अमावासा भवइ ।

२. (क) ता जया णं पुट्ठवई पुण्णिमा भवइ,
तया णं फग्गुणी अमावासा भवइ ।

(ख) ता जया णं फग्गुणी पुण्णिमा भवइ,
तया णं पुट्ठवई अमावासा भवइ ।

३. (क) ता जया णं आसोई पुण्णिमा भवइ,
तया णं चेत्ती अमावासा भवइ ।

(ख) ता जया णं चेत्ती पुण्णिमा भवइ,
तया णं आसोई अमावासा भवइ ।

४. (क) ता जया णं कत्तिई पुण्णिमा भवइ
तया णं वेसाही अमावासा भवइ ।

(ख) ता जया णं वेसाही पुण्णिमा भवइ,
तया णं कत्तिई अमावासा भवइ ।

बारह पूर्णिमाओं और अमावस्याओं में चन्द्र के साथ नक्षत्रों का योग

११०५. (१) प्र०—(बारह पूर्णिमाओं और अमावस्याओं में चन्द्र के साथ नक्षत्रों का) सन्निपात योग किस प्रकार का है ? कहें ।

उ०—(क) जब श्रावणी पूर्णिमा को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) अभिजित्, (२) श्रवण, (३) धनिष्ठा) योग करते हैं तब माघी अमावस्या को (तीन नक्षत्र (१) अभिजित्, (२) अश्लेषा, (३) मघा चन्द्र के साथ) योग करते हैं ।

(ख) जब माघी पूर्णिमा को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) अभिजित्, (२) अश्लेषा, (३) मघा) योग करते हैं तब श्रावणी अमावस्या को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) अभिजित्, (२) श्रवण, (३) धनिष्ठा) योग करते हैं ।

(२) (क) जब भाद्रपदी पूर्णिमा को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) पूर्वाभाद्रपद, (२) उत्तराभाद्रपद, (३) शतभिषक्) योग करते हैं तब फाल्गुनी अमावस्या को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) पूर्वाफाल्गुनी, (२) उत्तराफाल्गुनी, (३) शतभिषक्) योग करते हैं ।

(ख) जब फाल्गुनी पूर्णिमा को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) पूर्वाफाल्गुनी, (२) उत्तराफाल्गुनी, (३) शतभिषक्) योग करते हैं तब भाद्रपदी अमावस्या को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) पूर्वाभाद्रपद, (२) उत्तराभाद्रपद, (३) शतभिषक्) योग करते हैं ।

(३) (क) जब आसोजी पूर्णिमा को (चन्द्र के साथ दो नक्षत्र (१) अश्विनी, (२) रेवती) योग करते हैं तब चैत्री अमावस्या को (चन्द्र के साथ [illegible]) योग करते हैं ।

५. (क) ता जया णं मग्गसिरी पुण्णिमा भवइ,
तया णं जेट्ठामूली अमावासा भवइ।

(५) (क) जब मार्गसिरी पूर्णिमा को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) अनुराधा, (२) रोहिणी, (३) मृगशिरा) योग करते हैं तब ज्येष्ठामूली अमावास्या को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) अनुराधा, (२) ज्येष्ठा, (३) मूल) योग करते हैं।

(ख) ता जया णं जेट्ठामूली पुण्णिमा भवइ,
तया णं मग्गसिरी अमावासा भवइ।

(ख) जब ज्येष्ठामूली पूर्णिमा को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) अनुराधा, (२) ज्येष्ठा, (३) मूल) योग करते हैं तब मार्गसिरी अमावास्या को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) अनुराधा, (२) रोहिणी, (३) मृगशिरा) योग करते हैं।

६. (क) ता जया णं पोसी पुण्णिमा भवइ,
तया णं आसाढी अमावासा भवइ।

(६) (क) जब पौषी पूर्णिमा को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) आर्द्रा, (२) पुनर्वसु, (३) पुष्य) योग करते हैं तब आषाढी अमावास्या को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) आर्द्रा, (२) पूर्वाषाढा, (३) उत्तराषाढा) योग करते हैं।

(ख) ता जया णं आसाढी पुण्णिमा भवइ,
तया णं पोसी अमावासा भवइ।[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. ७, सु. ४०

जब आषाढी पूर्णिमा को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र, (१) आर्द्रा, (२) पूर्वाषाढा, (३) उत्तराषाढा) योग करते हैं तब पौषी अमावास्या को (चन्द्र के साथ तीन नक्षत्र (१) आर्द्रा, (२) पुनर्वसु, (३) पुष्य) योग करते हैं।

वास-हेमन्त-गिम्ह-राइंदियाणं—

वर्षा हेमन्त और ग्रीष्म के दिन-रात पूर्ण करने वाले नक्षत्रों की संख्या—

११०६. प०—(क) ता कहं ते णेता ? आहिए त्ति वएज्जा,

११०६. (१) प्र०—वर्षा, हेमन्त और ग्रीष्म के दिन-रात कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ? कहें।

(ख) १. ता वासाणं पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०— ता चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—१. उत्तरासाढा, २. अभिई, ३. सवणो, ४. धणिट्ठा,

१. उत्तरासाढा चोद्दस अहोरत्ते णेइ,

२. अभिई सत्त अहोरत्ते णेइ,

३. सवणे अट्ठ अहोरत्ते णेइ,

४. धणिट्ठा एगं अहोरत्तं णेइ,

तंसि णं मासंसि चउरंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ।

तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे दो पादाइं चत्तारि य अंगुलाणि पोरिसी भवइ,

वर्षा ऋतु के प्रथम मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०—चार नक्षत्र पूर्ण करते हैं, यथा—(१) उत्तराषाढा, (२) अभिजित्, (३) श्रवण, (४) धनिष्ठा।

(१) उत्तराषाढा चौदह अहोरात्र पूर्ण करता है।

(२) अभिजित् सात अहोरात्र पूर्ण करता है।

(३) श्रवण आठ अहोरात्र पूर्ण करता है।

(४) धनिष्ठा एक अहोरात्र पूर्ण करता है।

उस मास में चार अंगुल पौरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण करता है।

उस मास के अन्तिम दिन में दो पैर और चार अंगुल पौरुषी होती है।

प०—२. ता वासाणं बितियं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

(२) प्र०—वर्षा ऋतु के द्वितीय मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०— ता चत्तारि णक्खत्ता णेंति तं जहा—१. धणिट्ठा, २. सयभिसया, ३. पुव्वपोट्ठवया, ४. उत्तरपोट्ठवया.

उ०—चार नक्षत्र पूर्ण करते हैं यथा—(१) धनिष्ठा, (२) शतभिषक, (३) पूर्वाभाद्रपद, (४) उत्तराभाद्रपद।

---

१ (क) [illegible] सु. ४०।

(ख) जम्बु. वक्ख. ७ सु. १६१।

१. धणिट्ठा चोद्दस अहोरत्ते णेइ,

२. सतभिसया सत्त अहोरत्ते णेइ,

३. पुव्व पोट्ठवया अट्ठ अहोरत्ते णेइ,

४. उत्तर पोट्ठवया एग अहोरत्तं णेइ,

तंसि णं मासंसि अट्ठंगुल पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ,

तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे दो पायाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवइ,

प०—३. ता वासाणं ततियं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०—ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—१. उत्तरपोट्ठवया, २. रेवई, ३. अस्सिणी,

१. उत्तरपोट्ठवया चोद्दस अहोरत्ते णेइ,

२. रेवई पण्णरस अहोरत्ते णेइ,

३. अस्सिणी एगं अहोरत्तं णेइ,

तंसि च णं मासंसि दुवालसंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ,

तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिहत्थाइं तिण्णि पयाइं पोरिसी भवइ,

प०—४. ता वासाणं चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०—ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—१. अस्सिणी, २. भरणी, ३. कत्तिया,

१. अस्सिणी चउद्दस अहोरत्ते णेइ,

२. भरणी पण्णरस अहोरत्ते णेइ,

३. कत्तिया एगं अहोरत्तं णेइ,

तंसि च णं मासंसि सोलसंगुला पोरिसी छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ,

तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिण्णि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ,

प०—१. ता हेमंताणं पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०—ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—१. कत्तिया, २. रोहिणी, ३. संठाणा,

१. कत्तिया चोद्दस अहोरत्ते णेइ,

२. रोहिणी पण्णरस अहोरत्ते णेइ,

३. संठाणा एगं अहोरत्तं णेइ,

(१) धनिष्ठा चौदह अहोरात्र पूर्ण करता है।

(२) शतभिषक् सात अहोरात्र पूर्ण करता है।

(३) पूर्वाभाद्रपद आठ अहोरात्र पूर्ण करता है।

(४) उत्तराभाद्रपद एक अहोरात्र पूर्ण करता है।

इस मास में आठ अंगुल पोरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण करता है।

इस मास के अन्तिम दिन में दो पैर और आठ अंगुल पोरुषी होती है।

(३) प्र०—वर्षा ऋतु के तृतीय मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०—तीन नक्षत्र पूर्ण करते हैं, यथा—(१) उत्तराभाद्रपद, (२) रेवती, (३) अश्विनी।

(१) उत्तराभाद्रपद चौदह अहोरात्र पूर्ण करता है।

(२) रेवती पन्द्रह अहोरात्र पूर्ण करता है।

(३) अश्विनी एक अहोरात्र पूर्ण करता है।

इस मास में बारह अंगुल पोरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण करता है।

इस मास के अन्तिम दिन में तीन पैर पोरुषी होती है।

(४) प्र०—वर्षा ऋतु के चौथे मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०—तीन नक्षत्र पूर्ण करते हैं, यथा—(१) अश्विनी, (२) भरणी, (३) कृत्तिका।

(१) अश्विनी चौदह अहोरात्र पूर्ण करता है।

(२) भरणी पन्द्रह अहोरात्र पूर्ण करता है।

(३) कृत्तिका एक अहोरात्र पूर्ण करता है।

इस मास में सोलह अंगुल पोरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण

तंसि च णं मासंसि वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ,

तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिण्णि पयाइं अट्ठअंगुलाइं पोरिसी भवइ,

प०—२. ता हेमंताणं बितियं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०—ता चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—१. संठाणा, २. अद्दा, ३. पुणव्वसु, ४. पुस्सो,

१. संठाणा चोद्दस अहोरत्ते णेइ,
२. अद्दा सत्त अहोरत्ते णेइ,
३. पुणव्वसु अट्ठ अहोरत्ते णेइ,
४. पुस्से एगं अहोरत्ते णेइ,

तंसि च णं मासंसि वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ,

तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहट्ठाइं चत्तारि पदाई पोरिसी भवइ,

प०—३. ता हेमंताणं ततियं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०—ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—१. पुस्सो, २. अस्सेसा, ३. महा,

१. पुस्सो चोद्दस अहोरत्ते णेइ,
२. अस्सेसा पंचदस अहोरत्ते णेइ,
३. महा एगं अहोरत्तं णेइ,

तंसि च णं मासंसि वीसंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ,

तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिण्णि पदाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवइ,

प०—४. ता हेमंताणं चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०—ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—१. मघा, २. पुव्वाफग्गुणि, ३. उत्तराफग्गुणि।

१. मघा चोद्दस अहोरत्ते णेइ,
२. पुव्वाफग्गुणी पण्णरस अहोरत्ते णेइ,
३. उत्तराफग्गुणी एगं अहोरत्तं णेइ,

तंसि च णं मासंसि सोलस अंगुलाइं पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ।

तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिण्णि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ।

उस मास में बीस अंगुल पौरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण करता है।

उस मास के अन्तिम दिन में तीन पैर और आठ अंगुल पौरुषी होती है।

(६) प्र०—हेमन्त ऋतु के द्वितीय मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०—चार नक्षत्र पूर्ण करते हैं यथा—(१) मृगशिर, (२) आर्द्रा, (३) पुनर्वसु, (४) पुष्य।

(१) मृगशिर चौदह अहोरात्र पूर्ण करता है।
(२) आर्द्रा सात अहोरात्र पूर्ण करता है।
(३) पुनर्वसु आठ अहोरात्र पूर्ण करता है।
(४) पुष्य एक अहोरात्र पूर्ण करता है।

उस मास में बीस अंगुल पौरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण करता है।

उस मास के अन्तिम दिन में रेखास्थ चार पैर पौरुषी होती है।

(७) प्र०—हेमन्त ऋतु के तृतीय मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०—तीन नक्षत्र पूर्ण करते हैं यथा—(१) पुष्य, (२) अश्लेषा, (३) मघा।

(१) पुष्य चौदह अहोरात्र पूर्ण करता है।
(२) अश्लेषा पन्द्रह अहोरात्र पूर्ण करता है।
(३) मघा एक अहोरात्र पूर्ण करता है।

उस मास में बीस अंगुल पौरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण करता हैं।

उस मास के अन्तिम दिन में तीन पैर और आठ अंगुल से पौरुषी होती है।

(८) प्र०—हेमन्त ऋतु के चौथे मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०—तीन नक्षत्र पूर्ण करते हैं यथा—(१) मघा, (२) पूर्वाफाल्गुनी, (३) उत्तराफाल्गुनी।

(१) मघा चौदह अहोरात्र पूर्ण करता है।
(२) पूर्वाफाल्गुनी पन्द्रह अहोरात्र पूर्ण करता है।
(३) उत्तराफाल्गुनी एक अहोरात्र पूर्ण करता है।

उस मास में सोलह अंगुल पौरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण करता है।

उस मास के अन्तिम दिन में तीन पैर और चार अंगुल पौरुषी होती है।

१. मूलो चोद्दस अहोरत्ते णेइ,
२. पुव्वासाढा पण्णरस अहोरत्ते णेइ,
३. उत्तरासाढा एगं अहोरत्त णेइ,

तंसि च णं मासंसि वट्टाए समचउरंस संठियाए णग्गोध परिमंडलाए सकायमणुरंगिणीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ।

तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहट्ठाइं दो पदाइं पोरिसीए भवइ।[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. १०, सु. ४३

(१) मूल चौदह अहोरात्र पूर्ण करता है।
(२) पूर्वाषाढा पन्द्रह अहोरात्र पूर्ण करता है।
(३) उत्तराषाढा एक अहोरात्र पूर्ण करता है।

उस मास में वृत्त समचोरस वट वृक्ष के समान अपने शरीर के अनुरूप छाया से सूर्य परिभ्रमण करता है।

उस मास के अन्तिम दिन में रेखास्थ दो पैर पौरुषी होती है।

णक्खत्तमंडलाणं संखा—

१०७. प०—कइ णं भंते ! णक्खत्तमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अट्ठ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता।

प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयं खेत्तं ओगाहित्ता केवइया णक्खत्तमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे असियं जोयणसयं ओगाहेत्ता एत्थ णं दो णक्खत्तमंडला पण्णत्ता।

प०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइयं खेत्तं ओगाहित्ता केवइआ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसे जोयणसए ओगाहित्ता एत्थ णं छ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे लवणे समुद्दे अट्ठ णक्खत्तमंडला भवंतीतिमक्खायं।

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १४६

नक्षत्र मण्डलों की संख्या—

१०७. प्र०—भगवन् ! नक्षत्र मण्डल कितने कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! आठ नक्षत्र मण्डल कहे गये हैं।

प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में कितना क्षेत्र अवगाहन करने पर कितने नक्षत्र मण्डल कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में एक सौ अस्सी योजन अवगाहन करने पर दो नक्षत्र मण्डल कहे गये हैं।

प्र०—भगवन् ! लवण समुद्र में कितना क्षेत्र अवगाहन करने पर कितने नक्षत्र मण्डल कहे गये हैं।

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र में तीन सौ तीस योजन अवगाहन करने पर छ नक्षत्र मण्डल कहे गये हैं।

इस प्रकार जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र में आठ नक्षत्र मण्डल होते हैं—ऐसा कहा गया है।

बाहिराब्भंतर णक्खत्तमंडलाणमंतरं—

१०८. प०—सव्वब्भंतराओ णं भंते ! णक्खत्तमंडलाओ केवइआए अवाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमण्डले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पंचदसुत्तरे जोयणसए अवाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमण्डले पण्णत्ते।

—जंबु० वक्ख० ७, सु० १४६

आभ्यन्तर और बाह्य नक्षत्र मण्डलों का अन्तर—

१०८. प्र०—भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर नक्षत्र मण्डल से सर्वबाह्य नक्षत्र मण्डल कितनी दूरी पर कहा गया है ?

उ०—गौतम ! सर्वाभ्यन्तर नक्षत्र मण्डल से पाँच सौ दस योजन की दूरी पर सर्वबाह्य नक्षत्र मण्डल कहा गया है।

णक्खत्तमंडलाणमंतरं—

१०९. प०—णक्खत्त मण्डलस्स णं भंते ! णक्खत्तमण्डलस्स य एस णं केवइयाए अवाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! दो जोयणाइं णक्खत्तमण्डलस्स णक्खत्तमण्डलस्स य अवाहाए अन्तरे पण्णत्ते।

—जंबु० वक्ख० ७, सु० १४६

नक्षत्र मन्डलों का अन्तर—

१०९. प्र०—भगवन् ! एक नक्षत्र मण्डल से दूसरे नक्षत्र मण्डल का अन्तर कितना कहा गया है ?

उ०—गौतम ! एक नक्षत्र मण्डल से दूसरे नक्षत्र मण्डल का अन्तर दो योजन कहा गया है।

१ चन्द. पा. १०, सु. ४३।

सव्वब्भंतर-बाहिरमण्डलेसु एगमेगे मुहुत्ते णक्खत्तगइ परूवणं—

१११३. प०—जया णं भंते ! णक्खत्ते सव्वब्भंतर मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते णं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि अ पण्णट्ठे जोयणसए अट्ठारस य भागसहस्से दोण्णि य तेवट्ठे भागसए गच्छइ। मंडलं एक्कवीसाए भागसहस्सेहिं णवहि अ सट्ठेहिं सएहिं छेत्ता।

प०—जया णं भंते ! णक्खत्ते सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। तया णं एगमेगे णं मुहुत्ते केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच जोयणसहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे जोयणसए सोलस य भागसहस्सेहिं तिण्णि य पणसट्ठे भागसए गच्छइ। मण्डलं एक्कवीसाए भागसहस्सेहिं णवहि य सट्ठेहिं छेत्ता।

—जंबु० वक्ख० ७, सु० १४६

सर्वाभ्यन्तर और सर्वबाह्य मण्डलों के प्रत्येक मुहूर्त में नक्षत्र की गति का प्ररूपण—

१११३. प्र०—भगवन् ! नक्षत्र जब सर्वाभ्यन्तर मण्डल पर संक्रमण करके गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में कितना क्षेत्र चलता है ?

उ०—गौतम ! नक्षत्र प्रत्येक मुहूर्त में पाँच हजार दो सौ पैंसठ योजन और मण्डल के इक्कीस हजार नौ सौ साठ भागों में से अठारह हजार दो सौ त्रेसठ भाग जितना चलता है।

प्र०—भगवन् ! नक्षत्र जब सर्वबाह्य मण्डल पर संक्रमण करके गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त में कितना क्षेत्र चलता है ?

उ०—गौतम ! नक्षत्र प्रत्येक मुहूर्त में पाँच हजार तीन सौ उन्नीस योजन और मण्डल के इक्कीस हजार नौ सौ साठ भागों में से सोलह हजार तीन सौ पैंसठ भाग जितना चलता है।

चंदमण्डल मिलिया णक्खत्त मण्डला—

१११४. प०—एए णं भंते ! अट्ठ णक्खत्तमण्डला कतिहिं चंदमंडलेहिं समोअरंति ?

उ०—अट्ठहिं चंदमंडलेहिं समोअरंति; तं जहा—

१. पढमे चन्दमण्डले,
२. ततिए,
३. छट्ठे,
४. सत्तमे,
५. अट्ठमे,
६. दसमे,
७. इक्कारसमे,
८. पण्णरसमे चंदमण्डले,

—जंबु० वक्ख० ७, सु० १४६

चन्द्र मण्डलों से मिले हुए नक्षत्र मण्डल—

१११४. प्र०—भगवन् ! ये आठ नक्षत्र मण्डल कितने चन्द्र मण्डलों के साथ मिले हुए हैं ?

उ०—गौतम ! ये आठ नक्षत्र मण्डल आठ चन्द्र मण्डलों के साथ मिले हुए है, यथा—

प्रथम चन्द्र मण्डल के साथ प्रथम नक्षत्र मण्डल।
तृतीय चन्द्र मण्डल के साथ तृतीय नक्षत्र मण्डल,
छठे चन्द्र मण्डल के साथ तृतीय नक्षत्र मण्डल,
सातवें चन्द्र मण्डल के साथ चतुर्थ नक्षत्र मण्डल,
आठवें चन्द्र मण्डल के साथ पंचम नक्षत्र मण्डल.
दसवें चन्द्र मण्डल के साथ छठा नक्षत्र मण्डल,
इग्यारहवें चन्द्र मण्डल के साथ सातवाँ नक्षत्र मण्डल,
पन्द्रहवें चन्द्र मण्डल के साथ आठवाँ नक्षत्र मण्डल।

एगमेगे मुहुत्ते णक्खत्तेण मण्डल भागगमणं—

१११५. प०—एगमेगे णं भंते ! मुहुत्ते णं णक्खत्ते केवइयाइं भाग सयाइं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! जं जं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तस्स तस्स मण्डल परिक्खेवस्स अट्ठारस्स पणतीसे भागसए गच्छइ। मण्डलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउइए अ सएहिं छेत्ता। —जंबु० वक्ख० ७, सु० १४६

प्रत्येक मुहूर्त में नक्षत्र द्वारा मण्डल के भागों में गमन—

१११५. प्र०—भगवन् ! नक्षत्र प्रत्येक मुहूर्त में कितने सौ भागों में गति करता है ?

उ०—गौतम ! नक्षत्र जिस जिस मण्डल पर संक्रमण करता है उस उस मण्डल की परिधि के एक लाख अट्ठाणवें सौ भागों में से एक हजार आठ सौ पैंतीस भाग चलता है।

णक्खत्त मण्डलाणं सीमाविक्खंभो—

११६. प०—ता कहं ते सीमाविक्खंभे ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—(क) ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—

अत्थि णक्खत्ता, जेसि णं छसया तीसा सत्तसट्ठि भाग तीसइ भागाणं सीमाविक्खंभो,

(ख) अत्थि णक्खत्ता जेसि णं सहस्सं पंचोत्तरं सत्तसट्ठि भाग तीसइ भागाणं सीमा विक्खंभो,

(ग) अत्थि णक्खत्ता जेसि णं दो सहस्सा दसुत्तरा सत्तसट्ठि भाग तीसइ भागाणं सीमाविक्खंभो,

(घ) अत्थि णक्खत्ता जेसि णं तिसहस्सं पंचदसुत्तरं सत्तसट्ठिभाग तीसइ भागाणं सीमा विक्खंभो,

प०—(क) ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—

कयरे णक्खत्ता जेसि णं छ सया तीसा सत्तसट्ठि भाग तीसइ भागाणं सीमा विक्खंभो ?

(ख) कयरे णक्खत्ता जेसि णं सहस्सं पंचोत्तरं सत्तसट्ठि भाग तीसइ भागाणं सीमा विक्खंभो ?

(ग) कयरे णक्खत्ता जेसि णं दो सहस्सा दसुत्तरा सत्तसट्ठि भाग तीसइ भागाणं सीमा विक्खंभो ?

(घ) कयरे णक्खत्ता जेसि णं तिसहस्सं पंचदसुत्तरं सत्तसट्ठिभाग तीसइ भागाणं सीमा विक्खंभो ?

उ०—(क) ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—

तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं छ सया तीसा सत्तसट्ठिभाग तीसइ भागे णं सीमा विक्खंभो, ते णं दो अभिई ।

(ख) तत्थ जे ते णक्खत्ता, जेसि णं सहस्सं पंचुत्तरं सत्तसट्ठिभाग तीसइ भागे णं सीमा विक्खंभो, ते णं बारस तं जहा—

१. दो सतभिसया, २. दो भरणी, ३. दो अद्दा, ४. दो अस्सेसा, ५. दो साती, ६. दो जेट्ठा ।

नक्षत्रों के मण्डलों का सीमा विष्कम्भ—

११६. प्र०—नक्षत्रों (के मण्डलों) का सीमा विष्कम्भ कितना है ? कहें ।

उ०—(क) इन छप्पन नक्षत्रों में—

कुछ नक्षत्र हैं, (जिनके मण्डलों) का सीमा विष्कम्भ छ सौ तीस योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितना हैं।

(ख) कुछ नक्षत्र हैं, जिन (के मण्डलों) का सीमा विष्कम्भ एक हजार पाँच योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितना है।

(ग) कुछ नक्षत्र हैं, जिन (के मण्डलों) का सीमा विष्कम्भ दो हजार दस योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितना है।

(घ) कुछ नक्षत्र हैं, जिन (के मण्डलों) का सीमा विष्कम्भ तीन हजार पन्द्रह योजन और एक योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितना है ।

प्र० - (क) इन छप्पन नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं, जिन (के मण्डलों) का सीमा विष्कम्भ छ सौ तीस योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितना है ?

(ख) कितने नक्षत्र हैं, जिन (के मण्डलों) का सीमा विष्कम्भ एक हजार पाँच योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितना है ?

(ग) कितने नक्षत्र हैं, जिन (के मण्डलों) का सीमा विष्कम्भ दो हजार दस योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितना है ?

(घ) कितने नक्षत्र हैं, जिन (के मण्डलों) का सीमा विष्कम्भ तीन हजार पन्द्रह योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितना है ?

उ०—इन छप्पन नक्षत्रों में—

जो नक्षत्र छ सौ तीस योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितने (मण्डलों के) सीमा विष्कम्भ वाले हैं वे दो अभिजित् हैं ।

(ख) जो नक्षत्र एक हजार पाँच योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितने (मण्डल के) सीमा विष्कम्भ वाले है वे बारह है, यथा—

(१) दो शतभिषक्, (२) दो भरणी, (३) दो आर्द्रा, (४) दो अश्लेषा, (५) दो स्वाति, (६) दो ज्येष्ठा ।

(ग) तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं दो सहस्सा दसुत्तरा सत्तसट्ठिभाग तीसइ भागे णं सीमा विक्खंभो, ते णं तीसं, तं जहा—

१. दो सवणा, २. दो धणिट्ठा, ३. दो पुव्वा भद्दवया, ४. दो रेवई, ५. दो अस्सिणी, ६. दो कत्तिया, ७. दो संठाणा, ८. दो पुस्सा, ९. दो महा, १०. दो पुव्वाफग्गुणी, ११. दो हत्था, १२. दो चित्ता, १३. दो अणुराहा, १४. दो मूला, १५. दो पुव्वासाढा,

(ग) जो नक्षत्र दो हज़ार दस योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितने (मण्डल के) सीमा विष्कम्भ वाले हैं वे तीस हैं यथा—

(१) दो श्रवण, (२) दो धनिष्ठा, (३) दो पूर्वाभाद्रपद, (४) दो रेवती, (५) दो अश्विनी (६) दो कृत्तिका, (७) दो मृगसिर, (८) दो पुष्य, (९) दो मघा, (१०) दो पूर्वाफाल्गुनि (११) दो हस्त, (१२) दो चित्रा, (१३) दो अनुराधा, (१४) दो मूल, (१५) दो पूर्वापाढा ।

(घ) तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं तिण्णि सहस्सा पण्णरसुत्तरा सत्तसट्ठिभाग तीसइ भागे णं सीमा विक्खंभो, ते णं वारस तं जहा—

१. दो उत्तरापोट्ठवया, २. दो रोहिणी, ३. दो पुणव्वसु, ४. दो उत्तराफग्गुणी, ५. दो विसाहा, ६. दो उत्तरासाढा ।[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. २२, सु. ६१

(घ) जो नक्षत्र तीन हजार पन्द्रह योजन और एक योजन के सड़सठ भागों में से तीस भाग जितने (मण्डल के) सीमा विष्कम्भ वाले हैं; वे वारह हैं यथा—

(१) दो उत्तराभाद्रपद, (२) दो रोहिणी, (३) दो पुनर्वसु, (४) दो उत्तराफाल्गुनि, (५) दो विशाखा, (६) दो उत्तरापाढा ।

णक्खत्ताणं सीमाविक्खंभो समांसो—

११७. सव्वेसि ऽि णं नक्खत्ताणं सीमाविक्खंभेणं सत्तट्ठिं भागं भइए समंसे पण्णत्ते ।

—सम. ६७, सु. ४

नक्षत्रों का सीमा-विष्कम्भ समांश—

११७. सभी नक्षत्रों के सीमा-विष्कम्भ का समांश एक योजन के सड़सठ भागों में विभाजित करने पर होता है ।

चंदस्स मण्डले कत्तिया णक्खत्तस्स गइ—

११८. कत्तियाणक्खत्ते सव्वबाहिराओ मण्डलाओ दसमे मण्डले चारं चरइ ।

—ठाणं० १०, सु० ७८०

चन्द्र मण्डल में कृत्तिका नक्षत्र की गति—

११८. कृत्तिका नक्षत्र चन्द्र के सर्व वाह्य मण्डल से दसवें मण्डल में भ्रमण करता है ।

चंदस्स मण्डले अणुराहा णक्खत्तस्स गइ—

११९. अणुराहा णक्खत्ते सव्वब्भंतराओ मण्डलाओ दसमे मण्डले चारं चरइ ।

—ठाणं० १०, सु० ७८०

चन्द्र मण्डल में अनुराधा नक्षत्र की गति—

११९. अनुराधा नक्षत्र चन्द्र के सर्व आभ्यन्तर मण्डल से दसवें मण्डल में भ्रमण करता है ।

चंदस्स पिट्ठभागे गममाणा णव णक्खत्ता—

१२०. नव नक्खत्ता चन्दस्स पच्छंभागा पण्णत्ता, तं जहा—

गाहा—

अभिई सवणो धणिट्ठा, रेवइ अस्सिणि मग्गसिरं पूसो ।
हत्थो चित्ता य तहा—पच्छंभागा नव हवंति ॥१॥

—ठाणं० ९, सु० ६६४

चन्द्र के पृष्ठभाग पर गति करने वाले नौ नक्षत्र है—

१२०. नौ नक्षत्र चन्द्र के पीछे से गति करते हैं, यथा—

गाथा—

(१) अभिजित् (२) श्रवण (३) धनिष्ठा
(४) रेवती (५) अश्विनी (६) मृगशिरा
(७) पुष्य (८) हस्त (९) चित्रा

---

१ चन्द. पा. १० सु. ६१ ।

णक्खत्ताणं सरूव परूवणं—

१२१. प०—ता कहं ते णक्खत्त विजय ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डाए-जाव-एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं, सोलससहस्साइं, दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे, अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस अंगुलाइं, अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते,

(क) ता जंबुद्दीवे णं दीवे—
दो चन्दा १. पभासेंसु वा, २. पभासेंति वा, ३. पभासिस्संति वा,

(ख) दो सूरिया १. तविंसु वा, २. तवेंति वा, ३. तविस्संति वा,

(ग) छप्पण्णं णक्खत्ता जोयं १. जोएंसु वा, २. जोएंति वा, ३. जोइस्संति वा, तं जहा—

१. दो अभीई, २. दो सवणा, ३. दो धणिट्ठा, ४. दो सतभिसया, ५. दो पुव्वा पोट्ठवया, ६. दो उत्तरापोट्ठवया, ७. दो रेवई, ८. दो अस्सिणी, ९. दो भरणी, १०. दो कत्तिया, ११. दो रोहिणी, १२. दो संठाणा, १३. दो अद्दा, १४. दो पुणव्वसु, १५. दो पुस्सा, १६. दो अस्सेसाओ, १७. दो महाओ, १८. दो पुव्वाफग्गुणी, १९. दो उत्तराफग्गुणी, २०. दो हत्था, २१. दो चित्ता, २२. दो साई, २३. दो विसाहा, २४. दो अणुराधा, २५. दो जेट्ठा, २६. दो मूला, २७. दो पुव्वासाढा, २८. दो उत्तरासाढा,

ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—

(क) अत्थि णक्खत्ता जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठि भागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धि जोयं जोएंति,

(ख) अत्थि णक्खत्ता जे णं पण्णरस मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति,

(ग) अत्थि णक्खत्ता जे णं तीस मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति,

(घ) अत्थि णक्खत्ता जे णं पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति,

नक्षत्रों के स्वरूप का प्ररूपण—

१२१. (क) प्र०—नक्षत्रों के स्वरूप का निरूपण किस प्रकार है ? कहें।

उ०—यह जम्बूद्वीप द्वीप सभी द्वीप-समुद्रों के अन्दर (बीच में है, सबसे छोटा है—यावत्—एक लाख योजन का लम्बा-चौड़ा है, तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोस अट्ठाईस धनुष. तेरह अंगुल और आधे अंगुल से कुछ अधिक की उसकी परिधि कही गई है।

उस जम्बूद्वीप द्वीप में—
दो चन्द्र प्रभासित हुए थे, होते हैं और होंगे,

दो सूर्य तपे हैं, तपते हैं और तपेंगे—

छप्पन नक्षत्रों ने (चन्द्र-सूर्य के साथ) योग किये हैं, योग करते हैं और योग करेंगे, यथा—

(१) दो अभिजित्, (२) दो श्रवण, (३) दो धनिष्ठा, (४) दो शतभिषक्, (५) दो पूर्वाभाद्रपद, (६) दो उत्तराभाद्रपद, (७) दो रेवती, (८) दो अश्विनी, (९) दो भरणी, (१०) दो कृत्तिका, (११) दो रोहिणी, (१२) दो मृगशिरा, (१३) दो आर्द्रा, (१४) दो पुनर्वसु, (१५) दो पुष्य, (१६) दो अश्लेषा, (१७) दो मघा, (१८) दो पूर्वाफाल्गुनि, (१९) दो उत्तराफाल्गुनी, (२०) दो हस्त, (२१) दो चित्रा, (२२) दो स्वाती, (२३) दो विशाखा, (२४) दो अनुराधा, (२५) दो ज्येष्ठा, (२६) दो मूल, (२७) दो पूर्वाषाढ़ा, (२८) दो उत्तराषाढ़ा।

(दो चन्द्रों के साथ योग करने वाले नक्षत्र)—

इन छप्पन नक्षत्रों में—

(क) कुछ नक्षत्र हैं जो नौ मुहूर्त और एक मुहूर्त के सड़सठ भागों में से सत्तावीस भाग जितने समय तक चन्द्र के साथ योग करते हैं।

(ख) कुछ नक्षत्र हैं जो पन्द्रह मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं।

(ग) कुछ नक्षत्र हैं जो तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं।

(घ) कुछ नक्षत्र हैं जो पैंतालीस मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं।

१ जंबुद्दीवे णं दीवे छप्पन्नं नक्खत्ता चंदेण सद्धि जोगं जोइंसु वा, जोइंति वा, जोइस्संति। —सम. ५६ सु. १

प०—(क) ता एएसि छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—

कयरे णक्खत्ता जे णं णवमुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धि जोयं जोएंति ?

(ख) कयरे णक्खत्ता जे णं पण्णरसमुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति ?

(ग) कयरे णक्खत्ता जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति ?

(घ) कयरे णक्खत्ता जे णं पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति ?

उ०—(क) ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—

तत्थ जे ते णक्खत्ता, जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तसट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धि जोगं जोएंति, ते णं दो अभीयी,[1]

(ख) तत्थ जे ते णक्खत्ता, जे णं पण्णरसमुहुत्ते चंदेण सद्धि जोगं जोएंति, ते णं बारस तं जहा—

१. दो सतभिसया, २. दो भरणी, ३. दो अद्दा, ४. दो अस्सेसा, ५. दो साती, ६. दो जेट्ठा।[2]

(ग) तत्थ जे ते णक्खत्ता, जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोगं जोएंति, ते णं तीसं, तं जहा—

१. दो सवणा, २. दो धणिट्ठा, ३. दो पुव्वाभद्दवया, ४. दो रेवई, ५. दो अस्सिणी, ६. दो कत्तीया, ७. दो संठाणा, ८. दो पुस्सा, ९. दो महा, १०. दो पुव्वा-फग्गुणी, ११. दो हत्था, १२. दो चित्ता, १३. दो अणुराधा, १४. दो मूला, १५. दो पुव्वासाढा।

(घ) तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोगं जोएंति ते णं बारस, तं जहा—

१. दो उत्तरापोट्ठवया, २. दो रोहिणी, ३. दो पुणव्वसु, ४. दो उत्तराफग्गुणी, ५. दो विसाहा, ६. दो उत्तरा-साढा।[3-4]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. २२, सु. ६०

प्र०—(क) इन छप्पन नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं जो नौ मुहूर्त और एक मुहूर्त के सड़सठ भागों में से सत्तावीस भाग जितने समय तक चन्द्र के साथ योग करते हैं ?

(ख) कितने नक्षत्र हैं जो पन्द्रह मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं ?

(ग) कितने नक्षत्र हैं जो तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं ?

(घ) कितने नक्षत्र हैं जो पैंतालीस मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं ?

उ०—(क) इन छप्पन नक्षत्रों में—

जो नक्षत्र नौ मुहूर्त और एक मुहूर्त के सड़सठ भागों में से सत्तावीस भाग जितने समय तक चन्द्र के साथ योग करते हैं, वे दो अभिजित् हैं।

(ख) जो नक्षत्र पन्द्रह मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं, वे बारह हैं, यथा—

(१) दो शतभिषक्, (२) दो भरणी, (३) दो आर्द्रा, (४) दो अश्लेषा, (५) दो स्वाती, (६) दो ज्येष्ठा।

(ग) जो नक्षत्र तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं, वे तीस हैं, यथा—

(१) दो श्रवण, (२) दो धनिष्ठा, (३) दो पूर्वाभाद्रपद, (४) दो रेवती, (५) दो अश्विनी, (६) दो कृत्तिका, (७) दो मृगसर, (८) दो पुष्य, (९) दो मघा, (१०) दो पूर्वाफाल्गुनी, (११) दो हस्त, (१२) दो चित्रा, (१३) दो अनुराधा, (१४) दो मूल, (१५) दो पूर्वाषाढ़ा।

(घ) जो नक्षत्र पैंतालीस मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं, वे बारह हैं यथा—

(१) दो उत्तराभाद्रपद, (२) दो रोहिणी, (३) दो पुनर्वसु, (४) दो उत्तराफाल्गुनि, (५) दो विशाखा, (६) दो उत्तराषाढा।

---

१ सम. ६ सु. ५।

२ छ नक्खत्ता पन्नरस मुहुत्त संजुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
सतभिसय भरणी, अद्दा असलेसा साई तहा जेट्ठा।
एते छ नक्खत्ता पन्नरस मुहुत्त संजुत्ता॥ —सम. १५ सु. ४

३ सव्वेवि णं दिवड्ढ खेत्तिया नक्खत्ता पणयालीसं मुहुत्ते चंदेणं सद्धि जोगं जोइंसु वा, जोएंति वा जोइस्संति वा-तिन्नेव उत्तराइं, पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य एए छ नक्खत्ता पणयाल-मुहुत्त संजोगा। —सम. ४५ सु. ७।

४ चंद. पा. १० सु. ६०।

(क) ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—

अत्थि णक्खत्ता जे णं चत्तारि अहोरत्ते, छच्च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोगं जोएंति,

(ख) अत्थि णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते, एगवीसं च मुहुत्ते सूरिएणं सद्धिं जोगं जोएंति,

(ग) अत्थि णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते, बारस य मुहुत्ते सूरिएणं सद्धिं जोगं जोएंति,

(घ) अत्थि णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिन्नि य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएंति,

प०—(क) ता एएसि णं णक्खत्ताण—

कयरे णक्खत्ता जे णं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोगं जोएंति ?

(ख) कयरे णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एगवीसं च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोगं जोएंति ?

(ग) कयरे णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते, बारस य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोगं जोएंति ?

(घ) कयरे णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते, तिन्नि य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोगं जोएंति ?

उ०—(क) ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ता णं—

तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं चत्तारि अहोरत्ते, छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएंति, ते णं दो अभीयी,

(ख) तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एगवीसं च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएंति, ते णं बारस, तं जहा—
१. दो सतभिसया, २. दो भरणी, ३. दो अद्दा, ४. दो अस्सेसा, ५. दो साती, ६. दो जेट्ठा।

(ग) तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते बारस मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएंति, ते ण तीसं तं जहा—
१. दो सवणा, २. दो धणिट्ठा, ३. दो पुव्वाभद्दवया, ४. दो रेवती, ५. दो अस्सिणी, ६. दो कत्तिया, ७. दो संठाणा, ८. दो पुस्सा, ९. दो महा, १०. दो पुव्वाफग्गुणी, ११. दो हत्था, १२. दो चित्ता, १३. दो अणुराधा, १४. दो मूला, १५. दो पुव्वासाढा,

(घ) तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएंति, ते णं बारस. तं जहा—
१. दो उत्तरापोट्ठवया, २. दो रोहिणी. ३. दो पुणव्वसु ४. दो उत्तराफग्गुणी, ५. दो विसाहा, ६. दो उत्तरासाढा,[1] —सूरिय. पा. १०, पाहु. २२, सु. ६०

(दो सूर्यों के साथ योग करने वाले नक्षत्र—)

(क) इन छप्पन नक्षत्रों में—

कुछ नक्षत्र हैं जो चार अहोरात्र, छ मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं।

(ख) कुछ नक्षत्र हैं जो छ अहोरात्र, इकवीस मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं।

(ग) कुछ नक्षत्र हैं जो तेरह अहोरात्र बारह मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं।

(घ) कुछ नक्षत्र हैं जो वीस अहोरात्र तीन मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं।

प्र०—(क) इन छप्पन नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं जो चार अहोरात्र छ मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं ?

(ख) कितने नक्षत्र हैं जो छह अहोरात्र इकवीस मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं ?।

(ग) कितने नक्षत्र हैं जो तेरह अहोरात्र बारह मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं ?

(घ) कितने नक्षत्र हैं जो वीस अहोरात्र तीन मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं ?

उ०—(क) इन छप्पन नक्षत्रों में—

जो नक्षत्र चार अहोरात्र, छ मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं वे दो अभिजित् हैं।

उ०—(ख) जो नक्षत्र छ अहोरात्र इकवीस मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं वे बारह हैं, यथा—

(१) दो शतभिषक्, (२) दो भरणी, (३) दो आर्द्रा, (४) दो अश्लेषा, (५) दो स्वाती, (६) दो ज्येष्ठा।

(ग) जो नक्षत्र तेरह अहोरात्र बारह मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं वे तीस हैं, यथा—

(१) दो श्रवण, (२) दो धनिष्ठा, (३) दो पूर्वाभाद्रपद, (४) दो रेवती, (५) दो अश्विनी, (६) दो कृत्तिका, (७) दो मृगसर, (८) दो पुष्य, (९) दो मघा, (१०) दो पूर्वाफाल्गुनी, (११) दो हस्त, (१२) दो चित्रा, (१३) दो अनुराधा, (१४) दो मूल, (१५) दो पूर्वाषाढ़ा।

(घ) जो नक्षत्र वीस अहोरात्र तीन मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं वे बारह हैं, यथा—

(१) दो उत्तराभाद्रपद, (२) दो रोहिणी, (३) दो पुनर्वसु, (४) दो उत्तरा फाल्गुनी, (५) दो विशाखा, (६) दो उत्तराषाढ़ा।

---

१ चंद. पा. १० सु. ६०।

णक्खत्ताणं चंदेण जोगकालं—

२२. प०—ता कहं मुहुत्ता य ? आहिए त्ति वएज्जा ।

उ०—ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं ।

(क) अत्थि णक्खत्ते जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठि भाए मुहुत्तस्स चंदेण सद्धि जोयं जोएइ ।

(ख) अत्थि णक्खत्ता जे णं पण्णरस मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति ।

(ग) अत्थि णक्खत्ता जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति।

(घ) अत्थि णक्खत्ता जे णं पणयालीसे मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति।

प०—ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं ?

(क) कयरे णक्खत्ते जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभाए मुहुत्तस्स चंदेण सद्धि जोयं जोए ति ?

(ख) कयरे णक्खत्ता जे णं पण्णरस मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति ?

(ग) कयरे णक्खत्ता जे ण तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति ?

(घ) कयरे णक्खत्ता जे णं पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति ?

उ०—(क) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं, तत्थ जे ते णक्खत्ते, जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभाए मुहुत्तस्स चंदेण सद्धि जोयं जोएंति, से णं एगे, अभीया ।[1]

(ख) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ता णं तत्थ जे ते णक्खत्ता, जे णं मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति, ते णं छ तं जहा—१. सतभिसया, २. भरणी, ३. अद्दा, ४. अस्सेसा, ५. साति, ६. जेट्ठा ।[2]

(ग) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

तत्थ जे ते णक्खत्ता, जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोयं जोएंति, ते णं पण्णरस तं जहा—

१. सवणो, २. धणिट्ठा, ३. पुव्वा भद्दवया, ४. रेवई,

नक्षत्रों का चन्द्रों के साथ योगकाल—

१२२. (नक्षत्रों का चन्द्र के साथ योग) कितने मुहूर्त रहता है ? कहें—

उ०—(क) इन अठावीस नक्षत्रों में कुछ नक्षत्र हैं ।

जो नौ मुहूर्त और एक मुहूर्त के सड़सठ भागों में से सत्तावीस भाग जितने समय तक चन्द्र के साथ योग करते हैं ।

(ख) कुछ नक्षत्र हैं जो पन्द्रह मुहूर्त पर्यन्त चन्द्र के साथ योग करते हैं ।

(ग) कुछ नक्षत्र हैं जो तीस मुहूर्त पर्यन्त चन्द्र के साथ योग करते हैं ।

(घ) कुछ नक्षत्र हैं जो पैंतालीस मुहूर्त पर्यन्त चन्द्र के साथ योग करते हैं ।

प्र०—(क) इन अठावीस नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं जो नौ मुहूर्त और एक मुहूर्त के सड़सठ भागों में से सतावीस भाग जितने समय तक चन्द्र के साथ योग करते हैं ?

(ख) कितने नक्षत्र हैं जो पन्द्रह मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं ?

(ग) कितने नक्षत्र है जो तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं ?

(घ) कितने नक्षत्र हैं जो पैंतालीस मुहूर्त चन्द्र के साथ योग करते हैं ?

उ०—(क) इन अठाइस नक्षत्रों में जो नक्षत्र नौ मुहूर्त और एक मुहूर्त के सड़सठ भागों में से सत्तावीस भाग जितने समय तक चन्द्र के साथ योग करता है, वह एक अभिजित् हैं ।

(ख) इन अठाईस नक्षत्रों में जो नक्षत्र पन्द्रह मुहूर्त पर्यन्त चन्द्र के साथ योग करते हैं, वे छ हैं, यथा—(१) शतभिषक्, (२) भरणी, (३) आर्द्रा, (४) अश्लेषा, (५) स्वाती, (६) ज्येष्ठा ।

(ग) इन अठाईस नक्षत्रों में—

जो नक्षत्र तीस मुहूर्त पर्यन्त चन्द्र के साथ योग करते हैं वे पन्द्रह हैं, यथा—

(१) श्रवण, (२) धनिष्ठा, (३) पूर्वाभाद्रपद, (४) रेवती,

---

१ (क) अभीजि णक्खत्ते साइरेगे णव मुहुत्ते चंदेण सद्धि जोगं जोएइ । —सम. स. ९ सु. ५

(ख) ठाणं अ. ९, सु. ६६९ ।

२ ठाणं ६, सु. ५१५ ।

५. अस्सिणी, ६. कत्तिया, ७. मग्गसिर, ८. पुस्सो, ९. महा, १०. पुव्वाफग्गुणी, ११. हत्थो, १२. चित्ता, १३. अणुराहा, १४. मूलो, १५. पुव्वासाढा ।

(५) अश्विनी, (६) कृत्तिका, (७) मार्गशीर्ष, (८) पुष्य, (९) मघा, (१०) पूर्वा फाल्गुनी, (११) हस्त, (१२) चित्रा, (१३) अनुराधा, (१४) मूल, (१५) पूर्वाषाढ़ा ।

(घ) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं, तत्थ जे ते णक्खत्ता, जे णं पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, ते णं छ तं जहा—

(घ) इन अठाईस नक्षत्रों में जो नक्षत्र पैंतालीस मुहूर्त पर्यन्त चन्द्र के साथ योग करते हैं, वे छ हैं, यथा—

१. उत्तरा भद्दवया, २. रोहिणी, ३. पुणव्वसू, ४. उत्तराफग्गुणी, ५. विसाहा, ६. उत्तरासाढा ।[१]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. २, सु. ३३

(१) उत्तराभाद्रपद, (२) रोहिणी, (३) पुनर्वसु, (४) उत्तरा फाल्गुनी, (५) विशाखा, (६) उत्तराषाढ़ा ।

णक्खत्ताणं सूरेण जोगकालं—

नक्षत्रों का सूर्य के साथ योग काल—

११२३. (क) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं ।

अत्थि णक्खत्ते जे णं चत्तारि अहोरत्ते, छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति ।

११२३. (क) इन अठावीस नक्षत्रों में—

कुछ नक्षत्र हैं जो चार अहोरात्र और छ मुहूर्त पर्यन्त सूर्य के साथ योग करते हैं ।

(ख) अत्थि णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते, एक्कवीसं च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति ।

(ख) कुछ नक्षत्र हैं जो छ अहोरात्र और इकवीस मुहूर्त पर्यन्त सूर्य के साथ योग करते हैं ।

(ग) अत्थि णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते, बारस य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति ।

(ग) कुछ नक्षत्र हैं जो तेरह अहोरात्र और बारह मुहूर्त पर्यन्त सूर्य के साथ योग करते हैं ।

(घ) अत्थि णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति ।

(घ) कुछ नक्षत्र हैं जो बीस अहोरात्र और तीन मुहूर्त पर्यन्त सूर्य के साथ योग करते हैं ।

प०—(क) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

कयरे णक्खत्ते जे णं चत्तारि अहोरत्ते, छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति ?

प्र०—(क) इन अठावीस नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं जो चार अहोरात्र और छ मुहूर्त पर्यन्त सूर्य के साथ योग करते हैं ?

(ख) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

कयरे णक्खत्ते जे णं छ अहोरत्ते, एक्कवीसं च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति ?

(ख) इन अठावीस नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं जो छ अहोरात्र और इकवीस मुहूर्त पर्यन्त सूर्य के साथ योग करते हैं ?

---

१ (क) प०—एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते कतिमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ ?

उ०—गोयमा ! णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभाए मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ एवं इमाहिं गाहाहिं अणुगंतव्व ।

गाहाओ—अभिइस्स चंदजोगो सत्तट्ठिखंडिओ अहोरत्तो ।

ते हुंति णव मुहुत्ता सत्तावीसं कलाओ अ ॥ १ ॥

सयभिसया भरणीओ अद्दा अस्सेस साइ जेट्ठा य ।

एते छ णक्खत्ता पण्णरसमुहुत्तसंजोगा ॥ २ ॥

तिण्णेव उत्तराइं पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य ।

एए छण्णक्खत्ता पणयालमुहुत्तसंजोगा ॥ ३ ॥

अवसेसा णक्खत्ता पण्णरसवि हुंति तीसइमुहुत्ता ।

चंदंमि एस जोगो णक्खत्ताणं मुणेअव्वो ॥ ४ ॥

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १६०

(ख) चंद पा. १०, सु, ३३ ।

(ग) सम. ६, सु. ६ ।

(घ) ठाण ६ सु. ५१७ ।

(ग) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

कयरे णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते, बारस य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति ?

(ग) इन अठावीस नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं जो तेरह अहोरात्र और बारह मुहूर्त पर्यन्त सूर्य के साथ योग करते हैं ?

(घ) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

कयरे णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते, तिण्णि य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति ?

(घ) इन अठाईस नक्षत्रों में—

कितने नक्षत्र हैं जो बीस अहोरात्र और तीन मुहूर्त पर्यन्त सूर्य के साथ योग करते हैं ?

उ०—(क) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

तत्थ जे ते णक्खत्ते जे णं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, से णं एगे अभीयी।

उ०—(क) इन अठाईस नक्षत्रों में से—

जो नक्षत्र चार अहोरात्र और छः मुहूर्त सूर्य के साथ योग करता है वह एक अभिजित् है।

(ख) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते, एक्कवीसं च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं छ तं जहा—१. सतभिसया, २. भरणी, ३. अद्दा, ४. अस्सेसा, ५. साती, ६. जेट्ठा।

(ख) इन अठाईस नक्षत्रों में से—

जो नक्षत्र छ अहोरात्र और इक्कीस मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं वे छ हैं, यथा—(१) शतभिषक्, (२) भरणी, (३) आर्द्रा, (४) अश्लेषा, (५) स्वाती, (६) ज्येष्ठा।

(ग) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

तत्थ जे ते णक्खत्ता, जे णं तेरस अहोरत्ते दुवालस य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, ते णं पण्णरस; तं जहा—१. सवणो, २. धणिट्ठा, ३. पुव्वा भद्दवया, ४. रेवई, ५. अस्सिणी, ६. कत्तिया, ७. मग्गसिरं ८. पुस्सो, ९. महा, १०. पुव्वाफग्गुणी, ११. हत्थो, १२. चित्ता, १३. अणुराहा, १४. मूलो, १५. पुव्वासाढा।

(ग) इन अठाईस नक्षत्रों में से—

जो नक्षत्र तेरह अहोरात्र और बारह मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं वे पन्द्रह हैं, यथा—(१) श्रवण, (२) धनिष्ठा, (३) पूर्वाभाद्रपद, (४) रेवती, (५) अश्विनी, (६) कृत्तिका, (७) मृगशिर, (८) पुष्य, (९) मघा, (१०) पूर्वाफाल्गुनी, (११) हस्त, (१२) चित्रा, (१३) अनुराधा, (१४) मूल, (१५) पूर्वाषाढ़ा।

(घ) ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं,

तत्थ जे ते णक्खत्ता, जे णं वीसं अहोरत्ते, तिण्णि य मुहुत्ते, सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं छ, तं जहा—१. उत्तराभद्दवया, २. रोहिणी, ३. पुणव्वसू, ४. उत्तराफग्गुणी, ५. विसाहा, ६. उत्तरासाढा।[1]

—सूरिय० पा० १०, पाहु० २, सु० ३४

इन अठाईस नक्षत्रों में से—

जो नक्षत्र बीस अहोरात्र और तीन मुहूर्त सूर्य के साथ योग करते हैं, वे छ हैं, यथा—(१) उत्तराभाद्रपद, (२) रोहिणी, (३) पुनर्वसु, (४) उत्तराफाल्गुनी, (५) विशाखा, (६) उत्तराषाढा।

---

१ (क) प०—एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिईणक्खत्ते कति अहोरत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ, एवं इमाहिं गाहाहिं णेअव्वं—

गाहाओ—अभिई छच्च मुहुत्ते चत्तारि अ केवले अहोरत्ते।
सूरेण समं गच्छइ एत्तो सेसाण वोच्छामि ॥ १ ॥
सयभिसया भरणीओ अद्दा अस्सेस साइ जेट्ठा य।
वच्चंति मुहुत्ते इक्कवीस छच्चेवऽहोरत्ते ॥ २ ॥
तिण्णेव उत्तराइं पुणव्वसु रोहिणी विसाहा य।
वच्चंति मुहुत्ते तिण्णि चेव वीसं अहोरत्ते ॥ ३ ॥
अवसेसा णक्खत्ता पण्णरसवि सूरसहगया जंति।
बारस चेव मुहुत्ते तेरस य समे अहोरत्ते ॥ ४ ॥

—जंबु. वक्ख. ७, सु. १६०

(ख) चंद. पा. १०, सु.।

णक्खत्ताणं चंदेण जोगारंभकालं—

नक्षत्रों का चन्द्र के साथ योग का प्रारम्भ काल—

१२४. प०—१. ता कहं ते जोगस्स आई ? आहिए त्ति वएज्जा,

१२४. (१) प्र०—(नक्षत्रों का चन्द्र के साथ) योग की आदि (योग का प्रारम्भ) किस प्रकार होती है ? कहे.

उ०—ता अभियी-सवणा खलु दुवे णक्खत्ता, पच्छाभागा समखित्ता[1], साइरेग-एगूणचत्तालिसइ मुहुत्ता[2] तप्पढमयाए सायं[3] चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति,[4] तओ पच्छा अवरं साइरेग दिवसं ।

उ०—अभिजित् और श्रवण—ये दोनों नक्षत्र "दिन के" पिछले भाग—सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करते हैं, उसके बाद कुछ अधिक एक दिवस अर्थात् कुछ अधिक उनचालीस मुहूर्त "पर्यन्त" चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योगयुक्त रहते हैं ।

एवं खलु अभियी-सवणा दुवे णक्खत्ता एगराइं एगं च साइरेगं दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति,

इस प्रकार अभिजित् और श्रवण—ये दो नक्षत्र एक रात्रि तथा कुछ अधिक एक दिवस[5] "पर्यन्त" चन्द्र के साथ योग युक्त रहते हैं ।

जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टन्ति,[6]

योग करके योग मुक्त हो जाते है,

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं धणिट्ठाणं समप्पेंति,

योगमुक्त होकर सायंकाल में "ये दोनों नक्षत्र" धनिष्ठा नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देते हैं।

२. ता धणिट्ठा खलु णक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते[7] तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छाराइं अवरं च दिवसं ।

(२) धनिष्ठा नक्षत्र "दिन के" पिछले भाग सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है. उसके बाद एक रात्रि तथा एक दिवस, अर्थात् तीस मुहूर्त "पर्यन्त" "चन्द्र के साथ" समक्षेत्र में योग युक्त रहता है ।

एवं खलु धणिट्ठा णक्खत्ते एगं च राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

इस प्रकार धनिष्ठा नक्षत्र एक रात्रि और एक दिवस "पर्यन्त" चन्द्र के साथ योग युक्त रहता है ।

जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग मुक्त हो जाता है ।

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं सयभिसयाणं समप्पेइ,

योग से अलग होकर सायंकाल में "धनिष्ठा नक्षत्र" शतभिषक् नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है ।

---

१ "इह अभिजिन्नक्षत्रं न समक्षेत्रं, नाप्यपार्धक्षेत्रं, नापि द्वयर्द्धक्षेत्रं, केवलं श्रवणनक्षत्रेण सह सम्बद्धमुपात्तमित्यभेदोपचारात् तदपि समक्षेत्रमुपकल्प्य समक्षेत्रमित्युक्तम्" ।

२ "सातिरेका नवमुहूर्ताः अभिजित् त्रिंशन्मुहूर्ताः श्रवणस्येत्युभयमीलने यथोक्तं मुहूर्तपरिमाणं भवति" ।

३ "सायं-विकालवेलायां, इह दिवसस्य कतितमाच्चरमाद्भागादारभ्य यावद्रात्रेः कतितमो भागो यावन्नाद्यापि परिस्फुट-नक्षत्र-मण्डलालोक स्तावान् कालविशेषः सायमिति विवक्षितो द्रष्टव्यः" ।

४ "इहाभिजिन्नक्षत्रं यद्यपि युगस्यादौ प्रातश्चन्द्रेण सह योगमुपैति, तथापि श्रवणेन सह सम्बद्धमिह तद्विवक्षितं, श्रवणनक्षत्रं च मध्याह्लादूर्ध्वमपसरति दिवसे चन्द्रेण सहयोगमुपादत्ते, ततस्तत्साहचर्यात् तदपि सायं समये चन्द्रेण युज्यमानं विवक्षित्वा सामान्यतः सायं चन्द्रेण सद्धिं जोयं जोएंति" इत्युक्तम् ।

अथवा युगस्यादिमतिरिच्यान्यदा बाहुल्यमधिकृत्येदमुक्तं ततो न कश्चिद्दोषः" ।

५ एक रात तथा एक दिवस के तीस मुहूर्त होते है. इनमें अभिजित् नक्षत्र के नौ मुहूर्त मिलाने पर उनचालीस मुहूर्त हो जाते हैं ।

६ "एतावन्तं कालं योगं युक्त्वा तदनन्तरं योगमनुपरिवर्तयते, आत्मनश्चन्द्रादपगत इत्यर्थः,"

—सूर्य प्रज्ञप्ति की टीका से उद्धृत,

७ "समक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्तम्" चन्द्र के साथ किसी भी नक्षत्र का योग, यदि तीस मुहूर्त पर्यन्त रहता है तो वह "समक्षेत्र-योग" कहा जाता है ।

३. ता सयभिसया खलु णक्खत्ते णत्तंभागे अवड्ढखेत्ते[1] पण्णरस-मुहुत्ते, तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, नो लभइ अवरं दिवसं,

(३) शतभिषक् नक्षत्र सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है और रात्रि में पन्द्रह मुहूर्त पर्यन्त आधे क्षेत्र में योग-युक्त रहता है किन्तु दूसरे दिन अलग हो जाता है।

एवं खलु सयभिसया णक्खत्ते, एगं राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

इस प्रकार शतभिषक् नक्षत्र एक रात्रि पर्यन्त चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग मुक्त हो जाता है।

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं पुव्वपोट्ठवयाणं समप्पेइ,

योग से अलग होकर सायंकाल में "शतभिषक् नक्षत्र" पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

४. ता पुव्वा-पोट्ठवया खलु णक्खत्ते पुव्वं भागे[2] समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छा अवरं राइं,

(४) पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र "दिन के" पूर्वभाग-प्रातःकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है, बाद में एक रात्रि पर्यन्त "पूर्वापर का काल मिलाकर" तीस मुहूर्त पर्यन्त चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

एवं खलु पुव्वापोट्ठवया णक्खत्ते एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

इस प्रकार पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र एक दिन और एक रात्रि पर्यन्त चन्द्र के साथ योग युक्त रहता है।

जोयं जोएत्ता अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

जोयं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं उत्तरापोट्ठवयाणं समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर प्रातःकाल में "पूर्वाभाद्रपद" नक्षत्र उत्तराभाद्रपद नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

५. ता उत्तरापोट्ठवया खलु णक्खत्ते उभयं भागे[3] दिवड्ढ-खेत्ते पणयालीस-मुहुत्ते[4], तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, अवरं च राइं तओ पच्छा अवरं च दिवसं।

(५) उत्तराभाद्रपद नक्षत्र "दिन के" पूर्व भाग-प्रातःकाल में तथा "दिन के" पिछले भाग-सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है। बाद में दूसरी रात्रि तथा दूसरा दिन, अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" पैंतालीस मुहूर्त पर्यन्त चन्द्र के साथ डेढ़ क्षेत्र में योग[5] युक्त रहता है।

एवं खलु उत्तरापोट्ठवया णक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

इस प्रकार उत्तराभाद्रपद नक्षत्र दो दिन तथा एक रात्रि पर्यन्त चन्द्र के साथ योग युक्त रहता है।

जोयं जोइत्ता अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं रेवईणं समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर सायंकाल में "उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में" रेवती नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

---

१ "अपार्ध-क्षेत्रं पंचदशमुहूर्तम्" चन्द्र के साथ किसी भी नक्षत्र का योग यदि पन्द्रह मुहूर्त पर्यन्त रहता है तो वह "अपार्ध-क्षेत्र-योग" अर्थात् "आधा क्षेत्र योग' कहा जाता है।

२ "इह पूर्वप्रोष्ठपदानक्षत्रस्य प्रातश्चन्द्रेण सह प्रथमतया योगः प्रवृत्त, इतीदं पूर्वभागमुच्यते"।

३ "इदं किलोत्तराभाद्रपदाख्यं नक्षत्रमुक्तप्रकारेण प्रातश्चन्द्रेण सहयोगमधिगच्छति। केवलं प्रथमान् पंचदश-मुहूर्तान् अधिकानपनीय समक्षेत्रं कल्पयित्वा यदा योगश्चिन्त्यते तदा नक्तमपि योगोअस्तीत्युभयभागमवसेयम्।

४ "उत्तरप्रोष्ठपदानक्षत्रं खलूभयभागं द्वयर्धक्षेत्रं पंचचत्वारिंशन्मुहूर्तं, तत्प्रथमतया-योगप्रथमतया प्रातश्चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति, तच्च, तथायुक्तं सततं सकलमपि दिवसमपरं च रात्रिं ततः पश्चादपरं दिवसं यावद्वर्तते।

५ "द्वयर्द्ध क्षेत्रं पंच-चत्वारिंशन्मुहूर्तम्" चन्द्र के साथ किसी भी नक्षत्र का योग यदि पैंतालीस मुहूर्त पर्यन्त रहता है तो वह "द्वयर्द्धक्षेत्रयोग-अर्थात् डेढ़ क्षेत्र योग" कहा जाता है।

६. ता रेवई खलु णक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छा अवरं दिवसं,

(६) रेवती नक्षत्र "दिन के" पिछले भाग सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है, तदनन्तर एक दिन, अर्थात् "पूर्वापरका काल मिलाकर" तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

एवं खलु रेवई णक्खत्ते एगं च राइं, एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,
जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,
जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं अस्सिणीणं समप्पेइ,

इस प्रकार रेवती नक्षत्र एक रात्रि और एक दिवस चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।
योग करके योग-मुक्त हो जाता है।
योग-मुक्त होकर सायंकाल में "रेवती नक्षत्र" अश्विनी नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

७. ता अस्सिणी खलु णक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छा अवरं दिवसं,

(७) अश्विनी नक्षत्र "दिन के" पिछले भाग—सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है। तदनन्तर एक दिन, अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

एवं खलु अस्सिणी णक्खत्ते, एगं च राइं, एगं च दिवसं, चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,
जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,
जोयं अणुपरियट्टित्ता, सायं चंदं भरणीण समप्पेइ,

इस प्रकार अश्विनी नक्षत्र, एक रात्रि और एक दिवस चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।
योग करके योग-मुक्त हो जाता है।
योग-मुक्त होकर सायंकाल में "अश्विनी नक्षत्र" भरणी नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

८. ता भरणी खलु णक्खत्ते णत्तंभागे, अवड्ढखेत्ते पण्णरस-मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, नो लभइ अवरं दिवसं,

(८) भरणी नक्षत्र सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है, रात्रि में पन्द्रह मुहूर्त चन्द्र के साथ अर्ध क्षेत्र में योग-युक्त रहता है। किन्तु दूसरे दिन अलग हो जाता है।

एवं खलु भरणी णक्खत्ते एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,
जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,
जोयं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं कत्तियाणं समप्पेइ,[1]

इस प्रकार भरणी नक्षत्र एक रात्रि चन्द्र के साथ योग करता है।
योग करके योग-मुक्त हो जाता है।
योग-मुक्त होकर प्रातःकाल में "भरणी नक्षत्र" कृत्तिका नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

९. ता कत्तिया खलु णक्खत्ते पुव्वं भागे समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छाराइं,

(९) कृत्तिका नक्षत्र "दिन के" पूर्वभाग-प्रातःकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है तदनन्तर रात्रि में चन्द्र के साथ समक्षेत्र में तीस मुहूर्त योग-युक्त रहता है।

एवं खलु कत्तिया णक्खत्ते, एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,
जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,
जोयं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं रोहिणीणं समप्पेइ,[2]

इस प्रकार कृत्तिका नक्षत्र एक दिन और एक रात्रि चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।
योग करके योग-मुक्त हो जाता है।
योग-मुक्त होकर प्रातःकाल में "कृत्तिका नक्षत्र" रोहिणी नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

---

१ "योगमनुपरिवर्त्य सायं परिस्फुटनक्षत्रमण्डलालोककाले भरण्याः समर्पयति, इदं च भरणी नक्षत्रमुन्मुखपदा रात्रौ चन्द्रेण सह योगमुपैति, ततो नक्त भागमवसेयम्"।

२ इसके आगे मूल प्रति में—"संक्षिप्तवाचना का पाठ इस प्रकार है—
(१०) 'रोहिणी जहा उत्तराभद्दवया', (११) मगसिर जहा धणिट्ठा, (क्रमशः)

१०. ता रोहिणी खलु णक्खत्ते उभयंभागे दिवड्ढखेत्ते पणयालीस-मुहुत्ते तप्पढमयाए, पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, अवरं च राई तओ पच्छा अवरं दिवसं,

एवं खलु रोहिणी णक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,
जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,
जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं मिगसरस्स समप्पेइ,

(१०) रोहिणी नक्षत्र "दिन के" पूर्व भाग-प्रातः काल में तथा "दिन के" पिछले भाग-सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है। तदनन्तर एक रात्रि और एक दिवस अर्थात् "पूर्वापर का काल" मिलाकर पैंतालीस मुहूर्त चन्द्र के साथ डेढ़ क्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

इस प्रकार रोहिणी नक्षत्र दो दिन तथा एक रात्रि चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।
योग करके योग-मुक्त हो जाता है।
योग-मुक्त होकर सायंकाल में "रोहिणी-नक्षत्र" मृगशिरा नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

११. ता मिगसिरे खलु णक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसइ मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ। तओ पच्छा राइं अवरं च दिवसं,

एवं खलु मिगसिरे णक्खत्ते एगं च राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,
जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,
जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं अद्दाए समप्पेइ,

(११) मृगशिर नक्षत्र "दिन के" पिछले भाग सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है। तदनन्तर एक रात्रि तथा एक दिन अर्थात् तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

इस प्रकार मृगशिर नक्षत्र एक रात्रि और एक दिवस चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।
योग करके योग-मुक्त हो जाता है।
योग-मुक्त होकर सायंकाल में "मृगशिर-नक्षत्र" आर्द्रा नक्षत्र को चन्द्र-समर्पित कर देता है।

१२. ता अद्दा खलु णक्खत्ते नत्तंभागे अवड्ढखेत्ते पण्णरस-मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, नो लभइ अवरं दिवसं,
एवं खलु अद्दा णक्खत्ते एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,
जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,
जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं पुणव्वसुण समप्पेइ,

(१२) आर्द्रा नक्षत्र सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है, रात्रि में पन्द्रह मुहूर्त चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है, दूसरे दिन योग-युक्त नहीं रहता है।
इस प्रकार आर्द्रा नक्षत्र एक रात्रि चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।
योग करके योग-मुक्त हो जाता है।
योग-मुक्त होकर प्रातःकाल में आर्द्रा नक्षत्र पुनर्वसु नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

१३. ता पुणव्वसु खलु णक्खत्ते उभयंभागे दिवड्ढखेत्ते पणयालीस-मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, अवरं च राइं तओ पच्छा अवरं च दिवसं।

(१३) पुनर्वसु नक्षत्र "दिन के" पूर्वभाग—प्रातःकाल में तथा "दिन के" पिछले भाग—सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है। तदनन्तर एक रात्रि तथा एक दिवस अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" पैंतालीस मुहूर्त चन्द्र के साथ डेढ़ क्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

(क्रमशः)

(१२) अद्दा जहा सतभिसया,
(१३) पुणव्वसू जहा उत्तराभद्दवया,
(१४) पुस्सो जहा धणिट्ठा,
(१५) असलेसा जहा सतभिसया,
(१६) महा जहा पुव्वाफग्गुणी,
(१७) पुव्वाफग्गुणी जहा पुव्वाभद्दवया,
(१८) उत्तराफग्गुणी जहा उत्तराभद्दवया,
(१९-२०) हत्थो, चित्ताय जहा धणिट्ठा,
(२१) साती जहा सतभिसया,
(२२) विसाहा जहा उत्तराभद्दवया,
(२३) अणुराहा जहा धणिट्ठा,
(२४) जिट्ठा जहा सतभिसया,
(२५) मूलो जहा पुव्वाभद्दवया,
(२६) पुव्वासाढा जहा पुव्वाभद्दवया,
(२७) उत्तरासाढा जहा उत्तराभद्दवया।

—सूरिय. पा. १०. पाहु. ४, सु. ३६

एवं खलु पुणव्वसु णक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

इस प्रकार पुनर्वसु नक्षत्र दो दिन और एक रात्रि चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं पुस्सस्स समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर सायंकाल में "पुनर्वसु नक्षत्र" पुष्य नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

१४. ता पुस्से खलु णक्खत्ते पच्छं भागे समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छाराइं अवरं च दिवसं,

(१४) पुष्य नक्षत्र "दिन के" पिछले भाग—सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है, तदनन्तर एक रात्रि और एक दिवस अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

एवं खलु पुस्से णक्खत्ते एगं च राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

इस प्रकार पुष्य नक्षत्र एक रात और एक दिन चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं असिलेसा समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर "पुष्य नक्षत्र" अश्लेषा नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

१५. ता असिलेसा खलु णक्खत्ते नत्तंभागे अवड्ढखेत्ते पन्नरसमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, नो लभइ अवरं दिवसं,

(१५) अश्लेषा नक्षत्र सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है। रात्रि में पन्द्रह मुहूर्त चन्द्र के साथ अर्ध क्षेत्र में योग-युक्त रहता है। "किन्तु" दूसरे दिन योग-युक्त नहीं रहता है।

एवं खलु असिलेसा णक्खत्ते एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

इस प्रकार अश्लेषा नक्षत्र एक रात्रि चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

जोयं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं मघाणं समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर प्रातःकाल में "अश्लेषा नक्षत्र" मघा नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

१६. ता मघा खलु णक्खत्ते पुव्वंभागे समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छा अवरं राइं,

(१६) मघा नक्षत्र "दिन के" पूर्वभाग-प्रातःकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है। तदनन्तर एक रात्रि अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

एवं खलु मघा णक्खत्ते एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

इस प्रकार मघा नक्षत्र एक दिन और एक रात चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

जोयं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं पुव्वाफग्गुणीण समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर प्रातःकाल में "मघा नक्षत्र" पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

१७. ता पुव्वाफग्गुणी खलु णक्खत्ते पुव्वंभागे समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छा अवरं राइं,

(१७) पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र "दिन के" पूर्वभाग-प्रातःकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है, तदनन्तर एक रात्रि अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

एवं खलु पुव्वाफग्गुणी णक्खत्ते एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

इस प्रकार पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र एक दिन और एक रात्रि चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टेइ,

जोयं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं उत्तराफग्गुणीणं समप्पेइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

योग-मुक्त होकर प्रातःकाल में "पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र" उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

१८. ता उत्तरा-फग्गुणी खलु णक्खत्ते उभयंभागे दिवड्ढ-खेत्ते पणयालीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, अवरं च राइं तओ पच्छा अवरं च दिवसं,

(१८) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र "दिन के" पूर्वभाग-प्रातःकाल में तथा "दिन के" पिछले भाग सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है। तदनन्तर एक रात्रि और एक दिन अर्थात "पूर्वापर का काल मिलाकर" पैंतालीस मुहूर्त चन्द्र के साथ डेढ़ क्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

एवं खलु उत्तराफग्गुणी णक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं हत्थं समप्पेइ,

इस प्रकार उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र दो दिन और एक रात चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

योग-मुक्त होकर सायंकाल में—"उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र" हस्त नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

१९. ता हत्थे खलु णक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसइमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छाराइं अवरं च दिवसं,

(१९) हस्त नक्षत्र "दिन के" पिछले भाग सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है। तदनन्तर एक दिन, अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

एवं खलु हत्थ णक्खत्ते एगं च राइं, एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं चित्ताए समप्पेइ,

इस प्रकार हस्त नक्षत्र एक रात्रि और एक दिवस चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

योग-मुक्त होकर सायंकाल में "हस्त नक्षत्र" चित्रा नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

२०. ता चित्ता खलु णक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छाराइं अवरं च दिवसं,

(२०) चित्रा नक्षत्र "दिन के" पिछले भाग—सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता हैं, तदनन्तर एक दिवस अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

एवं खलु चित्ता णक्खत्ते एगं च राइं, एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं साईए समप्पेइ,

इस प्रकार चित्रा नक्षत्र एक रात्रि और एक दिवस चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

योग-मुक्त होकर सायंकाल में "चित्रा नक्षत्र" स्वाती नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

२१. ता साई खलु णक्खत्ते नत्तंभागे अवड्ढखेत्ते पण्णरस-मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, नो लभइ अवरं दिवसं,

एवं खलु साइ णक्खत्ते एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ,

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

(२१) स्वाती नक्षत्र सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है, रात्रि में पन्द्रह मुहूर्त चन्द्र के साथ अर्धक्षेत्र में योग-युक्त रहता है। किन्तु दूसरे दिन योग-युक्त नहीं रहता है।

इस प्रकार स्वाती नक्षत्र एक रात्रि चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

जोयं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं विसाहाण, समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर प्रातःकाल में "स्वाती नक्षत्र" विशाखा नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है ।

२२. ता विसाहा खलु णक्खत्ते उभयंभागे दिवड्ढखेत्ते पणयालीस-मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धि जोयं जोएइ—अवरं च राइं तओ पच्छा अवरदिवसं,

(२२) विशाखा नक्षत्र "दिन के" पूर्वभाग—प्रातःकाल में तथा "दिन के" पिछले भाग—सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है, तदनन्तर एक रात्रि और एक दिवस अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर "पैंतालीस मुहूर्त" चन्द्र के साथ डेढ क्षेत्र में योग-युक्त रहता है ।

एवं खलु विसाहा णक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धि जोयं जोएइ,

इस प्रकार विशाखा नक्षत्र दो दिन तथा एक रात्रि चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है ।

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है ।

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं अणुराहाए समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर सायंकाल में "विशाखा नक्षत्र" अनुराधा नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है ।

२३. ता अणुराहा खलु णक्खत्ते पच्छंभागं समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धि जोयं जोएइ, तओ पच्छा राइं अवरं च दिवसं,

(२३) अनुराधा नक्षत्र "दिन के" पिछले भाग सायंकाल में चन्द्र के साथ योग-प्रारम्भ करता है । तदनन्तर एक रात्रि और एक दिवस अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योग-युक्त रहता है ।

एवं खलु अणुराहा णक्खत्ते एगं राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धि जोयं जोएइ,

इस प्रकार अनुराधा नक्षत्र एक रात्रि और एक दिवस चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है ।

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है ।

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं जिट्ठाए समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर सायंकाल में "अनुराधा नक्षत्र" ज्येष्ठा नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है ।

२४. ता जेट्ठा खलु णक्खत्ते नत्तं भागे अवड्ढखेत्ते पण्णरस-मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धि जोयं जोएइ, नो लभइ अवरं दिवसं,

(२४) ज्येष्ठा नक्षत्र सायंकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है, रात्रि में पन्द्रह मुहूर्त चन्द्र के साथ अर्धक्षेत्र में योग-युक्त रहता है । किन्तु दूसरे दिन योग-युक्त नहीं रहता है ।

एवं खलु जिट्ठा णक्खत्ते एगं च राइं चंदेण सद्धि जोयं जोएइ,

इस प्रकार ज्येष्ठा नक्षत्र एक रात्रि चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है ।

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है ।

जोयं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं मूलस्स समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर प्रातःकाल में "ज्येष्ठा नक्षत्र" मूल नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है ।

२५. ता मूले खलु णक्खत्ते पुव्वंभागे समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धि जोयं जोएइ,

(२५) मूल नक्षत्र "दिन के" पूर्वभाग प्रातःकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है, तदनन्तर एक रात्रि अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योग-युक्त रहता है ।

एवं खलु मूले णक्खत्ते एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धि जोयं जोएइ,

इस प्रकार मूल नक्षत्र एक दिन और एक रात चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है ।

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है ।

जोयं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं पुव्वासाढाणं समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर प्रातःकाल में "मूल नक्षत्र" पूर्वाषाढा नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है ।

२६. ता पुव्वासाढा खलु णक्खत्ते पुव्वं भागे समक्खेत्ते तीसइ-मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धि जोयं जोएइ; तओ पच्छा अवरं च राइं,

(२६) पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र "दिन के" पूर्वभाग—प्रातःकाल में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है। तदनन्तर एक रात्रि अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" तीस मुहूर्त चन्द्र के साथ समक्षेत्र में योग-युक्त रहता है।

एवं खलु पुव्वासाढा णक्खत्ते एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धि जोयं जोएइ,

इस प्रकार पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र एक दिवस और एक रात्रि चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

जोयं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं उत्तरासाढाणं समप्पेइ,

योग-मुक्त होकर प्रातःकाल में "पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र" उत्तराषाढ़ा नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

२७. ता उत्तरासाढा खलु णक्खत्ते उभयंभागे दिवड्ढखेत्ते पणयालीस-मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धि जोयं जोएइ, अवरं च राइं तओ पच्छा अवरं च दिवसं.

(२७) उत्तराषाढा नक्षत्र "दिन के" पूर्वभाग—प्रातःकाल में तथा "दिन के" पिछले भाग—सायंकाल में अर्थात् उभयभाग में चन्द्र के साथ योग प्रारम्भ करता है, तदनन्तर एक रात्रि और एक दिवस अर्थात् "पूर्वापर का काल मिलाकर" पैंतालीस मुहूर्त चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

एवं खलु उत्तरासाढा णक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धि जोयं जोएइ,

इस प्रकार उत्तराषाढ़ा नक्षत्र दो दिन और एक रात चन्द्र के साथ योग-युक्त रहता है।

जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ,

योग करके योग-मुक्त हो जाता है।

जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदे अभिई सवणाणं समप्पेइ[1] —सूरिय. पा. १०, पाहु. ४, सु. ३६

योग-मुक्त होकर सायंकाल में "उत्तराषाढ़ा नक्षत्र" अभिजित और श्रवण नक्षत्र को चन्द्र समर्पित कर देता है।

णक्खत्ताणं भोयणं कज्ज-सिद्धि य—

नक्षत्रों के भोजन और कार्य-सिद्धि—

११२५. प०—ता कहं ते भोयणा ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता एएसि णं अट्ठावीसाए णं णक्खत्ताणं मज्झे—

१. कत्तियाहिं दधिणा भोच्चा कज्जं साधेंति,

२. रोहिणीहिं वसभ-मंसं भोच्चा कज्जं साधेंति,

३. मिगसिरे णं (संठाणाहिं) मिग-मंसं[2] भोच्चा कज्जं साधेंति,

४. अद्दाहिं णवणीएणं भोच्चा कज्जं साधेंति,

५. पुणव्वसुणाऽथ घएणं भोच्चा कज्जं साधेंति,

६. पुस्से णं खीरेण भोच्चा कज्जं साधेंति,

१२५. प्र०—नक्षत्र के भोजन क्या हैं ? कहें।

उ०—इन अट्ठाईस नक्षत्रों में से—

(१) कृत्तिका नक्षत्र में दही खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

(२) रोहिणी नक्षत्र में वृषभ का मांस खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

(३) मृगशिरा नक्षत्र में मृग का मांस खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

(४) आर्द्रा नक्षत्र में नवनीत खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

(५) पुनर्वसु नक्षत्र में घृत खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

(६) पुष्य नक्षत्र में दूध पीकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

१ (क) सूत्रांक १० से २७ पर्यन्त के मूलपाठ सूर्य प्रज्ञप्ति की टीका से यहाँ उद्धृत किये हैं।
(ख) चंद. पा. १० सु. ३६।

२ रोहिणीहिं वसभ-मंसं (चमसमसं) भोच्चा कज्जं साधेंति, आ. स. समिति से प्रकाशित प्रति के पृष्ठ १५१ पर (पाठान्तर) है।

७. अस्सेसाए दीवग-मंसं भोच्चा कज्जं साधेति,

(७) अश्लेषा नक्षत्र में दीपक का मांस खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

८. महाहिं कसोति भोच्चा कज्जं साधेति,

(८) मघा नक्षत्र में कसौटी खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

९. पुव्वाहिं फग्गुणीहिं मेढक-मंसं भोच्चा कज्जं साधेति,

(९) पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में मेंढक का मांस खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

१०. उत्तराहिं फग्गुणीहिं णक्खी मंसं भोच्चा कज्जं साधेति,

(१०) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में नख वाले का मांस खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

११. हत्थेण वत्थाणीए णं भोच्चा कज्जं साधेति,

(११) हस्त नक्षत्र में वस्त्रानीत-खाद्य विशेष खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

१२. चित्ताहिं मुग्ग-सूवेणं भोच्चा कज्जं साधेति,

(१२) चित्रा नक्षत्र में मूंग की दाल खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

१३. साइणा फलाइं भोच्चा कज्जं साधेति,

(१३) स्वाती नक्षत्र में फल खाकर कार्य करें तो कार्य सिद्ध होता है।

१४. विसाहाहिं आसित्तियाओ भोच्चा कज्जं साधेति,

(१४) विशाखा नक्षत्र में आसित्तिका=खाद्य विशेष खाकर कार्य करें तो कार्य सिद्ध होता है।

१५. अणुराहाहिं मिस्सकूरं भोच्चा कज्जं साधेति,

(१५) अनुराधा नक्षत्र में मिश्रकूर=खाद्य विशेष खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

१६. जेट्ठाहिं लट्ठिएण भोच्चा कज्जं साधेति,

(१६) ज्येष्ठा नक्षत्र में लट्ठिक=खाद्य विशेष खाकर कार्य करे तो सिद्ध होता है।

१७. मूलेणं मूलापन्नेणं भोच्चा कज्जं साधेति,

(१७) मूल नक्षत्र में मूली के पत्ते खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

१८. पुव्वाहिं आसाढाहिं आमलग-सरीरे भोच्चा कज्जं साधेति,

(१८) पूर्वाषाढा नक्षत्र में आमलक खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

१९. उत्तराहिं आसाढाहिं बलेहिं भोच्चा कज्जं साधेति,

(१९) उत्तराषाढा नक्षत्र में बल=खाद्य विशेष खाकर कार्य करें तो कार्य सिद्ध होता है।

२०. अभीयिणा पुप्फेहिं भोच्चा कज्जं साधेति,

(२०) अभिजित् नक्षत्र में पुष्प खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

२१. सवणे णं खीरे णं भोच्चा कज्जं साधेति,

(२१) श्रवण नक्षत्र में दुग्ध पीकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

२२. धणिट्ठाहिं जूसे णं भोच्चा कज्जं साधेति,

(२२) धनिष्ठा नक्षत्र में जूस=मूंग आदि का [illegible] पीकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

२३. सतभिसयाए तुवरीओ भोच्चा कज्जं साधेति,

(२३) शतभिषक् नक्षत्र में तुवर की दाल खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

२४. पुव्वाहिं पुट्ठवयाहिं कारिल्लएहिं भोच्चा कज्जं साधेति,

(२४) पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में करेला खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

२५. उत्तराहिं पुट्ठवयाहिं वराहमंसं भोच्चा कज्जं साधेति,

(२५) उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में वराह का मांस खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

२६. रेवतीहिं जलयर-मंसं भोच्चा कज्जं साधेति

(२६) रेवती नक्षत्र में जलचर का मांस खाकर कार्य करे तो कार्य सिद्ध होता है।

२७. अस्सिणीहिं तितिर-मंसं वट्टकमंसं वा भोच्चा कज्जं साधेंति,

२८. भरणीहिं तलं तंदुलकं भोच्चा कज्जं साधेंति,[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. १७, सु. ५१

(२७) अश्विनी नक्षत्र में तीतर का या घतक का मांस खाकर कार्य करें तो कार्य सिद्ध होता है।

(२८) भरणी नक्षत्र में तिल और चावल खाकर कार्य करें तो कार्य सिद्ध होता है।[2]

---

१ चंद. पा. १० सु. ५१।

कुल्माषांस्तिलतण्डुलानपि तथा माषांश्च गव्यं दधि; त्वाज्यं दुग्धमथैणमांसमपरं तस्यैव रक्तं तथा।
तद्वत्पायसमेव चाषपललं मार्गं च शाशं तथा षाष्टिवयं च प्रियंग्वपूपमथवा चित्राण्डजान् सत्फलम् ।। ८४ ।।
कौर्मं सारिकगोधिकं च पललं शाल्यं हविष्यं हयाद्यृक्षे स्यान्कृसरान्नमुद्गमपि वा पिष्टं यवानां तथा।
मत्स्यान्नं खलु चित्रितान्नमथवा दध्यन्नमेवं क्रमाद् भक्ष्याऽभक्ष्यमिदं विचार्य मतिमान् भक्षेत्तथाऽऽलोकयेत् ।। ८५ ।।

—मुहूर्तचिन्तामणि यात्राप्रकरण

सूर्यप्रज्ञप्ति और मुहूर्त चिन्तामणी के अनुसार नक्षत्र भोजन विधान की तालिका—

	सूर्यप्रज्ञप्ति	सूर्यप्रज्ञप्ति	मुहूर्त चिन्तामणी	मुहूर्त चिन्तामणी
क्र०	नक्षत्र नाम	नक्षत्र भोजन	नक्षत्र नाम	नक्षत्र भोजन
१	अभिजित्	पुष्प	अश्विनी	मूंग
२	श्रवण	दूध	भरणी	खिचड़ी
३	धनिष्ठा	जूस	कृत्तिका	मूंग-भात
४	शतभिषक्	तुवरदाल	रोहिणी	जौ का आटा
५	पूर्वाभाद्रपद	करेला	मृगशिरा	मछली-भात
६	उत्तराभाद्रपद	वराह-मांस	आर्द्रा	खिचड़ी
७	रेवती	जलचर-मांस	पुनर्वसु	दही-भात
८	अश्विनी	तीतर मांस, वतक मांस	पुष्य	उड़द जौ
९	भरणी	तिल, चावल	अश्लेषा	तिल, चावल
१०	कृत्तिका	दही	मघा	उड़द
११	रोहिणी	वृषभमांस	पूर्वाफाल्गुनी	गाय का दही
१२	मृगशिरा	मृग-मांस	उत्तराफाल्गुनी	गाय का घृत
१३	आर्द्रा	नवनीत	हस्त	गाय का दूध
१४	पुनर्वसु	घृत	चित्रा	हरिण-मांस
१५	पुष्य	दूध	स्वाती	हरिण-रक्त
१६	अश्लेषा	दीपक-मांस	विशाखा	क्षीर
१७	मघा	कथौटी	अनुराधा	पपीहा-मांस
१८	पूर्वाफाल्गुनी	मेंडक-मांस	जेष्ठा	हरिण-मांस
१९	उत्तराफाल्गुनी	श्वापद-मांस	मूल	शशक-मांस
२०	हस्त	वस्त्रानीत	पूर्वापाढ़ा	साठी-चावल
२१	चित्रा	मूंगदाल	उत्तरापाढ़ा	मालकांगनी
२२	स्वाती	फलाहार	अभिजित्	पूआ
२३	विशाखा	आसित्तिका	श्रवण	विचित्र पक्षी
२४	अनुराधा	मिश्रकूर	धनिष्ठा	उत्तम फल
२५	जेष्ठा	लट्ठिअ	शतभिषक्	कच्छप-मांस
२६	मूल	मूली-पत्र	पूर्वाभाद्रपद	सारिका पक्षी मांस
२७	पूर्वापाढ़ा	आमला	उत्तराभाद्रपद	गोधा-मांस
२८	उत्तरापाढ़ा	वल	रेवती	साही-मांस

(क्रमशः)

णाणस्स वुड्ढिकरा दस णक्खत्ता—

११२६. दस णक्खत्ता णाणस्स वुड्ढिकरा पण्णत्ता, तं जहा—

गाहा—

मिगसिरमद्दा पुस्सो, तिण्णि य पुव्वाइं मूलमस्सेसा ।
हत्थो चित्ता य तहा, दस वुड्ढिकराइं णाणस्स ॥१॥[1]

—ठाणं. १०, सु० ७८१

ज्ञान वृद्धि करने वाले दस नक्षत्र—

११२६. ज्ञान की वृद्धि करने वाले दस नक्षत्र हैं, यथा—

गाथार्थ—

(१) मृगशिर, (२) आर्द्रा, (३) पुष्य, (४) पूर्वाषाढा, (५) पूर्वाफाल्गुनी, (६) उत्तराफाल्गुनी, (७) मूल, (८) अश्लेषा, (९) हस्त, (१०) चित्रा ।

ताराणं अणुत्तं, तुल्लत्तं—

११२७. प०—(क) अत्थि णं भंते ! चंदिम-सूरयाणं हिट्ठि पि ताराख्वा-अणुं पि तुल्ला वि ?

(ख) समे वि ताराख्वा-अणुं पि, तुल्ला वि ?

(ग) उप्पि वि ताराख्वा-अणुं पि, तुल्ला वि ?

उ०—(क-ग) हंता ! गोयमा ! तं चेव उच्चारेयव्वं ।

प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—"अत्थि णं चंदिम-सूरियाणं हिट्ठिपि ताराख्वा-अणुं पि तुल्लावि-जाव-उप्पिपि ताराख्वा-अणुं पि, तुल्लावि ?

उ०—गोयमा ! जहा-जहाणं तेसिं देवाणं तव-नियम-बंभचेराणि उसियाइं भवंति तहा तहा णं तेसिं णं देवाणं एवं पण्णायए, तं जहा—अणुत्ते वा, तुल्लत्ते वा ।

ताराओं का अणुत्व-तुल्यत्व—

११२७. प्र०—(क) हे भगवन् ! चन्द्र-सूर्य-विमान के नीचे जो तारे हैं वे (चन्द्र-सूर्य की कान्ति से) हीन हैं या तुल्य हैं ?

(ख) समक्षेत्र में जो तारे हैं वे हीन हैं या तुल्य हैं ?

(ग) ऊपर जो तारे हैं वे हीन हैं या तुल्य हैं ?

उ०—(क-ग) हाँ गौतम ! प्रश्नसूत्र के समान ही (उत्तर सूत्र) कहना चाहिए ।

प्र०—हे भगवन् ! यह किस प्रकार कहा जाता है, चन्द्र-सूर्य-विमानों के नीचे जो तारे हैं वे हीन भी हैं, तुल्य भी हैं—यावत्—ऊपर जो तारे हैं वे हीन भी हैं, तुल्य भी हैं ?

उ०—हे गौतम ! जिन-जिन देवों के (पूर्वभव के) तप-नियम-ब्रह्मचर्य जितने-जितने उत्कृष्ट होते हैं उन देवताओं के (द्युति-वैभव आदि) उतने ही जाने जाते हैं, यथा—हीनत्व या तुल्यत्व ।

(क्रमशः)

१ सूर्यप्रज्ञप्ति के संकलनकर्ता ने पूरे आगम में सभी गणित के सूत्र दिए हैं केवल यही एक सूत्र इसमें फलित से सम्बन्धित है ।
जैनागमों में निमित्त शास्त्र को पापश्रुत और निमित्त के प्रवक्ता श्रमण को पापश्रमण कहा है, अतः फलित के कथन का प्ररूपण इस आगम में होना श्रमण-साधना से सर्वथा विपरीत है ।

नक्षत्र भोजन विधान में कतिपय महाविगयों के भोजन तो अहिंसा के उपासक गृहस्थों के लिए भी वर्ज्य है ।
वृत्तिकार ने भी इस सूत्र की वृत्ति में मांस वाचक पदार्थों को फलवाचक सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया है ।
किन्तु स्व० आचार्य अमोलकऋषिजी महाराज और स्व० पूज्य श्री घासीलालजी महाराज ने मांस वाचक पदार्थों को फलवाचक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । उनके इस प्रयत्न से यह सूत्र सर्वज्ञ प्ररूपित सिद्ध हो गया है ।

एक ओर निमित्त कथन को पापश्रुत मानना और दूसरी ओर इस सूत्र को सर्वज्ञ प्ररूपित सिद्ध करना परस्पर विरोधी कथन के अतिरिक्त अपने हाथों से ही अपने पैरों पर कुठाराघात करना है ।
सम्भव है [illegible] परम्परा वालों ने ऐसे सूत्रों के कारण ही चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति के स्वाध्याय से विरक्त होने का क्रम शुरू कर दिया है ।

अनेक शोध-निबन्ध लेखक देश-विदेश के विद्वानों ने इन आगमों का पठन-पाठन किया है, फिर भी वे [illegible] नहीं हुए हैं अतः [illegible] इन आगमों का स्वाध्याय काल में स्वाध्याय करके ज्ञान वृद्धि कर सकते हैं ।
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्ष. ७, सू. १५६ में नक्षत्रों के नाम अभिजित् से उत्तराषाढा पर्यन्त कहे गये हैं और सूर्यप्रज्ञप्ति में भी नक्षत्र विषयक सभी कथन अभिजित् से उत्तराषाढा पर्यन्त कहे गये हैं, केवल यही एक सूत्र कृत्तिका से भरणी पर्यन्त [illegible] है अतः यह सूत्र अन्य मान्यता का सूचक है किन्तु इसकी [illegible] संकलन में सम्मिलित हो गई है । [illegible] यह सूत्र [illegible] है ।

—सम्पादक

१ भग. १८, सु. ७ ।

जहा जहा णं तेसिं देवाणं तव-नियम-बंभचेराणि णो उसियाइं भवंति तहा तहा णं तेसि णं देवाणं-एवं णो पण्णायए, तं जहा—अणुत्ते वा, तुल्लत्तेवा।

—जंबु० वक्ख० ७, सु० १६२

जिन-जिन देवों के (पूर्वभव के) तप-नियम-ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट नहीं होते हैं उनके (द्युति-वैभव आदि) उतने नहीं जाते हैं, यथा हीनत्व या तुल्यत्व।

से एएणट्ठे णं गोयमा! एवं वुच्चइ—"अत्थि णं चंदिम-सूरियाणं हिट्ठिंपि तारारूवा अणुं पि, तुल्लावि -जाव-उप्पिंपि तारारूवा अणुं पि, तुल्लावि।[1]

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १९३

हे गौतम! इस प्रकार यह कहा जाता है कि—"चन्द्र-सूर्य-विमानों के नीचे जो तारे हैं वे हीन भी हैं और तुल्य भी हैं —यावत्—ऊपर जो तारे हैं वे हीन भी हैं और तुल्य भी हैं।

ताराणं अवाहा अंतरं परूवणं—

ताराओं के अवाधा अन्तर का प्ररूपण—

११२८. प०—ता जंबुद्दीवे णं दीवे तारारूवस्स य तारारूवस्स य एस णं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

उ०—दुविहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) वाघाइमे य, (२) निव्वाघाइमे य,

(क) तत्थ णं जे से वाघाइमे, से णं जहण्णेणं दोण्णि छावट्ठे जोयणसए, उक्कोसे णं, बारस जोयण सहस्साइं दोण्णि बायाले जोयणसए तारारूवस्स य तारारूवस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

(ख) तत्थ णं जे से णिव्वाघाइमे से णं जहण्णे णं पंचधणु सयाइं, उक्कोसे णं अद्धजोयणं तारारूवस्स य, अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।[2]

—सूरिय० पा० १८, सु० ९९

११२८. प्र०—इस जम्बूद्वीप द्वीप में एक तारा से दूसरे तारा का अवाधा अन्तर कितना है?

उ०—अन्तर दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) व्यवधान वाला और बिना व्यवधान वाला।

(क) इनमें जो व्यवधान वाला है, वह जघन्य दो सौ छासठ योजन का है और उत्कृष्ट बारह हजार दो सौ छियालीस योजन का है।

(ख) इनमें जो व्यवधान वाला है, वह जघन्य पाँच सौ धनुष का है और उत्कृष्ट आधे योजन का है।

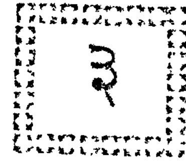


॥ तिर्यक्लोक वर्णन समाप्त ॥

---

१ (क) जीवा० प० ३, उ० २, सु० १९३। (ख) सूरिय० पा० १८, सु० ९०।
(ग) यह निगमन सूत्र केवल जीवाभिगम और सूर्य प्रज्ञप्ति में ही है।
(घ) यहाँ तप=अनशनादि बारह प्रकार का, नियम=शौचादि, और ब्रह्मचर्य=मैथुन विरति-इनकी उत्कृष्ट आराधना करने वाला ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होता है। जैन धर्म का आराधक ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न नहीं होता है—
"अत्र जैनधर्मानामनुत्तरदर्शनमुत्कृष्टब्रह्मचारिणां ज्योतिष्केषु उत्पादासम्भवात्—जंबु० वक्ख० ७, सु० १६२ टीका।

२ (क) जंबु० वक्ख० ७, सु० १६६, (ख) जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० २०१, (ग) चंद० पा० १८, सु० ९९।



ऊर्ध्वलोक वर्णन

[सूत्र १ से ७८, पृष्ठ ६५५ से ६६० तक]

उड्ढ लोओ

उड्ढलोग खेत्तलोगस्स पण्णरसविह परूवणं—

१. प०—उड्ढलोग खेत्तलोए णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पण्णरसविहे पण्णत्ते, तं जहा

१. सोहम्मकप्प उड्ढलोगखेत्तलोए ।
२—११-जाव-१२. अच्चुय उड्ढलोगखेत्तलोए,
१३. गेवेज्जविमाण उड्ढलोग खेत्तलोए,
१४. अणुत्तरविमाण उड्ढलोग खेत्तलोए,
१५. ईसिपब्भार पुढवि उड्ढलोग खेत्तलोए ।

—भग. स. ११, उ. १०, सु. ६

उड्ढलोग खेत्तलोगस्स संठाण परूवणं—

२. प०—उड्ढलोग खेत्तलोए णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! उड्ढमुइंगाकारसंठिए पण्णत्ते ।

भग. स. ११, उ. १०, सु. ८

उड्ढलोग खेत्तलोए जीवाजीव देस-पदेस-परूवणं—

३. प०—उड्ढलोग खेत्तलोए णं भंते ! किं जीवा जीवदेसा जीवपदेसा अजीवा अजीवदेसा अजीव-पदेसा ?

उ०—गोयमा ! जीवा वि त[illegible] अजीव-पदेसा वि ।

जे जीवा ते नियमं एगिंदिया-[illegible]-पंचेंदिया अणिंदिया,

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदिया [illegible] अणिंदिय देसा ।

जे जीव पदेसा ते नियमं एगिंदिय पदेसा [illegible] अणिंदिय पदेसा ।

ऊर्ध्व लोक

ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक का पन्द्रह प्रकार से प्ररूपण—

१. प्र०—भगवन् ! ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ०—गौतम ! पन्द्रह प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) सौधर्म कल्प ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक,
(२-११) यावत्, (१२) अच्युत कल्प) ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक,
(१३) ग्रैवेयक विमान ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक,
(१४) अनुत्तर विमान ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक,
(१५) ईषत् प्राग्भार पृथ्वी ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक ।

ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक के संस्थान का प्ररूपण—

२. प्र०—भगवन् ! ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—गौतम ! ऊर्ध्व मृदंगाकार संस्थान कहा गया है ।

ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक में जीव तथा अजीव के देशों और प्रदेशों का प्ररूपण—

३. प्र० [illegible] ! ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक में क्या जीव [illegible] [illegible] अजीव, अजीव के [illegible] अजीव के प्रदेश [illegible]

उ० [illegible] ऊपर सूत्र के समान [illegible] यावत्, [illegible]

[illegible] हैं—यावत्, [illegible]

[illegible]

[illegible]

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. रूवि अजीवा य, २. अरूवी अजीवा य।

जे रूवि अजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. खंधा, २. खंधदेसा, ३. खंधपदेसा, ४. परमाणु पोग्गला।

जे अरूवि अजीवा ते छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

नो धम्मत्थिकाए—१. धम्मत्थिकायस्सदेसे, २. धम्मत्थिकायस्स पदेसा।

नो अधम्मत्थिकाए—३. अधम्मत्थिकायस्सदेसे, ४. अधम्मत्थिकायस्सपदेसा।

नो आगासत्थिकाए, ५. आगासत्थिकायस्स देसे, ६. आगासत्थिकायस्स पदेसा, ७. अद्धासमओ नत्थि[1],

—भग. स. ११, उ. १०, सु. १४

जो अजीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) रूपी अजीव और (२) अरूपी अजीव,

जो रूपी अजीव हैं वे चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) स्कंध, (२) स्कंध के देश, (३) स्कंध के प्रदेश, (४) परमाणु पुद्गल।

जो अरूपी अजीव हैं वे छ प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

धर्मास्तिकाय नहीं—(१) धर्मास्तिकाय के देश हैं, (२) धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं।

अधर्मास्तिकाय नहीं, (३) अधर्मास्तिकाय के देश हैं, (४) अधर्मास्किाय के प्रदेश हैं।

आकाशास्तिकाय नहीं, (५) आकाशास्तिकाय के देश हैं, (६) आकाशास्तिकाय के प्रदेश हैं, (७) अद्धा समय नहीं है।

उड्ढलोगखेत्तलोगस्स एगपएसे जीवाजीव-देस-पदेस परूवणं—

ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक के एक आकाश-प्रदेश में जीव तथा अजीव के देश और प्रदेशों का प्ररूपण—

४. प०—उड्ढलोग-खेत्तलोगस्स णं भंते! एगम्मि आगास पएसे किं जीवा जीवदेसा, जीव पदेसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपदेसा?

उ०—गोयमा! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीव पदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि।

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा।

अहवा—एगिंदिय देसा य, बेइंदियस्स देसे।

अहवा—एगिंदिय देसा य, बेइंदियाण य देसा।

एवं मज्झिल्लविरहिओ-जाव-अणिंदिएसु।

अहवा—एगिंदिय देसा य, अणिंदियाण-देसा।

जे जीव पदेसा ते नियमं एगिंदिय-पदेसा,

अहवा—एगिंदिय पदेसा य, बेइंदियस्स पदेसा,

अहवा—एगिंदिय पदेसा य, बेइंदियाण य पदेसा।

एवं आदिल्ल विरहिओ-जाव-पंचेंदिएसु।

अणिंदिएसु तिय भंगो—

४. प्र०—भन्ते! ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक के एक आकाश प्रदेशों में क्या जीव हैं? जीव के देश हैं? जीव के प्रदेश हैं? तथा अजीव के देश हैं? अजीव के प्रदेश हैं?

उ०—गौतम! जीव नहीं हैं, जीव के देश हैं, जीव के प्रदेश हैं, अजीव हैं अजीव के देश हैं, अजीव के प्रदेश हैं।

जो जीव के देश हैं वे निश्चित रूप से एकेन्द्रिय के देश हैं।

अथवा—एकेन्द्रिय के देश हैं और बेइन्द्रिय का एक देश हैं।

अथवा—एकेन्द्रिय के देश हैं और बेइन्द्रियों के देश हैं।

इस प्रकार बीच के भंग विना—यावत्—शेष भंग अनिन्द्रियों में हैं।

अथवा—एकेन्द्रियों के देश हैं—यावत्—अनिन्द्रियों के देश हैं।

जो जीव के प्रदेश हैं वे निश्चित रूप से एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं।

अथवा—एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं और बेइन्द्रिय के प्रदेश हैं।

अथवा—एकेन्द्रिय प्रदेश हैं और बेइन्द्रियों के प्रदेश हैं।

इस प्रकार प्रथम भंग रहित—यावत्—(शेष भंग) पंचेन्द्रियों में हैं।

अनिन्द्रियों में तीन भंग हैं।

---

१ एवं उड्ढलोग खेत्तलोए वि, नवरं—अरूवी छव्विहा, अद्धा समओ नत्थि। —भग. स. ११, उ. १०, सु. १४
इस संक्षिप्त पाठ का विस्तृत पाठ ऊपर अंकित है।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा

१. रूवी अजीवा य, २. अरूवी अजीवा य।

रूवी तहेव—

जे अरूवी अजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

नो धम्मत्थिकाए, १. धम्मत्थिकायस्स देसे, २. धम्मत्थिकायस्स पदेसे।

३-४. अधम्मत्थिकायस्स वि।[1]

—भग. ११, उ. १०, सु. १८

जो अजीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) रूपी अजीव, (२) अरूपी अजीव।

रूपी पूर्ववत् कहें।

जो अरूपी अजीव हैं वे चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

धर्मास्तिकाय नहीं है, (१) धर्मास्तिकाय के देश हैं, (२) धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं।

(३-४) इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के देश और प्रदेश हैं।

उड्ढलोगस्स आयाम-मज्झ परूवणं—

४. प०—कहि णं भंते ! उड्ढलोगस्स आयाम-मज्झे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! उप्पिं सणंकुमार-माहिंदाणं, हेट्ठिं बंभलोए कप्पे रिट्ठे विमाणपत्थडे। एत्थ णं उड्ढलोगस्स आयाम-मज्झे पण्णत्ते।

—भग. स. १३, उ. ४, सु. १९

ऊर्ध्वलोक के आयाम-मध्य का प्ररूपण—

५. प्र०—भगवन् ! ऊर्ध्वलोक के आयाम-मध्य (लम्बाई का मध्य भाग) कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के ऊपर और नीचे ब्रह्मलोक कल्प में रिष्ट विमान के प्रस्तट में ऊर्ध्वलोक का आयाम-मध्य कहा गया है।

वेमाणिय देवाण ठाणाइं—

६. प०—कहि णं भंते ! वेमाणियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

प०—कहि णं भंते ? वेमाणिया देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-णक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं बहूओ जोयणकोडीओ बहूओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता। एत्थ णं सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुय-गेवेज्ज-अणुत्तरेसु। एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं चउरासीइं विमाणावास सयसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीति मक्खायं।[1]

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा,

एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइ भागे।

एत्थ णं बहवे वेमाणिया देवा परिवसंति, तं जहा

सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोग-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-

वैमानिक देवों के स्थान—

६. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त वैमानिक देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

प्र०—भगवन् ! वैमानिक देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के [illegible]

[illegible]

१ [illegible]

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. रूवि अजीवा य, २. अरूवी अजीवा य।

जे रूवि अजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. खंधा, २. खंधदेसा, ३. खंधपदेसा, ४. परमाणु पोग्गला।

जे अरूवि अजीवा ते छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

नो धम्मत्थिकाए—१. धम्मत्थिकायस्सदेसे, २. धम्मत्थिकायस्स पदेसा।

नो अधम्मत्थिकाए—३. अधम्मत्थिकायस्सदेसे, ४. अधम्मत्थिकायस्सपदेसा।

नो आगासत्थिकाए, ५. आगासत्थिकायस्स देसे, ६. आगासत्थिकायस्स पदेसा, ७. अद्धासमओ नत्थि[1],

—भग. स. ११, उ. १०, सु. १४

जो अजीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) रूपी अजीव और (२) अरूपी अजीव,

जो रूपी अजीव हैं वे चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) स्कंध, (२) स्कंध के देश, (३) स्कंध के प्रदेश, (४) परमाणु पुद्गल।

जो अरूपी अजीव हैं वे छ प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

धर्मास्तिकाय नहीं—(१) धर्मास्तिकाय के देश हैं, (२) धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं।

अधर्मास्तिकाय नहीं, (३) अधर्मास्तिकाय के देश हैं, (४) अधर्मास्किाय के प्रदेश हैं।

आकाशास्तिकाय नहीं, (५) आकाशास्तिकाय के देश हैं, (६) आकाशास्तिकाय के प्रदेश हैं, (७) अद्धा समय नहीं है।

उड्ढलोगखेत्तलोगस्स एगपएसे जीवाजीव-देस-पदेस परूवणं—

ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक के एक आकाश-प्रदेश में जीव तथा अजीव के देश और प्रदेशों का प्ररूपण—

४. प०—उड्ढलोग-खेत्तलोगस्स णं भंते! एगम्मि आगास पएसे किं जीवा जीवदेसा, जीव पदेसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपदेसा?

उ०—गोयमा! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीव पदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि।

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा।

अहवा—एगिंदिय देसा य, बेइंदियस्स देसे।

अहवा—एगिंदिय देसा य, बेइंदियाण य देसा।

एवं मज्झिल्लविरहिओ-जाव-अणिंदिएसु।

अहवा—एगिंदिय देसा प, अणिंदियाण-देसा।

जे जीव पदेसा ते नियमं एगिंदिय-पदेसा,

अहवा—एगिंदिय पदेसा य, बेइंदियस्स पदेसा,

अहवा—एगिंदिय पदेसा य, बेइंदियाण य पदेसा।

एवं आदिल्ल विरहिओ-जाव-पंचेंदिएसु।

अणिंदिएसु तिय भंगो—

४. प्र०—भन्ते! ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक के एक आकाश प्रदेशों में क्या जीव हैं? जीव के देश हैं? जीव के प्रदेश हैं? तथा अजीव के देश हैं? अजीव के प्रदेश हैं?

उ०—गौतम! जीव नहीं हैं, जीव के देश हैं, जीव के प्रदेश हैं, अजीव हैं अजीव के देश हैं, अजीव के प्रदेश हैं।

जो जीव के देश हैं वे निश्चित रूप से एकेन्द्रिय के देश हैं।

अथवा—एकेन्द्रिय के देश हैं और बेइन्द्रिय का एक देश हैं।

अथवा—एकेन्द्रिय के देश हैं और बेइन्द्रियों के देश हैं।

इस प्रकार बीच के भंग बिना—यावत्—शेष भंग अनिन्द्रियों में हैं।

अथवा—एकेन्द्रियों के देश हैं—यावत्—अनिन्द्रियों के देश हैं।

जो जीव के प्रदेश हैं वे निश्चित रूप से एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं।

अथवा—एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं और बेइन्द्रिय के प्रदेश हैं।

अथवा—एकेन्द्रिय प्रदेश हैं और बेइन्द्रियों के प्रदेश हैं।

इस प्रकार प्रथम भंग रहित—यावत्—(शेष भंग) पंचेन्द्रियों में हैं।

अनिन्द्रियों में तीन भंग हैं।

---

१ एवं उड्ढलोग खेत्तलोए वि, नवरं—अरूवी छव्विहा, अद्धा समओ नत्थि। —भग. स. ११, उ. १०, सु. १४

इस संक्षिप्त पाठ का विस्तृत पाठ ऊपर अंकित है।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. रूवी अजीवा य, २. अरूवी अजीवा य।

रूवी तहेव—

जे अरूवी अजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

नो धम्मत्थिकाए, १. धम्मत्थिकायस्स देसे, २. धम्मत्थिकायस्स पदेसे।

३-४. अधम्मत्थिकायस्स वि।[1]

—भग. ११, उ. १०, सु. १६

जो अजीव है वे दो प्रकार के कहे गये हैं यथा—

(१) रूपी अजीव, (२) अरूपी अजीव।

रूपी पूर्ववत् कहें।

जो अरूपी अजीव हैं वे चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

धर्मास्तिकाय नहीं हैं, (१) धर्मास्तिकाय के देश हैं, (२) धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं।

(३-४) इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के देश और प्रदेश हैं।

उड्ढलोगस्स आयाम-मज्झ परूवणं—

५. प०—कहि णं भंते! उड्ढलोगस्स आयाम-मज्झे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! उप्पि सणंकुमार-माहिंदाणं। हेट्ठि बंभलोए कप्पे रिट्ठे विमाणपत्थडे। एत्थ णं उड्ढलोगस्स आयाम-मज्झे पण्णत्ते।

—भग. स. १३, उ. ४, सु. १४

ऊर्ध्वलोक के आयाम-मध्य का प्ररूपण—

५. प्र०—भगवन्! ऊर्ध्वलोक के आयाम-मध्य (लम्बाई का मध्य भाग) कहाँ गया है?

उ०—गौतम! सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के ऊपर और नीचे ब्रह्मलोक कल्प में रिष्ट विमान के प्रस्तट में ऊर्ध्वलोक का आयाम-मध्य कहा गया है।

वेमाणिय देवाण ठाणाइं—

६. प०—कहि णं भंते! वेमाणियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

प०—कहि णं भंते? वेमाणिया देवा परिवसंति?

उ०—गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-णक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ, बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता। एत्थ णं सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुय-गेवेज्ज-अणुत्तरेसु। एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं चउरासीइ विमाणावास सयसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीतिमक्खायं।[2]

ते णं विमाण सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा,

तत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइ भागे।[3]

तत्थ णं बहवे वेमाणिया देवा परिवसंति, तं जहा—

सोहम्मीसाण सणंकुमार-माहिंद-बंभलोग-लंतग-महासुक्क-

वैमानिक देवों के स्थान—

६. प्र०—भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त वैमानिक देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं?

प्र०—भगवन्! वैमानिक देव कहाँ रहते हैं?

उ०—गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के सम भूमि भाग से ऊपर चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारा विमानों से अनेक सौ अनेक हजार (अनेक लाख) अनेक क्रोड़ तथा अनेक क्रोडा-क्रोड योजन दूर ऊपर सौधर्म-ईशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लांतक-महाशुक्र-सहस्रार-आनत-प्राणत-आरण-अच्युत-(कल्प) ग्रैवेयक और अनुत्तरो (कल्पातीतों) में वैमानिक देवों के चौरासी लाख, सत्तानवे हजार तेवीस विमान हैं- ऐसा कहा गया है।

वे विमान सर्वरत्नमय है, स्वच्छ हैं—यावत्—मनहर हैं।

इन विमानों में पर्याप्त और अपर्याप्त वैमानिक देवों के स्थान कहे गये हैं, उपपात समुद्घात और स्वस्थान इन तीन की अपेक्षा से (ये स्थान) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

उन विमानों में अनेक वैमानिक देव रहते हैं, यथा—

सौधर्म-ईशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लांतक-महाशुक्र-

---

१ एवं उड्ढलोग खेत्तलोगस्स वि, नवरं—अद्धानमओ नत्थि, अरूवी चउव्विहा। —भग. स. ११, उ. १०, सु. १६
इस संक्षिप्त पाठ का विस्तृत पाठ ऊपर अंकित है।

२ सम. स. ८४, सु. १७।

३ भवनपति देवों के समान हैं।

सहस्सार-आणय-पाणयः आरणऽच्चुयगेवेज्जगाऽणुत्तरोववाइया देवा।

सहस्रार-आनत-प्राणत-आरण-अच्युत-ग्रैवेयक और अनुत्तरों में उत्पन्न होने वाले देव।

ते णं

बारह देवलोकों के देवों के मुकुटों पर अंकित चिह्न—

१. मिग,
२. महिस,
३. वराह,
४. सीह,
५. छगल,
६. दुदुर,
७. हय,
८. गयवई,
९. भुयग,
१०. खग्ग,
११. उसभंक,
१२. विडिम, पागडिय-चिंधमउडा।

(१) सौधर्म कल्पवासी देवों के मुकुटों पर मृग का चिह्न है।
(२) ईशानकल्पवासीदेवों के मुकुटों पर पाडे का चिह्न है।
(३) सनत्कुमारकल्पवासीदेवों के मुकुटों पर वराह का चिह्न है।
(४) माहेन्द्रकल्पवासीदेवों के मुकुटों पर सिंह का चिह्न है।
(५) ब्रह्मलोककल्पवासीदेवों के मुकुटों पर बकरे का चिह्न है।
(६) लान्तककल्पवासीदेवों के मुकुटों पर मेंडक का चिह्न है।
(७) महाशुक्रकल्पवासीदेवों के मुकुटों पर घोड़े का चिह्न है।
(८) सहस्रारकल्पवासीदेवों के मुकुटों पर गजपति का चिह्न है।
(९) आनतकल्पवासीदेवों के मुकुटों पर भुजंग का चिन्ह है।
(१०) प्राणतकल्पवासीदेवों के मुकुटों पर खड्ग का चिन्ह है।
(११) आरणकल्पवासीदेवों के मुकुटों पर वृषभ का चिन्ह है।
(१२) अच्युतकल्पवासी देवों के मुकुटों पर विडिम (मृग विशेष) का चिन्ह है।

पसिढिलवरमउड-तिरीड धारिणो
वरकुण्डलुज्जोइयाणणा
मउडदित्त सिरया।
रत्तभा पउमपम्हगोरा,
सेया सुहवण्णगंध-फासा,
उत्तमवेउव्विणो,
पवरवत्थ-गंध-मल्लाणुलेवणधरा,
महिड्ढिया-जाव- महासोक्खा।
हारविराइयवच्छा,
कडयू-तुडियथियभुया,
अंगद-कुडल-मट्ठगंडतलकण्णपीढधारी,
विचित्तहत्थाभरणा,
विचित्तमालामउली।
कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया,
कल्लाणगपवरमल्लाऽणुलेवणा,
भासरबोंदि पलंबवणमालधरा,

वे शिथिल श्रेष्ठ मुकुट किरीट धारण करने वाले हैं,
श्रेष्ठ कुण्डलों से प्रकाशित मुख वाले हैं,
मुकुटों से सुशोभित केशों वाले हैं,
लालवर्ण के कमलों जैसे गौर वर्ण वाले हैं,
श्वेत शुभ वर्ण-गंध-स्पर्श वाले हैं,
उत्तम वैक्रेय करने वाले हैं,
श्रेष्ठ वस्त्र गंध माल्य तथा लेपन धारण करने वाले हैं,
महान् ऋद्धि वाले हैं—**यावत्**—महासुख वाले हैं,
वक्ष स्थल पर विराजित हार वाले हैं,
कड़ा और भुजबंध से सुदृढ़ भुजा वाले हैं,
अंगद और कुण्डल स्पृष्ट कपोलों पर कर्णपीठ धारण करने वाले हैं,
हाथों पर विचित्र आभरण धारण करने वाले हैं,
मस्तक पर विचित्र मालायें धारण करने वाले हैं,
कल्याणकर श्रेष्ठ वस्त्र धारण करने वाले हैं,
कल्याणकर श्रेष्ठ माल्य एव विलेपन धारण करने वाले हैं,
दिव्य देह वाले हैं, लम्बी वनमालायें धारण करने वाले हैं,

दिव्वेणं वण्णेणं-जाव-दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा। पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयसहस्साणं-जाव-साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं-जाव-दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति। —पण्ण. प. २, सु. १९६

दिव्य वर्ण से—**यावत्**—दिव्य तेज से दस दिशाओं को उद्योतित करते हुए, प्रभासित करते हुए वे अपने अपने लाखों विमानावासों का—**यावत्**—अपने अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का और अन्य अनेक वैमानिक देव-देवियों का आधिपत्य करते हुए—**यावत्**—दिव्य भोगों को भोगते हुए रहते हैं।

सोहम्मगदेवाणं ठाणाइं—

७. प०—कहि णं भंते ! सोहम्मगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

प०—कहि णं भंते ! सोहम्मगदेवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमि-भागाओ उड्ढं। चंदिम-सूरिय-गह-णक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसयाइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसय-सहस्साइं बहुगीओ जोयण कोडीओ बहुगीओ जोयण कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता। एत्थ णं सोहम्मे णामं कप्पे पण्णत्ते।

पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणविच्छिण्णे अद्ध चंद संठाण संठिए अच्चिमालिभासरासिवण्णाभे असंखेज्जाओ जोयण कोडीओ असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं असंखेज्जाओ जोयण कोडाकोडीओ परिक्खेवेणं।

सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

तत्थ णं सोहम्मगदेवाणं बत्तीसं विमाणावास सयसहस्सा हवंतीतिमक्खायं।

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

ते णं विमाणा णं बहुमज्झ देसभाए पंच वडेंसया पण्णत्ता, तं जहा—

१. असोगवडेंसए, २. सत्तिवण्णवडेंसए, ३. चंपग-वडेंसए, ४. चूयवडेंसए, ५. मज्झेय त्थ सोहम्मवडेंसए।

ते णं वडेंसया सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

एत्थ णं सोहम्मगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइ भागे।

उ०—तत्थ णं सोहम्मगदेवा परिवसंति।

महिड्ढीया-जाव-दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा।

ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावास सयसहस्साणं साणं साणं सामाणिय साहस्सीणं-जाव-साणं साणं आयरक्ख-देव साहस्सीणं अण्णेसि च बहूणं सोहम्मग कप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं-जाव-दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

—पण्ण. प. २, सु. १९७

सौधर्मकल्प के देवों के स्थान—

७. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्मकल्प के देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

प्र०—भगवन् ! सौधर्मकल्प के देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समभूभाग से ऊपर चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र ताराओं से अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन और अनेक क्रोडाक्रोड योजन ऊपर इतने दूर जाने पर सौधर्म नाम का कल्प कहा गया है।

वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा अर्धचन्द्र के आकार से स्थित, सूर्य के किरण समूह सदृश प्रभाव वाला, असंख्य कोटाकोटी योजन लम्बा चौड़ा, और असंख्य कोटाकोटी योजन की परिधि वाला है।

सर्व रत्नमय है, स्वच्छ है—यावत्—प्रतिरूप है।

उसमें सौधर्म कल्पवासी देवों के बत्तीस लाख विमान कहे गये हैं।

वे विमान सर्व रत्नमय हैं स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

उन विमानों के मध्य में पाँच अवतंसक विमान कहे गये हैं, यथा—

(१) अशोकावतंसक, (२) सप्तपर्णावतंसक, (३) चंपकावतंसक, (४) चूतावतंसक, (५) और मध्य में सौधर्मावतंसक।

वे सभी अवतंसक स्वर्णमय हैं स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्मकल्प के देवों के स्थान कहे गये हैं।

(१) उपपात, (२) समुद्घात और (३) स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

उ०—वहाँ अनेक सौधर्म कल्पवासी देव रहते हैं।

वे महा ऋद्धि वाले हैं—यावत्—दिव्य तेज से दस दिशाओं को प्रकाशित करते हुए रहते हैं।

वे अपने अपने लाखों विमानों का अपने अपने हजारों सामानिक देवों का—यावत्—अपने अपने आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य करते हुए—यावत्—दिव्य भोगोपभोग भोगते हुए रहते हैं।

सोहम्मिंदस्स वण्णओ--

८. सक्के यत्थ देविंदे देवराया परिवसति।

वज्जपाणी पुरंदरे सतक्कतू सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाहिवई वत्तीसविमाणावाससयसहस्साहिवई एरावणवाहणे।

सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे, आलइयमालमउडे णवहेमचारुचित्त-चंचल कुण्डले।

विलिहिज्जमाणगंडे महिड्ढिए-जाव-दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे।

से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्साणं[1] चउरासीए सामाणिय सहस्सीणं।[2] तावत्तीसए तावत्तीसगाणं। चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं। तिण्हं परिसाणं[3] सत्तण्हं अणियाणं बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं-जाव-दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

—पण्ण. प. २, सु. १९७/२

सौधर्मेन्द्र वर्णक—

८. यहाँ देवेन्द्र देवराज "शक्र" रहता है।

वह वज्रपाणी=हाथ में वज्र रखने वाला, पुरंदर, शतक्रतु सहस्राक्ष, मघवा, पाकशासन, दक्षिणार्ध लोक का अधिपति, बत्तीस लाख विमानों का स्वामी, ऐरावण नामक हाथी के वाहन वाला है।

वह सुरेन्द्र रजरहित आकाश जैसे वस्त्र धारण करने वाला है, माला और मुकुट पहने हुए हैं, जिसके गालों पर चित्त जैसे चंचल स्वर्ण के नये सुन्दर कुण्डल चमक रहे हैं।

वह महा ऋद्धि वाला है—यावत्—दिव्य तेज से दस दिशाओं को उद्योतित एवं प्रकाशित करता हुआ रह रहा है।

वह वहाँ बत्तीस लाख विमान का चौरासी हजार सामानिक देवों का, तेतीस त्रायस्त्रिंक देवों का, चार लोकपालों का सपरिवार आठ अग्रमहिषियों का, तीन परिषदाओं का सात सेनाओं का, सात सेनापतियों का, (सामानिक देवों से चौगुने) तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों का और अन्य अनेक सौधर्म कल्पवासी वैमानिक देव देवियों का आधिपत्य करता हुआ—यावत्—दिव्य भोगोपभोगों को भोगता हुआ रह रहा है।

ईसाणगदेवाणं ठाणाइं—

९. प०—कहि णं भंते! ईसाणगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

प०—कहि णं भंते! ईसाणगदेवा परिवसंति?

उ०—गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-णक्खत्त-तारा-रूवाणं बहूइं जोयणसयाइं-जाव-बहुगीओ जोयण कोडा-कोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता। एत्थ णं ईसाणे णामं कप्पे पण्णत्ते,

पाईण-पडिणायए-जाव-असंखेज्जाओ जोयण कोडा-कोडीओ परिक्खेवेणं। सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

तत्थ णं ईसाणयदेवाणं अट्ठावीसं विमाणा वाससयसहस्सा हवंतीतिमक्खायं।[4]

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

ईशानकल्प देवों के स्थान—

९. प्र०—भगवन्! ईशान कल्पवासी पर्याप्त और अपर्याप्त देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं?

प्र०—भगवन्! ईशान कल्पवासी देव कहाँ रहते हैं?

उ०—गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अतिसम रमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र और ताराओं से अनेक सौ योजन—यावत्—अनेक क्रोडाक्रोडी योजन ऊपर दूर जाने पर ईशान नामक कल्प कहा गया है।

पूर्व-पश्चिम में लम्बा—यावत्—असंख्य क्रोडाक्रोडी योजन की परिधि से स्थित है, सर्व रत्नमय हैं स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

वहाँ ईशान कल्पवासी देवों के अट्ठावीस लाख विमान कहे गये है।

वे विमान सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पंच वडेंसगा पण्णत्ता। तं जहा—

१. अंकवडेंसए, २. फलिहवडेंसए, ३. रयणवडेंसए, ४. जायरूववडेंसए, ५. मज्झेऽय एत्थ ईसाणवडेंसए।

ते णं वडेंसया सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

एत्थ णं ईसाणगाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता,

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइ भागे।

सेसं जहा सोहम्मगदेवाणं-जाव-दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति। —पण्ण. प. २, सु. १९८/१

उन विमानों के मध्यभाग में पाँच अवतंसक कहे गये हैं, यथा—

(१) अंकावतंसक, (२) स्फटिकावतंसक, (३) रत्नावतंसक, (४) जातरूपावतंसक और मध्य में, (५) ईशानावतंसक हैं।

ये अवतंसक सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं—**यावत्**—प्रतिरूप हैं।

यहाँ ईशानकल्पवासी पर्याप्त और अपर्याप्त देवों के स्थान कहे गये हैं।

(१) उपपात, (२) समुद्घात और स्वस्थान अपेक्षा से ये लोक के असंख्यातवें भाग हैं।

शेष सौधर्मकल्पवासी देवों के समान—यावत्—दिव्य भोग भोगते हुए रहते हैं।

ईसाणंदस्स वण्णओ—

१०. ईसाणे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति सूलपाणी वसभवाहणे उत्तरड्ढ लोगाहिवई अट्ठावीसं विमाणावाससयसहस्साहिवई।

अयरंवरवत्थधरे सेसं जहा सक्कस्स-जाव-दिव्वाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहरइ। —पण्ण. प. २, सु. १९८/२

ईशानेन्द्र वर्णक—

१०. यहाँ देवेन्द्र देवराज ईशान रहता है।

उसके हाथ में शूल है, उसका वाहन वृषभ है, वह उत्तरार्ध लोक का अधिपति है, बत्तीस लाख विमानों का स्वामी है।

रजरहित वस्त्र धारण करने वाला है, **शेष वर्णन शक्र के समान है।**

सणंकुमारदेवाणं ठाणाइं—

११. प०—कहि णं भंते ! सणकुमार देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

प०—कहि णं भंते ! सणंकुमारा देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! सोहम्मस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खिसपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता। एत्थ णं सणंकुमारे णामं कप्पे पण्णत्ते।

पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे जहा सोहम्मे-जाव-पडिरूवे।

एत्थ णं सणंकुमाराणं देवाणं बारस विमाणावास सय-सहस्सा भवंतीतिमक्खायं।

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा। तेसि णं विमाणाणं बहुमज्झदेसभाए पंच वडेंसगा पण्णत्ता, तं जहा—

१. असोगवडेंसए, २. सत्तिवण्णवडेंसए, ३. चंपगवडेंसए, ४. चूयवडेंसए, ५. मज्झे यऽत्थ सणंकुमारवडेंसए,

ते णं वडेंसया सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

सनत्कुमार देवों के स्थान—

११. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सनत्कुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

प्र०—भगवन् ! सनत्कुमार देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! सौधर्मकल्प के ऊपर समान दिशा में और समान विदिशा में अनेक सौ, अनेक हजार, अनेक लाख और अनेक क्रोडाक्रोडी योजन ऊपर दूर जाने पर सनत्कुमार नाम का कल्प कहा गया है।

पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा, **सौधर्म कल्प है—यावत्—प्रतिरूप है।**

यहाँ सनत्कुमार देवों के बारह लाख विमान कहे गये हैं।

वे विमान सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं—**यावत्**—प्रतिरूप हैं।
उन विमानों के मध्य भाग में पाँच अवतंसक कहे गये हैं, यथा—

(१) अशोकावतंसक, (२) सप्तपर्णावतंसक, (३) चंपकावतंसक, (४) चूतावतंसक, (५) और मध्य में सनत्कुमारावतंसक हैं।

ये अवतंसक सर्वरत्नमय हैं स्वच्छ—**यावत्**—प्रतिरूप हैं।

एत्थ णं सणंकुमार देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता,

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइ भागे।

उ०—तत्थ णं बहवे सणंकुमारा देवा परिवसंति। महिड्ढीया -जाव-पभासेमाणा विहरंति।

णवरं—अग्गमहिसीओ णत्थि।

—पण्ण. प. २, सु. १९९/१

यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त सनत्कुमार देवों के स्थान कहे गये हैं।

(१) उपपात, (२) समुद्घात और (३) स्वस्थान की अपेक्षा से ये लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

उ०—वहाँ अनेक सनत्कुमार देव रहते हैं वे महर्धिक हैं—यावत्—दैदिप्यमान रहते हैं।

विशेष—अग्रमहिषियाँ नहीं हैं।

सणंकुमारेन्द वण्णओ—

१२. सणंकुमारे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसइ। अरयंवर वत्थधरे, सेसं जहा सक्कस्स।

से णं तत्थ बारसण्हं विमाणावाससयसहस्साणं बावत्तरीए सामाणिय साहस्सीणं, सेसं जहा सक्कस्स, अग्गमहिसी वज्जं।

णवरं—चउण्हं बावत्तरीणं आयरक्खदेव साहस्सीणं-जाव-विहरइ।

—पण्ण. प. २, सु. १९९/२

सनत्कुमारेन्द्र वर्णक—

१२. यहाँ देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार रहता है। रजतरहित वस्त्रधारी हैं, शेष वर्णन "शक्र" जैसा है।

वह बारह लाख विमानों का बहत्तर हजार सामानिक देवों का स्वामी है शेष वर्णन "शक्र" जैसा है, अग्रमहिषियाँ नहीं हैं।

विशेष—बहत्तर हजार के चौगुने अर्थात् दो लाख अट्ठावीस हजार आत्मरक्षक देव—**यावत्**—रहते हैं।

माहिंदाणं देवाणं ठाणाइं—

१३. प०—कहि णं भंते! माहिंदाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ता णं ठाणा पण्णत्ता?

प०—कहि णं भंते! माहिंदग देवा परिवसंति?

उ०—गोयमा! ईसाणस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं-जाव-बहुगीओ जोयण कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं माहिंदे नामे कप्पे पण्णत्ते।

पाईण-पडीणायए एवं जहेव सणंकुमारे।

णवरं—अट्ठविमाणावास सयसहस्सा।[1]

वडेंसया जहा ईसाणे।

णवरं—मज्झे यऽत्थ माहिंदवडेंसए।

एवं सेसं जहा सणंकुमारग देवाणं-जाव-विहरइ।

—पण्ण. प. २, सु. २००/१

माहेन्द्र देवों के स्थान—

१३. प्र०—भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त माहेन्द्र देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं?

प्र०—भगवन्! माहेन्द्र देव कहाँ रहते हैं?

उ०—गौतम! ईशान कल्प के ऊपर समान दिशा में और समान विदिशा में अनेक योजन—**यावत्**—अनेक क्रोडाक्रोडी योजन ऊपर दूर जाने पर माहेन्द्र नामक कल्प कहा गया है।

पूर्व-पश्चिम में लम्बा है शेष **सनत्कुमार जैसा है।**

विशेष—वहाँ आठ लाख विमान है।

अवतंसक **ईशानकल्प** जैसे हैं।

विशेष—यहाँ मध्य में माहेन्द्रावतंसक हैं।

शेष सनत्कुमार देवों जैसा है—यावत्—यहाँ रहते हैं।

माहेंद वण्णओ—

१४. माहिंदे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसइ। अरयंवरवत्थधरे, एवं जहा सणंकुमारे-जाव-विहरइ।

णवरं—अट्ठण्हं विमाणावाससयसहस्साणं सत्तरीए सामाणिय-साहस्सीणं चउण्हं सत्तरीणं आयरक्खदेव साहस्सीणं-जाव-विहरइ।

—पण्ण. प. २, सु. २००/२

माहेन्द्र वर्णक—

यहाँ देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र रहता है, रजरहित वस्त्रधारी है, शेष **सनत्कुमार जैसा** है—यावत्—**रहता है।**

विशेष—आठ लाख विमानों का सित्तर हजार सामानिक देवों का सित्तर हजार के चौगुने अर्थात् दो लाख अस्सी हजार आत्म रक्षक देवों का आधिपत्य करता हुआ—**यावत्**—रहते हैं।

---

१ सम. १३१।

बंभलोग देवाणं ठाणाइं—

१५. प०—कहि णं भंते ! बंभलोग देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ता णं ठाणा पण्णत्ता ?

प०—कहि णं भंते । बंभलोग देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! सणंकुमार माहिंदाणं कप्पाणं उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं-जाव-बहूगीओ जोयण कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता। एत्थ णं बंभलोए णामं कप्पे पण्णत्ते।

पाईण पडीणायए उदीण दाहिण विरिथण्णे। पडिपुण्ण चंदसंठाण संठिए अच्चिमाली भासरासिप्पभे।

अवसेसं जहा सणंकुमाराणं।

णवरं—चत्तारि विमाणावास सयसहस्सा।[1]

वडेंसगा जहा सोहम्मवडेंसया।

णवरं—मज्झे यऽत्थ बंभलोएवडेंसए।

एत्थ णं बंभलोगाणं देवाणं ठाणा पण्णत्ता।

सेसं तहेव-जाव-विहरंति।

—पण्ण. प. २, सु. २०१/१

ब्रह्मलोक देवों के स्थान—

१५. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त ब्रह्मलोक देवों के स्थान कहाँ हैं ?

प्र०—भगवन् ! ब्रह्मलोक के देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के ऊपर समान दिशा में और समान विदिशा में अनेक योजन—**यावत्**—अनेक क्रोडाक्रोडी योजन ऊपर दूर जाने पर ब्रह्मलोक नामक कल्प कहा गया है।

पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा प्रतिपूर्ण चन्द्र जैसे आकार से स्थित सूर्य सदृश कान्ति समूह से सम्पन्न।

शेष सनत्कुमार सदृश है।

विशेष—उनमें चार लाख विमान हैं।

अवतंसक—सौधर्म कल्प के अवतंसकों के समान हैं।

विशेष—उनके मध्य में ब्रह्मलोकावतंसक हैं।

इसमें ब्रह्मलोक देवों के स्थान कहे गये हैं।

शेष पूर्ववत् —यावत् —रहते हैं।

बंभदेवेंदवण्णओ—

१६. बंभे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसइ।

अरयम्बर वत्थधरे एवं जहा सणंकुमारे-जाव-विहरइ।

णवरं—चउण्हं विमाणावाससयसहस्साणं। सट्ठीए समाणियसाहस्सीणं चउण्हं सट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं-जाव-विहरइ।

—पण्ण. प. २, सु. २०१/२

ब्रह्म देवेन्द्र वर्णन—

१६. वहाँ देवेन्द्र देवराज ब्रह्म रहता है।

वह रजरहित वस्त्रधारी हैं, **शेष सनत्कुमारेन्द्र सदृश है—यावत्—रहता है।**

विशेष—चार लाख विमान, साठ हजार सामानिक देव इनसे चौगुने अर्थात् दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देव हैं—**यावत्**—रहता है।

लंतगदेवाणं ठाणाइं—

१७. प०—कहि णं भंते ! लंतग देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

प०—कहि णं भंते ! लंतग देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! बंभलोगस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं-जाव-बहुगीओ जोयण कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं लंतग णामे कप्पे पण्णत्ते।

पाईण-पडीणायए जहा बंभलोए।

णवरं—पण्णासं विमाणावास सहस्सा भवंतीति मक्खायं[2]

वडेंसगा जहा ईसाणवडेंसगा।

लान्तक देवों के स्थान—

१७. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त लान्तक देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

प्र०—भगवन् ! लान्तक देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर समान दिशा में समान विदिशा में अनेक योजन—**यावत्**—अनेक क्रोडाक्रोडी योजन ऊपर दूर जाने पर लान्तक नाम का कल्प कहा गया है।

पूर्व-पश्चिम में लम्बा, ब्रह्मलोक जैसा है।

विशेष—पचास हजार विमान कहे गये हैं।

अवतंसक ईशान कल्प के अवतंसकों के समान हैं।

---

१ सोहम्मीसाणेसु बंभलोए य तीस कप्पेसु चउसट्ठि विमाणावास सयसहस्सा पण्णत्ता। —सम. ६४, सु. ५

२ सम. ५०, सु. ५।

णवरं— मज्झे यऽत्थ लंतगवडेंसए ।
एत्थ णं लंतग देवाणं ठाणा पण्णत्ता ।
सेसं तहेव-जाव-विहरंति ।

—पण्ण. प. २, सु. २०२/१

विशेष—यहाँ मध्य में लान्तकावतंसक हैं ।
यहाँ लान्तक देवों के स्थानक कहे गये हैं ।
शेष पूर्ववत्—यावत्—रहते हैं ।

लंतग देवेन्द वण्णओ—

१८. लंतए यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसइ । जहा सणंकुमारे ।

णवरं—पण्णासाए विमाणावाससहस्साणं, पण्णासाए सामाणिय साहस्सीणं, चउण्हं य पण्णासाणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं-जाव-विहरइ ।

—पण्ण. प. २, सु. २०२/२

लान्तक देवेन्द्र वर्णक—

१८. यहाँ देवेन्द्र देवराज लान्तक रहता है, शेष सनत्कुमार जैसा है ।

विशेष—पचास हजार विमानों का, पचास हजार सामानिक देवों का, इनके चौगुने अर्थात् दो लाख आत्मरक्षक देवों का स्वामी—यावत्—रहते हैं ।

महासुक्काणं देवाणं ठाणाइ—

१९. प०—कहि णं भंते ! महासुक्काणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

प०—कहि णं भंते ! महासुक्का देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! लंतयस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसि बहूइं जोयणसयाइं-जाव-बहुगीओ जोयण कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता । एत्थ णं महासुक्के णामं कप्पे पण्णत्ते ।

पाईण-पडीणायए जहा बंभलोए ।
णवरं—चत्तालीसं विमाणावाससहस्सा भवंतीति मक्खायं[1]
वडेंसगा जहा सोहम्मवडेंसगा ।
णवरं—मज्झे यऽत्थ महासुक्कवडेंसए ।
एत्थ णं महासुक्क देवाणं ठाणा पण्णत्ता ।
सेसं तहेव-जाव-विहरंति ।

—पण्ण. प. २, सु. २०३/१

महाशुक्र देवों के स्थान—

१९. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त महाशुक्र देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

प्र०—भगवन् ! महाशुक्र देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! लान्तक कल्प के ऊपर समान दिशा में समान विदिशा में अनेक सौ योजन—अनेक क्रोडाक्रोडी योजन ऊपर दूर जाने पर महाशुक्र कल्प कहा गया है ।

पूर्व-पश्चिम में लम्बा ब्रह्मलोक जैसा है ।
विशेष—इसमें चालीस हजार विमान कहे गये हैं ।
अवतंसक—सौधर्म कल्प के अवतंसकों के समान हैं ।
विशेष—यहाँ मध्य में महाशुक्रावतंसक हैं ।
यहाँ महाशुक्र देवों के स्थान कहे गये हैं ।
शेष पूर्ववत्—यावत्—रहते हैं ।

महासुक्कदेवेन्द वण्णओ—

२०. महासुक्के यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसइ ।
जहा सणंकुमारे ।

णवरं—चत्तालीसाए विमाणावाससहस्साणं,
चत्तालीसाए सामाणिय साहस्सीणं,
चउण्हं य चत्तालीसाणं आयरक्खदेव साहस्सीणं-जाव-विहरइ ।

—पण्ण. प. २. सु. २०३/२

महाशुक्र देवेन्द्र वर्णक—

२०. यहाँ देवेन्द्र देवराज महाशुक्र रहता है ।
शेष वर्णन सनत्कुमार जैसा है ।
विशेष—चालीस हजार विमानों का,
चालीस हजार सामानिक देवों का,
इनसे चौगुने अर्थात् एक लाख साठ हजार देवों का—यावत्—आधिपत्य करता हुआ रहता है ।

---

१ सम. ४०, सु. ८ ।

सहस्सार देवाणं ठाणाइं—

२१. प०—कहि णं भंते ! सहस्सार देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

प०—कहि णं भंते ! सहस्सार देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! महासुक्कस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसि बहूइं जोयणाइं-जाव-बहुगीओ जोयण कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता। एत्थ णं सहस्सारे णामं कप्पे पण्णत्ते।

पाईण-पडीणायए जहा बंभलोए।
णवरं—छव्विमाणावास सहस्सा भवंतीतिमक्खायं।[1]
वडेंसगा जहा ईसाणस्स।
णवरं—मज्झे यऽत्थ सहस्सार वडेंसए।
एत्थ णं सहस्सार देवाणं ठाणा पण्णत्ता।
सेसं तहेव-जाव विहरंति।

—पण्ण. प. २, सु. २०४/१

सहस्सार देवेन्द वण्णओ—

२२. सहस्सारे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसइ।
जहा सणंकुमारे।
णवरं—छण्हं विमाणावास सहस्साणं,
तीसाए सामाणिय साहस्सीणं,
चउण्हं य तीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं-जाव-विहरइ।

—पण्ण. प. २, सु. २०४/२

आणय-पाणय देवाणं ठाणाइं—

२३. प०—कहि णं भंते ! आणय-पाणयाणं देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

प०—कहि णं भंते ! आणय-पाणय देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! सहस्सारस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसि बहूइं जोयणाइं-जाव-बहुगीओ जोयण कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं आणय-पाणय नामेणं दुवे कप्पा पण्णत्ता।

पाईण-पडीणायया उदीण दाहिण वित्थिण्णा अद्ध चंद संठाण संठिया अच्चिमाली भासरासिप्पभा।

सेसं जहा सणंकुमारे-जाव-पडिरूवा।

तत्थ णं आणय-पाणय देवाणं चत्तारि विमाणावाससया भवंतीति मक्खायं।[2]-जाव-पडिरूवा।

वडिंसगा जहा सोहम्मे।

सहस्रार देवों के स्थान—

२१. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सहस्रार देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

प्र०—भगवन् ! सहस्रार देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! महाशुक्र कल्प के ऊपर समान दिशा में समान विदिशा में अनेक योजन—यावत्—अनेक क्रोडाक्रोडी योजन ऊपर दूर जाने पर सहस्रार नाम का कल्प कहा गया है।

पूर्व-पश्चिम लम्बा ब्रह्मलोक जैसा है।
विशेष—यहाँ छ हजार विमान कहे गये हैं।
अवतंसक—ईशानकल्प के अवतंसक जैसे हैं।
विशेष—यहाँ मध्य में सहस्रारावतंसक हैं।
यहाँ सहस्रार देवों के स्थान कहे गये हैं।
शेष पूर्ववत् यावत् रहते हैं।

सहस्रार देवेन्द्र वर्णक—

२२. यहाँ देवेन्द्र देवराज सहस्रार रहता है।
शेष वर्णन सनत्कुमार जैसा है।
विशेष—छह हजार विमानों का,
तीस हजार सामानिक देवों का,
इनसे चौगुने अर्थात् एक लाख बीस हजार आत्मरक्षक देवों का—यावत्—आधिपत्य करता हुआ रहता है।

आनत-प्राणत देवों के स्थान—

२३. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त आनत-प्राणत देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

प्र०—भगवन् ! आनत-प्राणत देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! सहस्रारकल्प के ऊपर समान दिशा में समान विदिशा में अनेक योजन—यावत्—अनेक क्रोडाक्रोडी योजन ऊपर दूर जाने पर आनत-प्राणत नाम के दो कल्प कहे गये हैं।

पूर्व-पश्चिम में लम्बे, उत्तर-दक्षिण में चौड़े, अर्ध चन्द्र के आकार से स्थित, सूर्य के किरण समूह सदृश प्रभा वाले हैं।

शेष सनत्कुमार कल्प जैसा है—यावत्—प्रतिरूप है।

वहाँ आनत-प्राणत देवों के चार सौ विमान कहे गये हैं—यावत्—वे प्रतिरूप हैं।

अवतंसक—सौधर्म कल्प जैसे हैं।

---

१ सम. ११६, सु.।

२ सम. १०६, सु. ४।

णवरं—मज्झे पाणयवडेंसए।

ते णं वडेंसगा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

एत्थ णं आणय-पाणय देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे आणय-पाणय देवा परिवसंति, महिड्ढीया -जाव-पभासेमाणा।

ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयाणं-जाव-विहरंति। —पण्ण. प. २, सु. २०५/१

विशेष—मध्य में प्राणत अवतंसक हैं।

वे अवतंसक सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त आनत-प्राणत देवों के स्थान कहे गये हैं।

(१) उपपात, (२) समुद्घात, (३) और स्वस्थान की अपेक्षा से वे लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

वहाँ अनेक आनत-प्राणत देव रहते हैं, महर्धिक—यावत्—देदीप्यमान हैं।

वे वहाँ अपने अपने विमानावासों का आधिपत्य करते हुए —यावत्—रहते हैं।

पाणय देवेन्द वण्णओ—

२४. पाणए यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसइ—

जहा सणंकुमारे।

णवरं—चउण्हं विमाणावाससयाणं।

वीसाए सामाणियसाहस्सीणं,

असीईए आयरक्खदेवसाहस्सीणं-जाव-विहरइ। —पण्ण. प. २, सु. २०५/२

प्राणतदेवेन्द्र वर्णक—

२४. यहाँ देवेन्द्र देवराज "प्राणत" रहता है।

शेष सनत्कुमार जैसा है।

विशेष—चार सौ विमानों का,

बीस हजार सामानिक देवों का,

अस्सी हजार आत्म-रक्षक देवों का आधिपत्य करता हुआ —यावत्—रहता है।

आरणऽच्चुयाणं देवाणं ठाणाइं—

२५. प०—कहि णं भंते! आरणऽच्चुयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

प०—कहि णं भंते! आरणऽच्चुया देवा परिवसंति?

उ०—गोयमा! आणय-पाणय कप्पाणं उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं एत्थ णं आरणऽच्चुया णामं दुवे कप्पा पण्णत्ता।

पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिण्णा अद्ध चंद संठाण संठिया अच्चिमाली भासरासि वण्णाभा असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं सव्व रयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

ते णं विमाणा अच्छा-जाव-पडिरूवा।

तेसि णं विमाणाणं बहुमज्झ देसभाए पंच वडेंसगा तं जहा—

१. अंकवडेंसए, २. फलिहवडेंसए, ३. रयणवडेंसए, ४. जायरूववडेंसए, ५. मज्झेयऽत्थ अच्चुयवडेंसए।

ते णं वडेंसया सव्व रयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

आरण-अच्युत देवों के स्थान—

२५. प्र०—भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त आरण और अच्युत देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं?

प्र०—भगवन्! आरण-अच्युत देव कहाँ रहते हैं?

उ०—गौतम! आनत-प्राणत कल्पों के ऊपर समान दिशा में समान विदिशा में आरण और अच्युत नाम के दो कल्प कहे गये हैं।

पूर्व-पश्चिम में लम्बे, उत्तर-दक्षिण में चौड़े, अर्ध चन्द्र के आकार से स्थित सूर्य के किरण समूह सदृश प्रभा वाले असंख्य कोटाकोटी योजन के लम्बे, चौड़े, असंख्य कोटाकोटी योजन की परिधि वाले हैं, सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

वे देव विमान स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

उन विमानों के मध्य भाग में पाँच अवतंसक कहे गये हैं। यथा—

(१) अंकावतंसक, (२) स्फटिकावतंसक, (३) रत्नावतंसक, (४) जातरूपावतंसक, (५) और मध्य में अच्युतावतंसक हैं।

वे अवतंसक सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

एत्थ णं आरणऽच्चुयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइ भागे।

तत्थ णं वहवे आरणऽच्चुया देवा परिवसंति।

—पण्ण० प० २, सु० २०६/१

यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त आरण और अच्युत देवों के स्थान कहे गये हैं, यथा—

(१) उपपात, (२) समुद्घात और (३) स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

वहाँ अनेक आरण और अच्युत देव रहते हैं।

अच्चुयदेवेंद वण्णओ—

२६. अच्चुए यऽत्थं देविंदे देवराया परिवसइ। जहा पाणए-जाव-विहरइ।

णवरं—तिण्हं विमाणावाससयाणं[1],
दसण्हं सामाणियसाहस्सीणं,
चत्तालीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं-जाव-विहरइ।

अच्युत देवेन्द्र वर्णक—

२६. यहाँ देवेन्द्र देवराज "अच्युत" रहता है, शेष वर्णन प्राणत देवेन्द्र के समान रहता है।

विशेष—तीन सौ विमानावासों का,
दस हजार सामानिक देवों का,
चालीस हजार आत्म-रक्षक देवों का आधिपत्य करता हुआ —यावत्—रहता है।

दुवालस देवलोगाणं देवविमाणाणं संगहणी गाहाओ—

१. वत्तीस,
२. अट्ठवीसा,
३. वारस,
४. अट्ठ,
५. चउरो, सतसहस्सा,
६. पण्णा,
७. चत्तालीसा,
८. छच्चसहस्सा सहस्सारे ॥१॥
९. आणय, १०. पाणयकप्पे चत्तारिसया,
११. ऽरण, १२. ऽच्चुए सत्तविमाणसयाइं
चउसु वि एएसु कप्पेसु ॥२॥

वारह देव लोकों के देव विमानों की संग्रहणी गाथायें—

(१) सौधर्मकल्प में वत्तीस लाख विमान,
(२) ईशानकल्प में अठाईस लाख विमान,
(३) सनत्कुमारकल्प में वारह लाख विमान,
(४) माहेन्द्रकल्प में आठ लाख विमान,
(५) ब्रह्मलोक कल्प में चार लाख विमान,
(६) लान्तककल्प में पचास हजार विमान,
(७) महाशुक्रकल्प में चालीस हजार विमान,
(८) सहस्रारकल्प में छह हजार विमान,
(९) आनत, (१०) प्राणत कल्पों में चार सौ विमान,
(११) आरण, (१२) अच्युत कल्पों में तीन सौ विमान,
आनत आदि चार कल्पों में सात सौ विमान।

सामाणिय संगहणी गाहा—

१. चउरासीइ,
२. असीई,
३. वावत्तरि,
४. सत्तरी य,
५. सट्ठी य,
६. पण्णा,
७. चत्तालीसा,
८. तीसा,
९-१०. वीसा,
११-१२. दससहस्सा ॥
एए चेव आयरक्खा चउगुणा।

—पण्ण. प. २, सु. २०६/२

सामानिक देवों की संग्रहणी गाथा—

(१) सौधर्मेन्द्र के चौरासी हजार सामानिक देव,
(२) ईशानेन्द्र के अस्सी हजार सामानिक देव,
(३) सनत्कुमारेन्द्र के वहत्तर हजार सामानिक देव,
(४) माहेन्द्र के सित्तर हजार सामानिक देव,
(५) ब्रह्मदेवेन्द्र के साठ हजार सामानिक देव,
(६) लान्तक देवेन्द्र के पचास हजार सामानिक देव,
(७) महाशुक्र देवेन्द्र के चालीस हजार सामानिक देव,
(८) सहस्रारेन्द्र के तीस हजार सामानिक देव,
(९-१०) आनत-प्राणतेन्द्र के वीस हजार सामानिक देव,
(११-१२) आरण-अच्युतेन्द्र के दस हजार सामानिक देव।
प्रत्येक देवेन्द्र के सामानिक देवों से चौगुने आत्म-रक्षक देव हैं।

---

[1] सम. १०१, सु. १-२।

गेवेज्जगदेवाणं ठाणाइं—

२७. प०—कहि णं भंते ! हेट्ठिमगेवेज्जग देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

प०—कहि णं भंते ! हेट्ठिम गेवेज्जग देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! आरणऽच्चुयाणं कप्पाणं उप्पिं बहुइं जोयणाइं-जाव-बहुगीओ जोयण कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता, एत्थ णं हेट्ठिम गेवेज्जगाणं देवाणं तओ गेवेज्जग विमाण पत्थडा पण्णत्ता।

पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिण वित्थिण्णा, पडिपुण्ण चंदसंठाणं संठिया। अच्चिमाली भासरासिवण्णाभा, सेसं जहा बंभलोगे-जाव-पडिरूवा।

तत्थ णं हेट्ठि गेविज्जगाणं देवाणं एकारसुत्तरे विमाणावाससए भवंतीतिमक्खायं।[1]

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

तत्थ णं हेट्ठिम गेविज्जगाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता,

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति।

सव्वे समिड्ढीया सव्वे समज्जुतीया सव्वे समजसा, सव्वे समबला सव्वे समाणुभावा महासोक्खा अणिंदा अप्पेसा अपुरोहिया अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समाणाउसो। —पण्ण. प. २, सु. २०७

प०—कहि णं भंते ! मज्झिमगाणं गेवेज्जगदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

प०—कहि णं भंते ! मज्झिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! हेट्ठिमगेवेज्जगाणं उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं-जाव-बहुगीओ जोयण कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता, एत्थ णं मज्झिमगेवेज्जगदेवाणं तओ गेविज्जगविमाणापत्थडा पण्णत्ता।

पाईण-पडीणायया जहा हेट्ठिमगेवेज्जगाणं।

णवरं—सत्तुत्तरे विमाणावाससए हवंतीतिमक्खायं।

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

एत्थ णं मज्झिमगेवेज्जगाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

ग्रैवेयक देवों के स्थान—

२७. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त अधस्तन ग्रैवेयक त्रिक के देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

प्र०—भगवन् ! अधस्तन ग्रैवेयक त्रिक के देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! आरण-अच्युत कल्पों के ऊपर अनेक योजन—यावत्—अनेक क्रोडाक्रोडी योजन ऊपर दूर जाने पर अधस्तन ग्रैवेयक देवों के तीन विमान प्रस्तर कहे गये हैं।

वे पूर्व-पश्चिम में लम्बे, उत्तर-दक्षिण में चौड़े हैं। प्रतिपूर्ण चन्द्र के आकार से स्थित हैं. सूर्य के किरण समूह सदृश प्रभा वाले हैं। शेष ब्रह्मलोक जैसे हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

वहाँ अधस्तन ग्रैवेयक देवों के एक सौ इग्यारह विमान कहे गये हैं।

वे विमान सर्व रत्नमय हैं स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

उनमें पर्याप्त और अपर्याप्त अधस्तन ग्रैवेयक देवों के स्थान कहे गये हैं -

(१) उपपात, (२) समुद्घात और (३) स्वस्थान की अपेक्षा से वे लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

वहाँ अनेक अधस्तन ग्रैवेयक देव रहते हैं।

सब समान ऋद्धि वाले, समान द्युति वाले, समान यश वाले समान बल वाले, समान प्रभाव वाले हैं। उनके इन्द्र नहीं हैं, उनके प्रेष्य देव नहीं हैं, उनके पुरोहित देव नहीं हैं। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे देव अहमेन्द्र कहे गये हैं।

प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त मध्यम ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

प्र०—भगवन् ! मध्यम ग्रैवेयक देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! अधस्तन ग्रैवेयकों के ऊपर समान दिशा में समान विदिशा में अनेक योजन—यावत्—अनेक क्रोडाक्रोडी योजन ऊपर दूर जाने पर मध्यम ग्रैवेयक देवों के तीन ग्रैवेयक विमान प्रस्तर कहे गये हैं।

पूर्व-पश्चिम में लम्बे, उत्तर-दक्षिण में चौडे अधस्तन ग्रैवेयकों के समान हैं।

विशेष—एक सौ सात विमान कहे गये है,

वे विमान सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

इनमें पर्याप्त और अपर्याप्त मध्यम ग्रैवेयक देवों के स्थान कहे गये हैं।

१ सम. १०१, सु. १-२।

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे।

उ०—तत्थ णं बहवे मज्झिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति।

सव्वे समिड्ढीया-जाव-अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो! —पण्ण. प. २, सु. २०८

प०—कहि णं भंते! उवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

प०—कहि णं भंते! उवरिमगेवेज्जगदेवाणं परिवसंति?

उ०—गोयमा! मज्झिमगेवेज्जगदेवाणं उप्पि बहूइं जोयणाइं-जाव-बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता, एत्थ णं उवरिमगेवेज्जगाणं देवाणं तओ गेवेज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता।

पाईण-पडीणायया जहा हेट्ठिमगेवेज्जगाणं।

णवरं—एगे विमाणावाससए भवंतीति मक्खायं।

सेसं तहेव भाणियव्वं-जाव-अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो! —पण्ण प. २, सु. २०९

(१) उपपात, (२) समुद्घात और (३) स्वस्थान की अपेक्षा से ये तीनों लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

उ०—इनमें अनेक मध्यम ग्रैवेयक देव रहते हैं।

वे सब समान ऋद्धि वाले हैं—यावत्—हे आयुष्मान् श्रमण! वे देव अहमिन्द्र कहे गये हैं।

प्र०—भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त उपरितन ग्रैवेयक देवों के स्थान कहां कहे गये हैं?

प्र०—भगवन्! उपरितन ग्रैवेयक देव कहां रहते हैं?

उ०—गौतम! मध्यम ग्रैवेयकों के ऊपर अनेक योजन—यावत्—अनेक क्रोडाक्रोड योजन ऊपर दूर जाने पर उपरितन ग्रैवेयकों के तीन विमान प्रस्तट कहे गये हैं।

पूर्व-पश्चिम में लम्बे—यावत्—अधस्तन ग्रैवेयकों के जैसे हैं।

विशेष—एक सौ विमान कहे गये हैं।

शेष सब पूर्ववत् कहना चाहिए—यावत्—हे आयुष्मान् श्रमण! वे देव अहमिन्द्र कहे गए हैं।

अनुत्तरोववाइयाणं देवाणं ठाणाइं—

२८. प०—कहि णं भंते! अणुत्तरोववाइयाण देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

प०—कहि णं भंते! अणुत्तरोववाइया देवा परिवसंति?

उ०—गोयमा! गेविज्जगविमाणाणं उप्पि बहूइं जोयणाइं-जाव-बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता, एत्थ णं नीरया-जाव-विसुद्धा पंचदिसिं पंच अणुत्तरा महइमहालया विमाणा पण्णत्ता। तं जहा—

१. विजए, २. वेजयंते, ३. जयंते, ४. अपराजिए, ५. सव्वट्ठसिद्धे।

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

एत्थ णं अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता,

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइ भागे।

उ०—तत्थ णं बहवे अणुत्तरोववाइया देवा परिवसंति।

सव्वे समिड्ढीया-जाव-अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो!

गेवेज्जगदेवाणं अणुत्तरोववाइय देवाणं य विमाणा संगहणी गाहा—

एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु, सत्तुत्तरं च मज्झिमए।
सयमेगं उवरिमए, पंचेव अणुत्तरविमाणा॥-॥

—पण्ण. प. २, सु. २१०

अनुत्तरोपपातिक देवों के स्थान—

२८. प्र०—भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त अनुत्तरौपपातिक देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं?

प्र०—भगवन्! अनुत्तरौपपातिक देव कहाँ रहते हैं?

उ०—गौतम! ग्रैवेयक विमानों के ऊपर अनेक योजन—यावत्—अनेक क्रोडाक्रोड योजन ऊपर दूर जाने पर रजरहित—यावत्—विशुद्ध पांच दिशाओं में पांच अनुत्तर महाविमान कहे गये हैं। यथा—

(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित, (५) सर्वार्थसिद्ध।

वे विमान सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

इनमें पर्याप्त और अपर्याप्त अनुत्तरौपातिक देवों के स्थान कहे गये हैं।

(१) उपपात, (२) समुद्घात और (३) स्वस्थान की अपेक्षा से ये लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

उ०—इनमें अनेक अनुत्तरौपपातिक देव रहते हैं।

सब समान ऋद्धि वाले हैं—यावत्—हे आयुष्मन् श्रमण! वे देव अहमिन्द्र कहे गये हैं।

ग्रैवेयक देवों के और अनुत्तरौपपातिक देवों के विमानों की संग्रहणी गाथा—

अधस्तन ग्रैवेयकों के एक सौ इग्यारह विमान,
मध्यम ग्रैवेयकों के एक सौ सात विमान,
उपरितन ग्रैवेयकों के सौ विमान,
अनुत्तरौपपातिक देवों के पांच विमान।

संगहणी गाहा—

पढमजुगलम्मि सत्तउसयाणि, वीयम्मि चोद्दस सहस्सा ।
ततिए सत्त सहस्सा, नव चेव सयाणि सेसेसु ॥

प०—लोगंतिय विमाणा णं भंते ! किंपइट्ठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! वाउपइट्ठिया पण्णत्ता ।

"विमाणाणं पइट्ठाणं वाहल्लुच्चत्तमेव" बंभलोय वत्तव्वया नेयव्वा-जाव- ।

प०—लोयंतिय विमाणेसु णं भंते ! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता पुढविकाइयत्ताए-जाव-वणस्सइकाइयत्ताए देवत्ताए उववण्णपुव्वा ?

उ०—गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो, नो चेव णं देवेत्ताए ।

प०—लोगंतिय विमाणेहिं णं भंते ! केवइय अबाहाए लोगंते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए लोगंते पण्णत्ते ।[1]

—भग. स. ६, उ. ५, सु. ३२-४१/४३

जोइसाओ कप्पाणं अन्तरं—

प०—जोइसस्स णं भन्ते ! सोहम्मीसाणाण य कप्पाणं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणाइं-जाव-अंतरे पण्णत्ते ।

एवं सोहम्मीसाणाणं सणंकुमार-माहिंदाण य ।
एवं सणंकुमार-माहिंदाणं बंभलोगस्स य ।
एवं बंभलोगस्स लंतगस्स य ।
एवं लंतगस्स महासुक्कस्स य ।
एवं महासुक्कस्स सहस्सारस्स य ।
एवं सहस्सारस्स आणय-पाणयाण य कप्पाणं ।
एवं आणय-पाणयाणं आरणऽच्चुयाण य कप्पाणं ।
एव आरणऽच्चुयाणं गेवेज्ज विमाणाण य ।
एवं गेवेज्ज विमाणाणं अणुत्तरविमाणाण य ।

प०—अणुत्तर विमाणाणं भन्ते ! ईसिपब्भाराए य पुढवीए केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! दुवालस जोयण अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—भग० स० १४, उ० ८, सु० ६-१६

संग्रहणी गाथा—

प्रथम देव युगल में सात सौ, द्वितीय देव युगल में चौदह हजार, तृतीय देव युगल में सात हजार तथा शेष देव युगलों में नौ सौ देव परिवार हैं ।

प्र०—भगवन् ! लोकान्तिक विमान किस पर प्रतिष्ठित कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! वायु पर प्रतिष्ठित कहे गये हैं ।

विमानों का आधार-मोटाई और ऊँचाई ब्रह्मलोक के समान कहनी चाहिए—यावत्—

प्र०—भगवन् ! लोकान्तिक विमानों में सभी प्राणी, भूत, जीव और सत्व क्या पृथ्वीकाय—यावत्—वनस्पतिकाय अथवा देवकाय रूप में पहले उत्पन्न हुए हैं ?

उ०—गौतम ! अनेक वार; अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं । किन्तु लोकान्तिक विमानों में देव रूप मे उत्पन्न नहीं हुए है ।

प्र०—भगवन् ! लोकान्तिक विमानों से लोकान्त कितने अन्तर पर कहा गया है ?

उ०—गौतम ! असंख्य हजार योजन के अन्तर पर कहा गया है ।

ज्योतिष्क से कल्पों का अन्तर—

प्र०—भगवन् ! ज्योतिष्क और सौधर्मेशान कल्पों के मध्य में अव्यवहित अन्तर कितना कहा गया है ?

उ०—गौतम ! असंख्य योजन का—यावत्—अन्तर कहा गया है ।

इसी प्रकार सौधर्मेशान और सनत्कुमार-माहेन्द्र का अन्तर है ।
इसी प्रकार सनत्कुमार-माहेन्द्र और ब्रह्मलोक का अन्तर है
इसी प्रकार ब्रह्मलोक और लान्तक का अन्तर है ।
इसी प्रकार लान्तक और महाशुक्र का अन्तर है ।
इसी प्रकार महाशुक्र और सहस्रार का अन्तर है ।
इसी प्रकार सहस्रार और आणत-प्राणत का अन्तर है ।
इसी प्रकार आणत-प्राणत और आरण-अच्युत का अन्तर है ।
इसी प्रकार आरण-अच्युत और ग्रैवेयकों का अन्तर है ।
इसी प्रकार ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों का अन्तर है ।

प्र०—भगवन् ! अनुत्तर विमानों और ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी के मध्य में अव्यवहित अन्तर कितना कहा गया है ?

उ०—गौतम ! बारह योजन का अव्यवहित अन्तर कहा गया है ।

---

[1] भग. स. ६, उ. ५, सु. ४२ दव्वाणुओगे दट्ठव्वं ।

कप्पाणं संठाणं—

हेट्ठिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—सोहम्मे, ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे।

मज्झिल्ला चत्तारि कप्पा पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—बंभलोगे, लंतए, महासुक्के, सहस्सारे।

उवरिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—आणए, पाणए, आरणे, अच्चुए।

—ठाणं० ४, उ० ४, सु० ३८३

कल्पों के संस्थान—

नीचे के चार कल्प अर्ध चन्द्राकार हैं। यथा—(१) सौधर्म, (२) ईशान, (३) सनत्कुमार और (४) माहेन्द्र।

बिचले चार कल्प पूर्ण चन्द्राकार हैं। यथा—(१) ब्रह्मलोक, (२) लांतक, (३) महाशुक्र और (४) सहस्रार।

ऊपर के चार कल्प अर्ध चन्द्राकार हैं। यथा—(१) आनत, (२) प्राणत, (३) आरण और (४) अच्युत।

कण्हराईणं संखा-ठाणाइ य परूवणं—

३०. प०—कति णं भंते! कण्हराईओ पण्णत्ताओ?

उ०—गोयमा! अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पुरत्थिमेणं दो, पच्चत्थिमेणं दो,
दाहिणेणं दो, उत्तरेणं दो।

प०—कहि णं भंते! एयाओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ?

उ०—गोयमा! उप्पिं सणंकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं।
हेट्ठिं बंभलोगे कप्पे रिट्ठे विमाणपत्थडे।

एत्थ णं अक्खाडग-समचउरंस संठाणसंठियाओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ। तं जहा—

१. पुरत्थिमब्भंतरा कण्हराई दाहिणबाहिरं कण्हराइं पुट्ठा।

२. दाहिणमब्भंतरा कण्हराई पच्चत्थिमबाहिरं कण्हराइं पुट्ठा।

३. पच्चत्थिमब्भंतरा कण्हराई उत्तरबाहिरं कण्हराइं पुट्ठा।

४. उत्तरब्भंतरा कण्हराई पुरत्थिमबाहिरं पुट्ठा।

दो पुरत्थिम-पच्चत्थिमाओ बाहिराओ कण्हराईओ छलंसाओ।

दो उत्तर-दाहिणाओ बाहिराओ कण्हराईओ तंसाओ।

दो पुरत्थिम-पच्चत्थिमाओ अब्भिंतराओ कण्हराईओ चउरंसाओ।

दो उत्तर-दाहिणाओ अब्भिंतराओ कण्हराईओ चउरंसाओ।

संगहणी गाहा—

पुव्वावरा छलंसा, तंसा पुण दाहिणुत्तरा बज्झा।
अब्भंतर चउरंसा, सव्वा वि य कण्हराईओ॥१॥

—भग. स. ६, उ. ५, सु. १७-१८

कृष्णराजियों की संख्या और स्थानों का प्ररूपण—

३०. प्र०—भगवन्! कृष्णराजियाँ कितनी कही गई हैं?

उ०—गौतम! कृष्णराजियाँ आठ कही गई हैं, यथा—
पूर्व में दो, पश्चिम में दो,
दक्षिण में दो, उत्तर में दो।

प०—भगवन्! ये आठ कृष्णराजियाँ कहाँ कही गई हैं?

उ०—गौतम! सनत्कुमार और माहेन्द्रकुमार कल्प के ऊपर, ब्रह्मलोक कल्प के रिष्ट विमान प्रस्तट में नीचे,

अखाडे के समान सम चौरस आकार वाली ये आठ कृष्णराजियाँ कही गई हैं, यथा—

१. पूर्व की भीतरी कृष्णराजि दक्षिण की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है।

२. दक्षिण की भीतरी कृष्णराजि पश्चिम की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है।

३. पश्चिम की भीतरी कृष्णराजि उत्तर की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है।

उत्तर की भीतरी कृष्णराजि पूर्व की बाह्य कृष्ण राजि से स्पृष्ट है।

पूर्व-पश्चिम की दो बाह्य कृष्णराजियाँ षट्कोण हैं।

उत्तर-दक्षिण की दो बाह्य कृष्णराजियाँ त्रिकोण हैं।

पूर्व-पश्चिम की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोण हैं।

उत्तर-दक्षिण की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोण हैं।

संग्रहणी गाथार्थ—

पूर्व-पश्चिम की सभी बाह्य कृष्णराजियाँ षट्कोण हैं,
उत्तर-दक्षिण की सभी बाह्य कृष्णराजियाँ त्रिकोण हैं,
पूर्व-पश्चिम की सभी आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोण है,
उत्तर-दक्षिण की सभी आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोणहै।

कण्हराईणं आयाम-विक्खंभ-परूवणं—

३१. प०—कण्हराईओ णं भंते !
केवइयं आयामेणं ?
केवइयं विक्खंभेणं ?
केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयण सहस्साइं आयामेणं।

असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं।
असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ताओ।
—भग. स. ६, उ. ५, सु. १९

कृष्णराजियों के आयाम-विष्कम्भ का प्ररूपण—

३१. प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों की—
लम्बाई कितनी कही गई है ?
चौड़ाई कितनी कही गई है ?
परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम ! लम्बाई असंख्य हजार योजनों की कही गई है।

चौड़ाई असंख्य हजार योजनों की कही गई है।
परिधि असंख्य हजार योजनों की कही गई है।

कण्हराईणं पमाण-परूवणं—

३२. प०—कण्हराईओ णं भंते ! के महालियाओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे-जाव-परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

देवे णं महिड्ढीए-जाव-महाणुभागे "इणामेव इणामेव" त्ति कट्टु केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छरा-निवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छिज्जा। से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए-जाव-देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे एकाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं अद्धमासं वीईवएज्जा।
अत्थेगइयं कण्हराइं वीईवएज्जा।
अत्थेगइयं कण्हराइं नो वीईवएज्जा।
एमहालियाओ णं गोयमा ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ।
—भग. स. ६, उ. ५, सु. २०

कृष्णराजियों के प्रमाण का प्ररूपण—

३२. प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी बड़ी कही गई हैं ?

उ०—गौतम ! यह जम्बूद्वीप—यावत्—परिधि वाला कहा गया है।

कोई महाऋद्धि वाला—यावत्—महा भाग्यवान् देव "यह आया, यह आया" कहता हुआ तीन चुटकियाँ बजावे जितनी देर में इस जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा करके शीघ्र आ जावे। वह देव उस उत्कृष्ट शीघ्र—यावत्—देव गति से जाता हुआ एक दिन, दो दिन, तीन दिन, उत्कृष्ट पन्द्रह दिन निरन्तर चले तो किसी एक कृष्णराजि को पार कर सके और किसी एक कृष्णराजि को पार न कर सके।

हे गौतम ! इतनी बड़ी कृष्णराजियाँ कही गई हैं।

कण्हराईसु गेहाईणं अभाव-परूवणा—

३३. प०—अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु गेहा इ वा गेहावणा इ वा ?

उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प०—अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु गामाई वा-जाव-सन्निवेसा इ वा ?

उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।
—भग. स. ६, उ. ५, सु. २१-२२

कृष्णराजियों में "गृह" आदि के अभाव का प्ररूपण—

३३. प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में घर अथवा दुकानें हैं ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में गाँव आदि—यावत्—सन्निवेशादि हैं ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

कण्हराईसु ओराल देवकारियत्तं वलाहयाईणं अत्थित्तं—

३४. अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु ओराला वलाहया, १. संसेयंति, २. सम्मुच्छंति, ३. वासं वासंति ?

उ०—हंता गोयमा ! अत्थि।

प०—तं भंते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ?

कृष्णराजियों में देवकृत मेघ आदि का अस्तित्व—

३४. प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में विशाल मेघ मालायें हैं ? वे संस्वेदित होती हैं ? उत्पन्न होती हैं ? बरसती हैं ?

उ०—गौतम ! होती है।

प्र०—भगवन् ! क्या उन्हें देव करता है ? असुर करता है ? या नाग करता है ?

उ०—गोयमा ! देवो पकरेइ, नो असुरो नो नागो य।

उ०—गौतम ! देव करता है, असुर नहीं करता है, नाग नहीं करता है।

प०—अत्थि णं कण्हराईसु बादरे थणियसद्दे बादरे विज्जुए ?

प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में श्रव्य गर्जना है ? दृश्य विद्युत है ?

उ०—हंता गोयमा ! अत्थि।

उ०—गौतम ! है।

प०—तं भंते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ?

प्र०—भगवन् ! क्या उन्हें देव करता है ? असुर करता है ? या नाग करता है ?

उ०—गोयमा ! देवो पकरेइ, नो असुरो, नागो य।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. २३-२४

उ०—गौतम ! देव करता है, असुर और नाग नहीं करता है।

कण्ह[illegible]ईसु बादर आउकाइयाईणं अभाव-परूवण—

कृष्णराजियों में अप्कायिकों के अभाव का प्ररूपण—

३५. प०—[illegible] णं भंते ! कण्हराईसु बादरे आउकाए, बादरे अगणिकाए, बादरे वणप्फइकाए ?

उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, नन्नत्थ विग्गहगइ समावन्नएणं। —भग. स. ६, उ. ५, सु. २५

३५. प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में दृश्य अप्काय (जल) है ? अग्निकाय है ? वनस्पतिकाय है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, विग्रह गति प्राप्त जीवों को छोड़ कर।

कण्हराईसु चंदाईणं अभाव-परूवणं—

कृष्णराजियों में चन्द्र आदि के अभाव का प्ररूपण—

३६. प०—अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त तारारूवा ?

उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प०—अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु चंदाभा इ वा, सूरियाभा इ वा ?

उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. २६-२७

३६. प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, या तारा है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में चन्द्र सूर्य की आभा है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

कण्हराईणं वण्णपरूवणं—

कृष्णराजियों के वर्ण का प्ररूपण—

३७. कण्हराईओ णं भंते ! केरिसियाओ वण्णेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! कालाओ-जाव-परमकिण्हाओ वण्णेणं पण्णत्ताओ ? देवे वि णं अत्थेगइए जे णं तप्पढमयाए पासित्ता णं खंभाएज्जा, अहे णं अभिसमागच्छेज्जा तओ पच्छा सीहं सीहं तुरियं तुरियं खिप्पामेव वीइवएज्जा।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. २८

३७. प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियाँ कैसे वर्ण की कही गई हैं ?

उ०—गौतम ! श्याम—यावत्—उत्कृष्ट कृष्ण वर्ण की कही गयी है। कोई देव तो उसे देखकर पहले तो स्तम्भित हो जाता है फिर उसमें जाना चाहता है तो जल्दी-जल्दी बड़े वेग से उसे पार करता है।

कण्हराईणं णामधेज्जाणि—

कृष्णराजियों के नाम—

३८. प०—कण्हराईणं कति नामधेज्जा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अट्ठनामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

१. कण्हराई इ वा, २. मेहरा इ वा,
३. मघा इ वा, ४. माघवई इ वा,
५. वातफलिहे इ वा, ६. वातपलिक्खोभे इ वा,
७. देवफलिहे इ वा, ८. देवपलिक्खोभे इ वा।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. २९

३८. प्र०—कृष्णराजियों के कितने नाम कहे गये हैं ?

उ०—आठ नाम कहे गये हैं—

(१) कृष्णराजि, (२) मेघराजि,
(३) मघा, (४) माघवती,
(५) वातपरिघा, (६) वात परिक्षोभा,
(७) देवपरिघा, (८) देव परिक्षोभा।

कण्हराईणं परिणामत्त-परूवणं—

३९. प०—कण्हराईओ णं भंते ! किं पुढविपरिणामाओ, आउपरिणामाओ जीवपरिणामाओ, पुग्गलपरिणामाओ ?

उ०—गोयमा ! पुढविपरिणामाओ,
नो आउपरिणामाओ,
जीवपरिणामाओ वि पुग्गलपरिणामाओ वि ।

—भग. स. ६, उ. ५, सु ३०

कृष्णराजियों के परिणमत्व का प्ररूपण—

३९. प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियां क्या पृथ्वी का परिणाम हैं ? अप् (जल) का परिणाम हैं ? जीव का परिणाम हैं ? या पुद्गल का परिणाम हैं ?

उ०—गौतम ! पृथ्वी का परिणाम है, अप् का परिणाम नहीं है ।

जीव का परिणाम भी है और पुद्गल का परिणाम भी है ।

कण्हराईसु सव्वेसिं पाणाईणं उववन्नपुव्वत्त-परूवणं—

४०. प०—कण्हराईसु णं भंते ! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता उववन्नपुव्वा ?

उ०—हंतो गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो नो चेव णं बादर आउकाइयत्ताए, बादर अगणिकाइयत्ताए बादर वणस्सइ काइयत्ताए वा ।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. ३१

कृष्णराजियों में सभी प्राणियों की पूर्वोत्पत्ति का प्ररूपण—

४०. प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में सभी प्राणी, भूत, जीव, सत्व पूर्वोत्पन्न हैं ?

उ०—हां गौतम ! अनेक बार, अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं, किन्तु दृश्य, जल, दृश्य अग्नि या दृश्य वनस्पति रूप में नहीं उत्पन्न हुए हैं ।

तमुक्कायसरूव-परूवणं—

४१. प०—किमियं भंते ! तमुक्काए त्ति पवुच्चइ ?
किं पुढवी तमुक्काए त्ति पवुच्चइ ?
आउ तमुक्काए त्ति पवुच्चइ ?

उ०—गोयमा ! नो पुढवी तमुक्काए त्ति पवुच्चइ ।
आउ तमुक्काए त्ति पवुच्चइ ।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं पवुच्चइ ?

उ०—गोयमा ! पुढविकाए णं अत्थेगइए सुभे देसं पकासेइ, अत्थेगइए देसं नो पकासेइ ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं पवुच्चइ—नो पुढवी तमुक्काए त्ति पवुच्चइ, आउ तमुक्काए त्ति पवुच्चइ ।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. १

तमस्काय के स्वरूप का प्ररूपण—

४१. प्र०—भगवन् ! तमस्काय का स्वरूप कैसा है ?
प्र०—तमस्काय क्या पृथ्वी रूप है ?
तमस्काय क्या जल रूप है ?

उ०—गौतम ! तमस्काय पृथ्वी रूप नहीं है ।
तमस्काय जल रूप है ।

प्र०—भगवन् ! तमस्काय जल रूप कैसे है ?

उ०—गौतम ! पृथ्वीकाय किसी एक शुभ देश को प्रकाशित करती है और किसी एक देश को प्रकाशित नहीं करती है ।

हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि तमस्काय पृथ्वीकाय रूप नहीं है ! तमस्काय अप्काय (जल) रूप है ।

तमुक्कायस्स समुट्ठाण-सन्निट्ठिए य परूवणं—

४२. प०—तमुक्काए णं भंते ! कहिं समुट्ठिए ?

प०—कहिं सन्निट्ठिए ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवस्स दीवस्स बहिया तिरियमसंखेज्जे दीव समुद्दे वीइवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयण सहस्साणि ओगाहित्ता उवरिल्लाओ जलंताओ एगपएसियाए सेढीए, एत्थ णं तमुक्काए समुट्ठिए ।

उ०—सत्तरस एक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता तओ पच्छा तिरियं पवित्थरमाणे पवित्थरमाणे सोहम्मीसाण-

तमस्काय की उत्पत्ति और समाप्ति का प्ररूपण—

४२. प्र०—भगवन् ! तमस्काय कहां उत्पन्न होती है ?

प्र०—कहां समाप्त होती है ।

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप द्वीप के बाहर असंख्य द्वीप समुद्र के बाद अरुणवर द्वीप की बाहर की वेदिका के अन्तिम भाग से अरुणोदय समुद्र में बियालीस हजार योजन अवगाहन करने पर एक प्रदेशी श्रेणी में तमस्काय उत्पन्न होती है ।

उ०—सतरह सौ इक्कीस हजार योजन ऊपर जाने पर तिरछी फैलती-फैलती १. सौधर्म, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. और

सणंकुमार-माहिंदे चत्तारि वि कप्पे आवरित्ताणं[1] उड्ढं पि य णं-जाव-बंभलोगे कप्पे रिट्ठविमाणपत्थडं संपत्ते, एत्थ णं तमुक्काए सन्निट्ठिए।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. २

माहेन्द्र इन चार कल्प को आवृत करती हुई ऊपर—**यावत्**—ब्रह्मलोक कल्प के रिष्ट विमान के प्रस्तट में तमस्काय समाप्त होती है।

तमुक्कायस्स संठाण-परूवणं—

४३. प०—तमुक्काए णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अहे मल्लगमूलसंठिए।

उप्पिं कुक्कुडग पंजरगसंठिए पण्णत्ते।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. ३

तमस्काय के संस्थान का प्ररूपण—

४३. प्र०—भगवन् ! तमस्काय का संस्थान क्या कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीचे सकोरे के मूल जैसे आकार वाली है, और ऊपर कुर्कट (मुर्गा) के पिंजरे जैसे आकार वाली है।

तमुक्कायस्स विक्खंभ-परिक्खेव परूवणं—

४४. प०—तमुक्काए णं भंते ! केवइयं विक्खंभेणं ?

प०—केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—

१. संखेज्जवित्थडे य,

२. असंखेज्जवित्थडे य।

तत्थ णं जे से संखेज्जवित्थडे से णं संखेज्जाइं जोयण-सहस्साइं विक्खंभेणं।

असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

तत्थ णं जे से असंखेज्जवित्थडे से असखेज्जाइं जोयणं सहस्साइं विक्खंभेणं।

असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. ४

तमस्काय की चौड़ाई और परिधि का प्ररूपण—

४४. प्र०—भगवन् ! तमस्काय की चौड़ाई कितनी कही गई है ?

प्र०—तमस्काय की परिधि कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम ! तमस्काय दो प्रकार की कही गई है, यथा—

(१) संख्यात योजन के विस्तार वाली,

(२) असंख्यात योजन के विस्तार वाली।

इनमें संख्यात योजन विस्तार वाली की चौड़ाई संख्यात हजार योजन की कही गई है।

परिधि असंख्य हजार योजन की कही गई है।

असंख्यात योजन के विस्तार वाली की चौडाई असंख्यात हजार योजन कही गई है।

परिधि असंख्य हजार योजन की कही गई है।

तमुक्कायस्स महालयत्त-परूवणं—

४५. प०—तमुक्काए णं भंते ! के महालए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे-जाव-परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

देवे णं महिड्ढीए-जाव-महाणुभागे "इणामेव इणामेव" त्ति कट्टु केवल कप्पं जंबुद्दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छिज्जा।

से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए-जाव-देवगईए वीईवयमाणे वीइवयमाणे एकाहं वा, दुयाहं वा, तियाहं वा, उक्कोसेणं छम्मासे वीइवएज्जा अत्थेगइए तमुक्कायं वीइवएज्जा अत्थेगइए तमुक्कायं नो वीइ-वएज्जा।

ए महालए णं गोयमा ! तमुक्काए पण्णत्ते।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. ५

तमस्काय की महानता का प्ररूपण—

४५. प्र०—भगवन् ! तमस्काय कितनी बड़ी कही गई है ?

उ०—गौतम ! यह जम्बूद्वीप द्वीप—**यावत्**—परिधि वाला कहा गया है।

कोई महाऋद्धि वाला—**यावत्**—महाभाग्यशाली देव 'अभी आया, अभी आया', कहता हुआ तीन चुटकियाँ बजावे जितने समय में पूरे जम्बूद्वीप की इक्कीस वार परिक्रमा करके शीघ्र आ जावे।

वह देव उस उत्कृष्ट त्वरित—**यावत्**—देवगति से चलता-चलता एक मास, दो मास, तीन मास, उत्कृष्ट छह मास तक चलने पर तमस्काय के कुछ भाग को पार कर लेता है और कुछ भाग को पार नहीं कर पाता।

हे गौतम ! तमस्काय इतनी बड़ी कही गई है।

---

१ तमुक्काए णं चत्तारि कप्पे आवरित्ता चिट्ठइ, तं जहा—१-२. सोहम्ममीसाणाणं, ३. सणंकुमारं, ४. माहिंदं।

—ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २६१

तमुक्काए गिहगामाइ अभाव परूवणा—

४६. प०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए गेहा इ वा, गेहावणा इ वा ?

उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

प०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए गामा इ वा-जाव-सन्निवेसा इ वा ?

उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. ६-७

तमस्काय में घर ग्राम आदि के अभाव का प्ररूपण—

४६. प्र०—भगवन् ! तमस्काय में घर या दुकानें हैं ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

प्र०—भगवन् ! तमस्काय में ग्राम—यावत्—सन्निवेश आदि हैं ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

चउव्विहेहिं देवेहिं तमुक्काय पकुव्वणं—

४७. प०—जाहे णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया तमुक्कायं काउकामे भवइ, से कहमियाणि पकरेइ ?

उ०—गोयमा ! ताहे चेव णं ईसाणे देविंदे देवराया अब्भिंतर परिसए देवे सद्दावेइ ।

तए णं ते अब्भिन्तर परिसया देवा सद्दाविया समाणा एवं जहेव सक्कस्स जाव ।

तए णं ते आभिओगिया देवा सद्दाविया समाणा तमुक्काइए देवे सद्दावेंति ।

तए णं ते तमुक्काइया देवा सद्दाविया समाणा तमुक्काइयं पकरेंति ।

एवं खलु गोयमा ! ईसाणे देविंदे देवराया तमुक्कायं पकरेइ ।

प०—अत्थि णं भंते ! असुरकुमारा वि देवा तमुक्कायं पकरेंति ?

उ०—हंता गोयमा ! अत्थि ।

प०—किं पत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा तमुक्कायं पकरेंति ?

उ०—गोयमा ! (१) किड्डा रतिवत्तियं वा ।

(२) पडिणीय विमोहणट्ठयाए वा ।

(३) गुत्ति सारक्खण हेउं वा ।

(४) अप्पणो वा सरीर पच्छायणट्ठयाए वा ।

एवं खलु गोयमा ! असुरकुमारा वि देवा तमुक्कायं पकरेंति । एवं जाव वेमाणिया ।

—भग. स. १४, उ. २, सु. १८-२३

चार प्रकार के देवों द्वारा तमस्काय की रचना—

४७. प्र०—भन्ते ! ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराज जब तमस्काय की रचना करना चाहता है तब वह किस प्रकार करता है ?

उ०—गौतम ! तब वह ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराज आभ्यन्तर परिषद् के देवों को बुलाता है ।

तब वे आभ्यन्तर परिषद् के देव बुलाए हुए शक्र के समान आभियोगिक देवों को बुलाकर उनके द्वारा तमस्कायिक देवों को बुलाते हैं ।

तब वे बुलाए हुए तमस्कायिक देव तमस्काय की रचना करते हैं ।

इस प्रकार हे गौतम ! ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराज तमस्काय की रचना करवाता है ।

प्र०—भन्ते ! क्या असुर कुमार देव भी तमस्काय की रचना करते हैं ?

उ०—हाँ गौतम ! असुर कुमार देव भी तमस्काय की रचना करते हैं ।

प्र०—भन्ते ! असुर कुमार देव किसलिए तमस्काय की रचना करते हैं ?

उ०—गौतम ! (१) रतिक्रीडा के लिए ।

(२) शत्रु को छलने के लिए ।

(३) दूसरे देवों की चुराई हुई मूल्यवान् वस्तुओं को छिपाने के लिए ।

(४) अपने आपको छिपाने के लिए ।

इस प्रकार हे गौतम ! असुर कुमार देव भी तमस्काय की रचना करते हैं ।

इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त है ।

तमुक्काए ओरालाइयाईणं अत्थित्त देवाइकारियत्तं च परूवणं—

४८. प०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए ओराला बलाहया संसेयंति सम्मुच्छंति वासं वासंति ?

उ०—हंता गोयमा ! अत्थि ।

तमस्काय में बड़े मेघ आदि का प्ररूपण—

४८. प्र०—भगवन् ! तमस्काय में क्या बड़े मेघ संस्वेदित होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा बरसती है ?

उ०—हाँ गौतम ! वर्षा बरसती है ।

प०—तं भंते ! किं देवो पकरेति ? असुरो पकरेति ? नागो पकरेति ?

उ०—गोयमा ! देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, नागो वि पकरेति।

प०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए बादरे थणियसद्दे ? बादरे विज्जुए ?

उ०—हंता गोयमा ! अत्थि।

प०—तं भंते ! किं देवो पकरेति, असुरो पकरेति, नागो पकरेति ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि वि पकरेंति।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. ९

प्र०—भगवन् ! क्या मेघ तथा वृष्टि देव करता है ? असुर करता है ? या नाग करता है ?

उ०—गौतम ! देव भी करता है, असुर भी करता है, नाग भी करता है।

प्र०—भगवन् ! तमस्काय में गर्जना का श्रव्य शब्द है ? और दृश्य विद्युत है ?

उ०—गौतम ! है।

प्र०—भगवन् ! उस गर्जना और विद्युत को क्या देव करता है ? असुर करता है ? नाग करता है ?

उ०—गौतम ! तीनों ही करते हैं।

तमुक्काए बादरपुढविकाय अगणिकायाणं अभाव-परूवणं—

४९. प०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए बादरे पुढविकाए, बादरे अगणिकाए ?

उ०—गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे। नन्नत्थ विग्गहगति समावन्नाएणं।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. १०

तमस्काय में दृश्य पृथ्वीकाय और तेजस्काय के अभाव की प्ररूपणा—

४९. प्र०—भगवन् ! तमस्काय में दृश्य पृथ्वीकाय है, दृश्य अग्निकाय है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। विग्रह गति प्राप्त जीवों को छोड़कर।

तमुक्काए चंद-सूरियाईणं अभाव-परूवणं—

५०. प०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूवा ?

उ०—गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे।

पलिपस्सतो पुण अत्थि।

प०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदाभा इ वा सूराभा इ वा ?

उ०—गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे कादूसणिया पुण सा।

—भग. ६, उ. ५, सु. ११-१२

तमस्काय में चन्द्र सूर्यादि के अभाव का प्ररूपण—

५०. प्र०—भगवन् ! तमस्काय में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

हां, पार्श्व भाग में हैं।

प्र०—भगवन् ! तमस्काय में चन्द्र, सूर्य की आभा है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। किन्तु उसकी दूषित करने वाली प्रभा है।

तमुक्काय वण्ण-परूवणा—

५१. प०—तमुक्काए णं भंते ! केरिसए वण्णेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! काले कालोभासे गंभीरलोम हरिस जणणे भीमे उत्तासणए परमकिण्हे वण्णेणं पण्णत्ते।

देवे वि णं अत्थिगइए जे णं तप्पढमयाए पासित्ताए णं खंभाएज्जा अहे णं अभिसमागच्छेज्जा। तओ पच्छा सीहं सीहं तुरियं तुरियं खिप्पामेव वीइवएज्जा।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. १३

तमस्काय के वर्ण की प्ररूपणा—

५१. प्र०—भगवन् ! तमस्काय का वर्ण कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! कृष्ण, कृष्णाभास, अत्यधिक रोमांचक भयानक, त्रासदायक उत्कृष्ट कृष्ण वर्ण कहा गया है।

कोई-कोई देव तो उसे देखकर स्तम्भित हो जाता है। फिर भी यदि कोई उसे पार करना चाहता है तो अतिशीघ्र त्वरित गति से पार करता है।

तुमक्कायस्स नामधेज्जाणि—

५२. प०—तमुक्कायस्स णं भंते ! कति नामधेज्जा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तेरस नामधेज्जा पण्णत्ता। तं जहा—

१. तमे इ वा, २. तमुक्काए इ वा, ३. अंधकारे इ वा,

तमस्काय के नाम—

५२. प्र०—भगवन् ! तमस्काय के कितने नाम कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! तेरह नाम कहे गये हैं, यथा—

१. तम, २. तमस्काय, ३. अंधकार, ४. महांधकार,

४. महांधकारे इ वा, ५. लोगंधकारे इ वा, ६. लोगतमिस्से इ वा, ७. देवंधकारे इ वा, ८. देवतमिस्से इ वा, ९. देवारण्णे इ वा, १०. देववूहे इ वा, ११. देवफलिहे इ वा, १२. देवपडिक्खोभे इ वा, १३. अरुणोदए इ वा समुद्दे ।[1]

—भग. स. ६, उ. ५, सु. २४

५. लोकांधकार, ६. लोक तमिस्रा, ७. देवांधकार, ८. देवतमिस्रा, ९. देवारण्य, १०. देवव्यूह, ११. देवपरिघा, १२. देवप्रतिक्षोभ, १३. अरुणोदय समुद्र ।

तमुक्कायस्स परिणामत्त-परूवणा—

५३. प०—तमुक्काए णं भंते ! किं पुढविपरिणामे, आउपरिणामे, जीवपरिणामे, पुग्गलपरिणामे ?

उ०—गोयमा ! नो पुढविपरिणामे ।

आउपरिणामे वि जीवपरिणामे वि पुग्गलपरिणामे वि ।

—भग. स. ६, उ. ५ सु. ५१

तमस्काय के परिणामित्व का प्ररूपण—

५३. प्र०—भगवन् ! तमस्काय क्या पृथ्वी का परिणाम है, २. अप् (जल) का परिणाम है, ३. जीव का परिणाम है, ४. पुद्गलों का परिणाम है ?

उ०—गौतम ! पृथ्वी का परिणाम नहीं है ।

जल का परिणाम है, जीव का परिणाम है, पुद्गल का परिणाम है ।

तमुक्काए सव्वेसि पाणाईणं उववन्नपुव्वत्त-परूवणं—

५४. प०—तमुक्काए णं भंते ! सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता पुढविकाइयत्ताए-जाव-तसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा ?

उ०—हंतो गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो, णो चेव णं बादरपुढविकाइयत्ताए वा, बादर अगणिकाइयत्ताए वा । — भग. स. ६, उ. ५, सु. १६

तमस्काय में सभी प्राणादि की पूर्वोत्पत्ति का प्ररूपण—

५४. प्र०—भगवन् ! तमस्काय में सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव, सभी सत्व, पृथ्वीकाय रूप में—यावत्—त्रसकाय रूप में पूर्व में उत्पन्न हुए हैं ?

उ०—हाँ गौतम ! बार-बार अथवा अनन्तबार उत्पन्न हुए हैं किन्तु बादर पृथ्वीकाय अथवा बादर अग्निकाय रूप नहीं उत्पन्न हुए हैं ।

विमाणप्पगारा—

५५. तिविहा विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) अवट्ठिया ।

(२) वेउव्विया ।

(३) परियाणिया । —ठाणं-अ. ३, उ. ३, सु. १८६

विमानों के प्रकार—

५५. विमान तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

(१) अवस्थित = शाश्वत ।

(२) वैक्रिय = विकुर्वणा द्वारा निष्पन्न ।

(३) पारियानिक = आने-जाने के लिए निष्पन्न ।

विमाणपुढवीणं पइट्ठाणाइ—

५६. प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणपुढवी किं पइट्ठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! घणोदहिपइट्ठिया पण्णत्ता ।

प०—सणंकुमार-माहिंदेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाण पुढवी किं पइट्ठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता ।

विमान पृथ्वियों के प्रतिष्ठान—

५६. प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशानकल्प विमानों की पृथ्वी किस पर प्रतिष्ठित कही गई है ?

उ०—गौतम ! घनोदधि पर प्रतिष्ठित कही गई है ।

प्र०—भगवन् ! सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में विमानों की पृथ्वी किस पर प्रतिष्ठित कही गई है ?

उ०—गौतम ! घनवात पर प्रतिष्ठित कही गई है ।

प०—तं भंते ! किं देवो पकरेति ? असुरो पकरेति ? नागो पकरेति ?

उ०—गोयमा ! देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, नागो वि पकरेति।

प०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए बादरे थणियसद्दे ? बादरे विज्जुए ?

उ०—हंता गोयमा ! अत्थि।

प०—तं भंते ! किं देवो पकरेति, असुरो पकरेति, नागो पकरेति ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि वि पकरेंति।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. ९

प्र०—भगवन् ! क्या मेघ तथा वृष्टि देव करता है ? असुर करता है ? या नाग करता है ?

उ०—गौतम ! देव भी करता है, असुर भी करता है, नाग भी करता है।

प्र०—भगवन् ! तमस्काय में गर्जना का श्रव्य शब्द है ? और दृश्य विद्युत है ?

उ०—गौतम ! है।

प्र०—भगवन् ! उस गर्जना और विद्युत को क्या देव करता है ? असुर करता है ? नाग करता है ?

उ०—गौतम ! तीनों ही करते हैं।

तमुक्काए बादरपुढविकाय अगणिकायाणं अभाव-परूवणं—

४९. प०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए बादरे पुढविकाए, बादरे अगणिकाए ?

उ०—गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे। नन्नत्थ विग्गहगति समावन्नाएणं।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. १०

तमस्काय में दृश्य पृथ्वीकाय और तेजस्काय के अभाव की प्ररूपणा—

४९. प्र०—भगवन् ! तमस्काय में दृश्य पृथ्वीकाय है, दृश्य अग्निकाय है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। विग्रह गति प्राप्त जीवों को छोड़कर।

तमुक्काए चंद-सूरियाईणं अभाव-परूवणं—

५०. प०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूवा ?

उ०—गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे।

पलिपस्सतो पुण अत्थि।

प०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदाभा इ वा सूराभा इ वा ?

उ०—गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे कादूसणिया पुण सा।

—भग. ६, उ. ५, सु. ११-१२

तमस्काय में चन्द्र सूर्यादि के अभाव का प्ररूपण—

५०. प्र०—भगवन् ! तमस्काय में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

हां, पार्श्व भाग में हैं।

प्र०—भगवन् ! तमस्काय में चन्द्र, सूर्य की आभा है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। किन्तु उसकी दूषित करने वाली प्रभा है।

तमुक्काय वण्ण-परूवणा—

५१. प०—तमुक्काए णं भंते ! केरिसए वण्णेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! काले कालोभासे गंभीरलोम हरिस जणणे भीमे उत्तासणए परमकिण्हे वण्णेणं पण्णत्ते।

देवे वि णं अत्थिगइए जे णं तप्पढमयाए पासित्ताए णं खंभाएज्जा अहे णं अभिसमागच्छेज्जा। तओ पच्छा सीहं सीहं तुरियं तुरियं खिप्पामेव वीइवएज्जा।

—भग. स. ६, उ. ५, सु. १३

तमस्काय के वर्ण की प्ररूपणा—

५१. प्र०—भगवन् ! तमस्काय का वर्ण कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! कृष्ण, कृष्णाभास, अत्यधिक रोमांचक भयानक, त्रासदायक उत्कृष्ट कृष्ण वर्ण कहा गया है।

कोई-कोई देव तो उसे देखकर स्तम्भित हो जाता है। फिर भी यदि कोई उसे पार करना चाहता है तो अतिशीघ्र त्वरित गति से पार करता है।

मुतक्कायस्स नामधेज्जाणि—

५२. प०—तमुक्कायस्स णं भंते ! कति नामधेज्जा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तेरस नामधेज्जा पण्णत्ता। तं जहा—

१. तमे इ वा, २. तमुक्काए इ वा, ३. अंधकारे इ वा,

तमस्काय के नाम—

५२. प्र०—भगवन् ! तमस्काय के कितने नाम कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! तेरह नाम कहे गये हैं, यथा—

१. तम, २. तमस्काय, ३. अंधकार, ४. महांधकार,

४. महंधुकारे इ वा, ५. लोगंधकारे इ वा, ६. लोगतमिस्से इ वा, ७. देवंधकारे इ वा, ८. देवतमिस्से इ वा, ९. देवारण्णे इ वा, १०. देववूहे इ वा, ११. देवफलिहे इ वा, १२. देवपडिक्खोभे इ वा, १३. अरुणोदए इ वा समुद्दे ।[1]

—भग. स. ३, उ. ५, सु. २४

५. लोकांधकार, ६. लोक तमिस्रा, ७. देवांधकार, ८. देवतमिस्रा, ९. देवारण्य, १०. देवव्यूह, ११. देवपरिघा, १२. देवप्रतिक्षोभ, १३. अरुणोदय समुद्र ।

तमुक्कायस्स परिणामत्त-परूवणा—

५३. प०—तमुक्काए णं भंते ! किं पुढविपरिणामे, आउपरिणामे, जीवपरिणामे, पुग्गलपरिणामे ?

उ०—गोयमा ! नो पुढविपरिणामे ।

आउपरिणामे वि जीवपरिणामे वि पुग्गलपरिणामे वि ।

—भग. स. ६, उ. ५ सु. ५१

तमस्काय के परिणामित्व का प्ररूपण—

५३. प्र०—भगवन् ! तमस्काय क्या पृथ्वी का परिणाम हैं, २. अप् (जल) का परिणाम हैं, ३. जीव का परिणाम है, ४. पुद्गलों का परिणाम हैं ?

उ०—गौतम ! पृथ्वी का परिणाम नहीं है ।

जल का परिणाम है, जीव का परिणाम है, पुद्गल का परिणाम है ।

तमुक्काए सव्वेसिं पाणाईणं उववन्नपुव्वत्त-परूवणं—

५४. प०—तमुक्काए णं भंते ! सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता पुढविकाइयत्ताए-जाव-तसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा ?

उ०—हंतो गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो, णो चेव णं बादरपुढविकाइयत्ताए वा, बादर अगणिकाइयत्ताए वा । —भग. स. ६, उ. ५, सु. १६

तमस्काय में सभी प्राणादि की पूर्वोत्पत्ति का प्ररूपण—

५४. प्र०—भगवन् ! तमस्काय में सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव, सभी सत्व, पृथ्वीकाय रूप में—यावत्—त्रसकाय रूप में पूर्व में उत्पन्न हुए हैं ?

उ०—हाँ गौतम ! बार-बार अथवा अनन्तवार उत्पन्न हुए हैं किन्तु दृश्य पृथ्वीकाय अथवा दृश्य अग्निकाय रूप नहीं उत्पन्न हुए हैं ।

विमाणप्पगारा—

५५. तिविहा विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) अवट्ठिया ।

(२) वेउव्विया ।

(३) परियाणिया । —ठाणं-अ. ३, उ. ३, सु. १८६

विमानों के प्रकार—

५५. विमान तीन प्रकार के कहे गए हैं यथा—

(१) अवस्थित=शास्वत ।

(२) विकुर्वित=विकुर्वणा द्वारा निष्पन्न ।

(३) पारियानिक=आने-जाने के लिए निष्पन्न ।

विमाणपुढवीणं पइट्ठाणाइं—

५६. प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणपुढवी किं पइट्ठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! घणोदहिपइट्ठिया पण्णत्ता ।

प० – सणंकुमार-माहिंदेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाण पुढवी किं पइट्ठिया पण्णत्ता ?

उ० – गोयमा ! घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता ।

विमान पृथ्वियों के प्रतिष्ठान—

५६. प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशानकल्प विमानों की पृथ्वी किस पर प्रतिष्ठित कही गई है ?

उ०—गौतम ! घनोदधि पर प्रतिष्ठित कही गई है ।

प्र०—भगवन् ! सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में विमानों की पृथ्वी किस पर प्रतिष्ठित कही गई है ?

उ०—गौतम ! घनवात पर प्रतिष्ठित कही गई है ।

---

१ तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता । तं जहा—(१) तमे इ वा । (२) तमुक्काए इ वा । (३) अंधगारे इ वा । (४) महंधगारे इ वा ।

(२) तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता । तं जहा— (१) लोगंधगारे इ वा । (२) लोग तमसे इ वा । (३) देवंधगारे इ वा । (४) देवतमसे इ वा ।

(३) तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता । तं जहा— (१) वातफलिहे इ वा । (२) वातफलिह खोभे इ वा । (३) देवरण्णे इ वा । (४) देववूहे इ वा ।

—ठाणं अ. ४, उ. २, सु. २९१

प०—बंभलोए णं भंते ! कप्पे विमाण पुढवी किं पइट्ठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता ।

प०—लंतए णं भंते ! कप्पे विमाणपुढवी किं पइट्ठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तदुभयपइट्ठिया पण्णत्ता ।

महासुक्क-सहस्सारेसु वि तदुभय पइट्ठिया पण्णत्ता ।

प०—आणय-जाव-अच्चुए णं भंते ! कप्पेसु विमाण पुढवीं किं पइट्ठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! ओवासंतर पइट्ठिया पण्णत्ता ।

प०—गेविज्जगेसु णं भंते ! विमाणापुढवी किं पइट्ठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! ओवासंतर पइट्ठिया पण्णत्ता ।

प०—अणुत्तरोववाइएसु णं भंते ! विमाणपुढवी किं पइट्ठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! ओवासंतरपइट्ठिया पण्णत्ता ।[1]

—जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २०६

प्र०—भगवन् ! ब्रह्मलोक कल्प में विमानों की पृथ्वी किस पर प्रतिष्ठित कही गई है ?

उ०—गौतम ! घनवात पर प्रतिष्ठित कही गई है ।

प्र०—भगवन् ! लान्तक कल्प में विमानों की पृथ्वी किस पर प्रतिष्ठित कही गई है ।

उ०—गौतम ! घनोदधि और घनवात पर प्रतिष्ठित कही गई है ।

महाशुक्र और सहस्रारकल्प में भी विमान पृथ्वी घनोदधि और घनवात पर प्रतिष्ठित कही गई है ।

प्र०—भगवन् ! आनत—यावत्—अच्युत कल्पों में विमान पृथ्वियाँ किस पर आश्रित कही गई है ?

उ०—गौतम ! अवकाशान्तर पर प्रतिष्ठित कही गई है ।

प्र०—भगवन् ! ग्रैवेयकों में विमानों की पृथ्वियाँ किस पर प्रतिष्ठित कही गई है ?

उ०—गौतम ! अवकाशान्तर पर प्रतिष्ठित कही गई है ।

प्र०—भगवन् ! अनुत्तरोपपातिकों में विमानों की पृथ्वियाँ किस पर प्रतिष्ठित कही गई है ?

उ०—गौतम ! अवकाशान्तर पर प्रतिष्ठित कही गई है ।

वेमाणिय विमाणाणं संठाणाइं—

५७. ति संठिया विमाणा पण्णत्ता । तं जहा—
(१) वट्टा, (२) तंसा, (३) चउरंसा ।

(१) तत्थ णं जे ते वट्टा विमाणा, ते णं पुक्खरकण्णिया संठाणसंठिया सव्वओ समंता पागारपरिक्खित्ता । एग दुवारा पण्णत्ता ।

(२) तत्थ ण जे ते तंसा विमाणा ते णं सिंघाडगसंठाण संठिया । दुहओ पागार परिक्खित्ता । एगओ वेइआ परिक्खित्ता तिदुवारा पण्णत्ता ।

(३) तत्थ णं जे ते चउरंसा विमाणा । ते णं अक्खाडग संठाण संठिया । सव्वओ समंता वेइया परिक्खित्ता । चउ दुवारा पण्णत्ता । —ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८६

प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा किं संठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! विमाणा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—
१. आवलियापविट्ठा, २. आवलियाबाहिरा य ।

वैमानिक विमानों के संस्थान—

५७. विमान तीन संस्थान वाले कहे गए हैं यथा—
(१) वृत्त=गोल, (२) त्रिकोण, (३) चतुष्कोण ।

इनमें से जो वृत्त विमान हैं वे पुष्कर कर्णिका के आकार से स्थित हैं । चारों ओर प्राकार से घिरे हुए हैं, एक द्वार वाले हैं ।

इनमें से जो त्रिकोण विमान हैं, वे सिंघाडे के आकार से स्थित हैं । दोनों ओर प्राकार से घिरे हुए हैं एक ओर वेदिका वाले हैं, उनके तीन द्वार कहे गये हैं ।

इनमें से जो चतुष्कोण विमान हैं, ये अखाडे के आकार से स्थित हैं । चारों ओर वेदिका से घिरे हुए हैं उनके चार द्वार कहे गए हैं ।

प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशानकल्प में विमान किस संस्थान वाले कहे गये हैं ।

उ०—गौतम ! विमान दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—
१. आवलिका प्रविष्ट और आवलिका बाह्य ।

---

१ तिपइट्ठिया विमाणा पण्णत्ता,
तं जहा—(१) घणोदहिपइट्ठिया, (२) घणवायपइट्ठिया, (३) ओवासंतरपइट्ठिया । —ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८६

तत्थ णं जे से आवलियापविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. वट्टा, २. तंसा, ३. चउरंसा य।

तत्थ णं जे से आवलिया बाहिरा ते णं णाणासंठिया पण्णत्ता।

एवं-जाव-गेवेज्ज विमाणा।

अणुत्तरोववाइया विमाणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. वट्टा य, २. तंसा य।

—जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २१२

उनमें से जो आवलिका प्रविष्ट हैं, वे तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) वृत्त (गोलाकार, (२) त्र्यस्र (तिकोन), (३) चतुरस्र (चौकोर) -

उनमें से जो आवलिका बाह्य हैं वे नाना संस्थान वाले कहे गये हैं।

इस प्रकार ग्रैवेयक विमान पर्यन्त हैं।

अनुत्तरौपपातिक विमान दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) गोलाकार संस्थान वाले, और (२) त्रिकोण संस्थान वाले।

विमाणपुढवीणं बाहल्लं—

५८. प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! सत्तवीसं जोयण सयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।[1]

प०—सणंकुमार-माहिंदेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! छव्वीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

प०—बंभ-लंतएसु णं भंते! कप्पेसु विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! पणवीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

प०—महासुक्क-सहस्सारेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! तेवीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

आणय-जाव-अच्चुएसु णं भंते! कप्पेसु विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! तेवीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

प०—गेवेज्जगेसु णं भंते! विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

उ०—गोयमा! बावीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

प०—अणुत्तरोववाइएसु णं भंते! विमाणपुढवी केवइया बाहल्लेणं पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! एक्कवीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

—जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २१२

विमान पृथ्वियों का बाहल्य—

५८. प्र०—भगवन्! सौधर्म और ईशानकल्प में विमानपृथ्वियों का बाहल्य कितना कहा गया है?

उ०—गौतम! सत्तवीस सौ योजन का बाहल्य कहा गया है।

प्र०—भगवन्! सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प में विमान-पृथ्वियों का बाहल्य कितना कहा गया है?

उ०—गौतम! छव्वीस सौ योजन का बाहल्य कहा गया है।

प्र०—भगवन्! ब्रह्मलोक और लांतककल्प में विमान-पृथ्वियों का बाहल्य कितना कहा गया है।

उ०—गौतम! पच्चीस सौ योजन का बाहल्य कहा गया है।

प्र०—भगवन्! महाशुक्र और सहस्रारकल्प में विमान-पृथ्वियों का बाहल्य कितना कहा गया है?

उ०—गौतम! चौबीस सौ योजन का बाहल्य कहा गया है।

प्र०—भगवन्! आनत—यावत्—अच्युतकल्पों में विमान-पृथ्वियों का बाहल्य कितना कहा गया है?

उ०—गौतम! तेवीस सौ योजन का बाहल्य कहा गया है।

प्र०—भगवन्! ग्रैवेयकों में विमानपृथ्वियों का बाहल्य कितना कहा गया है?

उ०—गौतम! बावीस सौ योजन का बाहल्य कहा गया है।

प्र०—भगवन्! अनुत्तरौपपातिकों में विमानपृथ्वियों का बाहल्य कितना कहा गया है?

उ०—गौतम! इक्कीस सौ योजन का बाहल्य कहा गया है।

वेमाणिय विमाणाणं महालियत्तं—

५९. प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा के महालिया पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव समुद्दाणं

वैमानिक विमानों की महत्ता—

५९. प्र०—भगवन्! सौधर्म और ईशान कल्प में विमान कितने बड़े हैं?

उ०—गौतम! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सब द्वीप-समुद्रों के

१ सम. २७, सु. ४।

मज्झे, सो चेव गमो-जाव-छम्मासे अत्थेगइया वीइ-वएज्जा, अत्थेगइया विमाणा नो वीइवएज्जा।

बीच में है। वही गम समझना, यावत् (देव शीघ्र गति से) छ मास तक चलता जाए तो—यावत्—कितनेक विमानों को पार कर पाए और कितनेक विमानों को पार न कर पाए।

एवं-जाव-अणुत्तरोववाइया विमाणा।

इस प्रकार अनुत्तरोपपातिक विमान पर्यन्त कहना चाहिए।

अत्थेगइयं विमाणं वीइवएज्जा, अत्थेगइयं विमाणं नो वीइवएज्जा। —जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २१३

(शीघ्र गति देव छह मास तक चलने पर भी) किसी विमान को पार जा सके और किसी विमान के पार न जा सके।

वेमाणिय विमाणाणं उप्पादाणं—

वैमानिक विमानों के उपादान—

६०. प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा किं मया पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! सव्वरयणामया पण्णत्ता।

तत्थ णं बहवे जीवा य, पोग्गला य, वक्कमंति विउक्कमंति, चयंति, उवचयंति।

सासया णं ते विमाणा दव्वट्ठयाए।

जाव-फासपज्जवेहिं असासया।

एवं-जाव-अणुत्तरोववाइया विमाणा। —जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २१३

६०. प्र०—भगवन्! सौधर्म और ईशानकल्प में विमान किससे बने हुए कहे गये हैं?

उ०—गौतम! सर्वरत्नमय कहे गये हैं।

उनमें अनेक जीव और पुद्गल जाते हैं, उत्पन्न होते हैं, चय एवं उपचय को प्राप्त होते हैं।

वे विमान द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत है।

—यावत्—स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत है।

इसी प्रकार—यावत्—अनुत्तरोपपातिक विमान पर्यन्त कहना चाहिए।

वेमाणिय विमाणाणं वण्णाइं—

वैमानिक विमानों के वर्ण—

६१. प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा कतिवण्णा पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! पंचवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—

१. किण्हा, २. नीला, ३. लोहिया, ४. हालिद्दा, ५. सुक्किल्ला।

सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु विमाणा चउवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—

नीला-जाव-सुक्किल्ला।

बंभलोय-लंतएसु कप्पेसु विमाणा तिवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—

लोहिया-जाव-सुक्किल्ला।

महासुक्क-सहस्सारेसु कप्पेसु विमाणा दुवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—

१. हालिद्दा य, २. सुक्किल्ला य।

आणय-जाव-अच्चुएसु कप्पेसु विमाणा सुक्किल्ला पण्णत्ता।

गेवेज्ज विमाणा सुक्किल्ला पण्णत्ता।

अणुत्तरोववाइयविमाणा परमसुक्किल्ला पण्णत्ता। —जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २१३

६१. प्र०—भगवन्! सौधर्म और ईशान कल्प में विमान कितने वर्ण वाले कहे गये हैं?

उ०—गौतम! पांच वर्ण वाले कहे गये हैं, यथा—

१. कृष्ण, २. नील, ३. लोहित=रक्त, ४. हारिद्र=पीला, और ५. शुक्ल=सफेद।

सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प में विमान चार वर्ण वाले कहे गये हैं, यथा—

नील—यावत्—शुक्ल।

ब्रह्मलोक और लांतक कल्प में विमान तीन वर्ण वाले कहे गये हैं, यथा—

लोहित—यावत्—शुक्ल।

महाशुक्र और सहस्रारकल्प में विमान दो वर्ण वाले कहे गये हैं, यथा—

(१) हारिद्र और (२) शुक्ल।

आनत—यावत्—अच्युतकल्प में विमान शुक्ल वर्ण वाले कहे गए हैं—

ग्रैवेयक विमान शुक्ल वर्ण वाले कहे गये हैं।

अनुत्तरोपपातिक विमान परम शुक्ल वर्ण वाले कहे गये हैं।

वेमाणियविमाणाणं गंधा—

६२. प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केरिसया गंधे णं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! से जहा नामए कोट्ठपुडाण वा-जाव-एत्तो इट्ठतराए गंधेणं पण्णत्ता।

एवं-जाव-एत्तो इट्ठतरागा चेव-जाव-अणुत्तरविमाणा।

—जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २१३

वैमानिक विमानों के गंध—

६२. प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशानकल्प में विमान किस प्रकार की गंध वाले कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! जिस प्रकार कोष्ठपुट—यावत्—इससे भी अधिक इष्ट गंध वाले कहे गये हैं।

इस प्रकार—यावत्—इससे भी अधिक इष्ट गंध वाले—यावत्—अनुत्तर विमान पर्यन्त कहे गये हैं।

वेमाणिय विमाणाणं फासाइं—

६३. प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केरिसया फासेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! से जहा नामए आइणे इ वा, रूए इ वा, सव्वे फासा भाणियव्वा।

एवं-जाव-अणुत्तरोववाइय विमाणा।

—जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २१३

वैमानिक विमानों के स्पर्श—

६३. प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशानकल्प में विमान कैसे स्पर्श वाले कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! जैसे आजनिक=मृगचर्म हो, रूई हो, ऐसे सभी स्पर्श कहने चाहिए।

इस प्रकार—यावत्—अनुत्तर विमानों के स्पर्श हैं।

वेमाणिय विमाणणं आयाम-विक्खंभ परिक्खेवो य—

६४. प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केवइयं आयाम-विक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! विमाणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. संखेज्जवित्थडा य, २. असंखेज्जवित्थडा य।

जह णरगा तहा-जाव-अणुत्तरोववाइया, संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य।

तत्थ णं जे से संखेज्जवित्थडे से जंबुदीवप्पमाणे असंखेज्जवित्थडा असंखेज्जाइं जोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

—जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २१३

सोहम्मवडिंसगे णं विमाणे णं अद्धतेरस जोयण-सय-सहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ते। —सम. १३, सु. ३

सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ते। —सम. स. १, सु. ४

वैमानिक विमानों का आयाम-विष्कम्भ और परिधि—

६४. प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्प में विमान आयाम-विष्कम्भ और परिधि से कितने कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! विमान दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) संख्येय योजन विस्तृत, (२) असंख्येय योजन विस्तृत।

अनुत्तरोपपातिक पर्यन्त नरकों के समान संख्यात योजन विस्तार वाले और असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं।

उनमें जो संख्यात योजन विस्तार वाले हैं वे जम्बूद्वीप जितने प्रमाण वाले हैं। असंख्यात योजन विस्तार वाले आयाम-विष्कम्भ और परिधिसे असंख्यात सौ योजन के कहे गये हैं।

सौधर्मावतंसक विमान का आयाम-विष्कंभ साढे तेरह लाख योजन का है।

सर्वार्थसिद्ध महाविमान एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा कहा गया है।

वेमाणिय विमाणाणं पभा—

६५. प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केरिसआ पभाए पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! णिच्चालोया, णिच्चुज्जोआ सयं पभाए पण्णत्ता।

एवं-जाव-अणुत्तरोववाइया विमाणा णिच्चालोआ णिच्चुज्जोया सयं पभाए पण्णत्ता।

—जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २१३

वैमानिक विमानों की प्रभा—

६५. प्र०—सौधर्म और ईशान कल्प में विमान प्रभा से कैसे कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! वे विमान अपनी प्रभा से नित्य आलोक वाले नित्य उद्योत वाले कहे गये हैं।

इस प्रकार—यावत्—अनुत्तरौपपातिक विमान भी अपनी प्रभा से नित्य आलोक वाले नित्य उद्योत वाले कहे गये हैं।

वेमाणिय विमाणाणं उच्चत्तं—

६६. प०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! पंच जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।[1]

प०—सणंकुमार-माहिंदेसु णं भन्ते ! कप्पेसु विमाणा केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! छ जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।[2]

प०—बंभ-लंतएसु णं भन्ते ! कप्पेसु विमाणा केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सत्त जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।[3]

प०—महासुक्क-सहस्सारेसु णं भन्ते ! कप्पेसु विमाणा केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अट्ठ जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।[4]

प०—आणय-जाव-अच्चुएसु णं भन्ते ! कप्पेसु विमाणा केवइयं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! नव जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

प०—गेविज्ज विमाणाणं भन्ते ! केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दस जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।[6]

प०—अणुत्तर विमाणाणं भन्ते ! केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! एक्कारस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।[7] —जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २१३

वैमानिकों के विमानों की ऊँचाई—

६५. प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशानकल्प में विमान कितने ऊँचे कहे गये हैं।

उ०—गौतम ! पाँच सौ योजन ऊँचे कहे गये हैं।

प्र०—भगवन् ! सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प में विमान कितने ऊँचे कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! छ सौ योजन ऊँचे कहे गये हैं ?

प्र०—भगवन् ! ब्रह्मलोक और लांतककल्प में विमान कितने ऊँचे कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! सात सौ योजन ऊँचे कहे गये हैं।

प्र०—भगवन् ! महाशुक्र और सहस्रारकल्प में विमान कितने ऊँचे कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! आठ सौ योजन ऊँचे कहे गये हैं।

प्र०—भगवन् ? आनत—यावत्—अच्युतकल्पों में विमान कितने ऊँचे कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! नव सौ योजन ऊँचे कहे गये हैं।

प्र०—भगवन् ! ग्रैवेयक विमानों की ऊँचाई कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम ! दस सौ (एक हजार) योजन की ऊँचाई कही गई है।

प्र०—भगवन् ! अनुत्तर विमानों की ऊँचाई कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम ! ग्यारह सौ योजन की ऊँचाई कही गई है।

वेमाणिय विमाण पागाराणं उच्चत्तं—

६७. वेमाणियाणं देवाणं विमाणपागारा तिण्णि तिण्णि जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। —सम. १०४, सु. ३,

वैमानिक विमानों के प्राकारों की ऊँचाई—

६६. वैमानिक देवों के विमानों के प्राकारों की ऊँचाई तीन-तीन सौ योजन की कही गई है।

वेमाणिय विमाणेसु पत्थडा—

६८. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु तेरस विमाणपत्थडा पण्णत्ता। —सम. १३, सु. २

वैमानिकों के विमानों में प्रस्तट—

६७. सौधर्म और ईशानकल्प में तेरह विमान प्रस्तट कहे गये हैं।

---

१ ठाणं अ० ५, उ० ३, सु० ४६६, —सम० १०८, सु० ८

२ ठाणं अ० ६, सु. ५३२, —सम० १०६, सु० १

३ ठाणं अ० ७, सु० ५७८, —सम० ११०, सु० १

४ ठाणं अ० ८, सु० ६५०, —सम० १११, सु० १

५ ठाणं अ० ६, सु० ६६५, —सम० ११, सु० १

६ ठाणं अ० १०, सु० ७७५, —सम० ११, सु० १

७ ठाणं० अ० ११ —सम० ११ , सु० १

बंभलोए णं कप्पे छ विमाण पत्थडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. अरए, २. विरए, ३. नीरए, ४. निम्मले, ५. वितिमिरे, ६. विसुद्धे। —ठाणं. अ. ६, सु. ५१६

ब्रह्मलोक कल्प में छ विमान प्रस्तट कहे गये हैं, यथा—
(१) अरज, (२) विरज, (३) नीरज, (४) निर्मल, (५) वितिमिर, (६) और विशुद्ध।

णव गेवेज्ज विमाणपत्थडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. हेट्ठिम-हेट्ठिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे,
२. हेट्ठिम-मज्झिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे,
३. हेट्ठिम-उवरिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे,
४. मज्झिम-हेट्ठिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे,
५. मज्झिम-मज्झिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे,
६. मज्झिम-उवरिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे
७. उवरिम-हेट्ठिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे,
८. उवरिम-मज्झिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे,
९. उवरिम-उवरिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे[1],

ग्रैवेयक विमानों के नौ प्रस्तट कहे गये है, यथा—
(१) अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
(२) अधस्तन मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
(३) अधस्तन उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
(४) मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
(५) मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
(६) मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
(७) उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
(८) उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
(९) उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।

एएसि णं णवण्हं गेवेज्ज विमाणपत्थडाणं नव नाम धेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—
१. भद्दे, २. सुभद्दे, ३. सुजाए, ४. सोमणसे, ५. पियदरिसणे।
६. सुदंसणे, ७. अमोहे य, ८. सुप्पबद्धे, ९. जसोधरे॥
—ठाणं. अ. ९, सु. ६८५

इन नौ विमान प्रस्तटों के नौ नाम कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं—
गाथा—
(१) भद्र, (२) सुभद्र, (३) सुजात, (४) सोमनस, (५) प्रिय-दर्शन, (६) सुदर्शन, (७) अमोघ, (८) सुप्रबुद्ध, (९) यशोधर।

सव्वे वेमाणियाणं बासट्ठि विमाण पत्थडा पण्णत्ता[2] —सम. ६२, सु. ५

सभी वैमानिकों के बासठ विमान-प्रस्तट कहे गये हैं।

विमाणा ईसिं उण्णयरा ईसिं णिण्णयरा—

विमाण कुछ ऊँचे हैं और कुछ नीचे हैं—

६९. प०—सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो विमाणेहिंतो ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो विमाणा ईसिं उच्चयरा चेव, ईसिं उण्णयरा चेव?

ईसाणस्स वा देविंदस्स देवरण्णो विमाणेहिंतो ईसिं नीययरा चेव, ईसिं णिण्णयरा चेव?

६९. प्र०—भन्ते! शक्र देवेन्द्र देवराज के विमान से ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराज के विमान कुछ उच्चतर हैं कुछ उन्नततर हैं?

ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराज के विमाण से शक्र देवेन्द्र देवराज के विमान कुछ नीचतर हैं कुछ निम्नतर हैं?

---

१ तओ गेवेज्ज विमाण पत्थडा पण्णत्ता। तं जहा—
१. हेट्ठिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे। २. मज्झिम-गेवेज्ज विमाण पत्थडे। ३. उवरिम-गेवेज्ज विमाणपत्थडे।
हेट्ठिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. हेट्ठिम मज्झिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे। २. हेट्ठिम मज्झिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे। ३. हेट्ठिम उवरिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे।
मज्झिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. मज्झिम हेट्ठिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे। २. मज्झिम-मज्झिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे। ३. मज्झिम उवरिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे।
उवरिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. उवरिम हेट्ठिम गेवेज्ज विमाण पत्थडे। २. उवरिम मज्झिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे। ३. उवरिम-उवरिम गेवेज्ज विमाणपत्थडे।
—ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २३२

२ सोधर्म-ईशान में तेरह, सनत्कुमार-माहेन्द्र में बारह, ब्रह्मलोक में छ, लान्तक में पांच, महाशुक्र में चार, सहस्रार में चार, आनत-प्राणत में चार, आरण-अच्युत में चार, ग्रैवेयक में नौ, अनुत्तरौपपातिक में एक—ये बासठ विमान प्रस्तट हुए।
—आव. नि. गाथा २६७.

उ०—गोयमा ! सक्कस्स ईसाणस्स य तं चेव सव्वं नेयव्वं ।

उ०—गौतम ! शक्र और ईशान के विमान सब उसी प्रकार प्रश्नसूत्रानुसार हैं ।

प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—सक्कस्स जाव विमाणा निण्णयरा चेव ?

प्र०—भन्ते ! यह किस प्रकार कहा जाता है कि शक्र के यावत् विमान कुछ निम्नतर है ?

उ०—गोयमा ! से जहा नामए करतले सिया देसे उच्चे, देसे उन्नये, देसे णीए देसे णिण्णे ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—सक्कस्स जाव निण्णयरा चेव । —भग. स. ३, उ. १, सु. ५५

उ०—गौतम ! जिस प्रकार करतल का कुछ भाग ऊँचा और कुछ भाग उन्नत होता है । तथा कुछ भाग नीचा और कुछ भाग निम्नतर है ।

इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—शक्र के यावत् विमान निम्नतर हैं ।

पढमे पत्थडे विमाणा—

७०. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु पढमे पत्थडे पढमावलियाए एगमेगाए दिसाए बासट्ठि विमाणा पण्णत्ता ।

—सम. ६२, सु. ४ ।

प्रथम प्रस्तट में विमान—

७०. सौधर्म और ईशानकल्प के प्रथम प्रस्तट की प्रथम आवलिका एवं प्रत्येक दिशा में बासठ- बासठ विमान हैं ।

विमाणस्स बाहाए भोमा—

७१. सोहम्म-वडिसयस्स णं विमाणस्स एगमेगाए बाहाए पणसट्ठि पणसट्ठि भोमा पण्णत्ता । —सम. ६५, सु. ३ ।

विमान की बाहा में भौम भवन—

७१. सौधर्मावतंसक विमान की प्रत्येक दिशा में पैंसठ-पैंसठ भौम नगर हैं ।

विमाणावास संखा—

७२. सोहम्म-सणंकुमार-माहिंदेसु तिसु कप्पेसु बावन्नं विमाणावास सय सहस्सा पण्णत्ता । —सम. स. ५२, सु. ७ ।

सोहम्मी-साणेसु दोसु कप्पेसु सट्ठि विमाणावास सयसहस्सा पण्णत्ता । —सम. स. ६, सु. ६ ।

सोहम्मी-साणेसु बंभलोए य तिसु कप्पेसु चउसट्ठि विमाणा वास सयसहस्सा पण्णत्ता । —सम. स. ६०, सु. ५ ।

आरणे कप्पे दिवड्ढ विमाणावास सयं पण्णत्तं ।

एवं अच्चुए वि । —सम. स. १०१, सु. १ ।

विमानावास संख्या—

७२. सौधर्म-सनत्कुमार और माहेन्द्र इन तीन कल्पों में (संयुक्त) बावन लाख विमान कहे गए हैं ।

सौधर्म और ईशानकल्प में (संयुक्त) साठ लाख विमान कहे गए हैं ।

सौधर्म-ईशान और ब्रह्मलोक इन तीन कल्पों में (संयुक्त) चौसठ लाख विमान कहे गए हैं ।

आरण कल्प में डेढ़ सौ विमान कहे गए हैं ।

इसी प्रकार अच्युतकल्प में भी है ।

परियाणिया विमाणा—

७३. दसकप्पा इंदाहिट्ठिया पण्णत्ता । तं जहा—

१-८ सोहम्मे जाव सहस्सारे, ९ पाणए, १० अच्चुए ।

एएसु णं दससु कप्पेसु दस इंदा पण्णत्ता । तं जहा—

(१) सक्के, (२) ईसाणे, (३) सणंकुमारे, (४) माहिंदे, (५) बंभे, (६) लंतए, (७) महासुक्के, (८) सहस्सारे, (९) पाणए, (१०) अच्चुए ।

एएसि णं दसण्हं इंदाणं दस परियाणिया विमाणा पण्णत्ता । तं जहा—

(१) पालए, (२) पुप्फए, (३) सोमणसे, (४) सिरिवच्छे, (५) णंदियावत्ते, (६) कामकमे, (७) पीतिमणे, (८) मणोरमे[1], (९) विमलवरे, (१०) सव्वतो भद्दे ।

—ठाणं अ. १०, सु. ७६९ ।

पारियानिक विमान—

७३. दस कल्प इन्द्राधिष्ठित कहे गए हैं । यथा—

१-८ सौधर्म यावत् सहस्रार, ९ प्राणत, १० अच्युत ।

इन दस कल्पों में दस इन्द्र कहे गए हैं । यथा—

(१) शक्र, (२) ईशान, (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्म, (६) लान्तक, (७) महाशुक्र, (८) सहस्रार, (९) प्राणत, (१०) अच्युत ।

इन दस इन्द्रों के दस पारियानिक विमान कहे गए हैं । यथा—

(१) पालक, (२) पुष्पक, (३) सोमनस, (४) श्रीवत्स, (५) नंदिकावर्त, (६) कामक्रम, (७) प्रीतिमन, (८) मनोरम, (९) विमलवर, (१०) सर्वतोभद्र ।

---

१ ठाणं अ. ८, सु. ६४४ ।

परियाणिय विमाणाणं आयाम-विक्खंभं—

७४. पालए याणविमाणे एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ते।

एवं उडुविमाणे वि। —सम. स. १, सु.।

सक्कस्स लोगपालाणं विमाणा—

७५. प०—सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो। कति लोगपाला पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! चत्तारि विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) सोमे. (२) जमे, (३) वरुणे, (४) वेसमणे।

प०—एएसि णं भंते! चउण्हं लोगपालाणं कति विमाणा पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! चत्तारि विमाणा पण्णत्ता। तं जहा—
(१) संझप्पभे, (२) वरसिट्ठे, (३) सतंजले, (४) वग्गू।

(१) प०—कहि णं भंते! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स लोगपालस्स संझप्पभे नामं महाविमाणे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरियगहगण-नक्खत्त-तारा-रूवाणं बहूइं जोयणाइं जाव पंच वडेंसया पण्णत्ता। तं जहा—

(१) असोयवडेंसए, (२) सत्तवण्ण वडेंसए, (३) चंपय वडेंसए, (४) चूयवडेंसए, (५) मज्झे सोहम्म वडेंसए। तस्स णं सोहम्म वडेंसयस्स महाविमाणस्स पुरत्थिमेणं सोहम्मे कप्पे असंखेज्जाइं जोयणाइं वीइवइत्ता; एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स लोगपालस्स संझप्पभे नामं महाविमाणे पण्णत्ते।

अद्ध तेरस जोयण सहस्साइं आयाम-विक्खंभे णं। अडयालीसं जोयण सय सहस्साइं बावण्णं च सहस्साइं अट्ठ य अडयाले जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

(२) प०—कहि णं भंते! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जमस्स लोगपालस्स वरसिट्ठे नामं महाविमाणे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! सोहम्मवडेंसयस्स महाविमाणस्स दाहिणेणं सोहम्मे कप्पे असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं वीइवइत्ता एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जमस्स लोगपालस्स वरसिट्ठे नामं महाविमाणे पण्णत्ते। अद्धतेरस

पारियानिक विमानों का आयाम-विष्कम्भ—

७४. पालक यानविमान एक लाख योजन का लम्बा-चौड़ा कहा गया है।

इसी प्रकार उडु विमान भी लम्बा चौड़ा है।

शक्र के लोकपालों के विमान—

७५. प्र०—भगवन्! शक्र देवेन्द्र देवराज के कितने लोकपाल कहे गये हैं?

उ०—गौतम! चार लोकपाल कहे गये हैं। यथा—
(१) सोम, (२) यम, (३) वरुण, (४) वैश्रमण।

प्र०—भगवन्! इन चार लोकपालों के कितने विमान कहे गये हैं?

उ०—गौतम! चार विमान कहे गये हैं। यथा—
(१) सन्ध्यप्रभ, (२; वरसिद्ध, (३) सतंजल, (४) वल्गु।

प्र०—भगवन्! शक्र देवेन्द्र देवराज के सोम लोकपाल का सन्ध्यप्रभ नामक महा विमान कहां कहा गया है?

उ०—गौतम! जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समभूमि भाग से ऊपर चन्द्र-सूर्य-ग्रहगण-नक्षत्र-ताराओं से अनेक योजन यावत् पांच अवतंसक कहे गये हैं। यथा—

(१) अशोक अवतंसक, (२) सप्तपर्ण अवतंसक, (३) चंपक अवतंसक, (४) चूत अवतंसक, (५) मध्यम सौधर्म अवतंसक।

उस सौधर्मावतंसक महाविमान के पूर्व से सौधर्मकल्प में असंख्य योजन जाने पर शक्र देवेन्द्र देवराज के सोम लोकपाल के सान्ध्यप्रभ नामक महाविमान कहा गया है।

वह साढ़े बारह हजार योजन का लम्बा चौड़ा है। अड़तालीस लाख बावन हजार आठ सौ अड़तालीस योजन से कुछ अधिक कही गई है।

प्र०—भगवन्! शक्र देवेन्द्र देवराज के यमलोकपाल का वर श्रेष्ठ नामक महाविमान कहाँ कहा गया है?

उ०—गौतम! सौधर्मावतंसक विमान के दक्षिण से सौधर्म कल्प में असंख्य योजन जाने पर शक्र देवेन्द्र देवराज के यमलोकपाल का वर श्रेष्ठ नामक महाविमान कहा गया है।

साढ़े तेरह हजार योजन का लम्बा-चौड़ा है।

जोयण सहस्साइं। जहा सोमस्स विमाणं तहा जाव अभिसेओ।

रायहाणी तहेव जाव पासायपंतीओ।

प०—कहिणं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स लोगपालस्स सयंजले नामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! तस्स णं सोहम्म वडेंसयस्स महाविमाणस्स पच्चत्थिमेणं सोहम्मेकप्पे असंखेज्जाइं जोयण सहस्साइं। जहा सोमस्स तहा विमाण-रायहाणीओ भाणियव्वा जाव पासाय वडेंसया। नवरं नाम नाणत्तं।

प०—कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स लोगपालस्स वग्गूणामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! तस्स णं सोहम्म वडेंसयस्स महाविमाणस्स उत्तरेणं। जहा सोमस्स विमाण-रायहाणिवत्तव्वया तहा नेयव्वा जाव पासायवडेंसया।

—भग. स. ३, उ. ७, सु. २-७।

सोम लोकपाल के विमान जैसा यमलोक पाल का विमान है यावत् अभिषेक पर्यन्त है।

राजधानी भी उसी प्रकार है। यावत् प्रासाद पंक्तियाँ।

प्र०—भगवन् ! शक्र देवेन्द्र देवराज के वरुण लोकपाल का सतंजल नामक महाविमान कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! उस सौधर्मावतंसक महाविमान के पश्चिम से सौधर्म कल्प में असंख्य हजार योजन।

सोम लोकपाल के विमान और राजधानी का जैसा कथन है वैसा ही प्रासादावतंसक पर्यन्त जानना चाहिए किन्तु नाम भिन्न है।

प्र०—भगवन् ! शक्र देवेन्द्र देवराज के वैश्रमण लोकपाल (चतुर्थ) का वल्गुनामक महाविमान कहाँ है।

उ०—गौतम ! सौधर्मावतंसक महाविमान के उत्तर में जिस प्रकार सोम के महाविमान का कथन है उसी प्रकार—यावत्—राजधानी, प्रासाद पंक्तियों का वर्णन जान लेना चाहिए।

प०—ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कति लोगपाला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता। तं जहा—
(१) सोमे, (२) जमे, (३) वेसमणे, (४) वरुणे।

प०—एएसि णं भंते ! लोगपालाणं कति विमाणा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि विमाणा पण्णत्ता। तं जहा—
(१) सुमणे, (२) सव्वओभद्दे, (३) वग्गू, (४) सुवग्गू।

प०—कहिणं भंते ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स लोगपालस्स सुमणे नामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव ईसाणे णामं कप्पे पण्णत्ते।

तत्थ णं जाव पंच वडेंसया पण्णत्ता। तं जहा—

(१) अंकवडेंसए, (२) फलिहवडेंसए, (३) रयण-वडेंसए, (४) जायरूववडेंसए, (५) मज्झेयत्थ ईसाणवडेंसए।

तस्स णं ईसाणवडेंसयस्स महाविमाणस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जाइं जोयण सहस्साइं वीइवइत्ता तत्थ णं ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स लोगपालस्स सुमणे णामं महाविमाणे पण्णत्ते।

सेसं जहा सक्कस्स वत्तव्वया।

चउस विमाणेसु चत्तारि उद्देसा अपरिसेसा।

—भग. स. ४, उ. १-४।

प्र०—भगवन् ! ईशानेन्द्र देवराज देवेन्द्र के कितने लोकपाल कहे हैं ?

उ०—गौतम ! चार लोकपाल कहे गये है। वे इस प्रकार हैं—
(१) सोम, (२) यम, (३) वेश्रमण और (४) वरुण।

प्र०—भगवन् ! इन लोकपालों के कितने विमान कहे हैं ?

उ०—गौतम ! चार विमान कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—
(१) सुमन, (२) सर्वतोभद्र, (३) वल्गु और (४) सुवल्गु

प्र०—भगवन् ! ईशान देवेन्द देवराज के सोम लोकपाल का सुमन नामक महाविमान कहाँ है ?

उ०—गौतम ! जंबूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत के उत्तर में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल से यावत् ईशान नामक कल्प (देवलोक) कहा है।

उस कल्प में पाँच अवतंसक कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) अंकावतंसक, (२) स्फटिकावतंसक, (३) रत्नावतंसक, (४) जातरूपावतंसक और इन चारों के मध्य में ईशनावतंसक।

उस ईशानावतंसक महाविमान से पूर्व में तिरछे असंख्य हजार योजन आगे जाने पर देवेन्द्र देवराज ईशान के सोम नामक लोक-पाल का सुमन नामक महाविमान है।

शेष सारी वक्तव्यता शक्र के समान कहना चाहिए।

चारों विमानों के चार उद्देशक पूर्ण समझना चाहिए।

सक्काईणं इंदाणं सोमाईणं लोगपालाणं उप्पायपव्वया—

७६. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सक्कप्पभे उप्पायपव्वए दस जोयण सहस्साइं उद्धं उच्चत्तेणं, दस गाउय सहस्साइं उव्वेहेणं मूले दस जोयण सहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो जहा सक्कस्स तहा सव्वेसिं लोगपालाणं, सव्वेसिं इंदाणं-जाव-अच्चुय त्ति, सव्वेसिं पमाणमेगं।

—ठाणं. अ. १०, सु. ७२८

शक्रादि इन्द्रों के और सोमादि लोकपालों के उत्पात पर्वत—

७६. देवेन्द्र देवराज शक्र का उत्पात पर्वत दस हजार योजन ऊँचा दस हजार गाउ भूमि में गहरा, और मूल में दस हजार योजन विष्कम्भ वाला है।

देवेन्द्र देवराज शक्र के सोम नामक लोकपाल महाराज का उत्पात पर्वत शक्रेन्द्र जैसा है, सभी लोकपाल के और अच्युत पर्यन्त सभी इन्द्र का उत्पात पर्वत भी ऐसे ही हैं। **सबका प्रमाण समान है।**

सिद्धट्ठाण परिण्णा—

७७ प०—अत्थि णं भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे सिद्धा परिवसंति?

उ०—गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे।

एवं जाव सत्तमाए।

प०—अत्थि णं भंते! सोहमस्स कप्पस्स अहे सिद्धा परिवसंति?

उ०—गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे।

एवं ईसाणस्स जाव अच्चुयस्स गेविज्ज विमाणाणं अणुत्तर विमाणाणं।

प०—अत्थि णं भन्ते! इसी पब्भाएए पुढवीए अहे सिद्धा परिवसंति?

उ०—गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे।

प०—से कहिं खाइ णं भन्ते! सिद्धा परिवसंति?

उ०—गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-ग्गह-णक्खत्त-ताराभवणाओ। बहूइं जोयण सयइं। बहूइं जोयण सहस्साइं। बहूइं जोयण सय सहस्साइं। बहूओ जोयण कोडीओ। बहूओ जोयण कोडा कोडीओ उड्ढतरं उप्पइत्ता।

सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुए। तिण्णि अ अट्ठारे गेविज्ज विमाणा वाससए वीइवइत्ता।

विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय-सव्वट्ठ-सिद्धस्स य महाविमाणस्स सव्व उवरिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालस जोयणाइं अवाहाए।

एत्थ णं इसीपब्भाए णामं पुढवी पण्णत्ता।

—उव. सु. ४३

सिद्धस्थान परिज्ञा—

प्र०—भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे क्या सिद्ध रहते हैं?

उ०—गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इस प्रकार सप्तम नरक पर्यन्त है।

प्र०—भगवन्! इस सौधर्मकल्प के नीचे क्या सिद्ध रहते हैं?

उ०—गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार ईशान-यावत् अच्युत ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान पर्यन्त है।

प्र०—भगवन्! ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के नीचे क्या सिद्ध रहते हैं?

उ०—गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र०—भगवन्! वे सिद्ध कहाँ रहते हैं?

उ०—गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समभूभाग से चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-ताराभवन से अनेक सौ योजन। अनेक हजार योजन। अनेक लाख योजन। अनेक क्रोड योजन। अनेक क्रोडा क्रोड योजन ऊपर जाने पर।

सौधर्म-ईशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-लान्तक-महाशक्र-सहस्रार-आणत-प्राणत-आरण-अच्युत-ग्रैवेयक से आगे।

विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित और सर्वार्थसिद्ध महाविमान की सर्वोपरि स्तूपिका के अग्रभाग से बारह योजन अव्यवहित इषत् प्राग्भारा पृथ्वी कही गई है।

सिद्ध ठाणाइं—

७८. प०—कहि णं भन्ते ! सिद्धाणं ठाणा पण्णत्ता ?

प०—कहि णं भन्ते ! सिद्धा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! सव्वट्ठसिद्धस्स महाविमाणस्स उवरिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालस जोयणे उड्ढं अबाहाए[1], एत्थ णं ईसीपब्भारा णामं पुढवी पण्णत्ता ।

पणयालीसं जोयणसहस्साणि आयाम-विक्खंभेणं । एगा जोयण कोडी बायालीसं च सयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणं सए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ता ।

ईसीपब्भाराए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभाए अट्ठ-जोयणिए खेत्ते अट्ठजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, ततो अणंतरं च णं मायाए मायाए पएसपरिहाणीए परि-हायमाणी परिहायमाणी सव्वेसु चरिमंतेसु मच्छिय-पत्ताओ तणुययरी अंगुलस्स असंखेज्जइभागं बाहल्लेणं पण्णत्ता ।

ईसिपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

१. ईसी इ वा, २. ईसीपब्भारा इ वा, ३. तणू इ वा, ४. तणुतणू इ वा, ५. सिद्धी इ वा, ६. सिद्धालए इ वा, ७. मुत्ती इ वा, ८. मुत्तालए इ वा, ९. लोयग्गे इ वा, १०. लोयग्गथूभिया इ वा, ११. लोयग्ग पडिवुज्झणा इ वा, १२. सव्व-पाण-भूत-जीव-सत्तसुहा वहा इ वा ।

ईसीपब्भारा णं पुढवी सेया संखदलविमल-सोत्थिय-मुणाल-दगरय-तुसार-गोक्खीर-हारवण्णा, उत्ताणयच्छत्त संठाणसंठिया सव्वज्जुणसुवण्णमयी अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

ईसीपब्भाराए णं सीयाए जोयणंमि लोयंतो ।

तस्स णं जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे एत्थ णं सिद्धा भगवंतो सादीया अपज्जवसिया अणेग जाइ-मरण-जोणि संसार कलं कलीभाव-पुणब्भव-गब्भवासवसही पवंचसमतिक्कंता सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति ।[2]

—पण्ण. प. २, सु. २११

सिद्ध स्थान—

७८. प्र०—भगवन् ! सिद्धों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

प्र०—भगवन् ! सिद्ध कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! सर्वार्थसिद्ध महाविमान की ऊपर की स्तूपिका से बारह योजन ऊपर अन्तर रहित ईषत् प्राग्भारा नामक पृथ्वी कही गई है ।

पैंतालीस लाख योजन लम्बी चौड़ी और एक क्रोड बियालीस लाख, तीस हजार दो सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक परिधि कही गई है ।

ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी के मध्य भाग में आठ योजन का क्षेत्र आठ योजन मोटा कहा गया है, उसके बाद एक-एक प्रदेश हीन करते-करते सभी अन्तिम भागों में माखीकी पांखों से भी अत्यधिक पतली अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी मोटी कही गई है ।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम कहे गये हैं, यथा—

(१) ईषत्, (२) ईषत् प्राग्भारा, (३) तन्वी, (४) तनुतन्वी, (५) सिद्धि, (६) सिद्धालय, (७) मुक्ति, (८) मुक्तालय, (९) लोकाग्रा, (१०) लोकाग्रस्तूपिका, (११) लोकाग्र प्रति-बोधनी, (१२) सर्वप्राण-भूत-जीव-सत्व सुखावहा ।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी विमल शंखदल, स्वस्तिक, मृणाल, दकरज=जल के झाग, तुषार=हिमकण, गोक्षीर=गाय का दूध, हार जैसी श्वेत वर्ण वाली है । खुले हुए छत्र जैसे आकार वाली, अर्जुन स्वर्णमयी स्वच्छ —यावत्,—प्रतिरूप है ।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी से लोकान्त एक योजन ऊपर है ।

उस योजन के ऊपर के गाउ के छठे भाग में सादि अपर्य-वसित, जन्म-मरण, योनि, संसार के क्लेश, पुनर्जन्म और गर्भ-वास-वसति के प्रपंचों से रहित सिद्ध भगवन्त शाश्वत भविष्यकाल पर्यन्त स्थित हैं ।

१ सम. १२, सु. ९-१० ।

२ उववाई सु० ४३ ।

॥ ऊर्ध्वलोक वर्णन समाप्त ॥



काल लोक वर्णन

[सूत्र १ से ६२ पृष्ठ ६६१ से ७३५ तक]

काल-लोक

काल समोयारे—

१. प०—से किं तं कालसमोयारे ?

उ०—कालसमोयारे दुविहे पण्णत्ते । तं जहा —

(१) आयसमोयारे य, (२) तदुभयसमोयारे य

समए आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ ।

तदुभय समोयारेणं आवलियाए समोयरइ आयभावे य,

एवं आणापाणू जाव पलिओवमे ।

सागरोवमे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ ।

तदुभय समोयारेणं ओसप्पिणि उस्सप्पिणीसु समोयरइ आयभावे य ।

ओसप्पिणि उस्सप्पिणीओ आयसमोयारेणं आयभावे समोयरंति ।

तदुभयसमोयारेणं पोग्गलपरियट्टे समोयरंति आयभावे य ।

पोग्गलपरियट्टे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ ।

तदुभय समोयारेणं तीतद्धा-अणागतद्धासु समोयरइ आयभावे य ।

तीतद्धा-अणागतद्धाओ आयभावे समोयरंति ।

तदुभय समोयारेणं सव्वद्धाए समोदारंति आयभावे य ।

से तं काल समोयारे

—अणु. सु. ५३.२

काल समवतार—

प्र०—काल समवतार कितने प्रकार का है ?

उ०—काल समवतार दो प्रकार का कहा गया है । यथा—

(१) आत्म-समवतार, (२) उभय समवतार

समय-आत्मस्वरूप से आत्मभाव में समवतरित होता है ।

आवलिका-उभयस्वरूप से समवतरित होती है और आत्मभाव में भी समवतरित होती है ।

इसी प्रकार आन-प्राण यावत् पल्योपम पर्यन्त है ।

सागरोपम आत्मस्वरूप से आत्मभाव में समवतरित होता है ।

अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी उभयस्वरूप से समवतरित होती है और आत्मभाव में भी समवतरित होती है ।

अवसर्पिणियाँ और उत्सर्पिणियाँ आत्मस्वरूप से आत्मभाव में समवतरित होती हैं ।

पुद्गल परिवर्तन में (अवसर्पिणियाँ-उत्सर्पिणियाँ) उभय स्वरूप में अवतरित होती है आत्मभाव में भी अवतरित होती है ।

पुद्गल परिवर्तन आत्मस्वरूप से आत्मभाव में समवतरित होता है ।

अतीत और अनागत उभय स्वरूप से समवतरित होता है और आत्मभाव में भी समवतरित होता है ।

अतीत और अनागत आत्मस्वरूप से आत्मभाव में समवतरित होते हैं ।

सर्वकाल-उभय स्वरूप से आत्मभाव में समवतरित होते हैं ।

काल समवतार समाप्त

कालस्स भेयाणं परूवणं—

२. तिविहे काले पण्णत्ते, तं जहा—

(१) तीए[1], (२) पडुप्पन्ने[2], (३) अणागए[3] ।

काल के भेदों का प्ररूपण—

२. काल तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) अतीत = भूतकाल, (२) प्रत्युत्पन्न = वर्तमान, (३) अनागत = भविष्यत् ।

---

१ अति-अतिशयेनेतो गतोऽतीतः —वर्तमानत्वमतिक्रान्त, इत्यर्थः ।

२ साम्प्रतं उत्पन्नः प्रत्युत्पन्नो वर्तमान इत्यर्थः ।

३ न आगह्रोऽनागतो वर्तमानत्वमप्राप्तो भविष्यन्नित्यर्थः ।

तिविहे समए पण्णत्ते, तं जहा—
(१) तीए, (२) पडुप्पन्ने, (३) अणागए।
एवं आवलिया जाव वाससयसहस्से।
पुव्वंगे, पुव्वे जाव ओसप्पिणी।
—ठाणं अ. ३, उ. ४, सु. १९७

समय तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—
(१) अतीत, (२) प्रत्युत्पन्न, (३) अनागत
इसी प्रकार आवलिका यावत् लाखवर्ष,
पूर्वांग, पूर्व यावत् अवसर्पिणी भी तीन-तीन प्रकार के हैं।

कालस्स भेय चउक्क परूवणं—

३. प०—कइविहे णं भंते ! काले पण्णत्ते ?

उ०—सुदंसणा ! चउव्विहे काले पण्णत्ते।[1] तं जहा—
(१) पमाणकाले[2], (२) अहाउनिव्वत्तिकाले[3], (३) मरणकाले[4], (४) अद्धाकाले[5]।
—भग. स. ११, उ. ११, सु. ७।

काल के चार भेदों का प्ररूपण—

३. प्र०—भगवन् ! काल कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ०—सुदर्शन ! काल चार प्रकार का कहा गया है। यथा—
(१) प्रमाणकाल, (२) आयुनिवृत्तिकाल,
(३) मरणकाल, (४) अद्धाकाल।

पमाण काल परूवणं—

४. प०—से किं तं पमाण काले ?

उ०—पमाण काले दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—
(१) दिवसप्पमाण काले य, (२) रत्तिप्पमाण काले य।
चउपोरिसिए दिवसे भवइ, चउपोरिसिया राई भवइ।
जहन्निया तिमुहुत्ता दिवस्स वा, राईए वा पोरिसी भवइ।
उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा, राईए वा पोरिसी भवइ। —भग. स. ११, उ. ११, सु. ८।

प्रमाण काल का प्ररूपण—

४. प्र०—प्रमाण काल कितने प्रकार का है ?

उ०—प्रमाण काल दो प्रकार का कहा गया है। यथा—
दिवसप्रमाणकाल, रात्रिप्रमाणकाल।
चार पौरुषी का दिवस होता है, चार पौरुषी की रात्रि होती है।
दिवस अथवा रात्रि की जघन्य पौरुषी तीन-तीन मुहूर्त की होती है।
दिवस अथवा रात्रि की उत्कृष्ट पौरुषी साढ़े चार-चार मुहूर्त की होती है।

---

१ ठाणं अ० ४, उ० १, सु० २६४।

२ "पमाण काले" त्ति—तत्र प्रमीयते-परिच्छिद्यते येन वर्षशत-पल्योपमादि तत्प्रमाणं तदेव कालः प्रमाणकालः स च अद्धाकालविशेष एव दिवसादिलक्षणो मनुष्यक्षेत्रान्तर्वर्तीति उक्तं च गाहा—
दुविहो पमाणकालो, दिवसपमाणं च होई राई य। चउपोरिसिओ दिवसो, राई चउपोरिसी चेव ॥-॥

३ "अहाउयनिव्वत्तिकाले" त्ति—यथा—यत्प्रकारं नारकादि भेदेनायुः कर्मविशेषो यथा—छुस्तस्य रौद्रादिध्यानादिना निर्वृत्ति—बन्धनं तस्याः सकाशाद्यः कालो नारकादित्वेन स्थितिर्जीवानां स यथायुर्निर्वृत्तिकालः।
अथवा—यथाऽऽयुषो निर्वृतिस्तथा यः कालो—नारकादि भवेऽवस्थानं स तथेति।
अयमप्यद्धाकाल एवायुष्क कर्मानुभवविशिष्टः सर्वसंसा रिजीवानां वर्तनादिरूप इति।
उक्तं च गाहा—आउयमेत्तविसिट्ठो, स एव जीवाणं वत्तणादिमओ। भन्नइ अहाउकालो, वत्तइ जो जच्चिरं जेण ॥-॥

४ "मरणकाले" त्ति—मरणस्य-मृत्योः कालः समयो मरणकालः।
अयमप्यद्धा समय विशेष एव, मरणविशिष्टो मरणमेव वा कालो, मरणपर्यायत्वादिति।
उक्तं च गाहा—कालोत्ति मयं मरणं, जहेह मरणं गओत्ति कालगओ। तम्हा स कालकाओ, जो जस्स मओ मरणकालो ॥-॥

५ "अद्धाकाले" त्ति—तथा अद्धैव कालः अद्धाकालः, काल शब्दो हि वर्णप्रमाणकालादिष्वपि वर्तते।
ततो अद्धाशब्देन विशिष्यत इति। अयं च सूर्यक्रिया विशिष्टो मनुष्यक्षेत्रान्तर्वर्ती समयादिरूपोऽवसेयः।
उक्तं च गाहाओ—सूरकिरिया विसिट्ठो, गोदोहाइकिरिया सु निरवेक्खो। अद्धाकालो भन्नइ, समयखेत्तंमि समयाइ ॥-॥
समयावलिमुहुत्ता, दिवसमहोरत्त-पक्ख-मासा य। संवच्छर-जुग-पलिया, सागर-ओसप्पि-परियट्टा ॥-॥
द्रव्यपर्याय भूतस्य कालस्य चतुस्थानकमुक्तम्। —स्थानांग टीका

गाहाओ—

आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया।
चित्तासोएसु मासेसु, तिपया हयइ पोरिसी ॥१३॥
अंगुलं सत्तरत्तेणं पक्खेणं तु दुयंगुलं।
वड्ढए हायए वा वि मासेणं चउरंगुलं ॥१४॥

—उत्तरा. अ. २६, गा. १३-१४।

गाथार्थ—

आषाढ मास में दो पाद प्रमाण, पौष मास में चार पाद प्रमाण।
आश्विन मास में तीन पाद प्रमाण, पौरुषी होती है।
सात दिन-रात में एक अंगुल, पक्ष में दो अंगुल,
मास में चार अंगुल, (पाद-छाया) की हानि और वृद्धि होती है।

(श्रावण मास से पौषमास तक (पाद-छाया की) वृद्धि, माघ-मास से आषाढ मास तक (पाद-छाया) की हानि।)

फग्गुण-पुण्णमासिणीए णं सूरिए चत्तालीसंगुलियं पोरिसिछायं निव्वट्टइत्ता णं चारं चरइ।

—सम. ४०, सु. ६

फाल्गुन पूर्णिमा के दिन सूर्य चालीस अंगुल प्रमाण पौरुषी छाया करके गति करता है।

एवं कत्तियाए वि पुण्णिमाए।

—सम. ४०, सु. ७

इसी प्रकार कार्तिक पूर्णिमा के दिन भी।

जहन्नुक्कोसिया पौरुसी—

५. प०—जया णं भंते! उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी। तया णं कइभाग मुहुत्तभागे णं परिहायमाणी परिहायमाणी जहन्निया तिमुहुत्ता दिवस्स वा राईए वा पोरीसी भवइ?

जया णं जहन्निया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ। तया णं कइभागमुहुत्तभागे णं परि-वड्ढमाणी परिवड्ढमाणी उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ?

उ०—सुदंसणा! जया णं उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तया णं बावीससयभाग मुहुत्तभागेणं परिहायमाणी परिहाय-माणी जहन्निया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ।

जया वा जहन्निया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ तया णं बावीससय भाग मुहुत्त भागेणं परिवड्ढमाणी परिवड्ढमाणी उक्कोसिया अद्धपंचम-मुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ।

प०—कया णं भंते! उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ?

कया वा जहन्निया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ?

उ०—सुदंसणा! जया णं उक्कोसए अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवइ जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ तया णं

जघन्य और उत्कृष्ट पौरूषी—

५. प्र०—भगवन्! जब दिन और रात्रि की साढ़े चार मुहुर्त की उत्कृष्ट पौरूषी होती है तब एक मुहुर्त के कितने भाग घटते-घटते दिन और रात्रि की तीन मुहुर्त की जघन्य पौरूषी होती है?

और जब दिन और रात्रि की तीन मुहुर्त की जघन्य पौरूषी होती है तब एक मुहुर्त के कितने भाग बढ़ते-बढ़ते दिन और रात्रि की साढ़े चार मुहुर्त की उत्कृष्ट पौरूषी होती है?

उ०—सुदर्शन! जब दिन और रात्रि की साढ़े चार मुहुर्त की उत्कृष्ट पौरूषी होती है तब एक मुहुर्त के एक सौ बावीसवें भाग जितनी घटती-घटती दिन और रात्रि की तीन मुहुर्त की जघन्य पौरूषी होती है।

और जब दिन और रात्रि की तीन मुहूर्त की जघन्य पौरुषी होती है तब एक मुहुर्त के एक सौ बावीसवें भाग जितनी बढ़ती-बढ़ती दिन और रात्रि की साढ़े चार मुहुर्त की उत्कृष्ट पौरूषी होती है।

प्र०—भगवन्! दिन और रात्रि की साढ़े चार मुहुर्त की उत्कृष्ट पौरूषी कब होती है?

तथा दिन और रात्रि की तीन मुहुर्त की जघन्य पौरुषी कब होती है?

उ०—सुदर्शन! जब उत्कृष्ट अठारह मुहुर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहुर्त की रात्रि होती है तब उत्कृष्ट साढ़े

उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स पोरिसी भवइ जहन्निया तिमुहुत्ता राईए पोरिसी भवइ।

जया वा उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता राईए पोरिसी भवइ जहन्निया तिमुहुत्ता दिवसस्स पोरिसी भवइ।

प०—कया णं भंते ! उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ?

कया वा उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहन्नए दुवालस मुहुत्ते दिवसे भवइ ?

उ०—सुदंसणा ! आसाढ पुण्णिमाए[1] उक्कोसए अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवइ जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ।

पोस पुण्णिमाए णं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ। जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ।

भग. स. ११, उ. ११, सु. ९-११।

चार मुहुर्त की दिन की पौरुषी होती है और जघन्य तीन मुहूर्त की रात्रि पौरुषी होती है।

तथा जब उत्कृष्ट अठारह मुहुर्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहुर्त का दिन होता है तब उत्कृष्ट साढ़े चार मुहुर्त की रात्रि की पौरुषी होती है और जघन्य तीन मुहुर्त की दिन की पौरुषी होती है।

प्र०—भगवन् ! उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन कब होता है ? और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि कब होती है ?

तथा उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि कब होती है ? और जघन्य बारह मुहुर्त का दिन कब होता है ?

उ०—सुदर्शन ! आषाढ पूर्णिमा को उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

पौष पूर्णिमा को उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है, जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है।

दिवसस्स वा राईए वा समा पोरिसी—

६. प०—अत्थि णं भंते ! दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति ?

उ०—हंता ! अत्थि।

प०—कया णं भन्ते ! दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति ?

उ०—सुदंसणा ! चेत्ताऽऽसोयपुण्णिमासु[2] णं एत्थ णं दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति।

पण्णरस मुहुत्ते दिवसे भवइ पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ।

चउभागमुहुत्तभागूणा चउमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ। से त्तं पमाण काले।

—भग. स. ११, उ. ११, सु. १२-१३।

दिन और रात्रि को समान पौरुषी—

६. प्र०—भगवन् ! दिन और रात्रि की समान पौरुषी होती है ?

उ०—हां होती है।

प्र०—भगवन् ! दिन और रात समान कब होते हैं ?

उ०—सुदर्शन ! चैत्री पूर्णिमा और आसोजी पूर्णिमा को दिन और रात्रि समान होते हैं।

पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है और पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि होती है।

एक मुहूर्त के चार भाग कम चार मुहूर्त की दिन और रात्रि की पौरुषी होती है। यह प्रमाण काल है।

अहाउनिव्वत्तिकाल परूवणं—

७. प०—से किं तं अहाउनिव्वत्तिकाले ?

उ०—अहाउनिव्वत्ति काले जे णं जेणं नेरइएणं वा तिरिक्ख जोणिएण वा मणुस्सेण वा देवेण वा अहाउयं निव्वत्तियं। सेतं अहाउनिव्वत्ति काले।

—भग० स० ११, उ० ११, सु० १४।

यथायुनिर्वृत्ति काल का प्ररूपण—

७. प्र०—यथायुर्निवृत्ति काल किस प्रकार का है ?

उ०—जिस किसी नैरयिक ने, तिर्यक् योनिक ने, मनुष्य ने या देव ने जिस प्रकार का आयु बांधा है वह उसे उसी प्रकार भोगे यह यथायुनिवृत्ति काल है।

---

१ इह आषाढ पौर्णमास्यामिति यदुक्तम् तत् पञ्च सांवत्सरिक युगस्य अन्तिम वर्षापेक्षया अवसेयम्। यतस्तत्रैव आषाढपौर्णमास्यामष्टादश मुहुर्तो दिवसो भवति। अर्द्ध पंचमुहुर्ता च तत्पौरुषी भवति।

२ इह च चेत्तासोयपुण्णिमासु णं इत्यादि यदुच्यते तद् व्यवहार नया पक्षम् निश्चयस्तु कर्क-मकर अङ्क्रान्तिदिनाद् आभ्य यद् द्विनवतितमम् अहोरात्रम् तस्यार्धे समा दिवस-रात्रि प्रमाणता।

मरणकाल परूवणं—

८. प०—से किं ते मरणकाले ?

उ०—मरणकाले,[1] जीवो वा सरीराओ सरीरं वा जीवाओ। सेत्तं मरणकाले।

—भग० स० ११, उ० ११, सु० १५।

मरण काल प्ररूपण—

८. प्र०—मरण काल क्या है ?

उ०—शरीर से जीव का या जीव से शरीर का वियोग हो यह मरण काल है।

अद्धाकाल परूवणा—

९. प०—से किं तं अद्धा काले ?

उ०—अद्धा काले अणेगविहे पण्णत्ते।

से णं समयट्ठयाए, आवलियट्ठयाए जाव उस्सप्पिणियट्ठयाए।

एस णं सुदंसणा! अद्धा दोहारच्छेदेणं छिज्जमाणी जाहे विभागं नो हव्वमागच्छति। सेत्तं समए समयट्ठयाए।

असंखेज्जाणं समयाणं समुदयसमिति समागमेणं सा एगा आवलियत्ति पवुच्चइ।

संखेज्जाओ आवलियाओ जाव तं सागरोवमस्स उ एगस्स भवे परिमाणं।

—भग० स० ११, उ० ११, सु० १६।

अद्धाकाल का प्ररूपण—

९. प्र०—अद्धा काल कितने प्रकार का है ?

उ०—अद्धा काल अनेक प्रकार का कहा गया है।

समय रूप, आवलिका रूप—यावत्—उत्सर्पिणी रूप।

सुदर्शन! जिस काल के दो भाग करने पर भी दो भाग नहीं होते हैं। वह समय-समय रूप है।

असंख्य समयों का समुदाय सम्मिलित होने पर जो काल होता हैं वह "समय" कहा जाता है।

संख्येय आवलिकाओं का एक श्वासोच्छ्वास होता है—यावत्—एक सागरोपम का प्रमाण होता है।

कालस्स भेयप्पभेया—

१०. प०—से किं तं कालप्पमाणे ?

उ०—कालप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) पदेसनिप्पण्णे य, (२) विभागनिप्पण्णे य।

प०—से किं तं पदेसनिप्पण्णे ?

उ०—पदेसनिप्फण्णे एगसमयट्ठिईए, दुसमयट्ठिईए, तिसमट्ठिइए जाव दससमयट्ठिईए असंखेज्जसमयट्ठिईए।

से तं पदेसनिप्पण्णे।

प०—से किं तं विभागनिप्पण्णे ?

उ०—विभागनिप्पण्णे—गाहा—

समयाऽऽवलिय-मुहुत्ता, दिवस-अहोरत्त-पक्ख-मासा य।
संवच्छर-जुग-पलिया, सागर-ओसप्पि-परियट्टा॥

—अणु० सु० ३६३-३६५।

काल के भेद प्रभेद—

१०. प्र०—काल प्रमाण के कितने भेद हैं ?

उ०—काल प्रमाण दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) प्रदेशनिष्पन्न, (२) विभागनिष्पन्न।

प्र०—प्रदेश निष्पन्न का क्या स्वरूप है ?

उ०—एक काल प्रदेश से निष्पन्न=एक समय की स्थिति वाला, (परमाणु या स्कन्ध) इसी प्रकार दो समय की स्थिति वाले—यावत्—दस समय की स्थिति वाले तथा असंख्य समयों की स्थिति वाले (परमाणु या स्कन्ध) प्रदेश निष्पन्न कहे गये हैं।

प्रदेश निष्पन्न समाप्त।

प्र०—विभाग निष्पन्न का स्वरूप क्या है ?

उ०—गाथार्थ—(१) समय, (२) आवलिका, (३) मुहूर्त, (४) दिवस, (५) अहोरात्र, (६) पक्ष, (७) मास, (८) संवत्सर, (९) युग, (१०) पल्य, (११) सागर और (१२) परावर्तन इन काल विभागों से निष्पन्न (परमाणु-स्कन्ध) विभाग निष्पन्न कहे गये हैं।

---

१ भग० स० ६, उ० ७, सु० ४-७।

सोदाहरणं समयसरूव-परूवणं—

११. प०—से किं तं समए ?

उ०—समयस्स परूवणं करिस्सामि –

से जहा णामए—तुण्णागदारए सिया तरुणे, बलवं जुगवं जुवाणे, अप्पायंके, थिरग्गहत्थे, दढपाणि-पाय-पास-पिट्ठंतरोरूपरिणए, तलजमलजुयल-परिघणिभ-बाहू, चम्मेट्ठग-दुहण-मुट्ठियसमाहयनिचियगत्तकाये, लंघणपवण-जइणवायामसमत्थे, उरस्सबलसमण्णागए, छेए, दक्खे, पत्तट्ठे कुसले मेहावी निउणे निउणसिप्पोवगए एगं महतिं पडसाडियं वा, पट्टसाडियं वा गहाय सयराहं हत्थमेत्तं ओसारेज्जा।

प०—तत्थ चोयए पण्णवयं एवं वयासी—जे णं कालेणं ते णं तुण्णागदारएणं तीसे पडसाडियाए वा, पट्टसाडियाए वा सयराहं हत्थमेत्ते ओसारिए से समए भवइ ?

उ०—नो इणट्ठे समट्ठे।

प०—कम्हा ?

उ०—जम्हा संखेज्जाणं तंतूणं समुदयसमितिसमागमेणं पडसाडिया निप्पज्जइ। उवरिल्लम्मि तंतुम्मि अच्छिण्णे हेट्ठिल्ले तंतू णं छिज्जइ। अण्णंमि काले उवरिल्ले तंतू छिज्जइ, अण्णम्मि काले हिट्ठिल्ले तंतू छिज्जइ तम्हा से समए न भवइ।

प०—एवं वयंतं पण्णवगं चोयए एवं वयासी—जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारए णं तीसे पडसाडियाए वा, पट्टसाडियाए वा उवरिल्ले तंतू छिण्णे से समए ?

उ०—ण भवइ।

प०—कम्हा ?

उ०—जम्हा संखेज्जाणं पम्हाणं समुदयसमितिसमागमेणं एगे तंतू-निप्फज्जइ। उवरिल्ले पम्हम्मि अच्छिण्णे हेट्ठिल्ले पम्हे न छिज्जइ। अण्णम्मि काले उवरिल्ले पम्हे छिज्जइ, अण्णम्मि काले हेट्ठिल्ले पम्हे छिज्जइ-तम्हा से समए ण भवइ।

उदाहरण सहित समय के स्वरूप का प्ररूपण—

११. प्र०—समय का स्वरूप क्या है ?

उ०—समय का प्ररूपण करूंगा—

जिस प्रकार कोई एक नाम वाला चतुर्थ आरे में उत्पन्न सूचिकार पुत्र (दरजी का लड़का) है। जो तरुण युवा बलवान एवं निरोग है। जिसका शरीर संहनन एवं वक्षस्थल वज्रमय है। जिसके हाथ, पैर, पार्श्वभाग, पृष्ठभाग तथा जंघाएँ सुदृढ़ है। जिसने मुद्गर घुमाकर तथा अनेक प्रकार के व्यायाम करके शरीर को सशक्त एवं सामर्थ्य सम्पन्न बना लिया है। जिसके दोनों बाहु ताल जैसे लम्बे, नगर की अर्गला जैसे सीधे एवं पुष्ट हैं। जिसकी हथेलियां और अँगुलियां अकम्पित है। जो चतुर निपुण शिल्पी है। जो लक्ष्य सिद्धि में सफल तथा कार्यकुशल मेधावी कारीगर है। वह यदि मजबूत बनी हुई पटशाटिका या पट्टी (दरी) को पकड़कर एक झटके में एक साथ फाड़े, (उस समय शिष्य गुरु से इस प्रकार बोला—)

प्र०—"जिस समय उस दरजी के लड़के ने उस पटशाटिका या पट्टी को पकड़कर एक झटके में एक साथ एक हाथ फाड़ा" वह एक समय हुआ ?

उ०—गुरु बोले—यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र०—शिष्य ने पूछा—कैसे ?

उ०—संख्येय तन्तुओं के सम्मिलित समुदाय के परस्पर मिलने से पटशाटिका का निर्माण होता है। ऊपर वाले तन्तु के छिन्न हुए बिना नीचे वाला तन्तु छिन्न नहीं होता है। ऊपर वाला तन्तु अन्य काल में छिन्न होता है और नीचे वाला तन्तु अन्य काल में छिन्न होता है—इसलिए वह समय नहीं होता है।

इस प्रकार कहते हुए गुरु को शिष्य इस प्रकार बोला—

प्र०—उस सूचिकार (दरजी) पुत्र ने उस पटशाटिका के ऊपर वाले तन्तु को जिस काल में छिन्न किया क्या वह काल समय है ?

उ०—नहीं।

प्र०—कैसे ?

उ०—संख्येय पक्ष्मों (सूक्ष्म तन्तुओं) के सम्मिलित समुदाय के परस्पर मिलने पर एक तन्तु निष्पन्न होता है। ऊपर वाले पक्ष्म (सूक्ष्म तन्तु) के छिन्न हुए बिना नीचे वाला पक्ष्म छिन्न नहीं होता हैं। ऊपर वाला पक्ष्म अन्य काल में छिन्न होता है और नीचे वाला पक्ष्म अन्य काल में छिन्न होता है। इसलिए वह समय नहीं होता है।

इस प्रकार कहते हुए गुरु को शिष्य इस प्रकार बोला—

प०—एवं वयंतं पण्णवगं चोयए एवं वयासी—जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तस्स तंतुस्स उवरिल्ले पम्हे छिण्णे से समए ?

उ०—ण भवइ।

प०—कम्हा ?

उ०—जम्हा अणंताणं संघाताणं समुदयसमितिसमागमेणं एगे णिप्फज्जइ। उवरिल्लेसंघाते अविसंघातिए हेट्ठिल्ले संघाते णं विसंघाडिज्जइ। अण्णंम्मि काले उवरिल्ले संघाए विसंघाइज्जइ, अण्णम्मि काले हेट्ठिल्ले संघाए विसंघाइज्जइ तम्हा से समए ण भवइ,

(१) एत्तो वि णं सुहुमतराएसमए पण्णत्ते समणाउसो।
—अणु० सु० ३६६।

प्र०—उस सूचिकार (दरजी) पुत्र ने उस तन्तु के ऊपर वाले पक्ष्म को जिस काल मे छिन्न किया, क्या वह समय है ?

उ०—नहीं है।

प्र०—कैसे ?

उ०—अनन्त संघातों (सूक्ष्मकणों) के सम्मिलित समुदाय के परस्पर मिलने से एक पक्ष्म निष्पन्न होता है। ऊपर वाले संघात (सूक्ष्मकण) के भिन्न हुए बिना नीचे वाला संघात भिन्न नहीं होता है। ऊपर वाला संघात अन्य काल में भिन्न होता है और नीचे वाला संघात अन्य काल में भिन्न होता है इसलिए वह समय नहीं होता है।

(१) हे आयुष्मान श्रमण ! इससे भी सूक्ष्मतर "समय" कहा गया है।

आवलियाईणं पमाणं—

(२) असंखेज्जाणं समयाणं समुदयसमितिसमागमेणं सा एगा आवलियत्ति पवुच्चइ। (३) संखेज्जओ आवलियाओ ऊसासो, (४) संखेज्जाओ आवलियाओ नीसासो।

गाहाओ—

५. हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो।
एगे ऊसास-नीसासे, एस "पाणु" त्ति वुच्चइ।

६. सत्तपाणुणि से "थोवे",
७. सत्तथोवाणि से "लवे"।
८. लवाणं सत्तहत्तरिए, एस "मुहुत्ते" वियाहिए।
९. तिण्णि सहस्सा सत्तय, सयाणि तेहत्तरिं च उस्सासा।
एस "मुहुत्तो" भणिओ, सव्वेहिं अणंतनाणीहिं।

(१०) एएणं मुहुत्तपमाणेणं तीसंमुहुत्ता "अहोरत्ते",
(११) पण्णरस अहोरत्ता "पक्खो",
(१२) दो पक्खा "मासो",
(१३) दो मासा "उऊ",
(१४) तिण्णि उऊ "अयणं".
(१५) दो अयणाइं "संवच्छरे",
(१६) पंच संवच्छरिए "जुगे",
(१७) वीसं जुगाइं "वाससयं",
(१८) दसवाससयाइं "वाससहस्सं",
(१९) सयं वाससहस्साणं "वाससयसहस्सं",
(२०) चउरासीई वाससयसहस्साइं से एगे "पुव्वंगे",

आवलिका आदि का प्ररूपण—

(२) असंख्य समयों के सम्मिलित समुदाय के परस्पर समागम से एक "आवलिका" कही जाती है। (३) संख्येय आवलिका जितना एक उच्छ्वास होता है। (४) संख्येय आवलिका जितना एक निश्वास होता है।

गाथार्थ—

(५) जरा और व्याधि रहित सन्तुष्ट मनुष्य का एक उच्छ्वास-निश्वास "पाण" कहा जाता है।

(६) सात प्राण जितना (काल) एक "स्तोक" होता है।
(७) सात स्तोक जितना (काल) एक "लव" होता है।
(८) सतंतर लव जितना काल एक "मुहूर्त" होता है।
(९) तीन हजार सात सौ तिहत्तर उच्छ्वास जितने काल को सभी ज्ञानियों ने एक मुहूर्त कहा है।

इस मुहूर्त प्रमाण से—

(१०) तीस मुहूर्त का एक अहोरात्र,
(११) पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष,
(१२) दो पक्षों का एक मास,
(१३) दो मासों की एक ऋतु,
(१४) तीन ऋतु का एक अयन,
(१५) दो अयन का एक संवत्सर,
(१६) पांच संवत्सरों का एक युग,
(१७) बीस युगों के सौ वर्ष,
(१८) दस सौ वर्षों का एक हजार वर्ष,
(१९) सौ हजार वर्षों का एक लाख वर्ष,
(२०) चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग,

(२१) चउरासीइं पुव्वंगसयसहस्साइं से एगे "पुव्वे",
(२२) चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं से एगे "तुडियंगे",
(२३) चउरासीइं तुडियंगसयसहस्साइं से एगे "तुडिए"
(२४) चउरासीइं तुडियसयसहस्साइं से एगे "अडडंगे",
(२५) चउरासीइं अड्डंगसयसहस्साइं से एगे "अड्डे",
(२६) चउरासीइं अड्डसयसहस्साइं से एगे "अववंगे",
(२७) चउरासीइं अववंगसयसहस्साइं से एगे "अववे",
(२८) चउरासीइं अववसयसहस्साइं से एगे "हूहुयंगे",
(२९) चउरासीइं हूहुयंगसयसहस्साइं से एगे "हूहुए",

(३०) एवं उप्पलंगे, (३१) उप्पले, (३२) पउमंगे, (३३) पउमे, (३४) नलिनंगे, (३५) नलिने, (३६) अत्थनिउरंगे, (३७) अत्थनिउरे, (३८) अउयंगे, (३९) अउए, (४०) णउअंगे, (४१) णउए, (४२) पउअंगे, (४३) पउए. (४४) चूलियंगे, (४५) चूलिया।

(४६) चउरासीइं चूलियासयसहस्साइं से एगे "सीसपहेलियंगे",

(४७) चउरासीइं सीसपहेलियंगसयसहस्साइं सा एगा "सीसपहेलिया",

एताव तावगणिए, एयावए चेव गणियस्स विसए, अतो परं ओवमिए[1] —अणु० सु० २६७।

(२१) चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व,
(२२) चौरासी लाख पूर्व का एक त्रुटितांग,
(२३) चौरासी लाख त्रुटितांग का एक त्रुटित,
(२४) चौरासी लाख त्रुटित का एक अडडांग,
(२५) चौरासी लाख अडडांग का एक अडड,
(२६) इसी प्रकार अववांग,
(२७) अवव,
(२८) हूहूकांग,
(२९) हूहूक,

(३०) उत्पलांग, (३१) उत्पल, (३२) पद्मांग, (३३) पद्म, (३४) नलिनांग, (३५) नलिन, (३६) अक्षनिकुरांग, (३७) अक्षनिकुर, (३८) अयुतांग, (३९) अयुत, (४०) प्रयुतांग, (४१) प्रयुत, (४२) नयुतांग, (४३) नयुत, (४४) चूलिकांग, (४५) चूलिका,

(४६) शीर्षप्रहेलिकांग,

(४७) शीर्ष प्रहेलिका।

यहाँ तक गणित है, इतना ही गणित का विषय है। इससे आगे औपमिक काल है।

ओसप्पिणी-उस्सप्पिणी भेय परूवणं—

१२. तिविहा ओसप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा—

(१) उक्कसा, (२) मज्झिमा, (३) जहन्ना।
एवं छप्पि समाओ भाणियव्वाओ—
सुसमसुसमा-जाव-दूसमदूसमा।[2]
तिविहा उस्सप्पिणी पण्णत्ता। तं जहा—
(१) उक्कसा, (२) मज्झिमा, (३) जहन्ना,

अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के भेदों का प्ररूपण—

१२. तीन प्रकार की अवसर्पिणी कही गई है, यथा—

(१) उत्कृष्टा, (२) मध्यमा, (३) जघन्या।
इसी प्रकार छहों आरे के भेद कहने चाहिए—
सुषमसुषमा—यावत्—दूषमदूषमा।
तीन प्रकार की उत्सर्पिणी कही गई है,—यथा—
(१) उत्कृष्टा, (२) मध्यमा, (३) जघन्या।

---

१ चतुरशीतिलक्षवर्षैः पूर्वांगम्, पूर्वांग पूर्वांगेन गुणितं पूर्वम्, पूर्व चतुरशीतिगुणं पूर्वांगम्, पर्वांग, चतुरशीतिलक्षगुणम्पर्व, पर्वचतुरशीतिगुणं नियुतांग नियुतांग चतुरशीतिलक्षगुणं नियुतं, नियुत चतुरशीतिगुणं कुमुदांगम् कुमुदांगम्चतुरशीतिलक्षगुणं कुमुदम् कुमुदं चतुरशीतिगुणं पद्मांगम्, पदांगम् चतुरशीति लक्षगुणं पद्मम्, पद्मं चतुरीशीतिगुणं नलिनांगम्, नलिनांग चतुरशीतिलक्षगुण नलिनम्, नलिनम् चतुरशीतिगुणं कमलांगम् कमलांग चतुरशीतिलक्षगुणं कमलम्, कमलं चतुरशीतिगुणंतुट्टिांगम् तुटिटतांग चतुरशीतिलक्षगुणं तुटिम्, तुटितं चतुरशीतिगुणं अट्टांगम्, अट्टागं चतुरशीतिलक्षगुणं अट्टम्। अट्टं चतुरशीतिगुणं अममांगम् अममांगं चतुरशीतिलक्षगुणं अममम्, अममं चतुरशीतिगुणं हाहाहूहूअगंम्, हाहाहूहूअंग चतुरशीतिलक्षगुणं हाहाहूहू, हाहाहूहू चतेरशीतिगुणं मृदुलतांगम् मृदुलतांग चतुरशीति लक्षगुणं मृदुलता, मृदुलता चतुरशीतिगुणा लतांगम् लतांग चतुरशीतिलक्षगुणा, लता, लता चतुरशीतिगुणा, महालतांगम, महालतांग चतुरशीतिलक्षगुणं महालता, महालता चतुरशीतिगुणा शीर्षप्रकम्पितम् शीर्षप्रकमितम्, शीर्षप्रकम्पितं चतुरशीतिलक्षगुणं हस्तप्रहेलिका, हस्तप्रहेलिका चतुरशीतिगुणा अचलात्मकम्। ततः परमसंख्यम्।
—म० वि० अणुओगदारं, सु० ३६७, पृ० १४९ टि।

२ अवसर्पिणी प्रथमे डरके, उत्कृष्टा चतुर्पु मध्यमा, पश्चिमे जघन्या, एवं सुषम सुषमादिषु प्रत्येकं त्रयं त्रयं कल्पनीयम्।

एवं छप्पि समाओ भाणियव्वाओ—
दूसमदूसमा-जाव-सुसमसुसमा ।[1]
—ठाणं० अ० ३, उ० १, सु० १४५ ।

इसी प्रकार छहों के भेद कहने चाहिए—
दुषमदुषमा—यावत्—सुसमसुसमा ।

पलिओवम-सागरोवमाणंपओयणं—

१३. प०—एएहिं णं भंते ! पलिओवम-सागरोवमेहिं किं पयोयणं ?

उ०—सुदंसणा । एएहिं णं पलिओवम-सागरोवमेहिं नेरइय-तिरिक्ख जोणिय-मणुस्स-देवाणं आउयाइं मविज्जंति ।[2]
—भग० स० ११, उ० ११, सु० १७ ।

पल्योपम-सागरोपम का प्रयोजन—

१३. प०—भगवन्! पल्योपम और सागरोपम का क्या प्रयोजन है ?

उ०—सुदर्शन ! इन पल्योपम और सागरोपमों से नैरयिक तिर्यञ्च योनिक मनुष्य और देवों का आयुष्य मापा जाता है ।

गणियकालस्स परूवणं—

१४. प०—एगमेगस्स णं भंते ! मुहुत्तस्स केवइया उसासद्धा वियाहिया ?

उ०—गोयमा ! असंखेज्जाणं समयाणं समुदयसमितिसमागमेणं सा । एगा "आवलिया" त्ति पवुच्चइ ।

संखेज्जा आवलिया ऊसाओ-संखेज्जा-आवलिया निस्सासो ।

गाहाओ—

हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो ।
एगे ऊसास-नीसासो, एस "पाणु" त्ति वुच्चइ ॥

सत्तपाणूणि से "थोवे", सत्तथोवाइं से "लवे"[3] ।
लवाणं सत्तहत्तरिए, एस "मुहुत्ते" वियाहिए ॥

तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा ।
एस "मुहुत्तो" दिट्ठो, सव्वेहिं अणंतणाणीहिं ॥

एएणं मुहुत्तपमाणेणं, तीस मुहुत्तो "अहोरत्तो" ।
पण्णरस अहोरत्ता "पक्खो" ।
दो पक्खा "मासो"[4] ।
दो मासा "उऊ" ।
तिण्णि उऊ "अयणे" ।
दो अयणा "संवच्छरे"
पंच संवच्छरे "जुगे" ।
वीस जुगाइं "वाससयं" ।
दस वाससयाइं "वाससहस्सं" ।

गणित काल का प्ररूपण—

१४. प्र०—भगवन् ! प्रत्येक मुहूर्त के कितने उच्छ्वास कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! असंख्य समयों का जो समुदाय है वह एक आवलिका कही जाती है ।

संख्येय आवलिकाओं का एक उच्छ्वास होता है और संख्येय आवलिकाओं का एक निश्वास होता है ।

गाथाओं का अर्थ—

निरोग पुष्ट युवा जन्तु (मनुष्य) का एक उच्छ्वास, निश्वास, "प्राण" कहा जाता है ।

सात प्राण का एक "स्तोक"; सात स्तोक का एक "लव" और सितत्तर लव का एक "मुहूर्त" कहा जाता है ।

तथा तीन हजार सात सौ तिहत्तर श्वासोच्छ्वास का एक "मुहूर्त" सभी अनन्त ज्ञानियों ने कहा है ।

ऐसे तीस मुहूर्त का एक "अहोरात्र",
पन्द्रह अहोरात्र का एक "पक्ष",
दो पक्ष का एक मास,
दो मास की एक "ऋतु",
तीन ऋतु का एक "अयन"
दो अयन का एक "संवत्सर",
पांच संवत्सर का एक "युग",
बीस युग के सौ वर्ष,
दस सौ वर्षों के एक हजार वर्ष,

---

१ तथा उत्सर्पिण्याः दुष्पमदुष्पमादि तद् भेदानां, चोक्तविपर्ययेणोत्कृष्टत्वं प्राग्वदायोज्यमिति ।

२ कथाभाग धर्मकथानुयोग में देखें/भाग १, द्वितीय स्कन्ध, पृष्ठ ८, सु० १५ ।

३ स्थानांग अ० ३ उ० ४, सूत्र १०६ में—थोव=स्तोक के बाद में खण=क्षण है और क्षण के बाद में लव है ।

४ प०—एगमेगस्स णं भंते ! मासस्स कति पक्खा पण्णत्ता ?
उ०—गोयमा ! दो पक्खा पण्णत्ता, तं जहा—(१) बहुल पक्खे य, (२) सुक्कपक्खे य । —जंबु० सु० १५२

सयं वाससहस्साइं "वाससयसहस्सं"[1]
चउरासीइं वाससयसहस्साइं से एगे "पुव्वंगे"
चउरासीइं पुव्वंगसयसहस्साइं से एगे "पुव्वे"।
एवं तुडिअंगे, तुडिए, अडडंगे, अडडे,
अववंगे, अववे, हूहूअंगे, हूहूए,
उप्पलंगे, उप्पले, पउमंगे, पउमे,
नलिनंगे, नलिने, अत्थनिउरंगे, अत्थनिउरे,
अतुअंगे, अतुए, पउअंगे, पउए,
नउअगे, नउए[2], चूलिअंगे, चूलियाए,
सीसपहेलिअंगे, सीसपहेलियाए,[3]
एताव ताव गणिए, एताव ताव गणियस्स विसए।
तेण परं उवमिए[4]।

—भग० स० ६, उ० ७, सु० ४, ५।

सौ हजार वर्षों के एक लाख वर्ष,
चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग,
चौरासी लाख पूर्वांगों का एक "पूर्व".
इसी प्रकार त्रुटितांग, त्रुटित, अडडांग, अडड,
अववांग, अवव, हूहूआंग, हूहूअ,
उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म,
नलिनांग, नलिन, अर्थनिउरांग, अर्थनिउर,
अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत,
नयुतांग, नयुत, चूलिकांग, चूलिका,
शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका,
यहां तक गणित है यहां तक ही गणित का विषय है। इसके वाद जो गणित से नहीं अपितु केवल उपमा से जाना जा सके ऐसा औपमिक काल है।

ओवमिय कालस्स परूवणं—

५. प०—से किं तं ओवमिए?
उ०—ओवमिए दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—
(१) पलिओवमे य, (२) सागरोवमे य।[5]
प०—से किं तं पलिओवमे?
उ०—गाहा—
सत्थण सुतिक्खेण वि, छेत्तुं भेत्तुं च जिं किर न सक्का।
तं परमाणुं सिद्धा, वदंति आदिं पमाणाणं॥[6]

औपमिक काल का प्ररूपण—

१५. प्र०—औपमिक काल कितने प्रकार का है?
उ०—औपमिक काल दो प्रकार का कहा गया है, यथा—
(१) पल्योपम और (२) सागरोपम।
प्र०—पल्योपम का क्या स्वरूप है?
उ०—गाथार्थ—
अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र से भी जिसका छेदन-भेदन शक्य नहीं है, ऐसे परमाणु को सभी प्रमाणों का आदि प्रमाण केवल ज्ञानी कहते हैं।

---

१ वाससयसहस्स=लाख वर्ष के वाद में वास कोडी=क्रोडवर्ष अधिक है।
२ अतुअंगे, अतुए के वाद में नउअंगे, नउए है और उसके वाद में पउअंगे, पउए है। यह क्रम भेद है।
३ स्थानांग अ० ३, उ० ४ सूत्र १९७ में समय से लेकर उत्सर्पिणी तक का क्रम संक्षिप्त में कहा है।
४ जम्बु० वक्षस्कार २ सूत्र १८ में—समय से लेकर "तेणं पर उवमिए" पर्यन्त कहा है।
इसमें भी थोव के वाद में 'खण' नहीं है, 'लव' है।
पउअंगे से पउए पर्यन्त का क्रम स्थानांग के समान है।
इस प्रकार "स्थानांग" भगवती और जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में सामान्य पाठान्तर है।
५ दुविहे अद्धोवमिए पण्णत्ते, तं जहा—(१) पलिओवमे चेव, (२) सागरोवमे चेव।
—ठाणं अ० २, उ० ४, सु० ११०। तथा अणु० सु० ३४३
अट्ठविहे अद्धोवमिए पण्णत्ते, तं जहा—(१) पलिओवमे य, (२) सागरोवमे य, (३) उस्सप्पिणी, (४) ओसप्पिणी, (५) पोग्गल-परियट्टे, (६) तीतद्धा, (७) अणागतद्धा, (८) सव्वद्धा।
—ठाणं अ० ८, सु० ६२०
६ पलिओवमस्स परूवणं करिस्सामि, परमाणु दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—(१) सुहुमे य, (२) वावहारिए य।
अणंताणं सुहुम परमाणु पुग्गलाणं समुदय समिति समागमेणं वावहारिए परमाणु णिप्फज्जइ, तत्थ नो सत्थं कमइ।
—जंबु० वक्ख० २, सु० १९
प०—से किं तं पलिओवमे? उ०—पलिओवमे—गाहाओ—
जं जोयणविच्छिण्णं, पल्लं एगाहियप्परूढाणं। होज्ज निरंतर णिचितं, भरितं वालग्गकोडीणं॥-॥
वाससए वाससए, एक्केक्के अवहडंमि जो कालो। सो कालो बोधव्वो, उवमा एगस्स पल्लस्स॥-॥
—ठाणं अ० २, उ० ४, सु० ११०

(१) उस्सण्हसण्हिया इ वा, (२) सण्हसण्हिया इ वा, (३) उड्ढरेणू इ वा, (४) तसरेणू इ वा, (५) रहरेणु इ वा, (६) वालग्गे इ वा, (७) लिक्खा इ वा, (८) जूया इ वा, (९) जवमज्झे इ वा, (१०) अंगुले इ वा।

"(१) उच्छलक्ष्णश्लक्ष्णिका, (२) श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, (३) ऊर्ध्वरेणु, (४) त्रसरेणु, (५) रथरेणु, (६) वालाग्र, (७) लिक्षा, (८) यूका, (९) यवमध्य, (१०) अंगुल।"

अणंताणं परमाणुपोग्गलाणं समुदय-समितिसमागमेणं सा एगा उस्सण्हसण्हिया।

अनन्त परमाणु पुद्गलों का जो समुदाय है वह एक "उच्छलक्ष्णश्लक्ष्णिका" है।

अट्ठ उस्सण्हसण्हियाओ सा एगा सण्हसण्हिया,

आठ उच्छलक्ष्णश्लक्ष्णिका जितनी एक "श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका" होती है।

अट्ठ सण्हसण्हियाओ सा एगा उड्ढरेणू,
अट्ठ उड्ढरेणूओ सा एगा तसरेणु,
अट्ठ तसरेणुओ सा एगा रहरेणू,

आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका जितनी उक "उर्ध्वरेणु" होती है।
आठ उर्ध्वरेणु जितनी एक "त्रसरेणु" होती है।
आठ त्रसरेणु जितनी एक "रथरेणु" होती है।

अट्ठ रहरेणूओ से एगे देवकुरू-उत्तरकुरूगाणं मणूसाणं वालग्गे।

आठ रथरेणु जितना देवकुरू उत्तर कुरू के मनुष्यों का एक वालाग्र होता है।

एवं हरिवास-रम्मग-हेमवत-एरण्णवताणं पुव्वविदेहाणं मणूसाणं अट्ठ वालग्गा सा एगा लिक्खा।

इसी प्रकार देवकुरू उत्तर कुरू के मनुष्यों के आठ वालाग्र जितना हरिवर्ष-रम्यक् वर्ष के मनुष्यों का एक वालाग्र होता है।

हरिवर्ष-रम्यक् वर्ष के मनुष्यों के आठ वालाग्र जितना हैमवत हैरण्यवत के मनुष्यों का एक वालाग्र होता है।

हैमवत-हैरण्यवत के मनुष्यों के आठ वालाग्र जितना पूर्व महाविदेह के मनुष्यों का एक वालाग्र होता है।

पूर्व महाविदेह के मनुष्यों के आठ वालाग्र जितनी एक लिक्षा होती है।

अट्ठ लिक्खओ सा एगा जूया,
अट्ठ जूयाओ से एगे जवमज्झे,
अट्ठ जवमज्झे से एगे अंगुले।

आठ लिक्षा जितनी एक "यूका" होती है।
आठ यूका जितना एक "यवमध्य" होता है।
आठ यवमध्य जितनी एक "अंगुल" होती है।

एएणं अंगुलपमाणेणं—

इस अंगुल प्रमाण से—

छ अंगुलाणि पादो,
वारस अंगुलाइं विहत्थी,
चउव्वीसं अंगुलाणि रयणी,
अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी।

छ अंगुल जितना एक "पाद" होता है।
वारह अंगुल जितनी एक "वेंत" होती है।
चौबीस अंगुल जितना एक "हाथ" होता है।
छिनवे अंगुल जितना एक "दण्ड" होता है।

छण्णउइं अंगुलाणि से (१) एगे दण्डे इ वा, (२) धणू इ वा, (३) जूए इ वा, (४) नालिया इ वा, (५) अक्खे इ वा, (६) मूसले इ वा।[1]

इसी प्रकार धनुष, यूप, नालिका, अक्ष और मूसल भी छिनवे अंगुल के ही होते हैं।

एएणं धणुप्पमाणे णं—दो धणु सहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं।[1]

इस धनुष प्रमाण से दो हजार धनुष जितना एक "गाउ" होता है। चार गाउ का एक "योजन" होता है।

---

१ वावहारिएणं छण्णउइ अंगुलाइं अंगुलप्पमाणेणं धणू, एवं नालिया-जुगे-अक्खे-मूसले वि। —सम० ९६, सु० ३

२ (क) अणु० सु० ३४४, ३४५ (ख) —सम० ४, सु० ६ (केवल योजन प्रमाण सूचक सूत्र)
(ग) ठाणं अ० ८, सु. ६३४, मागहस्स णं जोयणस्स अट्ठ धणुसहस्साइं निधत्ते पण्णत्ते।

एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दूसम-दूसमा[1]

इक्कीस हजार वर्ष जितना अवसर्पिणी काल के छठे दुसम-दुसमा आरा का प्रमाण है।

पुणरवि उस्सप्पिणीए[2]

पुनः इक्कीस हजार वर्ष जितना उत्सर्पिणी काल के प्रथम दुसम-दुसमा आरा का प्रमाण है।

एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दूसमदूसमा।

एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दूसमा।[3]

इक्कीस हजार वर्ष जितना उत्सर्पिणी काल के द्वितीय दुसम आरा प्रमाण है।

एगा सागरोवमकोडाकोडी बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया कालो दूसम-सुसमा।

बियालीस हजार वर्ष कम एक क्रोडाक्रोडी सागरोपम जितना उत्सर्पिणी काल के तृतीय दुसम-सुसमा आरा का प्रमाण है।

दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसम-दूसमा,

दो क्रोडाक्रोडी सागरोपम जितना उत्सर्पिणी काल के चतुर्थ सुसम-दुसमा आरा का प्रमाण है।

तिण्णि सागरोवम कोडाकोडीओ कालो सुसमा,

तीन क्रोडाक्रोडी सागरोपम जितना उत्सर्पिणी काल के पंचम सुसमा आरा का प्रमाण है।

चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसम-सुसमा।[4]

चार क्रोडाक्रोडी सागरोपम जितना उत्सर्पिणी काल के छठे सुसम-सुसमा आरा का प्रमाण है।

दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी।

दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम जितना एक अवसर्पिणी काल का प्रमाण है।

दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी।[5]

दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम जितना एक उत्सर्पिणी काल का प्रमाण है।

वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी य, उस्सप्पिणी य।[6]

—भग. स. ६, उ. ७, सु. ७-८

वीस क्रोडाक्रोडी सागरोपम जितना अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल का प्रमाण है।

---

१ एगमेगाए णं ओसप्पिणीए पंचम छट्ठीओ समाओ एगवीसं एगवीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) दूसमा, (२) दूसमदूसमा य। —सम० २१, सु० १

एगमेगाए णं ओसप्पिणीए पंचम-छट्ठीओ समाओ बायालीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ। —सम. ४२, सु. ८

२ उत्सर्पति = वर्द्धतेऽरकापेक्षया, उत्सर्प्पयति वा भावानायुष्कादीन् वर्द्धयतीति उत्सर्पिणी = अवसर्प्पिणी प्रमाणा।

३ (क) एगमेगाए णं उस्सप्पिणीए पढम-विइयाओ समाओ एगवीसं एगवीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) दूसमदूसमा, (२) दूसमा य। —सम० २१, सु० २

(ख) एगमेगाए णं उस्सप्पिणीए पढम-विइयाओ समाओ बायालीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ। —सम० ४२, सु० ६

४ एगा ओसप्पिणी—(१) एगा सुसम-सुसमा, (२) एगा सुसमा, (३) एगा सुसम-दूसमा, (४) एगा दूसम-सुसमा, (५) एगा दूसमा, (६) एगा दूसमदूसमा।

एगा उस्सप्पिणी—(१) एगा दूसम-दूसमा, (२) एगा दूसमा, (३) एगा दूसम-सुसमा, (४) एगा सुसम-दूसमा, (५) एगा सुसमा, (६) एगा सुसम-सुसमा। —ठाणं अ० १, सु० ४०

दो समाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) ओसप्पिणी समा चेव, (२) उस्सप्पिणी समा चेव। —ठाणं अ० २, उ० १, सु० ५६

दुविहे काले पण्णत्ते, तं जहा—(१) ओसप्पिणी काले चेव, (२) उस्सप्पिणी काले चेव। —ठाणं अ० २, उ० १, सु० ६४

५ ठाणं अ० १०, सु० ७५६।

६ (क) उस्सप्पिणी-ओसप्पिणी मंडले वीसं सागरोवम कोडाकोडीओ कालो पण्णत्तो। —सम० २०, सु० ७

(ख) जंबु० वक्ख० २, सु० १६।

ओवमियकालस्स भेयप्पभेया—

१६. प०—से किं तं ओवमिए ?

उ०—ओवमिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) पलिओवमे य, (२) सागरोवमे य।

प०—से किं तं पलिओवमे ?

उ०—पलिओवमे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—

(१) उद्धार पलिओवमे य, (२) अद्धा पलिओवमे य, (३) खेत्तपलिओवमे य।

—अणु. सु. ३६८, ३६९।

औपमिक काल के भेद-प्रभेद—

१६. प्र०—औपमिक काल कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ०—औपमिक काल दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) पल्योपम, (२) सागरोपम।

प्र०—पल्योपम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ०—पल्योपम तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) उद्धार पल्योपम, (२) अद्धा पल्योपम, (३) क्षेत्र पल्योपम।

उद्धार पलिओवमस्स भेया—

प०—से किं तं उद्धार पलिओवमे ?

उ०—उद्धार पलिओवमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) सुहुमे य, (२) वावहारिए य।

तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे।

—अणु. सु. ३७०-३७१।

उद्धार पल्योपम के भेद—

प्र०—उद्धार पल्योपम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ०—उद्धार पल्योपम दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) सूक्ष्म उद्धार पल्योपम, (२) व्यावहारिक उद्धार पल्योपम,

इनमें जो सूक्ष्म उद्धार पल्योपम है—उसका यहाँ वर्णन स्थगित किया गया है।

सोदाहरणं वावहारिय उद्धारपलिओवमसरूवपरूवणं—

१७. तत्थ णं जे से वावहारिए, से जहानामए पल्लेसिया जोयणं आयाम-विक्खंभेण जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिरएणं।

से णं एगाहिय-बेहिय-तेहिय-जाव-उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं सम्मट्ठे सन्निचिए भरिए बालग्गकोडीणं।

ते णं बालग्गा नो अग्गीडहेज्जा, नो वाउहरेज्जा, नो कुच्छेज्जा, नो पलिविद्धंसिज्जा, नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा। तओ णं समए समए एगमेगं बालग्गं अवहाय जावतिएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे, णिट्ठिए भवइ।

से तं वावहारिए उद्धारपलिओवमे।

गाहा—

एएसिं पल्लाणं, कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।
तं वावहारियस्स, उद्धारसागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं॥

प०—एएहिं वावहारियउद्धारपलिओवम-सागरोवमेहिं किं पओयणं ?

उ०—एएहिं वावहारिय उद्धारपलिओवम-सागरोवमेहिं णत्थि किंचि पओयणं केवलं तु पण्णवणापण्णविज्जइ।

से त्तं वावहारिए उद्धारपलिओवमे।

—अणु. सु. ३७२, ३७३।

सोदाहरण व्यावहारिक उद्धार पल्योपम के स्वरूप का प्ररूपण—

१७. इनमें से जो व्यावहारिक उद्धार पल्योपम है वह इस प्रकार है—जिस प्रकार एक योजन लम्बा चौड़ा एक योजन ऊँचा और कुछ अधिक तिगुनी परिधि वाला एक पल्य (पात्र या गड्ढा) है।

उस पल्य में एक दिन, दो दिन, तीन दिन—यावत्—उत्कृष्ट सात रात के बढ़े हुए बालाग्रों को परिपूर्ण ठसाठस भरे।

वे बालाग्र न अग्नि से जले, न वायु से उड़े, न वर्षा से भीगे, और न सड़े, न नष्ट हो। उनमें से एक एक समय में एक-एक बालाग्र निकालते रहें। जितने समय में वह पल्य खाली हो, नीरज हो, निर्लेप हो सर्वथा रिक्त हो,

वह व्यावहारिक उद्धार पल्योपम है।

गाथार्थ—

ऐसे दस क्रोडाक्रोडी पल्यों का एक व्यावहारिक उद्धार सागरोपम का प्रमाण होता है।

प्र०—इन व्यावहारिक उद्धार पल्योपम और सागरोपम का क्या प्रयोजन है ?

उ०—इन व्यावहारिक उद्धार पल्योपम तथा सागरोपम का कोई प्रयोजन नहीं है, केवल जानने के लिए कहा गया है।

व्यावहारिक उद्धार पल्योपम का स्वरूप समाप्त।

सोदाहरणं सुहुम उद्धारपलिओवमसरूव-परूवणं—

१८. प०—से किं तं सुहुम उद्धारपलिओवमे ?

उ०—सुहुमे उद्धारपलिओवमे—से जहा नामए पल्लेसिया-जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं।

से णं पल्ले एगाहिय-बेहिय-तेहिय-जाव उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं संसट्ठे सन्निचिए भरिए वालग्ग-कोडीणं।

तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखेज्जाइं खंडाइं कज्जइ।

ते णं वालग्गा दिट्ठी-ओगाहणाओ असंखेज्जइभाग-मेत्ता-सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखे-ज्जागुणा।

ते णं वालग्गा नो अग्गी डहेज्जा, नो वाउ हरेज्जा, नो कुच्छेज्जा, नो पलिविद्धंसेज्जा, नो पूइत्ताए हव्व-मागच्छेज्जा।

तओ णं समए समए एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइ-एणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवइ। ते णं सुहुमे उद्धारपलिओवमे।

गाहा—

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।

तं सुहुमस्स उद्धारसागरोवमस्स उ एगस्स भवे परीमाणं।

प०—एएहिं सुहुमेहिं उद्धारपलिओवम—सागरोवमेहिं किं पओयणं ?

उ०—एएहिं सुहुमेहिं उद्धारपलिओवम—सागरोवमेहिं दीवसमुद्दाणं उद्धारे घेप्पइ।

प०—केवइया णं भंते ! दीव-समुद्दाणं उद्धारेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जावइयाणं अड्ढाइज्जाणं उद्धारसागरोव-माणं उद्धारसमया, एवइया णं दीव-समुद्दा उद्धारेणं पण्णत्ता।

से त्तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे।

से त्तं उद्धारपलिओवमे। —अणु. सु. ३७४-३७६

सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का उदाहरण सहित स्वरूप प्ररूपण—

१८. प्र०—सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का स्वरूप क्या है ?

उ०—सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का स्वरूप इस प्रकार है। जिस प्रकार एक योजन लम्बा-चौड़ा, एक योजन ऊंचा और कुछ अधिक तीन गुणी परिधि वाला हो।

उस पल्य में एक दिन, दो दिन, तीन दिन—यावत्—उत्कृष्ट आठ रात के बढ़े हुए बालाग्रों को पूर्ण रूप से ठसाठस भरे।

उन दिखाई देने वाले बालाग्रों में से प्रत्येक बालाग्र के असंख्य खण्ड इतने छोटे करें कि सूक्ष्म पनक जीव के शरीर की अव-गाहना से भी असंख्य छोटे गुण हों।

वे बालाग्र न अग्नि से जलें, न वायु से उड़ें, न वर्षा से भीजें न सड़ें और न नष्ट हों।

उनमें से प्रत्येक समय में एक-एक बालाग्र निकालने पर जितने काल में वह पल्य खाली हो, नीरज हो, निर्लेप हो, सर्वथा रिक्त हो, वह सूक्ष्म उद्धार पल्योपम है।

गाथार्थ—

ऐसे दस कोडाकोड पल्य का एक सूक्ष्म उद्धार सागरोपम का प्रमाण है।

प्र०—इन सूक्ष्म उद्धार पल्योपम-सागरोपम का क्या प्रयोजन है ?

उ०—इन सूक्ष्म उद्धार पल्योपम-सागरोपम से द्वीप-समुद्रों के परिमाण का ज्ञान होता है।

प्र०—भगवन् ! उद्धार सागरोपम के अनुसार द्वीप-सागर कितने कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! अढाई उद्धार सागरोपम के जितने उद्धार समय होते हैं, उतने ही द्वीप समुद्र उद्धार सागरोपम के अनुसार कहे गये हैं।

सूक्ष्म उद्धार पल्योपम समाप्त।

उद्धार पल्योपम समाप्त।

अद्धा पलिओवमस्स भेया—

प०—से किं तं अद्धापलिओवमे ?

उ०—अद्धापलिओवमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) सुहुमे य, (२) वावहारिए य।

तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे।

—अणु. सु. ३७७-३७८

अद्धा पल्योपम के भेद—

प्र०—अद्धा पल्योपम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ०—अद्धा पल्योपम दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) सूक्ष्म अद्धा पल्योपम, (२) व्यावहारिक अद्धा पल्योपम।

इनमें से सूक्ष्म अद्धा पल्योपम का वर्णन यहाँ स्थगित किया गया है।

सोदाहरणं वावहारिय अद्धापलिओवमस्स सरूव-परूवणं—

१९. तत्थ णं जे से वावहारिए से जहा नामए पल्ले सिया जोयणं आयाम—विक्खंभेणं, जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं।

से णं पल्ले एगाहिय-बेहिय-तेहिय-जाव-उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं सम्मट्ठे सन्निचिए भरिए वालग्गकोडीणं।

ते णं वालग्गा नो अग्गी डहेज्जा, नो वाउ हरेज्जा, नो कुच्छेज्जा, नो पलिविद्धंसेज्जा, नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा।

तओ णं वाससए वाससए गए एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवइ।

से णं वावहारिए अद्धापलिओवमे।

गाहा—

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।
तं वावहारिस्स अद्धासागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं॥

प०—एएहिं वावहारिएहिं अद्धापलिओवम-सागरोवमहिं किं पओयणं?

उ०—एएहिं वावहारिएहिं अद्धापलिओवम-सागरोवमेहिं नत्थि किंचि पओयणं, केवलं तु पण्णवणा पण्णविजति।

से त्तं वावहारिए अद्धापलिओवमे।

—अणु. सु. ३७९, ३८०

व्यावहारिक अद्धा पल्योपम का उदाहरणपूर्वक स्वरूप प्ररूपण—

१९. इनमें से व्यावहारिक अद्धा पल्योपम इस प्रकार है। जिस प्रकार एक योजन लम्बा-चौड़ा, एक योजन ऊँचा कुछ अधिक तीन गुणी परिधि वाला एक पल्य हो।

उस पल्य में एक दिन, दो दिन, तीन दिन—यावत्—उत्कृष्ट सात अहोरात्र के बढ़े हुए वालाग्र पूर्ण रूप से ठसाठस भरें।

वे वालाग्र न अग्नि से जले, न वायु से उड़े, न वर्षा से भीजे, न सड़े और न नष्ट हो।

उस पल्य से सौ सौ वर्ष बीतने पर एक-एक वालाग्र निकालते निकालते जितने काल में वह पल्य खाली हो, नीरज हो, निर्मल हो, सर्वथा रिक्त हो,

यह व्यावहारिक अद्धा पल्योपम है।

गाथार्थ—

व्यावहारिक एक क्रोडाक्रोडी पल्यों को दस गुणा करने पर एक व्यावहारिक अद्धा सागरोपम का प्रमाण होता है।

प्र०—इन व्यावहारिक अद्धा पल्योपम-सागरोपम से क्या प्रयोजन है?

उ०—इन व्यावहारिक अद्धा पल्योपम-सागरोपम से कोई प्रयोजन नहीं है। केवल प्रज्ञापना प्रज्ञपित की है।

यह व्यावहारिक अद्धा पल्योपम समाप्त।

सोदाहरणं सुहुम अद्धापलिओवमस्स सरूव-परूवणं—

२०. प०—से किं सुहुमे अद्धापलिओवमे?

उ०—सुहुमे अद्धापलिओवमे से जहानामए पल्लेसिया जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, जोयण उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिगुण सविसेसं परिक्खेवेणं।

से णं पल्ले एगाहिय-बेहिय-तेहिय-जाव-उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं सम्मट्ठे सन्निचिए भरिए बालग्ग-कोडीणं।

तत्थ णं एगमेगे बालग्गे असंखेज्जाइं खंडाइं कज्जइ।

ते णं वालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता सहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखेज्जगुणा। ते णं वालग्गा नो अग्गी डहेज्जा, नो वाउ हरेज्जा, नो कुच्छेज्जा, नो पलिविद्धंसेज्जा, नो पुइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा।

सूक्ष्म अद्धा पल्योपम का उदाहरणपूर्वक स्वरूप प्ररूपण—

२०. प्र०—सूक्ष्म अद्धा पल्योपम का स्वरूप कैसा है?

उ०—सूक्ष्म अद्धा पल्योपम का स्वरूप इस प्रकार है। जिस प्रकार एक योजन लम्बा-चौड़ा, एक योजन ऊँचा और कुछ अधिक तीन गुणी परिधि वाला एक पल्य हो।

उस पल्य में एक दिन, दो दिन, तीन दिन—यावत्—उत्कृष्ट सात रात के बढ़े हुए वालाग्र खण्ड पूर्ण रूप से ठसाठस भरे।

उनमें से प्रत्येक वालाग्र के असंख्य खण्ड करें।

उन दिखाई देने वाले वालाग्रों में से प्रत्येक वालाग्र के इतने छोटे असंख्य खण्ड करें कि सूक्ष्म पनक जीव के शरीर की अवगाहना से भी असंख्य गुण छोटे हो।

वे वालाग्र न अग्नि से जले, न वायु से उड़े, न वर्षा से भीजे, न सड़े और न नष्ट हो।

तओ णं वाससए वाससए गए एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवइ ।

से णं सुहुमे अद्धापलिओवमे ।

गाहा—

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडीहवेज्ज दसगुणिया ।
तं सुहुमस्स अद्धासागरोवस्स एगस्सभवे परिमाणं ॥

प०—एएहिं सुहुमेहिं अद्धापलिओवम-सागरोवमेहिं कि पओयणं ?

उ०—एएहिं सुहुमेहिं अद्धापलिओवम-सागरोवमेहिं णेरइय-तिरियजोणिय-मणूस-देवाणं आउयाइं मविज्जंति ।

से त्तं सुहुम अद्धपलिओवमे ।

—अणु, सु. ३८१-३८२

उस पल्य से सौ-सौ वर्ष बीतने पर एक-एक बालाग्र निकालते-निकालते जितने काल में वह पल्य खाली हो, नीरज हो, निर्मल हो, सर्वथा रिक्त हो ।

यह सूक्ष्म अद्धा पल्योपम है ।

गाथार्थ—

एसे दस क्रोडाकोडी पल्य जितना काल एक सूक्ष्म अद्धा सागरोपम का प्रमाण होता है ।

प्र०—एसे सूक्ष्म अद्धा पल्योपम तथा सागरोपम से क्या प्रयोजन है ?

उ०—इन सूक्ष्म अद्धा पल्योपम तथा सागरोपमों से नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों का आयु मापा जाता है ।

सूक्ष्म अद्धा पल्योपम समाप्त ।

आवलियाइसु कालभेएसु समयसंखापरूवणं—

एगत्त विवक्खा—

२१. प०—आवलिया णं भंते ! किं संखेज्जा समया असंखेज्जा समया, अणंता समया ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जा समया, असंखेज्जा समया, नो अणंता समया ।

प०—आणापाणू णं भंते ! किं संखेज्जा समया-जाव-अणंता समया ?

उ०—गोयमा ! एवं चेव ।

प०—थोवे णं भंते ! किं संखेज्जा समया-जाव-अणंता समया ?

उ०—गोयमा ! एवं चेव ।

एवं लवे वि मुहुत्ते वि ।

एवं अहोरत्ते ।

एवं पक्खे, मासे, उडू, अयणे, संवच्छरे, जुगे, वाससए, वाससहस्से, वाससयसहस्से, पुव्वंगे, पुव्वे, तुडियंगे, तुडिए, अडडंगे, अडडे, अववंगे, अववे, हूहुयंगे-हूहुए, उप्पलंगे-उप्पले, पउमंगे-पउमे, नलिणंगे, नलिणे, अत्थनिउरंगे-अत्थनिउरे, अउयंगे-अउये, नउयंगे, नउए, पउयंगे, पउए, चूलियंगे-चूलिए, सीसपहेलियंगे-सीसपहेलिया ।[1]

आवलिका आदि काल भेदों के समयों की संख्या का प्ररूपण—

एकत्व विवक्षा—

२१. प्र०—भगवन् ! एक आवलिका के समय क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त है ?

उ०—गौतम ! संख्यात समय नहीं है । असंख्यात समय हैं, अनन्त समय नहीं है ।

प्र०—भगवन् ! एक श्वासोच्छ्वास के समय क्या संख्यात है—यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! पूर्ववत् है ।

प्र०—भगवन् ! एक स्तोक के समय क्या संख्यात हैं—यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! पूर्ववत् है ।

इसी प्रकार लव और मुहूर्त के समय भी है ।

इसी प्रकार एक अहोरात्र के समय है ।

इसी प्रकार पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख वर्ष, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अक्षनिकुरांग, अक्षनिकुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिका, शीर्षप्रहेलिका ।

---

1 (क) यहाँ तक संख्येयकाल है ।
(ख) पुव्वाइयाणं सीसपहेलिया पज्जवसाणाणं संठाण ठाणंतराणं चोरासीए गुणकारे पण्णत्ते । —सम० ८४, सु० १४

पलिओवमे, सागरोवमे, ओसप्पिणी, एवं उस्सप्पिणी वि।[1]

प०—पोग्गलपरियट्टे णं भंते ! किं संखेज्जा समया, असंखेज्जा समया, अणंता समया ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जा समया, नो असंखेज्जा समया, अणंता समया।

एवं तीतद्ध-अणागयद्ध-सव्वद्धा।[2]

पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के समय है।

प्र०—भगवन् ! पुद्गल परावर्तन के समय क्या संख्यात है, असंख्यात हैं, या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! न संख्यात समय हैं, न असंख्यात समय हैं, अपितु अनन्त समय है।

इसी प्रकार अतीत काल; भविष्यकाल और सर्वकाल के भी अनन्त समय हैं।

बहुत्त विवक्खा—

२२. प०—आवलियाओ णं भंते ! किं संखेज्जा समया, असंखेज्जा समया, अणंता समया ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जा, सिय असंखेज्जा समया, सिय अणंता समया।

प०—आणापाणू णं भंते ! किं संखेज्जा समया-जाव-अणंता समया ?

उ०—गोयमा ! एवं चेव।

प०—थोवा णं भंते ! किं संखेज्जा समया-जाव-अणंता समया ?

उ०—गोयमा ! एवं चेव।

एवं-जाव-उस्सप्पिणीओ त्ति।

प०—पोग्गलपरियट्टा णं भंते ! किं संखेज्जा समया, असंखेज्जा समया, अणंता समया ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जा समया, असंखेज्जा समया, अणंता समया।[3] —भग. २५, उ. ५, सु. २-१२

बहुत्व विवक्षा—

२२. प्र०—प्र०—भगवन् ! आवलिकाओं के समय क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं !

उ०—गौतम ! संख्यात समय नहीं हैं, कभी असंख्यात समय हैं और कभी अनन्त समय हैं।

प्र०—भगवन् ! श्वासोच्छ्वासों के समय क्या संख्यात हैं, —यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! पूर्ववत् हैं।

प्र०—भगवन् ! स्तोकों के समय क्या संख्यात है—यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! पूर्ववत् हैं।

इसी प्रकार—यावत्—उत्सर्पिणियों के समय भी हैं।

प्र०—भगवन् ! पुद्गल परिवर्तनों के समय क्या संख्यात हैं, असंज्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! न सख्यात समय हैं, न असंख्यात समय हैं अपितु अनन्त समय हैं।

आणापाणाइसु कालभेएसु कावलिया संखापरूवणं—

एगत्त विवक्खा—

२३. प०—आणापाणू णं भंते ! किं संखेज्जाओ आवलियाओ, असंखेज्जाओ आवलियाओ, अणंताओ आवलियाओ ?

उ०—गोयमा ! संखेज्जाओ आवलियाओ, नो असंखेज्जाओ आवलियाओ, नो अणंताओ आवलियाओ।

एवं थोवे वि।

एवं-जाव-सीसपहेलियत्ति।

प०—पलिओवमे णं भंते ! किं संखेज्जाओ आवलियाओ, असंखेज्जाओ आवलियाओ, अणंताओ आवलियाओ ?

श्वासोच्छवासादि काल भेदों की आवलिका संख्या प्ररूपण—

एकत्व विवक्षा—

२३. प्र०—भगवन् ! एक श्वासोच्छवास की आवलिकायें क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्यात आवलिकायें हैं, न असंख्यात आवलिकायें हैं और न अनन्त आवलिकायें हैं।

इसी प्रकार एक स्तोक की—यावत्—एक शीर्षप्रहेलिका की आवलिकायें हैं।

प्र०—भगवन् ! एक पल्योपम की आवलिकायें क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

---

१ ये औपमिक काल अर्थात् असंख्येय काल हैं।

२ ये अनन्तकाल हैं। यहाँ तक एक वचन के प्रश्नोत्तर हैं।

३ ये बहुवचन के प्रश्नोत्तर हैं।

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ आवलियाओ, असंखेज्जाओ आवलियाओ, नो अणंताओ आवलियाओ।

एवं सागरोवमे वि। एवं ओसप्पिणीए वि, उस्सप्पिणीए वि।

प०—पोग्गलपरियट्टे णं भंते ! किं संखेज्जाओ आवलियाओ -जाव-अणंताओ आवलियाओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ आवलियाओ, नो असंखेज्जाओ आवलियाओ, अणंताओ आवलियाओ।

एवं-जाव-सव्वद्धा।[1]

बहुत्त विवक्खा—

२४. प०—आणापाणूओ णं भंते ! किं संखेज्जाओ आवलियाओ -जाव-अणंताओ आवलियाओ ?

उ०—गोयमा ! सिय संखेज्जाओ आवलियाओ, सिय असंखेज्जाओ आवलियाओ, सिय अणंताओ आवलियाओ।

एवं-जाव-सीसपहेलियाओ।

प०—पलिओवमा णं भंते ! किं संखेज्जाओ आवलियाओ -जाव-अणंताओ आवलियाओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ, सिय असंखेज्जाओ आवलियाओ, सिय अणंताओ आवलियाओ।

एवं-जाव-उस्सप्पिणीओ।

प०—पोग्गलपरियट्टा णं भंते ! किं संखेज्जाओ आवलियाओ -जाव-अणंताओ आवलियाओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ आवलियाओ, नो असंखेज्जाओ आवलियाओ, अणंताओ आवलियाओ।

—भग. स. २५, उ. ५, सु. १३-२५

थोवपभिइसु कालभेएसु आणापाणू आईणं संखा-परूवणं—

२५. प०—थोवे णं भंते ! किं संखेज्जाओ आणापाणूओ, असंखेज्जाओ आणापाणूओ, अणंताओ आणापाणूओ ?

उ०—गोयमा ! जहा आवलियाए वत्तव्वया आणापाणूओ वि निरवसेसा।

एवं एएणं गमएणं-जाव-सीसपहेलिया भाणियव्वा।[2]

—भग. स. २५, उ. ५, सु. २६-२७

उ०—गौतम ! संख्यात आवलिकायें नहीं हैं। असंख्यात आवलिकायें हैं। अनन्त आवलिकायें नहीं हैं।

इसी प्रकार एक सागरोपम, एक अवसर्पिणी और एक उत्सर्पिणी की आवलिकायें हैं।

प्र०—भगवन् ! एक पुद्गल परावर्तन की आवलिकायें क्या संख्यात हैं—यावत्—अनन्त है ?

उ०—गौतम ! न संख्यात आवलिकायें हैं, न असंख्यात आवलिकायें हैं, अपितु अनन्त आवलिकायें हैं।

इसी प्रकार—यावत्—सर्वकाल की आवलिकायें हैं।

बहुत्व विवक्षा—

२४. प्र०—भगवन् ! अनेक श्वासोच्छ्वासों की आवलिकायें क्या संख्यात हैं—यावत्—अनन्त है ?

उ०—गौतम ! कभी संख्यात आवलिकायें, कभी असंख्यात आवलिकायें और कभी अनन्त आवलिकायें होती है।

इसी प्रकार—यावत्—शीर्षप्रहेलिकाओं की आवलिकायें हैं।

प्र०—भगवन् ! पल्योपमों की आवलिकायें क्या संख्यात हैं—यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्यात आवलिकायें नहीं हैं, कभी असंख्यात आवलिकायें होती है, और कभी अनन्त आवलिकायें होती है।

इसी प्रकार—यावत्—उत्सर्पिणियों की आवलिकायें हैं।

प्र०—भगवन् ! पुद्गल परावर्तनों की आवलिकायें क्या संख्यात हैं ?—यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्यात आवलिकायें नहीं हैं, असंख्यात आवलिकायें नहीं हैं, अनन्त आवलिकायें हैं।

स्तोकादि काल भेदों में श्वासोच्छ्वासों की संख्या का प्ररूपण—

२५. प्र०—भगवन् ! स्तोक के श्वासोच्छ्वास क्या संख्यात है, असंख्यात है या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! जिस प्रकार आवलिकाओं का कथन किया उसी प्रकार श्वासोच्छ्वासों का कथन भी पूर्ण कहना चाहिये।

इसी क्रम से—यावत्—पुद्गल परावर्तन पर्यन्त 'एक वचन, बहुवचन के सूत्र कहने चाहिये।

---

1 यहाँ तक एकवचन के सूत्र हैं।

2 एकवचन और बहुवचन के सूत्र।

सागरोवमाइसु पलिओवमसंखापरूवणं—

एगत्त विवक्खा—

२६. प०—सागरोवमेणं भंते ! किं संखेज्जा पलिओवमा, असंखेज्जा पलिओवमा, अणंता पलिओवमा ?

उ०—गोयमा ! संखेज्जा पलिओवमा, नो असंखेज्जा पलिओवमा, नो अणंता पलिओवमा।

एवं ओसप्पिणी वि, उस्सप्पिणी वि।

प०—पोग्गलपरियट्टे णं भंते ! किं संखेज्जा पलिओवमा -जाव-अणंता पलिओवमा ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जा पलिओवमा, नो असंखेज्जा पलिओवमा, अणंता पलिओवमा।

एवं-जाव-सव्वद्धा।[1]

बहुत्त विवक्खा—

२७. प०—सागरोवमा णं भंते ! किं संखेज्जा पलिओवमा-जाव-अणंता पलिओवमा ?

उ०—गोयमा ! सिय संखेज्जा पलिओवमा, सिय असंखेज्जा पलिओवमा, सिय अणंता पलिओवमा।

एवं ओसप्पिणी वि, उस्सप्पिणी वि।

प०—पोग्गलपरियट्टा णं भंते ! किं संखेज्जा पलिओवमा-जाव-अणंता पलिओवमा ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जा पलिओवमा, नो असंखेज्जा पलिओवमा, अणंता पलिओवमा[2]

—भग. स. २५, उ. ५, सु. २८-३४

सागरोपमादि में पल्योपमों की संख्या का प्ररूपण—

एकत्व विवक्षा—

२६. प्र०—भगवन् ! सागरोपम के पल्योपम क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्यात पल्योपम हैं, असंख्यात पल्योपम नहीं हैं, अनन्त पल्योपम नहीं हैं।

इसी प्रकार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के पल्योपम हैं।

प्र०—भगवन् ! पुद्गल परावर्तन के पल्योपम क्या संख्यात हैं ?—यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्यात पल्योपम नहीं हैं, असंख्यात पल्योपम नहीं हैं, अनन्त पल्योपम हैं।

इसी प्रकार—यावत्—सर्वकाल के पल्योपम हैं।

बहुत्व विवक्षा—

२७. प्र०—भगवन् ! सागरोपमों के पल्योपम क्या संख्यात हैं ? यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! कभी संख्यात हैं, कभी असंख्यात हैं और कभी अनन्त पल्योपम हैं।

इसी प्रकार अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के पल्योपम हैं।

प्र०—भगवन् ! पुद्गल परिवर्तनों के पल्योपम क्या संख्यात हैं ?—यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्यात पल्योपम नहीं हैं, असंख्यात पल्योपम नहीं हैं, अनन्त पल्योपम हैं।

ओसप्पिणिआइसु सागरोवमसंखा-परूवणं—

२८. प०—ओसप्पिणी णं भंते ! किं संखेज्जा सागरोवमा, असंखेज्जा सागरोवमा, अणंता सागरोवमा ?

उ०—गोयमा ! जहा पलिओवमस्स वत्तव्वया तहा सागरोवमस्स वि[3]

—भग. स. २५, उ. ५, सु. ३५

अवसर्पिणी आदि में सागरोपमों की संख्या का प्ररूपण—

२८. प्र०—भगवन् ! अवसर्पिणी के सागरोपम क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! जिस प्रकार पल्योपम का कथन किया उसी प्रकार सागरोपम का भी है।

पोग्गलपरियट्टेसु ओसप्पिणि-उस्सप्पिणिसंखापरूवणं—

२९. प०—पोग्गलपरियट्टे णं भंते ! किं संखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ, असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ अणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ?

पुद्गल परावर्तन में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी की संख्या का प्ररूपण—

२९. प्र०—भगवन् ! पुद्गल परावर्तन की अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

---

१ एकवचन के सूत्र।

२ एकवचन और बहुवचन के सूत्र।

३ बहुवचन के सूत्र।

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, नो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, अणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।

एवं-जाव-सव्वद्धा[1]

प०—पोग्गलपरियट्टा णं भंते ! किं संखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ-जाव अणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, नो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, अणंताओ ओसप्पिणीओ।

—भग. स. २५, उ. ५, सु. ३६-३८

उ०—गौतम ! संख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नहीं हैं। असंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी भी नहीं हैं, अपितु अनन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणी हैं।

इसी प्रकार सर्वकाल की अवसर्पिणी उत्सर्पिणी हैं।

प्र०—भगवन् ! पुद्गल परिवर्तनों की अवसर्पिणियां और उत्सर्पिणियां संख्यात हैं—यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्यात अवसर्पिणियां उत्सर्पिणियां नहीं हैं, असंख्यात नहीं हैं, अनन्त हैं।

तीतद्धाइसु पोग्गलपरियट्टाणं अणंतत्तं—

३०. प०—तीतद्धा णं भंते ! किं संखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा अणंता पोग्गलपरियट्टा ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, नो असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा अणंता पोग्गलपरियट्टा।

एवं अणागतद्धा वि।

एवं सव्वद्धा वि।

—भग. स. २५, उ. ५, सु. ३९-४१

अतीत काल के पुद्गल परिवर्तनों का अनन्तत्व—

३०. प्र०—भगवन् ! अतीत काल के पुद्गल परावर्तन क्या संख्यात थे, असंख्यात थे, या अनन्त थे ?

उ०—गौतम ! संख्यात पुद्गल परिवर्तन नहीं थे, असंख्यात नहीं थे, अनन्त थे।

इसी प्रकार अनागत काल के पुद्गल परिवर्तन होंगे।

इसी प्रकार सर्वकाल के पुद्गल परिवर्तन हैं।

अणागयकालस्स अतीतकालओ समयाधिकत्तं—

३१. प०—अणागयद्धा णं भंते ! किं संखेज्जाओ तीतद्धाओ, असंखेज्जाओ तीतद्धाओ, अणंताओ तीतद्धाओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ तीतद्धाओ, नो असंखेज्जाओ तीतद्धाओ, नो अणंताओ तीतद्धाओ।

अणागयद्धा णं तीतद्धाओ समयाहिया, तीतद्धाणं अणागयद्धाओ समयूणा।

—भग. स. २५, उ. ५, सु. ४२

अतीत काल से अनागत काल का समयाधिकत्व—

३१. प्र०—भगवन् ! अतीत काल से अनागत काल क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं।

उ०—गौतम ! अतीत काल से संख्यात नहीं हैं, असंख्यात नहीं हैं, अनन्त नहीं है।

अतीत काल से अनागत काल एक समयाधिक है।

अनागत काल से अतीत काल एक समय कम है।

सव्वद्धाए अतीतकालओ साइरेगदुगुणत्तं—

३२. प०—सव्वद्धा णं भंते ! किं संखेज्जाओ तीतद्धाओ-जाव-अणंताओ तीतद्धाओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ तीतद्धाओ-जाव-नो अणंताओ तीतद्धाओ।

सव्वद्धा णं तीतद्धाओ साइरेगदुगुणा, तीतद्धाणं सव्वद्धाओ थोवूणए अद्धे।

—भग. स. २५, उ. ५, सु. ४३

अतीत काल से सर्वकाल का कुछ अधिक दुगुनापन—

३२. प्र०—भगवन् ! अतीत काल से सर्वकाल क्या संख्यात है ? —यावत्—अनन्त है ?

उ०—गौतम ! अतीत काल से सर्वकाल न संख्यात है—यावत्—न अनन्त है।

अतीत काल से सर्वकाल कुछ अधिक है।

सर्वकाल से अतीत काल कुछ कम है।

---

1 एकवचन के सूत्र।

सागरोवमाइसु पलिओवमसंखापरूवणं—

एगत्त विवक्खा—

२६. प०—सागरोवमेणं भंते ! किं संखेज्जा पलिओवमा, असंखेज्जा पलिओवमा, अणंता पलिओवमा ?

उ०—गोयमा ! संखेज्जा पलिओवमा, नो असंखेज्जा पलिओवमा, नो अणंता पलिओवमा।

एवं ओसप्पिणी वि, उस्सप्पिणी वि।

प०—पोग्गलपरियट्टे णं भंते ! किं संखेज्जा पलिओवमा -जाव-अणंता पलिओवमा ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जा पलिओवमा, नो असंखेज्जा पलिओवमा, अणंता पलिओवमा।

एवं-जाव-सव्वद्धा।[1]

बहुत्त विवक्खा—

२७. प०—सागरोवमा णं भंते ! किं संखेज्जा पलिओवमा-जाव-अणंता पलिओवमा ?

उ०—गोयमा ! सिय संखेज्जा पलिओवमा, सिय असंखेज्जा पलिओवमा, सिय अणंता पलिओवमा।

एवं ओसप्पिणी वि, उस्सप्पिणी वि।

प०—पोग्गलपरियट्टा णं भंते ! किं संखेज्जा पलिओवमा-जाव-अणंता पलिओवमा ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जा पलिओवमा, नो असंखेज्जा पलिओवमा, अणंता पलिओवमा[2]

—भग. स. २५, उ. ५, सु. २८-३४

ओसप्पिणिआइसु सागरोवमसंखा-परूवणं—

२८. प०—ओसप्पिणी णं भंते ! किं संखेज्जा सागरोवमा, असंखेज्जा सागरोवमा, अणंता सागरोवमा ?

उ०—गोयमा ! जहा पलिओवमस्स वत्तव्वया तहा सागरोवमस्स वि[3]

—भग. स. २५, उ. ५, सु. ३५

पोग्गलपरियट्टेसु ओसप्पिणि-उस्सप्पिणिसंखापरूवणं—

२९. प०—पोग्गलपरियट्टे णं भंते ! किं संखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ, असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ अणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ?

सागरोपमादि में पल्योपमों की संख्या का प्ररूपण—

एकत्व विवक्षा—

२६. प्र०—भगवन् ! सागरोपम के पल्योपम क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्यात पल्योपम हैं, असंख्यात पल्योपम नहीं हैं, अनन्त पल्योपम नहीं हैं।

इसी प्रकार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के पल्योपम हैं।

प्र०—भगवन् ! पुद्गल परावर्तन के पल्योपम क्या संख्यात हैं ?—यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्यात पल्योपम नहीं हैं, असंख्यात पल्योपम नहीं हैं, अनन्त पल्योपम हैं।

इसी प्रकार—यावत्—सर्वकाल के पल्योपम हैं।

बहुत्व विवक्षा—

२७. प्र०—भगवन् ! सागरोपमों के पल्योपम क्या संख्यात हैं ? यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! कभी संख्यात हैं, कभी असंख्यात हैं और कभी अनन्त पल्योपम हैं।

इसी प्रकार अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के पल्योपम हैं।

प्र०—भगवन् ! पुद्गल परिवर्तनों के पल्योपम क्या संख्यात हैं ?—यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्यात पल्योपम नहीं हैं, असंख्यात पल्योपम नहीं हैं, अनन्त पल्योपम हैं।

अवसर्पिणी आदि में सागरोपमों की संख्या का प्ररूपण—

२८. प्र०—भगवन् ! अवसर्पिणी के सागरोपम क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! जिस प्रकार पल्योपम का कथन किया उसी प्रकार सागरोपम का भी है।

पुद्गल परावर्तन में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी की संख्या का प्ररूपण—

२९. प्र०—भगवन् ! पुद्गल परावर्तन की अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी का संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

---

१ एकवचन के सूत्र।

३ एकवचन और बहुवचन के सूत्र।

२ बहुवचन के सूत्र।

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, नो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, अणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।

एवं-जाव-सव्वद्धा[1]

प०—पोग्गलपरियट्टा णं भंते ! किं संखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ-जाव अणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, नो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, अणंताओ ओसप्पिणीओ।

—भग. स. २५, उ. ५, सु. ३६-३८

उ०—गौतम ! संख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नहीं हैं। असंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी भी नहीं हैं, अपितु अनन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणी हैं।

इसी प्रकार सर्वकाल की अवसर्पिणी उत्सर्पिणी हैं।

प्र०—भगवन् ! पुद्गल परिवर्तनों की अवसर्पिणियाँ और उत्सर्पिणियाँ संख्यात हैं—यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्यात अवसर्पिणियाँ उत्सर्पिणियाँ नहीं हैं, असंख्यात नहीं हैं, अनन्त हैं।

तीतद्धाइसु पोग्गलपरियट्टाणं अणंतत्तं—

३०. प०—तीतद्धा णं भंते ! किं संखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा अणंता पोग्गलपरियट्टा ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, नो असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा अणंता पोग्गलपरियट्टा।

एवं अणागतद्धा वि।

एवं सव्वद्धा वि।

—भग. स. २५, उ. ५, सु. ३९-४१

अतीत काल के पुद्गल परिवर्तनों का अनन्तत्व—

३०. प्र०—भगवन् ! अतीत काल के पुद्गल परावर्तन क्या संख्यात थे, असंख्यात थे, या अनन्त थे ?

उ०—गौतम ! संख्यात पुद्गल परिवर्तन नहीं थे, असंख्यात नहीं थे, अनन्त थे।

इसी प्रकार अनागत काल के पुद्गल परिवर्तन होंगे।

इसी प्रकार सर्वकाल के पुद्गल परिवर्तन हैं।

अणागयकालस्स अतीतकालओ समयाधिकत्तं—

३१. प०—अणागयद्धा णं भंते ! किं संखेज्जाओ तीतद्धाओ, असंखेज्जाओ तीतद्धाओ, अणंताओ तीतद्धाओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ तीतद्धाओ, नो असंखेज्जाओ तीतद्धाओ, नो अणंताओ तीतद्धाओ।

अणागयद्धा णं तीतद्धाओ समयाहिया,
तीतद्धाणं अणागयद्धाओ समयूणा।

—भग. स. २५, उ. ५, सु. ४२

अतीत काल से अनागत काल का समयाधिकत्व—

३१. प्र०—भगवन् ! अतीत काल से अनागत काल क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं।

उ०—गौतम ! अतीत काल से संख्यात नहीं हैं, असंख्यात नहीं हैं, अनन्त नहीं है।

अतीत काल से अनागत काल एक समयाधिक हैं।
अनागत काल से अतीत काल एक समय कम हैं।

सव्वद्धाए अतीतकालओ साइरेगदुगुणत्तं—

३२. प०—सव्वद्धा णं भंते ! किं संखेज्जाओ तीतद्धाओ-जाव-अणंताओ तीतद्धाओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ तीतद्धाओ-जाव-नो अणंताओ तीतद्धाओ।

सव्वद्धा णं तीतद्धाओ साइरेगदुगुणा,
तीतद्धाणं सव्वद्धाओ थोवूणए अद्धे।

—भग. स. २५, उ. ५, सु. ४३

अतीत काल से सर्वकाल का कुछ अधिक दुगुनापन—

३२. प्र०—भगवन् ! अतीत काल से सर्वकाल क्या संख्यात हैं ? —यावत्—अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! अतीत काल से सर्वकाल न संख्यात हैं—यावत्—न अनन्त हैं।

अतीत काल से सर्वकाल कुछ अधिक हैं।
सर्वकाल से अतीत काल कुछ कम हैं।

---

१ एकवचन के सूत्र।

सव्वद्धाए अणागयकालओ थोवूणदुगुणत्तं—

३३. प०—सव्वद्धा णं भंते ! किं संखेज्जाओ अणागयद्धाओ, असंखेज्जाओ अणागयद्धाओ, अणंताओ अणागयद्धाओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ अणागयद्धाओ, नो असंखेज्जाओ अणागयद्धाओ, नो अणंताओ अणागयद्धाओ।

सव्वद्धा णं अणागयद्धाओ थोवूणदुगुणा।

अणागयद्धा णं सव्वद्धाओ साइरेगे अद्धे।

—भग. स. २५, उ. ५, सु. ४४

अनागत काल से सर्वकाल का कुछ कम दुगुनापन—

३३. प्र०—भगवन् ! अनागत काल से सर्वकाल क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! अनागत काल से सर्वकाल न संख्यात हैं, न असंख्यात हैं और न अनन्त हैं।

अनागत काल से सर्वकाल कुछ कम दुगुना है।

सर्वकाल से अनागत काल कुछ अधिक दुगुना है।

पोग्गलपरियट्टस्स भेया—

३४. तिविहे पोग्गलपरियट्टे[1] पण्णत्ते, तं जहा—

(१) तीए,

(२) पडुप्पन्ने,

(३) अणागए।

ठाणं अ. ३, उ. ४, सु. १९७।

पुद्गल परावर्त भेदों का प्ररूपण—

३४. पुद्गल परावर्त तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

(१) अतीत पुद्गल परावर्त,

(२) वर्तमान पुद्गल परावर्त,

(३) अनागत पुद्गल परावर्त।

परमाणु पोग्गलाणं अणंताणंत पोग्गलपरियट्ट परूवणं—

३५. प०—एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं साहणणा[2] भेदाणुवाएणं अणंताणंता पोग्गलपरियट्टा[3] समणुगंतव्वा भवंतीति मक्खाया ?

उ०—हंता गोयमा ! एएसि णं परमाणुपोग्गलाणं साहणणा भेदाणुवाएणं अणंताणंता पोग्गलपरियट्टा समणुगंतव्वा भवंतीत मक्खाया।

भग. स. १२, उ. ४, सु. १४

परमाणु पुद्गलों के अनन्तानन्त पुद्गल परावर्तों का प्ररूपण—

३५. प्र०—भगवन् ! इन परमाणु पुद्गलों के संयोग वियोग से अनन्तानन्त पुद्गल परावर्त जानने चाहिए, ऐसा कहा गया है ?

उ०—हाँ गौतम ! इन परमाणु पुद्गलों के संयोग वियोग से अनन्तानन्त पुद्गल परावर्त जानने चाहिए, ऐसा कहा गया है।

पोग्गलपरियट्टस्स भेयसत्तग परूवणं—

३६. प०—कइविहे णं भंते ! पोग्गलपरियट्टे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सत्तविहे पोग्गलपरियट्टे पण्णत्ते। तं जहा—

पुद्गल परावर्त के सात भेदों का प्ररूपण—

३६. प्र०—भगवन् ! पुद्गल परावर्त कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! पुद्गल परावर्त सात प्रकार के कहे गये हैं। यथा—

---

१ "पोग्गलपरियट्टे" त्ति पुद्गलानां-रूपिद्रव्याणामाहारक वर्जितानां औदारिकादिप्रकारेण ग्रहणतः एक जीवापेक्षया परिवर्तनं-सामस्त्येन स्पर्शः पुद्गलपरिवर्तः, स च यावता कालेन भवति, स कालोऽपि पुद्गल परिवर्तः, स च यावता कालेन भवति, स कालोऽपि पुद्गलपरिवर्तः सचानन्तोत्सर्पिणण्यवसर्पिणीरूप इति।

२ "साहणणत्ति" प्राकृतत्वात् संहननम्-संघातः भेदश्च वियोजनम् तयोः अनुपातः योगः संहननभेदानुपातः, तेन सर्वपुद्गलद्रव्यैः सहपरमाणूतां संयोगेन वियोगेन चेत्यर्थः।

३ "अनन्तेनगुणिता अनन्ता अनन्तानन्ताः।
एकोऽपि हि परमाणु द्वयणुकादिभिरनन्ताणुकान्तै द्रव्योः सह संयुज्यमानः अनन्तान् परिवर्तनं लभते, प्रतिद्रव्यं परिवर्तभावात् अनन्तत्वाच्च परमाणुनाम् प्रतिपरमाणु चानन्तत्वात् परिवर्तानां परमाणु पुद्गले परिक्षनिनामनतत्व द्रष्टव्यम् पुद्गलैः—पुद्गलः द्रव्यैः सहपरिवर्ताः— परमाणूनां मिललानि पुद्गलपरिवर्ताः।

(१) ओरालिय-पोग्गलपरियट्टे,
(२) वेउव्विय-पोग्गलपरियट्टे,
(३) तेया पोग्गलपरियट्टे,
(४) कम्मा पोग्गलपरियट्टे,
(५) मण पोग्गलपरियट्टे,
(६) वइ पोग्गलपरियट्टे,
(७) आणुपाणु पोग्गलपरियट्टे ।

—भग. स. १२, उ. ४, सु. १५

(१) औदारिक पुद्गल परावर्त,
(२) वैक्रिय पुद्गल परावर्त,
(३) तेजस पुद्गल परावर्त,
(४) कार्मण पुद्गल परावर्त,
(५) मन पुद्गल परावर्त,
(६) वचन पुद्गल परावर्त,
(७) श्वासोच्छ्वास पुद्गल परावर्त ।

संवच्छाराणं संखा लक्खणं च—

३७. प०—ता कइ णं संवच्छरे ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता पंच संवच्छरा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) णक्खत्त संवच्छरे, (१) जुगसंवच्छरे, (३) पमाण-संवच्छरे, (४) लक्खणसंवच्छरे, (५) सणिच्छर-संवच्छरे ।[1] —सूरिय. पा. १०, पाहु. २०, सु. ५४

संवत्सरों की संख्या और उनके लक्षण—

३७. प्र०—संवत्सर कितने कहे हैं ?

उ०—संवत्सर पाँच कहे गये हैं, यथा—

(१) नक्षत्र संवत्सर, (२) युग संवत्सर, (३) प्रमाण संवत्सर, (४) लक्षण संवत्सर, (५) शनैश्चर संवत्सर।

पंचण्हं संवच्छराणं लक्खणाइं—

गाहाओ—

णक्खत्त संवच्छरं लक्खणं—

३८. समगं णक्खत्ता जोयं जोएंति, समगं उडु परिणमंति ।
नच्चुण्हं नाइसीए, बहु उदए होइ नक्खत्ते ॥१॥

चंदसंवच्छर लक्खणं—

ससि समग पुण्णमासिं, जोइं ता विसमचारि णक्खत्ता ।
कडुओ बहु उदगवओ, तमाहु संवच्छरं चंदं ॥२॥

उडु (कम्म) संवच्छर लक्खणं—

विसमं पवालिणो परिणमंति, अणउसु दिंति पुप्फफलं ।
वासं न सम्मवासइ, तमाहु संवच्छरं कम्मं ॥३॥

आइच्च संवच्छर लक्खणं—

पुढवि-दगाणं च रसं, पुप्फफलाणं च देइ आइच्चे ।
अप्पेण वि वासेणं, सम्मं निप्फज्जए सस्सं ॥४॥

अभिवुड्ढिय संवच्छर लक्खणं—

आइच्चतेय तविया, खण-लव-दिवसा उऊ परिणमंति ।
पूरेइ रेणु-थलयाइं, तमाहु अभिवड्ढिय जाण[2] ॥५॥

—सूरिय. पा. १०, पाहु. २०, सु. ५८

पाँच संवत्सरों के लक्षण—

गाथार्थ—

नक्षत्र संवत्सर के लक्षण—

३८. जिस संवत्सर में सभी नक्षत्र योग करते हैं और सभी ऋतुएँ परिणमित होती हैं उसमें न अधिक गरमी और न अधिक शरदी होती है किन्तु वर्षा अधिक होती है । वह नक्षत्र संवत्सर है ।

चन्द्र संवत्सर के लक्षण—

जिस संवत्सर की सभी पूर्णिमाओं में चन्द्र विषमचारी नक्षत्रों से योग करे, कडवे पानी की वर्षा अधिक हो उसे चन्द्र संवत्सर कहा है ।

ऋतु (कर्म) संवत्सर के लक्षण—

जिस संवत्सर में (जिस वनस्पति की अंकुरित-पल्लवित होने की जो ऋतु हो उसमें न होकर) अन्य ऋतु में अंकुरित हो, पत्र-पुष्प-फल लगे तथा वर्षा पर्याप्त न हो, उसे ऋतु (कर्म) संवत्सर कहा है ।

आदित्य संवत्सर के लक्षण—

जिस संवत्सर में पृथ्वी, जल, और पुष्प-फलों को रस आदित्य देता है तथा अल्प वर्षा से धान्य पर्याप्त उत्पन्न होता है उसे आदित्य संवत्सर कहा है ।

अभिवर्धित संवत्सर के लक्षण—

जिस संवत्सर में सूर्य के तेज से तप्त क्षण-लव-दिन होने पर सारी पृथ्वी वर्षा के जल से तप्त हो जाती है तथा सभी ऋतुएँ यथासमय परिणमित होती है—उसे अभिवर्धित संवत्सर कहा है—ऐसा जानो ।

---

१ ठाणं अ० ५, उ० ३, सु० ४६० ।
२ (क) ठाणं ५, उ० ३, सु० ४६० । (ख) जंबु० वक्ख० ७, सु० १५१ ।

पंचण्हं संवच्छराणं पारभं-पज्जवसाकालस्स समत्त-परूवणं—

३९. प०—ता कया णं आदिच्च-चंदसंवच्छरा समादीया सम-पज्जवसिया ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता सट्ठिं एए आदिच्चमासा वासट्ठिं एए य चंदमासा,
एस णं अद्धा छखुत्तकडा दुवालसभयिता तीसं एए आदिच्चसंवच्छरा, एक्कतीसं एए चंदसंवच्छरा,
तया णं एए आदिच्च-चंदसंवच्छरा समादीया सम-पज्जवसिया आहिए त्ति वएज्जा,

प०—ता कया णं एए आदिच्च-उडु-चंद-णक्खत्ता संवच्छरा समादीया, समपज्जवसिया ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता सट्ठिं एए आदिच्चा मासा, एगट्ठिं एए उडुमासा, वासट्ठिं पए चंदमासा, सत्तट्ठिं एए णक्खत्तमासा,
एस णं अद्धा दुवालस खुत्तकडा दुवालसभयिता सट्ठिं एए आइच्चा संवच्छरा, एगट्ठिं एए उडु संवच्छरा, वासट्ठिं एए चंदा संवच्छरा सत्तट्ठिं एए णक्खत्ता संवच्छरा,
तया णं एए आइच्च-उडु-चंद-णक्खत्ता संवच्छरा समादीया, समपज्जवसिया, आहिए त्ति वएज्जा,

प०—ता कया णं एए अभिवड्ढिअ-आदिच्च-उडु-चंद-णक्खत्ता संवच्छरा समादीया समपज्जवसिया ? आहिएत्ति वएज्जा,

उ०—ता सत्तावण्णं मासा, सत्त य अहोरत्ता, एक्कारस य मुहुत्ता, तेवीसं वासट्ठिं भागामुहुत्तस्स एए अभिवड्ढिया मासा, सट्ठिं एए आइच्चा मासा, एगट्ठिं एए उडुमासा, वासट्ठिं एए चंदमासा सत्तट्ठिं एए णक्खत्त मासा,
एस णं अद्धा छप्पण्ण-सयखुत्त कडा दुवालस भयिता—

सत्त सया चोयाला, एए णं अभिवड्ढिया संवच्छरा,
सत्तसया असीया, एए णं आइच्चा संवच्छरा,
सत्तसया तेणउया, एए णं उडु संवच्छरा,
अट्ठसत्ता छल्लुत्तरा, एए णं चंदा संवच्छरा,
एक सत्तरी अट्ठसया, एए णं णक्खत्ता संवच्छरा,

तया णं एए अभिवड्ढिअ-आइच्च-उडु-चंद-णक्खत्ता संवच्छरा समादीया समपज्जवसिया, आहिए त्ति वएज्जा,

पाँच संवत्सरों का प्रारम्भ और पर्यवसान काल तथा उनके समत्व का प्ररूपण—

३९. प०—आदित्य संवत्सर और चन्द्र संवत्सर का समान प्रारम्भ एवं समान पर्यवसान काल कब होता है ? कहें।

उ०—साठ आदित्यमास और बासठ चन्द्रमास।

इनको छ से गुणा करके बारह का भाग देने पर तीस आदित्य संवत्सर और इगतीस चन्द्र संवत्सर शेष रहते हैं।

तब (इतने संवत्सरों के बाद) आदित्य संवत्सरों का चन्द्र संवत्सरों का समान प्रारम्भ काल एवं समान पर्यवसान काल कब होता है ? कहें।

प्र०—(१) आदित्य संवत्सर, (२) ऋतु संवत्सर, (३) चन्द्र संवत्सर और (४) नक्षत्र संवत्सरों का समान प्रारम्भ काल एवं समान पर्यवसान काल कब होता है ? कहें।

उ०—(१) साठ आदित्य मास, (२) इगसठ ऋतुमास, (३) बासठ चन्द्रमास, (४) सडसठ नक्षत्र मास,

इनका बारह से गुणा करके बारह का भाग देने पर साठ आदित्य संवत्सर, (२) इकसठ ऋतु संवत्सर, (३) बासठ चन्द्र संवत्सर, (४) सडसठ नक्षत्र संवत्सर (शेष) रहते हैं।

तब (इतने संवत्सरों के बाद) (१) आदित्य, (२) ऋतु, (३) चन्द्र, (४) नक्षत्र संवत्सरों का समान प्रारम्भ काल एवं समान पर्यवसान काल होता है।

प्र०—(१) अभिवर्धित, (२) आदित्य, (३) ऋतु, (४) चन्द्र, (५) नक्षत्र संवत्सरों का समान प्रारम्भ काल एवं समान पर्यवसान कब होता है ? कहें।

उ०—सत्तावन मास, सात अहोरात्र, इग्यारह मूहूर्त के बासठ भागों में से तेवीस भाग, इतने अभिवर्धित मास, साठ आदित्य मास, इगसठ ऋतुमास, बासठ चन्द्रमास, सडसठ नक्षत्र मास में होता है।

इतने काल को एक सौ छप्पन से गुणा करके बारह का भाग देने पर—

(१) सात सौ चुम्मालीस अभिवर्धित संवत्सर,
(२) सात सौ अस्सी आदित्य संवत्सर,
(३) सात सौ तिराणवे ऋतु संवत्सर,
(४) आठ सौ छ चन्द्र संवत्सर,
(५) आठ सौ इकहत्तर नक्षत्र संवत्सर, (शेष) रहते हैं।

तब इतने संवत्सरों के बाद—(१) अभिवर्धित, (२) आदित्य, (३) ऋतु, (४) चन्द्र, (५) नक्षत्र संवत्सरों का समान प्रारम्भ काल एवं समान पर्यवसान काल होता है।

ता णयट्ठयाए णं चंदे संवच्छरे तिण्णि चउप्पण्णे राइंदियसए, दुवालस य बासट्ठिभागे राइंदियस्स, आहिए त्ति वएज्जा

ता अहातच्चे णं चंदे संवच्छरे तिण्णि चउप्पण्णे राइंदियसए, पंच य मुहुत्ते पण्णासं च बासट्ठि भागे मुहुत्तस्स, आहिए त्ति वएज्जा,

—सूरिय. पा. १२, सु. ७४

एक अन्य मान्यतानुसार चन्द्र संवत्सर तीन सौ चौपन अहोरात्र और एक अहोरात्र के बासठ भागों में से बारह भाग जितना होता है।

एक अन्य मान्यता का यथार्थ विचार करने पर चन्द्र संवत्सर तीन सौ चौपन अहोरात्र और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से पाँच भाग जितना होता है।

पंचण्हं संवच्छराणं, पारंभ-पज्जवसाणकालं चंद-सूराण-णक्खत्त संजोगकालं च—

४०. (क) प०—ता कहं ते संवच्छराणादी ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—तत्थ खलु इमे पंच संवच्छरे पण्णत्ते तं जहा—(१) चंदे, (२) चंदे, (३) अभिवड्ढिए, (४) चंदे, (५) अभिवड्ढिए।

पढमं चंद-संवच्छरं—

(ख) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमस्स चंदस्स संवच्छरस्स के आदी ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता जे णं पंचमस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स पज्जवसाणे, से णं पढमस्स चंदस्स संवच्छरस्स आदी, अणंतरपुरक्खडे समए।

(ग) प०—ता से णं किं पज्जवसिए ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता जे णं दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स आदी, से णं पढमस्स चंद-संवच्छरस्स पज्जवसाणे, अणंतपच्छाकडे समए।

(घ) प० – तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्ते णं जोएइ ?

उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं,

उत्तराणं आसाढाणं छव्वीसं मुहुत्ता, छ व्वीसं च बासट्ठिभागा, मुहुत्तस्स बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छित्ता चउप्पण्णं चुण्णियाभागा सेसा।

(ङ) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्ते णं जोएइ ?

उ०—ता पुणव्वसुणा,

पुणव्वसुस्स सोलस मुहुत्ता, अट्ठ य बासट्ठिभागा,

पाँच संवत्सरों का प्रारम्भकाल, पर्यवसानकाल और चन्द्र-सूर्य के साथ नक्षत्रों के संयोग का काल—

४०. (क) प्र०—संवत्सरों का प्रारम्भकाल (पर्यवसानकाल और उन संवत्सरों के पर्यवसान काल में चन्द्र-सूर्य के साथ नक्षत्रों के संयोगकाल) कैसा है ? कहें।

उ०—यहाँ ये पाँच संवत्सर कहे गए हैं यथा—(१) चन्द्र, (२) चन्द्र, (३) अभिवर्धित, (४) चन्द्र, (५) अभिवर्धित।

प्रथम चन्द्र संवत्सर—

(ख) प्र०—इन पाँच सँवत्सरों में से प्रथम चन्द्र संवत्सर का प्रारम्भकाल कैसा है ? कहें।

उ०—पंचम अभिवर्धित संवत्सर के पर्यवसानकाल बाद अन्तर रहित प्रथम समय ही प्रथम चन्द्र संवत्सर का प्रारम्भकाल है।

(ग) प्र०—उसका पर्यवसानकाल कैसा है ? कहें।

उ०—द्वितीय संवत्सर का प्रारम्भकाल तथा प्रथम चन्द्र संवत्सर का अन्तर रहित अन्तिम समय उनका पर्यवसान काल है।

(घ; प्र०—उस समय चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ? कहें।

उ०—उत्तरापाढा नक्षत्र के साथ योग करता है।

उत्तरासाढा के छब्बीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से छब्बीस भाग तथा बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से चौवन लघुतम भाग अवशेष रहने पर "वह चन्द्र के साथ योग करता है।

(ङ) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—पुनर्वसु नक्षत्र के साथ योग करता है।

पूनर्वसु के सोलह मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से

मुहुत्तस्स बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता वीसं चुण्णियाभागा सेसा।

आठ भाग तथा बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से वीस लघुतम भाग शेष रहने पर "सूर्य के साथ योग करता है।

बितियं चंदसंवच्छरं—

(क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चस्स चंद संवच्छरस्स के आदी ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता जे णं पढमस्स चंदसंवच्छरस्स पज्जवसाणे, से णं दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स आदी, अणंतर पुरक्खडे समए।

(ख) प०—ता से णं किं पज्जवसिए ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता जे णं तच्चस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स आदी, से णं दोच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समए।

(ग) प०—तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता पुव्वाहिं आसाढाहिं,

पुव्वाणं आसाढाणं सत्तमुहुत्ता, तेवण्णं च बावट्ठिभागा, मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता इगतालीसं चुण्णिया भागा सेसा।

(घ) प० - तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता पुणव्वसुणा,

पुणव्वसुस्स णं बायालीसं मुहुत्ता पणतीसं च बासट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता सत्त चुण्णियाभागा सेसा।

ततियं अभिवड्ढियं संवच्छरं—

(क) प०—ता एएसि णं पचण्हं संवच्छराणं तच्चस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स के आदी ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता जे णं दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स पज्जवसाणे, से णं तच्चस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स आदी, अणंतरपुरक्खडे समए।

(ख) प०—ता से णं किं पज्जवसिए ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता जे णं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स आदी, से णं तच्चस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतर पच्छाकडे समए।

द्वितीय चन्द्र संवत्सर—

(क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों में से द्वितीय संवत्सर का प्रारम्भकाल कैसा है ? कहें।

उ०—द्वितीय चन्द्र संवत्सर के पर्यवसान काल बाद अन्तर रहित प्रथम समय ही द्वितीय चन्द्र संवत्सर का प्रारम्भ काल हैं।

(ख) प्र०—उसका पर्यवसान काल कैसा है ? कहें।

उ०—तृतीय अभिवर्धित संवत्सर का प्रारम्भकाल तथा द्वितीय चन्द्र संवत्सर का अन्तर रहित अन्तिम समय उसका पर्यवसानकाल है।

(ग) प्र०—उस समय चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ? कहें।

उ०—पूर्वाषाढा नक्षत्र के साथ योग करता है।

पूर्वाषाढा के सात मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से त्रेपन भाग तथा बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से इगतालीस लघुतम भाग अवशेष रहने पर वह चन्द्र के साथ योग करता है।

(घ) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ? कहें।

उ०—पुनर्वसु नक्षत्र के साथ योग करता है।

पुनर्वसु के बियालीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से पैंतीस भाग तथा बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से सात लघुतम भाग अवशेष रहने पर सूर्य के साथ योग करता है।

तृतीय अभिवर्धित संवत्सर—

(क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों में से तृतीय अभिवर्धित संवत्सर का प्रारम्भकाल कैसा है ? कहें।

उ०—द्वितीय चन्द्र संवत्सर के पर्यवसान काल बाद अन्तर रहित प्रथम समय ही तृतीय अभिवर्धित संवत्सर का प्रारम्भ काल है।

(ख) प्र०—उसका पर्यवसान काल कैसा हैं ? कहें।

उ०—चतुर्थ चन्द्र संवत्सर का प्रारम्भ काल तथा तृतीय अभिवर्धित संवत्सर का अन्तर रहित अन्तिम समय उसका पर्यवसान काल है।

(ग) प०—तं समयं च णं चंदे के णं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं,

उत्तराणं आसाढाणं तेरसमुहुत्ता, तेरस य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता सत्तावीसं चुण्णियाभागा सेसा।

(घ) प०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता पुणव्वसुणा,

पुणव्वसुस्स दो मुहुत्ता, छप्पण्णं बावट्ठिभागा, मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं सत्तट्ठिधा छेत्ता सट्ठी चुण्णिया भागा सेसा।

(ग) प्र०—उस समय चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग प्रारम्भ करता है ? कहें।

उ०—उत्तराषाढा नक्षत्र के साथ योग करता है।

उत्तराषाढा के तेरह मुहूर्त के बासठ भागों में से तेरह भाग तथा बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से सत्तावीस लघुतम भाग अवशेष रहने पर "वह चन्द्र के साथ योग करता है"।

(घ) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ? कहें।

उ०—पुनर्वसु नक्षत्र के साथ योग करता है।

पुनर्वसु के दो मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से छप्पन भाग तथा बासठवें भाग के सड़सठ भागों में से साठ लघुतम भाग अवशेष रहने पर "वह सूर्य के साथ योग करता है।"

चउत्थं चंदसंवच्छरं—

(क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स के आदी ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता जे णं तच्चस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स पज्जवसाणे से णं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स आदी, अणंतरपुरक्खडे समए।

(ख) प०—ता से णं किं पज्जवसिए ? आहिए त्ति वएज्जा

उ०—ता जे णं चरिमस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स आदी, से णं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स पज्जवसाणे, अणंतरपच्छाकडे समए।

(ग) प०—तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं,

उत्तराणं आसाढाणं चत्तालीसं मुहुत्ता, चत्तालीसं च बासट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता चउसट्ठी चुण्णियाभागा सेसा।

(घ) प०—तं समयं च णं सूरे के णं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता पुणव्वसुणा,

पुणव्वसुस्स अउणतीसं मुहुत्ता, एक्कवीसं च बासट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता सितालीसं चुण्णिया भागा सेसा।

चतुर्थ चन्द्र संवत्सर—

(क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों में से चतुर्थ चन्द्र संवत्सर का प्रारम्भ काल कैसा है ? कहें।

उ०—तृतीय अभिवर्धित संवत्सर के पर्यवसान काल बाद अन्तर रहित प्रथम समय ही चतुर्थ चन्द्र संवत्सर का प्रारम्भ काल है।

(ख) प्र०—उसका पर्यवसान काल कैसा है ? कहें।

उ०—अन्तिम "पंचम" अभिवर्धित संवत्सर का प्रारम्भ काल तथा चतुर्थ चन्द्र संवत्सर का अन्तर रहित अन्तिम समय उसका पर्यवसान काल है।

(ग) प्र०—उस समय चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ? (कहें।)

उ०—उत्तराषाढा नक्षत्र के साथ योग करता है।

उत्तराषाढा से चालीस मुहूर्त के बासठ भागों में से चालीस भाग तथा बासठ भागों में से चौसठ लघुतम भाग अवशेष रहने पर वह चन्द्र के साथ योग करता है।

(घ) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ? (कहें।)

उ०—पुनर्वसु नक्षत्र के साथ योग करता है।

पुनर्वसु के उनतीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से इकवीस भाग तथा बासठवें भाग के सडसठ भागों में से सैंतालीस लघुतम भाग अवशेष रहने पर "वह सूर्य के साथ योग करता है।"

पंचमं अभिवड्ढिय संवच्छरं—

(क) प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पंचमस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स के आदी ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता जे णं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स पज्जवसाणे, सेणं पंचमस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स आदी, अणंतरपुरक्खडे समए।

(ख) प०—ता से णं किं पज्जवसिए ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता जे णं पढमस्स संवच्छरस्स आदी से णं पंचमस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समए।

(ग) प०—तं समयं च णं चंदे के णं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं। उत्तराणं आसाढाणं चरमसमए।

(घ) प०—तं समयं च णं सूरे के णं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता पुस्सेणं,

पुस्सस्स णं एक्कवीसं मुहुत्ता तेतालीसं च बावट्ठिभागा, मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तेत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा।

—सूरिय. पा. ११, सु. ७१

पंचम अभिवर्धित संवत्सर—

(क) प्र०—इन पांच संवत्सरों में से पाँचवें अभिवर्धित संवत्सर का प्रारम्भ काल कैसा है ? कहें।

उ०—चतुर्थ चन्द्र संवत्सर के पर्यवसान काल बाद अन्तर रहित प्रथम समय ही पंचम अभिवर्धित संवत्सर का प्रारम्भ काल है।

(ख) प्र०—उसका पर्यवसान काल कैसा है ? कहें।

उ०—प्रथम संवत्सर का प्रारम्भ काल तथा पंचम अभिवर्धित संवत्सर का अन्तर रहित अन्तिम समय उसका पर्यवसान काल है।

(ग) प्र०—उस समय चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ? (कहें।)

उ०—उत्तराषाढा नक्षत्र के साथ योग करता है। उत्तराषाढा के अन्तिम समय में योग करता है।

(घ) प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—पुष्य नक्षत्र के साथ योग करता है।

पुष्य के इकवीस मुहूर्त, एक मुहूर्त के बासठ भागों में से तियालीस भाग तथा बासठवें भाग के अडसठ भागों में से तेतीस लघुतम भाग अवशेष रहने पर "वह सूर्य के साथ योग करता है।"

पंचण्हं संवच्छराणं, मासाणं च राइंदिय-मुहुत्तप्पमाणं—

४१: प०—ता कति णं संवच्छरा ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—तत्थ खलु इमे पंच संवच्छरा पण्णत्ता तं जहा—

(१) णक्खत्ते, (२) चंदे, (३) उडु, (४) आइच्चे, (५) अभिवड्ढिए।

पढमं णक्खत्त-संवच्छरं—

प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमस्स णक्खत्त संवच्छरस्स णक्खत्तमासे तीसइ मुहुत्ते णं तीसइ मुहुत्ते णं अहोरत्ते णं मिज्जमाणं केवइए राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता सत्तावीसं राइंदियाइं एक्कवीसं च सत्तट्ठिभागा राइंदियस्स राइंदियग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

पाँच संवत्सरों और मासों के अहोरात्र तथा मुहूर्तों के प्रमाण—

४१. (क) प्र०—संवत्सर कितने हैं ? कहें।

उ०—ये पाँच संवत्सर कहे गये हैं यथा—(१) नक्षत्र संवत्सर, (२) चन्द्र संवत्सर, (३) ऋतु संवत्सर, (४) आदित्य संवत्सर, (५) अभिवर्धित संवत्सर।

प्रथम नक्षत्र संवत्सर—

(ख) प्र०—इन पाँच संवत्सरों में से प्रथम नक्षत्र संवत्सर का नक्षत्र मास तीस-तीस मुहूर्त के अहोरात्र से मापने पर कितने अहोरात्र का होता है ? कहें।

उ०—उस "नक्षत्र मास" के सत्ताईस अहोरात्र और एक अहोरात्र के सडसठ भागों में से इक्कीस भाग होते हैं।

(ग) प्र०—उस "नक्षत्र मास" के कितने मुहूर्त होते है ? (कहें।)

उ०—ता अट्ठसए एगूणवीसे मुहुत्ताणं, सत्तावीसं च सत्तट्ठि-भागे मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गे णं, आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—उस "नक्षत्र मास" के आठ सौ उन्नीस मुहूर्त के सड-सठ भागों में से सत्तावीस भाग होते हैं।

प०—ता एएसि णं अद्धा दुवालसक्खुत्तकडा णक्खत्ते संवच्छरे, ता से णं केवइए राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

(घ) प्र०—बारह नक्षत्र मासों का एक नक्षत्र संवत्सर होता है। उसके अहोरात्र कितने होते हैं ? कहें।

उ०—ता तिण्णि सत्तावीसे राइंदियसए एक्कावन्नं च सत्तट्ठि-भागे राइंदियस्स राइंदियग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—उस "नक्षत्र संवत्सर" के तीन सौ सत्ताईस अहोरात्र और एक अहोरात्र के सडसठ भागों में से इक्कावन भाग होते हैं।

प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

(ङ) प्र०—उस "नक्षत्र संवत्सर" के पूर्ण मुहूर्त कितने होते हैं ? कहें।

उ०—ता णव मुहुत्तसहस्सा अट्ठ य बत्तीसे मुहुत्तसए छप्पनं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गे णं, आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—नौ हजार आठ सौ बत्तीस मुहूर्त और एक मुहुर्त के सडसठ भागों में से छप्पन भाग होते हैं।

बितियं चंदसंवच्छरं—

द्वितीय चन्द्र संवत्सर—

प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चस्स चंदसंवच्छ-रस्स चंदे मासे तीसमुहुत्ते णं तीसइमुहुत्ते णं अहोरत्तेणं मिज्जमाणे केवइए राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

(क) इन पाँच संवत्सरों में से द्वितीय चन्द्र संवत्सर का चन्द्र मास तीस-तीस मुहुर्त के अहोरात्र के मापने पर कितने अहोरात्र होते हैं ? कहें।

उ०—ता एगूणतीसं राइंदियाइं बत्तीसं बासट्ठिभागा राइंदि-यस्स राइंदियग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—उनतीस अहोरात्र और एक अहोरात्र के बासठ भागों में से बत्तीस भाग होते हैं।

प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

(ख) प्र०—उस "चन्द्र मास" के मुहूर्त कितने होते हैं ? (कहें।)

उ०—ता अट्ठपंचासए मुहुत्ते तेत्तीसं बासट्ठिभागा मुहुत्तग्गे णं, आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—आठ सौ पचास मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से तेतीस भाग होते हैं।

प०—ता एस णं अद्धा दुवालसखुत्तकडा चंदे संवच्छरे, ता से णं केवइए राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

(ग) प्र०—बारह चन्द्र मासों का एक चन्द्र संवत्सर होता है, उसके कितने अहोरात्र होते हैं ? कहें।

उ०—ता तिन्नि चउप्पन्ने राइंदियसए दुवालस य बासट्ठिभागा राइंदियग्गे णं, आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—उस "चन्द्र संवत्सर" के तीन सौ चौपन अहोरात्र और एक अहोरात्र के बासठ भागों में से बारह भाग होते हैं।

प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

(घ) प्र०—उस "चन्द्र संवत्सर" के मुहूर्त कितने होते हैं ? (कहें ?)

उ०—ता दसमुहुत्तसहस्साइं छच्च पणवीसे मुहुत्तसए पण्णासं च बासट्ठिभागे मुहुत्ते णं आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—दस हजार छ सौ पच्चीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से पचास भाग जितने होते हैं।

ततियं उडुसंवच्छरं—

तृतीय ऋतु संवत्सर—

प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चस्स उडुसंवच्छ-रस्स उडुमासे तीसइ मुहुत्ते णं, तीसइ मुहुत्ते णं मिज्ज-माणे केवइए राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

(क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों में से तृतीय ऋतु संवत्सर के ऋतुमास तीस-तीस मुहूर्त से मापने पर कितने अहोरात्र होते हैं ? कहें।

उ०—ता तीसं राइंदियाणं राइंदियग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—उस "ऋतुमास" के तीस अहोरात्र होते हैं ?

प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा ?

उ०—ता णवमुहुत्तसयाइं मुहुत्तग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

प०—ता एस णं अद्धा दुवालसखुत्तकडा उडू संवच्छरे, ता से णं केवइए राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता तिण्णि सट्ठे राइंदियसए राइंदियग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता दसमुहुत्तसहस्साइं अट्ठ य सयाइं मुहुत्तग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

(ख) प्र०—उस "ऋतुमास" के कितने मुहूर्त होते हैं ? कहें।

उ०—नव सौ मुहूर्त होते हैं।

(ग) प्र०—बारह ऋतुमासों का एक ऋतु संवत्सर होता है, उसके कितने अहोरात्र होते हैं ? कहें।

उ०—उस "ऋतु संवत्सर" के तीन सौ साठ अहोरात्र होते हैं।

(घ) प्र०—उस "ऋतु संवत्सर" के कितने मुहूर्त होते हैं ? कहें।

उ०—दस हजार आठ सौ मुहूर्त होते हैं।

चउत्थं आइच्चसंवच्छरं—

प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थस्स आदिच्च-संवच्छरस्स आइच्चे मासे तीसइमुहुत्ते णं, तीसइमुहुत्ते णं अहोरत्तेणं मिज्जमाणे केवइए राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता तीसं राइंदियाइं अवद्धभागं च राइंदियस्स राइंदियग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता णव पण्णरस मुहुत्तसए मुहुत्तग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

प०—ता एस णं अद्धा दुवालसखुत्तकडा आदिच्चे संवच्छरे, ता से णं केवइए राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता तिन्नि छावट्ठे राइंदियसए राइंदियग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता दसमुहुत्तस्स सहस्साइं णव असीए मुहुत्तसए मुहुत्तग्गे णं, आहिए त्ति वएज्जा]।

चतुर्थ आदित्य संवत्सर—

(क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों में से चतुर्थ आदित्य संवत्सर के आदित्यमास तीस-तीस मुहूर्त के अहोरात्र से मापने पर कितने अहोरात्र होते हैं ? कहें।

उ०—उस "आदित्य मास" के तीस अहोरात्र और एक अहोरात्र का आधा भाग होता है।

(ख) प्र०—उस "आदित्य मास" के कितने मुहूर्त होते हैं ? कहें।

उ०—उस "आदित्यमास" के नौ सौ पन्द्रह मुहूर्त होते हैं।

(ग) प्र०—बारह आदित्यमास का एक आदित्य संवत्सर होता है, उसके कितने अहोरात्र होते हैं ? कहें।

उ०—उस "आदित्य सवत्सर" के तीन सौ साठ अहोरात्र होते हैं।

(घ) प्र०—उस "आदित्य संवत्सर" के कितने मुहूर्त होते हैं ? कहें।

उ०—दस हजार नौ सौ अस्सी मुहूर्त होते हैं।

पंचम अभिवड्ढियसंवच्छरं—

प०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पंचमस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स अभिवड्ढिए मासे तीसइमुहुत्तेणं, तीसइमुहुत्ते णं अहोरत्ते णं मिज्जमाणे केवइए राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता एगतीसं राइंदियाइं एगूणतीसं च मुहुत्ता सत्तरस्स बासट्ठिभागे मुहुत्तस्स राइंदियग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

पंचम अभिवर्धित संवत्सर—

(क) प्र०—इन पाँच संवत्सरों में से पाँचवे अभिवर्धित संवत्सर के अभिवर्धित मास तीस-तीस मुहूर्त के अहोरात्र से मापने पर उसके कितने अहोरात्र होते हैं ?

उ०—इगतीस अहोरात्र उनतीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से सत्रह भाग होते हैं।

प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

(ख) प्र०—उस "अभिवर्धित मास" के कितने मुहूर्त होते हैं ? कहें।

उ०—ता णव एगूणसट्ठे मुहुत्तसए सत्तरसबासट्ठिभागे मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—नौ सौ गुणसठ मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से सत्रह भाग होते हैं।

प०—ता एस णं अद्धा दुवालसखुत्तकडा अभिवड्ढियसंवच्छरे, ता से णं केवइए राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

(ग) प्र०—बारह अभिवर्धित मासों का एक अभिवर्धित संवत्सर होता है, उसके कितने अहोरात्र होते हैं, कहें।

उ०—ता तिण्णि तेसीए राइंदियसए एक्कतीसं च मुहुत्ता अट्ठारस बासट्ठिभागे मुहुत्तस्स राइंदियग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—तीन सौ तियासी अहोरात्र, इकतीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से अठारह भाग होते हैं।

प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा।

(घ) प्र०—उस "अभिवर्धित संवत्सर" के कितने मुहूर्त होते हैं ? कहें।

उ०—ता एक्कारसमुहुत्तसहस्साइं पंच य एक्कारसमुहुत्तसए अट्ठारस बासट्ठिभागे मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा। —सूरिय. पा. १२, सु. ७२

उ०—इग्यारह हजार पाँच सौ इग्यारह मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से अठारह भाग होते हैं।

णक्खत्त संवच्छरस्स भेया तेसिं काल पमाणं च—

नक्षत्र संवत्सर के भेद और उसका काल प्रमाण—

२. (क) ता णक्खत्तसंवच्छरे णं दुवालसविहे पण्णत्ते, तं जहा—
(१) सावणे, (२) भद्दवए, (३) आसोए, (४) कत्तिए, (५) मग्गसिरे, (६) पोसे, (७) माहे, (८) फग्गुणीए, (९) चित्ते, (१०) वइसाहे, (११) जेट्ठे, (१२) आसाढे। —सूरिय. पा. १०, पाहु. २०, सु. ५५

४२. नक्षत्र संवत्सर बारह प्रकार का कहा गया है, यथा—
(१) श्रावण, (२) भाद्रपद, (३) आश्विन, (४) कार्तिक, (५) मार्गशीर्ष, (६) पौष, (७) माघ, (८) फाल्गुन, (९) चैत्र, (१०) वैशाख, (११) जेष्ठ, (१२) आषाढ।

जुगसंवच्छरस्स भेया तेसिं काल पमाणं च—

युगसंवत्सर के भेद और उनका काल प्रमाण—

३. ता जुगसंवच्छरे णं पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—
(१) चंदे, (२) चंदे, (३) अभिवड्ढिए, (४) चंदे, (५) अभिवड्ढिए,[1]
(१) ता पढमस्स ण चंद संवच्छरस्स चउवीसं पव्वा पण्णत्ता।
(२) दोच्चस्स णं चंद संवच्छरस्स चउवीसं पव्वा पण्णत्ता।
(३) तच्चस्स णं अभिवड्ढिय संवच्छरस्स छव्वीसं पव्वा पण्णत्ता।
(४) चउत्थस्स णं चंद संवच्छरस्स चउवीसं पव्वा पण्णत्ता।
(५) पंचमस्स णं अभिवड्ढिय संवच्छरस्स छव्वीसं पव्वा पण्णत्ता।

४३. युग संवत्सर पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा—
(१) चन्द्र, (२) चन्द्र, (३) अभिवर्धित, (४) चन्द्र, (५) अभिवर्धित।
(१) प्रथम चन्द्र संवत्सर के चौवीस पर्व कहे गये हैं।
(२) द्वितीय चन्द्र संवत्सर के चौवीस पर्व कहे गये हैं।
(३) तृतीय अभिवर्धित संवत्सर के छव्वीस पर्व कहे गये हैं।
(४) चतुर्थ चन्द्र संवत्सर के चौवीस पर्व कहे गये हैं।
(५) पंचम अभिवर्धित संवत्सर के छव्वीस पर्व कहे गये हैं।

एवामेव सपुव्वावरेणं पंचसंवच्छरिए जुगे एगे चउवीसे पव्वसए भवंतीतिमक्खायं।[2] —सूरिय. पा. १०, पाहु. २०, सु. ५६।

इस प्रकार पहले पीछे के सब मिलाकर पंच संवत्सरीय युग के एक सौ चौवीस पर्व होते हैं।

---

१ ठाणं. ५, उ. ३, सु. ४६०।
२ जंबु. वक्ख. ७, सु. १५१

पमाण संवच्छरस्स भेया—

४४. ता पमाण संवच्छरे णं पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) णक्खत्ते, (२) चंदे, (३) उडू, (४) आइच्चे, (५) अभिवड्ढिए।[1] —सूरिय. पा. १०, पाहु. २०, सु. ५७।

लक्खण संवच्छरस्स भेया—

४५. ता लक्खण संवच्छरे णं पंचविहे पण्णत्ते तं जहा—

(१) णक्खत्ते, (२) चंदे, (३) उडू, (४) आइच्चे, (५) अभिवड्ढिए। —सूरिय. पा. १०, पाहु. २०, सु. ५८।

सणिच्छर संवच्छरस्स भेया—

४६. ता सणिच्छर संवच्छरे णं अट्ठावीसइ विहे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) अभियी, (२/ सवणे, (३) धणिट्ठा, (४) सतभिसया, (५) पुव्वा पोट्ठवया, (६) उत्तरा पोट्ठवया, (७) रेवई, (८) अस्सिणी, (९) भरणी, (१०) कत्तिय, (११) रोहिणी, (१२) संठाणा, (१३) अद्दा, (१४) पुणव्वसू, (१५) पुस्से, (१६) अस्सेसा, (१७) महा, (१८) पुव्वाफग्गुणी, (१९) उत्तराफग्गुणी, (२०) हत्थे, (२१) चित्ता, (२२) साई, (२३) विसाहा, (२४) अणुराहा, (२५) जेट्ठा, (२६) मूले, (२७) पुव्वासाढा, (२८) उत्तरासाढा।

—सूरिय. पा. १०, पाहु. २०, सु. ५८।

एग संवच्छरस्स मासा—

४७. प०—ता कहं ते मासा ? आहिए त्ति वएज्जा।

उ०—ता एगमेगस्स णं संवच्छरस्स बारस मासा पण्णत्ता।

तेसिं च दुविहा णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) लोइया, (२) लोउत्तरिया य।

तत्थ लोइया णामा—

(१) सावणे, (२) भद्दवए, (३) आसोए, (४) कत्तिए, (५) मग्गसिरे, (६) पोसे, (७) माहे, (८) फग्गुणे, (९) चेत्ते, (१०) वेसाहे, (११) जेट्ठे (१२) आसाढे।

लोउत्तरिया णामा—

गाहाओ—

(१) अभिणंदणे, (२) सुपइट्ठ य,
(३) विजए, (४) पीइवद्धणे,
(५) सेज्जंसे य, (६) सिवेया वि,
(७) सिसिरे वि य, (८) हेमवं, ॥१॥
(९) नवमे वसंतमासे, (१०) दसमे कुसुमसंभवे।
(११) एकादसमे णिदाहो, (१२) वणविरोही य बारसे[2]
॥२॥

—सूरिय. पा. १०, पाहु. १०. सु. ५३।

प्रमाण संवत्सर के भेद—

४४. प्रमाण संवत्सर पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) नक्षत्र संवत्सर, (२) चन्द्र संवत्सर, (३) ऋतु संवत्सर, (४) आदित्य संवत्सर, (५) अभिवर्धित संवत्सर।

लक्षण संवत्सर के भेद—

४५. लक्षण संवत्सर पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) नक्षत्र संवत्सर, (२) चन्द्र संवत्सर, (३) ऋतु संवत्सर, (४) आदित्य संवत्सर, (५) अभिवर्धित संवत्सर।

शनैश्चर संवत्सर के भेद—

४६. शनैश्चर संवत्सर अठाईस प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) अभिजित, (२) श्रवण, (३) धनिष्ठा, (४) शतभिषक, (५) पूर्वाभाद्रपद, (६) उत्तराभाद्रपद, (७) रेवती, (८) अश्विनी, (९) भरणी, (१०) कृत्तिका, (११) रोहिणी, (१२) संस्थान, (मिगशिरा), (१३) आर्द्रा, (१४) पुनर्वसु, (१५) पुष्य, (१६) अश्लेषा, (१७) मघा, (१८) पूर्वाफाल्गुनी, (१९) उत्तराफाल्गुनी, (२०) हस्त, (२१) चित्रा, (२२) स्वाति, (२३) विशाखा, (२४) अनुराधा, (२५) ज्येष्ठा, (२६) मूल, (२७) पूर्वाषाढा, (२८) उत्तराषाढा।

एक संवत्सर के मास—

४७. प्र०—एक संवत्सर के मास कितने हैं ? कहें।

उ०—प्रत्येक संवत्सर के बारह मास कहे गए हैं, उनके नाम दो प्रकार के कहे गए हैं यथा—

(१) लौकिक, (२) लोकोत्तर।

इनमें लौकिक बारह मास के नाम,

(१) श्रावण, (२) भाद्रपद, (३) आसोज, (४) कार्तिक, (५) मार्गशीर्ष, (६) पोष, (७) माघ, (८) फाल्गुन, (९) चैत्र, (१०) वैशाख, (११) जेष्ठ, (१२) आषाढ।

लोकोत्तर बारह मास के नाम—

गाथार्थ—

(१) अभिनन्दन, (२) सुप्रतिष्ठ, (३) विजय, (४) प्रीतिवर्धन, (५) श्रेयांस, (६) शिव, (७) शिशिर, (८) हिमवान, (९) वसंत, (१०) कुसुमसम्भव, (११) निदाघ, (१२) वनविरोधी।

---

१ (क) ठाणं ५, उ. ३, सु. ४६० (ख) जंबु. वक्ख. ७, सु. १५१

२ जंबु. वक्ख. ७, सु, १५२

एगस्स जुगस्स अहोरत्त-मुहुत्तप्पमाणं—

४८. (क) प्र०—ता केवइयं ते नो जुगे राइंदियग्गे ? आहिए त्ति वएज्जा ।

उ०—ता सत्तरस एकाणउए राइंदियसए, एगूणवीसं च मुहुत्तं, सत्तावण्णे बासट्ठिभागे मुहुत्तस्स, बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता पणपन्नं चुण्णिया भागे राइंदियग्गेणं आहिए त्ति वएज्जा ।

(ख) प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा ।

उ०—ता तेवण्णमुहुत्तसहस्साइं, सत्त य अउणापन्ने मुहुत्तसए, सत्तावण्णं बासट्ठिभागे मुहुत्तस्स, बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता पणपण्णं चुण्णिया भागा मुहुत्ते णं, आहिए त्ति वएज्जा ।

(ग) प०—ता केवइए णं ते जुगपत्ते राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा ।

उ०—ता अट्ठतीसं राइंदियाइं दस य मुहुत्ता, चत्तारि य बासट्ठिभागे मुहुत्तस्स, बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता दुवालसचुण्णियाभागे राइंदियग्गे णं, आहिए त्ति वएज्जा ।

(घ) प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा ।

उ०—ता एक्कारस पण्णासे मुहुत्तसए, चत्तारि य बासट्ठिभागे मुहुत्तस्स, बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता दुवालस चुण्णिया भागे मुहुत्तग्गे णं, आहिए त्ति वएज्जा ।

(ङ) प०—ता केवइयं जुगे राइंदियग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा ।

उ०—ता अट्ठारस तीसे राइंदियसए राइंदियग्गे णं आहिए त्ति वएज्जा ।

(च) प०—ता से णं केवइए मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा ।

उ०—ता चउप्पण्णं मुहुत्तसहस्साइं णव य मुहुत्तसयाइं मुहुत्तग्गे णं, आहिए त्ति वएज्जा ।

(छ) प०—ता से णं केवइए बासट्ठिभाग मुहुत्तग्गे णं ? आहिए त्ति वएज्जा ।

एक युग के अहोरात्र और मुहूर्त का प्रमाण—

४८. (क) प्र०—अपूर्ण युग के कितने अहोरात्र होते हैं ? कहें ।

उ०—सत्रह सौ इकाणवे अहोरात्र, उणतीस मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से सत्तावन भाग और बासठवें भाग के सडसठ भागों में से पचपन लघुतम भाग अहोरात्र के हैं ।

(ख) प्र०—उस 'अपूर्ण युग' के कितने मुहुर्त होते हैं ? कहें ।

उ०—त्रेपन हजार सात सौ उनपचास मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से सत्तावन भाग और बासठवें भाग के सडसठ भागों में से पचपन लघुतम भाग मुहूर्त के हैं ।

(ग) प्र०—पूर्णता प्राप्त युग के कितने अहोरात्र होते हैं ? कहें ।

उ०—अडतीस अहोरात्र दस मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से चार भाग, और बासठवें भाग के सडसठ भागों में से बारह लघुतम भाग अहोरात्र के 'प्रक्षिप्त करने पर पूर्ण युग के अहोरात्र' होते हैं ।

(घ) प्र०—'पूर्णता प्राप्त' युग के कितने मुहूर्त होते हैं ? कहें ।

उ०—इग्यारह सौ पचास मुहूर्त एक मुहूर्त के बासठ भागों में से चार भाग और बासठवें भाग के सडसठ भागों में से बारह लघुतम भाग मुहूर्त के 'प्रक्षिप्त करने पर पूर्ण युग के मुहूर्त' होते हैं ।

(ङ) प्र०—'परिपूर्ण' युग के अहोरात्र कितने होते हैं ? कहें ।

उ०—अठारह सौ तीस अहोरात्र होते हैं ।

(च) प्र०—'परिपूर्ण' युग के कितने मुहूर्त होते हैं ? कहें ।

उ०—चौपन हजार नव सौ मुहूर्त होते हैं ।

(छ) प्र०—'परिपूर्ण' युग के मुहूर्तों के कितने बासठिए भाग होते हैं ? कहें ।

उ०—ता चोत्तीसं सयसहस्साइं अट्ठतीसं च बासट्ठिभागमुहुत्तसए बासट्ठिभाग मुहुत्तग्गे णं, आहिए त्ति वएज्जा।

—सूरिय. पा. १२, पाहु. सु. ७३।

उ०—चौतीस लाख अड़तीस सौ बांसठ मुहूर्त के बासठिए भाग होते है।

एग युगे पुण्णिमासिणीओ अमावासो—

४९. तत्थ खलु इमाओ बावट्ठि पुण्णिमासिणीओ बावट्ठि अमावासाओ पण्णत्ताओ।[1]

बावट्ठि एते कसिणा रागा।

बावट्ठि एते कसिणा विरागा।

एते चउव्वीसे पव्वसए।

एते चउव्वीसे कसिण-राग-विरागसए।

जावइयाणं पंचण्हं संवच्छराणं समया एगे णं चउव्वीसेणं समयसएगूणगा एवइया परित्ता असंखेज्जा देस-राग-विराग सया भवंतीतिमक्खाया।

ता अमावासाओ णं पुण्णिमासिणी चत्तारि बायाले मुहुत्तसए छत्तालीसं बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहिए त्ति वएज्जा।

ता पुण्णिमासिणीओ णं अमावासा चत्तारि बायाले मुहुत्तसए छत्तालीसं बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहिए त्ति वएज्जा।

ता अमावासाओ णं अमावासा अट्ठपंचासीए मुहुत्तसए तीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहिए ति वएज्जा।

ता पुण्णिमासिणीओ णं पुण्णिमासिणी अट्ठ पंचासीए मुहुत्तसए तीसं बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहिए त्ति वएज्जा।

एस णं एवइए चंदे मासे।

एस णं एवइए सगले जुगे।[2]

—सूरिय. पा. १३, सु. ८०।

एक युग में पूर्णिमा और अमावास्याएँ—

४९. एक युग में बासठ पूर्णिमाएँ और बासठ अमावास्याएँ कही गई हैं।

बासठ अमावस्याएँ राहु से पूर्ण रक्त है।

बासठ पूर्णिमाएँ राहु से पूर्ण विरक्त है।

एक युग में एक सौ चौबीस पर्व है।

ये एक सौ चौबीस पर्व पूर्ण रूप से रक्त और विरक्त है।

पाँच संवत्सरों के जितने समय हैं उनसे एक समय कम अर्थात् एक सौ चौबीस पर्वो के ये परिमित समय है किन्तु देश राग-विराग के असंख्य शत समय होते हैं ऐसा कहा है।

अमावस्या से पूर्णिमा पर्यन्त चार सौ बियालीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से छियालीस भाग जितना समय होता है।

पूर्णमासी से अमावस्या पर्यन्त चार सौ बियालीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से छियालीस भाग जितना समय होता है।

अमावस्या से अमावस्या पर्यन्त आठ सौ पच्यासी मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से तीस भाग जितना समय होता है।

पूर्णमासी से पूर्णमासी पर्यन्त आठ सौ पच्यासी मुहूर्त और एक मुहूर्त के बासठ भागों में से तीस भाग जितना समय होता है।

यह इतना चन्द्र मास है।

यह इतना पूर्ण युग है।

णक्खत्तमासाणं अहोरत्ताइं—

५०. एगमेगे णं णक्खत्तमासे सत्तावीसाहिं राइंदियाहिं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते। —सम. २७, सु. ३।

नक्षत्र मासों के अहोरात्र—

५०. नक्षत्र मास सत्तावीस अहोरात्रि का कहा गया है।

याम-परुवणं—

५१. तओ जामा पण्णत्ता। तं जहा—

(१) पढ़मे जामे, (२) मज्झिमे जामे, (३) पच्छिमे जामे।[3]

—ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६३।

यामों का प्ररूपण—

५१. याम तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा—

प्रथम याम, मध्यम याम, पश्चिम याम।

---

१ पंच संवच्छरिए णं जुगे बासट्ठि पुण्णिमाओ, बासट्ठि अमावासाओ पण्णत्ताओ। —सम. ६२, सु. १

२ चंद. पा. १३, सु. ८०।

३ "तओ जामे" इत्यादि

"मासस्स" मुहुत्ताणं वड्ढोअवड्ढी—

५२. प०—ता कहं ते वड्ढोअवड्ढी मुहुत्ताणं ? आहिए त्ति, वदेज्जा।

उ०—सा अट्ठ एगूणवीसे मुहुत्तसए सत्तावीसं च सट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहिए त्ति वदेज्जा।[1]

—सूरिय. पा. १, पाहु. १, सु. ८।

"मास के" मुहूर्तों की हानि-वृद्धि—

५२. प्र०—"मास के" मुहूर्तों की हानि-वृद्धि किस प्रकार होती है ? कहें।

उ०—"नक्षत्र मास के" आठ सौ उगणीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के साठ भागों में से सत्तावीस भाग जितनी हानि-वृद्धि होती है।

मुहुत्ताणं-णामाइं—

५३. प०—ता कहं ते मुहुत्ताणं णामधेज्जा ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता एगमेगस्स णं अहोरत्तस्स तीसं मुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—

गाहाओ—

१. रोद्दे, २. सेते, ३. मित्ते,
४. वायु, ५. सुगीए, ६. अभिचंदे।

७. महिंद, ८. बलवं, ९. बंभो,
१०. बहुसच्चे, ११. चेव ईसाणे ॥

१२. तट्ठे य, १३. भावियप्पा,
१४. वेसमणे, १५. वरुणे य, १६. आणंदे।

१७. विजए य, १८. वीससेणे,
१९. पायावच्चे चेव, २०. उवसमे य ॥२॥

२१. गंधव्व, २२. अग्गिवेसे,
२३. सयरिसहे, २४. आयवं च, २५. अममे य।

मुहूर्तों के नाम—

५३. प्र०—मुहूर्तों के नाम कौनसे हैं ? कहें,

उ०—प्रत्येक अहोरात्र के तीस मुहूर्त कहे गये हैं, यथा—

गाथार्थ—

(१) रुद्र, (२) श्रेयान्, (३) मित्र, (४) वायु, (५) सुग्रीत, (६) अभिचन्द,

(७) माहेन्द्र, (८) बलवान्, (९) ब्रह्मा, (१०) बहुसत्य, ११. ईशान ॥१॥

(१२) त्वष्टा, (१३) भावितात्मा, (१४) वैश्रमण, (१५) वारुण, (१६) आनन्द,

(१७) विजय, (१८) विश्वसेन, (१९) प्राजापत्य, (२०) उपशम ॥२॥

(२१) गन्धर्व, (२२) अग्निवेश्य, (२३) शतवृषभ, (२४) आतपवान्, (२५) अमम,

---

(शेष पृष्ठ ७२४ का)

यामो—रात्रेर्दिनस्य च चतुर्थभागो यद्यपि प्रसिद्धस्तथाऽपीह त्रिभाग एव विवक्षितः। पूर्वरात्र-मध्यरात्रऽपररात्रलक्षणो यमाश्रित्य रात्रिस्त्रियामेत्युच्यते एवं दिनस्यापि निशा निशीथिनीरात्रिस्त्रियामा क्षणदाक्षणा।

—स्थानांग टीका, अमर. कालवर्ग श्लोक ४।

याम=प्रहर का पर्यायवाची है।

सामान्य मान्यता दिन और रात के चार प्रहर मानने की है किन्तु यहाँ "याम" का अर्थ "विभाग" लिया गया है और दिन व रात्रि के तीन-तीन विभाग कहे गये हैं।

रात्रि के तीन विभाग—रात्रि का प्रथम विभाग=पूर्वरात्र, रात्रि का द्वितीय विभाग=मध्यरात्र, रात्रि का तृतीय विभाग=अपररात्र

दिन के तीन विभाग—दिन का प्रथम भाग—पूर्वान्ह, दिन का द्वितीय भाग—मध्यान्ह, दिन का तृतीय भाग—अपरान्ह।

१ मुहूर्तों की हानि-वृद्धि का यह सूत्र खण्डित प्रतीत होता है, क्योंकि प्रस्तुत सूत्र के प्रश्नसूत्र में मुहूर्तों की हानि-वृद्धि का प्रश्न है, किन्तु उत्तरसूत्र में केवल नक्षत्र मासों के मुहूर्तों का ही कथन है।

२६. अणवं, २७. भोम, २८. रिसहे,
२९. सव्वट्ठे, ३०. रक्खसे चेव ॥३॥[1]
—सूरिय. पा. १०, पाहु. १३, सु. ४७

(२६) ऋणवान्, (२७) भौम, (२८) वृषभ, (२९) सर्वार्थ, (३०) राक्षस ॥३॥[2]

दिवस राईणं णामाइं—

५४. प०—ता कहं ते दिवसा ? आहिए त्ति वएज्जा,

उ०—ता एगमेगस्स णं पक्खस्स पण्णरस पण्णरस दिवसा पण्णत्ता, तं जहा—पडिवा दिवसे, बितिया दिवसे, तइया दिवसे, चउत्थी दिवसे, पंचमी दिवसे, छट्ठी दिवसे, सत्तमी दिवसे, अट्ठमी दिवसे, नवमी दिवसे, दसमी दिवसे, एक्कारसी दिवसे, बारसी दिवसे, तेरसी दिवसे, चउद्दसी दिवसे, पण्णरसे दिवसे,

ता एएसि णं पण्णरसण्हं दिवसाणं पण्णरस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

गाहाओ—

१. पुव्वंगे, २. सिद्धमणोरमे, य तत्तो, ३. मणोहरो चेव ।
४. जसभद्दे य, ५. जसोधर, ६. सव्वकामसमिद्धे ति य ॥१॥

दिवस और रात्रियों के नाम—

५४. प्र०—दिवस कितने हैं और उनके नाम क्या-क्या हैं ? कहें,

उ०—प्रत्येक पक्ष के पन्द्रह-पन्द्रह दिन कहे गये हैं, यथा—प्रतिपदा दिवस, द्वितीया दिवस, तृतीया दिवस, चतुर्थी दिवस, पंचमी दिवस, षष्ठी दिवस, सप्तमी दिवस, अष्टमी दिवस, नवमी दिवस, दशमी दिवस, एकादशी दिवस, द्वादशी दिवस, त्रयोदशी दिवस, चतुर्दशी दिवस, पन्द्रहवां (पूर्णिमा या अमावास्या) दिवस,

इन पन्द्रह दिनों के पन्द्रह नाम कहे गये हैं, यथा—

गाथार्थ—

(१) पूर्वांग, (२) सिद्ध मनोरम, (३) मनोहर, (४) यशोभद्र, (५) यशोधर, (६) सर्वकामसमृद्ध,

---

१ (क) एगमेगे णं अहोरत्ते तीसमुहुत्ते मुहुत्तग्गेणं पण्णत्ता । एएसि णं तीसाए मुहुत्ताणं तीसं नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
१. रोद्दे, २. सते, ३. मित्ते, ४. वाऊ, ५. सुपीए, ६. अभिचंदे, ७. माहिंदे, ८. पलंबे, ९. बंभे, १०. सच्चे, ११. आणंदे, १२. विजए, १३. विस्ससेणे १४. पायावच्चे, १५. उवसमे, १६. ईसाणे, १७. तट्ठे, १८. भाविअप्पा, १९. वेसमणे, २०. वरुणे, २१. सतरिसभे, २२. गंधव्वे, २३. अग्गिवेसायणे, २४. आतवे, २५. आवत्ते, २६. तट्ठवे, २७. भूमहे, २८. रिसभे, २९. सव्वट्ठसिद्धे, ३०. रक्खसे । —सम. स. ३०, सु. ३
(ख) जंबु. वक्ख. ७, सु. १५२ ।

२ तुलनात्मक तालिका

७. इंदे मुद्धाभिसित्ते य,
८. सोमणस, ९. धणंजए य बोद्धव्वे ।
१०. अत्थसिद्धे, ११. अभिजाए,
१२. अच्चासणे, १३. सतंजए ।।२।।
१४. अग्गिवेसे, १५. उवसमे, दिवसाणं णामधेज्जाइं ।।

प०—ता कहं ते राईओ पण्णत्ताओ ? आहिए त्ति वएज्जा ।

उ०—ता एगमेगस्स णं पक्खस्स पण्णरस पण्णरस राईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पडिवाराई, बितियाराई, ततियाराई, चउत्थीराई, पंचमीराई, छट्ठीराई, सत्तमीराई, अट्ठमीराई, नवमीराई, दसमीराई, एक्कारसीराई, बारसीराई, तेरसीराई, चउद्दसीराई, पण्णरसीराई ।
ता एयासि णं पण्णरसण्हं राईणं णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहाओ—
१. उत्तमा य, २. सुणक्खत्ता,
३. एलावच्चा, ४. जसोधरा ।।
५. सोमणसा चेव तहा,
६. सिरिसंभूता य बोधव्वा ।।१।।
७. विजया य, ८. वेजयंती
९. जयंति, १०. अपराजिया य, ११. गच्छाय ।
१२. समाहारा चेव तहा,
१३. तेयाय तहा य, १४. अतितेया ।।२।।
१५. देवाणंदानिरती, रयणीणं णामधेज्जाइं[1] ।।
—सूरिय. पा. १०, पाहु. १४, सु. ४८ ।

(७) इन्द्रमूर्धाभिषिक्त, (८) सोमनस, (९) धनंजय,

(१०) अर्थसिद्ध, (११) अभिजात, (१२) अत्याशन, (१३) सतंजय,

(१४) अग्निवैश्य, (१५) उपशम, ये पन्द्रह दिनों के नाम हैं ।

प्र०—रात्रियाँ कितनी हैं (और उनके नाम क्या-क्या हैं) ? कहें—

उ०—प्रत्येक पक्ष की पन्द्रह-पन्द्रह रात्रियाँ कही गई हैं, यथा—प्रतिपदा रात्रि, द्वितीया रात्रि, तृतीया रात्रि, चतुर्थी रात्रि, पंचमी रात्रि, षष्ठी रात्रि, सप्तमी रात्रि, अष्टमी रात्रि, नवमी रात्रि, दशमी रात्रि, एकादशी रात्रि, द्वादशी रात्रि, त्रयोदशी रात्रि, चतुर्दशी रात्रि, पन्द्रहवीं रात्रि,

इन पन्द्रह रात्रियों के पन्द्रह नाम कहे गये हैं, यथा—

गाथार्थ—

(१) उत्तमा, (२) सुनक्षत्रा, (३) एलापत्या, (४) यशोधरा,

(५) सोमनसी, (६) श्रीसम्भूता,

(७) विजया, (८) वैजयन्ती, (९) जयन्ती, (१०) अपराजिता, (११) गच्छा,

(१२) समाहारा, (१३) तेजा, (१४) अतितेजा,

(१५) देवानन्दा-रात्रि, ये पन्द्रह रात्रियों के नाम हैं ।

अवम-अइरित्तरत्ताणं संखा हेउं च—

अवम रात्रियों की और अतिरिक्त रात्रियों की संख्या और उनके हेतु—

५५. तत्थ खलु इमे छ ओमरत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
(१) तइए पव्वे, (२) सत्तमे पव्वे, (३) एक्कारसमे पव्वे, (४) पण्णरसमे पव्वे, (५) एगूणवीसइमे पव्वे, (६) तेवीसइमे पव्वे ।
तत्थ खलु इमे छ अतिरत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
(१) चउत्थे पव्वे, (२) अट्ठमे पव्वे, (३) बारसमे पव्वे, (४) सोलसमे पव्वे, (५) वीसइमे पव्वे, (६) चउवीसइमे पव्वे ।[2]

५५. ये छ अवम रात्रियाँ (क्षय तिथियाँ) कही गई हैं, यथा—
(१) तृतीय पर्व में, २. सप्तम पर्व में, (३) इग्यारहवें पर्व में, (४) पन्द्रहवें पर्व में, (५) उन्नीसवें पर्व में, (६) तेवीसवें पर्व में,[3]
ये छ अतिरिक्त रात्रियाँ (वृद्धि तिथियाँ) कही गई हैं, यथा—
(१) चतुर्थ पर्व में, (२) अष्टम पर्व में, (३) बारहवें पर्व में, (४) सोलहवें पर्व में, (५) वीसवें पर्व में, (६) चौवीसवें पर्व में,[4]

---

१ जंबु० वक्ख० ७, सु० १५२ ।
२ (क) पर्वणि-पक्षे । यहाँ पर्व-पक्ष का पर्यायवाची है । (ख) ठाण ६, सु. ५२४ ।
३ छ अवम रात्रियाँ (क्षय तिथियाँ)—१. तृतीय पर्व, भाद्रपद शुक्लपक्ष, २. सप्तम पर्व, कार्तिक शुक्लपक्ष, ३. इग्यारहवाँ पर्व, पौष शुक्लपक्ष, ४. पन्द्रहवाँ पर्व, फाल्गुन शुक्ल पक्ष, ५. उन्नीसवाँ पर्व वैशाख शुक्ल पक्ष, ६. तेईसवाँ पर्व आषाढ शुक्ल पक्ष ।
४ छ अतिरिक्त रात्रियां वृद्धि तिथियाँ—१. चतुर्थ पर्व, आश्विन कृष्ण पक्ष, २. अष्टम पर्व मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष, ३. बारहवाँ पर्व माघ कृष्ण पक्ष, ४. सोलहवाँ पर्व चैत्र कृष्ण पक्ष, ५. वीसवां पर्व ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष, ६. चौवीसवां पर्व श्रावण कृष्ण पक्ष ।

गाहा—

छच्चेव य अइरत्ता, आइच्चाओ हवंति माणाइं ।
छच्चेव ओमरत्ता, चंदाहि हवंति माणाइं ॥

—सूरिय. पा. १२, सु. ७५

गाथार्थ—

छ अतिरिक्त रात्रियाँ आदित्य मासों में होती है ।
छ अवम रात्रियाँ चान्द्र मासों में होती है ।

तिहीणं णामाइं—

५६. प०—ता कहं ते तिही ? आहिए त्ति वएज्जा ।

उ०—तत्थ खलु इमा दुविहा तिही पण्णत्ता, तं जहा—
(१) दिवसतिही, (२) राई तिही य ।

प०—ता कहं ते दिवस तिही ? आहिए त्ति वएज्जा ।

उ०—ता एगमेगस्स णं पक्खस्स पण्णरस पण्णरस दिवसतिही पण्णत्ता तं जहा—(१) णंदे, (२) भद्दे, (३) जए, (४) तुच्छे, (५) पुण्णे ।
पक्खस्स पंचमी ।
पुणरवि—(६) णंदे, (७) भद्दे, (८) जए, (९) तुच्छे, (१०) पुण्णे ।
पक्खस्स दसमी ।
पुणरवि—(११) णंदे, (१२) भद्दे, (१३) जए, (१४) तुच्छे, (१५) पुण्णे ।
पक्खस्स पण्णरस ।
एवं से तिगुणा तिहीओ सव्वेसिं दिवसाणं ।

प०—ता कहं ते राई तिही ? आहिइ त्ति वएज्जा ।

उ०—ता एगमेगस्स णं पक्खस्स पण्णरस राई तिही पण्णत्ता तं जहा—(१) उग्गवई, (२) भोगवई, (३) जसवई, (४) सव्वसिद्धा, (५) सुहणामा ।
पुणरवि—(६) उग्गवई, (७) भोगवई, (८) जसवई, (९) सव्वसिद्धा, (१०) सुहणामा ।
पुणरवि—(११) उग्गवई, (१२) भोगवई, (१३) जसवई, (१४) सव्वसिद्धा, (१५) सुहणामा ।
एए तिगुणा तिहीओ सव्वेसिं राईणं ।[1]

—सूरिय. पा. १०, पाहु. १५, सु. ४९ ।

तिथियों के नाम—

५६. प्र०—तिथियाँ कितनी हैं (और उनके नाम क्या-क्या हैं) ? कहें ।

उ०—तिथियाँ दो प्रकार की कही गई हैं, यथा—
(१) दिवस तिथि, (२) रात्रि तिथि ।

प्र०—दिवस तिथियाँ कितनी हैं (और उनके नाम क्या-क्या हैं ?) कहें ।

उ०—प्रत्येक पक्ष में पन्द्रह-पन्द्रह दिवस तिथियाँ कही गई हैं, यथा—(१) नन्दा, (२) भद्रा, (३) जया, (४) तुच्छा, (५) पूर्णा,
ये पक्ष की पाँच तिथियाँ हैं ।
पुनः—(६) नन्दा, (७) भद्रा, (८) जया, (९) तुच्छा, (१०) पूर्णा,
ये पक्ष की दस तिथियाँ हैं ।
पुनः—(११) नन्दा, (१२) भद्रा, (१३) जया, (१४) तुच्छा, (१५) पूर्णा,
ये पक्ष की पन्द्रह तिथियाँ हैं ।
इस प्रकार सब दिनों की त्रिगुण तिथियाँ हैं ।

प्र०—रात्रि-तिथियाँ कितनी हैं (और उनके नाम क्या-क्या हैं) ? कहें ।

उ०—प्रत्येक पक्ष की पन्द्रह-पन्द्रह रात्रि-तिथियाँ हैं । यथा—(१) उग्रवती, (२) भोगवती, (३) यशवती, (४) सर्वसिद्धा, (५) शुभनामा ।
पुनः—(६) उग्रवती, (७) भोगवती, (८) यशवती, (९) सर्वसिद्धा, (१०) शुभनामा ।
पुनः—(११) उग्रवती, (१२) भोगवती, (१३) यशवती, (१४) सर्वसिद्धा, (१५) शुभनामा ।
ये सब रात्रियों की त्रिगुण तिथियाँ हैं ।

---

१ जंबु० वक्ख० ७, सु० १५२ ।

करणभेया तेसिं चर-थिरत्तपरूवणं—

५७. प०—कति णं भंते ! करणा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! एक्कारस करणा पण्णत्ता । तं जहा—

(१) बवं, (२) बालवं, (३) कोलवं, (४) थीविलोयणं, (५) गराइ, (६) वणिज्जं, (७) विट्ठी, (८) सउणी, (९) चउप्पयं, (१०) नागं, (११) किंत्थुग्घं ।

प०—एएसि णं भंते ! एक्कारसण्हं करणाणं कति करणा चरा । कति करणा थिरा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सत्त करणा चरा, चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता । तं जहा—

(१) बवं, (२) बालवं, (३) कोलवं, (४) थिविलोअणं, (५) गरादि, (६) वणिज्जं, (७) विट्ठी ।

एएणं सत्तकरणा चरा पण्णत्ता ।

चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता । तं जहा—

(१) सउणी, (२) चउप्पयं, (३) णागं, (४) किंत्थुग्घं ।

एएणं चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता ।

प०—एएणं भंते ! चरा वा, थिरा वा कया भवंति ?

उ०—गोयमा ! सुक्क पक्खस्स पडिवाए राओ "बवे" करणे भवइ ।

बितियाए दिवा 'बालवे' करणे भवइ, राओ 'कोलवे' करणे भवइ ।

ततियाए दिवा "थीविलोअणं" करणं भवइ । राओ "गराई" करणे भवइ ।

चउत्थीए दिवा "वणिज्जं" राओ "विट्ठी" ।

पंचमीए दिवा "बवं", राओ "बालवं" ।

छट्ठीए दिवा "कोलवं" राओ "थीविलोअणं" ।

सत्तमीए दिवा "गराइ", राओ "वणिज्जं" ।

अट्ठमीए दिवा "विट्ठी", राओ "बवं" ।

नवमीए दिवा "बालवं", राओ "कोलवं" ।

दसमीए दिवा "थीविलोअणं", राओ "गराइं" ।

एक्कारसीए दिवा "वणिज्जं", राओ "विट्ठी" ।

बारसीए दिवा "बवं", राओ "बालवं" ।

तेरसीए दिवा "कोलवं" राओ "थीविलोअणं" ।

चउद्दसीए दिवा "गराइं" राओ "वणिज्जं" ।

पुण्णिमाए दिवा "विट्ठी", राओ "बवं" ।

बहुलपक्खस्स पडिवाए दिवा बालवं, राओ कोलवं ।

बितियाए दिवा थीविलोअणं, राओ गरादि ।

ततिआए दिवा "वणिज्जं" राओ "विट्ठी" ।

करण के भेद और उनके चर-थिर की प्ररूपणा—

५७. प्र०—भगवन् ! करण कितने कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! करण इग्यारह कहे गये हैं, यथा—

(१) वव, (२) बालव, (३) कोलव, (४) स्त्रीविलोचन, (५) गरादि, (६) वणिज, (७) विष्टी, (८) शकुनी, (९) चतुष्पद, (१०) नाग, (११) किंस्तुघ्न ।

प्र०—भगवन् ! इन इग्यारह करणों में कितने करण चर हैं और कितने करण स्थिर हैं ?

उ०—गौतम ! सात करण चर हैं, चार करण स्थिर हैं, यथा—

(१) वव, (२) बालव, ३. कोलव, (४) स्त्री विलोचन, (५) गरादि, (६) वणिज, (७) विष्टी ।

ये सात करण चर कहे गये हैं ।

चार करण स्थिर कहे गये हैं, यथा—

(१) शकुनी, (२) चतुष्पद, (३) नाग, (४) किंस्तुघ्न ।

ये चार करण स्थिर कहे गये हैं ।

प्र०—भगवन् ! ये चर और स्थिर कब होते हैं ?

उ०—गौतम ! शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा की रात्रि में "वव" करण होता है ।

द्वितीया के दिन "बालव" करण होता है रात्रि में "कोलव" करण होता है ।

तृतीया के दिन में स्त्रीविलोचन करण होता है, रात्रि में 'गराई' करण होता है ।

चतुर्थी के दिन में 'वणिज' करण, रात्रि में विष्टी करण ।

पंचमी के दिन में वव करण, रात्रि में बालव करण ।

छट्ठ के दिन में कोलव करण, रात्रि में स्त्रीविलोचन करण ।

सप्तमी के दिन में गराइ करण, रात्रि में वणिज करण ।

अष्टमी के दिन मे विष्टीकरण, रात्रि में 'वव' करण ।

नवमी के दिन में बालव करण, रात्रि में कोलव करण ।

दशमी के दिन में स्त्रीविलोचनकरण, रात्रि में वणिजकरण ।

एकादशी के दिन में वणिज करण, रात्रि में विष्टी करण ।

द्वादशी के दिन में वव करण, रात्रि में बालव करण ।

त्रयोदशी के दिन में कोलवकरण, रात्रि में स्त्रीविलोचनकरण ।

चतुर्दशी के दिन में गराई करण, रात्रि में वणिज करण ।

पूर्णिमा के दिन में विष्टीकरण, रात्रि में वव करण ।

कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन में बालव करण, रात्रि में कोलव करण ।

द्वितीया के दिन में स्त्रीविलोचन करण, रात्रि में गरादि करण ।

तृतीया के दिन में वणिज करण, रात्रि में विष्टी करण ।

चउत्थीए दिवा "ववं", राओ "बालवं"।	चतुर्थी के दिन में वव करण, रात्रि में वालव करण।
पंचमीए दिवा "कोलवं", राओ "थीविलोअणं"।	पंचमी के दिन में कोलव करण, रात्रि में स्त्रीविलोचन करण।
छट्ठीए दिवा "गराइं", राओ "वणिज्जं"।	छट्ठी के दिन में गराइ करण, रात्रि में वणिज करण।
सत्तमीए दिवा "विट्ठी", राओ "ववं"।	सप्तमी के दिन में विष्टी करण, रात्रि में वव करण।
अट्ठमीए दिवा "बालवं", राओ "कोलवं"।	अष्टमी के दिन में वालव करण, रात्रि में कोलव करण।
नवमीए दिवा "थीविलोअणं", राओ "गराइं"।	नवमी के दिन में स्त्रीविलोचन करण, रात्रि में गराइ करण।
दसमीए दिवा "वणिज्जं", राओ "विट्ठी"।	दसमी के दिन में वणिज करण, रात्रि में विष्टी करण।
एक्कारसीए दिवा "ववं", राओ "बालवं"।	एकादशी के दिन में वव करण, रात्रि में वालव करण।
बारसीए दिवा "कोलवं", राओ "थीविलोअणं"।	द्वादशी के दिन में कोलव करण, रात्रि में स्त्रीविलोचन करण।
तेरसीए दिवा "गराइं", राओ "वणिज्जं"।	त्रयोदशी के दिन में गराइ करण, रात्रि में वणिज करण।
चउद्दसीए दिवा "विट्ठी", राओ "सउणी"।	चतुर्दशी के दिन में विष्टीकरण, रात्रि में शकुनी करण।
अमावासाए दिवा "चउप्पयं", राओ "णागं"।	अमावस्या के दिन में चतुष्पद करण, रात्रि में नाग करण।
सुक्क पक्खस्स पडिवाए दिवा "किंत्थुग्घं" करणं भवइ[1]। —जंबु० वक्ख. ७, सु० १५३।	शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन में किंस्तुघ्न करण होता है।

---

१ करण ज्ञान गणित—

तिथि तु द्विगुणी कृत्वा, हीनमेकेन कारयेत्। सप्तभिस्तु हरेद्भागं, शेषं करणमुच्यते ।।

चर संज्ञक करण—

१. ववश्च, २. बालवश्चैव, ३. कौलव, ४. स्तैतिलस्तथा। ५. गरश्च, ६. वणिजो, ७. विष्टि सप्तैते करणानि च ।।

स्थिर संज्ञक करण, कृष्ण-शुक्ल पक्षगतकरण—

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां, १. शकुनि पश्चिमे दले। २. चतुष्पदश्च, ३. नागश्च, अमावास्या दलद्वये ।।

शुक्लप्रतिपदायां च, ४. किंस्तुघ्न प्रथमे दले। स्थिराण्येतानि चत्वारि, करणानि जगुर्बुधा ।।

शुक्लप्रतिपदान्ते च, ववाख्य करणो भवेत्। एकादशश्च विज्ञेया, श्वर-स्थिर विभागतः ।।

—शीघ्र बोध प्रकरण २, श्लोक ३४-३८

कृष्णपक्ष के करण		शुक्लपक्ष के करण	
दिन	रात	दिन	रात
१. बालव	कौलव	१. किंस्तुघ्न	वव
२. तैतिल	गरज	२. वालव	कौलव
३. वणिज	विष्टी	३. तैतिल	गरज
४. बव	वालव	४. वणिज	विष्टी
५. कौलव	तैतिल	५. वव	वालव
६. गरज	वणिज	६. कौलव	तैतिल
७. विष्टी	वव	७. गरज	वणिज
८. वालव	कौलव	८. विष्टी	वव
९. तैतिल	गरज	९. वालव	कौलव
१०. वणिज	विष्टी	१०. तैतिल	गरज
११. वव	वालव	११. वणिज	विष्टी
१२. कौलव	तैतिल	१२. वव	वालव
१३. गरज	वणिज	१३. कौलव	तैतिल
१४. विष्टी	शकुनि	१४. गरज	वणिज
१५. चतुष्पाद	नाग	१५. विष्टी	वव

उडूणं णामाइं कालप्पमाणं च—

५८. तत्थ खलु इमे छ उडू पण्णत्ता, तं जहा—

(१) पाउसे, (२) वरिसारत्ते, (३) सरते, (४) हेमंते, (५) वसंते, (६) गिम्हे[1]।

ता सव्वे वि णं एए चंद-उडू दुवे दुवे मासा तिचउप्पण्ण-सएणं तिचउप्पण्णसएणं आयाणेणं गणिज्जमाणा साइरेगाइं एगूणसट्ठि एगूणसट्ठि राइंदियाइं राइंदियग्गे णं[2] आहिए त्ति वएज्जा। —सूरिय. पा. १२, सु. ७५।

ऋतुओं के नाम और काल प्रमाण—

५८. ये छ ऋतुएं कही गई हैं, यथा—

१. पावस ऋतु, २. वर्षा ऋतु, ३. शरद् ऋतु, ४. हेमन्त ऋतु, ५. बसन्त ऋतु, ६. ग्रीष्म ऋतु।

ये सब चन्द्र ऋतुएँ दो-दो मास की होती हैं और (प्रत्येक ऋतु संवत्सर) तीन सौ चौपन, तीन सौ चौपन दिन का गिनते हुए कुछ अधिक गुनसठ-गुनसठ अहोरात्र की होती है।

जंबुद्दीवस्स चउसु दिसासु वासाईणं परूवणं—

५९. प०—जया ण भंते! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, तया णं उत्तरड्ढे वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ?

जया णं उत्तरड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ। तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं अणंतर पुरक्खड समयंसि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ?

उ०—हंता गोयमा! जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ। (शेषं) तहेव जाव वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ।

प०—जया णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थि-मेणं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं पच्चत्थि-मेण वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ?

जया णं पच्चत्थिमेणं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहि-णेणं अणंतर पच्छाकड समयंसि वासाणं पढमे समए पडिवन्ने भवइ?

उ०—हंता गोयमा! जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्व-यस्स पुरत्थिमेणं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ-तह चेव उच्चारेयव्वं जाव पडिवन्ने भवइ।

एवं जहा (१) समएणं अभिलावो भणिओ वासाणं तहा (२) आवलियाए वि भाणियव्वो।

(३) आणापाणूण वि, (४) थोवेण वि, (५) लवेण वि, (६) मुहुत्तेण वि, (७) अहोरत्तेण वि, (८) पक्खेणं वि, (९) मासेण वि, (१०) उउणा वि।

एएसिं सव्वेसिं जहा समयस्स अभिलावो तहा भाणि-यव्वो।

जम्बूद्वीप की चारों दिशाओं में वर्षा आदि की प्ररूपणा—

५९. प्र०—भगवन्! जब जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत से दक्षिणार्ध में वर्षा का प्रथम समय होता है तब उत्तरार्ध में भी वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है?

जब उत्तरार्ध में वर्षा का प्रथम समय होता है तब जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व-पश्चिम में अनन्तर द्वितीय समय में वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है?

उ०—हाँ गौतम! जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्ध में वर्षा का प्रथम समय होता है। (शेष) उसी प्रकार —यावत्—वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है?

प्र०—भगवन्! जब जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है तब पश्चिम में भी वर्षा का प्रथम समय होता है?

जब पश्चिम में वर्षा का प्रथम समय होता है तब जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर दक्षिण में अनन्तर द्वितीय समय में वर्षा क प्रथम समय प्रतिपन्न होता है?

उ०—हाँ गौतम! जब जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है। पूर्ववत् कहना चाहिए —यावत्—प्रतिपन्न होता है।

जिस प्रकार वर्षा के (१) समय का अभिलाप कहा—उसी प्रकार (२) आवलिका का भी कहना चाहिए।

(३) आनप्राण का भी, (४) स्तोक का भी, (५) लव का भी, (६) मुहूर्त का भी, (७) अहोरात्र का भी, (८) पक्ष का भी, (९) मास का भी, (१०) ऋतु का भी,

जिस प्रकार समय का अभिलाप कहा उसी प्रकार ये सब अभिलाप कहने चाहिए।

---

१ ठाणं. ६, सु. ५२६।

२ चंदस्स णं संवच्छरस्स एगमेगे ऊऊ एगूणसट्ठि राइंदियाइं राइदियग्गे णं पण्णत्ता, —सम. ५९, सु. १

प०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे हेमंताणं पढमे समए पडिवज्जइ ?

उ०—जहेव वासाणं अभिलावो (२०) तहेव हेमंताण वि, (३०) गिम्हाण वि भाणियव्वो—जाव—उउ ।

एवं एए तिन्नि वि, एएसिं तीसं आलावगा भाणियव्वा ।

प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्ध में हेमन्त का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है ?

उ०—जिस प्रकार वर्षा का अभिलाप है उसी प्रकार हेमन्त का भी और ग्रीष्म का भी कहना चाहिए—यावत्—ऋतु ।

इसी प्रकार ये तीन हैं । इनके तीस आलापक कहने चाहिए ।

प०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे पढमे अयणे पडिवज्जइ, तया णं उत्तरड्ढे वि पढमे अयणे पडिवज्जइ ?

जहा समएणं अभिलावो तहेव अयणेण वि भाणियव्वो, —जाव—

प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिणार्ध में प्रथम अयन प्रतिपन्न होता है तब उत्तरार्ध में भी प्रथम अयन प्रतिपन्न होता है ?

जिस प्रकार समय का अभिलाप कहा उसी प्रकार अयन का भी कहना चाहिए ।—यावत्—

उ०—हंता गोयमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं अणंतर पच्छाकडसमयंसि पढमे अयणे पडिवन्ने भवइ ।

जहा अयणेणं अभिलावो तहा संवच्छरेण वि भाणियव्वो ।

जुएण वि, वाससएण वि, वाससहस्सेण वि, वाससयसहस्सेण वि, पुव्वंगेण वि, पुव्वेण वि, तुडियंगेण वि, तुडिएण वि,

एवं पुव्वंगे पुव्वे, तुडियंगे तुडिए, अडडंगे अडडे, अववंगे अववे, हूहूयंगे हूहूए, उप्पलंगे उप्पले, पउमंगे पउमे, नलिनंगे नलिने, अत्यणिउरंगे अत्यणिउरे, अउयंगे अउए, णउयंगे णउए, पउयंगे पउए, चूलियंगे चूलिया, सीसपहेलियंगे सीसपहेलिया, पलिओवमेण वि, सागरोवमेण वि ।

उ०—हाँ गौतम ! जब जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में अनन्तर द्वितीय समय में प्रथम अयन प्रतिपन्न होता है ।

जिस प्रकार अयन का अभिलाप है उसी प्रकार संवत्सर का भी कहना चाहिए ।

युग का भी, सौ वर्ष का भी, हजार वर्ष का भी, लाख वर्ष का भी, पूर्वांग का भी, पूर्व का भी, त्रुटितांग का भी, त्रुटित का भी ।

इसी प्रकार पूर्वांग पूर्व, त्रुटितांग त्रुटित, अडडांग अडड, अववांग अवव, हूहूकांग हूहूक, उत्पलांग उत्पल, पद्मांग पद्म' नलिनांग नलिन, अर्थनिकुरांग अर्थनिकुर, अयुतांग अयुत, नयुतांग नयुत, प्रयुतांग प्रयुत, चूलिकांग चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम भी, सागरोपम भी ।

प०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ ?

तया णं उत्तरड्ढे वि पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ ?

जया णं उत्तरड्ढे वि पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं णेवत्थि ओसप्पिणी णेवत्थि उस्सप्पिणी ।

अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो !

उ०—हंता गोयमा ! तं चेव उच्चारेयव्वं—जाव—समणाउसो !

जहा ओसप्पिणीए आलावो भणिओ ।

एवं उस्सप्पिणीए वि भाणियव्वो ।[1]

—भग. स. ५, उ. १, सु. १४-२१

प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीप द्वीप के दक्षिणार्ध में प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होता है ?

तब उत्तरार्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होता है ?

जब उत्तरार्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होता है 'तब जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व-पश्चिम में नहीं है अवसर्पिणी और नहीं है उत्सर्पिणी ।

आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ अवस्थित काल कहा गया है ?

उ०—हाँ गौतम ! पूर्ववत् कहना चाहिए—यावत्—"श्रमणाउपो" ।

जिस प्रकार अवसर्पिणी आलापक कहा,

इसी प्रकार उत्सर्पिणी का आलापक कहना चाहिए ।

---

१ सूरिय. पा. ८, सु. २६ ।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु कालाणुभावो—

६०. जंबुद्दीवस्स दोसु कुरासु मणुया सया सुसमसुसमुत्तमिड्ढि पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा—(१) देवकुराए चेव, (२) उत्तरकुराए चेव।

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

जंबुद्दीवस्स दोसु वासेसु मणुया सया सुसमुत्तमिड्ढि पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा—(१) हरिवासे चेव, (२) रम्मगवासे चेव।

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

जंबुद्दीवस्स दोसु वासेसु मणुया सया सुसमदुसमत्तमिड्ढि पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा—(१) हेमवए चेव, (२) एरण्णवए चेव।

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

जंबुद्दीवस्स दोसु खेत्तेसु मणुया सया दुसमसुसमुत्तमिड्ढि पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा—(१) पुव्वविदेहे चेव, (२) अवरविदेहे चेव।

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

जंबुद्दीवस्स दोसु वासेसु मणुया छव्विहं पि कालं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा—(१) भरहे चेव, (२) एरवए चेव।

—ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ९४

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

—ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ९९

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ पुरत्थिमद्धे, पच्चत्थिमद्धे वि,

—ठाणं अ. २, उ. ३, सु. १०३

अढाई द्वीप में काल का प्रभाव—

६०. जम्बूद्वीप के दो कुरा में मनुष्य सदा सुषमसुषमा काल की रिद्धि को प्राप्त हैं और वे उसका अनुभव करते हुए विहरते हैं, यथा—(१) देवकुरा, (२) उत्तरकुरा।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी।

जम्बूद्वीप के दो क्षेत्रों में मनुष्य सदा सुषमकाल की रिद्धि को प्राप्त हैं और वे उसका अनुभव करते हुए विहरते हैं, यथा—(१) हरिवर्ष, (२) रम्यक्वर्ष।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी।

जम्बूद्वीप के दो क्षेत्रों में मनुष्य सदा सुषमदुषम काल की रिद्धि को प्राप्त हैं और वे उसका अनुभव करते हुए विहरते हैं, यथा—(१) हैमवत, (२) हैरण्यवत।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी।

जम्बूद्वीप के दो क्षेत्रों में मनुष्य सदा दुषमसुषम काल की रिद्धि को प्राप्त हैं और वे उसका अनुभव करते हुए विहरते हैं, यथा—(१) पूर्वविदेह, (२) पश्चिमविदेह।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी।

जम्बूद्वीप के दो क्षेत्रों में मनुष्य छहों प्रकार के काल का अनुभव करते हुए विचरते हैं, यथा—(१) भरत, (२) ऐरवत।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी।



लोए राइंदिया—

६१. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा एवं वयासी—

प०—से नूणं भंते ! असंखेज्जे लोए अणंता रातिंदिया उप्पज्जिसु वा, उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा ? विगच्छिसु वा, विगच्छंति वा, विगच्छिस्संति वा ? परित्ता रातिंदिया उप्पज्जिसु वा ३ ? विगच्छिसु वा ३ ?

उ०—हंता, अज्जो ! असंखेज्जे लोए अणंता रातिंदिया उप्पज्जिसु वा ३, विगच्छिसु वा ३, परित्ता रातिंदिया उप्पज्जिसु वा ३, विगच्छिसु वा ३।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—असंखेज्जे लोए अणंता रातिंदिया उप्पज्जिसु वा ३? विगच्छिसु वा ३? परित्ता रातिंदिया उप्पज्जिसु वा ३ ? विगच्छिसु वा ३ ?

उ०—से नूणं भे अज्जो ! पासेणं अरहा पुरिसादाणीएणं—"सासए लोए वुइए, अणादीए अणवदग्गे, परित्ते परिवुडे, हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले, अहे पलियंकसंठियंसि, मज्झे वरवइरविग्गहियंसि, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठियंसि अणंता जीवघणा उप्पज्जित्ता निलीयंति। से भूए उप्पन्ने विगए परिणए। अजीवेहिं लोक्कति, पलोक्कइ।

प०—जे लोक्कइ से लोए ?

उ०—हंता भगवं ! से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चति—असंखेज्जे लोए-जाव-विगच्छिस्संति वा।

तप्पभिइं च णं ते पासावच्चेज्जा थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणंति—'सव्वण्णु' 'सव्वदरिसि'। तए णं ते थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामो णं भंते। तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।"

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।

तए णं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो-जाव-चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा, अत्थेगइया देवा देवलोएसु उववन्ना।

—भग. स. ५, उ. ९, सु. १४-१६

लोक में रात्रि-दिन—

६१. उस काल उस समय भ० पार्श्वनाथ के स्थविर शिष्य जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे वहाँ आये और उनके समीप स्थित होकर इस प्रकार बोले—

प्र०—हे भगवन् ! इस असंख्य (प्रदेशी) लोक में क्या अनन्त रात्रि दिन उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और होंगे—नष्ट हुए हैं, होते हैं और होंगे ? अथवा परिमित रात्रि दिन उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और होंगे—नष्ट हुए हैं, होते हैं और होंगे ?

उ०—हाँ आर्यो ! इस असंख्य (प्रदेशी) लोक में अनन्त रात्रि दिन उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और होंगे तथा परिमित रात्रि-दिन उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और होंगे—इसी प्रकार नष्ट हुए हैं, होते हैं और होंगे।

प्र०—हे भगवन् ! इस प्रकार कहने का कारण क्या है ? असंख्येय लोक में अनन्त रात्रि दिन उत्पन्न हुए हैं ३, नष्ट हुए हैं ३ तथा परिमित रात्रि दिन उत्पन्न हुए हैं ३, नष्ट हुए हैं ३ इत्यादि।

उ०—हे आर्यो ! आपके पार्श्व अर्हन्त पुरुषादानीय ने इस लोक को शाश्वत अनादि अनन्त परिमित और अलोक से परिवृत कहा है—जो नीचे से विस्तीर्ण है, मध्य में संक्षिप्त है, ऊपर विशाल है। नीचे से पल्यंकाकार है, मध्य में उत्तम वज्राकार है, और ऊपर से ऊर्ध्व मृदंगाकार स्थित है। इसमें अनन्त जीवसमूह उत्पन्न हो-होकर विलीन होते हैं। यह लोक भूत है, उत्पन्न है, विगत है, परिणत है। यह अजीवों के परिणमन धर्म से निश्चित होता है, विशेष रूप से निश्चित होता है।

प्र०—जो प्रमाण द्वारा जाना जाय वह लोक है ?

उ०—हाँ भगवन् ! अतएव हे आर्यो ! इस प्रकार कहा जाता है—असंख्य लोक में अनन्त रात्रि दिन उत्पन्न हुए हैं ३ इत्यादि पूर्ववत् है।

तबसे ये पार्श्वापत्य स्थविर श्रमण भगवान महावीर को "सर्वज्ञ सर्वदर्शी" जानने लगे।

तदनन्तर वे स्थविर भगवंत श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार कर इस प्रकार बोले—"हे भगवन् ! हम आपके समीप चार याम धर्म से (बदलकर) सप्रतिक्रमण पंचमहाव्रत धर्म को स्वीकार कर विचरना चाहते हैं।

हे देवानुप्रियो ! आपको जिस प्रकार सुख हो वैसा करो किन्तु प्रतिबन्ध (देर) न करो।

तदनन्तर वे पार्श्वापत्य स्थविर भगवंत—यावत्—अन्तिम श्वासोच्छ्वासों से सिद्ध हुए—यावत्—सब दुःखों से मुक्त हुए। कुछ देवलोकों में उत्पन्न हुए।

मणुयलोयस्स मेरा—

६२. जावं च णं माणुसुत्तरे पव्वए, तावं च णं अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं वासाइं वा, वासहराइं वा, तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं गेहाइ वा, गेहावणाइ वा, तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं गामाइ वा, जाव-रायहाणीइ वा, तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं अरहंता, चक्कवट्टि, बलदेवा, वासुदेवा, पडिवासुदेवा, चारणा, विज्जाहरा, समणा, समणीओ, सावया, सावियाओ, मणुया, पगइभद्दगा, विणीया, तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं समयाइ वा, आवलियाइ वा, आणापाणइ वा, थोवाइ वा, लवाइ वा, मुहुत्ताइ वा, दिवसाइ वा, अहोरत्ताइ वा, पक्खाइ वा, मासाइ वा, उडुइ वा, अयणाइ वा, संवच्छराइ वा, जुगाइ वा, वाससयाइ वा, वाससहस्साइ वा, वाससयसहस्साइ वा, पुव्वंगाइ वा, पुव्वाइ वा, तुडियंगाइ वा, तुडियाइ वा, एवं अडडे, अववे, हुहुंकए, उप्पले, पउमे, णलिले, अच्छिनिउरे, अउए, णउए, मउए, चूलिया, सीसपहेलिया, पलिओवमेइ वा, सागरोवमेइ वा, ओसप्पिणीइ वा, उस्सप्पिणीइ या, तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं बादरे विज्जुक्कारे, बायरे थणियसद्दे, तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं बहवे ओराला बलाहका संसेयंति, समुच्छंति, वासं वासंति, तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ। जावं च णं बायरे तेउक्काए, तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं आगराइ वा, नईइ वा, णिहीइ वा, तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं अगडाइ वा, वावीइ वा, तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं चंदोवरागाइ वा, सूरोवरागाइ वा, चंदपरिसाइ वा, सूरपरिसाइ वा, पडिचंदाइ वा, पडिसूराइ वा, इंदधणूइ वा, उदगमच्छेइ वा, कपिहसियाणि वा, तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं चंदिम-सूरिय-गह-णक्खत्त-तारारूवाणं अभिगमण-निग्गमण-वुड्ढि-णिवुड्ढि-अणवट्टिय-संठाण-संठिइ आघविज्जइ तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ।

—जीवा. पडि. ३, उ. सु. १७८, १७९।

मनुष्य लोक की मर्यादा—

६२. जहाँ तक मानुषोत्तर पर्वत है, वहाँ तक यह लोक है—ऐसा कहा जाता है।

जहाँ तक वर्ष हैं, वर्षधर (पर्वत) हैं वहाँ तक यह लोक है—ऐसा कहा जाता है।

जहाँ तक गृह हैं, गृह पंक्ति हैं, वहाँ तक यह लोक है, ऐसा कहा जाता है।

जहाँ ग्राम हैं यावत् राजधानियाँ हैं, वहाँ तक यह लोक है, ऐसा कहा जाता है।

जहाँ तक अर्हन्, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, चारण, विद्याधर, श्रमण-श्रमणियाँ, श्रावक-श्राविकायें, मनुष्य, प्रकृतिभद्रक (प्रकृति के भद्र) विनीत हैं, वहाँ तक यह लोक है, ऐसा कहा जाता है।

जहाँ तक समय, आवलिका, आनप्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, वर्षशत, वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, इस प्रकार से अटट, अवव, हुहूँकृत, उत्पल, पद्म, नलिन, अक्षिनुपूर, अयुत, नियुत, मुकुट, चूलिका, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी है—वहाँ तक यह लोक है, ऐसा कहा जाता है।

जहाँ तक बादर विद्युत है, बादर स्तनित शब्द है, वहाँ तक यह लोक है—ऐसा कहा जाता है।

जहाँ तक अनेक औदारिक वारिधर (बादल) स्वेद उत्पन्न करते हैं, उत्पन्न होते हैं, वर्षा करते हैं, वहाँ तक लोक है, ऐसा कहा जाता है।

जहाँ तक आकर (खानें) हैं, नदी हैं, निधि हैं, वहाँ तक लोक है, ऐसा कहा जाता है।

जहाँ तक अगड (कूप) हैं, वापिकाएँ हैं, वहाँ तक लोक है, ऐसा कहा जाता है।

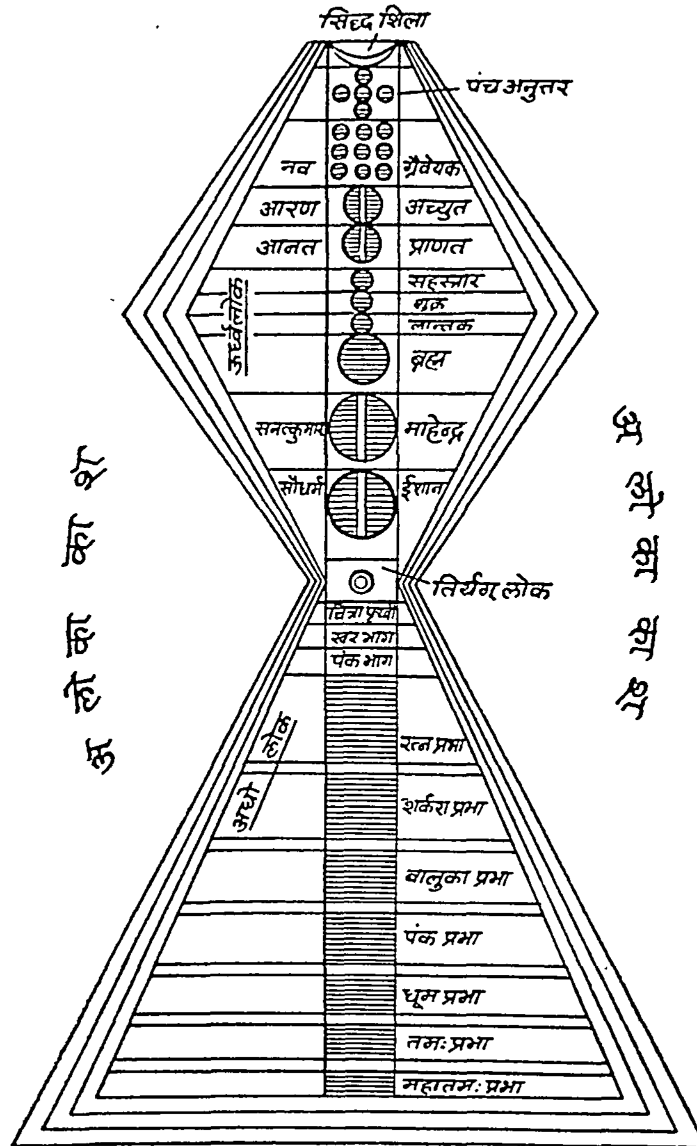
जहाँ तक चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहण हैं, चन्द्र परिषद हैं, सूर्य परिषद हैं, प्रतिचन्द्र हैं, प्रतिसूर्य है, इन्द्रधनुष हैं, जलमत्स्य है, कपि हसित—(कपि के हास्य समान मेघगर्जन) हैं वहाँ तक लोक है—ऐसा कहा जाता है।

जहाँ तक चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-तारकों का अभिगमन-निर्गमन-वृद्धि-निर्वृद्धि-अपरिवर्तित-संस्थान-संस्थिति कही जाती है—वहाँ तक यह लोक है, ऐसा कहा जाता है।

॥ समत्ता लोय पण्णत्ति ॥



॥ लोक प्रज्ञप्ति समाप्त ॥



सम्पूर्ण लोक की ऊँचाई १४ राजू है। अधोलोक की ऊँचाई ७ राजू प्रमाण, ऊर्ध्व लोक की ऊँचाई १ लाख योजन कम ७ राजू तथा मध्य लोक की ऊँचाई १ लाख योजन प्रमाण है।

अधोलोक का सबसे नीचे ७ राजू विस्तार, मध्य लोक का बीच में १ राजू विस्तार (समय क्षेत्र ४५ लाख योजन) ऊर्ध्व-लोक का मध्य में ब्रह्मकल्प के सम भाग में ५ राजू तथा ऊपरी शीर्ष का विस्तार १ राजू (सिद्धशिला ४५ लाख योजन) प्रमाण ही। इस लोक के बाहर चारों ओर असीम अनन्त अलोकाकाश है।

अलोक प्रज्ञप्ति

[सूत्र १ से ८ पृष्ठ ७३७-७३८]

अलोय-पण्णत्ति

अलोक-प्रज्ञप्ति

अलोगस्स एगत्तं—

१. एगे अलोए[1] —ठाणं. अ. १, सु. ५।

दव्वओ अलोगस्स सरूवं—

२. दव्वओ णं अलोए—
णेवत्थि जीवदव्वा, णेवत्थि अजीवदव्वा, णेवत्थि जीवाजीवदव्वा। —भग. स. ११, उ. १०, सु. २३।
एगे अजीवदव्वदेसे अगुरुलहुए।
अणंतेहिं अगुरुलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासे अणंतभागूणे[2]
—भग. स. २, उ. १०, सु. १२।

कालओ अलोगस्स णिच्चत्तं—

३. कालओ णं अलोए न कयायि-जाव-णिच्चे[3]
—भग. स. ११, उ. १०, सु. २४/२।

भावओ अलोगस्स अरूवत्तं—

४. भावओ णं अलोए णेवत्थि वण्णपज्जवा-जाव-णेवत्थि अगुरुलहुयपज्जवा। —भग. स. ११, उ. १०, सु. २५/३।

अलोग-संठाण परूवणं—

५. प०—अलोए णं भंते! किं संठिए पण्णत्ते?
उ०—गोयमा! झुसिर गोल संठिए पण्णत्ते।
—भग. स. ११, उ. १०, सु. ११।

अलोगागास-सरूवं—

६. प०—अलोगागासे णं भंते! किं जीवा, जीवदेसा, जीव पएसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपएसा?
उ०—गोयमा! नो जीवा, नो जीवदेसा, नो जीव पएसा, नो अजीवा, नो अजीवदेसा, नो अजीवपएसा।

अलोक का एकत्व—

१. अलोक एक है।

द्रव्य से अलोक का स्वरूप—

२. द्रव्य से अलोक में न जीव द्रव्य है, न अजीव द्रव्य है और न जीवाजीव द्रव्य है।

अलोक अजीव द्रव्य का एक देश है, वह अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से युक्त है, अनन्त भाग कम पूर्ण आकाश है।

काल से अलोक का नित्यत्व—

३. काल से अलोक कदापि नहीं था—यावत्—नित्य है।

भाव से अलोक का अरूपत्व—

४. भाव से अलोक न वर्णपर्यव है—यावत्—न अगुरुलघु पर्यव है?

अलोक के संस्थान का प्ररूपण—

५. प्र०—भगवन्! अलोक का कौन सा संस्थान कहा गया है?
उ०—गौतम! पोले गोले के जैसा संस्थान कहा गया है।

अलोकाकाश का स्वरूप—

६. प्र०—भगवन्! अलोकाकाश क्या जीव है, जीव देश है, जीव प्रदेश है, अजीव है, अजीव देश है, अजीव प्रदेश है?
उ०—गौतम! न जीव है, न जीव देश है, न जीव प्रदेश है, न अजीव है, न अजीव देश है, न अजीव प्रदेश है।

---

१ सम० स० १, सु० ३।
२ (क) भग० स० ११, उ० १०, सु० १६।
(ग) भग० स० ११, उ० १०, सु० २३।
(ङ) पण्ण० प० १५, सु० १००५।
३ एवं जाव अलोगे।

(ख) भग० स० ११, उ० १०, सु० २१।
(घ) भग० स० ११, उ० १०, सु० २५/३।

—भग० स० ११, उ० १०, सु० २४/२

एगे अजीवदव्वदेसे अगुरुलहुए, अणंतेहिं अगुरुय-लहुयगुणेहिं संजुते; सव्वागासे अणंतभागूणे।

—भग. स. २, उ. १०, सु. १२।

अलोक एक अजीव द्रव्य देश है, अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से संयुक्त है, अनन्त भाग कम पूर्ण आकाश है।

प०—अलोए णं भंते ! किं जीवा-जाव-अजीव पएसा ?

प्र०—भगवन् ! अलोक क्या जीव है—यावत्—अजीव प्रदेश है ?

उ०—गोयमा ! जहा अलोगागासे।

—भग. स. ११, उ. १०, सु. १६।

उ०—गौतम ! अलोकाकाश जैसा है।

अलोगस्स एगागासपएसे वि नत्थि जीवाइं—

अलोक के एक आकाश प्रदेश में जीवादि नहीं है—

७. प०—अलोगस्स णं भंते ! एगम्मि आगासपएसे किं जीवा, जाव-अजीव पएसा ?

उ०—गोयमा ! नो जीवा-जाव-नो अजीवप्पएसा।

—भग० स० ११, उ० १०, सु० २१।

७. प्र०—भगवन् ! अलोक के एक आकाश प्रदेश में क्या जीव हैं—यावत्—अजीव प्रदेश हैं ?

उ०—गौतम ! न जीव हैं—यावत्—न अजीव प्रदेश हैं।

अलोगस्स महालयत्तं—

अलोक की महानता—

८. प०—अलोए णं भंते ! के महालए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अयं णं समयखेत्ते पणयालीसं जोयण सहस्साइं आयाम-विक्खभेणं एगा जोयण कोडी बायालीसं च जोयणसयसहस्साइं तीसं च जोयणसहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं।

८. प्र०—भगवन् ! अलोक की महानता कितनी कही गई है ?

उ०—गौतम ! यह समय क्षेत्र पैंतालीस लाख योजन का लम्बा चौड़ा है, एक क्रोड, बियालीस लाख, तीस हजार दो सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक की परिधि है।

तेणं कालेणं, तेणं समएणं दस देवा महिड्ढीया-जाव-महेसुक्खा जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए, मंदरं चूलियं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठेज्जा।

उस काल, उस समय, दस महर्धिक—यावत्—महासुखी देव जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत की चूलिका को चारों ओर से घेर कर रहें।

अहे णं अट्ठदिसाकुमारिमहत्तरियाओ अट्ठ बलिपिंडे गहाय माणुसुत्तर पव्वयस्स चउसु वि दिसासु, चउसु वि विदिसासु बहियाभिमुहीओ ठिच्चा अट्ठ बलिपिंडे धरणितलमसंपत्ते खिप्पामेव पडिसाहरित्तए।

नीचे आठ बड़ी दिशाकुमारियाँ आठ बलिपिंड लेकर मानुषोत्तर पर्वत की चारों दिशाओं में चार विदिशाओं में बाहर की ओर मुँह करके खड़ी रहें और आठ बलिपिंड फेंके, उन्हें वे देव भूमि पर गिरने से पहले ग्रहण कर लें।

ते णं गोयमा ! देवा ताए उक्किट्ठाए-जाव-देवगईए लोगंते ठिच्चा असब्भावपट्ठवणाए।

हे गौतम ! उस उत्कृष्ट—यावत्—देवगति से लोक के अन्त में ठहरकर, असद्भाव कल्पना से अलोक का अन्त पाने के लिए,

एगे देवे पुरत्थाभिमुहे पयाए,
एगे देवे दाहिण पुरत्थाभिमुहे पयाए,
एवं जाव उत्तर पुरत्थाभिमुहे पयाए,
एगे देवे उड्ढाभिमुहे पयाए,
एगे देवे अहोभिमुहे पयाए।

एक देव पूर्व दिशा में जावे,
एक देव दक्षिण-पूर्व में जावे इस प्रकार यावत्
एक देव उत्तर-पूर्व में जावे,
एक देव ऊर्ध्व दिशा में जावे,
एक देव अधो दिशा में जावे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं वाससयसहस्साउए दारए पयाए।

उस काल उस समय में एक लाख वर्ष की आयु वाला बच्चा उत्पन्न हुआ।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पहीणा भवंति। तं चेव जाव। नो चेव णं देवा अलोयंतं संपाउणंति।

उस बच्चे के माता-पिता का देहावसान हो गया; वह और उसके पौत्रादि सातवीं पीढ़ी समाप्त हो गई। किन्तु वे देव अलोक का अंत नहीं पा सके।

अधिक ?

उ०—गोयमा ! नो गए बहुए, अगए बहुए,

उ०—गौतम ! गत अलोक अधिक नहीं अपितु अगत अलोक अधिक है।

गयाओ से अगए अणंत गुणे,

गत अलोक से अगत अलोक अनन्तगुण अधिक है।

अगयाओ से गए अणंतभागे,

गत अलोक अगत अलोक का अनन्तवां भाग है।

अलोए णं गोयमा ! ए महालए पण्णत्ते।

गौतम ! अलोक इतना बड़ा कहा गया है।

—भग. स. ११, उ. १०, सु. २७।

अलोगस्स फुसणं—

अलोक का स्पर्श—

९. प०—अलोए णं भंते ! किण्णा फुडे ?
कइहिं वा काएहिं फुडे ?
किं धम्मत्थिकाएणं फुडे ?-जाव-
किं आगासत्थिकाएणं फुडे ?

९. प्र०—भगवन् ! अलोक किससे स्पृष्ट है ?
कितनी कायों से स्पृष्ट है ?
क्या धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है ? यावत्
क्या आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट है ?

उ०—गोयमा ! नो धम्मत्थिकाएणं फुडे-जाव-नो आगासत्थिकाएणं फुडे।

उ०—गौतम ! न धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है—यावत्—न आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट है।

आगासत्थिकायस्स देसेणं फुडे।
आगासत्थिकायस्स पदेसेहिं फुडे।

आकाशास्तिकाय के देश से स्पृष्ट है।
आकाशास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट है।

नो पुढविक्काइएणं फुडे-जाव-नो अद्धासमएणं फुडे।

पृथ्वीकाय से स्पृष्ट नहीं है—यावत्—अद्धासमय (काल द्रव्य) से स्पृष्ट नहीं है।

—पण्ण० प० १५, उ० १, सु० १००५

॥ अलोय पण्णत्ति समत्ता ॥

॥ अलोक प्रज्ञप्ति समाप्त ॥



लोकालोक प्रज्ञप्ति

[सूत्र १ से १० पृष्ठ ७४१ से ७४८ तक]

लोकालोक प्रज्ञप्ति

जीवाणं पोग्गलाणं लोगस्स वहिया गमणमसक्कं—

चउहिं ठाणेहिं जीवा य, पोग्गला य, नो संचाएंति वहिया लोगंता गमणाए। तं जहा—

(१) गइ अभावेणं

(२) निरुवग्गहया

(३) लुक्खत्ताए

(४) लोगाणुभावेणं। —ठाणं० अ० ४, उ० ३, सु० ३३४

देवस्स अलोगंसि हत्थाइ आउंटणाइ असामत्थ निरूवणं—

प०—देवे णं भंते! महिड्ढीए-जाव-महेसक्खे, लोगंते ठिच्चा, णो पभू अलोगंसि हत्थं वा-जाव-उरुं वा आउंटावेत्तए वा पसारेत्तए वा?

उ०—नो इणट्ठे समट्ठे।

प०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—"देवे णं महिड्ढीए-जाव-महेसक्खे लोगंते ठिच्चा णो पभू अलोगंसि हत्थं वा-जाव-उरुं वा आउंटावेत्तए वा, पसारेत्तए वा?

उ०—गोयमा! जीवाणं आहारोवचिया पोग्गला।

बोंदिचिया पोग्गला,

कलेवरचिया पोग्गला,

पोग्गलमेव पप्प जीवाण य, अजीवाण य, गइपरियाए आहिज्जइ।

अलोए नेवत्थि जीवा, नेवत्थि पोग्गला,

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—"देवेणं महिड्ढीए-जाव-महेसक्खे लोगंते ठिच्चा णो पभू अलोगंसि हत्थं वा-जाव-उरुं वा आउंटावेत्तए वा, पसारेत्तए वा।

—भग० स० १६, उ० ८, सु० १५

आगासत्थिकायस्स भेया—

३. प०—कइविहे णं भंते! आगासे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! दुविहे आगासे पण्णत्ते। तं जहा—
(१) लोगागासे य, (२) अलोगागासे य।

—भग० स० २, उ० १०, सु० १०

जीव और पुद्गलों का लोक से बाहर गमन अशक्य—

१. जीव और पुद्गलों का चार कारणों से लोक से बाहर गमन शक्य नहीं है:—

(१) गति के अभाव से

(२) गति सहायक धर्मास्तिकाय के अभाव से,

(३) रूक्षता होने से,

(४) लोक स्वभाव होने से।

अलोक में देव का हाथ आदि फैलाने के असामर्थ्य का निरूपण—

२. प्र०—भगवन्! महर्धिक—यावत्—महासुखी महान् देव लोकान्त में स्थित होकर अलोक में हाथ—यावत्—उरु को सिकोड़ने या पसारने में समर्थ है?

उ०—गौतम! समर्थ नहीं है।

प्र०—भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा गया है कि महर्धिक—यावत्—महासुखी महान् देव लोकान्त में स्थित होकर अलोक में हाथ—यावत्—उरु को सिकोड़ने-पसारने में समर्थ नहीं है?

उ०—गौतम! जीवों का आहार-पुद्गलों से निष्पन्न होता है।

शरीर पुद्गलों से निष्पन्न होता है।

कलेवर पुद्गलों से निष्पन्न होता है।

पुद्गलों के सहयोग से जीवों एवं अजीवों की गति कही गई है।

अलोक में न जीव हैं और न पुद्गल हैं।

हे गौतम! इस कारण से इस प्रकार कहा गया है कि महर्धिक—यावत्—महासुखी महान् देव लोकान्त में स्थित होकर अलोक में हाथ—यावत्—उरु को सिकोड़ने में या पसारने में समर्थ नहीं है।

आकाशास्तिकाय के भेद—

३. प्र०—भगवन्! आकाश कितने प्रकार का कहा गया है?

उ०—गौतम! आकाश दो प्रकार का कहा गया है, यथा—
(१) लोकाकाश (२) अलोकाकाश।

लोगागास-सरूवं—

४. प०—लोगागासे णं भंते ! किं जीवा, जीवदेसा, जीवपएसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपएसा ?

उ०—गोयमा ! जीवा वि, जीवदेसा वि, जीवपएसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपएसा वि।

जे जीवा ते नियमा एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचेंदिया, अणिंदिया।

जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा-जाव-अणिंदिय देसा।

जे जीवपएसा ते नियमा एगिंदियपएसा-जाव-अणिं-दियपएसा।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—

(१) रूवी य, (२) अरूवी य।

जे रूवी ते चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—

(१) खंधा, (२) खंधदेसा, (३) खंध पएसा, (४) पर-माणु पोग्गला।

जे अरूवी ते पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—

(१) धम्मत्थिकाए, नो धम्मत्थिकायस्स देसे,

(२) धम्मत्थिकायस्स पएसा।

(३) अधम्मत्थिकाए, नो अधम्मत्थिकायस्स देसे,

(४) अधम्मत्थिकायस्स पएसा, (५) अद्धासमए।

—भग० स० २, उ० १०, सु० ११

लोकाकाश का स्वरूप—

४. प्र०—भगवन् ! लोकाकाश में क्या जीव हैं, जीवदेश हैं, और जीवप्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीवदेश हैं और अजीव-प्रदेश हैं ?

उ०—गौतम ! जीव भी हैं, जीवदेश भी हैं, जीवप्रदेश भी हैं, अजीव भी हैं, अजीवदेश भी हैं अजीवप्रदेश भी हैं।

जो जीव हैं, वे निश्चित रूप से एकेन्द्रिय हैं, द्वीन्द्रिय हैं, त्रीन्द्रिय हैं, चतुरिन्द्रिय हैं, पंचेन्द्रिय हैं, अनिन्द्रिय हैं।

जो जीवदेश हैं वे निश्चित रूप से एकेन्द्रिय के देश हैं—यावत्—अनिन्द्रिय के देश हैं।

जो जीवप्रदेश हैं वे निश्चित रूप से एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं—यावत्—अनिन्द्रिय के प्रदेश हैं।

जो अजीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) रूपी, (२) अरूपी।

जो रूपी हैं वे चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) स्कन्ध, (२) देश, (३) प्रदेश, (४) परमाणु पुद्गल।

जो अरूपी हैं वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) धर्मास्तिकाय है, धर्मास्तिकाय के देश नहीं,

(२) धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं।

(३) अधर्मास्तिकाय है, अधर्मास्तिकाय के देश नहीं,

(४) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं, (५) अद्धासमय—काल द्रव्य हैं।

लोगस्स चरिमाचरिम विभागा—

५. प०—लोए णं भंते ! किं चरिमं, अचरिमं[1] ?

चरिमाइं, अचरिमाइं[2] ?

चरिमंत पएसे, अचरिमंत पएसे ?

उ०—गोयमा ! लोए नो चरिमे, नो अचरिमे,

नो चरिमाइं, नो अचरिमाइं,

नो चरिमंत पएसे, नो अचरिमंत पएसे[3]

नियमा—अचरिमं, चरिमाणि य,

चरिमंत पएसे य, अचरिमंत पएसे य[4]।

—पण्ण० प० १०, सु० ७७६

लोक के चरमाचरम विभाग—

५. प्र०—भगवन् ! लोक क्या चरिम है या अचरिम है ?

चरिम हैं या अचरिम हैं ?

चरिमान्त प्रदेश है अचरिमान्त प्रदेश हैं ?

उ०—गौतम ! लोक न चरिम है, न अचरिम है,

न चरिम हैं, न अचरिम हैं,

न चरिमान्त प्रदेश है, न अचरिमान्त प्रदेश हैं।

लोक निश्चित रूप से अनेक चरिम है, अचरिम हैं।

चरिमान्त प्रदेश है, अचरिमान्त प्रदेश हैं।

---

१ 'चरिम'=अन्तिम। 'चरिम' सदा दूसरे की अपेक्षा से होता है। इसलिए यह सापेक्ष शब्द है।

२ 'अचरिम'=मध्यवर्ती। 'अचरिम'—सदा 'चरिम' की अपेक्षा से होता है। इसलिए यह भी सापेक्ष शब्द है।
चरिम और अचरिम—ये दोनों पारिभाषिक शब्द हैं।

३ लोक की यदि अखण्ड रूप से विवक्षा की जाय तो प्रश्न सूत्र गत छहों विकल्पों का सर्वथा निषेध है।

४ (क) लोक असंख्यात प्रदेशावगाढ है अतः उसकी अवयव, अवयवी भाव से विवक्षा की जाय तो लोक के अन्तिम खण्डों के मध्य में लोक का जो एक विशाल खण्ड है वह एक वचनान्त 'अचरिम' है। (शेष पृष्ठ ७४३ पर)

अलोगस्स चरिमा चरम विभागा—

६. प०—अलोए णं भंते ! किं चरिमे अचरिमे चरिमाइं अचरिमाइं चरिमंतपएसे अचरिमंतपएसे ?

उ०—गोयमा ! अलोए नो चरिमे, नो अचरिमे,
नो चरिमाइं, नो अचरिमाइं,
नो चरिमंत पएसे, नो अचरिमंत पएसे।
नियमा अचरिमं चरिमाणि य, चरिमंतपएसे य, अचरिमंतपएसे य[1] —पण्ण० प० १०, सु० ७७६

अलोक के चरमाचरम विभाग—

६. प्र०—अलोक क्या चरिम है, अचरिम है, चरिम हैं, अचरिम हैं ? चरिमान्त प्रदेश हैं, अचरिमान्त प्रदेश हैं ?

उ०—गौतम ! अलोक न चरिम है, न अचरिम है,
न चरिम हैं, न अचरिम हैं,
न चरिमान्त प्रदेश हैं, न अचरिमान्त प्रदेश हैं।
अलोक निश्चित रूप से—अचरिम है, अनेक अचरिम हैं, चरिमान्त प्रदेश हैं, अचरिमान्त प्रदेश हैं।

लोगस्स चरिमाचरिमपयाणं अप्प-बहुत्तं—

७. प०—लोगस्स णं भंते ! अचरिमस्स य, चरिमाण य, चरिमंत पएसाण य, अचरिमंत पएसाण य, दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्व-पएसट्ठयाए, कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

उ०—गोयमा ! सव्वत्थोवे लोगस्स,
दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,
चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं।
पएसट्ठयाए सव्वत्थोवा चरिमंत पएसा।
अचरिमंत पएसा असंखेज्जगुणा।
चरिमंतपएसा य, अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया।
दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवे।
दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,
चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
अचरिमं च चरिमाणि य दोवि विसेसाहियाइं—
चरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा,
अचरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा,
चरिमंतपएसा य, अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया[2]। —पण्ण० प० १०, सु० ७७८

लोक के चरमाचरम पदों का अल्प-बहुत्व—

७. प्र०—भगवन् ! लोक के अचरिम, चरिम, चरिमान्त प्रदेश अचरिमान्त प्रदेश, द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेश की अपेक्षा से, द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेष अधिक हैं ?

उ०—गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से—सबसे अल्प लोक का एक अचरिम है।
चरिम असंख्यातगुण हैं।
अचरिम और चरिम ये दोनों विशेषाधिक हैं।
प्रदेश की अपेक्षा से—सबसे अल्प चरिमान्त प्रदेश हैं,
अचरिमान्त प्रदेश असंख्यातगुण हैं,
चरिमान्त प्रदेश और अचरिमान्त प्रदेश ये दोनों विशेष अधिक हैं।
द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से—सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा एक अचरिम हैं।
चरिम असंख्यगुण है।
अचरिम और चरिम ये दोनों विशेषाधिक हैं।
चरिमान्त प्रदेश असंख्यगुण हैं।
अचरिमान्त प्रदेश असंख्यगुण हैं।
चरिमान्त प्रदेश और अचरिमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

(शेष पृष्ठ ७४२ का)

(ख) लोक के अनेक अन्तिम खण्ड हैं वे बहुवचनान्त 'चरिम' हैं।

(ग) प्रदेशों की अपेक्षा से लोक की विवक्षा की जाय तो लोक के अन्त में रहे हुए खण्डों के जो प्रदेश हैं वे 'चरिमान्त प्रदेश' हैं। लोक के मध्यवर्ती खण्डों के जो प्रदेश हैं वे 'अचरिमान्त प्रदेश' हैं।

(घ) ऊपर अंकित सूत्रांक में—'लोगे वि एवं चेव' यह संक्षिप्त वाचना का पाठ है—अतः यहाँ सूत्र ७७५ के आधार से मूल व्यवस्थित किया है।

१ (क) लोक के टिप्पणों के समान अलोक के टिप्पण भी हैं।
(ख) ऊपर अंकित सूत्रांक में 'एवं अलोगे वि' यह संक्षिप्त वाचना का पाठ है—अतः यहाँ सूत्र ७७५ के अनुसार मूलपाठ व्यवस्थित किया है।

२ इस सूत्रांक में 'लोगस्स य एवं चेव' यह संक्षिप्त वाचना का पाठ है। अतः सूत्रांक ७७७ के मूल पाठ से व्यवस्थित किया है।

अलोगस्स चरिमाचरिम पयाणं अप्पबहुत्तं—

८. प०—अलोगस्स णं भंते ! अचरिमस्स य चरिमाण य, चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य, दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा, तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

उ०—गोयमा ! सव्वत्थोवे अलोगस्स,
दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,
चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियं।

पएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अलोगस्स चरिमंत पएसा,

अचरिमंत पएसा अनन्तगुणा,
चरिमंत पएसा य, अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया।

दव्वट्ठपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवे अलोगस्स एगे अचरिमे।

चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं।
चरिमंत-पएसा असंखेज्जगुणा,
अचरिमंतपएसा अणंतगुणा,
चरिमंत पएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया। —पण्ण० प० १०, सु० ७७९

अलोक के चरमाचरम पदों का अल्प-बहुत्व—

८. भगवन् ! अलोक के अचरिम, चरिम, चरिमान्त प्रदेश और अचरिमान्त प्रदेश, द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा, द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा कौन किससे अल्प हैं, अधिक है, तुल्य हैं या विशेषाधिक हैं ?

उ०—गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से—सबसे अल्प अलोक का एक अचरिम है।
चरिम असंख्यगुण हैं।
अचरिम और चरिम ये दो विशेषाधिक हैं।

प्रदेश की अपेक्षा से—सबसे अल्प अलोक के चरिमान्त प्रदेश हैं।

अचरिमान्त प्रदेश अनन्तगुण हैं।
चरिमान्त प्रदेश और अचरिमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से—सबसे अल्प अलोक का एक अचरिम है।

चरिम असंख्यगुण हैं।
अचरिम और चरिम ये दो विशेषाधिक हैं।
चरिमान्त प्रदेश असंख्यगुण हैं।
अचरिमान्त प्रदेश अनन्तगुण हैं।
चरिमान्त प्रदेश और अचरिमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

लोगालोगस्स चरिमाचरिमपयाणं अप्प-बहुत्तं—

९. प०—लोगालोगस्स णं भंते ! अचरिमस्स य चरिमाण य, चरिमंत पएसाण य, अचरिमंत पएसाण य, दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठ पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

उ०—गोयमा ! सव्वत्थोवे लोगालोगस्स—
दव्वट्ठयाए एगमेगे अचरिमे,
लोगस्स चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
अलोगस्स चरिमाइं विसेसाहियाइं,
लोगस्स य अलोगस्स य अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं।

पएसट्ठयाए सव्वत्थोवा लोगस्स चरिमंत पएसा,
अलोगस्स चरिमंत पएसा विसेसाहिया,
लोगस्स अचरिमंत पएसा असंखेज्जगुणा,
अलोगस्स अचरिमंत पएसा अनन्तगुणा,
लोगस्स य, अलोगस्स य चरिमंत पएसा य, अचरिमंत पएसा य, दो वि विसेसाहिया।

लोकालोक के चरमाचरम पदों का अल्प-बहुत्व—

९. प्र०—भगवन् ! लोकालोक के अचरिम, चरिम, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश, द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से, द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

उ०—गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से—सबसे अल्प लोकालोक का एक अचरिम हैं।
लोक के चरिम असंख्यगुण हैं।
अलोक के चरिम प्रदेश विशेषाधिक हैं।
लोकालोक के अचरिम और चरिम ये दोनों विशेषाधिक हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा से—सबसे अल्प लोक के चरमान्त प्रदेश हैं।
अलोक के चरमान्त प्रदेश विशेषाधिक हैं।
लोक के अचरिमान्त प्रदेश असंख्यगुण हैं।
अलोक के अचरिमान्त प्रदेश अनन्तगुण हैं।
लोकालोक के चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए सव्वत्थोवे लोगालोगस्स,
दव्वट्ठयाए एगमेगे अचरिमे,

लोगस्स चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
अलोगस्स चरिमाइं विसेसाहियाइं,

लोगस्स य, अलोगस्स य, अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं।
लोगस्स चरिमंत पएसा असंखेज्जगुणा,
अलोगस्स चरिमंत पएसा विसेसाहिया,
लोगस्स अचरिमंत पएसा असंखेज्जगुणा,
अलोगस्स अचरिमंत पएसा अणंतगुणा,
लोगस्स य अलोगस्स य चरिमंत पएसा य, अचरिमंत पएसा य दो वि विसेसाहिया,
सव्व दव्वा विसेसाहिया,
सव्व पएसा अनंतगुणा,
सव्व पज्जवा अनंतगुणा।

—पण्ण० प० १०, सु० ७८०

द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से—
द्रव्य की अपेक्षा से—सबसे अल्प लोकालोक के एक-एक अचरिम हैं।

लोक के चरिम असंख्यगुण हैं।
अलोक के चरिम विशेषाधिक हैं।

लोकालोक के चरिमान्त प्रदेश और अचरिमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।
लोक के चरमान्त प्रदेश असंख्यगुण हैं।
अलोक के चरमान्त प्रदेश विशेषाधिक हैं।
लोक के अचरमान्त प्रदेश असंख्यगुण हैं।
अलोक के अचरमान्त प्रदेश अनन्तगुण हैं।
लोक और अलोक के चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।
सर्व द्रव्य विशेषाधिक हैं।
सर्व प्रदेश अनन्तगुण हैं।
सर्व पर्यव अनन्तगुण हैं।

लोय-अलोय-ओवासंतईणं पुव्वा-ऽवरविसए (रोह अणगारपण्हाणं समाहाणं)—

लोक अलोक और अवकाशान्तर आदि में पूर्वापर कौन ? (इस सम्बन्ध में रोहा अणगार के प्रश्न और समाधान—)

१०. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी रोहे णामं अणगारे पगइभद्दए पगइमउए पगइविणीए पगइउवसंते पगइपतणुकोह-माण-माय-लोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे भद्दए विणीए समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढं जाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से रोहे नामं अणगारे जायसड्ढे-जाव-पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

प०—पुव्वि णं भंते ! लोए ? पच्छा अलोए ? पुव्वि अलोए ? पच्छा लोए ?

उ०—रोहा ! लोए य अलोए य पुव्वि पेते, पच्छा पेते, दो वि ते सासया भावा—अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

प०—पुव्वि भंते ! लोअंते ? पच्छा अलोअंते ? पुव्वि अलोअंते ? पच्छा लोअंते ?

उ०—रोहा ! लोयंते य अलोयंते य-जाव-अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

प०—पुव्वि भंते ! लोअंते ? पच्छा सत्तमे ओवासंतरे ? पुव्वि सत्तमे ओवासंतरे ? पच्छा लोयंते ?

१०. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर का अंतेवासी रोहा नामक अणगार जो भद्रप्रकृति मृदुप्रकृति, विनीतप्रकृति, उपशान्तप्रकृति, अल्प क्रोध-मान-माया-लोभ प्रकृति, मृदु-मार्दव सम्पन्न, अलिप्त भद्र एवं विनीत था। वह श्रमण भगवन महावीर के समीप ऊर्ध्व जानु तथा अधोशिर करके ध्यानमग्न हुआ और संयम एवं तप से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ स्थित रहा।

तदनन्तर वह रोहा अणगार श्रद्धायुक्त—यावत्—पर्युपासना करता हुआ इस प्रकार बोला—

प्र०—हे भगवन् ! लोक पहले है और अलोक पीछे है या अलोक पहले है और लोक पीछे है ?

उ०—हे रोहा ! लोक तथा अलोक पहले भी है और पीछे भी है—ये दोनों शाश्वत भाव हैं। हे रोहा ! यह अनानुपूर्वी है अर्थात् यह पहले और यह पीछे—इनका ऐसा क्रम नहीं है।

प्र०—हे भगवन् ! पहले लोकान्त है और पीछे अलोकान्त है या पहले अलोकान्त है और पीछे लोकान्त है ?

उ०—हे रोहा ! लोकान्त और अलोकान्त—यावत्—हे रोहा ! यह अनानुपूर्वी है।

प्र०—हे भगवन् ! पहले लोकान्त है और पीछे सप्तम अवकाशान्तर है या पहले सप्तम अवकाशान्तर और पीछे लोकान्त है ?

उ०—रोहा ! लोअंते य सत्तमे य ओवासंतरे पुव्विं पेते-जाव-अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

एवं लोअंते य सत्तमे य तणुवाते ।
एवं घणवाते, घणोदही सत्तमा पुढवी ।

एवं लोअंते एक्केक्केणं संजोएयव्वे इमेहिं ठाणेहिं तं जहा—

गाहाओ—

ओवास वात घण उदहि, पुढवि, दीवा य सागरा वासा ।
नेरइयादि अत्थि य, समया कम्माइं लेस्साओ ॥

दिट्ठी दंसण णाणा, सण्ण सरीरा य जोग उवओगे ।
दव्व पदेसा पज्जव अद्धा ।

प०—किं पुव्विं लोयंते ?
उ०—

प०—पुव्विं भंते ! लोयंते ? पच्छा सव्वद्धा ?
उ०—

रोहा ! जहा लोयंतेणं संजोइया सव्वे ठाणा एते, एवं अलोयंतेणं वि संजोएयव्वा सव्वे ।

प०—पुव्विं भंते ! सत्तमे ओवासंतरे ? पच्छा सत्तमे तणुवाते ?

उ०—

रोहा ! एवं सत्तमं ओवासंतरे सव्वेहिं समं संजोएयव्वे -जाव-सव्वद्धाए ।

प०—पुव्विं भंते ! सत्तमे तणुवाते ? पच्छा सत्तमे घणवाते ?

उ०—

एयं पि तहेव नेतव्वं-जाव-सव्वद्धा ।

एवं उवरिल्लं एक्केक्कं संजोयंतेणं जो जो हेट्ठिल्लो तं तं छड्डेंतेणं नेयव्वं-जाव-अतीत-अणागतद्धा पच्छा सव्वद्धा जाव अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

सेवं भंते ३ जाव विहरति ।
—भग. स. १, उ. ६, सु. १२-१३, १७-२४

॥ समत्ता लोय-अलोय पण्णत्ति ॥

उ०—हे रोहा ! लोकान्त और सप्तम अवकाशान्तर पहले भी है—यावत्—हे रोहा ! यह अनानुपूर्वी है ।

इस प्रकार लोकान्त और सप्तम तनुवात, इसी प्रकार घनवात, घनोदधि और सप्तम पृथ्वी हैं ।

इसी प्रकार इन (आगे कहे जाने वाले) स्थानों में से प्रत्येक के साथ लोकान्त को संयुक्त करना चाहिये । यथा—

गाथार्थ—

(१) अवकाशान्तर, (२) वात, (३) घनोदधि, (४) पृथ्वी, (५) द्वीप, (६) सागर, (७) वर्ष (क्षेत्र), (८) नारकी आदि के २४ दण्डक, (९) अस्तिकाय, (१०) समय, (११) कर्म, (१२) लेश्या,

(१३) दृष्टि, (१४) दर्शन, (१५) ज्ञान, (१६) संज्ञा, (१७) शरीर, (१८) योग, (१९) उपयोग, (२०) द्रव्य, (२१) प्रदेश, (२२) पर्याय और (२३) काल ।

प्र०—क्या ये पहले हैं और लोकान्त पीछे है ?
उ०—पूर्ववत् है ।

प्र०—हे भगवन् ! पहले लोकान्त है और पीछे सर्वअद्धा है ?
उ०—पूर्ववत् है ।

जिस प्रकार उक्त—सब स्थान लोकान्त के साथ संयुक्त किये गये हैं इसी प्रकार ये सब (उक्त) स्थान अलोकान्त के साथ भी संयुक्त करने चाहिए ।

प्र०—हे भगवन् ! पहले सप्तम अवकाशान्तर है और पीछे सप्तम तनुवात है ?

उ०—पूर्ववत् है ।

इस प्रकार सप्तम अवकाशान्तर को सबके साथ संयुक्त करने चाहिए—यावत्—सर्वअद्धा पर्यन्त ।

प्र०—हे भगवन् ! पहले सप्तम तनुवात है और पीछे सप्तम घनवात है ?

उ०—पूर्ववत् है ।

इसको भी सर्वअद्धा पर्यन्त उसी प्रकार कहना चाहिए ।

इस प्रकार ऊपर के एक-एक को संयुक्त करते हुए और नीचे के एक-एक को छोड़ते हुए कहना चाहिए—यावत्—अतीत अनागत अद्धा पीछे सर्व अद्धा—यावत्—हे रोहा ! यह अनानुपूर्वी है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ३—यावत्—विचरण करता है ।

॥ लोक-अलोक प्रज्ञप्ति समाप्त ॥

परिशिष्ट

- लोकालोक सम्बन्धी विविध प्रश्नोतर
- माप-निरूपण
- पर्वत कूट-द्रह आदि तालिका
- संकलन में प्रयुक्त आगमों के स्थल निर्देश
- विशिष्ट शब्द सूची

परिशिष्ट

१. चत्तारि एक्का पण्णत्ता । तं जहा—

(१) दविए एक्कए, (२) माउए एक्कए, (३) पज्जवेक्कए, (४) संगहे एक्कए ।

२. चत्तारि कती पण्णत्ता । तं जहा—

(१) दविएकती, (२) माउयकती, (३) पज्जवकती, (४) संगहकती ।

३. चत्तारि सव्वा पण्णत्ता । तं जहा—

(१) णाम सव्वए, (२) ठवण सव्वए, (३) आएस सव्वए, (४) णिरवसेस सव्वए ।

—ठाणं० अ० ४, उद्देशक २, सु० १९७

१. चार प्रकार के एक कहे गये हैं । यथा—

(१) द्रव्य एक, (२) मातृका एक, (३) पर्याय एक, (४) संग्रह एक ।[1]

२. चार प्रकार के कति=अनेक कहे गए हैं । यथा—

(१) द्रव्य कति, (२) मातृका कति, (३) पर्याय कति, (४) संग्रह कति ।[2]

३. चार प्रकार के सर्व कहे गए हैं । यथा—

(१) नाम सर्व, (२) स्थापना सर्व, (३) आदेश सर्व, (४) निरवशेष सर्व ।

(विवेचन टिप्पण पृष्ठ ७४८ पर देखें)

---

१. विवेचन—

द्रव्य एक—लोक में अनन्त जीव द्रव्य हैं और अनन्त अजीव द्रव्य हैं । द्रव्यत्व की अपेक्षा जीवद्रव्य है । अजीव द्रव्य भी एक है ।

२. मातृका एक—"उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त" यह मातृका पद एक है । इसमें तीन पद हैं—(१) उत्पाद, (२) व्यय, (३) ध्रौव्य ।

द्रव्य में एक पर्याय उत्पन्न होती है । द्रव्य की एक पर्याय नष्ट होती है और द्रव्य ध्रुव रहता है ।

लोक में स्थित अनन्तानन्त जीवाजीव द्रव्यों का यह मातृकापद एक है ।

३. पर्याय एक—लोक में अनन्त द्रव्य हैं—प्रत्येक द्रव्य की अनन्तानन्त पर्यायें हैं किन्तु पर्यायत्व की अपेक्षा पर्याय एक है ।

४. संग्रह एक—संग्रह अनेक पदार्थों का होता है उन अनेकों का संग्रह एक कहा जाता है ।

"वृक्ष" शब्द से एक वृक्ष भी कहा जाता है और अनेक वृक्ष भी कहे जाते हैं ।

२. विवेचन—

१. द्रव्य कति—प्रत्येक द्रव्य की अपेक्षा लोक में अनेक अर्थात् अनन्त द्रव्य हैं ।

२. मातृका कति—विभिन्न नयों की अपेक्षा से मातृका पद अनेक हैं ।

यथा-मनुष्य—यह एक मातृका पद है—मनुष्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं ।

ब्राह्मण—यह भी मातृका पद है—ब्राह्मण में दाधीच, गौड़, आदि अनेक हैं । इस प्रकार अनेक मातृका पद हैं ।

३. पर्याय कति—प्रत्येक पर्याय की अपेक्षा एक द्रव्य के अनेक पर्याय हैं । अतीतकाल में एक द्रव्य के अनेक पर्याय हुए हैं और भविष्य काल में भी एक द्रव्य के अनेक पर्याय होंगे ।

४. संग्रह कति—अवान्तर जातियों की अपेक्षा अनेक संग्रह हैं यथा—एक उद्यान में अनेक वृक्षों का संग्रह । किन्तु आम, जम्बू, [illegible], इमली, उदुम्बर आदि अवान्तर जातियों की अपेक्षा अनेक संग्रह हैं ।

(शेष टिप्पण अगले पृष्ठ पर देखें)

लोइय गणियप्पगारा—

४ दसविहे संखाणे पण्णत्ते, तं जहा—गाहा

पडिकम्मं ववहारो, रज्जू रासी[1] कलासवण्णे य।
जावं ताव इ वग्गो, घणो य तह वग्गवग्गो वि।
कप्पो य[2]।

—ठाणं अ. १०, सु. ७४७।

लौकिक गणित के प्रकार—

४. दस प्रकार के संख्यान कहे गए हैं। यथा—

(१) परिकर्म, (२) व्यवहार, (३) रज्जू, (४) राशि, (५) कलासवर्ण, (६) यावत् तावत्, (७) वर्ग, (८) घन, (९) वर्गवर्ग, (१०) कल्प।[3]

लोयंत अलोयंताणं फुसणा—

५. प०—लोअंते भंते ! अलोअंतं फुसइ ? अलोअंते वि लोअंतं फुसइ ?

उ०—हंता गोयमा ! लोअंते अलोअंतं फुसइ। अलोअंते वि लोअंतं फुसइ।

प०—तं भंते ! किं पुट्ठं फुसइ, अपुट्ठं फुसइ ?

लोकान्त और अलोकान्त का स्पर्श—

५. प्र०—भगवन् ! लोकान्त अलोकान्त का स्पर्श करता है ? अलोकान्त भी लोकान्त का स्पर्श करता है ?

उ०—हाँ गौतम ! लोकान्त अलोकान्त का स्पर्श करता है। अलोकान्त भी लोकान्त का स्पर्श करता है।

प्र०—भगवन् ! क्या उस स्पृष्ट को स्पर्श करता है या अस्पृष्ट को स्पर्श करता है ?

(शेष विवेचन ७४७ का)

३. विवेचन—

१. **नाम सर्व**—किसी व्यक्ति का "सर्व" नाम है वह नाम सर्व है।

२. **स्थापना सर्व**—किसी एक व्यक्ति या पदार्थ में सर्व की स्थापना करना स्थापना सर्व है।

जिस प्रकार एक व्यक्ति प्रतिनिधि होता है वह "स्थापना सर्व" है। जिन व्यक्तियों की ओर से जिसको प्रतिनिधि बनाया गया है उन सबका वह है अतः स्थापना सर्व है।

३. **आदेश सर्व**—किसी एक व्यक्ति को एक कार्य करने के लिए आदेश दिया। वह व्यक्ति उस कार्य को कर रहा है, कार्य सम्पूर्ण होने वाला है, थोड़ा कार्य शेष है—उस समय उसे पूछा—कार्य हो गया ? उसने कहा—हां हो गया, यह आदेश सर्व है।

४. **निरवशेष सर्व**—एक जगह एक धान्य की राशि पड़ी है, एक ने एक को कहा—यह सारा धान ले आओ, वह सारे धान्य को ले गया, यह निरवशेष सर्व है।

ये तीनों सूत्र सामान्य सूचक हैं—एक, अनेक और सर्व ये तीनों सामान्य संख्यायें हैं।

---

१. चउव्विहे संखाणे पण्णत्ते। तं जहा—
(१) पडिकम्मं, (२) ववहारे, (३) रज्जू, (४) रासी। —ठाणं अ० ४, उ० ३, सु० ३३७।

२. कप्पो य।" इतना गाथा से अधिक है।

३. १. **परिकर्म—संकलित आदि अनेक प्रकार के गणित।**
२. व्यवहार—श्रेणी व्यवहार आदि। इसे पाटी गणित भी कहते हैं।
३. रज्जू—क्षेत्र गणित।
४. **राशि**—अन्न की ढेरी की परिधि से अन्न का प्रमाण निकालना।
५. **कला सवर्ण**—जो संख्या अंशों में हो उसे समान करना।
६. **यावत् तावत् इति**—गुणाकार।
७. **वर्ग**—दो समान संख्याओं का गुणन।
८. **घन**—तीन समान संख्याओं का गुणनफल।
९. **वर्ग वर्ग**—वर्ग को वर्ग से गुणा करना।
१०. कल्प—पाटी गणित का एक प्रकार।
गणित के इन प्रकारों का विशेष ज्ञान करने के लिए स्थानांग वृत्ति तथा गणित के पारिभाषिक शब्दों का कोश देखना चाहिए।

उ०—गोयमा ! पुट्ठं फुसइ, नो अपुट्ठं फुसइ।

उ०—गौतम ! स्पृष्ट को स्पर्श करता है, अस्पृष्ट को स्पर्श नहीं करता है।

प०—तं भंते ! किं ओगाढं फुसइ, अणोगाढं फुसइ ?

प्र०—भगवन् ! क्या उस अवगाढ को स्पर्श करता है या अनवगाढ को स्पर्श करता है ?

उ०—गोयमा ! ओगाढं फुसइ, नो अणोगाढं फुसइ।

उ०—गौतम ! अवगाढ को स्पर्श करता है, अनवगाढ को स्पर्श नहीं करता है।

प०—तं भंते ! किं अणंतरोगाढं फुसइ, परंपरोगाढं फुसइ ?

प्र०—भगवन् ! क्या उस अनन्तरावगाढ को स्पर्श करता है, या परम्परावगाढ को स्पर्श करता है ?

उ०—गोयमा ! अणंतरोगाढं फुसइ, नो परंपरोगाढं फुसइ।

उ०—गौतम ! अनन्तरावगाढ को स्पर्श करता है, परम्परावगाढ को स्पर्श नहीं करता है।

प०—तं भंते ! किं अणुं फुसइ, बायरं फुसइ ?

प्र०—भगवन् ! क्या उस सूक्ष्म को स्पर्श करता है या स्थूल को स्पर्श करता है ?

उ०—गोयमा ! अणुं पि फुसइ, बायरं पि फुसइ।

उ०—गौतम ! सूक्ष्म को भी स्पर्श करता है और स्थूल को भी स्पर्श करता है।

प०—तं भंते ! किं उड्ढं फुसइ, तिरियं फुसइ, अहे फुसइ ?

प्र०—भगवन् ! क्या उस ऊर्ध्व—ऊपर को स्पर्श करता है, तिरछे को स्पर्श करता है, या नीचे को स्पर्श करता है ?

उ०—गोयमा ! उड्ढं पि फुसइ, तिरियं पि फुसइ, अहे वि फुसइ।

उ०—गौतम ! ऊपर को भी स्पर्श करता है, तिरछे को भी स्पर्श करता है, नीचे को भी स्पर्श करता है।

प०—तं भंते ! किं आइं फुसइ, मज्झे फुसइ, अंते फुसइ ?

प्र०—भगवन् ! क्या उसे आदि में स्पर्श करता है, मध्य में स्पर्श करता है, अन्त में स्पर्श करता है ?

उ०—गोयमा ! आइं पि फुसइ, मज्झे वि फुसइ, अंते वि फुसइ।

उ०—गौतम ! आदि में भी स्पर्श करता है, मध्य में भी स्पर्श करता है, अन्त में भी स्पर्श करता है।

प०—तं भंते ! किं सविसए फुसइ, अविसए फुसइ ?

प्र०—भगवन् ! क्या उसके स्वविषय को स्पर्श करता है, अविषय को स्पर्श करता है ?

उ०—गोयमा ! सविसए फुसइ, नो अविसए फुसइ।

उ०—गौतम ! स्वविषय को स्पर्श करता है, अविषय को स्पर्श नहीं करता है।

प०—तं भंते ! किं आणुपुव्वि फुसइ, अणाणुपुव्वि फुसइ ?

प्र०—भगवन् ! क्या उसे अनुक्रम से स्पर्श करता है, या बिना अनुक्रम के स्पर्श करता है ?

उ०—गोयमा ! आणुपुव्वि फुसइ, नो अणाणुपुव्वि फुसइ।

उ०—गौतम ! अनुक्रम से स्पर्श करता है, बिना अनुक्रम के स्पर्श नहीं करता है।

प०—तं भंते ! कइ दिसिं फुसइ ?

उ०—गोयमा ! नियमा छद्दिसिं फुसइ।

—भग. स. १, उ. ६, सु. ४

प्र०—भगवन् ! उसे कितनी दिशा से स्पर्श करता है ?

उ०—गौतम ! नियमतः छहों दिशाओं से स्पर्श करता है।

अहोलोयाईहिं धम्मत्थिकायाईणं फुसणा—

अधोलोक आदि से धर्मास्तिकाय आदि का स्पर्श—

६. प०—अहे लोए णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स केवइयं फुसइ ?

उ०—गोयमा ! सातिरेगं अद्धं फुसइ।

६. प्र०—भगवन् ! अधोलोक धर्मास्तिकाय का कितना स्पर्श करता है ?

उ०—गौतम ! आधे से कुछ अधिक (धर्मास्तिकाय) का स्पर्श करता है।

प०—तिरियलोए णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स केवइयं फुसइ ?

प्र०—भगवन् ! तिर्यक्लोक धर्मास्तिकाय का कितना स्पर्श करता है ?

उ०—गोयमा ! असंखेज्जइ भागं फुसइ ।

उ०—गौतम ! (धर्मास्तिकाय के) असंख्यातवें भाग का स्पर्श करता है ।

प०—उड्ढलोए णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स केवइयं फुसइ ?

प्र०—भगवन् ! ऊर्ध्वलोक धर्मास्तिकाय का कितना स्पर्श करता है ?

उ०—गोयमा ! देसूणं अद्धं फुसइ ।

उ०—गौतम ! कुछ कम आधे (धर्मास्तिकाय) का स्पर्श करता है ।

एवं अधम्मत्थिकाए, एवं लोयागासे वि ।

—भग. स. २, उ. १०, सु. १४-१६ (२२)

इसी प्रकार (अधोलोक, तिर्यक् लोक, और ऊर्ध्व लोक) अधर्मास्तिकाय का स्पर्श करते हैं ।

इसी प्रकार (लोकाकाश अधर्मास्तिकाय) का स्पर्श करता है ।

अहोलोयाईहिं धम्मत्थिकायाईणं ओगाहणं—

अधोलोक आदि से धर्मास्तिकाय आदि का अवगाहन—

७. प०—अहे लोए णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स केवइयं ओगाढे ?

प्र०—भगवन् ! अधोलोक धर्मास्तिकाय का कितना अवगाहन करता है ?

उ०—गोयमा ! साइरेगं अद्धं ओगाढे ।

उ०—गौतम ! कुछ अधिक आधे का अवगाहन करता है ।

एवं जाव उड्ढलोए ।

इसी प्रकार—यावत्—ऊर्ध्वलोक पर्यन्त है ।

एवं अधम्मत्थिकाए, एवं लोयागासे वि ।

—भग. स. २०, उ. २, सु. ३

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का अवगाहन है ।

इसी प्रकार लोकाकाश का अवगाहन है ।

लोयालोयसेढीणं दव्वट्ठयाए संखेज्ज-असंखेज्ज अणंतत्तं—

द्रव्य की अपेक्षा से लोकालोक की श्रेणियों का संख्येय-असंख्येय और अनन्तत्व—

८. प०—सेढीओणं भंते ! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, अणंताओ ?

प्र०—भगवन् ! द्रव्य की अपेक्षा लोकालोक की श्रेणियां क्या संख्येय हैं, असंख्येय हैं, अनन्त हैं ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ, नो असंखेज्जाओ, अणंताओ ।

उ०—गौतम ! संख्येय नहीं हैं, असंख्येय नहीं हैं, अनन्त हैं ।

प०—पाईण-पडीणाययाओ णं भंते ! सेढीओ दव्वट्ठयाए किं संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, अणंताओ ?

प्र०—भगवन् ! पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी श्रेणियां द्रव्य की अपेक्षा क्या संख्येय हैं, असंख्येय हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, नो अणंताओ ।

उ०—गौतम ! न संख्येय हैं, न असंख्येय हैं, अनन्त हैं ।

एवं दाहिणुत्तराययाओ वि ।

इसी प्रकार दक्षिण से उत्तर पर्यन्त लम्बी श्रेणियां हैं ।

एवं उड्ढमहाययाओ वि ।

इसी प्रकार ऊपर से नीचे तक लम्बी श्रेणियां हैं ।

प०—लोयागाससेढीओ णं भंते ! दव्वट्ठाए किं संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, अणंताओ ?

प्र०—भगवन् ! द्रव्य की अपेक्षा लोकाकाश की श्रेणियां क्या संख्येय हैं, असंख्येय हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, नो अणंताओ ।

उ०—गौतम ! संख्येय नहीं हैं, असंख्येय हैं, अनन्त नहीं हैं ।

एवं पाईण-पडीणाययाओ वि ।

इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी श्रेणियां हैं ।

एवं दाहिणुत्तराययाओ वि ।

इसी प्रकार दक्षिण से उत्तर पर्यन्त लम्बी श्रेणियां हैं ।

एवं उड्ढमहाययाओ वि ।

इसी प्रकार ऊपर से नीचे तक लम्बी श्रेणियां हैं ।

प०—अलोयागाससेढीओ णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, अणंताओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ, नो असंखेज्जाओ, अणंताओ ।

एवं पाईण-पडीणाययाओ वि ।

एवं दाहिणुत्तराययाओ वि ।

एवं उड्ढमहाययाओ वि ।

—भग. स. २५, उ. ३, सु. ६८-७६

प्र०—भगवन् ! द्रव्य की अपेक्षा अलोकाकाश की श्रेणियाँ क्या संख्येय हैं, असंख्येय हैं, या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! संख्येय नहीं हैं, असंख्येय नहीं हैं, अनन्त हैं ।

इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ हैं ।

इसी प्रकार दक्षिण से उत्तर पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ हैं ।

इसी प्रकार ऊपर से नीचे तक लम्बी श्रेणियाँ हैं ।

लोयालोयसेढीणं पएसट्ठयाए संखेज्ज-असंखेज्ज-अणंतत्तं—

प्रदेश की अपेक्षा से लोकालोक की श्रेणियों का संख्येय, असंख्येय, अनन्तत्व—

८. प०—सेढीओ णं भंते ! पएसट्ठयाए किं संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, अणंताओ ?

उ०—गोयमा ! जहा दव्वट्ठयाए तहा पएसट्ठयाए वि ।

एवं पाईण-पडीणाययाओ वि-जाव-उड्ढमहाययाओ । सव्वाओ अणंताओ ।

प०—लोयागाससेढीओ णं भंते ! पएसट्ठयाए किं संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, अणंताओ ?

उ०—गोयमा ! सिय संखेज्जाओ, सिय असंखेज्जाओ, नो अणंताओ ।

एवं पाईण-पडीणाययाओ वि, दाहिणुत्तराययाओ वि ।

उड्ढमहाययाओ नो संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, नो अणंताओ ।

प०—अलोयागाससेढीओ णं भंते ! पएसट्ठयाए किं संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, अणंताओ ?

उ०—गोयमा ! सिय संखेज्जाओ, सिय असंखेज्जाओ, सिय अणंताओ ।

प०—पाईण-पडीणाययाओ णं भंते ! अलोयागाससेढीओ पएसट्ठयाए किं संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, अणंताओ ?

उ०—गोयमा ! नो संखेज्जाओ, नो असंखेज्जाओ, अणंताओ ।

एवं दाहिणुत्तराययाओ वि ।

प०—उड्ढमहाययाओ णं भंते ! अलोयागाससेढीओ पएसट्ठयाए किं संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, अणंताओ ?

उ०—गोयमा ! सिय संखेज्जाओ, सिय असंखेज्जाओ, सिय अणंताओ ।

—भग. स. २५, उ. ३, सु. [illegible]

प्र०—भगवन् ! प्रदेश की अपेक्षा से श्रेणियाँ क्या संख्येय हैं, असंख्येय हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से जैसा है वैसा ही प्रदेश की अपेक्षा से भी है ।

इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ—यावत्—ऊपर से नीचे तक लम्बी श्रेणियाँ सब अनन्त हैं ।

प्र०—भगवन् ! प्रदेश की अपेक्षा से लोकाकाश की श्रेणियाँ क्या संख्येय हैं, असंख्येय हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! कभी संख्येय हैं, कभी असंख्येय हैं, अनन्त नहीं हैं ।

इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ भी हैं । दक्षिण और उत्तर पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ भी हैं ।

ऊपर से नीचे तक लम्बी श्रेणियाँ संख्येय नहीं हैं, असंख्येय हैं, अनन्त नहीं हैं ।

प्र०—भगवन् ! प्रदेश की अपेक्षा से अलोकाकाश की श्रेणियाँ क्या संख्येय हैं, असंख्येय हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! कभी संख्येय हैं, कभी असंख्येय हैं और कभी अनन्त हैं ।

प्र०—भगवन् ! प्रदेश की अपेक्षा से पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी अलोकाकाश की श्रेणियाँ क्या संख्येय हैं, असंख्येय हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! न संख्येय हैं, न असंख्येय हैं, अनन्त हैं ।

इसी प्रकार दक्षिण से उत्तर पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ भी हैं ।

प्र०—भगवन् ! प्रदेश की अपेक्षा से ऊपर से नीचे तक लम्बी श्रेणियाँ क्या संख्येय हैं, असंख्येय हैं या अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! कभी संख्येय हैं, कभी असंख्येय हैं और कभी अनन्त हैं ।

लोयालोयसेढीणं सादीय सपज्जवसियाइत्तं—

९. प०—सेढीओ णं भंते ! किं—

(१) सादीयाओ सपज्जवसियाओ,

(२) सादीयाओ अपज्जवसियाओ,

(३) अणादीयाओ सपज्जवसियाओ,

(४) अणादीयाओ अपज्जवसियाओ ?

उ०—गोयमा ! (१) नो सादीयाओ सपज्जवसियाओ,

(२) नो सादीयाओ अपज्जवसियाओ,

(३) नो अणादीयाओ सपज्जवसियाओ.

(४) अणादीयाओ अपज्जवसियाओ।

एवं पाईण-पडीणाययाओ वि-जाव-उड्ढमहाययाओ।

प०—लोयागाससेढीओ णं भंते ! किं—

(१) सादीयाओ सपज्जवसियाओ-जाव-

(२-४) अणादीयाओ अपज्जवसियाओ ?

उ०—गोयमा ! (१) सादीयाओ सपज्जवसियाओ।

(२) नो सादीयाओ अपज्जवसियाओ।

(३) नो अणादीयाओ सपज्जवसियाओ।

(४) नो अणादीयाओ सपज्जवसियाओ।

एवं पाईण-पडीणाययाओ वि-जाव-उड्ढमहाययाओ।

प०—अलोयागाससेढीओ णं भंते ! किं—

(१) सादीयाओ सपज्जवसियाओ-जाव

(२-४) अणादीयाओ अपज्जवसियाओ ?

उ०—गोयमा ! (१) सिय सादीयाओ सपज्जवसियाओ।

(२) सिय सादीयाओ अपज्जवसियाओ।

(३) सिय अणादीयाओ सपज्जवसियाओ।

(४) सिय अणादीयाओ अपज्जवसियाओ।

पाईण-पडीणाययाओ दाहिणुत्तराययाओ य एवं चेव।

नवरं—नो सादीयाओ सपज्जवसियाओ।
सिय सादीयाओ अपज्जवसियाओ।
सेसं तं चेव।

उड्ढमहाययाओ जहा ओहियाओ तहेव चउभंगे।

—भग. स. २५, उ. ३, सु. ८८-९४

लोकालोक की श्रेणियाँ : सादिसपर्यवसितत्व आदि—

प्र०—भगवन् ! श्रेणियाँ क्या—

(१) सादि सान्त हैं,

(२) सादि अनन्त हैं,

(३) अनादि सान्त हैं,

(४) अनादि अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! (१) सादि सान्त नहीं हैं,

(२) सादि अनन्त नहीं हैं,

(३) अनादि सान्त नहीं हैं,

(४) अनादि अनन्त हैं।

इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ भी हैं—यावत्—उपर से नीचे तक लम्बी श्रेणियाँ भी हैं।

प्र०—भगवन् ! लोकाकाश श्रेणियाँ क्या—

(१) सादि सान्त हैं—यावत्—

(२-४) अनादि अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! (१) सादि सान्त हैं,

(२) सादि अनन्त नहीं हैं,

(३) अनादि सान्त नहीं हैं,

(४) अनादि अनन्त नहीं है।

इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी लोकाकाश श्रेणियाँ भी हैं—यावत्—ऊपर से नीचे तक लम्बी लोकाकाश श्रेणियाँ भी हैं।

प्र०—भगवन् ! अलोकाकाश श्रेणियाँ क्या—

(१) सादि सान्त हैं—यावत्—

(२-४) अनादि अनन्त हैं ?

उ०—गौतम ! (१) कभी सादि सान्त हैं,

(२) कभी सादि अनन्त हैं,

(३) कभी अनादि सान्त हैं,

(४) कभी अनादि अनन्त हैं।

इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी अलोकाकाश श्रेणियाँ और दक्षिण से उत्तर पर्यन्त लम्बी अलोकाकाश श्रेणियाँ हैं।

विशेष—सादि सान्त नहीं हैं,
कभी सादि अनन्त हैं।
शेष पूर्ववत् हैं।

जैसी सामान्य श्रेणियाँ हैं वैसी ही ऊपर से नीचे तक लम्बी अलोकाकाश श्रेणियों की चौभंगी हैं।

लोयालोयसेढीणं दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए य कडजुम्माइयत्तं—

१० प०—सेढीओ णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं—

(१) कडजुम्माओ, (२) तेओयाओ।

(३) दावरजुम्माओ, (४) कलियोगाओ ?

उ०—गोयमा ! (१) कडजुम्माओ, (२) नो तेओयाओ, (३) नो दावरजुम्माओ, (४) नो कलियोगाओ।

एवं पाईण-पडीणाययाओ-जाव-उड्ढमहाययाओ।

लोयागास सेढीओ एवं चेव।

एवं अलोयागास सेढीओ वि।

प०—सेढीओ णं भंते ! पएसट्ठयाए किं—

(१) कडजुम्माओ, (२) तेओयाओ,

(३) दावरजुम्माओ, (४) कलियोगाओ ?

उ०—गोयमा ! (१) कडजुम्माओ, (२) नो तेओयाओ, (३) नो दावरजुम्माओ, (४) नो कलियोगाओ।

एवं पाईण-पडीणाययाओ-जाव-उड्ढमहाययाओ।

प०—लोयागास सेढीओ णं भंते ! पएसट्ठयाए किं—

(१) कडजुम्माओ-जाव (२-४) कलिओगाओ ?

उ०—गोयमा ! (१) सिय कडजुम्माओ, (२) नो तेओयाओ, (३) सिय दावरजुम्माओ, (४) नो कलियोगाओ।

एवं पाईण-पडीणाययाओ वि, दाहिणुत्तराययाओ वि।

प०—उड्ढमहाययाओ णं भंते ! किं—

(१) कडजुम्माओ-जाव (२-४) कलिओगाओ ?

उ०—गोयमा ! (१) कडजुम्माओ, (२) नो तेओयाओ, (३) नो दावरजुम्माओ, (४) नो कलिओगाओ।

द्रव्य की अपेक्षा से और प्रदेशों की अपेक्षा से लोकालोक श्रेणियों का कृतयुग्मादित्व—

प्र०—भगवन् ! द्रव्य की अपेक्षा से श्रेणियाँ क्या—

(१) कृतयुग्म हैं, (२) त्र्योज हैं,

(३) द्वापरयुग्म हैं, (४) कल्योज हैं ?[1]

उ०—गौतम ! (१) कृतयुग्म हैं, (२) न त्र्योज हैं, (३) न द्वापरयुग्म हैं, (४) न कल्योज हैं।

इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ हैं—यावत्—ऊपर से नीचे तक लम्बी श्रेणियाँ हैं।

द्रव्य की अपेक्षा से लोकाकाश श्रेणियाँ भी इसी प्रकार हैं।

द्रव्य की अपेक्षा से अलोकाकाश श्रेणियाँ भी इसी प्रकार हैं।

प्र०—भगवन् ! प्रदेशों की अपेक्षा से श्रेणियाँ क्या—

(१) कृतयुग्म हैं, (२) त्र्योज हैं,

(३) द्वापरयुग्म हैं, (४) कल्योज हैं ?

उ०—गौतम ! (१) कृतयुग्म हैं, (२) न त्र्योज हैं, (३) न द्वापरयुग्म हैं, (४) न कल्योज हैं।

इसी प्रकार प्रदेशों की अपेक्षा से पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ हैं—यावत्—ऊपर से नीचे तक लम्बी श्रेणियाँ हैं।

प्र०—भगवन् ! प्रदेशों की अपेक्षा से लोकाकाश श्रेणियाँ क्या—

(१) कृतयुग्म हैं—यावत्—(२-४) कल्योज हैं ?

उ०—गौतम ! (१) कभी कृतयुग्म हैं, (२) त्र्योज नहीं हैं, (३) कभी द्वापरयुग्म हैं, (४) कल्योज नहीं हैं।

इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ भी हैं और दक्षिण से उत्तर पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ भी हैं।

प्र०—भगवन् ! प्रदेशों की अपेक्षा से ऊपर से नीचे तक लम्बी श्रेणियाँ क्या—

(१) कृतयुग्म हैं—यावत्—(२-४) कल्योज हैं ?

उ०—गौतम ! (१) कृतयुग्म हैं, (२) न त्र्योज हैं, (३) न द्वापरयुग्म हैं, (४) न कल्योज हैं।

---

1 इनकी व्याख्या इस प्रकार है—

(१) कृतयुग्म—राशि है से चार-चार घटाते हुए अंत में चार रहें, जैसे—८, १२, १६, २०……

(२) त्र्योज—राशि है से चार-चार घटाते हुए अंत में तीन रहें, जैसे—७, ११, १५, १९……

(३) द्वापर युग्म—राशि है से चार-चार घटाते हुए अंत में दो रहें, जैसे—६, १०, १४, १८……

(४) कल्योज—राशि है से चार-चार घटाते हुए अंत में एक रहे, जैसे—५, ९, १३, १७, २१…… —[illegible], पृष्ठ [illegible]

प०—अलोयागाससेढीओ णं भंते ! पएसट्ठयाए किं—

(१) कडजुम्माओ-जाव (२-४) कलियोगाओ ?

उ०—गोयमा ! (१) सिय कडजुम्माओ-जाव (२-४) सिय कलियोगाओ ।

एवं पाईण-पडीणाययाओ वि ।

एवं दाहिणुत्तराययाओ वि ।

उड्ढमहाययाओ वि एवं चेव ।

नवरं—नो कलियोगाओ । सेस तं चेव ।

—भग. स. २५, उ. ३, सु. ९५-१०७

प्र०—भगवन् ! प्रदेशों की अपेक्षा से अलोकाकाश श्रेणियाँ क्या—

(१) कृतयुग्म हैं—यावत्—(२-४) कल्योज हैं ?

उ०—गौतम ! (१) कभी कृतयुग्म हैं—यावत्—(२-४) कभी कल्योज हैं ।

इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ भी हैं ।

इसी प्रकार दक्षिण से उत्तर पर्यन्त लम्बी श्रेणियाँ भी हैं ।

इसी प्रकार ऊपर से नीचे तक लम्बी श्रेणियाँ भी हैं ।

विशेष—कल्योज नहीं है, शेष पूर्ववत् ।

सेढीणं सत्त भेया—

११. प०—कति णं भंते ! सेढीओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! सत्तसेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

(१) उज्जु आयता, (२) एगओ वंका, (३) दुहओ वंका, (४) एगओ खहा, (५) दुहओ खहा, (६) चक्कवाला, (७) अद्धचक्कवाला ।

—भग. स. २५, उ. ३, सु. १०८

श्रेणियों के सात भेद—

प्र०—भगवन् ! श्रेणियाँ कितनी कही गई हैं ?

उ०—गौतम ! श्रेणियाँ सात कही गई हैं, यथा—

(१) ऋजु आयत, (२) एक ओर से वक्र, (३) दो ओर से वक्र, (४) एक ओर से क्षत, (५) दो ओर से क्षत, (६) चक्रवाल, (७) अर्धचक्रवाल ।



परिशिष्ट : २

माव-निरुवणं

माप-निरूपण

खेत्तप्पमाण परूवणं—

१. प०—से किं तं खेत्तप्पमाणे ?

उ०—खेत्तप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) पदेसनिप्फण्णे य, (२) विभागनिप्फण्णे य ।

प०—से किं तं पदेसनिप्फण्णे ?

उ०—पदेसनिप्फण्णे—एग पदेसोगाढे-जाव-दस पदेसोगाढे संखेज्जपदेसोगाढे, असंखेज्जपदेसोगाढे, से तं पएस निप्फण्णे ।

प०—से किं तं विभाग निप्फण्णे ?

उ०—संगहणी गाहा—

(१) अंगुल, (२) विहत्थी, (३) रयणी,
(४) कुच्छी, (५) धणु, (६) गाउयं च बोधव्वं ।
(७) जोयण, (८) सेढी, (९) पयरं,
(१०) लोगमलोगे वि य तहेव ।

क्षेत्र प्रमाण प्ररूपण—

१. प्र०—भगवन् ! वह क्षेत्र प्रमाण क्या है ?

उ०—क्षेत्र प्रमाण दो प्रकार का कहा है । यथा—

(१) प्रदेशनिष्पन्न और (२) विभागनिष्पन्न ।

प्र०—प्रदेशनिष्पन्न का स्वरूप क्या है ?

उ०—प्रदेश निष्पन्न का स्वरूप इस प्रकार है—एक प्रदेशावगाढ, (दो प्रदेशावगाढ)—यावत्—दस प्रदेशावगाढ, संख्यात प्रदेशावगाढ तथा असंख्यात प्रदेशावगाढ ।

प्र०—विभाग निष्पन्न का स्वरूप क्या है ?

उ०—(विभाग निष्पन्न अनेक प्रकार का है) यथा—संग्रहणी गाथा के अनुसार—

(१) अंगुल, (२) वितस्ति (बैंत), (३) रत्नी, (४) कुक्षी, (५) धनु, (६) गाऊ (कोश), (७) योजन, (८) श्रेणी, (९) प्रतर तथा (१०) लोक-अलोक ।

२. प०—से किं तं अंगुले ?

उ०—अंगुले तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) आयंगुले, (२) उस्सेहंगुले, (३) पमाणंगुले।

प०—से किं तं आयंगुले ?

उ०—आयंगुले—जे ण जया मणुस्सा भवंति, ते णं तया अप्पणो अंगुलेणं दुवालस अंगुलाइं मुहं; नवमुहाइं पुरिसे पमाणजुत्ते भवइ, दोणिए पुरिसे माणजुत्ते भवइ,

अद्धभारं तुलमाणे पुरिसे उम्माणजुत्ते भवइ।

एत्थ संगहणी गाहाओ—

माणुम्माणपमाणजुत्ता लक्खण-वंजण-गुणेहिं उववेया ॥
उत्तमकुलप्पसूया उत्तमपुरिसा मुणेयव्वा ॥

होंति पुण अहिय पुरिसा, अट्ठसयं अंगुलाण उव्विद्धा ॥
छण्णउइ अहमपुरिसा, चउरुत्तर मज्झिमिल्ला उ ॥

हीणा वा अहिया वा; जे खलु-सर-सत्त-सारपरिहीणा ॥
ते उत्तमपुरिसाणं, अवसा पेसत्तणमुवेंति ॥

एएणं अंगुलप्पमाणेणं छ अंगुलाइं पादो,
दो पादा विहत्थी,
दो विहत्थीओ रयणी,
दो रयणीओ कुच्छी,

दो कुच्छीओ दंडं, धणू जुगे नालिया अक्खमुसले,

दो धणुसहस्साइं गाउयं,
चत्तारि गाउयाइं जोयणं।

प०—एएणं आयंगुलप्पमाणेणं किं पओयणं ?

उ०—एएणं आयंगुलप्पमाणेणं जे णं जया मणुस्सा भवंति, तेसि णं तया अप्पणो अंगुलेणं अगड-दह-नदी-तलाग-वावी-पुक्खरणी-दीहिया-गुंजालियाओ, सरा सरपंतियाओ सरसरपंतियाओ, बिलपंतियाओ;

२. प्र०—अंगुल का स्वरूप क्या है ?

उ०—अंगुल तीन प्रकार का कहा है, यथा—

(१) आत्मांगुल, (२) उत्सेधांगुल, (३) प्रमाणांगुल।

प्र०—आत्मांगुल क्या है ?

उ०—जिस काल में जो मनुष्य होते हैं, उनकी अपनी अंगुल-आत्मांगुल है। उसकी बारह अंगुल प्रमाण का एक मुख होता है। नौ मुख-प्रमाण एक पुरुष होता है। द्रोणी प्रमाण पुरुष प्रमाण-युक्त होता है।[1]

अर्द्धभार प्रमाण तुला हुआ पुरुष (तराजू में बैठा हुआ पुरुष अर्द्धभार प्रमाण तुलने पर) उन्मानयुक्त होता है।

संग्रहणी गाथाएँ—

मान-उन्मान-प्रमाण से युक्त, लक्षण (शंख, स्वस्तिक आदि) व्यंजन (तिल मष आदि) तथा गुणों (औदार्य गांभीर्य आदि) से सम्पन्न, उत्तम कुल में उत्पन्न पुरुष उत्तम पुरुष माने जाते हैं।

ये उत्तम पुरुष १०८ अंगुल प्रमाण ऊँचे होते हैं। अधम पुरुष ९६ अंगुल तथा मध्यम पुरुष १०४ अंगुल ऊँचे होते हैं।

ये हीन पुरुष तथा अधिक (मध्यम) पुरुष जो कि स्वर-सत्त्व-सार-शुभ पुद्गलों से हीन होते हैं वे पराधीन रहकर उत्तम पुरुषों का प्रेष्यत्व-सेवा-चाकरी करते हैं।

इस अंगुल प्रमाण से छह अंगुल का एक पाद,
दो पाद की एक वितस्ति,
दो वितस्ति की एक रत्नि,
दो रत्नि की एक कुक्षी,

दो कुक्षी का एक दण्ड, एक धनुष, एक युग, एक नालिका, एक अक्ष तथा एक मूसल होता है। (सभी समानार्थक)

दो हजार धनुष का एक गव्यूत होता है।
चार गव्यूत (गाऊ) का एक योजन होता है।

प्र०—इस आत्मांगुल प्रमाण से किस प्रयोजन की सिद्धि होती है ?

उ०—जिस काल में जो मनुष्य होते हैं, उनके इस आत्मांगुल प्रमाण से इन सब का नाप किया जाता है—कूप, ह्रद, नदी, तालाब, बावड़ी, पुष्करिणी, (कमलयुक्त जलाशय) दीर्घिका (लम्बी बावड़ी) गुंजालिका (वक्राकार बावड़ी) सर (प्राकृतिक जलाशय) सरपंक्ति, सरसरपंक्ति, बिल पंक्ति,

---

१ उक्त कथन के अनुसार १०८ आत्मांगुल की ऊँचाई वाला पुरुष प्रमाण होता है। द्रोणी पुरुष का अर्थ है—एक दोणी (जल कुण्ड-हौज) परिपूर्ण जल से भर लेने पर कोई पुरुष जब उसमें प्रवेश करे तो एक द्रोण प्रमाण जल बाहर निकल जावे, उस पुरुष का प्रमाण द्रोणिक मात्र अर्थात् उस पुरुष को प्रमाण पुरुष माना जाता है। —अनुयोग. टीका

आरामुज्जाण-काणण-वण-वणसंड, वणराईओ ।
देवकुल-सभा-पवा-थूभ-खाइय-परिहाओ ।
पागारऽट्टालग-चरिय-दार-गोपुर-तोरण-पासाद-घर-सरण-लेण-आवण-सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउमुह-महा-पह-पहा ।

आराम, उद्यान, कानन-वन, वनखंड, वनराजि, देवकुल, सभा, प्रपा, स्तूप, खातिका, परिखा (खाई), प्राकार, अट्टालिका, चरिका, द्वार, गोपुर, प्रासाद, गृह, शरण, लयन, आपण, शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ पथ,

सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संदमाणिय-लोही-लोहकडाह-कडुच्छुय-आसण-सतण-खंभ-भंड-मत्तोवगरणमाइणि, अज्जकालिगाइं च जोयणाइं मविज्जंति ।

शकट, रथ, यान, युग्म, गिलि, थिलि, शिविका, स्यन्दमानिका, लौही, लौह कटाही, कटल्लिका, आसन, सतण, स्तम्भ, भांड, अमत्र उपकरण आदि अपने-अपने समय में उत्पन्न हुई वस्तुएँ तथा योजन आदि का नाप—आत्मांगुल से किया जाता हैं ।

से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
(१) सूईअंगुले, (२) पयरंगुले, (२) घणंगुले ।
(१) अंगुलायया एग पएसिया सेढी सूयीअंगुले ।
(२) सूई सूईए गुणिया पयरंगुले,
(३) पयरं सूईएगुणियं घणंगुले ।

यह आत्मांगुल संक्षेप में तीन प्रकार का है, यथा—
(१) सूच्यंगुल, (२) प्रतरांगुल और (३) घनांगुल ।
(१) एक अंगुल लम्बी तथा बाहल्य की अपेक्षा एक प्रदेश प्रमाण (मोटी) प्रदेश श्रेणी का नाम सूच्यंगुल है ।
(२) सूच्यंगुल को सूच्यंगुल के साथ गुणा करने पर प्रतरांगुल होता हैं ।
(३) प्रतर को सूच्यंगुल से गुणा करने पर घनांगुल होता है ।

प०—एएसि णं सूई अंगुल-पयरंगुल-घणंगुलाण य कयरे-कयरे हिंतो अप्पे वा-जाव-विसेसाहिए वा ?

प्र०—इनमें से सूची अंगुल-प्रतरांगुल-घनांगुल-कौन किससे अल्प है, कौन किससे बहुत हैं ?

उ०—सव्वत्थोवे सूई अंगुले,
पयरंगुले असंखेज्जगुणे,
घणंगुले असंखेज्जगुणे, से तं आयंगुले ।

उ०—सबसे कम सूच्यंगुल हैं ।
सूच्यंगुल से असंख्यात गुण प्रतरांगुल है ।
प्रतरांगुल से असंख्यात गुण घनांगुल है । इस प्रकार आत्मांगुल का प्रमाण है ।

प०—से किं तं उस्सेहंगुले ?

प्र०—उत्सेधांगुल क्या है ?

उ०—उस्सेहंगुले अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—
संगहणी गाहा—
(१) परमाणु, (२) तसरेणू,
(३) रहरेणू, (४) अग्गयं च वालस्स,
(५) लिक्खा, (६) जूया य, (७) जवो,
अट्ठगुणविवड्डिया कमसो ॥

उ०—उत्सेधांगुल अनेक प्रकार का कहा है, यथा—
संग्रहणी गाथा—
(१) परमाणु (२) त्रसरेणु, (३) रथरेणु, (४) वालाग्र, (५) लिक्षा, (६) यूका, (७) यव ये क्रमशः उत्तरोत्तर आठ गुने हैं ।

३. प०—से किं तं परमाणू ?

प्र०—परमाणु का स्वरूप क्या है ?

उ०—परमाणु दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
(१) सुहुमे य, (२) वावहारिए य ।
तत्थ णं जे सुहुमे से ठप्पे ।

उ०—परमाणु दो प्रकार का है, यथा—
(१) सूक्ष्म और (२) व्यावहारिक परमाणु ।
जो सूक्ष्म परमाणु है, वह अव्याख्येय है, अतः वर्णन छोड़ दिया गया हैं ।

प०—से किं तं वावहारिए ?

प्र०—व्यावहारिक परमाणु क्या है ?

उ०—वावहारिए अणंताणं सुहुम परमाणु पोग्गलाणं समुदय समिति समागमेणं से एगे वावहारिए परमाणु पोग्गले निप्फज्जइ ।

उ०—वह व्यावहारिक परमाणु अनन्तानन्त सूक्ष्म परमाणु पुद्गलों के समुदय समिति समागम—एकीभवन रूप संयोगात्मक मिलन से उत्पन्न होता है ।

प०—से णं असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा ?

उ०—हंता ! ओगाहेज्जा ।

प०—से णं तत्थ छिज्जेज्ज वा, भिज्जेज्ज वा ?

उ०—नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमति ।

प०—से णं तत्थं अगणिकायस्स मज्झं मज्झेणं वीईवएज्जा ?

उ०—हंता ! वीईवएज्जा ।

प०—से णं तत्थ डहेज्जा ?

उ०—नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ ।

प०—से णं पुक्खल संवट्टस्स महामेहस्स मज्झं मज्झेणं वीईवएज्जा ?

उ०—हंता ! वीईवएज्जा ।

प०—से णं तत्थ उदउल्ले सिया ?

उ०—नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ ।

प०—से णं गंगाए महाणईए पडिसोयं हव्वमागच्छेज्जा ?

उ०—हंता ! हव्वमागच्छेज्जा ।

प०—से णं तत्थ विणिघायमावज्जेज्जा ?

उ०—नो इणट्ठे समट्ठे । नो खलु तत्थ सत्थं कमइ ।

प०—से णं उदगावत्तं वा उदगविंदु वा ओगाहेज्जा ?

उ०—हंता ! ओगाहेज्जा ।

प०—से णं तत्थ कुच्छेज्ज वा परियावज्जेज्ज वा ?

उ०—नो इणट्ठे समट्ठे । नो खलु तत्थ सत्थं कमइ ।

एत्थ संगहणी गाहा—

सत्थेण सुतिक्खेण वि छेत्तुं भेत्तुं व जं किर न सक्का ।
तं परमाणू सिद्धावयंति आई पमाणाणं ॥

४. अणंताणं वावहारियपरमाणु पोग्गलाणं समुदय-समितिसमागमेणं सा एगा उस्सण्हसण्हिया इ वा, सण्हसण्हिया इ वा, उड्ढरेणु इ वा, तसरेणू इ वा, रहरेणू इ वा ।

प्र०—क्या वह व्यावहारिक परमाणु तलवार या क्षुर (छुरे) की धार का अवगाहन (उन पर आक्रमण) कर सकता है ।

उ०—हाँ ! कर सकता है ।

प्र०—क्या वह उनसे छिन्न (दो टुकड़े) अथवा भेदा जा सकता है ?

उ०—ऐसा संभव नहीं ! उसके ऊपर शस्त्र का प्रभाव नहीं पड़ता ।

प्र०—क्या वह (व्यावहारिक परमाणु) अग्निकाय के मध्य भाग से निकल सकता है ?

उ०—हाँ ! निकल सकता है ।

प्र०—क्या वह अग्निकाय से जल जाता है ?

उ०—नहीं, ऐसा सम्भव नहीं है ।

प्र०—क्या वह पुष्कल संवर्तक महामेघ के बीचोबीच निकल जाता है ?

उ०—हाँ ! निकल जाता है ।

प्र०—क्या वह पानी से गीला हो जाता है ?

उ०—नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं (ऐसा सम्भव नहीं) ।

प्र०—क्या वह गंगा महानदी के प्रवाह के बीच से (प्रतिस्रोत से) शीघ्र जा सकता है ?

उ०—हाँ ! जा सकता है ।

प्र०—क्या वह प्रतिस्रोत में चलने से प्रतिस्खलना को प्राप्त होता है ?

उ०—नहीं ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

प्र०—क्या वह उदकावर्त (जल भ्रम) से अथवा उदकबिन्दु में अवगाहित हो सकता है ?

उ०—हाँ ! हो सकता है ।

प्र०—तो क्या वह वहाँ सड़ जाता है ? या जलरूप में परिणत हो जाता है ?

उ०—नहीं ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ?

यहाँ संग्रहणी गाथा है—

केवलज्ञानियों ने कहा है—परमाणु सुतीक्ष्ण शस्त्र से भी छेदा-भेदा नहीं जा सकता । यह परमाणु प्रमाणों में आदि प्रमाण है, (अर्थात् सभी प्रमाणों की गणना इसी आधार पर की जाती है) ।

४. अनन्तानन्त व्यावहारिक परमाणु पुद्गलों के संयोग से जो उत्पन्न होता है, वह एक उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका है । श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु आदि क्रमशः जानना चाहिए ।

अट्ठ उस्सण्ह सण्हियाओ सा एगा सण्हसण्हिया।
अट्ठ सण्हसण्हियाओ सा एगा उड्ढरेणू।
अट्ठ उड्ढरेणूओ सा एगा तसरेणू।
अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू।
अट्ठ रहरेणूओ देवकुरु-उत्तरकुरुयाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे।

आठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका से एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका,
आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका से एक ऊर्ध्वरेणु,
आठ ऊर्ध्वरेणु से एक त्रसरेणु,
आठ त्रसरेणु से एक रथरेणु,
आठ रथरेणु प्रमाण देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है।

अट्ठ देवकुरु-उत्तरकुरूयाणं मणुयाणं वालग्गा हरिवास-रम्मगवासाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे।

देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों के आठ बालाग्र प्रमाण हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है।

अट्ठ हरिवास-रम्मगवासाणं मणुयाणं वालग्गा हेमवय हेरण्ण-वयवासाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे।

हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष के मनुष्यों के आठ बालाग्र प्रमाण हेमवत-हेरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है।

अट्ठ हेमवय-हेरण्णवयवासाणं मणुयाणं वालग्गा,
पुव्वविदेह अवरविदेहाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे।

हेमवत-हैरण्यवत के मनुष्यों के आठ बालाग्र प्रमाण पूर्वविदेह एक अपर विदेह के मनुष्यों का एक बालाग्र....।

अट्ठ पुव्वविदेह-अवरविदेहाणं मणुयाणं वालग्गा भरहेरवयाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे।

पूर्वविदेह-अपर विदेह के मनुष्यों के आठ बालाग्र प्रमाण भरत-ऐरवत के मनुष्यों का एक बालाग्र....।

अट्ठ भरहेरवयाणं मणुयाणं वालग्गा सा एगा लिक्खा।

भरत-ऐरवत के मनुष्यों के आठ बालाग्र प्रमाण की एक लिक्षा होती है।

अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूया।
अट्ठ जूयाओ से एगे जवमज्झे।
अट्ठ जवमज्झे से एगे उस्सेहंगुले।
एएणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पादो।
वारस अंगुलाइं विहत्थी।
चउवीसं अंगुलाइं रयणी।
अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी।

आठ लिक्षा प्रमाण एक यूका,
आठ यूका प्रमाण एक यवमध्य,
आठ यवमध्य का एक उत्सेधांगुल,
इसी क्रम से छह अंगुलों का एक पाद होता है,
बारह अंगुल (२ पाद) की एक वितस्ति,
चौबीस अंगुल की एक रयणी=रत्नि,
अड़तालीस अंगुल की एक-एक कुक्षि,

छण्णउई अंगुलाइं से एगे दंडे इ वा, धणू इ वा, जुगे इ वा, नालिया इ वा, अक्खे इ वा, मुसले इ वा।

छियानवे अंगुल का एक दण्ड, इसी प्रमाण को एक धनुष, एक युग, एक नालिका, एक अक्षा तथा एक नालिका भी कहते हैं।

एएणं धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं गाउयं।
चत्तारि गाउयाइं जोयणं।

इस धनुष प्रमाण से दो हजार धनुष का एक गव्यूत (गाऊ) तथा—चार गव्यूत (गाऊ-कोश) का एक योजन होता है।

५. प०—एएणं उस्सेहंगुलेणं किं पओयणं ?

उ०—एएणं उस्सेहंगुलेणं णेरइय-तिरिक्ख जोणिय-मणूस-देवाणं सरीरोगाहणाओ मविज्जंति।

—अणु० नु० ३३०-३४६

५. प्र०—भगवन् ! इस उत्सेध अंगुल का प्रयोजन क्या है ?

उ०—इस उत्सेधांगुल से नारक-तिर्यंच-मनुष्य और देवों के शरीर की अवगाहना नापी जाती है।

उत्सेध अंगुल के प्रकार—

६. से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
(१) सूईअंगुले, (२) पयरंगुले, (३) घणंगुले।
(१) अंगुलायया एगपएसिया सेढी सूईअंगुले।
(२) सूई सूईए गुणिया पयरंगुले।
(३) पयरं सूईए गुणियं घणंगुले।

उत्सेधांगुल के प्रकार—

६. यह उत्सेधांगुल संक्षेप में तीन प्रकार का कहा है, यथा—
(१) सूच्यंगुल, (२) प्रतरांगुल और (३) घनांगुल।
(१) एक अंगुल लम्बी तथा एक प्रदेश मोटी जो नभःप्रदेश श्रेणी है, उसका नाम सूच्यंगुल है।
(२) सूची को सूची से गुणित करने पर प्रतरांगुल बनता है।
(३) सूची से गुणित प्रतरांगुल-घनांगुल कहलाता है।

७. प०—एएसि णं सूईअंगुल-पयरंगुल-घणंगुलाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा-जाव-विसेसाहिए वा ?

उ०—सव्वत्थोवे सूईअंगुले

पयरंगुले असंखेज्जगुणे

घणंगुले असंखेज्जगुणे से तं उस्सेहंगुले

७. प्र०—भगवन् ! इन सूच्यंगुल आदि में कौन किससे अल्प है, कौन किससे अधिक है ? तथा कौन किससे विशेषाधिक है ?

उ०—इनमें सबसे कम सूच्यंगुल है,

उससे असंख्यातगुण प्रतरांगुल है,

उससे असंख्यातगुण घनांगुल है। इस प्रकार यह उत्सेधांगुल प्रमाण है।

पमाणंगुले—

प्रमाणांगुल—

८. प०—से किं तं पमाणंगुले ?

उ०—पमाणंगुले-एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठ सोवण्णिए कागिणिरयणे दुवालसंसिए अट्ठकण्णिए अहिगरणिसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

८. प्र०—प्रमाण अंगुल क्या है ?

उ०—(प्रमाणांगुल इस प्रकार है—) एक-एक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा का अष्ट सुवर्ण प्रमाण एक काकिणी रत्न होता है। वह काकिणी रत्न छह तल (चारों दिशाओं की ओर के ४ तल, तथा ऊपर और नीचे = यों छह तल) वाला उसकी १२ कोटि तथा आठ कर्णिकाएँ होती हैं, सुनार की एरण जैसा उसका आकार होता है।

तस्स णं एगमेगा कोडी उस्सेहंगुल विक्खंभा

उस काकिणी रत्न की एक कोटि उत्सेधांगुल प्रमाण चौड़ाई होती है।

तं समणस्स भगवओ महावीरस्स अद्धंगुलं; तं सहस्सगुणं पमाणंगुलं भवइ;

इसकी एक कोटि का जो उत्सेधांगुल है, वह श्रमण भगवान महावीर का अर्धांगुल प्रमाण है। और उस अर्धांगुल से हजार गुणा एक प्रमाणांगुल होता है।

एएणं अंगुलप्पमाणेणं छ अंगुलाइं पादो, दो पादा, दुवालसअंगुलाइं विहत्थी,

दो विहत्थीओ रयणी,

दो रयणीओ कुच्छी।

दो कुच्छीओ धणू, दो धणुसहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं।

इस अंगुल प्रमाण से छ अंगुल का एक पाद, दो पाद अथवा बारह अंगुल की एक वितस्ति।

दो वितस्ति की एक रत्नि।

दो रत्नि की एक कुक्षि।

दो कुक्षि का एक धनुष और दो हजार धनुष का एक गव्यूत (गाऊ) एवं चार गव्यूत का एक योजन होता है।

प०—एएणं पमाणंगुलेणं किं पओयणं ?

उ०—एएणं पमाणंगुलेणं—
पुढवीणं कंडाणं, पायालाणं भवणाणं भवणपत्थडाणं, निरयाणं निरयावलियाणं निरयपत्थडाणं कप्पाणं विमाणाणं विमाणावलियाणं विमाणपत्थडाणं,
टंकाणं कूडाणं सेलाणं सिहरीणं पब्भाराणं विजयाणं वक्खाराणं वासाणं वासहराणं वासहरपव्वयाणं।
वेलाणं वेइयाणं दाराणं तोरणाणं दीवाणं समुद्दाणं आयाम-विक्खंभोच्चत्तोव्वेह-परिक्खेवा मविज्जंति।

प्र०—इस प्रमाण अंगुल से क्या प्रयोजन है।

उ०—इस प्रमाण अंगुल से रत्नप्रभा पृथ्वी के काण्डों का, पाताल कलशों का, भवनपति देवों के भवनों का, नरकों के प्रस्तटों के अन्तर में स्थित भवन प्रस्तटों का, नरकावासों का, नरकावासों की पंक्तियों का, नरकों के प्रस्तटों का, सौधर्म आदि कल्पों का, उनके विमानों का, उनकी विमान पंक्तियों का, विमान प्रस्तटों का, छिन्न टंकों का, कूटों का, मुण्ड पर्वतों का, शिखर वाले पर्वतों का, आगे की ओर कुछ नमे हुए पर्वतों का, विजयों का, वक्षस्कारों का, वर्षों का, वर्षधरों का, वर्षधर पर्वतों का, समुद्र तट की भूमियों का, वेदिकाओं का, द्वारों का, तोरणों का, द्वीपों का, समुद्रों का आयाम-विष्कंभ-उच्चत्व-उद्वेध (अवगाह) परिक्षेप = परिधि—ये सब मापे जाते हैं।

प्रमाणांगुल के तीन प्रकार—

९. से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
(१) सेढीअंगुले, (२) पयरंगुले, (३) घणंगुले,
असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ सेढी,
सेढी सेढीए गुणिया पयरं,
पयरं सेढीए गुणियं लोगो,
संखेज्जएणं लोगो गुणिओ लोगा,
असंखेज्जएणं लोगो गुणिओ असंखेज्जालोगा।

प०—एएसि णं सेढी अंगुल-पयरंगुल-घणंगुलाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पेया-जाव-विसेसाहिया वा ?

उ०—सव्वत्थोवे सेढी अंगुले,
पयरंगुले असंखेज्जगुणे,
घणंगुले असंखेज्जगुणे, से तं पमाणंगुले।
से तं विभागनिप्फण्णे से तं खेत्तप्पमाणे।

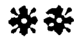
—अणु० सु० ३५६-३६२

प्रमाणांगुल के तीन प्रकार—

९. वह प्रमाणांगुल संक्षेप में तीन प्रकार का है, यथा—
(१) श्रेणी-अंगुल, (२) प्रतरांगुल, (३) घनांगुल।
असंख्य कोडाकोडी योजन की एक श्रेणी होती है।
श्रेणी से गुणित श्रेणी को प्रतर कहते हैं।
प्रतर को श्रेणि से गुणित करने पर घनरूप लोक होता है।
संख्यात राशि से गुणित लोक संख्यात लोक तथा,
असंख्यात राशि से गुणित लोक असंख्यात लोक कहलाते हैं।

प्र०—इन श्रेणी अंगुल, प्रतर अंगुल, घन अंगुल में कौन किससे अल्प, अधिक यावत् विशेषाधिक है ?

उ०—सबसे कम श्रेणी अंगुल है।
प्रतर अंगुल असंख्यातगुण है।
उससे घन अंगुल असंख्यातगुण है। यह प्रमाण अंगुल है।
यह विभाग निष्पन्न क्षेत्र प्रमाण का वर्णन है।



परिशिष्ट : ३

आयाम-विष्कम्भ

क्रम	जम्बूद्वीपवर्ति क्षेत्र और पर्वतों का आयाम-विष्कम्भ	योजन	कला
१.	भरतक्षेत्र	५२६	६
२.	चुल्लहिमवंत पर्वत	१०५२	१२
३.	हैमवत क्षेत्र	२१०५	५
४.	महाहिमवंत पर्वत	४२१०	१०
५.	हरिवर्ष	८४२१	१
६.	निषध पर्वत	१६८४२	२
७.	महाविहेह क्षेत्र	३३६८४	४
८.	नीलवन्त पर्वत	१६८४२	२
९.	रम्यक्वर्ष	८४२१	१
१०.	रुक्मी पर्वत	४२१०	१०
११.	हैरण्यवत क्षेत्र	२१०५	५
१२.	शिखरी पर्वत	१०५२	१२
१३.	ऐरवतक्षेत्र	५२६	६
	जम्बूद्वीप का आयाम-विष्कम्भ—	**१००००० एक लाख योजन**	

जम्बूद्वीप खण्ड तालिका

क्रम	क्षेत्र और पर्वतों के	खंड
१.	भरतक्षेत्र	१
२.	चुल्लहिमवंत पर्वत	२
३.	हैमवत क्षेत्र	४
४.	महाहिमवंत पर्वत	८
५.	हरिवर्ष	१६
६.	निषध पर्वत	३२
७.	महाविदेह क्षेत्र	६४
८.	नीलवन्त पर्वत	३२
९.	रम्यक्वर्ष	१६
१०.	रुक्मी पर्वत	८
११.	हैरण्यवत क्षेत्र	४
१२.	शिखरी पर्वत	२
१३.	ऐरवतक्षेत्र	१
	जम्बूद्वीप के····	**१९० खण्ड**

शाश्वत पर्वत तालिका

क्रम	पर्वत नाम	संख्या
१.	वर्षधर पर्वत	७
२.	वैताढ्य पर्वत	३४
३.	वृत्त वैताढ्य पर्वत	४
४.	यमक पर्वत	२
५.	चित्रकूट पर्वत	१
६.	विचित्रकूट पर्वत	१
७.	निषध पर्वत गजदन्त पर्वत	२
८.	नीलवन्त पर्वत गजदन्त पर्वत	२
९.	कंचनगिरि पर्वत	२००
१०.	वक्षस्कार पर्वत	१६
	जम्बूद्वीप में—	२६९ पर्वत
११.	वेलंधर आवास पर्वत	४
१२.	अनुवेलंधर आवास पर्वत	४
	लवण समुद्र में—	८ आवास पर्वत
१३.	इक्षुकार पर्वत	२
	धातकीखण्डद्वीप में—	५४० पर्वत
१४.	इक्षुकार पर्वत	२
	पुष्करार्धद्वीप में—	५४० पर्वत
	अढाई द्वीप में—	शाश्वत पर्वत १३५७

कूट तालिका

क्रम	पर्वत	ऋषभकूट पर्वत संख्या
१.	निषध पर्वत के समीप सोलह विजय में	१६
२.	नीलवन्त पर्वत के समीप सोलह विजय में	१६
३.	चुल्लहिमवन्त पर्वत के समीप भरत क्षेत्र में	१
४.	शिखरी पर्वत के समीप ऐरवत क्षेत्र में	१
	जम्बूद्वीप में—	३४ ऋषभकूट पर्वत
	धातकीखण्डद्वीप में—	६८ ,,
	पुष्करार्धद्वीप में—	६८ ,,
	कुल	१७० ,,

जम्बूद्वीप में कूट (शिखर)[1]

क्रम	पर्वत	संख्या	कूट संख्या	
१.	वैताढ्य पर्वत	३४	३०६	प्रत्येक वैताढ्य पर्वत पर नौ-नौ कूट हैं।
२.	चुल्लहिमवंत पर्वत	१	११	
३.	महाहिमवन्त पर्वत	१	८	
४.	निषध पर्वत	१	९	
५.	शिखरी पर्वत	१	११	
६.	रुक्मी पर्वत	१	८	
७.	नीलवन्त पर्वत	१	९	
८.	गजदन्त पर्वत	२	१८	प्रत्येक गजदन्त पर्वत पर नौ-नौ कूट।
९.	गजदन्त पर्वत	२	१४	प्रत्येक गजदन्त पर्वत पर सात-सात कूट।
१०.	वक्षस्कार पर्वत	१६	६४	प्रत्येक वक्षस्कार पर्वत पर चार-चार कूट
११.	मेरु पर्वत	१	९	
१२.	जम्बूद्वीप में	६१	४६७ कूट	
१३.	धातकीखण्डद्वीप में	१२२	९३४ कूट	
१४.	पुष्करार्धद्वीप में	१२२	९३४ कूट	
	कुल	३०५	२३३५	

चौदह प्रपात कुण्डों के प्रमाणादि[2]

क्रम	कुण्ड का नाम	आयाम	विष्कम्भ	परिधि	गहराई
१.	गंगाप्रपातकुण्ड	६० योजन	६० योजन	१९० योजन से कुछ अधिक	१० योजन
२.	सिन्धुप्रपातकुण्ड	,,	,,	,,	,,
३.	रक्ताप्रपातकुण्ड	,,	,,	,,	,,
४.	रक्तवतीप्रपातकुण्ड	,,	,,	,,	,,
५.	रोहिताप्रपातकुण्ड	१२० योजन	१२० योजन	३८० योजन से कुछ कम	,,
६.	रोहितांशाप्रपातकुण्ड	,,	,,	,,	,,
७.	स्वर्णकूलाप्रपातकुण्ड	,,	,,	,,	,,
८.	रुप्यकूलाप्रपातकुण्ड	,,	,,	,,	,,
९.	हरिसलिलाप्रपातकुण्ड	२४० योजन	२४० योजन	७५९ योजन	,,
१०.	हरिकान्ताप्रपातकुण्ड	,,	,,	,,	,,
११.	नरकान्ताप्रपातकुण्ड	,,	,,	,,	,,
१२.	नारीकान्ताप्रपातकुण्ड	,,	,,	,,	,,
१३.	शीताप्रपातकुण्ड	४८० योजन	४८० योजन		
१४.	शीतोदाप्रपातकुण्ड	,,	,,		,,

१ दो यमक पर्वत एक चित्रकूट एक विचित्रकूट और चार वृत्त वैताढ्य—इन आठ पर्वतों पर कूट नहीं हैं।

१ जम्बूद्वीप की चौदह प्रमुख नदियों के चौदह प्रपातकुण्ड हैं। इनमें से सात प्रपातकुण्ड मंदर पर्वत से दक्षिण में बहने वाली गंगा आदि सात नदियों के हैं और सात प्रपातकुण्ड मंदर पर्वत से उत्तर में बहने वाली रक्ता आदि सात नदियों के हैं।

(शेष टिप्पण पृष्ठ ७६३ पर)

पूर्वविदेह और अपरविदेह में छिहत्तर कुण्ड तथा उनका प्रमाण[1]

क्रम	कुण्डनाम	आयाम	विष्कम्भ	परिधि	गहराई
१-१६.	सोलहगंगाकुण्ड	साठ योजन	साठ योजन	एक सो निव्वे योजन से कुछ अधिक	दस योजन
१७-३२.	सोलहसिन्धुकुण्ड	"	"	"	"
३३-४८.	सोलहरक्ताकुण्ड	"	"	"	"
४९-६४.	सोलहरक्तावतीकुण्ड	"	"	"	"
६५.	ग्राहावतीकुण्ड	एक सौ वीस योजन	एक सौ वीस योजन	तीन सौ अस्सी योजन में कुछ कम	दस योजन
६६.	द्रहावतीकुण्ड	"	"	"	"
६७.	पंकावतीकुण्ड	"	"	"	"
६८.	तप्तजलाकुण्ड	"	"	"	"
६९.	मत्तजलाकुण्ड	"	"	"	"
७०.	उन्मत्तजलाकुण्ड	"	"	"	"
७१.	क्षीरोदाकुण्ड	"	"	"	"
७२.	शीतश्रोताकुण्ड	"	"	"	"
७३.	अंतोवाहिनीकुण्ड	"	"	"	"
७४.	उर्मिमालिनीकुण्ड	"	"	"	"
७५.	फेनमालिनीकुण्ड	"	"	"	"
७६.	गम्भीरमालिनीकुण्ड	"	"	"	"

(शेष पृष्ठ ७६२ का)

जम्बू० वक्ष० ४ सूत्र ७४ में गंगाप्रपातकुण्ड का विस्तृत वर्णन है और रोहितांस प्रपातकुण्ड का संक्षिप्त वर्णन है।

सूत्र ८० में रोहित प्रपातकुण्ड और हरिकान्त प्रपातकुण्ड का संक्षिप्त वर्णन है।

सूत्र ८४ में सीतोद प्रपातकुण्ड का संक्षिप्त वर्णन है। इस प्रकार केवल पाँच कुण्डों का वर्णन उपलब्ध है शेष ९ में से ८ के सम्बन्ध में समान प्रमाण सूचक संक्षिप्त वाचना के पाठ उपलब्ध हैं, केवल एक सीता प्रपातकुण्ड के आयामादि के सम्बन्ध में समान आयामादि सूचक संक्षिप्त वाचना का पाठ उपलब्ध नहीं है।

सूत्र ७४ में रोहितांस प्रपातकुण्ड का और सूत्र ८० में रोहित प्रपातकुण्ड का संक्षिप्त वर्णन देने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि दोनों कुण्डों के आयामादि समान हैं।

पाठकों की सुविधा के लिए चौदह कुण्डों के शीर्षक क्रमशः दिये हैं और किस कुण्ड के आयामादि किस कुण्ड के समान हैं यह टिप्पणों में स्पष्ट कर दिया गया है।

१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्षस्कार ६ सूत्र १२५ में "छावत्तरिमहाणइओ कुण्डप्पवहाओ" ऐसा कथन है—तदनुसार छिहत्तर महानदियाँ छिहत्तर कुण्डों से प्रवाहित होती हैं।

छिहत्तर कुण्डों की गणना इस प्रकार है—

सोलह गंगाकुण्ड हैं, सोलह सिन्धुकुण्ड हैं, सोलह रक्ताकुण्ड हैं, सोलह रक्तावतीकुण्ड हैं, और बारह अन्तर्नदियों के बारह कुण्ड हैं—ये सब मिलकर छिहत्तर कुण्ड हैं। इनसे छिहत्तर महानदियाँ निकलती हैं।

(क) नीलवन्त वर्षधर पर्वत के समीप दक्षिण में आठ गंगाकुण्ड और आठ सिन्धुकुण्ड हैं—इनसे निकलने वाली आठ गंगा नदियाँ और आठ सिन्धु नदियाँ कच्छादि आठ विजयों का विभाजन करती हुई शीतानदी में मिलती हैं।

(ख) निषधवर्षधर पर्वत के समीप उत्तर में आठ गंगाकुण्ड और आठ सिन्धुकुण्ड हैं—इनसे निकलने वाली आठ गंगा नदियाँ और आठ सिन्धु नदियाँ पद्मादि आठ विजयों का विभाजन करती हुई शीता नदी में मिलती हैं।

(ग) निषध वर्षधर पर्वत के समीप उत्तर में आठ रक्ताकुण्ड और आठ रक्तावती कुण्ड हैं—इनसे निकलने वाली आठ रक्ता नदियाँ और आठ रक्तावती नदियाँ वत्सादि आठ विजयों का विभाजन करती हुई शीतोदा नदी में मिलती है।

(शेष पृष्ठ ७६४ पर)

सोलह महाद्रह की तालिका

क्रम	पर्वत का नाम	द्रहनाम	आयाम (लम्बाई)	विष्कम्भ (चौड़ाई)	उद्वेध (गहराई)
	जम्बूद्वीप में—				
१.	लघुहिमवान पर्वत	पद्मद्रह	एक हजार योजन	पाँच सौ योजन	दस योजन
२.	महाहिमवान पर्वत	महापद्मद्रह	दो हजार योजन	एक हजार योजन	,,
३.	निषध पर्वत	तिगिंछिद्रह	चार हजार योजन	दो हजार योजन	,,
४.	नीलवन्त पर्वत	केसरीद्रह	,,	,,	,,
५.	रुक्मी पर्वत	महापुण्डरीकद्रह	दो हजार योजन	एक हजार योजन	,,
६.	शिखरी पर्वत	पुण्डरीकद्रह	एक हजार योजन	पाँच सौ योजन	,,
	देवकुरु में—				
१.	चित्र-विचित्रकूट पर्वत	निषधद्रह	एक हजार योजन	पाँच सौ योजन	दस योजन
२.	,,	देवकुरुद्रह	,,	,,	,,
३.	,,	सूरद्रह	,,	,,	,,
४.	,,	सुलसद्रह	,,	,,	,,
५.	,,	विद्युत्प्रभद्रह	,,	,,	,,
	उत्तरकुरु में—				
६.	यमक पर्वत	नीलवन्तद्रह	,,	,,	,,
७.	,,	उत्तरकुरुद्रह	,,	,,	,,
८.	,,	चन्द्रद्रह	,,	,,	,,
९.	,,	ऐरवतद्रह	,,	,,	,,
१०.	,,	माल्यवन्तद्रह	,,	,,	,,

क्रम	द्रहनाम	देवीनाम	भवन का आयाम	निष्कम्भ	तीनों द्वारों की पीठिका	विष्कम्भ
१.	पद्मद्रह	श्रीदेवी	एक कोस	आधा कोस	पाँच सौ धनुष	ढाई सौ धनुष
२.	महापद्मद्रह	ह्रीदेवी	,,	,,	,,	,,
३.	तिगिंछिद्रह	धृतिदेवी	,,	,,	,,	,,
४.	केशरीद्रह	कीर्तिदेवी	,,	,,	,,	,,
५.	महापुण्डरीकद्रह	बुद्धिदेवी	,,	,,	,,	,,
६.	पुण्डरीकद्रह	लक्ष्मीदेवी	,,	,,	,,	,,

(शेष पृष्ठ ७६३ का)

(घ) नीलवन्त वर्षधर पर्वत के समीप दक्षिण में आठ रक्ताकुण्ड हैं और आठ रक्तावती कुण्ड हैं—इनसे निकलने वाली आठ रक्ता नदियाँ, आठ रक्तावती नदियाँ वप्रादि आठ विजयों का विभाजन करती हुई शीतोदा नदी में मिलती हैं।

ये गंगा-सिन्धु नदियाँ तथा रक्ता-रक्तावती नदियाँ महाविदेह की हैं। भरतक्षेत्र की गंगा-सिन्धु नदियों से और ऐरवत क्षेत्र की रक्ता रक्तवती नदियों से भिन्न हैं।

(ङ) ग्राहावती कुण्ड आदि बारह कुण्डों से ग्राहावती आदि बारह अन्तर नदियाँ निकलती हैं। इनमें से ग्राहावती आदि छह नदियाँ शीता नदी में मिलती हैं। क्षीरोदा आदि छह नदियाँ शीतोदा नदी में मिलती हैं।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार ४ सूत्र ९५ में "जहेव रोहिअंसाकुण्डे तहेव" यह कथन है—तदनुसार ग्राहावती कुण्ड आदि बारह कुण्डों का प्रमाण रोहितांसप्रपात कुण्ड के समान है।

चौदह नदियों में सम्मिलित होने वाली नदियों की संख्या

क्रम	लवण समुद्र में समर्पित हाने वाली महानदियों के नाम	सम्मिलित नदी संख्या	संयुक्त नदी संख्या
१.	गंगामहानदी	चौदह हजार	
२.	सिंधुमहानदी	चौदह हजार	
३.	रक्तामहानदी	चौदह हजार	
४.	रक्तवती महानदी	चौदह हजार	छप्पन हजार
५.	रोहिता महानदी	अठावीस हजार	
६.	रोहितांशा महानदी	अठावीस हजार	
७.	सुवर्णकूलामहानदी	अठावीस हजार	
८.	रुप्यकूलामहानदी	अठावीस हजार	एक लाख बारह हजार
९.	हरिसलिलामहानदी	छप्पन हजार	
१०.	हरिकान्तामहानदी	छप्पन हजार	
११.	नरकान्तामहानदी	छप्पन हजार	
१२.	नारीकान्तामहानदी	छप्पन हजार	दो लाख चौवीस हजार
१३.	शीतामहानदी	पांच लाख वत्तीस हजार	
१४.	शीतोदा महानदी	,,	दस लाख चौंसठ हजार
			सम्पूर्ण संख्या १४५६०००, चौदह लाख छप्पन हजार

चौदह नदियों की जिह्विका का प्रमाण

क्रम	नदी-जिह्विका	आयाम	विष्कम्भ	वाहल्य	संस्थान
१.	गंगानदी-जिह्विका (नालीका)	आधा योजन	छः योजन और एक कोस	आधा कोस	मगरमुख
२.	सिन्धुनदी-जिह्विका	,,	,,	,,	,,
३.	रक्तानदी-जिह्विका	,,	,,	,,	,,
४.	रक्तवतीनदी-जिह्विका	,,	,,	,,	,,
५.	रोहितानदी-जिह्विका	एक योजन	साढ़े बारह योजन	एक कोस	,,
६.	रोहितांशानदी-जिह्विका	,,	,,	,,	,,
७.	सुवर्णकूलानदी-जिह्विका	,,	,,	,,	,,
८.	रुप्यकूलानदी-जिह्विका	,,	,,	,,	,,
९.	हरिसलिलानदी-जिह्विका	दो योजन	पच्चीस योजन	आधा योजन	,,
१०.	हरिकान्तानदी-जिह्विका	,,	,,	,,	,,
११.	नरकान्तानदी-जिह्विका	,,	,,	,,	,,
१२.	नारीकान्तानदी-जिह्विका	,,	,,	,,	,,
१३.	शीतानदी-जिह्विका	चार योजन	पचास योजन	एक योजन	,,
१४.	शीतोदानदी-जिह्विका	,,	,,	,,	,,

चौदह महानदियों के द्वीपों का प्रमाण

क्रम	द्वीप नाम	आयाम	विष्कम्भ	परिधि	ऊंचाई
१.	गंगाद्वीप	आठ योजन	आठ योजन	२५ योजन से कुछ अधिक	पानी से दो कोस ऊँचा
२.	सिंधुद्वीप	,,	,,	,,	,,
३.	रक्ताद्वीप	,,	,,	,,	,,
४.	रक्तवतीद्वीप	,,	,,	,,	,,
५.	रोहिताद्वीप	सोलह योजन	सोलह योजन	पचास योजन से कुछ अधिक	पानी से दो कोश अधिक
६.	रोहितंसद्वीप	,,	,,	,,	,,
७.	स्वर्णकूलाद्वीप	,,	,,	,,	,,
८.	रुप्यकूलाद्वीप	,,	,,	,,	,,
९.	हरिसलिलाद्वीप	३२ योजन	३२ योजन	एक सो एक योजन	पानी से दो कोश ऊँचा
१०.	हरिकान्तद्वीप	,,	,,	,,	,,
११.	नरकान्तद्वीप	,,	,,	,,	,,
१२.	नारीकान्तद्वीप	,,	,,	,,	,,
१३.	शीताद्वीप	६४ योजन	६४ योजन	दो सो दो योजन	,,
१४.	शीतोदाद्वीप	,,	,,	,,	,,

मनुष्य क्षेत्र के द्वीप समुद्रों का प्रमाण

क्रम	द्वीप-समुद्र	योजन		
१.	जम्बूद्वीप	एक लाख योजन		
२.	लवणसमुद्र	चार लाख योजन	दोनों ओर का संयुक्त	प्रमाण
३.	धातकीखण्डद्वीप	आठ लाख योजन	,,	,,
४.	कालोदधिसमुद्र	सोलह लाख योजन	,,	,,
५.	पुष्करार्धद्वीप	सोलह लाख योजन	,,	,,
		पैंतालीस लाख योजन	मनुष्यक्षेत्र "समयक्षेत्र"	

छह पद्मवलय तथा देव-देवियों के कमल

प्रथम पद्मवलय में एक सो आठ कमल हैं। इन पर श्रीदेवी के एक सो आठ भवन हैं। इनमें श्रीदेवी के आभूषण रहते हैं।

क्रम	द्वितीय पद्मवलय दिशा-विदिशानाम	देव-देवियां	पद्म संख्या
१.	वायव्यकोण		
२.	उत्तरदिशा	सामानिक देवों के	चार हजार कमल
३.	ईशानकोण		
४.	पूर्वदिशा	चार महत्तर देवियों के	चार कमल
५.	अग्निकोण	आभ्यन्तरपरिषद् के देवों के	आठ हजार कमल
६.	दक्षिणदिशा	मध्य परिषद् देवों के	दस हजार कमल

क्रम	द्वितीय पद्मवलय दिशा-विदिशानाम	देव-देवियाँ	पद्म संख्या
७.	नैऋत्यकोण	बाह्य परिषद् के देवों के	बारह हजार कमल
८.	पश्चिमदिशा	सात सेनापतियों के	सात कमल
	तृतीय पद्मवलय	आत्मरक्षक देवों के	सोलह हजार कमल
	चतुर्थ पद्मवलय	आभ्यन्तरआभियोगिक देवों के	बत्तीस लाख कमल
	पंचम पद्मवलय	मध्यमआभियोगिक देवों के	चालीस लाख कमल
	षष्ठ पद्मवलय	बाह्यआभियोगिक देवों के	अड़तालीस लाख कमल

पद्मवलयों के पद्मों का प्रमाण

क्रम	वलय	पद्म संख्या	पद्मआयाम	पद्मविष्कम्भ	पद्मों की ऊँचाई
१.	मूल पद्म	१	एक योजन	आधा योजन	आधा योजन
२.	प्रथम पद्मवलय	१०८	आधा योजन	एक कोस	एक कोस
३.	द्वितीय पद्मवलय	३४०११	एक कोस	आधा कोस	आधा कोस
४.	तृतीय पद्मवलय	१६०००	एक हजार धनुष	पाँच सौ धनुष	पाँच सौ धनुष
५.	चतुर्थ पद्मवलय	३२०००००	पाँच सौ धनुष	ढाई सौ धनुष	ढाई सौ धनुष
६.	पंचम पद्मवलय	४००००००	ढाई सौ धनुष	सवा सौ धनुष	सवा सौ धनुष
७.	षष्ठ पद्मवलय	४८०००००	सवा सौ धनुष	साढीबासठ धनुष	साढीबासठ धनुष
	संयुक्त पद्म संख्या	१२०५०१२०			

बत्तीस विजय और अन्तर्वर्ती नदियाँ

क्रम	विजयनाम	नदीनाम	प्रत्येक विजय में दो-दो नदियाँ	क्रम	विजयनाम	नदीनाम	प्रत्येक विजय में दो-दो नदियाँ
१.	कच्छ	गंगा-सिन्धु	२	१७.	पद्म	गंगा-सिन्धु	३४
२.	सुकच्छ	गंगा-सिन्धु	४	१८.	सुपद्म	गंगा-सिन्धु	३६
३	महाकच्छ	गंगा-सिन्धु	६	१९.	महापद्म	गंगा-सिन्धु	३८
४.	कच्छकावती	गंगा-सिन्धु	८	२०.	पद्मावती	गंगा-सिन्धु	४०
५.	आवर्त	गंगा-सिन्धु	१०	२१.	शंख	गंगा-सिन्धु	४२
६.	मंगलावर्त	गंगा-सिन्धु	१२	२२.	कुमुद	गंगा-सिन्धु	४४
७.	पुष्कलावर्त	गंगा-सिन्धु	१४	२३.	नलिन	गंगा-सिन्धु	४६
८.	पुष्कलावती	गंगा-सिन्धु	१६	२४.	सलिलावती	गंगा-सिन्धु	४८
९.	वत्स	रक्ता-रक्तवती	१८	२५.	वप्र	रक्ता-रक्तवती	५०
१०.	सुवत्स	रक्ता-रक्तवती	२०	२६.	सुवप्र	रक्ता-रक्तवती	५२
११.	महावत्स	रक्ता-रक्तवती	२२	२७.	महावप्र	रक्ता-रक्तवती	५४
१२.	वत्सावती	रक्ता-रक्तवती	२४	२८.	वप्रावती	रक्ता-रक्तवती	५६
१३.	रम्य	रक्ता-रक्तवती	२६	२९.	वल्गु	रक्ता-रक्तवती	५८
१४.	रम्यक	रक्ता-रक्तवती	२८	३०.	सुवल्गु	रक्ता-रक्तवती	६०
१५.	रमणिक	रक्ता-रक्तवती	३०	३१.	गंधिल	रक्ता-रक्तवती	६२
१६.	मंगलावती	रक्ता-रक्तवती	३२	३२.	गंधिलावती	रक्ता-रक्तवती	६४ नदियाँ

卐

संकलन में प्रयुक्त आगमों के स्थल निर्देश

लोक

अरिहन्त सिद्ध स्तुति (पृ. १, २)

औपपातिक सूत्र मंगलाचरण (पृ. ३-८)

पृष्ठ	स्थल निर्देश
१.	ओव. सु. १२
२.	,, सु. १ से ५
३.	,, सु. ६-९
३.	,, सु. ९-१०
४.	,, सु. ११
५.	,, सु. १२
५.	,, सु. १३
५.	,, सु. १४-२६
६.	,, सु. २७
७.	,, सु. २८-३३
८.	,, सु. ३४

लोक वर्णन (पृ. ८-१८)

आचारांग सूत्र

८. आया. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ९१

१७. आया. सु. १, अ. ८, उ. १, सु. २००

स्थानांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
८.	ठाणं २, उ. २, सु. ८०
८.	,, ,, ,,
९.	,, १, सु. ५
९.	,, ३, उ. २, सु. १५३
१३.	,, ,, सु. १६३
१३.	,, ,, सु. १८३
१३.	,, ४, ,, सु. २८६
१३.	,, ६, सु. ४९८
१३.	,, ८, सु. ६००
१५.	,, १०, सु. ७०४
१७.	,, ४, उ. ३, सु. ३२८
१७.	ठाणं ३, उ. १, सु. १४८
१८.	,, ४, उ. ३, सु. ३२८
१८.	,, ,, सु. ३२४
१८.	,, ,, ,,

सूयगडांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
९.	सूय. सु. २, अ. ६, उ. २, गा. ५०
९.	,, ,, ,, ,, गा. ४९
९.	,, ,, अ. ५, गा. १२
१६.	,, ,, ,, गा. २-३
१७.	,, सु. १ अ. १, उ. ३, गा. ५-९

समवायांग सूत्र

९. सम. स. १, सु. ७

अनुयोगद्वार

पृष्ठ	स्थल निर्देश
१०.	अणु. सु. १०
१०.	,, सु. ११

भगवती सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
९.	भग. स. ११, उ. १०, सु. २
११.	,, स. १२, उ. ७, ,,
११.	,, स. १६, उ. ८, सु. १
११.	,, स. १२, उ. ७, सु. २
११.	,, स. १६, उ. ८, सु. १
१२.	,, स. ११, उ. १०, सु. २६
१२.	,, स. १३, उ. ४, सु. १२
१२.	,, ,, ,, सु. ६७
१२.	,, ,, ,, सु. ६८
१३.	,, स. ७, उ. ६, सु. ५
१३.	,, स. ५, उ. ९, सु. १४
१३.	,, स. ११, उ. १०, सु. १०
१३.	,, स. १३, उ. ४, सु. ६९
१४.	भग. स. १, उ. ६, सु. २५-१, २, ३
१५.	,, स. ९, उ. ३३, सु. ९९
१५.	,, ,, ,, सु. १०१
१६.	,, स. २, उ. १, सु. २३, २४-१
१६.	,, स. ११, उ. १०, सु. २

द्रव्यलोक (पृ. १८-३४)

स्थानांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
१८.	ठाणं २, उ. ३, सु. १०३
१८.	,, उ. १, सु. ५७
१८.	,, ३, ,, सु. १४८
१८.	,, ,, सु. १३४
१८.	,, ,, ,,
१९.	,, २, ,, सु. ५८
१९.	,, ,, सु. ५९
१९.	,, ४, उ. ३, सु. ३३३
१९.	,, ,, ,,
२०.	,, २, उ. ४, सु. १०३
२०.	,, ,, ,,

भगवती सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२०.	भग. स. १३, उ. ४, सु. २३
२१.	,, स. १०, उ. १, सु. ६-७
२१.	,, ,, ,, सु. ३-४-५
२२.	,, स. १३ उ. ४, सु. १६-२२
२३.	,, स. १०, उ. १ सु. ८
२४.	,, ,, ,, सु. ९-१०
२४.	,, स. ११, उ. १०, सु. १४
२५.	,, स. २, ,, सु. ११
२६.	,, स. ११ सु. २०

पन्नवणा सूत्र

उत्तराध्ययन सूत्र

अनुयोगद्वार

क्षेत्रलोक (पृ० ३४)

भगवती सूत्र

स्थानांग सूत्र

अनुयोगद्वार



अधोलोक

(पृथ्वी वर्णन) (पृ. ३४-५८)

भगवती सूत्र

अनुयोगद्वार

ठाणांग सूत्र

समवायांग सूत्र

जीवाभिगम सूत्र

पन्नवणा सूत्र

पृष्ठ स्थल निर्देश

५५. पण्ण. पद. १०, सु. ७७५-७७६
५६. ,, ,, सु. ७७७-७७८

—अधोलोक—

(नरक वर्णन) (पृष्ठ ५६-७४)

पन्नवणा सूत्र

५६. पण्ण. पद. २, सु. १६७
६०. पण्ण. पद २, सु. १६८
६१. ,, ,, सु. १६६
६१. ,, ,, सु. १७०
६२. ,, ,, सु. १७१
६३. ,, ,, सु. १७२
६४. ,, ,, सु. १७३
६४. ,, ,, सु. १७४
६५. ,, ,, ,,
६५. ,, ,, ,,
६६. ,, ,, ,,
६६. ,, ,, ,,

स्थानांग सूत्र

६०. ठाणं ६, सु. ५१५
६२. ,, ,,
६२. ,, १०, सु. ७५७
६३. ,, ३, उ. १, सु. १४७
६४. ,, ५, उ. ३, सु. ४५१
७४. ,, ४, ,, सु. ३२६
७४. ,, ,, सु. ३२६ की टीका
७४. ,, ,, ,, की टीका

समवायांग सूत्र

५६. सम. ८४, सु. १
६०. ,, ३०, सु. ८
६०. ,, सु. १४६, १५०
६१. ,, २५, सु. ८१
६२. ,, १०, सु. ११
६३. ,, १८, सु. ७
६४. ,, सु. १४६, १५०
६५. ,, १, सु. २०

पृष्ठ स्थल निर्देश

६५. सम. ३४, सु. ६
६५. ,, ३५, ,,
६५. ,, ३६, सु. ३
६६. ,, ४१, सु. २
६६. ,, ४३, ,,
६६. ,, ५५, सु. ५
६६. ,, ५८, सु. १
६६. ,, ७४, सु. ४
६६. ,, सु. १५०
७१. ,, ४५, सु. २

भगवती सूत्र

५६. भग. स. ६, उ. ६ सु. १—(१-२)
५६. ,, स. १ ,, ,,
६०. ,, स. १३, उ. १, सु. ४
६०. ,, स. २, उ. ५, सु. २
६०. ,, स. ६, उ. ६, सु. १—(१-२)
६०. ,, स. २५, उ. ३, सु. ११४
६१. ,, स. १३, उ. १, सु. १२
६१. ,, ,, ,, सु. १०
६२. ,, ,, ,, सु. १३
६३. ,, ,, ,, सु. १४
६३. ,, ,, ,, सु. १५
६४. ,, ,, ,, सु. १६
६५. ,, स. १, उ. ५, सु. १, २
६६. ,, ,, ,, ,,
७०. ,, स. १३, उ. १, सु. ५-११ व १७

जीवाभिगम सूत्र

५६. जीवा. प. ३, उ. १, सु. ८७
५६. ,, ,, ,, सु. ८६
६०. ,, ,, ,, सु. ८१
६१. ,, ,, ,, ,,
६१. ,, ,, ,, ,,
६२. ,, ,, ,, ,,
६३. ,, ,, ,, ,,
६३. ,, ,, ,, ,,
६४. ,, ,, ,, ,,
६७. ,, ,, ,, सु. ७०
६६. ,, ,, ,, सु. ७०

पृष्ठ स्थल निर्देश

७०. जीवा. प. ३. उ. १, सु. ८२
७०. ,, ,, ,, ,,
७१. ,, ,, ,, सु. ८४
७२. ,, ,, ,, सु. ८२
७३. ,, ,, ,, सु. ८३
७३. ,, ,, ,, सु. ८५
७३. ,, ,, ,, सु. ३२६

—अधोलोक—

(भवनवासी देव वर्णन पृष्ठ ७४-११२)

पण्णवणा सूत्र

७६. पण्ण. पद. २. सु. १७७
७८. ,, ,, सु. १७८ (१)
७८. ,, ,, ,, (२)
७६. ,, ,, सु. १७६ (१)
८०. ,, ,, ,, (२)
८०. ,, ,, ,, (२)
८०. ,, ,, सु. १७७
८२. ,, ,, सु. १८० (१)
८३. ,, ,, ,, (२)
८३. ,, ,, उ. १, सु. १८१ (१)
८३. ,, ,, ,, ,, (२)
८४. ,, ,, सु. १८२ (१)
८४. ,, ,, ,, (२)
८५. ,, ,, सु. १८३ (१)
८५. ,, ,, ,, (२)
८५. ,, ,, सु. १८४ (१)
८५. ,, ,, ,, (२)
८६. ,, ,, सु. १८५ (१)
८६. ,, ,, ,, (२)
८७. ,, ,, सु. १८६ (१)
८७. ,, ,, ,, (२)
८७. ,, ,, सु. १८७
८८. ,, ,, ,,
८८. ,, ,, ,,
८६. ,, ,, ,,
६१. ,, ,, ,,
६१. ,, ,, ,,
६१. ,, ,, ,,
६८. ,, ,, सु. १७८ (२)

भगवती सूत्र

पृष्ठ स्थल निर्देश

७५. भग. स. १३, उ. २, सु. २
७६. ,, स. २, उ. ७, ,,
७७. ,, स. ३, उ. २, सु. ३ (१-२) ४
७७. ,, स. १३, ,, ,,
७७. ,, स. १९, उ. ७, सु. १
८१. ,, स. ३, उ. २, सु. ५-७
८१. ,, ,, ,, सु. ८-१०
८२. ,, ,, ,, सु. ११-१३
८३. ,, ,, उ. ६, सु. १४
८७. ,, स. १३, उ. २, सु. ३-४
८८. ,, ,, ,, सु. ६
८८. ,, ,, ,, ,,
८८. ,, ,, उ. ५, सु. ३
८९. ,, स. १९, उ. ७, सु. १, २, ३
९५. ,, स. २, उ. ८, सु. १
९८. ,, स. १३, उ. ६, सु. ५, ६
९९. ,, स. १६, उ. ९, सु. १
१०८. ,, स. १८, उ. ५, सु. १-२

ठाणांग सूत्र

७४. ठाणं ४, उ. ३, सु. ३२९ की टीका
७४. ,, ,, ,, ,,
७५. ,, १९, सु. ७३६
८०. ,, ४, उ. १, सु. २५६
८०. ,, ५, ,, सु. ४०३
८०. ,, ३, उ. २, सु. १५४
८०. ,, ५, उ. १, सु. ४०४
८०. ,, ७, सु. ५८२
८१. ,, ,,
८४. ,, ६, सु. ५०९
८४. ,, ७, सु. ५८२
८४. ,, ४, उ. १, सु. २५६
८६. ,, २, उ. ३, सु. ९४
८९. ,, ,, ,,
९०. ,, ५, उ. १, सु. ४०३
९०. ,, ६, सु. ५०८
९०. ,, सु. ५०७
९०. ,, सु. ५०८

पृष्ठ स्थल निर्देश

९१. ठाणं ४, उ. १, सु. २५९
९१. ,, ६, सु. ५०८
९१. ,, ६, सु. ५०९
९३. ,, ४, उ. १, सु. २५६
९४. ,, ,, सु. २७३
९९. ,, ५, उ. ३, सु. ४७२
९९. ,, १०, सु. ७२८
१००. ,, ६, सु. ५३५
१००. ,, १०, सु. ७३६
१०१. ,, ३, उ. २, सु. १५४
१०३. ,, ,, ,,
१०४. ,, ७, सु. ५८२
१०४. ,, ,,
१०४. ,, ५, उ. १, सु. ४०४
१०४. ,, ,, ,,
१०५. ,, ७, सु. ५८२
१०५. ,, ,,
१०५. ,, ५, उ. १, सु. ४०४
१०६. ,, ७, सु. ५८३
१०७. ,, १०, सु. ७२८
१०८. ,, ४, उ. १, सु. २५६
१०९. ,, ८, सु. ६४३
१०९. ,, ,,
१०९. ,, ,, की टीका
१०९. ,, ,,
११०. ,, ,,
११०. ,, ,,
१११. ,, ,,
१११. ,, ,,
१११. ,, ४, उ. १, सु. २५९
१११. ,, ६, सु. ५०७
११२. ,, ४, उ. १, सु. २५९
११२. ,, ६, सु. ५०८
११२. ,, ,,

उत्तराध्ययन सूत्र

७५. उत्त. अ. ३६, गा. २०६

समवायांग सूत्र

७७. सम. ६४, सु. २

पृष्ठ स्थल निर्देश

७९. सम. ३४, सु. ५
८०. ,, ,,
८०. ,, ६४, सु. ३
८३. ,, ६०, सु. ४
८३. ,, ८४, सु. ११
८४. ,, ४४, सु. ३
८५. ,, ४०, सु. ४
८८. ,, ६४, सु. २
८८. ,, ८४, सु. ११
८८. ,, ७२, सु. १
८८. ,, ९६, सु. २
८८. ,, ३४, सु. ४
८८. ,, ७६, सु. १-२
८८. ,, ४४, सु. ३
८८. ,, ४०, सु. ४
८८. ,, ४६, सु. ३
८९. ,, ३२, सु. २
९१. ,, ६४, सु. ३
९१. ,, ६०, सु. ४
९४. ,, १७, सु. ७
९४. ,, सु. १०३/२
९९. ,, १७, सु. ८
१००. ,, ५१, सु. २-३
१००. ,, ३६, सु. २
१००. ,, ३३, ,,
१००. ,, १६, सु. ६

जीवाभिगम सूत्र

७६. जीवा. प. ३, उ. २, सु. २१४
७६. ,, ,, उ. १, सु. ११६
७९. ,, ,, ,, सु. ११७
८२. ,, ,, उ. २, सु. ११९
८३. ,, ,, उ. १, ,,
८३. ,, ,, उ. २, सु. १२०
८४. ,, ,, ,, ,,
८५. ,, ,, ,, ,,
१०१. ,, ,, उ. १, सु. ११८
१०१. ,, ,, ,, ,,
१०१. ,, ,, ,, ,,

पृष्ठ स्थल निर्देश

१०२. जीवा. प. ३, उ. १, सु. ११८
१०२. ,, ,, ,, सु. ११६
१०३. ,, ,, ,, ,,
१०३. ,, ,, ,, सु. १२०

समवायांग सूत्र

८५. सम. ७२, सु. १

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र

१०६. जंबु. वक्ख. ५, सु. ११२
१०६. ,, ,, सु. ११३
१०६. ,, ,, सु. ११२ की टीका
१०६. ,, सु. ११३ ,,
१०६. ,, ,, १, सु. ११२,११३,११४
१०६. ,, ,, सु. २६ से ३४
११०. ,, ,, ५, सु. ११४
११०. ,, ,, ,,
१११. ,, ,, ,,
१११. ,, ,, ,,
१११. ,, ,, ,,
११२. ,, ,, ,,

—अधोलोक—

पृथ्वीकायिक जीव वर्णन (पृष्ठ ११२-११६)

पण्णवणा सूत्र

११३. पण्ण. पद. २, सु. १४८-१५०
११४. ,, ,, सु. १५१-१५३
११५. ,, ,, सु. १५४-१५६
११६. ,, ,, सु. १५७-१५६
११६. ,, ,, सु. १६०-१६२
११७. ,, ,, सु. १६३
११७. ,, ,, सु. १६४
११८. ,, ,, सु. १६५
११८. ,, ,, सु. १६६
११६. ,, ,, सु. १७५

उत्तराध्ययन सूत्र

११२. उत्त. अ. ३६, गा. ७८
११४. ,, ,, गा. ८६
११६. ,, ,, गा. १२०
११६. उत्त. अ. ३६, गा. १००
११७. ,, ,, गा. १३०
११७. ,, ,, गा. १३६
११८. ,, ,, गा. १४६
११८. ,, ,, गा. १५८, १७३, १८२, १८६
११६. ,, ,, गा. १८६

मध्यलोक

जम्बूद्वीप वर्णन (पृष्ठ १२१-१४०)

जंबुद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

१२१. जंबु. वक्ख १, सु. १-२
१२४. ,, ,, सु. ३
१२५. ,, ,, सु. १७४
१२५. ,, ,, ७, सु. १७५
१२५. ,, ,, ,,
१२६. ,, ,, सु. १७६ (१)
१२६. ,, ,, सु. १७६ (२)
१२६. ,, ,, १, सु. ७
१२६. ,, ,, सु. ४
१२६. ,, ,, सु. ३
१२६. ,, ,, सु. ५
१३०. ,, ,, ,,
१४०. ,, ,, सु. ६

भगवती सूत्र

१२१. भग. स. ११, उ. १०, सु. ५
१२२. ,, स. ,, ,, सु. ८
१२२. ,, स. १३, उ. ३, सु. १५
१२४. ,, स. ६, उ. १, सु. २-३

जीवाभिगम सूत्र

१२३. जीवा. प. ३, उ. १, सु. १२३-१२४
१२४. ,, ,, ,, सु. १२४
१२८. ,, ,, ,, सु. १२५
१२६. ,, ,, ,, ,,
१२६. ,, ,, ,, सु. १२६
१३०. ,, ,, ,, ,,
१३०. ,, ,, ,, ,,
१३१. ,, ,, ,,
१३१. जीवा. प. ३, उ. १, सु. १२६
१३२. ,, ,, ,, ,,
१३२. ,, ,, ,, ,,
१३३. ,, ,, ,, ,,
१३४. ,, ,, ,, ,,
१३४. ,, ,, ,, ,,
१३५. ,, ,, ,, ,,
१३६. ,, ,, ,, ,,
१३७. ,, ,, ,, सु. १२७
१३८. ,, ,, ,, ,,
१३८. ,, ,, ,, ,,
१३८. ,, ,, ,, ,,
१३८. ,, ,, ,, ,,
१३८. ,, ,, ,, ,,
१३६. ,, ,, ,, ,,
१३६. ,, ,, ,, ,,
१३६. ,, ,, ,, ,,
१३६. ,, ,, ,, ,,
१४०. ,, ,, ,, ,,
१४०. ,, ,, ,, ,,
१४०. ,, ,, ,, ,,
१४०. ,, ,, ,, ,,
१४०. ,, ,, ,, ,,

समवायांग सूत्र

१२४. सम. स. १, सु. १६
१२५. ,, सु. १२८
१२६. ,, स. १२, सु. ७

ठाणांग सूत्र

१२४. ठाणं अ. १, सु. ५२
१२६. ,, अ. ८, सु. ६४२
१२६. ,, ,, ,,

—मध्यलोक—

विजयद्वार (पृष्ठ १४१-१६०)

जीवाभिगम सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश			
१४१.	जीवा. पडि. ३,	उ. १,		सु. १२८
१४१.	,,	,,	,,	सु. १२७
१४३.	,,	,,	,,	सु. १२९
१४३.	,,	,,	,,	,,
१४४.	,,	,,	,,	,,
१४५.	,,	,,	,,	,,
१४५.	,,	,,	,,	,,
१४५.	,,	,,	,,	,,
१४६.	,,	,,	,,	,,
१४८.	,,	,,	,,	सु. १३०
१५१.	,,	,,	,,	सु. १३१
१५१.	,,	,,	,,	सु. १३२
१५२.	,,	,,	,,	,,
१५२.	,,	,,	,,	सु. १३३
१५३.	,,	,,	,,	सु. १३४
१५३.	,,	,,	,,	,,
१५३.	,,	,,	,,	सु. १३५
१५३.	,,	,,	,,	,,
१५४.	,,	,,	,,	,,
१५४.	,,	,,	,,	,,
१५४.	,,	,,	,,	,,
१५५.	,,	,,	,,	,,
१५५.	,,	,,	,,	,,
१५५.	,,	,,	,,	सु. १३६
१५६.	,,	,,	,,	,,
१५६.	,,	,,	,,	,,
१५७.	,,	,,	,,	,,
१५८.	,,	,,	,,	,,
१५९.	,,	,,	,,	,,
१६०.	,,	,,	,,	सु. १३७
१६०.	,,	,,	,,	,,
१६०.	,,	,,	,,	,,
१६१.	,,	,,	,,	,,
१६१.	,,	,,	,,	,,
१६१.	,,	,,	,,	,,

पृष्ठ	स्थल निर्देश			
१६२.	जीवा. पडि. ३,	उ. १,		सु. १३७
१६३.	,,	,,	,,	,,
१६३.	,,	,,	,,	,,
१६३.	,,	,,	,,	,,
१६४.	,,	,,	,,	,,
१६४.	,,	,,	,,	सु. १३८
१६५.	,,	,,	,,	,,
१६६.	,,	,,	,,	,,
१६६.	,,	,,	,,	,,
१६७.	,,	,,	उ. २,	सु. १३९
१६७.	,,	,,	,,	,,
१६९.	,,	,,	,,	,,
१६९.	,,	,,	उ. १,	सु. १४०
१७०.	,,	,,	,,	,,
१७०.	,,	,,	उ. २,	,,
१७०.	,,	,,	,,	,,
१७०.	,,	,,	,,	,,
१७०.	,,	,,	,,	,,
१७१.	,,	,,	उ. १,	,,
१७१.	,,	,,	उ. २,	,,
१७१.	,,	,,	,,	,,
१७३.	,,	,,	,,	सु. १४१
१८०.	,,	,,	,,	,,
१८२.	,,	,,	उ. १,	सु. १४२
१८२.	,,	,,	,,	,,
१८८.	,,	,,	,,	सु. १४२
१८९.	,,	,,	,,	सु. १४३
१८९.	,,	,,	,,	,,
१८९.	,,	,,	,,	सु. १४४
१९०.	,,	,,	,,	,,
१९०.	,,	,,	,,	,,
१९०.	,,	,,	,,	सु. १४५

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

१४१.	जंबु. व. १,		सु. ७
१६०.	,,	,,	सु. ७-८
१६०.	,,	,,	सु. ९

समवायांग सूत्र

१४१.	सम. ४५	सु. ६
१५१.	,, ९.	सु. ६

ठाणांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश		
१४१.	ठाणं. ४,	उ. २,	सु. ३०३/१, २
१४१.	,, ८,		सु. ६५७

—मध्यलोक—

(क्षेत्र वर्णन) (पृ. १६१-२२४)

पन्नवणा सूत्र

१६१. पण्ण. पद. २, सु. १७६

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

१६१.	जंबु. वक्ख. ६,		सु. १२५
१६५.	,,	,, १,	सु. १०
१६६.	,,	,, ३,	सु. ७१
१६६.	,,	,,	सु. ४१-४२
१६६.	,,	,,	सु. ७१
१६६.	,,	,,	,,
१६७.	,,	,, १,	सु. १०
१६७.	,,	,,	सु. ११
१६८.	,,	,,	,,
१६८.	,,	,,	,,
१६९.	,,	,,	सु. १६
१६९.	,,	,,	,,
१६९.	,,	,,	,,
१६९.	,,	,, ४,	सु. १११
२००.	,,	,,	सु. ८
२०१.	,,	,,	सु. ८५
२०१.	,,	,,	सु. ७५
२०१.	,,	,,	,,
२०१.	,,	,,	सु. ८५
२०२.	,,	,, ६,	सु. १२५
२०२.	,,	,, ४,	सु. ९३
२०३.	,,	,,	,,
२०३.	,,	,,	,,
२०३.	,,	,,	,,
२०४.	,,	,,	,,
२०४.	,,	,,	सु. ९५
२०४.	,,	,,	,,
२०५.	,,	,,	,,
२०५.	,,	,,	,,
२०५.	,,	,,	,,

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२०५.	जंबु. वक्ख. ४, सु. ९५
२०६.	,, ,, ,,
२०६.	,, ,, ,,
२०७.	,, ,, सु. ९६
२०७.	,, ,, ,,
२०७.	,, ,, ३, सु. ४१
२०७.	,, ,, ४, सु. ९६
२०९.	,, ,, सु. १-२
२१०.	,, ,, सु. ७६
२१०.	,, ,, ,,
२१०.	,, ,, सु. ७८
२११.	,, ,, सु. १११
२११.	,, ,, ,,
२१२.	,, ,, सु. ८२
२१२.	,, ,, ,,
२१२.	,, ,, ,,
२१३.	,, ,, सु. १११
२१३.	,, ,, ,,
२१३.	,, ,, सु. ९७
२१४.	,, ,, ,,
२१४.	,, ,, सु. १००
२१४.	,, ,, ,,
२१५.	,, ,, सु. ८७
२१६.	,, ,, सु. ९१
२१६.	,, ,, सु. ८७
२१६.	,, ,, सु. २७
२१६.	,, ,, सु. ९०
२१७.	,, ,, ,,
२१७.	,, ,, ,,
२१८.	,, ,, ,,
२१९.	,, ,, ,,
२२०.	,, ,, ,,
२२०.	,, ,, ,,
२२१.	,, ,, ,,
२२२.	,, ,, ,,
२२२.	,, ,, ,,
२२३.	,, ,, ,,
२२३.	,, ,, सु. ९६
२२४.	,, ,, सु. ९५

ठाणांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
१९१.	ठाणं. ३, उ. ४, सु. १९७
१९१.	,, ७, सु. ५५५
१९१.	,, ७, सु. ५२२
१९२.	,, १०, सु. ७२३
१९२.	,, २, उ. ३, सु. ८६
१९३.	,, ३, ,, सु. १८३
१९३.	,, ६, सु. ५२२
१९३.	,, ४, उ. १, सु. ३०२
१९३.	,, ६, सु. ५२२
१९४.	,, ३, उ. ४, सु. १९७
१९४.	,, ८, सु. ६३०
१९५.	,, ४, उ. २, सु. ३०४
१९५.	,, ९, सु. ६९८
१९६.	,, १०, सु. ७१८
२००.	,, ४, उ. २, सु. ३०२
२०६.	,, ८, सु. ६३७
२०७.	,, ,,
२०८.	,, ,,
२०९.	,, ,,
२१४.	,, १०, सु. ७६४
२१४.	,, ८, सु. ६३५
२१५.	,, २, उ. ३, सु. ८६
२११.	,, सु. १२१
२१२.	,, ७३, सु.
२१२.	,, ८४, सु. ८
२१२.	,, ,,
२१२.	,, ,,
२१३.	,, सु. १२१
२१३.	,, ७३, सु. १
२१३.	,, ८४, सु. ८
२१३.	,, ५३, सु.
२१४.	,, ८, सु. ५
२१५.	,, ५३, सु. १
२१६.	,, ४६, सु. ९२

समवायांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
१९१.	सम. ७, सु. ३
१९७.	,, ९८, सु. ४
१९७.	,, सु. १२२
१९९.	,, १४, सु. ६
२००.	,, ,,
२००.	,, ३३, सु. ३
२०२.	,, ३४, सु. २
२०९.	,, ६७, ,
२०९.	,, ,,
२१०.	,, ३७, ,
२१०.	,, ३८, ,
२११	, ६७ ,
२११.	, ३७, ,,
२११	,, ३८ .

भगवती सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
१९२.	भग. स. २०, उ. ८, सु. १
१९३.	,, स. २, ,, सु. २
१९५.	,, स. ९, उ. ३, सु. ३०
१९५.	,, स. १०, उ. ७, सु. ३७

जीवाभिगम सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
१९५.	जीवा. पडि. ०, सु. १०९-११२
२१५.	,, ,, ३, उ. २, सु. १४७
२१६.	,, ,, ,, ,,
२१६.	,, ,, ,, सु. १५१
२१७.	,, ,, ,, ,,
२१७.	,, ,, ,, ,,
२१८.	,, ,, ,, सु. १५२
२१९.	,, ,, ,, ,,
२१९.	,, ,, ,, ,,
२१९.	,, ,, ,, ,,
२२०.	,, ,, ,, ,,
२२०.	,, ,, ,,
२२१.	,, ,, ,, ,,
२२१.	,, ,, ,, ,,
२२२	,, ,, ,, ,,
२२२.	,, ,, ,, ,,
२२३.	,, ,, ,, ,,

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२०८.	णायाधम्म. अ. ८

—मध्यलोक—

पर्वत वर्णन (पृ. २२४-२६९)

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२२४.	जंबु. वक्ख. १, सु. १२५
२२४.	,, ,, ६, ,,
२२७.	,, ,, ४, सु. ७२
२२७.	,, ,, सु. ७५
२२८.	,, ,, सु. ७९
२२९.	,, ,, सु. ८१
२३०.	,, ,, सु. ८३
२३०.	,, ,, सु. ८४
२३१.	,, ,, सु. ११०
२३१.	,, ,, ,,
२३१.	,, ,, सु. १५१
२३२.	,, ,, सु. १११
२३२.	,, ,, ,,
२३२.	,, ,, ,,
२३४.	,, ,, सु. १०३
२३४.	,, ,, सु. १०६
२३५.	,, ,, सु. १०८
२३६.	,, ,, सु. १०९
२३६.	,, ,, ,,
२३८.	,, ,, सु. १०३
२३८.	,, ,, ,,
२३९.	,, ,, ,,
२३९.	,, ,, सु. १०४
२४०.	,, ,, सु. १०५
२४०.	,, ,, सु. १०६
२४१.	,, ,, ,,
२४१.	,, ,, सु. १०३
२४२.	,, ,, सु. १०७
२४२.	,, ,, ,,
२४३.	,, ,, ,,
२४३.	,, ,, ,,
२४३.	,, ,, ,,
२४४.	,, ,, सु. ९८
२४५.	,, ,, सु. ८८
२४६.	,, ,, ,,
२५०.	,, ,, ,,

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२५०.	जंबु. वक्ख. ४, सु. ८९
२५०.	,, ,, ६, सु. १२५
२५०.	,, ,, ,, की वृत्ति
२५३.	,, ,, १, सु. १३
२५३.	,, ,, सु. १२
२५३.	,, ,, ,,
२५४.	,, ,, सु. १५
२५४.	,, ,, ४, सु. ९३
२५५.	,, ,, सु. ७७
२५६.	,, ,, ,,
२५६.	,, ,, सु. ८२
२५६.	,, ,, ,,
२५७.	,, ,, सु. १११
२५७.	,, ,, ,,
२५७.	,, ,, ,,
२५८.	,, ,, ६, सु. १२५
२५८.	,, ,, ४, सु. १११
२५८.	,, ,, सु. ७७ की वृत्ति
२५९.	,, ,, सु. ८२ ,,
२६०.	,, ,, सु. १७
२६०.	,, ,, १, ,, की वृत्ति
२६०.	,, ,, ,, ,,
२६०.	,, ,, ३, सु. ६३
२६१.	,, ,, ४, सु. ९३
२६२.	,, ,, ६, सु. १२५
२६२.	,, ,, ,, की वृत्ति
२६३.	,, ,, ४, सु. ९१
२६४.	,, ,, सु. ९२
२६४.	,, ,, सु. ९४
२६५.	,, ,, ,,
२६५.	,, ,, सु. ९५
२६५.	,, ,, ,,
२६६.	,, ,, ,,
२६६.	,, ,, ,,
२६६.	,, ,, ,,
२६६.	,, ,, सु. ९७
२६७.	,, ,, ,,
२६७.	,, ,, सु. १०१
२६७.	,, ,, ,,

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२६८.	जंबु. वक्ख. ४, सु. ८६
२६८.	,, ,, सु. ९६
२६९.	,, ,, सु. ८६
२६९.	,, ,, सु. १०२

ठाणांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२२४.	ठाणांग ७, सु. ५५५
२२४.	,, ,,
२२५.	,, ,,
२२५.	,, ३, उ. ४, सु. १९९
२२७.	,, २, उ. ३, सु. ८७
२२९.	,, ४, उ. २, सु. २९९
२३१.	,, ,, ,,
२३३.	,, १०, सु. ७१९
२३३.	,, ,,
२३३.	,, ,,
२३४.	,, ८, सु. ६३९
२३४.	,, ४, उ. २, सु. २९९
२३५.	,, १०, सु. ७१९
२३६.	,, सु. ७१८
२३८.	,, ४, उ. २, सु. ३०२
२४१.	,, ,,
२५१.	,, २, उ. ३, सु. १८७
२५५.	,, १०, सु. ७२२
२५६.	,, २, उ. ३, सु. ८७
२५७.	,, ,, ,,
२६२.	,, १०, सु. ७६८
२६२.	,, ४, उ. २, सु. ३०२
२६२.	,, ५, ,, सु. ४३४
२६२.	,, ,, ,,
२६२.	,, ८, सु. ६३७
२६३.	,, २, उ. ३, सु. ८७
२६४.	,, ४, उ. २, सु. ३०२
२६८.	,, २, उ. ३, सु. ८७

समवायांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२२४.	सम. ७, सु. ४
२२५.	,, ,,
२२६.	,, १००, सु. ६
२२६.	,, २४, सु. २

पृष्ठ स्थल निर्देश

२२८. सम. १०२, सु. २
२२८. ,, १५३, ,,
२२८. ,, ५७, सु. ५
२२९. ,, १०६, सु. २
२३०. ,, ९४, सु. १
२३१. ,, १०६, सु. २
२३१. ,, ९४, सु. १
२३१. ,, १०२, सु. २
२३१. ,, ५३, ,,
२३१. ,, ५७, सु. ५
२३२. ,, १००, सु. ६
२३२. ,, २४, सु. २
२३३. ,, ९९, सु. १
२३३. ,, १०, सु. ३
२३३. ,, सु. १२३
२३३. ,, ११, सु. ७
२३३. ,, ३१, सु. २
२३४. ,, ४०, ,,
२३४. ,, १२, सु. ६
२३५. ,, ६१, सु. २
२३५. ,, ३८, सु. ३
२३६. ,, सु. ११८
२३६. ,, ४५, सु. ६
२३६. ,, ८८, सु. ४
२३६. ,, ,, सु. ५
२३६. ,, ८७, सु. १
२३६. ,, ,, सु. २
२३६. ,, १६, सु. ३
२३७. ,, ८७, ,,
२३७. ,, ,, सु. ४
२३७. ,, ९६, सु. ३
२३७. ,, ,, सु. ४
२३७. ,, ९७, सु. १
२३७. ,, ,, सु. २
२३७. ,, ९८, ,,
२३७. ,, ,, सु. ३
२३७. ,, ५५, सु. २
२३७. ,, ,, सु. ३
२३७. ,, ६७, ,,

पृष्ठ स्थल निर्देश

२३७. सम. ९९, सु. २
२३७. ,, ११, सु. ३
२४३. ,, ९९, सु. १
२४४. ,, ,, सु. २
२४४. ,, ,, सु. ३
२४४. ,, ८५, सु. ४
२४४. ,, ११३, सु. २
२४५. ,, ,, ,,
२५०. ,, १०२, सु. ३
२५०. ,, १००, सु. ८
२५०. ,, ५०, सु. ७
२५२. ,, १००, सु. ६
२५२. ,, २५, सु. ३
२५२. ,, ५०, सु. ४
२५५. ,, ११३, ,,
२६२. ,, १०८, सु. ५
२६३. ,, ,,
२६८. ,, १०७, सु.

जीवाभिगम सूत्र

२५१. जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५०
२५१. ,, ,, ,, ,,
२५१. ,, ,, उ. २, ,,

—मध्यलोक—

कूट वर्णन (पृष्ठ २६९-२९२)

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

२७०. जंबु. वक्ख. ६, सु. १२५
२७०. ,, ,, ,, की वृत्ति
२७०. ,, ,, ,, ,,
२७१. ,, ४ सु. ७५
२७१. ,, ६, सु. १२५ की वृत्ति
२७१. ,, ,, ,, ,,
२७२. ,, ४ सु. ७५
२७३. ,, ,, ,,
२७३. ,, ,, ,,
२७३. ,, ,, ,,
२७३. ,, ,, ,,
२७४. ,, ,, सु. ८६

पृष्ठ स्थल निर्देश

२७४. जंबु. वक्ख. ४, सु. ८४
२७५. ,, ,, सु. ११०
२७५. ,, ,, सु. १११
२७६. ,, ,, ,,
२७७. ,, ,, सु. ९४
२७७. ,, ,, सु. ९५
२७७. ,, ,, ,,
२७८. ,, ,, सु. ८६
२७८. ,, ,, ,,
२७९. ,, ,, सु. ९१
२७९. ,, ,, ,,
२८०. ,, ,, ,,
२८०. ,, ,, सु. ९२
२८१. ,, ,, सु. ९७
२८१. ,, ,, सु. ९२
२८२. ,, ,, सु. १०१
२८२. ,, ,, १, सु. १२
२८३. ,, ,, सु. ११
२८४. ,, , सु. १३
२८५. ,, ,, सु. १४
२८५. ,, ,, ,,
२८५. ,, ,, ,,
२८६. ,, ,, ,,
२८७. ,, ,, ६, सु. १२५
२८९. ,, ,, ४, सु. १०४
२९१. ,, ,, सु. १०३

ठाणांग सूत्र

२७१. ठाणं ८, सु. ६४३
२७३. ,, २, उ. ३, सु. ८७
२७४. ,, ,, ,,
२७४. ,, ,, ,,
२७५. ,, ८, सु. ६४३
२७५. ,, ९, सु. ६८६
२७५. ,, २, उ. ३, सु. ८७
२७५. ,, , ,,
२७५. ,, ९, सु. ६८६
२७५. ,, ८, सु. ६४३
२७६. ,, ९, सु. ६८२

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२७६.	ठाणं. २, उ. ३, सु. ८७
२७८.	,, ७, सु. ५९०
२७९.	,, ९, सु. ६८९
२८१.	,, ७, सु. ५९०
२८१.	,, ९, सु. ६८९
२८२.	,, सु. ६७९
२८६.	,, सु. ६८९
२८७.	,, ,,
२८८.	,, ,,
२९०.	,, ८, सु. ६४२
२९२.	,, सु. ६४३

समवायांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२७६.	सम. १०८, सु. २
२८९.	,, ११३, सु. ६

—मध्यलोक—

गुफा, प्रपात, कुण्ड, द्वीप, द्रह वर्णन (पृष्ठ २९३-३१४)

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२९३.	जंबु. वक्ख. ६, सु. १२५
२९३.	,, ,, ,,
२९४.	,, ,, १, सु. १२
२९५.	,, ,, ४, सु. ७४
२९५.	,, ,, ,,
२९६.	,, ,, ,,
२९६.	,, ,, ,,
२९६.	,, ,, सु. १११
२९७.	,, ,, सु. ८०
२९७.	,, ,, सु. ७४
२९७.	,, ,, सु. ८०
२९७.	,, ,, सु. १११
२९७.	,, ,, ,,
२९७.	,, ,, सु. ८४
२९७.	,, ,, सु. १११
२९७.	,, ,, ,,
२९८.	,, ,, नु. ८४
२९८.	,, ,, ,,
२९९.	,, ,, नु. ७४

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२९९.	जंबु. वक्ख. ४, सु. ७४
२९९.	,, ,, ,,
३००.	,, ,, ,,
३००.	,, ,, सु. १११
३००.	,, ,, सु. ८०
३००.	,, ,, सु. ७४
३००.	,, ,, सु. ८०
३०१.	,, ,, सु. १११
३०१.	,, ,, सु. ८४
३०१.	,, ,, सु. ८०
३०२.	,, ,, सु. ८४
३०२.	,, ,, सु. ९३
३०२.	,, ,, ,,
३०३.	,, ,, सु. ९५
३०३.	,, ,, ,,
३०३.	,, ,, ,,
३०३.	,, ,, ६, सु. १२५
३०५.	,, ,, ४, सु. ७३
३०६.	,, ,, ,,
३०७.	,, ,, ,,
३०८.	,, ,, ,,
३०८.	,, ,, सु. ८०
३०८.	,, ,, ,,
३०९.	,, ,, सु. ८३
३०९.	,, ,, सु. ११०
३०९.	,, ,, सु. १११
३१०.	,, ,, ,,
३१०.	,, ,, सु. ९९
३१०.	,, ,, सु. १२५ की वृत्ति
३११.	,, ,, सु. ८९
३१४.	,, ,, ६, सु. १२५

ठाणांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२९३.	ठाणं ८, सु. ६३७
२९४.	,, सु. ६३९
२९४.	,, २, उ. ३, सु. ८७
२९४.	,, उ. ३, ,,
२९४.	,, ,, सु. ८८
२९५.	,, १०, सु. ७७९

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२९८.	ठाणं २, उ. ३, सु. ८८
२९९.	,, ८, सु. ६२९
२९९.	,, २, उ. ३, सु. ८८
३०१.	,, ,, ,,
३०१.	,, ,, ,,
३०४.	,, ६, सु. ५२२
३०४.	,, ३, उ. ४, सु. १९७
३०५.	,, २, उ. ३, सु. ८८
३०५.	,, १०, सु. ७७९
३१०.	,, ५, उ. २, सु. ४३४
३११.	,, ,, ,,

समवायांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
२९३.	सम. ५, सु. ६
३०५	,, ११३, सु. १०
३०८.	,, ११५
३०९.	,, ४०००, सु. २
३०९.	,, २०००, सु. १
३०९.	,, ११७
३१०.	,, १०००, सु. १०

जीवाभिगम सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३१३.	जीवा. प. ३, उ. २, सु. १४९
३१३.	,, ,, ,, ,,
३१४.	,, ,, ,, सु. १५०
३१४.	,, ,, ,, ,,

—मध्यलोक—

महानदी वर्णन (पृष्ठ ३१४-३२९)

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३१४.	जंबु. वक्ख. ६, सु. १२५
३१५.	,, ,, ,,
३१६.	,, ,, ,,
३१६.	,, ,, ,,
३१६.	,, ४, सु. ११०
३१७.	,, ,, सु. ७४
३१७.	,, ६, सु. १२५
३१८.	,, ४, सु. ७४
३१८.	,, , ,,

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३१९.	जंबु. वक्ख. ४, सु. १११
३१९.	„ „ सु. ८०
३१९.	„ „ „
३२०.	„ „ सु. ७४
३२०.	„ „ „
३२०.	„ „ सु. १११
३२०.	„ „ „
३२१.	„ „ सु. ८४
३२१.	„ „ सु. ८०
३२१.	„ „ सु. ८४
३२२.	„ „ सु. १११
३२२.	„ „ सु. ११०
३२२.	„ „ „
३२२.	„ „ सु. ८४
३२३.	„ „ „
३२३.	„ „ „
३२३.	„ ६, सु. १२५
३२४.	„ ४, सु. ७४
३२५.	„ „ „
३२५.	„ „ सु. १११
३२५.	„ „ „
३२५.	„ „ सु. ८०
३२५.	„ „ सु. ७४
३२५.	„ „ „
३२६.	„ „ „
३२६.	„ „ सु. ८४
३२६.	„ „ सु. ८०
३२६.	„ „ सु. १११
३२६.	„ „ सु. ८४
३२६.	„ „ सु. ८०
३२६.	„ „ सु. ८४
३२७.	„ „ सु. ११०
३२७.	„ „ „
३२७.	„ „ सु. ८४
३२८.	„ „ „
३२८.	„ २, सु. ४४, ४५, ४६
३२८.	„ „ सु. ४४
३२८.	„ „ सु. ४५
३२८.	„ „ सु. ४६

ठाणांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३१४.	ठाणं. ६, सु. ५२२
३१५.	„ ३, उ. ४, सु. १३७
३१५.	„ २, उ. ३, सु. ८८
३१५.	„ ३, उ. ४, सु. १९७
३१६.	„ २, उ. ३, सु. ८८
३१७.	„ ६, उ. सु. ५२२
३१७.	„ ३, उ. ४, सु. १९७
३१८.	„ २, उ. ३, सु. ८८
३१९.	„ „ „
३२०.	„ „ „
३२०.	„ „ सु. ८०
३२१.	„ „ सु. ८८
३२२.	„ „ „
३२३.	„ „ सु. ८४
३२४.	„ १०, सु. ७१७
३२४.	„ „
३२४.	„ ७, सु. ५५५
३२४.	„ ४, उ. ३, सु. ४७०
३२४.	„ „ „
३२८.	„ ३, उ. १, सु. १४२

समवायांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३१८.	सम. २४, सु. ५
३१८.	„ २५, सु. ७
३१९.	„ २८, सु. ६
३१९.	„ „ सु. ८
३२४.	„ १४ „

—मध्यलोक—

अन्तरद्वीप वर्णन (पृष्ठ ३२८-३३२)

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३२८.	जंबु. वक्ख. ४, सु. १२५
३२९.	[illegible] सु. ७०

जीवाभिगम सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३२९.	जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. १०९
३३०.	[illegible] सु. १०९-११०
३३१.	[illegible] सु. १११

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३३७.	जीवा. पडि. ३, सु. १११
३३८.	„ „ सु. ११२
३३९.	„ „ „

ठाणांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३३६.	ठाणं अ. ७, सु. ५५६
३३६.	„ १०, सु. ७६६

भगवती सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३३६.	भग. स. १०, उ. ७-२८, सु. १

—मध्यलोक—

लवणसमुद्र वर्णन (पृष्ठ ३३९-३६०)

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३५४.	जंबु. वक्ख. ६, सु. १२४
३५५.	„ „ „

जीवाभिगम सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३३९.	जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७२
३३९.	„ „ „ सु. १५४
३४०.	„ „ „ „
३४०.	„ „ „ सु. १७२
३४०.	„ „ „ सु. १५४
३४०.	„ „ „ सु. १७२
३४०.	„ „ „ „
३४१.	„ „ „ सु. १५८
३४१.	„ „ „ सु. १७१
३४१.	„ „ „ सु. १७२
३४१.	„ „ „ सु. १७७
३४२.	„ „ „ „
३४४.	„ „ „ सु. १५६
३४४.	„ „ „ सु. १५७
३४५.	„ सु. १५८
३४४.	„
३४५.	„ सु. १५९
३४६.	„ „
३४७.	[illegible]
३४७.	[illegible]
३४७.	„ „

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३४८.	जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १५९
३४८.	,, ,, ,, ,,
३४८.	,, ,, ,, ,,
३४८.	,, ,, ,, ,,
३४८.	,, ,, ,, ,,
३४९.	,, ,, ,, ,,
३४९.	,, ,, ,, ,,
३५०.	,, ,, ,, सु. १६०
३५४.	,, ,, ,, सु. १७३
३५४.	,, ,, ,, सु. १४६
३५५.	,, ,, ,, ,,
३५५.	,, ,, ,, ,,
३५५.	,, ,, ,, ,,
३५६.	,, ,, ,, सु. १५४
३५६.	,, ,, ,, सु. १३७
३५६.	,, ,, ,, सु. १५४
३५६.	,, ,, ,, ,,
३५७.	,, ,, ,, सु. १७१
३५८.	,, ,, ,, सु. १६९
३५८.	,, ,, ,, सु. १६१
३५८.	,, ,, ,, ,,
३५९.	,, ,, ,, सु. १६९
३५९.	,, ,, ,, ,,
३६०.	,, ,, ,, सु. १६८
३६०.	,, ,, ,, सु. १६९

भगवती सूत्र

३३९.	भग. स. १०, उ. ७-२८, सु. १
३४०.	,, स. ५, उ. २ सु. १८
३४४.	,, स. ३, उ. ३ सु. १७
३५४.	,, स. ५, उ २ सु. १८
३५४.	,, स. ३, उ. ३ सु. १७
३५४.	,, स. ११, उ. ९ सु. २९
३६०.	,, स. १८, उ. ७ सु. ४५
३५९.	,, स. ६, उ. ८ सु. ३५

समवायांग सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३४०.	सम. सु. १२५
३४१.	,, १६, सु. ७
३४१.	,, ९५, सु. ३
३४१.	सम. १७, सु. ५
३४२.	,, १६, सु. ७
३४२.	,, ९५, सु. २
३४५.	,, ७२, ,,
३४५.	,, ४२, सु. ७
३४५.	,, ६०, सु. २
३४६.	,, १७, सु. ४
३५०.	,, ४३, सु. ३, ४
३५०.	,, ४२, सु. २, ३
३५१.	,, ८७, सु. १-४
३५१.	,, ९७, सु. १, २
३५१.	,, ९८, सु. २, ३
३५१.	,, ९२, सु. ३
३५२.	,, ५२, सु. २, ३
३५२.	,, ५७, ,,
३५२.	,, ५८, सु. ३, ४
३५७.	,, सु. १२८
३५८.	,, ६७, सु. ३
३५८.	,, ,, ,,

ठाणांग सूत्र

३४०.	ठाणं २, उ. ३, सु. ९१
३४०.	,, ,, ,,
३४१.	,, १०, सु. ७२०
३४२.	,, ४, उ. २, सु. ३०५
३४२.	,, १० सु. ७२०
३४२.	,, ,,
३४३.	,, ४, उ. २, सु. ३०५
३४३.	,, १० सु. ७२०
३४६.	,, ४, उ. २, सु. ३०५
३४६.	,, ,, ,,
३५५.	,, ,, ,,
३५६.	,, ,, ,,
३५७.	,, १० सु. ७२०

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

३४०. सूरिय. पा. १९, सु. १००



—मध्यलोक—

धातकीखण्ड (पृष्ठ ३६१-३६९)

जीवाभिगम सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
३६१.	जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७४
३६१.	,, ,, ,, ,,
३६१.	,, ,, ,, ,,
३६८.	,, ,, ,, सु. १५४
३६८.	,, ,, ,, सु. १७४
३६८.	,, ,, ,, सु. १५४
३६८.	,, ,, ,, सु. १७४
३६८.	,, ,, ,, सु. १४६
३६९.	,, ,, ,, सु. १७४
३६९.	,, ,, ,, ,,
३६९.	,, ,, ,, ,,

ठाणांग सूत्र

३६१.	ठाण ७, सु. ५५५
३६१.	,, ४, उ. २, सु. ३०६
३६१.	,, २, उ. ३, सु. ९२
३६१.	,, ६, सु. ५२२
३६१.	,, १०, सु. ७२३
३६१.	,, ७, सु. ५५५
३६२.	,, ३, उ. ३, सु. १८३
३६२.	,, ६, सु. ५२२
३६२.	,, ८, सु. ६४१
३६२.	,, ७, सु. ५५५
३६२.	,, ३, उ. ४, सु. १९७
३६२.	,, ४, उ. २, सु. ३०२
३६२.	,, ६, सु. ५२२
३६२.	,, ३, सु. १९७
३६२.	,, ४, उ. २, सु. ३०२
३६२.	,, २, उ. ३, सु. ९२
३६२.	,, ३, उ. ४, सु. १९७
३६२.	,, ६, सु. ५२२
३६३.	,, १०, सु. ७६८
३६३.	,, ,,
३६३.	,, ४, उ. २, सु. ३०२
३६३.	,, ५, ,, सु. ४३४

पृष्ठ स्थल निर्देश

३६३. ठाणं ८, सु. ६३७
३६३. ,, १०, सु. ७६८
३६४. ,, २, उ. ३, सु. १००
३६४. ,, ,, सु. ६२
३६४. ,, १०, सु. ७२२
३६४. ,, २, उ. ३, सु. ६२
३६४. ,, ४, उ. २, सु. २६६
३६४. ,, ८, सु. ६४०
३६४. ,, २, उ. ३, सु. १००
३६४. ,, ,,
३६४. ,, सु. ६२
३६४. ,, ४, उ. २, सु. ३०६
३६५. ,, २, उ. ३, सु. १००
३६५. ,, ,, सु. ६२
३६६. ,, ,, सु. १००
३६६. ,, ,, ,,
३६७. ,, ,, ,,
३६७. ,, ७, सु. ५५५
३६७. ,, २, उ. ३, सु. १००
३६७. ,, ३, उ. १, सु. १४२

समवायांग सूत्र

३६१. सम. सु. १२७
३६४. ,, ८५, सु. २
३६५. ,, ६८, सु. १
३६६. ,, सु. १३०

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

३६१. सूरिय. पा. १६, सु. १००
३६१. ,, ,, ,,

जंबुद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

३६८. जंबु. वक्ष ६, सु. १२४

भगवती सूत्र

३६६. भग. स. १८, उ. ७, सु. ४६



पृष्ठ स्थल निर्देश

—मध्यलोक—

कालोद समुद्र वर्णन (पृष्ठ ३७०-३७२)

जीवाभिगम सूत्र

३७०. जीवा. पडि. ३. उ. २, सु. १७५
३७०. ,, ,, ,, ,,
३७०. ,, ,, ,, ,,
३७१. ,, ,, ,, ,,
३७१. ,, ,, ,, ,,
३७१. ,, ,, ,, ,,
३७१. ,, ,, ,, ,,
३७२. ,, ,, ,, सु. १७५

ठाणांग सूत्र

३७०. ठाणं ८, सु. ६३१
३७०. ,, २, उ. ३, सु. ६३

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

३७०. सूरिय. पा. १६, सु. १००
३७०. ,, ,, ,,

समवायांग सूत्र

३७०. सम. ६१, सु. २

—मध्यलोक—

पुष्करवरद्वीप वर्णन (पृष्ठ ३७२-३७६)

जीवाभिगम सूत्र

३७२. जीवा. पडि. ३ उ. २, सु. १७६
३७२. ,, ,, ,, ,,
३७२. ,, ,, ,, सु. १८३
३७३. ,, ,, सु. १७६
३७३. ,, ,, ,, सु. १७५
३७३. ,, ,, ,, ,,
३७३. ,, ,, ,, सु. १७६
३७३. ,, ,, ,, ,,
३७३. ,, ,, ,, सु. १७०
३७४. सु. १७६
३७४. सु. १७८
३७५. ,,
३७५. सु. १७६
३७६. ,, ,, ,, ,,
३७६.

पृष्ठ स्थल निर्देश

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

३७२. सूरिय. पा. १६, सु. १००
३७२. ,, ,, ,,
३७५. ,, ,, ,,
३७६. ,, ,, ,,

भगवती सूत्र

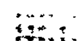
३७२. भग. स. ५, उ. १, सु. २६

समवायांग सूत्र

३७४. सम. १५, सु. ३
३७७. ,, ६८, सु. २

ठाणांग सूत्र

३७४. ठाणं १०, सु. ७२४
३७५. ,, ४, उ. २, सु. ३००
३७५. ,, ३, उ. ४, सु. २०८
३७६. ,, ३, उ. ३, सु. १८६
३७६. ,, ६, सु. ५२२
३७६. ,, ७, सु. ५५५
३७६. ,, ६, सु. ५२२
३७६. ,, ८, सु. ६३२
३७६. ,, ३, उ. ४, सु. १६६
३७६. ,, ,, सु. १६७
३७६. ,, २, उ. ३, सु. ६२
३७७. ,, १०, सु. ७६८
३७७. ,, २, उ. ३, सु. ६२
३७७. ,, १०, सु. ७६१
३७७ ,, २, उ. ३, सु. ६२
३७७. ,, ,, सु. ६२
३७७. ,, ३, उ. १, सु. १४२
३७७. ,, १०, सु. ७६८
३७७. ,, ४, उ. २, सु. २६१
३७७ ४, ,, सु. ३३६
३७८. ,, २, उ. ३ सु. ६२



पृष्ठ	स्थल निर्देश

—मध्यलोक—

अढाई द्वीप वर्णन (पृष्ठ ३७९-३८७)

ठाणांग सूत्र

३७८. ठाणं. ८, सु. ६४१
३७८. ,, ,,
३७९. ,, २, उ. ३, सु. ८०
३७९. ,, ,, सु. १०३
३७९. ,, ,, सु. ९९
३७९. ,, ,, सु. ८१
३७९. ,, ,, सु. ९९
३७९. ,, ,, सु. १०३
३७९. ,, ७, सु. ५५५
३७९. ,, ३, उ. ४, सु. १९९
३७९. ,, ६, सु. ५२२
३८०. ,, २, उ. ३, सु. ८२
३८०. ,, ,, सु. ९९
३८०. ,, ,, सु. १०३
३८०. ,, ,, सु. ८३
३८०. ,, ७, सु. ५५५
३८१. ,, २, उ. ३. सु. १००
३८१. ,, ,, सु. १०३
३८१. ,, ,, सु. ८४
३८२. ,, ,, सु. १००
३८२. ,, ,, सु. १०३
३८२. ,, ,, सु. ८५
३८२. ,, ,, सु. १००
३८२. ,, ,, सु. १०३
३८३. ,, ,, सु. ८६
३८३. ,, ,, सु. ९९
३८३. ,, ,, सु. १०३
३८३. ,, ,, सु. ८६
३८३. ,, ,, सु. ९९
३८३. ,, ,, सु. १०३
३८४. ,, ,, सु. ८७
३८४. ,, ,, सु. १००
३८४. ,, ,, सु. १०३
३८५. ,, ,, सु. ८८
३८५. ,, ,, सु. १००

पृष्ठ	स्थल निर्देश

३८५. ठाणं. २, उ. ३, सु. १०३
३८६. ,, ,, सु. ९०
३८६. ,, ,, सु. १००
३८६. ,, ,, सु. १०३
३८७. ,, ,, सु. ९१
३८७. ,, उ. ३, सु. १००
३८७. ,, ,, सु. १०३
३८७. ,, उ. ३, सु. ९३
३८७. ,, ,, सु. ९१
३८७. ,, ,, ,,
३८७. ,, ,, सु. ९२
३८७. ,, ,, सु. ९३
३८७. ,, ,, सु. ९१

समवायांग सूत्र

३८७. सम. १२, सु. ७

जीवाभिगम सूत्र

३८७. जीवा. पडि. ३, सु. १८६

—मध्यलोक—

समयक्षेत्र वर्णन (पृष्ठ ३८८-३८९)

भगवती सूत्र

३८८. भग. स. २, उ. ९, सु. १
३८८. ,, ११, उ. १०, सु. २७
३८८. ,, ३, उ. १, सु. २४/३

जीवाभिगम सूत्र

३८८. जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १७७
३८८. ,, ,, ,, ,,
३८९. ,, ,, ,, ,,

समवायांग सूत्र

३८८. सम. ६९, सु. १
३८८. ,, ४५, ,,
३८८. ,, ३९, सु. २

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

३८८. सूरिय. पा. १९, सु. १००

ठाणांग सूत्र

३८९. ठाणं. ५, उ. २, सु. ४३४
३८९. ,, १०, सु. ७६४
३८९. ,, २, उ. ४, सु. १२२

पृष्ठ	स्थल निर्देश

—मध्यलोक—

पुष्करोद समुद्र वर्णन (पृष्ठ ३९०-३९१)

जीवाभिगम सूत्र

३९०. जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८७
३९०. ,, ,, ,, सु. १८०
३९०. ,, ,, ,, ,,
३९०. ,, ,, ,, ,,
३९०. ,, ,, ,, ,,
३९१. ,, ,, ,, ,,

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

३९०. सूरिय. पा. १९, सु. १०१

—मध्यलोक—

वरुणवरद्वीप वर्णन (पृष्ठ ३९१-३९२)

जीवाभिगम सूत्र

३९१. जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८०
३९१. ,, ,, ,, ,,
३९२. ,, ,, ,, ,,
३९२. ,, ,, ,, ,,

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

३९१. सूरिय. पा. १९, सु. १०१

—मध्यलोक—

वरुणोद समुद्र वर्णन (पृष्ठ ३९२-३९३)

जीवाभिगम सूत्र

३९२. जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १०८
३९३. ,, ,, ,, सु. १८०
३९३. ,, ,, ,, ,,
३९३. ,, ,, ,, सु. १८७

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

३९२. सूरिय. पा. १९, सु. १०१

●

पृष्ठ स्थल निर्देश

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

४१०. सूरिय. पा. १९, सु. १०१
४१०. ,, ,, ,,
४११. ,, ,, ,,
४१२. ,, ,, ,,
४१२. ,, ,, ,,
४१२. ,, ,, ,,

—मध्यलोक—

कुण्डलवरादिद्वीप समुद्र (पृष्ठ ४१३-४१९)

जीवाभिगम सूत्र

४१३. जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १८५
४१३. ,, ,, ,, ,,
४१४. ,, ,, ,, ,,
४१४. ,, ,, ,, ,,
४१५. ,, ,, ,, ,,
१५. ,, ,, ,, ,,
४१५. ,, ,, ,, ,,
४१५. ,, ,, ,, ,,
४१६. ,, ,, ,, ,,
४१६. ,, ,, ,, ,,
४१६. ,, ,, ,, सु. १८६
४१७. ,, ,, ,, सु. १८७
४१७. ,, ,, ,, सु. १८९
४१७. ,, ,, ,, सु. १९०/१
४१८. ,, ,, ,, सु. १९९

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

४१३. सूरिय. पा. १९, सु. १०१
४१३. ,, ,,
४१४. ,, ,,
४१४. ,, ,,
४१५. ,, ,,
४१५. ,, ,,
४१६. ,, ,,

भगवती सूत्र

४१४. भग. स. १८, उ. ७, सु. ४३

पन्नवणा सूत्र

४१६. पन्न. प. १५, उ. १, सु. १००३ (१)-(२)

पृष्ठ स्थल निर्देश

ठाणांग सूत्र

४१९. ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. १५९

—मध्यलोक—

वाणव्यंतरदेव (पृष्ठ ४२०-४२८)

जीवाभिगम सूत्र

४२१. जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. १२१
४२१. ,, ,, ,, ,,
४२२. ,, ,, ,, ,,
४२७. ,, ,, ,, ,,

पन्नवणा सूत्र

४२०. पण्ण. १, सु. १४१
४२१. ,, प. २, सु. १८८
४२१. ,, ,, सु. १८९(१)
४२१. ,, ,, ,, (२)
४२२. ,, ,, सु. १९०(१)
४२२. ,, ,, ,, (२)
४२३. ,, ,, सु. १९१(१)
४२३. ,, ,, ,, (२)
४२३. ,, ,, सु. १९२
४२४. ,, ,, सु. १९३(१)
४२४. ,, ,, ,, (२)
४२४. ,, ,, सु. १९४
४२५. ,, ,, ,,

समवायांग सूत्र

४२०. सम. ८००, सु. १११
४२०. ,, १५०, सु. ३
४२४. ,, ८, ,,
४२६. ,, ६, सु. १०
४२६. ,, ६६, सु. ७

ठाणांग सूत्र

४२०. ठाणं. ८, सु. ६५४
४२१. ,, अ. २, उ. ३, सु. ९८
४२३. ,, अ. ८, सु. ६५४
४२६. ,, ६, उ. १, सु. २७३
४२७. ,, ३, उ. २, सु. १५४

पृष्ठ स्थल निर्देश

भगवती सूत्र

४२०. भग. स. ५, उ. ६, सु. १७
४२०. ,, स. ३८, उ. १, सु. १४
४२६. ,, स. १६, उ. २, सु. ७-८
४२६. ,, ,, उ. ७, सु. ४-५
४२८. ,, स. १४, उ. ८, सु. २५,२६,२७

उत्तराध्ययन सूत्र

४२०. उत्त. अ. ३६, गा. २०७

—मध्यलोक—

ज्योतिष्क-निरूपण (पृष्ठ ४२८-४६४)

जीवाभिगम सूत्र

४२८. जीवा. प. ३, उ. २, सु. १७७
४२८. ,, ,, ,, ,,
४२९. ,, ,, ,, ,, की टीका
४३०. ,, ,, उ. १, सु. १२२
४३०. ,, ,, सु. १९७
४३१. ,, ,, उ. २, ,,
४३१. ,, ,, सु. १२२
४३१. ,, ,, ,, सु. १९७की टीका
४३३. ,, ,, ,, सु. १५१
४३४. ,, ,, ,, सु. १९४
४३४. ,, ,, ,, सु. १५५
४३५. ,, ,, ,, सु. १७४
४३६. ,, ,, ,, सु. १७५
४३७. ,, ,, ,, सु. १७६
४३८. ,, ,, ,, ,,
४३९. ,, ,, ,, सु. १८०
४३९. ,, ,, ,, सु. १७७
४४०. ,, ,, ,, सु. १८०
४४०. ,, ,, ,, सु. १८२
४४०. ,, ,, ,, सु. १८५
४४०. ,, ,, ,, ,,
४४१. ,, ,, ,, ,,
४४१. ,, ,, ,, सु. २०६
४४१. ,, ,, ,, सु. १९५
४४२. ,, ,, ,, ,,
४४२. ,, ,, ,, सु. १७७गा. २१,२२

पृष्ठ स्थल निर्देश

४६१. चंद. पा. १५, सु. ८४
४६२. ,, ,, सु. ८६
४६२. ,, ,, ,,
४६२. ,, ,, ,,
४६३. ,, ,, सु. ८७
४६३. ,, ,, सु. ८५
४६४. ,, ,, ,,
४६४. ,, ,, ,,
४६४. ,, ,, ,,

पन्नवणा सूत्र

४२६. पण्ण. प. १, सु. १४२/१
४३१. ,, प. २, सु. १६५/२

ठाणांग सूत्र

४२६. ठाणं. ५, उ. १, सु. ४०१
४३४. ,, ४, उ. २, सु. ३०५
४४४. ,, ६, उ. सु. ६७०
४५४. ,, ४, उ. १, सु. २७३
४५५. ,, ,, ,,

उत्तराध्ययन सूत्र

४२६. उत्त. अ. ३६, गा. २०८

समवायांग सूत्र

४३१. सम. सु. १५०
४३६. ,, ४२, सु. ४
४३८. ,, ७२, सु. ५
४४१. ,, ११, सु. ३
४४२. ,, सु. २
४४४. ,, ६, सु. ७
४४४. ,, १११, सु. ५
४४६. ,, ६१, सु. ३
४४६. ,, सु. ४
४४६. ,, १३, सु. ८

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

४३१. जंबु. वक्ख. ७, सु. १६५
४३३. ,, ,, सु. १२६
४४१. ,, ,, ४, सु. १६४
४४२. ,, ,, ७, ,,
४४५. ,, ,, ,,
४४६. जंबु. वक्ख. ७, सु. १४७
४४७. ,, ,, सु. १६५
४५२. ,, ,, सु. १६६
४५३. ,, ,, ,,
४५६. ,, ,, सु. १६८
४५७. ,, ,, सु. १६७
४५७. ,, ,, सु. १६८

—मध्यलोक—

चन्द्र वर्णन (पृष्ठ ४६५-४८१)

भगवती सूत्र

४६५. भग. स. १२, उ. ६, सु. ४
४६५. ,, स. ५, उ. १०, सु. १
४६५. ,, ,, ,, का संक्षिप्त पूरक पाठ

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

४६५. सूरिय. पा. २०, सु. १०८
४६५. ,, पा. ८, सु. २६
४६६. ,, पा. ३६, सु. १००
४६७. ,, पा. १३, सु. ७६
४६८. ,, पा. १४, सु. ८२
४६८. ,, पा. १३, सु. ७६
४६८. ,, पा. १४, सु. ८२
४६६. ,, पा. १०, पाहु. ११, सु. ४५
४७६. ,, पा. १२, सु. ७८
४७६. ,, पा. १५, सु. ८३
४७८. ,, पा. १०, पाहु. २२, सु. ६३
४७६. ,, ,, ,, सु. ६५
४८१. ,, ,, पाहु. ११, सु. ४५

चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र

४६५. चन्द. पा. ८, सु. २६
४६५. ,, पा. २०, सु. १०५
४६६. ,, पा. १६, सु. १००
४६७. ,, पा. १३, सु. ७६
४६८. ,, पा. १४, सु. ८२
४६६. ,, पा. १०, पाहु. ११, सु. ४५
४७६. ,, पा. १२, सु. ७८
४७८. ,, पा. १०, सु. ६३
४७६. ,, ,, सु. ६५

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

४६५. जंबु. वक्ख ७, सु. १५०
४६६. ,, ,, सु. १४५
४६६. ,, ,, सु. १४२
४६६. ,, ,, ,,
४६६. ,, ,, सु. १४४
४७०. ,, ,, सु. १४३
४७०. ,, ,, सु. १४२
४७१. ,, ,, सु. १४६
४७३. ,, ,, सु. १४७
४७५. ,, ,, सु. १४८
४७६. ,, ,, सु. १४६

समवायांग सूत्र

४६६. सम. स. ६२, सु. ३
४६७. ,, ,, ,,

जीवाभिगम सूत्र

४६६. जीवा. प. ३, उ. २, सु. १७७
४६७. ,, ,, ,, ,,
४७६. ,, ,, ,, सु. १६२
४८०. ,, ,, ,, ,,
४८०. ,, ,, ,, ,,

पन्नवणा सूत्र

४८०. पण्ण. प. ४, सु. ३६७(१)

—मध्यलोक—

सूर्य वर्णन (पृष्ठ ४८२-५५६)

भगवती सूत्र

४८२. भग. स. १२, उ. ६, सु. ५
४८२. ,, स. १४, उ. ६, सु. १३-१६
४८४. ,, स. १, उ. ६, सु. १-४
४८५. ,, स. ५, उ. १, सु. २२
४८६. ,, ,, ,, सु. २३-२५
४८६. ,, ,, ,, सु. २६
४८६. ,, ,, ,, सु. २७
४६१. ,, ,, ,, सु. ५
४६३. ,, ,, ,, सु. ५-१३
५०१. ,, स. ८, उ. ८, सु. ३८

पृष्ठ	स्थल निर्देश
५०२.	भग. श. ८, उ. ८, सु. ६१-६२
५०३.	,, ,, ,, सु. ३६-४०
५०३.	,, ,, ,, सु. ४५
५०३.	,, ,, ,, सु. ३८
५०६.	,, ,, ,, सु. ४३, ४४
५१०.	,, ,, ,, सु. ३५-३७

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
४८२.	सूरिय. पा. २०, सु. १०४
४८५.	,, पा. ८, सु. २८
४८६.	,, ,, ,,
४८६.	,, ,, ,,
४९१.	,, ,, ,,
४९२.	,, ,, ,,
४९३.	,, ,, ,,
४९८.	,, पा. ६, सु. २७
४९८.	,, पा. ७, सु. २८
४९८.	,, पा. ५, सु. २६
४९८.	,, ,, ,,
४९८.	,, ,, ,,
५०१.	,, ,, ,,
५०३.	,, पा. ४, सु. २५
५०५.	,, ,, ,,
५०६.	,, ,, ,,
५०७.	,, ,, ,,
५०८.	,, ,, ,,
५११.	,, पा. ९, सु. ३१
५११.	,, ,, सु. ३०
५११.	,, पा. ६, सु. २७
५११.	,, पा. ९ सु. ३१
५१५.	,, ,, ,,
५१७.	,, ,,
५२१.	,, पा. १ पाहु. [illegible] सु. १५
५२१.	,, पाहु. [illegible], सु. १[illegible]
[illegible]	पाहु. [illegible] सु. [illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	स्थल निर्देश
५३८.	सूरिय. पा. १, पाहु. ५, सु. १६-१७
५४०.	,, पा. २, पाहु. १, सु. २१
५४१.	,, ,, पाहु. ३, सु. २३
५४२.	,, पा. १, पाहु. १. सु. ११
५५४.	,, ,, पाहु. २ सु. १२
५५६.	,, ,, ,, सु. १३
५५८.	,, पा. १०, पाहु. २२ सु. ६४
५५९.	,, ,, ,, सु. ६६

चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
४८२.	चंद. पा. २०, सु. १०४
४८५.	,, पा. ८ सु. २८
४८६.	,, ,, ,,
४८६.	,, ,, ,,
४८६	,, ,, ,,
४९१.	,, ,, ,,
४९८.	,, पा. ६, सु. २७
४९८.	,, पा. ७, सु. २८
५०१.	,, पा. ५, सु. २६
५०३.	,, पा. ४ सु. २५
५०५.	,, ,, ,,
५०६.	,, ,, ,,
५०७.	,, ,, ,,
५०८.	,, ,, ,,
५११.	,, पा. ९, सु. ३०
५११.	,, ,, सु. ३१
५१३.	,, ,, ,,
५१७.	,, ,, ,,
५२१.	,, पा. १, सु. १४
५२३.	,, ,, सु. १४
५२७.	,, ,, सु. २०
[illegible]	,, ,, ,,
[illegible]	,, ,, सु. ६
[illegible]	,, ,, सु. १४
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	स्थल निर्देश
५५८.	चंद. पा. १, सु. १२
५५६.	,, ,, सु. १३
५५८.	,, पा. १०, सु. ६४

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

पृष्ठ	स्थल निर्देश
४८४.	जंबु. वक्ष. ७, सु. १३७
४८५.	,, ,, सु. १४०
४८६.	,, ,, ,,
४८६.	,, ,, ,,
४९१.	,, ,, ,,
५००.	,, ,, सु. १०६
५०१.	,, ,, सु. १२७
५०१.	,, ,, ,, की टीका
५०२.	,, ,, सु. १२७
५०३.	,, ,, ,,
५०३.	,, ,, सु. १३८
५०५.	,, ,, ६, सु. १५५
५०७.	,, ,, ७, ,,
५०८.	,, ,, ,,
५०६.	,, ,, सु. १३८ की टीका
५०६.	,, ,, सु. १३८
५१०.	,, ,, सु. १३६
५१३.	,, ,, सु. १२७
५१८.	,, ,, सु. ११०
५१८.	,, ,, सु. १३०
५२१.	,, ,, सु. १२८
५२३.	,, ,, सु. १३७
[illegible]	,, ,, ,,
५३०.	,, ,, सु. १३३
५३०.	,, सु. १३६
५३१.	,, ,, सु. १३१
५३३.	,, ,, सु. १३३
[illegible]	,, ,, सु. १४४
[illegible]	,, ,, सु. १४०

[illegible]

पृष्ठ	स्थल निर्देश
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]

पृष्ठ स्थल निर्देश

५२३. सम. ४८, सु. ३
५२७. ,, ,, ,,
५२८. ,, ,, ,,
५२८. ,, १३, सु. ८
५३१. ,, ८२, सु. १
५३८. ,, ८०, सु. ७
५४३. ,, ४७, सु. १
५४५. ,, ३३, सु. ४
५४५. ,, ३१, सु. ३
५४६. ,, ४७, सु. १
५४७. ,, ६०, ,,
५५२. ,, ९३, सु. ३
५५६. ,, ९९, सु. ४-६
५५६. ,, ७८, सु. ३-४
५५६. ,, ८८, सु. ६
५५७. ,, ९८, सु. ५-६

—मध्यलोक—

चन्द्र-सूर्य वर्णन (पृ. ५५९-५८४)

पन्नवणा सूत्र

५५९. पण्ण. प. २, सु. १९५(२)

भगवती सूत्र

५५९. भग. स. ३, उ. ८, सु. ८

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

५६०. सूरिय. पा. १८, सु. ९१
५६२. ,, पा. २०, सु. १०२
५६३. ,, पा. १, पाहु. ७, सु. ९९
५६५. ,, पा. १६, सु. ८७
५६५. ,, पा. ४, सु. २५
५६८. ,, पा. ३, सु. २४
५६९. ,, पा. १०, पाहु. १८, सु. ५२
५७२. ,, पा. १३, सु. ८१
५७३. ,, पा. १०, पाहु. २२, सु. ६६
५७५. ,, ,, ,, सु. ६७
५७६. ,, ,, ,, सु. ६८
५७७. ,, पा. १२, सु. ७७
५७९. ,, ,, सु. ७६

पृष्ठ स्थल निर्देश

चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र

५५९. चन्द. पा. १०, सु. ६६
५६०. ,, पा. १८, सु. ९१
५६२. ,, पा. २०, सु. १०२
५६३. ,, पा. १, सु. १९
५६५. ,, पा. ४, सु. २५
५६५. ,, पा. १६, सु. ८७
५६८. ,, पा. ३, सु. २४
५६९. ,, पा. १०, सु. ५२
५७२. ,, पा. १३, सु. ८१
५७३. ,, पा. १०, सु. ६६
५७५. ,, ,, सु. ६७
५७६. ,, ,, सु. ६८
५७९. ,, पा. १२, सु. ७६

ठाणांग सूत्र

५५९. ठाणं. २, उ. ३, सु. १०५
५६० ,, ३, उ. २, सु. १६२

जीवाभिगम सूत्र

५५९. जीवा. पडि. , उ. , सु. १९४
५५९. ,, ,, ,, सु. १७७
५६०. ,, पडि. ३, उ. २, सु. १९४
५६०. ,, ,, उ. १, सु. १२२
५७९. ,, ,, उ. २, सु. १६३
५८०. ,, ,, ,, ,,
५८१. ,, ,, ,, सु. १६४
५८१. ,, ,, ,, सु. १६५
५८२. ,, ,, ,, सु. १६८
५८३. ,, ,, ,, सु. १६७
५८३. ,, ,, ,, ,,
५८३. ,, ,, ,, ,,
५८४. ,, ,, ,, ,,

समवायांग सूत्र

५६०. सम. ८८, सु. १
५६१. ,, ९९, सु. १-४
५६३. ,, ६१, सु. ३-४

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

५६७. जंबु. वक्ख. १, सू. ४ से वक्ख ६ सु. १२५ तक

पृष्ठ स्थल निर्देश

—मध्यलोक—

ग्रह वर्णन (पृष्ठ ५८४-५८९)

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

५८५. सूरिय. पा. २०, सु. १०६
५८५. ,, ,, ,,
५८६. ,, पा. ९, सु. ६९९
५८६. ,, पा. २०, सु. १०३
५८६. ,, ,, ,,
५८७. ,, ,, ,,
५८८. ,, ,, ,,
५८९. ,, ,, ,,

चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र

५८५. चन्द. पा. २०, सु. १०६
५८६. ,, ,, सु. १०३
५८६. ,, ,, ,,
५८७. ,, ,, ,,
५८८. ,, ,, ,,
५८९. ,, ,, ,,

जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

५८५. जंबु. वक्ख. ७, सु. १६६

भगवती सूत्र

५८६. भग. स. १२, उ. ६, सु. ३
५८६. ,, ,, ,, सु. २
५८७. ,, ,, ,, ,,
५८८. ,, ,, ,, ,,
५८९. ,, ,, ,, ,,

ठाणांग सूत्र

५८५. ठाणं. अ. ८, सु. ६१३
५८५. ,, अ. ६, सु. ४८१
५८५. ,, अ. २, उ. ३, सु. ९५
५८५. ,, ,, ,, सु. ९०
५८६. ,, अ. ९, सु. ६९९

समवायांग सूत्र

५८५. सम. ८८, सु. १
५८६. ,, १९, सु. ३
५८६. ,, १५, ,,

पृष्ठ	स्थल निर्देश

—मध्यलोक—

नक्षत्र वर्णन (पृष्ठ ५६०-६५३)

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

५६०. जंबु. वक्ख. ७, सु. १५५
५६१. ,, ,, ,,
५६३. ,, ,, सु. १५६
५६६. ,, ,, सु. १५७
५६६. ,, ,, ,,
५६६. ,, ,, सु. १५६
५६६. ,, ,, ,, की वृत्ति
६००. ,, वक्ख. ६, सु. १५८
६०६. ,, वक्ख. ७, सु. १६१
६०६. ,, ,, ,,
६१४. ,, ,, ,,
६१६. ,, ,, ,,
६२१. ,, ,, सु. १५५
६२४. ,, ,, सु. १५६
६२५. ,, ,, सु. १६१
६२६. ,, ,, ,,
६२८. ,, ,, ,,
६३२. ,, ,, सु. १६८
६३२. ,, ,, ,,
६३२. ,, ,, ,,
६३३. ,, ,, ,,
६३३. ,, ,, ,,
६३४. ,, ,, ,,
६३ . ,, ,, ,,
६३[illegible] ,, ,, ,,
६३८. ,, ,, ,,
६४१. ,, ,, सु. १६[illegible]
६४२. ,, ,,
६५३. सु. [illegible]

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

५६१. सूरिय. पा. १०, पाहु. [illegible], सु. [illegible]
५६३. ,, ,, [illegible] सु. ३०
५६६. ,, ,, [illegible] सु. [illegible]
५६६ ,, ,, [illegible] सु. [illegible]

पृष्ठ	स्थल निर्देश

६०३. सूरिय. पा. १०, पाहु. ६, सु. ४२
६०८. ,, ,, ,, २१, सु. ५६
६०६. ,, ,, ,, ५, सु. ३७
६१४. ,, ,, ,, ६, सु. ३६
६१६. ,, ,, ,, ,,
६२१. ,, ,, ,, ३, सु. ३५
६२१. ,, पा. १८, सु. ६३
६२२. ,, पा. १०, पाहु. २२, सु. ६२
६२३. ,, ,, ,, ११, सु. ४४
६२५. ,, ,, ,, ५, सु. ३८
६२६. ,, ,, ,, ६, सु. ३६
६२८. ,, ,, ,, ७, सु. ४०
६३२. ,, ,, ,, १०, सु. ४३
६३६. ,, ,, ,, २२, सु. ६१
६३८. ,, ,, ,, सु. ६०
६३६. ,, ,, ,, ,,
६४१. ,, ,, ,, २, सु. ३३
६४२. ,, ,, ,, सु. ३४
६४६. ,, ,, ,, ४, सु. ३६
६५०. ,, ,, ,, ,,
६५२. ,, ,, ,, १७, सु. ५१

चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र

५६१. चन्द. पा. १०, सु. ३२
५६३. ,, ,, सु. ५०
५६६. ,, ,, सु. ४६
५६६. ,, ,, सु. १
६०८. ,, ,, सु. ५६
६१४. ,, ,, सु. ३६
६१६. ,, ,, ,,
६२१. ,, ,, सु. ३५
६२१. ,, पा. १८, सु. ६३
६२२. ,, पा. १०, सु. ६२
६२४. ,, ,, सु. ४४
६२५. ,, ,, सु. ३८
६२६. ,, ,, सु. ३६
६२८. ,, ,, सु. ४०
६३२. ,, ,, सु. ४३
६३६. ,, ,, सु. ६१

पृष्ठ	स्थल निर्देश

६३८. चन्द. पा. १०, सु. ६०
६४१. ,, ,, सु. ३३
६४२. ,, ,, सु.
६५०. ,, ,, सु. ३६
६५२. ,, ,, सु. ५१

ठाणांग सूत्र

५६०. ठाणं. अ. २, उ. ३, सु. ६५
५६४. ,, ,, ,, ,,
६००. ,, अ. ३, ,, सु. २२७
६००. ,, ,, ,, ,,
६००. ,, अ. ५, ,, सु. ४७३
६०१. ,, अ. २, उ. ४, सु. ११०
६०१. ,, ,, ,, ,,
६०१. ,, अ. ३, उ. ३, सु. २२७
६०१. ,, ,, ,, ,,
६०१. ,, अ. ५, ,, सु. ४७३
६०१. ,, अ. ३, ,, सु. २२७
६०१. ,, अ. १, सु. ५५
६०१. ,, ५, उ. ३, सु. ४७३
६०१. ,, अ. ३, ,, सु. २२७
६०१. ,, अ. ६, सु. ५३६
६०२. ,, अ. २, उ. ४, सु. ११०
६०२. ,, अ. ७, सु. ५८६
६०२. ,, अ. २, उ. ४, सु. ११०
६०२. ,, अ. ५, उ. ३, सु. ४७३
६०२. ,, अ. १, सु. ५५
६०२. ,, ,, ,,
६०२. ,, अ. ५, उ. ३, सु. ४७३
६०२. ,, ४, उ. ४, सु. ३८६
६०२. ,, ३, उ. ३, सु. २२७
६०२. ,, ४, उ. ४, सु. ३८६
६०३. ,, अ. ४, ,, ,,
६०३. ,, ३, उ. ३, सु. २२७
६०३. ,, ,, ,, ,,
६०३. ,, ५, उ. ३, सु. ४७३
६०३. ,, २, उ. ४, सु. ११०
६०३. ,, ,, ,, ,,
६०३. ,, ३, उ. ३, सु. २२७
६०३ ,, ,, ,,

पृष्ठ स्थल निर्देश

६०३. ठाणं. ६, उ. ०, सु. ५३९
६०३. ,, ५, उ. ३, सु. ४७३
६०३. ,, ३, उ. ३, सु. २२७
६०३. ,, १, उ. ०, सु. ५५
६०३. ,, ५, उ. ३, सु. ४७३
६०३. ,, ३, उ. ३, सु. २२७
६०३. ,, ६, उ. ०, सु. ५३९
६०३. ,, सु. ५८९
६०३. ,, २, उ. ४, सु. ११०
६०३. ,, ,, ,,
६०३. ,, ५, उ. ३, सु. ४७३
६०३. ,, १, सु. ५५
६०३. ,, ,,
६०४. ,, ५, उ. ३, सु. ४७३
६०४. ,, ४, उ. ४, सु. ३८६
६०४. ,, ३, उ. ३, सु. २२७
६०४. ,, ४, ,, सु. ३८६
६०४. ,, ,, ,,
६०४. ,, ६, उ. ०, सु. ४८१
६०८. ,, ७, सु. ५८९
६२३. ,, ९, सु. ६९९
६३६. ,, १०, सु. ७८०
६३६. ,, ,,
६३६. ,, १, सु. ६९४
६४०. ,, ९, सु. ६६९
६४०. ,, ६, सु. ५१५
६४१. ,, ६, सु. ५१७

समवायांग सूत्र

५९१. सम. २७, सु. २
५९१. ,, ,, ,,
६००. ,, ३, सु. ९
६००. ,, ,, सु. १०
६००. ,, १००, सु. २
६००. ,, ५, सु. १३
६०१. ,, २, सु. ७
६०१. ,, ,, ,,
६०१. ,, १, सु. २३
६०१. ,, ३२, सु. ५

पृष्ठ स्थल निर्देश

६०१. सम. ३, सु. ११
६०१. ,, ,, सु. १२
६०१. ,, ५, सु. ९
६०१. ,, ३, सु. ६
६०१. ,, ,, सु. ७
६०१. ,, ५, सु. १०
६०१. ,, ६, सु. ८
६०२. ,, ७, सु. ७
६०२. ,, ४, ,,
६०२. ,, ३, सु. ४
६०२. ,, २, सु. ५
६०२. ,, ५, सु. ११
६०२. ,, १, सु. २४
६०२. ,, ,, सु. २५
६०२. ,, ५, सु. १२
६०२. ,, ३, सु. ८
६०२. ,, ४, ,,
६०२. ,, ९८, सु.
६०२. ,, ११, सु. ५
६०३. ,, ४, सु. ९
६०४. ,, ३, ,,
६०४. ,, ,, सु. १०
६०४. ,, ५, सु. १३
६०४. ,, १००, सु. २
६०४. ,, २, सु. ६
६०४. ,, ,, सु. ७
६०४. ,, ३२, सु. ५
६०४. ,, ३, सु. ११
६०४. ,, ,, सु. १२
६०४. ,, ६, सु. ७
६०४. ,, ५, सु. ९
६०४. ,, ३, सु. ६
६०४. ,, १, सु. २३
६०४. ,, ५, सु. १०
६०४. ,, ३, सु. ७
६०४. ,, ६, सु. ८
६०४. ,, ७, सु. ७
६०४. ,, २, सु. ४
६०४. ,, ,, सु. ५

पृष्ठ स्थल निर्देश

६०४. सम. ५, सु. ११
६०४. ,, १, सु. २४
६०४. ,, ,, सु. २५
६०४. ,, ५, सु. १२
६०४. ,, ४, सु. ७
६०४. ,, ३, सु. ८
६०४. ,, ११, सु. ५
६०४. ,, ४, सु. ८
६०४. ,, ,, सु. ९
६०४. ,, ९८, सु. ७
६०४. ,, ९, ,,
६०४. ,, ११२, सु. ५
६०६. ,, स. ७, सु. ८-११
६२३. ,, ९, सु. ६
६२३. ,, ८, सु. ९
६३६. ,, ६७, सु. ४
६३७. ,, ५६, सु. १
६३८. ,, ९, सु. ५
६३८. ,, १५, सु. ४
६३८. ,, ४५, सु. ७
६४०. ,, ९, सु. ५
६४१. ,, ,, सु. ६
६५३. ,, १०, सु. ७

अनुयोगद्वार सूत्र

५९०. अणु. सु. २८५, गा. ८६-८८
५९४. ,, सु. २८६, गा. ८९-९०

जीवाभिगम सूत्र

६२१. जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९६

●

—ऊर्ध्वलोक—

(पृष्ठ ६५५-६५७)

भगवती सूत्र

६५५. भग. स. ११, उ. १०, सु. ६
६५५. ,, ,, ,, सु. ९
६५६. ,, ,, ,, सु. १४

पृष्ठ	स्थल निर्देश
६५६.	भग. स. ११, उ. १०, सु. १४
६५७.	,, ,, ,, सु. १६
६५७.	,, स. १६, उ. ८, सु. १४
६५७.	,, स. ११, उ. १०, सु. १६

—ऊर्ध्वलोक—

वैमानिक-ज्योतिष्क देव वर्णन (पृष्ठ ६५७-६७२)

समवायांग सूत्र

६५७.	सम. स. ८८, सु. १७
६६०. ,,	३२, सु. ४
६६०. ,,	८४, सु. ५
६६०. ,,	२८, सु. ४
६६०. ,,	६०, सु. ६
६६२. ,,	१३१,
६६३. ,,	५०, सु. ५
६६३. ,,	६४, ,,
६६४. ,,	८०, सु. ८
६६५. ,,	११६, सु.
६६५. ,,	१०६, सु. ४
६६७. ,,	१०१, सु. १-२
६६८. ,,	,, ,,

भगवती सूत्र

६७१.	भग. स. ६, उ. ५, सु. ३२-४१/४३
६७१.	,, स. १४, उ. ८, सु. ६-१६
६७१.	,, स. ६, उ. ५, सु. ४२

पन्नवणा सूत्र

६५८.	पण्ण. प. २, सु. १९६
६५८.	,, ,, सु. १९७
६६०.	,, ,, सु. १९७/२
६६१	,, ,, सु. १९८/१
६६१.	,, ,, सु. १९८/२
६६२.	,, ,, सु. १९९/१
६६२.	,, ,, सु. १९९/२
[illegible]	,, सु. २००/१
[illegible]	,, ,, सु. २००/२
[illegible]	,, ,, सु. २०१/१
[illegible]	,, ,, सु. २०१/२

पृष्ठ	स्थल निर्देश
६६४.	पण्ण. प. २, सु. २०२/१
६६४.	,, ,, सु. २०२/२
६६४.	,, ,, सु. २०३/१
६६४.	,, ,, सु. २०३/२
६६५.	,, ,, सु. २०४/१
६६५.	,, ,, सु. २०४/२
६६६.	,, ,, सु. २०५/१
६६६.	,, ,, सु. २०५/२
६६७.	,, ,, सु. २०६/१
६६७.	,, ,, सु. २०६/२
६६८.	,, ,, सु. २०७
६६९.	,, ,, सु. २०९
६६९.	,, ,, सु. २१०
६६९.	,, ,, सु. २०८

ठाणांग सूत्र

६६०.	ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६२
६७२.	,, ४, उ. ४, सु. ३८३

जीवाभिगम सूत्र

६६०.	जीवा. पडि. ३, सु. २०८

—ऊर्ध्वलोक—

कृष्णराजि वर्णन (पृष्ठ ६७२-६७५)

भगवती सूत्र

६७२.	भग. स. ६. उ. ५. सु. १७-१८
६७३	,, ,, सु. १९
६७३.	,, ,, सु. २०
६७३.	,, ,, सु. २१-२२
६७४.	,, ,, सु. २३-२४
६७४.	,, ,, सु. २५
६७४.	,, ,, सु. २६-२७
६७४.	,, ,, सु. २८
[illegible]	,, ,, सु. २९
[illegible]	,, ,, सु. ३०
६७५.	,, ,, सु. ३१

पृष्ठ	स्थल निर्देश

—ऊर्ध्वलोक—

तमस्काय वर्णन (पृष्ठ ६७५-६७९)

भगवती सूत्र

६७५.	भग. स. ६, उ. ५, सु. १
६७६.	,, ,, ,, सु. २
६७६.	,, ,, ,, सु. ३
६७६.	,, ,, ,, सु. ४
६७६.	,, ,, ,, सु. ५
६७७.	,, ,, ,, सु. ६-७
६७७.	,, ,, ,, सु. १४-२७
६७८.	,, ,, ,, सु. ९
६७८.	,, ,, ,, सु. १०
६७८.	,, ,, ,, सु. ११-१२
६७८.	,, ,, ,, सु. १३
६७९.	,, ,, ,, सु. २४
६७९.	,, ,, ,, सु. ५१
६७९.	,, ,, ,, सु. १६

ठाणांग सूत्र

६७९.	ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २९१
६७९.	,, ,, ,, ,,

—ऊर्ध्वलोक—

विमान वर्णन (पृष्ठ ६७९-६९०)

ठाणांग सूत्र

६७९.	ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८६
६८०.	,, ,, ,, ,,
६८०.	,, ,, ,, ,,
६८४.	,, अ. ५, ,, सु. ४६६
६८४.	,, अ. ६, सु. ५३२
६८४.	,, अ. ७, सु. ५७८
६८४.	,, अ. ८, सु. ६५०
६८४.	,, अ. ९, सु. ६६५
६८४.	,, अ. १०, सु. ७७५
६८४.	,, अ. १,
६८५.	,, अ. ६, सु. ५१६
६८५.	,, अ. ३, उ. ४, सु. २३२
६८५.	,, अ. ९, सु. ६८५

पृष्ठ	स्थल निर्देश
६८६.	ठाणं. अ. १०, सु. ७६६
६८६.	,, अ. ८, सु. ६४४
६८९.	,, अ. १०, सु. ७२८

जीवाभिगम सूत्र

६८०. जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. २०९
६८१. ,, ,, ,, सु. २१२
६८१. ,, ,, ,, ,,
६८२. ,, ,, ,, सु. २१३
६८२. ,, ,, ,, ,,
६८२. ,, ,, ,, ,,
६८३. ,, ,, ,, ,,
६८३. ,, ,, ,, ,,
६८३. ,, ,, ,, ,,
६८३. ,, ,, ,, ,,
६८४. ,, ,, ,, ,,

समवायांग सूत्र

६८१. सम. २७, सु. ४
६८३. ,, १३, सु. ३
६८३. ,, १, सु. ४
६८४. ,, १०४, सु. ३
६८४. ,, १३, सु. २
६८४. ,, १०८, सु. ८
६८४. ,, १०९, सु. १
६८४. ,, ११०, ,,
६८४. ,, १११, ,,
६८४. ,, ११, ,,
६८४. ,, ,, ,,
६८४. ,, ,, ,,
६८५. ,, ६२, सु. ५
६८६. ,, ,, सु. ४
६८६. ,, ६५, सु. ३
६८६. ,, ५२, सु. ७
६८६. ,, ६, सु. ६
६८६. ,, ६०, सु. ५
६८६. ,, १०१, सु. १
६८७. ,, १, सु.

भगवती सूत्र

६८६. भग. स. ३, उ. १, सु. ५५
६८८. ,, ,, उ. ७, सु. २-७
६८८. ,, स. ४, सु. १-४

पृष्ठ	स्थल निर्देश

—ऊर्ध्वलोक—

सिद्धस्थान वर्णन (पृष्ठ ६८९-६९०)

औपपातिक सूत्र

६८९. उव. सु. ४३
६९०. ,, ,,

पन्नवणा सूत्र

६९०. पण्ण. प. २, सु. २११

समवायांग सूत्र

६९०. सम. १२, सु. ९-१०

—

—काल लोक—

(पृष्ठ ६९१-६९३)

अनुयोगद्वार सूत्र

६९१. अणु. सु. ५३, २

ठाणांग सूत्र

६९२. ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. १९७
६९२. ,, अ. ४, उ. १, सु. २६४

भगवती सूत्र

६९२. भग. स. ११, उ. ११, सु. ७
६९२. ,, ,, ,, सु. ८

उत्तराध्ययन सूत्र

६९३. उत्तरा. अ. २६, गा. १३-१४

समवायांग सूत्र

६९३. सम. ४०, सु. ६
६९३. ,, ,, सु. ७

—काल लोक—

पोरुषी-प्रमाण वर्णन (पृष्ठ ६९३-६९४)

भगवती सूत्र

६९४. भग. स. ११, उ. ११, सु. ९-११
६९४. ,, ,, ,, सु. १२-१३

पृष्ठ	स्थल निर्देश

—काल लोक—

यथायुनिवृत्ति काल वर्णन (पृष्ठ ६९४)

भगवती सूत्र

६९४. भग. स. ११, उ. ११, सु. १४

—काल लोक—

मरणकाल प्ररूपण (पृष्ठ ६९५)

६९५. भग. स. ११, उ. ११, सु. १५

—काल लोक—

समय स्वरूप वर्णन (सु. ६९५-७१३)

भगवती सूत्र

६९५. भग. स. ११, उ. ११, सु. १६
६९५. ,, स. ६, उ. ७, सु. ४-७
६९९. ,, स. ११, उ. ११, सु. १७
७००. ,, स. ६, उ. ७, सु. ४-५
७०३. ,, ,, ,, सु. ७-८
७०८. ,, स. २५, उ. ५, सु. २-१२
७०९. ,, ,, ,, सु. १३-२५
७०९. ,, ,, ,, सु. २६-२७
७१०. ,, ,, ,, सु. २८-३४
७१०. ,, ,, ,, सु. ३५
७११. ,, ,, ,, सु. ३६-३८
७११. ,, ,, ,, सु. ३९-४१
७११. ,, ,, ,, सु. ४२
७११. ,, ,, ,, सु. ४३
७१२. ,, ,, ,, सु. ४४
७१२. ,, स. १२, उ. ४, सु. १४
७१३. ,, ,, ,, सु. १५

अनुयोगद्वार सूत्र

६९५. अणु. सु. ३६३-३६५
६९७. ,, सु. ३६६
६९८. ,, सु. ३६७
६९८. ,, सु. ३६७ टि०
७००. ,, सु. ३४३
७०१. ,, सु. ३४४, ३४५
७०४. ,, सु. ३६८, ३६९

पृष्ठ स्थल निर्देश

७०४. अणु. सु. ३७०, ३७१
७०४. ,, सु. ३७२, ३७३
७०५. ,, सु. ३७४, ३७६
७०५. ,, सु. ३७७ ३७८
७०६. ,, सु. ३७९, ३८०
७०७. ,, सु. ३८१, ३८२

ठाणांग सूत्र

६९९. ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ९४५
६९९. ,, ,, उ. ४, सु. १०६
७००. ,, अ. २, ,, सु. ११०
७००. ,, अ. ८, सु. ६२०
७००. ,, अ. २, उ. ४, सु. ११०
७०१. ,, अ. ८, सु. ६३४
७०२. ,, अ. २, उ. ४, सु. ११०
७०२. ,, अ. ३, उ. १, सु. १५१
७०२. ,, अ. २, उ. ३, सु. ९२
७०३. ,, अ. १, सु. ४०
७०३. ,, अ. २. उ. १, सु. ५६
७०३. ,, ,, ,, सु. ६४
७०३. ,, अ. १०, सु. ७५६
७१० ,, अ. ३, उ. ४, सु. १९७

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

६९९. जंबु. सु. १-२
७००. ,, व. २ सु. १९
७०१. ,, ,, ,,
७०१. ,, ,, ,,

समवायांग सूत्र

७०१. सम ९६ सु. ३
७०१. ,, ,, सु. ४
७०२ ,, ३१, सु. १
७०२. ,, ४२, सु. ८
७०२ ,, ३१ सु. २
७०२. ,, ४२, सु. ९
७०२. ,, [illegible] सु. २
७०२. ,, [illegible] सु. १०

पृष्ठ स्थल निर्देश

—काल लोक—

संवत्सर वर्णन (पृष्ठ ७१३-७२२)

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

७१३. सूरिय. पा. १०, पाहु. २०, सु. ५४
७१३. ,, ,, ,, सु. ५८
७१५. ,, पा. १२, सु. ७४
७१८. ,, पा. ११, सु. ७१
७२१. ,, पा. १२, सु. ७२
७२१. ,, पा. १०, पाहु. २०, सु. ५५
७२१ ,, ,, ,, सु. ५६
७२२. ,, ,, ,, सु. ५७
७२२ ,, ,, ,, सु. ५८
७२२. ,, ,, ,, ,,
७२२. ,, ,, पाहु. १०, सु. ५३

ठाणांग सूत्र

७१३. ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४६०
७१३. ,, ,, ,, ,,
७२१. ,, ,, ,, ,,
७२२. ,, ,, ,, ,,

जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

७१३. जंबु. व. ७, सु. १५१
७२१. ,, ,, ,,
७२२. ,, ,, ,,
७२२. ,, ,, सु. १५२

—काल लोक—

मुहूर्त वर्णन (पृष्ठ ७२३-७२५)

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

७२४. सूरिय. पा १२, पाहु. सु. ७३
७२५. ,, पा. १३, सु. ८०
७२५. ,, पा. १ पाहु १, सु. ८
७२५. ,, पा. १०, पाहु १३, सु. ४७

समवायांग सूत्र

७२४. सम ६२, सु. ३
७२५. ,, ३० सु. १

ठाणांग सूत्र

७२४ ठाणं अ. ३. उ. १, सु. १२३

पृष्ठ स्थल निर्देश

चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र

७२४. चंद. पा. १३, सु. ८०

—काल लोक—

दिवस रात्रि वर्णन (पृष्ठ ७२६-७२८)

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

७२७. सूरिय. पा. १०, पाहु. १४, सु. ४८
७२८. ,, पा. १२, सु. ७५
७२८. ,, पा. १०, पाहु. १५, सु. ४९

जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

७२६. जंबु. व. ७, सु. १५२
७२७. ,, ,, ,,
७२८. ,, ,, ,,

समवायांग सूत्र

७२६. सम. स. ३०, सु. ३

ठाणांग सूत्र

७२७. ठाणं. ६, सु. ५२४

—काल लोक—

करण वर्णन (पृष्ठ ७२९-३०)

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

७३०. जंबु. व. ७, सु. १५३

—काल लोक—

ऋतु वर्णन (पृष्ठ ७३१-७३२)

ठाणांग सूत्र

७३१. ठाणं. ६, सु. ५२६

समवायांग सूत्र

७३१. सम. ५६, सु. १

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

७३१. सूरिय. पा. १२, सु. ७५
७३२. ,, पा. ८, सु. २६

भगवती सूत्र

७३२. भग. स. ५, उ. १, सु. १४-२१



विशिष्ट शब्द सूची

विशिष्ट शब्द सूची

विशिष्ट शब्द सूची

परिशिष्ट : ५

विशिष्ट शब्द सूची



संकलन में प्रयुक्त सहायक ग्रन्थ सूची :

१. **आचारांग सूत्रम् (आयारंगसुत्तं) ईस्वी सन १९७७**
सम्पादक—मुनि श्री जम्बुविजयजी,
प्रकाशक—श्री महावीर जैन विद्यालय, वम्बई

आचारांग सूत्रम्
प्रधान सम्पादक—युवाचार्य मधुकर मुनिजी म०
सम्पादक—श्रीचन्द जी सुराना
प्रकाशक—आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

आयारो
सम्पादक—मुनि श्री नथमलजी
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनूं

आचारांग सूत्रम्
सम्पादक—स्वर्गीय श्री आत्माराम जी म०,
प्रकाशक—आ० आत्माराम प्रकाशन समिति, लुधियाना

आचारांग सूत्रम्
शीलाङ्काचार्य टीका० निर्युक्ति
प्रकाशक—आगमोदय समिति, सूरत

२. **सूयगडंगसुत्तं (सूत्रकृताङ्गसूत्रम्) ईस्वी सन १९७८**
सम्पादक—मुनिश्री जम्बुविजयजी,
प्रकाशक—महावीर जैन विद्यालय, वम्बई

सूत्रकृतांग सूत्रम्
प्रधान सम्पादक—युवाचार्य मधुकर मुनिजी
सम्पादक—श्रीचन्दजी सुराना
प्रकाशक—आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर,

सूत्रकृतांग सूत्रम् (भाग एक से चार)
पूज्य आचार्य जवाहरलालजी म०

सूत्रकृतांग सूत्रम् (प्रथम एवं द्वितीय श्रुत-स्कन्ध) सन **१९७९**
व्याख्याता—पं० श्री हेमचन्द्रजी म०
सम्पादक—श्री अमरमुनिजी
प्रकाशक—आत्म ज्ञानपीठ, मानसा मंडी (पंजाब)

सूत्रकृतांग सूत्रम्
शीलांकाचार्य निर्युक्ति एवं टीका सन् १९१७
प्रकाशक—आगमोदय समिति, वम्बई

सूत्रकृतांग (निर्युक्ति सूत्र) सन् १९२८
सम्पादक—डॉ० पी० एल० वैद्य

३. **स्थानांग सूत्रम् (ठाणांगसुत्तं) सन् १९८५**
सम्पादक—मुनि श्री जम्बुविजयजी
प्रकाशक—महावीर जैन विद्यालय, वम्बई

स्थानांग सूत्र (मूल हिन्दी) सन् १९७२
सम्पादक—मुनिश्री कन्हैयालालजी "कमल"
प्रकाशक—आगम अनुयोग प्रकाशक समिति, सान्डेराव

ठाणं
सम्पादक—मुनिश्री नथमलजी
प्रकाशक—जैन विश्व भारती लाडनू

स्थानांग सूत्रम्
प्रधान सम्पादक—युवाचार्य मधुकर मुनि
सम्पादक—पं० हीरालालजी शास्त्री
प्रकाशक—आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

स्थानांग सूत्रम्
अभयदेव कृत वृत्ति सहित
प्रकाशक—आगमोदय समिति, वम्बई

स्थानांग सूत्रम् (भाग १, २)
सम्पादक—आचार्यश्री आत्मारामजी म०
प्रकाशक—आ० आत्माराम प्रकाशन समिति, लुधियाना

४. **समवायंगसुत्तं (समवायांग सूत्र) सन् १९८५**
सम्पादक—मुनिश्री जम्बुविजयजी
प्रकाशक—महावीर जैन विद्यालय, वम्बई

समवायांगसुत्तं (मूल हिन्दी)
सम्पादक—मुनिश्री कन्हैयालालजी "कमल"
प्रकाशक—आगम अनुयोग प्रकाशन समिति, सान्डेराव

समवाओ
सम्पादक—मुनिश्री नथमलजी
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनूं

समवायांगसुत्तं
प्रधान सम्पादक—युवाचार्य मधुकर मुनिजी
सम्पादक—पं० हीरालालजी "शास्त्री"
प्रकाशक—आगम प्रकाशक समिति, ब्यावर
समवायांगसुत्तं
अभयदेव कृत वृत्ति सहित
प्रकाशक—आगमोदय समिति, बम्बई

५. **व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र)**
वियाहपण्णत्ति सुत्तं (भाग १, २, ३ सन् १९७८)
सम्पादक—पं० बेचरदास जीवराज दोशी
प्रकाशक—श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई
भगवती सूत्र (भाग १ से ७)
सम्पादक—पं० घेवरचन्द जी बांठिया
प्रकाशक—श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी संस्कृति संघ सैलाना
श्री भगवती सूत्र (सन् १९३७)
सम्पादक—अभयदेवसूरीश्वर विरचित वृत्ति
प्रकाशक—छगनलाल फूलचन्द झवेरी
श्री भगवती सूत्र (भाग १, २, ३)
सम्पादक—श्री अमर मुनि
सहसम्पादक—श्रीचन्द सुराना 'सरस'
प्रकाशक—श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर,

६. **श्री जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र**
शांतिचन्द्रविहित वृत्ति सहित
प्रकाशक—नगीनभाई गेलाभाई जवेरी, बम्बई
जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र
सम्पादक—पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म०
प्रकाशक—लाला ज्वालाप्रसाद, सुखदेवसहाय, सिकन्दरावाद
जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र
पूज्यश्री घासीलालजी म०
प्रकाशक—जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट

७. **सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र (मुद्रणाधीन)**
सम्पादक—मुनिश्री कन्हैयालालजी "कमल"
प्रकाशक—आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र (सन् १९१९)
मलयगिरिविहित वृत्ति सहित
प्रकाशक—आगमोदय समिति, बम्बई
सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र
पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म०
प्रकाशक—रायबहादुर लाला ज्वालाप्रसाद, सुखदेव सहाय, सिकन्द्राबाद

८. **उत्तरज्झयणाणि**
सम्पादक—मुनिश्री कन्हैयालालजी "कमल"
प्रकाशक—आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद
उत्तरज्झयणाणि
सम्पादक मुनिश्री पुण्यविजयजी म०
प्रकाशक—महावीर जैन विद्यालय, बम्बई
उत्तरज्झयणाणि
सम्पादक—मुनिश्री नथमलजी म०
प्रकाशक—जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता
उत्तराध्ययन सूत्र (भाग : एक से तीन)
पूज्य आचार्यश्री आत्माराम जी म०
प्रकाशक—आचार्य आत्माराम प्रकाशन समिति, लुधियाना

९. **औपपातिक सूत्र**
अभयदेवसूरि कृत वृत्ति सहित
प्रकाशक—आगमोदय समिति, बम्बई
ओवाइयं (सन् १९७०)
सम्पादक—मुनिश्री नथमलजी
प्रकाशक—जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता
उववाइय सुत्तं (सन् १९६३)
अनुवादक—पं० मुनिश्री उमेशचन्दजी म० "अणु"
प्रकाशक—श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ, सैलाना
औपपातिक सूत्र
सम्पादक—डा० छगनलाल शास्त्री
प्रकाशक—आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

१०. **जीवाभिगम सूत्र** (सन् १९१९)
मलयगिरिकृत वृत्ति सहित
प्रकाशक—देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई
जीवाभिगम सूत्र
सम्पादक—पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म०
प्रकाशक—रायबहादुर सेठ ज्वालाप्रसाद, सिकन्द्राबाद

११. **प्रज्ञापना सूत्र**
सम्पादक—मुनिश्री पुण्यविजयजी म०
प्रकाशक—महावीर जैन विद्यालय, बम्बई
प्रज्ञापना सूत्र
सम्पादक—श्री ज्ञानमुनिजी म०
प्रकाशक—श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
प्रज्ञापना सूत्र
मलयगिरिकृत टीका
प्रकाशक—आगमोदय समिति, बम्बई

१२. ज्ञाता धर्मकथा-सूत्र (सन् १९१६)
अभयदेवकृत वृत्ति सहित
प्रकाशक—आगमोदय समिति, बम्बई
ज्ञाताधर्म कथा सूत्र
सम्पादक—पं० शोभाचन्द्र जी भारिल्ल
प्रकाशक—आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
१३. अनुओगद्दारं—अनुयोगद्वार सूत्र
सम्पादक—मुनिश्री पुण्यविजय जी म०
प्रकाशक—महावीर जैन विद्यालय, बम्बई
अनुयोगद्वार सूत्र
सम्पादक—पं० मुनिश्री कन्हैयालालजी "कमल"
प्रकाशक—वर्धमान वाणी प्रचारक कार्यालय, लाडपुरा
अनुयोगद्वार सूत्र
हेमचन्द्रकृत वृत्ति सहित
प्रकाशक—आगमोदय समिति, बम्बई
१४. अंगसुत्ताणि (भाग १, २, ३)
सम्पादक—मुनिश्री नथमलजी
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनूं
१५. सुत्तागमे (भाग १, २)
सम्पादक—पुप्फभिक्खु
प्रकाशक—सूत्रागम प्रकाशक समिति, गुड़गांव
अत्थागमे
सम्पादक—पुप्फभिक्खु
प्रकाशक—सूत्रागम प्रकाशक समिति, गुड़गांव
१६. आगमसुधासिन्धु : भाग ७
सम्पादक—आचार्यश्री विजयजिनेन्द्र सूरि
प्रकाशक—हर्षपुष्पामृत ग्रन्थमाला शांतिपुरी, सौराष्ट्र
१७. तिलोयपण्णत्ति (भाग १ और २)
सम्पादक—यतिवृषभाचार्य
प्रकाशक—जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर
१८. अभिधान राजेन्द्र कोश (भाग १ से ७ तक)
सम्पादक—आचार्यश्री राजेन्द्र सूरि
प्रकाशक—समस्त जैन श्वेताम्बर श्रीसंघ, श्री अभिधान राजेन्द्र कार्यालय, रतलाम
१९. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश (भाग १ से ४ तक)
सम्पादक—क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी
प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ
बी० ४५/४७ कनाट प्लेस, नई दिल्ली
२०. नालन्दा विशाल शब्द सागर
सम्पादक—श्री नवल जी
प्रकाशक—आदर्श बुक डिपो, ३८ यु० जवाहर नगर, दिल्ली
२१. पाइअ-सद्द महण्णवो (द्वि० सं०)
सम्पादक—प० हरगोविन्ददास टी० शेठ
डा० वासुदेवशरण अग्रवाल और पं० दलसुखभाई मालवणिया
प्रकाशक—प्राकृत ग्रन्थ परिषद् वाराणसी—५
२२. अमर कोष
रामाश्रय टीका
प्रकाशक—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
२३. बृहत्संग्रहणीसूत्रम् (वि० १९९५)
अनुवादक—मुनिश्री यशोविजयजी
प्रकाशक—मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, बड़ोदा
२४. बृहत्क्षेत्रसमास (भाग १, २)
सम्पादक—श्री नित्यानन्दविजयजी गणीवर
प्रकाशक—संघवी अम्बालाल रतनचन्द जैन धार्मिक ट्रस्ट, खम्भात
२५. लघुक्षेत्र समास
२६. जैन दृष्टि ऐ मध्यलोक
सम्पादक—श्री नवीनऋषिजी म०
प्रकाशक—मनसुखलाल छगनलाल देसाई, बम्बई
२७. बृहद्दैवज्ञरंजनम् (वि० १९८१)
सम्पादक—गंगाविष्णु
प्रकाशक—लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई
२८. जम्बूद्वीपपण्णत्ति
संशोधक—लाभसागरगणी
प्रकाशक—जैनानन्द पुस्तकालय, सूरत
२९. गणितसार संग्रह
सम्पादक—लक्ष्मीचन्द्र जैन
प्रकाशक—जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर
३०. मुहूर्त चिन्तामणी
३१. स्थानांग समवायांग
सम्पादक—श्री दलसुखभाई मालवणिया
प्रकाशक—गुजरात विद्यापीठ, अहमदावाद-१४



प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त सन्दर्भ ग्रन्थों की संकेत सूचना

संक्षिप्त संकेत	प्राकृत नाम	संस्कृत नाम
उव. ओ. सु.	उ(ओ) ववाइ, सुत्त	औपपातिकसूत्र, सूत्र
आया. सु. अ. उ. सु.	आयारो, सुयक्खन्ध, अज्झयण, उद्देसक सुत्त	आचारांग, श्रुतस्कंध, अध्ययन, उद्देशक, सूत्र
ठाणं. अ. उ. सु.	ठाणं, अज्झयण, उद्देसक, सुत्त	ठाणांग (स्थानांग), अध्ययन, उद्देशक, सूत्र
सूय. सु. अ. उ. गा.	सूयगडंग, सुयक्खंध, अज्झयण, उद्देसक, गाहा,	सूत्रकृतांग, श्रुतस्कंध, अध्ययन, उद्देशक, गाथा
सम. स. सु.	समवायांग, समवाय, सुत्त	समवायांग, समवाय, सूत्र
अणु. सु. गा.	अणुओगद्दार, सुत्त, गाहा	अनुयोगद्वार, सूत्र, गाथा
भग. स. उ. सु.	भगवई, सतक, उद्देसक, सुत्त	भगवती, शतक, उद्देशक, सूत्र
पण्ण. प. उ. सु.	पण्णवणा, पद, उद्देसक, सुत्त	प्रज्ञापना, पद, उद्देशक, सूत्र
उ. (उत्त.) अ. गा.	उत्तरज्झयण, अज्झयण, गाहा	उत्तराध्ययन, अध्ययन, गाथा
जीवा. पडि. उ. सु.	जीवाभिगम, पडिवत्ति, उद्देसक, सुत्त	जीवाभिगम, प्रतिपत्ति, उद्देशक, सूत्र
जंबु. वक्ख. सु.	जंबुद्दीवपण्णत्ति, वक्खार, सुत्त	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार, सूत्र
णायाधम्म. अ.	णायाधम्मकहाओ, अज्झयण	ज्ञाताधर्मकथांग, अध्ययन
सूरिय. पा. सु.	सूरियपण्णत्ति, पाहुड, सुत्त	सूर्यप्रज्ञप्ति, प्राभृत, सूत्र
सूरिय. पा. पाहु. सु.	सूरियपण्णत्ति, पाहुड, पाहुड-पाहुड, सुत्त	सूर्यप्रज्ञप्ति, प्राभृत, प्राभृतप्राभृत, सूत्र
चन्द. पा. सु.	चन्द पण्णत्ति, पाहुड, सुत्त	चन्द्रप्रज्ञप्ति, प्राभृत, सूत्र

□ □

अर्हम्

लोय-पण्णत्ति

लोक-प्रज्ञप्ति

अरिहंत-सिद्धथुई

१ : णमोऽत्थु णं
अरिहंताणं
भगवंताणं
आइगराणं
तित्थयराणं
सयंसंबुद्धाणं

पुरिसुत्तमाणं
पुरिससीहाणं
पुरिसवरपुण्डरीआणं

पुरिसवरगंधहत्थीणं
लोगुत्तमाणं
लोगनाहाणं
लोगहियाणं
लोगपईवाणं
लोगपज्जोयगराणं
अभयदयाणं

चक्खुदयाणं
मग्गदयाणं
सरणदयाणं

अरिहंत-सिद्ध-स्तुति

१ : नमस्कार हो—
अरिहंतों (कर्म-शत्रुओं के हंताओं) को,
भगवन्तों (समग्र ऐश्वर्ययुक्तों) को,
आदिकरों (श्रुतधर्म की आदि करनेवालों) को,
तीर्थंकरों (चतुर्विध संघ की स्थापना करनेवालों) को,
स्वयंसंबुद्धों (गुरु-उपदेश के बिना स्वतः बोध प्राप्त करने वालों) को,
पुरुषों में उत्तमों (अतिशययुक्त प्रधान पुरुषों) को,
पुरुषों में सिंहों (सिंह समान शौर्यवालों) को,
पुरुषों में वरपुण्डरीकों (श्रेष्ठ श्वेत कमल समान सर्व अशुभ मलिनता रहितों) को,
पुरुषों में वर-गंधहस्तियों (श्रेष्ठ गंधहस्ती समान पुरुषों) को,
लोक में उत्तमों (प्रधानों) को,
लोक के नाथों को,
लोक का हित करने वालों को,
लोक के प्रदीपकों (सर्व वस्तु प्रकाशकों) को,
लोक के प्रद्योतकरों (उद्योतकरों) को,
अभयदान देनेवालों (प्राणिमात्र को भय न देने की प्रतिज्ञा वालों) को,
चक्षु (श्रुतज्ञान) देनेवालों को,
मार्ग देनेवालों (सम्यग्ज्ञानादि मोक्षपथदर्शकों) को,
शरण (निरुपद्रवस्थान अथवा निर्वाण) देनेवालों को,

जीवदयाणं	जीव (भाव प्राण अर्थात् अमरणधर्मत्व) देनेवालों को,
बोहिदयाणं	बोधि (बोधि-बीज सम्यक्त्व) देनेवालों को,
धम्मदयाणं	धर्म देनेवालों (अगारधर्म और अनगारधर्म का स्वरूप बताने वालों) को,
धम्मदेसयाणं	धर्म-देशकों को,
धम्मनायगाणं	धर्म-नायकों को,
धम्मसारहीणं	धर्म के सारथियों को,
धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं,	धर्म के श्रेष्ठ चातुरंत चक्रवर्तियों (तीन ओर समुद्र तथा एक ओर हिमालय पृथ्वी के इन चार अंतों तक जिनका स्वामित्व है, ऐसे श्रेष्ठ चक्रवर्तियों के समान जो हैं उन) को,
दीवो	दीप के समान (समस्त वस्तुओं के जो प्रकाशक हैं) अथवा द्वीप के समान (संसार समुद्र में रहे हुए प्राणी नाना दुःख रूप, कल्लोलों के आघात से जो त्रस्त हैं उनके लिए आश्रय स्थान) हैं,
ताणं	अनर्थों से बचाने में जो त्राण—रक्षा रूप है,
सरणं	अर्थ-सम्पादन के लिए जो शरण—आश्रय स्थान है,
गई	दुस्थितजनों की सुस्थिति के लिए जो गति—आश्रय स्थान है,
पइट्ठा (णं)	संसारगर्त में गिरते हुए प्राणिवर्ग के लिए जो प्रतिष्ठा-आधारभूत है (उनको),
अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं	अप्रतिहत (नष्ट न होने वाले) श्रेष्ठ (केवल) ज्ञान तथा (केवल), दर्शन के धारकों को,
विअट्टछउमाणं,	जिनका छद्म (माया-कषाय) निवृत हो गया है उनको,
जिणाणं	जिनों (रागादि जीतने वालों) को,
जावयाणं,	ज्ञायकों (रागादि के स्वरूप, कारण, तथा फल जानने वालों) को,
तिण्णाणं	तिरने वालों (संसार-सागर तिरने वालों) को,
तारयाणं	तारकों (संसार-सागर तिरने का उपदेश देने वालों) को,
बुद्धाणं	बुद्धों को,
बोहयाणं,	बोधकों (बोध देनेवालों) को,
मुत्ताणं	मुक्तों (बाह्याभ्यन्तर ग्रन्थियों से अथवा कर्मबंध से मुक्तों) को,
मोअगाणं,	मोचकों (जो मुक्तात्माओं के उपदेशानुसार चलते हैं उनके वे (मुक्तात्मा) मोचक हैं उन) को,
सव्वन्नूणं,	सर्वज्ञों को,
सव्वदरिसीणं,	सर्वदर्शियों को,
सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपाविउकामाणं, ठाणं संपत्ताणं। —ओव० सु० १२।	शिव, (सर्व-उपद्रव-रहित) अचल, अरुज (रोग-रहित) अनन्त, अक्षय, अव्याबाध (पीड़ा-रहित) अपुनरावर्तक (पुनर्जन्म रहित) ऐसे सिद्धिगति नामक स्थान प्राप्त करने की कामना वालों को तथा ऐसे सिद्धिगति नामक स्थान प्राप्त (सिद्धों) को।

उत्थाणिया

चंपानयरी

२ : तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णाम णयरी होत्था....

तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था····

से णं पुण्णभद्दे चेइए एक्केणं महया वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ···

तस्स णं वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एक्के असोगवरपायवे पण्णत्ते ···

तस्स णं असोगवरपायवस्स हेट्ठा ईसिं खंधसमल्लीणे एत्थ णं महं एक्के पुढविसिलापट्टए पण्णत्ते····

—ओव० सु० १-५।

चंपाए कुणियो राया

३ : तत्थ णं चंपाए णयरीए कूणिए णामं राया परिवसइ····
तस्स णं कोणियस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था ···

तस्स णं कोणियस्स रण्णो एक्के पुरिसे विउलकयवित्तिए भगवओ पवित्तिवाउए भगवओ तद्देवसियं पवित्तिं णिवेदेइ।

तस्स णं पुरिसस्स बहवे अण्णे पुरिसा दिण्ण-भइ-भत्त-वेयणा भगवओ पवित्तिवाउया भगवओ तद्देवसियं पवित्तिं णिवेदेंति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं कोणिए राया भंभसारपुत्ते बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए अणेग-गणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर माडंबिय-कोडुम्बिय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवालसद्धिं संपरिवुडे विहरइ।

—ओव० सु० ६-९।

चंपाए भगवओ महावीरस्सागमणसंकप्पो

४ : तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे (जाव) पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे चंपाए णयरीए उवणगरग्गामं बहिया उवागए चंपं नगरिं पुण्णभद्दं चेइयं समोसरिउकामे।

—ओव० सु० ९-१०।

उत्थानिका

चम्पानगरी

२ : उस काल और उस समय में 'चम्पा' नाम की नगरी थी ···

उस चम्पा नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा के भाग में—यहाँ "पूर्णभद्र" नाम का चैत्य (व्यंतरायतन) था····

वह पूर्णभद्र चैत्य एक बहुत बड़े वनखण्ड से, (दिशा विदिशा में) चारों ओर से घिरा हुआ था····

उस वनखण्ड के ठीक मध्य भाग में—यहाँ एक विशाल अशोक वृक्ष कहा गया है····

उस अशोक वृक्ष के नीचे उसके तने के कुछ समीप—यहाँ पृथ्वी का एक बड़ा शिलापट्टक कहा गया है····

चम्पा में कोणिक राजा

३ : उस चम्पा नगरी में 'कोणिक' नाम का राजा रहता था····
उस कोणिक राजा के धारिणी नामक रानी थी····

उस कोणिक राजा का एक पुरुष भगवान की प्रवृत्ति जानने के लिए नियुक्त था, उसे बहुत आजीविका दी जाती थी। वह भगवान की दैनिक प्रवृत्ति उस (कोणिक) को निवेदन करता था।

उस पुरुष के अन्य अनेक पुरुष (भृत्य) थे, उन्हें वह भोजन तथा वेतन देता था, जो भगवान की प्रवृत्ति जानने के लिए नियुक्त किये गये थे और वे उसे भगवान की दैनिक प्रवृत्ति निवेदन करते थे।

उस काल और उस समय में भंभसारपुत्र राजा कोणिक बाहरी सभाभवन में अनेक गणनायक, दण्डनायक, युवराज, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, मन्त्री, महामन्त्री, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेट (दास), पीठमर्दक (सिंहासन सेवक), नागरिक, कर्मचारी, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत और सन्धिपालों से घिरा हुआ था।

चम्पा में भगवान महावीर का आगमन-संकल्प

४ : उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर (यावत्) क्रमशः विचरते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम को गमन करते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए चम्पा नगरी के बाहर उपनगर में पधारे तथा वहाँ से चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य में आना चाहते हैं।

पवित्तिवाउएण कुणियनिवेयणं

५ : तए णं से पवित्तिवाउए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे (जाव) सयाओ गिहाओ पडिणिक्खिमित्ता चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव कोणियस्स रण्णो गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव कूणिए राया भंभसारपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ वद्धावित्ता एवं वयासी—

"जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं कंखंति,
जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पीहंति,
जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पत्थंति,
जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं अभिलसंति,

जस्स णं देवाणुप्पिया नाम-गोयस्स वि सवणयाए हट्ठ-तुट्ठ जाव हियया भवंति, से णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे चंपाए णयरीए उवणगरग्गामं उवागए, चंपं णयरिं पुण्णभद्दं चेइयं समोसरिउकामे।"

तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पियं णिवेदेमि, पियं ते भवउ।

—ओव० सु० ११।

प्रवृत्तिव्यापृत्त का कोणिक से निवेदन

५ : तब प्रवृत्ति-निवेदक उस पुरुष से, यह बात जानकर (यावत्) अपने घर से बाहर निकलकर, चम्पानगरी के मध्य में होता हुआ जहाँ कोणिक राजा का निवास-स्थान था, जहाँ बाहरी सभाभवन था और जहाँ भंभसारपुत्र कोणिक राजा था, वहाँ आया और आकर करतलों से सिर की प्रदक्षिणा की तथा मस्तक पर अंजली लगाकर जय-विजय से बधाया और बधाकर इस प्रकार बोला—

"हे देवानुप्रिय ! आप जिनके दर्शन चाहते हैं,
हे देवानुप्रिय ! आप जिनके दर्शनों की इच्छा करते हैं,
हे देवानुप्रिय ! आप जिनके दर्शनों के लिए प्रार्थना करते हैं,
हे देवानुप्रिय ! आप जिनके दर्शनों की अभिलाषा करते हैं,

हे देवानुप्रिय ! जिनके नाम और गोत्र को सुनने मात्र से हर्षित, सन्तुष्ट यावत् हृदय विकसित हो जाते हैं—वे ही श्रमण भगवान महावीर क्रमशः विचरते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम को गमन करते हुए चम्पा नगरी के उपनगर में पधारे हैं, और वे पूर्णभद्र चैत्य में आना चाहते हैं।"

देवानुप्रिय का प्रीतिकर विषय होने से यह प्रिय समाचार निवेदन कर रहा हूँ। वह आपके लिए प्रिय बने।

कुणियकओ थओ

६ : तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते तस्स पवित्तिवाउयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म (जाव) करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"णमोऽत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं (जाव) सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं।

णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स (जाव) सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं" ति कट्टु वंदइ णमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ णिसीइत्ता तस्स पवित्तिवाउयस्स अट्ठुत्तरसयसहस्सं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी—

कोणिक-कृत स्तव

६ : तब भंभसारपुत्र कोणिक राजा ने उस प्रवृत्ति-निवेदक से यह समाचार सुनकर हृदय में धारण कर (यावत्) हाथ जोड़कर सिर के चारों ओर घुमाये, अंजलि को सिर पर लगाई और इस प्रकार बोला—

"नमस्कार हो अरिहंत भगवंतों को (यावत्) सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त सिद्ध भगवंतों को।

नमस्कार हो श्रमण भगवान महावीर को (यावत्) सिद्धिगति नामक स्थान को पाने के इच्छुक मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक को। यहाँ पर स्थित (मैं) वहाँ पर स्थित भगवान की वन्दना करता हूँ। वहाँ पर स्थित भगवान यहाँ पर स्थित मुझे देखें।" इस प्रकार (वह कोणिक राजा) वंदना-नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके पूर्व की ओर मुख रखकर सिंहासन पर बैठता है और बैठकर उस प्रवृत्ति-निवेदक को एक लाख आठ हजार (रजत मुद्रा) का प्रीतिदान दिया, देकर सत्कार, सम्मान किया। सत्कार सम्मान करके पुनः इस प्रकार बोला—

"जया णं देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे इहमागच्छेज्जा इह समोसरिज्जा, इहेव चंपाए णयरीए बहिया पुण्णभद्दे चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ताणं अरहा जिणे केवली समणगणपरिवुडे, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरेज्जा तया णं तुमं मम एयमट्ठं निवेदिज्जासि" त्ति कट्टु विसज्जिए।

—ओव सु० १२।

"हे देवानुप्रिय ! जब श्रमण भगवान महावीर यहाँ आवें—यहाँ ठहरें, इस चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में संयमियों के योग्य आवासस्थान को ग्रहण करके श्रमणवृन्द से परिवृत अर्हन्त जिन केवली संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए रहें, तब तुम यह सूचना मुझे देना।" इस प्रकार कहकर उस (प्रवृत्ति-निवेदक) को विसर्जित किया।

भगवओ चंपाए आगमणं

७ : तए णं समणे भगवं महावीरे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए (जाव) उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव चंपा णयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, जेणेव वणसंडे, जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव पुढविसिलापट्टए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ताणं असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टगंसि पुरत्थाभिमुहे पलियंकनिसन्ने अरहा जिणे केवली समणगणपरिवुडे तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

—ओव० सु० १३।

भगवान का चम्पा में आगमन

७ : तब श्रमण भगवान् महावीर प्रकाशयुक्त रात्रि में (यावत्) हजार किरण वाले, दिनकर के तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के उदय होने पर जहाँ चम्पा नगरी थी—जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, जहाँ वनखण्ड था, जहाँ अशोक वृक्ष था और जहाँ पृथ्वी शिलापट था वहाँ पधारे, पधार कर संयम-मार्ग के अनुकूल आवास को ग्रहण करके, अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिलापट पर पूर्वाभिमुख होकर पल्यंकासन से बैठे और वे श्रमणवृन्द से परिवृत अर्हन्त जिन केवली संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए रहे।

भगवओ परिवारो देवागमणं य

८ : तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे समणा भगवंतो (जाव) णिरवकंखा साहू णिहुया चरंति धम्मं।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरकुमारा देवा अंतियं पाउब्भवित्था (जाव) पज्जुवासंति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरिंदवज्जिया भवणवासी देवा अंतियं पाउब्भवित्था (जाव) पज्जुवासंति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे वाणमंतरा देवा अंतियं पाउब्भवित्था (जाव) पज्जुवासंति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे जोइसिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था (जाव) पज्जुवासंति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे वेमाणिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था (जाव) पज्जुवासंति।

—ओव० सु० १४-२६।

भगवान का परिवार और देवताओं का आगमन

८ : उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी बहुत से श्रमण भगवन्त (यावत्) आकांक्षा-रहित साधक निश्चल चित्त से धर्म का आचरण करते हैं।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के समीप अनेक असुरकुमार देव आये (यावत्) पर्युपासना करने लगे।

उस काल और उस समय में, श्रमण भगवान महावीर के समीप असुरेन्द्र को छोड़कर अनेक भवनवासी देव प्रकट हुए (यावत्) पर्युपासना करने लगे।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के समीप अनेक वाणव्यंतर देव प्रकट हुए (यावत्) वे पर्युपासना करने लगे।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के समीप अनेक ज्योतिष्क देव प्रकट हुए (यावत्) वे पर्युपासना करने लगे।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के समीप अनेक वैमानिक देव प्रकट हुए (यावत्) वे पर्युपासना करने लगे।

चंपानयरीजणेहिं पज्जुवासणा

९ : तए णं चंपाए णयरीए (जाव) बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ।

"एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे सयंसंबुद्धे पुरिसुत्तमे जाव सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपाविउकामे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे, इहमागए, इह संपत्ते, इह समोसढे; इहेव चंपाए णयरीए बाहिं पुण्णभद्दे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं णाम-गोयस्स वि सवणयाए किमंग पुण अभिगमण वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए।

एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए।

तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामो (जाव) पज्जुवासामो एयं णं इहभवे पेच्चभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ" त्ति कट्टु बहवे उग्गा उग्गपुत्ता भोगा भोगपुत्ता (जाव) चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छंति णिग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति करित्ता वंदंति णमंसंति वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा णमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति।

—ओव० सु० २७।

चम्पानिवासियों द्वारा पर्युपासना

९ : उस समय चम्पा नगरी में (यावत्) अनेक मनुष्य एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे—इस प्रकार भाषण करने लगे—इस प्रकार ज्ञापन करने लगे—इस प्रकार प्ररूपण करने लगे—

हे देवानुप्रिय! श्रमण भगवान महावीर आदिकर तीर्थंकर स्वयं-संबुद्ध, पुरुषों में उत्तम यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने के इच्छुक क्रमशः चलते हुए एक गाँव से दूसरे गाँव गमन करते हुए यहाँ आये हैं, यहाँ ठहरे हैं और यहाँ निवास किया है, इस चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में श्रमणोचित स्थान ग्रहण करके संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हैं।

हे देवानुप्रियो! तथारूप अरिहंतों के नाम-गोत्र श्रवण का भी महाफल है तो उनके सम्मुख जाना—वंदन करना—नमस्कार करना, प्रश्न पूछना और पर्युपासना के फल का तो कहना ही क्या है?

आर्यपुरुष के एक धार्मिक सुवचन श्रवण का भी महाफल है, तो विपुल अर्थ ग्रहण के फल का तो कहना ही क्या है!

इसलिए हे देवानुप्रिय! चलो हम सब श्रमण भगवान महावीर को वंदन करें (यावत्) पर्युपासना करें। यह (हमारे द्वारा की गई भगवद् वंदना आदि) इस भव में और पर-भव में हित के लिए, सुख के लिए, क्षान्ति के लिए, कल्याण के लिए, भव परम्परा में सुख-लाभ के लिए होगी। इसलिए बहुत से उग्र, उग्रपुत्र, भोग, भोगपुत्र (यावत्) चम्पानगरी के मध्य से होकर निकले, निकलकर जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था वहाँ आये। वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की और करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके न अधिक समीप और न अधिक दूर सेवा करते हुए नमस्कार मुद्रा से भगवान की ओर मुँह करके विनयपूर्वक हाथ जोड़कर पर्युपासना करने लगे।

कूणियस्सागमणं

१० : तए णं से पवित्तिवाउए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ-तुट्ठ जाव हियए ण्हाए जाव अप्प-महग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता चंपाणयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव कोणियस्स रण्णो गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव कूणिए राया भंभसारपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, (जाव) एवं वयासी—

कोणिक का आगमन

१० : तब वह प्रवृत्तिव्यापृत इस बात को जानकर, बहुत खुश हुआ यावत् विकसित हृदय हुआ। उसने स्नान किया यावत् अल्प भार वाले किन्तु मूल्यवान आभरणों से शरीर को अलंकृत किया, फिर वह अपने घर से बाहर निकला। निकलकर चम्पानगरी के मध्य बाजार से होता हुआ जहाँ कोणिक राजा की बाहरी राजसभा थी, जहाँ भंभसारपुत्र कोणिक राजा थे वहाँ गया (यावत्) इस प्रकार बोला—

"जस्स णं देवाणुप्पिया ! दंसणं कंखंति (जाव) से णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे चंपाए णयरीए उवणगरग्गामं उवागए।"

हे देवानुप्रिय ! जिनके दर्शन की आप इच्छा करते हो (यावत्) वे श्रमण भगवान महावीर क्रमशः विचरते हुए मार्ग में आने वाले गाँवों को पावन करते हुए चम्पानगरी के उपनगर ग्राम में पधारे हैं।"

तए णं से कूणिए राया (जाव) सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ णिसीइत्ता तस्स पवित्तिवाउयस्स अद्धतेरस्स सयसहस्साइं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ।

तब कोणिक राजा (यावत्) सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठकर, उस प्रवृत्तिव्यापृत को साढ़े बारह लाख (चाँदी की मुद्राओं का) प्रीतिदान दिया; देकर सत्कार सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके उसे विसर्जित किया।

तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते बलवाउयं आमंतेइ आमंतित्ता एवं वयासी—

तब भंभसार के पुत्र कोणिक राजा ने सेनापति को बुलवाया और बुलवाकर इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि (जाव) णिज्जाहिस्सामि समणं भगवं महावीरं अभिवंदिउं।"

"हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को सजाकर तैयार करो (यावत्) मैं श्रमण भगवान महावीर की अभिवन्दना के लिए जाऊँगा।"

तए णं से बलवाउए (जाव) एवं वयासी—

तब वह सेनापति (यावत्) इस प्रकार बोला—

"कप्पिए णं देवाणुप्पियाणं आभिसेक्के हत्थिरयणे (जाव) तं णिज्जंतु णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं अभिवंदिउं।"

"देवानुप्रियों का आभिषेक्य हस्तिरत्न तैयार है (यावत्) हे देवानुप्रिय ! अब श्रमण भगवान महावीर की अभिवन्दना के लिए प्रस्थान करें।"

तए णं से कूणिए राया (जाव) जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ (जाव) पज्जुवासइ।

तब वह कोणिक राजा (यावत्) जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आये (यावत्) पर्युपासना की।

तए णं ताओ सुभद्दापमुहाओ देवीओ (जाव) जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति (जाव) पज्जुवासंति।

—ओव० सु० २८-३३

तब भंभसार पुत्र कोणिक राजा की सुभद्रा प्रमुख देवियाँ (यावत्) जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे (यावत्) वहाँ आईं और पर्युपासना करने लगीं।

भगवया लोगाइउवएसो—

११ : तए णं समणे भगवं महावीरे कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स सुभद्दापमुहाणं देवीणं तीसे य महइमहालियाए परिसाए (जाव) अद्धमागहाए भासाए भासइ।

भगवान द्वारा लोकादि के सम्बन्ध में उपदेश—

११ : तब श्रमण भगवान महावीर भंभसारपुत्र कोणिक को, सुभद्रा आदि देवियों को और उस अति विशाल परिषदा को (यावत्) अर्ध-मागधी भाषा में उपदेश देने लगे।[1]

---

१. भगवान महावीर ने कोणिक के शासन काल में चम्पानगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य के वन में अशोकवृक्ष के नीचे पृथ्वी शिलापट पर स्थित होकर बहुत बड़ी परिषद के समक्ष अर्धमागधी भाषा में देशना दी थी। उस देशना में भगवान ने सर्वप्रथम लोक और अलोक के अस्तित्व का प्रतिपादन किया था। औपपातिक सूत्र में उक्त देशना का अति विस्तृत वर्णन है। वह कथानुयोग में दिया गया है और यहाँ उक्त देशना का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि मूल पाठों की दृष्टि से जैनागमों की दो वाचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

१. विस्तृत वाचना, और २. संक्षिप्त वाचना।

वाचनाचार्यों ने यत्र-तत्र 'जाव' आदि अनेक संकेत देकर विस्तृत वाचना के मूल पाठों को संक्षिप्त करके संक्षिप्त वाचना का संकलन किया था उसी संकलन पद्धति का अनुसरण करके प्रस्तुत उत्थानिका में और आगे भी इस संस्करण में दो प्रकार के 'जाव' के संकेत दिये गये हैं। कुछ कोष्ठकों के अन्तर्गत हैं और कुछ कोष्ठकों के बिना हैं। कोष्ठकों के अन्तर्गत जितने 'जाव' के संकेत हैं, वे सब प्रस्तुत संस्करण के लिए दिये गये हैं और बिना कोष्ठकों के जितने 'जाव' के संकेत हैं, वे सब प्राचीन संक्षिप्त वाचना के हैं। इस सूचना को ध्यान में रखकर ही प्रस्तुत संस्करण का स्वाध्याय करना चाहिए।

अरिहा धम्मं परिकहेइ। तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं (जाव) अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमइ, तं जहा अत्थि लोए अत्थि अलोए।

—ओव० सु० ३४

अरिहंत जो धर्म का कथन करते हैं वह उन सभी आर्यों तथा अनार्यों को (यावत्) अपनी-अपनी भाषा में परिणत हो जाता है। यथा—लोक है और अलोक है।

लोगसरूवस्स णायारो उवदेसगा य—

लोक-स्वरूप के ज्ञाता और उपदेशक—

१२ : आयतचक्खू लोगविपस्सी-लोगस्स अहोभागं जाणइ, उड्ढं भागं जाणइ, तिरियं भागं जाणइ।

—आया० सु० १, अ० २, उ० ५, सु० ९१

१२ : विशालदृष्टि लोकदर्शी लोक के अधोभाग को जानते हैं, ऊर्ध्वभाग को जानते ह और तिर्यक् भाग को जानते हैं।

१३ : दोहिं ठाणेहिं आया अहोलोगं जाणइ, पासइ, तं जहा—

१. समोहएणं चेव अप्पाणेणं आया अहोलोगं जाणइ, पासइ।

२. असमोहएणं चेव अप्पाणेणं आया अहोलोगं जाणइ, पासइ।

आहोही समोहयासमोहएणं चेव अप्पाणेणं आया अहोलोगं जाणइ, पासइ।

एवं तिरियलोगं, उड्ढलोगं, केवलकप्पं लोगं।

—ठाणं २, उ० २, सु० ८०

१३ : दो स्थानों से आत्मा अधोलोक को जानता है, देखता है, यथा—

१. आत्मा स्वयं के किये हुए समुद्घात से अधोलोक को जानता है और देखता है।

२. आत्मा स्वयं समुद्घात किये विना भी अधोलोक को जानता है और देखता है।

आत्मा अधोवर्ती समुद्घात से या नियत क्षेत्र की अवधि तक की हुई समुद्घात से अथवा समुद्घात किये बिना भी अधोलोक को जानता है, देखता है।....

इसी प्रकार तिर्यक्लोक को ऊर्ध्वलोक को या सम्पूर्ण लोक को (जानता है और देखता है)....

१४ : दोहिं ठाणेहिं आया अहोलोगं जाणइ, पासइ, तं जहा—

१. विउव्विएणं चेव अप्पाणेणं आया अहोलोगं जाणइ पासइ।

२. अविउव्विएणं चेव अप्पाणेणं आया अहोलोगं जाणइ, पासइ।

आहोही विउव्वियाविउव्विएणं चेव अप्पाणेणं आया अहोलोगं जाणइ, पासइ।

एवं तिरियलोगं, उड्ढलोगं, केवलकप्पं लोगं।

—ठाणं २, उ० २, सु० ८०

१४ : दो स्थानों से आत्मा अधोलोक को जानता है, देखता है, यथा—

१. आत्मा स्वयं के किये हुए वैक्रिय से अधोलोक को जानता है, देखता है।

२. आत्मा स्वयं वैक्रिय किये विना भी अधोलोक को जानता है, देखता है।

आत्मा अधोवर्ती वैक्रिय से या नियतक्षेत्र की अवधि तक की हुई वैक्रिय से अथवा वैक्रिय किये विना भी अधोलोक को जानता है, देखता है।

इसी प्रकार तिर्यक्लोक को ऊर्ध्वलोक को या सम्पूर्ण लोक को (जानता है, देखता है।)....

आठ कृष्ण राजियां (प्राचीन चित्र)
वर्णन देखें पृष्ठ ३३२ सूत्र ३९-४०

लोक पुरुष (प्राचीन चित्र की अनुकृति)

१५ : गाहा—लोयं विजाणंतिह केवलेणं,
पुण्णेण णाणेण समाहिजुत्ता ।
धम्मं सम्मत्तं च कहंति जेउ,
तारंति अप्पाण परं च तिण्णा ॥
—सूय० सु० २, अ० ६, उ० २, गा० ५० ।

१५ : गाथार्थ—जो समाधियुक्त (पुरुष) पूर्ण केवलज्ञान द्वारा लोक को जानते हैं और सम्यक्त्व धर्म का कथन करते हैं वे उत्तीर्ण पुरुष स्व-पर के तारक हैं ।

१६ : गाहा—लोयं अयाणित्तिह केवलेणं,
कहंति जे धम्ममजाणमाणा ।
णासंति अप्पाण परं च णट्ठा,
संसारघोरम्मि अणोरपारे ॥
—सूय० सु० २, अ० ६, उ० २, गा० ४९ ।

१६ : गाथार्थ—जो अज्ञानी केवलज्ञान द्वारा लोक को जाने बिना धर्म का कथन करते हैं, वे अपना और दूसरे का भी नाश करते हैं तथा अपार घोर संसार में परिभ्रमण करते हैं ।

१७ : गाहा—नत्थि लोए अलोए वा, नेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि लोए अलोए वा, एवं सन्नं निवेसए ॥
—सूय० सु० २, अ० ५, गा० १२ ।

१७ : गाथार्थ—लोक और अलोक नहीं हैं—ऐसी संज्ञा (धारणा) नहीं रखना चाहिए । लोक और अलोक है—ऐसी संज्ञा रखना चाहिए ।

लोग-भेया

लोक के भेद

१८ : एगे लोए ।
—ठाणं० अ० १, सु० ५ । सम० स० १, सु० ७ ।

१८ : लोक एक है ।

१९ : तिविहे लोए पण्णत्ते, तं जहा—
१. णामलोगे,
२. ठवणालोगे,
३. दव्वलोगे ।
—ठाणं० अ० ३, उ० २, सु० १५३ ।

१९ : लोक तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा—
(१) नामलोक,
(२) स्थापनालोक,
(३) द्रव्यलोक ।

२० : प०—कइविहे णं भंते ! लोए पन्नत्ते ?
उ०—गोयमा ! चउव्विहे लोए पन्नत्ते, तं जहा—
१. दव्वलोए,
२. खेत्तलोए,
३. काललोए,
४. भावलोए ।
—भग० स० ११, उ० १०, सु० २ ।

२० : प्रश्न—भगवन् ! लोक कितने प्रकार का कहा गया है ?
उत्तर—गौतम ! लोक चार प्रकार का कहा गया है, यथा—
(१) द्रव्यलोक,
(२) क्षेत्रलोक,
(३) काललोक,
(४) भावलोक ।

णामलोगे

२१ : प०—[से किं तं णामलोगे ?]

उ०—[णामलोगे] जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा [लोगत्ति नामं कीरए से त्तं णामलोगे ।[1]]

—अणु० सु० १०

नामलोक

२१ : प्रश्न—नामलोक (का स्वरूप) क्या है ?

उत्तर—नामलोक (का स्वरूप इस प्रकार) है—जिस जीव का या अजीव का, जिन जीवों का या अजीवों का तथा दोनों (जीव-अजीव) का या दोनों (जीवों-अजीवों) का "लोक" यह नाम किया जाता है – यह नामलोक (का स्वरूप) है।

ठवणालोगे

२२ : [प०—से किं तं ठवणालोगे ?]

उ०—[ठवणालोगे] जण्णं—

१. कट्ठकम्मे वा,
२. चित्तकम्मे वा,
३. पोत्थकम्मे वा,
४. लेप्पकम्मे वा,
५. गंथिमे वा,
६. वेढिमे वा,
७. पूरिमे वा,
८. संघाइमे वा,
९. अक्खे वा,
१०. वराडए वा....

(१) १०. एगो वा,
(२) १०. अणेगा वा,
(३) १०. सब्भावठवणाए वा,
(४) १०. असब्भावठवणाए वा। [लोगत्ति ठवणा ठविज्जति। से त्तं ठवणालोगे ।[2]]

—अणु० सु० ११

स्थापनालोक

२२ : प्रश्न—स्थापनालोक (का स्वरूप) क्या है ?

उत्तर—स्थापनालोक (का स्वरूप इस प्रकार) है—

१. काष्टकर्म—काष्ट पर कोर कर बनाई हुई आकृति।
२. चित्रकर्म—कागज आदि पर बनाया हुआ चित्र।
३. पुस्तकर्म—वस्त्र पर बनाई हुई आकृति।
४. लेप्यकर्म—कुछ पदार्थों के लेप से निर्मित आकृति।
५. ग्रंथिम—सूत आदि को गूँथकर बनाई गई आकृति।
६. वेढिम—वेष्टन (लपेट कर) बनाई गई आकृति।
७. पूरिम—सांचे में पूर (ढाल) कर बनाई गई आकृति।
८. संघातिम—कुछ पदार्थों के खण्डों को जोड़कर बनाई गई आकृति।
९. अक्ष—द्वीन्द्रिय जाति के एक प्रकार के प्राणियों की अस्थियों से बनाई गई आकृति।
१०. वराटक—कौडियों से बनाई गई आकृति।

(१) १०. एक आकृति।
(२) १०. अनेक आकृतियाँ।
(३) १०. सद्भाव (वास्तविक) स्थापना।
(४) १०. असद्भाव (कल्पित) स्थापना। (इन दस में) 'लोक' की स्थापना स्थापित की जाती है। यह स्थापनालोक है।

---

१. ऊपर कोष्टकों में मूल पाठ का जितना अंश है वह संकलित है और शेष मूलपाठ महावीर वि० से प्रकाशित अनुयोग द्वार सूत्रांक १०, ११ के अनुसार है।

२. स्व० पूज्य अमोलखऋषिजी महाराज अनुवादित अनुयोगद्वार की प्रति में स्थापना के चालीस भेद हैं, वे इस प्रकार हैं—
प्रथम दस भेद—काष्टकर्मादि दस पर अंकित की गई एक-एक आकृति।
द्वितीय दस भेद—काष्टकर्मादि दस पर अंकित की गई अनेक आकृतियाँ।
तृतीय दस भेद—काष्टकर्मादि दस पर अंकित सद्भाव स्थापना।
चतुर्थ दस भेद—काष्टकर्मादि दस पर अंकित असद्भाव स्थापना।

लोग-पमाणं

२३ : प० के महालए णं भंते ! लोए पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! महतिमहालए लोए पन्नत्ते,
पुरत्थिमेणं असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ,
दाहिणेणं असंखेज्जाओ (जोयणकोडाकोडीओ,)
एवं पच्चत्थिमेण वि, एवं उत्तरेण वि, एवं उड्ढं पि।

अहे असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं।[1]

—भग० स० १२, उ० ७, सु० २।

लोक-प्रमाण

२३ : प्र० भगवन् ! यह लोक कितना महान् कहा गया है ?

उ० गौतम ! यह लोक अति महान् कहा गया है,
पूर्व में असंख्य कोटाकोटी योजन का है,
दक्षिण में असंख्य (कोटाकोटी योजन का है),
इसी प्रकार पश्चिम, उत्तर और ऊपर भी (असंख्य कोटाकोटी योजन का) है।

नीचे असंख्य कोटाकोटी योजन का लंबा चौड़ा है।

२४ : प० लोए णं भंते ! के महालए पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव-समुद्दाणं जाव परिक्खेवेणं।

तेणं कालेणं तेणं समएणं छ देवा महिड्ढीया जाव महेसक्खा जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए मंदरचूलियं सव्वओ समंता सपरिक्खित्ताणं चिट्ठेज्जा।

अहे णं चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ चत्तारि बलिपिंडे गहाय जंबुद्दीवस्स दीवस्स चउसु वि दिसासु बहियाभिमुहीओ ठिच्चा ते चत्तारि बलिपिंडे जमगसमगं बहियाभिमुहे पक्खिवेज्जा।

पभू णं गोयमा ! तओ एगमेगे देवे ते चत्तारि बलिपिंडे धरणितलमसंपत्ते खिप्पामेव पडिसाहरित्तए।

तेणं गोयमा ! देवा ताए उक्किट्ठाए जाव देवगतीए एगे देवे पुरत्थाभिमुहे पयाए, एवं दाहिणाभिमुहे, एवं पच्चत्थाभिमुहे, एवं उत्तराभिमुहे, एवं उड्ढाभिमुहे एगे देवे अहोभिमुहे पयाए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं वाससहस्साउए दारए पयाए। तए णं तस्स दारगस्स अम्मा-पियरो-पहीणा भवंति नो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति।

२४ : प्र० हे भगवन् ! यह लोक कितना महान कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सब द्वीप-समुद्रों के यावत् परिधिवाला है।

उस काल उस समय में छ महर्धिक यावत् महासुख-सम्पन्न देव जम्बूद्वीप के (मध्य में रहे हुए) मेरु पर्वत पर मेरु की चूलिका (शिखर) को चारों ओर से घेरकर खड़े रहें।

नीचे चार बड़ी दिशाकुमारियाँ चार बलिपिण्डों को ग्रहण कर जम्बूद्वीप नामक द्वीप के चारों दिशाओं में बाह्याभिमुख खड़ी होकर चारों बलिपिण्डों को एकसाथ बाहर फेंके।

हे गौतम ! उन देवों में से प्रत्येक देव उन चारों बलिपिण्डों को पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही ग्रहण करने में समर्थ है।

हे गौतम ! ऐसी उत्कृष्ट यावत् दिव्य देवगतिवाले उन देवों में से एक देव पूर्वाभिमुख प्रयाण करे। इसीप्रकार एक देव दक्षिणाभिमुख, एक देव पश्चिमाभिमुख, एक देव उत्तराभिमुख, एक देव ऊर्ध्वाभिमुख और एक देव अधोमुख प्रयाण करे।

उस काल उस समय में एक हजार वर्ष की आयुवाला एक बालक जन्मा। काल क्रम से उस बालक के माता पिता का देहावसान हुआ। तब भी वे देव लोक का अन्त न पा सके।

---

१. प० के महालए णं भंते ! लोए पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! महतिमहालए (लोए पन्नत्ते) जहा बारसमसए।

तहेव जाव असंखेज्जाओ जोयण कोडाकोडीओ परिक्खेवेणं। —भग० स० १६, उ० ८, सु० १।

ऊपर अंकित भग० स० १२, उ० ७, सु० २ के अन्त में "आयाम-विक्खंभेणं" पाठ है और इस टिप्पण में अंकित भग० स० १६, उ० ८, सु० १ के अन्त में "परिक्खेवेणं" पाठ है।

तए णं तस्स दारगस्स आउए पहीणे भवति, णो चेव णं जाव संपाउणंति ।

तए णं तस्स दारगस्स अट्ठि मिजा पहीणा भवंति, णो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति ।

तए णं तस्स दारगस्स आसत्तमे वि कुलवंसे पहीणे भवति, णो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति ।

तए णं तस्स दारगस्स नाम-गोत्ते वि पहीणे भवति, नो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति ।

प० तेसि णं भंते ! देवाणं किं गए बहुए, अगए बहुए ?

उ० गोयमा ! गए बहुए, नो अगए बहुए, गयाओ से अगए असंखेज्जाइभागे, अगयाओ से गए असंखेज्जगुणे ।

लोए णं गोयमा ! एमहालए पन्नत्ते ।

—भग० स० ११, उ० १०, सु० २६ ।

उस बालक की आयु क्षीण हुई—फिर भी यावत् वे देव लोक का अन्त न पा सके ।

उस बालक की अस्थि, मज्जा विनष्ट हो गई—फिर भी वे देव लोक का अन्त न पा सके ।

उस बालक की सात पीढ़ियों के बाद उसका कुल-वंश नष्ट हो गया—फिर भी वे देव लोक का अन्त न पा सके ।

उस बालक के नाम-गोत्र भी लुप्त हो गये—फिर भी वे देव लोक का अन्त न पा सके ।

प्र० हे भगवन् ! उन देवों का उल्लंघित क्षेत्र अधिक है या अनुल्लंघित क्षेत्र अधिक है ?

उ० हे गौतम ! उल्लंघित क्षेत्र अधिक है, अनुल्लंघित क्षेत्र कम । अनुल्लंघित क्षेत्र उल्लंघित क्षेत्र का असंख्यातवां भाग है और उल्लंघित क्षेत्र अनुल्लंघित क्षेत्र से असंख्यातगुण है ।

हे गौतम ! लोक इतना महान् कहा गया है ।

लोगस्स आयाम-मज्झभागो

२५ : प० कहि णं भंते ! लोगस्स आयाम-मज्झे पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए ओवासंतरस्स असंखेज्जति भागं ओगाहित्ता-एत्थ णं लोगस्स आयाम-मज्झे पण्णत्ते ।

—भग० स० १३, उ० ४, सु० १२ ।

लोक का आयाम-मध्य भाग

२५ : प्र० हे भगवन् ! लोक का आयाम-मध्य (लम्बाई के बीच का भाग) कहाँ कहागया है ?

उ० हे गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अवकाशान्तर का असंख्यातवाँ भाग उल्लंघन करने पर— लोक का आयाम-मध्य कहा गया है ।

लोगस्स समभागो, सखित्तभागो य

२६ : प० [१] कहि णं भंते ! लोए बहुसमे ?

[२] कहि णं भंते ! लोए सव्वविग्गहिए पण्णत्ते ?

उ० [१] गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्ठिलेसु खुड्डग-पयरेसु एत्थ णं लोए बहुसमे ।

[२] एत्थ णं लोए सव्वविग्गहिए पण्णत्ते ।

—भग० स० १३, उ० ४, सु० ६७ ।

लोक का समभाग और संक्षिप्त भाग

२६ : प्र० [१] भगवन् ! लोक का अधिक समभाग और

[२] लोक का सर्वसंक्षिप्तभाग कहाँ कहागया है ?

उ० [१] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर से नीचे वाले क्षुद्र (लघु) प्रतरों में लोक का अधिक समभाग है और

[२] यहीं पर लोक का सर्व संक्षिप्तभाग कहागया है ।

लोगस्स वक्कभागो

२७ : प० कहि णं भंते ! विग्गहविग्गहिए लोए पन्नत्ते ?

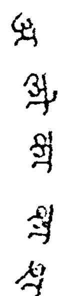
उ० गोयमा ! विग्गहकंडए-एत्थ णं विग्गह-विग्गहिएलोए पन्नत्ते ।

—भग० स० १३, उ० ४, सु० ६८ ।

लोक का वक्रभाग

२७ : प्र० हे भगवन् ! लोक का वक्रभाग कहाँ कहागया है ?

उ० हे गौतम ! जहाँ विग्रह-कंडक है—वहीं पर लोक का वक्रभाग कहागया है ।


सिद्ध शिला
पंच अनुत्तर
नव
ग्रैवेयक
आरण
अच्युत
आनत
प्राणत
माहेन्द्र
तिर्यक लोक
अधो लोक
बालुका प्रभा
पंक प्रभा
धूम प्रभा
महातम प्रभा

लो क पु रु ष

तए णं तस्स दारगस्स आउए पहीणे भवति, णो चेव णं जाव संपाउणंति ।

तए णं तस्स दारगस्स अट्ठि मिजा पहीणा भवंति, णो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति ।

तए णं तस्स दारगस्स आसत्तमे वि कुलवंसे पहीणे भवति, णो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति ।

तए णं तस्स दारगस्स नाम-गोत्ते वि पहीणे भवति, नो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति ।

प० तेसि णं भंते ! देवाणं किं गए बहुए, अगए बहुए ?

उ० गोयमा ! गए बहुए, नो अगए बहुए, गयाओ से अगए असंखेज्जाइभागे, अगयाओ से गए असंखेज्जगुणे ।

लोए णं गोयमा ! एमहालए पन्नत्ते ।

—भग० स० ११, उ० १०, सु० २६ ।

उस बालक की आयु क्षीण हुई—फिर भी यावत् वे देव लोक का अन्त न पा सके ।

उस बालक की अस्थि, मज्जा विनष्ट हो गई—फिर भी वे देव लोक का अन्त न पा सके ।

उस बालक की सात पीढ़ियों के बाद उसका कुल-वंश नष्ट हो गया—फिर भी वे देव लोक का अन्त न पा सके ।

उस बालक के नाम-गोत्र भी लुप्त हो गये—फिर भी वे देव लोक का अन्त न पा सके ।

प्र० हे भगवन् ! उन देवों का उल्लंघित क्षेत्र अधिक है या अनुल्लंघित क्षेत्र अधिक है ?

उ० हे गौतम ! उल्लंघित क्षेत्र अधिक है, अनुल्लंघित क्षेत्र कम । अनुल्लंघित क्षेत्र उल्लंघित क्षेत्र का असंख्यातवाँ भाग है और उल्लंघित क्षेत्र अनुल्लंघित क्षेत्र से असंख्यातगुण है ।

हे गौतम ! लोक इतना महान् कहा गया है ।

लोगस्स आयाम-मज्झभागो

२५ : प० कहि णं भंते ! लोगस्स आयाम-मज्झे पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए ओवासंतरस्स असंखेज्जति भागं ओगाहित्ता—एत्थ णं लोगस्स आयाम-मज्झे पण्णत्ते ।

—भग० स० १३, उ० ४, सु० १२ ।

लोक का आयाम-मध्य भाग

२५ : प्र० हे भगवन् ! लोक का आयाम-मध्य (लम्बाई के बीच का भाग) कहाँ कहागया है ?

उ० हे गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अवकाशान्तर का असंख्यातवाँ भाग उल्लंघन करने पर—लोक का आयाम-मध्य कहा गया है ।

लोगस्स समभागो, संखित्तभागो य

२६ : प० [१] कहि णं भंते ! लोए बहुसमे ?

[२] कहि णं भंते ! लोए सव्वविग्गहिए पण्णत्ते ?

उ० [१] गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्ठिलेसु खुड्डग-पयरेसु एत्थ णं लोए बहुसमे ।

[२] एत्थ णं लोए सव्वविग्गहिए पण्णत्ते ।

—भग० स० १३, उ० ४, सु० ६७ ।

लोक का समभाग और संक्षिप्त भाग

२६ : प्र० [१] भगवन् ! लोक का अधिक समभाग और

[२] लोक का सर्वसंक्षिप्तभाग कहाँ कहागया है ?

उ० [१] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर से नीचे वाले क्षुद्र (लघु) प्रतरों में लोक का अधिक समभाग है और

[२] यहीं पर लोक का सर्व संक्षिप्तभाग कहागया है ।

लोगस्स वक्कभागो

२७ : प० कहि णं भंते ! विग्गहविग्गहिए लोए पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! विग्गहकंडए-एत्थ णं विग्गह-विग्गहिएलोए पन्नत्ते ।

—भग० स० १३, उ० ४, सु० ६८ ।

लोक का वक्रभाग

२७ : प्र० हे भगवन् ! लोक का वक्रभाग कहाँ कहागया है ?

उ० हे गौतम ! जहाँ विग्रह-कंडक है—वहीं पर लोक का वक्रभाग कहागया है ।

सिद्ध शिला
पंच अनुत्तर
नव ग्रैवेयक
आरण अच्युत
आनत प्राणत
सहस्त्रार
ऊर्ध्वलोक
ब्रह्म
माहेन्द्र
तिर्यग्लोक
खर भाग
पंक भाग
अधो लोक
रत्न प्रभा
शर्करा प्रभा
बालुका प्रभा
पंक प्रभा
धूम प्रभा
तम. प्रभा
महातम प्रभा

लोक पुरुष

लोग-संठाणं

२८ : प० किं संठिते णं भंते ! लोए पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! सुपतिट्ठगसंठिते लोए पण्णत्ते। हेट्ठा वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिते।

तंसि च णं सासयंसि लोगंसि हेट्ठा वित्थिण्णंसि, मज्झे संखित्तंसि, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठितंसि उप्पण्णनाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली जीवे वि जाणति, पासति, अजीवे वि जाणति पासति। तओ पच्छा सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेति।[1]

—भग० स० ७, उ० २, सु० ५।

लोक का संस्थान

२८ : प्र० हे भगवन् ! इस लोक का संस्थान (आकार) कैसा कहागया है ?

उ० हे गौतम ! इस लोक का संस्थान सुप्रतिष्ठक (सिकोरा) के जैसा कहागया है—नीचे से विस्तीर्ण, मध्यमें संक्षिप्त और ऊपर से ऊर्ध्व मृदंग जैसे आकार का है।

उक्त शाश्वत लोक में—जो नीचे से विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर से ऊर्ध्व मृदंग जैसे आकार का है—उसमें उत्पन्न हुए ज्ञान-दर्शन के धारक अर्हत् जिन केवली जीव को भी जानते देखते हैं और अजीव को भी जानते देखते हैं। वे बाद में सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं।

अट्ठविहा लोगट्ठिई वत्थिउदाहरणं य

२९ : भंते त्ति भगवं गोतमे समणं भगवं महावीरं जाव एवं वयासी।

प० कतिविहा णं भंते ! लोयट्ठिती पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! अट्ठविहा लोयट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—

(१) आगासपइट्ठिए वाए,
(२) वातपइट्ठिए उदही,
(३) उदहिपतिट्ठिता पुढवी,[2]
(४) पुढविपतिट्ठिता तस-थावरा पाणा,[3]
(५) अजीवा जीवपतिट्ठिता,
(६) जीवा कम्मपतिट्ठिता,[4]
(७) अजीवा जीवसंगहिता,
(८) जीवा कम्मसंगहिता।[5]

प० से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-अट्ठविहा (लोगट्ठिई पण्णत्ता, तं जहा—१. आगासपइट्ठिए वाए) जाव जीवा कम्मसंगहिता ?

आठ प्रकार की लोकस्थिति और वस्ति का उदाहरण

२९ : भंते ! भगवन् गौतम श्रमण भगवान महावीर को यावत् इस प्रकार बोले—

प्र० भगवन् ! लोकस्थिति कितने प्रकार की कही गई है ?

उ० गौतम ! लोकस्थिति आठ प्रकार की कहीगई है, यथा—

१. आकाश-प्रतिष्ठित वायु,
२. वायु-प्रतिष्ठित उदधि,
३. उदधि-प्रतिष्ठित पृथ्वी,
४. पृथ्वी-प्रतिष्ठित त्रस-स्थावर प्राणी,
५. जीव-प्रतिष्ठित अजीव, (अजीव जीव-प्रतिष्ठित)
६. कर्म-प्रतिष्ठित जीव, (जीव कर्म-प्रतिष्ठित)
७. जीव-संग्रहित अजीव (अजीव जीव-संग्रहित)
८. कर्म-संग्रहित जीव, (जीव कर्म-संग्रहित)

प्र० भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है कि आठ प्रकार की (लोकस्थिति कही गई है) आकाश-प्रतिष्ठित वायु यावत् जीव कर्म संग्रहित है ?

---

१. क—महा० वि० द्वारा प्रकाशित प्रति में इस सूत्र के पाठ में जहां-जहां जाव है उनकी पूर्ति उसी प्रति के स० ५, उ० ६, सू० १८ [२] के अनुसार यहां की गई है।
ख—तुलना—भग० स० ११, उ० १०, सू० १०।
ग—तुलना—भग० स० १३, उ० ४, सू० ६६।
२. ठाणं ३ उ० २ सु० १६३।
३. ठाणं ४ उ० २ सु० २८६।
४. ठाणं ६ सु० ४९८।
५. ठाणं ८ सु० ६००।

उ० गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे—वत्थिमाडोवेति, वत्थिमाडोवित्ता उप्पिं सितं बंधति, बंधित्ता मज्झे णं गंठिं बंधति, मज्झे गंठिं बंधित्ता उवरिल्लं गंठिं मुयति, मुइत्ता उवरिल्लं देसं वामेति, उवरिल्लं देसं वामेत्ता, उवरिल्लं देसं आउयायस्स पूरेति, पूरित्ता उप्पिं सितं बंधति, बंधित्ता मज्झिल्लं गंठिं मुयति।

प० से नूणं गोयमा ! से आउयाए तस्स वाउयायस्स उप्पिं उवरितले चिट्ठति ?

उ० हंता चिट्ठति से तेणट्ठेणं जाव जीवा कम्मसंगहिता।

से जहा वा केइ पुरिसे वत्थिमाडोवेति, आडोवित्ता कडीए बंधति, बंधित्ता, अत्थाहमतारमपोरुसियंसि उदगंसि ओगाहेज्जा।

प० से नूणं गोयमा ! से पुरिसे तस्स आउयायस्स उवरिमतले चिट्ठति ?

उ० हंता, चिट्ठति। एवं वा अट्ठविहा लोयट्ठिती पण्णत्ता जाव जीवा कम्मसंगहिता।

—भग० स० १; उ० ६, सु० २५-१; २, ३।

उ० गौतम ! जैसे कोई पुरुष वस्ति (मशक) को (वायु से) फुलाता है, वस्ति को फुलाकर ऊपर से (वस्ति के मुंह को) दृढ़ बाँध देता है, बाँधकर मध्य में गाँठ बाँध देता है। मध्य में गाँठ बाँधकर ऊपर की गाँठ खोल देता है, खोलकर ऊपर के भाग को मोड़ता है, ऊपर के भाग को मोड़कर ऊपर के भाग में पानी भरता है, भरकर ऊपर (वस्ति के मुंह को) दृढ़ बाँधता है, बाँधकर बीच की गाँठ खोल देता है।

प्र० गौतम ! क्या यह निश्चित है कि वह पानी उस वायु के ऊपर (अर्थात्) ऊपर के तल पर ही रहता है ?

उ० हाँ (भगवन् !) रहता है। इसलिए यावत् जीव कर्म संग्रहित हैं।

अथवा—जैसे कोई पुरुष वस्ति (मशक) को (वायु से) फुलाता है, फुलाकर कमर के बाँधता है, बाँधकर अथाह दुस्तर पुरुष प्रमाण से अधिक गहरे पानी में प्रवेश करता है।

प्र० गौतम ! क्या यह निश्चित है कि वह पुरुष उस पानी के ऊपर के तलपर (ही) रहता है ?

उ० हाँ (भगवन् !) रहता है। इस प्रकार की आठ प्रकार की लोकस्थिति कही गई है यावत् जीव कर्म-संग्रहित है।

दसविहा लोगट्ठिई

३० : दसविहा लोगट्ठिई पण्णत्ता, तं जहा—

(१) जण्णं जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता तत्थेव तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायंति—एवं पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता।

(२) जण्णं जीवाणं सया समियं पावे कम्मे कज्जइ—एवं पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता।

(३) जण्णं जीवाणं सया समियं मोहणिज्जे पावे कम्मे कज्जइ—एवं पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता।

(४) ण एवं भूयं वा, भव्वं वा, भविस्सइ वा जं जीवा अजीवा भविस्संति, अजीवा वा जीवा भविस्संति—एवं पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता।

(५) ण एवं भूयं वा, भव्वं वा भविस्सई वा जं तसापाणा वोच्छिज्जिस्संति थावरापाणा भविस्संति, थावरापाणा वोच्छिज्जिस्संति तसापाणा भविस्संति—एवं पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता।

दस प्रकार की लोकस्थिति

३० : दस प्रकार की लोकस्थिति कहीगई है, यथा—

(१) जीव मर-मरकर वहीं-वहीं (लोक के एक देश में, गति में, जाति में, योनि में) बार-बार उत्पन्न होते रहते हैं—यह भी एक प्रकार की लोकस्थिति कही गई है।

(२) जीव (संसारी जीव) सदा निरन्तर पाप कर्म बाँधते रहते हैं—यह भी एक प्रकार की लोकस्थिति कही गई है।

(३) जीव (संसारी जीव) सदा निरन्तर मोहनीय पापकर्म बाँधते रहते हैं—यह भी एक प्रकार की लोकस्थिति कही गई है।

(४) "जीव का अजीव होना या अजीव का जीव होना"—न ऐसा हुआ है, न हो रहा है और न कभी होगा—यह भी एक प्रकार की लोकस्थिति कही गई है।

(५) "त्रस प्राणियों का विच्छेद और स्थावर प्राणियों का होना—या स्थावर प्राणियों का विच्छेद और त्रस प्राणियों का होना"—न ऐसा हुआ है, न हो रहा है और न कभी होगा—यह भी एक प्रकार की लोकस्थिति कही गई है।

(६) ण एवं भूयं वा, भव्वं वा, भविस्सइ वा जं लोगे अलोगे भविस्सइ, अलोगे वा लोगे भविस्सइ—एवं पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता ।

(७) ण एवं भूयं वा, भव्वं वा, भविस्सइ वा जं लोगे अलोगे पविस्सइ, अलोगे वा लोगे पविस्सइ—एवं पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता ।

(८) जाव ताव लोगे ताव ताव जीवा । जाव ताव जीवा ताव ताव लोगे—एवं पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता ।

(९) जाव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गइपरियाए ताव ताव लोए, जाव ताव लोए ताव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गइपरियाए—एवं पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता ।

(१०) सव्वेसु वि णं लोगंतेसु अबद्धपासपुट्ठा पोग्गला लुक्खत्ताए कज्जंति जे णं जीवा य पोग्गला य नो संचायंति बहिया लोगंतागमणाए—एवं पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता ।

—ठाणं १० सु० ७०४ ।

(६) "लोक का अलोक होना या अलोक का लोक होना"—न ऐसा हुआ है, न हो रहा है और न कभी होगा—यह भी एक प्रकार की लोकस्थिति कही गई है ।

(७) "लोक का अलोक में प्रवेश करना या अलोक का लोक में प्रवेश करना"—न ऐसा हुआ है, न हो रहा है और न कभी होगा—यह भी एक प्रकार की लोकस्थिति कही गई है ।

(८) जहाँ-जहाँ लोक है वहाँ-वहाँ जीव हैं या जहाँ-जहाँ जीव हैं वहाँ-वहाँ लोक है—यह भी एक प्रकार की लोकस्थिति कही गई है ।

(९) जहाँ-जहाँ जीव और पुद्‌गलों की गति पर्याय है वहाँ-वहाँ लोक है तथा जहाँ-जहाँ लोक है वहाँ-वहाँ जीव और पुद्‌गलों की गतिपर्याय है—यह भी एक प्रकार की लोकस्थिति कही गई है ।

(१०) सब लोकान्तों में पुद्‌गल परस्पर बद्ध नहीं रहते हैं और न किसी ओर से परस्पर स्पृष्ट रहते हैं क्योंकि वहाँ वे रूखे हो जाते हैं अतएव जीव और पुद्‌गल लोकान्त के बाहर नहीं जा सकते हैं—यह भी एक प्रकार की लोकस्थिति कही गई है ।

लोगविसये जमालिस्स भगवंत-कय-समाहाणं

३१ : प०....सासए लोए जमाली ? असासए लोए जमाली ?....

—भग० स० ९, उ० ३३, सु० ९९ ।

उ०...सासए लोए जमाली ! जं णं कयावि णासि ण, कयावि ण भवति ण कयावि ण भविस्सइ, भुविं च भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, णितिए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए णिच्चे चेव ।

असासए लोए जमाली ! जओ ओसप्पिणी भवित्ता, उस्सप्पिणी भवइ, उस्सप्पिणी भवित्ता ओसप्पिणी भवइ....[1]

—भग० स० ९, उ० ३३ सु० १०१ ।

लोक के विषय में भगवान द्वारा जमालि का समाधान

३१ : प्र० ....जमाली ! लोक शास्वत है ? या अशास्वत है ?....

उ० ....जमाली ! लोक शास्वत है—क्योंकि लोक कभी नहीं था, नहीं है या नहीं रहेगा—इस प्रकार नहीं है किन्तु लोक था, है और रहेगा । लोक ध्रुव, नियत, शास्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित व नित्य है ।

जमाली ! लोक अशास्वत भी है—क्योंकि अवसर्पिणी काल होकर उत्सर्पिणी काल होता है । तथा उत्सर्पिणी काल होकर अवसर्पिणी काल होता है ।....

लोगविसये खंधग-संवादो

३२ : खंदया ! ति समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायणसगोत्तं एवं वयासी-से नूणं तुमं खंदया ! सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए :—

लोक के विषय में स्कन्धक-संवाद

३२ : स्कन्दक ! श्रमण भगवान महावीर कात्यायन-गोत्री स्कन्दक को इस प्रकार बोले—श्रावस्ती नगरी में पिंगल निर्ग्रन्थ जो वैशाली का श्रावक था, उसने स्कन्दक ! तुझे आक्षेप (अथवा) पूर्वक यह पूछा—

१. इस सूत्रपाठ का पूर्वापर अंश धर्मकथानुयोग जमालि-प्रकरण में देखें ।

मागहा ! किं सअंते लोए, अणंते लोए ? एवं तं चेव जाव जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वमागए।

मागध ! क्या यह लोक सान्त है या अनन्त ?

इस प्रकार समस्त प्रश्न यावत् इसलिए उसी क्षण शीघ्र चलकर तू मेरे पास आया है ?

प० से नूणं खंदया ! अयमट्ठे समट्ठे ?

प्र० हे स्कन्दक ! क्या मेरा यह कथन यथार्थ है ?

उ० हंता अत्थि।

उ० हाँ—यथार्थ है।

जे वि य ते खंदया ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

स्कन्दक ! जो यह तेरा आत्मिक चिन्तित-प्रार्थित-मनोगत संकल्प हुआ है।

प० किं सअंते लोए अणंते लोए ?

प्र० क्या यह लोक सान्त है या अनन्त है ?

उ० तस्स वि य णं अयमट्ठे-- एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहे लोए पण्णत्ते, तं जहा—(१) दव्वओ, (२) खेत्तओ, (३) कालओ, (४) भावओ ।[1]

उ० उसका समाधान यह है—स्कन्दक ! मैंने लोक चार प्रकार का कहा है, यथा—(१) द्रव्य से, (२) क्षेत्र से, (३) काल से, (४) भाव से।

(१) दव्वओ णं एगे लोए सअंते,

(१) द्रव्य से—यह लोक एक है और सान्त है।

(२) खेत्तओ णं लोए असंखेज्जाओ, जोयणकोडाकोडीओ, आयाम-विक्खंभेणं, असंखेज्जाओ जोयण कोडाकोडीओ परिक्खेवेणं पण्णत्ते, अत्थि पुण सेअंते।

(२) क्षेत्र से—यह लोक असंख्य कोटाकोटी योजन का लम्बा चौड़ा है, असंख्य कोटाकोटी योजन की उसकी परिधि कही है और सान्त है।

(३) कालओ णं लोए न कयावि न आसि, न कयावि न भवति, न कयावि न भविस्सइ। भुविं च, भवति य, भविस्सइ य, धुवे णियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे। नत्थि पुण से अंते।

(३) काल से—यह लोक कभी नहीं था—ऐसा नहीं है। कभी नहीं है—ऐसा नहीं है। कभी नहीं रहेगा—ऐसा भी नहीं है। यह लोक था, है और रहेगा। यह ध्रुव है, नियत है, शास्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है, नित्य है और इसका अन्त नहीं है। (अर्थात् यह लोक काल से अनन्त है।)

(४) भावओ णं लोए अणंता वण्णपज्जवा, गंधपज्जवा, रसपज्जवा, फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा अणंता गरुय-लहुयपज्जवा, अणंता अगरुय-लहुयपज्जवा नत्थि पुण से अंते।

(४) भाव से—लोक में अनन्त वर्ण-पर्यव हैं, गंध-पर्यव हैं, रस-पर्यव हैं, स्पर्श-पर्यव हैं, अनंत संस्थान-पर्यव हैं। अनन्त गुरु-लघु पर्यव हैं, अनन्त अगुरु-लघु पर्यव हैं। और इसका अन्त नहीं हैं। (अर्थात् यह लोक भाव से अनन्त हैं।)

से त्तं खंदगा ! दव्वओ लोए सअंते, खेत्तओ लोए सअंते, कालओ लोए अणंते भावओ लोए अणंते।

—भग० स० २, उ० १, सु० २३, २४-१।

स्कन्दक ! द्रव्य से यह लोक सान्त है, क्षेत्र से यह लोक सान्त है, काल से यह लोक अनन्त है, भाव से यह लोक अनन्त है।

लोगस्स एगंत सासयत्तासासयत्तणिसेहो

लोक का एकांत शाश्वतत्व और अशाश्वत का निषेध

३३ : गाहाओ—

अणादीयं परिन्नाय, अणवदग्गेति वा पुणो।
सासयमसासए यावि इइ दिट्ठिं न धारए॥

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो न विज्जइ।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए॥

—सूय० सु० २, अ० ५, गा० २-३।

३३ : गाथार्थ—

'लोक को अनादि और अनन्त जानकर'—'वह एकान्त शाश्वत है या एकान्त अशाश्वत है'—ऐसी दृष्टि धारण न करे।

इन दोनों एकान्तस्थानों से व्यवहार नहीं होता। इन दोनों स्थानों को स्वीकार करने को अनाचार जानना चाहिए।

१. भग० स० ११, उ० १०, सु० २।

लोयविसए अन्नतित्थियाणं पवादा—

३४ : .. अदुवा वायाओ विउंजंति, तं जहा—

अत्थि लोए, णत्थि लोए,

धुवे लोए, अधुवे लोए,

साइए लोए, अणाइए लोए,

सपज्जवसिए लोए, अपज्जवसिए लोए ...।

—आया० सु० १, अ० ८ उ० १, सु० २००।

लोक के सम्बन्ध में अन्यतीर्थिकों की मान्यतायें—

३४ : अथवा—(वे अन्यतीर्थिक) अनेक प्रकार के वचन कहते हैं—

यथा—लोक एकान्ततः है, लोक एकान्ततः नहीं है,

लोक ध्रुव ही है, लोक अध्रुव ही है,

लोक सादि ही है, लोक अनादि ही है,

लोक सान्त ही है, लोक अनन्त ही है।

लोगविसये अण्णउत्थिय-मय पडिसेहो—

३५ : गाहाओ—

इणमन्नं तु अन्नाणं, इहमेगेसिमाहियं।
देव उत्ते अयं लोए, 'बंभउत्ते' त्ति आवरे॥

ईसरेण कडे लोए, 'पहाणाइ' तहावरे।
जीवाऽजीव-समाउत्ते, सुह-दुक्ख समन्निए॥

सयंभुणा कडे लोए, इति वुत्तं महेसिणा।
मारेण संथुया माया, तेण लोए असासए॥

माहणा समणा एगे, आह अंडकडे जगे।
असो तत्तमकासी य, अयाणंता मुसं वए॥

सएहिं परियाएहिं, लोयं बूया कडे त्ति य।
तत्तं ते ण विजाणंति, ण विणासी कयाइ वि॥

—सूय० सु० १, अ० १, उ० ३, गा० ५-९।

लोक के विषय में अन्यतीर्थिकों के मतों का निषेध—

३५ : गाथार्थ—

एक अज्ञान यह भी है—कोई कहते हैं—यह लोक किसी देवता ने बनाया है, दूसरे कहते हैं—यह लोक ब्रह्मा ने बनाया है।

कुछ ईश्वर-कर्तृत्ववादी कहते हैं—जीव और अजीव से तथा सुख और दुःख से युक्त यह लोक ईश्वर ने बनाया है। तथा दूसरे (सांख्यवादी)कहते हैं—यह लोक प्रधान (प्रकृति) आदि कृत है।

किसी महर्षि ने कहा है—यह लोक स्वयंभू (विष्णु) ने बनाया है। मार (यम) ने माया की रचना की है अतः यह लोक अनित्य है।

कोई श्रमण ब्राह्मण कहते हैं—यह जगत् अण्डे से बना है। तथा ब्रह्मा ने तत्व की रचना की है—इस प्रकार वे लोग अज्ञानवश मिथ्या भाषण करते हैं।

उक्तवादी अपने-अपने अभिप्राय (तर्क) से लोक को कृत—बना हुआ कहते हैं, वे तत्व (वस्तु-स्वरूप) को नहीं जानते हैं। वस्तुतः यह लोक कभी विनष्ट नहीं होता।

लोगे-चत्तारि समाणाणि—

३६ : चत्तारि लोगे समा सपक्खिं सपडिदिसिं पण्णत्ता, तं जहा—

(१) अपइट्ठाणे णरए,
(२) जंबुद्दीवे दीवे,
(३) पालए जाणविमाणे[1],
(४) सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे।

—[illegible]

लोक में चार समान हैं—

३६ : लोक में (सदृश परिमाणवाले) चार स्थान समान लाख योजन [illegible] (बाजू और प्रतिदिशा में) कहे गये हैं, यथा—

(१) अप्रतिष्ठान नामक नरक,
(२) जम्बूद्वीप नामक द्वीप,
(३) पालक यानविमान,
(४) सर्वार्थसिद्ध महाविमान।

३७ : चत्तारि लोगे समा सपक्खिं सपडिदिसिं पण्णत्ता, तं जहा—

(१) सीमंतए णरए,

३७ : [illegible]

१ [illegible]

(२) समयक्खेत्ते,
(३) उडुविमाणे,[1]
(४) ईसिपब्भारा पुढवी ।
—ठाणं ४, उ० ३, सु० ३२८ ।

(२) समय क्षेत्र,
(३) उडुविमान,
(४) ईषत्प्राग्भारा पृथिवी ।

लोगुज्जोय-निमित्ताणि—

३८ : चउहिं ठाणेहिं लोउज्जोए सिया, तं जहा—
(१) अरिहंतेहिं जायमाणेहिं,
(२) अरिहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
(३) अरिहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,[2]
(४) अरिहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु ।
—ठाणं ४, उ० ३, सु० ३२४ ।

लोक में उद्योत के कारण—

३८ : चार कारणों से लोक में उद्योत होता है, यथा—
(१) अर्हन्तों का जन्म होने पर,
(२) अर्हन्तों की प्रव्रज्या होने पर,
(३) अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने के महोत्सवों में,
(४) अर्हन्तों के निर्वाण महोत्सवों में ।

लोगंधयार-निमित्ताणि—

३९ : चउहिं ठाणेहिं लोगंधयारे सिया, तं जहा—
(१) अरिहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं,
(२) अरिहंत-पण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे,
(३) पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे,[3]
(४) जायतेए वोच्छिज्जमाणे ।
—ठाणं ४, उ० ३, सु० ३२४ ।

लोक में अंधकार के कारण—

३९ : चार कारणों से लोक में अन्धकार होता है, यथा—
(१) अर्हन्तों का व्युच्छेद होने पर,
(२) अर्हत्प्रणीत-धर्म का व्युच्छेद होने पर,
(३) पूर्वगत-ज्ञान का व्युच्छेद होने पर,
(४) अग्नि का व्युच्छेद होने पर ।

दव्वलोगो

द्रव्यलोक

जीवाजीवमयोलोगो—

४० : प० के अयं लोए ?
उ० (१) जीवच्चेव, (२) अजीवच्चेव ।[4]
—ठाणं २, उ० ४, सु० १०३ ।

जीव-अजीवमय लोक—

४० : प्र० यह लोक कैसा है ?
उ० जीवमय है और अजीवमय है ।

लोगे दुविहा पयत्था—

४१ : जदत्थि णं लोगे तं सव्वं दुप्पडोआरं. तं जहा—
जीवच्चेव, अजीवच्चेव । तसे चेव, थावरे चेव ।
सजोणियच्चेव, अजोणियच्चेव, साउयच्चेव, अणाउयच्चेव ।
सइंदियच्चेव, अणिंदियच्चेव । सवेयगा चेव, अवेयगा चेव ।
सरूवि चेव, अरूवि चेव । सपोग्गला चेव, अपोग्गला चेव ।
संसारसमावन्नगा चेव, असंसारसमावन्नगा चेव ।
सासया चेव, असासया चेव ।
—ठाणं २, उ० १, सु० ५७ ।

लोक में द्विविध पदार्थ—

४१ : लोक में जो कुछ हैं वे सब दो प्रकार के हैं, यथा—
जीव, अजीव, त्रस, स्थावर,
सयोनिक, अयोनिक, सायुष्क, अनायुष्क,
सेन्द्रिय, अनेन्द्रिय, सवेदक, अवेदक,
रूपि, अरूपि, सपुद्गल, अपुद्गल,
संसार-समापन्नक, असंसार-समापन्नक,
शाश्वत, अशाश्वत ।

---

१. ठाणं० ३, उ० १, सु० १४८ ।
२. ठाणं० ३, उ० १, सु० १३४ ।
३. ठाणं० ३, उ० १, सु० १३४ ।
४. तुलना—जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए । —उत्त० अ० ३६, गा० २ ।

८२ : आगासे चेव, नोआगासे चेव।
धम्मे चेव, अधम्मे चेव।
—ठाणं २, उ० १, सु० ५८।

८२ : आकाश, नो आकाश।
धर्म, अधर्म।

८३ : बंधे चेव, मोक्खे चेव। पुन्ने चेव, पावे चेव।
आसवे चेव, संवरे चेव। वेयणा चेव, णिज्जरा चेव।
—ठाण २, उ० १, सु० ५६।

८३ : बंध, मोक्ष। पुन्य, पाप।
आश्रव, संवर। वेदना, निर्जरा।

लोगे फुसणा—

८४ : प० (१) लोगे णं भंते! किणा फुडे?
(२) कइहिं वा काएहिं फुडे? (जाव)
(३-८) अद्धासमए णं फुडे?
उ० (१-८) जहा आगासथिग्गले।[1]
—पण्ण० प० १५, उ० १, सु० १००८।

लोक में स्पर्शना

८४ : प्र० [१] हे भगवन्! लोक किससे स्पृष्ट है?
[२] कितनी कायों से स्पृष्ट है? (यावत्)
[३-८] अद्धासमय से स्पृष्ट है?
उ० [१] आकाश थिग्गल जैसा वर्णन यहाँ कहना चाहिए।

८५ : चउहिं अत्थिकाएहिं लोए फुडे पण्णत्ते, तं जहा—
(१) धम्मत्थिकाएणं,
(२) अधम्मत्थिकाएणं,
(३) जीवत्थिकाएणं,
(४) पुग्गलत्थिकाएणं।
—ठाण ४, उ० ३, सु० ३३४।

८५ : चार अस्तिकायों से यह लोक स्पृष्ट कहा गया है, यथा—
(१) धर्मास्तिकाय से,
(२) अधर्मास्तिकाय से,
(३) जीवास्तिकाय से,
(४) पुद्गलास्तिकाय से।

८६ : चउहिं बादरकाएहिं उववज्जमाणेहिं लोगे फुडे पण्णत्ते, तं जहा—
(१) पुढविकाइएहिं,
(२) आउकाइएहिं,
(३) वाउकाइएहिं,
(४) वणस्सइकाइएहिं।
—ठाण ४, उ० ३, सु० ३३४।

८६ : उत्पद्यमान चार बादरकायों से यह लोक स्पृष्ट कहा गया है, यथा—
(१) पृथ्वीकायिकों से,
(२) अप्कायिकों से,
(३) वायुकायिकों से
(४) वनस्पतिकायिकों से।

---

१. पण्ण० पद १५, उ० १, सु० १००२ यहाँ पूरा उद्धृत किया है।
प० [१] आगासथिग्गले णं भंते! किणा फुडे? [२] कइहिं वा काएहिं फुडे? [३] किं धम्मत्थिकाएणं फुडे? [४] किं [illegible] फुडे? [५] [illegible] फुडे? [६] एवं अधम्मत्थिकाएणं, आगासत्थिकाएणं फुडे? [७] एएणं भेदेणं जाव किं पुढविकाइएणं फुडे जाव तसकाएणं फुडे? [८] अद्धासमएणं फुडे?
उ० [१] [illegible] फुडे [२] [illegible] फुडे [३] [illegible] फुडे, [४] एवं अधम्मत्थिकाएणं वि [illegible] फुडे [illegible] फुडे जाव [illegible] फुडे [illegible] अद्धासमएणं देसे फुडे देसे [illegible]
इस सूत्र में प्रश्न आठ हैं किन्तु उत्तर सात प्रश्नों का ही है क्योंकि द्वितीय प्रश्न का उत्तर नहीं दिया गया है।
प्रश्न की संक्षिप्त वाचना के अनुसार उत्तर की संक्षिप्त वाचना का क्रम होता तो अधिक अच्छा होता।

लोगे सासया-अणंता य—

४७ : प० के सासया लोगे ?

उ० जीवच्चेव, अजीवच्चेव ।

—ठाणं २, उ० ४, सु० १०३ ।

लोक में शाश्वत और अनन्त—

४७ : प्र० लोक में शाश्वत कितने हैं ?

उ० जीव हैं और अजीव हैं ।

४८ : प० के अणंता लोए ?

उ० जीवच्चेव, अजीवच्चेव ।

—ठाणं २, उ० ४, सु० १०३ ।

४८ : प्र० लोक में अनन्त कितने हैं ?

उ० जीव हैं और अजीव हैं ।

पंचत्थिकायमयो लोगो—

४९ : प० किमियं भंते ! लोए त्ति पवुच्चइ ?

उ० गोयमा ! पंचत्थिकाया—एस णं एवतिए लोए त्ति पवुच्चइ, तं जहा—धम्मऽत्थिकाए, अधम्मऽत्थिकाए, जाव पोग्गलऽत्थिकाए ।

—भग० स० १३, उ० ४, सु० २३ ।

पंचास्तिकायमय लोक—

४९ : प्र० भगवन् ! लोक कैसा कहा गया है ?

उ० गौतम ! पंचास्तिकायमय है; यह लोक इतना ही कहा जाता है, यथा— धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, यावत् पुद्गलास्तिकाय ।

छ दव्वमयो लोगो—

५० : गाहाओ—

धम्मो, अहम्मो, आगासं, कालो, पुग्गल, जंतवो ।
एसलोगो त्ति पन्नत्तो, जिर्णेहिं वरदंसिहि ॥

धम्मो अहम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो ॥

—उत्त० अ० २८, गा० ७-८ ।

छह द्रव्यमय लोक—

५० : गाथार्थ—

१. धर्म, २. अधर्म, ३. आकाश, ४. काल, ५. पुद्गल और ६. प्राणी । श्रेष्ठ (वर) दर्शी जिनदेवों ने यह लोक कहा है ।

धर्म, अधर्म और आकाश—ये द्रव्य एकेक कहे गये हैं ।
काल, पुद्गल और प्राणी—ये द्रव्य अनन्त हैं ।

दिसाणं भेया; सरूवं च—

५१ : प० कति णं भंते ! दिसाओ पण्णत्ताओ ?

उ० गोयमा ! दस दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

(१) पुरत्थिमा,
(२) पुरत्थिम-दाहिणा,
(३) दाहिणा,
(४) दाहिण-पच्चत्थिमा,
(५) पच्चत्थिमा,
(६) पच्चत्थिमुत्तरा,
(७) उत्तरा,
(८) उत्तर-पुरत्थिमा,
(९) उड्ढा,
(१०) अहा ।

प० एयासि णं भंते ! दसण्हं दिसाणं कति णामधेज्जा पण्णत्ता ?

दिशाओं के भेद और स्वरूप—

५१ : प्र० भगवन् ! दिशाएँ कितनी कही गई हैं ?

उ० गौतम ! दस दिशाएँ कही गई हैं, यथा—

(१) पूर्व,
(२) पूर्व-दक्षिण,
(३) दक्षिण,
(४) दक्षिण-पश्चिम,
(५) पश्चिम,
(६) पश्चिम-उत्तर,
(७) उत्तर,
(८) उत्तर-पूर्व,
(९) ऊर्ध्व,
(१०) अधो ।

प्र० भगवन् ! इन दस दिशाओं के कितने नाम कहे गये हैं ?

उ० गोयमा ! दस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

गाहा—

इंदग्गेयी जम्मा य नेरती वारुणी य वायव्वा।
सोमा ईसाणी या विमला य तमा य बोधव्वा॥

—भग० स० १०, उ० १, सु० ६-७।

उ० गौतम ! दस नाम कहे गये हैं, यथा—

गाथार्थ—

(१) इन्द्रा, (२) आग्नेयी, (३) याम्या, (४) नैऋति, (५) वारुणी, (६) वायव्य, (७) सोमा, (८) ईशानी, (९) विमला, और (१०) तमा ...।

५२ : प० किमियं भंते ! पाईणा ति पवुच्चति ?

उ० गोयमा ! जीवा चेव, अजीवा चेव।

प० किमियं भंते ! पडीणा ति पवुच्चति ?

उ० गोयमा ! जीवा चेव, अजीवा चेव।

एवं दाहिणा, एवं उदीणा, एवं उड्ढा, एवं अहा वि।[1]

—भग० स० १०, उ० १, सु० ३-४-५।

५२ : प्र० भगवन् ! इस पूर्व दिशा में क्या है ?

उ० गौतम ! जीव और अजीव हैं।

प्र० भगवन् ! इस पश्चिम दिशा में क्या है ?

उ० गौतम ! जीव और अजीव हैं।

इसीप्रकार दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व और अधोदिशा में भी हैं।

५३ : प० इंदा णं भंते ! दिसा १. किमादिया,
२. किं पवहा,
३. कतिपदेसादिया,
४. कतिपदेसुत्तरा,
५. कतिपदेसिया,
६. किं पज्जवसिया,
७. किं संठिया पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! इंदा णं दिसा १. रुयगादीया,
२. रुयगप्पवहा,
३. दुपदेसादीया,
४. दुपदेसुत्तरा,
५. लोगं पडुच्च असंखेज्जपदेसिया, अलोगं पडुच्च अणंतपदेसिया,
६. लोगं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया, अलोगं पडुच्च सादीया अपज्जवसिया,
७. लोगं पडुच्च मुरजसंठिया, अलोगं पडुच्च सगडुद्धि-संठिया पण्णत्ता।

५३ : प्र० भगवन् ! १. इन्द्रा दिशा के आदि में क्या है ?
२. वह कहाँ से निकली है ?
३. उसके आदि में कितने प्रदेश हैं ?
४. उत्तरोत्तर कितने प्रदेशों की वृद्धि होती है ?
५. उसके कितने प्रदेश हैं ?
६. उसका अन्त कहाँ होता है ?
७. उसका संस्थान कैसा कहा गया है ?।

उ० गौतम ! १. इन्द्रा दिशा के आदि में रुचक प्रदेश है,
२. वह रुचक प्रदेशों से निकली है,
३. उसके आदि में दो प्रदेश हैं,
४. आगे दो-दो प्रदेशों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है,
५. लोक की अपेक्षा वह असंख्यप्रदेशवाली है और अलोक की अपेक्षा अनन्तप्रदेशवाली है,
६. लोक की अपेक्षा सादि-सान्त है और अलोक की अपेक्षा सादि-अनन्त है,
७. लोक की अपेक्षा मुरज के (एक प्रकार का वाद्य) संस्थान वाली है और अलोक की अपेक्षा उद्धि (गाड़ी) के संस्थान वाली कही गई है।

1. [illegible] भग० स० १३, उ० ४ सू० [illegible]

[illegible]

प० अग्गेयी णं भंते ! दिसा १. किमादीया,
२. किं पवहा,
३. कतिपएसादीया,
४. कतिपएस-वित्थिण्णा,
५. कतिपदेसिया,
६. किं पज्जवसिया,
७. किं संठिया पन्नत्ता ?

प्र० भगवन् ! १. आग्नेयी दिशा में क्या है ?
२. वह कहाँ से निकली है ?
३. उसके आदि में कितने प्रदेश हैं ?
४. उत्तरोत्तर कितने प्रदेशों की वृद्धि होती है ?
५. उसके कितने प्रदेश हैं ?
६. उसका अन्त कहाँ होता है ?
७. और उसका संस्थान कैसा कहा गया है ?

उ० गोयमा ! अग्गेयी णं दिसा १. रुयगादीया,
२. रुयगप्पवहा,
३. एगपएसादीया,
४. एगपएस-वित्थिण्णा, अणुत्तरा,
५. लोगं पडुच्च असंखेज्जपएसिया, अलोगं पडुच्च अणंतपएसिया,
६. लोगं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया, अलोगं पडुच्च सादीया अपज्जवसिया,
७. छिन्नमुत्तावलीसंठिया पन्नत्ता ।

उ० गौतम ! आग्नेयी दिशा के १. आदि में रुचक प्रदेश है,
२. वह रुचक प्रदेशों से निकली है,
३. उसके आदि में एक प्रदेश है,
४. वह (अन्त तक) एक प्रदेश के विस्तार वाली है (अतएव) उत्तरोत्तर वृद्धि रहित हैं,
५. लोक की अपेक्षा वह असंख्यप्रदेशवाली है और अलोक की अपेक्षा अनन्त प्रदेशवाली है,
६. लोक की अपेक्षा वह सादि-सान्त है और अलोक की अपेक्षा सादि-अनन्त है,
७. और उसका संस्थान टूटी हुई मोतियों की माला जैसा कहा गया है ।

जमा जहा इंदा । नेरती जहा अग्गेयी ।
एवं जहा इंदा तहा दिसाओ चत्तारि वि ।
जहा अग्गेयी तहा चत्तारि वि विदिसाओ ।

याम्या दिशा इन्द्रा जैसी है और नैऋति आग्नेयी जैसी है ।
इस प्रकार जैसी इन्द्रा दिशा है वैसी ही चारों दिशाएँ हैं ।
जैसी आग्नेयी विदिशा है वैसी ही चारों विदिशाएँ हैं ।

प० विमला णं भंते ! दिसा किमादिया (जाव)[1] किं संठिया पन्नत्ता ?

प्र० भगवन् ! १-६. विमला दिशा के आदि में क्या है ? (यावत्)
७. उसका संस्थान कैसा कहा गया है ?

उ० गोयमा ! १. विमला णं दिसा रुयगादीया,
२. रुयगप्पवहा,
३. चउप्पएसादीया,
४. दुपदेस-वित्थिण्णा, अणुत्तरा,
५-६. लोगं पडुच्च असंखेज्जपएसिया सेसं जहा अग्गेयीए। नवरं रुयगसंठिया पन्नत्ता ।

उ० गौतम ! १. विमला दिशा के आदि में रुचक प्रदेश है,
२. वह रुचक प्रदेशों से निकली है,
३. उसके आदि में चार रुचक प्रदेश हैं,
४. वह अन्त तक दो प्रदेशों के विस्तारवाली है अतएव उत्तरोत्तर वृद्धि रहित है,
५-६. लोक की अपेक्षा वह असंख्यप्रदेशवाली है शेष आग्नेयी विदिशा जैसी है; विशेष उसका संस्थान रुचक प्रदेश जैसा कहा गया है ।

एवं तमा वि ।

—भग० स० १३, उ० ४, सु० १६-२२ ।

इसी प्रकार तमा दिशा भी है ।

---

१. महा० वि० की प्रति में मूल पाठ इस प्रकार है—"**विमला णं भंते ! दिसा किमादिया० पुच्छा**" ।

दिसासु जीवाजीवा तद्देस-पएसा य—

५४ : प० इंदा णं भंते ! दिसा किं जीवा जीवदेसा, जीवपदेसा, अजीवा अजीवदेसा, अजीवपदेसा ?

उ० गोयमा ! जीवा वि तं चेव जाव अजीवपएसा वि।

जे जीवा ते नियमं एगिंदिया बेइंदिया जाव पंचिंदिया, अणिंदिया।

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा जाव अणिंदियदेसा।

जे जीवपएसा ते नियमं एगिंदियपदेसा जाव अणिंदियपदेसा।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. रूवी अजीवा य,

२. अरूवी अजीवा य।

जे रूवी अजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. खंधा, २. खंधदेसा,

३. खंधपएसा, ४. परमाणुपोग्गला।

जे अरूवी अजीवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा—नो धम्मत्थिकाए।

१. धम्मत्थिकायस्स देसे,

२. धम्मत्थिकायस्स पदेसा, नो अधम्मत्थिकाए,

३. अधम्मत्थिकायस्स देसे,

४. अधम्मत्थिकायस्स पदेसा नो आगासत्थिकाए,

५. आगासत्थिकायस्स देसे,

६. आगासत्थिकायस्स पदेसा,

७. अद्धासमए।

[illegible]

दिशाओं में जीव, अजीव और उनके देश, प्रदेश—

५४ : प्र० भगवन् ! (क्या) इन्द्रा दिशा में जीव, जीव-देश, जीव-प्रदेश, अजीव, अजीव-देश और अजीव-प्रदेश हैं ?

उ० गौतम ! इन्द्रा दिशा में जीव है यावत् अजीव-प्रदेश भी है।

इन्द्रा दिशा में जितने जीव है वे नियमतः एकेन्द्रिय जीव है, द्वीन्द्रिय जीव है यावत् पंचेन्द्रिय जीव है और अनिन्द्रिय है।

वहां जितने जीव देश है, वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश है यावत् अनिन्द्रिय जीवों के देश है।

वहां जितने जीव प्रदेश है वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश है यावत् अनिन्द्रिय जीवों के प्रदेश है।

वहां जितने अजीव है, वे दो प्रकार के कहे गये है, यथा—

१. रूपी अजीव, और

२. अरूपी अजीव।

वहां जितने रूपी अजीव है वे चार प्रकार के कहे गये है, यथा—

१. स्कंध, २. स्कंध-देश,

३. स्कंध-प्रदेश, ४. परमाणु-पुद्गल।

वहां जितने अरूपी अजीव है वे सात प्रकार के कहे गये है, यथा—धर्मास्तिकाय नहीं है।

१. धर्मास्तिकाय का देश है,

२. धर्मास्तिकाय के प्रदेश है। अधर्मास्तिकाय नहीं है,

३. अधर्मास्तिकाय का देश है,

४. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश है। आकाशास्तिकाय नहीं है,

५. आकाशास्तिकाय का देश है,

६. आकाशास्तिकाय के प्रदेश है,

७. अद्धासमय।

५५ : प० अग्गेयी णं भंते ! दिसा किं जीवा (जाव) अजीवपएसा ?

उ० गोयमा ! णो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपएसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपएसा वि।

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा।

अहवा १ एगिंदियदेसा य, बेइंदियस्स देसे।

अहवा २ एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स देसा।

अहवा ३ एगिंदियदेसा य बेइंदियाण य देसा।

५५ : प्र० हे भगवन् ! [illegible] दिशा में [illegible] अजीव प्रदेश है ?

उ० [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अहवा—एगिंदियदेसा य, तेइंदियस्स देसे।

एवं चेव तियभंगो भाणियव्वो।
एवं जाव अणिंदियाण तियभंगो॥

जे जीवपदेसा ते नियमा एगिंदियपदेसा।

अहवा—एगिंदियपदेसा य, बेइंदियस्स पदेसा।

अहवा—एगिंदियपदेसा य, बेइंदियाण य पदेसा।

एवं आदिल्ल विरहिओ जाव अणिंदियाणं।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. रूवि-अजीवा य,
२. अरूवि अजीवा य।

जे रूविअजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
खंधा जाव परमाणुपोग्गला।

जे अरूविअजीवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—
नो धम्मत्थिकाए,
१. धम्मत्थिकायस्स देसे,
२ धम्मत्थिकायस्स पदेसा।
एवं ३-४ अधमत्थिकायस्स वि।
एवं ५-६ आगासत्थिकायस्स वि, जाव आगासत्थिकायस्स पदेसा, ७ अद्धासमए।

प० जम्मा णं भंते! दिसा किं जीवा जाव अजीवपएसा?

उ० जहा इंदा तहेव निरवसेसं।
नेरई जहा अग्गेयी,
वारुणी जहा इंदा,
वायव्वा जहा अग्गेयी,
सोमा जहा इंदा,
ईसाणी जहा अग्गेयी।

विमलाए जीवा जहा अग्गेयी, अजीवा जहा इंदाए।

एवं तमाए वि, नवरं अरूवी छव्विहा। अद्धासमयो न भण्णति।

—भग० स० १०, उ० १, सू० ६-१७।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं और त्रीन्द्रिय जीव का देश है।

इस प्रकार त्रीन्द्रिय के तीन भंग कहने चाहिए। यावत् अनिन्द्रिय जीवों के भी तीन भंग करने चाहिए।

वहाँ जितने जीव प्रदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रिय जीव के प्रदेश हैं।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं।

इस प्रकार प्रथम भंग छोड़कर यावत् अनिन्द्रिय पर्यन्त भंग कहने चाहिए।

वहाँ जितने अजीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—
१. रूपी अजीव,
२. और अरूपी अजीव।

वहाँ जितने रूपी अजीव हैं, वे चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा— स्कंध यावत् परमाणुपुद्गल।

वहाँ जितने अरूपी अजीव हैं, वे सात प्रकार के कहे गये हैं, यथा—धर्मास्तिकाय नहीं है।
१. धमास्तिकाय का देश है,
२. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं, इसी प्रकार
३-४. धर्मास्तिकाय के,
५-६. आकाशास्तिकाय के यावत् आकाशास्तिकाय के प्रदेश हैं, ७. अद्धासमय।

प्र० हे भगवन्! याम्या दिशा में क्या जीव है यावत् अजीव प्रदेश हैं?

उ० इन्द्रा दिशा के समान सम्पूर्ण कथन करना चाहिए।
नैर्ऋति दिशा का वर्णन आग्नेयी दिशा के समान है।
वारुणी दिशा का वर्णन इन्द्रा दिशा के समान है।
वायव्य दिशा का वर्णन आग्नेयी दिशा के समान है।
सोमा दिशा का वर्णन इन्द्रा दिशा के समान है।
ईशानी दिशा का वर्णन आग्नेयी दिशा के समान है।

विमला दिशा के जीवों का वर्णन आग्नेयी दिशा के समान है। वहाँ के अजीवों का वर्णन इन्द्रा दिशा के समान है।

इसी प्रकार तमादिशा का वर्णन भी है। विशेषता यह है—वहाँ अरूपी अजीव छह प्रकार के हैं क्योंकि वहाँ अद्धासमय नहीं कहा है।

लोए जीवाजीवा तद्देसपदेसा य—

५६ : प० लोए णं भंते ! किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपदेसा ?

उ० गोयमा ! जीवा वि, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि।

जे जीवा ते नियमा एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचेंदिया, अणिंदिया।

जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा जाव अणिंदियदेसा।

जे जीवपदेसा ते नियमा एगिंदियपदेसा जाव अणिंदियपदेसा।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—रूवी य, अरूवी य।

जे रूवी ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. खंधा,
२. खंधपदेसा,
३. खंधपदेसा,
४. परमाणुपोग्गला।

जे अरूवी अजीवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. धम्मत्थिकाए, नो धम्मत्थिकायस्स देसे,
२. धम्मत्थिकायस्स पदेसा,
३. अधम्मत्थिकाए, नो अधम्मत्थिकायस्स देसे,
४. अधम्मत्थिकायस्स पदेसा, नो आगासत्थिकाए,
५. आगासत्थिकायस्स देसे,
६. आगासत्थिकायस्स पदेसा,
७. अद्धासमए।[1]

— [illegible]

लोक में जीव अजीव और उनके देश-प्रदेश—

५६ : प्र० भगवन् ! क्या लोक में जीव हैं, जीवों के देश हैं, जीवों के प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीवों के देश हैं और अजीवों के प्रदेश हैं ?

उ० गौतम ! लोक जीव है, जीव-देश है, जीव-प्रदेश है, अजीव है, अजीव-देश है और अजीव-प्रदेश है।

जो जीव हैं वे निश्चित रूप से एकेन्द्रिय हैं, बेइन्द्रिय हैं, तेइन्द्रिय हैं, चउरिन्द्रिय हैं, पंचेन्द्रिय हैं और अनिन्द्रिय हैं।

जो जीवों के देश हैं वे निश्चितरूप से एकेन्द्रियों के देश हैं यावत् अनिन्द्रियों के देश हैं।

जो जीवों के प्रदेश हैं वे निश्चितरूप से एकेन्द्रियों के प्रदेश हैं यावत् अनिन्द्रियों के प्रदेश हैं।

जो अजीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—रूपी और अरूपी।

जो रूपी अजीव हैं वे चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१. स्कंध,
२. स्कंधदेश,
३. स्कंधप्रदेश,
४. परमाणु पुद्गल।

जो अरूपी अजीव हैं वे सात प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१. धर्मास्तिकाय है, धर्मास्तिकाय का देश नहीं है,
२. धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं,
३. अधर्मास्तिकाय है, अधर्मास्तिकाय का देश नहीं है,
४. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं, आकाशास्तिकाय नहीं है।
५. आकाशास्तिकाय का देश है,
६. आकाशास्तिकाय के प्रदेश हैं,
७. अद्धासमय है।

लोगागासपदेसे जीवाजीवा तद्देसपदेसा य—

५७ : प० लोगस्स णं भंते ! [illegible] आगासपएसे किं जीवा, [illegible] अजीवा अजीवदेसा, अजीव पदेसा ?

लोक के एक आकाशप्रदेश में जीव, अजीव और उनके देश-प्रदेश—

५७ : प्र० [illegible]

१ [illegible] आगासत्थिकाए आगासत्थिकायस्स देसे [illegible]

उ० गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि ।

उ० गौतम ! वहाँ जीव नहीं है, जीवों के देश हैं, जीवों के प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीवों के देश हैं और अजीवों के प्रदेश भी हैं।

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा,

वहाँ जो (१) जीवों के देश हैं वे निश्चितरूप से एकेन्द्रियों के देश हैं ।

अहवा—एगिंदियदेसा य, बेइंदियस्स देसे,

अथवा—वहाँ (२) एकेन्द्रियों के देश हैं, और बेइन्द्रिय का एक देश है ।

अहवा—एगिंदियदेसा य, बेइंदियाण य देसा,

अथवा—वहाँ (३) एकेन्द्रियों के देश हैं, और बेइन्द्रियों के देश हैं ।

एवं मज्झिल्लविरहिओ जाव अणिंदिएसु जाव—

इस प्रकार मध्यमभंगरहित (शेषभंग) यावत् अनिन्द्रियों के हैं

अहवा—एगिंदियदेसा य, अणिंदियाणदेसा ।

यावत् अथवा एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं और अनिन्द्रियों के देश हैं ।

जे जीवपदेसा ते नियमं एगिंदियपदेसा,

वहाँ जो जीवों के प्रदेश हैं वे निश्चितरूप से एकेन्द्रियों के प्रदेश हैं ।

अहवा—एगिंदियपएसा य, बेइंदियस्स पएसा,

अथवा—वहाँ एकेन्द्रियों के प्रदेश हैं और बेइन्द्रिय के प्रदेश हैं ।

अहवा—एगिंदियपएसा य, बेइंदियाण य पएसा,

अथवा—वहां एकेन्द्रियों के प्रदेश हैं और बेइन्द्रियों के प्रदेश हैं ।

एवं आदिल्लविरहिओ जाव पंचिंदिएसु अणिंदिएसु तियभंगो ।

इस प्रकार प्रथम भंग रहित यावत् (शेष दो दो भंग) पंचेन्द्रिय तक के हैं । वहाँ अनिन्द्रिय के तीनों भंग हैं ।

जे अजीवा ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—रूवी अजीवा य, अरूवी अजीवा य । रूवी तहेव ।

वहाँ जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—रूपी अजीव और अरूपी अजीव । रूपी अजीव पहले के समान हैं ।

जे अरूवी अजीवा ते पंचविहा पन्नत्ता, तं जहा—
नो धम्मत्थिकाए—
१. धम्मत्थिकायस्स देसे,
२. धम्मत्थिकायस्स पदेसे,
३-४. एवं अधम्मत्थिकायस्स वि ,
५. अद्धासमए ।[1]

—भग० स० ११, उ१०, सु० २० ।

वहाँ अरूपी अजीव पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—
धर्मास्तिकाय नहीं है ।
१. धर्मास्तिकाय का देश है,
२. धर्मास्तिकाय का प्रदेश है,
३-४. इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का देश है, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है,
५. अद्धासमय है ।

पएसाणं सोदाहरणं अणावाहत्तं—

प्रदेशों का उदाहरण सहित अनाबाधत्व—

५८ : प० लोगस्स णं भंते ! एगम्मि आगासपएसे जे एगिंदियपएसा जाव पंचिंदियपदेसा अणिंदियपएसा अन्नमन्नबद्धा जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति, अत्थि णं भंते ! अन्नमन्नस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएंति, छविच्छेदं वा करेंति ?

उ० णो इणट्ठे समट्ठे ।

५८ : प्र० हे भगवन् ! लोक के एक आकाश प्रदेश में, जो एकेन्द्रिय के प्रदेश यावत् पंचेन्द्रिय के प्रदेश तथा अनेन्द्रिय जीवों के प्रदेश जो अन्योन्यसम्बद्ध यावत् एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, भगवन् ! क्या वे एक दूसरे को किसी प्रकार की बाधा या विशेष बाधा उत्पन्न करते हैं या किसी का छविच्छेद करते हैं ?

उ० नहीं, ऐसा नहीं है ।

---

1. लोगस्स जहा अहे लोगखेत्तलोगस्स एगम्मि आगासपदेसे । —भग० स० ११, उ० १०, सु० २० । मूल पाठ इतना ही है—भग० स० ११, उ० १०, सु० २० के अनुसार ऊपर का पाठ पूर्ण किया है ।

लोयचरिमंतेसु जीवाजीवा तद्देस पएसा य—

६० : प० लोगस्स णं भंते ! पुरत्थिमिल्ले चरिमंते किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपदेसा ?

उ० गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि ।

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा ।

अहवा : एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स य देसे । एवं जहा दसमसए अग्गेयीदिसा (भग० स० १०, उ० १, सु० ६) तहेव ।
नवरं : देसेसु अणिंदियाणं आदिल्लविरहिओ ।

जे अरूवी अजीवा ते छव्विहा—अद्धासमयो नत्थि । सेसं तं चेव सव्वं ।

प० लोगस्स णं भंते ! दाहिणिल्ले चरिमंते किं जीवा जाव अजीवपदेसा वि ?

उ० एवं चेव ।

एवं पच्चत्थिमिल्ले वि, उत्तरिल्ले वि ।

प० लोगस्स णं भंते ! उवरिल्ले चरिमंते किं जीवा जाव अजीवपदेसा वि ?

उ० गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि जाव अजीवपएसा वि ।

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा य, अणिंदियदेसा य ।

अहवा—एगिंदियदेसा य, अणिंदियदेसा य, बेइंदियस्स य देसे ।

अहवा—एगिंदियदेसा य, अणिंदियदेसा य, बेइंदियाण य देसा ।

एवं मज्झिल्लविरहिओ जाव पंचेंदियाणं ।

जे जीवप्पएसा ते नियमं एगिंदियप्पदेसा य अणिंदियप्पदेसा य ।

अहवा—एगिंदियप्पदेसा य, अणिंदियप्पदेसा य, बेइंदियस्स य पदेसा ।

लोक के चरमान्तों में जीवाजीव और उनके देश-प्रदेश—

६० : प्र० हे भगवन् ! लोक के पूर्वी चरमान्त में क्या जीव, जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश और अजीवप्रदेश हैं ?

उ० हे गौतम ! (लोक के पूर्वी चरमान्त में) जीव नहीं हैं, किन्तु जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश तथा अजीव-प्रदेश हैं ।

वहां जितने जीव-देश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं ।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के देश और द्वीन्द्रिय जीव का देश है । इस सम्बन्ध में (भगवतीसूत्र के) दशम शतक में कथित आग्नेयीदिशा के वर्णन के समान यहाँ समझ लेना चाहिए । विशेषता यह है कि अनिन्द्रिय के देशों का कथन प्रथम भंग छोड़कर करना चाहिए ।

(लोक के पूर्वी चरमान्त में) जो अरूपी अजीव हैं वे छह प्रकार के हैं, क्योंकि वहाँ अद्धासमय नहीं है । शेष सब पूर्ववत् (आग्नेयीदिशा के समान) कहना चाहिए ।

प्र० हे भगवन् ! लोक के दक्षिण-चरमान्त में क्या जीव हैं यावत् अजीवप्रदेश हैं ।

उ० पहले के समान है ।

इसीप्रकार लोक के पश्चिमी चरमान्त और उत्तरी चरमान्त का कथन है ।

प्र० हे भगवन् ! लोक के ऊपर के चरमान्त में जीव हैं यावत् अजीवप्रदेश हैं ?

उ० हे गौतम ! जीव नहीं है, जीवदेश हैं यावत् अजीव-प्रदेश हैं ।

वहाँ जितने जीवदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं तथा अनिन्द्रिय जीवों के देश हैं ।

अथवा : एकेन्द्रियजीवों के देश हैं, अनिन्द्रियजीवों के देश हैं तथा (मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा से) द्वीन्द्रिय जीव का देश है ।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं, अनिन्द्रिय जीवों के देश हैं तथा द्वीन्द्रिय जीवों के देश हैं ।

इस प्रकार मध्यमभंग को छोड़कर पंचेन्द्रियपर्यन्त भंगों का कथन करना चाहिए ।

वहाँ जितने जीवप्रदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं और अनिन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं ।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं, अनिन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं तथा द्वीन्द्रिय जीव के प्रदेश हैं ।

लोयचरिमंतेसु जीवाजीवा तद्देस पएसा य—

६० : प० लोगस्स णं भंते ! पुरत्थिमिल्ले चरिमंते किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपदेसा ?

उ० गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि।

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा।

अहवा : एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स य देसे। एवं जहा दसमसए अग्गेयीदिसा (भग० स० १०, उ० १, सु० ६) तहेव।

नवरं : देसेसु अणिंदियाणं आदिल्लविरहिओ।

जे अरूवी अजीवा ते छव्विहा—अद्धासमयो नत्थि। सेसं तं चेव सव्वं।

प० लोगस्स णं भंते ! दाहिणिल्ले चरिमंते किं जीवा जाव अजीवपदेसा वि ?

उ० एवं चेव।

एवं पच्चत्थिमिल्ले वि, उत्तरिल्ले वि।

प० लोगस्स णं भंते ! उवरिल्ले चरिमंते किं जीवा जाव अजीवपदेसा वि ?

उ० गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि जाव अजीवपएसा वि।

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा य, अणिंदियदेसा य।

अहवा—एगिंदियदेसा य, अणिंदियदेसा य, बेइंदियस्स य देसे।

अहवा—एगिंदियदेसा य, अणिंदियदेसा य, बेइंदियाण य देसा।

एवं मज्झिल्लविरहिओ जाव पंचेंदियाणं।

जे जीवप्पएसा ते नियमं एगिंदियप्पदेसा य अणिंदियप्पदेसा य।

अहवा—एगिंदियप्पदेसा य, अणिंदियप्पदेसा य, बेइंदियस्स य पदेसा।

लोक के चरमान्तों में जीवाजीव और उनके देश-प्रदेश—

६० : प्र० हे भगवन् ! लोक के पूर्वी चरमान्त में क्या जीव, जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश और अजीवप्रदेश हैं ?

उ० हे गौतम ! (लोक के पूर्वी चरमान्त में) जीव नहीं हैं, किन्तु जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश तथा अजीवप्रदेश हैं।

वहां जितने जीव-देश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के देश और द्वीन्द्रिय जीव का देश है। इस सम्बन्ध में (भगवतीसूत्र के) दशम शतक में कथित आग्नेयीदिशा के वर्णन के समान यहाँ समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि अनिन्द्रिय के देशों का कथन प्रथम भंग छोड़कर करना चाहिए।

(लोक के पूर्वी चरमान्त में) जो अरूपी अजीव हैं वे छह प्रकार के हैं, क्योंकि वहाँ अद्धासमय नहीं है। शेष सब पूर्ववत् (आग्नेयीदिशा के समान) कहना चाहिए।

प्र० हे भगवन् ! लोक के दक्षिण-चरमान्त में क्या जीव हैं यावत् अजीवप्रदेश हैं।

उ० पहले के समान है।

इसीप्रकार लोक के पश्चिमी चरमान्त और उत्तरी चरमान्त का कथन है।

प्र० हे भगवन् ! लोक के ऊपर के चरमान्त में जीव हैं यावत् अजीवप्रदेश हैं ?

उ० हे गौतम ! जीव नहीं है, जीवदेश हैं यावत् अजीवप्रदेश हैं।

वहाँ जितने जीवदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं तथा अनिन्द्रिय जीवों के देश हैं।

अथवा : एकेन्द्रियजीवों के देश हैं, अनिन्द्रियजीवों के देश हैं तथा (मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा से) द्वीन्द्रिय जीव का देश है।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं, अनिन्द्रिय जीवों के देश हैं तथा द्वीन्द्रिय जीवों के देश हैं।

इस प्रकार मध्यमभंग को छोड़कर पंचेन्द्रियपर्यन्त भंगों का कथन करना चाहिए।

वहाँ जितने जीवप्रदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं और अनिन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं, अनिन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं तथा द्वीन्द्रिय जीव के प्रदेश हैं।

अहवा—एगिंदियपदेसा य, अणिंदियपदेसा य, बेइंदियाण य पदेसा।

एवं आदिल्लविरहिओ जाव पंचेंदियाणं।

अजीवा जहा दसमसए तमाए (भग० १०, उ० १, सु० १७) तहेव निरवसेसं।

प० लोगस्स णं भंते ! हेट्ठिल्ले चरिमंते किं जीवा जाव अजीवप्पएसा ?

उ० गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि, जाव अजीवप्पएसा वि।

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा।

अहवा—एगिंदियदेसा य, बेइंदियस्स य देसे।

अहवा—एगिंदियदेसा य, बेइंदियाण य देसा।

एवं मज्झिल्लविरहिओ जाव अणिंदियाणं।

पदेसा आदिल्लविरहिया सव्वेसिं जहा पुरत्थिमिल्ले चरिमंते तहेव।

अजीवा जहा उवरिल्ले चरिमंते तहेव।

—भग० स० १६, उ० ८, सु० २-६।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं, अनिन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं तथा द्वीन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं।

इसप्रकार प्रथम भग छोड़कर यावत् पंचेन्द्रिय पर्यन्त भंगों का कथन करना चाहिए।

अजीवों का कथन (भगवती के) दशम शतक में कथित तमा-दिशा के समान करना चाहिए।

प्र० हे भगवन् ! क्या लोक के अधःचरमान्त में जीव हैं यावत् अजीव-प्रदेश हैं ?

उ० हे गौतम ! वहाँ जीव नहीं है, किन्तु जीव-देश हैं यावत् अजीव-प्रदेश हैं।

वहाँ जितने जीव देश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं, तथा द्वीन्द्रिय जीव का देश हैं।

अथवा : एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं तथा द्वीन्द्रिय जीवों के देश हैं।

इस प्रकार मध्यमभंग को छोड़कर यावत् अनिन्द्रिय पर्यन्त (शेष समस्त भंगों का) कथन करना चाहिए।

प्रथम भंग को छोड़कर सबके प्रदेश पूर्वी चरमान्त के समान कथन करना चाहिए।

अजीवों का ऊर्ध्वचरमान्त के समान कथन करना चाहिए।

णेगम-ववहारणयावेक्खा लोगे खेत्ताणुपुव्वी दव्वादीणं अत्थित्तं—

६१ : प० [१] (१) णेगम-ववहाराणं खेत्ताणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स कतिभागे होज्जा ?

(२) किं संखेज्जइभागे वा होज्जा ?

(३) असंखेज्जइभागे वा होज्जा ?

(४) संखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा ?

(५) असंखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा ?

(६) सव्वलोए वा होज्जा ?

उ० (१) एगदव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागे वा होज्जा,

(२) असंखेज्जइभागे वा होज्जा,

(३) संखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा,

(४) असंखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा,

(५) देसूणे वा लोए होज्जा,

(६) णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोए होज्जा।

नैगम और व्यवहारनय की अपेक्षा से लोक में क्षेत्रानुपूर्वी आदि द्रव्यों का अस्तित्व—

६१ : प्र० १. (१) नैगम और व्यवहारनय की अपेक्षा से क्षेत्रानुपूर्वी द्रव्य लोक के किस भाग में हैं ?

(२) क्या संख्यातवें भाग में हैं ?

(३) असंख्यातवें भाग में हैं ?

(४) संख्येयभागों में हैं ?

(५) असंख्येयभागों में हैं ?

(६) या संपूर्ण लोक में हैं ?

उ० (१) एक द्रव्य की अपेक्षा लोक के संख्यातवें भाग में हैं,

(२) असंख्यातवें भाग में हैं,

(३) संख्येयभागों में हैं,

(४) असंख्येयभागों में हैं,

(५) या देश न्यून (कुछ न्यून) लोक में है,

(६) नानाद्रव्यों की अपेक्षा निश्चितरूप से सम्पूर्ण लोक में हैं।

प० [२] (१-६) अणाणुपुव्वीदव्वाणं पुच्छा

उ० (१) एगदव्वं पडुच्च नो संखेज्जइ भागे होज्जा[1],

(२) असंखेज्जइभागे होज्जा,

(३) नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा,

(४) नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा,

(५) नो सव्वलोए होज्जा,

(६) नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा।

[३] एवं अवत्तव्वगदव्वाणि विभाणियव्वाणि।

—अणु० सु० १५२ [१-२-३]।

प्र० [२] (१-६) अनानुपूर्वी द्रव्यों के प्रश्न करें

उ० (१) एक द्रव्य की अपेक्षा (लोक के) संख्यातवें भागमें नहीं हैं।

(२) असंख्यातवें भाग में हैं।

(३) संख्येयभागों में नहीं हैं।

(४) असंख्यभागों में नहीं हैं।

(५) या सम्पूर्ण लोक में (भी) नहीं हैं।

(६) नाना द्रव्यों की अपेक्षा निश्चित रूप से सम्पूर्ण लोक में हैं।

[३] इसीप्रकार अवक्तव्य द्रव्य भी कहलवाने चाहिए।

णेगम-ववहारनयावेक्खा लोगे आणुपुव्वी दव्वाईणं अत्थित्तं—

६२ : प० [१] (१) णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स कतिभागे होज्जा ?

(२) किं संखेज्जइ भागे होज्जा ?

(३) असंखेज्जइ भागे होज्जा ?

(४) संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?

(५) असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?

(६) सव्वलोए होज्जा ?

उ० (१) एगदव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइ भागे वा होज्जा।

(२) असंखेज्जइभागे वा होज्जा।

(३) संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा।

(४) असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा।

(५) सव्वलोए वा होज्जा।

(६) नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा।

प० [२] (१) णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं किं लोगस्स संखेज्जइभागे होज्जा ?

(२) असंखेज्जइभागे होज्जा ?

(३) संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?

(४) असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?

(५) सव्वलोए वा होज्जा ?

उ० (१) एगदव्वं पडुच्च [लोगस्स] नो संखेज्जइभागे होज्जा।

(२) असंखेज्जइभागे होज्जा।

नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा से लोक में आनुपूर्वी द्रव्यादि का अस्तित्व—

६२ : प्र० १. (१) नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य लोक के कितने भाग में हैं ?

(२) क्या लोक के संख्यातवें भाग में हैं ?

(३) असंख्यातवें भाग में हैं ?

(४) संख्येयभागों में हैं ?

(५) असंख्येयभागों में हैं ?

(६) सम्पूर्ण लोक में हैं ?

उ० (१) एक द्रव्य की अपेक्षा लोक के संख्यातवें भाग में हैं।

(२) असंख्यातवें भाग में हैं।

(३) संख्येयभागों में हैं।

(४) असंख्येयभागों में हैं।

(५) और सम्पूर्ण लोक में भी हैं।

(६) नाना द्रव्यों की अपेक्षा निश्चितरूप से सम्पूर्ण लोक में हैं।

प्र० २. (१) नैगम और व्यवहारनयकी अपेक्षा से अनानुपूर्वीद्रव्य क्या लोक के संख्यातवें भाग में हैं ?

(२) असंख्यातवें भाग में हैं ?

(३) संख्येयभागों में हैं ?

(४) असंख्येयभागों में हैं ?

(५) या सर्व लोक में हैं ?

उ० (१) एक द्रव्य की अपेक्षा (लोक के) संख्यातवें भाग में नहीं है।

(२) असंख्यातवें भाग में है।

---

[1] [illegible] में 'लोगस्स' ऐसा अंश नहीं है जबकि ऊपर आनुपूर्वी द्रव्य सम्बन्धी [illegible] 'लोगस्स' [illegible]। सम्भव है [illegible] में लिपिक की यह भूल हुई है। अतः मूलपाठ को [illegible]।

(३) नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा।
(४) नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा।
(५) नो सव्वलोए होज्जा।
नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा।

[३] एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि।

—अणु० सु० १०८।

(३) संख्येयभागों में नहीं हैं।
(४) असंख्येयभागों में नहीं हैं।
(५) और सम्पूर्ण लोक में (भी) नहीं हैं।
नाना द्रव्यों की अपेक्षा निश्चितरूप से सम्पूर्ण लोक में हैं।

(३) इसी प्रकार अवक्तव्य द्रव्य भी हैं....

६३ : प० (१) णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागे होज्जा?
(२) असंखेज्जइभागे वा होज्जा?
(३) संखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा?
(४) असंखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा?
(५) सव्वलोए होज्जा?

उ० (१) एगदव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागे वा होज्जा।
(२) असंखेज्जइभागे वा होज्जा।
(३) संखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा।
(४) असंखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा।
(५) देसूणे वा लोए होज्जा।
नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा।

६३ : प्र० (१) नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के सख्यातवें भाग में हैं?
(२) असंख्यातवें भाग में हैं?
(३) सख्येयभागों में हैं?
(४) असख्येयभागों में हैं?
(५) या सम्पूर्ण लोक में हैं?

उ० (१) एक द्रव्य की अपेक्षा लोक के संख्यातवें भाग में हैं।
(२) असंख्यातवें भाग में हैं।
(३) संख्येयभागों में हैं।
(४) असंख्येयभागों में हैं।
(५) देश ऊन (कुछ कम) लोक में भी हैं।
नाना द्रव्यों की अपेक्षा निश्चित रूप से सम्पूर्ण लोक में हैं।

एवं अणाणुपुव्वि-अवत्तव्वयदव्वाणि भाणियव्वाणि जहा णेगम-ववहाराणं खेत्ताणुपुव्वीए।

—अणु० सु० १९३।

एवं फुसणा........

—अणु० सु० १९४।

जिस प्रकार नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा क्षेत्रानुपूर्वी का कथन है इसीप्रकार अनानुपूर्वीद्रव्य और अवक्तव्यद्रव्य कहलवाने चाहिए।

इसी प्रकार स्पर्शना भी है....

णेगम-ववहारणयावेक्खा लोगे आणुपुव्वीदव्वाई णं फुसणा—

६४ : प० [१] (१) णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति?
(२) असंखेज्जइभागं फुसंति?
(३) संखेज्जे भागे फुसंति?
(४) असंखेज्जे भागे फुसंति?
(५) सव्वलोयं फुसंति?

उ० (१) एगदव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागं वा फुसंति।
(२) असंखेज्जइभागं वा फुसंति।
(३) संखेज्जे वा भागे फुसंति।

नैगम और व्यवहारनयकी अपेक्षा से लोक में आनुपूर्वी द्रव्य आदि की स्पर्शना—

६४ : प्र० १. (१) नैगम और व्यवहारनयकी अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं?
(२) असंख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं?
(३) संख्येयभागों का स्पर्श करते हैं?
(४) असंख्येयभागों का स्पर्श करते हैं?
(५) या सम्पूर्ण लोक का स्पर्श करते हैं?

उ० (१) एक द्रव्य की अपेक्षा लोक के संख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं।
(२) असंख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं।
(३) संख्येयभागों का स्पर्श करते हैं।

(२) असंखेज्जइभागे होज्जा ?
(३) संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?
(४) असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?
(५) सव्वलोए होज्जा ?
उ० (१) नो संखेज्जइभागे होज्जा।
(२) नो असंखेज्जइभागे होज्जा।
(३) नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा।
(४) नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा।
(५) नियमा सव्वलोए होज्जा।
एवं दोण्णि वि।

—अणु० सु० १२५।

(२) असंख्यातवें भाग में हैं ?
(३) संख्येयभागों में हैं ?
(४) असंख्येयभागों में हैं ?
(५) या सम्पूर्ण लोक में हैं ?
उ० (१) संख्यातवें भाग में नहीं हैं।
(२) असंख्यातवें भाग में नहीं हैं।
(३) संख्येयभागों में नहीं हैं।
(४) असंख्येयभागों में नहीं हैं।
(५) निश्चित रूप से सम्पूर्ण लोक में हैं।
इसी प्रकार दोनों (अनानुपूर्वी द्रव्य और अवक्तव्य द्रव्य) भी हैं....

संगहणयावेक्खा आणुपुव्वीदव्वादीणं लोगे फुसणा—

६७ : प० (१) संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइ भागं फुसंति ?
(२) असंखेज्जइ भागं फुसंति ?
(३) संखेज्जे भागे फुसंति ?
(४) असंखेज्जे भागे फुसंति ?
(५) सव्वलोगं फुसंति ?
उ० (१) नो संखेज्जइ भागं फुसंति।
(२) नो असंखेज्जइ भागं फुसंति।
(३) नो संखेज्जे भागे फुसंति।
(४) नो असंखेज्जे भागे फुसंति।
(५) नियमा सव्वलोगं फुसंति।

एवं दोन्नि वि।

—अणु० सु० १२६।

संग्रहनयकी अपेक्षा से आनुपूर्वी आदि द्रव्यों की लोक स्पर्शना—

६७ : प्र० (१) संग्रह नयकी अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं ?
(२) असंख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं ?
(३) संख्येयभागों का स्पर्श करते हैं ?
(४) असंख्येयभागों का स्पर्श करते हैं ?
(५) या सम्पूर्ण लोक का स्पर्श करते हैं ?
उ० (१) संख्यातवें भाग का स्पर्श नहीं करते हैं।
(२) असंख्यातवें भाग का स्पर्श नहीं करते हैं।
(३) संख्येयभागों का स्पर्श नहीं करते हैं।
(४) असंख्येयभागों का स्पर्श नहीं करते हैं।
(५) (किन्तु वे) निश्चित रूप से सम्पूर्ण लोक का स्पर्श करते हैं।

इस प्रकार दोनों (अनानुपूर्वीद्रव्य और अवक्तव्यद्रव्य) भी हैं।

खेत्तलोगो

खेत्तलोगस्स भेया-कमो य—

६८ : प० खेत्तलोए णं भंते ! कतिविहे पन्नत्ते ?
उ० गोयमा ! तिविहे पन्नत्ते, तं जहा—
(१) अहेलोय खेत्तलोए,
(२) तिरियलोय खेत्तलोए,
(३) उड्ढलोय खेत्तलोए।[1]

—भग० स० ११, उ० १०, सु० ३।

क्षेत्रलोक

क्षेत्रलोक के भेद और क्रम—

६८ : प्र० भगवन् ! क्षेत्रलोक कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ० गौतम ! तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—
(१) अधोलोक-क्षेत्रलोक।
(२) तिर्यक्लोक-क्षेत्रलोक।
(३) उर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक।

---

१. तुलना—तिविहे लोगे पण्णत्ते, तं जहा—१. उड्ढलोगे, २. अहोलोगे, ३. तिरियलोगे। —ठाणं ३, उ० २, सु० १५३।

प० से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?
उ० पच्छाणुपुव्वी—(७) तमतमा जाव १. रयणप्पभा।
से त्तं पच्छाणुपुव्वी।

प० से किं तं अणाणुपुव्वी ?
उ० अणाणुपुव्वी—एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए सत्तगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो।
से त्तं अणाणुपुव्वी।

—अणु० सु० १६४-१६७।

प्र० पश्चानुपूर्वी (का स्वरूप) क्या है ?
उ० पश्चानुपूर्वी (का स्वरूप इस प्रकार) है—
७ तमस्तमा यावत् १ रत्नप्रभा।
यह पश्चानुपूर्वी है।
प्र० अनानुपूर्वी (का स्वरूप) क्या है ?
उ० अनानुपूर्वी (का स्वरूप इस प्रकार) है—इनके (कुछ क्रम) एकादि हों—अर्थात् जिनके आदि में एक हों। और अन्य क्रम एकोत्तरिक हों—अर्थात् दो से लेकर सात पर्यंत हों। इन सात समूहों की श्रेणियों में अन्योन्य (परस्पर) एक दूसरे का अभ्यास (गुणन) हों तथा द्विरूप (पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी) न्यून (रहित) हों। यह अनानुपूर्वी है।

अहोलोगसंठाणं—

७२ : प० अहे लोगखेत्तलोए णं भंते ! किं संठिते पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! तप्पागारसंठिए पन्नत्ते।
—भग० स० ११, उ० १०, सु० ७।

अधोलोक का संस्थान—

७२ : प्र० भगवन् ! अधोलोक क्षेत्रलोक किसप्रकार स्थित कहा गया है ?
उ० गौतम ! तप्रा—(उलटी नौका) के आकार से स्थित कहा गया है....

अहोलोगस्स आयाममज्झे—

७३ : प० कहिणं भंते ! अहे लोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते ?
उ० गोयमा ! चउत्थीए पंकप्पभाए उवासंतरस्स सातिरेगं अद्धं ओगाहित्ता-एत्थ णं अहे लोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते।
—भग० स० १३, उ० ४, सु० १३।

अधोलोक का आयाम-मध्य—

७३ : प्र० भगवन् ! अधोलोक का आयाम-मध्य कहाँ कहा गया है ?
उ० गौतम ! चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के अवकाशांतर का आधे से कुछ अधिक भाग अवगाहन करने पर अधोलोक का आयाम-मध्य कहा गया है....।

अहोलोए अंधयारकरा—

७४ : अहोलोगे णं चत्तारि अंधयारं करेंति, तं जहा—
(१) णरगा,
(२) णेरइया,
(३) पावाइं कम्माइं[1],
(४) असुभा पोग्गला।
—ठाणं० ४, उ० ३, सु० ३३६।

अधोलोक में अन्धकार करने वाले—

७४ : अधोलोक में चार अन्धकार करते हैं, यथा—
(१) नरक,
(२) नैरयिक,
(३) पापकर्म,
(४) अशुभपुद्गल।....

पुढवीणं णामगोत्ताइं—

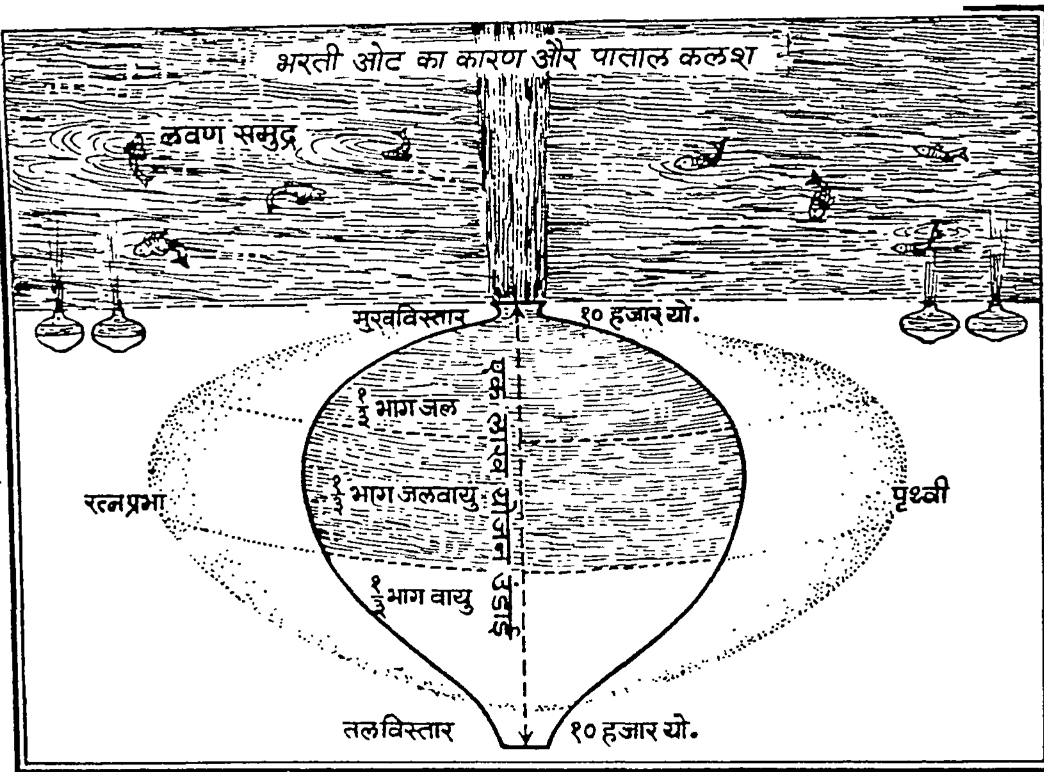
७५ : एयासि णं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) घम्मा, (२) वंसा,
(३) सेला, (४) अंजणा,
(५) रिट्ठा, (६) मघा,
(७) माघवई।

पृथ्वियों के नाम-गोत्र—

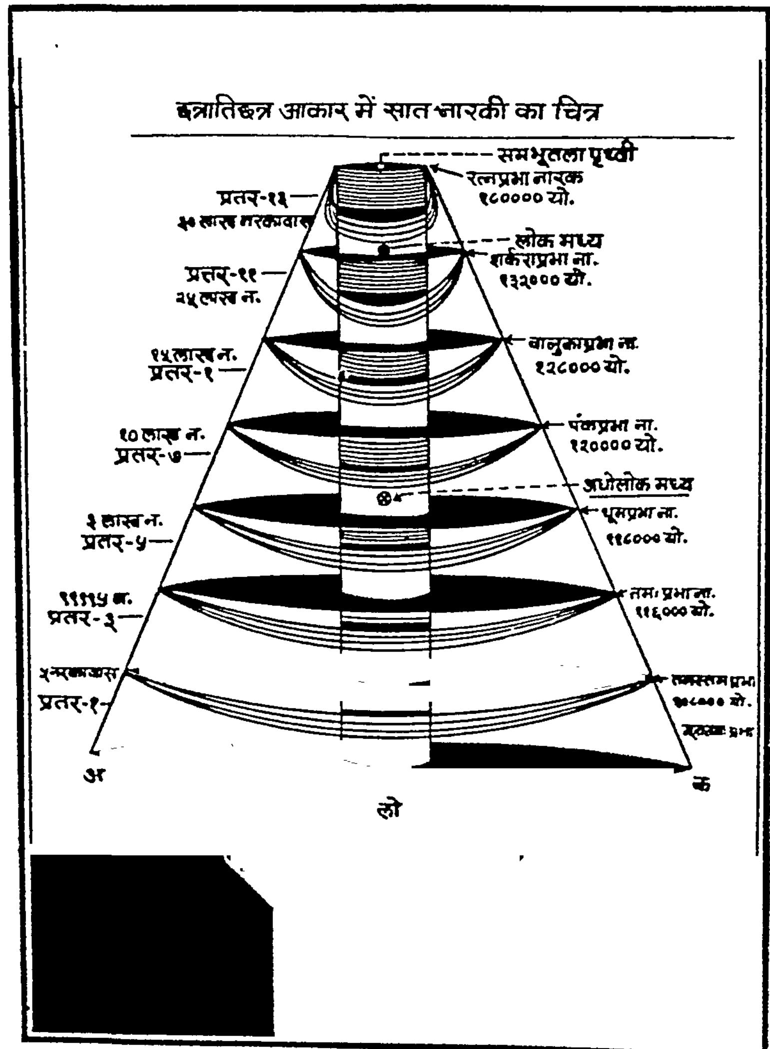
७५ : इन सात पृथ्वियों के सात नाम कहे गये हैं, यथा—
(१) घर्मा, (२) वंसा,
(३) शैला; (४) अंजना,
(५) रिष्ठा, (६) मघा,
(७) माघवती।

---

१. ठाणं ३, उ० १, सु० १३४।



पाताल कलश सम्बन्धी विशेष वर्णन के लिए देखें सूत्र ६४० से ६४५ तक पृष्ठ ३४२-३४३



विशेष वर्णन देखें—सूत्र ७७, ७८ पृष्ठ ३७ तथा उससे आगे के सूत्र

एएसु णं सत्तसु घणोदहीसु पिडलगपिहुणसंठाण संठियाओ सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पढमा जाव सत्तमा[1]

—ठाणं० ७ सु० ५४६।

इन सात घनोदधियों पर फूलों की चंगेरियों के समान विस्तृत संस्थान से संस्थित सात पृथ्वियाँ कही गई हैं, यथा—पहली यावत् सातवीं....

७७ : तिपइट्ठिया णरगा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) पुढविपइट्ठिया, (२) आगासपइट्ठिया,
(३) आयपइट्ठिया।
णेगम-संगह-ववहाराणं पुढविपइट्ठिया।

उज्जुसुयस्स आगासपइट्ठिया।
तिण्हं सद्दनयाणं आयपइट्ठिया।[2]

—ठाणं० ३, उ० ३, सु० १८६।

७७ : नरक त्रिप्रतिष्ठित—तीन पदार्थों पर आश्रित कहा है, यथा—

(१) पृथ्वी-प्रतिष्ठित, (२) आकाश-प्रतिष्ठित,
(३) आत्म-प्रतिष्ठित।

(१) नैगम-संग्रह और व्यवहारनयकी अपेक्षा पृथ्वी पर आश्रित है।

(२) ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा आकाश पर आश्रित हैं।

(३) और तीन शब्द नयों (शब्द, समभिरूढ़ एवंभूत) की अपेक्षा आत्म-प्रतिष्ठित अर्थात् स्वाश्रित हैं।....

पुढवीणं पमाणं—

७८ : प० इमाणं भंते ! रयणप्पभापुढवी केवतिया बाहल्लेणं पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! इमाणं रयणप्पभापुढवी असि उत्तरं जोयण-सयसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

एवं एएणं अभिलावेणं इमा गाहा अणुगंतव्वा—

गाहा—आसीतं-
वत्तीसं-,
अट्ठावीसं-
तहेव वीस च।
अट्ठारस-
सोलसगं-,
अट्ठुत्तरमेव हिट्ठिमया॥

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ६८।

पृथ्वियों का प्रमाण—

७८ : प्र० भगवन् ! यह रत्नप्रभापृथ्वी कितनी मोटी कही गई है ?

उ० गौतम ! यह रत्नप्रभापृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन की मोटी कही गई है।

इस प्रकार ऐसे प्रश्नोत्तरों से इस गाथा की व्याख्या करनी चाहिए।

गाथार्थ—(१) रत्नप्रभा १,८०००योजन मोटी है,
(२) शर्कराप्रभा १,३२,००० योजन मोटी है,
(३) वालुकाप्रभा १,२८,००० योजन मोटी है,
(४) पंकप्रभा १,२०,००० योजन मोटी है,
(५) धूमप्रभा १,१८,००० योजन मोटी है,
(६) तमप्रभा १,१६,००० योजन मोटी है,
(७) तमस्तमप्रभा १,०८,००० योजन मोटी है।

---

१. इस सूत्र के टीकाकार श्री अभयदेवसूरी के सामने स्थानांग की जितनी प्रतियाँ थी उनमें सात पृथ्वियों के संस्थान तीन प्रकार के पाठों में मिले हैं—ऐसा वे स्वयं लिखते हैं—

"छत्तातिछत्तसंठाण संठिया"—....टीका... तया छत्रमतिक्रम्य छत्रं छत्रातिच्छत्रं तस्य संस्थानं—आकारोऽधस्तनं छत्रं मह दुपरितनं लघ्विति तेन संस्थिताः छत्रातिच्छत्रसंस्थानसंस्थिताः। इदमुक्तं भवति—सप्तमी सप्तरज्जुविस्तृता षष्ठ्यादय-स्त्वेकेकरज्जुहीना इति।

क्वचित्पाठः—'पिडलगपिहुलगसंठाणसंठिया"—तत्र पिडलगं-पटलकं पुष्पभाजनं तद्वत्पृथुलसंस्थानसंस्थिता इति पटलक-पृथुलसंस्थानसंस्थिताः।

"पृथुल-पृथुल संस्थानसंस्थिता" इति क्वचित्पाठः स च व्यक्त एव। —ठाणं० सु० १८६ टीका।

२. इन दोनों सूत्रों में सात पृथ्वियों के आधार भिन्न-भिन्न प्रकार से कहे गये हैं—दोनों सूत्र स्थानांग के हैं किन्तु प्रतिपादन शैली की कितनी भिन्नता है। प्रथम सूत्र में घनोदधी, घनवात, तनुवात आदि आधार कहे गये हैं और द्वितीय सूत्र में इनके नाम भी नहीं हैं। नय-सापेक्ष कथन होने से अभिन्नता है—ऐसा समझना चाहिए।

७९ : प० इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी केवतियं आयाम-विक्खंभेणं ? केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! असखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ।

एवं जाव अहेसत्तमा ।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७६ ।

७९ : प्र० हे भगवन् ! यह रत्नप्रभापृथ्वी कितनी लम्बी-चौड़ी है ? और उसकी परिधि कितनी कही गई है ?

उ० हे गौतम ! असंख्य हजार योजन की लम्बी-चौड़ी है और असंख्य योजन की परिधि कही गई है ।

इसीप्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है ।

८० : प० इमाणं भंते ! रयणप्पभा पुढवी अंते य, मज्झे य, सव्वत्थ समा बाहल्लेणं पण्णत्ता ?

उ० हंता, गोयमा ! इमा णं रयणप्पभा पुढवी अंते य, मज्झे य, सव्वत्थ समा बाहल्लेणं पण्णत्ता ।

एवं जाव अहेसत्तमा ।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७६ ।

८० : प्र० हे भगवन् ! क्या यह रत्नप्रभा पृथ्वी अन्त में, मध्य में, और सर्वत्र समान बाहल्य (मोटाई) वाली कही गई है ?

उ० हाँ गौतम ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी अन्त में, मध्य में और सर्वत्र समान बाहल्यवाली कही गई है ।

इसी प्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है ।

८१ : प० इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं ? सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु ?

उ० हंता गोयमा ! इमा णं रयणप्पभापुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं, सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु ।

प० दोच्चा णं भंते ! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय सव्व-महंतिया बाहल्लेणं ? सव्वखुड्डिया सव्वतेसु ?

उ० हंता गोयमा ! दोच्चाणं पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं, सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु ।

एवं एएणं अभिलावेणं जाव छट्ठिता पुढवी अहेसत्तमं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं, सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु ।[1]

—जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० ९२ ।

८१ : प्र० हे भगवन् ! क्या यह रत्नप्रभा पृथ्वी द्वितीय (शर्करा प्रभा) पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में सबसे बड़ी है ? तथा चारों दिशाओं में सबसे छोटी है ?

उ० हाँ गौतम ! यह रत्नप्रभापृथ्वी द्वितीय पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में सबसे बड़ी है और चारों दिशाओं में सबसे छोटी है ।

प्र० हे भगवन् ! क्या द्वितीय पृथ्वी तृतीय पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में सबसे बड़ी है तथा चारों दिशाओं में सबसे छोटी है ?

उ० हाँ गौतम ! द्वितीय पृथ्वी तृतीय पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में सबसे बड़ी है तथा चारों दिशाओं में सबसे छोटी है ।

इसीप्रकार प्रश्नोत्तरों में यावत् छठी पृथ्वी नीचे सप्तम पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में सबसे बड़ी है और चारों दिशाओं में सबसे छोटी है ।

८२ : प० [१] इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला ? विसेसाहिया ? संखेज्जगुणा ?

[२] वित्थरेणं किं तुल्ला ? विसेसहीणा ? संखेज्जगुण-हीणा ?

८२ : प्र० [१] हे भगवन् ! यह रत्नप्रभापृथ्वी द्वितीय (शर्करा प्रभा) पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में क्या तुल्य है ? विशेषाधिक है ? या संख्यातगुण है ?

[२] विस्तार से क्या तुल्य है ? विशेष-हीन है ? या संख्यात-गुणहीन है ?

---

१. भग० स १३, उ० ४, सु० १० ।

उ० [१] गोयमा ! इमा णं रयणप्पभापुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं नो तुल्ला, विसेसाहिया, नो संखेज्जगुणा।

[२] वित्थरेणं नो तुल्ला, विसेसहीणा, नो संखेज्जगुण-हीणा।

प० [१] दोच्चाणं भंते ! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला ? विसेसाहिया ? संखेज्ज-गुणा ?

[२] वित्थरेणं किं तुल्ला ? विसेसहीणा ? संखेज्जगुण-हीणा ?

उ० [१] [२] गोयमा ! एवं चेव। एवं तच्चा, चउत्थी, पंचमी, छट्ठी।

प० [१] छट्ठी णं भंते ? पुढवी सत्तमं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला ? विसेसाहिया ? संखेज्ज-गुणा।

[२] वित्थरेणं किं तुल्ला ? विसेसहीणा ? संखेज्जगुण-हीणा ?

उ० [१] गोयमा ! इमा णं छट्ठी पुढवी सत्तमं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं नो तुल्ला, विसेसाहिया नो, संखेज्जगुणा।

[२] वित्थरेणं नो तुल्ला, विसेसहीणा, नो संखेज्जगुण-हीणा। —जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ८०।

उ० [१] हे गौतम ! यह रत्नप्रभापृथ्वी द्वितीय पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में तुल्य नहीं है विशेषाधिक है, संख्येयगुण नहीं है।

[२] विस्तार से भी तुल्य नहीं है, विशेपहीन है, संख्येयगुण-हीन नहीं है।

प्र० [१] हे भगवन् ! द्वितीय पृथ्वी तृतीय पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में क्या तुल्य है ? विशेषाधिक है ? या संख्यातगुण है ?

[२] विस्तार से क्या तुल्य है ? विशेपहीन है ? या संख्येय-गुण-हीन है ?

उ० [१] [२] हे गौतम ! इसीप्रकार है। इसीप्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी पृथ्वी है।

प्र० [१] हे भगवन् ! छठी पृथ्वी सातवीं पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में क्या तुल्य है ? विशेपाधिक है ? संख्येयगुण है ?

[२] विस्तार से क्या तुल्य है ? विशेपहीन है ? या संख्येय-गुण-हीन है ?

उ० [१] हे गौतम ! यह छठी पृथ्वी सातवीं पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में तुल्य नहीं है, विशेपाधिक है, संख्येयगुण नहीं है।

[२] विस्तार से भी तुल्य नहीं है, विशेपहीन है, संख्येयगुण हीन नहीं है।

पुढवीणं संठाणं—

८३ : प० इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी किं संठिया पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! झल्लरिसंठिया पण्णत्ता।

प० सक्करप्पभा णं भंते ! पुढवी किं संठिया पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! झल्लरिसंठिया पण्णत्ता।

जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया एवं जाव अहेसत्तमाए वि।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७४।

पृथ्वियों के संस्थान—

८३ : प्र० हे भगवन् ! यह रत्नप्रभापृथ्वी किस संस्थानवाली कही गई है ?

उ० हे गौतम ! झालर के संस्थानवाली कही गई है।

प्र० हे भगवन् ! (यह) शर्कराप्रभापृथ्वी किस संस्थानवाली कही गई है ?

उ० हे गौतम ! झालर के संस्थानवाली कही गई है।

जिस प्रकार शर्कराप्रभा का (संस्थान) है इसी प्रकार यावत् नीचे सातवीं का भी है।

पुढवीणं सासयासासयत्तं—

८४ : प० इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी किं सासया असासया ?

उ० गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया।

प० से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—'सिय सासया, सिय असासया ?

पृथ्वियाँ शाश्वत भी है और अशाश्वत भी है—

८४ : प्र० हे भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी (क्या) शाश्वत है ? या अशाश्वत है ?

उ० हे गौतम ! कथंचित् शाश्वत है; कथंचित् अशाश्वत है।

प्र० हे भगवन् ! "कथंचित् शाश्वत है और कथंचित् अशाश्वत है" ऐसा क्यों कहा जाता है ?

उ० गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया।
वण्ण-पज्जवेहिं, गंध पज्जवेहिं, रस-पज्जवेहिं, फास-पज्जवेहिं असासया।
से तेणट्ठे णं गोयमा ! एवं वुच्चइ—सिय सासया, सिय असासया।
एवं जाव अहेसत्तमा।
—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७८।

उ० हे गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से (रत्नप्रभा) शाश्वत है।
वर्ण-पर्याय, गन्ध-पर्याय, रस-पर्याय और स्पर्श-पर्यायों की अपेक्षा से अशाश्वत है।
हे गौतम ! इसलिए कहा जाता है कि (रत्नप्रभापृथ्वी) कथंचित् शाश्वत है और कथंचित् अशाश्वत है।
इसी प्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है।

८५ : प० इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी कालतो केवच्चिरं होइ ?
उ० गोयमा ! न कयाइ ण आसि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ। भुविं च, भवइ य, भविस्सति य। धुवा, णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा।

एवं जाव अहेसत्तमा।
—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७८।

८५ : प्र० हे भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी काल की अपेक्षा से कितने समय पर्यन्त रहने वाली है ?
उ० हे गौतम ! यह (रत्नप्रभापृथ्वी) कभी नहीं थी—ऐसा नहीं है। कभी नहीं है—ऐसा भी नहीं है। कभी नहीं होगी—ऐसा भी नहीं है। यह थी, है और रहेगी। यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है।
इसी प्रकार यावत् नीचे सप्तमपृथ्वी पर्यन्त है।

रयणप्पभाईणं धम्मत्थिकायाइणा फुसणा—

८६ : प० इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी धम्मत्थिकायस्स किं संखेज्जइभागं फुसति ? असंखेज्जइभागं फुसति ? संखेज्जे भागे फुसति ? असंखेज्जे भागे फुसति ? सव्वं फुसति ?
उ० गोयमा ! णो संखेज्जइभागं फुसति, असंखेज्जइभागं फुसति, णो संखेज्जे भागे फुसति, णो असंखेज्जे भागे फुसति, नो सव्वं फुसति।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदही धम्मत्थिकायस्स किं संखेज्जइ भागं फुसति ? जाव सव्वं फुसति ?
उ० जहा रयणप्पभा तहा घणोदहि-घणवात-तणुवाया वि।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए ओवासंतरे धम्मत्थिकायस्स किं संखेज्जइभागं फुसइ ? किं असंखेज्जइ भागं फुसइ ? जाव सव्वं फुसइ ?
उ० गोयमा ? संखेज्जइभागं फुसइ, णो असंखेज्जइभागं फुसइ, नो संखेज्जे भागे फुसइ, नो असंखेज्जे भागे फुसइ, नो सव्वं फुसइ।

रत्नप्रभादि का धर्मास्तिकायादि से स्पर्श—

८६ : प्र० हे भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी क्या धर्मास्तिकाय के संख्येयभाग को स्पर्श करती है ? असंख्येयभाग को स्पर्श करती है ? संख्येयभागों को स्पर्श करती है ? असंख्येयभागों को स्पर्श करती है ? सम्पूर्ण (धर्मास्तिकाय का) स्पर्श करती है ?
उ० हे गौतम ! यह (रत्नप्रभापृथ्वी धर्मास्तिकाय के) संख्येयभाग को स्पर्श नहीं करती है किन्तु असंख्येयभाग को स्पर्श करती है। संख्येयभागों को असंख्येयभागों को और सम्पूर्ण (धर्मास्तिकाय) का स्पर्श नहीं करती है।
प्र० हे भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी की घनोदधि धर्मास्तिकाय के संख्येयभाग को स्पर्श करती है ? यावत् सम्पूर्ण (धर्मास्तिकाय) को स्पर्श करती है ?
उ० जिसप्रकार रत्नप्रभा के सम्बन्ध में कहा है उसी प्रकार घनोदधि, घनवात और तनुवात के सम्बन्ध में भी (कहना चाहिए)।
प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का अवकाशान्तर क्या धर्मास्तिकाय के संख्येयभाग को स्पर्श करता है ? असंख्येयभाग को स्पर्श करता है। यावत् सम्पूर्ण (धर्मास्तिकाय) का स्पर्श करता है ?
उ० हे गौतम ! संख्येयभाग का स्पर्श करता है किन्तु असंख्येयभाग को, संख्येयभागों को असंख्येयभागों को और सम्पूर्ण (धर्मास्तिकाय) का स्पर्श नहीं करता है।

ओवासंतराइं सव्वाइं जहा रयणप्पभाए।

सभी पृथ्वियों के अवकाशान्तर रत्नप्रभा के अवकाशान्तर के समान हैं।

जहा रयणप्पभाए पुढवीए वत्तव्वया भणिया एवं जाव अहेसत्तमाए।

जिसप्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी का (स्पर्श-सम्बन्धी) कथन, है इसी प्रकार यावत् सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है।

एवं अधम्मत्थिकाए।

इसीप्रकार अधर्मास्तिकाय का (स्पर्शसम्बन्धी) कथन है।

एवं लोयागासेऽवि।

—भग० स० २, उ० १०, सु० १७-२०/२२।

इसीप्रकार लोकाकाश का (स्पर्शसम्बन्धी) कथन भी है।

पुढवी ण दव्वसरूवं—

पृथ्वियों का द्रव्य स्वरूप—

८७: प० इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए असी उत्तर जोयणसयसहस्स बाहल्लाए खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णतो काल-नील-लोहित-हालिद्द-सुक्किल्लाइं, गंधतो सुरभिगंधाइं दुरभिगंधाइं, रसतो तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल-महुराइं, फासतो कक्खड-मउय-गरुय-लहु-सीत-उसिण-णिद्ध-लुक्खाइं, संठाणतो परिमंडल-वट्ट-तंस-चउरंस-आयय-संठाणपरिणयाइं अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णओगाढाइं अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति?

उ० हंता! अत्थि।

प० सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए बत्तीसुत्तर जोयण-सतसहस्स बाहल्लाए खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णतो जाव अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति?

उ० हंता! अत्थि।

जहा सक्करप्पभाए एवं जाव अहेसत्तमाए।

—जीवा० पडि० ३: उ० १, सु० ७३।

८७: प्र० हे भगवन्! क्या (बुद्धिकृत) क्षेत्र-छेद से छिद्यमान एक लाख अस्सी हजार योजन बाहल्यवाली इस रत्नप्रभा पृथ्वी में वर्ण से कृष्ण, नील, लोहित, पीत और शुक्लवर्ण वाले; गन्ध से—सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध वाले; रस से—तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और मधुररस वाले; स्पर्श से—कर्कर, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श वाले; संठाण से—परिमण्डल, वृत्त, त्र्यस्र चतुरस्र और आयतसंस्थान वाले अन्योऽन्य-बद्ध, अन्योऽन्य-स्पृष्ट, अन्योऽन्य-अवगाढ़ (स्निग्धता के कारण) अन्योऽन्य-प्रतिबद्ध और अन्योऽन्य-ग्रथित द्रव्य हैं?

उ० हाँ! हैं।

प्र० हे भगवन्! क्या (बुद्धिकृत) क्षेत्र-छेद से छिद्यमान एक लाख बत्तीस हजार योजन बाहल्यवाली शर्कराप्रभा पृथ्वी में वर्ण वाले यावत् अन्योऽन्यग्रथित द्रव्य हैं?

उ० हाँ! हैं।

जिसप्रकार शर्कराप्रभा है इसीप्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है।

पुढवि अहोभागट्ठियदव्वसरूवं—

पृथ्वियों के अधःस्थित द्रव्यों का स्वरूप—

८८: प० अत्थि ण भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे-दव्वाइं वण्णओ काल-नील-लोहिय-हालिद्द-सुक्किलाइं, गंधओ सुब्भिगंध-दुब्भिगंधाइं, रसओ तित्त-कडु-कसाय-अंबिल-महुराइं, फासओ कक्खड-मउय-गरुय-लहुय-सीय-उसुण-निद्ध-लुक्खाइं अन्नमन्नबद्धाइं अन्नमन्नपुट्ठाइं जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति?

उ० हंता! अत्थि।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

—भग० स० १८, उ० १० सु० ९-१०।

८८: प्र० भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे जो द्रव्य हैं वे वर्ण से—कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल हैं? गन्ध से—सुगन्धित और दुर्गन्धित हैं? रस से—तीखा, कडुवा, कषैला, आम्ल और मधुर हैं? और स्पर्श से—कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्ष हैं? अन्योऽन्यबद्ध हैं? अन्योऽन्यस्पृष्ट हैं यावत् अन्योऽन्य मिले हुए हैं?

उ० गौतम! हाँ हैं।

इसीप्रकार यावत् सातवीं के नीचे तक हैं।

पुढवीणं परोप्परं अबाहा अंतरं—

८९ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए सक्करप्पभाए य पुढवीए केवतियं अबहाए अंतरे पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अवाहाए अंतरे पन्नत्ते ।

प० सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवोए वालुयप्पभाए य पुढवीए केवतियं अवाहाए अंतरे पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! एवं चेव ।

एवं जाव तमाए अहेसत्तमाए य ।

—भग० स० १४; उ० ८, सु० १-३ ।

पृथ्वियों का परस्पर अबाधा अन्तर—

८९ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी और शर्कराप्रभा पृथ्वी का अवाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! असंख्य हजार योजन का अवाधा अन्तर कहा गया है ।

प्र० हे भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी और बालुकाप्रभापृथ्वी का अवाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) है ।

इसी प्रकार यावत् सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है ।

सत्तमनरयपुढवीए अलोगस्स य अबाहा अंतरं—

९० : प० अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए अलोगस्स य केवतियं अवाहाए अंतरे पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पन्नत्ते ?

—भग० स० १४, उ० ८, सु० ४ ।

सप्तम नरक और अलोक का अबाधा अन्तर—

९० : प्र० हे भगवन् ! नीचे सप्तम पृथ्वी और अलोक का अबाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! असंख्य हजार योजन का अवाधा अन्तर कहा गया है ।

रयणप्पभा नरयस्स जोइससस अबाहा य अंतरं—

९१ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए जोतिसस्स य केवतियं अवाहाए अंतरे पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! सत्तनउए जोयणसए अवाहाए अंतरे पन्नत्ते ।

—भग० स० १४, उ० ८, सु० ५ ।

रत्नप्रभा नरक और ज्योतिषी देवों का अबाधा अन्तर—

९१ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के और ज्योतिषी देवों के कितना अबाधा अन्तर कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! सातसौनिव्वे योजन का अवाधा अन्तर कहा गया है ।

पुढवीणं अहे गेहाईणं अभावो—

९२ : प० अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे गेहा ति वा गेहावणा ति वा ?

उ० गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

प० अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे गामा ति वा जाव सन्निवेसा ति वा ?

उ० नो इणट्ठे समट्ठे ।

—भग० स० ६, उ० ८, सु० २, ३ ।

पृथ्वियों के नीचे गृहादि का अभाव—

९२ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे क्या गृह (घर) या गृहापण (घर के साथ दुकानें) हैं ?

उ० हे गौतम ! ऐसा नहीं है ।

प० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे क्या ग्राम यावत् सन्निवेश हैं ?

उ० हे गौतम ! ऐसा नहीं है ।

पुढवीणं अहे उराला वलाहयाईणं देवाई कडत्तं—

९३ : प० अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उराला बलाहया संसेयंति, संमुच्छंति वासं वासंति ?

उ० हंता ! अत्थि ।

तिन्नि वि पकरेंति—१. देवो वि पकरेति, २. असुरो वि पकरेति, ३. नागो वि पकरेति ।

पृथ्वियों के नीचे देवादि-कृत स्थूल मेघादि हैं—

९३ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे क्या स्थूल (विशाल) बादल बनते हैं, बिखरते हैं, या वर्षा बरसाते हैं ?

उ० हाँ गौतम ! (बादल बनते हैं यावत् वर्षा बरसाते) हैं । यह कार्य देव, असुर और और नाग—ये तीनों करते हैं ?

प० अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे बादरे थणियसद्दे ?

उ० हंता ! अत्थि। तिण्णि वि पकरेति।

—भग० स० ६, उ० ८, सु० ४-७।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे क्या मेघ-गर्जना होती है ?

उ० हाँ ! होती है। (यह मेघ-गर्जना देव, असुर और नाग) ये तीनों करते हैं।

पुढवीणं अहे बादरअगणिकायस्स अभावो—

९४ : प० अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे बादरे अगणिकाए ?

उ० गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

नऽन्नत्थ विग्गहगति समावन्नएणं।

—भग० स० ६, उ० ८, सु० ८।

पृथ्वियों के नीचे स्थूल अग्निकाय का अभाव—

९४ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे क्या स्थूल अग्निकाय है ?

उ० हे गौतम ! ऐसा नहीं है।

यह निषेध विग्रहगति प्राप्त जीवों को छोड़कर शेष जीवों के लिए है।

पुढवीणं अहे जोईसीदेवाणं अभावो—

९५ : प० अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे चंदिम जाव तारारूवा ?

उ० गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प० अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे चंदाभा ति वा सूरियाभा ति वा ?

उ० गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं दोच्चाए वि भाणियव्वं।

एव तच्चाए वि भणियव्वं-नवरं:—देवो वि पकरेति. असुरो वि पकरेति, णो णागो पकरेति।

चउत्थीए वि एवं-नवरं :—देवो एक्को पकरेति, नो असुरो पकरेति, नो नागो पकरेति।

एवं हेट्ठिल्लासु सव्वासु देवो एक्को पकरेति।

—भग० स० ६, उ० ८, सु० ९-१४।

पृथ्वियों के नीचे ज्योतिषी देवों का अभाव—

९५ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे चन्द्र यावत् तारा आदि (ज्योतिषी) देव है ?)

उ० हे गौतम ! ऐसा नहीं है।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे चन्द्र प्रकाश या सूर्य प्रकाश है ?

उ० हे गौतम ! ऐसा नहीं है।

इसी प्रकार द्वितीय पृथ्वी में भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार तृतीय पृथ्वी में भी कहना चाहिए।

विशेष—(मेघ-गर्जना एवं बादल-वर्षा) देव करते हैं असुर करते है किन्तु नाग नहीं करते हैं।

इसी प्रकार चौथी पृथ्वी में है—विशेष—(मेघ-गर्जना एवं बादल-वर्षा) एक देव करते हैं किन्तु असुर और नाग नहीं करते हैं।

इसी प्रकार नीचे की सब पृथ्वियों में (मेघ-गर्जना एवं बादल-वर्षा) एक देव करते हैं।

रयणप्पभापुढवीए कंडया—

९६ : प० इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी कतिविधा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) खरकंडे, (२) पंकबहुलकंडे, (३) आवबहुलकंडे।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभा पुढवीए खरकंडे कतिविधे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! सोलसविधे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) रयणकंडे, (२) वइरे,

रत्नप्रभा पृथ्वी के काण्ड—

९६ : प्र० हे भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी कितने प्रकार की कही गई है ?

उ० हे गौतम ! तीन प्रकार की कही गई है, यथा—

१ खरकाण्ड, २ पंकबहुल काण्ड, ३ जलबहुल काण्ड।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का खरकाण्ड कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! सोलह प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) रत्न काण्ड; (२) वज्र काण्ड,

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए पंकबहुलकंडे केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! चतुरसीतिजोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पन्नत्ते।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए आवबहुलकंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! असीति जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पन्नत्ते।[1]

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७२।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का पंकबहुलकाण्ड कितने विस्तार वाला कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! चौरासी हजार योजन विस्तार वाला कहा गया है।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का अप्-जल-बहुल काण्ड कितने विस्तार वाला कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! अस्सी हजार योजन विस्तार वाला कहा गया है।

कंडाणं दव्वसरूवं—

९९ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडस्स सोलस जोयणसहस्स-बाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं।

वण्णओ काल-नील-लोहित-हालिद्द-सुक्किल्लाइं ;

गंधतो सुरभिगंधाइं दुरभिगंधाइं,

रसतो तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल-महुराइं।

फासतो कक्खड-मउय-गरुय-लहु-सीत-उसिण-णिद्ध-लुक्खाइं।

संठाणतो परिमंडल-वट्ट-तंस-चउरंस-आयय-संठाण-परिणयाइं अन्नमन्नबद्धाइं, अण्णमण्णपुट्ठाइं, अण्णमण्ण ओगाढाइं, अण्णमण्ण सिणेहपडिबद्धाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति ?

उ० हंता, अत्थि।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाएपुढवीए रयणनामगस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ जाव अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति ?

उ० हंता ! अत्थि। एवं जाव रिट्ठस्स।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए पंकबहुलस्स कंडस्स चउरासीतिजोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ जाव अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति ?

उ० हंता ! अत्थि।

एवं आवबहुलस्स वि असीतिजोयणसहस्सबाहल्लस्स

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७३।

काण्डों का द्रव्य स्वरूप—

९९ : प्र० हे भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी के सोलह हजार योजन विस्तृत क्षेत्र छेद से छिद्यमान (कल्पना-कृत विभागवाले) खरकाण्ड में जो द्रव्य हैं वे;

वर्णसे कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल;

गन्धसे सुगन्ध और दुर्गन्ध युक्त;

रससे तिक्त, कटुक, कषाय अम्ल और मधुर;

स्पर्शसे कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष;

संस्थानसे परिमंडल, वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और आयत संस्थान परिणत, अन्योऽन्यबद्ध, अन्योऽन्यस्पष्ट, अन्योऽन्यअवगाढ़ स्निग्धता से अन्योऽन्यप्रतिबद्ध और अन्योऽन्य ग्रथित होकर रहते हैं ?

उ० हाँ है।

प्र० हे भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन विस्तृत क्षेत्र-छेद से छिद्यमान (कल्पनाकृत विभाग वाले) रत्नकाण्ड में जो द्रव्य हैं वे वर्णन यावत् अन्योन्यग्रथित होकर रहते हैं ?

उ० हाँ हैं। इसप्रकार रिष्टकाण्ड पर्यन्त (सभी काण्डों में जो द्रव्य हैं वे वर्ण से यावत् अन्योन्यग्रथित होकर रहते हैं।)

प्र० हे भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के चौरासी हजार योजन विस्तृत क्षेत्र छेद से छिद्यमान (कल्पनाकृत विभाग वाले) पंक बहुल काण्ड में जो द्रव्य हैं वे वर्ण से यावत् अन्योन्य ग्रथित होकर रहते हैं ?

उ० हाँ है।

इसप्रकार अप्बहुलकाण्ड में जो अस्सी हजार योजन विस्तृत है (उसमें भी द्रव्य हैं।)

---

१. सम० ८, सु० ५।

कंडयाणं संठाणं—

१०० : प० इमीसे णं भंते ? रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडे किं संठिते पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! झल्लरिसंठिते पण्णत्ते ।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए रयणकंडे किं संठिते पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! झल्लरिसंठिते पण्णत्ते ।

एवं जाव रिट्ठे ।

एवं पंकबहुले वि, एवं आवबहुले वि ।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७४ ।

काण्डों का संस्थान—

१०० : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के खरकाण्ड का क्या संस्थान कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! झालर जैसा संस्थान कहा गया है ।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के रत्नकाण्ड का क्या संस्थान कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! झालर जैसा संस्थान कहा गया है ।

इसी प्रकार रिष्टकाण्ड पर्यन्त (सभी काण्डों का झालर जैसा संस्थान कहा गया है ।)

इसी प्रकार पंकवहुलकाण्ड और अप् वहुलकाण्ड का भी (झालर जैसा संस्थान कहा गया है ।)

पुढवीचरिमंताणं कंडचरिमंताणं य अंतरं—

१०१ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ खरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते-एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! सोलसजोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ रयणस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते-एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्सं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंतातो वइरस्स कंडस्स उवरिल्ले चरिमंते-एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्सं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ।[1]

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ वइरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते-एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! दो जोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ।

एवं जाव रिट्ठस्स ।

पृथ्वी-चरमांतों का और काण्डचरमांतों का अन्तर—

१०१ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से खर काण्ड के नीचे के चरमान्त का अवाधा (व्यवधान रहित) अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! सोलह हजार योजन का अवाधा अन्तर कहा गया है ।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से रत्नकाण्ड के नीचे के चरमान्त का अवाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! एक हजार योजन का अवाधा अन्तर कहा गया है ।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से वज्रकाण्ड के ऊपर के चरमान्त का अवाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! एक हजार योजन का अवाधा अन्तर कहा गया है ।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से वज्रकाण्ड के नीचे के चरमान्त का अबाधा अन्तर कितना कहागया है ?

उ० हे गौतम ! दो हजार योजन का अबाधा अन्तर कहा गया है ।

इसप्रकार यावत् रिष्टकाण्ड पर्यन्त कहना चाहिए ।

---

१. (क) इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणकंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ पुलगस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते-एस णं सत्त जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । —सम० सु० १२० ।

(ख) इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए वइरकंडस्स उवरिल्लाओ चरिमंताओ लोहियक्खकंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं तिन्नि जोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते । —सम० सु० ११६ ।

उवरिल्ले चरिमंते पन्नरसजोयणसहस्सहाइं,
हेट्ठिल्ले चरिमंते सोलसजोयणसहस्साइं।

(रत्न प्रभा पृथ्वी के) ऊपर के चरमान्त से (रिष्ट काण्ड के ऊपर के चरमान्त का) पन्द्रह हजार योजन (का अवाधा अन्तर है और) नीचे के चरमान्त का सोलह हजार योजन का अवाधा अन्तर है।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ पंकबहुलस्स कंडस्स उवरिल्ले चरिमंते-एस णं केवतियं अवाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! सोलसजोयणसहस्साइं अवाधाए अंतरे पण्णत्ते।
हेट्ठिल्ले चरिमंते एक्कं जोयणसहस्सं।

आवबहुलस्स उवरिल्ले चरिमंते एक्कं जोयणसहस्सं,
हेट्ठिल्ले चरिमंते असीउत्तरजोयणसयसहस्सं।
—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७९।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से पंकबहुलकाण्ड के ऊपर के चरमान्त का अवाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! सोलह हजार योजन का अवाधा अन्तर कहा गया है।

(पंकबहुलकाण्ड के) नीचे के चरमान्त का (अवाधा अन्तर) एक हजार योजन का (कहा गया है)।

अप्बहुलकाण्ड के ऊपर के चरमान्त का (अवाधा अन्तर) एक हजार योजन का है और नीचे के चरमान्त का (अवाधा अन्तर) एक लाख अस्सी हजार योजन का (कहा गया है)।

१०२ : पंकबहुलस्स णं कंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ हेट्ठिल्ले चरमंते-एस णं चोरासीइ जोयणसयसहस्साइं अवाहाए अंतरे पण्णत्ते।
—सम० ८४, सु० ६।

१०२ : पंकबहुलकाण्ड के ऊपर के चरमान्त से नीचे के चरमान्त का अवाधा अन्तर चौरासी लाख योजन का कहा गया है।

पुढवीणं अहे घणोदहिं आईणं सब्भावो पमाणं य—

पृथ्वियों के नीचे घनोदधि आदिका सद्भाव और उनका प्रमाण—

१०३ : प० अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे घणोदधीति वा, घणवातेति वा, तणुवातेति वा, ओसासंतरेति वा ?
उ० हंता ! अत्थि।
एवं जाव अहेसत्तमाए।
—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७१।

१०३ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे घनोदधि, घनवात, तनुवात और अवकाशान्तर (रिक्त मध्य भाग) है ?

उ० हाँ है।
इस प्रकार यावत् सप्तम पृथ्वी के नीचे तक है।....

१०४ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदही केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते ?
उ० गोयमा ! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणवाए केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते ?
उ० गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पन्नत्ते।
एवं तणुवातेऽवि, ओवासंतरेऽवि।

प० सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए घणोदहि केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते ?
उ० गोयमा ! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेण पन्नत्ते।

१०४ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि का बाहल्य (मोटाई) कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! बीस हजार योजन का बाहल्य (मोटाई) कहा गया है।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनवात का बाहल्य (मोटाई) कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! असंख्य हजार योजन का बाहल्य कहा गया है।

इसीप्रकार तनुवात का और अवकाशान्तर का (बाहल्य भी कहा गया) है।

प्र० हे भगवन् ? शर्कराप्रभा पृथ्वी के घनोदधि का बाहल्य कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! बीस हजार योजन का बाहल्य कहा गया है।

प० सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए घणवाए केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते !

उ० गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पन्नत्ते ।

एवं तणुवातेऽवि, ओवासंतरेऽवि । जहा सक्करप्पभाए पुढवीए वत्तव्वया-एवं जाव अहेसत्तमा ।[1]

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७२ ।

प्र० हे भगवन् ! शर्कराप्रभा पृथ्वी के घनवात का बाहल्य कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! असंख्य हजार योजन का बाहल्य कहा गया है ।

इसीप्रकार तनुवात का और अवकाशान्तर का (बाहल्य भी कहा गया है ।) जिसप्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वी के सम्बन्ध में कहा गया है—इसीप्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यंत कहना चाहिए ।....

घणोदहिवलयाईणं पमाणं—

१०५ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलए केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! छज्जोयणाणि बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

प० सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए घणोदधिवलए केयतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! सतिभागाइं छजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

प० वालुयप्पभाए णं भंते ! पुढवीए घणोदधिवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! तिभागूणाइं सत्तजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

एवं एएणं अभिलावेण पंकप्पभाए सत्तजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

धूमप्पभाए सतिभागाइं सत्तजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

तमप्पभाए तिभागूणाइ अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

तमतमप्पभाए अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७६ ।

घनोदधि वलय आदिका प्रमाण—

१०५ : प्र० हे भगवन् ! इस १. रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि वलय का कितना बाहल्य कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! छ योजन का बाहल्य कहा गया है ।

प्र० हे भगवन् ! २. शर्कराप्रभा पृथ्वी के घनोदधि वलय का कितना बाहल्य कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! छ योजन और एक योजन के तीन भाग जितना बाहल्य कहा गया है ।

प्र० हे भगवन् ! ३. बालुकाप्रभा पृथ्वी के घनोदधि वलय का कितना बाहल्य कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! तीन भाग कम सात योजन का बाहल्य कहागया है ।

इसीप्रकार के प्रश्नोत्तरों से ४. पंक प्रभा (पृथ्वी के घनोदधि वलय का) बाहल्य सात योजन का कहा गया है ।

५. धूमप्रभा (पृथ्वी के घनोदधि वलय का) बाहल्य एक योजन के तीन भाग सहित सात योजन का कहा गया है ।

६. तमः प्रभा (पृथ्वी के घनोदधि वलय) का बाहल्य तीन भाग कम आठ योजन का कहा गया है ।

७. तमस्तम प्रभा (पृथ्वी के घनोदधि वलय) का बाहल्य आठ योजन का कहा गया है ।....

१०६ : प० इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए घणवायवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! अद्धपंचमाइं जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

प० सक्करप्पभाए पुढवीए घणवायवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! कोसूणाइं पंचजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं ।

१०६ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनवातवलय का कितना बाहल्य कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! साढ़े चार योजन का बाहल्य कहा गया है ।

प्र० हे भगवन् ! शर्कराप्रभा पृथ्वी के घनवातवलय का कितना बाहल्य कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! एक कोश कम पांच योजन का बाहल्य कहा गया है ।

१ [illegible]

एवं एएणं अभिलावेणं वालुयप्पभाए पंचजोयणाइं वाहल्लेणं पण्णत्ताइं।

पंकप्पभाए सक्कोसाइं पंचजोयणाइं वाहल्लेणं पण्णत्ताइं।

धूमप्पभाए अद्धछट्ठाइं जोयणाइं वाहल्लेणं पण्णत्ताइं।

तमप्पभाए कोसूणाइं छजोयणाइ वाहल्लेणं पण्णत्ताइं।

अहेसत्तमाए छजोयणाइं वाहल्लेणं पण्णत्ताइं।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७६।

इसीप्रकार प्रश्नोत्तरों में वालुकाप्रभा के (घनवात वलय का) वाहल्य पांच योजन का कहा गया है।

पंकप्रभा के (घनवातवलय का) वाहल्य पाँच योजन और एक कोश का कहा गया है।

धूमप्रभा के (घनवातवलय का) वाहल्य साढ़े पाँच योजन का कहा गया है।

तमस्प्रभा के (घनवातवलय का) वाहल्य एक कोश कम छह योजन का कहा गया है।

तमस्तमप्रभा के (घनवातवलय का) वाहल्य छह योजन का कहा गया है।····

१०७ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तणुवायवलए केवतियं वाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! छक्कोसेणं वाहल्लेणं पण्णत्ते।

एवं एएणं अभिलावेणं सक्करप्पभाए पुढवीए सतिभागे छक्कोसे वाहल्लेणं पण्णत्ते।

वालुयप्पभाए पुढवीए तिभागूणे सत्तकोसे वाहल्लेणं पण्णत्ते।

पंकप्पभाए पुढवीए सतिभागे सत्तकोसे वाहल्लेणं पण्णत्ते।

धूमप्पभाए पुढवीए सतिभागे सत्तकोसे वाहल्लेणं पण्णत्ते।

तमप्पभाए पुढवीए तिभागूणे अट्ठकोसे वाहल्लेणं पण्णत्ते।

अहेसत्तमाए पुढवीए अट्ठकोसे वाहल्लेणं पण्णत्ते।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७६।

१०७ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तनुवातवलय का वाहल्य कितना कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! छः कोश का वाहल्य कहा गया है।

इसीप्रकार प्रश्नोत्तरों में शर्कराप्रभा पृथ्वी के तनुवात वलय का वाहल्य छह कोश और कोश के तीन भाग जितना कहा गया है।

वालुकाप्रभा पृथ्वी के (तनुवातवलय का) वाहल्य तीन भाग कम सात कोश का कहा गया है।

पंकप्रभा पृथ्वी के (तनुवातवलय का) वाहल्य सात कोश का कहा गया है।

धूमप्रभा पृथ्वी के (तनुवातवलय का) वाहल्य सात कोश और कोश के तीन भाग का कहा गया है।

तमस्प्रभा पृथ्वी के (तनुवातवलय का) वाहल्य तीन भाग कम आठ कोश का कहा गया है।

नीचे सातवीं पृथ्वी के (तनुवातवलयका) वाहल्य आठ कोश का कहा गया है।

घणोदहीआईणं संठाणाइं—

१०८ : एवं··········घणोदधि वि घणवाए वि तणुवाए वि ओवासंतरे वि सव्वे झल्लरिसंठिते पण्णत्ते।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७४।

घनोदधि आदि के संस्थान—

१०८ : इसी प्रकार घनोदधि, घनवात, तनुवात और अवकाशान्तर—इन सबका झालर जैसा संस्थान कहा गया है।

घणोदहिवलयाईणं संठाणं—

१०९ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलए किं संठिते पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते पण्णत्ते। जे णं इमं रयणप्पभं पुढविं सव्वतो संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति।

घनोदधि वलय आदि के संस्थान—

१०९ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनोदधिवलय किस (संस्थान) से संस्थित कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! वृत्त वलयाकार संस्थान से संस्थित कहा गया है। जो इस रत्नप्रभा पृथ्वी को चारों ओर से घेरकर स्थित है।

एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए घणोदधिवलए।

णवरं—अप्पणऽप्पणं पुढविं संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७६।

इसीप्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी का घनोदधि वलय है।

विशेष—अपनी-अपनी पृथ्वी को घेरकर स्थित है।

११० : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणवातवलए किं संठिते पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते पण्णत्ते। जे णं इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलयं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ।

एवं जाव अहेसत्तमाए घणवातवलए।

—जीवा० पडि०, ३ उ० १, सु० ७६।

११० : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनवात किस (संस्थान) से संस्थित कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! वृत्त वलयाकार संस्थान से संस्थित कहा गया है, जो इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधिवलय को चारों ओर से घेरकर स्थित है।

इसी प्रकार यावत् नीचे सप्तम घनवातवलय है।

१११ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तणुवातवलए किं संठिते पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए पण्णत्ते। जे णं इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए घणवातवलयं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ।

एवं जाव अहेसत्तमाए तणुवातवलए।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७६।

१११ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का तनुवातवलय किस (संस्थान) से संस्थित कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! वृत्त वलयाकार संस्थान से संस्थित कहा गया है—जो इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनवातवलय को चारों ओर से घेरकर स्थित है।

इसीप्रकार यावत् नीचे सप्तम तनुवात वलय है।

घणोदहि आईणं दव्वसरूवं—

११२ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिस्स वीसं जोयणसहस्स बाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णतो जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?

उ० हंता ! अत्थि।

एवं घणवातस्स असंखेज्जजोयणसहस्स बाहल्लस्स, एवं तणुवातस्स, ओवासंतरस्स वि तं चेव।

प० सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए घणोदहिस्स वीसं जोयणसहस्सबाहल्लस्स, घणवातस्स असंखेज्ज जोयणसहस्सबाहल्लस्स, तणुवातस्स असंखेज्ज जोयणसहस्सबाहल्लस्स, ओवासंतरस्स असंखेज्ज-जोयणसहस्सबाहल्लस्स वि खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णतो जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?

उ० हंता ! अत्थि।

जहा सक्करप्पभाए एवं जाव अहेसत्तमाए।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७३।

घनोदधि आदि का द्रव्य स्वरूप—

११२ : प्र० हे भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के (बुद्धिकृत) क्षेत्र-छेद से छिद्यमान वीस हजार योजन वाहल्यवाले घनोदधि में वर्ण यावत् परस्पर ग्रथित द्रव्य हैं ?

उ० हाँ ! हैं।

इसीप्रकार असंख्य हजार योजन वाहल्यवाले घनवात, तनुवात और अवकाशान्तर (में भी वर्ण यावत् परस्पर ग्रथित द्रव्य) हैं।

प्र० हे भगवन् ! क्या शर्कराप्रभा पृथ्वी के (बुद्धिकृत) क्षेत्र-छेद से छिद्यमान वीस हजार योजन वाहल्यवाले घनोदधि में, असंख्य हजार योजन वाहल्यवाले घनवात में, तनुवात में और अवकाशान्तर में वर्ण यावत् परस्पर ग्रथित द्रव्य हैं ?

उ० हाँ ! हैं।

जिसप्रकार शर्कराप्रभा (के सम्बन्ध में कहा) है। इसीप्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यंत है।

घणोदहिवलयाईणं दव्वसरूवं—

११३ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलयस्स छ जोयणवाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?

उ० हंता ! अत्थि ।

प० सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए घणोदधिवलयस्स सतिभाग छजोयणवाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?

उ० हंता ! अत्थि ।

एवं जाव अहेसत्तमाए ।

जं जस्स वाहल्लं ।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७६ ।

घनोदधि वलय आदिका द्रव्य स्वरूप—

११३ : प्र० हे भगवन् ! क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के (वुद्धिकृत) क्षेत्र छेद से छिद्यमान छह योजन वाहल्यवाले घनोदधिवलय में वर्ण यावत् परस्पर ग्रथित द्रव्य हैं ?

उ० हाँ ! हैं ।

प्र० हे भगवन् ! क्या शर्कराप्रभा पृथ्वी के (वुद्धिकृत) क्षेत्र छेद से छिद्यमान छह योजन और योजन के तीन भाग वाहल्य वाले घनोदधि वलय में वर्ण यावत् परस्पर ग्रथित द्रव्य हैं ?

उ० हाँ ! हैं ।

इसी प्रकार यावत् नीचे सातवीं पृथ्वी पर्यंत है ।

विशेष—जिस पृथ्वी के (घनोदधिवलय का) जितना वाहल्य है । (उतना कहना चाहिए) ।

११४ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणवातवलयस्स अद्धपंचमजोयणवाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?

उ० हंता ! अत्थि ।

एवं जाव अहेसत्तमाए ।

जं जस्स वाहल्लं ।

एवं तणुवायवलयस्स वि जाव अहेसत्तमाए ।

जं जस्स वाहल्लं ।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७६ ।

११४ : प्र० हे भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के (वुद्धिकृत) क्षेत्र-छेद से छिद्यमान साढ़े चार योजन वाहल्यवाले घनवात वलय में वर्ण यावत् परस्पर ग्रथित द्रव्य हैं ?

उ० हाँ ! हैं ।

इसी प्रकार यावत् नीचे सातवीं पृथ्वी पर्यंत है ।

विशेष—जिस (पृथ्वी के घनवातवलय) का जितना वाहल्य है (उतना कहना चाहिए) ।

इसी प्रकार तनुवातवलय के सम्वन्ध में भी यावत् नीचे सातवीं पृथ्वी पर्यंत है ।

विशेष—जिस (पृथ्वी के तनुवातवलय) का जितना वाहल्य है (उतना कहना चाहिए) ।

पुढवीणं पुरत्थिमिल्लाइ चरिमंता—

११५ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते कइविहे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) घणोदधिवलए,

(२) घणवायवलए,

(३) तणुवायवलए ।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए दाहिणिल्ले चरिमंते कइविहे पण्णत्ते ?

पृथ्वियों के पूर्वादि चरमांत—

११५ : प्र० भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्वी चरमान्त कितने प्रकार का कहा गया है ।

उ० गौतम ! तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) घनोदधिवलय ।

(२) घनवातवलय ।

(३) तनुवातवलय ।

प्र० भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के दक्षिणी-चरमान्त कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ० गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
(१) घणोदधिवलए,
(२) घणवायवलए,
(३) तणुवायवलए ।
एवं जाव उत्तरिल्ले ।
एवं सव्वासिं जाव अहेसत्तमाए उत्तरिल्ले ।
—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७५ ।

उ० गौतम ! तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—
(१) घनोदधिवलय ।
(२) घनवातवलय ।
(३) तनुवातवलय ।
इस प्रकार यावत् उत्तरी (चरमान्त) हैं ।
इस प्रकार सभी (पृथ्वियों) के हैं यावत् नीचे सातवी (पृथ्वी) के उत्तरी चरमान्त है ।

पुढवी चरिमंताणं घणोदहिआईणं चरिमंताणं य अंतरं—

पृथ्वियों के चरमान्तों का और घनोदधि आदि के चरमान्तों का अंतर—

११६ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ घणोदहिस्स उवरिल्ले चरिमंते—एसणं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?
उ० गोयमा ! असिउत्तरजोयणसयसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।
प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते—एसणं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?
उ० गोयमा ! दो जोयण सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।
प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ घणवातस्स उवरिल्ले चरिमंते—एसणं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?
उ० गोयमा ! दो जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।
प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ घणवातस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते—एसणं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?
उ० गोयमा ! असंखिज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।
प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ तणुवातस्स उवरिल्ले चरिमंते—एसणं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?
उ० गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।
हेट्ठिल्ले (चरिमंते) वि असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।
एवं ओवासंतरे वि ।
प० दोच्चाए णं भंते ! पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ घणोदहिस्स उवरिल्ले चरिमंते—एसणं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

११६ : प्र० भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनोदधि के ऊपर के चरमान्त का अबाधा अंतर कितना कहा गया है ?
उ० गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन अबाधा अंतर कहा गया है ।
प्र० भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनोदधि के नीचे के चरमान्त का अबाधा अंतर कितना कहा गया है ?
उ० गौतम ! दो हजार योजन अबाधा अंतर कहा गया है ।
प्र० भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनवात के नीचे के चरमान्त का अबाधा अंतर कितना कहा गया है ?
उ० गौतम ! दो हजार योजन अबाधा अन्तर कहा गया है ।
प्र० भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनवात के नीचे के चरमान्त का अबाधा अन्तर कितना कहा गया है ?
उ० गौतम ! असंख्य लाख योजन का अबाधा अन्तर कहा गया है ।
प्र० भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से तनुवात के ऊपर के चरमान्त का अबाधा अन्तर कितना कहा गया है ?
उ० गौतम ! असंख्य लाख योजन का अबाधा अन्तर कहा गया है ।
नीचे के चरमान्त का भी असंख्य लाख योजन का अबाधा अन्तर कहा गया है ।
इसीप्रकार अवकाशान्तर का (अन्तर) भी है ।
प्र० भगवन् ! द्वितीया (शर्कराप्रभा) पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनोदधि के ऊपर के चरमान्त का अबाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० गोयमा ! बत्तीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।[1]

प० दोच्चाए णं भंते ! पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते—एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! बावण्णुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

प० दोच्चाए णं भंते ! पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ घणवातस्स उवरिल्ले चरिमंते—एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! बावण्णुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

प० दोच्चाए णं भंते ! पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ घणवातस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते—एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

प० दोच्चाए णं भंते ! पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ तणुवातस्स उवरिल्ले चरिमंते—एस णं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

प० दोच्चाए णं भंते ! पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ तणुवातस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते—एस णं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?[2]

उ० गौतम ! एक लाख बत्तीस हजार योजन का अबाधा अन्तर कहा गया है।

प्र० भगवन् ! द्वितीया (शर्कराप्रभा) पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनोदधि के नीचे के चरमान्त का अबाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० गौतम ! एक लाख बावन हजार योजन का अबाधा अन्तर कहा गया है।

प्र० भगवन् ! द्वितीया (शर्कराप्रभा) पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनवात के ऊपर के चरमान्त का अबाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० गौतम ! एक लाख बावन हजार योजन का अबाधा अन्तर कहा गया है।

प्र० भगवन् ! द्वितीया (शर्कराप्रभा) पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनवात के नीचे के चरमान्त का अबाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० गौतम ! असंख्य लाख योजन का अबाधा अन्तर कहा गया है ?

प्र० भगवन् ! द्वितीया (शर्कराप्रभा) पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से तनुवात के ऊपर के चरमान्त का अबाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० गौतम ! असंख्य लाख योजन का अबाधा अन्तर कहा गया है।

प्र० भगवन् ! द्वितीया (शर्कराप्रभा) पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से तनुवात के नीचे के चरमान्त का अबाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

टिप्पणी १. आगमोदय समिति से प्रकाशित जीवाभिगम सूत्र की प्रति के पत्रांक ९९ और १०० में प्रतिपत्ति ३, उद्देशक १ का सूत्र ७९ है। (१) इसमें नरकों के चरमान्तों का अन्तर, (२) रत्नप्रभा के चरमान्तों से काण्डों का अन्तर, (३) नरकों के चरमान्तों से घनोदधि, घनवात, तनुवात और अवकाशान्तरों का अन्तर प्रतिपादित है।

इस सूत्र का मूलपाठ संक्षिप्त वाचना का है किन्तु अव्यवस्थित है, इसलिए यहां टीका के अनुसार मूलपाठ व्यवस्थित किया गया है।

यहां शर्कराप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनोदधि के ऊपर के चरमान्त का अबाधा अन्तर कितना है ? यह मुद्रित आ० स० की प्रति के मूलपाठ से स्पष्ट नहीं होता है। देखिये मुद्रित प्रति का मूलपाठ—"**सक्करप्प० पु० उवरि....**" अतः इस अंश की मूल पाठ की टीका के अनुसार यहां मूलपाठ व्यवस्थित किया गया—देखिये टीका का अंश:—**घनोदधि रुपरितने चरमान्ते पृष्ठे एतदेव निर्वचनं द्वात्रिंशदुत्तरं योजनशतसहस्रम्।**

२. घनवात और तनुवात से सम्बन्धित मूलपाठ भी यहां व्यवस्थित किया है। देखिये मुद्रित प्रति का मूलपाठ—
"**घणवातस्स असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं पण्णत्ताइं, एवं जाव उवासंतरस्स वि जाव अहे सत्तमाए।**" इस पाठ में घनवात के नीचे के चरमान्त का अन्तर ही निर्दिष्ट है। घनवात के ऊपर के चरमान्त का और तनुवात के ऊपर नीचे के चरमान्त का अन्तर 'जाव' शब्द से ग्रहण करने की सूचना है, किन्तु किस पृथ्वी के चरमान्तों के अनुसार ग्रहण करना—यह सूचना नहीं है अतः टीका के आधार से मूलपाठ व्यवस्थित किया गया है—देखिये मुद्रित प्रति की टीका का अंश—
"**घनवातस्याधस्तनचरमान्तपृच्छायां तनुवातावकाशान्तरयोरुपरितनाधस्तनचरमान्तपृच्छासु च यथा रत्नप्रभायां तथा वक्तव्यम्, असंख्येयानि योजनशतसहस्राण्यबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति भावः।**"

उ० गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

उ० गौतम ! असंख्य लाख योजन का अवाधा अन्तर कहा गया है।

एवं जाव अहेसत्तमाए ।

इस प्रकार यावत् नीचे सातवीं (पृथ्वी पर्यन्त) है।

णवरं :—जीसे जं बाहल्लं तेण घणोदधी संबंधेतव्वो बुद्धीए ।

विशेष—जिस (पृथ्वी) का जो वाहल्य-मोटाई है उसको घनोदधि के साथ बुद्धि से जोड़ना चाहिए।

सक्करप्पभाए अणुसारेणं घणोदहिसहिताणं इमं पमाणं ।

शर्कराप्रभा के अनुसार घनोदधि सहित यह प्रमाण है—

तच्चाए णं भंते ! (वालुयप्पभाए) पुढवीए अडयालीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं,

भगवन् ! तृतीया (वालुकाप्रभा) पृथ्वी में एक लाख अडतालीस हजार योजन (का अवाधा अन्तर है।)

पंकप्पभाए पुढवीए चत्तालीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं,

पंकप्रभा पृथ्वी में एकलाख चालीस हजार योजन (का अवाधा अन्तर है।)

धूमप्पभाए पुढवीए अट्ठतीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं,

धूमप्रभा पृथ्वी में एक लाख अडतीस हजार योजन (का अवाधा अन्तर है।)

तमाए पुढवीए छत्तीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं,

तमा पृथ्वी में एक लाख छत्तीस हजार योजन (का अवाधा अन्तर है।)

अहे सत्तमाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं,[1]

नीचे सातवीं पृथ्वी में एक लाख अट्ठाईस हजार योजन (का अवाधा अन्तर है।)

[यह अन्तर प्रत्येक पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनोदधि के नीचे के चरमान्त का है।]

एवं उवासंतरस्स वि जाव अहेसत्तमाए,[2]

इसीप्रकार अवकाशान्तर भी यावत् नीचे सातवीं (पृथ्वी) पर्यन्त है।

प० अहे सत्तमाए णं भंते ![3] पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ उवासंतरस्स हेट्ठिले चरिमंते केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

प्र० भगवन् ! नीचे सातवीं पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से अवकाशान्तर के नीचे के चरमान्त का अवाधा अन्तर कितना कहा गया है ?

उ० गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७६।

उ० गौतम ! असंख्य लाख योजन का अवाधा अन्तर कहा गया है।

११७ : दोच्चाए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभागाओ दोच्चस्स घणोदहिस्स हेट्ठिले चरिमंते—एसणं छलसीइजोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । —सम० ८६, सु० ३।

११७ : द्वितीया पृथ्वी के ठीक मध्य देसभाग से द्वितीय घनोदधि के नीचे का चरमान्त का अवाधा अन्तर छियासी हजार योजन का कहा गया है।

११८ : छट्ठीए पुढवीए बहुमज्झदेसभागाओ छट्ठस्स घणोदहिस्स हेट्ठिले चरिमंते—एसणं एगूणासीतिजोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । —सम० ७९, सु० ३।

११८ : छट्ठी पृथ्वी के ठीक मध्य देसभाग से छठे घनोदधि के चरमान्त का अवाधा अन्तर गुणासी हजार योजन कहा गया है।

---

१. आ० स० प्र० प्रति में इसके आगे "जाव अधे सत्तमाए" ऐसा पाठ है।

२. आ० स० प्र० जीवाभिगम में यह पंक्ति पत्र १०० के पूर्व भाग की नीचे से पाँचवीं पंक्ति में हैं किन्तु यहाँ प्रथम पंक्ति के अन्त में "अधे सत्तमाए पु० अट्ठावीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं" देना उचित समझा है।

३. आ० स० प्र० जीवाभिगम की प्रति में "एस णं भंते ! पुढवीए" ऐसा पाठ है जो शुद्ध प्रतीत नहीं होती है।

पुढविचरिमंतेसु जीवा-ऽजीवं तद्देसपएसा य—

११९ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते किं जीवा जाव अजीवपदेसा ?

उ० गोयमा ! नो जीवा एवं जहेव लोगस्स तहेव चत्तारि वि चरिमंता जाव उत्तरिल्ले।

उवरिल्ले जहा दसमसए विमला दिसा तहेव निरवसेसं।

हेट्ठिल्ले चरिमंते जहेव लोगस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते तहेव; नवरं :—देसे पंचेंदिएसु तियभंगो, सेसं तं चेव।

एवं जहा रयणप्पभाए चत्तारि चरिमंता भणिया एवं सक्करप्पभाए वि।

उवरिम-हेट्ठिल्ला जहा रयणप्पभाए हेट्ठिल्ले।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

—भग० स० १६, उ० ८, सु० ७-९।

पृथ्वियों के चरमान्तों में जीव, अजीव और उनके देश प्रदेश—

११९ : प्र० भगवन् ! क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्वी चरमान्त में जीव हैं यावत् अजीव के प्रदेश है ?

उ० गौतम ! जीव नहीं हैं—जिसप्रकार लोक के चरमान्त हैं उसीप्रकार (रत्नप्रभा के) चारों चरमान्त हैं यावत् उत्तर का चरमान्त है।

ऊपर का (चरमान्त) सम्पूर्ण दशम शतक में (कथित) विमला दिशा जैसा है।

नीचे का चरमान्त लोक के नीचे के चरमान्त जैसा है। विशेष—पंचेन्द्रियों में देस (सम्बन्धी) तीन भांगे हैं। शेष उसी प्रकार है।

जिस प्रकार रत्नप्रभा के चार चरमान्त कहे हैं।

उसीप्रकार शर्कराप्रभा के भी हैं।

ऊपर और नीचे के (चरमान्त) रत्नप्रभा के नीचे के (चरमान्त) जैसे हैं।

उसी प्रकार यावत् नीचे सातवीं के (चरमान्त) हैं।

पुढवीसु चरिमाइं—

१२० : प० इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी किं
(१) चरिमा
(२) अचरिमा
(३) चरिमाइं
(४) अचरिमाइं
(५) चरिमंतपदेसा
(६) अचरिमंतपदेसा ?

उ० गोयमा ! इमा णं रयणप्पभा पुढवी
नो चरिमा
नो अचरिमा,
नो चरिमाइं,
नो अचरिमाइं,
नो चरिमंतपदेसा,
नो अचरिमंतपदेसा।
णियमा—अचरिमं च, चरिमाणि य,

चरिमंतपदेसा य,
अचरिमंतपदेसा य।

एवं जाव अहेसत्तमा पुढवी।

—पण्ण० पद० १०, सु० ७७५-७७६।

पृथ्वियों के चरमादि—

१२० : प्र० हे भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी क्या
(१) चरम (एक वचन-पर्यन्तवर्ती) है ?
(२) अचरम (एक वचन-मध्यवर्ती) है ?
(३) चरम (बहुवचन-पर्यन्तवर्ती) है ?
(४) अचरम (बहुवचन-मध्यवर्ती) है ?
(५) चरमान्तप्रदेश (बहुवचन-पर्यन्तवर्ती) है ?
(६) अचरमान्त प्रदेश (बहुवचन मध्यवर्ती) है ?

उ० हे गौतम ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी
(१) चरम (एकवचन-पर्यन्तवर्ती) नहीं है।
(२) अचरम (एकवचन-मध्यवर्ती) नहीं है।
(३) चरम (बहुवचन-पर्यन्तवर्ती) नहीं है।
(४) अचरम (बहुवचन-मध्यवर्ती) नहीं है।
(५) चरमान्तप्रदेश (बहुवचन-पर्यन्तवर्ती) नहीं है।
(६) अचरमान्त प्रदेश (बहुवचन-मध्यवर्ती) नहीं है।

किन्तु निश्चितरूप से अचरम है। (क्योंकि पर्यन्तवर्ती चरमखण्डों की अपेक्षा से रत्नप्रभा का एक बहुत बड़ा खण्ड अचरम (मध्य में) है।) चरम (बहुवचन-मध्यवर्ती) है—(क्योंकि रत्नप्रभा के पर्यन्तवर्ती खण्ड जो लोकान्तरूप हैं वे अनेक हैं।)

चरमान्तप्रदेश है—(लोकान्तरूप प्रदेश-चरमान्तप्रदेश है)।

अचरमान्त प्रदेश है—(चरमान्त प्रदेशों के मध्यवर्ती सभी प्रदेश अचरमान्त प्रदेश है।)

इस प्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है।

पुढवीअचरमाईणं अप्पाबहुयं—

१२१ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए अचरिमस्स य, चरिमाण य, चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

उ० गोयमा ! सव्वत्थोवे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं, अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं।

पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए चरिमंतपदेसा, अचरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया।

दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं, अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं, चरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा, अचरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंत पएसा य दो वि विसेसाहिया।

एवं जाव अहेसत्तमा।

—पण्ण० पद० १०; सु० ७७७-७७८।

पृथ्वियों के अचरमादि पदों का अल्प-वहुत्व—

१२१ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के (एकवचन) अचरम, (वहुवचन) चरम, (वहुवचन) चरमान्त प्रदेश (वहुवचन) और अचरमान्त प्रदेश—ये द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेश की अपेक्षा से तथा द्रव्य-प्रदेश (संयुक्त) की अपेक्षा से, कौन किन से अल्प है, वहुत (अनेक) है, तुल्य है या विशेषाधिक है ?

उ० हे गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प इस रत्नप्रभा पृथ्वी का एक अचरम है, इससे चरम असंख्य गुण हैं, इनसे अचरम और चरम (संयुक्त) विशेषाधिक हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा से सबसे अल्प इस रत्नप्रभा पृथ्वी के चरमान्त प्रदेश हैं, इनसे अचरमान्त प्रदेश असंख्यगुण हैं, इनसे चरमान्त प्रदेश तथा अचरमान्त प्रदेश (संयुक्त) विशेषाधिक हैं।

द्रव्य-प्रदेश (संयुक्त) की अपेक्षा से सबसे अल्प इस रत्नप्रभा पृथ्वी का (द्रव्य की अपेक्षा से) एक अचरम है, इनसे चरम असंख्यगुण है, इनसे अचरम तथा चरम (संयुक्त) विशेषाधिक है। (प्रदेशों की अपेक्षा से) इनसे चरमान्त प्रदेश असंख्यगुण हैं, इनसे अचरमान्तप्रदेश असंख्यगुण हैं, इनसे चरमान्त तथा अचरमान्त प्रदेश (संयुक्त) विशेषाधिक है।

इसी प्रकार यावत् सप्तम पृथ्वी पर्यन्त हैं।

रयणप्पभाईतो लोयंतंतरं—

१२२ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ केवतियं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ? दुवालसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते।

एवं दाहिणिल्लातो पच्चत्थिमिल्लातो उत्तरिल्लातो....।

प० सक्करप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ केवतियं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! तिभागूणेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते।

एवं चउद्दिसिं पि।

प० वालुयप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ केवतियं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! सतिभागेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते।

एवं चउद्दिसिं पि।

रत्नप्रभादि से लोकांत का अन्तर—

१२२ : प्र० भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्वी चरमान्त से बाधारहित लोकांत कितनी दूर कहा गया है ?

उ० गौतम ! वारह योजन (दूर) बाधारहित लोकांत कहा गया है।

इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर के चरमान्तों से भी है।

प्र० शर्कराप्रभा पृथ्वी के पूर्वी चरमान्त से वाधारहित लोकांत कितनी दूर कहा गया है ?

उ० त्रिभागन्यून तेरह योजन (दूर) वाधारहित लोकांत कहा गया हैं।

इसी प्रकार चारों दिशाओं से भी है।

प्र० वालुकाप्रभा पृथ्वी के पूर्वी चरमान्त से बाधारहित लोकांत कितना दूर कहा गया है ?

उ० गौतम ! तीन भाग सहित तेरह योजन (दूर) बाधारहित लोकांत कहा गया है।

इसीप्रकार चारों दिशाओं से भी है।

एवं सव्वासि चउसु वि दिसासु पुच्छितव्वं।

पंकप्पभाए पुढवीए चोद्दसहिं जोयणेहिं अवाधाए लोयंते पण्णत्ते।

पंचमाए—तिभागूणेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अवाधाए लोयंते पण्णत्ते।

छट्ठीए—सतिभागेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अवाधाए लोयंते पण्णत्ते।

सत्तमीए—सोलसहिं जोयणेहिं अवाधाए लोयंते पण्णत्ते।

एवं जाव उत्तरिल्लातो।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ७५।

इसीप्रकार सभी पृथ्वियों की चारों दिशाओं के सम्बन्ध में प्रश्न करने चाहिए।

पंकप्रभा पृथ्वी से चौदह योजन (दूर) बाधारहित लोकांत कहा गया है।

पाँचवीं (पृथ्वी) से तीन भाग न्यून पन्द्रह योजन (दूर) बाधारहित लोकांत कहा गया है।

छठी (पृथ्वी) से तीन भाग सहित पन्द्रह योजन (दूर) बाधारहित लोकांत कहा गया है।

सातवीं (पृथ्वी) से सोलह योजन (दूर) बाधारहित लोकांत कहा गया है।

इसी प्रकार यावत् उत्तर के (चरमान्त) से भी है।

अधोलोगखेत्तलोए दव्व-काल-भावओ आधेयपरूवणं—

१२३ : (१) दव्वओ णं अहेलोगखेत्तलोए अणंता जीवदव्वा, अणंता अजीवदव्वा, अणंता जीवाजीवदव्वा।

(२) कालओ णं अहेलोगखेत्तलोए न कयावि न आसी, न कयावि न भवइ, न कयाधि न भविस्सइ य, धुवे, णियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, णिच्चे।

(३) भावओ णं अहेलोगखेत्तलोए अणंता वण्णपज्जवा, गंधपज्जवा, रसपज्जवा, फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा, अणंता गरुयलहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा[1]।

—भग० स० ११, उ० १०, सु० २२, २८, २५।

द्रव्य-काल और भाव से अधोलोक-क्षेत्रलोक का आधेय प्ररूपण—

१२३ : (१) द्रव्य से अधोलोक-क्षेत्रलोक में अनन्त जीव द्रव्य हैं अनन्त अजीव द्रव्य है और अनन्त जीवाजीव द्रव्य हैं।

(२) काल से अधोलोक क्षेत्रलोक कभी नहीं था—ऐसा नहीं है, कभी नहीं है—ऐसा नहीं है और कभी नहीं होगा—ऐसा भी नहीं है, था, है और रहेगा, (वह) ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है।

(३) भाव से अधोलोक-क्षेत्रलोक में अनन्त वर्णपर्यव हैं, गन्ध-पर्यव हैं, रसपर्यव हैं और स्पर्शपर्यव हैं। अनन्त संस्थानपर्यव हैं, अनन्त गुरुलघुपर्यव हैं तथा अनन्त अगुरुलघुपर्यव हैं।....

अहेलोगस्स एगागासपएसे जीवाजीवा तद्देसपएसा य—

१२४ : प० अहेलोगखेत्तलोगस्स णं भंते! एगम्मि आगासपएसे किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपएसा?

उ० गोयमा! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि।

जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा,

अधोलोक के एक आकाशप्रदेश में जीव, अजीव और उनके देश-प्रदेश—

१२४ : प्र० भगवन्! अधोलोक-क्षेत्रलोक के एक आकाशप्रदेश में जीव हैं, जीवों के देश हैं, जीवों के प्रदेश हैं, अजीव हैं; अजीवों के देश हैं, अजीवों के प्रदेश हैं?

उ० गौतम! (वहाँ) जीव नहीं है (किन्तु) जीवों के देश हैं, जीवों के प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीवों के देश हैं और अजीवों के प्रदेश भी हैं।

वहाँ (१) जो जीवों के देश हैं वे निश्चितरूप से एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं।

---

1. [illegible] व्याख्याप्रज्ञप्ति में काल और भाव सम्बन्धी सूत्र २४, २५ में जो पाठ है उसकी पूर्ति [illegible] श० २, उ० १, सूत्र [illegible] [१] के अनुसार की है।

अहवा—एगिंदियदेसा य, बेइंदियस्स देसे,

अहवा—एगिंदियदेसा य, बेइंदियाण य देसा,
एवं मज्झिल्लविरहिओ जाव अणिंदिएसु जाव।

अहवा—एगिंदियदेसा य, अणिंदियाणदेसा।
जे जीवपदेसा ते नियमं एगिंदियपएसा,

अहवा—एगिंदियपएसा य, बेइंदियस्स पएसा,
अहवा—एगिंदियपएसा य, बेइंदियाण य पएसा,
एवं आदिल्लविरहिओ जाव पंचिंदिएसु।

अणिंदिएसु तियभंगो।
जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—रूवीअजीवा य, अरूवीअजीवा य।
रूवी तहेव।
जे अरूवी अजीवा ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—
नो धम्मत्थिकाए। (१) धम्मत्थिकायस्स देसे, (२) धम्मत्थिकायस्सपदेसे, एवं ३-४ अधम्मत्थिकायस्स वि, (५) अद्धासमए।

—भग० स० ११, उ० १०, सु० १७।

अथवा—(२) एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं और बेइन्द्रिय का एक देश हैं।
अथवा—(३) एकेन्द्रियों के देश हैं और बेइन्द्रियों के देश हैं।
इसप्रकार मध्यमभंगरहित (शेषभंग) यावत् अनिन्द्रियों के हैं यावत्—
अथवा—एकेन्द्रियों के देश हैं और अनिन्द्रियों के देश हैं।
वहाँ जो जीवों के प्रदेश हैं वे निश्चितरूप से एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं।
अथवा— एकेन्द्रियों के प्रदेश हैं और एक बेइन्द्रिय के प्रदेश है।
अथवा—एकेन्द्रियों के प्रदेश हैं और बेइन्द्रियों के प्रदेश हैं।
इसी प्रकार प्रथमभंग रहित (शेषभंग) यावत् पंचेन्द्रियों के हैं।
अनिन्द्रियों के तीनों भंग कहने चाहिये।
वहाँ जो अजीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा--रूपी अजीव और अरूपी अजीव।
रूपी अजीवों के कथन के समान है।
वहाँ जो अरूपी अजीव हैं वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—धर्मास्तिकाय नहीं है। (१) धर्मास्तिकाय का देश। (२) धर्मास्तिकाय का प्रदेश। (३) अधर्मास्तिकाय का देश। (४) अधर्मास्तिकाय का प्रदेश। (५) अद्धासमय।""

ओवासंतराईणं गरुयत्ताईपरूवणं—

१२५ : प० (१) सत्तमे णं भंते! ओवासंतरे किं गरुए? (२) लहुए? (३) गरुयलहुए? (४) अगरुयलहुए?
उ० (१) गोयमा! नो गरुए। (२) नो लहुए। (३) नो गरुयलहुए। (४) अगरुयलहुए।
प० (१) सत्तमे णं भंते! तणुवाते किं गरुए? (२) लहुए? (३) गरुयलहुए? (४) अगरुयलहुए?
उ० (१) गोयमा! नो गरुए। (२) नो लहुए। (३) गरुयलहुए। (४) नो अगरुयलहुए।
एवं सत्तमे घणवाए, सत्तमे घणोदही, सत्तमा पुढवी।
ओवासंतराइं सव्वाइं जहा सत्तमे ओवासंतरे।
सेसा जहा तणुवाए। एवं ओवास-वाय-घणउदही-पुढवी-दीवा य सागरा वासा।

—भग० स० १, उ० ६, सु० ४-५ [१-४]।

अवकाशान्तर आदि का गुरुत्वादि प्ररूपण—

१२५ : प्र० (१) भगवन्! सप्तम अवकाशान्तर क्या गुरु है? (२) लघु है? (३) गुरु-लघु है? (४) या अगुरु-लघु है?
उ० (१) गौतम! (सप्तम अवकाशान्तर) गुरु नहीं हैं? (२) लघु नहीं है। (३) गुरुलघु नहीं है। (४) अगुरुलघु है।
प्र० (१) भगवन्! सप्तम तनुवात क्या गुरु है? (२) लघु है? (३) गुरु लघु है? (४) या अगुरु लघु है?
उ० (१) गौतम! (सप्तम तनुवात) गुरु नहीं है। (२) लघु नहीं है। (३) गुरु लघु है। (४) अगुरु लघु नहीं हैं।
इसप्रकार सप्तम घनवात, सप्तम घनोदधी और सप्तमा पृथ्वी है।
सभी अवकाशान्तर सप्तम अवकाशान्तर जैसे हैं।
जिस प्रकार तनुवात गुरु-लघु है इसी प्रकार अवकाश घनवात घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, सागर और वर्ष (क्षेत्र) हैं।""

नेरइयठाणाइं—

१२६ : प० [१] कहि णं भंते ! नेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ! नेरइया परिवसंति ?

उ० [१] गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु पुढवीसु, तं जहा—

(१) रयणप्पभाए। (२) सक्करप्पभाए।
(३) वालुयप्पभाए। (४) पंकप्पभाए।
(५) धूमप्पभाए। (६) तमप्पभाए।
(७) तमतमप्पभाए।

एत्थ णं णेरइयाणं चउरासीति णिरयावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं।'

तेण णरगा अंतो वट्टा, बाहिं चउरंसा, अहे खुरप्पसंठाणसंठिया, णिच्चंधयारतमसा, ववगयगह-चंद-सूर-णक्खत्त-जोइसपहा,

मेद-वसा-पूय-रुहिर-मंस चिक्खल्ललित्ताणुलेवणतला, असुई, वीसा, परमदुब्भिगंधा,

काऊअगणिवण्णाभा, कक्खडफासा, दुरहियासा, असुभा णरगा, असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं णेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

[२] उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,
समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,
सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, एत्थ णं बहवे णेरइया परिवसंति।

काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !'

ते णं तत्थ णिच्चं भीता, णिच्चं तत्था, णिच्चं तसिया, णिच्चं उव्विग्गा, णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।'

— पण्ण० पद २, सु० १६७।

नैरयिकों के स्थान—

१२६ : प्र० [१] हे भगवन् ! पर्याप्त तथा अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

[२] हे भगवन् ! वे नैरयिक कहाँ रहते हैं ?

उ० [१] हे गौतम ! सात पृथ्वियों में इन नैरयिकों के अपने-अपने स्थान हैं, यथा—(१) रत्नप्रभा, (२) शर्कराप्रभा, (३) वालुकाप्रभा, (४) पंकप्रभा, (५) धूमप्रभा, (६) तमःप्रभा, (७) तमस्तमःप्रभा—

इन पृथ्वियों में नैरयिकों के चौरासी लाख नरकावास हैं—ऐसा कहा गया है।

वे नरकावास अन्दर से वृत्त (गोल) हैं, बाहिर से चतुष्कोण हैं, नीचे से तीक्ष्ण खुरपे जैसी आकृति वाले हैं। प्रकाश के अभाव से सदा अन्धकार वाले हैं क्योंकि ग्रह-चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र—इन ज्योतिषी देवों के (संचार) पथ वहाँ नहीं है।

उन (नरकावासों) के तल मेद-वसा-पूय-पटल-रुधिर-मांस के कीचड़ से लिप्त हैं, अशुचिविष्ठा जैसी अत्यन्त दुर्गन्ध वाले हैं।

कापोता जैसे वर्ण वाले हैं, कर्कश स्पर्श वाले हैं, असह्य हैं, अतएव ये नरकावास अशुभ हैं। इन नरकावासों में वेदना भी अशुभ है—इन नरकावासों में पर्याप्त तथा अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहे गये हैं।

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में ये नैरयिक उत्पन्न होते हैं।

लोक के असंख्यातवें भाग में ये नैरयिक समुद्घात करते हैं।

लोक के असंख्यातवें भाग में इन नैरयिकों के अपने-अपने स्थान हैं। इनमें अनेक नैरयिक रहते हैं।

ये नैरयिक कृष्ण वर्णवाले हैं, कृष्ण कान्तिवाले हैं, जिनके देखने से अत्यधिक रोमाञ्च हों—ऐसे भयंकर हैं, त्रास उत्पन्न करने वाले हैं, हे आयुष्मन् ! श्रमण ! ये नैरयिक वर्ण से अत्यन्त कृष्ण वर्ण वाले हैं।

इन नरकावासों में ये नैरयिक नित्य भयभीत रहते हैं, नित्य त्रस्त रहते हैं, (परमाधामियों द्वारा या परस्पर) नित्य त्रस्त रहते हैं, नित्य उद्विग्न रहते हैं और नित्य (निरन्तर) अशुभ-सम्बद्ध नरक भय का अनुभव करते रहते हैं।

रयणप्पभापुढविनेरइयठाणाइं—

१२७ : प० [१] कहि णं भंते ! रयणप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक स्थान—

१२७ : प्र० [१] हे भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त और [illegible]

[२] कहि णं भंते ! रयणप्पभापुढविणेरइया परिवसंति?

उ० [१] गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं रयणप्पभापुढविणेरइयाणं तीसं णिरयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।[1]

ते णं णरगा अंतो वट्टा, बाहिं चउरंसा, (जाव) असुभा णरगेसु वेयणाओ।[2]

एत्थ णं रयणप्पभापुढविणेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

[२] उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे—एत्थ णं बहवे रयणप्पभापुढविणेरइया परिवसंति।

काला (जाव) णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

—पण्ण० पद० २, सु० १६८।

[२] हे भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहाँ रहते हैं?

उ० [१] हे गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन की मोटाई वाली इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार अन्दर प्रवेश करने पर और नीचे एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठत्तर हजार योजनप्रमाण मध्यभाग में रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के तीसलाख नरकावास हैं – ऐसा कहा गया है।

ये नरकावास अन्दर से वृत्त (गोल) हैं, बाहर से चतुष्कोण हैं (यावत्) इन नरकावासों में वेदना भी अशुभ है।

इन नरकावासों में रत्नप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त तथा अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहे गये हैं।

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में ये नैरयिक उत्पन्न होते हैं।

लोक के असंख्यातवें भाग में ये नैरयिक समुद्घात करते हैं।

लोक के असंख्यातवें भाग में इन नैरयिकों के अपने स्थान हैं। इनमें रत्नप्रभा पृथ्वी के अनेक नैरयिक रहते हैं।

(ये नैरयिक) कृष्ण वर्ण वाले हैं (यावत्) नरकभयका अनुभव करते हैं।

रयणप्पभाए छ महानिरया—

१२८ : जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणमिमीसे रयणप्पभाए पुढवीए छ अवक्कंतमहानिरया पण्णत्ता, तं जहा—

(१) लोले, (२) लोलुए,
(३) उदड्ढे, (४) निदड्ढे,
(५) जरए, (६) पज्जरए।

—ठाणं० ६, सु० ५१५।

रत्नप्रभा में छ महानरकावास—

१२८ : जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत की दक्षिण दिशा की ओर रत्नप्रभा पृथ्वी में छह अपक्रान्त (अत्यन्त निकृष्ट) महा नरकावास कहे गये हैं, यथा—

(१) लोल। (२) लोलुक।
(३) उद्दग्ध। (४) निर्दग्ध।
(५) जरक। (६) और प्रजरक।

सक्करप्पभा नेरइयठाणाइं—

१२९ : प० [१] कहि णं भंते ! सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

[२] कहि णं भंते ! सक्करप्पभापुढविनेरइया परिवसंति?

शर्कराप्रभा के नैरयिक स्थान—

१२९ : प्र० [१] हे भगवन् ! शर्कराप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं?

[२] हे भगवन् ! शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहाँ रहते हैं?

---

१. (क) सम० ३०, सु० ८।
(ख) भग० स० १३, उ० १, सु० ४।
(ग) भग० स० २, उ० ५, सु० २।
(घ) भग० स० ६, उ० ६, सु० १ [१-२]।
(ङ) भग० स० २५, उ० ३, सु० ११४।
(च) सम० सु० १४९, १५०।

२. जीवा० प० ३, उ० १, सु० ८१।

उ० [१] गोयमा ! सक्करप्पभाए पुढवीए बत्तीसुत्तर जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता मज्झे तीसुत्तरे जोयणसयसहस्से—एत्थ णं सक्करप्पभा पुढविणेरइयाणं पणवीसं णिरयावाससयसहस्सा हवंतीति मक्खायं ।'

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा (जाव) असुभा णरगेसु वेयणाओ ।'

एत्थ णं सक्करप्पभा पुढविणेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

[२] उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे—तत्थ णं बहवे सक्करप्पभा पुढविणेरइया परिवसंति ।

काला (जाव) णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

—पण्ण० पद० २, सु० १६६ ।

उ० [१] हे गौतम ! एक लाख बत्तीस हजार योजन की मोटाई वाली शर्कराप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार अन्दर प्रवेश करने पर और नीचे एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख तीस हजार योजन प्रमाण मध्यभाग में शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के पच्चीस लाख नरकावास हैं—ऐसा कहा गया है ।

ये नरकावास अन्दर से वृत्ताकार हैं, बाहर से चतुष्कोण हैं (यावत्) इन नरकावासों में वेदना भी अशुभ है ।

इन नरकावासों में शर्कराप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त तथा अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहे गये हैं ।

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में ये नैरयिक उत्पन्न होते हैं ।

लोक के असंख्यातवें भाग में ये नैरयिक समुद्घात करते हैं ।

लोक के असंख्यातवें भाग में इन नैरयिकों के अपने स्थान हैं इनमें शर्कराप्रभा पृथ्वी के अनेक नैरयिक रहते हैं ।

ये नैरयिक कृष्ण वर्ण वाले हैं (यावत्) नरक भयका अनुभव करते रहते हैं ।

वालुयप्पभा नेरइयठाणाइं—

१३० : प० [१] कहि णं भंते ! वालुयप्पभा पुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ! वालुयप्पभा पुढविनेरइया परिवसंति ?

उ० [१] गोयमा ! वालुयप्पभाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तर-जोयणसयसहस्स बाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे छव्वीसुत्तरे जोयणसयसहस्से—एत्थ णं वालुयप्पभा पुढविनेरइयाणं पण्णरस निरयावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं ।'

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा (जाव असुभा णरगेसु वेयणाओ'—एत्थ णं वालुयप्पभा पुढविनेरइयाणं पज्जत्ता-पज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

[२] उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे—तत्थ णं बहवे वालुयप्पभा पुढविनेरइया परिवसंति ।

[illegible]

वालुकाप्रभा के नैरयिक स्थान—

१३० : प्र० [१] हे भगवन् ! वालुकाप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

[२] हे भगवन् ! वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहाँ रहते हैं ?

उ० [१] हे गौतम ! एक लाख अट्ठाईस हजार योजन की मोटाई वाली वालुकाप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अन्दर प्रवेश करने पर और नीचे एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख छब्बीस हजार योजनप्रमाण मध्यभाग में वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के पन्द्रह लाख नरकावास हैं—ऐसा कहा गया है ।

पंकप्पभानेरइयाणं ठाणाइं—

१३१ : प० [१] कहि णं भंते ! पंकप्पभा पुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ! पंकप्पभा पुढविनेरइया परिवसंति ?

उ० [१] गोयमा ! पंकप्पभाए पुढवीए वीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे अट्ठारसुत्तरे जोयणसयसहस्से—एत्थ णं पंकप्पभा पुढविणेरइया णं दस णिरयावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं ।[1]

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा (जाव) असुभा णरगेसु वेयणाओ[2]—एत्थ णं पंकप्पभा पुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

[२] उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,
समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,
सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे—तत्थ णं बहवे पंकप्पभा पुढविनेरइया परिवसंति ।

काला (जाव) णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

—पण्ण० पद० २, सु० १७१ ।

पंकप्रभा के नैरयिक स्थान—

१३१ : प्र० [१] हे भगवन् ! पंकप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं !

[२] हे भगवन् ! पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहाँ पर रहते हैं ?

उ० [१] हे गौतम ! एक लाख वीस हजार योजन की मोटाई वाली पंकप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अन्दर से प्रवेश करने पर नीचे एक हजार योजन छोड़कर एक लाख अठारह हजार योजन प्रमाण मध्यभाग में पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के दस लाख नरकावास हैं—ऐसा कहा गया है ।

ये नरकावास अन्दर से वृत्ताकार हैं, बाहर से चतुष्कोण हैं, (यावत्) इन नरकावासों में वेदना भी अशुभ है—इन नरकावासों में पंकप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त तथा अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहे गये हैं ।

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में ये नैरयिक उत्पन्न होते हैं।
लोक के असंख्यातवें भाग में ये नैरयिक समुद्घात करते हैं ।
लोक के असंख्यातवें भाग में इन नैरयिकों के अपने स्थान है, इनमें पंकप्रभा पृथ्वी के अनेक नैरयिक रहते हैं ।

ये नैरयिक कृष्ण वर्ण वाले हैं (यावत्) नरकभयका अनुभव करते रहते हैं ।

पंकप्पभाए छ महानिरया—

१३२ : चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए छ अवक्कंता महानिरया पण्णत्ता, तं जहा—

(१) आरे, (२) वारे,
(३) मारे, (४) रोरे,
(५) रोरुए, (६) खाडखडे ।

—ठाणं० ६, सु० ५१५ ।

पंकप्रभा में छ महानरकावास—

१३२ : चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में छह अपक्रान्त महानरकावास कहे गये हैं, यथा—

(१) आर । (२) वार ।
(३) मार । (४) रोर ।
(५) रौरव । (६) खाडखड ।

धूमप्पभानेरइयाणं ठाणाइं—

१३३ : प० [१] कहि णं भंते ! धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ! धूमप्पभापुढविनेरइया परिवसंति ?

धूमप्रभा के नैरयिक स्थान—

१३३ : प्र० [१] हे भगवन् ! धूमप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

[२] हे भगवन् ! धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहाँ रहते हैं ?

---

१. (क) ठाणं १०, सु० ७५७ । (ख) भग० स० १३, उ० १, सु० १३ ।
(ग) सम० १०, सु० ११ ।
२. जीवा० प० ३, उ० १, सु० ८१ ।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे—तत्थ णं बहवे तमप्पभा पुढविनेरइया परिवसंति।
काला (जाव) नरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

—पण्ण० पद० २, सु० १७३।

लोक के असंख्यातवें भाग में इन नैरयिकों के अपने स्थान है, इनमें तमःप्रभा पृथ्वी के अनेक नैरयिक रहते हैं।

ये नैरयिक कृष्ण वर्ण वाले हैं (यावत्) नरक भयका अनुभव करते रहते हैं।

तमतमापुढविनेरइयाणं ठाणाइं—

१३५ : प० [१] कहि णं भंते ! तमतमापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ? तमतमापुढविनेरइया परिवसंति ?

उ० [१] गोयमा ! तमतमाए पुढवीए अट्ठोत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, हेट्ठा वि अद्धतेवण्णं वज्जेत्ता, मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु— एत्थ णं तमतमापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं[1] पंचदिसिं पंच अणुत्तरा महइमहालया महाणिरया पण्णत्ता, तं जहा—(१) काले, (२) महाकाले, (३) रोरुए, (४) महारोरुए, (५) अप्पइट्ठाणे।[2]
ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा (जाव) असुभा नरगेसु वेयणाओ[3]—एत्थ णं तमतमापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

[२] उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,
समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे,
सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे—तत्थ णं बहवे तमतमापुढविनेरइया परिवसंति।[4]
काला (जाव) णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

—पण्ण० पद० २, सु० १७४।

तमस्तमा पृथ्वी के नैरयिक स्थान—

१३५ : प्र० [१] हे भगवन् ! तमस्तमःप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

[२] हे भगवन् ! तमस्तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहाँ रहते हैं ?

उ० [१] हे गौतम ! एक लाख आठ हजार योजन की मोटाई वाली तमस्तमःप्रभा पृथ्वी के ऊपर से साढ़े बावन हजार योजन अन्दर प्रवेश करने पर और नीचे साढ़े बावन हजार योजन छोड़ने पर तीन हजार योजन प्रमाण मध्यभाग में तमस्तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के पाँच दिशाओं में अति विशाल पाँच नरकावास कहे गये हैं, यथा—(१) काल, (२) महाकाल, (३) रौरव, (४) महारौरव, (५) और अप्रतिष्ठान।

ये नरकावास अन्दर से वृत्ताकार हैं, बाहर से चतुष्कोण हैं, यावत् इन नरकावासों में वेदना भी अशुभ है। इन नरकावासों में तमस्तमःप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त तथा अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहे गये हैं।

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में ये नैरयिक उत्पन्न होते हैं।
लोक के असंख्यातवें भाग में ये नैरयिक समुद्घात करते हैं।
लोक के असंख्यातवें भाग में इन नैरयिकों के अपने स्थान हैं, इनमें तमस्तमःप्रभा पृथ्वी के अनेक नैरयिक रहते हैं।
ये नैरयिक कृष्ण वर्ण वाले हैं यावत् नरक भयका अनुभव करते रहते हैं।

---

१. सम० सु० १४६, १५०।
२. (क) भग० स० १३, उ० १, सु० १६। (ख) ठाणं० ५, उ० ३, सु० ४५१।
३. जीवा० प० ३, उ० १, सु० ८१।
४. "पर्याप्त तथा अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ है ?" यह प्रथम प्रश्न है और "वे कहाँ रहते हैं ?" यह द्वितीय प्रश्न है। इन दोनों प्रश्नों के उत्तर भी यहाँ क्रमशः दो ही दिये हैं।
महावीर विद्यालय से प्रकाशित प्रज्ञापना स्थान पद सूत्रांक १६७, १६८ और १६९ में यही क्रम रहा। किन्तु सूत्रांक १७० से १७४ पर्यन्त सभी सूत्रों में केवल प्रथम प्रश्न है, द्वितीय प्रश्न नहीं है। जबकि पूर्ववत् उत्तर दोनों ही हैं। इन सूत्रों में संक्षिप्त वाचनासूचक जाव, जहा, एवं आदि संकेत वाक्य भी नहीं है।
पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ सूत्रांक १७० से १७४ पर्यन्त सभी में दो प्रश्न और उनके दो उत्तर क्रमशः दिये गये हैं।

१४२ : चउसु पुढवीसु एक्कचत्तालीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, तं जहा—रयणप्पभाए, पंकप्पभाए, तमाए, तमतमाए।

—सम० ४१, सु० २।

१४२ : चार पृथ्वियों में इकतालीस लाख नरकावास कहे गये हैं, यथा—रत्नप्रभा, पंकप्रभा, तमःप्रभा और तमस्तमःप्रभा।

१४३ : पढम-चउत्थ-पंचमासु पुढवीसु तेयालीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

—सम० ४३, सु० २।

१४३ : प्रथम, चतुर्थ तथा पंचम पृथ्वियों में तियालीस लाख नरकावास कहे गये हैं।

१४४ : पढम-बिइयासु दोसु पुढवीसु पणवन्नं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

—सम० ५५, सु० ५।

१४४ : प्रथम तथा द्वितीय, दोनों पृथ्वियों में पचपन लाख नरकावास कहे गये हैं।

१४५ : पढम-दोच्च-पंचमासु तिसु पुढवीसु अट्ठावन्नं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

—सम० ५८, सु० १।

१४५ : प्रथम, द्वितीय और पंचम, इन तीनों पृथ्वियों में अठावन लाख नरकावास कहे गये हैं।

१४६ : चउत्थवज्जासु छसु पुढवीसु चोवत्तरिं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

—सम० ७४, सु० ४।

१४६ : चतुर्थ को छोड़कर शेष छह पृथ्वियों में चौहत्तर लाख नरकावास कहे गये हैं।

पुढवीसु निरयावासा—

१४७ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! तीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

एवं एएणं अभिलावेणं सव्वासिं पुच्छा, इमा गाहा अणुगंतव्वा—

(१) तीसा य
(२) पण्णवीसा
(३) पण्णरस
(४) दसेव
(५) तिण्णि य हवंति।
(६) पंचूणसयसहस्सं
(७) पंचेव अणुत्तरा णरगा ॥[1]

पृथ्वियों में नरकावास—

१४७ : प्र० भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितने लाख नरकावास कहे गये हैं ?

उ० गौतम ! तीसलाख नरकावास कहे गये हैं।

इस प्रकार ऐसे प्रश्नोत्तरों से इस गाथा की व्याख्या करनी चाहिए।

रत्नप्रभा में तीस लाख नरकावास हैं।
शर्कराप्रभा में पच्चीसलाख नरकावास हैं,
वालुकाप्रभा में पन्द्रहलाख नरकावास हैं,
पंकप्रभा में दसलाख नरकावास हैं,
धूमप्रभा में तीनलाख नरकावास हैं,
तमःप्रभा में पाँच कम एकलाख नरकावास हैं,
तमस्तमःप्रभा में पाँच वहुत वड़े नरकावास है,

---

१. (क) सम० सु० १५०। (ख) भग० स० १, उ० ५, सु० १, २।
(ग) पण्ण० पद २, सु० १७४।

शेप दस प्रस्तटों में से प्रत्येक प्रस्तट की पूर्वादि चारों दिशा तथा विदिशाओं में से एक-एक नरकावास कम होने पर प्रत्येक प्रस्तट में ८, ८ नरकावास कम हो जाते हैं।

प्रथम प्रस्तट में २८५ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
द्वितीय प्रस्तट में २७७ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
तृतीय प्रस्तट में २६९ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
चतुर्थ प्रस्तट में २६१ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
पंचम प्रस्तट में २५३ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
षष्ठ प्रस्तट में २४५ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
सप्तम प्रस्तट में २३७ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
अष्टम प्रस्तट में २२९ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
नवम प्रस्तट में २२१ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
दशम प्रस्तट में २१३ आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं।
एकादश प्रस्तट में २०५ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।

इस प्रकार ११ प्रस्तटों में आवलिकाप्रविष्ट नरकावास २६९५ हैं और आवलिकावाह्य (प्रकीर्णक) नरकावास चौवीस लाख सत्तानवें हजार तीन सौ पाँच (२४,९७,३०५) हैं।

आवलिकाप्रविष्ट और आवलिका वाह्य नरकावासों की संयुक्त संख्या पच्चीस लाख (२५०००००) है।

गाहा—सत्ताणउइ सहस्सा, चउवीसं लक्ख तिसय पंचऽहिया।
वीयाए सेढिगया, छव्वीससया उ पणनउया ॥

(३) वालुकाप्रभा में ९ प्रस्तट है—

प्रथम प्रस्तट की पूर्वादि चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में २५, २५ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं और प्रत्येक विदिशा में २४, २४ आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। मध्य में एक नरकेन्द्रक—प्रमुख नरकावास है। इस प्रकार प्रथम प्रस्तट में आवलिका प्रविष्ट नरकावास १९७ हैं।

शेप आठ प्रस्तटों की प्रत्येक दिशा-विदिशा में एक-एक नरकावास कम होने पर प्रत्येक प्रस्तट में आठ-आठ नरकावास कम हो जाते हैं।

प्रथम प्रस्तट में १९७ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
द्वितीय प्रस्तट में १८९ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
तृतीय प्रस्तट में १८२ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
चतुर्थ प्रस्तट में १७३ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
पंचम प्रस्तट में १६५ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
पष्ठ प्रस्तट में १५७ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
सप्तम प्रस्तट में १४९ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
अष्टम प्रस्तट में १४१ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।
नवम प्रस्तट में १३३ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं।

इस प्रकार ९ प्रस्तटों में आवलिकाप्रविष्ट नरकावास १४८५ हैं। और आवलिका वाह्य नरकावास चौदह लाख अठानवे हजार पाँच सौ पन्द्रह (१४,९८,५१५) हैं।

आवलिकाप्रविष्ट और आवलिकावाह्य नरकावासों की संयुक्त संख्या पन्द्रह लाख (१५०००००) हैं।

गाहा—पंचनया पन्नारा, अडनवइ सहस्स लक्ख चोद्दस य।
तइयाए सेढिगया, पणतीया चोद्दससया उ ॥

(४) पंकप्रभा में सात प्रस्तट हैं—

प्रथम प्रस्तट की पूर्वादि चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में १६, १६ आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। और प्रत्येक विदिशा में १५, १५ आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। मध्य में एक—नरकेन्द्र प्रमुख नरकावास है। (क्रमशः)

णरगाणं-पमाणं—

१४८ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! तिण्णि जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, तं जहा—हेट्ठा घणा सहस्सं, मज्झे झुसिरा सहस्सं, उप्पि संकुइया सहस्सं ।

एवं जाव अहेसत्तमाए ।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ८२ ।

नरकावासों का प्रमाण—

१४८ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों की मोटाई कितनी कही गई हैं ?

उ० हे गौतम ! तीन हजार योजन की मोटाई कही गई है। यथा—नीचे एक हजार योजन घन हैं, मध्य में एक हजार योजन पोले हैं और ऊपर एक हजार योजन संकुचित है।

इसी प्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है।

१४९ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केवतियं आयाम-विक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. संखेज्जवित्थडा य, २. असंखेज्जवित्थडा य ।[1]

तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडा ते णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, संखेज्जाइं जोयण-सहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ।

तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, असंखेज्जाइ जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ।

एवं जाव तमाए ।

प० अहे सत्तमाए णं भंते ! पुढवीए णरगा केवतियं आयाम-विक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. संखेज्जवित्थडे[2] य, २. असंखेज्जवित्थडा य ।

तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडे से णं एक्कं जोयणसय-सहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, तिन्नि जोयणसयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि कोसे य अट्ठावीसं च धणुसतं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलयं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयण-सयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयण-सयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ८२ ।

१४९ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों का आयाम-विष्कम्भ (लम्बाई-चौड़ाई) कितना कहा गया है ? और उनकी परिधि कितनी कही गई है ?

उ० हे गौतम ! (इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास) दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) संख्येय विस्तार वाले, और (२) असंख्येय विस्तार वाले,

इनमें जो संख्येय विस्तार वाले हैं उनका आयाम-विष्कम्भ संख्येय सहस्रयोजन का है और परिधि भी संख्येय सहस्रयोजन की है।

जो असंख्येय विस्तार वाले हैं उनका आयाम-विष्कम्भ असंख्येय सहस्र योजन का है और परिधि भी असंख्येय सहस्र योजन की कही गई है।

इसी प्रकार यावत् (छठी) तमा (पृथ्वी) पर्यन्त है।

प्र० हे भगवन् ! नीचे सप्तम पृथ्वी के नारकावासों का आयाम-विष्कम्भ कितना कहा गया है और उनकी परिधि कितनी कही गई है ?

उ० हे गौतम ! (नीचे सप्तम पृथ्वी के नारकावास) दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) संख्येय विस्तारवाले और (२) असंख्येय विस्तारवाले।

इनमें जो संख्येय विस्तार वाले हैं उनका आयाम-विष्कम्भ एक लाख योजन का है और तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस एकसौ अठाईस धनुष कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल की परिधि वाले कहे गये हैं।

जो असंख्येय विस्तार वाले हैं। उनका आयाम-विष्कम्भ असंख्य लाख योजन का है और परिधि भी असंख्य लाख योजन की कही गई है।

१-२. भग० स० १३, उ० १, सु० ५-११ तथा १७ ।

णरगाणं-पमाणं—

१४८ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केवतियं वाहल्लेणं पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! तिण्णि जोयणसहस्साइं वाहल्लेणं पण्णत्ता, तं जहा—हेट्ठा घणा सहस्सं, मज्झे झुसिरा सहस्सं, उप्पि संकुइया सहस्सं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ८२।

नरकावासों का प्रमाण—

१४८ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों की मोटाई कितनी कही गई हैं ?

उ० हे गौतम ! तीन हजार योजन की मोटाई कही गई है। यथा—नीचे एक हजार योजन घन हैं, मध्य में एक हजार योजन पोले हैं और ऊपर एक हजार योजन संकुचित है।

इसी प्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है।

१४९ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केवतियं आयाम-विक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. संखेज्जवित्थडा य, २. असंखेज्जवित्थडा य।[1]

तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडा ते णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

एवं जाव तमाए।

प० अहे सत्तमाए णं भंते ! पुढवीए णरगा केवतियं आयाम-विक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. संखेज्जवित्थडे[2] य, २. असंखेज्जवित्थडा य।

तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडे से णं एक्कं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, तिन्नि जोयणसयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि कोसे य अट्ठावीसं च धणुसतं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलयं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयण-सयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयण-सयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ८२।

१४९ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों का आयाम-विष्कम्भ (लम्बाई-चौड़ाई) कितना कहा गया है ? और उनकी परिधि कितनी कही गई है ?

उ० हे गौतम ! (इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास) दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) संख्येय विस्तार वाले, और (२) असंख्येय विस्तार वाले,

इनमें जो संख्येय विस्तार वाले हैं उनका आयाम-विष्कम्भ संख्येय सहस्रयोजन का है और परिधि भी संख्येय सहस्रयोजन की है।

जो असंख्येय विस्तार वाले हैं उनका आयाम-विष्कम्भ असंख्येय सहस्र योजन का है और परिधि भी असंख्येय सहस्र योजन की कही गई है।

इसी प्रकार यावत् (छठी) तमा (पृथ्वी) पर्यन्त है।

प्र० हे भगवन् ! नीचे सप्तम पृथ्वी के नारकावासों का आयाम-विष्कम्भ कितना कहा गया है और उनकी परिधि कितनी कही गई है ?

उ० हे गौतम ! (नीचे सप्तम पृथ्वी के नारकावास) दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) संख्येय विस्तारवाले और (२) असंख्येय विस्तारवाले।

इनमें जो संख्येय विस्तार वाले हैं उनका आयाम-विष्कम्भ एक लाख योजन का है और तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस एकसौ अठाईस धनुष कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल की परिधि वाले कहे गये हैं।

जो असंख्येय विस्तार वाले हैं। उनका आयाम-विष्कम्भ असंख्य लाख योजन का है और परिधि भी असंख्य लाख योजन की कही गई है।

१-२. भग० स० ११, उ० १, सु० ५-११ तथा १७।

१५० : सीमंतए णं नरए पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ता ।

—सम० ४५, सु० २ ।

१५० : (प्रथम नरक के प्रथम प्रस्तट में) सीमंतक नामका नारकावास पैंतालीस लाख योजन के आयाम-विष्कम्भ वाला कहा गया है।

१५१ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरका केमहालिया पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्व-दीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्व-खुड्डाए वट्टे तेल्लापूय-संठाण-संठिए, वट्टे रहचक्कवाल-संठाणसंठिए, वट्टे पुक्खर-कण्णिया-संठाणसंठिए, वट्टे पडिपुण्णचंद-संठाण-संठिए, एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

देवे णं महिड्ढीए जाव महाणुभागे जाव इणामेव इणामेवत्ति कट्टु इमं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छेज्जा ।

से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरिताए चवलाए चंडाए सिग्घाए उद्धुयाए जयणाए [छेगाए] दिव्वाए दिव्वगतीए वीतिवयमाणे वीतिवयमाणे जहण्णेणं एगाहं वा, दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं छम्मासेणं वीतिवएज्जा ?

उ० अत्थेगतिए वीइवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीतिवएज्जा ।[1]

एमहालता णं गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा पण्णत्ता ।

एवं जाव अहेसत्तमाए ।[2]

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ८४ ।

१५१ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकावास कितने विशाल कहे गये हैं ?

उ० हे गौतम ! यह जम्बूद्वीप सब द्वीप-समुद्रों के मध्य में हैं, सबसे छोटा है, तेल में तले हुए पुये के समान वृत्त (गोल) संस्थान से संस्थित है, रथ के पहिये के समान वृत्त संस्थान से संस्थित है, पुष्करकर्णिका (कमल का मध्यभाग) के समान वृत्त संस्थान से संस्थित है, प्रतिपूर्ण चन्द्र के समान वृत्त संस्थान से संस्थित है, इसका आयाम-विष्कम्भ एकलाख योजन का है तथा तीनलाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोश एक सौ अट्ठाईस धनुष तेरह अंगुल और आधे अंगुल से कुल अधिक परिधि वाला कहा गया है ।

एक महर्धिक यावत् महानुभाग देव यावत् अभी आया अभी आया यों (कहता हुआ) तीन चुटकियों में इस पूर्वोक्त सम्पूर्ण जम्बू द्वीप नामक द्वीप की इक्कीसवार परिक्रमा करके शीघ्र आ जावे ।

प्र० (दौड़ लगाने में ऐसी शीघ्र गति वाला) वह देव उत्कृष्ट त्वरित चपल चण्ड शीघ्र उद्दत वेगयुक्त, दक्ष दिव्य देवगति से चलता-चलता जघन्य एक दिन, दो दिन, तीन दिन में उत्कृष्ट छः मास में (क्या उन नारकावासों को) पार कर सकता है ?

उ० कुछ नरकावासों को पार कर सकता है और कुछ नारकावासों को नहीं पार कर सकता है ।

हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास इतने विशाल कहे हैं ।

इसी प्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है ।

णरगाणं संठाणं—

नरकावासों के संस्थान—

१५२ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरका किं-संठिया पण्णत्ता ?

१५२ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास किस संस्थान के कहे गये हैं ?

---

१. प्रथम नरक के प्रथम प्रस्तट में सीमंतक नरकावास पैंतालीस लाख योजन का लम्बा चौड़ा है, इसलिए दिव्य देव गति द्वारा पार किया जा सकता है किन्तु असंख्य योजन लम्बे-चौड़े नरकावास दिव्य देवगति द्वारा भी छ मास की अवधि में पार नहीं किये जा सकते हैं।

२. सप्तम नरक के पाँच नरकावासों में मध्य (तृतीय) नरकावास केवल एकलाख योजन के आयाम-विष्कम्भ वाला है; इस लिए दिव्य देवगति द्वारा अल्पावधि में पार किया जा सकता है किन्तु शेष चार नरकावास असंख्य योजन लम्बे-चौड़े हैं अतः वे छ मास की अवधि में पार नहीं किया जा सकते हैं ।

उ० गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) आवलिय-पविट्ठा य।

(२) आवलिय-बाहिरा य।

तत्थणं जे ते आवलिय-पविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—वट्टा, तंसा, चउरंसा।

तत्थ णं जे ते आवलिय-बाहिरा ते णाणासंठाण-संठिया पण्णत्ता, तं जहा—

१. अयकोट्ठ-संठिया, २. पिट्ठपयणग-संठिया,
३. कंडू-संठिया, ४. लोही-संठिया,
५. कडाह-संठिया, ६. थाली-संठिया,
७. पिहडग-संठिया, ८. किमियड-संठिया,
९. किन्नपुडग-संठिया, १०. उडव-संठिया,
११. मुरव-संठिया, १२. मुयंग-संठिया,
१३. नंदिमुयंग-संठिया, १४. आलिंगक-संठिया,
१५. सुघोस-संठिया, १६. दद्दरय-संठिया,
१७. पणव-संठिया, १८. पडह-संठिया,
१९. भेरी-संठिया, २०. झल्लरी-संठिया,
२१. कुतुंबक-संठिया २२. नालि संठिया।

एवं जाव तमाए।

प० अहे सत्तमाए णं भंते ! पुढवीए णरका किंसंठिया पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) वट्टे य, (२) तंसा य।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ८२।

उ० हे गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) आवलिकाप्रविष्ट।

(२) आवलिकाबाह्य।

इनमें जो आवलिका प्रविष्ट हैं वे तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा—१. वृत्त (गोल), २. त्रिकोण, और ३. चतुष्कोण।

तथा जो आवलिका बाह्य हैं वे नाना (अनेक) संस्थानों में स्थित कहे हैं, यथा—

१. अयकोष्ठ-संस्थान, २. पिष्टपचनक-संस्थान,
३. कंडू-संस्थान, ४. लोही-संस्थान,
५. कटाह-संस्थान, ६. थाली-संस्थान,
७. पिहडक-संस्थान, ८. कृमिपट-संस्थान,
९. किन्नपुटक-संस्थान, १०. उडव-संस्थान,
११. मुरज-संस्थान, १२. मृदंग-संस्थान,
१३. नंदिमृदंग-संस्थान, १४. आलिंगक-संस्थान,
१५. सुघोषा संस्थान, १६. दर्दरक-स्थान,
१७. पणव-संस्थान, १८. पटह-संस्थान,
१९. भेरी-संस्थान, २०. झल्लरी-संस्थान,
२१. कुतुंबक-संस्थान, २२. नालि-संस्थान।

इसी प्रकार यावत् तमःप्रभा (छठी पृथ्वी) पर्यन्त है।

प्र० हे भगवन् ! नीचे सप्तम पृथ्वी में नरकावास किस (संस्थान) के कहे गये हैं ?

उ० हे गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) वृत्त और (२) त्रिकोण।

णरगाणं वण्णाइं—

१५३ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरया केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! काला कालावभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता।

एवं जाव अधे सत्तमाए।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केरिसया गंधेणं पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! से जहा नामए अहिमडेति वा गोमडेति वा सुणग-मडेति वा मज्जार-मडेति वा मणुस्स-मडेति वा महिस-मडेति वा मूसग-मडेति वा आस-मडेति वा हत्थि-मडेति वा सीह-मडेति वा वग्घ-मडेति वा विग-मडेति वा दीविय-मडेति वा;

नरकावासों के वर्णादि—

१५३ : प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास कैसे वर्ण के कहे गये हैं ?

उ० हे गौतम ! काले, कालावभास (काली कान्ति) वाले गम्भीर रोम हर्षवाले (देखने पर अत्यधिक रोमांच करनेवाले) भयानक, त्रास उत्पन्न करनेवाले, परमकृष्ण वर्णवाले कहे गये हैं।

इसी प्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास कैसी गन्ध वाले कहे गये हैं ?

उ० हे गौतम ! जैसे सर्प का मृतकलेवर, गौ का मृतकलेवर, श्वान (कुत्ते) का मृतकलेवर, मार्जार (बिल्ली) का मृतकलेवर, मनुष्य का मृतकलेवर, महिष (भैंस) का मृतकलेवर, हाथी का मृतकलेवर; सिंह का मृतकलेवर, व्याघ्र का मृतकलेवर, वृक (भेड़िया) का मृतकलेवर, या द्वीपिक (चीता) का मृतकलेवर;

मय-कुहिय - चिरविणट्ठ - कुणिम-वावण्ण - दुब्भिगंधे असुइविलीणविगत-बीभच्छ-दरिसणिज्जे किमिजाला-उलसंसत्ते भवेयारूवे सिया ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरका चेव जाव अमणामतरा चेव गंधेणं पण्णत्ता ।

एवं जाव अधे सत्तमाए पुढवीए ।

प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केरिसया फासेणं पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! से जहानामए असि-पत्तेइ वा, खुर-पत्तेइ वा, कलंबचीरिया-पत्तेइ वा, सत्तग्गेइ वा, कुंतग्गेइ वा, तोमरग्गेति वा, नारायग्गेति वा, सूलग्गेति वा, लउलग्गेति वा, भिंडिमालग्गेति वा, सूचिकलावेति वा, कवियच्छूति वा, विच्छुयकंटएति वा, इंगालेति वा, जालेति वा, मुम्मु रेति वा, अच्चिति वा, अलाएति वा, सुद्धागणीइ वा, भवे एतारूवे सिया ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरा चेव जाव अमणामतरका चेव फासेणं पण्णत्ता ।

एवं जाव अहे सत्तमाए पुढवीए ।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ८३ ।

जो बहुत दिनों से पड़ा हो, सड़कर दुर्गन्ध दे रहा हो, बहुत दिनों से क्षत विक्षत होने के कारण माँस के टुकड़ों से दुर्गन्ध आरही हो, अशुचिमय होने से देखने में बीभत्स तथा कृमि समूह से व्याप्त हो—क्या इनके समान (रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों की) दुर्गन्ध है ?

नहीं ऐसा नहीं है ।

हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकावास इन (पूर्वोक्त कलेवरों की दुर्गन्ध) से भी अनिष्टतर यावत् अमनोज्ञतर गन्ध वाले कहे गये हैं ।

इस प्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है ।

प्र० हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकावास किस प्रकार के स्पर्शवाले कहे गये हैं ?

उ० हे गौतम ! जिस प्रकार असिपत्र, क्षुरपत्र, कदम्बचीरिका पत्र, शक्ति का अग्रभाग, (नौक) कुंत (भाले) का अग्रभाग, तोमर का अग्रभाग, नाराच (वज्र) का अग्रभाग, शूल का अग्रभाग, लकुल का अग्रभाग, भिंडिमाल का अग्रभाग, सूची-कलाप, (सूइयों का समूह) कपिकच्छु, विच्छु का डंक, अग्नि, ज्वाला, मुर्मुर, अर्चि (लपट) अलात या शुद्धाग्नि—क्या (इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकावासों का) स्पर्श ऐसा है ?

नहीं—ऐसा नहीं है ।

हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकावासों का स्पर्श इनसे (पूर्वोक्त असिपत्र आदि के स्पर्श से) भी अनिष्टतर यावत् अमनामतर स्पर्श वाले कहे गये हैं ।

इसी प्रकार यावत् नीचे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त है ।

णरगाणं वइरामयत्तं सासयासासयत्तं य—

१५४ : प० इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा किमया पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! सव्ववइरामया पण्णत्ता । तत्थ णं नरएसु बहवे जीवा य पोग्गला य अवक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उववज्जंति ।

सासता णं ते णरगा दव्वट्ठयाए ।

वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया ।[1]

एव जाव अहे सत्तमाए ।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ८५ ।

नरकावास वज्रमय और शाश्वत-अशाश्वत हैं—

१५४ : प्र० भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकावास किन (पुद्गलों) के बने हुए कहे गये हैं ?

उ० गौतम ! सब वज्रमय कहे गये हैं । उन नारकावासों में अनेक जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं । तथा पुद्गल आते हैं और जाते हैं ।

अतएव वे नारकावास द्रव्यों की अपेक्षा शाश्वत हैं ।

वर्ण-पर्यवों गन्ध-पर्यवों रस-पर्यवों और स्पर्श-पर्यवों की अपेक्षा अशाश्वत हैं ।

इस प्रकार यावत् नीचे सातवीं पृथ्वी पर्यन्त है····।

---

१. नरकावास वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श-पर्यवों की अपेक्षा से अशाश्वत हैं—इस कथन में रस-पर्यवों का निर्देश है—अतः इसका अभिप्राय यह हुआ कि नरकावासों के पुद्गलों में रस-पर्यव हैं किन्तु इन नारकावासों के इस वर्णन में "णरगाणं वण्णाई" इस शीर्षक के नीचे जीवा० प्र० ३, उ० १, सु० ८३ दिया है—इस सूत्र में नरकावासों के वर्ण, गन्ध और स्पर्श सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हैं । इनमें नरकावासों के वर्ण, गन्ध और स्पर्श को अनेक उपमाएँ देकर अनिष्टतर कहा है किन्तु रस का निर्देश नहीं है । टीकाकार भी रस लेने के सम्बन्ध में किसी प्रकार का कोई हेतु नहीं देते हैं । फिर भी आगमज्ञ मुनिजनों की धारणा से समाधान हो सकेगा तो यथास्थान अंकित किया जायगा ।

अहोलोए बिसरीरा—

१५५ : अहोलोगे णं चत्तारि बिसरीरा[1] पण्णत्ता, तं जहा—
(१) पुढविकाइया।
(२) आउकाइया।
(३) वणस्सइकाइया।
(४) उराला तसापाणा।[2]

—ठाणं० ४, उ० ३, सु० ३२९।

अधोलोक में दो शरीर वाले—

१५५ : अधोलोक में दो शरीरवाले चार कहे गये हैं, यथा—
(१) पृथ्वीकायिक।
(२) अप्कायिक।
(३) वनस्पतिकायिक।
(४) औदारिक (शरीर वाले) त्रसप्राणी।

भवणवासिदेवठाणाइं—

१५६ : प० [१] कहि णं भंते ! भवणवासीणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ! भवणवासी देवा परिवसंति ?

उ० [१] गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से-एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ बावत्तरिं च भवणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा, अंतो समचउरंसा, अहे पुक्खरकण्णिया संठाणसंठिया उक्किणंतर-विउल-गंभीर-खातपरिहा[3]

पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवार देसभागा जंत-सयग्घि-मुसल-मुसंढिपरियरिया अउज्झा सदा जता सदा गुत्ता।

अडयाल-कोट्ठग-रइया अडयाल-कयवणमाला।[4]

भवनवासी देवों के स्थान—

१५६ : प्र० [१] हे भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं।

[२] हे भगवन् भवनवासी देव कहां रहते हैं ?

उ० [१] हे गौतम ! एकलाख अस्सीहजार योजन की मोटाई वाली इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अन्दर प्रवेश करने पर और नीचे से एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठहत्तर हजार के मध्य भाग में भवनवासी देवों के सात क्रोड बहत्तर लाख भवनावास हैं—ऐसा कहा गया है।

ये भवन बाहर से वृत्ताकार हैं। अन्दर से चतुष्कोण हैं और नीचे से कमल की कर्णिका (कमल का बीजकोष) के संस्थान से स्थित हैं। विशाल तथा गहरी खुदी हुई खायी तथा परिखा से युक्त हैं।

(भवन के) प्राकारों के कुछ भागों पर अट्टालक कपाट तोरण और छोटी-छोटी खिड़कियाँ हैं, (ये प्राकार) यन्त्र शतघ्नी, मुशल और मुसंढीसे युक्त हैं, (अतएव ये भवन) अयोध्य हैं, सदा जयकारी हैं अर्थात् अजेय हैं, सदा सुरक्षित हैं।

भवनों में प्रशस्त कोष्ठक हैं और वे प्रशस्त वनमालाओं से सुशोभित हैं।

---

१. प्रथम वर्तमान भवका शरीर और द्वितीय मनुष्य शरीर प्राप्त कर मुक्त होने वाले जीव।
—स्थानांग० अ० ४, उ० ३, सू० ३२९ की टीका।

२. क—यहाँ औदारिक शरीरवाले त्रस केवल संज्ञी पंचेन्द्रिय ही ग्रहण किये हैं।
—स्थानांग० अ० ४, उ० ३, सू० ३२९ की टीका।
ख—अधोलोक में मनुष्य शरीर संहरण की अपेक्षा से कहा गया है।

३. खाइ और परिखा भिन्न है—इनका अन्तर दिखाने वाली एक पालिका इन दोनों के मध्य में हैं। —टीकानुवाद

४. "अडयालकोट्ठगरइया—अडयालकयवणमाला" इन दो वाक्यों में 'अडयाल' शब्द का अर्थ आचार्य श्री मलयगिरि ने 'अष्टचत्वारिंशत्' संस्कृत पर्याय दिया है। उसका अर्थ 'अडतालीस' होता है किन्तु उन्होंने अन्य आचार्यों के मतका उल्लेख करते हुए कहा है—'अडयाल' देश्य शब्द है और उसका अर्थ प्रशंसा परक है। इसलिए प्रस्तुत अनुवाद में पूर्वाचार्य सम्मत अर्थ ही दिया है।

खेमा सिवा किंकरामरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइय-महिया ।

(ये भवन) क्षेम (उपद्रवरहित) हैं, शिव (मंगलरूप) हैं। किंकर (द्वारपाल) देवों के दण्ड से सुरक्षित हैं। लीपन तथा कलई की सफेदी से सुशोभित हैं।

गोसीस-सरस-रत्तचंदणदद्दरदिण्ण पंचंगुलितला। उवचिय-चंदणकलसा।

(द्वारों के दोनों ओर) गोशीर्ष तथा रक्तचन्दन के गाढे लेपसे लिप्त पाँचों अंगुलियों के छापे दिये हुए हैं। चन्दन-कलश रखे हुए हैं।

चंदण-घड-सुकय-तोरण-पडिदुवारदेसभागा।

तोरण तथा लघु द्वारों का एक भाग चन्दन-घटों से सुशोभित हैं।

आसत्तोसत्त - विउलवट्टवग्घारिय - मल्लदाम-कलावा पंचवण्ण-सरस-सुरहि-मुक्क-पुप्फपुंजोवयार-कलिया।

विस्तृत वृत्ताकार चन्दोवे के भूमितल पर्यन्त लम्बी लटकती हुई पुष्पमालाएँ हैं, पाँच वर्णों के सुन्दर सुगन्धित पुष्पपुंजों की शोभा से युक्त हैं।

कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क - धूव-मघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूया।

श्रेष्ठ कालागुरु कुंदुरुक्क और तुरुष्क धूप के मनोहर उत्कट गन्ध से महकते हुए हैं। श्रेष्ठ सुगन्ध से सुगन्धित हैं। सुगन्धित द्रव्यों की गुटिका जैसे हैं।

अच्छरगण-संघ-संविगिण्णा दिव्व-तुडित-सद्द संपणदिता सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पहा सस्सिरिया समरिया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा—एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

(ये भवन) अप्सराओं के समूह से व्याप्त हैं, दिव्य वाद्यों की ध्वनियों से गुंजित हैं। सब रत्नमय हैं, अति स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल घिसे हुए हैं। साफ किये हुए हैं, निर्मल निष्पंक निरावरण कान्ति वाले हैं। प्रभा वाले हैं, किरणों वाले हैं, उद्योत वाले हैं, मन प्रसन्न वाले हैं, दर्शनीय हैं, अत्यन्त सुन्दर हैं और समान सौन्दर्य वाले हैं। इनमें पर्याप्त तथा अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान कहे गये हैं।

[२] उववाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे,

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में (ये भवनवासी देव) उत्पन्न होते हैं।

समुग्घाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे,

लोक के असंख्यातवें भाग में (ये भवनवासी देव) समुद्घात करते हैं।

सट्ठाणेणं लोगस्स असंखेज्जइभागे—तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति, तं जहा—

लोक के असंख्यातवें भाग में इन (भवनवासी देवों) के अपने स्थान हैं। इनमें अनेक भवनवासी देव रहते हैं—यथा

गाहा—

असुरा, नाग, सुवण्णा, विज्जू, अग्गी य दीव उदही य।
दिसि, पवण, थणियनामा, दसहा एए भवणवासी ॥[1]

गाथार्थ—

१. असुरकुमार, २. नागकुमार, ३. सुपर्णकुमार, ४. विद्युत्कुमार, ५. अग्निकुमार, ६. द्वीपकुमार, ७. उदधिकुमार, ८. दिक्कुमार, ९. पवनकुमार और १०. स्तनितकुमार। ये दस भवनवासी देव हैं।

१. चूडामणिमउडरयण,
२. भूसण-णागफड,
३. गरुल,
४. वइर,
५. पुण्णकलसविउप्फेस,

१. असुरकुमार के मुकुट में—चूडामणि रत्न का चिह्न है।
२. नागकुमार के मुकुट में—नाग के फण का चिह्न है।
३. सुपर्णकुमार के मुकुट में—गरुड का चिह्न है।
४. विद्युत्कुमार के मुकुट में—वज्र का चिह्न है।
५. अग्निकुमार के मुकुट में—पूर्ण कलश का चिह्न है।

१. (क) ठाणं० १०, सु० ७३६। (ख) भग० स० १३, उ० २, सु० २।
(ग) उत्त० अ० ३६, गा० २०६।

अहोलोए बिसरीरा—

१५५ : अहोलोगे णं चत्तारि बिसरीरा[1] पण्णत्ता, तं जहा—
(१) पुढविकाइया।
(२) आउकाइया।
(३) वणस्सइकाइया।
(४) उराला तसापाणा।[2]

—ठाणं० ४, उ० ३, सु० ३२९।

अधोलोक में दो शरीर वाले—

१५५ : अधोलोक में दो शरीरवाले चार कहे गये हैं, यथा—
(१) पृथ्वीकायिक।
(२) अप्कायिक।
(३) वनस्पतिकायिक।
(४) औदारिक (शरीर वाले) त्रसप्राणी।

भवणवासिदेवठाणाइं—

१५६ : प० [१] कहि णं भंते! भवणवासीणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

[२] कहि णं भंते! भवणवासी देवा परिवसंति?

उ० [१] गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से-एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ बावत्तरिं च भवणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा, अंतो समचउरंसा, अहे पुक्खरकण्णिया संठाणसंठिया उक्किण्णंतर-विउल-गंभीर-खातपरिहा[3]

पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवार देसभागा जंतसयग्घि-मुसल-मुसंढिपरियरिया अउज्झा सदा जता सदा गुत्ता।

अडयाल-कोट्ठग-रइया अडयाल-कयवणमाला।[4]

भवनवासी देवों के स्थान—

१५६ : प्र० [१] हे भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं।

[२] हे भगवन् भवनवासी देव कहाँ रहते हैं?

उ० [१] हे गौतम! एकलाख अस्सीहजार योजन की मोटाई वाली इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अन्दर प्रवेश करने पर और नीचे से एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठहत्तर हजार के मध्य भाग में भवनवासी देवों के सात क्रोड बहत्तर लाख भवनावास हैं—ऐसा कहा गया है।

ये भवन बाहर से वृत्ताकार हैं। अन्दर से चतुष्कोण हैं और नीचे से कमल की कर्णिका (कमल का बीजकोष) के संस्थान से स्थित हैं। विशाल तथा गहरी खुदी हुई खायी तथा परिखा से युक्त हैं।

(भवन के) प्राकारों के कुछ भागों पर अट्टालक कपाट तोरण और छोटी-छोटी खिड़कियाँ हैं, (ये प्राकार) यन्त्र शतघ्नी, मुशल और मुसंढीसे युक्त हैं, (अतएव ये भवन) अयोध्य हैं, सदा जयकारी हैं अर्थात् अजेय हैं, सदा सुरक्षित हैं।

भवनों में प्रशस्त कोष्ठक हैं और वे प्रशस्त वनमालाओं से सुशोभित हैं।

---

१. प्रथम वर्तमान भवका शरीर और द्वितीय मनुष्य शरीर प्राप्त कर मुक्त होने वाले जीव।
—स्थानांग० अ० ४, उ० ३, सू० ३२९ की टीका।

२. क—यहाँ औदारिक शरीरवाले त्रस केवल संज्ञी पंचेन्द्रिय ही ग्रहण किये हैं।
—स्थानांग० अ० ४, उ० ३, सू० ३२९ की टीका।
ख—अधोलोक में मनुष्य शरीर संहरण की अपेक्षा से कहा गया है।

३. खाइ और परिखा भिन्न है—इनका अन्तर दिखाने वाली एक पालिका इन दोनों के मध्य में हैं। —टीकानुवाद

४. "अडयालकोट्ठगरइया—अडयालकयवणमाला" इन दो वाक्यों में 'अडयाल' शब्द का अर्थ आचार्य श्री मलयगिरि ने 'अष्टचत्वारिंशत्' संस्कृत पर्याय दिया है। उसका अर्थ 'अडतालीस' होता है किन्तु उन्होंने अन्य आचार्यों के मतका उल्लेख करते हुए कहा है—'अडयाल' देश्य शब्द है और उसका अर्थ प्रशंसा परक है। इसलिए प्रस्तुत अनुवाद में पूर्वाचार्य सम्मत अर्थ ही दिया है।

खेमा सिवा किंकरामरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइय-महिया।

(ये भवन) क्षेम (उपद्रवरहित) हैं, शिव (मंगलरूप) हैं। किंकर (द्वारपाल) देवों के दण्ड से सुरक्षित हैं। लीपन तथा कलई की सफेदी से सुशोभित हैं।

गोसीस-सरस-रत्तचंदणदद्दरदिण्ण पंचंगुलितला। उवचिय-चंदणकलसा।

(द्वारों के दोनों ओर) गोशीर्ष तथा रक्तचन्दन के गाढे लेपसे लिप्त पाँचों अंगुलियों के छापे दिये हुए हैं। चन्दन-कलश रखे हुए हैं।

चंदण-घड-सुकय-तोरण-पडिदुवारदेसभागा।

तोरण तथा लघु द्वारों का एक भाग चन्दन-घटों से सुशोभित हैं।

आसत्तोसत्त - विउलवट्टवग्घारिय - मल्लदाम-कलावा पंचवण्ण-सरस-सुरहि-मुक्क-पुप्फपुंजोवयार-कलिया।

विस्तृत वृत्ताकार चन्दोवे के भूमितल पर्यन्त लम्बी लटकती हुई पुष्पमालाएँ हैं, पाँच वर्णों के सुन्दर सुगन्धित पुष्पपुंजों की शोभा से युक्त हैं।

कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क - धूव-मघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूया।

श्रेष्ठ कालागुरु कुंदुरुक्क और तुरुष्क धूप के मनोहर उत्कट गन्ध से महकते हुए हैं। श्रेष्ठ सुगन्ध से सुगन्धित हैं। सुगन्धित द्रव्यों की गुटिका जैसे हैं।

अच्छरगण-संघ-संविगिण्णा दिव्व-तुडित-सद्द संपणदिता सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पहा सस्सिरिया समरिया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा—एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

(ये भवन) अप्सराओं के समूह से व्याप्त हैं, दिव्य वाद्यों की ध्वनियों से गुंजित हैं। सब रत्नमय हैं, अति स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल घिसे हुए हैं। साफ किये हुए हैं, निर्मल निष्पंक निरावरण कान्ति वाले हैं। प्रभा वाले हैं, किरणों वाले हैं, उद्योत वाले हैं, मन प्रसन्न वाले हैं, दर्शनीय हैं, अत्यन्त सुन्दर हैं और समान सौन्दर्य वाले हैं। इनमें पर्याप्त तथा अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान कहे गये हैं।

[२] उववाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे,

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में (ये भवनवासी देव) उत्पन्न होते हैं।

समुग्घाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे,

लोक के असंख्यातवें भाग में (ये भवनवासी देव) समुद्घात करते हैं।

सट्ठाणेणं लोगस्स असंखेज्जइभागे—तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति, तं जहा—

लोक के असंख्यातवें भाग में इन (भवनवासी देवों) के अपने स्थान हैं। इनमें अनेक भवनवासी देव रहते हैं—यथा

गाहा—

असुरा, नाग, सुवण्णा, विज्जू, अग्गी य दीव उदही य।
दिसि, पवण, थणियनामा, दसहा एए भवणवासी॥[1]

गाथार्थ—

१. असुरकुमार, २. नागकुमार, ३. सुपर्णकुमार, ४. विद्युत्कुमार, ५. अग्निकुमार, ६. द्वीपकुमार, ७. उदधिकुमार, ८. दिक्कुमार, ९. पवनकुमार और १०. स्तनितकुमार। ये दस भवनवासी देव हैं।

१. चूडामणिमउडरयण,
२. भूसण-णागफड,
३. गरुल,
४. वइर,
५. पुण्णकलसविउप्फेस,

१. असुरकुमार के मुकुट में—चूडामणि रत्न का चिह्न है।
२. नागकुमार के मुकुट में—नाग के फण का चिह्न है।
३. सुपर्णकुमार के मुकुट में—गरुड का चिह्न है।
४. विद्युत्कुमार के मुकुट में—वज्र का चिह्न है।
५. अग्निकुमार के मुकुट में—पूर्ण कलश का चिह्न है।

१. (क) ठाणं० १०, सु० ७३६। (ख) भग० स० १३, उ० २, सु० २।
(ग) उत्त० अ० ३६, गा० २०६।

६. सीह,
७. हयवर,
८. गयअंक
९. मगर,
१०. वद्धमाण-निज्जुत्त-चित्तचिंधगता।

६. द्वीपकुमार के मुकुट में—सिंह का चिह्न है।
७. उदधिकुमार के मुकुट में—श्रेष्ठ अश्व का चिह्न है।
८. दिक्कुमार के मुकुट में—श्रेष्ठ गज का चिह्न है।
९. पवनकुमार के मुकुट में—मगर का चिह्न है।
१०. स्तनितकुमार के मुकुट में—वर्धमान (शराव संपुट) का चिह्न है।

सुरूवा महिड्ढीया मइज्जुईया महायसा महव्वला महाणुभागा महासोक्खा।

(ये भवनवासी देव) सुरूप हैं। महाऋद्धि वाले हैं। महाद्युति वाले हैं, महायश वाले हैं, महाबल वाले हैं, महानुभाव (आदरणीय) हैं, महासुखी हैं।

हारविराइयवच्छा कडग-तुडिय-थंभियभुया अंगद कुंडल-मट्ठगंडतल कण्ण-पीढधारी, विचित्त-हत्थाभरणा विचित्त-माला-मउलीमउडा।

(इन देवों के वक्षस्थल) हार से सुशोभित हैं, भुजाएँ कडे और त्रुटित (भुजबन्ध) से स्तम्भित (सहित) हैं, कानों में अंगद कुंडल और कपोल से स्पृष्ट कर्णपीठ धारण किये हुए हैं, हाथों में विचित्र प्रकार के आभरण हैं, मस्तक पर विचित्र मालाओं से सुसज्जित मुकुट हैं।

कल्लाणग-पवर-वत्थ परिहिया, कल्लाणग-पवर-मल्लाणुलेवणधरा भासुर बोंदी पलंबवणमालधरा।

ये देव कल्याणकारी श्रेष्ठ वस्त्र तथा मालाएं धारण किये हुए हैं, (वदन पर) विलेपन लगाये हुए हैं, दिव्य देदिप्यमान देह पर लम्बी लटकती हुई वन पुष्प मालाएँ धारण किये हुए हैं।

दिव्वेणं वण्णेणं, दिव्वेणं गंधेणं, दिव्वेणं फासेणं, दिव्वेणं संघयणेणं,[1] दिव्वेणं, संठाणेणं, दिव्वाए इड्ढीए, दिव्वाए जुतीए, दिव्वाए पभाए, दिव्वाए छायाए, दिव्वाए अच्चीए, दिव्वेणं तेएणं, दिव्वाए लेसाए, दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा।

ये देव दिव्यवर्ण, दिव्यगन्ध, दिव्यस्पर्श, दिव्यसंघयण तथा दिव्य-संस्थान, दिव्यऋद्धि, दिव्यद्युति, दिव्यप्रभा, दिव्यछाया (सामूहिक शोभा), दिव्यअर्ची (रत्नकान्ति) और दिव्यतेज से दस दिशाओं को उद्योतित तथा प्रकाशित करते हैं।

ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससयसहस्साणं, साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं, साणं साणं तायत्तीसगाणं, साणं साणं लोगपालाणं, साणं साणं अग्गमहिसीणं, साणं साणं परिसाणं, साणं साणं अणियाणं, साणं साणं अणियाहिवईणं, साणं साणं आयरक्खदेव-साहस्सीणं अन्नेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाण य, देवीण य, आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा,

ये देव अपने अपने लाखों भवनावासों के, अपने अपने हजारों सामानिक देवों के, अपने अपने त्रायस्त्रिंश देवों के, अपने अपने लोकपालों के, अपनी अपनी अग्रमहिषियों के, अपनी अपनी परिषदों के, अपनी अपनी सेनाओं के, अपने अपने सेनापतियों के, अपने-अपने हजारों आत्मरक्षक देवों के और अनेक भवनवासी देवों के और देवियों के अधिपति हैं, अग्रेसर हैं, स्वामी हैं भर्ता हैं, महत्तर हैं और सेनापतियों द्वारा आज्ञा पालन करवाते हैं तथा ऐश्वर्य धारण किये हुए रहते हैं।

महताऽहतनट्ट-गीत-वाइत-तंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुयंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणा विहरंति।[2]

—पण्ण० पद० २, सु० १७७।

ये देव स्वयं आख्यानकों के नृत्य (कत्थक नृत्य) नित्य देखते हैं, गीत सुनते हैं, बजती हुई वीणा तल (करतल) ताल त्रुटित (वेणु-बंसरी) की तथा वाद्य बजाने में कुशल व्यक्तियों द्वारा बजाये गये मृदंग की मेघ सम महान गम्भीर ध्वनियाँ सुनते हुए और दिव्य भोग भोगते हुए रहते हैं।

---

१. प० ····देवाणं सरीरगा किंसंघयणी पण्णत्ता?
उ० गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी पण्णत्ता। नेवट्ठि, नेव छिरा, नवि ण्हारु, णेव संघयणमत्थि।
जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव ते तेसिं संघातत्ताए परिणमंति····। —जीवा० पडि० ३, उ० २, सु० २१४।

२. क—जीवा० प० ३, उ० १, सु० ११६। ख—भग० स० २, उ० ७, सु० २।

असुरकुमारठाण-परूवणं—

भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी—

प० अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

उ० गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए ।

सोहम्मस्स कप्पस्स अहे जाव....

प० अत्थि णं भंते ! ईसिपब्भाराए पुढवीए अहे असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

उ० गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

प० से कहिं ? णं भंते ! असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

उ० गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए—एवं असुरकुमारदेववत्तव्वया जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।

—भग० स० ३, उ० २, सु० ३ (१-२) ४ ।

असुरकुमारों के स्थान का प्ररूपण—

१५७ : भगवन् गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को भंते ! (ऐसा कहकर) वन्दना नमस्कार किया और वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

प्र० "भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे असुरकुमार देव रहते हैं ?"

उ० गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं हैं—अर्थात् इस प्रकार नहीं हैं।

इस प्रकार यावत् नीचे सातवीं पृथ्वी (पर्यन्त) है।

सौधर्मकल्प के नीचे यावत्....

प्र० भगवन् ! ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के नीचे असुरकुमार देव रहते हैं ?

उ० गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र० भगवन् ! वे असुरकुमार देव फिर कहाँ रहते हैं।

उ० गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभा पृथ्वी में—असुरकुमार देव सम्बन्धी वक्तव्यता यावत् दिव्य भोगोपभोग भोगते हुए रहते हैं।

असुरकुमारठाणाइं—

१५८ : प० [१] कहि णं भंते ! असुकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ! असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

उ० [१] गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से—एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं चोवट्ठिं भवणावाससयसहस्सा हवंतीतिमक्खायं ।[1]

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा (जाव) पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा—एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

असुरकुमारों के स्थान—

१५८ : प्र० [१] हे भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

[२] हे भगवन् ! असुरकुमार देव कहाँ रहते हैं।

उ० [१] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन की मोटाई वाली रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन करने पर और नीचे से एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठहत्तर योजन प्रमाण मध्य भाग में असुरकुमार देवों के चौंसठ लाख भवनावास हैं ऐसा कहा गया है।

ये भवन बाहर से वृत्ताकार हैं, अन्दर से चतुष्कोण हैं, यावत् प्रसन्नता जनक है, दर्शनीय हैं, सुन्दर हैं, समान सौन्दर्य वाले हैं, इन भवनों में पर्याप्त तथा अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहे गये है।

---

१. क—सम० ६४, सु० २ । ख—भग० स० १३, उ० २, सु० ३ ।
ग—भग० स० १६, उ० ७, सु० १ ।

जोयणसयसहस्स-बाहल्लाए उवरिं एगं जोयण-सहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता, मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से—एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं चोत्तीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।[1]

ते णं भवणा वाहिं वट्टा अंतो चउरंसा सोच्चेव वण्णओ (जाव) पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा – एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

[२] तिसु वि लोयस्स असखेज्जइभागे— तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा य देवीओ य परिवसंति।

काला लोहियक्खबिंबोट्ठा तहेव जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।[2]

—पण्ण० पद० २, सु० १७९ (१)।

मोटाई वाली इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन करने पर और नीचे से एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रमाण मध्यभाग में दक्षिण दिशा के असुरकुमार देवों के चौंतीस लाख भवनावास हैं। ऐसा कहा गया है।

ये भवन बाहर से वृत्ताकार, अन्दर से चतुष्कोण हैं (यहाँ) वही वर्णक है यावत् प्रसन्नता जनक दर्शनीय अभिरूप एवं प्रतिरूप हैं। इनमें दक्षिण दिशा के पर्याप्त तथा अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहे गये हैं।

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में (असुरकुमार देवों की उत्पत्ति समुद्घात तथा उनके स्वस्थान) तीनों हैं। इनमें दक्षिण दिशा के अनेक असुरकुमार देव-देवियाँ रहते हैं।

ये श्यामवर्ण वाले हैं, इनके ओष्ठ बिम्बफल जैसे रक्त हैं। यावत् दिव्य भोग भोगते हुए रहते हैं।

दाहिणिल्लअसुरिंदो चमरो—

१६१ : चमरे अत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसइ।

काले महानीलसरिसे णीलगुलिय-गवल-अयसिकुसुमप्पगासे,

वियसियसयवत्त-णिम्मल-इसीसित-रत्त-तंबणयणे,

गरुलाययउज्जुतुंगणासे,

ओयवियसिलप्पवाल-बिंबफल-सन्निभाहरोट्ठे,

पंडुरससिसगल-विमल-निम्मल-दहिघण-संख-गोखीर-कुंद-दगरय-मुणालिया-धवल दंतसेढो,

हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्ज-रत्ततल-तालु जीहे,

अंजण-घण-कसिणरुयगरमणिज्जणिद्धकेसे,

वामेयकुंडलधरे, अद्दचंदणाणुलित्तगत्ते,

इसीसिलिंधपुप्फपगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं पवरपरिहिए,

वयं च पढमं समइक्कंते, बिइयं तु असंपत्ते, भद्दे जोव्वणे वट्टमाणे,

तलभंगयतुडिय-पवरभूसण-निम्मलमणि-रयणमंडियभुजे,

दाक्षिणात्य असुरेन्द्र चमर—

१६१ : यहीं पर असुरकुमारेन्द्र असुरकुमारों के राजा चमरेन्द्र रहते हैं।

चमरेन्द्र के शरीर का वर्ण कृष्ण अतिनील नीलगुटिका, जंगली भैंस के सींग तथा अलसी के पुष्पों जैसा श्याम है।

नेत्र विकसित कमल सदृश श्वेत तथा स्वल्परक्त ताम्रवर्ण के हैं।

नासिका गरुड जैसी लम्बी सीधी एवं उन्नत है।

अधरोष्ठ घिसी हुई प्रवाल-शिला तथा बिम्बफल जैसे हैं।

दन्तपंक्ति अकलंक श्वेतचन्द्र खण्ड, स्वच्छ घट्ट (गाढा) दही, शंख, गोक्षीर, कुंद-पुष्प, उदक-कण तथा मृणालिका जैसी श्वेत है।

हाथ-पैर के तलवे, तालु और जीभ अग्नि में तपाये हुए शुद्ध स्वर्ण सदृश हैं।

केश अंजन, मेघ और रुचक रत्न जैसे रमणीय एवं स्निग्ध हैं।

बायें कान पर एक कुण्डल है। शरीर चन्दनके लेप से लिप्त है।

शिलिंध्र पुष्प जैसे थोड़े लाल वर्ण के सुन्दर सूक्ष्म श्रेष्ठ वस्त्र पहने हुए हैं।

प्रथमवय (कुमारावस्था) बीत गयी है और युवावस्था पूर्ण प्राप्त नहीं हुई है किन्तु कल्याणकर युवावस्था प्रारम्भ हुई है।

भुजायें निर्मल मणिरत्न मण्डित तलभंग तथा त्रुटित (भुज-बन्ध) श्रेष्ठ भूषण से विभूषित हैं।

१. सम० ३४, सु० ५।

२. जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ११७।

प० केवति यं च णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं अहे-गतिविसए पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! जाव अहेसत्तमाए पुढवीए, तच्चं पुण पुढविं गता य, गमिस्संति य।

प० किंपत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा तच्चं पुढविं गता य, गमिस्संति य ?

उ० गोयमा ! पुव्ववेरियस्स वा वेदण उदीरणयाए, पुव्व-संगतियस्स वा वेदण-उवसामणयाए। एवं खलु असुर-कुमारा देवा तच्चं पुढविं गता य, गमिस्संति य।

—भग० स० ३, उ० २, सु० ५-७।

प्र० हे भगवन् ! असुरकुमारों की नीचे जाने की शक्ति कितनी कही गई है।

उ० हे गौतम ! नीचे सातवीं पृथ्वी पर्यन्त जाने की शक्ति है और तीसरी पृथ्वी पर्यन्त तो गये हैं और जायेंगे भी।

प्र० हे भगवन् ! असुरकुमार देव तीसरी पृथ्वी पर्यन्त क्यों गये और क्यों जायेंगे।

उ० हे गौतम ! पूर्व जन्म के वैरी से बदला लेने के लिए और पूर्व जन्म के साथी की वेदना उपशान्त करने के लिए असुर-कुमार देव तीसरी पृथ्वी तक गये हैं और जायेंगे भी।

असुरकुमाराणं तिरियगइविसयपरूवणा—

१६३ : प० अत्थि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरियं गति-विसए पण्णत्ते ?

उ० हंता, अत्थि।

प० केवति यं च णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरियं गतिविसए पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! जाव असंखेज्जा दीव-समुद्दा, नंदिस्सरवर पुणदीवं गता य, गमिस्संति य।

प० किंपत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा नंदीसरवर दीवं गता य, गमिस्संति य ?

उ० गोयमा ! जे इमे अरिहंता भगवंता एतेसि णं जम्मण-महेसु वा, निक्खमण-महेसु वा, णाणुप्पत्ति-महिमासु वा, परिनिव्वाण-महिमासु वा—एवं खलु असुर-कुमारा देवा नंदीसरवरं दीवं गता य, गमिस्संति य।

—भग० स० ३, उ० २, सु० ८-१०।

असुरकुमारों की तिर्यक्लोक में जाने की शक्ति का प्ररूपण—

१६३ : प्र० हे भगवन् ! क्या असुरकुमारों की तिर्यक् लोक में जाने की शक्ति कही गई है ?

उ० हाँ (कही गयी) है !

प्र० हे भगवन् ! असुरकुमारों की तिर्यक् लोक में जाने की शक्ति कितनी कही गई है ?

उ० हे गौतम ! यावत् असंख्यद्वीप समुद्रपर्यन्त जाने की शक्ति है और नंदीश्वरद्वीप पर्यन्त गये हैं और पुनः जायेंगे भी।

प्र० हे भगवन् ! असुरकुमार देव नंदीश्वर द्वीप क्यों गये और क्यों जायेंगे ?

उ० हे गौतम ! जो ये अर्हन्त भगवन्त हैं (अतीत में हुए हैं और भविष्य में होंगे) इनके जन्म महोत्सवों में निष्क्रमण-महोत्सवों में (केवल) ज्ञानोत्पत्ति-महोत्सवों में और निर्वाण-महोत्सवों में असुरकुमार देव नंदीश्वर द्वीप गये हैं और जायेंगे भी।

असुरकुमाराणं उड्ढगइविसयपरूवणा—

१६४ : प० अत्थि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं उड्ढं गति विसए पण्णत्ते ?

उ० हंता, अत्थि।

प० केवति यं च णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं उड्ढं गति विसए पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! जाव अच्चुतो कप्पो। सोहम्मं पुण कप्पं गता य, गमिस्संति य।

प० किंपत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा सोहम्मं कप्पं गता य, गमिस्संति य ?

असुरकुमारों की उर्ध्वलोक में जाने की शक्ति का प्ररूपण—

१६४ : प्र० हे भगवन् ! क्या असुरकुमार देवों को उर्ध्वलोक में जाने की शक्ति कही गई है ?

उ० हाँ (कही गई) है।

प्र० हे भगवन् ! असुरकुमार देवों की उर्ध्वलोक में जाने की शक्ति कितनी कही गई है ?

उ० हे गौतम ! अच्युतकल्प पर्यन्त जाने का सामर्थ्य है और सौधर्मकल्प पर्यन्त तो गये हैं और जायेंगे भी।

प्र० हे भगवन् ! असुरकुमार देव सौधर्मकल्प पर्यन्त क्यों गये और क्यों जायेंगे ?

उ० गोयमा ! तेसि णं देवाणं भवपच्चइयवेराणुबंधे । ते णं देवा विकुव्वेमाणा परियारेमाणा वा आयरक्खे देवे वित्तासेंति । अहालहुस्सगाइं रयणाइं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्कमंति ।

प० अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं अहालहुस्सगाइं रयणाइं ?

उ० हंता, अत्थि ।

प० से कहमिदाणिं पकरेंति ?

उ० तओ से पच्छा कायं पव्वहंति ।

प० पभू णं भंते ! ते असुरकुमारा देवा तत्थ गया चेव समाणा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाहिं भुंजमाणा विहरित्तए ?

उ० णो इणट्ठे समट्ठे । ते णं तओ पडिनियत्तंति, तओ पडिनियत्तित्ता इहमागच्छंति, इहमागच्छित्ता जति णं ताओ अच्छराओ आढायंति परियाणंति—पभू णं ते असुरकुमारा देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए, अह णं ताओ अच्छराओ नो आढायंति, नो परियाणंति णो णं पभू ते असुरकुमारा देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए ।

एवं खलु गोयमा ! असुरकुमारा देवा सोहम्मं कप्पं गता य, गमिस्संति य ।

—भग० स० ३, उ० २, सु० ११-१३ ।

उ० हे गौतम ! उन असुरकुमारों का (सौधर्मकल्पवासी) देवों से पूर्व जन्म का वैरानुबन्ध हो तो (बदला लेने के लिए) वैक्रिय करके भोग भोगते हैं, उनके आत्मरक्षक देवों को त्रास देते हैं तथा छोटे-छोटे रत्नों को लेकर एकान्त में चले जाते हैं ।

प्र० हे भगवन् ! क्या उन (वैमानिक) देवों के पास छोटे-छोटे रत्न होते हैं ?

उ० हाँ होते हैं ।

प्र० हे भगवन् ! (वैमानिक देवों के छोटे छोटे रत्न लेकर असुरकुमार जब एकान्त में चले जाते हैं तब) वे वैमानिक देव उनका क्या करते हैं ?

उ० वैमानिक देव उसके बाद (उनके) शरीर को पीड़ा देते हैं ।

प्र० हे भगवन् ! वे असुरकुमार देव सौधर्मकल्प में ही उन अप्सराओं के साथ क्या दिव्य भोग भोगने में समर्थ हैं ?

उ० ऐसा नहीं है । वे वहां से (अप्सराओं का अपहरण करके) लौटते हैं और लौटकर यहां आते हैं । यहां आने के बाद यदि अप्सरायें उन्हें स्वीकार कर लेती हैं या आदर देती हैं तो वे असुरकुमार देव उन अप्सराओं के साथ भोग भोग सकते हैं । यदि वे अप्सरायें उन्हें आदर नहीं देती हैं या स्वीकार नहीं करती हैं तो वे असुरकुमार देव उनके साथ दिव्य भोग नहीं भोग सकते हैं ।

हे गौतम ! इस प्रकार असुरकुमार देव सौधर्मकल्प में गये हैं और जायेंगे भी ।

उत्तरिल्लअसुरकुमारठाणाइं—

१६५ : प० [१] कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ! उत्तरिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

उ० [१] गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता, हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से—एत्थ णं उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं तीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीतिमक्खातं ।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा सेसं जहा दाहिणिल्लाणं जाव विहरंति ।[1]

—पण्ण० पद० २, सु० १८०-१ ।

उत्तरदिशा के असुरकुमारों के स्थान—

१६५ : प्र० [१] हे भगवन् ! उत्तरदिशा के पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ।

[२] हे भगवन् ! उत्तरदिशा के असुरकुमार देव कहाँ रहते हैं ?

उ० [१] हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर में एक लाख अस्सीहजार योजन मोटाई वाली इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन (अन्दर जाने पर) करने पर और नीचे से एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठत्तर हजार योजन प्रमाण मध्य भाग में उत्तर दिशावासी असुरकुमारों के तीसलाख भवनावास हैं—ऐसा कहा गया है ।

ये भवन बाहर से वृत्ताकार हैं और अन्दर से चतुष्कोण हैं । शेष दक्षिण दिशावासी असुरकुमारों के समान हैं यावत् (दिव्य भोग भोगते हुए) रहते हैं ।

---

१. जीवा० प० ३, उ० २, सु० ११९ ।

उत्तरिल्ल-असुरिंदो वली —

१६६ : वली यऽत्थ वइरोयणिंदे वइरोयणराया परिवसति। काले महानीलसरिसे जाव दिव्वाए लेसाए दसदिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे।

से णं तत्थ तीसाए भवणावाससय-सहस्साणं, सट्ठीणं सामाणियसाहस्सीण,[1] तावत्तीसाए तावत्तीसगाणं, चउण्ह लोगपालाणं, पंचण्ह अग्गमहिसीणं सपरिवाराण, तिण्ह परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाधिवतीणं,[2] चउण्हं य सट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं,[3] अण्णेसिं च वहूणं उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे विहरति।[4]

—पण्ण० पद० २, सु० १८०-२।

उत्तरदिशा का असुरेन्द्र वली—

१६६ : यहाँ पर वैरोचन राजा वैरोचनेन्द्र वली रहता है। वली (वैरोचनेन्द्र) के शरीर का वर्ण अतिनील यावत् दिव्यलेश्या से दस दिशाओं को उद्योतित तथा प्रकाशित करता है।

वह वहाँ तीसलाख भवनावासों का, साठहजार सामानिक देवों का, तेंतीस त्रायस्त्रिंशकों का, चार लोकपालों का, पाँच सपरिवार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदाओं का, सात सेनाओं का, सात सेनापतियों का, साठहजार के चोगुणे (दो लाख चालीसहजार) आत्मरक्षक देवों और अन्य अनेक उत्तर दिशावासी असुरकुमार देव-देवियों का आधिपत्य या प्रमुखता करता हुआ रहता है।

णागकुमारठाणाइं--

१६७ : प० [१] कहि णं भंते! णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

[२] कहि णं भंते! णागकुमारा देवा परिवसंति?

उ० [१] गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सवाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जिऊण, मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्सं—एत्थ णं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं चुलसीइ भवणावाससयसहस्सा हवंतीतिमक्खातं।[5]

ते णं भवणा वाहिं वट्टा अंतो चउरंसा जाव पडिरूवा। तत्थ णं णागकुमाराणं देवाणं पज्जात्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

[२] तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ ण वहवे णागकुमारा देवा परिवसंति।[6] महिड्ढीया महाजुतीया—सेसं जहा ओहियाणं जाव विहरंति।

—पण्ण० पद० २, उ० १, सु० १८१-१।

नागकुमारों के स्थान—

१६७ : प्र० [१] हे भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं?

[२] हे भगवन्! नागकुमार देव कहाँ रहते हैं?

उ० [१] हे गौतम! एक लाख अस्सीहजार योजन वाहल्य (मोटाई) वाली इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अन्दर जाने पर और नीचे से एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठत्तर हजार योजन प्रमाण मध्यभाग में पर्याप्त तथा अपर्याप्त नागकुमार देवों के चालीस लखा भवनावास हैं—ऐसा कहा गया है।

वे भवन वाहर से वृत्ताकार (गोल) हैं, अन्दर से चोकोर हैं यावत् प्रतिरूप हैं। उनमें पर्याप्त तथा अपर्याप्त नागकुमार देवों के स्थान कहे गये हैं।

लोक के असंख्यातवें भाग में (नागकुमारों की उत्पत्ति, समुद्घात और उनके अपने स्थान) ये तीनों हैं—उनमें अनेक नागकुमार देव रहते हैं। वे महाऋद्धि वाले हैं, महाद्युतिवाले हैं शेष सामान्य वर्णन के समान है यावत् (दिव्य भोग भोगते हुए) रहते हैं।

णागकुमारिंदा--

१६८ : धरण भूयाणंदा एत्थ दुवे णागकुमारिंदा णागकुमाररायाणो परिवसंति महिड्ढिया सेसं जहा ओहियाणं जाव विहरंति।

—पण्ण० पद० २, उ० १, सु० १८१-२।

नागकुमारेन्द्र—

१६८ : यहाँ पर नागकुमारों के राजा, नागकुमारेन्द्र धरण और भूतानन्द ये दो रहते हैं। वे महर्धिक हैं शेष सारा वर्णन सामान्य वर्णन के समान है यावत् (दिव्य भोग भोगते हुए) रहते हैं।

---

१. सम० ६०, सु० ४।
२. ठाणं० ७, सु० ५८३।
३. भग० स० ३, उ० ६, सु० १४।
४. जीवा० प० ३, उ० १, सु० ११६।
५. सम० ८४, सु० ११।
६. जीवा० प० ३, उ० २, सु० १२०।

दाहिणिल्ल-णागकुमारठाणाइं—

१६९ : प० [१] कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला णागकुमारा देवा परिवसंति ?

उ० [१] गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असी-उत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए, उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता, हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से—एत्थ णं दाहिणिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं चोयालीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा जाव पडि-रूवा—एत्थ णं दाहिणिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

[२] तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। एत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला नागकुमारा देवा परिवसंति। महिड्ढीया जाव विहरंति।

—पण्ण० पद० २, सु० १८२ [१]।

दाक्षिणात्य नागकुमारों के स्थान—

१६९ : प्र० [१] हे भगवन् ! दक्षिण दिशा में रहने वाले पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

[२] हे भगवन् ! दक्षिण दिशा में रहने वाले नागकुमार देव कहाँ रहते हैं ?

उ० [१] हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण में एक लाख अस्सीहजार योजन मोटाई वाली इस रत्न-प्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन करने पर और नीचे एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठत्तर हजार योजन प्रमाण मध्य भाग में दक्षिण दिशावासी नागकुमार देवों के चुम्मा-लीस लाख भवनावास हैं—ऐसा कहा गया है।

वे भवन बाहर से वृत्ताकार हैं अन्दर से चतुष्कोण हैं यावत् प्रतिरूप हैं। यहाँ दक्षिण दिशावासी पर्याप्त तथा अपर्याप्त नाग-कुमार देवों के स्थान कहे गये हैं।

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में (नागकुमारों की उत्पत्ति, समुद्घात तथा उनके अपने स्थान) ये तीनों हैं। यहाँ दक्षिण दिशावासी नागकुमार देव रहते हैं। ये महर्धिक हैं, यावत् (दिव्य भोग भोगते हुए) रहते हैं।

दाहिणिल्लणागकुमारिंदो धरणो—

१७० : धरणे यऽत्थ णागकुमारिंदे णागकुमारराया परिवसंति महिड्ढीए जाव दिव्वाए लेसाए दसदिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे।

से णं तत्थ चोयालीसाए भवणावाससय-सहस्साणं[1] छण्हं सामाणियसाहस्सीणं,[2] तावत्तीसाए ताव-त्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं,[3] पंचण्हं अग्गमहिसीणं[4] सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाधिवतीणं,[5] चउव्वीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणील्लाणं नागकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे विहरति।[6]

—पण्ण० पद० २, सु० १८२-२।

दाक्षिणात्य नागकुमारेन्द्र धरण—

१७० : यहाँ नागकुमार राजा नागकुमारेन्द्र धरण रहते हैं। वे महर्धिक हैं यावत् दिव्यलेश्या से दसों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रकाशित करते हुए रहते हैं।

वह चुम्मालीस लाख भवनावासों का, छह हजार सामानिक देवों का, तेतीस त्रायस्त्रिंश देवों का, चार लोकपालों का, सपरिवार पाँच अग्रमहिषियों का, तीन परिषदाओं का, सात सेनाओं का, सात सेनापतियों का, चौबीसहजार आत्मरक्षक देवों का और अन्य अनेक दक्षिण दिशावासी नागकुमार देव-देवियों का आधिपत्य एवं पुरो-वर्तित्व करते हुए रहता है।

उत्तरिल्ल-णागकुमारठाणाइं—

१७१ : प० [१] कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

उत्तरदिशा के नागकुमारों के स्थान—

१७१ : प्र० [१] हे भगवन् ! उत्तरदिशावासी पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

---

१. सम० ४४, सु० ३।
२. ठाणं० ६, सु० ५०६।
३. ठाणं० ४, उ० १, सु० ५६।
४. ठाणं० ६, सु० ५०८ में धरण की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं।
५. ठाणं० ७, सु० ५८२।
६. जीवा० प० ३, उ० २, सु० १२०।

[२] कहि णं भंते ! उत्तरिल्ला णागकुमारा देवा परिवसंति ?

उ० [१] गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसतसहस्स वाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता, हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयणसतसहस्से— एत्थ णं उत्तरिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं चत्तालीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतिती मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा—सेसं जहा दाहिणिल्लाणं जाव विहरंति।

—पण्ण० पद० २, सु० १८३-१।

[२] हे भगवन् ! उत्तर दिशावासी नागकुमार देव कहाँ रहते हैं ?

उ० [१] हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर में एक लाख अस्सीहजार योजन मोटाई वाली इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन करने पर और नीचे से एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठत्तर हजार योजन प्रमाण मध्य भाग में उत्तर दिशावासी नागकुमार देवों के चालीस लाख भवनावास हैं— ऐसा कहा गया है।

ये भवन बाहर से वृत्ताकार हैं अन्दर से चौकोर हैं—शेष वर्णन दक्षिण दिशावासी (नागकुमारों) के समान हैं यावत् रहते हैं।

उत्तरिल्लणागकुमारिंदो भूयाणंदो—

१७२ : भूयाणंदे यत्थ णागकुमारिंदे णागकुमारराया परिवसति महिड्ढीए जाव दिव्वाए लेसाए दसदिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे।

ते णं तत्थ चत्तालीसं भवणावाससयसहस्साणं[1] आहेवच्चं जाव विहरइ।[2]

—पण्ण० पद० २, सु० १८३ [२]।

उत्तर दिशा के नागकुमारेन्द्र भूतानन्द—

१७२ : यहाँ नागकुमारों के राजा नागकुमारेन्द्र भूतानन्द रहते हैं वे महर्धिक हैं यावत् दिव्यलेश्या से दसों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रकाशित करते हुए रहते हैं।

वहाँ चालीस लाख भवनावासों का आधिपत्य एवं पुरोगामित्व करते हुए यावत् रहते हैं।

सुवण्णकुमारठाणाइं—

१७३ : प० [१] कहि णं भंते ! सुवण्णकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ! सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति ?

उ० [१] गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जिऊण, मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयणसयसहस्से— एत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं बावत्तरिं भवणावाससतसहस्सा भवतीतिमक्खातं।[3]

ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा—तत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

[२] तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति, महिड्ढीया सेसं जहा ओहियाणं जाव विहरंति।

—पण्ण० पद० २, सु० १८४ [१]।

सुपर्णकुमारों के स्थान—

१७३ : प्र० [१] हे भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

[२] हे भगवन् ! सुपर्णकुमार देव कहाँ रहते हैं ?

उ० [१] हे गौतम ! एक लाख अस्सीहजार योजन बाहल्य (मोटाई) वाली इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन करने पर और नीचे से एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठत्तर हजार योजन प्रमाण मध्य भाग में सुपर्णकुमार देवों के बहत्तर लाख भवनावास हैं—ऐसा कहा गया है।

ये भवन बाहर से वृत्ताकार हैं यावत् प्रतिरूप हैं। इनमें पर्याप्त तथा अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहे गये हैं।

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में (इनकी उत्पत्ति समुद्घात और इनके स्वस्थान) ये तीनों हैं। वहाँ सुपर्णकुमार देव रहते हैं। वे महर्धिक हैं शेष सामान्य वर्णन जैसा है यावत् (क्रीड़ारत) रहते हैं।

१. सम० ४०, सु० २। २. जीवा० प० ३, उ० २, सु० १२०। ३. सु० ७२, सु० १।

सुवण्णकुमारिंदा—

१७४ : वेणुदेव-वेणुदाली यऽत्थ दुवे सुवण्णकुमारिंदा सुवण्ण-कुमाररायाणो[1] परिवसंति । महिड्ढीया जाव विहरंति ।

—पण्ण० पद० २, सु० १८४ [२] ।

सुपर्णकुमार देवों के इन्द्र—

१७४ : सुपर्णकुमारों के राजा सुपर्णकुमारेन्द्र वेणुदेव और वेणुदाली ये दो वहाँ रहते हैं । वे महर्धिक हैं यावत् वे (क्रीड़ारत) रहते हैं ।

दाहिणिल्लसुवण्णकुमारठाणाइं—

१७५ : प० [१] कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति ?

उ० [१] गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्स वाहल्लाए उवरिं एगं जोयण-सहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जिऊण, मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से—एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं अट्ठतीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीतिमक्खातं ।

ते णं भवणा वाहिं वट्टा जाव पडिरूवा—एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

[२] तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे । एत्थ णं वहवे सुवण्णकुमाराणं देवा परिवसंति ।

—पण्ण० पद० २, सु० १८५ [१] ।

दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारों के स्थान—

१७५ : प्र० [१] हे भगवन् ! दक्षिण दिशावासी पर्याप्त-अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

[२] हे भगवन् ! दक्षिण दिशावासी सुपर्णकुमार देव कहाँ रहते हैं ?

उ० [२] हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण में एक लाख अस्सीहजार योजन बाहल्य वाली इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन करने पर और नीचे से एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठत्तर हजार योजन प्रमाण मध्य भाग में दक्षिण दिशावासी सुपर्णकुमारों के अडतीस लाख भवनावास हैं—ऐसा कहा गया है ।

ये भवन वाहर से वृत्ताकार हैं यावत् प्रतिरूप हैं । यहाँ दक्षिण दिशावासी पर्याप्त तथा अपर्याप्त सुपर्णकुमारों के स्थान कहे गये हैं ।

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में (इनकी उत्पत्ति समुद्घात तथा इनके अपने स्थान) ये तीनों हैं । यहाँ पर अनेक सुपर्णकुमार देव रहते हैं ।

दाहिणिल्लसुवण्णकुमारिंदो वेणुदेवो—

१७६ : वेणुदेवे यऽत्थ सुवण्णिंदे सुवण्णकुमारराया परि-वसइ । सेसं जहा णागकुमाराणं ।

—पण्ण० पद० २, सु० १८५ [२[।

दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारेन्द्र वेणुदेव—

१७६ : यहाँ पर सुपर्णकुमारों के राजा सुपर्णकुमारेन्द्र वेणु-देव रहते हैं । शेष सारा वर्णन नागकुमारों के समान हैं ।

उत्तरिल्लसुवण्णकुमारठाणाइं—

१७७ : प० [१] कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

[२] कहि णं भंते ! उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति ?

उत्तर दिशा के सुपर्णकुमारों के स्थान—

१७७ : प्र० [१] भगवन् ! उत्तर दिशावासी पर्याप्त और अप-र्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये हैं ?

[२] भगवन् ! उत्तर दिशावासी सुपर्णकुमार देव कहाँ रहते हैं ?

---

१. ठाणं० २, उ० ३, सु० ९४ ।

उ० [१] गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असी-उत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता, हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जिऊण, मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से—एत्थ णं उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं चोत्तीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा जाव पडि-रूवा—एत्थ णं उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं पज्जत्ता-ऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

[२] तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे—एत्थ णं बहवे उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति। महिड्ढीया जाव विहरंति।

—पण्ण० पद० २, सु० १८६ [१]।

उ० [१] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन करने पर और नीचे से एक हजार योजन छोड़ने पर एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रमाण मध्य भाग में उत्तर दिशावासी सुपर्णकुमार देवों के चोतीसलाख भवनावास हैं—ऐसा कहा गया है।

ये भवन बाहर से वृत्ताकार हैं, अन्दर से चतुष्कोण हैं, यावत् प्रतिरूप हैं। यहाँ उत्तरदिशा के पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्ण-कुमारों के स्थान कहे गये हैं।

[२] लोक के असंख्यातवें भाग में (इनकी उत्पत्ति, समुद्घात तथा उनके अपने अपने स्थान) ये तीनों हैं। यहाँ पर उत्तर दिशा-वासी सुपर्णकुमार देव रहते हैं। वे महर्द्धिक हैं यावत् वे रहते हैं।

उत्तरिल्लसुवण्णकुमारिंदो वेणुदाली—

१७८ : वेणुदाली यऽत्थ सुवण्णकुमारिंदे सुवण्णकुमारराया परिवसइ। महिड्ढीए सेसं जहा णागकुमाराणं।

— पण्ण० पद० २, सु० १८६ [२]।

उत्तर दिशा के सुपर्णकुमारेन्द्र वेणुदाली—

१७८ : सुपर्णकुमार राजा सुपर्णकुमारेन्द्र वेणुदाली यहाँ रहते हैं। वे महर्द्धिक हैं—शेष (सम्पूर्ण वर्णन) नागकुमारों जैसा है।

विज्जुकुमाराईणं सत्तण्हं ठाणमाईण निरूवणं—

१७९ : एवं जहा सुवण्णकुमाराणं वत्तव्वया भणिया तहा सेसाण वि चोद्दसण्हं इंदाणं भाणियव्वा—

नवरं भवण-णाणत्तं,

इंद-णाणत्तं,

वण्ण-णाणत्तं,

परिहाण-णाणत्तं च।[1]

—पण्ण० पद० २, सु० १८७।

विद्युत्कुमारादि सातों के स्थानादिका निरूपण—

१७९ : जिस प्रकार सुपर्णकुमारों का वर्णन कहा गया है उसी प्रकार शेष चौदह इन्द्रों का वर्णन भी कहना चाहिए।

विशेष—भवनों की संख्या भिन्न भिन्न है।

इन्द्रों के नाम भिन्न भिन्न हैं।

(भवनवासी देवों के) वर्ण भिन्न भिन्न हैं।

(भवनवासी देवों के) परिधानों का वर्ण भिन्न भिन्न हैं।

भवणवासिदेवाण भवणसंखा पमाण य—

१८० : प० केवतिया णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

उ० गोयमा ! चोसट्ठि असुरकुमारावाससयसहस्सा पन्नत्ता।

प० ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा ?

उ० गोयमा ! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्जवित्थडा वि।

—भग० स० १३, उ० २ सु० [illegible]।

भवनवासी देवों के भवनों की संख्या और उनका प्रमाण—

१८० : प्र० भगवन् ! असुरकुमारों के कितने लाख आवास कहे गये हैं ?

उ० गौतम ! असुरकुमारों के चौसठलाख आवास कहे गये हैं।

प्र० भगवन् ! क्या वे संख्येय विस्तार वाले हैं या असंख्येय विस्तार वाले हैं ?

उ० गौतम ! संख्येय विस्तार वाले हैं और असंख्येय विस्तार वाले भी हैं।

१. यहाँ "इमाहिं गाहाहिं अणुगंतव्वं" ऐसा सूचना पाठ है और नीचे गाथायें हैं — इनमें से भवनसंख्यासूचक प्रारम्भ की चार गाथायें "भवणवासिदेवाणं भवणसंखा पमाणं य" इस शीर्षक के नीचे दिये गये मूलपाठ के पश्चात् दी गई हैं।

१८१ : प० केवतिया णं भंते ! नागकुमारावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

उ० (गोयमा ! चुलसीइनागकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।) एवं जाव थणियकुमारा ।

नवरं—जत्थ जत्तिया भवणा ।

—भग० स० १३, उ० २, सु० ६ ।

१८१ : प्र० भगवन् ! नागकुमारों के कितने लाख आवास कहे गये हैं ?

उ० (गौतम ! नागकुमारों के चौरासीलाख आवास कहे गये हैं ।) इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक हैं ।

विशेष—जहाँ जितने भवन हैं (उतने कहें) ।

१८२ : गाहाओ—

१ चोसट्ठि असुराणं,[1]
२ चुलसीति चेव होंति नागाणं ।[2]
३ बावत्तरिं सुवण्णे,[3]
४ वाउकुमाराण छण्णउ य[4] ।।
५ दीव, ६ दिसा, ७ उदहीणं, ८ विज्जुकुमारिंद,
९ थणिय, १० मग्गीणं ।
छण्हं पि जुवलयाणं, छावत्तरिमो सयसहस्सा ।[5]

—पण्ण० पद० २, सु० १८७ ।

१८२ : गाथार्थ—

१. असुरकुमारों के चौसठलाख भवन हैं ।

२. नागकुमारों के चौरासीलाख भवन हैं ।

३. सुपर्णकुमारों के बहत्तरलाख भवन हैं ।

४. वायुकुमारों के छिन्नवेलाख भवन हैं ।

५. द्वीपकुमार, ६. दिशाकुमार, ७. उदधिकुमार, ८. विद्युत्कुमार, ९. स्तनितकुमार और १०. अग्निकुमार इन ६ युगलों (दक्षिण उत्तर) के (प्रत्येक युगल के) छिहत्तरलाख भवन हैं ।

दाहिणिल्ल उत्तरिल्ल-भवणसंखा—

दक्षिणदिशा और उत्तरदिशा के भवनों की संख्या—

१८३ : गाहाओ—

१ चोत्तीसा,[6]
२ चोयाला,[7]
३ अट्ठतीसं च सयसहस्साइं ।
४ पण्णा,
५ चत्तालीसा, ६-१० दाहिणओ होंति भवणाइं ।।

१ तीसा,
२ चत्तालीसा,[8]
३ चोत्तीसं चेव सयसहस्साइं ।
४ छायाला,[9]
५ छत्तीसा, ६-१० उत्तरओ होंति भवणाइं ।

—पण्ण० पद० २, सु० १८७ ।

१८३ : गाथार्थ—

१. असुरेन्द्र चमर के भवन चौतीसलाख हैं ।

२. नागकुमारेन्द्र धरण के भवन चुम्मालीसलाख हैं ।

३. सुपर्णकुमारेन्द्र वेणुदेव के भवन अडतीसलाख हैं ।

४. विद्युत्कुमारेन्द्र हरि (कांत) के भवन पचासलाख हैं ।

शेष छह इन्द्रों के (प्रत्येक के) भवन चालीस चालीसलाख हैं ।....

१. असुरेन्द्र बली के भवन तीसलाख हैं ।

२. नागकुमारेन्द्र भूतानन्द के भवन चालीसलाख हैं ।

३. सुपर्णकुमारेन्द्र वेणुदाली के भवन चौतीसलाख हैं ।

४. विद्युत्कुमारेन्द्र हरिस्सह के भवन छियालीसलाख हैं ।

शेष छह इन्द्रों के (प्रत्येक के) भवन छत्तीस, छत्तीसलाख हैं ।....

भवणावासाणं रयणामयत्तं सासयासासयत्तं य—

रत्नमय भवनावास शाश्वत और अशाश्वत—

१८४ : प० केवतिया णं भंते ! असुरकुमार भवणावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

१८४ : प्र० भगवन् ! असुरकुमारों के कितने लाख भवनावास कहे गये हैं ?

१. सम० ६४, सु० २ ।
२. क—सम० ८४, सु० ११ ।
ख—भग० स० १३, उ० २, सु० ६ ।
३. सम० ७२, सु० १ ।
४. सम० ९६, सु० २ ।
५. क—सम० ७६, सु० १-२ ।
ख—भग० स० १, उ० ५, सु० ३ ।
६. सम० ३४, सु० ५ ।
७. सम० ४४, सु० ३ ।
८. सम० ४०, सु० ४ ।
९. सम० ४६, सु० ३ ।

उ० गोयमा ! चोयट्ठिं असुरकुमार-भवणावाससयसहस्सा पन्नत्ता।

प० ते णं भंते ! किमया पन्नत्ता ?

उ० गोयमा ! सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा। तत्थ णं बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उववज्जंति, सासया णं ते भवणा दव्वट्ठयाए, वण्णपज्जवेहिं जाव फासपज्जवेहिं असासया।

एवं जाव थणियकुमारावासा।

—भग० स० १९, उ० ७, सु० १, २, ३।

उ० गौतम ! असुरकुमारों के चौसठलाख भवनावास कहे गये हैं।

प्र० भगवन् ! वे किसके बने हुए हैं ?

उ० गौतम ! वे सम्पूर्ण रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, श्लक्ष्ण—चिकने हैं, यावत् मनोहर हैं। उनमें अनेक जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। अनेक पुद्गल आते हैं और जाते हैं। अतः वे भवन द्रव्यों की अपेक्षा से शाश्वत हैं। वर्ण पर्यवों (की अपेक्षा) से यावत् स्पर्श पर्यवों (की अपेक्षा) से अशाश्वत हैं।

इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारावास हैं।

भवणवासीणं इंदा—

१८५ : १. दो असुरकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) चमरे चेव, (२) बलि चेव।
२. दो नागकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) धरणे चेव, (२) भूयाणंदे चेव।
३. दो सुवण्णकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) वेणुदेवे चेव, (२) वेणुदाली चेव।
४. दो विज्जुकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) हरिच्चेव, (२) हरिस्सहे चेव।
५. दो अग्गिकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) अग्गिसिहे चेव, (२) अग्गिमाणवे चेव।
६. दो दीवकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) पुण्णे चेव, (२) विसिट्ठे चेव।
७. दो उदहिकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) जलकंते चेव, (२) जलप्पभे चेव।
८. दो दिसाकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) अमियगई चेव, (२) अमियवाहणे चेव।
९. दो वायुकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) वेलंबे चेव, (२) पभंजणे चेव,
१०. दो थणियकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) घोसे चेव,[1] (२) महाघोसे चेव।[2]

—ठाणं० २, उ० ३, सु० ९४।

भवनवासियों के इन्द्र—

१८५ : १. असुरकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं, यथा—
(१) चमर और (२) बलि।
२. नागकुमारों के दो इन्द्र कहे गये है, यथा—
(१) धरण और (२) भूतानन्द।
३. सुवर्णकुमारों के दो इन्द्र कहे गये है, यथा—
(१) वेणुदेव और (२) वेणुदाली।
४. विद्युत्कुमारों के दो इन्द्र कहे गये है, यथा—
(१) हरी और (२) हरिस्सह।
५. अग्निकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं, यथा—
(१) अग्निशिख और (२) अग्निमाणव।
६. द्वीपकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं, यथा—
(१) पूर्ण और (२) वासिष्ठ।
७. उदधिकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं, यथा—
(१) जलकांत और (२) जलप्रभ।
८. दिशाकुमारों के दो इन्द्र कहे गये है, यथा—
(१) अमितगति और (२) अमितवाहन।
९. वायुकुमारों के दो इन्द्र कहे गये है, यथा—
(१) वेलंब और (२) प्रभंजन।
१०. स्तनितकुमारों के दो इन्द्र कहे गये है, यथा—
(१) घोष और (२) महाघोष।

१. सम० ३२, सु० २।
२. दाहिणिल्ला इंदा : गाहा—

१. चमर, २. धरणे, ३. तह वेणुदेव, ४. हरिकंत, ५. अग्गिसीहे य।
६. पुण्णे, ७. जलकंते य, ८. अमिय, ९. विलंबे य, १०. घोसे य॥

उत्तरिल्ला इंदा : गाहा—

१. बलि, २. भूयाणंदे, ३. वेणुदालि, ४. हरिस्सहे, ५. अग्गिमाणव, ६. वसिट्ठे।
७. जलप्पभे, ८. अमियवाहणे, ९. पभंजणे य, १०. महाघोसे॥ —पण्ण० पद० २, सु० १८७।

भवणवइइंदाणं अग्गमहिसीओ—

१८६ : १. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो पंच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

(१) काली, (२) राई, (३) रयणी, (४) विज्जू, (५) मेहा।

२. बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो पंच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

(१) सुभा, (२) निसुभा, (३) रंभा, (४) निरंभा, (५) मयणा।

—ठाणं० ५, उ० १, सु० ४०३।

भवनपति इन्द्रों की अग्रमहिषियाँ—

१८६ : १. असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर की पाँच अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—

(१) काली, (२) राजि, (३) रत्नी, (४) विद्युत, (५) मेघा।

२. वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बली की पाँच अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—

(१) शुभा, (२) निःशुभा, (३) रंभा, (४) निरंभा, (५) मदना।

१८७ : १. धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१-६ आला जाव घणविज्जुया।

२. भूयाणंदस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१-६ रूवा जाव रूवप्पभा।

जहा धरणस्स तहा सव्वेसिं २-१० दाहिणिल्लाणं जाव घोसस्स।

जहा भूयाणंदस्स तहा सव्वेसिं २-१० उत्तरिल्लाणं जाव महाघोसस्स।

—ठाणं० ६, सु० ५०८।

१८७ : १. नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—

(१-६) आला यावत् घनविद्युता।

२. नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानन्द की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—

(१-६) रूपा यावत् रूपप्रभा।

दक्षिण दिशा के घोष पर्यन्त सभी (शेष आठ इन्द्रों) की अग्रमहिषियों के नाम धरण जैसे हैं।

उत्तर दिशा के महाघोष पर्यन्त सभी (शेष आठ इन्द्रों) की अग्रमहिषियों के नाम भूतानन्द जैसे हैं।

१८८ : छ दिसिकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

(१) रूया, (२) रूयंसा, (३) सुरूवा, (४) रूपवई, (५) रूपकंता, (६) रूपप्पभा।

छ विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

(१) आला, (२) सक्का, (३) सतेरा, (४) सोयामणी, (५) इंदा, (६) घनविज्जुया।[1]

—ठाणं० ६, सु० ५०७।

१८८ : दिशाकुमारियों में महत्तरिका—प्रधान छह कही गई हैं, यथा—

(१) रूपा, (२) रूपांशा, (३) सुरूपा, (४) रूपवती, (५) रूपकांता, (६) रूपप्रभा।

विद्युत्कुमारियों में महत्तरिका—प्रधान छह कही गई हैं, यथा—

(१) आला, (२) शक्रा, (३) शतेरा, (४) सौदामिनी, (५) इन्द्रा, (६) घनविद्युता।

१८९ : चत्तारि विसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

(१) रूया, (२) रूयंसा, (३) सुरूवा, (४) रूपवई।

१८९ : दिशाकुमारियों में महत्तरिका—प्रधान चार कही गई हैं, यथा—

(१) रूपा, (२) रूपांशा, (३) सुरूपा, (४) रूपवती।

---

१. इन सूत्रों में छह-छह महत्तरिकाओं के जो नाम हैं वे ऊपर ५०८ सूत्र में दिये गये नामों के समान हैं। इसलिए 'अग्रमहिषी' और 'महत्तरिका' ये दोनों शब्द पर्यायवाची प्रतीत होते हैं।

चत्तारि विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
(१) चित्ता, (२) चित्तकणगा,' (३) सएरा, (४) सोयामणी।

—ठाणं ४, उ० १, सु० २५६ '

विद्युत्कुमारियों में महत्तरिका—प्रधान चार कही गई हैं, यथा—
(१) चित्रा, (२) चित्र कनका, (३) शतेरा, (४) सौदामिनी।

भवणवासीणं वण्णाइं—

१६० : गाहाओ :—

काला असुरकुमारा, णागा उदही य पंडुरा दो वि।
वरकणगणिहसगोरा, होंति सुवण्णा दिसा थणिया॥

उत्तत्तकणगवण्णा, विज्जू अग्गी य होंति दीवा य।
सामा पियंगुवण्णा, वाउकुमारा मुणेयव्वा॥

—पण्ण० पद० २, सु० १८७।

भवनवासी देवों के वर्ण—

१६० : गाथार्थ—

असुरकुमारों का वर्ण काला है, नागकुमार और उदधिकुमारों का वर्ण पंडुर (श्वेत-पीत मिश्रित) है, सुवर्णकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमारों का वर्ण कसोटी पर की हुई श्रेष्ठ स्वर्णरेखा के समान गौर वर्ण है। विद्युत्कुमार, अग्निकुमार और द्वीपकुमारों का वर्ण तपे हुए स्वर्ण वर्ण जैसा है, वायुकुमारों का वर्ण प्रियंगु जैसा श्याम जानना चाहिए।

भवणवासीणं परिहाणवण्णाइं—

१६१ : गाहाओ :—

असुरेसु होंति रत्ता, सिलिंघ पुप्फपभा य नागुदही।
आसासगवसणधरा, होंति सुवण्णा दिसा थणिया॥

णीलाणुरागवसणा, विज्जू अग्गी य होंति दीवा य।
संझाणुरागवसणा, वाउकुमारा मुणेयव्वा॥

—पण्ण० पद० २, सु० १८७।

भवनवासी देवों के परिधानों (वस्त्रों) का वर्ण—

१६१ : गाथार्थ—

असुरकुमारों के वस्त्रों का वर्ण रक्त है, नागकुमार और उदधिकुमारों के वस्त्रों का वर्ण सिलिंध्र (वृक्ष) के पुष्पों की प्रभा जैसा है, सुवर्णकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमारों के वस्त्रों का वर्ण आसासग (वृक्ष के वर्ण) जैसा है, विद्युतकुमार, अग्निकुमार और द्वीपकुमारों के वस्त्रों का वर्ण नीला है, वायुकुमारों के वस्त्रों का वर्ण संध्या समय जैसा जानना चाहिए।

भवणवईणं सामाणियदेव आयरक्खदेवसंखा य—

१६२ : गाहाओ :—

१. चउसट्ठी', २. सट्ठी' खलु,
३-१०. छच्चसहस्साउ असुरवज्जाणं'।
सामाणिया उ एए,
चउग्गुणा आयरक्खा उ॥

—पण्ण० पद० २, सु० १८७।

भवनपतियों के सामानिक देवों की और आत्मरक्षक देवों की संख्या—

१६२ : गाथार्थ—

चमरेन्द्र के चौसठ हजार सामानिक देव हैं और चौसठ हजार के चौगुणे (दो लाख छप्पन हजार) आत्मरक्षक देव हैं।

वैरोचनेन्द्र बलि के साठ हजार सामानिक देव हैं और साठ-हजार के चौगुणे (दो लाख चालीस हजार) आत्मरक्षक देव हैं।

असुरेन्द्रों को छोड़कर शेष आठ इन्द्रों (प्रत्येक) के छह-छह हजार सामानिक देव हैं और प्रत्येक के आत्मरक्षक देव छह हजार के चौगुणे (चौबीस हजार) हैं।

भवणवासिइंदाणं लोगपाला—

१६३ : १. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तं जहा—

१. सोमे, २. जमे, ३. वरुणे, ४. वेसमणे।

२. एवं बलिस्स वि—

१. सोमे, २. जमे, ३. वेसमणे, ४. वरुणे।

३. एवं धरणस्स वि—

१. कालपाले, २. कोलपाले, ३. सेलपाले, ४. संखपाले।

४. एवं भूयाणंदस्स वि—

१. कालपाले, २. कोलपाले, ३. संखपाले, ४. सेलपाले।

५. एवं वेणुदेवस्स वि—

१. चित्ते, २. विचित्ते, ३. चित्तपक्खे, ४. विचित्तपक्खे।

६. एवं वेणुदालिस्स वि—

१. चित्ते, २. विचित्ते, ३. विचित्तपक्खे, ४. चित्तपक्खे।

७. एवं हरिकंतस्स वि—

१. पभे, २. सुपभे, ३. पभकंते, ४. सुपभकंते।

८. एवं हरिसहस्स वि—

१. पभे, २. सुपभे, ३. सुपभकंते, ४. पभकंते।

९. एवं अग्गिसिहस्स वि—

१. तेउ, २. तेउसिहे, ३. तेउकंते, ४. तेउप्पभे।

१०. एवं अग्गिमाणवस्स वि—

१. तेउ, २. तेउसिहे, ३. तेउप्पभे, ४. तेउकंते।

११. एवं पन्नस्स वि—

१. रूए, २. रूयंसे, ३. रूयकंते, ४. रूयप्पभे।

१२. एवं वसिट्ठस्स वि—

भवनवासि इन्द्रों के लोकपाल—

१६३ : १. असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के चार लोकपाल कहे गये हैं, यथा—

१. सोम, २. यम, ३. वरुण, ४. वैश्रमण।

२. इसी प्रकार बली के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. सोम, २. यम, ३. वैश्रमण, ४. वरुण।

३. इसी प्रकार धरण के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. कालपाल, २. कोलपाल, ३. शैलपाल, ४. शंखपाल।

४. इसी प्रकार भूतानन्द के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. कालपाल, २. कोलपाल, ३. शंखपाल, ४. शैलपाल।

५. इसी प्रकार वेणुदेव के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. चित्र, २. विचित्र, ३. चित्रपक्ष, ४. विचित्रपक्ष।

६. इसी प्रकार वेणुदाली के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. चित्र, २. विचित्र, ३. विचित्रपक्ष, ४. चित्रपक्ष।

७. इसी प्रकार हरिकांत के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. प्रभ, २. सुप्रभ, ३. प्रभकांत, ४. सुप्रभकांत।

८. इसी प्रकार हरिस्सह के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. प्रभ, २. सुप्रभ, ३. सुप्रभकांत, ४. प्रभकांत।

९. इसी प्रकार अग्निशिख के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. तेजस्, २. तेजःशिख, ३. तेजस्कांत, ४. तेजस्प्रभ।

१०. इसी प्रकार अग्निमाणव के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. तेजस्, २. तेजःशिख, ३. तेजस्प्रभ, ४. तेजस्कांत।

११. इसी प्रकार पूर्ण के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. रूप, २. रूपांश, ३. रूपकांत, ४. रूपप्रभ।

१२. इसी प्रकार वशिष्ठ के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. रूए, २. रूयंसे, ३. रूयप्पभे, ४. रूयकंते।

१. रूप, २. रूपांश, ३. रूपप्रभ, ४. रूपकांत।

१३. एवं जलकंतस्स वि—

१. जले, २. जलरए, ३. जलकंते, ४. जलप्पभे।

१३. इसी प्रकार जलकांत के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. जल, २. जलरत, ३. जलकांत, ४. जलप्रभ।

१४. एवं जलप्पहस्स वि—

१. जले, २. जलरए, ३. जलप्पभे, ४. जलकंते।

१४. इसी प्रकार जलप्रभ के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. जल, २. जलरत, ३. जलप्रभ, ४. जलकांत।

१५. एवं अमितगतिस्स वि—

१. तुरियगई, २. खिप्पगई, ३. सीहगई, ४. सीहविक्कमगई।

१५. इसी प्रकार अमितगति के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. त्वरितगति, २. क्षिप्रगति, ३. सिंहगति ४. सिंहविक्रमगति।

१६. एवं अमितवाहणस्स वि—

१. तुरियगई, २. खिप्पगई, ३. सीहविक्कमगई, ४. सीहगई।

१६. इसी प्रकार अमितवाहन के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. त्वरितगति, २. क्षिप्रगति, ३. सिंहविक्रमगति, ४. सिंहगति।

१७. एवं वेलंबस्स वि—

१. काले, २. महाकाले, ३. अंजणे, ४. रिट्ठे।

१७. इसी प्रकार वेलंब के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. काल, २. महाकाल, ३. अंजन, ४. रिष्ठ।

१८. एवं पभंजणस्स वि—

१. काले, २. महाकाले, ३. रिट्ठे, ४. अंजणे।

१८. इसीप्रकार प्रभंजन के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. काल, २. महाकाल, ३. रिष्ठ, ४. अंजन।

१९. एवं घोसस्स वि—

१. आवत्ते, २. वियावत्ते, ३. णंदियावत्ते, ४. महाणंदियावत्ते।

१९. इसी प्रकार घोष के भी (चार लोकपाल कहे गये हैं, यथा—

१. आवर्त, २. व्यावर्त, ३. नंदिनावर्त, ४. महानंदितावर्त।

२०. एवं महाघोसस्स वि—

१. आवत्ते, २. वियावत्ते, ३. महाणंदियावत्ते ४. णंदियावत्ते।

—ठाणं० ४, उ० १, सु० २५६।

२०. इसी प्रकार महाघोष के भी (चार लोकपाल कहे गये) हैं, यथा—

१. आवर्त, २. व्यावर्त, ३. महानंदितावर्त, ४. नंदितावर्त।

भवणवइइंद-लोगपालाणं अग्गमहिसीओ—

१६४ : १. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. कणगा, २. कणगलया, ३. चित्तगुत्ता, ४. वसुंधरा।

एवं २ जमस्स, ३ वरुणस्स, ४ वेसमणस्स।

भवनपति इन्द्रों के लोकपालों की अग्रमहिषियाँ—

१६४ : १. असुरकुमारराज असुरकुमारेन्द्र चमर के सोम (लोकपाल) महाराज की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—

१. कनका, २. कनकलता, ३. चित्रगुप्ता, ४. वसुन्धरा।

इसी प्रकार यम, वरुण और वैश्रमण (लोकपालों की अग्रमहिषियों के नाम) हैं।

२. बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो १ सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. मितगा, २. सुभद्दा, ३. विज्जुत्ता, ४. असणी।

एवं २ जमस्स, ३ वेसमणस्स, ४ वरुणस्स।

२. वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के सोम (लोकपाल) महाराज की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—

१. मितगा, २. सुभद्रा, ३. विद्युत, ४. अशनी।

इसी प्रकार यम, वरुण और वैश्रमण (लोकपाल की अग्रमहिषियों के नाम) हैं।

३. धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. असोगा, २. विमला, ३. सुप्पभा, ४. सुदंसणा।

एवं जाव संखवालस्स।

३. नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के कालवाल (लोकपाल) महाराज की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—

१. असोका, २. विमला, ३. सुप्रभा, ४. सुदर्शना।

इसीप्रकार सखवाल पर्यंत (लोकपालों की अग्रमहिषियों के नाम) हैं।

४. भूताणंदस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. सुणंदा, २. सुभद्दा, ३. सुजाया, ४. सुमणा।

एवं जाव सेलवालस्स।

४. नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानन्द के कालवाल (लोकपाल) महाराज की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा—

१. सुनन्दा, २. सुभद्रा, ३. सुजाया, ४. सुमना।

इसी प्रकार सेलवाल पर्यंत (लोकपालों की अग्रमहिषियों के नाम) हैं।

जहा धरणस्स एवं सव्वेसिं दाहिणिंदलोगपालाणं जाव घोसस्स।

घोष पर्यंत सभी दक्षिणेन्द्रों के लोकपालों की अग्रमहिषियों के नाम धरण (के लोकपालों की अग्रमहिषियों के नाम) जैसे हैं।

जहा भूताणंदस्स एवं सव्वेसिं उत्तरिंदलोगपालाणं जाव महाघोसस्स लोगपालाणं।

—ठाणं० ४, उ० १, सु० २७३।

महाघोष पर्यंत सभी उत्तरेन्द्रों के लोकपालों की अग्रमहिषियों के नाम भूतानन्द (के लोकपालों की अग्रमहिषियों) के समान हैं।

१९५ : चमरस्स सुहम्मा सभा—

प० कहि णं भंते! चमरस्स असुररण्णो सभा सुहम्मा पण्णत्ता?

उ० गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे[1] वीईवइत्ता, अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लातो वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं चरमस्स असुररण्णो तिगिंछिकूडे नामं उप्पायपव्वत्ते पण्णत्ते।

चमरेंद्र की सुधर्मा सभा—

१९५ : प्र० हे भगवन्? असुरराजचमर की सुधर्मा सभा कहाँ पर कही गई है?

उ० हे गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण में तिरछे असंख्यद्वीप समुद्र पार करने पर अरुणवर द्वीप की बाहिर की वेदिका से अरुणोदय समुद्र में बियालीस हजार योजन जाने पर असुरराज चमर का तिगिच्छ कूट नामक उत्पात पर्वत कहा गया है।

सत्तरसएक्कवीसे जोयणसते उड्ढं उच्चत्तेणं,[2]
चत्तारितीसे जोयणसते कोसं च उव्वेहेणं।

इस उत्पात पर्वत की ऊंचाई सतरहसो इक्कीस योजन है और उद्वेध (भू-गर्भ की गहराई) चार सौ तीस योजन और एक कोश है।

१. सम० १७, सु० ७। २. सम० सूत्र १०३/२।

गोत्थुभस्स आवासपव्वयस्स पमाणेण नेयव्वं, नवरं:—उवरिल्ले पमाण मज्झे भाणियव्वं जाव मूले वित्थडे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले, वरवइर विग्गहिए, महामउंदसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे।

इस उत्पात पर्वत का प्रमाण गोस्तुभ आवास पर्वत के समान जानना चाहिए। विशेष (अन्तर) यह है कि (गोस्तुभ आवास पर्वत के) ऊपर के प्रमाण के समान (इस उत्पात पर्वत के) मध्य भाग का प्रमाण जानना चाहिए। यावत् यह मूल में विस्तृत है, मध्य में संक्षिप्त है और ऊपर से विशाल है। इस (पर्वत) की आकृति श्रेष्ठ वज्र जैसी है, महा मुकुंद (वाद्य) के संस्थान से स्थित है। सारा पर्वत रत्नमय है स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण वणसंडेण य सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

वहाँ (उत्पात पर्वत) चारों ओर एक पद्मवर वेदिका और एक वनखण्ड से घिरा हुआ है।

पउमवरवेईयाए वणसंडस्स य वण्णओ।

यहाँ पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड का वर्णन कहना चाहिए।

तस्स णं तिगिच्छिकूडस्स उप्पायपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। वण्णओ। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेस भागे—एत्थ णं महं एगे पासायवडिंसए पण्णत्ते। अड्ढा-इज्जाइं जोयण-सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पणवीसं जोयण-सयं विक्खंभेणं।

उस तिगिच्छ कूट उत्पात पर्वत के ऊपर का भू-भाग अत्यधिक सम एवं रमणीय कहा गया है। यहाँ भूभाग का वर्णन कहना चाहिए। उस सम एवं रमणीय भूभाग के ठीक मध्य भाग में एक विशाल प्रासादावतंसक (सुन्दर महल) कहा गया है। इस (प्रासादा-वतंसक) की ऊँचाई दो सौ पचास योजन है और विष्कम्भ एक सौ पच्चीस योजन का है।

पासाय-वण्णओ। उल्लोयभूमिवण्णओ। अट्ठ जोयणाइं मणिपेढिया।

यहाँ प्रासादावतंसक एवं उसके ऊपरी भाग का वर्णन कहना चाहिए। आठ योजन की मणिपीठिका है।

चमरस्स सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं।

यहाँ चमरेन्द्र के सिंहासन का सपरिवार वर्णन कहना चाहिए।

तस्स णं तिगिच्छिकूडस्स दाहिणेणं छक्कोडिसए पणपन्नं च कोडीओ पणतीसं च सयसहस्साइं पण्णासं च जोयण सहस्साइं अरुणोदए समुद्दे तिरियं वीइवइत्ता, अहे य रयणप्पभाए पुढवीए चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो चमरचंचा णामं रायहाणी पण्णत्ता।

उस तिगिच्छ कूट (उत्पात पर्वत) के दक्षिण में अरुणोदय समुद्र में छह सौ पचपन करोड़ पैंतीस लाख पचास हजार योजन जाने पर नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी का चालीस हजार योजन भाग अवगाहन करने पर असुरराज असुरेन्द्र चमर की चमरचंचा नामक राजधानी कही गई है।

एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं जंबुद्दीवपमाणा। ओवारियलेणं सोलसजोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, पन्नासं जोयणसहस्साइं पंच य सत्ताणउए जोयणसए किंचि-विसेसूणे परिक्खेवेणं।

इसका आयाम-विष्कम्भ एक लाख योजन है जो जम्बूद्वीप के बराबर है। [illegible] का आयाम-विष्कम्भ सोलह हजार योजन है और उसकी परिधि पचास हजार पाँच सौ सित्तानवे योजन से कुछ कम है।

सव्वप्पमाणं वेमाणियप्पमाणस्स अद्धं नेयव्वं। सभा सुहम्मा उत्तरपुरत्थिमेणं, जिणघरं, ततो उववायसभा हरओ अभिसेय अलंकारो जहा विजयस्स। गाहा-

यहाँ सारा प्रमाण वैमानिकों के प्रमाण से आधा जानना चाहिए। सुधर्मा सभा, उत्तरपूर्व में जिनघर, उपपात सभा, ह्रद, अभिषेक और अलंकार यह सारा वर्णन विजय देव के समान है। गाथार्थ—

उववाओ संकप्पो अभिसेय विभूसणा य ववसाओ।
अच्चणिय सुहम्मा वि य परिवारो इड्ढी य॥

उपपात, संकल्प, अभिषेक, विभूषणा, व्यवसाय, अर्चनिका, सुधर्मा सभा का परिवार और उसकी ऋद्धि समझना।

[illegible]

[illegible]

चमरिंदस्स चमरचंचावासो—

१९६ : प० कहि ण भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचे नाम आवासे पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरियमसखेज्जे दीवसमुद्दे[1] वोइवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता —एत्य ण चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तिगिछिकूडे नामं उप्पायपव्वए पण्णत्ते ।

सत्तरसएक्कवीसे जोयणसए उड्ढ उच्चत्तेणं ।

चत्तारितीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं[1] ।

मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खभेण,

मज्झे चत्तारि चउवीसे जोयणसए विक्खभेण,

उवरिं सत्ततेवीसे जोयणसए विक्खभेणं,

मूले तिण्णि जोयणसहस्साइ दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचि विसेसूणं परिक्खेवेणं ।

मज्झे एगं जोयणसहस्स तिण्णि य इगुयाले जोयणसए किंचि विसेसूणं परिक्खेवेणं ।

उवरिं दोण्णि य जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलसीए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं ।

मूले वित्थडे, मज्झे संखित्ते, उप्पि विसाले, वरवइर विग्गहिए महामउंदसठाणसठिए सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे ।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।

चमरेन्द्र का चमरचंचावास—

१९६ : प्र० भगवन् ! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर का चमरचंचा नामक आवास कहाँ पर कहा गया है ?

उ० गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप से मेरु पर्वत के दक्षिण में तिरछे असंख्य द्वीप समुद्र लांघने के बाद अरुणवरद्वीप की बाहर की वेदिका के अन्तिम भाग से अरुणवर समुद्र में बियालीस हजार योजन जाने के बाद असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर का तिगिछि कूट नामक उत्पात पर्वत कहा गया है ।

(वह) सत्तरह सौ इक्कीस योजन ऊपर की ओर उन्नत है,

चार सौ तीस योजन और एक कोश भूमि में गहरा है,

उसका विष्कम्भ मूल में एक हजार बाईस योजन का है ।

मध्य में चार सौ चोवीस योजन का विष्कम्भ है ।

ऊपर सातसौ तेवीस योजन का विष्कम्भ है ।

उसकी परिधि मूल मे तीन हजार दो सौ बत्तीस योजन से कुछ कम है ।

मध्य में एक हजार तीन सौ इकतालीस योजन से कुछ कम है ।

ऊपर दो हजार दो सौ छियालीस योजन से कुछ अधिक है ।

मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर से विशाल है । श्रेष्ठ वज्र जैसी आकृति है, महा मुकुंद के संस्थान से स्थित है, सब रत्नमय है स्वच्छ है यावत् मनोहर है ।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है ।

---

१. क—यहाँ संक्षिप्त वाचनाकार की सूचना है :—

एवं जहा बितिय सए सभा उद्देस वत्तव्वया (स० २ उ० ८, सु० १) सच्चेव अपरिसेसा नेयव्वा, नवरं इमं नाणत्तं जाव तिगिच्छकूडयस्स उप्पायपव्वयस्स, चमरचंचाए रायहाणीए चमरचंचस्स आवासपव्वयस्स अन्नेसिं च बहूणं सेसं तं चेव जाव तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिया परिक्खेवेणं ।

इस सूचना के अनुसार (स० २, उ० ८, सु० १) से "वीइवइत्ता"····से····"····कोसं च उव्वेहेणं····" तक का पाठ यहाँ दिया है ।

ख—ऊपर अंकित संक्षिप्त वाचना की सूचना में—"नवरं इमं नाणत्तं" के आगे जो जाव दिया है—इसका अभिप्राय अन्वेषणीय है ।

२. यहाँ (म० वि० विया० स० २, उ० ८, सू० १ में) सक्षिप्त वाचनाकार की सूचना है :—

"····गोत्थुभस्स आवासपव्वयस्स पमाणेण नेयव्वं नवरं उवरिल्लं पमाणं मज्झे भाणियव्वं जाव मूले वित्थडे····"

इस सूचना के अनुसार वियाहपण्णत्ति प्रथम भाग पृ० १११ के टिप्पण से यहाँ पाठ दिया है ।

तिसेणं चमरचंचाए रायहाणीए दाहिणपच्चत्थिमेणं छक्कोडीसए पणपन्नं च कोडीओ पणतीसं च सयसहस्साइं पन्नासं च जोयणसहस्साइं अरुणोदगसमुद्दं तिरियं वीई-वइत्ता एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमर चंचे नामं आवासे पण्णत्ते।

चउरासीइं जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, दो जोयण-सयसहस्सा पन्नट्ठिं च सहस्साइं छच्च बत्तीसे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं। से णं एगेणं पागारेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, से णं पागारे दिवड्ढं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं[1], मूले पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, उवरिं अद्धतेरस जोयणाइं विक्खंभेणं कविसीसगा अद्धजोयणआयामं, कोसं विक्खंभेणं, अद्ध-जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगमेगाए बाहाए पंच-पंच दार-सया, अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धं विक्खंभेणं।

प० चमरे णं भंते! असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचे आवासे वसहिं उवेइ?

उ० गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे।

प० से के णं खाइ अट्ठे णं भंते! एवं वुच्चइ—'चमर चंचे आवासे, चमरचंचे आवासे?

उ० गोयमा! से जहा नामए—इहं मणुस्सलोगंसि उवगारियालेणाइ वा, उज्जाणियलेणाइ वा, निज्जा-णियलेणाइ वा, धारवारियलेणाइ वा, तत्थ णं बहवे मणुस्सा य, मणुस्सीओ य, आसयंति सयंति जहा रायपसेणइज्जे जाव कल्लाणफलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरंति। अन्नत्थ पुण वसहिं उवेंति।

एवामेव गोयमा! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमार-रण्णो चमरचंचे आवासे केवलं किड्डारतिपत्तियं, अन्नत्थ पुण वसहिं उवेइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ चमरचंचे आवासे[2]।

—भग० स० १३, उ० ६, सु० ५, ६।

उस चमर चंचा राजधानी के दक्षिण पश्चिम में छह सौ पचपन क्रोड पेंतीसलाख पचासहजार योजन अरुणोदक समुद्र में तिरछे जाने पर असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर का चमरचंच नाम का आवास कहा गया है।

(उसका) आयाम-विष्कम्भ चौरासीहजार योजन का है (और उसकी) परिधि दो लाख पैंसठ हजार छह सौ बत्तीस योजन से कुछ अधिक है। वह एक प्राकार द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है। प्राकार डेढ़सौ योजन ऊपर की ओर उन्नत है, (प्राकार के) मूल का विष्कंभ पचास योजन है और ऊपर का विष्कंभ साड़े बारह योजन है। (प्राकार के) कंगूरे आधा योजन लम्बे हैं, एक कोस चौड़े हैं और आधा योजन ऊपर की ओर उन्नत है। उसकी प्रत्येक बाहु में पाँच-पाँचसौ द्वार हैं। प्रत्येक द्वार ढाईसौ योजन ऊपर की ओर उन्नत है और (ढाईसौ योजन के) आधे अर्थात् सवासौ योजन उनका विष्कंभ है।

प्र० हे भगवन्! असुरकुमारों का राजा असुरेन्द्र क्या चमर चंच आवास में (स्थायी) निवास करता है?

उ० गौतम! ऐसा नहीं है।

प्र० हे भगवन्! किस अभिप्राय से यह कहा जाता है कि—"यह चमर चंच आवास हैं, यह चमर चंच आवास है?

उ० हे गौतम! जिस प्रकार इस मनुष्य लोक में उपकारिक (प्रासाद की पीठिका रूप) लयनादि, उद्यानिक (बगीचे में बने हुए) लयनादि, निर्याणिक (नगर द्वार के बाहर बने हुए) लयनादि तथा धारकरिक (पानी की धाराएँ छोड़ने वाले) लयनादि (गृहादि) होते हैं—वहाँ अनेक मनुष्य और मानुषियाँ बैठते हैं, सोते हैं रायपसेणी में आये वर्णन के समान यावत् विशेष पुण्य के फल का अनुभव करते हुए रहते हैं और वे अन्यत्र (स्थायी) निवास करते हैं।

इसी प्रकार हे गौतम! असुरकुमारों के राजा असुरेन्द्र चमर का चमर चंच आवास केवल (उसकी) क्रीडारति के लिए है और वह अन्यत्र (स्थायी) निवास करता है।

इसीलिए हे गौतम! यह चमर चंच आवास कहा जाता है।

---

१. यहाँ संक्षिप्त वाचना की सूचना इस प्रकार है:—"**एवं चमरचंचा रायहाणी वत्तव्वया भाणियव्वा सभा विहूणा जाव चत्तारि पासायपंतीओ**"—इस सूचना के अनुसार यहाँ चमरचंचा आवास के प्राकार आदि का परिमाण भग० पृ० ११२ के टिप्पण से दिया है।

२. म० वि० वियाहपण्णत्ति भाग २ श० १३, उ० ६, सू० ५, पृ० ६४० पर संक्षिप्त वाचना की सूचना इस प्रकार है:—"**नवरं इमं नाणत्तं जाव तिगिच्छिकूडस्स उप्पायपव्वयस्स, चमर चंचाए रायहाणीए चमरचंचस्स आवासपव्वयस्स** अन्नेसिं च बहूणं—इन सूचना के अनुसार पण्ण० प० २, सु० १७८ [२] से यहाँ यह पाठ संकलित किया है।

से णं तत्थ तिगिच्छिकूडस्स उप्पायपव्वयस्स, चमरचंचाए रायहाणीए, चमरचंचस्स आवासपव्वयस्स, अन्नेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं देवाण देवीणं य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव विहरइ।

बलिस्स सुहम्मा सभा : बलिचंचा रायहाणी —

१९७ : प० कहि णं भंते ! बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सभा सुहम्मा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता, अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो रुयगिंदे नामं उप्पायपव्वए पण्णत्ते, सत्तरसएक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उच्चत्तेणं, एवं पमाणं तिगिंछकूडस्स, पासायवडेंसगस्स वि तं चेव पमाणं, सीहासणं सपरिवारं बलिस्स परिवारेणं । अट्ठो तहेव । नवरं - रुयगिंदप्पभाइं कुमुयाइं ।

सेसं तं चेव जाव बलिचंचाए रायहाणीए अन्नेसिं च जाव निच्चे ।

रुयगिंदस्स णं उप्पायपव्वयस्स उत्तरेणं छक्कोडिसए तहेव जाव चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो बलिचंचा नामं रायहाणी पण्णत्ता । एगं जोयणसयसहस्सं पमाणं तहेव, जाव बलिपेढस्स उववाओ जाव आयरक्खा सव्वं तहेव निरवसेसं ।

नवरं सातिरेगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता । सेसं तं चेव जाव बली वइरोयणिंदे, बली वइरोयणिंदे ।

सेवं भंते, सेवं भंते जाव विहरति ।

— भग. स. १६, उ. ९, सु. १

बलि की सुधर्मा सभा तथा बलि चंचा राजधानी

१९७ : प्र० हे भगवन् ! वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बली की सुधर्मा सभा कहाँ पर कही गई है ?

उ० हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर में तिरछे असंख्य द्वीप समुद्र लांघने पर अरुणवर द्वीप की बाहिर की वेदिका से अरुणोदय समुद्र में बयालीस हजार योजन अवगाहन करने पर वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि का रुचकेन्द्र नामक उत्पात पर्वत कहा गया है। वह सतरह सौ इक्कीस योजन ऊँचा है, शेष प्रमाण तिगिच्छकूट उत्पात पर्वत के समान है। प्रासादावतंसक का प्रमाण भी वही है। बलि का सिंहासन और उसके परिवार के सिंहासनों का वर्णन तथा रुचकेन्द्र नाम का अर्थ भी उसी प्रकार है।

विशेष यह है कि रुचकेन्द्र रत्न की प्रभावाले उत्पलादि हैं।

शेष सभी उसी प्रकार है यावत् बलिचंचा राजधानी और अन्यों का (आधिपत्य करता हुआ) यावत् नित्य है।

रुचकेन्द्र उत्पात पर्वत के उत्तर में उसी प्रकार यावत् (पचपन करोड़, पैंतीस लाख पचास हजार योजन अरुणोदय समुद्र में तिरछा जाने पर नीचे रत्नप्रभा का) चालीस हजार योजन भाग अवगाहन करने पर वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि की बलिचंचा नाम की राजधानी कही गई है। इसका आयाम विष्कम्भ एक लाख योजन का है। शेष प्रमाण यावत् बलिपीठ तक कहना चाहिए। उपपात यावत् आत्मरक्षक आदि का सम्पूर्ण वर्णन पहले के समान है।

विशेष — कुछ अधिक एक सागरोपम की स्थिति कही गई है। शेष उसी प्रकार है, यावत् बलि वैरोचनेन्द्र ! बलि वैरोचनेन्द्र !

हे भगवन् ! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कहकर यावत् विचरते हैं।

सभाए खंभसंखा—

१९९ : चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो सभा सुधम्मा एकावन्न खंभसयसंनिविट्ठा पण्णत्ता !

एवं चेव बलिस्स वि ।

—सम० ५१, सु० २-३ ।

सभा की स्तम्भ संख्या—

१९९ : असुरराज असुरेन्द्र चमर की सुधर्मा सभा इक्कावनसौ स्तम्भों से युक्त कही गई है ।

इसी प्रकार बली की (सुधर्मा सभा के भी स्तम्भ हैं।)

सुहम्मा सभाए उच्चत्तं—

२०० : चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो सभा सुहम्मा छत्तीसं जोयणाइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० ३६, सु० २ ।

सुधर्मा सभा की ऊँचाई—

२०० : असुरराज असुरेन्द्र चमर की सुधर्मा सभा छत्तीस योजन की ऊँची थी ।

उववाय-विरहो—

२०१ : चमरचंचा णं रायहाणी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिए उववाएणं ।

—ठाणं ६, सु० ५३५ ।

उपपात-विरह—

२०१ : चमर चंचा राजधानी में उपपात (इन्द्र की उत्पत्ति) का विरह उत्कृष्ट छः मास का है ।

चमरचंचाए एक्कमेक्कबाराए भोमा—

२०२ : चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो चमर चंचाए रायहाणीए एक्कमेक्कावाराए तेत्तीसं तेत्तीसं भोमा पण्णत्ता ।

—सम० ३३, सु० २ ।

चमर चंचा के प्रत्येक द्वार के बाहर भौम (नगर)—

२०२ : असुरराज असुरेन्द्र चमर की चमर चंचा राजधानी के प्रत्येक द्वार के बाहर तेतीस तेतीस भौमनगर कहे गये हैं।

उवायारियलेणं—

२०३ : चमरबली णं उवयारियालेणे सोलसजोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ते ।

—सम० १६, सु० ६ ।

उपकारिकालयन—

२०३ : चमर और बली के उपकारिका लयनों का आयाम-विष्कंभ सोलह हजार योजन का कहा गया है ।

भवणवासिदेवाणं चेइयरुक्खा—

२०४ : दसविहा भवणवासी देवा पण्णत्ता, तं जहा—असुरकुमारा जाव थणियकुमारा ।

एएसि णं दसविहाणं भवणवासीणं देवाणं दस चेइयरुक्खा पण्णत्ता तं जहा— गाहा :—

आसत्थ, सत्तिवण्णे, सामलि, उंबर, सिरीस, दहिवण्णे ।
वंजुल, पलास, वप्पे तए य, कणियार रुक्खे ॥

—ठाणं० १०, सु० ७३६ ।

भवनवासी देवों के चैत्य वृक्ष—

२०४ : भवनवासी देव दस प्रकार के कहे गये हैं, यथा—असुर कुमार यावत् स्तनितकुमार ।

इन दस प्रकार के भवनवासी देवों के दस प्रकार के चैत्य वृक्ष कहे गये हैं, यथा—गाथार्थ :—

१ अश्वत्थ २ शक्तिपर्ण ३ शाल्मली ४ उंबर ५ शिरीष ६ दधिवर्ण ।
७ वंजुल ८ पलाश ९ वप्र १० कर्णिकार ॥

भवणवइणं परिसाओ—

चमरस्स परिसाओ—

२०५ : प० चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररन्नो कति परिसाओ पण्णत्ताओ ?

भवनपतियों की परिषदाएँ—

चमर की परिषदाएँ—

२०५ : प्र० हे भगवन् ! असुरराज असुरेन्द्र चमर की कितनी परिषदाएँ कही गई है ?

उ० गोयमा ! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. समिता, २. चंडा, ३. जाता।
१. अब्भिंतरिया—समिता,
२. मज्झिमिया—चंडा,
३. बाहिरिया य—जाया।[1]
—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ११८।

उ० हे गौतम ! तीन परिषदाएँ कही गई हैं, यथा—
१. समिता, २. चंडा, ३. जाता।
१. आभ्यन्तर परिषद—समिता,
२. माध्यमिका परिषद—चंडा,
३. बाह्य परिषद—जाता।

तिविहासु चमरपरिसासु देवाण संखा—

२०६ : प० [१] चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भिंतरपरिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ?
[२] मज्झिमपरिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ?
[३] बाहिरियाएपरिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ?

उ० गोयमा ! [१] चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भिंतरपरिसाए चउवीसं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।
[२] मज्झिमियाएपरिसाए अट्ठावीसं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।
[३] बाहिरियाए परिसाए बत्तीसं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।
—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ११८।

तीन प्रकार की चमर परिषदाओं में देवों की संख्या—

२०६ : प्र० [१] हे भगवन् ! असुरराज असुरेन्द्र चमर की आभ्यन्तर परिषद के कितने हजार देव कहे गये हैं ?
[२] मध्यम परिषद के कितने हजार देव कहे गये हैं ?
[३] बाह्य परिषद के कितने हजार देव कहे गये हैं ?

उ० [१] हे गौतम ! असुरराज असुरेन्द्र चमर की आभ्यन्तर परिषद के चौबीस हजार देव कहे गये हैं।
[२] मध्यम परिषद के अठावीस हजार देव कहे गये हैं।
[३] बाह्य परिषद के बत्तीस हजार देव कहे गये हैं।

तिविहासु चमरपरिसासु देवीण संखा—

२०७ : प० [१] चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भिंतरपरिसाए कति देविसया पण्णत्ता ?
[२] मज्झिमियाए परिसाए कति देविसया पण्णत्ता ?
[३] बाहिरियाए परिसाए कति देविसया पण्णत्ता ?

उ० [१] गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धुट्ठा देविसया पण्णत्ता।
[२] मज्झिमियाए परिसाए तिण्णि देविसया पण्णत्ता।
[३] बाहिरियाए परिसाए अड्ढाइज्जा देविसया

तीन प्रकार की चमर परिषदाओं के देवियों की संख्या—

२०७ : प्र० [१] हे भगवन् ! असुरराज असुरेन्द्र चमर की आभ्यन्तर परिषद में कितनी सौ देवियाँ कही गई हैं ?
[२] माध्यमिका परिषद में कितनी सौ देवियाँ कही गई हैं ?
[३] बाह्य परिषद में कितनी सौ देवियाँ कही गई हैं ?

उ० [१] हे गौतम ! असुरराज असुरेन्द्र चमर की आभ्यन्तर परिषद में साढ़े तीन सौ देवियाँ कही गई हैं।
[२] माध्यमिका परिषद में तीन सौ देवियाँ कही गई हैं।
[३] बाह्य परिषद में ढाई सौ देवियाँ कही गई हैं।

१ समिया, २. चंडा, ३. जाया।
१. अब्भितरिया—समिया,
२. मज्झिमिया—चंडा,
३. वाहिरिया—जाया।

उ० गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भितरपरिसाए देवा वाहिता हव्वमागच्छंति, णो अव्वाहिता। मज्झिम-परिसाए देवा वाहिता हव्वमागच्छंति, अव्वाहिता वि। बाहिर-परिसाए देवा अव्वाहिता हव्वमागच्छंति।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया अन्नयरेसु उच्चावएसु कज्जकोडुंवेसु समुप्पन्नेसु अब्भितरियाए परिसाए सद्धिं संमइ-संपुच्छणावहुले विहरइ। मज्झिमपरिसाए सद्धिं पयं एवं पवंचेमाणे २ विहरति। वाहिरियाए परिसाए सद्धिं पयंडेमाणे २ विहरति। से तेणट्ठे णं गोयमा ! एवं वुच्चइ—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. समिया, २. चंडा, ३. जाता।
१. अब्भितरिया—समिया,
२. मज्झिमिया—चंडा,
३. वाहिरिया—जाता।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ११८।

१. समिता, २. चंडा, ३. जाता।
१. आभ्यन्तर परिषद—समिता,
२. मध्यम परिषद—चंडा,
३. वाह्य परिषद—जाया।

उ० हे गौतम ! असुरराज असुरेन्द्र चमर की आभ्यन्तर परिषद के देव बुलाने पर शीघ्र आते हैं और विना बुलाये नहीं आते हैं। मध्यम परिषद के देव बुलाने पर शीघ्र आते हैं और नहीं बुलाने पर भी आ जाते हैं। वाह्य परिषद के देव विना बुलाये ही शीघ्र आ जाते हैं।

अथवा—हे गौतम ! असुरराज असुरेन्द्र चमर किसी प्रकार का सामान्य या विशेष कौटुम्बिक कार्य होने पर आभ्यन्तर परिषद के देवों से सम्मति लेता है और उन्हें पूछता रहता है। मध्यम परिषद के देवों को गुण-दोष का विस्तारपूर्वक कथन करता हुआ रहता है। वाह्य परिषद के देवों को विध्या देश एवं निषेधादेश करता हुआ रहता है। इसलिए हे गौतम ! असुर कुमारों से राजा असुरेन्द्र चमर की तीन परिषदायें कही गई हैं, यथा—

१. समिता, २. चंडा, ३. जया।
१. आभ्यन्तर परिषद—समिता।
२. मध्यम परिषद—चडा।
३. वाह्य परिषद—जाया।

वलिस्स परिसाओ—

२०९ : प० वलिस्स णं भंते ! वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो कति परिसाओ पण्णत्ताओ ?

उ० गोयमा ! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. समिया, २. चंडा, ३. जाया।
१. अब्भितरिया—समिया,
२. मज्झिमिया—चंडा,
३. वाहिरिया—जाया।

—जीवा० पडि० ३, उ० १, सु० ११९।

वलि की परिषदायें—

२०९ : प्र० हे भगवन् ! वैरोचन राजा वैरोचनेन्द्र वली की कितनी परिषदायें कही गई है ?

उ० हे गौतम ! तीन परिषदायें कही गई हैं, यथा—
१. समिता, २. चंडा, ३. जाया।
१. आभ्यन्तर परिषद—समिता।
२. माध्यमिका परिषद—चंडा।
३. वाह्य परिषद—जाया।

तिविहासु वलिपरिसासु देव-देवीणं संखा—

२१० : प० [१] वलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो अब्भितरियाए परिसाए कति देवसहस्सा पण्णत्ता ?
[२] मज्झिमियाएपरिसाए कति देवसहस्सा पण्णत्ता ?
[३] वाहिरियाए परिसाए कति देवसहस्सा पण्णत्ता ?
[४] अब्भितरियाए परिसाए कति देविसया पण्णत्ता ?
[५] मज्झिमियाए परिसाए कति देविसया पण्णत्ता ?
[६] वाहिरियाए परिसाए कति देविसया पण्णत्ता ?

वली की तीन प्रकार की परिषदाओं में देव-देवियों की संख्या

२१० : प्र० [१] वैरोचन राजा वैरोचनेन्द्र वली की आभ्यन्तर परिषद के कितने हजार देव कहे गये हैं ?
[२] माध्यमिका परिषद के कितने हजार देव कहे गये हैं ?
[३] वाह्य परिषद के कितने हजार देव कहे गये हैं ?
[४] आभ्यन्तर परिषद की कितनी सौ देवियां कही गई हैं ?
[५] माध्यमिका परिषद की कितनी सौ देवियां कही गई हैं ?
[६] वाह्य परिषद की कितनी सौ देवियां कही गई हैं ?

धरणस्स एवं चेव। नवरं :—अट्ठावीसं देवसहस्सा, सेसं तं चेव।

—"इसी प्रकार धरण के भी हैं। विशेष :—अठावीस हजार देव हैं। शेष उसी प्रकार है।"

जहा धरणस्स एवं-जाव-महाघोसस्स। नवरं :—पायत्ताणियाहिवई अण्णे ते पुव्वभणियाओ पण्णत्ताओ।—

—ठाणं ७, सु० ५८३

—"जिस प्रकार धरण के 'पदातिसेनापति के प्रथम कच्छ में देवों की संख्या' है इसी प्रकार—यावत्—महाघोष की है। विशेष:—अन्य पदातिसेनापति पूर्व कथित के समान ही कहे गये हैं।

भवणवइंदाणं लोगवालाणं य उप्पायपव्वया—

भवनवासी इन्द्रों और उनके लोकपालों के उत्पात पर्वत—

२१८. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तिगिच्छकूडे उप्पायपव्वए मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खंभेणं पण्णत्ते,[1]

२१८. असुरकुमार असुरेन्द्र चमर का तिगिच्छकूट उत्पात पर्वत है। 'उस पर्वत के' मूल का विष्कंभ 'दस सौ बाईस' योजन का कहा गया है।

चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो १. सोमस्स महारण्णो सोमप्पभे उप्पायपव्वए दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के (१) सोम 'लोकपाल' महाराज का सोमप्रभ उत्पात पर्वत दस सौ 'एक हजार' योजन ऊपर की ओर उन्नत है, उसका उद्वेध भूमि में नीचे की ओर दस सौ—'एक हजार' गाउ 'कोश' का है, 'उसका' मूल में विष्कंभ दस सौ 'एक हजार' योजन का कहा गया है।

चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो २. जमस्स महारण्णो जमप्पभे उप्पायपव्वए दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के (२) यम 'लोकपाल' महाराज का यमप्रभ उत्पात पर्वत दस सौ 'एक हजार' योजन ऊपर की ओर उन्नत है, उसका उद्वेध दस सौ 'एक हजार' गाऊ—'कोश' का है। और उसका मूल में विष्कंभ दस सौ—एक हजार योजन का कहा गया है।

एवं ३ वरुणस्स वि० एवं ४ वेसमणस्स वि०।

इसी प्रकार (३) वरुण लोकपाल और (४) वैश्रमण लोकपाल के उत्पात पर्वत हैं।

---

[1] महावीर विद्यालय से प्रकाशित—वियाहपण्णत्तिसुत्तं प्रथम भाग पृष्ठ ११०-१११ में श० २, उ० ८ सू० १ के मूलपाठ से तथा [illegible] में असुरराज चमर के तिगिच्छकूट उत्पात पर्वत का प्रमाण यहां तीन अंशों में उद्धृत किया गया।

[illegible] :—

[illegible] दीव-समुद्दे वीईवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लातो वेइयंतातो [illegible] अमुररण्णो तिगिछिकूडे नामं उपायपव्वते, पण्णत्ते, [illegible] उव्वेहेणं, गोत्थूभस्स आवासपव्वयस्स पमाणेणं [illegible] भाणियव्वं जाव......

[illegible]

[illegible] जोयणसते विक्खंभेणं, उवरिं सत्तेवीसे जोयणसते विक्खंभेणं,

[illegible] तिगिछिकूडे [illegible],

[illegible]

[illegible] ......

[illegible]

[illegible] ......

बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो रूअगिंदे उप्पाय-पव्वयमूले दसबावीसे जोयणसए विक्खंभेणं पण्णत्ते ।[1]

वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि का रुचकेन्द्र उत्पात पर्वत है । 'उस पर्वत के' मूल का विष्कंभ दस सौ बाईस 'एक हजार बाईस' योजन कहा गया है ।

बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स सोमस्स एवं चेव ।
जहा चमरस्स लोगपालाणं तं चेव बलिस्स वि ।

वैरोचनेन्द्र बलि के सोम लोकपाल का 'उत्पात पर्वत' भी इसीप्रकार है अर्थात् चमर के 'लोकपालों के उत्पात पर्वत' जैसे है, वैसे ही बलि के 'लोकपालों के उत्पात पर्वत' हैं ।

धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो धरणप्पभे उप्पायपव्वए दसजोयणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, दसगाउयसयाइं उव्वेहेणं, मूले दसजोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते ।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण का धरणप्रभ उत्पात पर्वत दस सौ—'एक हजार' योजन ऊपर की ओर उन्नत है । 'उसका' उद्वेध 'भूमि में नीचे की ओर' दस सौ—'एक हजार' गाउ—'कोश' का है । 'उसके' मूल का विष्कंभ दस सौ—'एक हजार' योजन का कहा गया है ।

धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो महाकालप्पभे उप्पायपव्वए जोयणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं एवं-जाव-संखवालस्स ।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के कालवाल 'लोकपाल' महाराज का महाकालप्रभ उत्पात पर्वत सौ योजन ऊपरी ओर उन्नत है । इसी प्रकार—यावत्—संखवाल के 'उत्पात पर्वत' हैं ।

एवं भूयाणंदस्स वि,

इसी प्रकार 'धरण के समान' भूतानन्द के 'उत्पात पर्वत' हैं ।

एवं लोगपालाण वि ।

इसी प्रकार 'धरण के लोकपालों के समान भूतानन्द के' लोकपालों के 'उत्पात पर्वत' हैं ।

से जहा धरणस्स एवं-जाव-थणियकुमाराणं सलोगपालाणं भाणियव्वं ।

धरण के 'तथा उसके लोकपालों के उत्पात पर्वत' जैसे हैं वैसे ही—यावत्—स्तनितकुमारों के और 'उनके' लोकपालों के हैं ।

सव्वेसिं उप्पायपव्वया भाणियव्वा सरिसणामा ।
—ठाणं १०, सु० ७२८

सभी 'इन्द्रों के और लोकपालों' के नाम के सदृश 'नाम वाले' उत्पात पर्वत कहने चाहिए ।

दोण्हं भवणवासीणं विसमयाए हेऊ—

दो भवनवासी देवों की विषमता का हेतु—

२१९. प० दो भंते ! असुरकुमारा एगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमार देवत्ताए उववन्ना । तत्थ णं एगे असुरकुमारे देवे पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे, एगे असुरकुमारे देवे से णं नो पासादीए नो दरिसणिज्जे नो अभिरूवे नो पडिरूवे ।

२१९. प्र०—भगवन् ! एक असुरकुमारावास में दो असुरकुमार देव उत्पन्न होते है, उनमें एक असुरकुमार देव प्रसन्न, दर्शनीय, सुन्दर एवं मनोहर होता है और एक असुरकुमार देव न प्रसन्न, न दर्शनीय, न सुन्दर और न मनोहर होता है ।

से कहमेयं भंते ! एवं ?

भगवन् ! ऐसा क्यों होता है ?

उ० गोयमा ! असुरकुमारा देवा दुविहा पन्नत्ता तं जहा—
१. वेउव्वियसरीरा य २. अवेउव्वियसरीरा य ।

उ०—गौतम ! असुरकुमार देव दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—१. विकुर्वित (वैक्रियकृत) शरीर वाले और २. अविकुर्वित शरीरवाले ।

तत्थ णं जे से वेउव्वियसरीरे असुरकुमारे देवे से णं पासादीए जाव पडिरूवे ।

उनमें जो विकुर्वित शरीर वाला असुरकुमार देव है वह प्रसन्न—यावत्—मनोहर होता है ।

तत्थ णं जे से अवेउव्वियसरीरे असुरकुमारे देवे से णं नो पासादीए-जाव-नो पडिरूवे ।

उनमें जो अविकुर्वित शरीर वाला असुरकुमार देव है, वह न प्रसन्न—यावत्—न मनोहर होता है ।

---

१ वैरोचनेन्द्र बलिके रुचकेन्द्र उत्पात पर्वत का प्रमाण असुरेन्द्र चमर के तिगिच्छकूट उत्पात पर्वत के समान है ।

प० से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ तत्थ णं जे से वेउव्विय-सरीरे तं चेव-जाव-नो पडिरूवे ?

प्र०—भगवन् ! किस अभिप्राय से इस प्रकार कहा जाता है—उनमें जो विकुर्वित शरीर वाला है, उसी प्रकार—यावत्—मनोहर नहीं होता है ?

उ० गोयमा ! से जहानामए इहं मणुयलोगंसि दुवे पुरिसा भवंति—एगे पुरिसे अलंकियविभूसिए, एगे पुरिसे अणलंकियविभूसिए,

उ०—गौतम ! जिस प्रकार इस मनुष्य लोक में दो पुरुष होते हैं। उनमें एक अलंकृत विभूषित होता है और एक अलंकृत विभूषित नहीं होता है।

एएसिणं गोयमा ! दोण्हं पुरिसाणं कयरे पुरिसे पासादीए-जाव-पडिरूवे ? कयरे पुरिसे नो पासादीए-जाव-नो पडिरूवे ?

गौतम ! इन दो पुरुषों में कौन पुरुष प्रसन्न—यावत्—मनोहर होता है ?

जे वा से पुरिसे अलंकियविभूसिए ?
जे वा से पुरिसे अणलंकियऽविभूसिए ?
भगवं ! तत्थ णं जे से पुरिसे अलंकिय-विभूसिए से णं पुरिसे पासादीए-जाव-पडिरूवे।
तत्थ णं जे से पुरिसे अणलंकियऽविभूसिए से णं पुरिसे नो पासादीए-जाव-नो पडिरूवे।

जो पुरुष अलंकृत विभूषित होता है वह ?
जो पुरुष अलंकृत विभूषित नहीं होता है वह ?
भगवन् ! उनमें जो पुरुष अलंकृत विभूषित होता है वह प्रसन्न—यावत्—मनोहर होता है।
उनमें जो पुरुष अलंकृत विभूषित नहीं होता है वह प्रसन्न—यावत्—मनोहर नहीं होता है।

प० दो भंते ! नागकुमारा देवा एगंसि नागकुमारावासंसि नागकुमारदेवत्ताए उववन्ना-जाव-से कहमेयं भंते ! एवं ?

प्र०—भगवन् ! एक नागकुमारावास में दो नागकुमार देव उत्पन्न होते हैं—यावत्—भगवन् ! किस कारण से इस प्रकार कहा जाता है ?

उ० एवं चेव। एवं-जाव-थणियकुमारा।

—भग० स० १८ उ० ५, सु० १-२

उ०—इसी प्रकार 'पहले के समान' है। इसी प्रकार—यावत् स्तनितकुमार पर्यंत जानना चाहिये।

वाउकुमारा चउव्विहा—

२२०. चउव्विहा वाउकुमारा पण्णत्ता, तं जहा—

१. काले,	२. महाकाले,
३. वेलंबे,	४. पभंजणे[1]।

—ठाणं ४ उ० १, सु० २५६

वायुकुमारों के चार प्रकार—

२२. वायुकुमार चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१. काल,	२. महाकाल,
३. वेलंब,	४. प्रभंजन।

छप्पण्णाओ दिसाकुमारीओ—

अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ—

२२१. अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं, सएहिं भवणेहिं, सएहिं सएहिं पासायवडेंसएहिं, पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, चउहिं महत्तरियाहिं सपरिवाराहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहिं य बहूहिं भवणवइ-वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडाओ महयाहय-

छप्पन दिशाकुमारियाँ—

अधोलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारियाँ—

२२१. अधोलोक में रहने वाली आठ महादिशाकुमारियाँ 'गजदंत-गिरि के' अपने-अपने कूटों पर अपने-अपने भवनों में एवं अपने-अपने प्रासादावतंसकों 'क्रीड़ावासो' में प्रत्येक दिशाकुमारी चार-चार हजार सामानिक देवों से चार-चार सपरिवार महत्तरिकाओं 'प्रतिहारिकाओं' से, सात-सात अनिका 'सेनाओं' से, सात-सात अनिकाधिपतियों 'सेनानायकों' से, सोलह-सोलह हजार आत्म-रक्षक देवों से और अन्य अनेक भवनपति, वाणव्यंतर देव-देवियों से घिरी हुई महान् नृत्य-गीत-वाद्य करती हुई—यावत्—भोगोप-

---

१ इस सूत्र में वायुकुमार चार प्रकार के कहे गये हैं किन्तु "वेलंब" दक्षिण दिशा के इन्द्र का नाम है और "प्रभंजन" उत्तर दिशा के इन्द्र का नाम है। शेष दो नाम "काल" और "महाकाल" वेलंब और प्रभंजन के लोकपालों के नाम हैं।

णट्टगीयवाइय-जाव-भोगभोगाइं भुंजमाणीओ विहरंति, तं जहा—गाहा—

१. भोगंकरा,	२. भोगवई,
३. सुभोगा,	४. भोगमालिणी।
५. तोयधारा	६. विचित्ता य,
७. पुप्फमाला,	८. अणिंदिया[1] ॥

—जंबु० वक्ख० ५, सु० ११२

भोग भोगती हुई रहती हैं, यथा-गाथार्थ—आठ दिशाकुमारियों के नाम—

१. भोगंकरा,	२. भोगवती,
३. सुभोगा,	४. भोगमालिनी,
५. तोयधारा,	६. विचित्रा, और
७. पुष्पमाला,	८. अनिन्दिता।

उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारीओ—

ऊर्ध्वलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारियाँ—

२२२. उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारिमहत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं—एवं तं चेव पुव्ववण्णियं-जाव-विहरंति, तं जहा—गाहा—

१. मेहंकरा,	२. मेहवई,
३. सुमेहा,	४. मेहमालिणी।
५. सुवच्छा,	६. वच्छमित्ता य,
७. वारिसेणा,	८. बलाहगा[2] ॥

—जंबु० वक्ख० ५, सु० ११३

२२२. ऊर्ध्वलोक में रहने वाली आठ महादिशाकुमारियाँ 'समभूमि से पाँच सौ योजन ऊँचे नन्दनवन में पाँच-पांच सौ योजन ऊँचे' अपने-अपने आठ कूटों पर 'यहाँ वही पूर्व वर्णित कहें'—यावत्—रहती हैं। यथा-गाथार्थ— आठ दिशाकुमारियों के नाम—

१. मेघंकरा,	२ मेघवती,
३. सुमेघा,	४. मेघमालिनी,
५. सुवत्सा,	६, वत्समित्रा,
७. वारिसेणा,	८. बलाहका।

पुरत्थिमरुयगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारीओ—

पूर्व दिशा के रूचकपर्वत पर रहने वाली आठ दिशा-कुमारियाँ—

२२३. पुरत्थिमरुयगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारिमहत्तरियाओ

२२३. पूर्व दिशावर्ती रुचकपर्वत पर रहने वाली आठ महा-

---

१ अधोलोक और उर्ध्वलोक की दिशाकुमारियों के नामों में भिन्नता :—
५. सुवच्छा, ६, वच्छमित्ता य, ७. वारिसेणा, ८. वलाहगा। —ठाणं ८, सु० ६४३

२ ५. तोयधारा, ६. विचित्ता य, ७, पुप्फमाला, ८. अणिंदिया। —ठाणं ८, सु० ६४३

आठ दिशा कुमारियाँ अधोलोक में कहाँ रहती है ? इसका समाधान इस प्रकार किया गया है :—

गाथा—१. सोमणस, २. गंधमायण, ३, विज्जुप्पभ, ४, मालवंतवासीओ।
अट्ठदिसिदेवयाओ, वत्थव्वाओ अहेलोए ॥ —ठाणं अ० ८ सु० ६४३ की टीका

'अधोलोकवास्तव्या :—चतुर्णां गजदन्तानामधः समभूतलान्नवशतयोजनरूपां तिर्यग्लोकव्यवस्थां विमुच्य प्रतिगजदन्तं द्विद्विभावेन तत्र भवनेषु वसनशीला········ —जंबु० वक्ख० ५ सू० ११२ की टीका

आठ दिशाकुमारियाँ ऊर्ध्वलोक में कहाँ रहती हैं ? इसका समाधान इस प्रकार किया गया है :—

········ऊर्ध्वलोकवासित्वं चासां समभूतलात् पंचशतयोजनोच्चनन्दनवनगतपंचशतिकाष्टकूटवासित्वेन ज्ञेयं ॥ —जंबु० वक्ख, सू० ११३ की टीका

सभी दिशाकुमारियाँ भवनपति जाति की देवियाँ हैं—यह इस प्रकार सिद्ध किया गया है :—

········दिक्कुमारीणां········स्थानागे पल्योपमस्थितेर्भणनात्···· ·· भवनपति जातीयत्वं सिद्धं········

········ दिक्कुमार्या-दिक्कुमारभवनपतिजातीया महत्तरिका:········ —ठाणं ८, सु० ६४३ की टीका

दिशाकुमारियाँ की संख्या ५६ है। —जंबु० वक्ख० १, सु० ११२, ११३, ११४

मूल पाठों का संकलन जंबुद्वीप पण्णत्ति से किया है उक्त सूत्रों के पूर्वापर अंश धर्मकथानुयोग के जिन जन्माभिषेक स्कंध १, पृष्ठ १०-१४ सूत्र २६ से ३४ पर आ गये हैं।

सएहिं सएहिं कूडेहिं, एवं तं चेव पुव्ववण्णियं-जाव-विहरंति, तं जहा—गाहा—

१. णंदुत्तरा य, २. णंदा,
३. आणंदा, ४. णंदिवद्धणा,
५. विजया य, ६. वेजयंती,
७. जयंती, ८. अपराजिया[1]।

—जंबु० वक्ख० ५, सु० ११४

दिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों पर 'यहाँ वही पूर्व वर्णित पाठ कहें'—यावत्—रहती हैं। यथा-गाथार्थ—आठ दिशाकुमारियों के नाम—

१. नन्दुत्तरा, २. नन्दा,
३. आनन्दा, ४. नन्दिवर्धना,
५. विजया, ६. वेजयन्ती,
७. जयन्ती ८. अपराजिता।

दाहिणरुयगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ—

दक्षिण-दिशा के रुचक पर्वत पर रहने वाली आठ दिशा-कुमारियाँ—

२२४. ...... दाहिणरूयगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं एवं तं चेव पुव्ववण्णियं-जाव-विहरंति, तं जहा—गाहा—

१. समाहारा, २. सुप्पइण्णा,
३. सुप्पबुद्धा ४. जसोहरा।
५. लच्छिमई, ६. सेसवई,
७. चित्तगुत्ता, ८. वसुन्धरा[2]॥

—जंबु० वक्ख० ५, सु० ११४

२२४. दक्षिण दिशावर्ती रुचक पर्वत पर रहने वाली आठ महा-दिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों पर 'यहाँ वही पूर्व वर्णित कथन है'—यावत्—रहती है। यथा-गाथार्थ—आठ दिशाकुमारियों के नाम—

१. समाहारा, २. सुप्रतिज्ञा,
३. सुप्रबुद्धा, ४. यशोधरा,
५. लक्ष्मीमति, ६. शेषवती,
७. चित्रगुप्ता, ८. वसुन्धरा।

पच्चत्थिमरुयगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ—

पश्चिमदिशा के रुचक पर्वत पर रहने वाली आठ दिशा-कुमारियाँ—

२२५. पच्चत्थिमरूयगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारिमहत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं एवं तं चेव पुव्ववण्णियं-जाव-विहरंति, तं जहा—गाहा—

१. इलादेवी, २. सुरादेवी,
३. पुहवी, ४. पउमावई।

२२५. पश्चिम दिशावर्ती रूचक पर्वत पर रहने वाली आठ महा-दिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों पर 'यहाँ वही पूर्व वर्णितक है'—यावत्—रहती हैं। यथा-गाथार्थ—आठ दिशाकुमारियों के नाम—

१. इलादेवी, २. सुरादेवी,
३. पृथ्वी, ४. पद्मावती,

---

१ जंबूमंदर पुरच्छिमेणं रूयगवरे पव्वए अट्ठकूडा पण्णत्ता, तं जहा,
गाहा—१. रिट्ठे, २. तवणिज्ज, ३. कंचण, ४. रयय, ५. दिसासोत्थिए, ६. पलंबय,
७. अंजग, ८. अंजणपुलए, रूयगस्स पुरिच्छमे कूडा॥
तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ, जाव पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तं जहा—
गाहा—णंदुत्तरा जाव, अपराजिया। —ठाणं ८, सु० ६४३

२ जंबूमंदर दाहिणेणं रूयगवरे पव्वए अट्ठकूडा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—१. कणए, २. कंचणे, ३, पउमे, ४. नलिणे, ५. ससि, ६. दिवायरे चेव,
७. वेसमणे, ८. वेरुलिए, रूयगस्स दाहिणे कूडा॥
तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ जाव—पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तं जहा,
गाहा—समाहारा, जाव, वसुन्धरा। —ठाणं ८, सु० ६४३

५. एगणासा,	६. णवमिया,	५. एकनाशा,	६. नवमिका,
७. भद्दा,	८. सीसा य अट्ठमा[1] ।।	७. भद्रा,	८. सीता ।

—जंबु० वक्ख० ५, सु० ११४

उत्तरिल्लरूयगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ—

उत्तर दिशा के रुचक पर्वत पर रहने वाली आठ दिशाकुमारियाँ—

२२६. उत्तरिल्लरूयगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं, एवं तं चेव पुव्ववण्णियं-जाव-विहरंति, तं जहा—गाहा—

२२६. उत्तर दिशावर्ती रुचक पर्वत पर रहने वाली आठ महादिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों पर 'यहाँ वही पूर्व वर्णितक है' —यावत्—रहती हैं । यथा-गाथार्थ—आठदिशाकुमारियों के नाम—

१. अलंबुसा,	२. मिस्सकेसी,	१. अलंबुसा,	२. मिश्रकेशी,
३. पुण्डरीया य,	४. वारुणी ।	३. पुण्डरीका,	४. वारुणी,
५. हासा,	६. सव्वप्पभा चेव,	५. हासा,	६. सर्वप्रभा,
७. सिरि,	८. हिरि चेव उत्तरओ[2] ।।	७. श्री	८. ह्री ।

—जंबु० वक्ख० ५, सु० ११४

विदिसरूयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारिओ—

चार विदिशाओं के रुचक पर्वतों पर रहने वाली चार दिशाकुमारियाँ—

२२७. विदिसरूयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ सएहिं सएहि कूडेहि, एवं तं चेव पुव्ववण्णियं-जाव-विहरंति, तं जहा—गाहा—

२२७. 'चार' विदिशाओं में रुचक पर्वतों पर रहने वाली चार महादिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों पर 'यहाँ वही पूर्व वर्णितक है'—यावत्—रहती है । यथा—आधी गाथा का अर्थ 'चार दिशाकुमारियों के नाम'—

१. चित्ता य,	२. चित्तकणगा,	१. चित्रा,	२. चित्रकनका,
३. सतेरा य,	४. सोदामिणी[3] ।	३. सतेरा,	४. सोदामिनी ।

—जंबु० वक्ख० ५, सु० ११४

---

१ जंबूमंदर पच्चत्थिमेणं रूयगवरे पव्वए अट्ठकूडा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—१. सोत्थिते य २. अमोहेय, ३. हिमवं, ४. मंदरे तहा, ५. रुयगे, ६. रुयगुत्तमे ७. चंदे, अट्ठमे य सुदंसणे ।।
तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तं जहा—
गाहा—इलादेवी जाव भद्दा य अट्ठमा । —ठाणं ८, सु० ६४३

२ जंबूमंदर उत्तररुअगवरे पव्वए अट्ठकूडा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—१. रयणे, २. रयणच्चए या, ३. सव्वरयण, ४. रयणसंचए चेव, ५. विजये, य, ६, विजयंते, ७. जयंते, ८. अपराजिते ।।
तत्थणं अट्ठदिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तं जहा—
गाहा—अलंबुसा, जाव हिरि चेव उत्तरेओ । —ठाणं ८, सु० ६४३

३ (क) चत्तारि विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. चित्ता, २. चित्तकणगा, ३. सएरा, ४. सोयामणी । —ठाणं ४, उ० १, सु० २५९
(ख) छ विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. आला, २. सक्का, ३. सतेरा, ४. सोयामणी, ५. इंदा, ६. घणविज्जुया । —ठाणं ६, सू० ५०७
ये विद्युत्कुमार की अग्रमहिषियाँ हैं—यह ऊपर कहे गये सूत्रों से स्पष्ट हो जाता है ।

मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीओ—

२२८. मज्झिमरूयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं, एवं तं चेव पुव्ववण्णियं-जाव-विहरंति,

१. रूया, २. रूयासिया च्चेव,
३. सुरूया, ४. रूयगावई[1]।

—जंबु० वक्ख० ५, सु० ११४

मध्यरुचक पर्वत पर रहने वाली चार दिशाकुमारियाँ—

२२८. मध्यरुचक पर्वत पर रहने वाली चार महादिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों पर 'यहाँ पूर्व वर्णितक है'—यावत्—रहती है। यथा—आधी गाथा का अर्थ—

१. रूपा, २. रूपांशिका,
३. सुरूपा, ४. रूपकावती।

पुढविकाइयाणं ठाणाइं—

२२९. प० कहि णं भंते ! बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! सट्ठाणेणं अट्ठसु पुढविसु तं जहा—१. रयणप्पभाए, २. सक्करप्पभाए, ३. वालुयप्पभाए, ४. पंकप्पभाए, ५. धूमप्पभाए, ६. तमप्पभाए, ७. तमतमप्पभाए, ८. इसीपब्भाराए।

(१) अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु णिरएसु निरयावलियासु निरयपत्थडेसु।

(२) उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु।

(३) तिरियलोए टंकेसु कूडेसु सेलेसु सिहरीसु पब्भारेसु विजएसु वक्खारेसु वासेसु वासहरपव्वएसु वेलासु वेइयासु दारेसु तोरणेसु दीवेसु समुद्देसु—एत्थ णं बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।[2]

पृथ्विकायिक जीवों के स्थान—

२२९. भगवन् ! पर्याप्त बादर पृथ्विकायिकों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से आठ पृथ्वियों में हैं—यथा १. रत्नप्रभा में, २. शर्कराप्रभा में, ३. वालुकाप्रभा में, ४. पंक-प्रभा में, ५ धूमप्रभा में, ६. तमःप्रभा में, ७. तमस्तमप्रभा में, ८. ईषत्प्रागभारा पृथ्वी में।

(१) अधोलोक में—पातालों में, (भवनवासियों के) भवनों में, भवनप्रस्तटों में, नरकों में, नरक-पंक्तियों में और नरक-प्रस्तटों में हैं।

(२) ऊर्ध्वलोक में—कल्पों में, विमानों में, विमान-पंक्तियों में और विमान-प्रस्तटों में हैं।

(३) तिर्यक्लोक में—टंकों में, कूटों में, शैलों में, शिखरों में, प्राग्भारों में (गिरि-गुफाओं में), (महाविदेह के) विजयों में, वक्षस्कारों में (सीमा सूचक पर्वतों में), वर्षों में, (क्षेत्रों में) वर्षधर पर्वतों में, वेलाओं में (समुद्र के किनारों में—जहाँ समुद्र के पानी का ज्वार आता है), वेदिकाओं में, द्वारों में, तोरणों में, द्वीपों में और समुद्र-तलों में—पर्याप्त बादर पृथ्विकायिकों के स्थान कहे गये हैं।

उपपात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवे भाग में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में इनके स्थान हैं।

---

१ (क) चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. रूया, २. रूयंसा, ३. सुरूवा, ४. रूपावई। —ठाणं ४, उ० १, सु० २५९.
(ख) छ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. रुया, २. रयंसा, ३. सुरूवा, ४. रूपवई, ५. रूपकंता, ६. रूवप्पभा। —ठाणं ६. सु० ५०८.
ये दिशाकुमारियाँ दिशाकुमार की अग्रमहिषियाँ हैं। यह ठाणं, अ० ६ सु० ५०८ से स्पष्ट हो जाता है।
शेष दिशाकुमारियाँ किनकी अग्रमहिषियाँ है ? इसका समाधान अन्वेषणीय है।

२ सुहुमा सव्वलोगंमि, लोगदेसे य बायरा, —उत्त० अ० ३६, गाथा ७८।

२३०. प० कहि णं भंते ! वादरपुढविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! जत्थेव वादरपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव वादरपुढविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ।

तं जहा— उववाएणं सव्वलोए ।

समुग्घाएणं सव्वलोए ।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

प० कहि णं भंते ! सुहुमपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाण य ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! सुहुमपुढविकाइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावयण्णगा पण्णत्ता समणाउसो ।

—पण्ण०, पद० २, सु० १४८-१५०

आउक्काइयाणं ठाणाइं—

२३१. प० कहि णं भंते ! वादरआउक्काइयाणं पज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु घणोदधीसु सत्तसु घणोदधिवलएसु—

(१) अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु ।

(२) उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ।

(३) तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुञ्जालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु विलेसु, विलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु—एत्थ णं वादरआउक्काइयाणं पज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइ भागे ।

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइ भागे ।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइ भागे ।

२३०. प्र० भगवन् ! अपर्याप्त वादर पृथ्विकायिकों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ।

उ० गौतम ! जहाँ पर्याप्त वादर पृथ्विकायिकों के स्थान हैं वहीं पर अपर्याप्त वादर पृथ्विकायिकों के स्थान कहे गये हैं ।

यथा—उपपात की अपेक्षा—सम्पूर्ण लोक में उत्पन्न होते हैं ।

समुद्घात की अपेक्षा—सम्पूर्ण लोक में समुद्घात करते हैं ।

स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में इनके स्थान हैं ।

प्र० भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्विकायिकों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ।

उ०—हे आयुष्मान् श्रमण गौतम ! सूक्ष्म पृथ्विकायिक जो पर्याप्त और अपर्याप्त हैं, वे सब एक प्रकार के हैं, वे किसी प्रकार की विशेषता वाले नहीं हैं, वे नाना प्रकार के नहीं हैं और वे सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं ।

अप्कायिक जीवों के स्थान—

२३१. प्र० भगवन् ! पर्याप्त वादर अप्कायिकों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ० गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से सात घनोदधियों में और सात घनोदधिवलयों में हैं ।

(१) अधोलोक में—पातालों में, भवनों में और भवन-प्रस्तटों में हैं ।

(२) ऊर्ध्वलोक में—कल्पों में, विमानों में, विमान-पंक्तियों में और विमान-प्रस्तटों में हैं ।

(३) तिर्यक्लोक में—अगडों में (कूपों में), तालावों में, नदियों में, द्रहों में, वापिकाओं में, पुष्करणियों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरों में, सरपंक्तियों में, सरसर-पंक्तियों में, विलों में, विल-पंक्तियों में, उज्झरों में, (पहाड़ी झरणों में), निज्झरों में (जमीन में से निकालने वाले झरणों में), चिल्ललों में (छोटे जलाशयों में), पल्वलों में (वहुत छोटे जलाशयों में), तालाव के किनारे के समीप वाली भूमि में, द्वीपों में, समुद्रों में और जलाशयों में एवं जलस्थानों में पर्याप्त वादर अप्कायिकों के स्थान कहे गये हैं ।

उपपात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में इनके स्थान हैं ।

समुद्घात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में इनके स्थान हैं ।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में इनके स्थान हैं ।

२३२. प० कहि णं भंते ! बादरआउक्काइयाणं अपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! जत्थेव बादरआउक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरआउक्काइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं सव्वलोए।

समुग्घाएणं सव्वलोए।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइ भागे।[1]

२३३. प० कहि णं भंते ! सुहुमआउक्काइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! सुहुमआउक्काइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पन्नत्ता समणाउसो !

—पण्ण०, पद २, सु० १५१-१५३

२३२. प्र० भगवन् ! अपर्याप्त बादर अप्कायिकों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ० गौतम ! जहाँ पर्याप्त बादर अप्कायिकों के स्थान हैं वहाँ पर अपर्याप्त बादर अप्कायिकों के स्थान कहे गये हैं।

उपपात की अपेक्षा—सम्पूर्ण लोक में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—सम्पूर्ण लोक में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में इनके स्थान हैं।

२३३. प्र० भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिकों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ० हे आयुष्मन् श्रमण गौतम ! जो सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त और अपर्याप्त हैं वे सब एक प्रकार के हैं, किसी प्रकार की विशेषता वाले नहीं हैं, नाना प्रकार के नहीं हैं तथा सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं।

बादरतेउकाइयाणं ठाणा—

बादर तेजस्कायिक जीवों के स्थान—

२३४. प० कहि णं भंते ! बादरतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! सट्ठाणेणं अंतोमणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु

निव्वाघाएणं पण्णरससु कम्मभूमीसु, वाघायं पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु एत्थ णं बादरतेउक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

प० कहि णं भंते ! बादरतेउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! जत्थेव बादरतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरतेउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता।

उववाएणं लोयस्स दोसुद्धकवाडेसु तिरियलोयतट्टे य।

समुग्घाएणं सव्वलोए।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

२३४. प्र० भगवन् ! पर्याप्त बादर तेजस्कायिकों के स्थान कहाँ है ?

उ० गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से मनुष्य क्षेत्र में हैं अर्थात् अढाई द्वीप-समुद्रों में हैं।

पन्द्रह कर्मभूमियों में निराबाध हैं। पाँच महाविदेहों में कहीं हैं और कहीं नहीं हैं। इनमें पर्याप्त बादर तेजस्कायिकों के स्थान हैं।

उपपात की उपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में है।

प्र० भगवन् ! अपर्याप्त बादर तेजस्कायिकों के स्थान कहाँ है ?

उ० गौतम ! जहाँ पर्याप्त बादर तेजस्कायिकों के स्थान हैं। वहीं पर अपर्याप्त बादर तेजस्कायिकों के स्थान हैं।

उपपात की अपेक्षा—लोक के दोनों ऊर्ध्व कपाटों में तथा तिर्यक्लोक के तट में (अन्तिम भाग में) उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—सम्पूर्ण लोक में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

---

[1] [illegible]

प० कहि णं भंते ! सुहुमतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाण य ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! सुहुमतेउकाइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो !

—पण्ण०, पद० २, सु० १५४-१५६

प्र०—भगवन् ! पर्याप्त अपर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिकों के स्थान कहाँ हैं ?

उ० आयुष्मान् श्रमण गौतम ! सूक्ष्म तेजस्कायिक जो पर्याप्त और अपर्याप्त हैं वे सब एक प्रकार के हैं (समान हैं), वे किसी प्रकार की विशेषता वाले नहीं हैं, वे नाना प्रकार के नहीं हैं और वे सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं।

वाउकाइयाणं ठाणाइं—

२३५. प० कहि णं भंते ! बादरवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु घणवाएसु सत्तसु घणवायवलएसु सत्तसु तणुवाएसु सत्तसु तणुवायवलएसु।

(१) अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु भवणछिद्देसु भवणणिक्खुडेसु निरएसु निरयावलियासु णिरयपत्थडेसु णिरयछिद्देसु णिरयणिक्खुडेसु।

(२) उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु विमाणछिद्देसु विमाणणिक्खुडेसु।

(३) तिरियलोए पाईण-पडीण-दाहिण-उदीण सव्वेसु चेव लोगागासछिद्देसु लोगनिक्खुडेसु य। एत्थ णं बायरवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु।

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु।

वायुकायिकों के स्थान—

२३५. प्र० भगवन् ! पर्याप्त बादर वायुकायिकों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ० गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से ये सात घनवातों में, सात घनवातवलयों में, सात तनुवातों में और सात तनुवातवलयों में है।

(१) **अधोलोक में**—पातालों में, भवनों में, भवनप्रस्तटों में, भवन-छिद्रों में, भवन-निष्कुटों में (भवन के भूमिखण्डों में), नरकों में, नरक-पंक्तियों में, नरक-प्रस्तटों में, नरक-छिद्रों में और नरक-निष्कुटों में हैं।

(२) **ऊर्ध्वलोक में**—कल्पों में, विमानों में, विमान-पंक्तियों में, विमान-पस्तटों में, विमान-छिद्रों में और विमान-निष्कुटों में हैं।

(३) **तिर्यक्लोक में**—पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर के लोकाकाश के सभी छिद्रों में और लोकाकाश के सभी निष्कुटों में पर्याप्त बादर वायुकायिकों के स्थान कहे गये हैं।

उपपात की अपेक्षा—लोक के असंख्य भागों में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—लोक के असंख्य भागों में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्य भागों में इनके स्थान हैं।

२३६. प० कहि णं भंते ! अपज्जत्तबादरवाउकाइयाणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! जत्थेव बादरवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरवाउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं सव्वलोए।

समुग्घाएणं सव्वलोए,

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु।

२३६. प्र० भगवन् ! अपर्याप्त बादर वायुकायिकों के स्थान कहाँ कहे गये हैं।

उ० गौतम ! जहाँ पर्याप्त बादर वायुकायिकों के स्थान हैं वहीं पर अपर्याप्त बादर वायुकायिकों के स्थान कहे गये हैं।

उपपात की अपेक्षा—सम्पूर्ण लोक में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—सम्पूर्ण लोक में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्य भागों में इनके स्थान हैं।

२३७. प० कहि णं भंते ! सुहुमवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

२३७. प्र० भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक जीवों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ० गोयमा ! सुहुमवाउकाइया जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो।[1]

—पण्ण० पद २, सु० १५७-१५६

उ० हे आयुष्मान् श्रमण गौतम ! सूक्ष्म वायुकायिक जो पर्याप्त और अपर्याप्त हैं वे सब एक समान हैं, वे किसी प्रकार की विशेषता वाले नहीं हैं, वे नानाप्रकार के नहीं हैं, और वे सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं।

वणस्सइकाइयाणं ठाणाइं—

वनस्पतिकायिकों के स्थान—

२३८. प० कहि णं भंते ! बादरवणस्सकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

उ० गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु घणोदहीसु सत्तसु घणोदहीवलएसु।

(१) अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु।

(२) उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणवलियासु विमाणपत्थडेसु।

(३) तिरियलोए अगडेसु तडागेसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु— एत्थ णं बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता।

उववाएणं सव्वलोए।

समुग्घाएणं सव्वलोए।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

२३८. प्र० भगवन् ! पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिकों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ० गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से सात घनोदधियों में और सात घनोदधिवलयों में हैं।

(१) अधोलोक में—पातालों में, भवनों में, और भवनप्रस्तटों में हैं।

(२) ऊर्ध्वलोक में—कल्पों में, विमानों में, विमान-पंक्तियों में और विमानप्रस्तटों में हैं।

(३) तिर्यक्लोक में—कूपों में, तालाबों में, नदियों में, द्रहों में, वापिकाओं में, पुष्करिणीयों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरों में, सर-पंक्तियों में, सरसर-पंक्तियों में, बिलों में, बिलपंक्तियों में, पहाड़ी झरणों में, भूमि से निकलने वाले झरणों में, चिल्ललों में, पल्वलों में, तालाब के किनारे वाली भूमियों में, द्वीपों में, समुद्रों में, सभी जलाशयों में और सभी जलस्थानों में पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिकों के स्थान कहे गये हैं।

उपपात की अपेक्षा— सम्पूर्ण लोक में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—सम्पूर्ण लोक में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

२३९. प० कहि णं भंते ! बादरवणस्सइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! जत्थेव बादरवणस्सइकायाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरवणस्सइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं सव्वलोए।

समुग्घाएणं सव्वलोए।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

२३९. प्र०—भगवन् ! अपर्याप्त बादर वनस्पतिकायिकों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! जहाँ पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिकों के स्थान हैं वहीं पर अपर्याप्त बादर वनस्पतिकायिकों के स्थान कहे गये हैं।

उपपात की अपेक्षा—सम्पूर्ण लोक में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा— सम्पूर्ण लोक में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

२४०. प० कहि णं भंते ! सुहुमवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं य ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! सुहुमवणस्सइकाइया जे य पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोय परियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो।[2]

—पण्ण० पद २, सु० १६०-१६२

२४०. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायका स्थान कहाँ है ?

उ०—हे आयुष्मान् श्रमण गौतम ! सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जो पर्याप्त और अपर्याप्त हैं वे सब एक समान हैं, वे किसी प्रकार की विशेषता वाले नहीं हैं, वे नाना प्रकार के नहीं हैं और वे सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं।

---

१ उत्त० अ० ३६, गाथा १२०।

२ उत्त० अ० ३६, गाथा १००।

बेइंदियाणं ठाणाइं—

२४१. प० कहि णं भंते ! बेइंदियाणं पज्जत्तगाऽपज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

उ० गोयमा ! (१) उड्ढलोए तदेक्कदेसभागे।

(२) अहोलोए तदेक्कदेसभागे।

(३) तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु। एत्थ णं बेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे।

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।[1]

—पण्ण०, पद० २, सु० १६३

द्वीन्द्रिय जीवों के स्थान—

२४१. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रियों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! (१) वे ऊर्ध्वलोक के एक भाग में हैं।

(२) अधोलोक के एक भाग में हैं।

(३) तिर्यक्लोक में—कूपों में, तालाबों में, नदियों में, द्रहों में, वापिकाओं में, पुष्करिणीयों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरों में, सरपंक्तियों में, सरसरपंक्तियों में, बिलों में, बिल-पंक्तियों में, पहाड़ी झरणों में, भूमि से निकलने वाले झरणों में, चिल्वलों में, पल्वलों में, तालाव के किनारे की भूमियों में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी जलाशयों में तथा सभी जलस्थानकों में पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों के स्थान कहे गये हैं।

उपपात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

तेइंदियाणं ठाणाइं—

२४२. प० कहि णं भंते ! तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! (१) उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए।

(२) अहोलोए तदेक्कदेसभाए।

(३) तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु एत्थ णं तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।[2]

—पण्ण०, पद २, सु० १६४

त्रीन्द्रिय जीवों के स्थान—

२४२. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त त्रीन्द्रियों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! (१) ऊर्ध्वलोक के एक भाग में हैं।

(२) अधोलोक के एक भाग में हैं।

(३) तिर्यक्लोक में—कूपों में, तालाबों में, नदियों में, द्रहों में, वापिकाओं में, पुष्करिणीयों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरों में, सरपंक्तियों में, सरसरपंक्तियों में, बिलों में, बिल-पंक्तियों में, पहाड़ी झरणों में, भूमि में से निकलने वाले झरणों में, चिल्वलों में, पल्वलों में, तालाव के किनारे की भूमियों में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी जलाशयों में, तथा सभी जलस्थानों में पर्याप्त और अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवों के स्थान कहे गये हैं।

उपपात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

---

१ लोगदेसे य ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ॥—उत्त० अ० ३६, गाथा १३०।

२ उत्त० अ० ३६, गाथा १३९।

चउरिंदियाणं ठाणाइं—

२४३. प० कहि णं भंते ! चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! (१) उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए।

(२) अहोलोए तदेक्कदेसभाए।

(३) तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु। एत्थ णं चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।[1]

—पण्ण० पद २, सु० १६५

चतुरिन्द्रिय जीवों के स्थान—

२४३. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त चतुरिन्द्रियों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! (१) ऊर्ध्वलोक के एक भाग में हैं।

(२) अधोलोक के एक भाग में हैं।

(३) तिर्यक्लोक में—कूपों में, तालावों में, नदियों में, द्रहों में, वापिकाओं में, पुष्करिणियों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरों में, सरपंक्तियों में, सरसर-पंक्तियों में, बिलों में, बिल-पंक्तियों में, पहाड़ी झरणों में, भूमि से निकलने वाले झरणों में, चिल्वलों में, पल्वलों में, तालाव के किनारे वाली भूमियों में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी जलाशयों में तथा सभी जलस्थानों में पर्याप्त और अपर्याप्त चतुरिन्द्रियों के स्थान कहे गये हैं।

उपपात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

पंचिंदियाणं ठाणाइं—

२४४. प० कहि णं भंते ! पंचिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! (१) उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए।

(२) अहोलोए तदेक्कदेसभाए।

(३) तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु—एत्थ पंचेंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।[2]

—पण्ण०, पद २, सु० १६६

पंचेन्द्रिय जीवों के स्थान—

२४४. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त पंचेन्द्रियों के स्थान कहाँ कहे गये हैं।

उ०—गौतम ! (१) ऊर्ध्वलोक के एक भाग में हैं।

(२) अधोलोक के एक भाग में हैं।

(३) तिर्यक्लोक में—कूपों में, तालावों में, नदियों में, द्रहों में, वापिकाओं में, पुष्करिणियों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरों में, सरपंक्तियों में, सरसर-पंक्तियों में, बिलों में, बिल-पंक्तियों में, पहाड़ी झरणों में, भूमि में से निकलने वाले झरणों में, चिल्वलों में, पल्वलों में, तालावों के किनारे की भूमियों में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी प्रकार के जलाशयों में तथा सभी जलस्थानों में पर्याप्त और अपर्याप्त पंचेन्द्रियों के स्थान कहे गये हैं।

उपपात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में उनके स्थान हैं।

---

१ उत्त० अ० ३६, गाथा १४६।

२ उत्त० अ० ३६, गाथा १५८, १७३, १८२, १८६।

पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं ठाणाइं—

२४५. प० कहि णं भंते ! पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! (१) उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए।

(२) अहोलोए तदेक्कदेसभाए।

(३) तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणे—एत्थ णं पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

सट्ठाणेणं लोगस्स असंखेज्जइभागे।[1]

—पण्ण०, पद २, सु० १७५

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों के स्थान—

२४५. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त पंचेन्द्रियतिर्यच-योनिकों के स्थान कहाँ कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! (१) ऊर्ध्वलोक के एक भाग में हैं।

(२) अधोलोक के एक भाग में हैं।

(३) तिर्यक्‌लोक में—कूपों में, तालावों में, नदियों में, द्रहों में, वापिकाओं में, पुष्करिणियों मे, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरों में, सरपंक्तियों, सरसरपंक्तियों में, बिलों में, बिलपंक्तियों में, पहाड़ी झरणों में, भूमि में से निकलने वाले झरणों में, चिल्वलों में, पल्वलों में, तालावों के किनारे वाली भूमियों में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी प्रकार के जलाशयों में, तथा सभी जलस्थानों में पर्याप्त तथा अपर्याप्त तिर्यच-पंचेन्द्रियों के स्थान कहे गये हैं।

उपपात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवे भाग में उत्पन्न होते हैं।

समुद्‌घात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में समुद्‌घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में इनके स्थान हैं।



॥ अधोलोक वर्णन सम्पूर्ण ॥

१ उत्त० अ० ३६, गाथा १८९।





तिर्यक् (मध्य) लोक वर्णन

[सूत्र १ से ११२८, पृष्ठ १२१ से ६५४ तक]



लोय-पण्णत्ति
तिरियलोगो
(मज्झलोगो)

लोक-प्रज्ञप्ति
तिर्यक् लोक
(मध्य लोक)

भगवओ महावीरस्स मिहिलाए समोसरणं—

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं मिहिला णामं णयरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा। वण्णओ।

तीसे णं मिहिलाए णयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं माणिभद्दे चेइए होत्था। वण्णओ।
जियसत्तुराया, धारिणीदेवी····वण्णओ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा णिग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोयम गोत्तेण सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणे-जाव-तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

—जंबु० वक्ख० १, सु० १-२

तिरियलोय-खेत्तलोयस्स भेया—

२. प० तिरियलोय-खेत्तलोए णं भंते ! कतिविधे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! असंखेज्जतिविधे पण्णत्ते, तं जहा—जंबुद्दीव-तिरियलोय खेत्तलोए-जाव-सयंभुरमणसमुद्द तिरियलोय-खेत्तलोए। —भग० स० ११, उ० १० सु० ५

भगवान महावीर का मिथिला में समवसरण—

१. उस काल और उस समय में मिथिला नामक नगरी थी, वह ऋद्धि से तथा शान्ति से समृद्ध थी। यहाँ नगरी का वर्णक कहना चाहिए।

उस मिथिला नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिग्विभाग में माणिभद्र चैत्य था। यहाँ चैत्य का वर्णक कहना चाहिए।

वहाँ जितशत्रु राजा था, (उनकी) धारिणीदेवी (रानी) थी। यहाँ राजा और रानी का वर्णक कहना चाहिए।

उस काल और उस समय में (भगवान महावीर) स्वामी पधारे, (उनकी देशना सुनने के लिए नगरी से) परिषदा निकली। (भगवान महावीर ने) धर्म कहा। (देशना पूर्ण होने पर) परिषदा वापस चली गई।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार (जिनका) समचतुरस्र संस्थान था—यावत्—वे (श्रमण भगवान महावीर को) तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार करते हैं और वन्दन नमस्कार करके वे इस प्रकार बोले—

तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक के भेद—

२. प्र०—हे भगवन् ! तिर्यक्लोक का क्षेत्रलोक कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! असंख्येय प्रकार का कहा गया है, यथा—जम्बूद्वीप तिर्यक्लोक का क्षेत्रलोक—यावत्—स्वयम्भूरमणसमुद्र तिर्यक्लोक का क्षेत्रलोक।

तिरियलोय-खेत्तलोयस्स संठाणं—

३. प० तिरियलोगखेत्तलोए णं भंते ! किंसंठिए पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! झल्लरिसंठिए पन्नत्ते ।

—भग० स० ११, उ० १०, सु० ८

तिर्यक्लोक—क्षेत्रलोक का संस्थान—

३. प्र०—हे भगवान् ! तिर्यक्लोक का क्षेत्रलोक किस संस्थान (आकार) का कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! झालर के संस्थान का कहा गया है :

तिरियलोय-खेत्तलोयस्स आयाम-मज्झं—

४. प० कहि णं भंते ! तिरियलोगस्स आयाम-मज्झे पन्नत्ते ?

उ० गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स बहुमज्झदेस-भाए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्ठिल्लेसु खुड्डगपयरेसु—एत्थ णं तिरियलोगमज्झे अट्ठपएसिए रुयए पन्नत्ते, जओ णं इमाओ दस दिसाओ पवहंति, तं जहा—पुरत्थिमा, पुरत्थिमदाहिणा एवं—जहा दसमसते–जाव-नामधेज्ज त्ति ।

—भग० स० १३, उ० ३, सु० १५

तिर्यक्लोक—क्षेत्रलोक के आयाम का मध्यभाग—

४. प्र०—हे भगवन् ! तिर्यक्लोक के आयाम का मध्यभाग कहाँ कहा गया है ?

उ० हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मेरु पर्वत के मध्य भाग में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपरी भाग के नीचे के क्षुद्र प्रतरों में तिर्यक्लोक का मध्य भाग रूप आठ प्रदेशों का रुचक प्रदेश कहा गया है—जहाँ से ये दस दिशायें निकलती हैं, यथा—पूर्व, पूर्व-दक्षिण—यावत्—इसी प्रकार दशम शतक के अनुसार सभी दिशाओं के नाम कहने चाहिए ।

दीव-समुद्दाणं ठाणं संखा महत्तं संठाणं आगारभाव-पडोयारं च—

५. (१) प० कहि णं भंते ! दीव-समुद्दा ?
(२) प० केवइया णं भंते ! दीव-समुद्दा ?
(३) प० के महालया णं भंते ! दीव समुद्दा ?
(४) प० किं संठिया णं भंते ! दीव-समुद्दा ?
(५) प० किमाकारभावपडोयारा णं भंते ! दीव-समुद्दा पण्णत्ता ?

(१) उ० गोयमा ! अस्सिं तिरियलोए जंबुद्दीवाइया दीवा, लवणाइया समुद्दा ।

(२) उ० असंखेज्जा दीव-समुद्दा सयंभुरमणपज्जवसाणा ।

(३) उ० दुगुणादुगुणे पडुप्पायमाणा पडुप्पायमाणा, पवित्थरमाणा पवित्थरमाणा, ओभासमाणवीचीया बहु उप्पल-पउम-कुमुद-णलिण-सुभग-सोगंधिय-पोंडरीय-महापोंडरीय-सतपत्त-सहस्सपत्तपप्फुल्लकेसरोवचिता पत्तेयं-पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ता, पत्तेयं-पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता पण्णत्ता समणाउसो ।

(४) उ० संठाणतो एकविहविधाणा, वित्थारतो अणेगविध-विधाणा ।

द्वीप और समुद्रों के स्थान, महत्ता, संस्थान और प्रकट आकार—

५. (१) प्र०—भगवन् ! द्वीप और समुद्र कहाँ हैं ?
(२) प्र०—भगवन् ! द्वीप और समुद्र कितने हैं ?
(३) प्र०—भगवन् ! द्वीप और समुद्र कितने बड़े हैं ?
(४) प्र०—भगवन् ! द्वीप और समुद्रों के संस्थान कैसे हैं ?

(५) प्र—भगवन् ! द्वीप और समुद्रों के प्रकट आकार का स्वरूप कैसा कहा गया है ?

(१) उ०—गौतम ! जम्बूद्वीपआदि द्वीप और लवणसमुद्र आदि समुद्र तिर्यक्लोक में है ।

(२) उ०—(जम्बूद्वीप से लेकर) स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्य द्वीप समुद्र हैं ।

(३) उ०—हे आयुष्मन् श्रमण ! (जम्बूद्वीप से दुगुना लवण समुद्र और लवणसमुद्र से दुगुना धातकीखण्ड—इस प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यन्त) गुणन करते-करते दुगुने विस्तार वाले तथा प्रकाशमान लहरों वाले द्वीप और समुद्र अनेक उत्पल-पद्म-कुमुद-नलिन-सुभग-सौगंधिक-पौंडरीक-महापौंडरीक-शतपत्र-सहस्र-पत्र प्रफुल्लित केशर से सुशोभित हैं । प्रत्येक द्वीप पद्मवर वेदिका से और प्रत्येक पद्मवरवेदिका वनखण्ड से घिरी हुई कही गई है ।

(४) उ०—सभी द्वीप-समुद्र संस्थान से एक (वृत्त-गोल) प्रकार के हैं और विस्तार से अनेक प्रकार के हैं ।

(५) उ० तत्थ णं अयं जंबुद्दीवे णामं दीवे दीवसमुद्दाणं अब्भितरिए सव्वखुड्डाए।
वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए,
वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए,
वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए,
वट्टे पडिपुन्नचंदसंठाणसंठिए,
एक्कं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं, सोलस य सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि य कोसे, अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस अंगुलाइं, अद्धंगुलकं च किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।[1]
—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२३-१२४

(५) उ०—यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप उन द्वीप-समुद्रों के अन्दर है, सबसे छोटा है,
तेल के पूये जैसे वृत्त (गोल) संस्थान से स्थित है।
रथ के पहिये जैसे वृत्त संस्थान से स्थित है।
पुष्करकर्णिका जैसे वृत्त संस्थान से स्थित है।
पूर्णचन्द्र जैसे वृत्त संस्थान से स्थित है।
इसका आयाम-विष्कम्भ एक लाख योजन का है। तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन, तीन कोश, अठावीस धनुष, तेरह अंगुल और आधे अंगुल से कुछ अधिक की इसकी परिधि कही गई है।

---

१ आगमोदय समिति से प्रकाशित जीवाभिगम (मलयगिरि-टीक सहित) के सूत्र १२३ के मूलपाठ में द्वीप-समुद्र सम्बन्धी पाँच प्रश्न जिस क्रम से हैं, उसी क्रम से उनके उत्तर नहीं हैं।

टीकाकार पाँच प्रश्नों और उत्तरों का क्रमशः विषय निर्देश इस प्रकार करते हैं—

(१) प्र०—'कहि णं भंते! दीव-समुद्दा?' इत्यादि 'क्क' कस्मिन् णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! परम कल्याणयोगिन्! द्वीप-समुद्राः प्रज्ञप्ताः? अनेन द्वीपसमुद्राणामवस्थानं पृष्टम्।

(२) प्र०—'केवइया णं भंते! दीव-समुद्दा?' इति 'कियन्तः' कियत्संख्याका णमिति वाक्यालंकारे भदन्त! द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः? अनेन द्वीपसमुद्राणां संख्यानं पृष्टम्।

(३) प्र०—'के महालिया णं भंते! दीवसमुद्दा?' इति किं महानालय-आश्रयो व्याप्यक्षेत्ररूपो येषां ते महालयाः किं प्रमाण-महालया णमिति प्राग्वद् द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः? किं प्रमाणं द्वीपसमुद्राणा महत....मिति भावः, एतेन द्वीप समुद्राणामायामादि परिमाणं पृष्टम्।

(४) प्र०—'किं संठिया णं भंते! दीव-समुद्दा?' इति किं संस्थितं संस्थानं येषां किं संस्थिता, णमिति पूर्ववद्, भदन्त! द्वीप-समुद्राः प्रज्ञप्ताः? अनेन संस्थानं पप्रच्छ।

(५) प्र०—'किमागारभावपडोयारा णं भंते! दीव-समुद्दा पण्णत्ता?' इति आकारभावः स्वरूपविशेषः, कस्य आकारभावस्य प्रत्यवतारो येषां ते किमाकार भावप्रत्यवताराः...............णमिति पूर्ववद्, द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः? किं स्वरूपं द्वीप-समुद्राणामिति भावः, अनेन स्वरूप विशेषविषयः प्रश्नः कृतः।

उत्तरों का विषयनिर्देश :—

(१) उ०—इह 'असिंसं तिरियलोए' इत्यनेन स्थानमुक्तम्।
(२) उ०—'असंखेज्जा' इत्यनेन संख्यानम्।
(३) उ०—'दुगुणादुगुण' मित्यादिना महत्वम्।
(४) उ०—'संठाणतो' इत्यादिना संस्थानम्।

पाँचवें उत्तर के सम्बन्ध में टीकाकार की सूचना :—
सम्प्रत्याकार भाव प्रत्यवतारं विवक्षुरिदमाह—

(५) उ०—'तत्थाणं अयं जंबुद्दीवे णामं दीवे...... परिक्खेवेणं पण्णत्ते।' चार प्रश्नों के उत्तर सूत्र १२३ में हैं और पाँचवें प्रश्न का उत्तर सूत्र १२४ में है।

आगमोदयसमिति से प्रकाशित जीवाभिगम सूत्र १२३ का मूलपाठ :—

(१) प्र०—कहि णं भंते! दीवसमुद्दा?
(२) प्र०—केवइया णं भंते दीवसमुद्दा?
(३) प्र०—के महालया णं भंते! दीवसमुद्दा?

(शेष पृ० १२४ पर)

जंबुद्दीवस्स ठाण-पमाणाइ—

६. प० (१) कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे ?
(२) के महालए णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे ?
(३) किं संठिए णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे ?
(४) किमायारभाव पडोयारे णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे पण्णत्ते ?

उ० (१) गोयमा ! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्व दीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए।
(२) सव्वखुड्डाए।
(३) वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए।
वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए।
वट्टे पुक्खरकण्णिया संठाणसंठिए।
वट्टे पडिपुण्ण चंद संठाणसंठिए।
(४) एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं।[1]
तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरसअंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।[2]

—जंबु० वक्ख० १, सु० ३

जम्बूद्वीप का स्थान एवं प्रमाणादि—

६. प्र०—(१) भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप कहाँ है ?
(२) भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप कितना विशाल है ?
(३) भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप का संस्थान कैसा है ?
(४) भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप का आकार भाव-स्वरूप कैसा कहा गया है ?

उ०—(१) गौतम ! यह जम्बूद्वीप सर्वद्वीप-समुद्रों के सर्वाभ्यन्तर बीच में है।
(२) सबसे छोटा है।
(३) तेल में तले हुए पुए के आकार का गोल है।
रथ के पहिये के संस्थान के समान गोल है।
कमल की कर्णिका के आकार की तरह गोल है।
परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार की तरह गोल है।
(४) एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है।
तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष, कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल की परिधि कही गयी है।

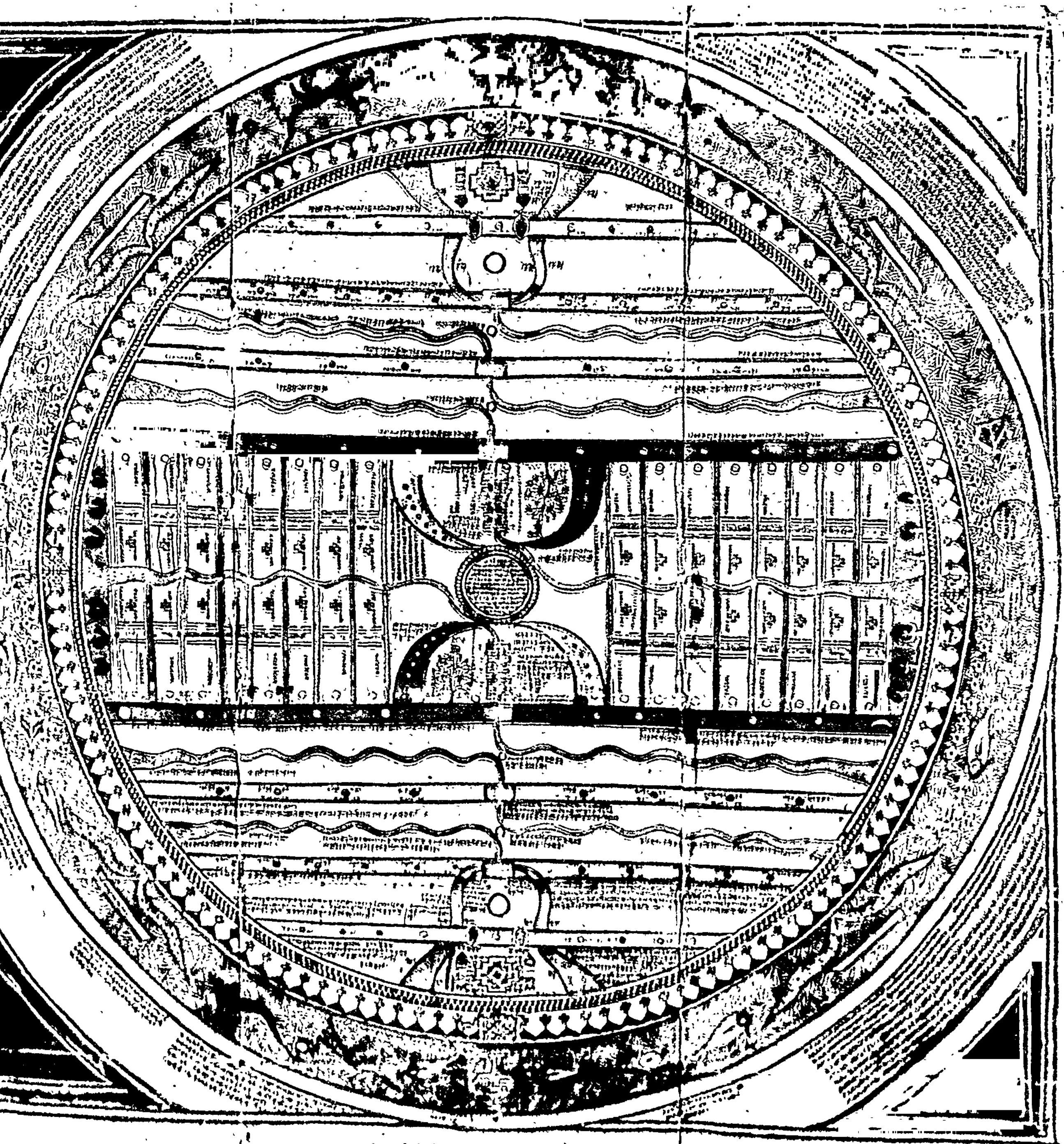
७. प० (१) जंबुद्दीवे णं भंते दीवे केवइयं आयाम-विक्खंभेणं ?
(२) केवइयं परिक्खेवेणं ?
(३) केवइयं उव्वेहेणं ?
(४) केवइयं उद्धं उच्चत्तेणं ?
(५) केवइयं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ?

७. प्र०—(१) जम्बूद्वीप नामक द्वीप का आयाम-विष्कम्भ कितना है ?
(२) परिक्षेप कितना है ?
(३) उद्वेध कितना है ?
(४) ऊँचाई कितनी है ?
(५) सर्वपरिमाण कितना कहा गया है ?

(शेष पृष्ठ १२३ का)

(४) प्र०—किं संठिया णं भंते ! दीवसमुद्दा ?
(५) प्र०—किमाकारभावपडोयारा णं भंते ! दीवसमुद्दा णं पण्णत्ता ?
(४) उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवाइया दीवा, लवणाइया समुद्दा संठाणतो एकविह... ... विधाणा, वित्थारतो अणेगविध विधाणा।
(३) उ०—दुगुणादुगुणे पडुप्पायमाणा २ पवित्थरमाणा २ ओभासमाणवीचीया, बहु उप्पल-पउम-कुमुद-णलिण-सुभग सोगंधिय-पोंडरीय-महापोंडरीय-सतपत्त-सहस्सपत्त-पप्फुल्लकेसरोवचिता पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ता पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता।
(१) उ०—असिंसं तिरियलोए।
(२) उ०—असंखेज्जा दीव-समुद्दा संयभुरमणपज्जवसाणा पण्णत्ता समणाउसो।
(५) उ०—तत्थ णं अयं जंबुद्दीवे णामं दीवे दीव-समुद्दाणं अब्भिंतरिए सव्वखुड्डाए, वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए, वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए, वट्टे, पुक्खरकण्णिया संठाणसंठिए, वट्टे पडिपुन्नचदसंठाणसंठिए, एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णियकोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलकं च किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

१ (क) सम० स० १, सु० १६। (ख) सम० सु० १२४।
२ (क) ठाणं० अ० १, सु० ५२। (ख) भग० स० ६, उ० १, सु०, २-३। (ग) जीवा० प० ३, उ० १ सु० १२४।



जम्बूद्वीप का चित्र : वर्णन देखें पृष्ठ १२४ पर

उ० (१) गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं ।

(२) तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलसयसहस्साइं दोण्णि अ सत्तावीसे जोअणसए तिण्णि अ कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।[1]

(३) एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं ।

(४) णवणउतिं जोअणसहस्साइं साइरेगाइं उद्धं उच्चत्तेणं ।

(५) साइरेगं जोअणसयसहस्सं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ।

—जंबु० व० १, सु० १७४

उ०—(१) गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप का आयाम-विष्कम्भ एक लाख योजन है ।

(२) परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताइस योजन, तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष एवं कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल की कही गई है ।

(३) गहराई एक हजार योजन है ।

(४) ऊँचाई कुछ अधिक निन्यानवें हजार योजन है ।

(५) सर्वपरिमाण कुछ अधिक एक लाख योजन का कहा गया है ।

जंबुद्दीवस्स सासया-ऽसासयत्तं—

८. प० (१) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे किं सासए असासए ?

उ० गोयमा ! सिय सासए, सिय असासए ।

प० (२) से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—'सिय सासए सिय असासए ?

उ० गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासए, वण्ण-पज्जवेहिं, गंध-पज्जवेहिं, रस-पज्जवेहिं, फास-पज्जवेहिं असासए । से तेणट्ठे णं गोयमा ! एवं वुच्चइ—'सिय सासए, सिय असासए ।

—जंबु० व० ७, सु० १७५

जम्बूद्वीप शाश्वत और अशाश्वत—

८. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप क्या शास्वत है या अशाश्वत है ?

उ०—गौतम ! कथंचित् शाश्वत है और कथंचित् अशाश्वत है ।

प्र०—भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि—'कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत है ?'

उ०—गौतम ! द्रव्यों की अपेक्षा से (जम्बूद्वीप) शाश्वत है और वर्णपर्यायों से, गंधपर्यायों से, रसपर्यायों से तथा स्पर्शपर्यायों से अशाश्वत है । गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है—'कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत है ।........

९. प० (१) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कालओ केवचिरं होइ ?

उ० गोयमा ? ण कयावि णासि, ण कयावि णत्थि, ण कयावि ण भविस्सइ, भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ, धुवे, णिइए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, णिच्चे जंबुद्दीवे दीवे पण्णत्ते ।[2]

—जंबु० व० ७, सु० १७५

९. प्र०—भगवन् ! काल की अपेक्षा से जम्बूद्वीप कब तक रहता है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप कभी नहीं था—ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा नहीं है और कभी नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है । वह था, है और रहेगा । वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य कहा गया है ।

---

१ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति-वक्षस्कार एक के सूत्र ३ में जम्बूद्वीप से सम्बन्धित चार प्रश्नोत्तर हैं और सूत्र १७४ में पाँच प्रश्नोत्तर हैं, सूत्र तीन के चौथे प्रश्न में तथा सूत्र १७४ के प्रथम-द्वितीय प्रश्न में भाव-साम्य होते हुए भी शब्द साम्य नहीं है, किन्तु इनके उत्तर में शब्द साम्य एवं भाव साम्य पूर्ण रूप से है ।

एक ही आगम में इस प्रकार के प्रश्न भेदों का अस्तित्व विचारणीय है ।

२ ऊपर सूत्र के प्रथम विभाग में जम्बू द्वीप को द्रव्य की अपेक्षा शास्वत तथा पर्याय की अपेक्षा से अशास्वत कहा गया है और द्वितीय विभाग में काल की अपेक्षा से सर्वथा शास्वत कहा गया है ।

जंबुद्दीवस्स पुढविआइपरिणामित्तं—

१०. प० (१) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे किं पुढवि-परिणामे, आउ-परिणामे, जीव-परिणामे, पोग्गल-परिणामे ?

उ० गोयमा ! पुढविपरिणामे वि, आउपरिणामे वि, जीव-परिणामे वि, पोग्गलपरिणामे वि ।

—जंबु० व० ७, सु० १७६(१)

जम्बूद्वीप का पृथ्वी आदि परिणामित्व—

१०. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप क्या पृथ्वी का परिणमन है, जल का परिणमन है, जीवका परिणमन है, या पुद्गल का परिणमन है ?

उ०—गौतम ! (जम्बूद्वीप) पृथ्वी का परिणमन भी है, जीव का परिणमन भी है और पुद्गल का परिणमन भी है....

जंबुद्दीवे सव्वजीवाणं एगिंदियत्तेणं अणंतसो उववन्न-पुव्वत्तं—

११. प० (१) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सव्वपाणा, सव्वजीवा, सव्वभूआ, सव्वसत्ता, पुढविकाइअत्ताए, आउकाइ-अत्ताए, तेउकाइअत्ताए, वाउकाइअत्ताए, वणस्सइ-काइअत्ताए उववन्नपुव्वा ?

उ० हंता गोयमा ! असइं, अदुवा अणंतखुत्तो ।

—जंबू० व० ७, सु० १७६(२)

जम्बूद्वीप में सब जीवों का एकेन्द्रिय रूप से पूर्व में उत्पन्न होना—

११. प्र० भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सब प्राणी, सब जीव, सब भूत और सबसत्व पृथ्वीकाय रूप में, अप्काय रूप में, तेजस्काय रूप में, वायुकाय रूप में और वनस्पतिकाय रूप में पूर्व में उत्पन्न हुए हैं ?

उ० हाँ गौतम ! अनेक वार अथवा अनन्तवार पूर्व में उत्पन्न में हुये हैं ।....

जंबुद्दीवजगतीपमाणं—

१२. से णं एगाए वइरामईए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते,
सा णं जगई अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,[1]
मूले बारस जोअणाइं विक्खंभेणं,[2]
मज्झे अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं,[3]
उवरिं चत्तारि जोअणाइं विक्खंभेणं,
मूले वित्थिन्ना, मज्झे संखित्ता, उवरिं तणुया, गोपुच्छ-संठाण-संठिया सव्व वइरामई अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

—जम्बु० व० १, सु० ७

जम्बूद्वीप की जगती का प्रमाण—

१२. वह (जम्बूद्वीप) एक वज्रमय जगती से सब ओर से घिरा है।
वह जगती आठ योजन ऊपर की ओर उन्नत है,
मूल में बारह योजन विष्कम्भ वाली है,
मध्य में आठ योजन विष्कम्भ वाली है,
ऊपर चार योजन विष्कम्भ वाली है,
मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतली है, गाय के पूँछ के आकार के संस्थान वाली सर्व वज्रमयी स्वच्छ—यावत्—मनोहर है ।

जंबुद्दीवजगतीगवक्खपमाणं—

१३. सा णं जगई एगेणं महंत गवक्खकडएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता,
से णं गवक्खकडए अद्धजोअणं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे ।

—जम्बु० व० १, सु० ४

जम्बूद्वीप की जगती के गवाक्ष का प्रमाण—

१३. वह जगती एक विशाल जालकटक (जालियों के समूह) से सब ओर से घिरी है ।

वह जालकटक आधा योजन ऊपर की ओर उन्नत है । पाँच सौ धनुष चौड़ा है, सर्वरत्नमय स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है ।

जंबुद्दीवजगतीपउमवरवेइयापमाणं—

१४. तीसे णं जगईए उप्पिं बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं महई एगा पउमवरवेइया पण्णत्ता,
अद्धजोअणं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं, जगई-समिया परिक्खेवेणं, सव्व रयणामई अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

—जम्बु० व० १, सु० ३

जम्बूद्वीप की जगती पर पद्मवरवेदिका का प्रमाण—

१४. उस जगती के ऊपर मध्य भाग में एक विशाल पद्मवर-वेदिका कही गई है ।

वह (पद्मवरवेदिका) आधा योजन ऊपर की ओर उन्नत है, पाँच सौ धनुष विष्कम्भ वाली है । जगती के समान परिधि है । सर्वात्मना रत्नमय स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है ।

पउमवरवेइयाए वित्थरओ वण्णणं—

पद्मवरवेदिका का विस्तृत वर्णन—

१५. तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—वइरामया नेमा, रिट्ठामया पइट्ठाणा, वेरुलियामया, खंभा, सुवण्णरुप्पमया फलगा; वइरामया संधी, लोहितक्खमईओ सूईओ, णाणामणिमया कलेवरा णाणामणिमया कलेवरसंघाडा, णाणामणिमया रूवा, णाणामणिमया रूवसंघाडा, अंकामया पक्खा, पक्खबाहाओ, जोइरसामया वंसा, वंसकवेल्लुया य, रययामईओ पट्टियाओ, जातरूवमयीओ ओहाडणीओ, वइरामयीओ उवरिं पुंछणीओ सव्वसेए रययामते साणं छादणे।

१५. उस पद्मवरवेदिका का विस्तृत वर्णन इस प्रकार कहा गया है—यथा—इसके नेम मूल वज्रमय है। प्रतिष्ठान (मूल पाये) रिष्टरत्नमय हैं। स्तम्भ वैडूर्यमय हैं। फलक स्वर्ण-रजतमय हैं। संधियाँ वज्रमय हैं। सूचियाँ लोहिताक्ष (रत्न) मय हैं। कलेवर (मनुष्य शरीर) एवं कलेवरयुग्म (दो मनुष्य शरीर) नाना मणिमय हैं। पक्ष एवं पक्षबाहु अंकरत्नमय हैं। बांस (पृष्ठवंश) और वंशकवेल्लुक ज्योतिरस नामक रत्नमय हैं। पट्टिकायें (पृष्ठ वंशों के ऊपर की कम्बायें) रजतमय हैं। अवघाटनी (ढकनी) जातरूप स्वर्ण की हैं। पोंछनी (पोंछने का उपकरण) वज्रमय है। पद्मवरवेदिका के ऊपर का आच्छादन श्वेत रजतमय है।

१६. साणं पउमवरवेइया एगमेगेणं हेम-जालेणं, एगमेगेणं गवक्ख-जालेणं, एगमेगेणं खिखणी-जालेणं, एगमेगेणं घंटा-जालेणं, एगमेगेणं मुत्ता-जालेणं, एगमेगेणं मणिजालेणं, एगमेगेणं कणग-जालेणं, एगमेगेणं रयण-जालेणं, एगमेगेणं पउमवर-जालेणं, सव्वरयणामएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता।

१६. वह पद्मवरवेदिका एक-एक हेमजाल से, एक-एक गवाक्ष-जाल से, एक-एक किंकिनी (छोटी घंटी) जाल से, एक-एक घंटा जाल से, एक-एक मुक्ताजाल से, एक-एक मणि-जाल से, एक-एक कनकजाल से, एक-एक रत्नजाल से, एक-एक सर्वरत्नमय पद्मवरजाल से सब ओर से अर्थात् चारों ओर से घिरी हुई है।

१७. ते णं जाला तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया, णाणा-मणिरयण विविहहारद्धहारउवसोभितसमुदया ईसिं अण्णमण्ण-मसंपत्ता पुव्वावरदाहिण उत्तरागतेहिं वाएहिं मंदागं मंदागं एज्जमाणा एज्जमाणा कंपिज्जमाणा कंपिज्जमाणा लंबमाणा लंबमाणा पझंझमाणा पझंझमाणा सद्दायमाणा सद्दायमाणा तेणं ओरालेणं मणुण्णेणं कण्णमणणेव्वुतिकरेणं सद्देणं सव्वओ समंता आपूरेमाणा सिरीए अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठन्ति।

१७. वे जाल तपनीय (स्वर्णमय) लंबूसक (झूमके) वाले हैं। स्वर्ण के पतरे से मंडित हैं। उनके समूह नाना प्रकार के मणिरत्नों से और विविध प्रकार के हार तथा अर्धहारों से सुशोभित हैं। वे (लंबूसक) एक-दूसरे से कुछ दूरी पर हैं। पूर्व-पश्चिम-दक्षिण और उत्तरदिशा से आये हुए वायु से मन्द-मन्द डोलते हुए, कम्पित होते हुए, लटकते हुए, आवाज करते हुए एवं गूंजते हुए हैं। उस उदार मनोज्ञ कर्ण एवं मन को आनन्द देने वाले शब्द से सब दिशाओं को पूरित करते हुए तथा श्री से अतीव शोभित होते हुए स्थित हैं।

१८. तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे हय-संघाडा, गय-संघाडा, नर-संघाडा, किण्णर-संघाडा, किंपुरिस-संघाडा, महोरग-संघाडा, गंधव्व-संघाडा, वसह-संघाडा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

१८. उस पद्मवरवेदिका के अनेक स्थानों पर अनेक अश्वयुगल गजयुगल, नरयुगल, किंनरयुगल, किंपुरुषयुगल, महोरगयुगल, गंधर्वयुगल, वृषभयुगल बने हैं, जो सर्वरत्नमय स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं हयपंतीओ तहेव-जाव-पडिरूवाओ।

उस पद्मवरवेदिका के अनेक स्थानों पर अनेक अश्वपंक्तियां—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं हयवीहीओ तहेव-जाव-पडिरूवाओ।

उस पद्मवरवेदिका के अनेक स्थानों पर अनेक अश्व वीथियां हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं हयमिहुणाइं तहेव-जाव-पडिरूवाइं।

उस पद्मवरवेदिका के अनेक स्थानों पर अनेक अश्वमिथुन हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे पउमलयाओ, णागलयाओ, असोगलयाओ, चंपगलयाओ, वणलयाओ, वासंतियलयाओ, अइमुत्तगलयाओ, कुंदलयाओ, सामलयाओ निच्चं कुसुमियाओ, निच्चं मउलियाओ, निच्च

उस पद्मवरवेदिका के अनेक स्थानों पर अनेक पद्मलतायें, नागलतायें, अशोकलतायें चम्पकलतायें, चूत (आम्र) लतायें, श्यामलतायें हैं जो नित्य कुसुमित रहती हैं, नित्य मुकुलित (कलिकायुक्त) रहती हैं, नित्य पल्लवित (पल्लवित) रहती

लवइयाओ, णिच्चं थवइयाओ, णिच्चं गुम्मियाओ, णिच्चं जमलियाओ, णिच्चं जुअलियाओ, णिच्चं विणमियाओ, णिच्चं पणमियाओ णिच्चं सुविभत्त पिंडमंजरि वडिसगधरीओ सव्वरयणामईओ अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ।[1]

[तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे अक्खयसोत्थिया पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।] —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२५

नित्य स्तवकित (गुच्छेयुक्त) रहती है। नित्य गुल्मित (गुल्मयुक्त) रहती हैं, नित्य यमलित रहती है, नित्य युगलित रहती हैं, नित्य विनमित रहती हैं, नित्य प्रणमित रहती है, नित्य सुविभक्त पिण्डमंजरी रूप अवतंसक धारण करने वाली हैं, सर्वरत्नमय हैं

(उस पद्मवरवेदिका के अनेक स्थानों पर अक्षत स्वस्तिक कहे गये हैं। सब रत्नमय है, स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं।....)

पउमवरवेइयाणामस्स हेउ—

१९. प० से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—'पउमवरवेइया, पउमवरवेइया?

उ० गोयमा! पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं वेदियासु वेदियाबाहासु वेदियासीसफलएसु वेदियापुडंतरेसु खंभेसु खंभबाहासु खंभसीसेसु खंभपुडंतरेसु सूईसु सूईमुहेसु सूईफलएसु सूईपुडंतरेसु पक्खेसु पक्खबाहासु पक्ख पुडंतरेसु बहूइं उप्पलाइं-जाव-सतसहस्सपत्ताइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं-जाव-पडिरूवाइं।

महया महया वासिक्कछत्तसमाणाइं पण्णत्ताइं समणाउसो!

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—पउमवरवेइया, पउमवरवेइया।

पद्मवरवेदिका के नाम का हेतु—

१९. प्र० भगवन्! पद्मवरवेदिका, पद्मवरवेदिका क्यों कही जाती है?

उ०—गौतम! पद्मवरवेदिका की अनेक वेदिकाओं पर वेदिका-पार्श्वों पर, वेदिका शीशफलकों पर, दो वेदिकाओं के मध्य भागों पर, स्तम्भों पर, स्तम्भ पार्श्वों पर, स्तम्भ-मस्तकों पर, दो स्तम्भों के मध्य भागों पर, सूचियों पर, सूचिमुखों पर, सूचीफलकों पर, दो सूचियों के मध्य भागों पर, (वेदिका के) पक्षों (भागों) पर (वेदिका के) पक्षवाहों (विभागों) पर, विभागों के मध्य भागों पर अनेक उत्पन्न—यावत्—शत सहस्र पत्र सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं—यावत्—प्रतिरूप है।'

आयुष्मान् श्रमणो! यह वर्षाकाल में बनाई हुई बड़ी-बड़ी छतरियों के समान हैं।

गौतम! इस कारण से पद्मवरवेदिका, पद्मवरवेदिका कही जाती हैं।

पउमवरवेइयाए सासया-ऽसासयत्तं—

२०. प० पउमवरवेइया णं भंते! किं सासया असासया?

उ० गोयमा! सिय सासया, सिय असासया।

प० से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—'सिय सासया सिय असासया।'

उ० गोयमा! दव्वट्ठयाए सासया, वण्ण-पज्जवेहिं गंध-पज्जवेहिं रस-पज्जवेहिं फास-पज्जवेहिं असासया।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—'सिय सासया, सिय असासया।''

प० पउमवरवेइया णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

पद्मवरवेदिका शाश्वत और अशाश्वत—

२०. प्र०—भगवन्! पद्मवरवेदिका शाश्वत हैं या अशाश्वत?

उ०—गौतम! कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत है?

प्र०—भगवन्! किस हेतु से कहा जाता है कि (पद्मवरवेदिका) कथंचित् शाश्वत है और कथंचित् अशाश्वत है?

उ०—गौतम! द्रव्यों की अपेक्षा से (पद्मवरवेदिका) शाश्वत है। वर्ण-पर्यायों से, गंध-पर्यायों से, रस-पर्यायों से और स्पर्श-पर्यायों से अशाश्वत है।

गौतम! इस कारण से (पद्मवरवेदिका) कथंचित् शाश्वत है और कथंचित् अशाश्वत है—ऐसा कहा जाता है।....

प्र०—भगवन्! पद्मवरवेदिका काल की अपेक्षा से कब तक है?

उ० गोयमा ! ण कयावि णासि, ण कयावि णत्थि, ण कयावि न भविस्सइ ।

भुविं च, भवति य, भविस्सति य, धुवा नियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेदिया ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२५

उ० गौतम ! पद्मवरवेदिका कभी नहीं थी—ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा नहीं है और कभी नहीं रहेगी, ऐसा भी नहीं है ।

वह सदा थी, है, और रहेगी। वह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है।....

वणसंडपमाणं—

२१. तीसे णं जगतीए उप्पिं बाहिं पउमवरवेइयाए—एत्थ णं एगे महं वणसंडे पण्णत्ते। देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं जगतीसमए परिक्खेवेणं ।[1]

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

वनखण्ड का प्रमाण—

२१. उस जगती के ऊपर पद्मवरवेदिका के बाह्य प्रदेश में एक विशाल वनखण्ड कहा गया है। इसका चक्रवाल विष्कम्भ कुछ कम दो योजन का है और उसकी परिधि जगती के सदृश है।

वणसंडवण्णओ—

२२. किण्हे, किण्होभासे-जाव-(नीले, नीलोभासे, हरिए, हरिओभासे सीए, सीओभासे, णिद्धे, णिद्धोभासे, तिव्वे, तिव्वोभासे ।

किण्हे, किण्हच्छाए, नीले, नीलच्छाए, हरिए, हरियच्छाए, सीए, सीयच्छाए, णिद्धे, णिद्धच्छाए, तिव्वे, तिव्वच्छाए, घणकडियच्छाए, रम्मे, महामेहणिकुरंबभूए ।

वनखण्ड का वर्णन—

२२. वह वनखण्ड कृष्ण है और कृष्ण रूप से अवभासित होता है, —यावत्—(नीला है, नील रूप से प्रतिभासित होता है, हरा है एवं हरित रूप से इसका प्रतिभास होता है, शीतल है और शीतल स्पर्श रूप से प्रतिभासित होता है, स्निग्ध है और स्निग्धावभास रूप है, तीव्र है और तीव्र रूप से अवभासित—प्रतीत होता है।

(वृक्षों की) छाया कृष्ण होने से वह वनकृष्ण है, (वृक्षों की) छाया नीली होने से वह वन नीला है, (वृक्षों की) छाया हरी होने से वह वन हरा है, (वृक्षों की) छाया शीतल होने से वह वन शीतल है, (वृक्षों की) छाया स्निग्ध (गहरी) होने से वह वन स्निग्ध (गहरा) है, (वृक्षों की) छाया तीव्र होने से वह वन तीव्र है। विविध वृक्षों की शाखा प्रशाखायें परस्पर में प्रविष्ट होने से सघन छायावाला है, रमणीय है, और जलभार से अवनत हुए महामेघों के समूह जैसा प्रतीत होता है।

२३. तेणं पायवा मूलमंतो, कंदमंतो, खंधमंतो, तयामंतो, सालमंतो, पवालमंतो, पत्तमंतो, पुप्फमंतो, फलमंतो, बीयमंतो, अणुपुव्विसुजातरुइलवट्टभावपरिणया, एगखंधी, अणेगसाहप्पसाहविडिमा, अणेगनरवामसुप्पसारिया गेज्झघण-विउल-वट्टखंधा, अच्छिद्दपत्ता, अविरलपत्ता, अवाईणपत्ता, अणईईपत्ता, णिद्धूयजरढ-पंडुरपत्ता, णव-हरिअ-भिसंतपत्तभारंधयार—गंभीरदरिसणिज्जा, उवविणिग्गय—नवतरुणपत्तपल्लव कोमलुज्जल चलंतकिसलय सुकुमालपवाल—सोभियवरकुरग्ग सिहरा ।

२३. इस वनखण्ड के वृक्ष मूल (जड़) वाले हैं, प्रशस्त कन्दवाले हैं, स्कन्धवाले हैं, त्वचा-छाल वाले हैं, शाखायुक्त हैं, प्रवालयुक्त हैं, पत्र, पुष्प, फल और बीज युक्त हैं, एवं समस्त दिशा-विदिशाओं में अपनी शाखा प्रशाखाओं द्वारा इस ढंग से फैले हुए हैं कि वर्तुलाकार (गोल) प्रतीत होते हैं। ये सब वृक्ष एक स्कन्धवाले हैं और अनेक शाखा-प्रशाखाओं से जिनके मध्य भाग का विस्तार अधिक है, अनेक पुरुषों के द्वारा मिलकर फैलाये गये अपने व्याम (दोनों बाहु) द्वारा जिसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं, ऐसा निविड विस्तीर्ण इनका गोल स्कन्ध है, इनके पत्र छिद्र रहित हैं, अविरल पत्रवाले हैं, इनके पत्रों में अन्तराल नहीं हैं, वायु से अनुपहत पत्रवाले हैं, जो पत्र जीर्ण-पुराने और सफेद हो जाते हैं उनको वायु द्वारा उड़ाकर अन्यत्र फेंक दिया जाता है, नवीन हरे-हरे पत्र समूह से देदीप्यमान, घनान्धकार से आच्छादित एवं दर्शनीय हैं, तथा सुन्दर अंकुरों के अग्रभाग से निरन्तर निकलते हुए नये ताजा पत्तों से और कोमल मनोज्ञ उज्ज्वल कम्पमान किसलयों से एवं सुकुमाल प्रवालों से शोभायमान बने रहते हैं।

---

१ अनुत्तरो० १, सु० ५। सूत्र के अन्त में "वणसंडवण्णओ णेयव्वो" संक्षिप्त वाचना की यह सूचना है।

—णिच्चं कुसुमिया, णिच्चं मउलिया, णिच्चं लवइया, णिच्चं थवइया, णिच्चं गुलइया, णिच्चं गुच्छिया, णिच्चं जमलिया, णिच्चं जुअलिया, णिच्चं विणमिआ, णिच्चं पणमिया ।

—ये वृक्ष सदा कुसुम (पुष्प) युक्त रहते हैं, ये वृक्ष सदा मुकुल (अर्धखिली कलियों से) युक्त हैं, ये वृक्ष सदा पल्लव (पत्र) युक्त हैं, ये वृक्ष सदा स्तवक (फूलों के गुच्छों से) युक्त हैं, ये वृक्ष सदा गुल्म (ऐसे पौधे जिनकी शाखाओं से) युक्त हैं, ये वृक्ष सदा गुच्छों, (फूलों के समूह से) युक्त है, ये वृक्ष सदा यमलों (जुड़वाँ वृक्षों) से युक्त हैं, ये वृक्ष सदा युगल (दो समान वृक्षों) से युक्त हैं, ये वृक्ष सदा फलों के भार से झुके हुए रहते हैं ये वृक्ष सदा फलों के भार से अत्यधिक झुके हुए रहते हैं ।

—णिच्चं कुसुमिय-मउलिअ-लवइअ-थवइअ-गुलइअ-गोच्छिअ-जमलिअ–जुअलिअ-विणमिअ–पणमिअ–सुविभत्तपडिमंजरिव-डिंसयधरा, सुअ-वरहिण-मयणसलाग-कोइल-कोरग-भिंगारग-कोंडलक–जीवंजीवग–णंदीमुह–कविल–पिंगलक्खग–कारंडव-चक्कवाय–कलहंस-सारस–अणेगसउणगणविरइअ–सद्दुन्नइआ महुरसरणाइआ, सुरम्मा, संपिंडिअ दरिअ भमर-महुअरिपहकर परिलित-मत्तछप्पय–कुसुमासवलोल-महुरगुमगुमेंत–गुंजंतदेस-भागा, अब्भितर पुप्फफला, बाहिरपत्तछन्ना,

ये वृक्ष सदा कुमुमित-मुकुलित-पल्लवित-स्तवकित- गुल्मित-गुच्छित-यमलित-युगलित विनमित एवं प्रणमित रहते हैं, जिससे ये वृक्ष सुविभक्त प्रतिमंजरी रूप अवतसक (आभूषणों) को धारण किये रहते हैं, इन वृक्षों पर शुक-मयूर-मदनशालाका-मैना-कोयल-कुरवक–भिंगारक–कुण्डलक—चकोर–नन्दीमुख–कपिल–कपिंजन–कारण्डक-चक्रवाक-कलहंस-सारस आदि अनेक पक्षियों के समूह बैठे-बैठे दूर तक सुने जा सकें ऐसे उन्नत मधुरस्वरोपेत ध्वनि से चहचहाते रहते हैं, इन वृक्षों पर मधु का संचय करने वाले उन्मत्त हुए पिंडीभूत भ्रमरों और भ्रमरियों का समूह बैठा रहता है और मधुपान में लीन होने से मदोन्मत्त पुष्पपराग का पान करने में लंपट पट्पद-भ्रमरों की मधुर गुनगुनाहट से जिनके देशभाग गूँजते रहते हैं, जिनके पुष्प और फल उन्हीं के भीतर छिपे रहते हैं, और बाहर में पत्रों से आच्छादित रहते हैं ।

—पुप्फेहिं फलेहिं य उच्छन्न-पलिच्छन्ना, णीरोअया अकंटया, साउफला, णाणाविहगुच्छ-गुम्म-मडंवगसोहिया, विचित्तसुह-केउभूया, वावी-पुक्खरिणी-दीहिया-सुनिवेसियरम्मजालधरगा, पिंडिमनीहारिम-सुगंधि-सुहसुरभि मणहरं महया च गंधद्धणि मुअंता, सुहसेउकेउबहुला,[1]) अणेग सगड-रह-जाण-जुग्ग-सिविह-संदमाणिआ, पविमोअणा-जाव-पडिरूवा ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

ये वृक्ष सदैव उत्पन्न होने वाले पुष्पों और फलों से परिव्याप्त रहते हैं, ये वृक्ष निरोग—रोगरहित, अकंटक-काँटोंरहित हैं, इनके फल सुस्वाद—मिष्टस्वाद वाले हैं, अनेक प्रकार के गुच्छों, गुल्मों और लता आदि के मंडपों से सुशोभित हैं, इनके ऊपर अनेक प्रकार की चित्र-विचित्र, सुन्दर ध्वजायें फहराती हैं, अच्छी तरह से जिन्हें सींचने के लिये वाटिकाओं में, पुष्करिणियों में, दीर्घिकाओं में सुन्दर जालगृह बने हुए हैं । ये वृक्ष निरन्तर अन्य गंधों से भी विशिष्ट और मनोहर सुगंध को निरन्तर पिंडरूप से छोड़ते रहते हैं कि जिससे घ्राणेन्द्रिय तृप्त हो जाती है, इनके अलावा क्यारियाँ शुभ हैं और इनके ऊपर जो ध्वजायें लगी हैं वे भी अनेक रूप वाली हैं और जिनके नीचे अनेक शकट-गाडे रथ-यान युग्म-शिविका (पालखी) स्यन्दमानिका आदि वाहन ठहरते रहते हैं, स्वच्छ निर्मल —यावत्—प्रतिरूप है ।

---

१ जीवाभिगम का पाठ इस प्रकार है—"किण्हे किण्होभास जाव-अणेगसगड-रह-जाण-जुग्गपरिमोयणे पासातीए सण्हे लण्हे घट्ठे मट्ठे नीरए निप्पंके निम्मले निक्कंकडच्छाए सप्पभे समिरीए स उज्जोए पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

यहाँ "जाव" से सूचित पाठ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्ष० १, सूत्र ५ की टीका से उद्धृत किया है । टीकाकार ने यह वनखण्ड वर्णन औपपातिक सूत्र से लिया है । टीकाकार का कथन इस प्रकार है—"वनखण्ड वर्णकः सर्वोप्यत्र प्रथमोपाङ्गतो नेतव्यः । ऊपर जाव से आगे का पाठ जीवाभिगम का नहीं दिया है क्योंकि जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के पाठ से ही अभिप्राय की पूर्ति होती है ।

वणसंडस्स समतलो भूमिभागो—

२४. तस्स णं वणसंडस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहा नामए—आलिंगपुक्खरेइ वा, मुइंगपुक्खरेइ वा, सरतलेइ वा, करतलेइ वा, आयंसमंडलेइ वा, चंदमंडलेइ वा, सूरमंडलेइ वा, उरब्भचम्मेइ वा, उसभचम्मेइ वा, वराह-चम्मेइ वा, सीहचम्मेइ वा, वग्घचम्मेइ वा, विगचम्मेइ वा, दीवियचम्मेइ वा, अणेग संकुकीलए सहस्सवितते। आवड-पच्चावड-सेढी-पसेढी-सोत्थिय-सोवत्थिय-पूसमाण-वद्ध-माण-मच्छंडक-मकरंडक-जार मार फुल्लावलि-पउमपत्तसागर तरंग, वासंतिलय-पउमलय-भत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं समिरी-एहिं सउज्जोएहिं णाणाविह पंचवण्णेहिं तणेहि य मणिहि य उवसोहिए। तं जहा—किण्हेहिं-जाव-सुक्किलेहिं।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

वनखंड का समतल भूमि भाग—

२४. इस वनखण्ड का अन्तर्वर्ती भूमिभाग मुरज ,नामक वाद्य पर मंडे हुए चर्म जैसा समतल है, अथवा मृदंग नामक वाद्य पर मंढे हुए चर्म जैसा समतल है, अथवा सरोवर के ऊपर के तलभाग जैसा सम है, अथवा करतल (हथेली) के समान है अथवा दर्पण के समान है, अथवा चंद्रमंडल के समान है, अथवा सूर्यमंडल के समान है, अथवा अनेक तीक्ष्ण नुकीली हजारों कीलों को लगाकर फैलाये गये उरभ्र (घेटा) चर्म के समान है, अथवा वृषभचर्म के समान है, अथवा वराह (सुअर) के चमड़े के समान है, अथवा सिंह के चर्म के समान है, अथवा व्याघ्र चर्म के समान है, अथवा वृक (भेड़िया) के चर्म के समान है, अथवा दीपडा (चीता) के चर्म समान है, तथा आवर्त-प्रत्यावर्त, श्रेणी-प्रश्रेणी, स्वस्तिक सौवस्तिक, पुष्प, वर्धमानक (सकोरा), मत्स्याडक, मकरांडक, जार-मार आदि रचनाओं से युक्त एवं पुष्पावलि पद्मपत्र, सागर तरंग, वासंतीलता आदि के पृथक्-पृथक् चित्रों से शोभित सुन्दर कांति से कांतिमान किरणजाल सहित, उद्योत से युक्त, पंचवर्ण वाले तृणों और नाना प्रकार की मणियों से उपशोभित है, यथा कृष्णवर्ण—यावत्—शुक्लवर्ण है।

किण्हतण-मणीण इट्ठयरे किण्हवण्णे—

२५. प० तत्थ णं जे ते किण्हा तणायमणी य, तेसि णं भंते ! अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहा नामए—जीमूतेति वा, अंजणेति वा, खंजणंति वा, कज्जलेति वा, मसीइ वा, मसीगुलियाइ वा, गवलेइ वा, गवलगुलियाइ वा, भमरेति वा, भमरावलियाति वा, भमर पत्तगय-सारेति वा, जंबुफलेति वा, अद्दारिट्ठेति वा, परिपुट्ठएति वा, गएति वा, गयकलभेति वा, कण्हसप्पेइ वा, कण्ह-केसरेइ वा, आगासथिग्गलेति वा, कण्हासोएति वा, कण्हकणवीरेइ वा, कण्ह बंधुजीवएति वा— भवे एयारूवे सिया ?

कृष्णतृण-मणियों का इष्टतर कृष्णवर्ण—

२५. प्र० हे भगवन् ! उनमें जो कृष्णवर्णवाले तृण और मणियाँ हैं, उनका वर्णविन्यास क्या इस प्रकार का कहा गया है ? यथा—मेघों की कृष्ण घटाओं के समान, अथवा अंजन के समान अथवा खंजन के समान अथवा काजल के समान अथवा मसि (स्याही) के समान अथवा मसिगुटिका के समान अथवा गवल (भैंस का सींग) के समान, अथवा गवल गुटिका (भैंस के सींग का अंतर्वर्ती भाग) के समान अथवा भ्रमर के समान अथवा भ्रमर पंक्ति (समूह) के समान अथवा भ्रमर के पंखों के अन्दर के भाग के समान अथवा जम्बूफल (जामुन) के समान अथवा कोमल काक पक्षी के समान अथवा कोयल के समान अथवा गज (हाथी) के समान अथवा गज-कलभ (हाथी का बच्चा) के समान अथवा कृष्ण सर्प के समान अथवा कृष्ण केशर (बकुलवृक्ष) के समान अथवा आकाश थिग्गल (मेघरहित-शरदऋतु का आकाश खंड) के समान अथवा कृष्ण अशोक वृक्ष के समान अथवा कृष्ण कनेर के समान अथवा काले बन्धुजीवक के समान—तो क्या पूर्वोक्त जीमूत आदि के जैसा होता है ?

उ० गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं कण्हाणं तणाणं मणीण य इत्तो इट्ठतराए चेव कंततराए चेव, पियतराए चेव, मणुण्णतराए चेव, मणामतराए चेव, वण्णेणं पण्णत्ते।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

उ०—हे गौतम ! उनका इष्टतर बतलाने के लिये यह अर्थ समर्थ नहीं ? किन्तु वे तृण और मणि इनसे भी अधिक कृष्ण वर्ण वाले हैं तथा वे देखने में इष्टतर ही हैं, कान्ततर (अत्यन्त कमनीय) ही हैं, मनोज्ञतर ही हैं और मनामतर (मनोज्ञ से भी अधिक मनोहर) ही हैं,

नीलतण-मणीणं इट्ठयरे नीलवण्णे—

२६. प० तत्थ णं जे ते णीलगा तणा य मणी य तेसि णं भंते ! इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—से जहा नामए—भिंगेइ वा, भिंगपत्तेति वा, चासेति वा, चासपिच्छेति वा, सुएति वा, सुयपिच्छेति वा, णीलीति वा, णीलीभेए ति वा, णीली गुलियाति वा, सामाएति वा, उच्चंतएति वा, वणराईइ वा, हलहर-वसणेइ वा, मोरग्गीवाति वा, पारेवयगीवाति वा, अयसि-कुसुमेति वा, अंजणकेसिगा कुसुमेति वा, णीलुप्पलेति वा, णीलासोएति वा, णीलकणवीरे ति वा, णीलबंधुजीवए ति वा, भवेएया रूवे सिया ?

उ० गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं णीलगाणं तणाणं मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव-जाव-मणामतराए चेव वण्णेणं पण्णत्ते ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

नील तृण-मणियों का इष्टतर नीलवर्ण—

२६. प्र० हे भगवन् ! उनमें जो नीलवर्ण वाले तृण और मणि हैं उनका वर्णविन्यास क्या इस प्रकार का बतलाया है ? जैसे कि भृंग के समान अथवा भृंगपक्ष के समान चापपक्षी के समान अथवा अथवा चापपक्षी के पंख के समान अथवा शुक (तोता) पक्षी के समान अथवा शुक के पंख के समान अथवा नीली के समान अथवा नीली भेद के समान अथवा नीली गुटिका के समान अथवा श्यामक धान्य के समान अथवा उच्चंतग-दन्तराग के समान अथवा वनराजि के समान अथवा हलधर बलभद्र के वस्त्रों के समान अथवा मयूरग्रीवा के समान अथवा कपोत (कबूतर) की ग्रीवा के समान अथवा अलसी के पुष्प के समान अथवा अंजन केशिका के कुसुम के समान अथवा नील कमल के समान अथवा नील अशोक वृक्ष के समान अथवा नीले कनेर के समान अथवा नीले बन्धुजीवक के समान—तो क्या उनका रूप ऐसा होता है ?

उ०—हे गौतम ! ऐसा अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् उक्त पदार्थों से भी वे तृण और मणि अधिक नीले है, उन नीले तृणों और मणियों का नीलवर्ण इनसे भी अधिक इष्टतर है—यावत्—मणामतर वर्णवाला कहा है ।

लोहिततण-मणीणं इट्ठयरे लोहियवण्णे—

२७. प० तत्थ णं जे ते लोहितगा तणा य मणी य, तेसि णं भंते ! अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहा णामए—ससकरुहिरे ति वा, उरब्भ-रुहिरे ति वा, णर-रुहिरे ति वा, वराह-रुहिरे ति वा, महिस-रुहिरे ति वा, बालिंद गोवए ति वा, बालदिवाकरे ति वा, संझब्भ-रागेति वा, गुंजद्ध-रागे ति वा, जातिहिंगुलुएति वा, सिलप्पवाले ति वा, पवालंकुरे ति वा, लोहितक्ख मणीति वा, लक्खारसए ति वा, किमिरागेइ वा, रत्तकंबलेइ वा, चीणपिट्ठरासीइ वा, जासुयण-कुसुमेइ वा, किंसुअ-कुसुमेइ वा, पालियाइ-कुसुमेइ वा, रत्तुप्पलेति रत्तासोगेति वा, रत्तकणयारेति वा, रत्तबंधुजीवेइ वा भवे एयारूवे सिया ?

उ० गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं लोहियगाणं तणाण य. मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव-जाव-मणामतराए चेव वण्णेणं पण्णत्ते ।

—जीवा० प० ३. उ० १, सु० १२६

रक्त तृण-मणियों का इष्टतर रक्तवर्ण—

२७. प्र०—हे भगवन् ! वहाँ जो लोहित—लाल वर्णवाले तृण और मणि बतलाये हैं, उनका वर्णविन्यास क्या इस प्रकार का कहा गया है ? यथा—शशक—(खरगोश) के रक्त के समान अथवा उरभ्र (भेड) के खून के समान अथवा मनुष्य के रक्त के समान अथवा सूअर के रुधिर के समान, अथवा महिष (भैंसा) के रक्त समान, अथवा इन्द्रगोप कीट के समान अथवा प्रातःकालीन बालदिवाकर (सूर्य) के समान अथवा संध्याकालीन आकाश के रंग के समान अथवा गुंजा के आधे भाग के वर्ण समान अथवा हिंगलुक के समान, अथवा शिलाप्रवाल (मूँगा) के समान अथवा प्रवाल (कोंपल) के अंकुर के समान अथवा लोहिताक्षमणि के समान अथवा लाक्षा (लाख) रस के समान अथवा कृमिराग के समान अथवा रक्त कंबल के समान, अथवा चीनपिष्टराशि चीना नामक धान्य विशेष की पीठी-आटा के समान, अथवा जपा-पुष्प के समान, अथवा पलाश-पुष्प के समान, अथवा पारिजात-पुष्प के समान, अथवा रक्तोत्पल (लालकमल) के समान, अथवा रक्ताशोक के समान अथवा रक्त कनेर के समान अथवा रक्त बन्धुजीवक के समान—तो क्या उनका ऐसा ही रूप होता है ?

उ०—हे गौतम ! उनका वर्णन कहने में यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि उन लोहित रक्त वर्ण वाले तृणों और मणियों का इनसे भी अधिक इष्टतर—यावत्—मणामतर वर्ण बतलाया गया है ।

हालिद्दतण-मणीणं इट्ठयरे हालिद्दवण्णे—

२८. प० तत्थ णं जे ते हालिद्दगा तणा य मणी य तेसि णं भंते ! अयमेयारूवे वण्णा वासे पण्णत्ते, से जहा णामए—चंपए वा, चंपगच्छल्लीइ वा, चंपयभेएइ वा, [चंपगच्छेएइ वा] हालिद्दाइ वा, हालिद्दभेएइ वा, हालिद्दगुलियाइ वा, हरियालेइ वा, हरियालभेएइ वा, हरियालगुलियाइ वा, चिउरेति वा, चिउरंगरागेति वा, वरकणए ति वा, वरकणग-निघसेति वा, सुवण्णसिप्पिए ति वा, वर-पुरिसवसणे ति वा, सल्लई कुसुमे ति वा, चंपक-कुसुमेइ वा, कुहंडिया-कुसुमेइ वा, कोरंटक-कुसुमेइ वा, तडउडा-कुसुमेइ वा, घोसाडिया-कुसुमेइ वा, सुवण्णजूहिया-कुसुमेइ वा, सुहिरण्णिया-कुसुमेइ वा, बीअग-कुसुमेइ वा, पीया-सोए ति वा, पीय-कणवीरे ति वा, पीय-बंधुजीए ति वा, भवे एयारूवे सिया ?

उ० गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे । ते णं हालिद्दा तणा य मणी य एत्तोऽइट्ठतराए चेव-जाव-मणामतराए चेव वण्णेणं पण्णत्ते । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

पीत तृण-मणियों का इष्टतर पीतवर्ण—

२८. प्र०—हे भगवन् ! वहाँ जो हारिद्र वर्ण के तृण और मणि हैं क्या उनका वर्णविन्यास इस प्रकार का कहा गया है ? जैसे—सुवर्ण चम्पक के समान अथवा सुवर्ण चम्पक वृक्ष की छाल के समान अथवा चम्पक खण्ड के समान, अथवा (सुवर्ण चम्पक वृक्ष के समान) अथवा हरिद्रा (हल्दी) के समान, अथवा हरिद्राभेद (खण्ड-टुकड़ा) के समान, अथवा हरिद्रा की गुलिका (अन्दर का भाग या गोली) के समान अथवा हरताल (खनिज) के समान अथवा हरतालभेद (खण्ड) के समान अथवा हरताल की गोली के समान अथवा चिकुर (गंध द्रव्य विशेष) के समान अथवा चिकुर के रंग से रंगे हुए वस्त्र के समान, अथवा श्रेष्ठ स्वर्ण (सोना) धातु के समान, अथवा कसौटी पर खींची गई श्रेष्ठ स्वर्णरेखा के समान, अथवा सुवर्णशिल्पिक के समान अथवा वर पुरुष (कृष्ण वासुदेव) के वस्त्र के समान अथवा सल्लकी पुष्प के समान अथवा चम्पक कुसुम के समान अथवा कुष्माण्ड पुष्प के समान अथवा कोरंटक पुष्प के समान, अथवा तड़वडा के पुष्प के समान, अथवा घोषातिकी (चिरायता) के फूल के समान, अथवा सुवर्ण जुही के पुष्प के समान, अथवा सुहिरण्यिका के पुष्प के समान, बीजक (बीजा नामक वृक्ष) पुष्प के समान, अथवा पीताशोक वृक्ष के समान अथवा पीतकनेर के समान, अथवा पीत बन्धुजीवक के समान—तो क्या उनका ऐसा रूप (वर्ण) होता है ?

उ०—हे गौतम ! इनका वर्णन करने में यह अर्थ समर्थ नहीं है, वे हारिद्र वर्ण के तृण और मणि इनसे भी इष्टतर—यावत्—मणामतर वर्ण वाले कहे गये हैं।

सुक्किल्लतण-मणीणं इट्ठयरे सुक्किल्ले वण्णे

२९. प० तत्थ णं जे ते सुक्किल्लगा तणा य मणी य तेसि णं भंते ! अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते से जहा णामए—अंके ति वा, संखेति वा, चंदेति वा, कुंदे ति वा, कुसुमे ति वा, दयरए ति वा, दहिघणेइ वा, खीरेइ वा, खीरपूरेइ वा, हंसावलीति वा, कोंचावलीति वा, हारावलीति वा, बलायावलीति वा, चंदावलीति वा, सारइयबलाहएति वा, धंतधोयरुप्पपट्टेइ वा, सालिपिट्ठरासीति वा—

शुक्ल तृण-मणियों का इष्टतर शुक्ल वर्ण—

२९. प्र० हे भगवन् ! इन तृणों और मणियों के बीच जो शुक्ल वर्ण के तृण और मणि हैं, इनका वर्ण विन्यास क्या इस प्रकार का कहा गया है ? यथा—अंकरत्न के समान है, अथवा शंख के समान है, अथवा चन्द्रमा के समान है, अथवा कुन्दपुष्प के समान है, अथवा कुमुद के समान है, अथवा उदकरज (ओस) के समान है, अथवा दधिघन (जमा हुआ दही) के समान है, अथवा क्षीर (दूध) के समान है, अथवा क्षीर पूर (दूध का फेन) के समान है, अथवा हंस पंक्ति के समान है अथवा क्रौंच पक्षियों की पंक्ति के समान है अथवा (मुक्ता) हार की पंक्ति के समान है, अथवा बलाकावली (श्वेत [illegible]) के समान है, अथवा चन्द्रावली के समान है, अथवा शरदऋतु के मेघ पंक्ति के समान है, अथवा अग्नि में [illegible] [illegible] के समान है, अथवा शालि [illegible] के समान है।

—कुन्द-पुप्फरासीति वा, कुमुयरासीति वा, सुक्कछिवाडीति वा, पेहुणमिंजाति वा, बिसेति वा, मिणालिया ति वा, गयदंतेति वा, लवंगदलेति वा, पोंडरीयदलेति वा, सिंदुवारमल्लदामेइ वा, सेतासोए ति वा, सेय-कणवीरेति वा, सेयबंधुजीएइ वा, भवे एयारूवे सिया ?

—अथवा कुन्द-पुष्प की राशि के समान है, अथवा कुसुमराशि के समान है, अथवा सूखी हुई सेम की फली के समान है, अथवा मयूर पिच्छी के मध्यभाग के समान है, अथवा मृणाल (कमलनाल) के समान है, अथवा कमलनाल के तंतुओं के समान है, अथवा गजरत्न के समान है, लोंग के वृक्ष के पत्ते के समान है अथवा श्वेत कमल की पंखुरी के समान है, अथवा सिन्दुवार पुष्पों की माला के समान है, अथवा श्वेत अशोकवृक्ष के समान है, अथवा श्वेत कनेर के समान है, अथवा श्वेतबन्धुजीवक के समान है—तो क्या ऐसा श्वेत रूप उन तृणों और मणियों का होता है ?

उ० गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे । तेसि णं सुक्किल्लाणं तणाणं मणीण य एत्तो इट्ठत्तराए चेव-जाव-मणामतराए चेव वण्णेणं पण्णत्ते । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

उ०—हे गौतम ! यह कथन इनका रूप वर्णन करने में समर्थ नहीं है, वे शुक्ल तृण और मणि इनसे भी इष्टतर—यावत् मणामतर वर्ण वाले कहे गये हैं ।

तण-मणीणं इट्ठयरे गंधे—

तृण-मणियों का इष्टतर गंध—

३०. प० तत्थ णं जे ते तणाय मणीय तेसि णं भंते ! केरिसए गंधे-पण्णत्ते ? से जहा णामए—कोट्ठ-पुडाण वा, पत्त-पुडाण वा, चोय-पुडाण वा, तगर-पुडाण वा, एला-पुडाण वा, किरिमेरि-पुडाण वा, चंदण-पुडाण वा, कुंकुम-पुडाण वा, उसीर-पुडाण वा, चंपग-पुडाण वा, मरुयग-पुडाण वा, दमणग-पुडाण वा, जाति-पुडाण वा, जूहिया-पुडाण वा, मल्लिय-पुडाण वा, णोमालिय-पुडाण वा, वासंतिय-पुडाण वा, केअइ-पुडाण वा, कप्पूर-पुडाण वा, अणुवायंसि उब्भिज्जमाणाण वा, णिब्भिज्जमाणाण वा, कोट्टेज्जमाणाण वा, रुविज्जमाणाण वा, उक्किरिज्जमाणाण वा, विकिरिज्जमाणाण वा, परिभुज्जमाणाण वा, भंडाओ भंडं साहरिज्जमाणाणं ओराला मणुण्णा, घाण-मणणिव्वुतिकरा सव्वओ समंता गंधा अभिणिस्सवंति—भवे एयारूवे सिया ?

३०. प्र० हे भगवन् ! वहाँ जो तृण और मणि हैं उनका कैसा गंध कहा गया है ? वह इन नाम वाले पदार्थों की गंध जैसा है—कोष्टगंध द्रव्यों के पुटों (पुड़ियाँ) जैसा है, अथवा गंध पत्रपुटों जैसा है, अथवा तगर पत्रपुटों जैसा है, अथवा एला (इलायची) पुटों जैसा है, अथवा अमलतास के पुटों जैसा है, अथवा चन्दन पुटों जैसा है, अथवा कुंकुम पुटों जैसा है, अथवा इसीर (खश) पुटों जैसा है, अथवा चंपक पुटों जैसा है, अथवा मरुवा पुटों जैसा है, अथवा जूही पुटों जैसा है, अथवा मल्लिका (मोगरा) पुटों जैसा है, अथवा नवमल्लिका पुटों जैसा है, अथवा गंधवासन्ती लता के पुष्प पुटों के समान है, अथवा केतकी (केवडा) पुटों जैसा है, अथवा कपूर पुटों जैसा है, और इन सब पुटों की गंध अनुकूल वायु के चलने से चारों ओर फैल रही हो, ये सब पुट तोड़े जा रहे हों, कूटे जा रहे हों, टुकड़े किये जा रहे हों, इधर-उधर उड़ाये जा रहे हों, बिखेरे जा रहे हों, उपभोक्ताओं द्वारा उपभोग किये जा रहे हों, एक बर्तन से दूसरे बर्तन में उडेले जा रहे हों, तब इनकी गंध बहुत अधिक व्यापक रूप में फैलती है, और मनोनुकूल होती है, घ्राण और मन को शांतिदायक होती है, और इस प्रकार से वह गंध चारों दिशाओं में सब ओर अच्छी तरह फैल जाती है—तो क्या उनकी गंध इस प्रकार की होती है ?

उ० गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । तेसि णं तणाण य मणीण य एत्तो उ इट्ठतराए चेव-जाव-मणामतराए चेव गंधे पण्णत्ते । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

उ०—हे गौतम ! यह अर्थ उस गंध का वर्णन करने में समर्थ नहीं है क्योंकि इन तृणों और मणियों की गंध इनसे भी इष्टतर—यावत्—मणामतर कही गई है ।

तण-मणीण इट्ठयरे फासे—

तृण-मणियों का इष्टतर स्पर्श—

३१. प० तत्थ णं जे ते तणा य मणी य तेसि णं भंते ! केरिसए फासे पण्णत्ते ? से जहा णामए—आईणे ति वा, रूए

३१. प्र०—हे भगवन् ! वहाँ जो तृण और मणि हैं, उनका स्पर्श कैसा कहा गया है ? क्या उनका स्पर्श इस प्रकार का कहा है—

ति वा, वूरे ति वा, णवणीतेति वा, हंसगब्भतूलीति वा, सिरीसकुसुमणिचतेति वा, बालकुमुदपत्तरासीतिवा,— भवे एयारूवे सिया ?

आजिनक (चर्ममय वस्त्र) के जैसा होता है, अथवा रुई के जैसा होता है, अथवा बूर नामक वनस्पति जैसा होता है, अथवा नवनीत जैसा होता है, अथवा हंसगर्भतूलिका जैसा होता है, अथवा शिरीष पुष्पसमूह जैसा होता है, अथवा बालकुमुद पत्र के राशि (समूह) जैसा होता है—तो क्या उन तृणों और मणियों का स्पर्श इस प्रकार का होता है ?

उ० गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । तेसि णं तणाण य मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव-जाव-मणामतराए चेव फासे पण्णत्ते । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

उ०—हे गौतम ! यह अर्थ उनके स्पर्श का वर्णन करने में समर्थ नहीं है, उन तृणों और मणियों का स्पर्श तो उनसे भी इष्टतर—यावत्—मणामतर कहा है ।

तण-मणीणं इट्ठयरे सद्दे—

तृण-मणियों का इष्टतर शब्द—

३२. प० तत्थ णं जे ते तणा य मणी य तेसि णं भंते ! पुव्वावर-दाहिण उत्तरागतेहिं वाएहिं मंदायं मंदायं एइयाणं, वेइयाणं, कंपियाणं, खोभियाणं, चालियाणं, फंदियाणं, घट्टियाणं, उदीरियाणं केरिसए सद्दे पण्णत्ते ?

३२. हे भगवन् ! वहाँ जो तृण और मणि हैं, वे जब पूर्व-पश्चिम-दक्षिण और उत्तर दिशाओं से बहने वाली वायु से मंद-मंद रूप से कंपित किये जाते हैं, विशेष रूप से कंपित किये जाते हैं, बारंबार कंपित किये जाते हैं, क्षुभित किये जाते हैं, चलाये जाते हैं, स्पंदित किये जाते हैं, परस्पर संघर्षित किये जाते हैं, उदीरित किये जाते हैं, तब इनकी कैसी शब्द ध्वनि कही गई है ?

से जहा णामए—सिवियाए वा, संदमाणियाए वा, रहवरस्स वा सछत्तस्स सज्झयस्स सघंटयस्स सतोरणवरस्स, सणंदिघोसस्स सखिखिणिहेमजालपेरंतपरिखित्तस्स हेमवयचित्त-विचित्त-तिणिस-कणग-निज्जुत्त-दारुयागस्स सुपिणिद्धारकमंडलधुरागस्स कालायस-सुकय-णेमिजंतकम्मस्स-

क्या वह इन नाम वाले पदार्थों से होने वाली शब्द ध्वनि जैसी होती है । यथा—शिबिका (पालकी) से होने वाली ध्वनि जैसी अथवा स्यन्दमानिका (एक प्रकार की पालकी विशेष) से होने वाली ध्वनि जैसी अथवा जो छत्र से युक्त हो, ध्वजा से युक्त हो, दोनों बाजुओं में लटकते हुए घंटों से युक्त हो, उत्तम तोरण से युक्त हो, नन्दिघोष आदि तूर्यों (मुँह से बजाये जाने वाले वाद्य विशेष) के निनाद से युक्त हो, क्षुद्र घंटिकाओं से युक्त सुवर्ण निर्मित मालाओं द्वारा जो सब ओर से व्याप्त हो, चित्रविचित्र मनोहारी चित्रों से युक्त एवं सुवर्ण खचित ऐसे हिमवान् पर्वत के तिनिशकाष्ठ से जो निर्मित हो, जिसके पहियों में आरे बहुत ही अच्छी तरह से लगे हों, और जिसकी धुरा मजबूत हो, जिसके चक्र (पहिये) जमीन की रगड़ से घिस न जावें और चक्र के पटिया अलग-अलग न हो जावें, इस अभिप्राय से पहियों पर लोहे की हाल चढ़ाई गई है ।—

—आइण्णवरतुरगसुसंपउत्तस्स कुसलणर-छेय-सारहि-सुसंपग्गहितस्स सरसय-बत्तीस-तोरण-परिमंडितस्स सकंकडवडिंसगस्स, सचावसरपहरणावरण-भरियजोहजुद्धस्स रायंगणंसि वा, अंतेउरंसि वा, रम्मंसि वा, मणिकोट्टिमतलंसि अभिक्खणं अभिक्खणं अभिघट्टिज्जमाणस्स वा णियट्टिज्जमाणस्स वा, जे उराला मणुण्णा कण्ण-मणणिव्वुतिकरा सव्वओ समंता सद्दा अभिणिस्सवंति—भवे एयारूवे सिया ?

—सुसम्बद्ध, आकीर्ण श्रेष्ठ घोड़े जिसमें जुते हुए हैं, अश्व संचालन में कुशल और दक्ष सारथि से जो युक्त हो, जिसमें सौ-सौ बाण हों ऐसे बत्तीस तूणीरों (भाथों) से युक्त हो, जिसका शिखर भाग कवच (बख्तर) से आच्छादित हो, धनुष सहित बाणों और कुन्त—भाले आदि प्रहरणों एवं कवच आदि आयुधों से जो परिपूर्ण हो, योद्धाओं से युद्ध के निमित्त जो सजाया गया हो और जो राजप्रांगण या अन्तःपुर या मणियों से खचित फर्श से बार-बार [illegible] से आघात-प्रत्याघात हो [illegible] उदार मनोज्ञ [illegible] कान और मन को परितृप्तिकारक चारों ओर से [illegible] ध्वनि जैसी है [illegible] तृण और [illegible]

उ० गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

उ०—हे गौतम ! उस ध्वनि का वर्णन करने में यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

३३. प० से जहा णामए—वेयालियाए वीणाए उत्तरमंदा मुच्छिताए अंके सुपतिट्ठियाए कुसलनर नारि संपग्गहिताए चंदणसारकाण पडिवट्टिताए पदोसपच्चूस कालसमयंसि मंदं मंदं एइयाए वेइयाए खोभियाए उदीरियाए ओराला मणुण्णा कण्णमणणिव्वुतिकरा सव्वओ समंता सद्दा अभिणिस्सवंति भवे एयारूवे सिया ?

३३. प्र०—(अथवा हे भगवन् ! क्या उनकी ध्वनि इस प्रकार की होती है ? जिस प्रकार उत्तर-मंदा मूर्च्छना से युक्त, अंक (गोद) में अच्छी तरह से रखी गई, वीणावादन में कुशल नर अथवा नारी द्वारा संस्पर्शित—बजाई जा रही, श्रेष्ठ चन्दन के कोण (वीणा बजाने का दंड-लकड़ी) से संघर्षित (ऐसी वेतालिकी वीणा को जब) प्रातःकाल अथवा सायंकाल मंद-मंद स्वर से बजाया जाता है, उच्च स्वर में बजाया जाता है, संक्षुभित किया जाता है, उदिरित-प्रेरित किया जाता है, तब उससे जो उदार, मनोज्ञ, कर्ण और मन को मोहित करने वाला घोष सब ओर से निकलता है—तो क्या ऐसी शब्द ध्वनि उन तृणों और मणियों से निकलती है ?

उ० गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे ।

उ०—हे गौतम ! यह अर्थ भी उसका वर्णन करने में समर्थ नहीं है ।

३४. प० से जहा णामए—किण्णराण वा, किंपुरिसाण वा, महोरगाण वा, गंधव्वाण वा, भद्दसालवणगयाण वा, नंदणवणगयाण वा, सोमणसवणगयाण वा, पंडगवणगयाण वा, हिमवंत-मलय-मंदर-गिरिगुह समण्णागयाण वा, एगतो सहिताणं संमुहागयाणं, समुविट्ठाणं; संनिविट्ठाणं, पमुदियपक्कीलियाणं, गीयरतिगंधव्व-हरिसियमणाणं गेज्जं पज्जं कत्थं गेयं पयविद्धं पायविद्धं उक्खित्तयं पवत्तयं मंदायं रोचियावसाणं सत्तसर समण्णागयं अट्ठरससुसंपउत्तं छद्दोसविप्पमुक्कं एकारसगुणालंकारं अट्ठगुणोववेयं गुंजंतवंस कुहरोवगूढं रत्तं तिट्ठाण-करणसुद्धं मधुरं समं सुललियं सकुहर गुंजंतवंसततीसुसंपउत्तं, तालसुसंपउत्तं तालसमं [रयसुसंपउत्तं गहसुसंपउत्तं] मणोहरं मउय-रिभिय-पयसंचारं सुरभिं सुणतिं वरचारुरूवं दिव्वं नट्टं सज्जं गेयं पगीयाणं—भवे एयारूवे सिया ?

३४. प्र०—(अथवा हे भगवन ! उनका शब्दघोष क्या इनके जैसा है ?) यथा—जिस प्रकार किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गंधर्व भद्रसालवन में अथवा नन्दनवन में अथवा सोमनसवन में अथवा पण्डक वन में अथवा हिमवन पर्वत की मलय पर्वत की, गुफाओं में बैठे हों, एक स्थान पर एकत्रित हुए हों, एक-दूसरे के समक्ष बैठे हों, समुचित रूप से बैठे हों, सम संस्थान से बैठे हों, प्रमोद-भाव सहित होकर आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करने में मग्न हो रहे हों, गीत में जिनकी रति हो, गंधर्व नाट्य आदि करने से जिनका मन हर्षित हो रहा हो, (गद्य, पद्य, कत्थ—कथात्मक गेय, पदविद्ध, पादविद्ध, उत्क्षिप्त, प्रवर्तक, मंद, रोचित, अवसान वाले, सप्त स्वरोपेत, शृङ्गार आदि) आठ रसों से युक्त, छह दोषों से विमुक्त, ग्यारह गुणों से अलंकृत, आठ गुणों से उपेत, गुंजायमान बांसुरी की मधुर ध्वनि से युक्त, राग-रागिनी से अनुरक्त, त्रिस्थानकरण (वक्षस्थल, कंठ और मस्तिष्क) से शुद्ध, मधुर, समताल और स्वरवाले, सुललित, सस्वर, गूँजती हुई बांसुरी और तंत्री की ध्वनि से बद्ध, समताल के अनुरूप, हस्तताल से सुसंप्रयुक्त (रवमधुर गुंज से संयुक्त, गह—तल्लीनता से व्याप्त) मनोहर, मृदु-निर्मित स्वरानुसार पद संचार करने वाले (पैरों में थिरकन पैदा करने वाले), सुरभि (श्रोताओं को आकर्षित करने वाले), सुष्ठु प्रकार से अंग प्रत्यंगों को नत करने वाले, श्रेष्ठ सुन्दर रूप वाले, दिव्य नाट्य, षड्ज (स्वर विशेष से युक्त) गीत को गाने वालों के स्वरों जैसा होता है ?

उ० हंता, गोयमा ! एवं भूए सिया ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

हे गौतम ! हाँ, उनके शब्द स्वर इसी प्रकार के होते हैं ।

वणसंडे पडिरूवाओ वावीआईओ—

३५. तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं वहवे खुड्डा खुड्डियाओ, वावीओ, पुक्खरिणीओ, गुंजालियाओ, दीहियाओ, सराओ, सरपंतियाओ, सरसरपंतियाओ, बिलपंतियाओ, अच्छाओ सण्हाओ रययामयकूलाओ समतीराओ वयरामयपासाणाओ तवणिज्जमयतलाओ वेरुलिय-मणि-फालिय-पडलपच्चोयडाओ णवणीयतलाओ सुवण्णसुज्झ-(ब्भ) रययमणिवालुयाओ सुहोयारा सु उत्तराओ णाणामणि-तित्थ-सुबद्धाओ चारु (चउ) क्कोणाओ, समतीराओ आणुपुव्व-सुजाय-वप्प-गंभीर-सीयजलाओ संछण्ण पत्त-भिस-मुणालाओ, बहुउप्पल-कुमुय-णलिण-सुभग-सोगंधित—पोंडरीय-सयपत्त-सहस्सपत्त-फुल्लकेसरोवइयाओ, छप्पय-परिभुज्जमाणकमलाओ, अच्छ विमल-सलिल पुण्णाओ,

परिहत्थ भमंत-मच्छ-कच्छभ-अणेग-सउणमिहुणपरिचरित्ताओ, पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेदिया परिक्खित्ताओ, पत्तेयं पत्तेयं वण-संडपरिक्खित्ताओ अप्पेगतियाओ आसवोदगाओ, अप्पेगतियाओ वारुणोदगाओ, अप्पेगतियाओ खोदोदगाओ, अप्पेगतियाओ खीरोदगाओ, अप्पेगतियाओ घओदगाओ, अप्पेगतियाओ अमयरससमरसोदगाओ, अप्पेगइयाओ पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ताओ पासाइयाओ-जाव-पडिरूवाओ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

वनखण्ड में मनोहर बावड़ियाँ आदि—

३५. उस वनखण्ड में जगह-जगह पर अनेक छोटी-छोटी वापिकायें, पुष्करिणियाँ, गुंजालिकायें (टेढ़े-मेढे आकार-वक्र आकार वाली वापिकायें) दीर्घिकायें (झरने वाली वापिकायें) सरोवर, सरः पंक्तियाँ, सर-सर पंक्तियाँ, कूप पंक्तियाँ हैं। जो स्वच्छ, स्फटिक की तरह चिकने प्रदेश वाली है, रत्नमय तटों वाली है, समान तीर-किनारों वाली है, वज्ररत्नमय पाषाण-पत्थरों वाली है, इनका तल भाग तपनीय सुवर्ण का वना हुआ है। तट के समीप-वर्ती अत्युन्नत प्रदेश वैडूर्यमणि और स्फटिकमणि से बने हुए हैं। नवनीत के समान इनके सुकोमल तल है। इनमें जो बालुका है, वह सुवर्ण शुद्ध रजत-चाँदी और मणियों से युक्त और उनके समान कांति वाली है। जो सुखपूर्वक प्रवेश करने और निर्गमन—बाहर निकलने योग्य है, जिनके घाट नाना प्रकार की मणियों से बने हुए हैं, इनके (चारों) कोने सुन्दर-मनोज्ञ हैं। तट-सम हैं, इनका वप्र-जलस्थान क्रमशः नीचे गहरा होता गया है, और अगाध एवं शीतल है, जिनका जल पत्र भिस, मृणाल से आच्छादित है। इनमें प्रफुल्लित केशर परागयुक्त अनेक उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुण्डरिक, शतपत्र, सहस्रपत्र, जातीय कमल व्याप्त है। भ्रमर समूह जिनके कमलों और कुमुदों का रसास्वादन कर रहे हैं, जो स्वच्छ विमलजल से परिपूर्ण हैं,

जिनमें बहुत बड़ी संख्या में मच्छ और कच्छप इधर से उधर घूमते रहते हैं। तथा जो अनेक प्रकार के शकुनमिथुन पक्षियों के जोड़ों के गमनागमन से व्याप्त है। प्रत्येक जलाशय पद्मवर-वेदिका से व्याप्त है। प्रत्येक वनखण्ड से घिरा हुआ है। इनमें से किन्हीं वापिकाओं आदि का जल आसव जैसा मधुर स्वाद वाला है। कितने का जल इक्षुरस के सदृश मधुर स्वाद वाला है, कितनेक का जल क्षीरसमुद्र के जल जैसा स्वाद वाला है, कितनेक जलाशयों का जल घृत के जैसे स्वाद वाला है, कोई-कोई जलाशय ऐसे हैं जिनका जल अमृतरस के सदृश स्वाद वाला है, कितने ही जलाशय प्राकृतिक उदकरस से युक्त है। और ये सभी जलाशय प्रासादिक—यावत्—प्रतिरूप है।

तिसोवाणपडिरूवाणं वण्णावासे—

३६. तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं तासि णं खुड्डियाणं वावीणं-जाव-बिलपंतीयाणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसि चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, तेसि णं तिसोवाण पडिरूवाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते तं जहा, वइरामया नेमा, रिट्ठामया पतिट्ठाणा, वेरुलियामया खंभा, सुवण्ण-रुप्पामया फलगा,

त्रिसोपान प्रतिरूपकों का वर्णन—

३६. उस वनखण्ड में जगह-जगह पर स्थित जो अनेक छोटी-छोटी वापिकायें—यावत्—कूपपंक्तियाँ है वे प्रत्येक चारों दिशाओं में चार त्रिसोपान-प्रतिरूपक कही गयी है—विशिष्ट तीन-तीन सीढ़ियों से युक्त है, उन त्रिसोपान प्रतिरूपकों का वर्णविन्यास इस प्रकार का कहा गया है। यथा—इनका मूलभाग-नींव वज्ररत्नों से निर्मित है। मूलपाद रिष्टरत्नों से वने हुए हैं, एवं ये वैडूर्य रत्न से वने हैं। फलक पट्टियाँ, (तख्ता) स्वर्ण और चाँदी के वने हैं। इन फलकों की संधियाँ वज्ररत्न की है। जिनमें लोहिताक्ष-

वइरामया संधी, लोहितक्खमईओ सूईओ, णाणा मणिमया अवलंबणा, अवलंबण वाहाओ ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १५७

रत्न की सूचियाँ-कीलियाँ लगी हुई है। आजू-बाजू के अवलंबन दंड (रेलिंग) और अवलंबनबाहा नाना प्रकार की मणियों की बनी हुई है।

तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ तोरणा—

३७. तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरतो पत्तेयं पत्तेयं तोरणा पण्णत्ता, तेणं तोरणा णाणा मणिमयखंभेसु उवणिविट्ठ सण्णिविट्ठा, विविहमुत्तंत रोवइता, विविहताराख्वोवचिता, ईहामिय–उसम-तुरग-णर-मगर–विहग-वालग-किण्णर-रुरू-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्ता खंभुग्गय–वइरवेदिया परिगताभिरामा, विज्जाहर-जमल-जुयल-जंतजुत्ताविव, अच्चि सहस्समालणीया, भिसमाणा, भिब्भिसमाणा, चक्खुल्लोयणलेसा, सुहफासा, सस्सिरीयरूवा, पासाइया-जाव-पडिरूवा । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

त्रिसोपान प्रतिरूपकों के आगे तोरण—

३७. उन प्रत्येक त्रिसोपान प्रतिरूपकों के आगे तोरण कहे गये है। ये तोरण अनेक प्रकार की मणियों से बने हुए खंभों पर पास में ही स्थित है और यथास्थान लगे हुए हैं। इनमें अनेक प्रकार की आकृतियों में गूँथे गये मुक्तामणि लगे हुए हैं। विविध प्रकार के तारारूपों से खचित है। इनमें ईहामृग, वृषभ, घोड़ा, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरू, सरभ-अष्टापद, चमर, कुंजर-हाथी, वनलता, पद्मलता के चित्र बने हुए हैं। स्तम्भों पर बनी हुई वज्रमयी वेदिकाओं के कारण ये तोरण बहुत ही सुन्दर लगते हैं। समश्रेणी में बने हुए विद्याधर युगलों के चित्र-यंत्रचालित जैसे प्रतीत होते हैं। सहस्ररश्मि सूर्य की प्रभा जैसे प्रभा समुदाय से युक्त है। चमकदार दीप्तमान, अत्यन्त दैदीप्यमान, दर्शनीय, नेत्राकर्षक, सुखकर, सुखद स्पर्श वाले, सश्रीकरूप वाले, प्रासादीय, आल्हादजनक—**यावत्**—प्रतिरूप है।

तोरणाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा—

३८. तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता । तं जहा—

(१) सोत्थिय, (२) सिरिवच्छ, (३) णंदियावत्त, (४) वद्धमाण, (५) भद्दासण, (६) कलस, (७) मच्छ, (८) दप्पणा, सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

तोरणों के ऊपर आठ-आठ मंगल—

३८. उन तोरणों के ऊपर अनेक आठ-आठ मंगल द्रव्य कहे गये हैं। **उनके नाम यह हैं—**

(१) स्वस्तिक, (२) श्रीवत्स, (३) नन्दिकावर्त, (४) वर्द्धमान, (५) भद्रासन, (६) कलश, (७) मत्स्य, और (८) दर्पण, ये सभी सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ—**यावत्**—प्रतिरूप हैं।

तोरणाणं उप्पिं चामरज्झया—

३९. तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे किण्हचामरज्झया नीलचामरज्झया लोहियचामरज्झया हारिद्दचामरज्झया सुक्किल्लचामरज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपट्टा वइरदंडा जलयामलगंधीया सुरूवा पासाइया-जाव-पडिरूवा ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

तोरणों के ऊपर चामरयुक्त ध्वजायें—

३९. उन तोरणों के ऊर्ध्वभाग में कृष्णकांति वाले चामरों से युक्त ध्वजायें हैं। नीलवर्ण वाले चामरों से युक्त ध्वजायें हैं। लोहित–लाख वर्णीय चामरों से युक्त ध्वजायें हैं। हारिद्र वर्ण वाले चामरों से युक्त ध्वजायें हैं, श्वेत वर्ण के चामरों से युक्त ध्वजायें हैं। ये ध्वजायें स्वच्छ स्निग्ध हैं। इनके किनारे सोने-चाँदी के बने हैं। और दंड वज्ररत्न से बना हुआ है। इनका गंध विमल जलज-कमल के गंध जैसा है, सुरूप प्रासादीय—**यावत्**—प्रतिरूप है।

तोरणाणं उप्पिं छत्ताइपयत्थाइं—

४०. तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्ताइछत्ता, पडागाइपडागा, घंटाजुयला, चामरजुयला, उप्पलहत्थया-जाव-सय-सहस्सपत्त-हत्थगा, सव्वरयणामया, अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

तोरणों के ऊपर : छत्रादि पदार्थ—

४०. उन तोरणों के ऊपर अनेक छत्रातिछात्र (एक छत्र के ऊपर दूसरा छत्र) पताकातिपताकायें, घंटायुगल, चामरयुगल, उत्पल हस्तक-कमलों के गुच्छे (गुलदस्ते)—**यावत्**—शत-सहस्र-पत्र हस्तक है। जो सभी सर्व रत्नमय, स्वच्छ—**यावत्**—प्रतिरूप है।

वावीआईणं देसेसु उप्पायपव्वयाइं—

४१. तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं तासि णं खुड्डियाणं बावीणं-जाव-बिलपंतीयाणं बहवे उप्पाय-पव्वया, णियइ-पव्वया, जगति-पव्वया, दारु-पव्वयगा, दग-मंडलगा, दग-मंचका, दग-मालगा, दग-पासायगा, ऊसडा, खुल्ला, खड-हडगा, अंदोलगा, पक्खंदोलगा, सव्वरयणामया -जाव-पडिरूवगा।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

बावड़ियों के समीप उत्पात पर्वतादि—

४१. उस वनखण्ड के उन-उन प्रदेशों में, प्रदेशों के एक देश में जो छोटी-छोटी वापिकायें—यावत्—कूपपंक्तियाँ हैं, उनके प्रदेशों में, प्रदेशों के एक देश में अनेक उत्पात पर्वत, नियति पर्वत, जगति पर्वत, दारु पर्वत, दकमंडप (स्फटिकमणि से बने हुए मंडप) दकमंचक, दकमलिका (स्फटिकमणि से निर्मित छत का ऊपरी भाग, तला, मंजिल), दकप्रासाद है। उनमें से कितने ही ऊँचे हैं, कितने ही छोटे हैं कितने ही खडहडगा (चौड़ाई में कम और लम्बाई में अधिक विस्तार वाले) कितने ही अन्दोलक (हिंडोला) रूप है। कितने ही पक्ष्यन्दोलक झूला रूप है। तथा ये सभी सर्वात्मना रत्नमय, स्फटिक के समान स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

उप्पायपव्वयाइसु हंसासणाई—

४२. तेसु णं उप्पाय-पव्वतेसु-जाव-पक्खंदोलएसु बहवे हंसासणाइं कोंचासणाइं गरुलासणाइं उण्णयासणाइं पणयासणाइं दीहासणाइं भद्दासणाइं पक्खासणाइं मगरासणाइं उसभासणाइं सीहासणाइं पउमासणाइं दिसा सोवत्थियासणाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं-जाव-पडिरूवाइं।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

उत्पात पर्वतों पर हंसासन आदि—

४२. उन उत्पाद पर्वतों—यावत्—पक्ष्यन्दोलकों में अनेक हंसासन हैं। क्रोंचासन है, गरुडासन है, उन्नतासन है, प्रणतासन है, दीर्घासन है, सिंहासन है, पद्मासन है, दिक् सौवस्तिकासन है। ये सभी आसन सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

वणसंडदेसेसु आलिघराई—

४३. तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे आलिघरा, मालिघरा, कयलिघरा, लयाघरा, अच्छणघरा, पेच्छणघरा, मज्जण-घरगा, पसाहण-घरगा, गब्भ-घरगा, मोहण-घरगा, साल-घरगा, जाल-घरगा, कुसुम-घरगा, चित्त-घरगा, गंधव्व-घरगा, आयंस-घरगा, सव्वरयणामया अच्छा -जाव-पडिरूवा।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

वनखण्ड के अनेक भागों में आलिगृहादि—

४३. उस वनखण्ड के स्थान-स्थान पर और उनके भी एक-एक देश में बहुत से आलिगृह (आलिनामक वनस्पतियों से बने घर), मालिगृह, कदलीगृह, लतागृह, अच्छणगृह, (विश्रामगृह), प्रेक्षणगृह, मज्जनगृह—स्नानगृह, प्रसाधन-शृंगारगृह, गर्भगृह, (तलघर-गुंभारिया), मोहनगृह-केलिगृह, शालागृह, जालगृह, (जाली-झरोखायुक्त घर) पुष्पगृह (पुष्पों के समूह से युक्त घर) चित्रगृह (चित्रों की प्रधानता वाले घर—चित्रशाला), गंधर्वगृह (नाट्य, गीत, नृत्य किये जाने वाले घर), दर्पणमय गृह है, ये सभी गृह सर्वात्मा रत्नों से निर्मित स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

आलिघराईसु हंसासणाई—

४४. तेसु णं आलिघरएसु-जाव-आयंसघरएसु बहुइं हंसासणाइं -जाव-दिसासोवत्थियासणाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं-जाव-पडिरूवाइं। —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

आलिगृहादि में हंसासन आदि—

४४. उन आलिगृहों—यावत्—दर्पणगृहों में बहुत से हंसासन—यावत्—दिक् सौवस्तिकासन रखे हुए है, ये आसन पूर्ण रूप से रत्नमय स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

वणसंडदेसेसु जाइमंडवगाई—

४५. तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे जाइ-मंडवगा, जूहिया-मंडवगा, मल्लिया-मंडवगा, णवमल्लिया मंडवगा, वासंती-मंडवगा, दधिवासुया-मंडवगा, सुरिल्लि-

वनखण्ड के अनेक भागों में जाइ-मण्डप आदि—

४५. उस वनखण्ड के स्थान-स्थान पर और उन स्थानों के भी एक-एक देश में अनेक जातिमंडप (चमेली पुष्पों से भरे मंडप) है, जूहिका (जूही के पुष्प) मंडप है, मल्लिका (मोगरा पुष्प) मंडप है, नव मल्लिका-मंडप है, वासन्ती लता मंडप है, दधिवासुक (वनस्पति विशेष) के मंडप है, सुरिल्लि (वनस्पति विशेष) मंडप

मंडवगा, तंबोली-मंडवगा, मुद्दिया-मंडवगा, णागलया-मंडवगा, अतिमुत्त-मंडवगा, अप्फोआ-मंडवगा, मालुया-मंडवगा, सामलया-मंडवगा, णिच्चं कुसुमिया-जाव-सुविभत्त पडिमंजरि वडिंसगधरा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

है, ताम्बूली (पानों की बेल) मंडप है, मृद्वीका (अंगूर) मंडप है, नागलता मंडप है, अतिमुक्तलता मंडप है, अप्फोगा (वनस्पति विशेष) मंडप है, मालुका (वृक्ष विशेष) मंडप हैं, श्यामलता मंडप है, ये सभी मंडप सर्वदा पुष्पों से युक्त—यावत्—सुन्दर रचनायुक्त प्रतिमंजरी रूप शिरोभूषण से शोभायमान है, और सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है ।

जाईमंडवाईसु विविहसंठिया पुढवि-सिलापट्टगा—

४६. तेसु णं जातीमंडवएसु-जाव- सामलयामंडवएसु बहवे पुढविसिलापट्टगा पण्णत्ता, तं जहा—हंसासण-संठिता, कोंचासण-संठिता, गरुलासण-संठिता, उण्णयासण-संठिता, पणयासण-संठिता, दीहासण संठिता, भद्दासण-संठिता, पक्खासण-संठिता, मगरासण-संठिता, उसभासण-संठिता, सीहासण-संठिता, पउमासण-संठिता, दिसासोत्थियासण-संठिता, पण्णत्ता तत्थ बहवे वरसयणासण विसिट्ठसंठाणसंठिया पण्णत्ता समणाउसो !

आइण्णग-रूय-बूर-णवणीत-तूलफासा मउया सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२१

जाई-मण्डपादि में विविध आकार के पृथ्वीशिलापट्ट—

४६. उन जातिमंडपों में—यावत्—श्यामलता मंडपों में अनेक पृथ्वी शिलापट्टक कहे गये हैं । यथा—हंसासन जैसे हैं, क्रोंचासन, जैसे हैं, गरुडासन जैसे हैं, उन्नतासन जैसे हैं, प्रणतासन के समान है, दीर्घासन के समान है, भद्रासन के समान है, पक्ष्यासन के समान है, मकरासन के समान है, वृषभासन के समान है, सिंहासन के समान है, पद्मासन के समान है, दिक्सौवस्तिकासन के समान कहे गये हैं, हे आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ पर बहुत से पृथ्वी शिलापट्टक विशिष्ट शयनासन संस्थान वाले कहे गये हैं ।

उनका स्पर्श आजिलक (चर्ममय वस्त्र) रुई—बूर (आक की रुई) नवनीत—तूल (हंस के पंख) के स्पर्श जैसा मृदु (सुकोमल) है, तथा सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है ।

वणसंडे वाणमंतराणं विहरणं—

४७. तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयंति, सयंति, चिट्ठंति, निसीयंति, तुयट्टंति, रमंति, ललंति, कीलंति, मोहंति, पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाण फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

वनखण्ड में वाणव्यन्तरों का विचरण—

४७. उन आसनों पर अनेक वाणव्यन्तर देव और देवियाँ सुखपूर्वक बैठती है, सोती है, स्थित होती है, विश्रामार्थ बैठती है, लेटती है, रमण करती है, मनोविनोद करती है, क्रीडा करती है, रतिक्रीडा करती है, इस प्रकार से पूर्व काल से किये गये शुभ—सद् आचरण से अर्जित-शुभ पराक्रम से जनित, शुभरूप, कल्याण रूप, कृतकर्मों के फलविपाक को भोगते हुए समय को व्यतीत करती है ।

पउमवरवेइयाए अंतो एगे महं वणसंडे—

४८. तीसे णं जगतीए उप्पिं अंतो पउमवरवेइयाए—एत्थ णं एगे महं वणसंडे पण्णत्ते । [illegible]

—जीवा० [illegible]

पद्मवरवेदिका के अन्तर्भाग में एक वनखण्ड—

४८. उस जगती के ऊपर और पद्मवरवेदिका के अन्तर्भाग में एक विशाल वनखंड कहा गया है ।

जो कुछ कम दो योजन का विस्तार वाला एवं परिक्षेप—पद्मवरवेदिका के परिक्षेप जैसा है । इसका रूप कृष्ण, कृष्ण प्रतिभास सदृश आदि वनखण्ड के वर्णन के समान समझना चाहिये, किन्तु मणियों और तृणों का शब्द नहीं होता है ऐसा जानना चाहिये ।

[illegible]

४९. [illegible]

वनखण्ड में वाणव्यन्तरों का विहरण—

४९. उन [illegible] वाणव्यन्तर देव और देवियाँ सुखपूर्वक [illegible]—यावत्—पूर्व [illegible] करती है [illegible]

जंबुद्दीवस्स विजयदार वण्णओ—

जंबूद्वीप : विजयद्वार वर्णन—

जंबुद्दीवस्स चत्तारि दारा—

५०. प० जंबुद्दीवस्स णं भंते ! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—(१) विजये, (२) वेजयंते, (३) जयंते, (४) अपराजिए।[1]

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२८

विजयदारस्स पमाणं—

५१. प० कहि णं भंते ! जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजये नामं दारे पण्णत्ते ?

उ० गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाधाए[2], जंबुद्दीवे दीवे पुरच्छिमपेरंते लवणसमुद्दपुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीताए महाणदीए उप्पि—एत्थ णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजये णामं दारे पण्णत्ते।

अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,[3] चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं, तावतियं चेव पवेसेणं,[4] सेए वरकणगथूभियागे, ईहामिय–उसभ–तुरग–नर–मगर–विहग–वालग–किण्णर-रुरु–सरभ-चमर-कुंजर-वणलय–पउमलय-भत्तिचित्ते, खंभुग्गय-वइरवेदिया परिगयाभिरामे विज्जाहर जमल जुयलजंतजुत्ते इव अच्चीसहस्समालिणीए, रूवगसहस्स कलिते, भिसिमाणे, भिब्भिसमाणे चक्खुल्लोयणलेसे सुहफासे सस्सिरीयरूवे।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२७

विजयदारस्स वण्णओ—

५२. दारस्स वण्णओ तस्सिमो होइ, तं जहा—

जम्बूद्वीप के चार द्वार—

५०. प्र० हे भगवन् ! जम्बूद्वीप के कितने द्वार कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! चार द्वार कहे गये हैं। यथा—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, और (४) अपराजित।

विजयद्वार का प्रमाण—

५१. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप का विजय नाम का द्वार कहाँ पर कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मध्य में स्थित मन्दर पर्वत की पूर्वदिशा में व्यवधानरहित पैंतालीस हजार योजन जाने पर जम्बूद्वीप की पूर्व दिशा के अन्त में एवं लवण समुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिम भाग में सीता महानदी के ऊपर जम्बूद्वीप नाम वाले द्वीप का विजय नामक द्वार कहा है।

यह विजय द्वार ऊँचाई में आठ योजन ऊँचा है, और चार योजन का चौड़ा है, एवं उतना ही प्रवेश करने का स्थान है, श्रेष्ठ अंकरत्न से निर्मित होने के कारण इसका वर्ण शुक्ल है, और शिखर श्रेष्ठ स्वर्ण का बना हुआ है, इस पर ईहामृग, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मकर, पक्षी, नाग, किन्नर, रुरु, अष्टापद, चमरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्र बने हुए हैं, स्तम्भों पर बनी हुई वज्र रत्नमयी वेदिकाओं से अत्यन्त शोभायमान हो रहा है। समश्रेणी में स्थित विद्याधर युगल यन्त्र चलित जैसे प्रतीत होते हैं। हजारों किरण समूहों से परिव्याप्त, हजारों रूपों से युक्त, दीप्यमान, देदीप्यमान, नेत्राकर्षक, सुखद स्पर्श एवं सश्रीक रूप सम्पन्न है।

विजयद्वार का वर्णन—

५२. इस द्वार का वर्णन इस प्रकार है। यथा—

---

१ जंबु० व० १, सु० ७।

२ सम० ४५, सु० ६।

३ ठाणं ८, सु० ६५७।

४ ठाणं ४, उ० २, सु० ३०३/१, २।

वइरामया णिम्मा ।

इसका नेम (जमीन के ऊपर निकला प्रदेश—कुरसी) वज्रमय है ।

रिट्ठामया पइट्ठाणा ।

प्रतिष्ठान (देहली) रिष्ठरत्नमय है ।

वेरुलियामया खंभा ।

इसके खम्भे वैडूर्य रत्न के बने हैं ।

जायरूवोवचिय-पवर-पंचवण्ण-मणि-रयण-कोट्टिमतले ।

इसका कुट्टिमतल—बद्धभूमितल स्वर्ण से उपचित श्रेष्ठ पंचवर्ण वाले मणिरत्नों से बना हुआ है ।

हंसगब्भगए एलुए ।

इसकी एलुक (देहली की चौखट) हंसगर्भ नामक रत्न विशेष से बनी है ।

गोमेज्जमए इंदक्खीले ।

गोमेद रत्न से इसकी इन्द्रकील बनी है ।

लोहितक्खमईओ दारचिडाओ ।

लोहिताक्ष रत्न से इसकी द्वार शाखायें बनी हैं ।

जोतिरसामते उत्तरंगे ।

इसका उत्तरंग (द्वार के ऊपर तिरछा रखा हुआ काष्ठ) ज्योतिरस नामक रत्न से बना है ।

वेरुलियामया कवाडा ।

इसके किवाड़ वैडूर्य रत्न से निर्मित हैं ।

वइरामया संधी ।

किवाडों की संधियाँ वज्ररत्न की है ।

लोहितक्खमईओ सूईओ ।

किवाडों में लगाई गई सुई—कीलियाँ लोहिताक्ष रत्न की हैं ।

णाणा मणिमया समुग्गगा ।

समुद्गक नाना मणियों से बने हुए हैं ।

वईरामईओ अग्गलाओ अग्गलपासाया ।

वज्ररत्न से बनी हुई अर्गलायें हैं और अर्गलाओं को रखने के स्थान भी वज्ररत्न के बने हुए हैं ।

वइरामई आवत्तणपेढिया ।

आवर्तनपीठिका (इन्द्रकील का स्थान) भी वज्ररत्न का है ।

अंकुत्तर पासते ।

किवाडों का पार्श्वभाग (पिछला हिस्सा) अंकरत्न का बना है ।

णिरंतरितघणकवाडे ।

ये किवाड ऐसे जुड़े हुए हैं कि किंचिन्मात्रभी अन्तर (सांध) नहीं है ।

भित्तीसु चेव भित्तीगुलिया छप्पण्णा ।

भीतों (दीवालों) में एक सौ अडसठ (५६ × ३ = १६८) भित्ति गुलिकायें-खुंटिया है ।

तिण्णि होंति गोमाणसी ।

और उतनी ही (१६८) गोमानसी (शैयाकार स्थान विशेष) है ।

तत्तिया णाणा मणिरयण-वालरूवग-लीलट्ठिय-सालिभंजिया ।

और उतनी ही द्वार पर नाना प्रकार के मणियों और रत्नों से व्याप्त होके एवं क्रीडा करती हुई—लीलारत शालभंजिकाओं —पुतलियों के चित्र बने हुए हैं ।

वइरामए कूडे ।

वज्ररत्न से शिखर बना है ।

रययामए उस्सेहे ।

और उत्सेध-ऊँचाई रत्नमय है ।

सव्व तवणिज्जमए उल्लोए ।

चंदेवा चाँदनी रूप ऊपरी भाग तपनीय स्वर्ण का बना है ।

णाणा मणिरयण-जाल पंजर-मणि वंसग-लोहितक्ख पडिवंसग रययभोम्मे ।

इस द्वार के झरोखे मणिमय वंशों वाले लोहिताक्ष रत्नमय प्रतिवंशों वाले, रजतमय भूमि वाले और विविध प्रकार की मणि-रत्नों वाले हैं ।

अंकामया पक्खा पक्खबाहाओ ।

इसके पक्ष और पक्षवाह अंकरत्न से बने हैं ।

जातिरसामया वंसा, वंसकवेल्लगा य।

रययामयी पट्टियाओ।
जातरूवमयी ओहाडणी।
वइरामयी उवरि पुच्छणी,
सव्वसेतरययमए च्छायणे।
अंकमय-कणग-कूड-तवणिज्ज-थूभियाए।

ज्योतिरसरत्न के ही इसके बांस हैं, और ज्योतिरस रत्न के ही बांसों पर छाये हुए कवेलू हैं।
बांसों को जोड़ने वाली पट्टियाँ चाँदी की हैं।
अवघाटिनी (एक प्रकार की ओढनी) स्वर्णमयी है।
ऊपर के भाग में बनी पुंछणियाँ वज्रनिर्मित है।
इसका छादन सम्पूर्ण रूप से श्वेत है और रत्नों का बना है,
इसका कूट प्रधानशिखर अंकरत्न और कनकस्वर्ण का बना हुआ है। तथा स्तूपिकायें—छोटी-छोटी शिखरें तपनीय स्वर्ण की हैं।

सेए संखतल–विमलणिम्मल–दधि–घण–गोखीर-फेण–रयय-णिगरप्पगासे तिलग रयणद्धचंदचित्ते।

विमल-निर्मल शंखतल, घनीभूत दही, गाय के दूध का फेन, चाँदी के समूह के समान इसका श्वेत-धवल शुभ्र प्रकाश है, तिलक रत्नों से जिस पर अर्धचन्द्रों के चित्र बने हुए हैं।

णाणा मणिमयदामालंकिए, अंतो य, बहिं च सण्हे तवणिज्ज-रूइल-वालुया-पत्थडे, सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासाईए-जाव-पडिरूवे। —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२९

अनेक मणिमय मालाओं से जो अलंकृत हो रहा है, भीतर और बाहर में जो श्लक्ष्ण (अत्यन्त सूक्ष्म) पुद्गलों के स्कन्धों से निर्माणित है, दीप्तमान तपनीय स्वर्ण की वालुका जिसमें बिछायी हुई है, जिसका स्पर्श सुखप्रद है, जिसका रूप सुहावना दर्शनीय—**यावत्**—प्रतिरूप है।

विजयदारस्स णिसीहियाए चंदणकलसपरिवाडीओ—

५३. विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो चंदणकलसपरिवाडीओ, पण्णत्ताओ।

तेणं चंदणकलसा, वरकमलपइट्ठाणा, सुरभिवरवारिपडि-पुण्णा, चंदणकयचच्चागा, आवद्धकंठेगुणा, पउमुप्पल-पिहाणा, सव्वरयणामया, अच्छा-जाव-पडिरूवा।

महया महया महिंदकुम्भसमाणा पण्णत्ता समणाउसो।
—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२९

विजयद्वार की नैषिधिकियों में चन्दनकलशों की पंक्तियाँ—

५३. विजय द्वार की दोनों तरफ आजू-बाजू में दो नैषिधिकियाँ बैठने के स्थान (चौकियाँ) हैं, जिन पर दो-दो चन्दन के कलशों की पंक्तियाँ कही गई हैं।

ये चन्दनकलश श्रेष्ठ कमलों पर रखे हुए हैं, श्रेष्ठ-शुद्ध सुगन्धित जल से भरे हुए हैं, चन्दन से जो चर्चित है अर्थात् थापे लगे हैं, और जिनके कंठ में मौली बाँधी गयी है। जिनके मुख पद्मकमल के ढक्कनों से ढके हुए हैं, तथा सर्वात्मना रत्नों से जटित, स्फटिकमणि के समान स्वच्छ—**यावत्**—प्रतिरूप हैं।

हे आयुष्मान् श्रमणो! ये चन्दनकलश विशाल बड़े-बड़े महेन्द्रकुम्भ के समान कहे गये हैं।

विजयदारस्स णिसीहियाए नागदंतपरिवाडीओ—

५४. विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो णागदंतपरिवाडीओ पण्णत्ताओ।

तेणं णागदंतगा मुत्ताजालंतरूसिअ–हेमजाल–गवक्खजाल-खिंखिणीघंटाजालपरिविखत्ता, अब्भुग्गया, अभिणिसिट्ठा तिरियं सुसंपग्गहिया, अहे पण्णगद्धरूवा, पण्णगद्धसंठाणसंठिया, सव्व-रयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

विजयद्वार की नैषिधिकियों में नागदन्तकों की पंक्तियाँ—

५४. विजयद्वार के उभय पार्श्वों की दोनों निषधिकाओं में दो-दो नागदन्तकों की पंक्तियाँ कही गई है।

ये सब नागदन्तक चारों ओर से मुक्ताजालों के अन्दर लटकती हुई सुवर्णमय मालाओं, गवाक्ष आकृति वाले रत्नों की मालाओं से और छोटी-छोटी घण्टिकाओं से घिरे हुए हैं। आगे के भाग में कुछ ऊँचे उठे हुए है, और दीवाल में अच्छी तरह से ठुके हुए हैं, कुछ तिरछेपन को लिये स्थित हैं, अधोभाग में ये सर्प के अर्धभाग जैसे आकार वाले हैं, और अर्ध सर्पाकार रूप में स्थापित है, सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ-निर्मल—**यावत्**—प्रति-रूप है।

महया महया गयदंतसमाणा पण्णत्ता समणाउसो !

हे आयुष्मन् श्रमणों ! ये नागदन्तक विशाल गजदन्तों के समान कहे गये हैं।

५५. तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हसुत्तबद्धवग्घारिय मल्लदाम कलावा-जाव-सुक्किल्ल सुत्तबद्ध वग्घारियमल्लदामकलावा।

तेणं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया, णाणा मणिरयण-विविधहारद्धहारउवसोभियसमुदया-जाव—सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठन्ति।

५५. उन नागदन्तकों के ऊपर अनेक काले डोरे से बंधी हुई अनेक पुष्प मालायें लटक रही हैं—यावत्—श्वेत सूत्र में बंधी हुई अनेक पुष्प मालायें लटक रही हैं।

इन मालाओं के अग्रभाग में स्वर्ण से बने हुए लंबूस (गेंद के आकार का आभरण विशेष, झुमका) लटक रहे हैं, और ये सब मालायें स्वर्ण के पत्रों से मंडित हैं, अनेक मणियों, रत्नों, हारों, और अर्धहारों से ये मालायें विशेष-विशेष रूप से सुशोभित हैं, —यावत्—अपनी श्री-कांति से विशिष्ट रूप में शोभायमान होती हुई स्थित हैं,

५६. तेसि णं नागदंतगाणं उवरिं अण्णाओ दो दो णागदंत परिवाडिओ पण्णत्ताओ।

तेसि णं णागदंतगाणं मुत्ताजालंतरूसिया तहेव-जाव-पडिरूवा,

महया महया गयदंतसमाणा पण्णत्ता समणाउसो।

५६. उन नागदन्तकों के ऊपर भी और दूसरी दो-दो नागदन्तकों की पंक्तियाँ कही गई हैं।

उन नागदन्तकों का भी मुक्ताजालों के अन्तर इत्यादि पूर्ववत् प्रतिरूप पर्यन्त सब वर्णन समझ लेना चाहिये।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! ये नागदन्तक भी विशाल गजदन्तों के समान कहे गये हैं।

५७. तेसु णं णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कया पण्णत्ता, तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वेरुलियामईओ धूवघडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—ताओ णं धूवघडीओ कालागुरु-पवरकुन्दरुक्क-तुरुक्क धूव मघमघंतगंधुद्धुयाभिरामाओ सुगंधवरगंधगंधियाओ गंधवट्टिभूयाओ ओरालेणं मणुण्णेणं घाण-मणणिव्वुइकरेणं गंधेणं तप्पए से सव्वओ समंता आपूरेमाणीओ आपूरेमाणीओ अईव अईव सिरीए उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठन्ति।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२९

५७. उन नागदन्तकों पर बहुत से रत्नमय सींके लटके हुए हैं।

उन रत्नमय सींकों में वैडूर्य रत्नों से बनी हुई अनेक धूपघटिकायें (धूपदान) रखी हुई कही गई हैं। यथा—वे धूपघटिकायें काला गुरु, श्रेष्ठ कुन्दरुष्क, तुरुष्क, लोबान की धूपविशेष से निकल रही गंध को फैलाती हुई विशेष सुन्दर दिखती हैं, सुगन्धित पदार्थों की उत्तम गंध से गंधायमान होने से गंध की गुटिका जैसे प्रतीत होती हैं, उदार-श्रेष्ठ, मनोज्ञ गंध से नासिका और मन को तृप्ति-शांति प्रदान करने वाली हैं, और अपनी गंध से सर्वदिशाओं में उन-उन प्रदेशों को पुनीत करती हुई अतिविशिष्ट श्री से—यावत्—शोभायमान होती हुई स्थित हैं।

विजयदारस्स णिसीहियाए सालभंजियपरिवाडीओ—

विजयद्वार की नैषिधिकियों में सालभंजिकाओं की पंक्तियाँ—

५८. विजयस्स णं दारस्स उभयओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो सालभंजिया परिवाडीओ पण्णत्ताओ।

ताओ णं सालभंजियाओ लीलट्ठियाओ सुपयट्ठियाओ सुअलंकियाओ, णाणागारवसणाओ. णाणा मल्ल-पिणद्धिओ, मुट्ठीगेज्झमज्झाओ आमेलग-जमल जुयलवट्टि अब्भुण्णय-पीण-रचिय-संठिय-पयोहराओ रत्तावंगाओ असियकेसीओ, मिदुविसय

५८. विजयद्वार के उभयपार्श्व में स्थित उन दोनों निषिधिकाओं में दो-दो काष्ठपुतलिकाओं की परिपाटी-क्रमबद्ध पंक्तियाँ कही गई हैं।

वहाँ वे पुतलिकायें क्रीड़ारत हुई जैसी स्थापित की हुई हैं, सुन्दर वेषभूषा से अलंकृत की गई हैं, रंग-बिरंगे परिधानों से शृङ्गारित हैं, अनेक मालायें इन्हें पहनाई गई हैं, कटि प्रदेश इतना पतला है कि मुट्ठी में आ सकता है, इनके पयोधर (स्तन) समश्रेणिक चूचुक युगल से युक्त, कठिन, वृत्ताकार, सामने की ओर उन्नत-तने हुए पुष्ट, रत्युत्पादक हैं, इनके नेत्र प्रान्त (नेत्रों के किनारे) लालिमायुक्त हैं, (भ्रमर जैसे) कृष्ण वर्ण, कोमल, विशद-मृणाल तन्तुओं के समान बारीक, प्रशस्त लक्षणों, गुणों से

पसत्थलक्खण, संवेल्लियग्गसिरयाओ ईसिं असोगवरपादपसमुट्ठियाओ, वामहत्थगहियग्ग सालाओ, ईसिं अद्धच्छिकडक्खविद्धिएहिं लूसेमाणीओ इव चक्खुल्लोयणलेसाहिं अण्णमण्णं खिज्जमाणीओ इव ।

युक्त है, तथा जिनका आगे का भाग मुकुट से ढका हुआ है, ये अशोक वृक्ष का कुछ सहारा लिये हुई-सी खड़ी हैं और वायें हाथ से इन्होंने अशोक वृक्ष की शाखा के अग्रभाग को ग्रहण कर रखा है, अपने तिरछे कटाक्षों से दर्शकों के मन को मानो चुरा रही हैं, परस्पर एक-दूसरे की ओर देखती हुई ऐसी प्रतीत होती हैं कि मानो एक-दूसरे के सौभाग्य को ईर्ष्या के कारण सहन न करने से खेद विपन्न-सी हो रही हैं ।

पुढविपरिणामाओ सासयभावमुवगयाओ चंदाणणाओ चंदविलासिणीओ चंदद्धसमनिडालाओ चंदाहियसोमदंसणाओ उक्का इव उज्जोयमाणीओ विज्जुघणमरीचि-सूर-दिप्पंत तेय अहिययर संनिकासाओ, सिंगारागारचारुवेसाओ पासाइयाओ-जाव-पडिरूवाओ । तेयसा अतीव अतीव सोभेमाणीओ सोभेमाणीओ चिट्ठन्ति ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२९

ये शालभंजिकायें पार्थिव पुद्गलों से बनी हुई हैं, और विजयद्वार की तरह शाश्वत हैं, इनका मुख चन्द्रमा के जैसा है, चन्द्रमंडल की तरह चमकने वाली हैं, इनका ललाट अर्धचन्द्र (अष्टमी के चन्द्रमा) के समान सुशोभित है, चन्द्रमा से भी अधिक इनका सौम्यदर्शन है, चन्द्रमा से भी अधिक दर्शनीय है, उल्का के समान चमकीली है, मेघ-विद्युत की किरणों और दैदीप्यमान अनावृत सूर्य के तेज से भी अधिक इनका प्रकाश है, इनकी आकृति शृङ्गार प्रधान और वेषभूषा सुहावनी है, अतएव ये प्रासादीय, दर्शनीय—यावत्—प्रतिरूप है, इस तरह ये अपने तेज से अत्यन्त सुशोभित होती हुई (विजय-द्वार की उभय पार्श्ववर्ती नैषधिकी में) खड़ी हुई है ।

विजयदारस्स णिसीहियाए जालकडगा—

५९. विजयस्स णं दारस्स उभयओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो जालकडगा पण्णत्ता ।

ते णं जालकडगा सव्व रयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२९

विजय-द्वार की नैषिधिकियों में जालकटक—

५९. विजयद्वार की दोनों बाजुओं की दोनों नैषधिकाओं में दो-दो जालकटक (यवनिका-परदा) कहे गये हैं ।

वे जालकटक सर्वात्मना रत्नमय स्वच्छ निर्मल—यावत्—प्रतिरूप है ।

विजयदारस्स णिसीहियाए घंटापरिवाडीओ—

६०. विजयस्स णं दारस्स उभयओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो घंटापरिवाडीओ पण्णत्ताओ ।

तासि णं घंटाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—जंबूणयमईओ घंटाओ, वइरामईओ लालाओ, णाणा मणिमया घंटा पासगा, तवणिज्जमईओ संकलाओ, रययामईओ रज्जूओ ।

ताओ णं घंटाओ ओहस्सराओ, मेहस्सराओ, हंसस्सराओ, कोंचस्सराओ, णदिस्सराओ, णंदिघोसाओ, सीहस्सराओ, सीहघोसाओ, मंजुस्सराओ, मंजुघोसाओ, सुस्सराओ सुस्सर णिग्घोसाओ ते पदेसे ओरालेणं मणुण्णेणं कण्ण-मणणिव्वुइकरेण सद्देणं-जाव-चिट्ठन्ति ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२९

विजय-द्वार की नैषिधिकियों में घंटों की पंक्तियाँ—

६०. विजयद्वार की दोनों ओर की दोनों नैषिधिकाओं में दो-दो घंटाओं की परिपाटी-पंक्ति कही गई है ।

इन घंटाओं का वर्णन इस प्रकार का कहा गया है । यथा—ये सब घंटे जंबूनद स्वर्णमय हैं, वज्ररत्न की इनकी लालायें हैं, अनेक मणियों से बने हुए घंटा पार्श्व हैं, जिन सांकलों में ये घंटे लटके हुए हैं वे स्वर्ण की बनी हुई हैं, और चाँदी की बनी हुई डोरियाँ हैं, अर्थात् घंटा बजाने के लिये लालाओं (लोलक-पेंडलुम) में जो डोरियाँ बँधी हुई हैं वे चाँदी की बनी हुई हैं ।

इन घंटाओं का स्वरनाद ओघस्वर (जलप्रवाह का स्वर) जैसा है, मेघस्वर जैसा, हंसस्वर जैसा, क्रौंचस्वर जैसा, नन्दिस्वर जैसा, नन्दिघोष जैसा, सिंहगर्जना जैसा, सिंहघोष जैसा, मंजुस्वर जैसा, मंजुघोष जैसा प्रतीत होता है, विशेष और क्या कहा जाये कि वे सब घंटे अपने सुस्वरों और सुस्वर निर्घोषों से उदार मनोज्ञ, कर्ण और मन को तृप्तिकर शब्दों से उस प्रदेश को व्याप्त करते हुए—यावत्—स्थित हैं ।

विजयदारस्स णिसीहियाए वणमालापरिवाडीओ—

६१. विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो वणमालापरिवाडीओ पण्णत्ताओ।

ताओ णं वणमालाओ णाणा दुमलया-किसलय-पल्लवसमाउलाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलसोभंत सस्सिरीयाओ पासाईयाओ-जाव-पडिरूवाओ।

ते पएसे उरालेणं-जाव-मणुण्णेणं घाण-मण-निव्वुइ करेणं गंधेणं तप्पएसे सव्वओ समंता आपूरेमाणीओ आपूरेमाणीओ अईव अईव सिरीए उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठन्ति।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १२६

विजयद्वार की नैषिधिकियों में वनमालाओं की पंक्तियाँ—

६१. विजयद्वार के दोनों ओर दोनों नैषिधिकाओं में दो-दो वनमालाओं की परिपाटियाँ कही गई हैं।

ये वनलतायें अनेक वृक्षों और लताओं के किसलय-पल्लवों (कोमल पत्तों) से युक्त हैं, भ्रमरों द्वारा भुंज्यमान कमलों से सुशोभित हैं, सश्रीक-शोभातिशयवाली दर्शनीय—**यावत्**—प्रतिरूप हैं।

ये वनलतायें अपनी उदार—**यावत्**—मनोज्ञ घ्राण और मन को शांतिप्रद गंध से सर्व दिशाओं और विदिशाओं के प्रदेशों को भरती हुई अपनी शोभा से अत्यन्त शोभायमान होती हुई स्थित हैं।

विजयदारस्स णिसीहियाए पगंठगा—

६२. विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहिआए दो दो पगंठगा पण्णत्ता।

तेणं पगंठगा चत्तारि जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, दो जोयणाइं बाहल्लेणं सव्व वइरामया अच्छा-जाव पडिरूवा।

६३. तेसिं णं पगंठगाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं पासायवडेंसगा पण्णत्ता।

तेणं पासायवडेंसगा चत्तारि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, अब्भुग्गयमूसिय पहसिया विव विविहमणिरयणभत्तिचित्ता, वाउद्धुय विजयवेजयंती पडागछत्तातिछत्तकलिया, तुंगा, गगणतलमभिलंघमाणसिहरा, (गगणतलमणुलिहंतसिहरा) जालंतर-रयण-पंजरुम्मिलितव्व, मणि कणग-थूमियागा, वियसिय सयवत्त-पोंडरीय-तिलक-रयणद्धचंद चित्ता, णाणामणिमयदामालंकिया, अंतो य बाहिं च सण्हा, तवणिज्जरुइल वालुया पत्थडा, सुहफासा, सस्सिरीयरूवा पासाईया-जाव-पडिरूवा।

विजयद्वार की नैषिधिकियों में प्रकण्ठक—

६२. विजयद्वार के उभय पार्श्व में स्थित दोनों नैषिधिकाओं में दो-दो प्रकण्ठक (पीठ विशेष) कहे गये हैं।

ये प्रकण्ठक चार योजन के लम्बे-चौड़े हैं, तथा इनकी मोटाई दो योजन की है, ये सर्वात्मना वज्ररत्नमय, स्वच्छ—**यावत्**—प्रतिरूप है।

६३. उन प्रकण्ठकों के ऊपर अलग-अलग प्रासादावतंसक कहे गये हैं।

ये प्रासादावतंसक ऊँचाई में चार योजन ऊँचे और दो योजन के लम्बे-चौड़े हैं. ये समस्त दिशाओं में फैले हुए और हँसते हुए से प्रतीत होते हैं, विविध प्रकार की मणियों और रत्नों से बने हुए चित्रों से चित्रित हैं, जिन पर वायु के संयोग से लहलहाती हुई विजय वैजयन्ती पताकायें जो छत्रातिछत्रों के समान शोभायमान है, और बहुत ऊँची हैं, जिनके शिखर अपनी ऊँचाई से आकाश का भी उल्लंघन करते हैं, इनकी जालियों में लगे रत्न ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो अभी-अभी पिंजड़ों से बाहर निकाले हैं, इनमें जो स्तूपिकायें बनी हैं, वे मणियों और स्वर्ण निर्मित हैं, इनके द्वार प्रदेश में विकसित शतपत्रों, पुण्डरीकों और तिलकरत्नों से बने हुए अर्धचन्द्रों के चित्र बने हुए हैं, अनेक मणिमय मालाओं से अलंकृत हैं, भीतर और बाहर से स्निग्ध (चिकने) हैं, इनके भीतर तपनीय स्वर्ण की वालुका बिछी हुई है, इनका स्पर्श सुखद है, रूप सुहावना है, दर्शनीय है—**यावत्**—प्रतिरूप है।

६४. तेसि णं पासायवडेंसगाणं उल्लोया पउमलया जाव सामलया भत्तिचित्ता। सव्व तवणिज्जमया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

६४. इन प्रासादावतंसकों के ऊपरी भाग (अगासी) में पद्मलता—**यावत्**—श्यामलता के चित्र बने हुए हैं, वे सब सर्वात्मना तपनीय, स्वर्णमय, स्वच्छ—**यावत्**—प्रतिरूप हैं।

६५. तेसि णं पासायवडेंसगाणं पत्तेयं पत्तेयं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते— से जहा नामए, आलिंग पुक्खरेइ

६५. इन प्रासादावतंसकों में से प्रत्येक का भीतरी भूमि भाग अत्यन्त सम एवं रमणीय कहा गया है, जैसे कि वह इस प्रकार

वा जाव णाणाविहपंचवण्णेहि तणेहि य मणीहि य उवसोभिए।

का है—आलिंगपुष्कर-मृदंग के मुख पर चढ़े हुए चमड़े के समान—यावत्—अनेक प्रकार के पंचरंगों तृणों और मणियों से उपशोभित है।

मणीणं गंधो वण्णो फासो य नेयव्वो।

—मणियों के गंध, वर्ण और स्पर्श का वर्णन पूर्व में किये गये वर्णन के अनुरूप जानना चाहिए।—

६६. तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।

ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, अट्ठ जोयणबाहल्लेणं, सव्वरयणामईओ जाव पडिरूवाओ।

६६. इन अत्यधिक सम और रमणीय भूमिभागों के मध्यातिमध्य देश भाग-प्रदेश में अलग-अलग मणिपीठिकायें कही गई हैं।

वे मणि पीठिकायें लम्बाई-चौड़ाई में एक योजन की और मोटाई में आठ योजन की हैं, जो सर्वात्मना रत्नमय स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

६७. तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं सीहासणे पण्णत्ते।

तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—तवणिज्जमया चक्कवाला, रययामया सीहा, सोवण्णिया पादा, णाणा मणिमयाइं पादपीढगाइं, जंबुणयमयाइं गत्ताइं, वइरामया संधी, णाणा मणिमए वेच्चे।

६७. उन प्रत्येक मणिपीठिकाओं के ऊपर एक-एक सिंहासन कहा गया है।

इन सिंहासनों का वर्णन इस प्रकार कहा गया है, यथा—इनका चक्रवाला (पायों के रखने का) अधोवर्ती प्रदेश तपनीय स्वर्ण से बना हुआ है, सिंहों की आकृतियाँ चाँदी से बनी हुई हैं, इनके पाये स्वर्ण के बने हुए हैं, अनेक प्रकार की मणियों से इनके पादपीठ बने हुए हैं, इनकी ईषायें (पाटियाँ) जाम्बूनद (स्वर्ण विशेष) की बनी हुई हैं, इनकी संधियां (साधें, दरारें) वज्ररत्न से भरी गई हैं, और अनेक मणियों से इनका मध्यभाग बना हुआ है।

तेणं सीहासणा ईहामियउसभ जाव पउमलयभत्तिचित्ता, ससार सारोवइय-विविह मणिरयणपायपीढा, अच्छरग-मिउमसूरग-नवतयकुसंतलिच्च-सीहकेसर-पच्चुत्थयाभिरामा, उवचिय-खोमदुगुल्लय-पडिच्छयणा, सुविरचियरयत्ताणा, रत्तंसुयसंवुया, सुरम्मा, आईणग-रूय-बूर-णवणीय-तूलमउयफासा, मउया, पासाईया, जाव पडिरूवा।

ये सिंहासन ईहामृग, बैल—यावत्—पद्मलता के चित्रों से चित्रित है, इनके पादपीठ श्रेष्ठातिश्रेष्ठ अनेक प्रकार के विविध रत्नों के बने हुए हैं, इनमें से प्रत्येक पर बिछे हुए मृदु-सुकोमल आच्छादनक (चादर) ओसीसा और नवीन त्वचा वाले (तत्काल उत्पन्न हुए) दर्भ के तृणों से भरे हुए गद्दे बड़े ही मनमोहक हैं, तथा आच्छादनकों के ऊपर भी अनेक बेलबूटों वाला दूसरा प्रतिच्छादनक (पलंगपोस) बिछा हुआ है, और उस पलंगपोस पर भी सुन्दर प्रकार से बना हुआ रजत्राण (वस्त्र विशेष, कवर) डाला गया है, ये सभी सिंहासन लालवस्त्र से ढके हुए हैं, अति रमणीय हैं, इनका स्पर्श चर्ममय वस्त्र, कपास, बूर (सेमल की रुई) नवनीत, तूल (आक की रुई) के समान अतिकोमल है, ये सिंहासन अतिमृदु, दर्शनीय—यावत्—प्रतिरूप हैं।

६८. तेसि णं सीहासणाणं उप्पि पत्तेयं पत्तेयं विजयदूसं पण्णत्ते।

तेणं विजयदूसा, सेया, संख-कुन्द-दगरय-अमय-महियफेणपुञ्जसन्निकासा, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

६८. इन सिंहासनों में से प्रत्येक सिंहासन पर अलग-अलग विजयदूष्य (वस्त्र विशेष) कहा गया है।

ये विजय दूष्य शंख-कुन्दपुष्प, जलकण, अमृत, मथे जा रहे दूध के फेन पुंज के समान श्वेत सर्वात्मना रत्नमय, स्फटिक के समान स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

६९. तेसि णं विजयदूसाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं वइरामया अंकुसा पण्णत्ता।

६९. इन विजय दूष्यों के बहुमध्य देश में अलग-अलग वज्रमय अंकुश कहे गये हैं।

महता मत्तगयमुहागिइ समाणा पण्णत्ता समणाउसो।

रत्नमय स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है, हे आयुष्मन् श्रमणो! इनका प्रतिरूप-आकार विशाल मत्त गजराज की मुखाकृति के समान कहा गया है।

७६. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो आयंसगा पण्णत्ता।

तेसि णं आयंसगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा— तवणिज्जमया पगंठगा, वेरुलियमया छरुहा [थंभया] वइरामया वरंगा, णाणामणिमया वलक्खा, अंकामया मंडला, अणोग्घसिय निम्मलाए छायाए सव्वओ चेव समणुबद्धा चंद-मंडलपडिणिकासा, महया महया अद्धकायसमाणा पण्णत्ता समणाउसो!

७६. इन तोरणों के आगे दो-दो आरीसा (दर्पण) कहे गये हैं।

इन आदर्शकों-दर्पणों का वर्णन इस प्रकार का कहा गया है, यथा—इनके प्रकंठक—पीठविशेष तपनीय स्वर्ण के बने हुए हैं, वैडूर्य रत्नमय इनके स्तम्भ हैं, इनका पृष्ठभाग वज्रमय है, शृङ्खलादिरूप इनके अवलम्बन अनेक मणियों से बने हुए हैं, इनका मंडल-प्रतिबिम्ब पड़ने का स्थान-अंकरत्न का बना हुआ है, ये अनवघर्षित—स्वाभाविक प्रतिच्छाया से युक्त एवं निर्मल हैं, चन्द्रमंडल के समान आकार वाले और बहुत बड़े हैं, हे आयुष्मान् श्रमणो! ये देखने वाले के शरीर के अग्रभाग जितने प्रमाण के हैं।

७७. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो वइरणाभा थाला पण्णत्ता,

तेणं थाला अच्छतिच्छडिय सालितंदुल नहसंदुट्ठ बहुपडि-पुण्णा, चेव चिट्ठन्ति। सव्व जंबूणयामया अच्छा—जाव—पडिरूवा। महया महया रहचक्कसमाणा पण्णत्ता समणा-उसो!

७७. इन तोरणों के आगे वज्र के बने हुए दो-दो थाल कहे गये हैं।

ये थाल तीन बार सूप आदि से फटक कर स्वच्छ शुद्ध किये गये और ओखली में कूट कर जिनकी भूसी अलग कर दी गई है ऐसे शालि-तंदुलों-विशिष्ट जाति के चावलों से परिपूर्ण भरे हुए हैं। ये थाल सर्वात्मना स्वर्ण से बने हुए, स्वच्छ—यावत्—प्रति-रूप हैं, आयुष्मान् श्रमणो! ये थाल विशाल रथ चक्र-रथ के पहिये के समान विशाल आकार वाले कहे गये हैं।

७८. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो पातीओ पण्णत्ताओ।

ताओ णं पातीओ अच्छोदय पडिहत्थाओ, णाणाविह पंच-वण्णस्स फलहरितगस्स बहुपडिपुण्णाओ विव चिट्ठन्ति। सव्व-रयणामईओ अच्छाओ—जाव—पडिरूवाओ, महया महया गोकलिंजगचक्कसमाणाओ पण्णत्ताओ समणाउसो!

७८. इन तोरणों के आगे दो-दो पात्री कही गई हैं।

ये पात्रियाँ स्वच्छ जल से भरी हुई हैं, तथा नाना प्रकार के पंचवर्ण वाले हरे फलों से भरी हुई जैसी प्रतीत होती हैं, तथा सर्वात्मना रत्नमय स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं, हे आयुष्मान श्रमणो! ये ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो गाय को खिलाने के चक्राकार पात्र हैं।

७९. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सुपइट्ठगा पण्णत्ता।

तेणं सुपइट्ठगा णाणाविह पंचवण्ण-पसाहणगभंड विरचिया, सव्वोसहिपडिपुण्णा सव्वरयणामया अच्छा—जाव—पडिरूवा।

७९. इन तोरणों के आगे दो-दो सुप्रतिष्ठक—आधार विशेष बाजोट कहे गये हैं।

उन सुप्रतिष्ठकों पर पंचवर्णो वाले एवं सर्व औषधियों से परिपूर्ण प्रसाधनभांड सजाकर रखे हैं और ये सुप्रतिष्ठक सर्वात्मना रत्नों से बने हुए स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

८०. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो मणोगुलियाओ पण्णत्ताओ।

तासु णं मणोगुलियासु बहवे सुवण्ण-रुप्पामया फलगा पण्णत्ता।

तेसु णं सुवण्ण रुप्पामएसु फलएसु बहवे वइरामया णाग-दंतगा मुत्ताजालंतरुसिया, हेम—जाव—गयंदगसमाणा पण्णत्ता।

८०. इन तोरणों के आगे दो-दो मनोगुलिकायें-पीठिकायें कही गई हैं।

इन मनोगुलिकाओं के ऊपर अनेक स्वर्ण और चाँदी के बने हुए फलक-पाटिये रहे गये हैं।

इन स्वर्ण-रजतमय फलकों में अनेक वज्रमय नागदंतक-खूंटियां लगी हुई हैं, ये खूंटियां मुक्ताजालों के भीतर लटकती हुई हेममालाओं—यावत्—गजदन्तों के समान कही हैं।

८१. तेसु णं वइरामएसु णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कया पण्णत्ता।

तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वायकरगा पण्णत्ता।

तेणं वायकरगा किण्हसुत्तसिक्कगवत्थिया—जाव—सुक्किलसुत्तसिक्कगवत्थिया सव्वे वेरुलियामया अच्छा—जाव—पडिरूवा।

८१. इन वज्रमय नागदन्तकों पर अनेक रत्नमय छींके लटक रहे हैं।

इन रत्नमय छींकों के ऊपर अनेक कोरे घट कहे गये हैं।

ये वातकरक काले सूत से बने हुए छींकों पर अवस्थित हैं—यावत्—श्वेत सूत्र से बने छीकों पर रखे हुए हैं, और ये सभी वैडूर्य रत्नमय हैं, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

८२. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चित्ता रयणकरंडगा पण्णत्ता—से जहा णामए रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चित्ते रयणकरंडे वेरुलियमणिफालिय पडलपच्चोयडेसाए पभाए ते पदेसे सव्वओ समंता ओभासइ उज्जोवेइ तावेइ, पभासेइ—एवामेव—ते चित्तरयणकरंडगा पण्णत्ता। वेरुलिय पडल पच्चोयडा साए पभाए ते पदेसे सव्वओ समंता ओभासेइ।—जाव—पभासेइ।

८२. इन तोरणों के आगे रंगबिरंगे रत्नों से भरे हुए दो-दो करंडक—पिटारा कहे गये हैं, जैसे कि चातुरन्त चक्रवर्ती-चारों दिशाओं में एक छत्र राज्य करने वाले चक्रवर्ती राजा का आश्चर्यजनक रत्नकरंडक जो कि वैडूर्य मणि और स्फटिकमणि से बने हुए ढक्कन वाला होता है, और अपनी प्रभा से उस प्रदेश को सब तरफ से प्रकाशित करता रहता है, उद्योतित करता है, चमकाता रहता है, और कांतियुक्त करता रहता है, उसी तरह के ये चित्र-विचित्र रत्नों के करंडक कहे गये हैं, ये रत्नकरंडक भी वैडूर्य रत्न के बने हुए ढक्कन वाले हैं, अपनी प्रभा से उस प्रदेश को समस्त दिशाओं और विदिशाओं में सर्वात्मना प्रकाशित करते रहते हैं।

८३. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो हयकंठगा—जाव—दो दो उसभकंठगा पण्णत्ता। सव्वरयणामया अच्छा—जाव—पडिरूवा।

तेसु णं हयकंठएसु—जाव—उसभकंठएसु दो दो पुप्फचंगेरीओ पण्णत्ताओ। एवं मल्ल-चुण्ण-गंध-वत्थाभरण-सिद्धत्थग-लोमहत्थग चंगेरीओ, सव्व रयणामईओ अच्छाओ—जाव—पडिरूवाओ।

८३. इन तोरणों के आगे दो-दो अश्व कंठा प्रमाण वाले—यावत्—दो-दो वृषभ कंठाप्रमाणवाले आभूषण विशेष कहे गये हैं। ये सभी सर्वात्मना रत्नमय, स्फटिकमणि के समान स्वच्छ-निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं।

इन अश्व कंठाप्रमाण वाले—यावत्—वृषभ कंठाप्रमाण वाले आभूषण विशेषों में दो-दो पुष्प चंगेरिकायें कही गई हैं। इसी प्रकार से माला गंध, चूर्ण, सुगंधित द्रव्य, वस्त्र, आभरण, सरसों, मयूरपिच्छों को रखने की चंगेरिकायें (ढोकनिया) हैं, ये सभी रत्नमयी, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

८४. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो पुप्फपडलाइं—जाव—लोमहत्थपडलाइं सव्वरयणामयाइं—जाव—पडिरूवाइं।

८४. इन तोरणों के सामने दो-दो पुष्पपटल (गुलदस्ता)—यावत्—मयूरपिच्छियाँ कही गयी हैं, जो सर्वात्मना रत्नमय—यावत्—प्रतिरूप हैं।

८५. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सीहासणाइं पण्णत्ताइं। तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तहेव—जाव—पासाईया—जाव—पडिरूवा।

८५. इन तोरणों के सामने दो-दो सिंहासन कहे गये हैं, इन सिंहासनों का वर्णन पीछे किये गये सिंहासनों के वर्णन के समान कहना चाहिए, ये दर्शनीय—यावत्—प्रतिरूप हैं।

८६. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो रुप्पछदा छत्ता पण्णत्ता।

तेणं छत्ता वेरुलियभिसंतविमलदंडा, जंबूणयकण्णिया वइरसंधी मुत्ताजालपरिगया, अट्ठ सहस्सवरकंचणसलागा,

८६. इन तोरणों के आगे दो-दो रुप्य के आच्छादनभूत छत्र (छत्रा छत्री) कहे गये हैं।

इन छत्रों का दण्ड विमल एवं चमकीले वैडूर्य रत्नों का बना हुआ है। इनकी कर्णिका जाम्बूनद स्वर्ण की बनी हुई हैं, वज्ररत्न की संधियाँ हैं। ये छत्र मुक्ताजालों से परिगत-सुशोभित हैं, और प्रत्येक छत्र में श्रेष्ठ स्वर्ण से निर्मित आठ हजार शलाकायें-ताणी लगी हुई हैं, अत्यन्त सुगन्धित मलय चन्दन और सर्व ऋतुओं में

दद्दर मलय सुगंधी, सव्वोउय सुरभिसीयलच्छाया, मंगलभत्ति-चित्ता, चंदागारोवमा वट्टा।

उत्पन्न होने वाले पुष्पों की सुरभि से परिपूर्ण जिनकी शीतल छाया है, जिन पर अष्टमंगल द्रव्यों के चित्र बने हुए हैं, चन्द्रमा के आकार जैसा इनका गोल आकार है।

८७. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चामराओ पण्णत्ताओ।

ताओ णं चामराओ (चंदप्पभवइरवेरुलिय-णाणामणि-रयण-खचिय दंडाओ) णाणामणि-कणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जु-ज्जलविचित्तदंडाओ, चिल्लिआओ संखकंकुन्द-दगरयअमयम-ह्यिफेणपुंजसण्णिकासाओ सुहुमरयय दीहवालाओ, सव्व-रयणामयाओ अच्छाओ —जाव—पडिरूवाओ।

८७. इन तोरणों के आगे दो-दो चामर कहे गए हैं।

इन चामरों के (चन्द्रकान्त मणि, वज्ररत्न, वैडूर्यमणि आदि अनेक प्रकार के मणिरत्नों से खचित दंड है) अथवा ये चामर अनेक प्रकार के मणियों, कनक, और रत्नों से जटिल एवं विमल महामूल्यवान्, तपनीय स्वर्ण से निर्मित उज्ज्वल विचित्र दंड वाले हैं, तथा शंख, अंकरत्न, कुन्दपुष्प, जलकण, मथित अमृत के फेन पुंज की दैदीप्यमान शुभ्रता वाले हैं, सूक्ष्म एवं रजत के समान धवल लम्बे वालों से युक्त हैं, सर्वात्मना रत्नमय स्वच्छ —यावत्—प्रतिरूप है।

८८. तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो तिल्लसमुग्गा, कोट्ठसमुग्गा, पत्तसमुग्गा, चोयसमुग्गा, तयरसमुग्गा, एलासमुग्गा, हरियाल-समुग्गा, हिंगुलयसमुग्गा; मणोसिलासमुग्गा, अंजणसमुग्गा; सव्वरयणामया अच्छा—जाव—पडिरूवा।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३१

८७. इन तोरणों के आगे दो-दो तैलसमुद्गक कोष्ठ समुद्गक, पत्र समुद्गक, चोय समुद्गक, तगर समुद्गक, इलायची समुद्गक, हरताल समुद्गक, हिंगुलुक समुद्गक, मैनसिल समुद्गक, अंजन-समुद्गक रखे हैं, ये सभी समुद्गक-वस्तु को रखने के पात्र-सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

विजयदारे असीयं केउसहस्सं —

८९. विजये णं दारे अट्ठसयं चक्कज्झयाणं, अट्ठसयं मिगज्झयाणं, अट्ठसयं गरुलज्झयाणं, अट्ठसयं विगज्झयाणं, अट्ठसयं रुरुज्झयाणं, अट्ठसयं छत्तज्झयाणं, अट्ठसयं पिच्छज्झयाणं, अट्ठसयं सउणिज्झयाणं, अट्ठसयं सीहज्झयाणं, अट्ठसयं उसभज्झयाणं, अट्ठसयं सेयाणं चउविसाण वरनागकेऊणं एवामेव सपुव्वावरेणं विजयदारे य असीयं केउसहस्सं भवतित्तिमक्खायं।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३२

विजयद्वार पर एक हजार अस्सी ध्वजायें—

८९. उस विजयद्वार के ऊपर चक्र के चिह्न से युक्त एक सौ आठ ध्वजाएँ, एक सौ आठ मृग के चिन्ह से अंकित ध्वजायें, एक सौ आठ गरुड के चिह्न से अंकित ध्वजायें, एक सौ आठ वृक के चिह्न से अंकित ध्वजाये, एक सौ आठ रुरु के चिह्न से अंकित ध्वजायें, एक सौ आठ छत्र के चिह्न से अंकित ध्वजायें, एक सौ आठ मयूर पिच्छ के चिह्न से अंकित ध्वजायें, एक सौ आठ शकुनिपक्षी के चिह्न से अंकित ध्वजायें, एक सौ आठ सिंह के चिह्न से अंकित ध्वजायें, एक सौ आठ वृषभ के चिह्न से अंकित ध्वजायें, एक सौ आठ श्रेष्ठ नाग के केतुभूत श्वेत चार दंतों के आकार वाले चिह्न से अंकित ध्वजायें फहरा रही हैं, इस प्रकार सब मिलाकर उस विजयद्वार पर एक हजार अस्सी ध्वजाओं का परिमाण कहा गया है।

विजयदारे नवभोमा—

९०. विजये णं दारे नवभोमा पण्णत्ता,[1] तेसि णं भोमा णं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता —जाव—मणीणं फासो। तेसि णं भोमाणं उप्पि उल्लोया पउमलया —जाव—सामलया भत्तिचित्ता—जाव—सव्व तवणिज्जमया अच्छा—जाव—पडिरूवा।

विजयद्वार के आगे नव भौम—

९०. विजयद्वार के आगे नौ भौम-विशिष्ट स्थान कहे गए हैं, उन स्थानों के अन्दर का भूमि भाग अत्यन्त समतल और रमणीय कहा गया है,—यावत्—मणियों के स्पर्श के तुल्य है, उन भौमों के ऊपर के उल्लोकों-आकाशों में पद्मलता यावत् श्याम-लता के चित्राम चित्रित हैं—यावत्—ये सभी भौम तपनीय स्वर्णमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

---

[1] सम० ९, सु० ८।

९१. तेसि णं भोमाणं बहुमज्झदेसभाए जे से पंचमे भोमे, तस्स णं भोमस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते। सीहासण वण्णओ विजये दूसे—जाव—अंकुसे—जाव—दामा चिट्ठन्ति।

९१. इन भौमों के मध्यातिमध्य प्रदेश में स्थित जो पाँचवाँ भौम है, उस भौम के भी बीचोंबीच एक विशाल सिंहासन कहा गया है, **सिंहासन का वर्णन विजय दूष्य का–यावत्–अंकुश का–यावत्–मालाओं का वर्णन (पहले किये गये इन इन के वर्णन के समान यहाँ भी कर लेना चाहिये।)**

९२. तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं—एत्थ णं विजयस्स देवस्स चउण्हं सामाणियसहस्साणं चत्तारि भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

९२. इस सिंहासन के वायव्यकोण में उत्तर दिशा में और ईशान कोण में विजयदेव के चार हजार सामानिक देवों के चार हजार भद्रासन कहे गये हैं।

९३. तस्स णं सीहासणस्स पुरच्छिमेणं—एत्थ णं विजयस्स देवस्स चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं चत्तारि भद्दासणा पण्णत्ता।

९३. इस सिंहासन के पूर्व दिशा में विजयदेव की सपरिवार चार अग्रमहिषियों के चार भद्रासन कहे गये हैं।

९४. तस्स णं सीहासणस्स दाहिण-पुरत्थिमेणं—एत्थ णं विजयस्स देवस्स अब्भितरियाए परिसाए अट्ठण्हं देवसाहस्सीणं, अट्ठण्हं भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

९४. इस सिंहासन के आग्नेय कोण में विजयदेव की आभ्यन्तर परिषदा के आठ हजार देवों के आठ हजार भद्रासन कहे गये हैं।

९५. तस्स णं सीहासणस्स दाहिणेणं—एत्थ णं विजयस्स देवस्स मज्झिमियाए परिसाए दसण्हं देवसाहस्सीणं दस भद्दासण साहस्सीओ पण्णत्ताओ।

९५. इस सिंहासन की दक्षिण दिशा में विजयदेव की मध्यमा परिषदा के दस हजार देवों के दस हजार भद्रासन कहे गये हैं।

९६. तस्स णं सीहासणस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं—एत्थ णं विजयस्स देवस्स बाहिरियाए परिसाए बारसण्हं देवसाहस्सीणं बारस भद्दासण साहस्सीओ पण्णत्ताओ।

९६. इस सिंहासन की दक्षिण-पश्चिम दिशा में विजयदेव की बाह्य परिषदा के बारह हजार देवों के बारह हजार भद्रासन कहे गये हैं।

९७. तस्स णं सीहासणस्स पच्चत्थिमेणं—एत्थ णं विजयस्स देवस्स सत्तण्हं अणियाहिवईणं सत्त भद्दासणा पण्णत्ता।

९७. इस सिंहासन के पश्चिम दिग्भाग में विजयदेव के सात अनीकाधिपतियों-सेनापतियों के सात भद्रासन कहे गये हैं।

९८. तस्स णं सीहासणस्स पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं—एत्थ णं विजस्स देवस्स सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुरत्थिमेणं चत्तारि साहस्सीओ, एवं चउसु वि—जाव—उत्तरेणं चत्तारि साहस्सीओ।

अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं पत्तेयं भद्दासणा पण्णत्ता।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३२

९८. इस सिंहासन की पूर्व-दक्षिण-पश्चिम और उत्तर दिशा में विजयदेव के सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के सोलह हजार भद्रासन कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं—पूर्वदिशा में चार हजार, इसी प्रकार चारों दिशाओं में यावत् उत्तरदिशा में चार हजार भद्रासन कहे गये हैं।

अवशेष भौमों में भी प्रत्येक भद्रासन कहे गये हैं।

विजयदारस्स उवरिमागारा—

विजयद्वार के ऊपर का आकार—

९९. विजयस्स णं दारस्स उवरिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया, तं जहा—रयणेहिं वइरेहिं वेरुलिएहिं—जाव—रिट्ठेहिं।

९९. विजयद्वार के ऊपर का आकार सोलह प्रकार के रत्नों से सुशोभित है, यथा—वज्ररत्न वैडूर्य रत्न यावत् रिष्ट रत्न।

१००. विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, तं जहा—सिरिवच्छ—जाव—दप्पणा, सव्वरयणामया अच्छा—जाव—पडिरूवा।

१००. विजयद्वार के ऊपर अनेक आठ-आठ मंगल द्रव्य कहे गये हैं यथा—स्वस्तिक, श्रीवत्स यावत् दर्पण, ये सभी मंगल द्रव्य सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ, निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं।

१०१. विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे कण्हचामरज्झया—जाव—सव्वरयणामया अच्छा—जाव—पडिरूवा।

१०१. विजयद्वार के ऊपर अनेक कृष्ण चामरों की ध्वजायें हैं यावत् जो सर्वात्मना रत्नमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

१०२. विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे छत्तातिछत्ता तहेव।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३३

१०२. विजयद्वार के ऊपर अनेक छत्रातिछत्र हैं, जिनका वर्णन पूर्व में किये छत्रातिछत्रों के वर्णन के अनुसार जानना चाहिये।

विजयदारस्स णामहेउ—

१०३. प० से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? 'विजए णं दारे, विजए णं दारे !'

उ० गोयमा ! विजए णं दारे विजए णामं देवे महिड्ढीए —जाव— महाणुभावे पलिओवमठिईए परिवसइ ।

से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं, चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्ह अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, विजयस्स णं दारस्स, विजयाए रायहाणीए, अण्णेसिं च बहूणं विजयाए रायहाणीए वत्थव्वगाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं —जाव— दिव्वाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"विजए दारे, विजए दारे ।" —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३४

विजयद्वार के नाम का हेतु—

१०३. प्र० हे भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि यह विजयद्वार है, यह विजयद्वार है ?

उ० हे गौतम ! विजयद्वार को विजयद्वार कहने का कारण यह है कि वहाँ ऋद्धि सम्पन्न यावत् महातेजस्वी और पल्योपम की स्थिति वाला विजय नामक देव रहता है ।

वह विजयदेव चार हजार सामानिक देवों, सपरिवार चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकों—सेनाओं, सात अनीकाधिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा विजयद्वार की विजया नामक राजधानी तथा उस विजया नामक राजधानी में निवास करने वाले और दूसरे बहुत से देव-देवियों का आधिपत्य करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विचरण करते हैं ।

इस कारण गौतम ! विजयद्वार को विजयद्वार कहते हैं ।

विजयदारस्स सासयत्तं—

१०४. 'अदुत्तरं च णं गोयमा ! विजयस्स णं दारस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते—जण्ण कयाइ णत्थि—जाव—णिच्चे विजए दारे । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३४

विजयद्वार की शाश्वतता—

१०४. अथवा हे गौतम ! विजयद्वार यह शाश्वत नाम कहा गया है, 'यह विजयद्वार कभी नहीं था' ऐसा नहीं है, यावत् नित्य है ।

विजयारायहाणीए ठाणं पमाणं य—

१०५. प० कहि णं भंते ! विजयस्स देवस्स विजया णामं रायहाणी पण्णत्ता ?

उ० गोयमा ! विजयस्स णं दारस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वीइवइत्ता, अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस-जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता—एत्थ णं विजयस्स देवस्स विजया णाम रायहाणी पण्णत्ता—बारसजोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, सत्ततीसजोयणसहस्साइं नव य अडयाले जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेण पण्णत्ते । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३५

विजया राजधानी का स्थान और प्रमाण—

१०५. प्र०—हे भगवन् ! विजयदेव की विजया नामक राजधानी किस स्थान पर कही गई है ? अर्थात् कहाँ पर स्थित है ?

उ०—हे गौतम ! विजयद्वार की पूर्व दिशा में तिर्यग् असंख्यात द्वीप समुद्रों का अतिक्रमण करने के बाद प्राप्त अन्य जम्बूद्वीप में बारह हजार योजन जाने पर विजय देव की विजया नामक राजधानी कही गई है—यह विजया राजधानी लम्बाई-चौड़ाई में बारह हजार योजन की है, तथा इसका परिक्षेप कुछ अधिक सैंतीस हजार नौ सौ अड़तालीस योजन प्रमाण कहा गया है ।

विजयारायहाणीए पागारस्स पमाणं—

१०६. सा णं एगेण पागारेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता ।

से णं पागारे सत्ततीसं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले अद्धतेरसजोयणाइं विक्खंभेणं, मज्झेऽत्थ सक्कोसाइं छ जोयणाइं विक्खंभेणं, उप्पिं तिण्णि सद्धकोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं, मूले विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए, बाहिं वट्टे, अंतो चउरंसे, गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे—जाव—पडिरूवे ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३६

विजया राजधानी के प्राकार का प्रमाण—

१०६. यह राजधानी एक प्राकार—कोट से चारों ओर घिरी हुई है ।

यह प्राकार ऊँचाई में साढ़े सैंतीस योजन ऊँचा है, मूल में साढ़े बारह योजन का विस्तार वाला, मध्य में एक कोस सहित छह योजन का विस्तार वाला और ऊपर साढ़े तीन योजन का विस्तार वाला है । इस प्रकार मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त-संकुचित और ऊपरी भाग में पतला होता गया है, बाह्य भाग में वृत्ताकार और भीतरी भाग में समचतुरस्र-चौरस है, आकार में गोपुच्छ के संस्थान वाला है, और सर्वात्मना स्वर्ण का बना हुआ स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है ।

कविसीसगाणं वण्णं पमाण य—

१०७. से णं पागारे णाणाविह पंचवण्णेहिं कविसीसएहिं उवसोभिए, तं जहा—किण्हेहिं—जाव—सुक्किलेहिं ।

तेणं कविसीसका अद्धकोसं आयामेणं पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं, देसोणमद्धकोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, सव्वमणिमया अच्छा—जाव—पडिरूवा ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३५

कंगूरों का वर्ण और प्रमाण—

१०७. इस प्राकार पर अनेक प्रकार के पंचरंगी कंगूरे शोभायमान हो रहे हैं, यथा—कृष्णवर्ण के यावत् श्वेत वर्ण के ।

ये कंगूरे आधे कोस के लम्बे और पाँच सौ धनुप के चौड़े हैं और कुछ कम आधे कोस के ऊँचे हैं, ये सभी कंगूरे सर्वात्मना मणियो से बने हुए, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं ।

विजयारायहाणीए एगमेगाए बाहाए पणवीसं दारसयं—

१०८. विजयाए णं रायहाणीए एगमेगाए बाहाए पणुवीसं पणुवीसं दारसयं भवतीतिमक्खायं ।

तेणं दारा बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं, तावतियं चेव पवेसेणं, सेया वरकणगथूभियागा ईहामिय० तहेव जहा विजए दारे —जाव—तवणिज्ज वालुगपत्थडा, सुहफासा, सस्सिरीया, सरूवा, पासाईया—जाव—पडिरूवा ।

विजया राजधानी की प्रत्येक बाहा में एक सौ पच्चीस द्वार—

१०८. विजया राजधानी की एक-एक बाहा में एक सौ पच्चीस एक सौ पच्चीस द्वार होते हैं, ऐसा कहा गया है ।

ये प्रत्येक द्वार साढ़े बासठ योजन के ऊँचे, इकतीस योजन और एक कोस के विस्तार वाले हैं, और उतना ही विस्तार वाला प्रवेश मार्ग है, श्वेतवर्ण वाले हैं, और श्रेष्ठ सोने से बनी हुई स्तूपिकाओं-शिखरों से मंडित हैं, तथा इहामृग आदि के चित्रामों से चित्रित आदि जैसा वर्णन विजयद्वार का पूर्व में किया गया है उसी प्रकार इनका भी वर्णन करना चाहिये यावत् तपनीय स्वर्णमय बालुका बिछी हुई है, सुखद स्पर्श वाले, सश्रीक, रूप सम्पन्न, दर्शनीय यावत् प्रतिरूप है ।

१०९. तेसि णं दाराणं उभयपासिं दुहओ णिसीहियाए दो चंदण-कलसपरिवाडीओ पण्णत्ताओ, तहेव भाणियव्वं—जाव—वणमालाओ । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३५

१०९. इन द्वारों के दोनों ओर की दोनों नैषेधिकाओं पर दो-दो चन्दन कलशों की श्रेणियाँ कही गई हैं, इनका वर्णन भी पूर्व की तरह कहना चाहिये यावत् वनमालायें हैं ।

पगंठगाणं पमाणं—

११०. तेसि णं दाराणं उभओ पासिं दुहओ णिसीहिआए दो दो पगंठगा पण्णत्ता, तेणं पगंठगा एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं, पण्णरसजोयणाइं अड्ढाइज्जे कोसे बाहल्लेणं पण्णत्ता । सव्ववइरामया अच्छा—जाव—पडिरूवा ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३५

प्रकंठकों का प्रमाण—

११०. इन द्वारों के उभय पार्श्व की दोनों नैषिधिकाओं में दो-दो प्रकण्ठक पीठ विशेष कहे गये हैं, वे प्रकंठक एक कोस अधिक इकतीस योजन के लम्बे-चौड़े हैं, ढाई कोस अधिक पन्द्रह योजन के मोटे कहे गये हैं, तथा सर्वात्मना वज्ररत्नों से बने हुए, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं ।

पासायवडिंसगाण पमाणं—

१११. तेसि णं पगंठगाणं उप्पि पत्तेयं पत्तेयं पासायवडिंसगा पण्णत्ता । तेणं पासायवडिंसगा एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णरसजोयणाइं अड्ढाइज्जे य कोसे आयाम-विक्खंभेणं सेसं तं चेव—जाव—समुग्गया । णवरं—बहुवयणं भाणियव्वं ।

प्रासादवतंसकों का प्रमाण—

१११. इन प्रत्येक प्रकंठकों के ऊपर एक-एक प्रासादवतंसक कहे गये हैं, ये प्रत्येक प्रासादावतंसक ऊँचाई में एक कोस अधिक इकतीस योजन ऊँचे, अढाई कोस अधिक पन्द्रह योजन के लम्बे-चौड़े हैं, शेष वर्णन समुद्गक पर्यन्त पूर्व की तरह समझ लेना चाहिये, लेकिन अन्तर इतना है कि विजयद्वार के वर्णन में एक वचन का प्रयोग है और यहाँ बहुवचन का प्रयोग करना चाहिये ।

११२. विजयाए णं रायहाणीए एगमेगे दारे अट्ठसयं चक्कज्झयाणं —जाव—अट्ठसयं सेयाणं चउविसाणाणं णागवरकेऊणं,

११२. विजया राजधानी के प्रत्येक द्वार के ऊपर एक सौ आठ चक्र के चिह्न से अंकित ध्वजायें हैं यावत् श्रेष्ठ नाग के केतुभूत श्वेत चार दन्तों की आकृति के चिह्न से अंकित एक सौ आठ

एवामेव सपुव्वावरेणं विजयाए रायहाणीए एगमेगे दारे आसीयं आसीयं केउसहस्सं भवंतीतिमक्खायं ।

—जीवा० प० ३, उ० १ सु० १३५

ध्वजायें फहरा रही हैं, इस प्रकार सब मिलाकर उस विजया राजधानी के प्रत्येक द्वार पर एक हजार अस्सी, एक हजार अस्सी ध्वजायें कही गई हैं ।

विजयारायहाणीए दाराण पुरओ सत्तरस भोमा—

११३. विजयाए णं रायहाणीए एगमेगे दारे (तेसि णं दाराणं पुरओ) सत्तरस भोमा पण्णत्ता ।

तेसि णं भोमाणं भूमिभागा उल्लोया य पउमलया—जाव—भत्तिचित्ता ।

तेसि णं भोमाणं बहुमज्झदेसभाए जे ते नवमनवमा भोमा ।

तेसि णं भोमाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सीहासणा पण्णत्ता, सीहासण वण्णओ—जाव—दामा जहा हेट्ठा एत्थ णं अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं पत्तेयं भद्दासणा पण्णत्ता ।

विजया राजधानी के द्वारों के आगे सतरह भौम—

११३. विजया राजधानी के उन प्रत्येक द्वार पर (द्वार के आगे) सतरह-सतरह भौम कहे गये हैं ।

इन भौमों के अन्दर की छत और अगासी में पद्मलता आदि यावत् चित्राम चित्रित हैं ।

इन भौमो के बीचोंबीच के भाग में नौवां भौम है ।

उन सब भौमों के बीचोंबीच अलग-अलग एक-एक सिंहासन कहा गया है । इन सब सिंहासनों का दाम पर्यन्त का वर्णन जैसा पूर्व में विजयद्वार के वर्णन में किया है, वैसा ही वर्णन यहां कर लेना चाहिये, यहाँ अवशेष भौमों में से प्रत्येक मे भद्रासन कहे गये हैं ।

११४. तेसि णं दाराणं उवरिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया, तं चेव—जाव—छत्ताइछत्ता ।

एवामेव पुव्वावरेण विजयाए रायहाणीए पंच दारसया भवंतीतिमक्खायं । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३५

११४. इन द्वारों के ऊपर का भाग सोलह प्रकार के रत्नों से उपशोभित है, और शेष वर्णन छत्रातिछत्र विजयद्वार के वर्णन जैसा ही समझ लेना चाहिये ।

इस प्रकार पूर्वापर आगे-पीछे के सब मिलाकर विजया राजधानी के पांच सौ द्वार होते हैं, ऐसा कहा गया है ।

विजयारायहाणीए चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा—

११५. विजयाए णं रायहाणीए चउद्दिसिं पंचजोयणसयाइं अबाहाए—एत्थ णं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—(१) असोगवणे, (२) सत्तवण्णवणे, (३) चंपगवणे, (४) चूतवणे ।

(१) पुरत्थिमेणं असोगवणे, (२) दाहिणेणं सत्तवण्णवणे, (३) पच्चत्थिमेणं चंपगवणे, (४) उत्तरेणं चूतवणे ।

तेणं वणसंडा साइरेगाइं दुवालसजोयणसहस्साइं आयामेणं पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं, पण्णत्ता । पत्तेयं पत्तेयं पागारपरिक्खित्ता किण्हा किण्होभासा, वणसंड वण्णओ भाणियव्वो । -जाव-बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति, सयंति, चिट्ठन्ति, णिसीयंति, तुयट्टन्ति, रमंति, ललंति, कीलंति, मोहंति, पुरापोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कम्माणं कडाणं कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३६

विजया राजधानी के चार दिशा में चार वनखण्ड—

११५. विजया राजधानी की चारों दिशाओं में पांच सौ योजन आगे जाने पर चार वनखंड कहे गये हैं, यथा—(१) अशोकवन, (२) सप्तपर्णवन, (३) चंपकवन और (४) आम्रवन ।

इनमें से पूर्व दिशा में अशोकवन दक्षिण दिशा में सप्तपर्णवन, पश्चिम दिशा में चंपकवन और उत्तर दिशा में आम्रवन है ।

ये प्रत्येक वनखंड कुछ अधिक बारह हजार योजन के लम्बे और पांच सौ योजन के चौड़े कहे गये हैं, प्रत्येक वनखंड प्राकार-कोट से घिरा हुआ है और कृष्णवर्ण जैसा प्रतीत होता है, और छाया भी कृष्ण वर्ण की है, वनखंड का वर्णन (पूर्व में किये गये वनखंड वर्णन जैसा) कर लेना चाहिये—यावत्—बहुत से वाणव्यंतर देव और देवियां जहां सुखपूर्वक बैठती हैं, सोती हैं, खड़ी होती हैं, बैठी रहती हैं, लेटती हैं, रमण करती हैं, यथारुचि, मनोनुकूल कार्य करती हैं, क्रीड़ा करती हैं, इन्द्रियिक विषय सेवन करती हैं, और इस प्रकार से पूर्व जन्म में किये हुए सुआचरित, सुपरिक्रान्त शुभ कर्मों के, कल्याण रूप फलविशेषों का उपभोग करती हुई समय व्यतीत करती हैं ।

पासायवडिंसगाणं पमाणं—

११६. तेसि णं वणसंडाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं पासायवडिंसगा पण्णत्ता। तेणं पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिया तहेव-जाव-अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता। उल्लोया, पउमलया, भत्ति-चित्ता भाणियव्वा।

प्रासादावतंसकों का प्रमाण—

११६. इन वनखण्डों में से प्रत्येक वनखंड के मध्यातिमध्य भाग में अलग-अलग प्रासादावतंसक कहे गये हैं, इन प्रासादावतंसकों की ऊँचाई बासठ योजन और अर्धकोस की है, और लम्बाई-चौड़ाई एक कोस अधिक इकतीस योजन की है, ये भूमितल से ऊपर उठे हुए हैं, इत्यादि वर्णन पूर्व में आगत वर्णन के अनुरूप करना चाहिए—यावत्—अन्दर का भूमिभाग अत्यधिक समतल और रमणीय कहा गया है, ऊपर की छत पद्मलता आदि के चित्रों से चित्रित है आदि सभी वर्णन कहना चाहिए।

११७. तेसि णं पासायवडेंसगाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सीहासणा पण्णत्ता, वण्णावासो सपरिवारा।

११७. इन प्रासादावतंसकों में से प्रत्येक के मध्यातिमध्य भाग में एक-एक सिंहासन कहा गया है, भद्रासनों आदि परिवार सहित इनका वर्णन करना चाहिये।

११८. तेसि णं पासायवडेंसगाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठ मंगलगा, झया, छत्तातिछत्ता।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति। तं जहा—(१) असोए, (२) सत्तवण्णे, (३) चंपए, (४) चूते।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३६

११८. इन प्रासादावतंसकों के ऊपर आठ-आठ मंगलद्रव्य, ध्वजा, छत्रातिछत्र हैं।

वहाँ पर महा ऋद्धिसम्पन्न—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले चार देव निवास करते हैं, यथा—(१) अशोक वन में अशोक नाम का देव, (२) सप्तपर्णवन में सप्तपर्ण नाम का देव, (३) चंपकवन में चंपक नाम का देव, और (४) आम्रवन में चूत नाम का देव रहता है।

११९. तत्थ णं ते साणं साणं वणसंडाणं, साणं साणं पासायवडेंसयाणं साणं साणं सामाणियाणं, साणं साणं अग्गमहिसीणं, साणं साणं परिसाणं, साणं साणं आयरक्खदेवाणं आहेवच्चं -जाव-विहरंति।

११९. ये अशोक आदि देव अपने-अपने वनखंड का, अपने-अपने प्रासादावतंसक का, अपने-अपने सामानिक देवों का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदाओं का और अपने-अपने आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य करते हुए—यावत्—सुखपूर्वक रहते हैं।

१२०. विजयाए णं रायहाणीए अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,-जाव-पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए—तणसद्दविहूणे -जाव-देवा य देवीओ य आसयंति-जाव-विहरंति।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३६

१२०. विजया राजधानी का अन्तवर्ती भूमिभाग बहुत ही सम एवं रमणीय कहा गया है—यावत्—पाँच वर्णों की मणियों से उपशोभित है, तृण आदि के शब्द से रहित—यावत्—देव और देवियाँ विश्राम करती हैं—यावत्—सुखपूर्वक समय बिताती हैं।

ओवरियालेणस्स पमाणं—

१२१. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं एगे महं ओवरियालेणे पण्णत्ते, बारसजोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, तिन्नि जोयणसहस्साइं सत्त य पचाणउए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं, सव्व जंबूणयामए, अच्छे-जाव-पडिरूवे।

उपकारिकालयन का प्रमाण—

१२१. इस बहुत अधिक सम और रमणीय भू-प्रदेश के ठीक बीचों-बीच के भाग में एक बहुत बड़ा उपकारिकालयन (सचिवालय, कार्यालय आदि) कहा गया है, जो बारह सौ योजन का लम्बा-चौड़ा है और परिक्षेप विशेषाधिक तीन हजार सात सौ पंचानवें योजन का है, इसकी मोटाई आधे कोस की है, और सर्वात्मना जाम्बूनद स्वर्ण से बना हुआ है, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

१२२. से णं एगाए पउमवरवेइयाए, एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते,

१२२. वह उपकारिकालयन एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से चारों ओर सर्वात्मना घिरा हुआ है।

पउमवरवेइयाए वण्णओ, वणसंड-वण्णओ-जाव-देवाय देवीओ य आसयंति-जाव-विहरंति ।

यहाँ पद्मवरवेदिका और वनखंड का वर्णन कर लेना चाहिये —यावत्—देव-देवियाँ बैठती है—यावत्—विचरण करती हैं ।

१२३. से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवाल-विक्खंभेणं, ओवरियालयणसमपरिक्खेवेणं ।

१२३. इस वनखंड का चक्रवाल-विष्कम्भ—घेरा कुछ कम दो योजन का है, और उपकारिकालयन के बराबर परिक्षेप वाला है ।

तस्स णं ओवरियालयणस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाण पडिरूवगा पण्णत्ता । वण्णओ ।

इस उपकारिकालयन के चारों ओर चार त्रिसोपान पंक्तियाँ कही गयी हैं, यहाँ त्रिसोपान का वर्णन करना चाहिए ।

१२४. तेसि णं तिसोवाण पडिरूवगाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं तोरणा पण्णत्ता-जाव-छत्तातिछत्ता ।

१२४. इन शोभनीय तीन सोपानों में से प्रत्येक के आगे तोरण कहे गये हैं—यावत्—छत्रातिछत्र हैं ।

१२५. तस्स णं ओवरियालयणस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,-जाव-मणीहिं उवसोभिए । मणिवण्णओ, गंध-रस-फासो । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३६

१२५. इस उपकारिकालयन की ऊपरी छत का प्रदेश बहुत ही सम और रमणीय कहा गया है—यावत्—मणियों से शोभायमान हो रहा है, यहाँ मणियों का वर्णन तथा गंध रस और स्पर्श का वर्णन कहना चाहिये ।

मूलपासायवडिंसस्स पमाणं—

मूलप्रासादवतंसक का प्रमाण—

१२६. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं एगे महं मूलपासायवडिंसए पण्णत्ते ।

१२६. इस बहु सम रमणीय भूमिभाग के मध्यातिमध्य भाग में एक विशाल मुख्य प्रासादावतंसक कहा गया है ।

से णं पासायवडिंसए बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं, अब्भुग्गयमूसियप्पहसिए, तहेव ।

वह प्रासादावतंसक बासठ योजन और आधे योजन का ऊंचा है, तथा एक कोस अधिक इकतीस योजन का लम्बाई-चौड़ाई वाला है, और ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी ऊँचाई से आकाश-तल का स्पर्श करके उसका उपहास कर रहा है, इत्यादि वर्णन पूर्व में किये गये वर्णन के अनुरूप इसका भी समझना चाहिये ।

तस्स णं पासायवडिंसगस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,-जाव- मणिफासे उल्लोए ।

इस प्रासादावतंसक का अन्तवर्ती भूमिभाग अत्यन्तसम एवं रमणीय कहा गया है—यावत्—मणियों का स्पर्श और उल्लोक-चांदनी का वर्णन पूर्व की तरह करना चाहिये ।

१२७. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे—एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता ।

१२७. इस अत्यन्त सम एवं रमणीय भूमिभाग के अतिमध्यभाग में एक बहुत बड़ी मणिपीठिका कही गई है ।

सा य एगं जोयणमायाम-विक्खंभेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

यह मणिपीठिका एक योजन की लम्बी चौड़ी है, और आधे योजन की मोटी है, तथा सर्वात्मना रत्नों से बनी हुई स्वच्छ——यावत्—प्रतिरूप है ।

तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते । एवं सीहासण-वण्णओ सपरिवारो ।

इस मणिपीठिका के ऊपर एक बहुत बड़ा सिंहासन कहा गया है, और भद्रासन आदि परिवारसहित इस सिंहासन का वर्णन करना चाहिए ।

१२८. तस्स णं पासायवडिंसगस्स उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया, छत्तातिछत्ता ।

१२८. इस प्रासादावतंसक के ऊपर अनेक आठ-आठ मंगलद्रव्य, ध्वजायें और छत्रातिछत्र हैं ।

से णं पासायवडेंसगा अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।

यह प्रासादावतंसक अपनी ऊँचाई से आधी ऊँचाई वाले अन्य चार प्रासादावतंसकों द्वारा सर्वत सभी दिशाओं से परि-वेष्टित है ।

पासायवडिंसगाणं पमाणं—

१२९. ते णं पासायवडिंसगा एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धसोलस जोयणाइं अद्धकोसं च आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गतमूसियपहसियाविव विविहमणिरयण - भत्तिचित्ता तहेव, तेसि णं पासायवडिंसयाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा उल्लोया।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सीहासणं पण्णत्तं, वण्णओ।

तेसि परिवारभूता भद्दासणा पण्णत्ता, तेसि णं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता।

१३०. ते णं पासायवडिंसका अण्णेहिं चउहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तपमाण-मेत्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता।

१३१. ते णं पासायवडेंसका अद्धसोलसजोयणाइं अद्धकोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं देसूणाइं अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गय-मूसियपहसियाविव विविहमणिरयणभत्तिचित्ता तहेव, तेसि णं पासायवडेंसगाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा उल्लोया, तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झ-देसभाए पत्तेयं पत्तेयं पउमासणा पण्णत्ता, तेसि णं पासायाणं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता।

१३२. ते णं पासायवडेंसगा अण्णेहिं चउहिं तदुद्धुच्चत्तपमाणमेत्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता।

१३३. ते णं पासायवडेंसका देसूणाइं अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं देसूणाइं चत्तारि जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गतमूसिय-पहसियाविव विविहमणिरयणभत्तिचित्ता भूमिभागा उल्लोया भद्दासणाइं उवरिं मंगलगा झया छत्तातिछत्ता।

१३४. ते णं पासाय वडेंसगा अण्णेहिं चउहिं तदुद्धच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडिंसएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता।

ते णं पासायवडेंसगा देसूणाइं चत्तारि जोयणाइं उड्ढं

प्रासादावतंसकों का प्रमाण—

१२९. ये प्रासादावतंसक ऊँचाई में एक कोस अधिक इकतीस योजन ऊँचे हैं, तथा साढ़े पन्द्रह योजन और आधे कोस के लम्बे-चौड़े हैं, अपनी ऊँचाई से ऐसे प्रतीत होते हैं कि आकाश का स्पर्श करते हुए उसका उपहास ही कर रहे हैं, अनेक प्रकार के मणिरत्नों के चित्रामों से चित्रित है, इत्यादि वर्णन पूर्व में किये गये वर्णन के अनुरूप कहना चाहिये, इन प्रासादावतंसकों का अन्तर्वर्ती भूमिभाग अत्यधिक सम और रमणीय है, और चाँदनी—अगासी है, इत्यादि वर्णन करना चाहिये।

इन बहु सम रमणीय भूमिभागों के बीचों-बीच पृथक्-पृथक् सिंहासन कहे गये हैं, उनका वर्णन करना चाहिये।

इन सिंहासनों के परिवार-भूत अन्य भद्रासन कहे गये हैं, और उनके आठ-आठ मंगलद्रव्य ध्वजायें, छत्रातिछत्र हैं, (इत्यादि सबका वर्णन यहाँ पर करना चाहिये।)

१३०. ये प्रासादवतंसक भी अन्य चार-चार प्रासादावतंसकों से सर्व दिशाओं में घिरे हुए हैं, जिनकी ऊँचाई उन प्रासादावतंसको से आधी है।

१३१. ये सभी प्रासादावतंसक साधिक अर्ध कोस साढ़े पन्द्रह योजन के ऊँचे हैं, कुछ कम आठ योजन के लम्बे-चौड़े हैं, तथा अपनी ऊँचाई से आकाश का स्पर्श करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, कि, उसका उपहास ही कर रहे हैं, विविध मणिरत्नों से बने चित्रों से चित्रित है, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् करना चाहिये, इन प्रासादावतंसकों का भीतरी भाग बहुत ही सम और रमणीय है, और चाँदनी—अगासी है, उन बहु सम और रमणीय भूमिभागों के अति मध्य प्रदेश में पृथक्-पृथक् पद्मासन कहे गये हैं, उन प्रासादों के अग्र भाग में आठ-आठ मंगलद्रव्य; ध्वजायें छत्राति-छत्र हैं।

१३२. ये प्रासादावतंसक अपने से आधी ऊँचाई के प्रमाण वाले अन्य चार प्रासादावतंसकों द्वारा सर्वतः चारों दिशाओं में घिरे हुए हैं।

१३३. ये प्रासादावतंसक देशोन आठ योजन ऊँचे और देशोन चार योजन के लम्बे-चौड़े हैं, तथा अपनी ऊँचाई से आकाश मंडल का स्पर्श करते हुए मानो उसका उपहास करते हुए से प्रतीत होते हैं विविध मणि रत्नों से बने हुए अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित हैं, भूमिभाग, उल्लोकों, भद्रासनों के ऊपर अष्ट मंगलद्रव्य, ध्वजायें, छत्रातिछत्र इत्यादि वर्णन कर लेना चाहिये।

१३४. ये प्रासादावतंसक भी अपने से आधी ऊँचाई वाले और दूसरे चार प्रासादावतंसकों द्वारा चारों दिशाओं में घिर हुए हैं।

ये प्रासादावतंसक देशोन चार योजन के ऊँचे हैं, देशोन दो

उच्चत्तेणं, देसूणाइं दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, अब्भुग्गय-मूसिय० भूमिभागा, उल्लोया, पउमासणाइं, उवरिं मंगलगा, झया, छत्ताइछत्ता।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३६

विजयदेवस्स सुहम्मा सभा वण्णओ—

१३५. तस्स णं मूल पासायवडेंसगस्स उत्तर-पुरत्थिमे णं—एत्थ णं विजयस्स देवस्स सभा सुहम्मा पण्णत्ता। अद्धतेरस जोयणाइं आयामेणं छ सक्कोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं, णव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं।

अणेगखंभसयसंनिविट्ठा, अब्भुग्गयसुकयवइरवेदिया, तोरण-वररइयसाल भंजिया, सुसिलिट्ठ, विसिट्ठ-लट्ठ-संठिय-पसत्थ वेरुलिय-विमलखंभा, णाणामणि-कणग-रयण-खइय-उज्जल-बहु-सम-सुविभत्त-चित्तरमणिज्ज-कुट्टिमतला, ईहामिय-उसभ-तुरग णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर—कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्ता, खंभुग्गय वइरवेइया परिगया-भिरामा, विज्जाहर जमल-जुयलजंतजुत्ताविव, अच्चिसहस्स-मालणीया, रूवगसहस्स कलिया भिसमाणी, भिब्भिसमाणी, चक्खुलोयणलेसा, सुहफासा, सस्सिरीयरूवा।

कंचण-मणिरयण-थूभियागा, णाणाविह पंचवण्ण-घंटा-पडाग-परिमंडितग्गसिहरा, धवला, मिरीइकवचं विणिम्मुयंती लाउल्लोइयमहिया, गोसीस-सरसरत्तचंदण-दद्दरदिन्नपंचगुलि-तला, उवचियचंदण कलसा, चंदणघडसुकय-तोरण-पडिदुवार-देसभागा, आसत्तोसत्त-विउल-वट्ट-वग्घारिय-मल्लदामकलावा, पंचवण्ण-सरस-सुरभिमुक्क-पुप्फपुञ्जोवयारकलिया, कालागुरु-पवर-कुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूवमघमघेंत-गंधुद्धुयाभिरामा-सुगंधवर-

योजन के लम्बे-चौड़े हैं, अपनी ऊँचाई से आकाश को स्पर्श करते हैं, समतल भूमिभाग है, उल्लोक, पद्मासन, ऊपर मंगल द्रव्य, ध्वजायें, छत्रातिछत्र इत्यादि वर्णन पहले किये गये वर्णन के जैसा ही समझना चाहिये।

विजयदेव की सुधर्मा सभा का वर्णन—

१३५. इस मुख्य प्रासादावतंसक की उत्तर-पूर्व दिशा ईशानकोण में विजयदेव की सुधर्मा सभा कही गई है, यह सभा साढ़े-बारह योजन की लम्बी, कोसाधिक छह योजन (सवा छह योजन) की चौड़ी और ऊँचाई में यह नौ योजन की ऊँची है।

(यह) अनेक सैकड़ों खम्भों से सन्निविष्ट है, अच्छी तरह से बनी हुई वेदिका से युक्त है, जिसके श्रेष्ठ तोरण (मुख्य द्वार) पर (शोभानिमित्त) शाल भंजिकायें (काष्ठ से बनी पुत्तलिकायें) बनी हुई हैं, जिसके स्तम्भ अति सुघड़तापूर्वक लेप (पलस्तर) किये गये और विमल वैडूर्य मणियों से खचित हैं, जिसका भूमिभाग (फर्श) अनेक प्रकार की मणियों, स्वर्ण और रत्नों से खचित है, अर्थात् जिसके फर्श में मणिरत्न आदि जड़े हुए हैं, जिससे बड़ा ही उज्ज्वल समतल सुविभक्त और चित्ताकर्षक है, ईहामृग, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु, सरभ, अष्टापद, चमरीगाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्रों से चित्रित है, स्तम्भों के ऊपर वज्र की बनी हुई वेदिकाओं से अत्यन्त सुहावनी प्रतीत हो रही है, और स्तम्भों पर समश्रेणी में बने हुए विद्याधर युगल यन्त्रचालित जैसे प्रतीत होते हैं, अपनी चमचमाहट से हजारों सूर्य किरणों की माला जैसी प्रतीत होती है, हजारों रूपों से यह युक्त है, दीप्यमान, देदीप्यमान है, दर्शकों के नेत्रों को आकृष्ट करने वाली है, इसका स्पर्श सुखकारी है, इसका रूप बड़ा मनोहर है।

इसके शिखर स्वर्ण मणि और रत्नों के बने हुए हैं, अनेक प्रकार के घंटों और पंचवर्ण वाली पताकाओं से जिसके शिखरों के अग्रभाग मंडित हैं, ये शिखर धवल-श्वेत वर्ण के हैं, जिनसे ऐसी प्रतीत होती है कि मानो किरणरूपी कवचों को छोड़ रही है, अर्थात् चारों ओर से किरणें निकल रही हैं, इसका भीतरी भाग गोबर से लिपा हुआ और भीतें खड़िया मिट्टी से पुती होने से पवित्रता की प्रतीति होती है, इसकी भित्तियों पर गोशीर्ष और सरस रक्त चन्दन के हाथ के थापे लगे हुए हैं, मंगल के निमित्त जिसमें चन्दन कलश रखे हैं, इसके प्रत्येक द्वारों पर सुन्दरता से बनाये गये चन्दन कलशों से तोरण स्थापित किये गये हैं, जिसकी छत से लटकाई गई विपुल और गोलाकार मालाओं का समूह नीचे जमीन पर लटक रहा है, पांच वर्ण के सरस सुगन्धित पुष्प पुञ्जों से सुशोभित है, श्रेष्ठ कालागुरु, कुन्दुरुक्क, तुरुष्क धूप की महकती हुई गंध से जिसके ... सुगन्धित हो रहे हैं, उत्तम सुगन्ध से सुगन्धित हो रही है, जिसकी गंध की गुटिका जैसी

गंधिया, गंधवट्टिभूया, अच्छरगणसंघसंविकिन्ना-दिव्वतुडिय-मधुरसद्दसंपणाइया, सुरम्मा, सव्वरयणामयी अच्छा-जाव-पडिरूवा।

—जीवा० प०, ३ उ० १, सु० १३७

प्रतीत होती है, जो भिन्न-भिन्न देवगणों से खचाखच भरी हुई है, दिव्य वादित्रों के मधुर शब्दघोषों से जो प्रतिध्वनित हो रही है, देखने वालों को रमणीय प्रतीत होती है, सर्वात्मना रत्नमयी स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

सोहम्माए सभाए तिदिसिं तओदारा—

१३६. तीसे णं सोहम्माए सभाए तिदिसिं तओदारा पण्णत्ता।

तेणं दारा पत्तेयं पत्तेयं दो दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगं जोयणं विक्खंभेण, तावइयं चेव पवेसेणं, सेया, वर-कणग थूभियागा,-जाव-वणमाला, दारवण्णओ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३७

सुधर्मा सभा के तीन दिशाओं में तीन द्वार—

१३६. इस सुधर्मा सभा के तीन दिशाओं में तीन द्वार कहे गये हैं।

ये प्रत्येक द्वार दो-दो योजन ऊँचे, चौड़ाई में एक-एक योजन के हैं, और उतना ही प्रवेश करने का क्षेत्र है, इन द्वारों के उपरितन भाग श्वेत एवं श्रेष्ठ स्वर्ण के बने हुए हैं—यावत्—वनमाला के चित्र बने हैं, इसी प्रकार शेष द्वारों का वर्णन करना चाहिये।

मुहमंडवाण पमाणं—

१३७. तेसि णं दाराणं पुरओ मुहमंडवा पण्णत्ता, तेणं मुहमंडवा, अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं, छ जोयणाइं सक्कोसाइं विक्खंभेणं, साइरेगाइं दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मुहमंडवा अणेगखंभसय संनिविट्ठा,-जाव-उल्लोया, भूमिभाग-वण्णओ।

तेसि णं मुहमंडवाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं अट्ठट्ठ मंगला पण्णत्ता, सोत्थिय-जाव-दप्पण०।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३७

मुखमंडपों का प्रमाण—

१३७. इन द्वारों के आगे मुखमंडप कहे गये हैं, ये मुखमंडप साढ़े बारह योजन की लम्बाई और एक कोस अधिक छह योजन की चौड़ाई वाले हैं, और कुछ अधिक दो योजन के ऊँचे हैं, ये मुख मंडप अनेक सैकड़ों खम्भों से युक्त हैं—यावत्—उल्लोक एवं भूमिभाग इत्यादि का वर्णन करना चाहिये।

इन प्रत्येक मुख मंडपों के ऊपर आठ-आठ मंगलद्रव्य कहे गये हैं, यथा—स्वस्तिक—यावत्—दर्पण।

पेच्छाघरमंडवाणं पमाणं—

१३८. तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं पेच्छा घरमंडवा पण्णत्ता।

तेणं पेच्छाघरमंडवा अद्धतेरस जोयणाइं आयामेणं,-जाव-दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,-जाव-मणिफासो।

प्रेक्षाघर मंडपों का प्रमाण—

१३८. इन प्रत्येक मुखमंडपों के आगे प्रेक्षागृह मंडप कहे गये हैं।

ये प्रेक्षागृह मंडप साढ़े बारह योजन के लम्बे—यावत्—ऊँचाई में दो योजन के ऊँचे हैं—यावत्—भूमिभाग का वर्णन मणियों के स्पर्श के वर्णन तक पूर्व के जैसा करना चाहिये।

१३९. तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं वइरामय अक्खाडगा पण्णत्ता।

तेसि णं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं मणिपीढिया पण्णत्ता।

ताओ णं मणिपीढियाओ जोयणमेगं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ।

तासि णं मणिपीढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं सीहासणा पण्णत्ता।

सीहासण,वण्णओ-जाव-दामा परिवारो।

१३९. प्रत्येक मुखमंडप के अतिमध्यभाग में वज्ररत्न से बने हुए अखाड़े कहे गये हैं।

इन वज्ररत्नमय अखाड़ों के बीचों-बीच अलग-अलग मणि-पीठिकायें कही गई हैं।

ये मणिपीठिकायें एक योजन की लम्बी चौड़ी और आधे योजन की मोटी है, सर्वात्मना रत्नमयी, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

इन प्रत्येक मणिपीठिकाओं पर अलग-अलग सिंहासन कहे गये हैं।

इन सिंहासनों का वर्णन—यावत्—मालाओं का भद्रासन आदि परिवारसहित वर्णन पूर्व के जैसा करना चाहिये।

१४०. तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा, झया, छत्ताइछत्ता।

१४०. इन प्रेक्षागृह मंडपों के ऊपर आठ-आठ मंगल द्रव्य हैं, ध्वजायें हैं, छत्रातिछत्र हैं।

१४१. तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ तिदिसिं तओ मणिपेढियाओ, पण्णत्ताओ।

ताओ णं मणिपेढियाओ दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ। —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३७

१४१. इन प्रेक्षागृह मंडपों के सामने तीन दिशाओं में तीन मणिपीठिकायें कही गई हैं।

ये मणिपीठिकायें दो योजन की लम्बी-चौड़ी और एक योजन की मोटी हैं, सभी सर्वात्मना रत्नमयी स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

चेइयथूभाणं पमाणं—

१४२. तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं चेइयथूभा पण्णत्ता, तेणं चेइयथूभा दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, साइरेगाइं दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सेया, संखंककुन्ददगरयामयमहियफेणपुञ्ज सण्णिकासा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

१४३. तेसि णं चेइयथूभाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा, बहुकिण्हचामर, झया, पण्णत्ता छत्ताइछत्ता।

तेसि णं चेइयथूभाणं चउद्दिसिं पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।

ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३७

चैत्यस्तूपों का प्रमाण—

१४२. इन प्रत्येक मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग-अलग चैत्य स्तूप कहे गये हैं, ये चैत्य स्तूप दो योजन के लम्बे-चौड़े, और ऊँचाई में कुछ अधिक दो योजन के ऊँचे हैं, इनका वर्ण शंख, कुन्दपुष्प, जलकण, अमृत और मथित फेन पुंज के समान श्वेत है, ये सभी सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

१४३. इन चैत्य स्तूपों के ऊपर आठ-आठ मंगलद्रव्य, अत्यन्त कृष्णवर्णीय चामर आदि ध्वजायें छत्रातिछत्र कहे गए हैं।

इन प्रत्येक चैत्य स्तूपों की चारों दिशाओं की पृथक्-पृथक् चार मणिपीठिकायें कही गई हैं।

ये मणिपीठिकायें एक योजन की लम्बी-चौड़ी और आधे योजन की मोटी हैं, तथा सर्वात्मना मणिमयी हैं।

चत्तारि जिणपडिमाओ—

१४४. तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि जिणपडिमाओ जिणुस्सेहपमाणमेत्ताओ पलियंकणिसण्णाओ थूभाभिमुहीओ सन्निविट्ठाओ चिट्ठन्ति, तं जहा—(१) उसभा, (२) वद्धमाणा, (३) चंदाणणा, (४) वारिसेणा।

चार जिनप्रतिमायें—

१४४. इन प्रत्येक मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग-अलग चार जिन प्रतिमायें हैं, जिनका उत्सेध जिनेश्वर के उत्सेध प्रमाण है, अर्थात् जिनका उत्सेध उत्कृष्ट पांच सौ धनुष और जघन्य सात हाथ का है, ये सब जिन प्रतिमायें पर्यंकासन से बैठी हुई हैं, और इनका मुख स्तूप के अभिमुख है, प्रतिमाओं के नाम इस प्रकार हैं—(१) ऋषभ, (२) वर्धमान, (३) चन्द्रानन, (४) वारिषेण।

१४५. तेसि णं चेइयथूभाणं पुरओ तिदिसिं पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढियाओ दो दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३७

१४५. इन चैत्य स्तूपों के आगे तीन दिशाओं में अलग-अलग मणि-पीठिकायें कही गई हैं, ये मणिपीठिकायें दो-दो योजन की लम्बी-चौड़ी, एक योजन की मोटी, सर्वात्मना रत्नमयी, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

चेइयरुक्खाणं पमाणं—

१४६. तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं चेइयरुक्खा पण्णत्ता, ते णं चेइयरुक्खा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धजोयणं उव्वेहेणं, दो जोयणाइं खंधी, अद्धजोयणं विक्खंभेणं छ जोय-

चैत्यवृक्षों का प्रमाण—

१४६. इन प्रत्येक मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग-अलग चैत्य वृक्ष कहे गये हैं, ये चैत्य वृक्ष आठ योजन ऊँचे हैं, उद्वेध की अपेक्षा (गहराई में) आधे योजन के हैं, इनके स्कन्ध दो योजन के [illegible] और [illegible] आधा योजन मोटा है, एक योजन

णाइं विडिमा, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, साइरेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ताइं।

की विडिमाएँ (वृक्ष के ठीक बीच में से निकलकर ऊपर की ओर फैलती हुई शाखाएँ) हैं, जिनकी बीच की लम्बाई-चौड़ाई आठ योजन की है, इसीलिए ये सभी चैत्य वृक्ष कुल मिलाकर कुछ अधिक आठ योजन के कहे गये हैं।

तेसि णं चेइयरुक्खाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—

इन चैत्यवृक्षों का वर्णन इस प्रकार का कहा गया है, यथा—

वइरामया मूला, रययसुपइट्ठिया विडिमा, रिट्ठामय विपुल कंदवेरुलिय-रुइलखंधा, सुजातरूवपढमगविसालसाली, णाणामणि-रयग-विविहसाहप्पसाह-वेरुलियपत्त तवणिज्जपत्त-वेंटा, जंबूणय-रत्त-मउय-सुकुमाल-पवाल-पल्लव-सोभंतवर-कुरग्गसिहरा, विचित्त मणि-रयण-सुरभिकुसुम-फलभर-णमिय-साला, सच्छाया, सप्पभासमिरीया सउज्जोया, अमयरस-समरस-फला, अहियं णयण-मण-णिव्वुइकरा, पासाईया-जाव-पडिरूवा।

इनकी मूल—जड़ें वज्ररत्न की हैं, चाँदी की इनकी विडिमायें मूल शाखाएँ हैं, रिष्ट रत्नमय इनके विपुल कन्द हैं, और वैडूर्य रत्न के स्कन्ध हैं, इनकी मूलभूत प्रथम विशाल शाखायें शुद्ध-श्रेष्ठ स्वर्ण की हैं, इनकी अनेक प्रकार की और दूसरी शाखा-प्रशाखाएँ नाना प्रकार के मणियों और रत्नों की हैं, इनके पत्ते वैडूर्य रत्न के हैं, और पत्तों के वृत्त-डठल तपे हुए स्वर्ण के हैं, जाम्बूनद-स्वर्ण विशेष से बने लाल रंग के मृदु मनोज्ञ इनके प्रवाल और पल्लव है, जिनमें इनके श्रेष्ठ अग्रशिखर सुशोभित हो रहे हैं, विचित्र मणियों के मणि-रत्नों के सुगन्धित कुसुमों और फलों के भार से इनकी शाखायें झुकी हुई हैं, इनकी छाया बड़ी भव्य है, प्रभा सहित है, किरणों सहित है, उद्योतसहित है, अमृत के समान रस वाले इनके फल हैं, अधिक-से-अधिक नयनों और मन को शांतिदायक है, दर्शनीय है—यावत्—प्रतिरूप हैं।

१४७. तेणं चेइयरुक्खा अन्नेहिं बहूहिं तिलय-लवय-छत्तोवग-सिरीस-सत्तवन्न-दहिवन्न-लोद्ध-धव-चंदण-नीव-कुडय-कयंब-पणस-ताल-तमाल-पियाल-पियंगु-पारावय-रायरुक्ख-नंदिरुक्खेहिं सव्वओ संपरिक्खित्ता।

१४७. ये चैत्य वृक्ष और भी बहुत से तिलक, लवंग, छत्रोपग, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्र, धव, चन्दन, नींव, कुटज, कदंब, पनस, ताल तमाल, प्रियाल, प्रियंगु, पारावत, राजवृक्ष और नन्दी वृक्ष आदि वृक्षों से सर्वतः चारों ओर से घिरे हुए हैं।

तेणं तिलया-जाव-नंदिरुक्खा, मूलवंतो-जाव-सुरम्मा।

ये सब तिलक—यावत्—नन्दी वृक्ष पर्यन्त के सभी वृक्ष प्रशान्त मूल-जड़ वाले—यावत्—सुरम्य हैं।

तेणं तिलया-जाव-नंदिरुक्खा, अन्नेहिं बहूहिं पउमलयाहिं-जाव-सामलयाहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, ताओ णं पउमलयाओ-जाव-सामलयाओ निच्चं कुसुमियाओ-जाव-पडिरूवाओ।

ये तिलक—यावत्—नन्दी वृक्षों पर्यन्त के सभी वृक्ष और भी अनेकों पद्मलताओं—यावत्—श्याम लताओं से चारों ओर से घिरे हुए, ये पद्मलतायें—यावत्—श्यामलतायें पर्यन्त की सभी लतायें कुसुमित—यावत्—प्रतिरूप हैं।

१४८. तेसि णं चेइयरुक्खाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

१४८. इन चैत्य वृक्षों के ऊपर बहुत से आठ-आठ मंगलद्रव्य हैं, ध्वजायें और छत्रातिछत्र हैं।

तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरओ, तिदिसिं तओ मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढियाओ, जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ, अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ। — जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३७

इन चैत्य वृक्षों के आगे तीन दिशाओं में तीन मणिपीठिकायें कही गयी हैं, ये मणिपीठिकायें एक योजन की आयाम-विष्कम्भ वाली और आधे योजन की मोटी हैं, ये सभी मणिपीठिकायें सर्वात्मना मणियों से बनी हुई हैं, स्वच्छ-निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं।

महिंदज्झयाणं पमाणं—

महेन्द्र ध्वजाओं का प्रमाण—

१४९. तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं महिंदज्झया अद्ध-ट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं, अद्ध-

१४९. इन प्रत्येक मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग-अलग महेन्द्र ध्वजायें हैं, ये ध्वजायें साढ़े सात योजन की ऊँची हैं, आधे कोस

कोसं विक्खंभेणं, वइरामय-वट्ट-लट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ-परिघट्ट-मट्ठ-सुपइट्ठिया, विसिट्ठा, अणेगवरपंचवण्ण कुडभीसहस्स-परिमंडियाभिरामा, वाउद्धुय विजय वेजयंतीपडागा, छत्तातिछत्त-कलिया, तुङ्गा, गगणतलमभिलंघमाणसिहरा, पासाईया -जाव-पडिरूवा ।

का इनका उद्वेध-गहराई है, आधे कोस का इनका विष्कम्भ है, तथा वज्ररत्न की बनी हुई हैं, इनका संस्थान गोल हैं, मनोज्ञ है, ये सब अपनी चिकनाई से ऐसी प्रतीत होती है कि मानो अच्छी तरह घिसी गई है, प्रमार्जित की गई है, सुप्रतिष्ठित हैं, अन्य ध्वजाओं की अपेक्षा विशिष्ट हैं, तथा ये सभी ध्वजायें अन्य अनेक श्रेष्ठ पचवर्णी की हजारों लघु पताकाओं से परिमंडित होने से देखने में सुन्दर है, वायु वेग से जिन पर निरन्तर विजय वैजयन्ती पताकायें उड़ती रहती हैं, जो छत्रातिछत्रों से युक्त और बहुत ऊँची है, गगनतल का उल्लंघन करने वाले जिनके शिखर है, दर्शनीय—यावत्—प्रतिरूप है ।

१५०. तेसि णं महिंदज्झयाणं उप्पि अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३७

१५०. इन महेन्द्र ध्वजाओं के ऊपर आठ-आठ मंगलद्रव्य, ध्वजायें और छत्रातिछत्र हैं ।

णंदा पोक्खरणियाणं पमाणं—

नन्दापुष्करणियों का प्रमाण—

१५१. तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ तिदिसिं तओ णंदाओ पोक्खरिणीओ पण्णत्ताओ । ताओ णं पुक्खरिणीओ अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं, सक्कोसाइं छ जोयणाइं विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ ।

पोक्खरिणी वण्णओ—

पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया परिक्खित्ताओ,

पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ताओ,

वण्णओ-जाव-पडिरूवाओ ।

१५१. इन महेन्द्र ध्वजाओं के आगे तीन दिशाओं में नन्दा नाम की तीन पुष्करिणियां कही गई है, ये पुष्करिणियां साढ़े बारह योजन की लम्बी, एक कोस अधिक छह योजन की चौड़ी और दस योजन की गहरी है, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है ।

पूर्व के समान इन पुष्करिणियों का वर्णन कर लेना चाहिये ।

ये प्रत्येक पुष्करिणियां पद्मवरवेदिकाओं से परिवेष्ठित घिरी हुई है,

और ये प्रत्येक पद्मवरवेदिकायें भी वनखंडों से परिवेष्ठित है,

इन पद्मवरवेदिकाओं और वनखंडों का वर्णन पूर्व की तरह यहां भी—यावत्—प्रतिरूप पद तक करना चाहिये ।

१५२. तेसि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं पत्तेयं तिदिसिं तिसोवाण पडिरूवगा पण्णत्ता ।

तेसि णं तिसोवाण पडिरूवगाणं वण्णओ,

तोरणा भाणियव्वा, जाव छत्ताइछत्ता ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३७

१५२. इन पुष्करिणियों की तीन दिशाओं में अलग-अलग त्रिसोपान पंक्तियां कही गई है ।

इन त्रिसोपान प्रतिरूपकों का यहां वर्णन करना चाहिये तथा तोरणों का वर्णन करना चाहिये और यह वर्णन—यावत्—छत्रातिछत्र पद तक करना चाहिये ।

मणोगुलियाणं संखा—

मनोगुलिकाओं की संख्या—

गोमाणसिआणं सखा—

१५४. सभाए णं सुहम्माए छ गोमाणसी साहस्सीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुरत्थिमेणं दो साहस्सीओ, एवं पच्चत्थिमेण वि, दाहिणेणं सहस्सं, एवं उत्तरेण वि।

तासु णं गोमाणसीसु बहवे सुवण्णरुप्पमया फलगा पण्णत्ता, -जाव-तेसु णं वइरामएसु नागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कया पण्णत्ता।

तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वेरुलियामइओ धूवघडियाओ पण्णत्ताओ।

ताओ णं धूवघडियाओ कालागुरु-पवर-कुन्दुरुक्क तुरुक्क -जाव-घाण-मण-णिव्वुइकरेणं गंधेण सव्वओ समंता आपूरेमाणीओ चिट्ठन्ति।

गोमानसिकाओं की संख्या—

१५४. इस सुधर्मा सभा में छह हजार गोमानसिकायें—(शैयारूप स्थान विशेष-आराम कुर्सी) कही गई हैं, ये इस प्रकार रखी हुई हैं—पूर्व दिशा में दो हजार इसी प्रकार पश्चिम दिशा में भी इतनी ही दक्षिण दिशा में एक हजार इसी प्रकार उत्तर दिशा में इतनी ही जानना चाहिए।

इन गोमानसिकाओं में अनेक स्वर्ण और चाँदी के बने हुए फलक—पटिये कहे गए हैं—**यावत्**—उन वज्ररत्नमय नागदंतकों पर बहुत से चाँदी के बने हुए छींके कहे गये है।

इन रजतमय छींकों में अनेक वैडूर्य रत्नों से बनी हुई धूपघटिकायें कही गई हैं।

ये धूपघटिकाएँ—धूपदान-श्रेष्ठ कालागुरु, कुन्दरुष्क, तुरुष्क—**यावत्**—घ्राण और मन को प्रफुल्लित करने वाली सुगन्ध से सभी दिशाओं को व्याप्त करती हैं।

१५५. सभाए णं सुहम्माए अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते -जाव-मणीणं फासो, उल्लोया, पउमलय-भत्तिचित्ता, -जाव-सव्व तवणिज्जमए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३७

१५५. सुधर्मा सभा का अन्तर्वर्ती भूमिभाग अत्यन्त सम और रमणीय कहा गया है—**यावत् मणिस्पर्श पद तक पूर्व की तरह भूमिभाग का वर्णन कर लेना चाहिये, उल्लोक-चाँदनी, पद्मलता आदि चित्रों से चित्रित—यावत्—वे सब** तपनीय स्वर्ण के बने हुए हैं, स्वच्छ—**यावत्**—प्रतिरूप है, (इत्यादि वर्णन विजयद्वार के वर्णन जैसा यहाँ कर लेना चाहिये।)

माणवगे चेइयखंभे—

१५६. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं एगा महं मणिपीढिया पण्णत्ता। सा णं मणिपीढिया दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमया। अच्छा-जाव-पडिरूवा।

१५७. तीसे णं मणिपीढियाए उप्पि—एत्थ णं माणवए णामं चेइयखंभे पण्णत्ते। अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं, उव्वेहेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, छ कोडीए छ लंसे, छ विग्गहिए वइरामय वट्ट लट्ठ संठिए एवं जहा महिंदज्झयस्स वण्णओ, पासाईए-जाव-पडिरूवे।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३८

माणवक चैत्य स्तम्भ—

१५६. इस बहुसम रमणीय भूमिभाग के ठीक बीच में एक बहुत बड़ी मणिपीठिका कही गई है, यह मणिपीठिका दो योजन की लम्बी-चौड़ी, एक योजन मोटी, सर्वात्मना रत्नमयी, स्वच्छ—**यावत्—प्रतिरूप** है।

१५७. इस मणिपीठिका के ऊपर माणवक नाम का एक चैत्य स्तम्भ कहा गया है, जो साढ़े सात योजन ऊँचा, आधे कोस का उद्वेध वाला (जमीन के अन्दर) आधे कोस का विस्तार वाला है, इसके छह कोने हैं, छह संधियाँ हैं, और छह विग्रह वाला है, यह वज्ररत्न का बना हुआ है, गोल और सुन्दर है, जैसा पहले माहेन्द्र ध्वज का वर्णन किया गया है वैसा ही इसका वर्णन करना चाहिये, यह दर्शनीय है—**यावत्**—प्रतिरूप है।

गोलवट्ट समुग्गएसु जिणसकहाओ—

१५८. तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स उवरिं छक्कोसे ओगाहित्ता, हेट्ठा वि छक्कोसे वज्जेत्ता, मज्झे अद्ध पंचमेसु जोयणेसु—एत्थ णं बहवे सुवण्णरुप्पमया फलगा पण्णत्ता।

गोल डिब्बों में जिन-अस्थियाँ—

१५८. इस माणवक चैत्य स्तम्भ के ऊपर छह कोस आगे जाने पर और नीचे के भाग में भी छह कोस छोड़कर बीच में साढ़े चार योजन पर बहुत से स्वर्ण और चाँदी के फलक—पटिए कहे गए हैं।

तेसु णं सुवण्णरुप्पमएसु फलएसु बहवे वइरामया णागदंता पण्णत्ता।

तेसु णं वइरामएसु णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता।

तेसु णं रययामयसिक्कएसु बहवे वइरामया गोलवट्ट-समुग्गका पण्णत्ता।

तेसु णं वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहवे जिण-सकहाओ संनिक्खित्ताओ चिट्ठंति।

जाओ णं विजयस्स देवस्स अण्णेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ।

इन स्वर्ण-रजतमय फलकों में वज्ररत्नों के बने हुए अनेक नागदंतक कहे गए हैं।

इन वज्ररत्नमय नागदंतकों पर चांदी के बने हुए अनेक छींके कहे गये हैं।

इन रजतमय छींकों में वज्ररत्नों से बने हुए अनेक गोल आकृति वाले समुद्गक रखे हैं।

इन वज्ररत्नमय गोल वर्तुलाकार समुद्गकों में अनेक जिनेन्द्रों की अस्थियां रखी हुई हैं।

जो अस्थियां विजय देव तथा और दूसरे भी अनेक वाणव्यन्तर देवों और देवियों के द्वारा अर्चना करने योग्य हैं, वन्दना करने योग्य हैं, क्योंकि ये कल्याणरूप, मंगलरूप, देव और चैत्य समान होने से पर्युपासनीय हैं।

१५९. माणवगस्स णं चेइयखंभस्स उवरिं अट्ठट्ठमंगलगा, झया छत्ताइछत्ता।

तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स पुरत्थिमेणं—एत्थ णं एगा महामणिपेढिया पण्णत्ता। सा णं मणिपेढिया दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमई अच्छा-जाव-पडिरूवा।

तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं— एत्थ णं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते। सीहासण-वण्णओ।

१५९. माणवक चैत्यस्तम्भ के ऊपर आठ-आठ मंगलद्रव्य, ध्वजायें और छत्रातिछत्र हैं।

इस माणवक चैत्य स्तम्भ की पूर्व दिशा में एक विशाल मणिपीठिका कही गई है, यह मणिपीठिका दो योजन की लम्बी-चौड़ी और एक योजन मोटी है, सर्वात्मना रत्नों से बनी हुई स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

इस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल सिंहासन कहा गया है। यहाँ सिंहासन का वर्णन करना चाहिये।

१६०. तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स पच्चत्थिमेणं—एत्थ णं एगा महा मणिपेढिया पण्णत्ता। सा णं मणिपेढिया जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमई अच्छा-जाव-पडिरूवा। —जीवा० प० ३, उ० २, सु० १३८

१६०. इस माणवक चैत्य स्तम्भ की पश्चिम दिशा में एक विशाल मणिपीठिका कही गई है, यह मणिपीठिका एक योजन की लम्बी-चौड़ी, अर्ध योजन की मोटी, सर्वात्मना रत्नों से बनी हुई, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

देवसयणिज्जस्स वण्णओ—

देव शय्या का वर्णन—

१६१. तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं—एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते। तस्स णं देवसयणिज्जस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—

णाणा मणिमया पडिपाया, सोवण्णिया पाया, णाणा मणिमया पायसीसा, जंबूणयमयाइं गत्ताइं, वइरामया संधी, णाणा मणिमए विच्चे, रययामया तूली, लोहियक्खमया बिब्बोयणा, तवणिज्जमई गंडोवहाणिया।

१६१. इस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल देवशय्या कही है, उस देवशय्या का वर्णन इस प्रकार का कहा गया है, यथा—

से णं देवसयणिज्जे उभओ बिब्बोयणे दुहओ उण्णए, मज्झे णयगंभीरे सालिगण-वट्टीए, गंगा पुलिण वालु उद्दाल सालिसए, ओतवितक्खोमदुगुल्ल पट्ट-पडिच्छायणे, सुविरचियरयत्ताणे, रत्तंसुयसंवुए, सुरम्मे, आईणग-रूय-बूर-णवणीय-तूलफासमउए, पासाईए-जाव-पडिरूवे ।

इस देवशय्या के दोनों ओर (शिर और पैर की ओर) रखे तकिए दोनों छोरों पर ऊंचे, मध्यभाग में नत (पतले) और गम्भीर हैं, तथा सालिङ्गनवर्तिका—(सोते समय करवट के पास रखे जाने वाले तकिए) के समान है, वह शय्या गंगा नदी की वालु के सदृश इतनी सुकोमल है कि बैठने पर कटि तक शरीर धस जाता है, जो क्षोम (रुई से बनी) और रेशमी चादर से ढकी हुई है, पास में जिसके नीचे पैर पौंछने के लिये रजस्त्राण वस्त्र बिछा हुआ है, जो लाल वस्त्र से ढका हुआ है, जो देखने में रमणीय है, चर्मवस्त्र, रुई, बूर—सेमल की रुई, मक्खन आक की रुई के समान जिसका सुकोमल स्पर्श है, दर्शनीय—यावत्—प्रतिरूप हैं ।

तस्स णं देवसयणिज्जस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं—एत्थ णं एगा महई मणिपीढिया पण्णत्ता—साणं मणिपेढिया जोयणमेगं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमई अच्छा -जाव-पडिरूवा । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३८

इस देव शय्या की उत्तर-पूर्व दिशा-ईशानकोण में एक बहुत बड़ी मणिपीठिका कही गई है, वह मणिपीठिका एक योजन की लम्बी-चौड़ी, आधे योजन की मोटी, सर्वात्मना रत्नमयी, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं ।

खुड्डाए महिंदज्झयस्स पमाणं—

क्षुद्र (लघु) महिन्द्रध्वज का प्रमाण—

१६२. तीसे णं मणिपीढियाए उप्पि—एत्थ णं एगं महं खुड्डए महिंदज्झए पण्णत्ते, अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं वेरुलियमय-वट्ट-लट्ठ संठिए तहेव-जाव-अट्ठट्ठमंगलगा, झया, छत्ताइछत्ता ।

१६२. इस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल क्षुद्र माहेन्द्र ध्वज कहा गया है, जो साढ़े सात योजन ऊँचा, जमीन के भीतर आधे कोस प्रमाण वाला कहा गया है, और इसका विष्कम्भ आधे कोस का है, यह माहेन्द्र ध्वज वज्ररत्न का बना हुआ है, और इसका आकार गोल तथा चिकना है, आठ-आठ मंगलद्रव्य, ध्वजायें, छत्रातिछत्र आदि तक इस ध्वज का वर्णन भी पूर्व में किये गये माहेन्द्र ध्वज के वर्णन के समान यहाँ करना चाहिये ।

विजयदेवस्स चुप्पालयनामं पहरणकोसं—

विजयदेव का चोपाल नामक शस्त्रागार—

१६३. तस्स णं खुड्डमहिंदज्झयस्स पच्चत्थिमेणं—एत्थ णं विजयस्स देवस्स चुप्पालए नामं पहरणकोसे पण्णत्ते, तत्थ णं विजयस्स देवस्स फलिहरयण पामोक्खा बहवे पहरण-रयणा संनिक्खित्ता चिट्ठन्ति । उज्जल सुणिसिय सुतिक्खधारा पासाईया-जाव-पडिरूवा ।

१६३. इस क्षुद्र माहेन्द्र ध्वज की पश्चिम दिशा में विजयदेव का चतुष्पाल (चौपाल) नामक शस्त्रागार कहा गया है, इस शस्त्रागार में विजयदेव के अनेक मुद्गर रत्न आदि प्रमुख शस्त्ररत्न रखे हुए हैं, ये शस्त्र बहुत ही उज्ज्वल, चमकीले, तेज और अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाले प्रासादीय-दर्शनीय—यावत्—प्रतिरूप हैं ।

तीसे णं सभाए सुहम्माए उप्पि बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया, छत्ताइछत्ता । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १३८

इस सुधर्मा सभा के ऊपर अनेक आठ-आठ मंगल द्रव्य, ध्वजाएँ छत्रातिछत्र हैं ।

सिद्धायतणस्स पमाणं—

सिद्धायतन का प्रमाण—

१६४. सभाए णं सुहम्माए उत्तर-पुरत्थिमेणं—एत्थ णं एगे महं सिद्धायतणे पण्णत्ते, अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं, छ जोयणाइं सकोसाइं विक्खंभेणं नव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, -जाव-गोमाणसिया वत्तव्वया ।

१६४. सुधर्मा सभा के उत्तर-पूर्व दिग्भाग में एक विशाल सिद्धायतन कहा गया है । यह सिद्धायतन साढ़े बारह योजन लम्बा एक कोस सहित—छह योजन चौड़ा, और नौ योजन ऊँचा है । इत्यादि जैसा सुधर्मा सभा का कथन किया है वह सबका सब कथन गोमानसिका (शय्याकार स्थान विशेष) की वक्तव्यता तक यहाँ कर लेना चाहिये ।

जा चेव सभाए सुहम्माए वत्तव्वया सा चेव निरवसेसा भाणियव्वा । तहेव दारा, मुहमंडवा, पेच्छाघरमंडवा, झया, थूभा, चेइयरुक्खा, महिंदज्झया, णंदाओ पुक्खरिणीओ, सभा य सुहम्माए जहा पमाणं, मणगुलियाणं, गोमाणसीया, धूवयघडीओ, तहेव भूमिभागे, उल्लोए य-जाव-मणिफासे ।

अर्थात् जिस प्रकार सुधर्मा सभा की पूर्व-दक्षिण और उत्तर दिशा में द्वार हैं, द्वारों के आगे मुखमंडप हैं, मुख मंडपों के आगे प्रेक्षागृह हैं, मंडप हैं, प्रेक्षागृह मंडपों के ऊपर ध्वजायें हैं, प्रेक्षागृह मंडपों के आगे स्तूप हैं, स्तूपों के आगे चैत्यवृक्ष हैं, उन चैत्यवृक्षों के आगे माहेन्द्र ध्वज हैं, उन माहेन्द्र ध्वजों के आगे नन्दा पुष्करिणियाँ हैं, और सुधर्मा सभा का जो प्रमाण है, मनो-गुलिकायें हैं, गोमानसिकायें हैं, धूपघटिकायें हैं, इत्यादि वर्णन जैसा सुधर्मा सभा का पूर्व में किया गया है, उसी प्रकार का सब वर्णन तथा सुधर्मा सभा के वर्णन के अनुरूप ही भूमिभाग उल्लोक-चांदनी—यावत्—मणिस्पर्श तक इस सिद्धायतन का भी वर्णन करना चाहिये ।

१६५. तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महा मणिपेढिया पण्णत्ता, दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं बाहल्लेणं, सव्व मणिमई अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १३६

१६५. उस सिद्धायतन के ठीक मध्यभाग में एक विशाल मणि-पीठिका कही गई है, यह मणिपीठिका दो योजन की लम्बी-चौड़ी, एक योजन मोटी, और सर्वात्मना रत्नों से बनी हुई है, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है ।

एगे महं देवच्छंदए—

एक महान देवच्छन्दक—

१६६. तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवच्छंदए पण्णत्ते, दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, साइरेगाइं दो जोय-णाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे ।

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १३६

१६६. उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल देवच्छन्दक-जिनेन्द्र का आसन विशेष कहा गया है, यह दो योजन का लम्बा-चौड़ा, कुछ अधिक दो योजन ऊंचा, सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है ।

अट्ठसयं जिणपडिमाणं वण्णावासं—

एक सौ आठ जिन प्रतिमाओं का वर्णन—

१६७. तत्थ णं देवच्छंदए अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहपमाण-मेत्ताणं संनिक्खित्तं चिट्ठइ ।

१६७. उस देवच्छन्दक में जिनोत्सेध प्रमाण [illegible] एक सौ आठ जिन प्रतिमायें [illegible] ।

तासि णं जिणपडिमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—

[illegible]

उन जिन प्रतिमाओं का [illegible] वर्णन इस प्रकार है, यथा—

[illegible]

रिट्ठामईओ रोमरोईओ,
तवणिज्जमया चुच्चुया, तवणिज्जमया सिरिवच्छा,

रिष्ट रत्न की इनकी रोमराजि है,
तपनीय स्वर्ण के इनके चुचुक (स्तन के अग्रभाग) और श्रीवत्स है,

कणगमयाओ बाहाओ,
कणगमईओ पासाओ,
कणगमईओ गीवाओ,
रिट्ठामए मंसु,
सिलप्पवालमया उट्ठा,
फलिहामया दंता,
तवणिज्जमईओ जीहाओ,
तवणिज्जमया तालुया,
कणगमईओ णासाओ,
अंतो लोहितक्ख परिसेयाओ,

स्वर्णमय इनकी बाँहें हैं,
स्वर्णमय पार्श्वभाग (पसलियों का भाग) है,
स्वर्णमयी इनकी ग्रीवा है,
रिष्ट रत्न के वर्ण जैसी इनकी मश्रु दाढ़ी-मूँछें हैं,
इनके ओठ शिलाप्रवाल-मूँगा के हैं,
इनके दाँत स्फटिकमणि के बने हुए हैं,
इनकी जीभ तपनीय स्वर्ण की बनी हुई है,
और इनका तालु भाग तपनीय स्वर्ण का बना हुआ है,
इनकी नासिका स्वर्ण की बनी हुई है,
नाक के भीतर की रेखा आदि भाग लोहिताक्ष रत्न का बना हुआ है,

अंकामयाइं अच्छीणि,
पुलगमईओ दिट्ठीओ,
रिट्ठामईओ तारगाओ,
रिट्ठामयाइं अच्छिपत्ताइं,
रिट्ठामईओ भमुहाओ,
कणगामया कवोला,
कणगामया सवणा,
कणगामया णिडाला,
वट्टा वइरामईओ सीसघडीओ,
तवणिज्जमईओ केसंतकेसभूमीओ,
रिट्ठामया उवरिमुद्धजा,

इनकी आँखें अंकरत्न की बनी हुई है,
इनकी दृष्टिका चितवन-पुलक-रत्न विशेष की बनी हुई है,
आँखों की तारिकायें कनीनिकायें, रिष्टरत्न की बनी हुई हैं,
आँखों की बरौनियाँ (अक्षिपत्र) रिष्ट रत्न की बनी हुई हैं,
और भौहें भी रिष्ट रत्न की बनी हुई हैं,
इनके कपोल-गाल स्वर्ण के बने हुए हैं,
इनके कान स्वर्ण के बने हुए हैं,
इनके भाल ललाट स्वर्ण के बने हुए हैं,
इनके मस्तक वर्तुलाकार वज्ररत्न के बने हुए हैं,
तपनीय स्वर्ण की इनकी केशभूमि (टाल चाँद),
और रिष्ट रत्न के इनके सिर के बाल हैं।

१६८. तासि णं जिणपडिमाणं पिट्ठओ पत्तेयं पत्तेयं छत्तधारपडिमाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं छत्तधारपडिमाओ हिम-रयय-कुन्देंदु-सप्पकासाइं, सकोरेंटमल्लदामधवलाइं आतपत्ताइं सलीलं ओहारमाणीओ चिट्ठन्ति।

१६८. इन जिनप्रतिमाओं में से प्रत्येक जिनप्रतिमाओं के पीछे छत्र धारण करने वाली प्रतिमायें कही गई हैं, ये छत्रधारिणी प्रतिमायें हाव-भाव-विलासपूर्वक हिम, रजत, कुन्दपुष्प, और चन्द्रमा की प्रभा के समान श्वेत प्रभा वाले और कोरंट पुष्पों की माला से युक्त आतपत्रों को उत्साहपूर्वक उन प्रतिमाओं के ऊपर ताने हुए खड़ी है।

१६९. तासि णं जिणपडिमाणं उभओ पासिं पत्तेयं पत्तेयं चामरधारपडिमाओ पन्नत्ताओ, ताओ णं चामरधारपडिमाओ चंदप्पह-वइर-वेरुलिय-णाणामणि-कणग-रयण-विमल-महरिह-तवणिज्जुज्जल-विचित्तदंडाओ, चिल्लियाओ, संखंक-कुन्द-दगरय-अमय-मथित-फेण-पुंज सण्णिकासाओ सुहुमरययदीहवालाओ, धवलाओ चामराओ सलीलं ओहारमाणीओ चिट्ठन्ति।

१६९. इन जिन प्रतिमाओं में से प्रत्येक जिन प्रतिमा की दोनों बाजुओं में अलग-अलग चामरधारिणी प्रतिमायें कही गई हैं। ये चामरधारिणी प्रतिमायें इन प्रतिमाओं के ऊपर चन्द्रकान्त, वज्र, वैडूर्य आदि अनेक प्रकार की महामूल्यवान् मणियां, कनक आदि रत्नों और तपनीय स्वर्ण से बनी हुई उज्ज्वल कांतियुक्त, चित्र विचित्र डांडियां हैं, जिनकी ऐसे देदीप्यमान शंख, कुन्दपुष्प, जलकण, अमृत और मथित फेन पुंज के सदृश: चांदी के बारीक तारों जैसे लम्बे-लम्बे बालों वाले श्वेत-धवल-चामरों को विलास-पूर्वक ढोरती हुई खड़ी है।

१७०. तासि णं जिणपडिमाणं पुरओ दो दो नागपडिमाओ, दो दो जक्खपडिमाओ, दो दो भूतपडिमाओ, दो दो कुण्डधारपडिमाओ, विणओणयाओ, पायवडियाओ, पंजलिउडाओ संणिक्खित्ताओ चिट्ठंति। सव्वरयणामईओ अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ।

१७१. तासि णं जिणपडिमाणं पुरओ अट्ठसयं घंटाणं, अट्ठसयं चंदणकलसाणं, एवं अट्ठसयं भिंगारगाणं, अट्ठसयं आयंसगाणं, अट्ठसयं थालाणं, अट्ठसयं पातीणं, अट्ठसयं सुपइट्ठगाणं, अट्ठसयं मणगुलियाणं, अट्ठसयं वातकरगाणं, अट्ठसयं चित्ताणं, अट्ठसयं रयणकरंडगाणं, अट्ठसयं हयकंठगाणं-जाव-उसभकंठगाणं, अट्ठसयं पुप्फचंगेरीणं-जाव-लोमहत्थचंगेरीणं, अट्ठसयं पुप्फपडलगाणं, अट्ठसयं तेल्लसमुग्गाणं-जाव-धूवकडुच्छयाणं संणिक्खित्तं चिट्ठंति।

१७२. तस्स णं सिद्धायतणस्स उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा, झया, छत्ताइछत्ता, उत्तिमागारा, सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया, तं जहा— रयणेहिं-जाव-रिट्ठेहिं।

— जीवा० प० ३, उ० २, सु० १३६

एगा महा उववायसभा

१७३. तस्स णं सिद्धायतणस्स णं उत्तर-पुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महा उववायसभा पण्णत्ता, जहा सुहम्मा तहेव-जाव-गोमाणसीओ। उववायसभाए वि दारा, मुहमंडवा, सव्वं भूमिभागे तहेव-जाव-मणिफासो। (सुहम्मा सभा वत्तव्वया भाणियव्वा-जाव-भूमीए फासो)।

१७०. इन जिन प्रतिमाओं के सामने विनयावनत चरणों में झुकी हुई और हाथ जोड़े हुए दो-दो नाग प्रतिमायें, दो-दो यक्ष प्रतिमायें, दो-दो भूतप्रतिमायें, और दो-दो कुण्डधारिणी-आज्ञाकारिणी प्रतिमायें खड़ी हुई हैं, ये सभी प्रतिमायें सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ —यावत्— प्रतिरूप हैं।

१७१. इन जिन प्रतिमाओं के समक्ष एक सौ आठ घंटा, एक सौ आठ चन्दन कलश, एक सौ आठ भृंगारक—झारी, एक सौ आठ आदर्शक—दर्पण, एक सौ आठ थाली, एक सौ आठ सुप्रतिष्ठान, एक सौ आठ मनोगुलिका, एक सौ आठ वातकरक (कोरे घड़े), एक सौ आठ चित्र, एक सौ आठ रत्नकरंडक, एक सौ आठ अश्वकंठ—यावत्—वृषभकंठ, एक सौ आठ पुष्पचंगेरिकायें —यावत्— मयूरपिच्छिकायें, एक सौ आठ पुष्पपटलक और एक सौ आठ तैल समुद्गक —यावत्— धूपकडुच्छक-धूपदान रखे हुए हैं।

१७२. इन सिद्धायतन के ऊपर अनेक आठ-आठ मंगलद्रव्य, ध्वजायें और छत्रातिछत्र हैं, जो उत्तम आकार वाले और सोलह प्रकार के रत्नों से सुशोभित हैं, यथा—वैडूर्य रत्नों से —यावत्— रिष्टादि रत्नों से अर्थात् वैडूर्य आदि से लेकर रिष्ट रत्न पर्यन्त सोलह प्रकार के रत्नों से सुशोभित हैं।

एक महान उपपातसभा-

१७३. उस सिद्धायतन के उत्तर पूर्व दिशा में - ईशान कोण में एक विशाल उपपात सभा कही गई है, जैसा वर्णन सुधर्मा सभा का है, उसी प्रकार का गोमानसियों तक समग्र वर्णन इसका भी समझना चाहिये, अर्थात् उपपात सभा के तीन द्वार हैं, उनके आगे मुखमंडप हैं इत्यादि सबका कथन यहां पर गोमानसियों के वर्णन तक करना चाहिये, उसके बाद उल्लोक का वर्णन और भूमिभाग का वर्णन मणियों के वर्णन तक करना चाहिये, (सुधर्मा सभा की समग्र वक्तव्यता भूमिभाग के स्पर्श तक यहाँ कथन करना चाहिये।)

रिट्ठामईओ रोमराईओ,
तवणिज्जमया चुच्चुया,**तवणिज्जमया** सिरिवच्छा,

कणगमयाओ बाहाओ,
कणगमईओ पासाओ,
कणगमईओ गीवाओ,
रिट्ठामए मंसु,
सिलप्पवालमया उट्ठा,
फलिहामया दंता,
तवणिज्जमईओ जीहाओ,
तवणिज्जमया तालुया,
कणगमईओ णासाओ,
अंतो लोहितक्ख परिसेयाओ,

अंकामयाइं अच्छीणि,
पुलगमईओ दिट्ठीओ,
रिट्ठामईओ तारगाओ,
रिट्ठामयाइं अच्छिपत्ताइं,
रिट्ठामईओ भमुहाओ,
कणगामया कवोला,
कणगामया सवणा,
कणगामया णिडाला,
वट्टा वइरामईओ सीसघडीओ,
तवणिज्जमईओ केसंतकेसभूमीओ,
रिट्ठामया उवरिमुद्धजा,

रिष्ट रत्न की इनकी रोमराजि है,
तपनीय स्वर्ण के इनके चुचुक (स्तन के अग्रभाग) और श्रीवत्स है,
स्वर्णमय इनकी बाँहें हैं,
स्वर्णमय पार्श्वभाग (पसलियों का भाग) है,
स्वर्णमयी इनकी ग्रीवा है,
रिष्ट रत्न के वर्ण जैसी इनकी मश्रु दाढ़ी-मूँछें हैं,
इनके ओठ शिलाप्रवाल-मूँगा के हैं,
इनके दाँत स्फटिकमणि के बने हुए हैं,
इनकी जीभ तपनीय स्वर्ण की बनी हुई है,
और इनका तालु भाग तपनीय स्वर्ण का बना हुआ है,
इनकी नासिका स्वर्ण की बनी हुई है,
नाक के भीतर की रेखा आदि भाग लोहिताक्ष रत्न का बना हुआ है,
इनकी आँखें अंकरत्न की बनी हुई है,
इनकी दृष्टिका चितवन-पुलक-रत्न विशेष की बनी हुई है,
आँखों की तारिकायें कनीनिकायें, रिष्टरत्न की बनी हुई हैं,
आँखों की बरौनियाँ (अक्षिपत्र) रिष्ट रत्न की बनी हुई हैं,
और भौहें भी रिष्ट रत्न की बनी हुई हैं,
इनके कपोल-गाल स्वर्ण के बने हुए हैं,
इनके कान स्वर्ण के बने हुए हैं,
इनके भाल ललाट स्वर्ण के बने हुए हैं,
इनके मस्तक वर्तुलाकार वज्ररत्न के बने हुए हैं,
तपनीय स्वर्ण की इनकी केशभूमि (टाल चाँद),
और रिष्ट रत्न के इनके सिर के बाल हैं।

१६८. तासि णं जिणपडिमाणं पिट्ठओ पत्तेयं पत्तेयं छत्तधारपडिमाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं छत्तधारपडिमाओ हिम-रयय-कुन्देंदु-मप्पकासाइं, सकोरेंटमल्लदामधवलाइं आतपत्ताइं सलीलं ओहारमाणीओ चिट्ठन्ति।

१६८. इन जिनप्रतिमाओं में से प्रत्येक जिनप्रतिमाओं के पीछे छत्र धारण करने वाली प्रतिमायें कही गई हैं, ये छत्रधारिणी प्रतिमायें हाव-भाव-विलासपूर्वक हिम, रजत, कुन्दपुष्प, और चन्द्रमा की प्रभा के समान श्वेत प्रभा वाले और कोरंट पुष्पों की माला से युक्त आतपत्रों को उत्साहपूर्वक उन प्रतिमाओं के ऊपर ताने हुए खड़ी है।

१६९. तासि णं जिणपडिमाणं उभओ पासिं पत्तेयं पत्तेयं चामरधारपडिमाओ पन्नत्ताओ, ताओ णं चामरधारपडिमाओ चंदप्पह-वइर-वेरुलिय-णाणामणि-कणग-रयण-विमल-महरिह-तवणिज्जुज्जल-विचित्तदंडाओ, चिल्लियाओ, संखंक-कुन्द-दगरय-अमय-मथित-फेण-पुंज सण्णिकासाओ सुहुमरययदीहवालाओ, धवलाओ चामराओ सलीलं ओहारमाणीओ चिट्ठन्ति।

१६९. इन जिन प्रतिमाओं में से प्रत्येक जिन प्रतिमा की दोनों बाजुओं में अलग-अलग चामरधारिणी प्रतिमायें कही गई हैं। ये चामरधारिणी प्रतिमायें इन प्रतिमाओं के ऊपर चन्द्रकान्त, वज्र, वैडूर्य आदि अनेक प्रकार की महामूल्यवान् मणियों, कनक आदि रत्नों और तपनीय स्वर्ण से बनी हुई उज्ज्वल कांतियुक्त, चित्र विचित्र डांडियाँ हैं, जिनकी ऐसे दैदीप्यमान शंख, कुन्दपुष्प, जलकण, अमृत और मथित फेन पुंज के सदृश: चाँदी के बारीक तारों जैसे लम्बे-लम्बे बालों वाले श्वेत-धवल-चामरों को विलासपूर्वक ढोरती हुई खड़ी हैं।

१७०. तासि णं जिणपडिमाणं पुरओ दो दो नागपडिमाओ, दो दो जक्खपडिमाओ, दो दो भूतपडिमाओ, दो दो कुण्डधारपडिमाओ, विणओणयाओ, पायवडियाओ, पंजलिउडाओ संणिखित्ताओ चिट्ठन्ति। सव्वरयणामईओ अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ।

१७०. इन जिन प्रतिमाओं के सामने विनयावनत चरणों में झुकी हुई और हाथ जोड़े हुए दो-दो नाग प्रतिमायें, दो-दो यक्ष प्रतिमायें, दो-दो भूतप्रतिमायें, और दो-दो कुण्डधारिणी-आज्ञाकारिणी प्रतिमायें खड़ी हुई हैं, ये सभी प्रतिमायें सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ —यावत्—प्रतिरूप हैं।

१७१. तासि णं जिणपडिमाणं पुरओ अट्ठसयं घंटाणं, अट्ठसयं चंदण-कलसाणं, एवं अट्ठसयं भिंगारगाणं, अट्ठसयं आयंसगाणं, अट्ठसयं थालाणं, अट्ठसयं पातीणं, अट्ठसयं सुपइट्ठगाणं, अट्ठसयं मणगुलियाणं, अट्ठसयं वातकरगाणं, अट्ठसयं चित्ताणं, अट्ठसयं रयणकरंडगाणं, अट्ठसयं हयकंठगाणं-जाव-उसभकंठगाणं, अट्ठसयं पुप्फचंगेरीणं-जाव-लोमहत्थ-चंगेरीणं, अट्ठसयं पुप्फपडलगाणं, अट्ठसयं तेल्लसमुग्गाणं-जाव-धूवकडुच्छयाणं संणिक्खित्तं चिट्ठन्ति।

१७१. इन जिन प्रतिमाओं के समक्ष एक सौ आठ घंटा, एक सौ आठ चन्दन कलश, एक सौ आठ भृंगारक—झारी, एक सौ आठ आदर्शक-दर्पण, एक सौ आठ पात्री, एक सौ आठ सुप्रतिष्ठान, एक सौ आठ मनोगुलिका, एक सौ आठ वातकरक (कोरे घड़े), एक सौ आठ चित्र, एक सौ आठ रत्नकरंडक, एक सौ आठ अश्वकंठा—यावत्—वृषभकंठा, एक सौ आठ पुष्पचंगेरिकायें —यावत्—मयूरपिच्छिकायें, एक सौ आठ पुष्पपडलक और एक सौ आठ तेल समुद्गक—यावत्—धूपकडुच्छक-धूपदान रखे हुए हैं।

१७२. तस्स णं सिद्धायतणस्स उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा, झया, छत्ताइछत्ता, उत्तिमागारा, सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया, तं जहा—रयणेहिं-जाव-रिट्ठेहिं।

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १३९

१७२. इस सिद्धायतन के ऊपर अनेक आठ-आठ मंगलद्रव्य, ध्वजायें और छत्रातिछत्र हैं, जो उत्तम आकार वाले और सोलह प्रकार के रत्नों से सुशोभित हैं, यथा—वैडूर्य रत्नों से—यावत्—रिष्टादि रत्नों से अर्थात् वैडूर्य आदि से लेकर रिष्ट रत्न पर्यन्त सोलह प्रकार के रत्नों से सुशोभित हैं।

एगा महा उववायसभा—

१७३. तस्स णं सिद्धाययणस्स णं उत्तर-पुरत्थिमेणं एत्थणं एगा महा उववायसभा पण्णत्ता, जहा सुहम्मा तहेव-जाव-गोमाण-सीओ। उववायसभाए वि दारा, मुहमंडवा, सव्वे भूमिभागे तहेव मणिफासो। (सुहम्मा सभा वत्तव्वया भाणियव्वा-जाव-भूमीए फासो)।

एक महान उपपातसभा—

१७३. इस सिद्धायतन के उत्तर पूर्व दिशा में—ईशान कोण में एक विशाल उपपात सभा कही गई है, जैसा वर्णन सुधर्मा सभा का है, उसी प्रकार का गोमानसिकी तक समग्र वर्णन इसका भी समझना चाहिये, अर्थात् उपपात सभा के तीन द्वार है, उनके आगे मुखमंडप है, इत्यादि सबका कथन यहाँ पर गोमानसिका के वर्णन तक करना चाहिये, उसके बाद उल्लोक का वर्णन और भूमिभाग का वर्णन मणिस्पर्श के वर्णन तक करना चाहिये, (सुधर्मा सभा की समग्र वक्तव्यता भूमिस्पर्श तक का यहाँ कथन करना चाहिए।)

१७४. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं एगा महा मणिपेढिया पण्णत्ता, साणं जोयणमेगं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमई अच्छा -जाव-पडिरूवा।

१७४. इस बहुसम रमणीय भूमिभाग के मध्यभाग में एक विशाल मणिपीठिका कही गई है, वह एक योजन की लम्बी-चौड़ी, आधे योजन की मोटी, सर्वात्मना रत्नों की बनी हुई, स्फटिकमणि के समान स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

१७५. तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं—एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, तस्स णं देवसयणिज्जस्स वण्णओ।

१७५. इस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल देवशय्या कही गई है, इस देवशय्या का वर्णन पहले के समान करना चाहिये।

१७६. उववाय सभाए णं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा, झया, छत्ताइछत्ता -जाव-उत्तिमागारा।

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४०

१७६. उपपात सभा के ऊपर आठ-आठ मंगलद्रव्य, ध्वजायें, छत्रातिछत्र हैं, जो रत्नों के बने हुए—यावत्—उत्तम आकार के हैं।

हरयस्स पमाणं—

१७७. तीसे णं उववाय सभाए उत्तर-पुरत्थिमेणं—एत्थ णं एगे महं

ह्रद का प्रमाण—

१७७. इस उपपात सभा के उत्तर-पूर्व दिशा में-ईशान कोण में

हरए पण्णत्ते, सेणं हरए अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं, छ कोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, अच्छे -जाव-पडिरूवे । जहेव णंदाणं पुक्खरणीणं-जाव-तोरण-वण्णओ । —जीवा० प० ३, उ० १, सु० १४०

एक विशाल ह्रद कहा गया है, वह ह्रद साढ़े बारह योजन का लम्बा, छ कोस सहित छह योजन का चौड़ा, दस योजन गहरा, स्वच्छ —यावत्—प्रतिरूप है। जैसा नन्दा पुष्करिणी का वर्णन पूर्व में किया गया है उसी प्रकार इस ह्रद का वर्णन भी तोरणों के वर्णन तक कर लेना चाहिये।

एगा महा अभिसेयसभा—

एक महा अभिषेक सभा—

१७८. तस्स णं हरयस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं—एत्थ णं एगा महा अभिसेयसभा पण्णत्ता, जहा सभासुहम्मा तं चेव निरवसेसं -जाव- गोमाणसीओ, भूमिभाए, उल्लोए तहेव ।

१७८. उस ह्रद के ईशानकोण में एक विशाल अभिषेक सभा कही गई है, जैसा सुधर्मासभा का वर्णन है, वह समग्र वर्णन गोमानसिका के वर्णन तक यहां भी करना चाहिये, उसके बाद यहां के भूमिभाग का व उल्लोक का वर्णन भी पूर्व के समान करना चाहिये।

१७९. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं एगा महा मणिपेढिया पण्णत्ता. सा णं जोयणमेगं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोयण बाहल्लेणं, सव्वमणिमया अच्छा -जाव-पडिरूवा ।

१७९. उस अभिषेक सभा के बहुसम रमणीय भूमिभाग के बीचों-बीच एक विशाल मणिपीठिका कही गई है, वह मणिपीठिका एक योजन की लम्बी-चौड़ी, आधे योजन की मोटी, सर्वात्मना रत्नों की बनी हुई, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

१८०. तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं—एत्थ णं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते, सीहासण-वण्णओ, अपरिवारो । —जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४०

१८०. उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल सिंहासन कहा गया है, इस सिंहासन का वर्णन भद्रासन आदि परिवार को छोड़कर करना चाहिये।

विजयदेवस्स अभिसेक्कं भंडं—

विजयदेव का अभिषेक पात्र—

१८१. तत्थ णं विजयदेवस्स सुबहु अभिसेक्के भंडे संणिक्खित्ते चिट्ठइ ।

१८१. उस सिंहासन पर विजयदेव का एक बहुत सुन्दर अभिषेक पात्र रखा हुआ है।

अभिसेयसभाए उप्पिं अट्ठट्ठमंगलए-जाव-उत्तिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया, तं जहा—रयणेहिं-जाव-रिट्ठेहिं । —जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४०

अभिषेक सभा के ऊपर आठ-आठ मंगल द्रव्य हैं—यावत्—उत्तम आकारवाले, सोलह प्रकार के रत्नों से सुशोभित हैं, यथा—वज्रदन्तों—यावत्—रिष्टरत्नों से सुशोभित हैं।

एगा महा अलंकारियसभा—

एक महान अलंकार सभा—

१८२. तीसे णं अभिसेयसभाए उत्तर-पुरत्थिमेणं—एत्थ णं एगा महा अलंकारियसभा वत्तव्वया भाणियव्वा-जाव-गोमाणसीओ, मणिपेढियाओ, जहा अभिसेयसभाए उप्पिं सीहासणं सपरिवारं । —जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४०

१८२. इस अभिषेक सभा के उत्तर पूर्व दिग्भाग-ईशानकोण में एक श्रेष्ठ विशाल अलंकारिक सभा है, उसके प्रमाण, द्वारत्रय आदि का समग्र वर्णन—यावत्—गोमानसिका, मणिपीठिका पद तक पूर्व के समान करना चाहिये, तथा अभिषेक सभा में एक मणिपीठिका है, उस पर भद्रासन आदिरूप परिवार से रहित सिंहासन रखा है, इत्यादि जो वर्णन है, उसी प्रकार का वर्णन इस अलंकार सभा का करना चाहिये।

विजयदेवस्स अलंकारियभंडे—

विजयदेव का अलंकार पात्र—

१८३. तत्थ णं विजयस्स देवस्स सुबहु अलंकारिए भंडे संनिक्खित्ते चिट्ठन्ति । उत्तिमागारा. अलंकारियसभाए उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा, झया-जाव-छत्ताइछत्ता । —जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४०

१८३. इस सिंहासन पर विजयदेव का एक बहुत अच्छा अलंकार भांड रखा हुआ है, इस अलंकार सभा के ऊपर आकार प्रकार के आठ-आठ मंगल द्रव्य, ध्वजायें—यावत्—छत्रातिछत्र हैं।

एगा महा ववसायसभा—

१८४. तीसे णं आलंकारिय सभाए उत्तर-पुरत्थिमेणं—एत्थ णं एगा महा ववसायसभा पण्णत्ता।

अभिसेयसभा वत्तव्वया-जाव-अपरिवारं।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १४०

विजयदेवस्स एगं महं पोत्थयरयणं—

१८५. तत्थ णं विजयस्स देवस्स एगे महं पोत्थयरयणे संनिक्खित्ते चिट्ठइ। तत्थ णं पोत्थयरयणस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—रिट्ठामईओ कंबियाओ।

रयतामतातिं पत्तकाइं,
रिट्ठामयातिं अक्खराइं,
तवणिज्जमए दोरे,
णाणामणिमए गंठी,
वेरुलियमए लिप्पासणे,
तवणिज्जमयी संकला,

रिट्ठमए छादने,
रिट्ठामया मसी,
वइरामयी लेहणी,
रययामयाइं पत्तकाइं,
[अंकमयाइं पत्ताइं,]
रिट्ठामयाइं अक्खराइं, धम्मिए सत्थे।

१८६. ववसायसभाए णं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा, झया, छत्ताइछत्ता, उत्तिमागारेति। —जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४०

एगं महं बलिपेढं तस्स य पमाणं—

१८७. तीसे णं ववसायसभाए उत्तर-पुरत्थिमेणं—एत्थ णं एगे महं बलिपेढे पण्णत्ते, से णं दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं जोयणं वाहल्लेणं, सव्वरययामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

१८८. एत्थ णं तस्स णं बलिपेढस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं एगा महई णंदा पुक्खरिणी पण्णत्ता, जं चेव माणं हरयस्स तं चेव सव्वं।

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४०

विजयदेवस्स उववायं—

१८९. तेणं कालेणं तेणं समएणं विजए देवे विजयाए रायहाणीए,

एक महान व्यवसायसभा—

१८४. इस अलंकार सभा के उत्तर-पूर्व ईशान-दिशा में एक विशाल व्यवसाय सभा कही गई है।

इस व्यवसाय सभा का वर्णन भी भद्रासन आदि रूप परिवार से रहित सिंहासन तक अभिषेक सभा के वर्णन सदृश करना चाहिये।

विजयदेव का एक महान् पुस्तक रत्न—

१८५. इस सिंहासन पर विजयदेव का एक श्रेष्ठ-उत्तम-विशाल पुस्तक रत्न रखा हुआ है, इस पुस्तक रत्न का वर्णन इस प्रकार का कहा गया है, यथा—रिष्ट रत्न से बना हुआ जिसका आवरण पृष्ठ (पुट्ठा) है।

चाँदी से जिसके पृष्ठ (पन्ने) बने हैं।
रिष्ट रत्न से बने जिसमें अक्षर हैं।
डोरे (बाँधने की रस्सी) तपनीय स्वर्ण के बने हैं।
इन डोरों में अनेक मणियों की गांठें लगी हैं।
वैडूर्य रत्न के लिप्यासन-दावात हैं।
लिप्यासन में जो सांकल लगी है वह तपनीय स्वर्ण की बनी हुई है।
मषी-पात्र-दावात का ढक्कन रिष्टरत्न का बना हुआ है।
स्याही रिष्ट रत्न की बनी हुई है।
वज्ररत्न की बनी लेखनी है।
इसके पत्र चाँदी के बने हैं।
(अंकरत्न से इसके पत्र बने हैं।)
अक्षर रिष्ट रत्न के बने हुए हैं, और यह पुस्तकरत्न धर्म-शास्त्र है।

१८६. व्यवसाय सभा के ऊपर उत्तम आकार प्रकार के आठ-आठ मंगलद्रव्य ध्वजायें, और छत्रातिछत्र हैं।

एक महा बलिपीठ और उसका प्रमाण—

१८७. इस व्यवसाय सभा के ईशानकोण में एक विशाल बलिपीठ कहा गया है, वह बलिपीठ दो योजन का लम्बा-चौड़ा, एक योजन मोटा, और सर्वात्मना चाँदी से बना हुआ स्वच्छ—**यावत्**—प्रतिरूप है।

१८८. इस बलिपीठ के उत्तर-पूर्व दिग्भाग में एक उत्तम विशाल नन्दा पुष्करिणी कही गई है, **जैसा पूर्व में पुष्करिणी की लम्बाई-चौड़ाई आदि का प्रमाण आदि कहा गया है, वैसा ही सब इस नन्दा पुष्करिणी का तथा ह्रदों का वर्णन समझना चाहिये।**

विजयदेव का उपपात (जन्म)—

१८९. उस काल और उस समय में विजयदेव विजया राजधानी

उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए बोंदीए विजयदेवत्ताए उववण्णे।

की उपपात सभा में देवदूष्य से अन्तरित देवशय्या पर अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहना वाले शरीर से विजयदेव के रूप में उत्पन्न हुआ।

१६०. तए णं से विजए देवे अहुणोववण्णमेत्तए चेव समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छइ, तं जहा—(१) आहारपज्जत्तीए, (२) सरीरपज्जत्तीए, (३) इंदियपज्जत्तीए, (४) आणापाणु पज्जत्तीए, (५) भासा-मण-पज्जत्तीए।

१६०. इसके अनन्तर ही वह विजयदेव उत्पन्न होते ही पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तिभाव को प्राप्त हुआ, वे पांच पर्याप्तियां इस प्रकार हैं—(१) आहारपर्याप्ति, (२) शरीर पर्याप्ति, (३) इन्द्रियपर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और (५) भाषा-मनः पर्याप्ति।

१६१. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्ती भावं गयस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था।

किं मे पुव्वं सेयं ? किं मे पच्छा सेयं ?

किं मे पुव्विं करणिज्जं ? किं मे पच्छा करणिज्जं ?

किं मे पुव्विं वा पच्छा वा हियाए सुहाए खेमाए णिस्सेसाए अणुगामियत्ताए भविस्सइ त्ति कट्टु एवं संपेहेइ।

१६१. तदनन्तर पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव को प्राप्त उस विजयदेव के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—

मुझे पहले क्या श्रेय रूप है, और पश्चात् क्या हितकर है ?

पहले मुझे क्या करना चाहिये और पीछे क्या करना चाहिये ?

पहले अथवा पीछे, हित के लिये, सुख के लिये, क्षेम के लिये, निःश्रेयस के लिये, और साथ में जाने योग्य कौन-सी वस्तु होगी? ऐसा उसने विचार किया।

१६२. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणिय परिसोववण्णगा देवा विजयस्स देवस्स इमं एयारूवे अज्झत्थियं, चिंतियं, पत्थियं, मणोगयं संकप्पं, समुप्पण्णं जाणित्ता जेणामेव से विजए देवे तेणामेव उवागच्छंति, तेणामेव उवागच्छित्ता विजयं देवं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, जएणं विजएणं वद्धावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पियाणं विजयाए रायहाणीए सिद्धाययणंसि अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाण मेत्ताणं संनिक्खित्तं चिट्ठन्ति।

सभाए य सुहम्माए माणवए चेइयखंभे वइरामएसु गोल-वट्टसमुग्गएसु बहूओ जिण सकहाओ संन्निक्खित्ताओ चिट्ठन्ति।

जाओ णं देवाणुप्पियाणं अन्नेसिं च बहूणं विजया रायहाणि वत्थव्वाणं देवाणं देवीग य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ—एयण्णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं पि सेयं, एयण्णं देवाणुप्पियाणं पच्छा वि सेयं, एयण्णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं पि करणिज्जं, एयण्णं देवाणुप्पियाणं पच्छा वि करणिज्जं, एयण्णं देवाणुप्पियाणं पुव्वि वा पच्छा वा हियाए-जाव-आणुगामियत्ताए भविस्सइ त्ति" कट्टु महया महया जय जय सद्दं पउंजंति।

१६२. तत्पश्चात् उस विजयदेव के सामानिक परिषदा-स्थानीय देव अर्थात् सामानिक देव विजय देव के उत्पन्न हुए इस प्रकार के इस आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित और मनोगत संकल्प को जानकर जहाँ वह विजय देव था वहाँ पर आये, वहाँ आकर करयुगल को जोड़कर और मस्तक पर घुमाकर अंजलि पूर्वक उस विजय देव को जय-विजय शब्दों से बधाया और जय-विजय शब्दों से बधाकर इस प्रकार बोले—

'हे देवानुप्रिय ! आप की विजया राजधानी में स्थित सिद्धायतन में जिनोत्सेध प्रमाण वाली एक सौ आठ जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं, तथा—

सुधर्मा सभा के माणवक चैत्यस्तम्भ में वज्ररत्नों से निर्मित गोल वर्तुलाकार समुद्गकों में बहुत-सी जिनेन्द्र देवों की अस्थियाँ रखी हुई हैं।

ये (जिन प्रतिमायें और अस्थियाँ) आप देवानुप्रिय को एवं विजया राजधानी में निवास करने वाले और दूसरे अनेक देवों और देवियों के लिये अर्चनीय, वन्दनीय, पूजनीय, सत्कारणीय (सत्कार करने योग्य) सम्माननीय हैं, तथा कल्याण रूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्य रूप होने से पर्युपासना, सेवा करने योग्य हैं, ये सब आप देवानुप्रिय के लिये पूर्व में भी श्रेय रूप हैं, और ये सब पीछे भी आप देवानुप्रिय के लिये श्रेयस्कर हैं, अतएव आप देवानुप्रिय के लिये यह पहले भी करणीय हैं, और आप देवानुप्रिय के लिये बाद में भी करणीय—करने योग्य हैं, क्योंकि यह आप देवानुप्रिय को पहले और बाद में हित के लिये—यावत्—अनुगामीरूप से होगा, इस प्रकार कहकर उन्होंने जोर-जोर से जय-जय शब्दघोष किया।

१९३. तए णं से विजए देवे तेसिं सामाणियपरिसोववण्णगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए देवसयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता दिव्वं देवदूसजुयलं परिहेइ, परिहित्ता देवसयणिज्जाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता उववायसभाओ पुरत्थिमेणं दारेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हरयं अणुपदाहिणं करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमेणं तोरणेणं अणुप्पविसइ अणुप्पविसित्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता हरयं ओगाहेइ, ओगाहित्ता जलावगाहणं करेइ, करित्ता जलमज्जणं करेइ, करित्ता जलकिड्डं करेइ, करित्ता आयंते चोक्खे परमसूइभूए हरयाओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणामेव अभिसेयसभा तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभिसेयसभं पदाहिणं करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १४१

१९३. तत्पश्चात् वह विजयदेव सामानिक परिषदोपगत देवों के इस हितावह अर्थ को सुनकर और मन में निश्चय कर हृष्ट-तुष्ट —यावत्—हृदय प्रफुल्लित होता हुआ देवशय्या से उठा, उठकर दिव्य देवदूष्य युगल को पहना, पहनकर देवशय्या से नीचे उतरा, उतर कर उपपात सभा के पूर्व दिशावर्ती द्वार से बाहर निकला, निकलकर जहाँ ह्रद था, वहाँ गया, वहाँ जाकर ह्रद की बार-बार प्रदक्षिणा करता हुआ पूर्व तोरण द्वार से उसमें प्रविष्ट हुआ, अनुप्रवेश करके पूर्वदिशा भाग में स्थित त्रिसोपान पंक्ति से नीचे उतरा, उतरकर ह्रद में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर जलावगाहन-स्नान किया, स्नान करके शरीर का जलमर्दन किया, मर्दन करके जलक्रीडा की, जलक्रीड़ा करके आचमन द्वारा स्वच्छ, परमशुचिभूत होकर ह्रद से बाहर निकला, बाहर निकल कर जहाँ अभिषेक सभा थी, वहाँ आया, वहाँ आकर अभिषेक सभा की पुन:-पुन: प्रदक्षिणा करता हुआ पूर्व दिशा के द्वार से उसमें प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया और आकर उस श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गया ।

विजयदेवस्स इंदाभिसेयं—

१९४. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! विजयस्स देवस्स महत्थं महग्घं महरिहं विपुलं इंदाभिसेयं उवट्ठवेह ।"

विजयदेव का इन्द्राभिषेक—

१९४. तदनन्तर उस विजयदेव के सामानिक परिषदोपन्न देवों ने आभियोगिक देवों को बुलाया, और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"हे देवानुप्रियो ! तुम लोग अतिशीघ्र विजयदेव का इन्द्राभिषेक करने के लिये महान अर्थवाली, महा मूल्यवान, महापुरुषों के योग्य, विपुल ऐसी इन्द्राभिषेकयोग्य सामग्री उपस्थित करो ।

१९५. तए णं ते आभिओगिआ देवा सामाणिय परिसोववण्णेहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं देवा तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता उत्तर-पुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं णिसरंति, तं जहा— रयणाणं जाव-रिट्ठाणं । अहा बायरे पोग्गले परिसाडंति, परिसाडित्ता अहा सुहुमे पोग्गले परियायंति, परियायित्ता दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता—

(१) अट्ठसहस्सं सोवण्णियाणं कलसाणं,
(२) अट्ठसहस्सं रुप्पामयाणं कलसाणं,
(३) अट्ठसहस्सं मणिमयाणं कलसाणं,

१९५. तत्पश्चात् सामानिक परिषदोपपन्न देवों के द्वारा आज्ञापित वे आभियोगिक देव उन सामानिक देवों के आदेश को सुनकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—उल्लसित होकर दोनों हाथों को जोड़ मस्तक पर आवर्त करके अंजलिपूर्वक "हे देव ! हमें आपकी आज्ञा प्रमाण है, कहकर विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को सुनते हैं, सुनकर उत्तर-पूर्व दिग्भाग में गये, वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्‌घात द्वारा विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके संख्यात योजन प्रमाण दंडाकार के रूप में आत्म-प्रदेशों को बाहर निकाला, यथा—रत्नों के—यावत्—रिष्टों के यथा बाहर-असार पुद्गलों को अलग किया, दूर हटाया दूर हटाकर यथा सूक्ष्म-सारभूत पुद्गलों को ग्रहण किया, ग्रहण करके पुनः दूसरी बार दुबारा भी वैक्रिय समुद्‌घात किया, समुद्‌घात करके—

(१) एक हजार आठ स्वर्ण के कलशों की,
(२) एक हजार आठ चाँदी के कलशों की,
(३) एक हजार आठ मणियों के कलशों की,

(४) अट्ठसहस्सं सुवण्ण-रुप्पामयाणं कलसाणं,
(५) अट्ठसहस्सं सुवण्ण-मणिमयाणं कलसाणं,
(६) अट्ठसहस्सं रुप्पामणिमयाणं कलसाणं,
(७) अट्ठसहस्सं सुवण्ण-रुप्पामयाणं कलसाणं,
(८) अट्ठसहस्सं भोमेज्जाणं कलसाणं,
(९) अट्ठसहस्सं भिंगारगाणं,
(१०) अट्ठसहस्सं आयंसगाणं,
(११) अट्ठसहस्सं थालाणं,
(१२) अट्ठसहस्सं पातीणं,
(१३) अट्ठसहस्सं सुपइट्ठगाणं[1],
(१४) अट्ठसहस्सं चित्ताणं,
(१५) अट्ठसहस्सं रयणकरंडगाणं,
(१६) अट्ठसहस्सं पुप्फचंगेरीणं-जाव-लोमहत्थ चंगेरीणं,
(१७) अट्ठसहस्सं पुप्फपडलगाणं-जाव-लोमहत्थ पडलगाणं,
(१८) अट्ठसयं सीहासणाणं,
(१९) अट्ठसयं छत्ताणं,
(२०) अट्ठसयं चामराणं,[2]
(२१) अट्ठसयं अवपडगाणं,
(२२) अट्ठसयं वट्टकाणं,
(२३) अट्ठसयं तवसिप्पाणं,
(२४) अट्ठसयं खोरकाणं,
(२५) अट्ठसयं पीणकाण,
(२६) अट्ठसयं तेल्लसमुग्गकाणं,
(२७) अट्ठसयं धूवकडुच्छुयाणं विउव्वंति ।

ते साभाविए विउव्विए य कलसे य-जाव-धूवकडुच्छुए य गेण्हंति, गेण्हित्ता विजयाओ रायहाणीओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-उद्धुत्ताए दिव्वाए देवगईए तिरियमसंखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झं मज्झेणं वीयीवयमाणा वीयीवयमाणा जेणेव खीरोदे समुद्दे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता खीरोदगं गिण्हंति, गिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं-जाव-सयसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति.

(४) एक हजार आठ स्वर्ण और चाँदी के कलशों की,
(५) एक हजार आठ स्वर्ण और मणियों के कलशों की,
(६) एक हजार आठ चाँदी और मणियों के कलशों की,
(७) एक हजार आठ स्वर्ण और चांदी के मिश्रित कलशों की,
(८) एक हजार आठ मिट्टी के कलशों की,
(९) एक हजार आठ भृङ्गारकों-झारियों की,
(१०) एक हजार आठ आदर्शकों-दर्पणों की,
(११) एक हजार आठ थालों की,
(१२) एक हजार आठ पात्रियों की,
(१३) एक हजार आठ सुप्रतिष्ठकों-बाजोटों की,
(१४) एक हजार आठ चित्रों की,
(१५) एक हजार आठ रत्न करंडकों की,
(१६) एक हजार आठ पुष्पचंगेरिकाओं की—**यावत्**—लोमहस्त-(मयूरपिच्छ) चंगेरिकाओं की,
(१७) एक हजार आठ पुष्पपटलों की—**यावत्**—लोमहस्तपटलकों की,
(१८) एक सौ आठ सिंहासनों की,
(१९) एक सौ आठ छत्रों की,
(२०) एक सौ आठ चामरों की,
(२१) एक सौ आठ अधपट्टकों की,
(२२) एक सौ आठ वर्तकों की,
(२३) एक सौ आठ तपःसिप्रों की,
(२४) एक सौ आठ क्षोरकों की—कटोरों की,
(२५) एक सौ आठ पीणकों की—समचतुरस्र पात्र विशेषों की,
(२६) एक सौ आठ तैल समुद्गकों की,
(२७) एक सौ आठ धूप कडुच्छकों की विकुर्वणा की ।

इन सबको स्वाभाविक रूप से विकुर्वित हुए कलशों को—**यावत्**—धूपकडुच्छकों को लिया, लेकर विजया राजधानी में से निकले, निकलकर वे अपनी इस उत्कृष्ट—**यावत्**—उद्धृत दिव्य देवगति से तिर्यग् असंख्यातद्वीप समुद्रों के बीच में से होकर चलते हुए—चलते हुए जहाँ क्षीरोदधि समुद्र था वहाँ आये, वहाँ आकर क्षीरोदक को पात्र में भरा, क्षीर सागर के जल को लेकर जितने भी वहाँ पर उत्पल—**यावत्**—शतपत्र, सहस्रपत्र, कमल थे उन

गिण्हित्ता जेणेव पुक्खरोदे समुद्दे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पुक्खरोदगं गेण्हंति, गिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं -जाव-सयसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव समयखेत्ते, जेणेव भरहेरवयाइं वासाइं, जेणेव मागध-वरदाम-पभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तित्थोदगं गिण्हंति, गिण्हित्ता तित्थमट्टियं गेण्हंति।

गेण्हित्ता जेणेव गंगा-सिंधु-रत्ता-रत्तवई सलीला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सरितोदगं गेण्हंति, गिण्हित्ता उभओ तडमट्टियं गेण्हंति।

गेण्हित्ता जेणेव चुल्लहिमवत-सिहरि वासघरपव्वया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सव्वतूवरे य, सव्व पुप्फे य, सव्व गंधे य, सव्व मल्ले य, सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हंति, सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हित्ता जेणेव पउमद्दह-पुण्डरीयद्दहा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता दहोदग गेण्हंति, गेण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं-जाव-सयसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हंति।

ताइं गेण्हित्ता जेणेव हेमवय-हेरण्णवयाइं वासाइं, जेणेव रोहिय-रोहियंस-सुवण्णकूल-रुप्पकूलाओ तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सलिलोदगं गेण्हंति, गेण्हित्ता उभओ तडमट्टियं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव सद्दावाति-मालवंत-परियागा वट्ट वेतड्ढ पव्वया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सव्वतूवरे य, -जाव-सव्वोसहिसिद्धत्थए य गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव महाहिमवंत-रुप्पिवासघरपव्वया उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सव्वपुप्फे तं चेव महा पउमद्दह-महापुण्डरीयद्दहा तेणेव उवागच्छंति।

उवागच्छित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं-जाव-सयसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव हरिवासे रम्मावासे ति, जेणेव हरकंत-हरिकंत-णरकंत-णारिकंताओ सलिलाओ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सलिलोदगं गिण्हति, गेण्हित्ता उभओ तडमट्टियं गेण्हंति,

गेण्हित्ता जेणेव वियडावइ-गधावइ-वट्ट वेयड्ड पव्वया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सव्वतूवरे य-जाव-सव्वोसहिसिद्धत्थए गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव-णिसह-णीलवंत वासहर पव्वया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता, सव्वतूवरे य-जाव-सव्वोसहिसिद्धत्थए य गेण्हंति।

गेण्हित्ता जेणेव तिगिच्छदह-केसरिदहा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं-जाव-सयसहस्सपत्ताइं ताइं

सबको लिया, उन्हें लेने के बाद जहाँ पुष्करोदधि था वहाँ आये वहाँ आकर पुष्करोदक ग्रहण किया, ग्रहण करके वहाँ जितने भी उत्पल—**यावत्**—शतदल-सहस्रदलकमल थे, उनको लिया, लेकर फिर वे जहाँ मनुष्य क्षेत्र था, उसमें भी जहाँ भरत और ऐरावत क्षेत्र थे, जहाँ मागध, वरदाम, प्रभास आदि तीर्थ थे, वहाँ आये, वहाँ आकर तीर्थोदक पात्रों में भरा, भरकर तीर्थों की मिट्टी ली।

मिट्टी लेने के बाद जहाँ गंगा, सिंधु, रक्ता-रक्तवती महानदियाँ थीं, वहाँ आये, वहाँ आकर सरितोदक पात्रों में भरा, सरितोदक लेकर नदियों के दोनों तटों की मिट्टी ली।

मिट्टी लेकर फिर जहाँ क्षुद्र हिमवान और शिखरी नामक वर्षधर पर्वत थे वहाँ आये, वहाँ आकर समस्त ऋतुओं की और रस विशेषों से युक्त वस्तुओं को समस्त पुष्पों को, समस्त गंधों को, समस्त मालाओं को, समस्त औषधियों और सिद्धार्थ को—सरसों को लिया, समस्त औषधियों और सरसों को लेकर जहाँ पद्मद्रह, पुण्डरिकद्रह थे वहाँ आये, वहाँ आकर द्रहोदक लिया और वहाँ जितने भी उत्पल—**यावत्**—शत सहस्रदल कमल थे, उनको लिया।

उनको लेने के बाद जहाँ हेमवत—हैरण्यवत क्षेत्र थे, जहाँ रोहित-रोहितांस क्षेत्र, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, नदियाँ थी, वहाँ आये, वहाँ आकर नदियों का जल भरा और दोनो तटों की मिट्टी ली, मिट्टी लेने के बाद जहाँ शब्दापाति, माल्यवंत, प्रयाग, वृत-वैताढ्य पर्वत थे, वहाँ आये, वहाँ आकर सर्व रस विशेषों से युक्त वस्तुओं—**यावत्**—समस्त औषधियों और सरसों को लिया, लेने के बाद जहाँ महाहिमवन्त और रूप्य वर्षधर पर्वत थे, वहाँ आये, वहाँ आकर समस्त पुष्पों आदि को लिया और उसी प्रकार से जहाँ महापद्मद्रह, महा पुण्डरीकद्रह थे वहाँ आये।

वहाँ आकर जितने वहाँ उत्पल थे—**यावत्**—शत सहस्र कमल थे, उनको लिया, उनको लेकर जहाँ हरिवर्ष, रम्यक वर्ष थे, जहाँ हरकांता, हरिकांता, नरकांता, नारीकांता नदियां थीं वहाँ आये, वहाँ आकर नदियों का जल पात्रों में लिया, जल लेकर उन नदियो के दोनों तटों की मिट्टी ली।

मिट्टी लेने के बाद जहाँ विकटापति, गंधापति, वृत्तवैताढ्य पर्वत थे, वहाँ आये, वहाँ आकर सर्वरस विशेषों से युक्त सर्व ऋतुओं में उत्पन्न श्रेष्ठ वस्तुओं—**यावत्**—समस्त औषधियों व सिद्धार्थकों को लिया, उसके बाद जहाँ निषध, नील नामक वर्षधर पर्वत थे वहाँ आये. आकर सर्व ऋतुओं के उत्तम पुष्पों—**यावत्**—समस्त औषधियों और सर्षपों को लिया।

सर्षपों को लेने के बाद जहाँ तिगिच्छद्रह, केसरीद्रह थे वहाँ आये, वहाँ आकर उन्होंने वहाँ जितने उत्पल—**यावत्**—

गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव पुव्व विदेहावर विदेह वासाइं, जेणेव सीयासीओयाओ महाणईओ जहा णईओ।

सहस्र पत्र कमल थे, उनको लिया, उनको लेकर जहाँ पूर्वविदेह और पश्चिमविदेह क्षेत्र थे, जहाँ सीता और सीतोदा महा-नदियाँ थीं।

जेणेव सव्व चक्कवट्टि विजया, जेणेव सव्वमागह-वरदाम-पभासाइं तित्थाइं तहेव।

जहाँ सर्व चक्रवर्तियों के विजेतव्य विजय थे, जहाँ पर सर्व मागध, वरदाम, प्रभास आदि तीर्थ थे वहाँ से जैसे पूर्व नदियों का जल, मिट्टी, कमल आदि लेने का वर्णन किया गया है, वैसा इन नदियों ह्रदों, तीर्थों के जल लेने आदि का सर्व वर्णन यहाँ भी कर लेना चाहिए।

जेणेव सव्ववक्खारपव्वया सव्व तुवरे य, जेणेव सव्वंतर-णईओ सलीलोदगं गेण्हंति, गेण्हित्ता तं चेव।

जहाँ वक्षस्कार पर्वत थे, वहाँ आये और वहाँ आकर सर्व ऋतुओं के पुष्पादिकों को लिया, फिर जहाँ सर्व अन्तर्वर्ती नदियाँ थीं वहाँ आये। वहाँ से भी पूर्व की तरह जल, दोनों तटों की मिट्टी आदि ली, इत्यादि का वर्णन करना चाहिये।

जेणेव मंदरे पव्वए, जेणेव भद्दसालवणे तेणेव उवागच्छंति सव्व तुवरे य-जाव-सव्वोसहिसिद्धत्थए य गिण्हंति, गेण्हित्ता; जेणेव णंदणवणे तेणेव उवागच्छइ. उवागच्छित्ता सव्व तुवरे य-जाव-सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसं च गोसीसचंदणं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव सोमणसवणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सव्व तुवरे य-जाव-सव्वोसहिसिद्धत्थ य सरसं च गोसीस चंदणं दिव्वं च सुमणदामं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव पंडगवणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सव्व तूवरे य-जाव-सव्वो-सहिसिद्धत्थे य सरसं च गोसीस चंदणं दिव्वं च सुमणदामं दद्दरय-मलय सुगंधिए य गंधे गेण्हंति।

तत्पश्चात् जहाँ मन्दर पर्वत था और उसमें भी जहाँ भद्रशाल वन था, वहाँ आये, और वहाँ से भी रस प्रधान सर्वऋतुओं के पुष्पों-फलों—यावत्—सर्व औषधियों और सिद्धार्थकों को लिया, लेने के बाद जहाँ नन्दनवन था वहाँ आये, और वहाँ आकर सब ऋतुओं के पुष्पों-फलों—यावत्—सर्व औषधियों और सिद्धार्थकों को लिया, तथा सरस गोशीर्ष चन्दन को लिया, चन्दन को लेकर जहाँ सौमनसवन था वहाँ आये, वहाँ आकर सर्व ऋतुओं के पुष्पों-फलों आदि को—यावत्—सर्व औषधियों और सिद्धार्थकों-सरसों और सरस गोशीर्ष चन्दन एवं दिव्य सुमन मालाओं, मलय-चन्दन की गंध से मिश्रित अत्यन्त सुगन्धित गन्धद्रव्यों को लिया।

गेण्हित्ता एगओ मिलंति, मिलित्ता जंबुद्दीवस्स पुरत्थि-मिल्लेणं दारेणं णिगच्छंति, णिगच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-दिव्वाए देवगईए तिरियमसंखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झं-मज्झेणं वीईवयमाणा वीईवयमाणा जेणेव विजया रायहाणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता विजयं रायहाणिं अणुप्प-याहिणं करेमाणा करेमाणा जेणेव अभिसेयसभा, जेणेव विजए देवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, विजयस्स देवस्स तं महत्थं महग्घं महरिहं विपुलं अभिसेयं उवट्ठवेंति।

इन सबको लेकर वे सब एक स्थान पर एकत्रित हुए, एकत्रित होकर जम्बूद्वीप के पूर्वद्वार से निकले, निकलकर वे अपनी उस उत्कृष्ट—यावत्—दिव्य देवगति से तिर्यग् असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बीचोंबीच से चलते हुए जहाँ विजया राजधानी थी, वहाँ आये, वहाँ आकर विजया राजधानी की प्रदक्षिणा करते हुए जहाँ अभिषेक सभा थी, उसमें भी जहाँ विजयदेव था, वहाँ आये, वहाँ आकर दोनों हाथों को जोड़कर और मस्तक पर आवर्त कर के अंजलिपूर्वक जय-विजय शब्दों के द्वारा बधाया, और फिर विजय देव के अभिषेक की वह महार्थक, महामूल्यवान, महान पुरुषों के योग्य और विपुल सामग्री सामने रखी।

१६६. तए णं तं विजयदेवं चत्तारि य सामाणिय साहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ तिण्णि परिसाओ सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवई, सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अन्ने य बहवे विजय रायहाणिवत्थव्वगा वाणमंतरा देवाय देवीओ य तेहिं साभाविएहिं उत्तरवेउव्विएहिं य वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारि पडिपुण्णेहिं चंदण कयचच्चाएहिं आविद्धकंठ-

१६६. तदनन्तर (अभिषेक सामग्री उपस्थित करने के बाद) चार हजार सामानिक देवों, अपने परिवार सहित चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सातों प्रकार की अनीक-सेनाओं, सातों अनीका-धिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देव तथा विजयाराजधानी के निवासी और दूसरे भी अनेक वाण-व्यंतर देव-देवियों ने उन स्वाभाविक और उत्तर विक्रिया करके आभियोगिक देवों द्वारा उपस्थित श्रेष्ठ कमलों के ऊपर स्थापित, सुगन्धित, श्रेष्ठ जल से पूर्ण रूपेण भरे हुए, चन्दन के लेप से चित्रित (अर्थात् जिन पर

गुणेहिं पउमुप्पलपिहाणेहिं करयल सुकुमाल कोमल परिग्गहिएहिं अट्ठ सहस्साणं सोवण्णियाणं कलसाणं-जाव-अट्ठ सहस्साणं भोमेयाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुवरेहिं -जाव-सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए सव्वजुत्तीए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूतिए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वोरोहेणं सव्वणाडएहिं सव्व पुप्फ-गंध-मल्लालंकार विभूसाए, सव्व दिव्वतुडियणिणाएणं, महया इड्ढीए, महया जुत्तीए, महया बलेणं, महया समुदएणं, महया तुरिय जमगसमग-पडुप्पवाइयरवेणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-मुरव-मुयंग-दुंदुहि-हुडुक्कणिग्घोस-संनिनादियरवेणं महया महया इंदाभिसेगेणं अभिसिंचंति ।

चन्दन के लेप के थापे लगे हुए हैं) जिनके कंठों में सूत—कलावा (पंचरंगा सूत) बँधा हुआ है, पद्मकमलों के ढक्कन से ढके हुए और सुकुमाल कोमल हस्ततलों (हथेलियों में धारण किये हुए) ऐसे एक हजार आठ सौवर्णिक (स्वर्ण से बने हुए) कलशों—यावत्—एक हजार मिट्टी के कलशों से तथा सभी महानदियों, द्रहों, तीर्थ-सरोवरों, अन्तर्वर्ती नदियों आदि के जल और इन-इनके तटों की मिट्टी से एवं सभी ऋतुओं के पुष्पों-फलों—यावत्—सर्व औषधियों और सिद्धार्थकों आदि रूप अभिषेक सामग्री से तथा अपनी समस्त ऋद्धि, समस्त द्युति-कांति, समस्त सेना, समस्त परिवार आदि के साथ अत्यधिक आदरपूर्वक एवं समस्त विभूति, विभूषा, औत्सुक्य, अन्तःपुर सहित तथा अनेक प्रकार के नाटकों-उत्सवों के साथ, समस्त पुष्पों, गंधों, मालाओं और अलंकारों आदि के द्वारा की गई विभूषा-सजावट के साथ, समस्त दिव्य वाद्यों के निनाद पूर्वक, महान् ऋद्धि, महान् द्युति, महान् बल, महान् अभ्युदय एवं निपुण पुरुषों द्वारा एक साथ बजाये जा रहे उत्तम वाद्यों की ध्वनि तथा शंख, प्रणव, ढोल-पटह-नगाड़ा, भेरी, झल्लरी, खरमुखी (वाद्य विशेष), मुरज, मृदंग, दुन्दुभि, हुडुक्क—तवला आदि वाद्यों के समुदाय की निनाद ध्वनि पूर्वक बड़े ठाट-बाट से उस विजय देव का इन्द्राभिषेक किया ।

१९७. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स महया महया इंदाभिसेगंसि वट्टमाणंसि—

अप्पेगइया देवा णच्चोदगं णातिमट्टियं पविरलफुसियं दिव्वं सुरभिं रयरेणुविणासणं गंधोदगवासं वासंति ।

१९७. तत्पश्चात् जब इस प्रकार के अतिशय प्रभावक भव्य समारोहपूर्वक इस विजय देव का इन्द्राभिषेक हो रहा था तब ;

कितने ही देव जिसमें न तो अधिक जल का उपयोग होता हैं, और न कीचड़ होता है, इस प्रकार से रिमझिम-रिमझिम फुहारों के रूप में धूलि-मिट्टी को उपशमित करने के लिये दिव्य सुगंधित गंधोदक की वर्षा करते हैं ।

अप्पेगइया देवा णिहयरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंति ।

कितने ही देव उस विजय राजधानी को निहतरज वाली, नष्टरज वाली, भ्रष्टरज वाली, प्रशांत रज वाली और उपशांत रज वाली करते हैं, बनाते हैं ।

अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं सब्भितर-बाहिरियं आसिय-सम्मज्जिओवलित्तं सित्तसुइसम्मट्ठरत्यंतरावणवीहियं करेंति ।

कतिपय देव उस विजय राजधानी में भीतर-बाहर (सब तरफ) जल का छिड़काव कर साफ-सुथरा कर और लीप-पोतकर गलियों, बाजारों रास्तों को भली भाँति शुद्ध-पवित्र बनाते हैं ।

अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं मंचातिमंचकलियं करेंति,

कुछ एक देव विजया राजधानी को मंचातिमंच युक्त करते हैं ।

अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं णाणाविहरागरंजिय-ऊसिय जयविजय-वेजयंती-पडागातिपडागमंडियं करेंति ।

कितनेक देव विजया राजधानी को अनेक प्रकार के रंगों से रंगी हुई (रंगबिरंगी) जय-विजय सूचक और फहराती हुई विविध आकार-प्रकार वाली विजय वैजयन्ती पताकाओं से मंडित करते हैं ।

अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं लाउल्लोइयमहियं करेंति,

कितनेक देव विजया राजधानी को गोबर आदि से लीपते हैं ।

अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं गोसीस-सरसरत्त चंदण-दद्दर दिण्ण पंचंगुलितलं करेंति ।

कितनेक देव विजया राजधानी को सरस गोशीर्ष, रक्त चन्दन एवं दर्दर चन्दन के लेप के थापों से मंडित करते हैं ।

अप्पेगइया देवा विजय रायहाणिं उवचियचंदणकलसं चंदणघडसुकय-तोरण-पडिदुवारदेसभागं करेंति।

अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं आसत्तोसत्त-विपुल-वट्ट-वग्घारिय-मल्लदामकलावं करेंति।

अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं पंचवण्ण-सरस-सुरभि-मुक्क-पुप्फ-पुञ्जोवयारकलियं करेंति।

अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं कालागुरु-पवर कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झंत-मघमघेंत-गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेंति।

अप्पेगइया देवा हिरण्णवासं वासंति।

अप्पेगइया देवा सुवण्णवासं वासंति।

एवं रयणवासं वइरवासं पुप्फवासं मल्लवासं गंधवासं चुण्णवासं वत्थवासं आहरणवासं वासंति।

अप्पेगइया देवा हिरण्णविहिं भाइंति।

एवं सुवण्णविहिं रयणविहिं वइरविहिं पुप्फविहिं मल्लविहिं, चुण्णविहिं, गंधविहिं वत्थविहिं आभरणविहिं भाइंति।

अप्पेगइया देवा दुयं णट्टविहिं उवदंसेंति।

अप्पेगइया देवा बिलंबियं णट्टविहिं उवदंसेंति।

अप्पेगइया देवा दुय-विलंबियं णट्टविहिं उवदंसेंति।

एवं अंचियं णट्टविहिं, रिभियं णट्टविहिं, अंचियरिभियं णट्टविहिं, दिव्वं णट्टविहिं, आरभडं णट्टविहिं, भसोलं णट्टविहिं, आरभड-भसोलं णट्टविहिं, उप्पाय-णिवायपवुत्तं णट्टविहिं, संकुचिय-पसारियं णट्टविहिं, रियारियं णट्टविहिं, भंतसंभंतं णाम दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति।

अप्पेगइया देवा चउव्विहवाइयं वादेंति, तं जहा—(१) ततं, (२) विततं, (३) घणं, (४) झुसिरं।

अप्पेगइया देवा चउव्विहं गेयं गायंति, तं जहा—(१) उक्खित्तयं, (२) पवत्तयं, (३) मंदायं (४) रोइदावसाणं।

अप्पेगइया देवा चउव्विह अभिणयं अभिणयंति, तं जहा—(१) दिट्ठंतियं, (२) पाडंतियं, (३) सामंतोवणिवाइयं, (४) लोगमज्झावसाणियं।

अप्पेगइया देवा पीणंति, अप्पेगइया देवा वुक्कारेंति, अप्पेगइया देवा तंडवेंति, अप्पेगइया देवा लासेंति, अप्पेगइया देवा पीणंति, वुक्कारेंति, तंडवेंति, लासेंति।

कितने ही देव विजया राजधानी के प्रत्येक घर के द्वार को चन्दन के कलशों और चन्दन के घटों से निर्मित तोरणों से मंडित करते हैं।

कितने ही देव विजया राजधानी को लटकती हुई बड़ी-बड़ी गोलाकार पुष्पमालाओं से शृंगारित करते हैं।

कितने ही देव विजया राजधानी को पंचरंगे सरस सुगंधित पुष्पों के पुंजों (गुलदस्तों) से सजाते हैं।

कितने ही देव विजया राजधानी को काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दुरुष्क, तुरुष्क, धूप का अग्नि में प्रक्षेप करने पर महकती हुई गंध के उड़ने से मनमोहक और श्रेष्ठ सुगंध की गंधवर्तिका (अगरबत्ती) जैसी बनाते हैं।

कितने ही देव चाँदी की वर्षा बरसाते हैं।

कितने ही देव स्वर्ण की वर्षा करते हैं।

इसी प्रकार रत्नवर्षा, वज्ररत्नवर्षा, पुष्पवर्षा, माल्यवर्षा, गंधवर्षा, चूर्णवर्षा, वस्त्रवर्षा, और आभरण वर्षा बरसाते हैं।

कितने ही देव चाँदी का दान देते थे।

इसी प्रकार कितने ही देव स्वर्णदान, रत्नदान, वज्ररत्नदान, पुष्पदान, माल्यदान, सुगन्धित चूर्णदान, गंधदान, वस्त्रदान, आभरण दान देते हैं।

कितने ही देव द्रुत नाट्यविधि का प्रदर्शन करते हैं।

कितने ही देव विलम्बितनाट्यविधि का प्रदर्शन करते हैं।

कितने ही देव द्रुत विलम्बित नाट्यविधि का प्रदर्शन करते हैं।

"इसी प्रकार कितने ही देव अंचित नाट्यविधि का, रिभित नाट्यविधि का, अंचित-रिभित नाट्यविधि का, दिव्य नाट्य विधि का, आरभट नाट्यविधि का, भसोल नाट्यविधि का, आरभट-भसोल नाट्यविधि का, उत्पात-निपात प्रयुक्त नाट्य विधि का, संकुचित-प्रसारित नाट्यविधि का, गमनागमन रूप नाट्य-विधि का, भ्रान्त-संभ्रान्त नामक दिव्य नाट्य विधि का प्रदर्शन करते हैं।"

कितने ही देव चार प्रकार के वाद्यों को बजाते हैं, यथा—(१) तत, (२) वितत, (३) घन, (४) शुषिर।

कितने ही देव चार प्रकार के गीतों को गाते हैं, यथा—(१) उत्क्षिप्त, (२) प्रवृत, (३) मंद, (४) रोचितावसान।

कितने ही देव चार प्रकार के अभिनयों का अभिनय करते हैं, यथा—(१) दार्ष्टान्तिक, (२) पाटांतिक, (३) सामंतोविनिपातिक, (४) लोकमध्यावसान्तिक।

कितने ही देव अपने शरीर का स्थूल-आकार बनाते हैं, कितने ही देव गर्जना करते हैं, कितने ही देव तांडव नृत्य करते हैं, कितने ही देव नृत्य करते हैं, और कितने ही देव अपने शरीर को मांसल बनाते हैं, गर्जना करते हैं, तांडवनृत्य करते हैं और नृत्य करते हैं।

अप्पेगइया देवा अप्फोडेंति, अप्पेगइया देवा वग्गंति, अप्पेगइया देवा तिवेंति, अप्पेगइया देवा छिंदेंति, अप्पेगइया देवा अप्फोडेंति, वग्गंति, तिवेंति, छिंदेंति।

कितने ही देव ताल ठोकते हैं, कितने ही देव उछल-कूद करते हैं, कितने ही देव छलांग लगाते हैं, कितने ही देव छेदन-भेदन करते हैं, कितने ही देव ताल ठोकते हैं, उछल-कूद करते हैं, छलांग मारते हैं, और छेदन-भेदन करते हैं।

अप्पेगइया देवा हयहेसियं करेंति, अप्पेगइया देवा हत्थिगुलगुलाइयं करेंति, अप्पेगइया देवा रहघणघणाइयं करेंति, अप्पेगइया देवा हयहेसियं, हत्थिगुलगुलाइयं रहघणघणाइयं करेंति।

कितने ही देव घोड़े जैसे हिनहिनाते हैं, कितने ही देव हाथी जैसे गुड़गुड़ाहट करते हैं, कितने ही देव रथ जैसी घनघनाहट करते हैं, कितने ही देव घोड़े जैसी हिनहिनाहट करते हैं, हाथी जैसी गुडगुडाहट और रथ जैसी घनघनाहट करते हैं।

अप्पेगइया देवा उच्छोलेंति, अप्पेगइया देवा पच्छोलेंति, अप्पेगइया देवा उक्किट्ठीओ करेंति, अप्पेगइया देवा उच्छोलेंति, पच्छोलेति, उक्किट्ठीओ करेंति।

कितने ही देव हर्षातिरेक से उछलते हैं, कितने ही देव आँखे मटकाते हैं, कितने ही एक-दूसरे को गोदी में उठा लेते हैं, और कितने ही देव उछलते हैं, आँखें मटकाते हैं एवं एक-दूसरे को गोदी में उठा लेते हैं।

अप्पेगइया देवा सीहणादं करेंति, अप्पेगइया देवा पायदद्दरयं करेंति, अप्पेगइया देवा भूमिचवेडं दलयंति, अप्पेगइया देवा सीहणादं, पायदद्दरयं करेंति, भूमिचवेडं दलयंति।

कितने ही देव सिंहनाद करते हैं, कितने ही देव जोर-जोर से जमीन पर पैर पटकते हैं, कितने ही देव जमीन पर हाथों को पटकते हैं, और कितने ही देव सिंहनाद करते हैं, जमीन पर पैर पटकते हैं, एवं हाथों को पटकते हैं।

अप्पेगइया देवा हक्कारेंति, अप्पेगइया देवा वुक्कारेंति, अप्पेगइया देवा थक्कारेति, अप्पेगइया देवा पुक्कारेति, अप्पेगइया देवा नामाइं सावेंति, अप्पेगइया देवा हक्कारेंति, वुक्कारेति, थक्कारेंति, पुक्कारेति, णामाइं सावेंति।

कितनेक देव एक-दूसरे को पुकारते हैं, कितनेक देव बकरे की तरह बुगबुगाहट करते हैं, कितनेक देव थकथकाहट करते हैं, कितनेक देव फुत्कराहट करते हैं, कितनेक देव आपस में एक-दूसरे के नामों को सुनाने लगते हैं, और कितनेक देव आपस में एक-दूसरे को पुकारते हैं, बुगबुगाहट करते हैं, थकथकाहट करते हैं, फुत्कराहट करते हैं, और एक-दूसरे के नामों को सुनाते हैं।

अप्पेगइया देवा उप्पतंति, अप्पेगइया देवा णिवयंति, अप्पेगइया देवा परिवयंति, अप्पेगइया देवा उप्पयंति, णिवयंति, परिवयंति।

कितनेक देव ऊपर को उछलते हैं, कितनेक देव जमीन पर लोटपोट होते हैं, कितनेक देव बांके-तिरछे होते हैं, और कितनेक देव ऊपर उछलते हैं, लोटपोट होते हैं एवं बांके-तिरछे नमते हैं।

अप्पेगइया देवा जलेंति, अप्पेगइया देवा तवंति, अप्पेगइया देवा पतवंति, अप्पेगइया देवा जलेंति, तवंति, पतवंति।

कितनेक देव देदीप्यमान ज्वालाओं को प्रगट करने का रूपक दिखाते हैं, कितने ही देव महान तपस्वी होने का रूपक दिखाते हैं, और कितने ही देव अत्यधिक ज्वालाओं को प्रगट करने का रूपक दिखाते हैं, कितने ही देव ज्वाला प्रकट करते हैं तपस्वी होने का तथा अत्यधिक ज्वाला प्रकट करने का रूपक दिखाते हैं।

अप्पेगइया देवा गज्जेंति, अप्पेगइया देवा विज्जुयायंति, अप्पेगइया देवा वासेंति, अप्पेगइया देवा गज्जेंति, विज्जुयायंति, वासेंति।

कितनेक देव मेघ गर्जना जैसे दृश्य को उपस्थित करते हैं, कितने ही देव मेघ विद्युत के चमकने का दृश्य दिखाते हैं, कितने ही देव मेघवर्षा का दृश्य दिखाते हैं, और कितने ही देव मेघ गर्जना, विद्युत के चमकने (कोंधने) एवं मेघवर्षा का दृश्य उपस्थित करते हैं।

अप्पेगइया देवा देव-सन्निवायं करेंति, अप्पेगइया देवा देवुक्कलियं करेंति, अप्पेगइया देवा देवकहकहं करेंति, अप्पेगइया देवा देवदुहदुहं करेंति, अप्पेगइया देवा देवसन्निवायं देवुक्कलियं, देवकहकहं, देवदुहदुहं करेंति।

कितने ही देव एक-दूसरे के गले मिलते हैं, कितने ही देव खेल-कूद आदि क्रीड़ा करते हैं, कितने ही देव कहकहे लगाते हैं, कितने ही देव दुहदुहध्वनिघोष करते हैं, और कितनेक देव आपस में गले मिलते हैं, खेल-कूद आदि क्रीडा करते हैं, कहकहे लगाते हैं, एवं दुह-दुह घोष करते हैं।

अप्पेगइया देवा देवुज्जोयं करेंति, अप्पेगइया देवा विज्जुयारं करेंति, अप्पेगया देवा चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगइया देवा देवुज्जोयं विज्जुयारं चेलुक्खेवं करेंति।

कितने ही देव दिव्य उद्योत करते हैं, कितने ही देव आकाश को विद्युतमय (आतिशबाजी-फटाखों को फोड़ने की चमक जैसा) करते हैं, कितने ही देव वस्त्र के बने गुब्बारे उड़ाते हैं, और कितनेक देव दिव्य उद्योत करते हैं, आकाश को विद्युतमय करते हैं, और गुब्बारे उड़ाते हैं।

अप्पेगइया देवा उप्पलहत्थगया-जाव-सहस्सपत्तहत्थगया।

कितने ही देवों ने हाथों में कमल ले रखे हैं—**यावत्**—शतदल-सहस्रदल कमल ले रखे हैं।

अप्पेगइया देवा घंटाहत्थगया, कलसहत्थगया-जाव-धूव कडुच्छहत्थगया।

कितने ही देव हाथों में घंटा लिये हैं, कलश लिये हैं—**यावत्**—धूप का कडुच्छ धूपदान लिये हैं।

हट्ठतुट्ठा-जाव-हरिसवस विसप्पमाणहियया विजयाए रायहाणीए सव्वओ समंता आधावेंति परिधावेंति।

इस प्रकार से वे सबके सब देव हृष्ट-तुष्ट—**यावत्**—हर्षातिरेक से प्रफुल्लित हृदय वाले होकर विजया राजधानी के चारों ओर सभी दिशाओं में कभी इधर दौड़-भाग करते हैं, कभी उधर भागते हैं।

तए णं तं विजयं देवं चत्तारि सामाणिय साहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ-जाव-सोलस आयरक्ख देवसाहस्सीओ अण्णे य बहवे विजय रायहाणीवत्थव्वा वाणमंतरा देवा य देवीओ य तेहिं वरकमलपइट्ठाणेहिं-जाव-अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं तं चेव-जाव-अट्ठसएणं भोमेज्जाणं कलसाणं सव्वोदगेहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुवरेहिं सव्व पुप्फेहिं-जाव-सव्वोसहि सिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए-जाव-निग्घोस नाइयरवेणं महया महया इंदाभिसेएणं अभिसिंचंति, अभिसिंचित्ता पत्तेयं पत्तेयं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

तत्पश्चात् चार हजार सामानिक देव, अपने-अपने परिवार सहित चार अग्रमहिषियाँ—**यावत्**—सोलह हजार आत्मरक्षक देव और दूसरे बहुत से विजय राजधानी के निवासी वाणव्यंतर देव और देवियाँ उन श्रेष्ठ कमलों पर रखे हुए—**यावत्**—एक सौ आठ स्वर्ण के कलशों के तथा पूर्व में बताये गये अनुसार—**यावत्**—एक सौ आठ मृत्तिका कलशों के समस्त पवित्र जल से महानदियों, ह्रदों, तीर्थसरोवरों के जल से, और उनके तटों की मिट्टी से सर्व ऋतुओं के समस्त पुष्पों से—**यावत्**—सर्व औषधियों और सिद्धार्थकों से, समस्त ऋद्धि—**यावत्**—वाद्यघोषों की नाद ध्वनिपूर्वक महान् इन्द्राभिषेक द्वारा उस विजय देव का अभिषेक करते हैं, और अभिषेक करने के बाद प्रत्येक ने नतमस्तक हो अंजलिपूर्वक इस प्रकार कहा—

'जय जय नंदा, जय जय भद्दा, जय जय नंद भद्दं ते अजियं जिणेहि, जियं पालियाहि, अजियं जिणेहिं सत्तुपक्खं, जियं पालेहिं मित्तपक्खं, जिय मज्झे वसाहि, तं देव! निरुवसग्गं, इंदो इव देवाणं, चंदो इव ताराणं, चमरो इव असुराणं, धरणो इव नागाणं, भरहो इव मणुयाणं बहूणि पलिओवमाइं बहूणि सागरोवमाइं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं-जाव-आयरक्ख देव साहस्सीणं विजयस्स देवस्स विजयाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं विजयरायहाणि वत्थव्वाणं वाणमंतराणं देवाणं देवीणं य आहेवच्चं-जाव-आणाईसर सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहराहि'' त्ति कट्टु महया महया सद्दे णं जय जय सद्दं पउंजंति,''

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४१

''हे नन्द! आपकी जय हो, जय हो, हे भद्र! आपकी जय हो, जय हो, हे नन्द-भद्र! आपकी जय-विजय हो, आप अजित पर विजय प्राप्त करें, विजितों का पालन करें, अजित शत्रुपक्ष को विजित—वश में करें और जित मित्र पक्ष का पालन-पोषण रक्षण करें, जित-अनुकूल मित्रगण को बसाओ, हे देव! देवों में इन्द्र की तरह, ताराओं में चन्द्र की तरह, असुरों में चमर की तरह, नागों में धरण की तरह, और मनुष्यों में भरत की तरह निरुपसर्ग होकर विचरण करो, एवं अनेक पल्योपमों और सागरोपमों के समय तक चार हजार सामानिक देवों—**यावत्**—सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के और विजयदेव की विजया राजधानी एवं विजया राजधानी के निवासी और दूसरे बहुत से वाण व्यंतर देव-देवियों के आधिपत्य—**यावत्**—आज्ञा-ऐश्वर्यत्व सेनापतित्व को करते हुए और उनको पालते हुए सुखपूर्वक समय यापन करो, इस प्रकार के स्वस्ति वचनों को कहकर बड़े जोर से जय-जयकार करते हैं।

१९८. तए णं से विजए देवे महया महया इंदाभिसेएणं अभिसित्ते समाणे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता अभिसेयसभाओ पुरत्थिमेणं दारेणं पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणामेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अलंकारियसभं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे करेमाणे पुरत्थिमेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

१९८. इसके बाद वह विजय देव जब महान् महोत्सव के साथ इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त हो चुका तब सिंहासन से उठा और उठकर अभिषेक सभा के पूर्वी द्वार से बाहर निकला, निकलकर जहाँ अलंकार सभा थी वहाँ पर आया, वहाँ आकर अलंकार सभा की प्रदक्षिणा करते हुए पूर्व दिशा के द्वार से उसमें प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होने के बाद जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया, और वहाँ आकर पूर्वदिशा की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ उत्तम सिंहासन पर बैठ गया।

१९९. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणिय-परिसोववण्णगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेंति सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! विजयस्स देवस्स आलंकारियं भंडं उवणेह।"

तेणेव ते आलंकारियं भंडं उवट्ठवेंति।

१९९. तत्पश्चात् उस विजय देव के सामानिक परिषदोपपन्न देवों ने आभियोगिक देवों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही विजय देव के आलंकारिक भांड को उपस्थित करो।

पूर्व वर्णन के समान वे आलंकारिक भांड को लेकर उपस्थित करते हैं।

२००. तए णं से विजए देवे तप्पढमयाए पम्हल सूमालाए दिव्वाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेइ, लूहित्ता सरसेणं गोसीस चंदणेणं गायाइं अणुलिंपइ, अणुलिंपित्ता तयाऽणंतरं च णं नासानीसासवायवज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं, हयलालापेलवाइरेगं धवलं कणग-खइयंत कम्मं आगासफलियसरिसप्पभं अहतं दिव्वं देवदूसजुयलं णियंसेइ, णियंसित्ता हारं पिणिद्धेइ, पिणिद्धेत्ता एवं एकावलिं पिणिधति एकावलिं पिणिधेत्ता;

२००. तदनन्तर उस विजय देव ने सर्वप्रथम पद्मपराग अथवा हंस के पंखों के समान सुकुमाल दिव्य सुगन्धित कापायिक गंध से युक्त वस्त्र खंड (तौलिया) से शरीर को पोंछा, पोंछकर सरस गोशीर्ष चन्दन का शरीर पर लेप किया, अनुलेप करने के अनन्तर-नाक की निश्वास वायु से उड़ जाये ऐसे नेत्राकर्षक सुन्दर वर्ण और स्पर्श से युक्त, घोड़े की लीद से भी अधिक सुकोमल और श्वेत-धवल-शुभ्र सुनहरी बेल-बूटे वाले, और आकाश-स्फटिकमणि की प्रभा जैसी प्रभा वाले अनोखे, दिव्य, देवदूष्य युगल को पहना, देवदूष्य युगल को पहनकर फिर हार को पहना, हार को पहनने के बाद इसी प्रकार से एकावली (एक लड़ी) हार विशेष को पहना, एकावली को पहनकर फिर—

एवं एएणं अभिलावेणं मुत्तावलिं, कणगावलिं, रयणावलिं, कडगाइं, तुडियाइं अंगयाइं केयूराइं दसमुद्दियागंतकं कडिसुत्तकं तेअत्थिसुत्तगं मुरविं कंठमुरविं पालंबंसि कुण्डलाइं चूडामणिं चित्तरयणुक्कडं मउडं पिणिद्धेइ।"

"उसने इसी प्रकार से अभिलाप—कथनानुसार मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, करक, त्रुटित, अंगद, केयूर, दस मुद्रिकाओं, कटिसूत्र, त्रयस्त्रिसूत्र, (तिमनिया), मुरवि, आभूषण विशेष, कंठमुरवि, प्रलंब सूत्र—कंठ से पैर तक लटकने वाला आभूषण विशेष, कुण्डल, चूड़ामणि, नाना प्रकार के रत्नों से खचित उत्तम मुकुट आदि आभूषणों को यथास्थान पहना।

पिणिधित्ता गंठिम-वेढिम-पूरिम-संघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खयं पिव अप्पाणं अलंकिय-विभूसियं करेइ, करेत्ता दद्दर-मलय सुगंध गंधिएहिं गंधेहिं गायाइं सुक्किडइ, सुक्किडित्ता दिव्वं च सुमणदामं पिणिद्धइ।

आभूषणों को पहनकर ग्रथिम, वेष्टिम, पूरित और संघातिम इस प्रकार चार तरह की मालाओं से अपने को कल्पवृक्ष जैसा अलंकृत-विभूषित किया, विभूषित करके दद्दर मलय चन्दन की गन्ध से सुगन्धित गन्ध द्रव्यों से शरीर को सुवासित किया, सुवासित करके दिव्य पुष्पमाला को पहना।

२०१. तए णं से विजए देवे (१) केसालंकारेणं, (२) वत्थालंकारेणं,

२०१. तदनन्तर वह विजयदेव जब—(१) केशालंकार, (२)

(३) मल्लालंकारेणं, (४) आभरणालंकारेणं चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकिए विभूसिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अलंकारिय सभाओ पुरित्थिमिल्लेणं दारेणं पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव ववसाय सभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ववसायसभं अणुप्पदाहिणं करेमाणे करेमाणे पुरित्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसणे।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १४२

वस्त्रालंकार, (३) माल्यालंकार, और (४) आभरणालंकार रूप चार प्रकार के अलंकारों से पूर्णतया अलंकृत विभूषित हो चुका तब सिंहासन से उठा, सिंहासन से उठकर पूर्व द्वार से होकर उस आलंकारिक सभा से बाहर निकला, बाहर निकलकर जहाँ व्यवसाय सभा थी वहाँ आया, वहाँ आकर व्यवसाय सभा की प्रदक्षिणा करते हुए पूर्व द्वार से उस व्यवसाय सभा में प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया, और वहाँ आकर पूर्व की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया।

विजयदेवस्स पोत्थयरयण-वायणं—

२०२. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स आभिओगियादेवा पोत्थयरयणं उवणेंति।

तए णं से विजए देवे पोत्थयरयणं गेण्हइ, गेण्हित्ता, पोत्थयरयणं मुयइ, मुएत्ता पोत्थयरयणं विहाडेइ, विहाडेत्ता पोत्थयरयणं वाएइ, वायत्ता धम्मियं ववसायं पगेण्हइ, पगेण्हित्ता पोत्थयरयणं पडिणिक्खवेइ, पडिणिक्खवित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता ववसायसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव णंदा पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णदं पुक्खरिणिं अणुप्पयाहिणी करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवगएणं पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता हत्थं पायं पक्खालेइ, पक्खालित्ता एगं महं सेयं रययामयं विमलसलिलपुण्णं मत्तगयमहामुहाकिइसमाणं भिगारं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं-जाव-सयसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हइ, गिण्हित्ता णंदाओ पोक्खरिणीओ पच्चुत्तरेइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सिद्धाययणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

विजयदेव का पुस्तकरत्न वांचन—

२०२. तत्पश्चात् उस विजयदेव के आभियोगिक देव पुस्तकरत्न को लाकर समक्ष रखते हैं।

तदनन्तर विजय देव ने उस पुस्तक रत्न को लिया, लेकर वेष्टन से बाहर निकाला, बाहर निकालकर खोला, खोलकर पुस्तक रत्न को वाँचा, वांचन करने के बाद धार्मिक व्यवसाय-प्रवृत्ति कार्य करने की अभिलाषा की, अभिलाषा करके—निश्चय करके पुस्तकरत्न को रख दिया, रखकर सिंहासन से उठा, उठकर पूर्वी द्वार से होकर व्यवसाय सभा से बाहर निकला, बाहर निकलकर जहाँ नन्दा पुष्करिणी थी वहाँ आया, वहाँ आकर नन्दा पुष्करिणी की प्रदक्षिणा करते हुए पूर्वी द्वार से उसमें प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर पूर्व दिशावर्ती त्रिसोपान-प्रतिरूपक से नीचे उतरा, नीचे उतर कर पुष्करिणी के जल से हाथ-पैरों को धोया, हाथ-पैरों को धोकर मदोन्मत्त गजेन्द्र के महामुख-सूंड की आकृति के समान आकृति वाले और विमल जल से परिपूर्ण ऐसे एक श्रेष्ठ श्वेत चाँदी के बने हुए भृङ्गारक (जारी) को उठाया, भृङ्गारक को उठाने के बाद वहां जितने भी उत्पल, पद्म—यावत्—शतपत्र, सहस्रपत्र आदि कमल थे, उनको लिया, कमलों को लेकर नन्दा पुष्करिणी से बाहर निकला, बाहर निकलकर जहाँ सिद्धायतन था उस ओर गमन करने के लिए उद्यत हुआ।

२०३. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणिय-साहस्सीओ -जाव-अण्णे य बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य अप्पेगइया उप्पल हत्थगया-जाव-सहस्सपत्त हत्थगया, विजयं देवं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति।

२०३. तत्पश्चात् इस विजयदेव के चार हजार सामानिक देव—यावत्—और दूसरे भी अनेक वाण-व्यंतर देव और देवियाँ जिनमें से कितनेक हाथों में कमल लिये हुए थे—यावत्—कितनेक सहस्रपत्र कमल लिये थे, उस विजय देव के पीछे-पीछे चले।

२०४. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स बहवे आभिओगिया देवा देवीओ य कलस हत्थगया-जाव-धूवकडुच्छुय हत्थगया विजयं देवं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १४२

२०४. उस विजय देव के बहुत आभियोगिक देव और देवियां हाथों में कलश लिये हुए—यावत्—धूप कडुच्छकों को लिये विजय देव के पीछे-पीछे चले।

विजयदेवकयजिणपडिमाणं पूयणं—

२०५. तए णं से विजए देवे चउहिं सामाणिय साहस्सीहिं-जाव-

विजयदेवकृत जिन प्रतिमा पूजन—

२०५. तत्पश्चात् वह विजयदेव चार हजार सामानिक देवों—

अण्णेहि य बहूहिं वाणमंतरेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव-णिग्घोसणाइयरवेणं जेणेव सिद्धाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धायणं अणुप्पयाहिणी करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छंदए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए जिणपडिमाणं पणामं करेइ,

यावत्—और दूसरे बहुत से वाण-व्यंतर देवों और देवियों से संपरिवृत होकर समस्त ऋद्धि—यावत्—वाद्यों के ध्वनिघोष के साथ जहाँ सिद्धायतन था, वहाँ आया, वहाँ आकर सिद्धायतन की प्रदक्षिणा करते हुए पूर्व दिशावर्ती द्वार से उसमें प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके जहाँ देवच्छन्दक था वहाँ आया, देवच्छन्दक के पास आकर दर्शन किये और फिर जिन प्रतिमाओं को प्रणाम किया।

करित्ता लोमहत्थगं गेण्हइ, गेण्हित्ता जिणपडिमाओ लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता दिव्वाए सुरभिगंधकासाइए गायाइं लूहेइ, लूहित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाणि अणुलिंपइ, अणुलिंपेत्ता जिणपडिमाणं अहयाइं सेयाइं देवदूसजुयलाइं णियंसेइ, णियंसेत्ता अग्गेहिं वरेहिं य गंधेहि य मल्लेहि य अच्चेइ, अच्चित्ता पुप्फारुहणं गंधारुहणं मल्लारुहणं वण्णारुहणं चुण्णारुहणं आभरणारुहणं करेइ, करेत्ता आसत्तोसत्त विउलवट्टवग्घारिय मल्लदाम कलावं करेइ, करित्ता अच्छेहिं सण्हेहिं रययामयेहिं अच्छरसातंदुलेहिं जिणपडिमाणं पुरओ अट्ठट्ठमंगलए आलिहइ, आलिहित्ता कयग्गाहग्गहिय-करयल पब्भट्ठ विप्पमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं मुक्क पुप्फ पुञ्जोवयारकलियं करेइ,

प्रणाम करके मयूरपिच्छी ली, मयूरपिच्छी को लेकर उससे जिन प्रतिमाओं का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके सुवासित गंधोदक से न्हवन-अभिषेक किया, अभिषेक करके दिव्य एवं सुरभिगंध से युक्त कापायिक वस्त्र खंड से इन प्रतिमाओं के शरीर को पोंछा, पोंछकर सरस गोशीर्ष चन्दन का शरीर पर लेप किया, लेप करके अहत-अपरिमर्दित (कोरा) श्वेत देवदूष्य युगल पहनाया, देवदूष्य युगल को पहनाकर उत्कृष्ट, उत्तम गंध द्रव्यों और मालाओं से अर्चना की, अर्चना करके सामने पुष्पों को चढ़ाया, गंध द्रव्यों को चढ़ाया, मालाओं को चढ़ाया, वर्ण को चढ़ाया, चूर्ण को चढ़ाया, और आभरणों को चढ़ाया, इन पुष्पादि को चढ़ाकर ऊपर से जमीन तक लटकती हुई लम्बी गोल गुथी हुई पुष्पमालाओं से विभूपित किया, विभूपित करके आकाश की तरह स्वच्छ, चिकने, रजत जैसी कांति वाले, अक्षत-अखंड तंडुलों—चावलों से जिन प्रतिमाओं के सामने अष्ट मंगल द्रव्यों का आलेखन किया। आलेखन करके केशपाश ग्रहण करने जैसे हाथों के आकार विशेष (खोवा) से ग्रहण किये जाने के कारण हथेलियों से नीचे गिरने से शेप रहे, पंचरंगे उन्मुक्त खिले हुए पुष्पों के पुंजों द्वारा पूजा की;

करित्ता चंदप्पभ वइर-वेरुलिय-विमल-दंड-कंचन-मणि-रयण-भत्तिचित्तं कालागुरु-पवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूवगंधुत्तमाणविद्धं धूमवट्टिं विणिम्मुयंतं वेरुलियामयं कडुच्छुयं पग्गहित्तु पयत्तेण धूवं दाऊण जिणवराणं अट्ठसय विसुद्ध गंथ जुत्तेहिं महावित्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं संथुणइ, संथुणित्ता सत्तट्ठपयाइं ओसरइ, ओसरित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि णिवाडेइ, णिवाडित्ता तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि णमेइ, णमित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता कडय-तुडिय थंभियाओ भुयाओ पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

—पूजा करके चन्द्रकान्त, वज्र और वैडूर्य रत्नमय विमल दंड वाले, स्वर्ण मणि और रत्नों से बने हुए चित्रामों से चित्रित श्रेष्ठ कालागुरु, कुन्दरुक्क, तुरुक्क, धूप की उत्तम गंध से युक्त, धूमवर्तिका को छोड़ रहे, ऐसे वज्ररत्न से बने हुए धूप-कडुच्छुक को लेकर सावधानीपूर्वक उसमें धूप का प्रक्षेप करके विशुद्ध रचना से युक्त सार्थक, अपुनरुक्त ऐसे एक सौ आठ उत्तम छन्दों द्वारा स्तुति की, स्तुति करके सात-आठ पैर आगे सरक गया, सरक कर बायाँ घुटना ऊपर उठाया, बायाँ घुटना ऊपर उठाकर दाहिना घुटना जमीन पर टिकाया, टिकाकर तीन बार मस्तक को पृथ्वी तल पर झुकाया, नमाया, मस्तक को नमाकर फिर कुछ ऊँचा उठा, ऊँचा उठकर कटकों और त्रुटितों से स्तंभित भुजाओं को समेटा—एकत्रित किया, एकत्रित करके दोनों हाथों को जोड़ मस्तक पर आवर्त करके अंजलिपूर्वक उसने इस प्रकार कहा—

"णमोऽत्थु अरिहंताणं भगवंताणं-जाव-सिद्धिगइ णामधेयं

"अरिहन्त भगवन्तों—यावत्—सिद्धगति नामक स्थान को

ठाणं संपत्ताणं'' ति कट्टु वंदइ णमंसइ[1] वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खइ, अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं मंडलं आलिहइ, आलिहित्ता चच्चए दलयइ, दलइत्ता कयग्गाहग्गहिय करयल-पब्भट्ठ विमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फ-पुञ्जोवयारकलियं करेइ, करित्ता धूवं दलयइ ।

प्राप्त भगवन्तों को मेरा नमस्कार हो, ऐसा कहकर उसने वन्दन और नमस्कार किया, वन्दना, नमस्कार करके जहाँ सिद्धायतन का मध्यातिमध्य भाग है, वहाँ आया, वहाँ आकर दिव्य उदक-धारा—जलधारा से सिंचन किया, सिंचन करके सरस गोशीर्ष चन्दन से हाथों को लिप्त करके मंडल का आलेखन किया, आलेखन करके अर्चना की, अर्चना करके केशपाश को झेलने जैसे हाथों में से गिरे हुए पुष्पों को छोड़कर शेष पंचरंगे उन्मुक्त खिले हुए पुष्पों के पुंज करके पूजा की, पूजा करके धूप जलाई ।

दलयित्ता जेणेव सिद्धाययणस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थयं गेण्हइ, गेण्हित्ता दार-चेडीयाओ य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता बहुमज्झदेसभाए सरसेणं गोसीस चंदणेणं पंचंगुलितलेणं अणुलिपइ, चच्चए दलयइ, दलइत्ता पुप्फारुहणं -जाव-आभरणारुहणं करेइ, करित्ता आसत्तोसत्तविउल वट्ट वग्घारिय-मल्ल-दाम-कलावं करेइ, कयग्गाहगहिय करयल-पब्भट्ठविमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं मुक्क पुप्फ पुञ्जोवयार कलियं करेइ, करेत्ता, धूवं दलयइ, दलइत्ता जेणेव मुहमंड-वस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोम-हत्थेणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं मंडलगं आलिहइ, आलिहित्ता चच्चए दलयइ, दलइत्ता कयग्गाहग्ग-हिय-करयलपब्भट्ठ-विमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं मुक्क पुप्फ पुञ्जोवयारकलियं करेइ, करित्ता धूवं दलयइ ।

धूप जलाकर जहाँ सिद्धायतन का दक्षिण द्वार था, वहाँ आया, आकर मयूरपिच्छी को लिया, मयूरपिच्छी को लेकर द्वार चेटिकारूप-ड्योढ़ीदार शाल भंजिकाओं-काष्ठ पुतलियों और व्याल रूपों का मयूरपिच्छी से प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके अतिमध्य देश भाग में सरस गोशीर्ष चन्दन से पांचों अंगुलियों के थापे लगाये, थापे लगाकर अर्चना की, अर्चना करके पुष्पों को चढ़ाया—यावत्—आभरणों को चढ़ाया, पुष्पों आदि को चढ़ाकर ऊपर से नीचे लटकती हुई ऐसी लम्बी वर्तुलाकार मालाओं को पहनाकर केशपाश को ग्रहण करने रूप हाथ के आकार में से गिरे हुए पुष्पों को छोड़कर शेष पंचरंगे उन्मुक्त खिले हुए पुष्पों के पुंज करके पूजा की, पूजा करके धूप जलाई, धूप जलाकर जहाँ मुख मंडप का मध्य भाग था, वहाँ आया, वहाँ आकर मयूरपिच्छी से प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके दिव्य जलधारा से सिंचन करके सरस गोशीर्ष चन्दन से हाथों को लिप्त करके मंडल का आलेखन किया, आलेखन करके अर्चना की, अर्चना करके केशपाश ग्रहण करने रूप हाथों के आकार से गिरे हुए पंचरंगी पुष्पों को छोड़कर शेष खिले हुए पुष्प पुंजों से पूजा की, पूजा करके धूप प्रक्षेप किया ।

दलइत्ता जेणेव मुहमंडवस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं गेण्हइ, गेण्हित्ता दार-चेडीओ य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थगेण पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भु-क्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं मंडलगं आलिहइ, आलिहित्ता चच्चए दलयइ, दलयित्ता आसत्तोसत्त विउल वट्ट वग्घारिय मल्लं दामकलावं करेइ, करित्ता कयग्गाहगहिय करयल पब्भट्ठ विमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं मुक्क पुप्फ पुञ्जोवयारकलियं करेइ, करित्ता धूवं दलयइ ।

धूप प्रक्षेपण करके जहाँ मुख मंडप का पश्चिमी द्वार था, वहाँ आया, वहाँ आकर मयूरपिच्छी को लिया, मयूरपिच्छी को लेकर द्वार चेटिका रूप शालभंजिकाओं और व्याल रूपों का मयूरपिच्छी से प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके दिव्य जलधारा से सिंचन किया, सिंचन करके सरस गोशीर्ष चन्दन से हाथों को लिप्त कर मंडल-मांडना बनाया, मांडना बनाकर अर्चना की, अर्चना करके ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी गोल मालाओं को पहनाया, पहनाकर केशपाश झेलने रूप हाथों के आकार विशेष से गिरे हुए पुष्पों को छोड़कर शेष पंचवर्णीय खिले हुए पुष्पों के पुंज द्वारा पूजा की, पूजा करके धूपदान में धूप जलाई ।

१ विजय देव के इस वर्णन में जिनप्रतिमाओं का और उनकी पूजा का विस्तृत वर्णन है। यह वर्णन आचारांग प्रथम श्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन में प्रतिपादित अहिंसा विधान से सर्वथा विपरीत है क्योंकि जिन पूजा में धूप, दीप, पुष्प आदि का प्रयोग निरवद्य नहीं है और सावद्य आराधना से जन्म, जरा, मरण के दुःखों से मुक्तिरूप-निर्वाण असंभव है। बहुत संभव है, जैन परम्परा में भक्तिमार्ग की स्थापना एवं सुव्यवस्था के लिए चैत्यवासी आचार्यों ने ऐसे वर्णन किये हैं ।

दलइत्ता जेणेव मुहमंडवगस्स उत्तरिल्ला णं खंभपंती तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसति सालभंजियाओ दिव्वाए उदगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं पुप्फारुहणं-जाव-आसत्तोसत्त–जाव–मुक्क–पुप्फ–पुञ्जोवयारकलियं करेइ ;

धूप जलाकर जहां मुखमंडप की उत्तरदिशावर्ती स्तम्भ पंक्ति थी, वहाँ आया, वहाँ आकर मयूरपिच्छी से शालभंजिकाओं आदि का प्रमार्जन किया, दिव्य जलधारा का सिंचन किया, सरस गोशीर्ष चन्दन से मंडल बनाया, पुष्प चढ़ाये – यावत्—लम्बी मालायें पहनाईं—यावत्— उन्मुक्त, खिले हुए पुष्प पुंजों से पूजा की, पूजा करके धूप जलाई ;

करित्ता धूवं दलयइ, दलइत्ता जेणेव मुहमंडवस्स पुरित्थिमिल्ले दारे तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव दारस्स अच्चणिया, जेणेव दाहिणिल्ले दारे तं चेव ।

धूप जलाकर जहाँ मुखमंडप का पूर्वी द्वार था वहाँ आया, इत्यादि उसका सर्व वर्णन पहले किये गये वर्णन के अनुसार—यावत्—द्वार की अर्चना की; पद तक करना चाहिये, तत्पश्चात् दक्षिण द्वार का भी इस प्रकार वर्णन करना चाहिये।

२०६. जेणेव पेच्छाघरमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए, जेणेव वइरामए अक्खाडए, जेणेव मणिपेढिया, जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं गिण्हइ, गिण्हित्ता अक्खाडगं च सीहासणं च लोमहत्थगेण पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खित्ता पुप्फारुहणं-जाव-धूवं दलयइ ।

२०६. जहाँ प्रेक्षागृह मंडप का अतिमध्य देशभाग था, जहाँ वज्ररत्नों का बना अखाड़ा था, जहाँ मणिपीठिका थी, जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया, वहाँ आकर मयूरपिच्छिका ली, मयूरपिच्छिका लेकर अक्षवाटक अखाड़े-व्यायामशाला, और सिंहासन का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके दिव्य जलधारा से सिंचन किया, सिंचन करके पुष्प चढ़ाये – यावत्—धूप जलाई ।

जेणेव पेच्छाघर मंडव-पच्चत्थिमिल्ले दारे दारच्चणिया ।

जहाँ प्रेक्षागृह मंडप का पश्चिमी द्वार था वहाँ आया, इत्यादि द्वार-अर्चना का वर्णन पूर्व की तरह यहां भी करना चाहिये ।

उत्तरिल्ला खंभपंती तहेव, पुरित्थिमिल्ले दारे तहेव, जेणेव दाहिणिल्ले दारे तहेव ।

इसी प्रकार से उत्तर दिग्वर्ती स्तम्भ पंक्ति का भी पूर्व दिशा के द्वार का भी वर्णन करना चाहिये, जहाँ दक्षिणी द्वार था, उसका भी इसी प्रकार समस्त वर्णन कर लेना चाहिये ।

२०७. जेणेव चेइयथूभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं गेण्हइ, गेण्हित्ता चेइयथूभं लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए; सरसेणं गोसीसचंदणेण; पुप्फारुहणं, आसत्तोसत्त० जाव धूवं दलयइ ।

२०७. जहां चैत्य स्तम्भ था, वहाँ आया, वहाँ आकर मयूरपिच्छी को लिया, लेकर उस मयूरपिच्छी से चैत्य स्तम्भ का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके दिव्य उदगधारा से सिंचन किया, सरस गोशीर्ष चन्दन से माँडना मांडा, पुष्प चढ़ाये, अच्छी बड़ी लटकती हुई मालाओं को पहनाया—यावत्—धूप जलाई ।

२०८. जेणेव पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया—जेणेव जिण-पडिमा तेणेव उवागच्छइ, जिणपडिमाए आलोए पणामं करेइ, करित्ता लोमहत्थगं गेण्हइ, गेण्हित्ता तं चेव सव्वं जं जिणपडिमाणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं वंदइ णमंसइ ।

२०८. जहाँ पश्चिम दिशावर्ती मणिपीठिका थी, जहाँ जिनप्रतिमा थी वहाँ आया, आकर जिनप्रतिमा के दर्शन कर प्रणाम किया, प्रणाम करके मयूरपिच्छी को लिया, लेकर इत्यादि जिनप्रतिमा सम्बन्धी समग्र वर्णन—यावत्—सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त भगवन्तों को वन्दना नमस्कार किया, इस पद तक पूर्व की तरह कहना चाहिये ।

एवं उत्तरिल्लाए वि ; एवं पुरित्थिमिल्लाए वि० एवं दाहिणिल्लाए वि; ।

इसी प्रकार से उत्तर दिशा भाग का भी पूर्व दिग्भाग का भी और दक्षिण दिशा भाग का भी वर्णन करना चाहिये ।

२०९. जेणेव चेइयरुक्खा दारविही य मणिपेढिया, जेणेव महिंदज्झए [illegible] ।

२०९. जहाँ चैत्यवृक्ष थे, द्वार थे, मणिपीठिका थी, तथा माहेन्द्र ध्वज और द्वार थे उन सम्बन्धी विधान आदि का वर्णन पूर्व के समान करना चाहिये ।

जेणेव दाहिणिल्ला णंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थगं गेण्हइ, चेइयाओ य, तिसोवाणपडिरूवए य, तोरणे य, सालभंजियाओ य, वालरूवए य लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए सिंचइ, सरसेणं गोसीस-चंदणेणं अणुलिपइ, अणुलिंपित्ता पुप्फारुहणं जाव धूवं दलयइ दलयित्ता **सिद्धायतणं अणुप्पयाहिणं करेमाणे जेणेव उत्तरिल्ला णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता** तहेव महिंदज्झया, चेइयरुक्खो, चेइयथूभे, पच्चित्थिमिल्ला, मणि-पेढिया, जिणपडिमा एवं उत्तरिल्ला पुरत्थिमिल्ला, दक्खि-णिल्ला।

तत्पश्चात् जहाँ दक्षिण दिग्भाग की नन्दापुष्करिणी थी वहाँ आया, आकर मयूरपिच्छी ली और उस मयूरपिच्छी से चैत्यों का, त्रिसोपान, प्रतिरूपकों का, तोरणों का शालभंजिकाओं का और व्याल रूपों का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके दिव्य उदक-धारा से सींचा, सरस गोशीर्ष चन्दन से लेप किया, लेप करके पुष्प चढ़ाये—**यावत्**—धूप जलाई, धूप जलाकर सिद्धायतन की प्रदक्षिणा करते हुए जहाँ उत्तरदिशा की नन्दा पुष्करिणी थी वहाँ आया, वहाँ आकर उसी प्रकार से माहेन्द्र ध्वज, चैत्यवृक्ष, चैत्यस्तम्भ, पश्चिम दिशा की मणिपीठिका, जिनप्रतिमा आदि का वर्णन करना चाहिये, **तथा उसी प्रकार से उत्तर पूर्व और दक्षिण दिशा सम्बन्धी द्वार, स्तम्भ, मुखमंडप, अर्चना आदि का वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।**

पेच्छाघरमंडवस्स वि तहेव, जहा दक्खिणिल्लस्स पच्चत्थि-मिल्ले दारे-जाव-दक्खिणिल्ला णं खंभपंती, मुहमंडस्स त्रि तिण्हं दाराणं अच्चणिया भणिऊणं दक्खिणिल्लाणं खंभपंती।

प्रेक्षागृह मंडपों का भी उसीप्रकार वर्णन करना चाहिए जैसा दक्षिण और पश्चिम दिशाओं के द्वारों का—यावत्—दक्षिण दिशा की स्तम्भ पंक्ति, मुखमंडप का भी और तीनों द्वारों की अर्चना कहनी चाहिए, दक्षिण दिशा की स्तम्भ पंक्ति।

उत्तरे दारे, पुरच्छिमे दारे, सेसं तेणेव कमेण-जाव-पुरत्थि-मिल्ला णंदा पुक्खरिणी जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

उत्तर द्वार, पूर्व द्वार का—यावत्—पूर्व दिशा की नंदा पुष्करिणी का शेष वर्णन पूर्व क्रमानुसार करना चाहिए। तत्पश्चात् जहाँ सुधर्मा सभा थी उसी ओर चलने को उद्यत हुआ।

२१०. **तए णं तस्स विजयस्स चत्तारि सामाणिय साहस्सीओ**—[एयप्पभिइं जाव सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेणं जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं णं सभं सुहम्मं अणुप्पयाहिणी करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुप-विसइ, अणुपविसित्ता आलोए जिणसकहाणं पणामं करेइ, करित्ता जेणेव मणिपेढिया जेणेव माणवकचेइयखंभे, जेणेव वइरामया गोलवट्ट-समुग्गका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थयं गेण्हइ, गेण्हित्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए लोम-हत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए विहा-डेइ, विहाडित्ता जिणसकहाओ लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता सुरभिणा गंधोदएणं तिसत्तखुत्तो जिणसकहाओ पक्खालेइ, पक्खालित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपइ, अणुलिंपित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं मल्लेहिं य अच्चिणइ, अच्चिणित्ता धूवं दलयइ, दलयित्ता वइरामएसु गोलवट्टसमु-ग्गएसु पडिणिक्खवेइ, पडिणिक्खवित्ता माणवकं चेइयखंभं लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भु-क्खेइ, अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीस चंदणेणं चच्चए दलयइ, दलयित्ता पुप्फारुहणं-जाव-आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयइ, दलयित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए बहुमज्झदेसभाए तं चेव जेणेव सीहासणे तेणेव जहा दारच्चणिया।

२१०. तत्पश्चात् उस विजयदेव के चार हजार सामानिक देव [आदि—**यावत्**—सर्व ऋद्धि—**यावत्**—वाद्यध्वनिघोषों के साथ जहाँ सुधर्मा सभा थी वहाँ आये; वहाँ आकर सुधर्मा सभा की प्रदक्षिणा करते हुए पूर्वी द्वार से प्रवेश किया, प्रवेश करके जिनास्थियों के दर्शन कर प्रणाम किया, प्रणाम करके जहाँ मणिपीठिका थी जहाँ माणवक चैत्य-स्तम्भ था, जहाँ वज्र रत्नमय गोल-गोल समुद्गक थे, वहाँ आये, वहाँ आकर मयूरपिच्छी को लिया, मयूरपिच्छी को लेकर गोल वर्तुलाकार समुद्गकों का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके वज्ररत्नमय गोल-गोल समुद्गकों को खोला, खोलकर मयूरपिच्छिका से जिनास्थियों का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके सुगन्धित गन्धोदक से जिनास्थियों का इक्कीस बार प्रक्षालन किया, प्रक्षालन करके सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप किया, लेप करके सर्वोत्तम श्रेष्ठ गंध और मालाओं से अर्चना की, अर्चना करके धूप जलाई, धूप जलाकर वापस वज्ररत्नमय गोल समुद्गकों में उन्हें रखा, उन्हें वापस रखकर माणवक चैत्य स्तम्भ का मयूर-पिच्छी से प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके दिव्य जल की धारा से सींचा, सींचकर सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया—थापे लगाये, थापे लगाकर पुष्प चढ़ाये—**यावत्**—लटकती हुई लम्बी मालायें पहनाई, हाथों में लिये हुए विकसित पचरंगे फूलों के पुंजों से पूजा की, धूप जलाई धूप जलाकर जहाँ सुधर्मा सभा का अन्तिम मध्यभाग था, जहाँ सिंहासन था, वहाँ आये, **जैसे पूर्व में द्वार अर्चना की उसी प्रकार यहाँ कहना चाहिये।**

जेणेव देवसयणिज्जे तं चेव जेणेव खुड्डागे माहिंदज्झए तं चेव ।

जहाँ देवशय्या थी, जहाँ क्षुद्र, माहेन्द्रध्वज था, इत्यादि वर्णन पूर्व के समान वहाँ समझना चाहिये ।

२११. जेणेव पहरणकोसे चोप्पाले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पत्तेयं पत्तेयं पहरणाइं लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं तहेव सव्वं सेसंपि दक्खिणदारं आदिकाउं तहेव णेयव्वं जाव पुरित्थिमिल्ला णंदा पुक्खरिणी सव्वाणं सभाणं जहा सुहम्माए सभाए तहा अच्चणिया उववाय सभाए । णवरं-देवसयणिज्जस्स अच्चणिया सेसासु सीहासणाण अच्चणिया हरयस्स जहा णंदाए पुक्खरिणीए अच्चणिया ।

२११. जहाँ प्रहरणकोश (आयुधशाला) था, चौपाल थी, वहाँ आया, वहाँ आकर प्रत्येक प्रहरण (शस्त्र) को मयूरपिच्छी से पोंछा, पोंछकर सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, इत्यादि शेष वर्णन कर लेना चाहिये, दक्षिण द्वार आदि द्वारों का—यावत्—पूर्व दिशा को नन्दा पुष्करिणी तक सभी सभाओं का सुधर्मा सभा जैसा तथा अर्चना आदि का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये, उपपातसभा का भी ऐसा ही वर्णन करना चाहिये, विशेष वहाँ देवशय्या की अर्चना तथा शेष सभाओं में सिंहासनों की अर्चना तथा ह्रदों की अर्चना नन्दा पुष्करिणी की अर्चना के समान समझना चाहिये ।

ववसायसभाए पोत्थयरयणं लोमहत्थएणं दिव्वाए उदगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपइ, अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं य मल्लेहिं य अच्चिणइ अच्चिणित्ता सीहासणं लोमहत्थएणं पमज्जइ जाव धूवं दलयइ ।

तत्पश्चात् व्यवसाय सभा में आकर मयूरपिच्छिका से पुस्तक रत्न का प्रमार्जन किया, दिव्य जलधारा को सींचा, सींचकर सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप किया, सर्वोत्तम श्रेष्ठ गंधद्रव्यों और मालाओं से अर्चना की, अर्चना करके मयूरपिच्छी से सिंहासन का प्रमार्जन किया—यावत्—धूप जलाई ।

सेसं तं चेव णंदाए जहा हरयस्स तहा

नन्दा पुष्करिणी के वर्णन की तरह ह्रदों का शेष वर्णन पूर्व के समान समझ लेना चाहिये ।

२१२. जेणेव बलिपीढं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! विजयाए रायहाणीए सिंघाडगेसु य, तिएसु य, चउक्केसु य, चच्चरेसु य, चउमुहेसु य, महापहपहेसु य, पासाएसु य, पागारेसु य, अट्टालएसु य, चरियासु य, दारेसु य, गोपुरेसु य, तोरणेसु य, वावीसु य, पुक्खरिणीसु य,-जाव-बिलपंतियासु य, आरामेसु य, उज्जाणेसु य, काणणेसु य, वणेसु य, वणसंडेसु य, वणराईसु य, अच्चणियं करेह, करेत्ता ममेयमाणत्तिय खिप्पामेव पच्चप्पिणह ।

२१२. तत्पश्चात् जहाँ बलिपीठ थी, वहाँ आया, आकर आभियोगिक देवों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही विजया राजधानी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों, प्रासादों, प्राकारों, अट्टालिकाओं, चरिकाओं (दुर्ग और नगर के बीच का मार्ग) द्वारों, गोपुरों, तोरणों, वापिकाओं, पुष्करिणियों—यावत्—बिलपंक्तियों (कूप-कुंआ) आरामों, उद्यानों काननों, वनों, वनखंडों और वनराजियों में जाकर अर्चना करो, अर्चना करके आज्ञानुसार कार्य सम्पन्न होने की शीघ्र सूचना दो ।

२१३. तए णं ते आभिओगिया देवा विजएणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा-जाव-हट्ठतुट्ठा विणएणं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता विजयाए रायहाणीए सिंघाडगेसु य-जाव-अच्चणियं करेत्ता जेणेव विजए देवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

२१३. तत्पश्चात् विजयदेव के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर उन आभियोगिक देवों ने—यावत्—हृष्ट-तुष्ट होकर विनयपूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके विजया राजधानी के शृंगाटकों आदि में आये—यावत्—अर्चना करके जहाँ विजयदेव था, वहाँ आये और वहाँ आकर आज्ञानुसार कार्य सम्पन्न होने की सूचना देते हैं ।

२१४. तए णं से विजए देवे तेसिं णं आभिओगियाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिय-जाव-हयहियए जेणेव णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं-जाव-हत्थ-पायं पक्खालेइ, पक्खालित्ता

२१४. तदनन्तर वह विजय देव उन आभियोगिक देवों की इस बात को सुनकर और अवधारित कर हृष्ट-तुष्ट और आनन्दित होता हुआ—यावत्—हर्षोल्लासपूर्वक जहाँ नन्दा पुष्करिणी थी वहाँ आया, वहाँ आकर पूर्व दिशावर्ती तोरण से—यावत्—हाथ-

आयंते चोक्खे परमसुइभूए णंदा पुक्खरिणीओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

पैरों का प्रक्षालन किया, प्रक्षालन करके आचमन-कुल्ला आदि करने से अत्यन्त स्वच्छ-शुद्ध परम शुचिभूत होकर नन्दा पुष्करिणी से वापस बाहर आया, बाहर आकर जहाँ सुधर्मा सभा थी उसी ओर चलने को उद्यत हुआ।

२१५. तए णं से विजए देवे चउहिं सामाणिय साहस्सीहिं-जाव-सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं सव्विड्ढीए-जाव-निग्घोस नाइयरवेणं जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सभं सुहम्मं पुरित्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव मणिपेढिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासण वरगए पुरच्छाभिमुहे सण्णिसण्णे।

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० २४२

२१५. तदनन्तर वह विजयदेव चार हजार सामानिक देवों—यावत्—सोलह हजार आत्मरक्षक देवों सहित अपनी समस्त ऋद्धि—यावत्—वाद्यों की घोष ध्वनिपूर्वक जहाँ सुधर्मा सभा थी वहाँ आकर पूर्व दिग्वर्ती द्वार से सुधर्मा सभा में प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके जहाँ मणिपीठिका थी, वहाँ आया, वहाँ आकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया।

सुहम्माए सभाए विजयदेवस्स सपरिकरणिसीयणं—

सुधर्मा सभा में विजयदेव का सपरिकर बैठना—

२१६. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणिय-साहस्सीओ अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तर-पुरत्थिमेणं पत्तेयं पत्तेयं पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति।

२१६. तत्पश्चात् उस विजयदेव के चार हजार सामानिक देव पश्चिम-उत्तर, उत्तर-पूर्व दिशा—ईशानकोण में पहले से अलग-अलग रखे हुए प्रत्येक भद्रासन पर अनुक्रम से आकर बैठ गये।

२१७. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पत्तेयं पत्तेयं पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति।

२१७, तत्पश्चात् उस विजय देव की चार अग्रमहिषियाँ पूर्व दिशा में पहले से रखे हुए एक-एक भद्रासन पर आकर बैठ गईं।

२१८. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भितरियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पत्तेयं पत्तेयं पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति।

२१८. तदनन्तर उस विजयदेव की आभ्यन्तरिक परिषदा के आठ हजार देव दक्षिण-पूर्व दिशा—आग्नेय कोण में पहले से ही रखे हुए अलग-अलग एक-एक भद्रासन पर बैठ गये।

२१९. एवं दक्खिणेणं मज्झिमियाए परिसाए दसदेवसाहस्सीओ जाव णिसीयंति।

२१९. इसी प्रकार से मध्यम परिषदा के दस हजार देव दक्षिण दिशा में—यावत् बैठ गये।

२२०. एवं दाहिण-पच्चत्थिमेणं बाहिरियाए परिसाए बारस देव-साहस्सीओ जाव णिसीदंति।

२२०. इसी प्रकार से दक्षिण-पश्चिम दिशा—नैऋत्य कोण में बाह्य परिषदा के बारह हजार देव—यावत्—बैठ गये।

२२१. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पच्चत्थिमेणं सत्त अणियाहिवत्ती पत्तेयं पत्तेयं पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति।

२२१. इसके बाद उस विजयदेव के सात अनीकाधिपति पश्चिम दिशा में पहले से रखे हुए एक-एक भद्रासन पर बैठ गये।

२२२. तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ पत्तेयं पत्तेयं पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति। तं जहा—पुरत्थिमेणं चत्तारि आयरक्खदेवसाहस्सीओ पत्तेयं पत्तेयं पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति। एवं जाव उत्तरेणं।

२२२. तदनन्तर उस विजय देव के सोलह हजार आत्मरक्षक देव पूर्व दिशा में, दक्षिण दिशा में, पश्चिम दिशा में, और उत्तर दिशा में पहले से रखे हुए एक-एक भद्रासन पर बैठ गये, यथा—चार हजार आत्मरक्षक देव पहले से ही पूर्व दिशा में अलग-अलग रखे हुए प्रत्येक भद्रासन पर बैठे, इसी प्रकार से—यावत्—उत्तरदिशा में पूर्व से रखे हुए प्रत्येक भद्रासन पर बैठे।

तेणं आयरक्खा सन्नद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया, उप्पीलिय-सरासण-पट्टिया, पिणद्ध-गेवेज्ज-विमलवर-चिंधपट्टा, गहिया-

वे आत्मरक्षक देव अच्छी तरह कसकर शरीर पर वख्तर बाँधे हुए थे, उनके हाथों में शरासनपट्टिका (धनुष खींचने के समय हाथ की रक्षा के लिये बाँधा जाता चमड़े का पट्टा) बँधी हुई थी, गले में सुभट चिह्नपट रूप विमल और श्रेष्ठ ग्रैवेयक—हार रखा था, हाथों में प्रहार करने हेतु आयुध—शस्त्र लिये हुए थे, तीन स्थानकों (आदि, मध्य और अन्तरूप तीन स्थानों) में

उहपहरणा, तिणयाइं तिसंधीणि, वइरामया कोडीणि, धणूइं अहिगिज्झ परियाइय कंडकलावा णीलपाणिणो, पीयपाणिणो, रत्त-पाणिणो, चाव-पाणिणो, चारु-पाणिणो, चम्म-पाणिणो, खग्ग-पाणिणो, देउ-पाणिणो, पास-पाणिणो,

णील-पीय-रत्त-चाव-चारु-चम्म-खग्ग-दंड-पासवरधरा, आयरक्खा रक्खोवगा गुत्ता, गुत्तपालिया, जुत्ता-जुत्तपालिया पत्तेयं पत्तेयं समयओ विणयओ किंकरभूताविव चिट्ठंति ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १४३

विजयदेवस्स सामाणियाणं देवाणं य ठिई—

२२३. प०—विजयस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता ।

२२४. प०—विजयस्स णं भंते ! देवस्स सामाणियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता ।

एवं महिड्ढीए, एवं महज्जुईए, एवं महब्बले, एवं महायसे एवं महासुक्खे, एवं महाणुभागे विजए देवे विजए देवे ।

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४३

जंबुद्दीवस्स वेजयंतं णाम दारं—

२२५. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए जंबुद्दीवदीव-दाहिण-पेरंते लवणसमुद्द दाहिणद्धस्स उत्तरेणं—एत्थ णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते ।

अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सच्चेव सव्वा वत्तव्वया जाव णिच्चे ।

२२६. प०—कहि णं भंते ! रायहाणी ?

उ०—गोयमा ! दाहिणेणं जाव वेजयंते देवे, वेजयंते देवे ।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १४४

नत, तीन सन्धियों वाले और वज्रमय कोटि (अग्रभाग) वाले ऐसे विशिष्ट धनुष बाण और तूणीर लिये थे, कितनेक आत्मरक्षक देव हाथ में नीले-नीले बाण, कितनेक पीले-पीले और कितनेक रक्त वर्ण के बाण लिये हुए थे, कितनेक देव हाथों में धनुष लिये हुए थे, कितनेक चारु—शस्त्र विशेष, कितनेक चर्म (चमड़े से बना कोड़ा), कितनेक खड्ग (तलवार), कितनेक दंड, कितनेक पाश (जाल) लिये हुए थे ।

और कितने ही देव श्रेष्ठ नील, पीत और रक्त वर्ण के बाणों, धनुषों, चारुओं, चर्मों, तलवारों, दंडों और पाशों को लिये हुए थे, ये आत्मरक्षक देव रक्षा कार्य में निरत—तत्पर रहते हैं, गुप्त वेश में, गुप्तरूप से कार्य करते हैं, अपने योग्य सहकारियों से युक्त होते हैं, और इनकी कार्य परम्परा एक-दूसरे से जुड़ी हुई होती है, और ये प्रत्येक समय विनयपूर्वक किंकर के जैसे होकर बैठते हैं ।

विजयदेव के सामानिक देवों की स्थिति—

२२३. प्र०—हे भगवन् ! विजयदेव की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ०—हे गौतम ! विजय देव की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है ।

२२४. प्र०—हे भगवन् ! विजय देव के सामानिक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ०—हे गौतम ! एक पल्योपम की स्थिति कही गई है ।

"इस प्रकार से विजयदेव की ऐसी महा ऋद्धि है, ऐसी महा द्युति है, ऐसा महाबल है, ऐसा महायश है, ऐसा महासुख है, और ऐसा महान् प्रभाव है ।

जम्बूद्वीप का वैजयन्त द्वार—

२२५. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप का वैजयन्त नामक द्वार कहाँ पर कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर पर्वत (सुमेरु पर्वत) की दक्षिण दिशा में पैंतालीस हजार योजन आगे जाने पर जम्बूद्वीप की दक्षिणदिशा के अन्त में और लवणसमुद्र के दक्षिणार्ध से उत्तर में जम्बूद्वीप का वैजयन्त नामक द्वार कहा गया है ।

यह वैजयन्त द्वार आठ योजन ऊँचा है, इत्यादि विजय द्वार के जैसी इसकी सब वक्तव्यता है—यावत्—नित्य है ।

२२६. प्र०—हे भगवन् ! वैजयन्त देव की राजधानी कहाँ पर है और क्या नाम है ?

उ०—गौतम ! दक्षिण और राजधानी है, उसका नाम वैजयन्ती है, और वहाँ का अधिपति वैजयन्त नामक देव है ।

जंबुद्दीवस्स जयंतं णामं दारं—

२२७. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवस्स दीवस्स जयंते णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेण पणयालीसं जोयणसहस्साइं जंबुद्दीवपच्चत्थिम पेरंते लवणसमुद्दपच्चत्थिमद्धस्स पुरत्थिमेणं सीओदाए महाणदीए उप्पिएत्थ णं जंबुद्दीवस्स जयंते णामं दारे पण्णत्ते। तं चेव से पमाणं जयंते देवे पच्चत्थिमेणं से रायहाणी जाव महिड्ढीए।

—जीवा० प० ३, उ० १, सु० १४४

जम्बूद्वीप का जयन्तद्वार—

२२७. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप का जयन्त नामक द्वार कहाँ पर कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत की पश्चिम दिशा में पैंतालीस हजार योजन आगे जाने पर जम्बूद्वीप के पश्चिमान्त में और लवणसमुद्र की पूर्व दिशा में सीतोदा महानदी के ऊपर जम्बूद्वीप का जयन्त नामक द्वार कहा गया है। इसके प्रमाण आदि का वर्णन विजयद्वार के वर्णन के जैसा जानना चाहिये। यहाँ के अधिपति का नाम जयन्त है, पश्चिम में राजधानी है—यावत्—महाऋद्धि वाला है।

जंबुद्दीवस्स अपराइयं णामं दारं—

२२८. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवस्स दीवस्स अपराइए णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! मंदरस्स उत्तरेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए जंबुद्दीवे दीवे उत्तरपेरंते लवणसमुद्दस्स उत्तरद्धस्स दाहिणेणं-एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे अपराइए णामं दारे पण्णत्ते।

तं चेव पमाणं। रायहाणी उत्तरेणं जाव अपराइए देवे चउण्ह वि अण्णंमि जंबुद्दीवे।[1]

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४४

जम्बूद्वीप का अपराजित द्वार—

२२८. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप का अपराजित नामक द्वार कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! मन्दर पर्वत की उत्तर दिशा में पैंतालीस हजार योजन आगे जाने पर जम्बूद्वीप की उत्तर दिशा के अन्त में और लवणसमुद्र के उत्तरार्द्ध की दक्षिण दिशा में जम्बूद्वीप का अपराजित नामक द्वार कहा गया है।

इसके प्रमाण आदि का वर्णन विजयद्वार के वर्णन जैसा जानना चाहिये, उत्तर में राजधानी है—यावत्—अपराजित नामक देव वहाँ का अधिपति है।

[जम्बूद्वीप के इन चारों द्वारों के विषय में अन्य जो कुछ भी विशेष वक्तव्य है, वह यहाँ कहा जाता है।]

जंबुद्दीवस्स दारस्स दारस्स य अंतरं—

२२९. प०—जंबुद्दीवस्स णं भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य-एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अउणासीइं जोयणसहस्साइं बावण्णं च जोयणाइं देसूणं च अद्धजोयणं दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।[2]

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४५

जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर—

२२९. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के इन प्रत्येक द्वार से द्वार के बीच में कितनी दूरी का अन्तर कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! प्रत्येक द्वार से द्वार के बीच उन्यासी हजार और कुछ कम साढ़े बावन योजन का अबाधा—अन्तर जानना चाहिये।



१ जंबु० व० १, सु० ७, सु० ८। २ जंबु० व० १, सु० ९।
सूत्र ९ में एक गाथा अधिक है, गाहा—अउणासीइ सहस्सा, बावण्णं चेव जोअणा। ऊणं च अद्धजोअण, दारंतरं जंबुद्दीवस्स ॥

सत्त वासा (खेत्त) वण्णओ—

मणुआणं उप्पइठाणं—

२३०. प०—कहि णं भंते ! मणुस्साणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अंतोमणुस्सखेत्ते पणतालीसाए जोयणसतसहस्सेसु अड्ढाइज्जे दीवसमुद्दे सु पण्णरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अंतरदीवेसु । एत्थ णं मणुस्साणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

समुग्घाएणं सव्वलोए ।

सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

—पण्ण०, पद० २, सु० १७६

जंबुद्दीवे सत्तवासा—

२३१. प०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कतिवासा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सत्तवासा पण्णत्ता, तं जहा—(१) भरहे, (२) एरवए, (३) हेमवए, (४) हिरण्णवए, (५) हरिवासे, (६) रम्मगवासे, (७) महाविदेहे ।[1]

—जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

२३२. जंबूमंदरस्स दाहिणेणं तओ वासा पण्णत्ता, तं जहा—(१) भरहे, (२) हेमवए, (३) हरिवासे ।

२३३. जंबूमंदरस्स उत्तरेणं तओ वासा पण्णत्ता, तं जहा—(१) रम्मगवासे (२) हिरण्णवए, (३) एरवए ।

—ठाण० ३, उ० १, सु० १९७

सप्त वर्ष (क्षेत्र) वर्णन—

मनुष्यों की उत्पत्ति के स्थान—

२३०. प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यों के स्थान कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! मनुष्यक्षेत्र में हैं, पैंतालीस लाख योजन (लम्बे-चौड़े) अढ़ाई द्वीप में हैं, पन्द्रह कर्मभूमियों में, तीस अकर्मभूमियों में और छप्पन अन्तर्द्वीपों में हैं। इनमें पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यों के स्थान हैं।

उपपात की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में उत्पन्न होते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—सम्पूर्ण लोक में समुद्घात करते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा—लोक के असंख्यातवें भाग में इनके स्थान हैं।

जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र—

२३१. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में कितने वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं ?

उ०—गौतम ! सात वर्ष कहे गये हैं, यथा—(१) भरत, (२) ऐरवत (३) हैमवत, (४) हैरण्यवत, (५) हरिवर्ष, (६) रम्यक्वर्ष, (७) और महाविदेह ।

२३२. जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण में तीन वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं, यथा—(१) भरत, (२) हैमवत, (३) हरिवर्ष ।

२३३. जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर में तीन वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं, यथा—(१) रम्यक्वर्ष, (२) हैरण्यवत, (३) ऐरवत ।

---

१ (क) ठाणं ७, सु० ५५५ । (ख) समवा० ७, सु० ३ । (ग) ठाणं ६, सु० ५२२ ।

जंबूद्दीवे दस खेत्ता—

२३४. जंबुद्दीवे दीवे दस खेत्ता, पण्णत्ता, तं जहा—(१) भरहे, (२) एरवए, (३) हेमवए, (४) हिरण्णवए, (५) हरिवासे, (६) रम्मगवासे, (७) पुव्वविदेहे, (८) अवरविदेहे, (९) देवकुरा, (१०) उत्तरकुरा।[1] —ठाणं १०, सु० ७२३

जम्बूद्वीप में दस क्षेत्र—

२३४. जम्बूद्वीप नामक द्वीप में दस क्षेत्र कहे गये हैं, यथा—(१) भरत, (२) ऐरवत, (३) हैमवत, (४) हैरण्यवत, (५) हरिवर्ष, (६) रम्यक्वर्ष, (७) पूर्वविदेह, (८) अपरविदेह, (९) देवकुरु, (१०) उत्तरकुरु।

जंबुद्दीव-खेत्ताणं आयाम-विक्खंभ-परिणाहेण तुल्लत्तं—

२३५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं दो वासा पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अन्नमन्नं णाइवट्टंति आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—(१) भरहे चेव, (२) एरवए चेव।

एवमेएणमभिलावेणं (१) हेमवए चेव, (२) हेरण्णवए चेव।

एवमेएणमभिलावेणं (१) हरिवासे चेव, (२) रम्मयवासे चेव।

जम्बूद्वीप का आयाम-विष्कम्भ और परिधि की अपेक्षा से क्षेत्रों का तुल्यत्व—

२३५. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर और दक्षिण में दो वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं—वे अधिक समान एवं तुल्य हैं, विशेषता रहित हैं, नानापन से रहित हैं, आयाम-विष्कम्भ-संस्थान तथा परिधि की अपेक्षा से एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) भरत और (२) ऐरवत।

इसी प्रकार ऐसे ही अभिलापक्रम से हैमवत और हैरण्यवत हैं।

इसी प्रकार ऐसे ही अभिलापक्रम से हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष हैं।

२३६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं दो खेत्ता पण्णत्ता, बहुसमतुल्ला-जाव-आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—(१) पुव्वविदेहे चेव, (२) अवरविदेहे चेव।

२३६. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से पूर्व और पश्चिम में दो क्षेत्र कहे गये हैं, वे अधिक समान एवं तुल्य हैं—यावत्—आयाम विष्कम्भ-संस्थान तथा परिधि की अपेक्षा से एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) पूर्वविदेह और (२) अपरविदेह।

२३७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं दो कुराओ पण्णत्ताओ, बहुसमतुल्लाओ-जाव-आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—(१) देवकुरा चेव, (२) उत्तरकुरा चेव। —ठाणं० २, उ० ३, सु० ८६

२३७. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर और दक्षिण में दो कुरा कहे गये हैं—वे अधिक समान एवं तुल्य हैं—यावत्—आयाम-विष्कम्भ-संस्थान तथा परिधि की अपेक्षा से एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—(१) देवकुरु (२) और उत्तरकुरु।....

जंबुद्दीवे पण्णरस कम्मभूमीओ—

२३८. प०—कति णं भंते! कम्मभूमीओ पण्णत्ताओ?

उ०—गोयमा! पण्णरसकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पंच भरहाइं, पंच एरवयाइं, पंच महाविदेहाइं। —भग० स० २०, उ० ८, सु० १

पन्द्रह कर्मभूमियाँ—

२३८. प्र०—हे भगवन्! कर्मभूमियाँ कितनी कही गई हैं?

उ०—हे गौतम! कर्मभूमियाँ पन्द्रह कही गई हैं, यथा—पाँच भरत, पाँच ऐरवत, पाँच महाविदेह।

२३९. जंबुद्दीवे दीवे तओ कम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) भरहे, (२) एरवए, (३) महाविदेहे।

एवं धायइ संडे दीवे पुरत्थिमद्धे,

एवं धायइसंडे दीवे पच्चत्थिमद्धे,

२३९. जम्बूद्वीप नामक द्वीप में तीन कर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा—(१) भरत, (२) ऐरवत, (३) महाविदेह।

इसी प्रकार धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में हैं।

इसी प्रकार धातकीखण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध में हैं।

---

१ इस सूत्र में महाविदेह का नाम नहीं है किन्तु महाविदेह के चार विभाग (१. पूर्व विदेह, २. अपर—पश्चिम विदेह, ३. देवकुरु, ४. उत्तरकुरु के नाम गिनाकर दस की संख्या पूरी की गई है।

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ-पुरत्थिमद्धे,
एवं पुक्खरवरदीवड्ढ-पच्चत्थिमद्धे ।

—ठाणं ३, उ० ३, सु० १८३

इसी प्रकार पुष्करवर-द्वीपार्ध के पूर्वार्ध में हैं।
इसी प्रकार पुष्करवर-द्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में हैं।

जंबुद्दीवे तीस अकम्मभूमीओ—

२४०. प०—कति णं भंते ! अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! तीस अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पंच हेमवयाइं, पंच हेरण्णवयाइं, पंच रम्मगवासाइं, पंच देवकुरुओ, पंच उत्तरकुरुओ ।

—भग० स० २, उ० ८, सु० २

तीस अकर्मभूमियाँ—

२४०. प्र०—हे भगवन् ! अकर्मभूमियाँ कितनी कही गई हैं ?

उ०—हे गौतम ! अकर्मभूमियाँ तीस कही गई हैं, यथा—पाँच हैमवत, पाँच हैरण्यवत, पाँच हरिवर्ष, पाँच रम्यक्वर्ष, पाँच देवकुरु, पाँच उत्तरकुरु।

२४१. जंबुद्दीवे दीवे छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) हेमवए, (२) हेरण्णवए, (३) हरिवासे, (४) रम्मगवासे, (५) देवकुरा, (६) उत्तरकुरा ।

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे णं छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवए-जाव-उत्तरकुरा ।

एवं धायइसंडे दीवे पच्चत्थिमद्धे णं छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवए-जाव-उत्तरकुरा ।

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ-पुरत्थिमद्धे णं छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवए-जाव-उत्तरकुरा ।

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ-पच्चत्थिमद्धे णं छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवए-जाव-उत्तरकुरा ।

—ठाणं ६, सु० ५२२

२४१. जम्बूद्वीप नामक द्वीप में छह अकर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा—(१) हैमवत, (२) हैरण्यवत, (३) हरिवर्ष, (४) रम्यक्वर्ष, (५) देवकुरु, (६) उत्तरकुरु।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में छह अकर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा—हैमवत—यावत् उत्तरकुरु।

इसी प्रकार धातकीखण्डद्वीप के पश्चिमार्ध में छह अकर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा—हैमवत—यावत्—उत्तरकुरु।

इसी प्रकार पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध में छह अकर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा—हैमवत—यावत्—उत्तरकुरु।

इसी प्रकार पुष्करवर द्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में छह अकर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा—हैमवत—यावत्—उत्तरकुरु।

२४२. जंबुद्दीवे दीवे देवकुरु-उत्तरकुरु-वज्जाओ चत्तारि अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) हेमवए, (२) हेरण्णवए, (३) हरिवासे, (४) रम्मगवासे ।[1]

—ठाणं ४, उ० १, सु० ३०२

२४२. जम्बूद्वीप नामक द्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर चार अकर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा—(१) हैमवत, (२) हैरण्यवत, (३) हरिवर्ष, (४) रम्यक्वर्ष।

२४३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) हेमवए, (२) हरिवासे, (३) देवकुरा ।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) उत्तरकुरा, (२) रम्मगवासे, (३) हेरण्णवए ।

एवं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे वि अकम्मभूमीओ,

एवं धायइसंडे दीवे पच्चत्थिमद्धे वि अकम्मभूमीओ,

२४३. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण में तीन अकर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा—(१) हैमवत, (२) हरिवर्ष, (३) देवकुरु।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर में तीन अकर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा—(१) उत्तरकुरु, (२) रम्यक्वर्ष, (३) हैरण्यवत।

इसी प्रकार धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में भी (छह) अकर्मभूमियाँ हैं।

इसी प्रकार धातकीखण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध में भी (छह) अकर्मभूमियाँ हैं।

---

१ स्थानांग ६, सूत्र ५२२ में जम्बूद्वीप में छह अकर्मभूमियाँ कही गई हैं किन्तु इस सूत्र में देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर केवल चार अकर्मभूमियाँ कहने का तात्पर्य क्या है ? यह अन्वेषणीय है।

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ-पुरत्थिमद्धे वि अकम्मभूमीओ,

इसी प्रकार पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध में भी (छह) अकर्म भूमियाँ हैं।

एवं पुक्खरवरदीवड्ढ-पच्चत्थिमद्धे वि अकम्मभूमीओ।[1]
—ठाणं ३, उ० ४, सु० १९७

इसी प्रकार पुष्करवर द्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में भी (छह) अकर्मभूमियाँ हैं।

छप्पण्ण अन्तरदीवा—

छप्पन अन्तरद्वीप—

२४४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु, तिन्नि २ जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि अन्तरदीवा पण्णत्ता, तं जहा— एगूरूयदीवे, आभासियदीवे, वेसाणियदीवे, णंगोलियदीवे।

२४४. जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में, चुल्लहिमवन्तवर्षधर पर्वत की चारों विदिशाओं में तीन-तीन सौ योजन आगे जाने पर चार अन्तरद्वीप कहे हैं, यथा—एकोरुकद्वीप, आभाषिकद्वीप, वैषाणिकद्वीप और लांगूलिकद्वीप।

तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, तंजहा— एगूरूया, आभासिया, वेसाणिया, णंगोलिया।

उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य निवास करते हैं, यथा— एकोरुक, आभाषिक, वैषाणिक और लांगूलिक।

तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं चत्तारि २ जोयणसाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तंजहा—हयकण्णदीवे, गयकण्णदीवे, गोकण्णदीवे, संकुलिकण्णदीवे, तेसु णं दीवेसु चउव्विया मणुस्सा परिवसंति, तं जहा—हयकन्ना, गयकन्ना, गोकन्ना, संकुलिकन्ना।

इन द्वीपों में चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में चार-चार सौ योजन आगे जाने पर वहाँ चार अन्तरद्वीप कहे हैं, यथा—हयकर्णद्वीप, गजकर्णद्वीप, गोकर्णद्वीप और शष्कुलिकर्णद्वीप। उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य निवास करते हैं, यथा—हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शष्कुलिकर्ण।

तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं पंच २ जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तंजहा—आयंसमुहदीवे, मेंढमुहदीवे, अओमुहदीवे, गोमुहदीवे। तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा।

इन द्वीपों के चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में पाँच-पाँच सौ योजन आगे जाने पर वहाँ चार अन्तरद्वीप कहे हैं, यथा— आदर्शमुखद्वीप, मेंढमुखद्वीप अजामुखद्वीप और गोमुखद्वीप। इन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य कहने चाहिए।

तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं छ छ जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा— आसमुहदीवे, हत्थिमुहदीवे, सीहमुहदीवे, वग्घमुहदीवे। तेसु णं दीवेसु मणुस्सा भाणियव्वा।

इन द्वीपों में चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में छह-छह सौ योजन आगे जाने पर वहाँ चार अन्तरद्वीप हैं, यथा—अश्वमुखद्वीप हस्तिमुखद्वीप, सिंहमुखद्वीप और व्याघ्रमुखद्वीप। इन द्वीपों में (इन्हीं नामों वाले चार प्रकार के) मनुष्य कहने चाहिए।

तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं सत्त-सत्त जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा–आसकन्नदीवे, हत्थिकन्नदीवे, अकन्नदीवे, कन्नपाउरणदीवे। तेसु णं दीवेसु मणुया भाणियव्वा।

इन द्वीपों से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में सात-सात सौ योजन आगे जाने पर वहाँ चार अन्तरद्वीप हैं, यथा—अश्वकर्णद्वीप, हस्तिकर्णद्वीप, अकर्णद्वीप और कर्णप्रावरणद्वीप। इन द्वीपों में (चार प्रकार के) मनुष्य कह लेने चाहिए।

तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं अट्ठट्ठ जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अन्तरदीवा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कामुहदीवे, मेहमुहदीवे, विज्जुमुहदीवे, विज्जुदंतदीवे। तेसु णं दीवेसु मणुस्सा भाणियव्वा।[2]

इन द्वीपों से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में आठ-आठ सौ योजन अवगाहन करने पर वहाँ चार अन्तरद्वीप हैं, यथा— उल्कामुखद्वीप, मेघमुखद्वीप, विद्युन्मुखद्वीप और विद्युद्दन्तद्वीप। इन द्वीपों में मनुष्यों का कथन कर लेना चाहिए।

तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं णव-णव जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अन्तरदीवा पण्णत्ता,

इन द्वीपों से चारों विदिशाओं में नौ-नौ सौ योजन आगे जाने पर वहाँ चार अन्तरद्वीप कहे हैं, यथा-घनदन्तद्वीप, लष्टदन्त-

---

१ जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण एवं उत्तर में छह अकर्मभूमियाँ हैं—इसी प्रकार धातकीखण्ड के पूर्वार्ध-पश्चिमार्ध में तथा पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध-पश्चिमार्ध में मेरु पर्वत से दक्षिण-उत्तर में छह-छह अकर्मभूमियाँ हैं—इस प्रकार तीस अकर्मभूमियाँ हैं।

२ [illegible] पृ० [illegible]।

तंजहा—घणदन्तदीवे, लट्ठदन्तदीवे, गूढदन्तदीवे, सुद्धदन्तदीवे। तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, तंजहा—घणदन्ता, लट्ठदन्ता, गूढदन्ता, सुद्धदन्ता।[1]

द्वीप गूढदन्तद्वीप और शुद्धदन्तद्वीप। इन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य निवास करते हैं, यथा-घनदन्त, लष्टदन्त, गूढदन्त और शुद्धदन्त।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं तिन्नि-तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अन्तरदीवा पण्णत्ता, त जहा—एगूरुयदीवे, सेसं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं-जाव-सुद्धदंता।[2] —ठा० ४, उ० २, सु० ३०४

जम्बूद्वीप के मन्दरपर्वत से उत्तर में शिखरिवर्षधर पर्वत की चारों विदिशाओं में, लवणसमुद्र में तीन-सौ योजन आगे जाने पर वहाँ चार अन्तरद्वीप हैं, यथा—एकोरुकद्वीप (आदि पूर्ववत्)। शेष सब वक्तव्यता (उसी प्रकार) कह लेनी चाहिए—यावत्—मनुष्य रहते हैं।

जंबुद्दीवे तओ कम्मभूमीओ—

जम्बूद्वीप में तीन कर्मभूमियां—

जंबुद्दीवे भरहवासस्स अवट्ठिई पमाणं च—

जम्बूद्वीप में भरतवर्ष की अवस्थिति और प्रमाण—

२८५. प०—कहि ण भंते! जंबुद्दीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, दाहिणलवणसमुद्दस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते।

खाणुबहुले, कंटकबहुले, विसमबहुले, दुग्गबहुले, पव्वयबहुले, पवायबहुले, उज्झरबहुले, णिज्झरबहुले, खड्डाबहुले, दरिबहुले, णईबहुले, दहबहुले, रुक्खबहुले, गुच्छबहुले, गुम्मबहुले, लयाबहुले, वल्लीबहुले, अडवीबहुले, सावयबहुले, तेणबहुले, तक्करबहुले, डिम्बबहुले, डमरबहुले, दुब्भिक्खबहुले, दुक्कालबहुले, पासंडबहुले, किवणबहुले, वणीमगबहुले, ईतिबहुले, मारिबहुले, कुवुट्ठिबहुले, अणावुट्ठिबहुले, रायबहुले, रोगबहुले, संकिलेसबहुले, अभिक्खणं-अभिक्खणं संखोहबहुले।

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिन्ने, उत्तरओ पलियंकसंठाणसंठिए, दाहिणओ धणुपिट्ठसंठिए तिधा लवणसमुद्दं पुट्ठे, गंगासिंधूहिं महाणईहिं वेयड्ढेण य पव्वएण छब्भागपविभत्ते।

जंबुद्दीवदीवणउयसयभागे पंचछव्वीसे जोयणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोयणस्स विक्खंभेण। —जम्बु० वक्ख० १, सु० १०

२८५. प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत नामक वर्ष (क्षेत्र) कहाँ कहा गया है?

उ०—गौतम! चुल्लहिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, दक्षिणी लवणसमुद्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरतनामक वर्ष (क्षेत्र) कहा गया है।

यह क्षेत्र स्थाणु, कंटक, विषमभूमि, दुर्गप्रदेश, पर्वत, प्रपात, उज्झर, गड्ढे, गुफा, नदी, द्रह, वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्लरी, अटवी, श्वापद, (हिंस्र जन्तु), स्तेन, (चोर) तस्कर, डिम्ब (स्वराजा का उपद्रव) डमर (परराजा का उपद्रव), दुर्भिक्ष, दुष्काल, पाखण्ड, कृपण, वनीपक (भिखारी), ईति, मारी, कुवृष्टि, राजा, रोग, संक्लेश, संक्षोभ, इत्यादि की बहुलता वाला है।

यह वर्ष क्षेत्र—पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा, उत्तर में पर्यंक के आकार का, दक्षिण में धनुष की पीठ के आकार का तथा तीन तरफ लवण समुद्र से स्पृष्ट है। गंगा और सिंधु नामक महानदियों तथा वैताढ्य नामक पर्वत से यह छह भागों में विभक्त है।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के एक सौ नब्बे भाग करने पर $526\frac{6}{19}$ योजन का (भरत क्षेत्र का) विस्तार है।

---

१ [illegible]

२ [illegible]

जंबुद्दीवस्स भरहे वासे दसरायहाणीओ—

२४६. जंबुद्दीवे दीवे भरहेवासे दसरायहाणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—
गाहा—चंपा, महुरा, वाणारसी य, सावत्थि तह य साएयं,
हत्थिणंउर कंपिल्लं, मिहिला कोसंबि रायगिहं ।
—ठाणं १०, सु० ७१८

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में दस राजधानियाँ—

२४६. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में दस राजधानियां कही गई हैं । यथा—गाथार्थ—(१) चम्पा, (२) मथुरा, (३) वाराणसी, (४) श्रावस्ति, (५) साकेत, (अयोध्या), (६) हस्तिनापुर, (७) कांपिल्यपुर, (८) मिथिला, (९) कोशाम्बि, १०. राजगृह ।

भरहवासस्स णामहेउ—

२४७. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—भरहे वासे भरहे वासे ?

उ०—गोयमा ! भरहे णं वासे वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, चोद्दसुत्तरं जोअणसयं एगस्स य एगूणवीसइभाए जोयणस्स अबाहाए, लवणसमुद्दस्स उत्तरेणं चोद्दसुत्तरं जोअणसयं एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अबाहाए, गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं, सिंधुए—महाणईए पुरत्थिमेणं, दाहिणड्ढभरहमज्झिल्लतिभागस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं विणीआ णामं रायहाणी पण्णत्ता ।

पाईण-पडीणमया उदीण-दाहिणवित्थिन्ना दुवालस-जोयणायामा णवजोयणवित्थिन्ना धणवइमइणिम्माया चामीयरपायारा णाणामणिपंचवण्णकविसीसगपरिमंडिआभिरामा अलकापुरीसंकासा पमुइयपक्किलिआ पच्चक्खं देवलोगभूआ रिद्धित्थिमिअसमिद्धा पमुइ-जअणजाणवया-जाव-पडिरूवा ।

भरतवर्ष के नाम का हेतु—

२४७. प्र०—भगवन् ! भरतवर्ष को भरतवर्ष क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! भरतवर्ष में, वैताढ्य पर्वत से दक्षिण में व्यवधानरहित $114\frac{1}{19}$ योजन दूरी पर, लवणसमुद्र से उत्तर में व्यवधानरहित $114\frac{11}{19}$ योजन दूरी पर, गंगा महानदी के पश्चिम में, सिन्धु महानदी से पूर्व में, दक्षिणार्ध भरत के मध्यविभाग के ठीक बीचोंबीच विनीता नामक राजधानी कही गई है ।

वह पूर्व-पश्चिम में लम्बी, उत्तर-दक्षिण में चौड़ी, बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी है । वह कुबेर की बुद्धि से निर्मित, स्वर्णमय और प्राकार वाली, नानामणियों के पंचरंगे कंगुरों से मंडित होने से रमणीय, अलकापुरी के सदृश प्रमुदित एवं प्रक्रीडित जैसी, प्रत्यक्ष देवलोक के समान, ऋद्धि, भवन और जनसमूह से समृद्ध, नगरनिवासीजनों एवं आगतजनों को प्रमोद उत्पन्न करने वाली है—**यावत्**—प्रतिरूप है ।

२४८. तत्थ ण विणीआए रायहाणीए भरहे णामं राया चाउरंत-चक्कवट्टी समुप्पज्जित्था ।[1]
—जंबु० वक्ख० ३, सु० ४१-४२

२४८. उस विनीता राजधानी में भरत नामक राजा चारों दिशाओं पर विजय प्राप्त करने वाला चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ ।

२४९. भरहे अ इत्थ देवे महिड्ढिए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

२४९. यहाँ भरत नामक देव रहता है जो महर्द्धिक—**यावत्**—पल्योपम की स्थिति वाला है ।

से एएणट्ठे णं गोयमा ! एवं वुच्चइ-भरहे वासे भरहे वासे इति । —जंबु० वक्ख० ३, सु० ७१

इस कारण गौतम ! इसका नाम भरतवर्ष है ।

भरहवासस्स सासयत्तं—

२५०. अदुत्तरं च णं गोयमा ! भरहस्स वासस्स सासए णामधिज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ, भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ, धुवे णिअए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे भरहेवासे ।
—जंबु० वक्ख० ३, सु० ७१

भरतवर्ष का शाश्वतपन—

२५०. अथवा गौतम ! भरतवर्ष का यह नाम शाश्वत कहा गया है, जो कभी नहीं था ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है—वह था, है और रहेगा ! भरतवर्ष यह नाम ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है ।

---

१ इसके आगे सूत्र ७० पर्यन्त चक्रवर्ती वर्णन, धर्मकथानुयोग प्रथम स्कन्ध में है ।

वेअड्ढपव्वएण भरहवासस्स दुहा विभयणं—

२५१. भरहस्स णं वासस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते, जे णं भरहं वासं दुहा विभयमाणे चिट्ठइ। तं जहा—दाहिणड्ढभरहं च, उत्तरड्ढभरहं च।

—जम्बु० वक्ख० १, सु० १०

दाहिणड्ढभरहवासस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२५२. प्र०—कहि णं भंते ! जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे भरहे णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! वेयड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, दाहिणलवणसमुद्दस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढभरहे णाम वासे पण्णत्ते। पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणवित्थिण्णे अद्धचंद-संठाणसंठिए, तिहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, गंगा-सिंधूहिं महाणईहिं तिभागपविभत्ते, दोण्णि अट्ठतीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभागे जोयणस्स विक्खंभेणं।

२५३. तस्स जीवा उत्तरेण पाईण-पडीणायया, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, णवजोयणसहस्साइं सत्त य अडयाले जोयणसए दुवालस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं[1]।

२५४. तीसे णं धणुपुट्ठे दाहिणेणं णव जोयणसहस्साइं सत्तछावट्ठे जोयणसए इक्कं च एगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

—जम्बु० वक्ख० १, सु० ११

दाहिणभरहड्ढे धणुपिट्ठस्स आयामं—

२५५. दाहिणभरहड्ढस्स णं धणुपिट्ठे अट्ठाणउइजोयणसयाइं किंचूणाइं आयामेणं पण्णत्ते[2]।

— सम० ९८, सु० ४

वैताढ्यपर्वत से भरतवर्ष के दो विभाग—

२५१. भरतक्षेत्र के मध्य भाग में वैताढ्य नामक पर्वत कहा गया है। जो भरतक्षेत्र को दो भागों में विभक्त करता हुआ स्थित है। यथा—दक्षिणार्ध-भरत और उत्तरार्ध-भरत।

दक्षिणार्ध-भरतवर्ष की अवस्थिति और उसका प्रमाण—

२५२. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में दक्षिणार्ध-भरत नामक वर्ष कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! वैताढ्य पर्वत के दक्षिण में, दक्षिणी लवण-समुद्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप में दक्षिणार्ध भरत नामक वर्ष कहा गया है। यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। उसका आकार अर्धचन्द्र के समान है। यह तीन ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। तथा गंगा और सिन्धु नामक महानदियों से तीन भागों में विभक्त है। इसकी चौड़ाई

२३८$\frac{३}{१९}$ योजन है।

२५३. उसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी तथा दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। पूर्व की ओर पूर्वी लवण-समुद्र से स्पृष्ट है, और पश्चिम की ओर पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। उस जीवा की लम्बाई ९७४८$\frac{१२}{१९}$ योजन है।

२५४. उसकी धनुपीठिका दक्षिण में—

९७६६$\frac{१}{१९}$ योजन से किंचित्-विशेष अधिक परिधि वाली कही गई है।

दक्षिणार्ध भरत के अनुपृष्ठ का आयाम—

२५५. दक्षिणार्ध भरत के धनुपृष्ठ का आयाम कुछ कम अट्ठानवे सौ योजन का कहा गया है।

जंबुद्दीवस्स भरहे वासे दसरायहाणीओ—

२४६. जंबुद्दीवे दीवे भरहेवासे दसरायहाणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—
गाहा—चंपा, महुरा, वाणारसी य, सावत्थि तह य साएयं,
हत्थिणउर कंपिल्लं, मिहिला कोसंबि रायगिहं ।

—ठाणं १०, सु० ७१८

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में दस राजधानियाँ—

२४६. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में दस राजधानियाँ कही गई हैं। यथा—गाथार्थ—(१) चम्पा, (२) मथुरा, (३) वाराणसी, (४) श्रावस्ति, (५) साकेत, (अयोध्या), (६) हस्तिनापुर, (७) काम्पिल्यपुर, (८) मिथिला, (९) कौशाम्बि, १०. राजगृह।

भरहवासस्स णामहेउ—

२४७. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—भरहे वासे भरहे वासे ?

उ०—गोयमा ! भरहे ण वासे वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, चोद्दसुत्तरं जोअणसयं एगस्स य एगूणवीसइभाए जोयणस्स अबाहाए, लवणसमुद्दस्स उत्तरेणं चोद्दसुत्तरं जोअणसयं एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अबाहाए, गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं, सिंधुए—महाणईए पुरत्थिमेणं, दाहिणड्ढभरहमज्झिल्लतिभागस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं विणीआ णामं रायहाणी पण्णत्ता ।

भरतवर्ष के नाम का हेतु—

२४७. प्र०—भगवन् ! भरतवर्ष को भरतवर्ष क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! भरतवर्ष में, वैताढ्य पर्वत से दक्षिण में अबाधारहित ११४ १/१९ योजन दूरी पर, लवणसमुद्र से उत्तर में अबाधारहित ११४ ११/१९ योजन दूरी पर, गंगा महानदी से पश्चिम में, सिन्धु महानदी से पूर्व में, दक्षिणार्ध भरत के मध्यविभाग के ठीक बीचोबीच विनीता नामक राजधानी कही गई है।

पाईण-पडीणमया उदीण-दाहिणविच्छिन्ना दुवालस-जोयणायामा णवजोयणविच्छिन्ना धणवइमइणिम्माया चामीयरपायारा णाणामणिपंचवण्णकविसीसगपरिमंडिआभिरामा अलकापुरीसंकासा पमुइयपक्कीलिआ पच्चक्खं देवलोगभूआ रिद्धित्थिमिअसमिद्धा पमुइयजणजाणवया-जाव-पडिरूवा ।

यह पूर्व-पश्चिम में लम्बी, उत्तर-दक्षिण में चौड़ी, बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी है। यह कुबेर की बुद्धि से निर्मित, स्वर्णमय और प्राकार वाली, नानामणियों के पचरंगे कंगूरों से मंडित होने से रमणीय, अलकापुरी के सदृश प्रमुदित एवं प्रक्रीडित जैसी, प्रत्यक्ष देवलोक के समान, ऋद्धि, भवन और जनसमूह से समृद्ध, नगरनिवासीजनों एवं आगतजनों को प्रमोद उत्पन्न करने वाली है—यावत्—प्रतिरूप है।

२४८. तत्थ ण विणीआए रायहाणीए भरहे णामं राया चाउरंत-चक्कवट्टी समुप्पज्जित्था ।[1]

—जंबु० वक्ख० ३, सु० ४१-४२

२४८. उस विनीता राजधानी में भरत नामक राजा चारों दिशाओं पर विजय प्राप्त करने वाला चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ।

२४९. भरहे अ इत्थ देवे महिड्ढिए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

२४९. यहाँ भरत नामक देव रहता है जो महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला है।

से एएणट्ठे णं गोयमा ! एवं वुच्चइ-भरहे वासे भरहे वासे इति ।

—जंबु० वक्ख० ३, सु० ७१

इस कारण गौतम ! इसका नाम भरतवर्ष है।

भरहवासस्स सासयत्तं—

२५०. अदुत्तरं च णं गोयमा ! भरहस्स वासस्स सासए णामधिज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ, भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ, धुवे णिअए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे भरहेवासे ।

—जंबु० वक्ख० ३, सु० ७१

भरतवर्ष का शाश्वतपन—

२५०. अथवा गौतम ! भरतवर्ष का यह नाम शाश्वत कहा गया है, जो कभी नहीं था ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है—वह था, है और रहेगा। भरतवर्ष यह नाम ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है।

---

१ इसके आगे सूत्र ७० पर्यन्त चक्रवर्ती वर्णन, धर्मकथानुयोग प्रथम स्कन्ध में है।

वेअड्ढपव्वएण भरहवासस्स दुहा विभयणं—

२५१. भरहस्स णं वासस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते, जे णं भरहं वासं दुहा विभयमाणे चिट्ठइ। तं जहा—दाहिणड्ढभरहं च, उत्तरड्ढभरहं च।

—जम्बु० वक्ख० १, सु० १०

वैताढ्यपर्वत से भरतवर्ष के दो विभाग—

२५१. भरतक्षेत्र के मध्य भाग में वैताढ्य नामक पर्वत कहा गया है। जो भरतक्षेत्र को दो भागों में विभक्त करता हुआ स्थित है। यथा—दक्षिणार्ध-भरत और उत्तरार्ध-भरत।

दाहिणड्ढभरहवासस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२५२. प्र०—कहि णं भंते ! जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे भरहे णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! वेयड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, दाहिणलवण-समुद्दस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढभरहे णामं वासे पण्णत्ते। पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणवित्थिन्ने अद्धचंद-संठाणसंठिए, तिहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, गंगा-सिंधूहिं महाणईहिं तिभागपविभत्ते, दोण्णि अट्ठतीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभागे जोयणस्स विक्खंभेणं।

दक्षिणार्ध-भरतवर्ष की अवस्थिति और उसका प्रमाण—

२५२. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में दक्षिणार्ध-भरत नामक वर्ष कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! वैताढ्य पर्वत के दक्षिण में, दक्षिणी लवण-समुद्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप में दक्षिणार्ध भरत नामक वर्ष कहा गया है। यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। उसका आकार अर्धचन्द्र के समान है। यह तीन ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। तथा गंगा और सिन्धु नामक महानदियों से तीन भागों में विभक्त हैं। इसकी चौड़ाई $२३८\frac{३}{१९}$ योजन है।

२५३. तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, णवजोयणसहस्साइं सत्त य अडयाले जोयणसए दुवालस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं[1]।

२५३. उसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी तथा दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। पूर्व की ओर पूर्वी लवण-समुद्र से स्पृष्ट है, और पश्चिम की ओर पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। उस जीवा की लम्बाई $१७४८\frac{१२}{१९}$ योजन है।

२५४. तीसे णं धणुपुट्ठे दाहिणेणं णव जोयणसहस्साइं सत्तछावट्ठे जोयणसए इक्कं च एगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचिविसेसा-हिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

—जम्बु० वक्ख० १, सु० ११

२५४. उसकी धनुर्पीठिका दक्षिण में—

$९७६६\frac{१}{१९}$ योजन से किंचित्-विशेष अधिक परिधि वाल कही गई है।

दाहिणभरहड्ढे धणुपिट्ठस्स आयामं—

२५५. दाहिणभरहड्ढस्स णं धणुपिट्ठे अट्ठाणउइजोयणसयाइं किंचू-णाइं आयामेणं पण्णत्ते[2]।

—सम० ९८, सु० ४

दक्षिणार्ध भरत के अनुपृष्ठ का आयाम—

२५५. दक्षिणार्ध भरत के धनुपृष्ठ का आयाम कुछ कम अट्ठाणवे सौ योजन का कहा गया है।

---

१२ दाहिणड्ढभरहस्स णं जीवा पाईण-पडीणायया दुहओ लवणसमुद्दं पुट्ठा नवजोयणसहस्साइं आयामेणं पण्णत्ता।—सम० सु० १२२
ऊपर जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार एक, सूत्र ग्यारह में दक्षिणार्धभरत की जीवा की लम्बाई नौ हजार सात सौ अड़तालीस योजन एक योजन के उन्नीस भागों में से बारह भाग जितनी कही है, किन्तु समवायांग सूत्र १२२ में दक्षिणार्ध भरत की जीवा की लम्बाई केवल नौ हजार योजन की ही कही गई है।

२ ऊपर जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार एक सूत्र ११ में दक्षिण भरतार्ध के धनुपृष्ठ की केवल परिधि कही है और यहाँ दक्षिणभरतार्ध के धनुपृष्ठ का आयाम कहा गया है।

दाहिणड्ढभरहवासस्स आयारभावो—

२५६. दाहिणड्ढभरहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभाव-पडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते । से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा-जाव-णाणाविह-पंचण्णेवहिं मणीहिं तणेहिं उवसोभिए । तं जहा-कित्तिमेहिं चेव, अकित्तिमेहिं चेव ।

—जम्बु० वक्ख० १, सु० ११

दक्षिणार्ध भरतवर्ष का आकारभाव—

२५६. प्र०—भगवन् ! दक्षिणार्ध-भरतवर्ष का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! इसका भूमिभाग बहुत सम और रमणीय कहा गया है, वह मुरज नामक वाद्य पर मंढे हुए चर्म जैसा समतल है—यावत्—नाना प्रकार की पंचवर्णमणियों से तथा तृणों से सुशोभित है । यथा—(ये मणियाँ और तृण) कृत्रिम और अकृत्रिम (दो तरह के) हैं ।

दहिणड्ढभरहवासस्स मणुआणं आयारभावो—

२५७. प्र०—दाहिणड्ढभरहे णं भंते ! वासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! ते णं मणुआ बहुसंघयणा, बहुसंठाणा, बहुउच्चत्तपज्जवा, बहुआउपज्जवा; बहूइं वासाइं आउं पालेंति, पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी, अप्पेगइया तिरियगामी, अप्पेगइया मणुयगामी, अप्पेगइया देवगामी, अप्पेगइया सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति ।

—जम्बु० वक्ख० १, सु० ११

दक्षिणार्ध-भरतवर्ष के मनुष्यों का आकारभाव—

२५७. भगवन् ! दक्षिणार्ध-भरतवर्ष के मनुष्यों का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! ये मनुष्य अनेक प्रकार के संहनन, अनेक प्रकार के संस्थान, अनेक प्रकार की ऊँचाई तथा अनेक प्रकार की आयु वाले हैं । वे बहुत वर्षों की आयु भोगते हैं । और भोगकर कोई-कोई नरक गति में जाते हैं, कोई-कोई तिर्यंचगति में जाते हैं । कोई-कोई मनुष्यगति में जाते हैं और कोई-कोई देवगति में जाते हैं, कोई-कोई सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिवृत होकर सब दुःखों का अन्त करते हैं ।

उत्तरड्ढभरहवासस्स अवट्ठिई-पमाणं च—

२५८. कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, वेअड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे णामं वासे पण्णत्ते ।

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिन्ने, पलिअंक-संठाणसंठिए, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, पुरच्छिमिल्लाए कोडीए पुरच्छिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थि-मिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, गंगा-सिंधूहिं महाणईहिं तिभागपविभत्ते, दोण्णि अट्ठतीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभागे जोअणस्स विक्खंभेणं ।

उत्तरार्द्ध-भरतवर्ष की अवस्थिति और उसका प्रमाण :—

२५८. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उत्तरार्द्ध-भरत नामक वर्ष (क्षेत्र) कहाँ कहा गया ?

उ०—गौतम ! चुल्लहिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, वैताढ्य पर्वत के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उत्तरार्द्ध भरत नामक वर्ष कहा गया है ।

वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । इसका आकार पर्यंक (पलंग) के समान है । यह दो ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है और पश्चिम की ओर पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । गंगा और सिन्धु नामक महानदियाँ इसे तीन भागों में विभक्त करती है । इसकी चौड़ाई २३८ $\frac{३}{१९}$ योजन है ।

२५९. तस्स बाहा पुरच्छिम-पच्चच्छिमेणं अट्ठारस बाणउए जोअणसए सत्त य एगूणवीसइभागे जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं ।

२५९. पूर्व-पश्चिम में इसकी बाहु—

१८९२ $\frac{७}{१९} + \frac{१}{२}$ योजन लम्बी है ।

२६०. तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा, तहेव-जाव-चोद्दस जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एक्कहत्तरे (एगुत्तरे) जोयणसए छच्च य एगूणवीसइभाए जोयणस्स किंचिविसेसूणे आयामेणं पण्णत्ते[1]।

२६०. उसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी है तथा दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। यह उसी प्रकार—यावत्—

$१४४७१\frac{६}{१९}$ योजन से कुछ कम लम्बी कही गई है।

२६१. तीसे णं धणुपुट्ठे दाहिणेणं चोद्दसजोअणसहस्साइं पंच अट्ठावीसे जोअणसए एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं।

—जंबु० वक्ख० १, सु० १६

२६१. उसका धनुपपृष्ठ दक्षिण में—

$१४५२८\frac{११}{१९}$ योजन की परिधि वाला है।

उत्तरड्ढभरहवासस्स आयारभावे—

२६२. प्र०—उत्तरड्ढभरहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयार-भावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा-जाव-कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव।

जंबु० वक्ख० १, सु० १६

उत्तरार्ध भरतवर्ष का आकारभाव—

२६२. प्र०—भगवन् ! उत्तरार्ध भरतवर्ष का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! इसका भूमिभाग अति सम एवं रमणीय कहा गया है। वह मुरज नामक वाद्य पर मँढे हुए चर्म जैसा समतल है—यावत्—कृत्रिम तथा अकृत्रिम (मणियों और तृणों से सुशोभित है।

उत्तरड्ढभरहवासस्स मणुआणं आयारभावो—

२६३. प्र०—उत्तरड्ढभरहे णं भंते ! वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! ते णं मणुआ बहुसंघयणा-जाव-अप्पेगइया सिज्झंति-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

—जंबु० वक्ख० १, सु० १६

उत्तरार्ध-भरतवर्ष के मनुष्यों का आकारभाव—

२६३. प्र०—भगवन् ! उत्तरार्ध-भरतवर्ष (क्षेत्र) के मनुष्यों का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! यहाँ के मनुष्य अनेक प्रकार के संहनन वाले हैं—यावत्—कोई-कोई सिद्ध होते हैं—यावत्—सब दुःखों का अन्त करते हैं।

एरवयवासस्स अवट्ठिई पमाणं य—

२६४. प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे एरावए णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सिहरिस्स उत्तरेणं, उत्तरलवणसमुद्दस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे एरावए णामं वासे पण्णत्ते।

'खाणुबहुले, कंटकबहुले, एवं जच्चेव भरहस्स वत्तव्वया सच्चेव सव्वा णिरवसेसा णेयव्वा सओअवणा सणिक्खमणा सपरिणिव्वाणा।

णवरं—एरावओ चक्कवट्टी, एरावओ देवो।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"एरावए वासे, एरावए वासे"। —जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

ऐरवत वर्ष की अवस्थिति और प्रमाण—

२६४. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में ऐरावत नाम का वर्ष कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! शिखरी पर्वत के उत्तर में उत्तरी लवणसमुद्र के दक्षिण में पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में और पश्चिमी लवण-समुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में ऐरावत नाम का वर्ष कहा गया है।

वह स्थाणु (ठूँठ) बहुल है, कंटक बहुल है, इस प्रकार जो कथन भरतवर्ष का है वही समग्र सम्पूर्ण इसका जान लेना चाहिए, यह षट्खण्ड की साधना सहित, निष्क्रमणसहित और निर्वाण सहित है।

विशेष—यहाँ ऐरावत चक्रवर्ती और ऐरावत देव है।

इसलिए हे गौतम ! इसका नाम ऐरावतवर्ष है, ऐरावत वर्ष है।

---

1 सम० १४, सु० ६

भरहेरवयाणं जीवा-पमाणं—

२६५. भरहेर वयाओ णं जीवाओ चउद्दस चउद्दस जोयणसहस्साइं चत्तारि अ एगुत्तरे जोयणसए छच्च एगूणवीसे भागे जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ता। —सम० १४, सु० ६

भरत और ऐरवत की जीवा का प्रमाण—

२६५. भरत और ऐरवत (प्रत्येक) की जीवा का आयाम चौदह हजार चार सौ इकहत्तर एक योजन के उन्नीस भागों में से छः भाग जितना कहा गया है।

महाविदेहवासस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२६६. प्र०— कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे णामं वासे पण्णत्ते।

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणवित्थिण्णे, पलिअंकसंठाणसंठिए दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे। तित्तीसं जोअणसहस्साइं छच्च चुलसीए जोअणसए चत्तारि अ एगूणवीसइभागे जोअणस्स विक्खंभेणंति[1]।

महाविदेहवर्ष का स्थान और प्रमाण—

२६६. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में महाविदेह नामक वर्ष (क्षेत्र) कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, पूर्व लवणसमुद्र से पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप में महाविदेह नामक वर्ष कहा गया है।

यह पूर्व और पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा, पर्यंक (पलंग) के आकार का एवं दो ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है, पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से है और पश्चिम की ओर पश्चिमी लवण समुद्र से स्पृष्ट है, यह ३३६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन चौड़ा है।

२६७. तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं तेत्तीसं जोअणसहस्साइं सत्त य सत्तसट्ठे-जोअणसए सत्त य एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणंति।

२६७. इसकी बाहा पूर्व-पश्चिम की ओर—

३३७६७ $\frac{७}{१९}$ योजन लम्बी है।

२६८. तस्स जीवा बहुमज्झदेसभाए पाईण-पडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा। एगं जोयणसयसहस्सं आयामेणंति।

२६८. इसकी जीवा मध्य में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी है, एवं दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है, पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है और पश्चिम की ओर पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है, यह एक लाख योजन लम्बी है।

२६९. तस्स धणुं उभयो पासिं उत्तर-दाहिणेणं एगं जोयणसयसहस्सं अट्ठावण्णं जोअणसहस्साइं एगं च तेरसुत्तरं जोअणसयं सालेस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणंति।

२६९. इसका धनुःपृष्ठ दोनों ओर उत्तर-दक्षिण में—

१५८११३ $\frac{१६}{१९}$ योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला है।

२७०. महाविदेहे णं वासे चउव्विहे चउप्पडोआरे पण्णत्ते, तंजहा—१ पुव्वविदेहे, २ अवरविदेहे, ३ देवकुरा, ४ उत्तरकुरा[2]। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८

२७०. महाविदेह वर्ष चार प्रकार का है और चार भागों में विभक्त कहा गया है, यथा—(१) पूर्व महाविदेह, (२) अपर महाविदेह, (३) देवकुरु, और (४) उत्तरकुरु।

महाविदेहवासस्स आयारभावो

२७१. प्र०—महाविदेहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभाव-पडोयारे पण्णत्ते ?

महाविदेह का आकार-भाव—

२७१. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है ?

१ सम० ३३, सु० ३ २ ठाणं, ४, उ० २, सु० ३०२

उ०—गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते-जाव-कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८५

उ०—गौतम ! इसकी भूमि बहुत सम और रमणीय कही गई है—यावत्—कृत्रिम और अकृत्रिम (मणियों तथा तृणों) से (सुशोभित) है।

महाविदेहवासस्स मणुआणं आयारभावो—

२७२. प०—महाविदेहे णं भंते ! वासे मणुआणं केरिसए आयार-भावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी आउअं पालेंति, पालेत्ता अप्पेगइआ निरयगामी-जाव-अप्पेगइआ सिज्झंति-जाव-अंतं करेंति ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७५

महाविदेह के मनुष्यों का आकारभाव—

२७२. प्र०—महाविदेह वर्ष के मनुष्यों का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! वहाँ के मनुष्य छह प्रकार के संहनन और छह प्रकार के संस्थान वाले हैं. पाँच सौ धनुष की ऊँचाई वाले हैं, वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट पूर्वकोटि की आयु भोगते हैं और भोगकर कोई-कोई नरक में जाते हैं—यावत्—कोई-कोई सिद्ध होते हैं—यावत्—(सब प्रकार के दुःखों का) अन्त करते हैं।

महाविदेहवासस्स णामहेऊ—

२७३. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—महाविदेहे वासे महाविदेहे वासे ?

उ०—गोयमा ! महाविदेहे णं वासे भरहेरवय-हेमवय-हेरण्णवय-हरिवास-रम्मगवासेहिंतो आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं वित्थिन्नतराए चेव, विपुलतराए चेव, महंततराए चेव, सुप्पमाणतराए चेव ।

महाविदेहा य इत्थ मणूसा परिवसंति । महाविदेहे अ इत्थ देवे महिड्ढिए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"महाविदेहेवासे, महाविदेहे वासे ।" —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८५

महाविदेह वर्ष के नाम का हेतु—

२७३. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष को महाविदेह वर्ष क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! महाविदेह वर्ष भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष से लम्बाई, चौड़ाई संस्थान (आकार) और परिधि में अधिक विस्तीर्ण है, अधिक विपुल है, अधिक विशाल है और अधिक सुप्रमाण वाला है।

यहाँ महाविदेह अर्थात् बड़े ऊँचे शरीर वाले मनुष्य रहते हैं, यहाँ महाविदेह नामक महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है।

इस हेतु से, गौतम ! यह महाविदेह वर्ष, महाविदेह वर्ष कहलाता है।

महाविदेहस्स सासयत्तं—

२७४. अदुत्तरं च णं गोयमा ! महाविदेहस्स वासस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ णासि ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सइ भुविं च भवइ अ भविस्सइ धुवे णिअए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे महाविदेहे वासे ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८५

महाविदेह की शाश्वतता—

२७४. अथवा गौतम ! इसका यह नाम शाश्वत है, जो कभी नहीं था ऐसा नहीं है, कभी नहीं है—ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा—ऐसा नहीं है, था, है, और होगा, यह महाविदेह वर्ष ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है।

जंबुद्दीवे चोत्तीसं चक्कवट्टि-विजया रायहाणीओ य—

२७५. प०—(क) जंबुद्दीवे दीवे केवइया चक्कवट्टि-विजया ?

(ख) केवइयाओ रायहाणीओ ?

उ०—(क) गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे चोत्तीसं चक्कवट्टि-विजया,

जम्बूद्वीप में चोतीस चक्रवर्ती विजय और राजधानियाँ—

२७५. प्र०—(क) (भगवन् !) जम्बूद्वीप नामक द्वीप में कितने चक्रवर्ती विजय है ?

(ख) और उनकी राजधानियाँ कितनी हैं ?

उ०—(क) गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीपों में चोतीस चक्रवर्ती विजय है।

(ख) चोत्तीसं रायहाणीओ[1],

—जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

(ख) और उनकी राजधानियाँ भी चोतीस हैं।

२७६. जंबुद्दीवे णं दीवे चउत्तीसं चक्कवट्टि विजया पण्णत्ता। तं जहा-बत्तीसं महाविदेहे, दो भरहे एरवए।

—सम० ३४, सु० २

२७६. जम्बूद्वीप नामक द्वीप में चोतीस चक्रवर्ती विजय कहे गये हैं, यथा—बत्तीस (चक्रवर्ती विजय) महाविदेह में हैं, और दो (चक्रवर्ती विजय) भरत तथा ऐरवत में हैं।

जंबुद्दीवस्स महाविदेहवासे बत्तीसं चक्कवट्टिविजया रायहाणीओ य कच्छविजयस्स ठाणं पमाणं च—

जम्बूद्वीप महाविदेह में बत्तीस चक्रवर्ती विजय राजधानियाँ—कच्छविजय की अवस्थिति एवं प्रमाण—

२७७. प०—कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छे णामं विजए पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! सीआए महाणईए उत्तरेणं, णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं—एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छे णामं विजए पण्णत्ते।

'उत्तर-दाहिणायए, पाईण पडीणविच्छिण्णे, पलिअंक संठाणसंठिए....गंगा-सिंधूहिं महाणईहिं वेयड्ढेण य पव्वएणं छब्भागपविभत्ते।

'सोलस जोयणसहस्साइं पंच य बाणउए जोयणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं,

'दो जोयणसहस्साइं दोण्णि अ तेरसुत्तरे जोयणसए किंचि विसेसूणे विक्खंभेणं ति।

'कच्छस्स णं विजयस्स बहुमज्झदेसभाए-एत्थ णं वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते। जेणं कच्छविजयं दुहा विभयमाणे विभयमाणे चिट्ठइ। तं जहा—दाहिणद्ध-कच्छं च उत्तरद्धकच्छं चेति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९३

२७७. प्र०—हे भगवन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में कच्छविजय कहाँ कहा गया है?

उ०—हे गौतम! सीता महानदी से उत्तर में, नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में, एवं माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में कच्छ नामक विजय कहा गया है।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा, पूर्व-पश्चिम में चौड़ा एवं पलंग के आकार का है। गंगा-सिन्धु महानदियों से तथा वैताढ्य पर्वत से यह छह भागों में विभक्त है।

इसकी लम्बाई सोलह हजार पाँच सौ बानवे योजन १६५९२ और दो योजन के उन्नीस भाग जितनी है।

इसकी चौड़ाई बावीस सौ तेरह २२१३ योजन से कुछ कम है।

कच्छविजय के ठीक मध्यभाग में वैताढ्यपर्वत कहा गया है, जो इसे दो भागों में विभक्त करता हुआ स्थित है, यथा—(१) दक्षिणार्धकच्छ और (२) उत्तरार्धकच्छ।

दाहिणद्धकच्छविजयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

दक्षिणार्ध कच्छविजय की अवस्थिति और प्रमाण—

२७८. प०—कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दाहिणद्ध-कच्छे णामं विजए पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! वेयड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स

२७८. प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में दक्षिणार्ध कच्छ नामक विजय कहाँ कहा गया है?

उ०—गौतम! वैताढ्य पर्वत से दक्षिण में सीता महानदी से उत्तर में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में, एवं माल्यवन्त

---

१ अढाईद्वीप में एक सौ सत्तर १७० चक्रवर्ती विजय है—इनकी गणना इस प्रकार है—
अढाईद्वीप में ५ भरत, ५ ऐरवत और ५ महाविदेह है।
प्रत्येक भरत और प्रत्येक ऐरवत में एक-एक विजय है तथा प्रत्येक महाविदेह में बत्तीस विजय हैं, इस प्रकार पाँच महाविदेह में एक सौ साठ विजय हैं, पांच भरत एवं ऐरवत के दस विजय हैं—इस प्रकार १७० चक्रवर्ती विजय है।
प्रत्येक विजय में एक राजधानी है और प्रत्येक राजधानी का वर्णन भरत क्षेत्र की राजधानी विनीता (अयोध्या) के समान है।

जम्बूद्वीप अन्तवर्ती ३२ विजय एवं उनकी राजधानियाँ : वर्णन पृष्ठ २०२ पर

पच्चत्थिमेणं, मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे, दाहिणड्ढकच्छे णामं विजए पण्णत्ते।

उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिन्ने, अट्ठ जोअण-सहस्साइं दोण्णि अ एगसुत्तरे जोअणसए एक्कं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स आयामेणं,

दो जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेरसुत्तरे जोअणसए किंचिविसेसूणे विक्खंभेणं, पलिअंकसंठाणसंठिए।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९३

वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में दक्षिणार्ध कच्छ नामक विजय कहा गया है।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा, पूर्व-पश्चिम में चौड़ा है, ८२७१$\frac{१}{१९}$ योजन लम्बा है।

बावीस सौ तेरह योजन से कुछ कम चौड़ा है और पलंग के आकार का है।

दाहिणद्धकच्छविजयस्स आयारभावे—

२७९. प०—दाहिणद्धकच्छस्स णं भंते! विजयस्स केरिसए आयार-भावपडोयारे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तंजहा -जाव-कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९३

दक्षिणार्ध कच्छविजय का आकार भाव—

२७९. प्र०—भगवन्! दक्षिणार्धकच्छ विजय का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है?

उ०—गौतम! यह अत्यन्त सम एवं रमणीय भूभाग वाला कहा गया है—यावत्—कृत्रिम तथा अकृत्रिम (मणि-तृणों) से (सुशोभित) है।

दाहिणद्धकच्छविजयस्स मणुआणं आयारभावे—

२८०. प०—दाहिणद्धकच्छे णं भंते! विजए मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

— जंबु० वक्ख० ४, सु० ९३

दक्षिणार्ध कच्छविजय के मनुष्यों का आकार भाव—

२८०. प्र०—भगवन्! दक्षिणार्ध कच्छ विजय के मनुष्यों का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है?

उ०—गौतम! यहाँ के मनुष्य छह प्रकार के संहनन वाले—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करने वाले हैं।

उत्तरद्धकच्छविजयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२८१. प०—कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरद्ध-कच्छे णामं विजए पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! वेअड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरेणं, णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, मालवंतस्स वक्खारपव्व-यस्स पुरत्थिमेणं, चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्च-त्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरद्धकच्छे णामं विजय पण्णत्ते-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

तहेव णेअव्वं सव्वं।

उत्तरार्ध कच्छविजय की अवस्थिति और प्रमाण—

२८१. प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में उत्तरार्धकच्छ नामक विजय कहाँ कहा गया है?

उ०—गौतम! वैताढ्य पर्वत से उत्तर में, नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में एवं चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में उत्तरार्धकच्छ नामक विजय कहा गया है—यावत्—(वहाँ के कोई-कोई मनुष्य) सब दुःखों का अन्त करते हैं।

इस प्रकार सब कथन पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

(१) कच्छविजयस्स णामहेउ—

२८२. प०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—"कच्छे विजए—कच्छे विजए"?

(१) कच्छविजय के नाम का हेतु—

२८२. प्र०. भगवन्! कच्छविजय को कच्छविजय क्यों कहते हैं?

उ०—गोयमा ! कच्छे विजए वेयड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं, सिंधूए महाणईए पुरत्थिमेणं।

दाहिणद्धकच्छविजयस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं खेमा णामं रायहाणी पण्णत्ता। विणीआ रायहाणी सरिसा भाणियव्वा।

तत्थ णं खेमाए रायहाणीए कच्छे णामं राया समुपज्जइ। महयाहिमवंत-जाव-सव्वं भरहोअवणं भाणियव्वं। निक्खमणवज्जं सेसं सव्वं भाणियव्वं-जाव-भुंजए माणुस्सए सुहे।

कच्छणामधेज्जे अ कच्छे इत्थ देवे महद्धीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ।

से एएणट्ठे णं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"कच्छे विजए कच्छे विजए जाव णिच्चे।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९३

सव्वेसु विजएसु कच्छवत्तव्वया-जाव-अट्ठो, रायाणो सरिसणामगा।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

उ०—गौतम ! कच्छविजय वैताढ्य पर्वत से दक्षिण में, सीता महानदी से उत्तर में, गंगा महानदी से पश्चिम में तथा सिन्धु महानदी से पूर्व में है।

दक्षिणार्ध कच्छ विजय के मध्य में क्षेमा नामक राजधानी कही गई है। इसका वर्णन विनीता राजधानी के समान समझ लेना चाहिए।

क्षेमा राजधानी में कच्छ नामक राजा उत्पन्न होता है, वह महाहिमवन्त (पर्वत के समान विशाल है)—यावत्—निष्क्रमण (दीक्षा) को छोड़कर उसका सब वर्णन (भरत चक्रवर्ती के समान समझना चाहिए, तथा शेष सब वर्णन कहना चाहिए—यावत्—वह मानवीय सुखों का उपभोग करता हुआ रहता है।

यहाँ कच्छ में कच्छ नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है।

इस कारण गौतम ! कच्छ विजय को कच्छ विजय कहते हैं —यावत्—(यह नाम) नित्य है।

कच्छविजय के अनुसार सब विजयों का कथन करना चाहिए —यावत्—विजयों के नाम का हेतु भी कहना चाहिए। राजाओं के नाम विजयों के नामों के समान कहना चाहिए।

(२) सुकच्छ विजयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२८३. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सुकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं, णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, गाहावईए महाणईए पच्चत्थिमेणं, चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सुकच्छे णामं विजए पण्णत्ते।

उत्तर-दाहिणायए, जहेव कच्छे, विजए तहेव सुकच्छे विजए।

णवरं—खेमपुरा रायहाणी, सुकच्छे राया समुप्पज्जइ, तहेव सव्वं।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९५

(२) सुकच्छ विजय के अवस्थिति और प्रमाण—

२८३. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में सुकच्छ नामक विजय कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! सीता महानदी के उत्तर में, नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, ग्राहावती महानदी के पश्चिम में एवं चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में सुकच्छ नामक विजय कहा गया है।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा है, जैसा कच्छ विजय का वर्णन है, वैसा ही सुकच्छ विजय का है।

विशेष—यह है कि यहाँ की राजधानी खेमपुरा है, तथा यहाँ सुकच्छ नामक राजा उत्पन्न होता है, शेष सब उसी के (कच्छ विजय) के अनुसार है।

(३) महाकच्छ विजयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२८४. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे महाकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, पम्हकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, गाहावईए महाणईए पुरत्थिमेणं

(३) महाकच्छविजय के स्थान; अवस्थिति और प्रमाण—

२८३. प्र०—भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में महाकच्छ नामक विजय कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, सीता महानदी के उत्तर में, ब्रह्मकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में एव ग्राहावती महानदी के पूर्व में महाविदेह वर्ष में महाकच्छ नामक

एत्थ णं महाविदेहे वासे महाकच्छे णामं विजए पण्णत्ते। सेसं जहा कच्छविजयस्स-जाव-महाकच्छे अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईए परिवसइ अट्ठो अ भाणिअव्वो। —जंबु वक्ख० ४, सु० ६५

विजय कहा गया है, शेष वर्णन कच्छ विजय के समान है—यावत—यहाँ महाकच्छ नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है, इसका वर्णन पूर्ववत् कर लेना चाहिए।

(४) कच्छगावईविजयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२८५. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे कच्छगावती णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, दहावतीए महाणईए पच्चत्थिमेणं, पम्हकूडस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे कच्छगावती णामं विजए पण्णत्ते।

उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिण्णे, सेसं जहा कच्छस्स विजयस्स-जाव-कच्छगावई अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ६५

(४) कच्छगावतीविजय की अवस्थिति और प्रमाण—

२८४. प्र०—भगवन् महाविदेह वर्ष में कच्छगावती नामक विजय कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त (पर्वत) के दक्षिण में, सीता महानदी के उत्तर में, द्रहावती महानदी के पश्चिम में एवं ब्रह्मकूट (पर्वत) के पूर्व में महाविदेह वर्ष में कच्छगावती नामक विजय कहा गया है।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा और पूर्व-पश्चिम में चौड़ा है। शेष वर्णन कच्छ विजय के समान है—यावत्—यहाँ कच्छगावती नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थितिवाला देव रहता है।

(५) आवत्तविजयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२८६. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे आवत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, णलिणकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, दहावतीए महाणईए पुरत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे आवत्ते णामं विजए पण्णत्ते। सेसं जहा कच्छस्स विजयस्स इति। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ६५

(५) आवर्तविजय की अवस्थिति और प्रमाण—

२८६. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में आवर्त नामक विजय कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण मे, सीता महानदी से उत्तर में, नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में तथा द्रहावती महानदी से पूर्व में, महाविदेह वर्ष में आवर्त नामक विजय कहा गया है।

शेष कथन कच्छविजय के समान है।

(६) मंगलावत्तविजयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२८७. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे मंगलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स दक्खिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, णलिणकूडस्स पुरत्थिमेण, पंकावईए पच्चत्थिमेण, एत्थ णं मंगलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते। जहा-कच्छस्स विजए तहा एसो भाणिअव्वो-जाव-मंगलावत्ते अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईए परिवसइ।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ मंगलावत्ते विजए, मंगलावत्ते विजए। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ६५

(६) मंगलावर्तविजय की अवस्थिति और प्रमाण—

२८७. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में मंगलावर्त नामक विजय कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त से दक्षिण में, सीता महानदी से उत्तर में, नलिनकूट से पूर्व में और पंकावती से पश्चिम में मंगलावर्त नामक विजय कहा गया है, कच्छविजय की भाँति इसका भी वर्णन जान लेना चाहिए—यावत्—यहाँ मंगलावर्त नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है।

इस कारण गौतम ! इसका नाम मंगलावर्तविजय है।

(७) पुक्खलावत्तविजयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२८८. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे पुक्खलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?

(७) पुष्कलावर्तविजय की अवस्थिति और प्रमाण—

२८८. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में पुष्कलावर्त नामक विजय कहाँ कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं पंकावईए पुरत्थिमेणं, एक्कसेलस्स वक्खार-पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं पुक्खलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते ।

जहा कच्छविजए तहा भाणिअव्वं-जाव-पुक्खले अ इत्थ देवे महिड्ढिए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-पुक्खलावत्ते विजए पुक्खलावत्ते विजए । —जम्बु० वक्ख० ४, सु० ६५

उ०—गौतम ! नीलवन्त के दक्षिण में, सीता महानदी के उत्तर में, पंकावती के पूर्व में तथा एकशैलवक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में पुष्कलावर्त नामक विजय कहा गया है ।

इसका वर्णन कच्छविजय के समान जानना चाहिए—यावत्—यहाँ पुष्कल नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है ।

इस कारण गौतम ! पुष्कलावर्तविजय को—पुष्कलावर्त विजय कहते हैं ।

(८) पुक्खलावईविजयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२८६. प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे पुक्खलावई णामं चक्कवट्टिविजए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स दक्खिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, उत्तरिल्लस्स सीआमुहवणस्स पच्चत्थिमेणं, एगसेलस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे पुक्खलावई णामं विजए पण्णत्ते ।

उत्तर-दाहिणायए, एवं जहा कच्छ विजयस्स-जाव-पुक्खलावई अ इत्थ देवे महिड्ढिए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-पुक्खलावईविजए पुक्खलावईविजए[1] ।

(८) पुष्कलावती विजय की अवस्थिति और प्रमाण—

२८६. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में पुष्कलावती नामक चक्रवर्ती विजय कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त के दक्षिण में, सीता महानदी के उत्तर में, उत्तरी सीतामुखवन के पश्चिम में तथा एकशैल वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में महाविदेह वर्ष में पुष्कलावती नामक विजय कहा गया है ।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा है, शेष वर्णन कच्छविजय के समान है—यावत्—यहाँ पुष्कलावती नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली देवी रहती है ।

इस कारण गौतम ! इसका नामक पुष्कलावती विजय कहा गया है ।

अट्ठ रायहाणीओ—

विजया भणिआ, रायहाणीओ इमाओ—

गाहा—खेमा खेमपुरा चेव, रिट्ठा रिट्ठपुरा तहा ।
खग्गी मंजूसा अवि अ, ओसही पुण्डरिगिणी ॥
—जंबु० वक्ख० ४, सु० ६५

आठ राजधानियाँ—

आठ विजय कहे गये हैं, उनकी राजधानियाँ ये हैं—

गाथा—(१) क्षेमा, (२) क्षेमपुरा, (३) रिष्टा, (४) रिष्टपुरा, (५) खड्गी, (६) मंजूषा, (७) औषधी, (८) पुण्डरीकिणी ।....

वच्छाइविजया, वक्खारपव्वया, महाणईओ, रायहाणीओ य—

२६०. प्र०—६ (१) कहि णं भंते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे वच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, सीयाए महाणईए दाहिणेणं दाहिणिल्लस्स सीआमुहवणस्स पच्चत्थिमेणं, तिउडस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं—एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे वच्छे णामं विजए पण्णत्ते ।

वत्सादिविजय, वक्षस्कार पर्वत, महानदियाँ और राजधानियाँ—

२६०. प्र०—६(१) भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में वत्स नामक विजय कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! निषधवर्षधर पर्वत के उत्तर में, सीतामहानदी के दक्षिण में, दक्षिणी सीतामुखवन के पश्चिम में और त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में वत्स नामक विजय कहा गया है ।

१ ठाणं० ८, सु० ६३७ ।

सुसीमारायहाणी तं चेव पमाणं[1] ।

(इस विजय की राजधानी का नाम) सुसीमाराजधानी है, इसका प्रमाण पूर्वोक्त (अयोध्या के समान) है।

१० (२) तिउडेवक्खारपव्वए, सुवच्छेविजए, कुण्डलारायहाणी ।

१०(२) आगे त्रिकूटवक्षस्कार पर्वत, सुवत्सविजय, कुण्डला राजधानी है।

११ (३) तत्तजलामहाणई, महावच्छेविजए, अपराजितारायहाणी ।

११(३) तप्तजलामहा नदी, महावत्सविजय, अपराजिता राजधानी है।

१२ (४) वेसमणकूडवक्खारपव्वए, वच्छावईविजए, पभंकरारायहाणी ।

१२(४) वैश्रमणकूट, वक्षस्कार पर्वत, वत्सावतीविजय; प्रभंकरा राजधानी है।

१३ (५) मत्तजलामहाणई, रम्मेविजए, अंकावईरायहाणी ।

१३(५) मत्तजला महानदी, रम्यविजय अंकावती राजधानी है।

१४ (६) अंजणेवक्खारपव्वए, रम्मगेविजए पम्हावईरायहाणी ।

१४(६) अंजनवक्षस्कार पर्वत, रम्यक्विजय, पद्मावती राजधानी है।

१५ (७) उम्मत्तजलामहाणई रमणिज्जेविजए सुभारायहाणी ।

१५(७) उन्मत्तजला महानदी, रमणीयविजय, सुभा राजधानी है।

१६ (८) मायंजले (णे) वक्खारपव्वए[2] मंगलावईविजए[3] रयणसंचयारायहाणी[4] ।

एवं जहचेव सीयाए महाणईए उत्तरंपासं तह चेव दक्खिणिल्लं भाणियव्वं । दाहिणिल्लसीआमुहवणाइ ।[5]

—जंबु० वक्ख० ४ सु० ९६

१६(८) मातंजलवक्षस्कार पर्वत, मंगलावतीविजय, रत्नसंचया राजधानी है।

जिस प्रकार सीता महानदी के उत्तर पार्श्व का वर्णन किया है। उसी प्रकार दक्षिण पार्श्व का वर्णन कहना चाहिए। दक्षिणी शीतामुखवनादि का वर्णन भी कहना चाहिए"।

पम्हाइविजया, वक्खारपव्वया, महाणईओ, रायहाणीओ य—

पद्मविजय, वक्षस्कार पर्वत, महानदियाँ और राजधानियाँ

२९१. १७ (१) एवं पम्हे विजए, अस्सपुरारायहाणी, अंकावईवक्खारपव्वए ।

२९१. १७(१) इसीप्रकार पद्मविजय, अश्वपुरा राजधानी, अंकावती वक्षस्कार पर्वत है।

१—"वच्छस्स विजयस्स णिसहे दाहिणेणं, सीआ उत्तरेणं, दाहिणिल्लसीयामुहवणे पुरत्थिमेणं तिउडे पच्चत्थिमेणं सुसीमारायहाणी । पमाणं तं चेवेति ।" —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९६

इसी सूत्र की टीका में यह कथन है—कि सुसीमा राजधानी का प्रमाण जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार ३ सूत्र ४१ में वर्णित विनीता (अयोध्या) के समान है। इसी प्रकार सभी विजयों की सभी राजधानियों का प्रमाण अयोध्या के समान समझना चाहिए।

२ इमे वक्खारकूडा पण्णत्ता, तं जहा—

गाहा—तिउडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे ।
णईउ तत्तजला, मत्तजला, उम्मत्तजला ॥

३ इमे विजया पण्णत्ता, तं जहा—

गाहा—वच्छे सुवच्छे महावच्छे, चउत्थे वच्छगावई ।
रम्मे रम्मए चेव, रमणिज्जे मंगलावई ॥

४ इमाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

गाहा—सुसीमा कुंडला चेव, अवराइअ पहंकरा ।
अंकावई पम्हावई, सुभा रयणसंचया ॥

५ (क) इस मूल पाठ के आगे (जंबु० वक्ख० ४, सु० ९६) के मूलपाठ में सुसीमा राजधानी की अवस्थिति, (गद्य में) तथा वक्षस्कार पर्वत, नदियाँ, विजय और राजधानियों के नामों की गाथाएँ हैं। निर्धारित संकलनपद्धति के अनुसार गद्यपाठ और गाथायें यहाँ दी गई हैं।

(ख) ठाणं-८, सु० ६३७ ।

१८ (२) सुपम्हेविजए, सीहपुरारायहाणी, खीरोदामहाणई।

१८(२) सुपक्ष्मविजय, सिंहपुरा राजधानी, क्षीरोदा महानदी है।

१९ (३) महापम्हेविजए, महापुरारायहाणी, पम्हावईवक्खारपव्वए।

१९(३) महापक्ष्मविजय, महापुरा राजधानी, पद्मावती वक्षस्कार पर्वत है।

२० (४) पम्हगावईविजए, विजयपुरारायहाणी, सीअसोआमहाणई।

२०(४) पक्ष्मगावती विजय, विजयपुरा राजधानी, शीतस्रोता महानदी है।

२१ (५) संखेविजए, अवराइयारायहाणी, आसीविसवक्खारपव्वए।

२१(५) शंखविजय, अपराजिता राजधानी, आशीविषवक्षस्कार पर्वत है।

२२ (६) कुमुदेविजए, अरजारायहाणी, अंतोवाहिणीमहाणई।

२२(६) कुमुदविजय, अरजा राजधानी, अंतोवाहिनी महानदी है।

२३ (७) णलिणेविजए, असोगारायहाणी सुहावहेवक्खारपव्वए।

२३(७) नलिनविजय, अशोका राजधानी, सुखावह वक्षस्कार पर्वत है।

२४ (८) णलिणावईविजए, वीयसोगारायहाणी।[1]

दाहिणिल्ले सीओआमुहवणसंडे, उत्तरिल्ले वि एमेव भाणियव्वे-जहा सीआए।

२४(८) नलिनावती विजय, वीतशोका राजधानी है।

दक्षिणी शीतोदा मुखवन खण्ड (का जैसा वर्णन है) वैसा ही उत्तरी (शीतोदामुख वन खण्ड का वर्णन) भी कहना चाहिए।

जिस प्रकार शीतामुखवन खण्ड का (वर्णन है उसी प्रकार शीतोदामुखवनखण्ड का वर्णन है)।

वप्पाइविजया, वक्खारपव्वया, महाणईओ, रायहाणीओ य—

वप्रादिविजय, वक्षस्कारपर्वत, महानदियाँ और राजधानियाँ—

२६२. २५ (१) वप्पेविजए, विजयारायहाणी, चंदेवक्खारपव्वए।

२६२. (१) (इसी प्रकार) वप्रविजय, विजया राजधानी, चन्द्र वक्षस्कार पर्वत है।

२६ (२) सुवप्पेविजए वेजयंतीरायहाणी, ओम्मिमालिणी णई।

२६(२) सुवप्रविजय, वैजयन्ती राजधानी, ऊर्मिमालिनी नदी है।

२७ (३) महावप्पेविजए, जयंतीरायहाणी, सूरेवक्खारपव्वए।

२७(३) महावप्रविजय, जयन्ती राजधानी सूर्यवक्षस्कार पर्वत है।

---

१ (क) जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, णिसढवासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, सीतोदाए महाणईए दाहिणेणं, सुहावइस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं—एत्थणं सलीलावई णामं विजए पण्णत्ते- तत्थ णं (सलीलावई विजए) वीयसोगणामं रायहाणी.... —णायाधम्म० अ० ८-

(णलिणावती, विजय का दूसरा नाम सलिलावती विजय भी है।)

(ख) तत्थ ताव सीओआए महाणईए दक्खिणिल्ले णं कूले इमे विजया पण्णत्ता, तं जहा—

गाहा—पम्हे सुपम्हे महापम्हे, चउत्थे पम्हगावई।
संखे कुमुए णलिणे अट्ठमे णलिणावई॥

(ग) ....इमाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ तं जहा—

गाहा—आसपुरा, सीहपुरा महापुरा, चेव हवइ विजयपुरा।
अवराइया य अरया, असोगा तह वीतसोगा य॥

(घ) ....इमे वक्खारा पण्णता, तं जहा—१. अंके, २. पम्हे, ३. आसीविसे, ४. सुहावहे।

एवं इत्थ परिवाडीए दो दो विजया कूटसरिसणामया भाणियव्वा।

दिसा—विदिसाओ य भाणियव्वाओ। सीओआमुहवणं च भाणियव्वं। सीओआआए दाहिणिल्लं उत्तरिल्लं च।

(ङ) इमाओ णईओ सीओआए महाणईए दाहिणिल्ले कूले खीरोओ, सीअसोया, अन्तरवाहिणीओ।

(च) ठाणं० ८. सु० ६३७।

२८ (४) वप्पावईविजए, अपराइआरायहाणी, फेणमालिणी णई।
२९ (५) वग्गूविजए, चक्कपुरारायहाणी, णागे वक्खारपव्वए।
३० (६) सवग्गूविजए, खग्गपुरारायहाणी, गंभीरमालिणी अंतरणई।
३१ (७) गंधिलेविजए, अवज्झारायहाणी, देवे वक्खारपव्वए।
३२ (८) गंधिलावईविजए,[1] अयोज्झारायहाणी[2]।

एवं मन्दरस्स पव्वयस्स पच्चित्थिमिल्लं पासं भाणियव्वं। —जंबु० वक्ख० ४, सु० १-२

२८(४) वप्रावतीविजय, अपराजिता राजधानी, फेनमालिनी नदी है।
२९(५) वल्गु विजय, चक्रपुरा राजधानी, नाग वक्षस्कार पर्वत है।
३०(६) सुवल्गु विजय, खड्गपुरा राजधानी, गंभीरमालिनी नदी है।
३१(७) गंधिलविजय, अवध्या राजधानी, देववक्षस्कार पर्वत है।
३२(८) गंधिलावतीविजय, अयोध्याराजधानी है।

इसी प्रकार मेरु पर्वत के पश्चिमी पार्श्व का (वर्णन) कहना चाहिए।

हेमवयवासस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२९३. प्र०—कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे हेमवए णामं वासे पण्णत्ते।

उ०—गोयमा! महाहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, पुरत्थिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे हेमवए णामं वासे पण्णत्ते।

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिण्णे, पलिअंक-संठाणसंठिए, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे। पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थि-मिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, दोण्णि जोअणसहस्साइं एगं च पंचुत्तरं जोअणसयं पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं।

२९४. तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं छज्जोयणसहस्साइं सत्त य पणवण्णे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं[3]।

हेमवतवर्ष के अवस्थिति और प्रमाण—

२९३. प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में हेमवत नामक वर्ष कहाँ कहा गया है।

उ०—गौतम! महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत से उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप में हैमवत नामक वर्ष कहा गया है।

यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। पलंग के आकार का है। तथा दो ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है और पश्चिम की ओर पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। यह २१०५ $\frac{५}{१९}$ योजन चौड़ा है।

२९४. उसकी बाहु पूर्व-पश्चिम में— ६७५५ $\frac{३}{१९}$ योजन लम्बी है।

---

१ सीओआए उत्तरिल्ले पासे इमे विजया पण्णत्ता, तं जहा—
गाहा—वप्पे सुवप्पे महावप्पे, चउत्थे वप्पयावई। वग्गू अ सुवग्गू अ, गंधिले गंधिलावई॥

२ (क) ····इमाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
गाहा—विजया वेजयंती, जयंती अपराजिया। चक्कपुरा खग्गपुरा हवइ अवज्झा अउज्झा य॥
....इमे वक्खारा पण्णत्ता, तंजहा—
गाहा— चंदपव्वए, सूरपव्वए, नागपव्वए, देवपव्वए।
इमाओ णईओ—सीओआए महाणईए उत्तरिल्ले कूले—
उम्मिमालिणी, फेणमालिणी, गंभीरमालिनी। उत्तरिल्लविजयाणंतराउत्ति।
(ख) ठाणं. ८. सु. ६३७।

३ (क) हेमवयहेरण्णवयाओ णं बाहाओ सत्तट्ठि सत्तट्ठि जोयणसयाइं पणपन्नाइं तिण्णि य भागा जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ता। —सम. ६७, स. २
(ख) यहाँ हेमवत और हैरण्यवत की वा काहु आयाम ६७५५ योजन तथा तीन योजन के उन्नीस भाग जितना कहा है। किन्तु समवाय ६७, सूत्र २ में ६७५५ योजन तथा एक योजन के तीन भाग जितना कहा है।

२६५. तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया, दुहओ लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा। सत्तीसं जोअणसहस्साइं छच्चचउसत्तरे जोअणसए सोलस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स किंचिविसेसूणे आयामेणं[1],

२६५. उसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी एवं दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है और पश्चिम की ओर पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। यह ३७६७४ $\frac{१६}{१९}$ योजन से कुछ कम लम्बी है।

२६६. तस्स धणुं दाहिणेणं अट्ठतीसं जोअणसहस्साइं सत्त य चत्ताले जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं[2]।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७६

२६६. उसका धनुपृष्ठ दक्षिण में—

३८७४० $\frac{१०}{१९}$ योजन की परिधि वाला है।

हेमवयस्स वासस्स आयारभावो—

२६७. प०—हेमवयस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभाव-पडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते।

एवं तइअसमाणुभावो णेअव्वो त्ति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७६

हैमवतवर्ष का आकार भाव—

२६७. प्र०—भगवन् ! हैमवतवर्ष का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! उसका भूमिभाग अति सम एवं रमणीय कहा गया है।

उसका वर्णन (भरत क्षेत्र के) तीसरे आरे के वर्णन जैसा जानना चाहिए।

हेमवयवासस्स णामहेऊ—

२६८. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—हेमवए वासे हेमवए वासे ?

उ०—गोयमा ! चुल्लहिमवंत—महाहिमवतेहिं वासहरपव्वएहिं दुहओ समवगूढे। णिच्चं हेमं दलई, णिच्चं हेमं दलइत्ता णिच्चं हेमं पगासइ, हेमवए य इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"हेमवएवासे हेमवएवासे।"

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७८

हैमवतवर्ष के नाम का हेतु—

२६८. प्र०—भगवन् ! हैमवतवर्ष को हैमवत वर्ष क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! यह चुल्लहिमवन्त और महाहिमवन्त नामक वर्षधर पर्वतों से दोनों ओर से समवगुढ अर्थात् संश्लिष्ट है। यह सदैव (आसनप्रदान आदि द्वारा) हेम-स्वर्ण देता है, नित्य स्वर्ण देकर सदैव हेम जैसा प्रकाशित होता है और यहाँ हैमवत नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है।

इस कारण गौतम ! हैमवतवर्ष, हैमवतवर्ष कहलाता है।

हेरण्णवयवासस्स अवट्ठिई पमाणं च—

२६९. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे हेरण्णवए णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! रुप्पिस्स उत्तरेणं सिहरिस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवण

हैरण्यवतवर्ष के अवस्थिति और प्रमाण—

२६९. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में हैरण्यवत नामक वर्ष कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! रुक्मि पर्वत से उत्तर में, शिखरीपर्वत से दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में और पश्चिमी लवण-

---

१ हेमवय-हेरण्णवयाओ णं जीवाओ सत्तत्तीसं जोयणसहस्साइं छच्च चउसत्तरे जोयणसए सोलस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स किंचिविसेसूणाओ आयामेणं पण्णत्ता। —सम. ३७, सु. २

२ हेमवए-हेरण्णवयाईणं जीवाणं धणुपिट्ठे अट्ठतीसं जोयणसहस्साइं सत्त य चत्ताले जोयणसए दस एगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचिविसेसूणा परिक्खेवेणं पण्णत्ता। —सम. ३८, सु. २

समुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे हिरण्णवए वासे पण्णत्ते।

समुद्र से पश्चिम में और पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में, जम्बूद्वीप नामक द्वीप में हैरण्यवत वर्ष कहा गया है।

एवं जह चेव हेमवयं तह चेव हेरण्णवयं पि भाणियव्वं। णवरं जीवा दाहिणेणं, उत्तरेणं धणुं अवसिट्ठं तं चेवत्ति।[1]
—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

जैसा हैमवतवर्ष का कथन किया है वैसा ही हैरण्यवतवर्ष भी कह लेना चाहिये। विशेष यह है कि इसकी जीवा दक्षिण में और धनुपृष्ठ उत्तर में है। शेष कथन वही है।

हेरण्णवयवासस्स णामहेऊ—

हैरण्यवतवर्ष के नाम का हेतु—

३००. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—हेरण्णवएवासे हेरण्णवएवासे ?

३००. प्र०—भगवन् ! हैरण्यवतवर्ष को हैरण्यवतवर्ष क्यों कहते हैं ?

उ०—गोयमा ! हेरण्णवए णं वासे रुप्पी-सिहरीहिं वासहरपव्वएहिं दुहओसमवगूढे, णिच्चं हिरण्णं दलइ, णिच्चं हिरण्णं मुंचइ, णिच्चं हिरण्णं पगासइ।

उ०—गौतम ! हैरण्यवतवर्ष रुक्मि और शिखरी नामक वर्षधर पर्वतों से दोनों ओर से समवगूढ है अर्थात् संश्लिष्ट है। यह नित्य हिरण्य को प्रदान करता है। नित्य हिरण्य को त्यागता है तथा नित्य हिरण्य जैसा प्रकाशित होता है।

हेरण्णवए अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईए परिवसइ।

यहाँ महर्द्धिक—**यावत्**—पल्योपम की स्थितिवाला हैरण्यवत नामक देव निवास करता है।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—'हेरण्णवएवासे।"
—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

इस कारण गौतम ! इसका नाम हैरण्यवतवर्ष, हैरण्यवतवर्ष कहा गया है।

हरिवासस्स अवट्ठिई पमाणं च—

हरिवर्ष का अवस्थिति और प्रमाण—

३०१. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे हरिवासे णामं वासे पण्णत्ते ?

३०१. भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में हरिवर्ष नामक वर्ष कहाँ कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, महाहिमवंतवासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे हरिवासे णामं वासे पण्णत्ते।

उ०—गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत से उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में, और पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप में हरिवर्ष नामक वर्ष कहा गया है।

एवं-जाव-पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, अट्ठजोअणसहस्साइं चत्तारि अ एगवीसे जोयणसए एगं च एगूणवीसइभागे जोअणस्स विक्खंभेणं।[2]

यह—**यावत्**—पश्चिम की ओर से पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। इसकी चौड़ाई $८४२१\frac{१}{१९}$ योजन की है।

३०२. तस्स बाहा पुरत्थिम—पच्चत्थिमेणं तेरस जोअणसहस्साइं, तिण्णि अ एगसट्ठे जोअणसए, छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स, अद्धभागं च आयामेणंति।

३०२. उसकी बाहु पूर्व-पश्चिम में—

$१३३६१\frac{६}{१९}\ \frac{१}{२}$ योजन लम्बी है।

३०३. तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा

३०३. उसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी और दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है और पश्चिम की ओर पश्चिम की ओर पश्चिमी

---

१ (क) सम. ६७ सु. २। (ख) सम. ३७ सु. २। (ग) सम. ३८ सु. २।....

२ हरिवास-रम्मयाणं वासा अट्ठजोयणसहस्साइं साइरेगाइं वित्थरेणं पण्णत्ता।
—सम. सु. १२१

तेवत्तरिं जोअणसहस्साइं णव अ एगुत्तरे जोअणसए सत्तरस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं ।[1]

३०४. तस्स धणू दाहिणेणं चउरासीइं जोअणसहस्साइं सोलस जोअणाइं चत्तारि एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ।[2]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८२

हरिवासस्स आयारभावो—

३०५. प०—हरिवासस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभाव-पडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते-जाव-मणीहिं तणेहि अ उवसोभिए ।

एवं मणीणं तणाणं य वण्णो गंधो फासो सद्दो भाणिअव्वो ।

हरिवासे णं तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे खुड्डा खुड्डियाओ ।

एवं जो सुसमाए अणुभावो सो चेव अपरिसेसो वतव्वोत्ति । —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८२

हरिवासस्स णामहेऊ—

३०६. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-'हरिवासे हरिवासे ?"

उ०—गोयमा ! हरिवासे णं वासे मणुआ अरुणा अरुणोभासा सेआ णं संखदलसण्णिकासा हरिवासे अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-"हरिवासे हरिवासे ।"

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८२

रम्मयवासस्स अवट्ठिई पमाणं च—

३०७. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे रम्मए णामं वासे पण्णत्ते ?

लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । यह ७३९०१ $\frac{१७}{१९}$ $\frac{१}{२}$ योजन लम्बी है।

३०४. इसकी धनुःपीठिका दक्षिण में—

८४०१६ $\frac{४}{१९}$ योजन की परिधि में है ।

हरिवर्ष का आकारभाव—

३०५. प्र०—भगवन् ! हरिवर्ष का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! इसका आकार अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग वाला कहा गया है—यावत्—मणियों तथा तृणों से सुशोभित है ।

मणियों और तृणों के वर्ण, गंध (रस) और स्पर्श तथा शब्द का वर्णन कर लेना चाहिये ।

हरिवर्ष में जगह-जगह—यत्र-तत्र अनेक छोटी-बड़ी वापिकाएँ हैं ।

इस प्रकार सुषमाकाल (द्वितीय आरे) की भाँति सम्पूर्ण वर्णन कहना चाहिये ।

हरिवर्ष के नाम का हेतु—

३०६. प्र०—भगवन ! हरिवर्ष को हरिवर्ष क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! हरिवर्ष में (कुछ) मनुष्य अरुण वर्णवाले एवं अरुण कान्ति वाले हैं । (कुछ) मनुष्य शंखखण्ड के समान श्वेत वर्ण वाले हैं । यहाँ हरिवर्ष नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थितिवाला देव रहता है ।

इस कारण गौतम ! हरिवर्ष-हरिवर्ष कहा जाता है ।

रम्यक्वर्ष के अवस्थिति और प्रमाण—

३०७. प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में रम्यक्वर्ष नामक वर्ष कहाँ कहा गया है ?

---

१ हरिवास-रम्मयवासयाओ णं जीवाओ तेवत्तरिं तेवत्तरिं जोयणसहस्साइं नव य एगुत्तरे जोयणसए सत्तरस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स अद्धभागं च आयामेणं पण्णत्ता । —सम० ७३, सु०

२ हरिवास-रम्मयवासियाणं जीवाणं धणुपिट्ठा चउरासीं जोयणसहस्साइं सोलसजोयणाइं चत्तारि य भागा जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ता । —सम० ८४, सु० ८

यहाँ हरिवर्ष की जीवा के धनुपृष्ठ की परिधि चोरासी हजार सोलह योजन तथा चार योजन के उन्नीस भाग जितनी कही है किन्तु सम० ८४, सूत्र ८ में हरिवर्ष रम्यक्वर्ष (दोनों में प्रत्येक) की जीवा के धनुपृष्ठ की परिधि चोरासी हजार सोलह योजन तथा एक योजन के चार भाग जितनी कही है ।

सम० ८४, सूत्र ८ का मूलपाठ ऊपर उद्धृत है; तुलना करें ।

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स उत्तरेणं, रुप्पिस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं।

एवं जह चेव हरिवासं तह चेव रम्मयं वासं भाणिअव्वं। णवरं दक्खिणेणं जीवा, उत्तरेणं धणुं, अवसेसं तं चेव।[1]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

उ०—गौतम ! नीलवन्त (वर्षधर पर्वत) से उत्तर में, रुक्मि (पर्वत) से दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में और पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में (रम्यक्वर्ष) हैं।

हरिवर्ष का जैसा कथन किया गया है वैसा ही रम्यक्वर्ष का कहना चाहिये। विशेष यह है कि इसकी जीवा दक्षिण में है। धनुःपृष्ठ उत्तर में, शेष वक्तव्यता यही है।

रम्मयवासस्स णामहेऊ—

३०८. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—रम्मएवासे रम्मए वासे ?

उ०—गोयमा ! रम्मएवासे णं रम्मे रम्मए रमणिज्जे, रम्मए अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"रम्मएवासे रम्मएवासे।" —जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

रम्यक्वर्ष के नाम हेतु—

३०८. प्र०—भगवन् ! रम्यक्वर्ष किस कारण से रम्यक्वर्ष कहलाता है ?

उ०—गौतम ! रम्यक्वर्ष अत्यन्त रम्य एवं रमणीय है, तथा रम्यक् नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है।

इस कारण गौतम ! यह रम्यक्वर्ष रम्यक्वर्ष कहलाता है।

देवकुराए अवट्ठिई पमाणं च—

३०९. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे देवकुरा णामं कुरा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, विज्जुप्पहस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, सोमणसवक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहेवासे देवकुरा णामं कुरा पण्णत्ता।

पाईण-पडीणायया, उदीण-दाहिणविच्छिण्णा, अद्धचंद-संठाणसंठिया इक्कारस जोयणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोयणसए दोण्णि य एगूणवीसइभाए जोयणस्स विक्खंभेणं ति।

देवकुरु का स्थान-प्रमाणादि—

३०९. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में देवकुरु नामक कुरु कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! मेरु पर्वत से दक्षिण में, निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में, तथा सोमनस वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में महाविदेह वर्ष में देवकुरु नामक कुरु कहा गया है।

यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है और अर्धचन्द्र संस्थान से स्थित है। इग्यारह हजार आठसौ बयालीस योजन तथा दो योजन के उन्नीस विभाग जितना इसका विष्कम्भ है।

३१०. तीसे णं जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया, दुहा वक्खारपव्वयं पुट्ठा—तं जहा—पुरित्थिमिल्लाए कोडीए पुरित्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा। तेवण्णं जोयणसहस्साइं आयामेणं ति।[2]

३१०. उसकी जीवा उत्तर की ओर पूर्व-पश्चिम में लम्बी है। दोनों ओर से वक्षस्कार पर्वत से स्पृष्ट है। यथा—पूर्वीय किनारे से पूर्वी वक्षस्कार पर्वत से स्पृष्ट है तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी वक्षस्कार पर्वत से स्पृष्ट है। जीवा की लम्बाई त्रेपन हजार योजन है।

३११. तीसे णं धणुं दाहिणेणं सट्ठिं जोयणसहस्साइं चत्तारि अ अट्ठारसे जोयणसए दुवालस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं।[3] —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८७

३११. उसका धनुपृष्ठ दक्षिण में साठ हजार चारसौ अठारह योजन तथा बारह योजन के उन्नीस विभाग जितनी परिधि वाला है।

---

१ (क) सम. सु. १२१। (ख) सम. ७३, सु. १। (ग) सम. ८४, सु. ८।

२ देवकुरु—उत्तरकुरुयाओ णं जीवाओ तेवन्नं तेवन्नं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं आयामेणं पण्णत्ताओ। —सम० ५३, सु०

३ 'जहा उत्तरकुराए वत्तव्वया जाव' इस संक्षिप्त वाचना की सूचना के अनुसार सु० ८७ से यहाँ पाठ की पूर्ति की गई है।

देवकुराए आयारभावो—

३१२. प०—देवकुराए णं भंते ! कुराए केरिसए आयारभाव पडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते।

एवं पुव्ववण्णिआ जच्चेव सुसमसुसमावत्तव्वया सच्चेव णेयव्वा जाव (१) पउमगंधा, (२) मिअगंधा, (३) अममा, (४) सहा, (५) तेतली, (६) सणिचारी।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९७

देवकुरु का आकारभाव (स्वरूप)—

३१२. प्र०—भगवन् ! देवकुरा नामक कुरा का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत सम एवं रमणीय कहा गया है।

इस प्रकार पूर्ववर्णित सुषमासुषमा की जो वक्तव्यता है वही यहाँ समझ लेना चाहिए। यावत् (वहाँ छह प्रकार के मनुष्य हैं)। १ पद्मगंध, २ मृगगंध, ३ अमम, ४ सह, ५ तेतली और ६ शनैश्चारी।

देवकुराए णामहेऊ—

३१३. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—देवकुरा, देवकुरा ?

उ०—गोयमा ! देवकुराए देवकुरुणामं देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईए परिवसइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—देवकुरा, देवकुरा। अदुत्तरं च णं गोयमा ! देवकुराए सासए णामधेज्जे पण्णत्ते। —जंबु० वक्ख० ४, सु० १००

देवकुरु के नाम का हेतु—

३१३. प्र०—भगवन् ! देवकुरु को देवकुरु क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! देवकुरु में देवकुरु नामक महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है।

इस कारण गौतम ! देवकुरु देवकुरु कहा जाता है।

अथवा—गौतम ! देवकुरु यह नाम शास्वत कहा गया है।

देवकुराए कूडसामलीपेढस्स ठाणाइं—

३१४. प०—कहि णं भंते ! देवकुराए कुराए कूडसामलिपेढे णामं पेढे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, विज्जुप्पभस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, सीओआए महाणईए पच्चत्थिमेणं, देवकुरुपच्चत्थिमद्धस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं देवकुराए कुराए कूडसामलीपेढे णामं पेढे पण्णत्ते।[1]

एवं जच्चेव जंबूए सुदंसणाए वत्तव्वया सच्चेव सामलीए वि भाणिअव्वा णामविहूणा।[2]

गरुलदेवे, रायहाणी दक्खिणेणं। अवसिट्ठं तं चेव।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १००

देवकुरु में कूटशाल्मलीपीठ के स्थानादि—

३१४. प्र०—भगवन् ! देवकुरु नामक कुरु में कूटशाल्मलीपीठ नामक पीठ कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! मेरुपर्वत से दक्षिण पश्चिम में, निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में, शीतोदा महानदी से पश्चिम मे तथा देवकुरु के पश्चिमार्ध के मध्य में देवकुरु नामक कुरु में कूटशाल्मलीपीठ नामक पीठ कहा गया है।

जम्बूसुदर्शन (वृक्ष) की भाँति शाल्मलीका भी, नाम को छोड़कर समस्त वर्णन कर लेना चाहिये।

यहाँ गरुड़ नामक देव (रहता है) (इस देव की) राजधानी दक्षिण में है। शेष वर्णन पूर्ववत् है।

३१५. तत्थ णं दो महइमहालया, महद्दुमा बहुसमतुल्ला, अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं नाइवट्टन्ति आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वेह-संठाण—परिणाहेणं तं जहा—कूडसामली चेव सुदंसणा चेव।

३१५. वहाँ दो विशाल महावृक्ष हैं, जो परस्पर सर्वथा तुल्य, विशेषतारहित, विविधतारहित, लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई, आकृति और परिधि में एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं, यथा—कूटशाल्मली और जंबूसुदर्शना।

—ठाणं ८, सु० ६३५

१ ठाणं १० सु० ७६४
२ (क) कूडसामलीणं अट्ठ जोयणाइं एवं चेव।
(ख) सम० ८ सु० ५

तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति तं जहा—गरुले चेव वेणुदेवे, अणाढिए चेव जंबुद्दीवाहिवई। —ठाणं २ उ० ३, सु० ८९

वहाँ महाऋद्धि वाले—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं, यथा—वेणुदेव गरुड़ और अनाढिय। ये दोनों जम्बूद्वीप के अधिपति हैं।

उत्तरकुरुस्स अवट्ठिई पमाणं च—

उत्तरकुरु की अवस्थिति और प्रमाणादि—

३१६. प०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे उत्तरकुरा णामं कुरा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं, णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, गंधमायणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं उत्तरकुरा णामं कुरा पण्णत्ता।

पाईण-पडीणायया, उदीण-दाहिणवित्थिन्ना, अद्धचंदसंठाणसंठिया, इक्कारस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणंति।

३१६. प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में उत्तरकुरु नामक कुरु कहाँ कहा गया है ?

उ०—गौतम ! मन्दर पर्वत से उत्तर में, नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, गंधमादन वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में और माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में उत्तरकुरु नामक कुरु कहा गया है।

वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा, तथा अर्धचन्द्राकार है। वह ११८४२ $\frac{२}{१९}$ विष्कंभ वाला है।

३१७. तीसे णं जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया, दुहा वक्खारपव्वयं पुट्ठा, तं जहा—पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा, तेवण्णं जोअणसहस्साइं आयामेणंति।[१]

३१७. उसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम में लम्बी है और दोनों ओर से वक्षस्कार पर्वत से स्पृष्ट है। यथा—पूर्वीय किनारे से पूर्वी वक्षस्कार पर्वत से स्पृष्ट है तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी वक्षस्कार पर्वत से स्पृष्ट है। उसकी लम्बाई त्रेपन हजार योजन है।

३१८. तीसे णं धणुं दाहिणेणं सट्ठिं जोअणसहस्साइं चत्तारि अ अट्ठारसे जोअणसए दुवालस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स परिक्खेवेणं।[२] —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८७

३१८. उसका धनुःपृष्ठ दक्षिण में—

६०४१८ $\frac{१२}{१९}$ योजन की परिधि वाला है।

उत्तरकुराए आयारभावो—

उत्तरकुरु का आकारभाव (स्वरूप)—

३१९. प०—उत्तरकुराए णं भंते ! कुराए केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते।

से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा-जाव-एवं एक्कोरुयदीववत्तव्वया-जाव-देवलोग-परिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

णवरि इमं णाणत्तं छ धणुसहस्स-मूसिता, दोछप्पन्ना पिट्ठकरंडसता, अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति तिण्णि पलिओवमाइं देसूणाइं पलिओवमस्सासंखिज्जइभागेण ऊणगाइं जहन्नेणं, तिन्निपलिओवमाइं

३१९. प्र०—भगवन् ! उत्तरकुरा का आकारभाव (स्वरूप) कैसा कहा गया है ?

उ०—गौतम ! उसका भूभाग अत्यधिक सम एवं रमणीय कहा गया है।

चर्ममढेहुए मृदंगवाद्य के चर्मतल जैसा है—यावत्—एकोरुकद्वीप के कथन जैसा है—यावत्—हे आयुष्मन् श्रमण ! (उत्तरकुरा के) मनुष्य देवलोक में उत्पन्न होने वाले कहे गये हैं।

यहाँ विशेषता यह है कि वे छह हजार धनुष ऊँचे होते हैं, उनके दोसौ छप्पन पांसलियां होती हैं अष्टभक्त (तीन दिन) के बाद उन्हें आहार की इच्छा होती है उनका जघन्य आयु कुछ कम अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कुछ कम तीन

१ सम० ५३, सु०।
२ जीवा. प० ३, उ० २, सु० १४७

उक्कोसेणं। एकूणपण्णराइंदियाइं अणुपालणा। सेसं जहा एगुरुयाणं।

पल्योपम का है और उत्कृष्ट तीन पल्योपम का है। वे उनपचास अहोरात्रपर्यन्त अपने बालयुगल का पालन-पोषण करते हैं। शेष वर्णन एकोरुकद्वीप (निवासी मनुष्यों) जैसा है।

३२०. उत्तरकुराएणं कुराए छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जंति। तं जहा। (१) पम्हगंधा, (२) मियगंधा, (३) अम्ममा, (४) सहा, (५) तेयालीसे, (६) सणिच्चारी।[1]

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १४७

३२०. उत्तरकुरा नामक कुरा में छह प्रकार के मनुष्य निवास करते हैं—यथा—१ पद्म (कमल) जैसी गंधवाले, २ मृग (कस्तूरीमृग) जैसी गंधवाले, ३ ममत्वरहित, ४ सहनशील, ५ तेजस्तलीन (तेतली) ६ शनैश्चारी (शनैःशनै चलने वाले)।

उत्तरकुराए णामहेऊ—

उत्तरकुरु के नाम का हेतु—

३२१. प०—से केणट्ठेणं भंते। एवं वुच्चइ-उत्तरकुरा उत्तरकुरा।

उ०—गोयमा! उत्तरकुराए उत्तरकुरु णामं देवे महिड्ढीए -जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—"उत्तरकुरा, उत्तरकुरा।"

अदुत्तरं च णं गोयमा! उत्तरकुराए सासए णामधेज्जे पण्णत्ते। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९१

३२१. प्र०—भगवन्! उत्तरकुरु-उत्तरकुरु क्यों कहा जाता है?

उ०—गौतम! उत्तरकुरु में उत्तरकुरु नामक महर्धिक —यावत्— पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है। इस कारण गौतम! उत्तरकुरु उत्तरकुरु कहा जाता है।

अथवा—गौतम! उत्तरकुरा यह नाम शास्वत कहा गया है।

३२२. देवकुरु-उत्तरकुरुएसु णं मणुया एगूणपन्नाराइंदिएहिं संपन्न-जोव्वण्णा भवंति। —सम ४९, सु० ९२

३२२. देवकुरु उत्तरकुरु में मनुष्य उनपचास अहोरात्रि में युवावस्था को प्राप्त होते हैं।

उत्तरकुराए जंबुपेढस्स अवट्ठिई पमाणं च—

उत्तरकुरा में जम्बूपीठ की अवस्थिति और प्रमाण—

३२३. प०—कहि णं भंते! उत्तरकुराए २ जंबूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, गंधमादणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, सीआए महाणईए पुरत्थिमिल्ले कूले—एत्थ णं उत्तरकुराए कुराए जंबूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते।[2]

३२३. प्र०—हे भगवन्! उत्तरकुरा में जम्बूपीठ नामक पीठ कहाँ कहा गया है?

उ०—हे गौतम! नीलवंत वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, मंदर पर्वत से उत्तर में, मालवंत वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में, गंधमादन वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में शीता महानदी के पूर्वी किनारे पर उत्तरकुरा में जम्बूपीठ नामक पीठ कहा गया है।

---

१ जंबु० वक्ख० ४, सु० ८७

२ जम्बूपीठ से सम्बन्धित वर्णन आगमोदय समिति से प्रकाशित जीवाभिगम और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र में है—दोनों आगमों के वर्णनों में वाचना भेद से कहीं कहीं असमानता है।

जीवाभिगम सूत्र १५१ के मूलपाठ तथा टीका में—"जम्बूपीठ मन्दरपर्वत से उत्तरपूर्व में है"—ऐसा कहा है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति-सूत्र ९० के मूलपाठ तथा टीका में—"जम्बूपीठ मन्दरपर्वत से उत्तर में है"—ऐसा कहा है।

तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखें—दोनों आगमों के मूलपाठ और टीकापाठ।

मूलपाठ—प०—कहि णं भंते! उत्तरकुराए २ जंबुसुदंसणाए जंबुपेढे नामं पेढे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं......

टीकापाठ—कहि णं भंते! इत्यादि—क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरकुरुषु-जम्ब्वाहि द्वितीयं नाम सुदर्शनेति तत उक्तं सुदर्शनाया इति, जम्ब्वाः सम्बन्धि पीठं जम्बूपीठं नामपीठं प्रज्ञप्तं?

भगवानाह—गौतम! मन्दरस्य पर्वतस्य "उत्तरपूर्वेण" उत्तरपूर्वस्यां.... —जीवा० प्र० ३, सूत्र १५१

मूलपाठ—प०—कहि णं भंते! उत्तरकुराए २ जम्बूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! णीलवंतवासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, मंदरस्स उत्तरेणं........

टीकापाठ—क्वेत्यादि, क्व भदन्त! उत्तरकुरुषु जम्बूपीठं नाम पीठं प्रज्ञप्तं? निर्वचनसूत्रे गौतमेत्यामन्त्रणं गम्यं नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणेन, मन्दरस्य पर्वतस्योत्तरेण........ —जंबु० वक्ष० ४, सूत्र ९०

पंच जोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, पण्णरस एक्कासीयाइं जोयणसयाइं किंचि विसेसाहियाइं परिक्खेवेणं, बहुमज्झदेसभाए बारस जोयणाइं बाहल्लेणं तयाणंतरं च णं मायाए मायाए पदेसपरिहाणीए सव्वेसु णं चरिमपेरंतेसु दो दो गाउयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, सव्वजंबूणयामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

वह पांचसौ योजन का लम्बा-चौड़ा है, पन्द्रहसौ इक्यासी योजन से कुछ अधिक की उसकी परिधि है, मध्यभाग में वह बारह योजन का मोटा है। तदनन्तर थोड़े-थोड़े प्रदेश कम होते-होते सभी चरमान्तों में दो-दो गाउका मोटा कहा गया है। वह पूरा जम्बूनद स्वर्णमय है, स्वच्छ है—**यावत्**—प्रतिरूप है।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, दुण्हं पि वण्णओ।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है। दोनों के वर्णक भी यहाँ कहने चाहिए।

तस्स णं जंबूपेढस्स चउद्दिसिं एए चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ-जाव-तोरणाइं।

उस जम्बूपीठ के चारों दिशाओं में चार जगह तीन-तीन सुन्दर पगथिए कहे गये हैं इनका वर्णक—**यावत्**—तोरण पर्यन्त है।

तस्स णं जंबूपेढस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता, अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं मणिमई अच्छा-जाव-पडिरूवा।[1] —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९०

उस जम्बूपीठ के मध्यभाग में एक मोटी मणिपीठिका कही गई है। वह आठ योजन की लम्बी-चौड़ी है। चार योजन की मोटी है। मणिमय है, स्वच्छ है—**यावत्**—प्रतिरूप है।

जंबूसुदंसणाए अवट्ठिई पमाणं च—

जम्बूद्वीप के सुदर्शन वृक्ष की अवस्थिति और प्रमाण—

३२४. तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं महं जंबू सुदंसणा पण्णत्ता, अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धजोयणं उव्वेहेणं।

३२४. उस मणिपीठिका के ऊपर जम्बूद्वीप का (एक) महान् सुदर्शन वृक्ष कहा गया है, वह आठ योजन ऊपर की ओर ऊँचा है और आधा योजन भूमि में गहरा है।

तीसे णं खंधो दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं।

उसका स्कंध दो योजन ऊँचा है और आधा योजन मोटा है।

तीसे णं साला छ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणाइ आयाम-विक्खभेणं, साइरेगाइं अट्ठजोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता।

उसकी शाखा छह योजन ऊँची है, मध्यभाग में आठ योजन लम्बी-चौड़ी है, कुछ अधिक आठ योजन उसका पूर्ण प्रमाण है।

तीसे णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, वइरामयामूला, रययसुपइट्ठिय-विडिमा[2]-जाव-अहियमणणिव्वुइकरा पासाइया -जाव-पडिरूवा। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९०

उसका इस प्रकार वर्णन कहा गया है—वज्रमय इसके मूल हैं, इसकी रजतमय शाखायें सुप्रतिष्ठित हैं—**यावत्**—मन को चिन्ताओं को निवृत्त करने वाली हैं—**यावत्**—प्रतिरूप हैं।

जंबूए णं सुदंसणाए चउद्दिसिं चत्तारि साला पण्णत्ता, तं जहा—पुरत्थिमेणं, दक्खिणेणं, पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं।

जम्बु-सुदर्शन वृक्ष के चारों दिशाओं में चार शाखायें कही गई हैं, यथा—(१) पूर्व दिशा की शाखा, (२) दक्षिण दिशा की शाखा, (३) पश्चिमदिशा की शाखा, (४) उत्तरदिशा की शाखा।

तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले साले एत्थ णं भवणे पण्णत्ते, कोसं आयामेणं, एवमेव।

उनमें से पूर्व दिशा की शाखा पर एक भवन कहा गया है, वह एक कोश का लम्बा है, शेष इसी प्रकार है।

---

१ जीवा० प० ३, उ० २, सु० १५१।

२ वइरामयमूला, रययसुपइट्ठियविडिमा एवं चेइयरुक्ख-वण्णओ जाव सव्वो रिट्ठामयविउलकंदा, वेरुलियरुइरखंधा, सुजाय-वरजायरूवपढमगविसालसाला, नानामणि-रयणविविह साहप्पसाहवेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तबिंटा, जंबूणयरत्तमउयसुकुमालपवालपल्लवंकुरधरा, विचित्तमणि-रयणसुरहिकुसुमा। फलभारनमियसाला, सच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया अहियं मणो णिव्वुइकरा ....पासाइया जाव पडिरूवा। —जीवा० प० ३, उ० २, सु० १५१

णवरं—इत्थ सयणिज्जं, सेसेसु पासायवडेंसया सीहासणा य सपरिवारा इति[1]।

विशेष—यहाँ एक शय्या है, शेष शाखाओं पर प्रासादावतंसक हैं, और सिंहासन सपरिवार हैं।

तेसि णं सालाणं बहुमज्झदेसभाए। एत्थ णं एगे महं सिद्धाययणे पण्णत्ते। कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणगं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं। अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठे-जाव-दारा पंचधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं-जाव-वणमालाओ।

उन शाखाओं में मध्यभाग में एक महान् सिद्धायतन कहा गया है, वह एक कोश लम्बा है, आधा कोश चौड़ा है, कुछ कम एक कोश ऊपर की ओर ऊँचा है, अनेक शतस्तम्भों से युक्त है—यावत्—उसके द्वार पाँच सौ धनुष ऊँचे हैं—यावत्—उन पर वनमालायें हैं।

---

१ जंबूए णं सुदंसणाए चउद्दिसिं चत्तारि साला पण्णत्ता, तं जहा-पुरत्थिमेणं, दक्खिणेणं, पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं।
तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले साले—एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते।
एगं कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं। अणेगखंभसय० वण्णओ जाव भवणस्स दारं तं चेव पमाणं पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं विक्खंभेणं-जाव-वणमालाओ। भूमिभागा, उल्लोया, मणिपेढिया पंचधणुसतिया, देवसयणिज्जं भाणियव्वं।
तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले साले-एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए पण्णत्ते। कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं आयाम-विक्खंभेणं। अब्भुग्गयमूसिय० अंतो बहुसम० उल्लोता० तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं।
तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले साले-एत्थ णं पासायवडेंसए पण्णत्ते।
तं चेव पमाणं, सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं।
तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले साले-एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए........पण्णत्ते, तं चेव पमाणं, सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं।
—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १५२

आ० स० से प्रकाशित जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के पृष्ठ ३२०—पंक्ति १३ से पृष्ठ ३३१ के पूर्वभाग की पंक्ति १ से ५ पर्यन्त तथा आ० स० से प्रकाशित जीवाभिगम-पृष्ठ २९५ के पूर्वभाग की पंक्ति ३ से १५ पर्यन्त के मूलपाठ की तुलना करने पर जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के पाठ की अपेक्षा जीवाभिगम का पाठ संगत प्रतीत होता है।

आ० स० से प्रकाशित जम्बू० वृक्ष० ४ सूत्र ९० की वृत्ति में वृत्तिकार ने........'भवन एवं प्रासादावतंसक के प्रमाण के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत करते हुए जीवाभिगम में कथित प्रासाद एवं भवन के प्रमाण को सामान्य नियम से भिन्न माना है—

प्र०—"ननु भवनानि विषमायाम-विष्कम्भानि पद्मद्रहादिमूलपद्मभवनादिषु तथा दर्शनात्, प्रासादास्तु समायाम-विष्कम्भाः दीर्घवैताढ्य कूटगतेषु वृत्तवैताढ्यगतेषु विजयादि राजधानीगतेषु अन्येष्वपि विमानादिगतेषु च प्रासादेषु समचतुरस्रत्वेन समायाम-विष्कम्भत्वस्य सिद्धान्तसिद्धत्वात् तत्कथमत्र प्रासादानां भवनतुल्यप्रमाणता घटते ?

उ०—उच्यते—"ते पासाया कोसं समूसिआ, अद्धकोस-वित्थिण्णा" इत्यस्स पूज्यश्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणोपज्ञ-क्षेत्रविचार-गाथार्द्धस्यवृत्तौ।

"ते प्रासादाः क्रोशमेकं देशोनमितिशेषः समुच्छ्रिता—उच्चाः, क्रोशार्द्ध अर्द्धक्रोशं विस्तीर्णाः, परिपूर्णमेकं क्रोशं दीर्घाः" इतिश्री मलयगिरिपादाः।

तथा जम्बूद्वीपसमासप्रकरणे "प्राच्ये शाले भवनं, इतरेषु प्रासादाः, मध्ये सिद्धायतनं, सर्वाणि त्रिजगार्द्धमानानी" ति श्रीउमास्वातिवाचकपादाः।

तथा तपागच्छाधिराज पूज्यश्री सोमतिलकसूरिकृत-नव्यबृहत्क्षेत्रविचारसत्काया "पासाया सेसदिसासालासु वेअड्ढगिरिगयव्व तओ" इत्यस्या गाथाया अवचूर्णौ—"शेषासु तिसृषु शाखासु प्रत्येकमेकैकभावेन तत्र त्रयः प्रासादाः—आस्थानोचितानि मन्दिराणि देशोनं क्रोशमुच्चाः, क्रोशार्द्ध विस्तीर्णाः, पूर्णक्रोशं दीर्घाः" इति।

श्रीगुणरत्नसूरिपादाः यदाहु तदाशयेन प्रस्तुतोपाङ्गस्योत्तरत्र जम्बूपरिक्षेपक-वन-वापी-परिगत-प्रासाद-प्रमाण-सूत्रानुसारेण च इत्येवं निश्चिनुमो जम्बूप्रकरण-प्रासादा विषमायाम-विष्कम्भा इति। यत्त श्री जीवाभिगमसूत्रवृत्तौ—क्रोशमेकमूर्ध्व-मुच्चैस्त्वेन अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेनेत्युक्तं तद्गम्भीराशयं न विद्मः।

मणिपेढिया पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं।

तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं देवच्छंदए पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, साइरेगाइं पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं। जिण-पडिमा वण्णओ णेयव्वो त्ति।

जंबू णं सुदंसणा मूले बारसहिं पउमवरवेइयाहिं सव्वओ.... समंता संपरिक्खित्ता। वेइयाणं वण्णओ।

जंबू णं सुदंसणा अण्णेणं अट्ठसएणं जंबूणं तयद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। तासि णं वण्णओ।

ता ओ णं जंबू छहिं पउमवरवेइयाहिं संपरिक्खित्ता[1]।

जंबूए णं सुदंसणाए उत्तरपुरत्थिमेणं उत्तरेणं उत्तरपच्चत्थिमेणं,—एत्थ णं अणाढियस्स देवस्स चउण्हं सामाणिअ साहस्सीणं... चत्तारि जंबूसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

तीसे णं पुरत्थिमेणं चउण्हं अग्गमहिसीणं चत्तारि जंबूओ पण्णत्ताओ।

गाहाओ—दक्खिणपुरत्थिमे दक्खिणेण, तह अवरदक्खिणेणं च।
अट्ठ दस बारसेव य, भवंति जंबू सहस्साइं॥

अणिआहिवाणं पच्चत्थिमेण, सत्तेव होंति जंबूओ।
सोलससाहस्सीओ, चउद्दिसिं आयरक्खाणं[2]॥

जंबूए णं सुदंसणा तिहिं जोयणसएहिं वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता[3]।

जंबूए णं पुरत्थिमेणं पण्णासं जोयणाइं पढमं वणसंडं ओगाहित्ता एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते। कोसं आयामेणं सो चेव वण्णओ, सयणिज्जं च। ऐवं सेसासु वि दिसासु भवणा। —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९०

मणिपीठिका पाँच सौ धनुष की लम्बी-चौड़ी है ढाई सौ धनुष की मोटी है।

उस मणिपीठिका के ऊपर देवछंदक पाँच सौ धनुष लम्बा-चौड़ा है, कुछ अधिक पाँच सौ धनुष ऊपर की ओर ऊँचा है, यहाँ जिन प्रतिमाओं का वर्णन जानना चाहिए।

जम्बू-सुदर्शन वृक्ष का मूल बारह पद्मवरवेदिकाओं से चारों ओर से घिरा हुआ है, यहाँ वेदिकाओं का वर्णन कहना चाहिए।

जम्बू-सुदर्शन वृक्ष अन्य एक सौ आठ जम्बू वृक्षों से चारों ओर से घिरा हुआ है, वे उससे प्रमाण में आधे ऊँचे हैं, यहाँ उनका वर्णन करना चाहिए।

वे जम्बूवृक्ष छह पद्मवरवेदिकाओं से घिरे हुए हैं।

जम्बू-सुदर्शन वृक्ष के उत्तर-पूर्व में (ईशानकोण में) उत्तर में और उत्तर-पश्चिम में (वायव्यकोण में) अनाधृत देव के चार हजार सामानिक देवों के चार हजार जम्बूवृक्ष कहे गये हैं।

उसके पूर्व में चार अग्रमहिषियों के चार जम्बूवृक्ष कहे गये हैं।

गाथार्थ—दक्षिण-पूर्व में (आग्नेयकोण में) आठ हजार जम्बूवृक्ष हैं, दक्षिण में दस हजार जम्बू वृक्ष हैं और दक्षिण-पश्चिम में (नैऋत्य कोण में) बारह हजार जम्बू वृक्ष है।

जम्बू-सुदर्शनवृक्ष से पश्चिम में सात अनिकाधिपतियों (सेनापतियों) के सात जम्बूवृक्ष हैं और उसके चारों दिशाओं में सोलह हजार (प्रत्येक दिशा में चार हजार) जम्बूवृक्ष आत्मरक्षक देवों के हैं।

जम्बू-सुदर्शन वृक्ष सौ-सौ योजन के तीन वनखण्डों से चारों ओर से घिरा हुआ है।

जम्बू-सुदर्शन वृक्ष से पूर्व में प्रथम वनखण्ड में पचास योजन जाने पर एक महान् भवन कहा गया है, वह एक कोश का लम्बा है, भवन और शयनीय का वर्णन पूर्व के समान है, इस प्रकार शेष दिशाओं में भी भवन है।

---

१ जीवाभिगम के सूत्र १५२ में यह पंक्ति नहीं है। इसके स्थान पर निम्नांकित पाठ है—

ताओ णं जंबूओ चत्तारि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, कोसं चोव्वेधेणं, जोयणं खंधो, कोसं विक्खंभेणं, तिण्णि जोयणाइं विडिमा, बहुमज्झदेसभाए चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं, सातिरेगाइं चत्तारि जोयणाइं सव्वग्गेणं, वइरामयामूला। सो चेव चेतियरुक्खवण्णओ।

२ जीवा० प० ३, उ० २, सु० १५२ में ये गाथायें नहीं हैं।

३ तं जहा पढमेणं दोच्चेणं तच्चेणं....जीवा० प० ३, उ० २, सु० १५२ में इतना पाठ अधिक है।

जंबू-सुदंसणाए दुवालस णामाइं—

३२५. जंबूए णं सुदंसणाए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
गाहाओ—

१ सुदंसणा २ अमोहा य ३ सुप्पबुद्धा ४ जसोहरा।
५ विदेहजंबू ६ सोमणसा ७ णियआ ८ णिच्चमंडिया॥
९ सुभद्दा य १० विसाला य ११ सुजाया १२ सुमणाविआ।
सुदंसणाए जंबूए, णामधेज्जा दुवालस॥

३२६. जंबूए णं अट्ठट्ठमंगलगा[1].... —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९०

जंबू सुदंसणाए णामहेऊ—

३२७. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"जंबू-सुदंसणा, जंबू-सुदंसणा ?

उ०—गोयमा ! जंबूए णं सुदंसणाए अणाढिए णामं जंबुद्दीवाहिवई परिवसइ महिड्ढीए।

से णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं-जाव-आयरक्खदेवसाहस्सीणं—

जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स जंबूए सुदंसणाए अणाढियाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं देवाणं य देवीण य-जाव-विहरइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"जंबू-सुदंसणा, जंबू-सुदंसणा।"

अदुत्तरं च णं गोयमा ! जंबू-सुदंसणा-जाव-भुविं च भवइ य भविस्सइ य धुवा णिअआ सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिआ णिच्चा।[2] —जंबु० वक्ख० ४, सु० ९०

जम्बू-सुदर्शनवृक्ष के बारह नाम—

३२५. जम्बू-सुदर्शन वृक्ष के बारह नाम कहे गये हैं, यथा—
गाथार्थ—

(१) सुदर्शन, (२) अमोघ, (३) सुप्रबुद्ध, (४) यशोधर, (५) विदेहजम्बू, (६) सौमनस, (७) नियत, (८) नित्यमंडित, (९) सुभद्र, (१०) विशाल, (११) सुजात, (१२) सुमन। सुदर्शन जम्बू के ये बारह नाम हैं।

३२६. जम्बू-सुदर्शन वृक्ष पर आठ-आठ मंगल हैं।

जम्बू-सुदर्शन वृक्ष के नाम का हेतु—

३२७ प्र०—हे भगवन् ! जम्बू-सुदर्शन यह (नाम) क्यों कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! जम्बू-सुदर्शन वृक्ष पर जम्बूद्वीप का अधिपति अनाधृत नाम का महर्द्धिक देव रहता है।

वह चार हजार सामानिक देवों का—यावत्—(सोलह हजार) आत्मरक्षक देवों का—

—जम्बूद्वीप नामक द्वीप के जम्बू-सुदर्शनवृक्ष का, अनाधृता राजधानी का और अनेक देव-देवियों का—यावत्—आधिपत्य करता हुआ रहता है।

इसलिए हे गौतम ! यह जम्बू-सुदर्शन वृक्ष जंबू-सुदर्शन वृक्ष कहा जाता है।

अथवा हे गौतम ! यह जम्बू-सुदर्शन वृक्ष—यावत्—अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा, यह ध्रुव है, नित्य है, शास्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है एवं नित्य है।

---

१ जीवा० प० ३, उ० २, सु० १५२।

२ (क) प० - से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"जम्बू-सुदंसणा ?

उ०—गोयमा ! जम्बूए णं सुदंसणाए जम्बुद्दीवाहिवई अणाढिए णामं देवे महिड्ढीए—जाव—पलिओवमट्ठिईए परिवसइ।

से णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं—जाव—आयरक्खदेवसाहस्सीणं।

जम्बुद्दीवस्स णं दीवस्स जम्बूए सुदंसणाए अणाढियाए य रायहाणीए—जाव—विहरति।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! जम्बुद्दीवे दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे जम्बुरुक्खा जम्बुवणा जम्बूवणसंडा णिच्चं कुसुमिया—जाव—सिरीए अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"जम्बू-सुदंसणा, जम्बू-सुदंसणा"।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! जम्बुद्दीवस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जन्न कयावि णासि—जाव—णिच्चे।

—जीवा० प० ३, उ० २, सु० १५२

(ख) जम्बुद्दीव प्रज्ञप्ति में निगमन सूत्र एक है और जीवाभिगम में दो हैं।

जंबू-सुदंसणस्स चउसु विदिसासु चत्तारि चत्तारि णंदा पुक्खरिणीओ—

३२८. जंबूए णं सुदंसणाए उत्तर-पुरत्थिमेणं पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता—एत्थ णं चत्तारि पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) पउमा, (२) पउमप्पभा, (३) कुमुदा, (४) कुमुदप्पभा।

ताओ णं कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं पंचधणुसयाइं उव्वेहेणं,[1] वण्णओ।

तासि णं मज्झे पासायवडेंसगा पण्णत्ता।

कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं, वण्णओ, सीहासणा० सपरिवारा० एवं सेसासु विदिसासु।

गाहाओ—

१ पउमा २ पउमप्पभा चेव, ३ कुमुदा ४ कुमुदप्पहा।
१ उप्पलगुम्मा २ णलिणा, ३ उप्पला, ४ उप्पलुज्जला॥

१ भिंगा २ भिंगप्पणा चेव, ३ अंजणा ४ कज्जलप्पभा।
१ सिरिकंता २ सिरिमहिआ, ३ सिरिचंदा चेव सिरिनिलया॥[2]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९०

जम्बू-सुदर्शन वृक्ष के चारों विदिशाओं में चार-चार नंदा पुष्करिणियाँ—

३२८. जम्बू सुदर्शन वृक्ष से उत्तर-पूर्व में (ईशानकोण में) प्रथम वनखंड में पचास योजन जाने पर चार पुष्करिणियाँ कही गई हैं, यथा—(१) पद्मा, (२) पद्मप्रभा, (३) कुमुदा, (४) कुमुद प्रभा।

वे एक कोश की लम्बी हैं आधे कोश चौड़ी हैं, पाँच सौ धनुष गहरी हैं, यहाँ इनका वर्णन कहना चाहिए।

इनके मध्यभाग में प्रासादावतंसक कहे गये हैं।

वे (प्रासादा०) एक कोश के लम्बे हैं, आधे कोश के चौड़े हैं, कुछ कम एक कोश के ऊँचे हैं, यहाँ इनका वर्णक है, सिंहासन के चारों ओर उसके जैसे अन्य सिंहासन भी अनेक है, इसी प्रकार शेष विदिशाओं में भी प्रासादावतंसक हैं।

गाथार्थ—

(१) पद्मा, (२) पद्मप्रभा, (३) कुमुदा, (४) कुमुदप्रभा।
(१) उत्पलगुल्मा, (२) नलिना, (३) उत्पला, (४) उत्पलुज्ज्वला।

(१) भृंगा, (२) भृंगप्रभा, (३) अंजना, (४) कज्जलप्रभा।
(१) श्रीकंता, (२) श्रीमहिता, (३) श्रीचन्दा, (४) श्रीनिलया।

जंबू-सुदंसणस्स चउण्हं दिसा-विदिसाणं मज्झभागे अट्ठ कूडा—

३२९. जंबूए णं सुदंसणाए पुरित्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं उत्तर-पुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स दक्खिणेणं—एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते।

अट्ठ जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, दो जोयणाइं उव्वेहेणं, मूले अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, वहुमज्झदेसभाए छ जोय-

जम्बू-सुदर्शन वृक्ष के चार दिशा-विदिशाओं के मध्यभाग में आठ कूट—

३२९. जम्बू-सुदर्शन वृक्ष से पूर्वी भवन के उत्तर में और उत्तर-पूर्वी प्रासादावतंसक के दक्षिण में एक महान् कूट कहा गया है।

वह आठ योजन ऊपर की ओर ऊँचा है, दो योजन भूमि में गहरा है, मूल में आठ योजन लम्बा-चौड़ा है, मध्य में छः योजन

---

१ ....अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णिप्पंकाओ....णीरयाओ—जाव—पडिरूवाओ, वण्णओ भाणियव्वो—जाव—तोरणत्ति, —जीवा० प० ३, उ० २. सु० १५२ में इतना पाठ अधिक है।

२ एवं दक्खिण-पुरत्थिमेणवि पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) उप्पलगुम्मा, (२) नलिना, (३) उप्पला, (४) उप्पलुज्जला, तं चेव पमाणं, तहेव पासायवडेंसगो, तप्पमाणो।
एवं दक्खिण-पच्चत्थिमेण वि पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(१) भिंगा, (२) भिंगणिभा, (३) अंजणा, (४) कज्जलप्पभा, तं चेव पमाणं, तहेव पासायवडेंसगो तप्पमाणो।
जम्बूए णं सुदंसणाए उत्तर-पच्चत्थिमे पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता-एत्थ णं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ तं जहा—(१) सिरिकंता, (२) सिरिमहिता, (३) सिरिचंदा चेव तहय, (४) सिरिणिलया, तं चेव पमाणं तहेव पासायवडेंसगो तप्पमाणो। —जीवा० प० ३, उ० २, सु० १५२

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति का पाठ अति संक्षिप्त है और यह पाठ विस्तृत है।

णाइं आयाम-विक्खंभेणं उवरिं चत्तारि जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं।

गाहा—पणवीसऽट्ठारस बारसेव, मूले अ मज्झि उवरिं च।
सविसेसाइं परिरओ, कूडस्स इमस्स बोद्धव्वो॥

मूले विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उवरिं तणुए, सव्वकणगामए अच्छे-जाव-पडिरूवे। वेइया वणसंडवण्णओ, एवं सेसा वि कूडा इति।[1] —जंबु वक्ख० ४, सु० ९०

लम्बा-चौड़ा है, ऊपर चार योजन लम्बा-चौड़ा है।

गाथार्थ—इस कूट की मूल में कुछ अधिक पच्चीस योजन की परिधि है, मध्य में अट्ठारह योजन की परिधि है और ऊपर बारह योजन की परिधि जाननी चाहिए।

यह कूट मूल में विस्तृत है, मध्य में संक्षिप्त हैं, ऊपर पतला है, सम्पूर्ण स्वर्णमय है, स्वच्छ है—**यावत्**—प्रतिरूप है, यहाँ वेदिका और वनखण्ड का वर्णक है, इसी प्रकार शेष कूट है।

---

१ (१) जम्बूए णं सुदंसणाए पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं उत्तर-पुरत्थिमेणं पासायवडेंसगस्स दाहिणेणं-एत्थणं एगे महं कूडे पण्णत्ते।

अट्ठजोयणाइं उद्धं उच्चत्तणं, मूले बारसजोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, मज्झे अट्ठजोयणाइं आयाम-विक्खभेणं, उवरिं चत्तारि जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं।

मूले सातिरेगाइं सत्तत्तीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं, मज्झे सातिरेगाइं पणुवीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं, उवरिं सातिरेगाइं बारस जोयणाइं परिक्खेवेणं।

मूले विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते, उप्पि तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्व जम्बूणयामए अच्छे—**जाव**—पडिरूवे।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते **दोण्हवि वण्णओ**।

तस्स णं कूडस्स उवरि बहुसमरमणिज्जे भूमि भागे **पण्णत्ते—जाव—**आसयंति।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमि भागस्स बहुमज्झदेसभाए एगं सिद्धायतणं कोसप्पमाणं **सव्वा सिद्धायतणवत्तव्वया**।

(२) जम्बूए णं सुदंसणाए पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स दाहिणेणं दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं-एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, **तं चेव पमाणं सिद्धायतणं च**।

(३) जम्बूए णं सुदंसणाए दाहिणिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं, दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं-एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, **तं चेव पमाणं सिद्धायतणं च**।

(४) जम्बूए णं सुदंसणाए दाहिणिल्लस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं दाहिण-पच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेणं-एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, **ते चेव पमाणं सिद्धायतणं च**।

(५) जम्बूए णं सुदंसणाए पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स दाहिणेणं दाहिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं-एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, **तं चेव पमाणं सिद्धायतणं च**।

(६) जम्बूए णं सुदंसणाए पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं उत्तरपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स दाहिणेणं-एत्थं णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, **तं चेव पमाणं सिद्धायतणं च**।

(७) जम्बूए णं सुदंसणाए उत्तरिल्लस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेणं-एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, तं **चेव पमाणं सिद्धायतणं च**।

(८) जम्बूए णं सुदंसणाए उत्तरिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं-एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, तं **चेव पमाणं तहेव सिद्धायतणं**।

जम्बू णं सुदंसणा अण्णेहिं बहूहिं तिलएहिं लउएहिं—**जाव**—एयरुक्खेहिं हिंगुरुक्खेहिं—**जाव**—सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता।

जम्बूए णं सुदंसणाए उवरिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, तंजहा—**गाहा**—सोत्थिय-सिरिवच्छ....

किण्हा चामरज्झया—**जाव**—छत्तातिछत्ता। —जीवा प० ३, उ० २, सु १५२

आ० स० से प्रकाशित जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के वक्ष० ४, सूत्र ९० में जम्बू-सुदर्शन वृक्ष से पूर्वी भवन के उत्तर में एवं उत्तर-पूर्वी प्रासादावतंसक के दक्षिण में स्थितकूट के मूल की परिधि पच्चीस योजन की कही है और मध्यभाग की परिधि अठारह योजन कही है, किन्तु जीवा० प्र० ३, उ० २, सुत्र १५२ में उक्त कूट के मूल की परिधि सेंतीस योजन से कुछ अधिक की कही है और मध्यभाग की परिधि पच्चीस योजन की कही है—इस प्रकार दोनों उपांगों में कूट के मूल एवं मध्य भाग की परिधि के प्रमाण में अन्तर है।

अणाढिआ रायहाणीए अवट्ठिई पमाणं च—

३३०. प०—कहि णं भंते ! अणाढिअस्स देवस्स अणाढिआ णामं रायहाणी पण्णत्ता ?[1]

उ०—गोयमा ! जम्बुद्दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं जं चेव पुव्ववण्णिअं जमिगा-पमाणं तं चेव णेयव्वं-जाव-उववाओ अभिसेसो अनिरवसेसोत्ति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ६०

अनाधृता राजधानी की अवस्थिति और प्रमाण—

३३०. प्र—हे भगवन् ! अनाधृत देव की अनाधृता नाम की राजधानी कहां कही गई है ?

उ०—हे गौतम ! जम्बूद्वीप में मंदर पर्वत के उत्तर में—पूर्व वर्णित जमिका राजधानी के प्रमाण के समान अनाधृता राजधानी का प्रमाण जानना चाहिए—यावत्—अनाधृत देव का उपपात, अभिषेक आदि का सम्पूर्ण वर्णन यहाँ कहना चाहिए।

दाहिणिल्ल-सीआमुहवणस्स अवट्ठिई पमाणं च—

३३१. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सीआए महाणईए दाहिणिल्ले सीआमुहवणे णामं वणे पण्णत्ते ?

उ०—एवं जह चेव उत्तरिल्लं सीआमुहवणं तह चेव दाहिणं पि...भाणियव्वं।

णवरं—णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, सीआए महाणईए दाहिणेणं, पुरत्थिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, वच्छस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं-एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सीआए महाणईए दाहिणिल्ले, सीयामुहवणे णामं वणे पण्णत्ते।

उत्तर-दाहिणायए—तहेव सव्वं।

णवरं—णिसहवासहरपव्वयंतेणं एगमेगूणवीसइभागं जोयणस्स विक्खंभेणं।

किण्हे किण्होभासे-जाव-महया गंधद्धाणिं मुअंते-जाव-आसयंति।

उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं वणसंडेहिं सपरिक्खित्ते। इति दुण्ह वि वण्णओ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ९६

दक्षिणी शीतामुखवन की अवस्थिति और प्रमाण—

३३१. हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में शीता महानदी के दक्षिण में शीता मुखवन नामक वन कहाँ कहा गया है ?

उ०—पूर्वोक्त उत्तर के शीतामुख वन के समान दक्षिण के शीतामुख वन का भी वर्णन कहना चाहिए।

विशेष—निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, शीता महानदी से दक्षिण में, पूर्व लवणसमुद्र से पश्चिम में और वत्सविजय से पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह वर्ष में दक्षिणी शीतामुख वन नामक वन कहा गया है।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा है—सब उसी प्रकार है।

विशेष—निषध वर्षधर पर्वत के समीप इसकी चौड़ाई एक योजन के १९ भाग में से एक भाग जितनी है।

यह कृष्ण-श्याम है कृष्णावभास-श्याम जैसा है—यावत्—यह अत्यधिक गन्ध छोड़ता है—यावत्—वहाँ देवता बैठते हैं।

यह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं और दो वनखंडों से घिरा हुआ है। यहाँ दोनों (पद्मवरवेदिकाओं) का वर्णन कहना चाहिए)।

उत्तरिल्लसीआमुहवणस्स अवट्ठिई पमाणं य—

३३२. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सीआए महाणईए उत्तरिल्ले सीआमुहवणे णाम वणे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं पुरत्थिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पुक्खलावइ-चक्कवट्टिविजयस्स पुरत्थिमेणं-एत्थ णं सीआमुहवणे णामं वणे पण्णत्ते।

उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिण्णे, सोलस जोयणसहस्साइं पंच य बाणउए जोअणसए दोण्णि अ

उत्तरी शीतामुख वन की अवस्थिति और प्रमाण—

३३२. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में शीता महानदी के उत्तर में शीतामुख वन नामक वन कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, शीता महानदी से उत्तर में पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में तथा पुष्कलावती चक्रवर्ती विजय से पूर्व में शीतामुख वन नाम का वन कहा गया है।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा और पूर्व-पश्चिम में चौड़ा है, सोलह हजार पांच सौ बानवे [१६५९२] योजन तथा दो योजन

---

१ प० कहि णं भंते ! अणाढियस्स—जाव—समत्ता वत्तव्वया रायहाणीए महिड्ढीए। —जीवा प० ३, उ० २, सु० १५२

एगूणवीसइभाए जोयणस्स आयामेणं। सीआए महाणईए अंतेणं दो जोयणसहस्साइं नव य बावीसे जोयणसए विक्खंभेणं। तयणंतरं च णं मायाए मायाए परिहायमाणे परिहायमाणे णीलवंतवासहरपव्वयंतेणं एगं एगूणवीसइभागं जोअणस्स विक्खंभेणंति।

के उन्नीसवें भाग जितना लम्बा है, तथा शीता महानदी के समीप दो हजार नो सौ बावीस [२६२२] योजन जितना चौड़ा है, तदनन्तर क्रमशः कम होता होता नीलवन्तवर्षधर पर्वत के समीप एक योजन के उन्नीसवें भाग जितना चौड़ा रह गया है।

सेणं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं संपरिक्खित्तं। वण्णओ। सीआमुहवणस्स-जाव-देवा आसयंति। एवं उत्तरिल्लं....पासं समत्तं।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ६५

वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड से घिरा हुआ है, यहाँ वनखण्ड का वर्णन कहना चाहिए, वन का—यावत्—देवताओं के बैठने तक का वर्णन यहाँ कह लेना चाहिए, इस प्रकार उत्तर का विभाग समाप्त हुआ।

जंबुद्दीवे सव्वपव्वयसंखा—

जम्बूद्वीप में सभी पर्वत की संख्या—

३३३. प०—१—जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे केवइया वासहरा पव्वया पण्णत्ता?

२—केवइया मंदरा पव्वया पण्णत्ता?

३—केवइया चित्तकूडा?

४—केवइया विचित्तकूडा?

५—केवइया जमगपव्वया?

६—केवइया कंचणगपव्वया?

७—केवइया वक्खारा?

८—केवइया दीहवेयड्ढा?

९—केवइया वट्टवेयड्ढा पण्णत्ता?

उ०—१—गोयमा! जंबुद्दीवेदीवे छवासहर पव्वया पण्णत्ता[1]।

२—एगे मंदरे पव्वए[2]।

३३३. प्र०—(१) हे भगवन्! जम्बूद्वीप में द्वीप में वर्षधर पर्वत कितने कहे गये हैं?

(२) मंदर पर्वत कितने कहे गये हैं?

(३) चित्रकूट कितने कहे गये हैं?

(४) विचित्रकूट कितने कहे गये हैं?

(५) यमक पर्वत कितने कहे गये हैं?

(६) काञ्चनक पर्वत कितने कहे गये हैं?

(७) वक्षस्कार पर्वत कितने कहे गये हैं?

(८) दीर्घ वैताढ्य पर्वत कितने कहे गये हैं?

(९) वृत्त वैताढ्य कितने कहे गये हैं?

उ०—(१) हे गौतम! जम्बूद्वीप में छ वर्षधर पर्वत कहे गये हैं।

(२) एक मंदर पर्वत।

---

१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के इस सूत्र में वर्षधर पर्वत छह कहे गये हैं किन्तु स्थानांग ७, सूत्र ५५५ में तथा समवायांग ७, सूत्र ४ में वर्षधर पर्वत सात कहे गये हैं, इन दो विभिन्न मान्यताओं का सापेक्ष स्पष्टीकरण आवश्यक है।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के संकलनकर्ता ने मन्दरपर्वत को वर्षधर पर्वत क्यों नहीं माना? और स्थानांग-समवायांग के संकलनकर्ता ने मन्दर पर्वत को वर्षधर पर्वत क्यों माना? ये प्रश्न उपेक्षणीय नहीं है।

तीनों आगमों के व्याख्याकार ऊपर लिखे प्रश्नों के सम्बन्ध में सर्वथा मौन हैं, तुलनात्मक अध्ययन के लिए स्थानांग-समवायांग के सूत्र क्रमशः यहाँ दिये गये हैं।

(क) जम्बुद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—(१) चुल्लहिमवंते, (२) महाहिमवंते, (३) निसढे, (४) नीलवंते, (५) रुप्पी, (६) सिहरी, (७) मंदरे। —स्थानांग ७, सु० ५५५

(ख) इहेव जम्बुद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—(१) चुल्लहिमवंते, (२) महाहिमवंते, (३) निसढे, (४) नीलवंते, (५) रुप्पी, (६) सिहरी, (७) मंदरे। —सम० ७, सु० ४

(ग) षट् वर्षधराः क्षुल्ल हिमवदादयः—

छह वर्षधर पर्वतों के नाम—

गाहा—हिमवंत-महाहिमवंतपव्वया निसढ-नीलवंता य।
रुप्पी सिहरी एए, वासहरगिरि मुणेयव्वा॥ —बृह० क्षेत्र० भाग १ गाथा २४

२ एक मंदर पर्वत (मेरु पर्वत) महाविदेह क्षेत्र में है।

३ एगे चित्तकूडे[1]।
४ एगे विचित्तकूडे।
५ दो जमगपव्वया[2]।
६ दो कंचणगपव्वयसया[3]।
७ वीसं वक्खारपव्वया[4]।
८ चोत्तीसं दीहवेयड्ढा[5]।
९ चत्तारि वट्टवेयड्ढा[6] पण्णत्ता।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे दुण्णि अउणत्तरा पव्वयसया भवंतीतिमक्खायंति।

—जम्बु० वक्ख० १, सु० १२५

(३) एक चित्रकूट।
(४) एक विचित्रकूट।
(५) दो यमक पर्वत।
(६) दो सौ कांचनक पर्वत।
(७) बीस वक्षस्कार पर्वत।
(८) चोतीस दीर्घवैताढ्य।
(९) चार वृत्त वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं।

इस प्रकार जम्बूद्वीप में पूर्व-पश्चिम के सब मिलाकर दो सौ उनहत्तर (२६९) पर्वत होते हैं—ऐसा कहा है।

छ वासहरपव्वया—

३३४. प०—जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे केवइया वासहरपव्वया पण्णत्ता?

उ०—गोयमा! जंबुद्दीवे छ वासहरपव्वया पण्णत्ता। तं जहा—

१ चुल्लहिमवंते, २ महाहिमवंते, ३ णिसढे, ४ नीलवंते, ५ रुप्पी, ६ सिहरी[7]।

—जंबु० वक्ख० ६, सु० १२५

वर्षधर पर्वत छ हैं—

३३४. प्र०—हे भगवन्! जम्बूद्वीप में वर्षधर पर्वत कितने कहे गये हैं?

उ०—हे गौतम! जम्बूद्वीप में छ वर्षधर पर्वत कहे गये हैं, यथा—

(१) क्षुद्रहिमवान्, (२) महाहिमवान्, (३) निषध, (४) नीलवंत, (५) रुक्मी, (६) शिखरी।

३३५. जंबुद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—

१ चुल्लहिमवंते, २ महाहिमवंते, ३ णिसढे, ४ नीलवंते, ५ रुप्पी, ६ सिहरी, ७ मंदरे[8]। —ठाणं ७, सु० ५५५

३३५. जम्बूद्वीप द्वीप में सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं, यथा—

(१) क्षुद्रहिमवान्, (२) महाहिमवान्, (३) निषध, (४) नीलवंत (५) रुक्मी, (६) शिखरी, (७) मंदर।

---

१ "एकश्चित्रकूटः, एकश्चविचित्रकूटः एतौ च यमलजातकाविव द्वौगिरी देवकुरुवर्तिनौ।"

२ "द्वौ यमकपर्वतौ तथैवोत्तरकुरुवर्तिनौ।"

३ "द्वे काञ्चनकपर्वतशते देवकुरूत्तरवर्तिह्लददशकोभयकूलयोः प्रत्येकं दशदश काञ्चनकसद्भावात्"

"देवकुरु में ५ द्रह हैं और उत्तरकुरु में ५ द्रह हैं इन दस द्रहों में के प्रत्येक द्रह से पूर्व में दस योजन जाने के बाद दस-दस काञ्चनक पर्वत हैं इसी प्रकार पश्चिम में भी दस योजन जाने के बाद दस-दस काञ्चनक पर्वत है—ये सब दो सौ काञ्चनक पर्वत जम्बूद्वीप में हैं।

४ "तथा विंशतिर्वक्षस्कारपर्वताः, तत्र गजदन्ताकारा गन्धमादनादयश्चत्वारः, तथा चतुःप्रकारमहाविदेहे प्रत्येकं चतुष्क चतुष्कसद्भावात् षोडश चित्रकूटादयः सरलाः, द्वयेऽपि मिलिता यथोक्त सङ्ख्याकाः।"

बीस वक्षस्कार पर्वत महाविदेह में हैं।

आठ पूर्व महाविदेह में आठ पश्चिममहाविदेह में और चार गजदन्ताकार पर्वत, ये बीस वक्षस्कार पर्वत हैं।

५ "चतुस्त्रिंशद्दीर्घवैताढ्याः द्वात्रिंशद्विजयेषु भरतैरावतयोश्च प्रत्येकमेकैकभावात्।"

६ "चत्वारो वृत्तवैताढ्याः हैमवतादिषु चतुर्षु वर्षेषु एकैकभावात्।" —जंबू० वृत्ति०

७ जम्बुमंदरस्स दाहिणेण तओ वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—

(१) चुल्लहिमवंते, (२) महाहिमवंते, (३) णिसढे।

जम्बुमंदरस्स उत्तरेण तओ वासहरपव्वया पण्णत्ता; तं जहा—

(१) नीलवंते, (२) रुप्पी, (३) सिहरी। —ठाणं ३, उ० ४, सु० १९९

८ सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—

(१) चुल्लहिमवंते, (२) महाहिमवंते, (३) णिसढे, (४) नीलवंते, (५) रुप्पी, (६) सिहरी, (७) मंदरे। —सम० ७, सु० ६

(१) चुल्लहिमवंत वासहरपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं च-

३३६. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंते णामं वासहरपव्वए[1] पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! हेमवयस्स वासस्स दाहिणेणं, भरहस्स वासस्स उत्तरेणं, पुरत्थिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिम-लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं। एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते।

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविथिण्णे।

दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे—

पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे।

पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे।

एगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं, पणवीसं जोयणाइं उव्वेहेणं।[2]

एगं जोयणसहस्सं बावण्णं च जोयणाइं दुवालस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स विक्खंभेणं ति।

तस्स वाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं पंच जोयणसहस्साइं तिण्णि अ पण्णासे जोयणसए पण्णरस य एगूणवीसइ भाए जोयस्स अद्धभागं च आयामेणं।

तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडिणायया-जाव-पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा। चउव्वीसं जोयणसहस्साइं णव य बत्तीसे जोयणसए अद्धभागं च किंचि विसेसूणा आयामेणं पण्णत्ता[3]

तीसे धणुपट्ठे दाहिणेणं पणवीसं जोयणसहस्साइं दोण्णि अ तीसे जोयणसए चत्तारि अ एगूणवीसइभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

रुअगसंठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे सण्हे-जाव-पडिरूवे।

(१) क्षुद्रहिमवान् वर्षधरपर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

३३६. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में क्षुद्रहिमवान् नाम का वर्षधरपर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! हैमवत क्षेत्र के दक्षिण में, भरत क्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप द्वीप में क्षुद्रहिमवान् नाम का वर्षधर पर्वत कहा गया है।

यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा है, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है।

दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है।

पूर्वी कोण से पूर्वी लवणसमुद्र स्पृष्ट है।

पश्चिमी कोण से पश्चिमी लवणसमुद्र स्पृष्ट है।

यह एक सौ योजन ऊँचा है, पच्चीस योजन भूमि में गहरा है।

एक हजार बावन योजन और बारह योजन के उन्नीसवें भाग जितना चौड़ा है।

उसकी बाहु पूर्व तथा पश्चिम में पाँच हजार तीन सौ पचास योजन और पन्द्रह योजन के उन्नीसवें भाग एवं एक योजन के दो भाग जितनी लम्बी है।

उसकी जीवा उत्तर में है—पूर्व तथा पश्चिम में लम्बी है—यावत्—पश्चिमी कोण से पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पर्शित है, चौबीस हजार नौ सौ बत्तीस योजन तथा एक योजन के दो भाग से कुछ कम लम्बी कही गई है।

उसका धनुपृष्ठ दक्षिण में है, उसकी परिधि पच्चीस हजार दो सौ तीस योजन तथा चार योजन के उन्नीसवें भाग जितनी कही गई है।

यह रुचक (एक आभूषण विशेष) के आकार से स्थित है, सारा पर्वत स्वर्णमय है, स्वच्छ है श्लक्ष्ण=चिकना है—यावत्—प्रतिरूप है।

---

१ वर्षे—उभयपार्श्वस्थिते द्वे क्षेत्रे धरतीति वर्षधरः क्षेत्रद्वयसीमाकारी गिरिरित्यर्थः। —जम्बू० वृत्ति

२ सव्वे वि णं चुल्लहिमवंत-सिहरि वासहरपव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगमेगं गाउसयं उव्वेहेणं पण्णत्ता। —सम० १०० सु० ६

३ चुल्लहिमवंत-सिहरीणं वासहरपव्वयाणं जीवाओ चउव्वीसं चउव्वीसं जोयणसहस्साइं णवय बत्तीसे जोयणसए अट्ठतीसइभागं जोयणस्स किंचि विसेसाहिआओ आयामेणं पण्णता। —सम० २४, सु० २

उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि य वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते। दुण्हवि पमाण[1] वण्णओ त्ति।

यह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो वनखण्डों से घिरा हुआ है, यहाँ दोनों पद्मवरवेदिकाओं तथा दोनों वनखण्डों का प्रमाण और वर्णन कहना चाहिए।

चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा-जाव-बहवे........वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति-जाव-विहरति।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७२

क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर अतिसम रमणीय भूभाग कहा गया है, वह भूभाग चर्म से मंढे हुए मृदंग के तल जैसा सम है—यावत्—वहाँ अनेक वाणव्यन्तर देव-देवियाँ बैठते हैं—यावत्—विचरते हैं....

चुल्लहिमवंत वासहरपव्वयस्स णामहेऊ—

क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत के नाम का हेतु—

३३७. प०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—"चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए, चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए?

उ०—गोयमा! चुल्लहिमवंतेणं वासहरपव्वए महाहिमवंत-वासहरपव्वयं पणिहाय आयामुच्चत्तुव्वेह-विक्खंभ-परिक्खेवं पडुच्च ईसिं खुड्डतराए चेव, हस्सतराए चेव, णीअतराए चेव।

चुल्लहिमवंते अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए... परिवसइ।

से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—"चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए, चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए।

अदुत्तरं च णं गोयमा! चुल्लहिमवंतस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते। जं न कयाइ णासि-जाव-णिच्चे।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७५

३३७. प्र०—हे भगवन्! क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत, क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है?

उ०—हे गौतम! क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत महाहिमवान् वर्षधर पर्वत की अपेक्षा लम्बाई-ऊँचाई, भूमि में गहराई चौड़ाई और परिधि में कुछ कम है, लघु है, नीचा है।

क्षुद्र हिमवान् नाम का पल्योपम की स्थिति वाला महर्द्धिक देव—यावत्—वहाँ रहता है।

हे गौतम! इस कारण से क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत कहा जाता है।

अथवा हे गौतम! क्षुद्र हिमवान् यह नाम शाश्वत कहा गया है, जो कभी नहीं था—ऐसा नहीं है—यावत्—नित्य है....

(२) महाहिमवंत वासहरपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

(२) महाहिमवान् वर्षधर पर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

३३८. प०—कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे महाहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! हरिवासस्स दाहिणेणं, हेमवयस्स वासस्स उत्तरेणं, पुरत्थिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिम-लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं....जंबुद्दीवे दीवे महाहिमवंते णाम वासहरपव्वए पण्णत्ते।

पाईण-पडिणायए, उदीण-दाहिणविच्छिण्णे। पलिअंक-संठाणसंठिए—

दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे।

३३८. प्र०—हे भगवन्! जम्बूद्वीप द्वीप में महाहिमवान् नाम का वर्षधर पर्वत कहाँ कहा गया है?

उ०—हे गौतम! हरिवर्ष से दक्षिण में, हैमवत क्षेत्र से उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में जम्बूद्वीप द्वीप में महाहिमवान् नाम का वर्षधर पर्वत कहा गया है।

यह पूर्व तथा पश्चिम में लम्बा है, उत्तर तथा दक्षिण में विस्तृत है, पल्यंक के आकार से स्थित है।

दोनों ओर लवणसमुद्र से स्पर्शित है।

---

१ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं दो वासहरपव्वया बहुसमतुल्ला—जाव—परिणाहेणं, तं जहा—(१) चुल्लहिमवंते चेव, (२) सिहरी चेव।

एवं (१) महाहिमवंते चेव, (२) रुप्पि चेव।

एवं (१) निसढे चेव, (२) नीलवंते चेव।

—ठाणं २, उ० ३, सु० ८७

पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे।

पूर्वी कोण से पूर्वी लवणसमुद्र स्पर्शित है।

पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे।

पश्चिमी कोण से पश्चिमी लवणसमुद्र स्पर्शित है।

दो जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पण्णासं जोयणाइं उव्वेहेणं[1],... चत्तारि जोयणसहस्साइं दोण्णि अ दसुत्तरे जोयणसए दस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स विक्खंभेणं।

यह दो सौ योजन ऊँचा है, पचास योजन भूमि में गहरा है, चार हजार दो सौ दस योजन तथा दस योजन के उन्नीसवें भाग जितना चौड़ा है।

तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, णव जोयणसहस्साइं दोण्णि अ छावत्तरे जोयणसए णव य एगूणविसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं।

उसकी बाहु पूर्व तथा पश्चिम में नौ हजार दो सौ छिहत्तर योजन तथा नौ योजन के उन्नीसवें भाग एवं एक योजन के दो भाग जितनी लम्बी है।

तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया।

उसकी जीवा उत्तर में है, पूर्व तथा पश्चिम में लम्बी है।

दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा।

दोनों ओर लवणसमुद्र से स्पर्शित है।

पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा।

पूर्वी कोण से पूर्वी लवणसमुद्र स्पर्शित है।

पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा।

पश्चिमी कोण से पश्चिमी लवणसमुद्र स्पर्शित है।

तेवण्णं जोयणसहस्साइं णव य एगतीसे जोयणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोयणस्स किंचि विसेसाहिए आयामेणं।[2]

त्रेपन हजार नौ सौ इकतीस योजन तथा छ योजन के उन्नीसवें भाग से कुछ अधिक लम्बी है।

तस्स धणुं दाहिणेणं सत्तावण्णं जोयणसहस्साइं दोण्णि अ तेणउए जोयणसए दस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं।[3]

उसका धनुपृष्ठ दक्षिण में है, उसकी परिधि सत्तावन हजार दो सौ तिरानवें योजन तथा दस योजन के उन्नीसवें भाग जितनी है।

रुअगसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

वह रुचक (एक आभूपण विशेष) के आकार से स्थित है, सारा पर्वत रत्नमय है स्वच्छ है—**यावत्**—प्रतिरूप है।

उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं, दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते।

वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों से घिरा हुआ है।

महाहिमवंतस्स णं वासहरपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,-जाव-णाणाविह पंचवण्णेहिं मणीहिं तिणेहि य उवसोभिए-जाव-आसयंति सयंति य।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ७९

महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर अतिसम रमणीय भूभाग कहा गया है—**यावत्**—नाना प्रकार की पाँच वर्ण की मणियों से तृणों से सुशोभित है—**यावत्**—अनेक वाणव्यन्तर देव-देवियाँ—**यावत्**—वहाँ पर बैठते हैं; सोते हैं....

---

१ सव्वेवि णं महाहिमवंत-रुप्पीवासहरपव्वया दो-दो जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, दो-दो गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।
—सम० १०२, सु० २

२ महाहिमवंत-रुप्पीणं वासहरपव्वयाणं जीवाओ तेवण्णं तेवण्णं जोयणसहस्साइं नव य एक्कतीसे जोयणसए छच्च एकूणविसइ भाए जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ।
—सम० ५३, सु० २

३ महाहिमवन्त-रुप्पीणं वासहरपव्वयाणं जीवाणं धणुपट्ठा सत्तावण्णं सत्तावण्णं जोयणसहस्साइं दोण्णि अ तेणउए जोयणसए दस य एकूणवीसइभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ता।
—सम० ५७, सु० ५

महाहिमवंतवासहरपव्वयस्स णामहेऊ—

३३९. प०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ—"महाहिमवंते वासहरपव्वए, महाहिमवंते वासहरपव्वए ?"

उ०—गोयमा ! महाहिमवंतेणं वासहरपव्वए चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं पणिहाय आयामुच्चत्तुव्वेह-विक्खंभ-परिक्खेवेणं महंततराए चेव, दीहतराए चेव।

महाहिमवंते अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवम-ट्ठिइए परिवसइ।[1] —जंबु० वक्ख० ४, सु० ८१

महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के नाम का हेतु—

३३९. प्र०—हे भगवन् ! महाहिमवान् वर्षधर पर्वत, महाहिमवान् वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! महाहिमवान् वर्षधर पर्वत क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत की अपेक्षा लम्बाई ऊँचाई भूमि में गहराई चौड़ाई परिधि में बड़ा है, लम्बा है।

महाहिमवान् नाम का पल्योपम की स्थिति वाला महर्द्धिक देव—यावत्—वहाँ रहता है।

(३) णिसहवासहरपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

३४०. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे णिसहे णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! महाविदेहस्स वासस्स दक्खिणेणं, हरिवासस्स उत्तरेणं, पुरत्थिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिम-लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे णिसहे णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते।

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणवित्थिण्णे।

दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे।

पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे।

पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे।

चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं[2] सोलसजोयणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोयणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोयणस्स विक्खंभेणं।

तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं वीसं जोअणसहस्साइं एगं च पणसट्ठं जोअणसयं दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं।

(३) निषध वर्षधर पर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

३४०. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में निषध नाम का वर्षधर पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र से दक्षिण में, हरिवर्ष क्षेत्र से उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में—जम्बूद्वीप द्वीप में निषध नाम का वर्षधर पर्वत कहा गया है।

यह पूर्व तथा पश्चिम में लम्बा है, उत्तर तथा दक्षिण में विस्तृत है।

दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पर्शित है।

पूर्वी कोण से पूर्वी लवणसमुद्र स्पर्शित है।

पश्चिमी कोण से पश्चिमी लवणसमुद्र स्पर्शित है।

यह चार सौ योजन ऊँचा है, चार सौ गाउ भूमि में गहरा है, सोलह हजार आठ सौ बियालीस योजन तथा दो योजन के उन्नीसवें भाग जितना चौड़ा है।

उसकी बाहु पूर्व तथा पश्चिम में बीस हजार एक सौ पैंसठ योजन तथा दो योजन के उन्नीसवें भाग एवं एक योजन के दो भाग जितनी लम्बी है।

---

1 से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—'महाहिमवंते वासहरपव्वए, महाहिमवंते वासहरपव्वए।
अदुत्तरं च णं गोयमा ! महाहिमवंतस्स सासए णामधेज्जे ण कयाइ णासि—जाव—णिच्चे।

ये दो सूत्र पाठ आ० स० की प्रति में नहीं हैं।

2 (क) सव्वे वि णं णिसढ-णीलवंता वासहरपव्वया चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।
—ठाणं ४, उ० २, सु० २६६

(ख) सव्वे वि णं णिसढ-णीलवंता वासहरपव्वया चत्तारि-चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि-चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।
—सम० १०६, सु० २

तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया जाव-पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा. चउणवइं जोअणसहस्साइं एगं च छप्पण्णं जोअणसयं दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोयणस्स आयामेणं[1] ति।

तस्स धणुं दाहिणेणं एगं जोयणसयसहस्सं चउवीसं च जोअणसहस्साइं तिण्णि अ जोयणसए छायाले णव य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ति।

रुअगसंठाणसंठिए सव्वतवणिज्जमए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

णिसहस्स णं वासहरपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,-जाव-आसयंति, सयंति।

—जम्बु० वक्ख० ४, सु० ८३

उसकी जीवा उत्तर में है, पूर्व तथा पश्चिम में लम्बी—यावत्—पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पर्शित है, चौरानवें हजार एक सौ छप्पन योजन तथा दो योजन के उन्नीसवें भाग जितनी लम्बी है।

उसका धनुपृष्ठ दक्षिण में है, उसकी परिधि एक लाख चौवीस हजार तीन सौ छियालीस योजन तथा एक योजन के उन्नीसवें भाग जितनी है।

रुचक (एक आभूषण विशेष) के आकार से स्थित है, सारा पर्वत तपाये हुए स्वर्णमय है, स्वच्छ है—यावत्—प्रतिरूप है।

दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो वनखण्डों से सारा घिरा हुआ है।

निषध वर्षधर पर्वत के ऊपर अतिसमरमणीय भूभाग कहा गया है—यावत्—वहाँ अनेक वाणव्यन्तर देव-देवियाँ बैठते हैं शयन करते हैं।

णिसढवासहरपव्वयस्स णामहेऊ—

३४१. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"णिसढे वासहरपव्वए, णिसढे वासहरपव्वए"?

उ०—गोयमा ! णिसहे णं पव्वए बहवे कूडा णिसहसंठाणसंठिया, (उसभसंठाणसंठिया)[2]।

णिसहे अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईए परिवसइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"णिसढे वासहरपव्वए, णिसढे वासहरपव्वए।[3]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ८४

निषध वर्षधर पर्वत के नाम का हेतु—

३४१. प्र०—हे भगवन् ! निषध वर्षधर पर्वत, निषध वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है?

उ०—हे गौतम ! निषध पर्वत पर निषध—वृषभ आकार के अनेक कूट है।

निषध नाम का पल्योपम की स्थिति वाला महर्द्धिक देव—यावत्—वहाँ रहता है।

हे गौतम ! इस कारण से निषध वर्षधर पर्वत-निषध वर्षधर पर्वत कहा जाता है।

(४) णीलवंतवासहरपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

३४२. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे णीलवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते?

उ०—गोयमा ! महाविदेहस्स वासस्स उत्तरेणं, रम्मगवासस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिम-लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं-एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे णीलवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते।

(४) नीलवन्त वर्षधर पर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

३४२. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में नीलवन्त नाम का वर्षधर पर्वत कहाँ कहा गया है?

उ०—हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र से उत्तर में, रम्यक् क्षेत्र से दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में—इस जम्बूद्वीप द्वीप में नीलवन्त नाम का वर्षधर पर्वत कहा गया है।

---

१ णिसढ-नीलवंतियाओ णं जीवाओ चउणवइं चउणवइं जोयणसहस्साइं एक्कं छप्पण्णं जोअणसयं दोण्णि अ एकूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ। —सम० ९४, सु० १

२ "नितरां सहते स्कन्धे पृष्ठे वा समारोपितं भारमिति निषधो—वृषभः" —जम्बू० वृत्ति

३ अदुत्तरं च णं गोयमा ! णिसहस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जं न कयाइ णासि—जाव—णिच्चे।
यह पाठ आ० स० की प्रति में नहीं है।

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिण्णे ।

यह पूर्व तथा पश्चिम में लम्बा है, उत्तर तथा दक्षिण में विस्तृत हैं ।

णिसहवत्तव्वया णीलवंतस्स भाणियव्वा,[1] णवरं जीवा दाहिणेणं, धणु उत्तरेणं ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० ११०

निषध वर्षधर पर्वत के कथन के समान नीलवन्त वर्षधर पर्वत का कथन करना चाहिए, विशेष यह है कि नीलवन्त वर्षधर पर्वत की जीवा दक्षिण में है और धनुपृष्ठ उत्तर में है ।

णीलवंतवासहरपव्वयस्स णामहेऊ—

नीलवन्त वर्षधर पर्वत के नाम का हेतु—

३४३. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"णीलवंते वासहर-पव्वए, णीलवंते वासहरपव्वए ?

३४३. प्र०—हे भगवन् ! नीलवन्त वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ?

उ०—गोयमा ! णीले णीलोभासे णीलवंते अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईए परिवसइ ।

उ०—हे गौतम ! नीले वर्ण वाला, नीले प्रकाश वाला नीलवन्त नाम का पल्योपम स्थिति वाला महर्द्धिक देव—यावत्—वहाँ रहता है ।

सव्व वेरुलिआमए णीलवंते-जाव-णिच्चे, त्ति ।

—जम्बु० वक्ख० ४, सु० ११०

सारा पर्वत वैडूर्य रत्नमय है, नीलवन्त नाम—यावत्—नित्य है ।

(५) रुप्पी वासहरपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

(५) रुक्मी वर्षधर पर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

३४४. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे रुप्पी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ।

३४४. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में रुक्मी नाम का वर्षधर पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! रम्मगवासस्स उत्तरेणं, हेरण्णवयवासस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिम-लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं—एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे रुप्पी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ।

उ०—हे गौतम ! रम्यक् क्षेत्र से उत्तर में, हैरण्यवत क्षेत्र से दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में इस जम्बूद्वीप द्वीप में रुक्मी नाम का वर्षधर पर्वत कहा गया है ।

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिण्णे ।

यह पूर्व तथा पश्चिम में लम्बा है, उत्तर तथा दक्षिण में विस्तृत है ।

एवं जा चेव महाहिमवंत-वत्तव्वया सा चेव रुप्पिस्स वि ।[2]

महाहिमवान् वर्षधर पर्वत का जो कथन है वही रुक्मी वर्षधर पर्वत का है ।

णवरं—दाहिणेणं जीवा, उत्तरेणं धणु, अवसेसं तं चेव ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

विशेष यह है कि इसकी जीवा दक्षिण में है और धनुपृष्ठ उत्तर में है, शेष सब उसी प्रकार है ।

रुप्पी वासहरपव्वयस्स णामहेऊ—

रुक्मी वर्षधर पर्वत के नाम का हेतु—

३४५. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"रुप्पी वासहरपव्वए, रुप्पी वासहरपव्वए ?"

३४५. प्र०—हे भगवन् ! रुक्मी वर्षधर पर्वत रुक्मी वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ?

---

१ (क) ठाणं ४, उ० २, सु० २९९ निषध पर्वत के टिप्पण के समान ये टिप्पण हैं ।
(ख) सम० १०६, सु० २ " " "
(ग) सम० ९८, सु० १ । " " "

२ (क) सम० १०२ सु० २ । महाहिमवंत पर्वत के टिप्पण के समान ये टिप्पण हैं ।
(ख) सम० ५३, सु० २ । " " "
(ग) सम० ५७, सु० ५ । " " "

उ०—गोयमा ! रुप्पी णाम वासहरपव्वए रुप्पी, रुप्पप्पभे, रुप्पभासे, सव्वरुप्पामए ।

रुप्पी अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईए परिवसइ ।

से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"रुप्पी"[1] वासहर-पव्वए, रुप्पी वासहरपव्वए ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

उ०—हे गौतम ! रुक्मी नाम का वर्षधर पर्वत रुप्य रुप्यप्रभ प्रकाशित एवं सम्पूर्ण पर्वत रुप्यमय है ।

रुक्मी नाम का पल्योपम स्थिति वाला महर्द्धिक देव—यावत्—वहाँ रहता है ।

हे गौतम ! इस कारण से रुक्मी वर्षधर पर्वत, रुक्मी वर्षधर पर्वत कहा जाता है ।

(६) सिहरी वासहरपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

३४६. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे सिहरी णामं वासहर-पव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! हेरण्णवयस्स उत्तरेणं, एरावयस्स दाहिणेणं, पुरत्थिम-लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिम-लवण-समुद्दस्स पुरत्थिमेणं ।

एवं जह चुल्लहिमवंतो तह चेव सिहरी वि,[2] णवरं—जीवा दाहिणेणं, धणु उत्तरेणं, अवसिट्ठं तं चेव ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

(६) शिखरी वर्षधर पर्वत का अवस्थिति और प्रमाण—

३४६. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप में शिखरी नाम का वर्षधर पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! हैरण्यवत क्षेत्र से उत्तर में, ऐरवत क्षेत्र से दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में....

क्षुद्रहिमवान् वर्षधर पर्वत का जो कथन है वैसा ही शिखरी वर्षधर पर्वत का है, विशेष यह है कि इसकी जीवा दक्षिण में है और धनुपृष्ठ उत्तर में है, शेष सब उसी प्रकार है ।

सिहरी वासहरपव्वयस्स णामहेऊ—

३४७. प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"सिहरिवासहरपव्वए, सिहरिवासहरपव्वए ?

उ०—गोयमा ! सिहरिम्मि वासहरपव्वए बहवे कूडा सिहरि-संठाणसंठिया, सव्वरयणामया[3] ।

सिहरी अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईए परिवसइ ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"सिहरिवासहर-पव्वए, सिहरिवासहरपव्वए ।[4]

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १११

शिखरी वर्षधर पर्वत के नाम का हेतु—

३४७. प्र०—हे भगवन् ! शिखरी वर्षधर पर्वत शिखरी वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ?

उ०—हे गौतम ! शिखरी वर्षधर पर्वत पर शिखरी नामक वृक्ष के आकार से स्थित अनेक कूट हैं, वे सब रत्नमय है ।

शिखरी नाम का पल्योपम की स्थिति वाला महर्द्धिक देव—यावत्—वहाँ रहता है ।

हे गौतम ! इस कारण से शिखरी वर्षधर पर्वत, शिखरी वर्षधर पर्वत कहा जाता है ।

---

१ अदुत्तरं च णं गोयमा ! रुप्पी वासहरपव्वयस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ णासि—जाव—णिच्चे ।
यह पाठ आ० स० की प्रति में नहीं है ।

२ (क) सम० १०० सु० ६ । चुल्लहिमवान् पर्वत के टिप्पण के समान ये टिप्पण है ।
(ख) सम० २४ सु० २ । ,, ,, ,,

३ ....शिखरिणि पर्वते बहूनि कूटानि शिखरी-वृक्षस्तत्संस्थानसंस्थितानि सर्वरत्नमयानि सन्तीति तद्योगाच्छिखरी ।....
—जम्बू० वृत्ति

४ अदुत्तरं च णं गोयमा ! सिहरि वासहरपव्वयस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ णासि—जाव—णिच्चे ।
यह पाठ आ० स० की प्रति में नहीं है ।

एगे मंदरे पव्वए—

मंदरपव्वयस्स अवट्ठिई पमाणं च—

३४८. प०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे मंदरे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! उत्तरकुराए दक्खिणेणं, देवकुराए उत्तरेणं, पुव्वविदेहस्स वासस्स पच्चत्थिमेणं, अवरविदेहस्स वासस्स पुरत्थिमेणं, जंबुद्दीवस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरे णामं पव्वए पण्णत्ते।

णवणउति जोयणसहस्साइं उद्धं उच्चत्तेणं[1], एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं।[2]

मूले दसजोयणसहस्साइं णवइं च जोयणाइं दस य एगारसभाए जोयणस्स विक्खंभेणं।[3]

धरणितले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं।[4]

तयणंतरं च णं मायाए मायाए परिहायमाणे परिहायमाणे उवरितले एगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं।[5]

मूले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं णव य दसुत्तरे जोयणसए तिण्णि अ एगारसभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं।

धरणितले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं।[6]

उवरितले तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोयणसयं किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं।

मूले वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उवरिं तणुए गोपुच्छ-संठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे सण्हे-जाव-पडिरूवे।

मंदर पर्वत एक है—

मंदर पर्वत की अवस्थिति और प्रमाण—

३४८. प्र०—हे भगवन् ! जम्बूद्वीप द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में मन्दर नाम का पर्वत कहाँ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! उत्तरकुरु से दक्षिण में देवकुरु से उत्तर में पूर्व महाविदेह क्षेत्र से पश्चिम में, पश्चिम महाविदेह क्षेत्र से पूर्व में जम्बूद्वीप के ठीक मध्यभाग में मन्दर नाम का पर्वत कहा गया है।

यह निन्यानवे हजार योजन ऊँचा है, एक हजार योजन भूमि में गहरा है।

मूल में इसकी चौड़ाई दस हजार और नव्वे योजन तथा दस योजन के इग्यारवें भाग जितनी है।

भूतल पर इसकी चौड़ाई दस हजार योजन जितनी है।

तदनन्तर थोड़ा-थोड़ा कम होते-होते ऊपर के तल की चौड़ाई एक हजार योजन जितनी है।

मूल में इसकी परिधि इकतीस हजार नो सौ दस योजन और तीन योजन के इग्यारवें भाग जितनी है।

भूतल पर इसकी परिधि इगतीस हजार छ सौ तेवीस योजन की है।

ऊपर के तल की परिधि तीन हजार एक सौ बासठ योजन से कुछ अधिक की है।

यह मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर पतला, गो-पुच्छ के आकार का सारा पर्वत रत्नमय स्वच्छ, चिकना—यावत्—प्रतिरूप है।

---

१ मंदरे णं पव्वए णवणउतिं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। —सम० ९९, सु० १

२ जम्बुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए दसजोयणसयाइं उव्वेहेणं, पण्णत्ते। —ठाणं १०, सु० ७१९

३ मंदरे णं पव्वए मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते। —सम० १०, सु० ३

४ (क) धरणितले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं। —ठाणं १० सु० ७१९

(ख) मंदरे णं पव्वए धरणितले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते। —सम० १२३

५ (क) उवरिं दसजोयणसयाइं विक्खंभेणं। —ठाणं १०, सु० ७१९

(ख) मंदरे णं पव्वए धरणितलाओ सिहरतले एक्कारसभागपरिहीणे उच्चत्तेणं पण्णत्ते। —सम० ११, सु० ७

भावार्थ—मेरु पर्वत की ऊँचाई भूतल से शिखर पर्यन्त निन्यानवे हजार योजन की है इस ऊँचाई के इग्यारवें भाग हीन शिखर का विष्कम्भ है, अर्थात्—भूतल पर मेरु पर्वत का विष्कम्भ दस हजार योजन का है और शिखर पर एक हजार योजन का है।

६ मंदरे णं पव्वए धरणितले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए किंचिदेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते। —सम० ३१, सु० २

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, वण्णओ ति ।

—जंबु० वक्ख० ४, सु० १०३

मंदरचूलिआए पमाणं—

३४९. पंडगवणस्स बहुमज्झदेसभाए—एत्थ णं मंदरचूलिआ णामं चूलिआ पण्णत्ता ।

चत्तालीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं ।[1]

मूले वारसजोयणाइं विक्खंभेणं[2], मज्झे अट्ठजोयणाइं विक्खंभेणं[3], उप्पिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं ।[4]

मूले साइरेगाइं सत्ततीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं,

मज्झे साइरेगाइं पणवीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं,

उप्पिं साइरेगाइं बारसजोयणाइं परिक्खेवेणं ।

मूले वित्थिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुआ, गोपुच्छ-संठाणसंठिआ, सव्ववेरुलिआमई, अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

साणं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, इति ।

उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे-जाव-सिद्धाययणं ।

बहुमज्झदेसभाए कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणगं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसन्निविट्ठा,-जाव-धूवकडुच्छुगा । —जंबु० वक्ख० ४, सु० १०६

मंदरपव्वयस्स तओ कंडा—

३५०. प०—मंदरस्स णं भंते ! पव्वयस्स कइ कंडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तओ कंडा पण्णत्ता, तं जहा—१ हिट्ठिल्ले कंडे, २ मज्झिल्ले कंडे, ३ उवरिल्ले कंडे ।

प०—मंदरस्स णं भंते ! पव्वयस्स हिट्ठिल्ले कंडे कतिविहे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—१ पुढवी, २ उवले, ३ वइरे, ४ सक्करा,

यह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है, यहां पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड का वर्णन कहना चाहिए ।....

मंदरचूलिका का प्रमाण—

३४८. पंडक वन के मध्य में मंदरचूलिका नाम की चूलिका कही गई है ।

यह चालीस योजन की ऊँची है ।

मूल में बारह योजन चौड़ी है, मध्य में आठ योजन चौड़ी है ऊपर चार योजन चौड़ी है ।

मूल में इसकी परिधि सैंतीस योजन से कुछ अधिक की है।

मध्य में इसकी परिधि पच्चीस योजन से कुछ अधिक की है

ऊपर इसकी परिधि बारह योजन से कुछ अधिक की है।

मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर से पतली, गो-पुच्छ के आकार की सारी चूलिका वैडूर्य रत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है ।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरी हुई है ।

चूलिका के ऊपर बहुतसम रमणीय भूभाग पर—यावत्—सिद्धायतन है ।

वह मध्यभाग में एक कोश लम्बा, आधा कोश चौड़ा कुछ कम एक कोश ऊँचा है, सैंकड़ों स्तम्भों से सन्निविष्ट—यावत्—धूपदानियों से युक्त है....

मेरु पर्वत के तीन काण्ड—

३५०. प्र०—हे भगवन् ! मंदर पर्वत के कितने काण्ड कहे गये हैं ?

उ०—हे गौतम ! तीन काण्ड कहे गये हैं, यथा—(१) नीचे का काण्ड, (२) मध्य का काण्ड, (३) ऊपर का काण्ड ।

प्र०—हे भगवन् ! मंदर पर्वत के नीचे का काण्ड कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! चार प्रकार का कहा गया है, यथा—(१) पृथ्वी, (२) पाषाण, (३) वज्र—अत्यन्त कठोर पाषाण, (४) शर्करा—रेत ।

---

१ मंदरचूलिया णं चत्तालीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । —सम० ४०, सु० २

२ मंदरस्स णं पव्वयस्स चूलिया मूले दुवालसजोयणाइ विक्खंभेणं पण्णत्ता । —सम० १२, सु० ६

३ मंदरचूलिया णं बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता । —ठाणं० ८ सु० ६३६

४ मंदर चूलिया णं उवरिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता । —ठाणं उ० २ सु० २९९

प०—मज्झिमिल्लेणं भंते ! कंडे कतिविहे पण्णत्ते ?

प्र०—हे भगवन् ! बीच का काण्ड कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते तं जहा १ अंके, २ फलिहे, ३ जायरुवे, ४ रयए,

उ०—हे गौतम ! चार प्रकार का कहा गया है, यथा—(१) अंक—रत्न, (२) स्फटिक, (३) स्वर्ण, (४) रजत—चांदी।

प०—उवरिल्ले णं भंते ! कंडे कतिविहे, पण्णत्ते ?

प्र०—हे भगवन् ! ऊपर का काण्ड कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते, सव्व जंबूणयामए।

उ०—हे गौतम ! एक प्रकार का कहा गया है, सारा काण्ड जम्बूनद—स्वर्णमय है।

प०—मंदरस्स णं भंते ! पव्वयस्स हेट्ठिल्ले कंडे केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

प्र०—हे भगवन् ! मंदर पर्वत नीचे का काण्ड कितना मोटा—ऊँचा कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! एगं जोयणसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

उ०—हे गौतम ! एक हजार योजन ऊँच कहा गया है।

प०—मज्झिमिल्ले णं भंते ! कंडे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

प्र०—हे भगवन् ! बीच का काण्ड कितना ऊँचा कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! तेवट्ठि जोयणसहस्साइं बाहल्लेण पण्णत्ते।

उ०—हे गौतम ! ऊपर का काण्ड कितना ऊँचा कहा गया है।

प०—उवरिल्लेणं भंते ! कंडे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

प्र०—हे भगवान् ! ऊपर का काण्ड कितना ऊँचा कहा गया है ?

उ०—गोयमा ! छत्तीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। एवामेव सपुव्वावरेणं मंदरे पव्वए एगं जोयणसयसहस्सं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।[1] —जम्बु० वक्ख० ४, सु० १०८

उ०—हे गौतम ! छत्तीस हजार योजन ऊँचा कहा गया है। इस प्रकार पहले पीछे के सब मिलाकर पूरा मंदर पर्वत (सर्वाग्र) एक लाख योजन ऊँचा कहा गया है....

मंदरस्स णं पव्वयस्स पढमे कंडे एगसट्ठि जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। —सम० ६१, सु० २

मंदर पर्वत का प्रथम काण्ड इकसठ हजार योजन ऊँचा कहा गया है....

अत्थस्स (मंदरस्स) णं पव्वयरण्णो बितिए कंडे अट्ठतीसं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।[2] —सम० ३८, सु० ३

मंदर पर्वतराज का द्वितीय काण्ड अड़तीस हजार योजन ऊँचा कहा गया है....

---

१ दस दसाइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते। —ठाणं० १० सु० ७१९

२ आ० स० से प्रकाशित जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के वक्षस्कार ४ के सूत्र १०८ में मंदर पर्वत के तीन काण्ड कहे गये हैं।
प्रथम काण्ड का बाहल्य (मोटाई-ऊँचाई) १००० एक हजार योजन है।
द्वितीय काण्ड का बाहल्य ६३००० त्रेसठ हजार योजन है।
तृतीय काण्ड का बाहल्य ३६००० छत्तीस हजार योजन है।
तीनों का संयुक्त बाहल्य १०००,०० एक लाख योजन है।
समवायांग सम० ६१, सूत्र २ तथा सम० ३८, सूत्र ३ में मंदर पर्वत के दो काण्ड कहे गये हैं।
प्रथम काण्ड की ऊँचाई ६१००० इकसठ हजार योजन है और द्वितीय काण्ड की ऊँचाई ३८००० अड़तीस हजार योजन है।
दोनों आगमों के अनुसार चूलिका के बाहर दो काण्ड हैं किन्तु उनकी ऊँचाई की योजन संख्या भिन्न-भिन्न है, इस मतान्तर की चर्चा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के वृत्तिकार ने की है।